॥ श्रीवेंकटेशाय नमः ॥

अथ भावप्रकाशः ।

मध्यमखण्ड-द्वितीयो भागः २.

भाषाटीकासमेतः

अथ अर्शोऽधिकारः ।

अथार्शःसन्निकृष्टनिदानम् ।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च शोणितात्सहजानि च ॥ अर्शांसि षट्प्रकाराणि विद्याद्गुदवलित्रये ॥ १ ॥

केचिद्रुधिरस्यापि दोषत्वं मन्यन्ते, तन्मतमाश्रित्य आह–शोणितादिति । सहजानि शरीरे सहजातानि । संख्यां चाह–षट्प्रकाराणीति । गुदवलित्रये सार्द्धचतुरंगुलं गुदस्य मानम् । तस्य अवयवभूतास्तिस्रो वलयः । शङ्खावर्तनिभाः उपर्युपरि सन्ति । तासां नामानि प्रवाहणी विसर्जनी संवरणी चेति । तत्र गुदोष्ठोऽर्द्धांगुलमानस्तदूर्द्ध्वमंगुलमाना प्रथमा वलिः । सार्द्धैकांगुलमाना द्वितीया तृतीया च तावती ॥

अर्द्धांगुलप्रमाणेन गुदोष्ठं परिचक्षते ॥ गुदोष्ठादंगुलश्चैकं प्रथमान्तु वलिं विदुः ॥ सार्द्धैकांगुलमानेन पृथगन्ये प्रकीर्तिते ॥ २ ॥

गुदाकी तीन वलियो (आटों) में वातसे, पित्तसे, कफसे, त्रिदोषसे, रुधिरसे और स्वाभाविक, ऐसे छः प्रकारकी बवासीर उत्पन्न होतीहैं ॥ १ ॥

कितनेक आचार्य रुधिरको भी दोष मानतेहैं, इसलिये उनके मतको लेकर रुधिरकी भी जाननी । स्वाभाविक अर्थात् शरीरके संग उत्पन्न हुईको कहतेहैं । इस रीतिसे छः प्रकारकी बवासीर होतीहैं, ये सख्या समझनी । गुदाका प्रमाण साढेचार (४॥) अंगुलका है, उसके अवयवरूप शखावर्तकी ऑटीके समान तीन वलि एकके ऊपर एक है । उनमें पहिली वलिका नाम प्रवाहणी (जो मलको नीचे उतारतीहै), दूसरी वलिका नाम विसर्जनी (जो मलको बाहर निकालतीहै) और तीसरी वलिका नाम संवरणी (जो गुदाको यथावत् बनादेतीहै) कहते ह । गुदाका ओंठ जो आधे अगुलका है उसके ऊपर एक अंगुलके प्रमाण पहिली वलि है, डेढ अंगुलके प्रमाण

दूसरी वलि है और तीसरी वलि भी डेढ अंगुलके प्रमाणही है ।

कहा भी है कि—"गुदाका ओठ आधे अंगुलका है और उस ओठके ऊपर एक अंगुलकी पहिली वलि है, उसके ऊपर डेढ अंगुलकी दूसरी वलि है और उसके ऊपर डेढ अंगुलकी तीसरी वलि है" ॥ २ ॥

अथ वातार्शोविप्रकृष्टनिदानम् ।

कषायकटुतिक्तानि रूक्षशीतलघूनि च ॥ प्रमितात्यशनं तीक्ष्णं मद्यं मैथुनसेवनम् ॥ ३ ॥ लंघनं देशकालौ च शीतौ व्यायामकर्म च ॥ शोको वातातपस्पर्शो हेतुर्वातार्शसां मतः ॥ ४ ॥

प्रमितं परिमितं, तीक्ष्णमिति मद्यविशेषणम् । पिष्टादिमृदुमद्यस्य वातशमकत्वात् । आतपस्तूष्णवीर्योद्भूतरौक्ष्याद्वातप्रकोपे हेतुः, वातार्शसाम् । ननु अर्शांसि सर्वाणि त्रिदोषजानि यत आह—

पञ्चात्मा मारुतः पित्तं कफो गुदवलित्रये ॥ सर्व एव प्रकुप्यन्ति गुदजानां समुद्भवे ॥ ५ ॥

तथा कथं वातार्शसामिति ? उच्यते । तत्तदाधिक्याद्व्यपदेशभेद इति न दोषः । अत एव अग्रे वक्ष्यते वातोल्बणानामिति । तथा च चरकः—

अर्शांसि नाम जायन्ते नासन्निपतितैस्त्रिभिः ॥ दोषैर्दोषविशेषात्तु विशेषः कथ्यतेऽर्शसाम् ॥ ६ ॥ इति ॥

कसैले, चरपरे, कडवे, रूखे, शीतल और हलके ऐसे भोजन करनेसे, बहुत थोडा भोजन करनेसे, अधिक भोजन करनेसे, तीक्ष्ण मदिरा पीनेसे, अत्यंत मैथुन करनेसे, लंघन करनेसे शीतदेश (हिमालय, मानसरोवर, काश्मीरादि) और शीतकाल (हेमन्त शिशिरादि) के होनेसे, कसरत करनेसे, शोक करनेसे, अत्यंत वायु और धूपके सेवन करनेसे वातकी बवासीर उत्पन्न होतीहै ।

(गुड आदिके चूनसे बनाई हुई मृदु मद्य तो वायुको शान्त करनेवाली है, इस कारण तीक्ष्ण मद्य अगर पीनेसे वातकी बवासीर प्रगट होतीहै । धूपादिका उष्ण वीर्यसे उत्पन्न होनेके कारण रूक्षपनसे वातज अर्शका निदान होताहै)।

शंका—'गुदाकी तीन वलियोंमें पाँचों प्रकारकी वायु, पित्त और कफ, इन तीनोंके कुपित होनेसे बवासीर उत्पन्न होतीहै' ऐसा कहा है, ये प्राचीन ग्रथोंके वचन हैं, अत एव सब प्रकारकी बवासीर तीनों दोषोंसे उत्पन्न होतीहै ऐसा सिद्ध होताहै, फिर वातज बवासीर, पित्तकी बवासीर और कफकी बवासीर अलग अलग क्यों कही ?

समाधान—यद्यपि अर्श (बवासीर) तीनों दोषोंके प्रकोपसे होतीहै, तथापि जिस अर्शमें जिस दोषकी अधिकता हो वह अर्श उसी दोषसम्बन्धी जाना जायगा, इसलिये आगे वायु संबंधी अर्शको 'वातोल्वण' कहेंगे, चरकमें भी कहा है कि—"जो बवासीर तीनों दोषोंके सन्निपातसे होतीहै तो भी उसमें दोषकी अधिकतासे वात पित्त आदिके साथ अर्शका नाम कहाजाताहै' ॥ ३—६ ॥

अथ पित्तार्शोविप्रकृष्टनिदानम् ।

कट्वम्ललवणोष्णानि व्यायामाग्न्यातपप्रभाः ॥ देशकालावशिशिरौ क्रोधो मद्यमसूयनम् ॥ ७ ॥ विदाहि तीक्ष्णमुष्णञ्च सर्वं पानान्नभोजनम् ॥ पित्तोल्बणानां विज्ञेयः प्रकोपे हेतुरर्शसाम् ॥ ८ ॥

उष्णद्रवस्य स्पर्शनादि बोद्धव्यम् । उष्णपानभोजनस्याग्रे वक्ष्यमाणत्वात् । अग्न्यातपप्रभा अग्न्यातपयोः प्रभा तेजः अथ वा अग्न्यातपतद्द्व्यस्य तेजः दीप्तिः प्रभा । अशिशिरो देशो मरुच्छरद्ग्रीष्मश्च कालः । क्रोधः कोपः । असूयनं परसम्पत्तौ द्वेषः । प्रकोपे उत्पत्तौ ॥

चरपरे, खट्टे और खारे पदार्थोंको सेवन करनेसे, उष्ण पदार्थोंका स्पर्शादि करनेसे, कसरत करनेसे, अग्नि और सूर्यके आतपसे, उष्णदेश और उष्ण कालके होनेसे, क्रोध करनेसे, मदिराको पीनेसे, पराई सम्पदाको देखकर जलनेसे और सर्वप्रकारके दाहकारक तीक्ष्ण और उष्ण अन्नपानोंके सेवन करनेसे पित्तोल्वण बवासीर उत्पन्न होतीहै ॥ ७ ॥ ८ ॥

मरुदेश (निर्जलदेश, मारवाड) को उष्णदेश जानना शरद् और ग्रीष्म, इन दो ऋतुओंको उष्ण काल कहतेहैं ।

अथ कफार्शोविप्रकृष्टनिदानम्।

मधुरस्निग्धशीतानि लवणाम्लगुरूणि च॥ अव्यायामादिवास्वप्नशय्यासनसुखे रतिः॥ ॥ ९ ॥ प्राग्वातसेवाशीतौ च देशकालावचिन्तनम् ॥ श्लैष्मिकाणां समुद्दिष्टमेतत्कारणमर्शसाम् ॥ १० ॥

मधुर, चिकने, शीतल, खारी, खट्टे और भारी, ऐसे पदार्थोंके भोजन करनेसे, कसरत नहीं करनेसे, दिनमें सोनेसे, सुखपूर्वक नित्य सेज, गद्दी, तकिया आदिपै वैठे रहनेसे या सोते रहनेसे, पुरवाई पवनको सेवन करनेसे, शीतदेशके निवाससे, शीतकालके सहनेसे और चिंता नहीं करनेसे कफ सबंधी बवासीर उत्पन्न होती है॥९॥१०॥

त्रिदोषजार्शोविप्रकृष्टनिदानम्।

हेतुर्लक्षणसंसर्गाद्विद्याद्द्वन्द्वोल्वणानि च ॥ सर्वो हेतुस्त्रिदोषाणां सहजैर्लक्षणं समम् ॥ ११ ॥

जनकत्वेन त्रयो दोषाः येषां तानि त्रिदोषजानि। अर्शसां सर्वो हेतुः पृथग्वातापित्तकफार्शोहेतुः। त्रिदोषार्शोलक्षणं श्वासरुजाविबन्धैः सहजार्शोभिः समम्। ननु त्रिदोषाणामिति विशेषणं व्यर्थम्। यतः सर्व एव व्याधयस्त्रिदोषजाः—

द्रव्यमेकरसं नास्ति न रोगोऽप्येकदोषजः ॥ एकस्तु कुपितो दोष इतरानपि कोपयेत् ॥ १२ ॥ इति ॥

युक्तिमप्याह—स्वकारणाद्वृद्धो वायुः शैत्यात्कफं द्रवत्वात्पित्तं वर्धयते इति। उच्यते। यत्र स्वस्वकारणात्त्रयो दोषाः कुप्यन्ति तत्र त्रिदोषजव्यपदेश इति न दोषः।

जिसमें दो दोषोंके हेतु और लक्षण मिलते हों उसको द्वन्द्वज बवासीर कहतेहैं। अलग अलग वातादि दोष सम्बन्धी बवासीरके जो कारण और लक्षण होते हैं वह सब जिसमे हो उसको सन्निपातकी बवासीर कहतेहैं और उसमे स्वाभाविक बवासीरके श्वास मलरोध आदि लक्षण भी होतेहैं।

शंका—बवासीरको 'त्रिदोषज' यह जो विशेषण दिया है सो व्यर्थ है, क्योंकि सम्पूर्ण व्याधि तीनो दोषोंसे प्रगट होतीहैं। कहा है कि—'जैसे कोई द्रव्य एक रसवाला नहीं है' उसीप्रकार कोई रोग भी एक दोषसे उत्पन्न नही होताहै, कारण यह है कि—कोपको प्राप्त हुआ कोई एक दोष दूसरे दोषको भी कुपित करैहै, इस विषयमे युक्ति भी कहीहै कि "अपने कारणोंसे वृद्धिको प्राप्त हुई वायु शीतलतासे कफको और द्रवपनसे पित्तको बढाती है" इस युक्तिसे प्रकोप हुए एक दोषसे दूसरे दोषका कुपित होना सम्भव है?

समाधान—जिस रोगमे तीनों दोष एक दूसरेसे नहीं किन्तु अपने अपने कारणोंसे अलग अलग कुपित हुए हों तो उसी रोगको तीनो दोषोंसे कुपित हुआ कहा जाताहै ॥ ११ ॥ १२ ॥

अथार्शःपूर्वरूपम्।

विष्टम्भोऽन्नस्य दौर्बल्यं कुक्षेराटोप एव च ॥ कार्श्यमुद्गारबाहुल्यं सक्थिसादोऽल्पविट्कता ॥ १३ ॥ ग्रहणीदोषपार्श्वार्तिराशंका चोदरस्य च ॥ पूर्वरूपं विनिर्दिष्टमर्शसामभिवृद्धये ॥ १४ ॥

पेटमे अन्नका विष्ठा होकर नहीं निकलना, दुर्वलता, कोखमें अफारा, कृशता, डकारोंकी अधिकता, जाघोंमे पीडा, मल थोडा उतरे, ग्रहणी और पार्श्वशूल, तथा उदर रोगकी आशका, यह बवासीरके पूर्वरूप है ॥ १३॥१४॥

अथार्शःसम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणम्।

दोषास्त्वङ्मांसमेदांसि संदूष्य विविधाकृतीन् ॥ मांसांकुरानपानादौ कुर्वन्त्यर्शांसि ताञ्जगुः ॥ १५ ॥

त्वङ्मांसपदेन त्वङ्मांसमाश्रितं रक्तमपि गृह्यते किञ्चित्साधारणरक्तस्रावणोपदेशात्। आदिशब्देन नासानेत्रनाभिमेढ्रादिषु अपि कुर्वन्ति ॥

दोष, त्वचा, मास और मेदको दूषित करके गुदा, नासिका, नेत्र, नाभि और लिग इत्यादि स्थानोमे अनेक प्रकारके पूर्णाकारवाले मासके अँकुरोंको उत्पन्न करतेहैं उन अकुरोको अर्श कहतेहैं।

'त्वचाको और मासको' इन वचनोंसे त्वचामें और मांसमें रहनेवाले रुधिरका भी ग्रहण होताहै, अत एव दोष रुधिरको भी दूषित करके ववासीरको उत्पन्न करते हैं ऐसा जानना, क्योंकि—ववासीरकी पीडामें कुछ साधारण रीतिसे रुधिरस्राव भी कहा है ॥ १५ ॥

अथ वातार्शोलक्षणम्।

गुदांकुरा बह्वनिलाः शुष्काश्चिमिचिमान्विताः॥ म्लानाः श्यावारुणाः स्तब्धा विशदाः परुषाः खराः॥ मिथो विसदृशा वक्रास्तीक्ष्णा विस्फुटिताननाः ॥ १६ ॥ बिंबीकर्कन्धुखर्जूरकर्कोटीफलसन्निभाः ॥ केचित्कदम्बपुष्पाभाः केचित्सिद्धार्थकोपमाः ॥ १७ ॥ शिरःपार्श्वांसकट्यूरुवंक्षणाभ्यधिकव्यथाः ॥ क्षवथूद्गारविष्टम्भहृद्ग्रहारोचकप्रदाः ॥ १८ ॥ कासश्वासाग्निवैषम्यकर्णनादभ्रमावहाः ॥ तैरार्तो ग्रथितं स्तोकं सशब्दं सप्रवाहिकम् ॥ ॥ १९ ॥ रुक्फेनपिच्छानुगतं विबद्धमुपवेश्यते॥कृष्णत्वङ्नखविण्मूत्रनेत्रवक्त्रश्च जायते ॥ गुल्मप्लीहोदराष्ठीलासम्भवस्तत एव च ॥ २० ॥

बह्वनिलाः वातोल्वणाः गुदांकुरा अर्शांसि। चिमिचिमान्विताः चिमिचिमा व्यथाविशेषः चडचडा इति लोके तदन्विताः। श्यावारुणाः श्यावा धूम्रवर्णाः, अरुणवर्णा वा। स्तब्धाः कठिनाः। विशदाः पिच्छिलाः। परुषाः गोजिह्वावत्खरस्पर्शाः। कर्कशाः खराः कर्कोटीफलवत्सूक्ष्मानेककंटकचिताः। बिम्ब्यादिफलसन्निभाः। आवृत्त्या अत्र विकल्पबोधकं वक्ष्यमाणं केचित्केचिदिति पदं प्रति सम्बन्धनीयम्। कदम्बपुष्पाभाः स्थिरानेकसूक्ष्माशिखराः। सिद्धार्थकोपमाः पीतसूक्ष्मपिटकाचिताः। तैरार्त इत्यर्शोभिः पीडितः। तैरार्तो विबद्धमुपवेश्यत इति आर्तस्य प्रयोज्यकर्तुः कर्मता आर्षत्वात्। ग्रथितं मलगुठिकाग्रन्थितविड्वर्तिरूपम्। पिच्छा पिच्छिलो द्रवभागः। बद्धं संहतम्। विट्शब्दो नपुंसकेऽप्यस्ति। उपवेश्यते त्याज्यते। तत एव वातार्शस एव गुल्मादीनां सम्भवः। अष्ठीला नाभेरधोभागे पाषाणपिण्डिकावद्वातव्याधिविशेषः॥

वातकी उल्वणतावाली ववासीरके अंकुर (मस्से) सूखे, चिमचिमानेवाले, कुम्हलायेसे, धुएँके रंगके या लाल रंगके, कठिन, विशद, कठोर, खरखरे, आपसमें बराबर न हो, टेढे, तीक्ष्ण, फटेमुखवाले, कन्दूरी, वेर, खजूर और ककोडेके फलकी समान हो, एवं मस्तकमें, पसलियोंमें, कंधेमें, कमरमें, जांघ और जाघकी संधियोंमें अत्यंत पीडा होतीहो, छींक, डकार, मलबंध, छातीमें पीडा, अरुचि, खासी, श्वास, अग्निकी विषमता, कानोंमें शब्द और भ्रम होताहै। इस अर्शरोगसे पीडित मनुष्योंका मल गाठदार-थोडा थोडा, शब्दसहित, प्रवाहिकाके लक्षणयुक्त, पीडासहित, झागो संयुक्त और पतला तथा बँधाहुआ सा उतरता है।

त्वचा, नख, विष्ठा, मूत्र, नेत्र और मुख, ये सब काले होजातेहैं, गुल्म (वायगोला), प्लीहा, उदररोग और अष्ठीला (नाभीके नीचे लम्बे पत्थरकी समान एक वातसम्बन्धी रोग होताहै उसको अष्ठीला कहते हैं) ये सब लक्षण होतेहैं ॥ १६–२० ॥

अथ पित्तार्शोलक्षणम्।

पित्तोत्तरा नीलमुखा रक्तपीतसितप्रभाः॥ तन्वस्रस्राविणो विस्रास्तनवो मृदवः श्लथाः ॥ २१ ॥ शुकजिह्वायकृत्खण्डजलौकोवक्त्रसन्निभाः ॥ दाहपाकज्वरस्वेदतृष्णामूर्च्छारतिप्रदाः ॥ २२ ॥ सोष्माणो द्रवनीलोष्णपीतरक्तामवर्चसः ॥ यवमध्या हरित्पीतहारिद्रत्वङ्मुखादयः॥२३॥

तनु अघनम्। श्लथा लम्बिनः। सन्निभा आकृत्या। पाको गुदस्य। सोष्माणः उष्णस्पर्शाः। हरिच्छाकवर्णम्। पीतं हरितालवर्णम्। हारिद्रं हरिद्रावर्णम्। आदिशब्दान्मलमत्रपुरीषाणां ग्रहणम्॥

पित्तोल्वण बवासीरमे गुदाके अंकुर नीलमुखवाले, लाल, पीले और काले होतेहैं, उनमेसे पतला रुधिर टपकता रहै, दुर्गन्ध आवै, बारीक, मृदु, लटकते हों, कोई तोतेकी जीभकी समान, कोई कलेजेके टुकडेकी समान, कोई जोंकके मुखकी समान हो, इस बवासीरमे दाह, गुदाका पकना, ज्वर, पसीनेका आना, तृषा, मूर्च्छा और बेकली होवै, इसका स्पर्श गरम हो, मल पतला, नीला, गरम, पीला, लाल और आमसंयुक्त हो जौके मध्यभागकी समान हो, इसमे त्वचा (चमडी) और नखादि शाककी समान हरितवर्ण, हरतालकी समान और हलदीकी समान रंगवाले होतेहै ॥ २१–२३ ॥

अथ पित्तोत्तररुधिरार्शोलक्षणम्।

रक्तोल्वणा गुदे कीलाः पित्ताकृतिसमन्विताः ॥ वटप्ररोहसदृशा गुञ्जाविद्रुमसन्निभाः ॥ २४ ॥ तेऽत्यर्थं दुष्टमुष्णं च गाढविट्कप्रपीडिताः ॥ स्रवन्ति सहसा रक्तं तस्य चातिप्रवृत्तितः ॥ २५ ॥ भेकाभः पीड्यते दुःखैः शोणितक्षयसम्भवैः ॥ हीनवर्णबलोत्साहो हतौजाः कलुषेन्द्रियः ॥ २६ ॥ विट् श्यावं कठिनं रूक्षमधोवायुर्न वर्तते ॥ तनु चारुणवर्णं च फेनिलं वासृगर्शसाम् ॥ २७ ॥ कटचूरुगुदशूलश्च दौर्बल्यं यदि वाधिकम् ॥ तत्रानुबन्धो वातस्य हेतुर्यदि च रूक्षणम् ॥ ॥ २८ ॥ शिथिलं श्वेतपीतं च विट् स्निग्धं गुरु शीतलम् ॥ यद्यर्शसां घनं चासृक् तन्तुमत्पाण्डु पिच्छिलम् ॥ २९ ॥ गुदं सपिच्छं स्तिमितं गुरु स्निग्धं च कारणम् ॥ श्लेष्मानुबन्धो विज्ञेयस्तत्र रक्तार्शसां बुधैः ॥ ३० ॥

गुदे कीलाः अर्शांसि। पित्ताकृतिसमन्विताः पित्तार्शोलक्षणयुक्ताः। आकारेण च वटप्ररोहसदृशाः। २६ श्लोके दुःखै रोगैः त्वक्पारुष्याम्बुशीतप्रार्थनादिभिः कलुषेन्द्रियः व्याकुलसर्वेन्द्रियः। असृगर्शसां रक्तार्शसाम्। २७ श्लोके तत्र रक्तार्शसि अनुबन्धः उल्वणम्। रूक्षं रूक्षयतीति रूक्षणम् रूक्षद्रव्यम्। पित्तोल्वणस्य तु लक्षणम्, "रक्तोल्वणा गुदे कीलाः पित्ताकृतिसमन्विताः"। इत्यादिनैवोक्तं रक्तपित्तयोः समानलिङ्गत्वात् ॥

रक्तोल्वण बवासीरके अंकुर पित्तकी बवासीरके आकृतिवाले होते हैं, बडके अंकुरकी समान, गुंजाकी समान, मूँगेकी समान, वह कडे मलके आनेसे दबकर दूषित और गरम रुधिरको छोडतेहैं। रक्तके अधिकतर निकलनेसे बवासीरवाला रोगी मेंडककी समान पीला पडजाताहै, त्वचा कठोर होजातीहै, जलकी प्रार्थना और शीतकी इच्छा आदि दुःखोसे पीडित होजाताहै उस मनुष्यका वर्ण, बल और उत्साह हीन होजाताहै ओजक्षय होजाताहै और सम्पूर्ण इन्द्रियें व्याकुल होजातीहैं, विष्ठा काला कठिन और रूक्ष उतरताहै, अधोवायुका अवरोध होताहै, इसमे रुधिर पतला, लाल और झागोंदार निकलताहै ॥ २४–२७ ॥

जो रुधिरकी बवासीर रूक्ष कारणोंसे उत्पन्न हुई हो, तथा कमर, जाघ और गुदामे शूल होय और अत्यन्त निर्बलता होय तो रुधिरमे वायुका अनुबन्ध होताहै ॥

जिस रुधिरकी बवासिरमे विष्ठा (मल) शिथिल, सुफेद, पीला, चिकना, भारी और शीतल हो, रुधिर गाढा, तन्तुयुक्त, पाण्डुवर्ण और चिकना हो, गुदा चिकनी और स्तब्ध हो, भारी और स्निग्ध कारणोसे उत्पन्न हुई हो, तो रुधिरमे कफका अनुबन्ध जानना। रक्तानुबन्धी रुधिरकी बवासीरके लक्षण तो पित्तकी बवासीरकेही समान होतेहैं सो पहिले कहही चुके हैं, क्योंकि पित्त और रुधिरके लक्षण समान हैं, इस कारण दुबारा कहनेकी आवश्यकता नही है ॥ २८–३० ॥

अथ कफोल्वणार्शोलक्षणम्।

श्लेष्मोल्वणा महामूला घना मन्दरुजः सिताः ॥ उत्सन्नोपचिताः स्निग्धाः स्तब्धवृत्तगुरुस्थिराः ॥ ३१ ॥ पिच्छिलाः स्तिमिता श्लक्ष्णाःकण्ड्वाढ्याःस्पर्शनप्रियाः॥ करीरपनसास्थ्याभास्तथा गोस्तनसन्निभाः ॥ ३२ ॥ वङ्क्षणानाहिनः पायुवस्तिनाभिविकर्षिणः॥ सकासश्वासहृल्लासप्रसेका-

रुचिपीनसाः ॥ ३३ ॥ मेहकृच्छ्रशिरोजाड्यशिशिरज्वरकारिणः ॥ क्लैब्याग्निमार्दवच्छर्दिरामप्रायविकारदाः ॥ ३४ ॥ वसाभाः सकफप्रायपुरीषाः सप्रवाहिकाः ॥ न स्रवन्ति न भिद्यन्ते पाण्डुस्निग्धत्वगादयः ॥ ३५ ॥

उत्सन्नाः उन्नताः । उपचिताः स्थूलाः । स्निग्धाः स्नेहाभ्यक्ताः । स्थिराः निश्चलाः । पिच्छिलाः कफोल्वणत्वात् । स्तिमिताः आर्द्रचर्मावगुण्ठिता इव । श्लक्ष्णाः मणिवन्मसृणाः । करीरो वंशांकुरः । पनसास्थिगोस्तनाः तदाकृतयः वंक्षणानाहिनः वङ्क्षणयोरानाहकारिणः पाय्वादिषु आकर्षणवत्पीडाकारिणः । कृच्छ्रं मूत्रकृच्छ्रम् । शिरोजाड्यं शिरोभागे शीताक्रान्तमिव । क्लैब्यं स्त्रीषु अनिच्छा । अत्र छर्दिशब्दः सान्त आर्षत्वात् । आमप्रायकविकारदाः आमबहुला व्याधयोऽतीसारग्रहण्यादयस्तान्ददति ॥

कफकी ववासीरमें गुदाके अङ्कुर बहुत गहरी जडवाले, मन्द, अल्पपीडायुक्त, सफेद, ऊंचे, मोटे, चिकने, स्तब्ध, गोल, भारी, कठिन, पिच्छिल, गीले चमडेमें लिपटे हुए ऐसे मणिकी समान चिकने, खुजलीवाले और स्पर्शमें प्रिय हों, करील, कटहर और गायके थनकी समान हों, तथा वंक्षणस्थानमें पीडा, गुदा मूत्राशय और नाभिमें आकर्षणकी समान वेदना हो, खांसी श्वास, उबकाई, मुखसे पानीका गिरना, अरुचि, पीनस, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, शिरमें जडता और शीतज्वरको करनेवाले हों, नपुंसकता अर्थात् स्त्रीप्रसंगमें इच्छाका नहीं होना, मन्दाग्निकी बहुता, वमन, और कफ आमवाले अतीसार, संग्रहणी आदि रोगोंका प्रकट होना, चर्बीकी समान कान्तिवाले, कफसे व्याप्त मलका उतरना और प्रवाहिकाका होना ये लक्षण होवें । इस बवासीरके मस्सोंमेंसे न रुधिर बहता है, न मस्से टूटते हैं, परन्तु शरीरकी त्वचादि पाण्डुवर्ण चिकने और स्पष्ट [illegible] होतेहैं ॥ ३४-३५ ॥

अथ द्वन्द्वजार्शोलक्षणम् ।

हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्द्वन्द्वोल्वणानि च ॥ ३६ ॥

जिसमें दो दोषोंके कारण और द्वन्द्वोंके लक्षण मिलते हों उसको द्वन्द्वोल्वण कहतेहैं ॥ ३६ ॥

अथ त्रिदोषोल्वणस्वाभाविकार्शोलक्षणम् ।

सर्वैः सर्वात्मकान्याहुर्लक्षणैः सहजानि च ॥ ३७ ॥

सर्वलक्षणैर्वातपित्तकफार्शोलक्षणैः प्रागुक्तैः सर्वात्मकानि सन्ति तानि अर्शांसि अतस्तथा तैरेव लक्षणैः सहजानि अर्शांसि आहुः ॥

जिसमें वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषोंके लक्षण दिखाई देवैं उसको त्रिदोषोल्वण कहतेहैं और सहज अर्थात् स्वाभाविक अर्शकेभी येही लक्षण होतेहैं ॥ ३७ ॥

अथान्यग्रन्थोक्तस्वाभाविकार्शोऽन्यलक्षणम् ।

अर्शांसि सहजातानि दारुणानि भवन्ति हि ॥ दुर्दर्शनानि पाण्डूनि परुषाण्यरुणानि च ॥ ३८ ॥ अन्तर्मुखानि तैरार्तः क्षीणः क्षीणस्वरो भवेत् ॥ क्षीणानलः क्षीणरेताः शिरासन्ततविड्ग्रहः ॥ ३९ ॥ अल्पप्रजः क्रोधशीलो भग्नकांस्यस्वनान्वितः ॥ शिरोदक्कर्णनासासु रोगी हृल्लेपसेकवान् ॥ ४० ॥

स्वाभाविक अर्थात् शरीरके साथ उत्पन्नहुई बवासीर अत्यन्त दारुण होतीहै, भयकर, पाण्डुवर्ण, खरखरे, लाल और भीतरको मुख किये मस्से होतेहैं, इनसे पीडित मनुष्य क्षीण, क्षीण स्वरवाला, क्षीण अग्निवाला, क्षीण वीर्यवाला और नसोंसे व्याप्त शरीरवाला होताहै, उसके सर्दैव मलका अवरोध रहताहै, सन्तान थोडी होतीहै, क्रोधी, फूटे कांसेके शब्दकी समान उसका शब्द होताहै, मस्तक, नेत्र, कान और नासिकामें पीडा होतीहै, हृदय कफसे लिपासा रहताहै और उसके मुखसे बारबार पानी निकला करताहै ॥ ३८-४० ॥

अथ सुखसाध्यार्शोलक्षणम्।

बाह्यायां तु वलौ जातान्येकदोषोल्बणानि च॥ अर्शांसि सुखसाध्यानि न चिरोत्पतितानि च॥ ४१॥

बाह्यायां वलौ संवरण्याम्। न चिरोत्पतितानि अतिक्रान्तसंवत्सराणि एतानि लक्षणानि मिलितानि सुखसाध्यत्वबोधकानि॥

गुदाकी संवरणीनामक वलिमे उत्पन्नहुई, एक दोषोल्बण और थोडे कालसे उत्पन्न हुई ऐसी बवासीर सुखसाध्य होतीहै। (जिसको उत्पन्न हुए एक वर्ष नहीं बीता हो उसको थोडे कालसे उत्पन्नहुआ जानना) ॥ ४१॥

अथ कष्टसाध्यार्शोलक्षणम्।

द्वन्द्वजानि द्वितीयायां वलौ यान्याश्रितानि च॥ कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः परिसंवत्सराणि च॥ ४२॥

द्वितीयायां वलौ विसर्जन्याम्। परिसंवत्सराणि परिगतः संवत्सरो येषां तानि अतीतसंवत्सराणीति यावत्। एतानि प्रत्येकं कष्टसाध्यलक्षणानि॥

जिस बवासीरको उत्पन्नहुए एक वर्ष बीतगया हो जो दो दोषोल्बण हो और जो गुदाकी विसर्जनी दूसरी वलिमें उत्पन्नहुई हो उसको कष्टसाध्य जानना॥ ४२॥

अथासाध्यार्शोलक्षणम्।

सहजानि त्रिदोषाणि यानि चाभ्यन्तरां वलिम्॥ जायन्तेऽर्शांसि संश्रित्य तान्यसाध्यानि निर्दिशेत्॥ ४३॥

अभ्यन्तरां वलिं प्रवाहिणीम्। एतान्यपि प्रत्येकमसाध्यानि लक्षणानि॥

जो बवासीर जन्मसेही शरीरके साथ उत्पन्न हुई हो अथवा त्रिदोषोल्बण हो किंवा गुदाकी प्रवाहनी नामक भीतरकी तीसरी वलिमें उत्पन्न हुई हो उसको असाध्य जानना॥ ४३॥

अथ याप्यार्शोलक्षणम्।

शेषत्वादायुषस्तानि चतुष्पादसमन्वये॥ याप्यन्ते दीप्तकायाग्नेः प्रत्याख्येयान्यतोऽन्यथा॥ ४४॥

यदि आयुःशेषो वर्तते चिकित्सायाः चत्वारः पादास्ते यथा—वैद्यवचनकारी धनवानुदारो जितेन्द्रियो रोगी। शस्त्रकर्मणि कुशलो वैद्यः। अनलसः आप्तः प्रियः परिचारकः। नवरसवीर्यादिकमौषधम्। एषां समन्वये समागमे। अतिदीप्तकायाग्नेः पुरुषस्य तानि अर्शांसि याप्यन्ते चिकित्सायाम्। अतोऽन्यथा प्रत्याख्येयानि चिकित्साहीनानीत्यर्थः॥

जिस रोगीकी आयु बाकी हो, चिकित्साके चारोपाद ठीकहो और रोगीकी जठराग्नि अत्यत दीपनहो, तो उसको याप्य जानना और जो यह सब सामग्री नहीं हो तौ उसकी वैद्य चिकित्सा नही करै, क्योंकि वह असाध्य है॥ ४४॥

रोगी—वैद्यके वचनोंको माननेवाला, धनवान, उदारचित्त और जितेन्द्रिय होना चाहिये। वैद्य—शस्त्रकर्ममें कुशल होना चाहिये। परिचारक (सेवक)—आलस्यरहित, यथार्थ कहनेवाला और प्रियहोना चाहिये। औषधि—नवीन रस और वीर्ययुक्त होनी चाहिये, यह चिकित्साके चार पाद है॥

अथार्शोऽरिष्टकथनम्।

हस्ते पादे मुखे नाभ्यां गुदे वृषणयोस्तथा॥ शोथो हृत्पार्श्वशूलं च यस्यासाध्योऽर्शसो हि सः॥ ४५॥

असाध्यः सन्निहितमरणो बोध्यः। अर्शसः अर्शोरोगयुक्तः॥

हृत्पार्श्वशूलं संमोहश्छर्दिरङ्गस्य रुग्ज्वरः॥ तृष्णा गुदास्यपाकश्च निहन्युर्गुदजातुरम्॥ ४६॥

गुदस्य आस्यमोष्ठदेशस्तस्य पाकः। हृत्पार्श्वशूलादि समस्तं चारिष्टलक्षणम्॥

तृष्णारोचकशूलार्तमतिप्रस्रुतशोणितम्॥ शोथातीसारसंयुक्तमर्शांसि क्षपयन्ति हि॥ ४७॥

जिस बवासीरवाले रोगीके हाथ, पाँव, मुख, नाभि, गुदा और अण्डकोषोंमें सूजन हो, छाती और पसलियोंमें शूलकी पीडा हो, उसको मृत्युके समीप हुआ जानो ॥ ४५ ॥

हृदय और पसलियोंमें शूल, मोह, वमन, अगमें पीडा, ज्वर, तृषा और गुदाका पकना, अर्थात् गुदाके ऊपर पीले फोडा होना यह सब लक्षण जिस अर्शरोगमें हो उसको मृत्युके निकट जानना ॥ ४६ ॥

तृषा, अरुचि, और शूल इनसे पीडित अथवा सूजन और अतीसारसे पीडित, किं वा जिसका रुधिर बहुत निकल गया हो, ऐसा अर्शरोगी मर जाताहै ॥ ४७ ॥

अथ लिंगाद्यर्शोलक्षणम् ।

मेढ्रादिष्वपि वक्ष्यन्ते यथास्वं नाभिजानि च॥गण्डूपदास्यरूपाणि पिच्छिलानि मृदूनि च ॥ ४८ ॥

यथास्वं यथात्मीयलक्षणम् । न च अत्रोक्तनिदानपूर्वं सम्प्राप्तिलक्षणं युक्तम् । तत्रार्शसपदन्तु मांसांकुरसाम्यात् । गण्डूपदः केंचुलकः ॥

लिंग आदि अवयवोंमें और नाभिमें भी अलग अलग प्रकारकी बवासीर होती है, उसके अंकुर केंचुएके मुखकी समान चिकने और नरम होते हैं ॥ ४८ ॥

अथ चर्मकीललक्षणम् ।

व्यानो गृहीत्वा श्लेष्माणं करोत्यर्शस्त्वचो बहिः ॥ कीलोपमं स्थिरखरं चर्मकीलं तु तद्विदुः ॥ ४९ ॥

खरं कर्कशम् ॥

चर्मकील मांसके अंकुरकी समान होतेहैं इस लिये अर्शरोगमें उसकी सम्प्राप्तिपूर्वक लक्षण कहतेहैं । जब व्यान वायु कफको ग्रहण करके त्वचाके बाहर कीलकी समान, स्थिर और कठोर अर्शको उत्पन्न करतीहै उसको चर्मकील कहतेहैं ॥ ४९ ॥

अथ चर्मकीलवातादिलक्षणम् ।

वातेन तोदपारुष्यं पित्तादसितरक्तता ॥ श्लेष्मणा स्निग्धता तस्य ग्रथितत्वं सवर्णता ॥ ५० ॥

सवर्णता शरीरसमानवर्णता ।

वातके चर्मकीलमें व्यथा (पीडा) और कठोरपन होताहै, पित्तके चर्मकीलमें कालापन और लाली होतीहै और कफके चर्मकीलमें चिकनापन, गांठदार और शरीरके रगकी समान वर्ण होताहै ॥ ५० ॥

अथार्शःसामान्यचिकित्सा ।

यद्वातस्यानुलोम्याय यदग्निबलवृद्धये ॥ अन्नपानौषधं सर्वं तत्सेव्यं नित्यमर्शसैः ॥ ५१ ॥

अर्शसैः अर्शोरोगयुक्तैः ॥

शालिषष्टिकगोधूमयवान्नानि घृतैः सह ॥ अजाक्षीरेण वा निम्बपटोलानां रसेन वा ॥ ५२ ॥ कान्दैर्वार्ताकुमूलांशे रसैर्मांसरसेन वा ॥ जीवन्त्युपोदिकाशाकैस्तण्डुलीयकवास्तुकैः ॥ ५३ ॥ अन्यैश्च सृष्टविण्मूत्रमरुद्भिर्वह्निदीपनैः । अर्शांसि भिन्नवर्चांसि हन्याद्वातातिसारवत् ॥५४॥ सतक्रं लवणं दद्याद्वातवर्चोऽनुलोमनम् ॥ न प्ररोहन्ति गुदजाः पुनस्तक्रसमाहताः॥ ॥ ५५ ॥ तक्राभ्यासोऽर्शसैः कार्यो बलवर्णोऽग्निवृद्धये ॥ स्रोतःसु तक्रशुद्धेषु सम्यक् चरति तद्रसः ॥ ५६ ॥ तेन पुष्टिस्तथा तुष्टिर्बलं वर्णश्च जायते ॥ वातश्लेष्मविकाराणां शतञ्च विनिवर्तते॥ ५७ ॥

जो अन्न पानी और औषधि वायुको अनुलोमन करनेवाले हैं तथा अग्निके बलको बढानेवाले हैं वह सब अर्शरोगमें सदैव सेवन करने चाहिये ॥

शालिधानके चावल, साठीके चावल, गेहूं और जौ इनका भोजन घीके साथ, या बकरीके दूधके साथ, नीम अथवा कडवे परवलके रसके साथ, जमीकन्द, बैंगन, मूली या मांसरसके साथ सेवन करे ॥

जिस बवासीरमें विष्ठाका भेदन नहीं होता हो ऐसी बवासीरको जीवन्ती, पोई, चौलाई और बथुवा, इन शाकोंसे तथा अन्यान्य विष्ठा, मूत्र और वायुको प्रवर्तन करनेवाले और अग्निको दीपन करनेवाले, द्रव्योंसे जीते

और जिसमे विष्ठाका भेदन (दस्त) होताहो ऐसी ववासीरकी वातातीसारकी समान चिकित्सा करै ॥

सेंधानिमक तक्रमे डालकर पीनेसे वायु और विष्ठाको अनुलोमन करैहै। तक्रसे नष्ट किये हुए ववासीरके मस्से फिर उत्पन्न नही होतेहैं। ववासीर वाले मनुष्योको वल–वर्ण–और जठराग्निको वढानेके लिये तक्र (मट्ठा) पीनेका अभ्यास करना–उचित है । तक्रके अभ्याससे शरीरके स्रोत (छिद्र) शुद्ध होकर अन्नादिकका रस अच्छेप्रकारसे संचार करताहै और उससे पुष्टि, तुष्टि, वल और वर्ण उत्तम होताहै, वायु और कफके सैंकडो विकार नष्ट होजातेहैं ॥ ५१–५७ ॥

अथ करंजादिचूर्णम् ।

चिरविल्वाग्निसिन्धूत्थनागरेन्द्रयवारलु ॥ तक्रेण पिवतोऽर्शांसि निपतन्त्यसृजा सह ५८

चिरविल्वः करञ्जः तस्य फलस्य अत्र मज्जा ग्राह्या। अरलुः शोणकः ॥

करजके फलका वक्कल, चीता, सैंधानिमक, सोंठ-इन्द्रजौ, और अरलू, इनका चूर्ण करके तक्रके साथ पिये तो रुधिरके साथ ववासीरके अंकुर गिरजाते है ॥५८॥

अथ रजनीलेपः ।

लेपं रजनिचूर्णेन सुधादुग्धयुतेन च ॥ अर्शोरोगनिवृत्त्यर्थं कारयेत्तु चिकित्सकः ॥ ५९ ॥

वैद्य अर्शरोगकी निवृत्तिके लिये हलदीके चूर्णको थूहरके दूधमें मिलाकर लेप करै ॥ ५९ ॥

अथ पिप्पल्यादिलेपः ।

पिप्पली सैन्धवं कुष्ठं शिरीषस्य फलं तथा ॥ सुधादुग्धार्कदुग्धं वा लेपोऽयं गुदजान्हरेत् ॥ ६० ॥

पीपल, सैंधानिमक, कूठ और सिरसके बीज, इनको थूहरके दूधमे अथवा आकके दूधमे पीसकर लेप करनेसे ववासीर नष्ट होजाताहै ॥ ६० ॥

अथ हरिद्रादिलेपः ।

हरिद्रा जालिनीचूर्णं कटुतैलसमन्वितम् ॥ एष लेपो वरः प्रोक्तो ह्यर्शसामन्तकारकः ॥ ६१ ॥

जालिनी कटुतोरई इति ।

हलदी और कडवी तोरईका चूर्ण करके सरसोंके तेलमे मिलाकर लेप करै, यह लेप अर्शको नष्ट करनेके लिये उत्तम है ॥ ६१ ॥

अथ तिलभक्षणम् ।

असितानां तिलानान्तु पलं शीतजलेन च ॥ खादतोऽर्शांसि शाम्यन्ति दृढा दन्ता भवन्ति च ॥ ६२ ॥

चार तोले काले तिल लेकर शीतल जलके साथ भक्षण करै तो ववासीर दूर होजातीहै और दांत दृढ होजाते हैं ॥ ६२ ॥

अथ रुधिरस्रावणम् ।

शस्त्रैर्वाथ जलौकोभिः प्रच्छन्नं कठिनाऽर्शसः ॥ शोणितं सश्चितं दृष्ट्वा हरेत्प्राज्ञः पुनःपुनः ॥ ६३ ॥

जो ववासीरके मस्से भीतरको दवेसे और कठिन होयँ तो शस्त्र अथवा जोकसे रुधिर निकलवा देवै और जब जब रुधिर इकट्ठा होजाय तबही रुधिर निकलवा देवै ॥ ६३ ॥

अथ बृहत्काशीसाद्यतैलम् ।

काशीसं सैन्धवं कृष्णा शुण्ठी कुष्ठश्च लाङ्गली ॥ शिलाभिदश्वमारश्च दन्ती-जन्तुघ्नचित्रकम् ॥ ६४ ॥ तालकं कुनटी स्वर्णक्षीरी चैतैः पचेद्भिषक् ॥ तैलं स्नुह्यर्कपयसा गवां मूत्रं चतुर्गुणम् ॥ ६५ ॥ एतदभ्यंगतोऽर्शांसि क्षारेणैव पतन्ति हि॥ क्षारकर्मकरं ह्येतन्न च सन्दूषयेद्वलिम् ॥ ६६ ॥

काशीसं कसीस इति लोके । लांगली करिहारीति लोके । शिलाभित्पाषाणभेदः अश्वमारः कनेर इति लोके । स्वर्णक्षीरी चोक इति लोके ॥

हीराकसीस, सैंधानमक, पीपल, सोंठ, कूठ, कलिहारी, पाखानभेद, कनेर, दन्ती (जमालगोटेकी जड), वायविडंग, चीता, हरिताल, मैनशिल और सत्यानाशी कटेरी (जिसकी जडको चोक कहतेहैं) इनका कल्क वनाकर थूहरके दूध और आकके दूधके द्वारा चौगुके गोमूत्रमें

तेलको सिद्ध करे । जैसे क्षारसे ववासीरके मस्से गिरजाते हैं उसी प्रकार इस तेलके लगानेसे ववासीरके मस्से नष्ट होजातेहैं, यह तेल क्षारका कर्म करताहै और वलिको भी दूषित नहीं करताहै ॥ ६४–६६ ॥

अथ समशर्करचूर्णम् ।

शुण्ठीकणामरिचनागदलत्वगेलं चूर्णीकृतं क्रमविवर्द्धितमूर्द्धमन्त्यात् ॥ खादेदिदं समसितं गुदजाग्निमान्द्यगुल्मारुचिश्वसनकण्ठहृदामयेषु ॥ ६७ ॥

तद्यथा एलाबीजमत्र सूक्ष्मं ग्राह्यम् । यत आह मदनपालः–“एला सूक्ष्मा कफश्वासकासार्शोमूत्रकृच्छ्रनुदित्यादि” । तस्या बीजं भागः १ त्वग्भागः २ दलं पत्रकम् ३ नागं नागकेशरं यत आह निघण्टौ धन्वन्तरिः–“नागपुष्पं मतं नागं केशरं नागकेशरम्” । इत्यादि । तस्य भागाः ४, मरिचम ५, पिप्पली ६, शुंठी ७, शर्करा भागः २८, समशर्करचूर्णम् ॥

इलायची १ भाग, दालचीनी २ भाग, तेजपात ३ भाग, नागकेशर ४ भाग, मिरच ५ भाग, पीपल ६ भाग और सोंठ ७ भाग, इन सबको एकत्र पीसकर चूर्ण करके सब चूर्णके बराबर मिश्री मिलावे । इस चूर्णका भक्षण करे तो बवासीर, मंदाग्नि, गुल्म (गोला), अरुचि, श्वास, कण्ठरोग और हृदयरोग दूर होजातेहैं ।

इस चूर्णमें छोटी इलायचीके दाने डालने चाहिये, क्योंकि मदनपाल निघण्टुमें कहाहै कि “छोटी इलायची–कफ, श्वास खाँसी, बवासीर और मूत्रकृच्छ्रको दूर करती है” ॥ ६७ ॥

अथ विजयचूर्णम ।

त्रिकत्रयं वचा हिंगु पाठाक्षारौ निशाद्वयम् ॥ चव्यतिक्ताकलिंगानि शक्राह्वा लवणानि च ॥ ६८ ॥ ग्रन्थिबिल्वाजमोदाश्च गणोऽष्टाविंशतिर्मतः ॥ एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत ॥६९॥ चूर्णं बिडालपदकं पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ एरण्डतैलयुक्तं वा लिह्याच्चूर्णमिदं नरः ॥ ७० ॥

हन्यादर्शांसि सर्वाणि श्वासशोषभगन्दरान् ॥ हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च वातगुल्मं तथोदरम् ॥ ॥७१॥ हिक्कां कासं प्रमेहांश्च पाण्डुरोगं सकामलम् ॥ आमवातमुदावर्तमन्त्रवृद्धिं गुदक्रिमीन् ॥७२॥ अन्ये च ग्रहणीदोषा भिषग्भिर्ये प्रकीर्तिताः ॥ विजयो नाम चूर्णोऽयं तान्सर्वानाशु नाशयेत् ॥ ७३ ॥ महाज्वरोपसृष्टानां भूतोपहतचेतसाम् ॥ अप्रजानाश्च नारीणां हितमेतद्धि भेषजम् ७४

त्रिकत्रयं त्रिफला त्रिकटु त्रिसुगन्धीनि । क्षारौ स्वर्जिका यवक्षारश्च । लवणानि पञ्च । ग्रन्थि पिप्पलीमूलम् । विडालपदकं कर्षम् ।

त्रिफला (हरड बहेडा, आमला,) त्रिकटु (सोंठ, मिरच, पीपल,) त्रिसुगंधि (दालचीनी, इलायची, तेजपात), वच, हींग, पाढ, सज्जी, जवाखार, हल्दी, दारुहलदी चव्य, कुटकी कुडेकी,छाल, इन्द्रजौ, पाँचों निमक, पीपलामूल, बेलगिरी और अजमोद, ये अट्ठाईस (२८) औषधि समान भाग लेकर बारीक चूर्ण कर ले, इस चूर्णको गरम जलके साथ, अथवा अंडीके तेलमें मिलाकर एक तोलाभर भक्षण करे इससे सब प्रकारकी बवासीर, श्वास, शोष, भगन्दर, हृदयका शूल, पसलियोंका शूल, वातगुल्म, उदररोग हिचकी खाँसी, प्रमेह, पाण्डु, कामला, आमवात, उदावर्त, आमवृद्धि, गुदाकी कृमि और जो वैद्योंने संग्रहणी आदि, रोग कहेहैं वे सब तत्काल नष्ट होजातेहैं । जो मनुष्य महाज्वरसे पीडित हैं और जो भूतबाधासे व्याकुल हैं और जिन स्त्रियोंके सन्तान उत्पन्न नहीं होती है उनके लिये यह विजय चूर्ण अत्यत हितकारीहै ॥ ६८–७४ ॥

अथ लघुसूरणमोदकः ।

मरिचमहौषधचित्रकशूरणभागा यथोत्तरं द्विगुणाः ॥ सर्वसमो गुडभागः

सेव्योऽयं मोदकः प्रसिद्धफलः ॥ ७५ ॥ ज्वलनं ज्वलयति जाठरमुन्मूलयतीह शूलगुल्मगदान् ॥ निःशेषयति श्लीपदमर्शांसि विनाशयत्याशु ॥ ७६ ॥

तद्यथा । मरिचभागः १ । शुण्ठीभागौ२। चित्रकभागाः ४ । सूरणभागाः ८ । गुडभागाः १५ ।

मिरच १ भाग, सोंठ २ भाग, चीता ४ भाग और जिमीकंद ८ भाग लेवै, सबको एकत्र पीस लेवै और सबकी समान गुड मिलाकर लड्डू बना लेवै । इन प्रसिद्ध फलवाले मोदकोंको सेवन करनेसे जठराग्नि दीपन होतीहै शूल और गुल्मकी पीडा नष्ट होतीहै, श्लीपद रोग और बवासीर दूर होजातीहै ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

अथ बृहत्सूरणमोदकः ।

षोडश सूरणभागा वह्नेरष्टौ महौषधस्यास्य ॥ अर्द्धेन भागयुक्तिर्मरिचस्य ततोऽपि चार्द्धेन ॥ ७७ ॥ त्रिफला कणा समूला तालीसारुष्करक्रिमिघ्नानाम् ॥ भागा महौषधसमा दहनांशा तालमूली च ॥ ॥ ७८ ॥ भागाः सूरणतुल्या दातव्या वृद्धदारकस्यापि ॥ भृङ्गैले मरिचांशे सर्वाण्येकत्र कारयेच्चूर्णम् ॥ ७९ ॥ द्विगुणेन गुडेन युतः सेव्योऽयं मोदकः प्रकामधनैः ॥ गुरुवृष्यभोजनरतैरितरेषूपद्रवं कुर्यात् ॥ ८० ॥ भस्मकमनेन जनितं पूर्वमगस्त्यस्य योगराजेन ॥ भीमस्य मारुतेरपि महाशनौ तेन तौ यातौ ॥ ८१ ॥ अग्निबलवर्णहेतुर्न केवलं सूरणो महावीर्यः ॥ हन्ता शस्त्रक्षारानलैर्विनाप्यर्शसामेषः ॥ ८२ ॥ श्वयथुश्लीपदगदहृद्ग्रहणीं च कफानिलोद्भूताम् ॥ नाशयति वलीपलितं मेधां कुरुते जराश्च हरेत् ॥ ८३ ॥ हिक्कां कासं श्वासं च राजरोगं प्रमेहांश्च ॥ प्लीहानं च तथोग्रं हन्त्याशु रसायनं पुंसाम् ॥ ८४ ॥

७९ श्लोकस्थस्य एषां भागा यथा । सूरणभाग १६ । चीताभाग ८ । शुण्ठीभाग ४ । मरिचभाग २ । हरडै । बहेडा आमला । पीपरि । पीपरामूल । तालीश । भिलाँवाँ तदसत्त्वे रक्तचन्दनम् । विडंग प्रत्येकं भाग ४ । तालमूलीभाग ८ । विधारा भाग १६ । तजभाग १ । इलायची छोटी बीजभाग १। गुडभाग १७६ ॥

जमीकंद १६ भाग, चीता ८ आठभाग, सोंठ ४ भाग, मिरच २ भाग, त्रिफला ४ भाग, पीपल ४ भाग, पीपलामूल ४ भाग, तालीसपत्र ४ भाग, भिलावे ४ भाग, वायविडंग ४ भाग, कालीमुसली तीन भाग, विधारा १६ भाग, दालचीनी १ भाग, और छोटी इलायची १ भाग, सबको एकत्र पीसलेवै और सबसे दुगुना गुड मिलाकर लड्डू बनालेवै, यह मोदक मैथुनशक्तिको बढानेवाले हैं, ऐसे पदार्थ धनवान् मनुष्योंको भारी और पुष्टिकारक पदार्थ खाने वालोंको सेवन करने चाहिये । उनके ऊपर घृतादिक उत्तम भोजन करना उचित है । इन उत्तम पदार्थोंको नहीं सेवन करनेवाले मनुष्योंके ये मोदक उपद्रव करतेहैं । पूर्वकालमें इन मोदकोंको सेवन करनेसे अगस्त्य ऋषि और मारुतनन्दन, भीमसेनको भस्मक रोग होगया था, इस कारण वह अधिक भोजन करने लगे थे । यह महाशक्तियुक्त बृहत्सूरण मोदक—केवल अग्नि, बल और उत्तम वर्णकोही करता है ऐसा न समझना, परन्तु ये शस्त्र क्षार और बिना अग्निके ही बवासीरको नष्ट करतेहैं । सूजन, श्लीपद, हृदयरोग, कफसे और वायुसे उत्पन्न हुई ग्रहणी और वलीपलितको भी नष्ट करैंहै तथा बुद्धिको बढानेवाले और बुढापा, हिचकी, श्वास, क्षयरोग, प्रमेह, तथा अत्यत उग्र प्लीहाको नष्ट करैंहैं । और पुरुषोंके लिये उत्तम रसायनहै ॥ ७७–८४ ॥

श्रीबाहुशालगुडः ।

त्रिवृत्तेजोवती दन्ती श्वदंष्ट्रा चित्रकं शटी ॥ गवाक्षी मुस्तविश्वाब्दविडंगानि हरीतकी ॥ ८५ ॥ पलोन्मितानि चैतानि पलान्यष्टावरुष्करात् ॥ वृद्धदारपलान्यष्टौ सूरणस्य तु षोडश ॥८६ ॥

जलद्रोणद्वये क्वाथ्यं चतुर्भागावशेषितम् ॥ पूतंपूतं रसं भूयः क्वाथ्येभ्यस्त्रिगुणं गुडम् ॥ ॥ ८७ ॥ मेलयित्वा पचेत्तावद्यावद्दर्वीप्रलेपनम् ॥ अवतार्य ततः पश्चाच्चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ ८८ ॥ त्रिवृत्तेजोवतीकन्दचित्रकान्द्विपलांशिकान् ॥ एलात्वङ्मरिचं चापि नागकश्चापि षट्पलम् ॥ ॥ ८९ ॥ द्वात्रिंशच्च पलान्यत्र चूर्णयित्वा निधापयेत् ॥ ततो मात्रां प्रयुञ्जीत जीर्णे क्षीररसाशिनः ॥ ९० ॥ हन्यादर्शांसि सर्वाणि तथा सर्वोदराण्यपि ॥ गुल्मानपि प्रमेहांश्च पाण्डुरोगं हलीमकम् ॥ ९१ ॥ दीपयेदनलं मन्दं यक्ष्माणं चापकर्षति ॥ आढ्यवाते प्रतिश्याये पीनसे च हितो मतः ॥ ९२ ॥ भवन्त्यनेन पुरुषाः शतं वर्षाण्यनामयाः ॥ दीर्घायुषः प्रजनना वलीपलितवर्जिताः ॥ ९३ ॥ गुडः श्रीबाहुशालोऽयं रसायनवरो मतः ॥ दुर्नामान्तकरो ह्येष दृष्टो वारसहस्रशः ॥ ॥ ९४ ॥ यावद्दर्वीप्रलेपः स्याद्गुडो वा तन्तुमान्भवेत् ॥ तोयपूर्णे यदा पात्रे क्षिप्तो न प्लवते गुडः ॥ ९५ ॥ क्षिप्तस्तु निश्चलस्तिष्ठेत्पतितस्तु न शीर्यति ॥ एष पाकः समस्तानां गुडानां परिकीर्तितः ॥ ९६ ॥ सार्द्धं पलं पलं चार्द्धं भक्षयेद्गुडखण्डयोः ॥ श्रेष्ठा तु मध्यमा हीना मात्रोक्ता मुनिभिस्त्रिधा ॥ ९७ ॥

निसोत ८ तोले, तेजबल ८ तोले, जमालगोटा ८ तोले [illegible] ८ तोले, चीता ८ तोले, कचूर ८ तोले, इन्द्रायन ८ तोले, नागरमोथा ८ तोले, सोंठ ८ तोले, सोया ८ तोले, [illegible] ८ तोले [illegible] ८ तोले, मिलावे [illegible], त्रिफला ३२ तोले, और जमीकंद ३२ तोले, [illegible] १०२४ तोले [illegible] पकावे, जब जलने [illegible] उतारकर छान, लेवे, फिर [illegible] पुराना गुड मिलाकर पकावे, जब पक करछीसे चिपकने लगजाय तब उतार लेवे, फिर उसमें निसोत ८ तोले, तेजबल ८ तोले, जमीकंद ८ तोले, चीता ८ तोले, इलायची २४ तोले, दालचीनी २४ तोले, कालीमिरच २४ तोले और नागकेशर २४ तोले, इनका चूर्ण करके मिलादेवै, इसको बाहुशालगुड कहतेहैं । रोगीका बलाबल विचार कर इसको भक्षण करावे । यह गुड–सर्व प्रकारकी बवासीर, सर्वप्रकारके उदररोग, गुल्म, प्रमेह, पाण्डुरोग और हलीमक रोगको नष्ट करैहै, मन्दाग्निको दीपन करैहै और क्षयरोगको नष्ट करैहै, आढ्यवात प्रतिश्याय और पीनस रोगको दूर करैहै । इस गुडको सेवन करनेसे मनुष्य अधिक आयुवाले होतेहैं, बहुत सन्तानोंको उत्पन्न करतेहैं, वलीपलीत रोगसे निवृत्त होकर सौ वर्षपर्यन्त रोगरहित जीतेहैं । यह बाहुशाल गुड–सब रसायनोंमें श्रेष्ठ है, यह निश्चय बवासीरको नष्ट करदेताहै, ऐसा हजारों बार देखा है । गुडपाककी परीक्षा–गुडका पाक करछीसे चिपटने लगे, अथवा गुडमें तार निकलने लगे और जलसे भरे हुए पात्रमें डालनेसे गुड तरे नहीं किन्तु स्थिर रहै और ऊपरसे डालनेसे बिखरै नहीं तो गुडका पाक उत्तम बना जानना । सर्व प्रकारके गुडोंका पाक इसीप्रकार जानना, गुड तथा खाँडकी उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ ये तीनप्रकारकी मात्रा हैं, इनमें छः रुपये भरकी उत्तम, चार रुपये भरकी मध्यम और दोरुपये भरकी कनिष्ठ, मात्रा जाननी ॥ ८५–९७ ॥

अथ तिलादिमोदकः ।

तिलभल्लातकैः पथ्या गुडश्चेति समांशकैः ॥ दुर्नामश्वासकासघ्नं प्लीहपाण्डुज्वरापहम् ॥ ९८ ॥

तिल, भिलावे, हरड और गुड, इन सबको समान भाग लेकर लड्डू बनावे । ये बवासीर, श्वास, खाँसी, प्लीहा, पाण्डुरोग और ज्वरको नष्ट करैहैं ॥ ९८ ॥

अथ सगुडाभया ।

पित्तश्लेष्मप्रशमनी कण्डूकुक्षिरुजापहा ॥ गुदजान्नाशयत्याशु भक्षिता सगुडाभया ॥ ९९ ॥

हरडके चूर्णमें गुड मिलाकर गोली बनावै, यह गोली पित्त, कफ, खुजली और कोखके दर्दको नष्ट करैहै। इन गोलियोंको भक्षण करते ही बवासीर नष्ट होजातीहै ९९

अथ शंकरलोहः।

प्रणम्य शंकरं रुद्रं दण्डपाणिं महेश्वरम्॥ जीवितारोग्यमन्विच्छन्नारदोऽपृच्छदीश्वरम्॥ १००॥ सुखोपायेन हे नाथ शस्त्रक्षाराग्निभिर्विना॥ चिकित्सामर्शसां नृणां कारुण्याद्वक्तुमर्हसि॥ १०१॥ नारदस्य वचः श्रुत्वा नराणां हितकाम्यया॥अर्शसां नाशनं श्रेष्ठं भेषज्यं शंकरोऽवदत्॥१०२॥ पाण्ड्यवज्रादिलोहानामादायान्यतमं शुभम्॥ कृत्वा निर्मलमादौ तु कुनट्या माक्षिकेण च॥ १०३॥ पत्तूरमूलकल्केन लिम्पेद्रसयुतेन च॥ वह्नौ निक्षिप्य विधिवत्साराङ्गारेण निर्द्धमेत्॥ १०४॥

कुनटी मनःशिला। माक्षिकं सुवर्णमाक्षिकम्। पत्तूर पटकार इति लोके। रसः पारदः सारः काष्ठसारः॥

ज्वाला च तस्य रोद्धव्या त्रिफलाया रसेन च॥ ततो विज्ञाय गलितं शंकुनोर्द्धं समुच्छ्रयेत्॥ १०५॥ त्रिफलाया रसे पूते तदाकृष्य तु निर्द्धमेत्॥ न सम्यग्गलितं यत्तु तेनैव विधिना पुनः॥ १०६॥ ध्मातं निर्वापयेत्तस्मिंल्लोहं तत्रिफलारसे॥यल्लोहं न मृतं तत्र पाच्यं भूयोऽपि पूर्ववत्१०७॥ मारणान्न मृतं यच्च तत्पक्तव्यमलोहवत्॥ ततः संशोष्य विधिवच्चूर्णयेल्लोहभाजने॥ ॥ १०८॥ लोहेन च तथा पिंष्याद्दृषदा सूक्ष्मचूर्णितम्॥ कृत्वा लोहमये पात्रे मृत्तिकालिप्तरन्ध्रके॥ १०९॥ रसैः पंकोपमं कृत्वा तं पचेद्गोमयाग्निना॥ पुटानि क्रमशो दद्यात्पृथगेभिर्विधानतः॥११०॥ त्रिफलार्द्रकभृङ्गाणां केशराजस्य बुद्धिमान्॥ मानकन्दकभल्लातवह्नीनां सूरणस्य च॥ १११॥

भृङ्गः भङ्गरिआ। केशराजः केशराग इति॥

हस्तिकर्णपलाशस्य कुलिशस्य तथैव च॥ पुटे पुटे चूर्णयित्वा लोहात्षोडशिकं पलम् ॥ ११२॥ तन्मात्रं त्रिफलायाश्च पलेनाधिकमाहरेत्॥ अष्टभागावशेषे तु रसे तस्याः पचेद् बुधः॥ ११३॥ अष्टौ पलानि दत्त्वा च सर्पिषो लौहभाजने॥ ताम्रे वा लोहदर्व्या तु चालयेद्विधिपूर्वकम्॥ ११४॥ ततः पाकविधानज्ञः स्वच्छे चोर्द्ध्वं च सर्पिषि॥ मृदुमध्यादिभेदेन गृह्णीयात्पाकमन्यतः॥ ११५॥ आरम्भे तद्विधानज्ञः कृतकौतुकमङ्गलः॥ भ्रामरं घृतसंयुक्तं विलिह्याद्रत्तिकाक्रमात्॥ ११६॥

द्वादशरत्तिकापर्यन्तं यथाग्निबलं खादेत्॥ वर्द्धमानानुपानञ्च गव्यक्षीरेण संयुतम्॥ गव्याभावे त्वजायाश्च स्निग्धवृष्यादिभोजनम्॥ ११७॥ सद्यो वह्निकरश्चैव भस्मकञ्च नियच्छति॥ हन्ति वातं तथा पित्तं कुष्ठानि विषमज्वरम्॥११८॥गुल्माक्षिपाण्डुरोगांश्च निद्रालस्यमरोचकम्॥ शूलञ्च परिणामञ्च प्रमेहमपबाहुकम्॥ ११९॥ श्वयथुं रुधिरस्रावं दुर्नामानं विशेषतः॥ बलकृद् बृंहणश्चैव कान्तिदं स्वरबोधनम् ॥ १२०॥ शरीरलाघवकरमारोग्यपुष्टिवर्द्धनम्॥आयुष्यं श्रीकरञ्चैव बलतेजस्करं शुभम्॥ १२१॥ सश्रीकं पुत्रजननं वलीपलितनाशनम्॥दुर्नामारिरयं नाम्ना दृष्टो वारसहस्रशः॥ १२२॥ अनेनार्शांसि दह्यन्ते यथा तूलञ्च वह्निना॥ सौकुमार्यात्पकायत्वान्मद्यसेवी यदा नरः॥ १२३॥

जीर्णमद्यादियुक्तादिभोजनैः सह दापयेत् ॥ लावतित्तिरवर्तीरमयूरशशकादयः ॥ १२४ ॥ चटकः कलविंकश्च वर्तका हरितालकः ॥ श्येनकश्च बृहल्लावो वनविष्किरकादयः ॥ पारावतमृगादीनां मांसं जांगलकं शुभम् ॥ १२५ ॥

वर्तीरः बगेरीति लोके। वनचटकः। कलविंको गृहचटकः। वर्तका वटेरी इति लोके। हरितालकः हरिलः हारिल इति लोके। विष्किरा वर्तकादयः ॥

मद्गुरो रोहितः श्रेष्ठः शकुलश्च विशेषतः॥ मत्स्यराजा इति प्रोक्ता हितमत्स्याय देहिने ॥ १२६ ॥ वृन्ताकस्य फलं शस्तं पटोलं बृहतीफलम् ॥ प्रलम्बा भीरुवेत्राग्रताडकं तण्डुलीयकम् ॥ १२७ ॥

प्रलम्वा लम्बालाबूः। भीरुः शतावरी। पत्रम् पत्रशाकम्। ताडकं देवदाली अकरकरेति लोके। तथा च निघण्टौ धन्वन्तरिः- "जीमूतको देवताडः कृतकोशो गरागरी। प्रोक्ताखुविषहृद्वेणी देवदाली च ताडकः॥ देवदाली रसे तिक्ता कफार्शःशोथपाण्डुताः। नाशयेत्" इत्यादि ॥

वास्तूकं धान्यशाकश्च चित्रकं चक्रमर्दकम् ॥ नालिकेरश्च खर्जूरं दाडिमं लवलीफलम् ॥ १२८ ॥

चक्रमर्दकं चकवडशाकम् ॥

शृङ्गाटकश्च पक्वाम्रं द्राक्षातालफलानि च ॥ हितान्येतानि वस्तूनि लोहमेतत्समश्नताम्॥ नाश्नीयाल्लकुचं कोलकर्कन्धुबदराणि च ॥ ॥ १२९ ॥ जम्बीरं बीजपूरश्च तिन्तिडी करमर्दकम् ॥

कोलं क्षुद्रबदरम्। कर्कन्धु बृहद्बदरम् ॥

आनूपानि च मांसानि क्रकरं पुण्ड्रकाणि च ॥ १३० ॥

क्रकरं करकरम् ॥

हंससारसदात्यूहचाषक्रौञ्चबलाकिकाः॥मानकन्दं कसेरूणि कतकश्च कलिङ्गकम्॥१३१॥

दात्यूहः नीलकण्ठः, चाषः [डाकु], कलिङ्गकम् [तरबूज] ॥

कूष्माण्डकश्च कर्कोटं क्रमुकश्च विशेषतः॥ कटुकं कालशाकश्च कुन्दुरुः कर्कटी तथा॥ ककारादीनि सर्वाणि द्विदलानि च वर्जयेत्॥१३२॥शंकरेण समाख्यातो यक्षराजानुकम्पया॥जगतामुपकाराय दुर्नामारिरयं ध्रुवम् ॥ १३३ ॥ स्थानाच्चलति मेरुश्च पृथ्वी पर्येति वायुना॥पतन्ति चन्द्रताराश्च मिथ्या चेदहमब्रुवम् ॥ १३४ ॥ ब्रह्मघ्नाश्च कृतघ्नाश्च क्रूरा येऽसत्यवादिनः ॥ वर्जनीयाः सधर्मेण भिषजा गुरुनिन्दकाः ॥ ॥१३५॥ मुनिरसपिष्टविडंगं मुनिरसलीढं चिरस्थितं घर्मे ॥ द्रावयति लोहदोषान्वह्निर्नवनीतपिण्डमिव ॥ १३६ ॥

मुनिरत्रागस्त्यः ॥

काले मलप्रवृत्तिर्लाघवमुदरे विशुद्धिरुद्गारे। अगेषु नावसादो मनःप्रसादोऽस्य परिपाके ॥ १३७ ॥ क्रिमिरिपुचूर्णं लीढं सहितं स्वरसेन वंगसेनस्य॥ क्षपयत्यचिरान्नियतं लोहोऽजीर्णोद्भवं शूलम् ॥ १३८ ॥

वंगसेनस्य अगस्तेः ॥

भवेद्यदि्यतिसारस्तु दुग्धं पीत्वा तु तं जयेत्॥ गुञ्जाद्वादशकादूर्द्ध्वं वृद्धिरस्य भयप्रदा१३९॥

शंकरप्रणीतं लोहम् ॥

एक समय जीवोंके जीवन और आरोग्यकी इच्छा करनेवाले नारदमुनि सम्पूर्ण विश्वके कल्याणरूप

रुद्र, हाथमें दण्डको धारण करनेवाले, जगत्प्रभु श्रीमहादेवजीको प्रमाण करके पूँछने लगे कि—हे विश्वनाथ ! ऐसा कोई सहज उपाय है जो शस्त्र क्षारकर्म और अग्निके विना अर्श (बवासीर) रोगवाले मनुष्योंकी चिकित्सा होजाय वह आप करुणा करके कहिये, इसप्रकार नारदजीकी, प्रार्थनाको सुनकर महादेवजी मनुष्योंके हित करनेकी इच्छासे अर्शरोगको दूरकरनेवाली यह परमोत्तम औषधि बताने लगे, कि—हे नारद ! पाण्ड्य अथवा वज्रादि लोहेमेंसे कोई उत्तम लोहा देकर पत्र करावै. उनको प्रथम शुद्ध करके पश्चात् मैनशिल, सोनामाखी और पत्तूर (शालिञ्च) की जडका कल्क और पारा इनका लेप करै, फिर विधिपूर्वक बेरीके कोयलोंमें उस लोहेको रखकर धमावै, जब उसमेसे अग्निकी लपटैं निकलने लगे तब उसको त्रिफलेके रसमे बुझादेवै, पश्चात् लोहेको गलाजानकर सडासीसे उस लोहेके पत्रोंको उठाकर छनेहुए त्रिफलेके रसमे छोड देवे, लोहेका जितना भाग अच्छे प्रकारसे न गला हो उसको फिर उपरोक्त विधिसे अग्निमें तपाकर त्रिफलेके रसमें बुझावै, फिर भी जो उसमेंसे जितना नहीं गले उसको दुबारा उक्त विधिसे अग्निमें तपाकर त्रिफलेके रसमे बुझादेवै, इसप्रकार वारंवार तपानेसे भी जो न गलै तो अन्यधातुओंकी तरह पकाकर त्रिफलेके रसमें बुझावै, पश्चात् इस लोहेको त्रिफलेके रसमे बुझाकर धूपमें सुखावै, पश्चात् इसको लोहेके बासनमें डालकर चूर्ण कर लेवै, फिर लोहेकी मूसलीसे सिलपर महीन पीसलेवै, फिर इस चूर्णको लोहेके बासनमे डालकर त्रिफलेके रसकी कींचसी बनाकर बासनपर कपरमट्टी करके मुख बदकर अन्ने उपलोंकी अग्निसे गजपुटमे पकावै, पश्चात् अनुक्रमसे त्रिफला, अदरख, भँगरा, कालाभांगरा, मानकद, भिलावे, चीता, जमीकद, हस्तिकर्ण, पलाश (ढाक), थूहर इनके रसके द्वारा गजपुटमे पकावै । प्रत्येक पुटमें इस लोहेका चूर्ण ६४ तोले और त्रिफलेका रस ६८ तोले डालना चाहिये । यहां त्रिफलेका रस ऐसा लेना चाहिये कि, जो अठगुने जलमें पकाकर एक भाग जल शेष रहा हो, फिर लोहेके अथवा तांबेके बरतनमें ३२ तोले घी और वह काथ छोडकर उसमें वह लोहा डालकर विधिपूर्वक पकावै और लोहेकी करछीसे चलाता रहै, पाकको जाननेवाला वैद्य देखता रहै जब कि, स्वच्छ घी तैरकर ऊपर आ जावै तब मृदु, मध्य और तीक्ष्ण जैसा पाक करना हो वैसा पकाकर उतारलेवै । इस शंकरलोहके प्रयोगके आरम्भमे उत्सव और मगल कार्य करने चाहिये, इस लोहेको सहत तथा घीमें मिलाकर पहिले दिन एक रत्ती, दूसरे दिन दो रत्ती इस प्रकार एक एक रत्ती बढाताहुआ अग्निके बलानुसार १२ रत्तीतक सेवनकरै, वर्द्धमान पिप्पलीकी समान इसके ऊपर गायके दूधका और जो गायका दूध न मिले तो बकरीके दूधका अनुपान करै, तथा स्निग्ध और वृष्य पदार्थोंका भोजन करै । यह शंकरलोह जठराग्निको तत्काल उत्पन्न करैहै, भस्मकरोगको नष्ट करैहै, वात, पित्त, कोढ, विषमज्वर, गुल्म, नेत्ररोग, पाण्डुरोग, निद्रा, आलस्य, अरुचि, शूल, परिणामशूल, प्रमेह, अपबाहुक, सूजन और रुधिरस्रावको दूर करैहै, विशेष करके बवासीरको नष्ट करैहै, इस उत्तम लोहको सेवन करनेसे बलकी वृद्धि होतीहै, पुष्टि होतीहै, कांति बढतीहै, स्वर सुन्दर होताहै, शरीरमे लघुता उत्पन्न होतीहै, आरोग्यता और पुष्टिकी वृद्धि होतीहै, आयुकी वृद्धि होतीहै, लक्ष्मीकी प्राप्ति होतीहै, प्रताप और शोभा बढतीहै, सर्व गुणसम्पन्न पुत्र उत्पन्न होतेहैं, बली (शरीरमे बलोंका पडना) पलित (विना समय बालोंका सफेद होजाना) नाशक है। इस शंकरलोहका नाम दुर्नामारि भी है इससे बवासीर शान्त होजातीहै, ऐसा हजारों वार देखा है कि—जिसप्रकार अग्निसे रुई जलजातीहै, उसी प्रकार इस लोहसे बवासीर दूर होजातीहै । जो रोगी सुकुमार और कोमल शरीरवाले हैं और मदिराको सेवन करतेहैं, उनको पुरानी मदिरा आदि सयुक्त भोजनके साथ देवै । इस लोहको सेवन करनेवाले मनुष्योंको लवा, तीतर, बगेरा, मोर, खरगोश, चिडा, जगली चिडा, बत्तक, हरियल, सिकरा, बडा लवा और वनमे रहनेवाले विष्किरादि परेवा, कबूतर और जगली हिरन आदि पशुपक्षियोंका मास हितकारी है, जिन मनुष्योको मछली खानेका अभ्यास है, उनके लिये मद्गुर, रोहू, और शकुल, ये सब बडी मछली हितकारी हैं । बैंगन, परवल, कटेरीके फल, लम्बी तोम्बी, सतावरके पत्ते, बेतके अग्रभागका शाक, देवदाली (बदाल), चौलाई बथुआ, धनियेका शाक, चीता, चकवड (पमाड),

---

एक एक पुट देकर कमसे कम पच्चीस (२५) पुट देवै अर्थात ढाईसौ (२५०) दिनमें यह लोहा सिद्ध करै यह वृद्ध वैद्योंका मत है इसप्रकार करनेसे लोहा पानीमें तैरने लगता है।

नारियल, खजूर (छुहारे), अनार, हरफारेवडी, सिंगाडे, पके आम, दाख और ताडके फल, ये सब पदार्थ यह लोह सेवन करनेवाले मनुष्योंको हितकारी हैं। इस लोहको सेवन करनेवाला मनुष्य—बडहल, बेर, बडे बेर, जम्भीरी-नीबू, बिजौरा नीबू, इमली, करौंदा, अनूपदेशके जीवोंका मांस, ककर (केकडा), पुट्टक, हंस, सारस, दात्यूह (पपैया), नीलकंठ, कौंच (कुंज) और बगला, इन सबका मांस मानकन्द, कसेरु, निर्मलीफल, तरबूज, पेठा, ककोडा, सुपारी, कडवे परवल, नाडीका शाक, कुन्दरु, ककडी और समस्त ककारादि पदार्थ और द्विदल अन्न, (चना आदि) इन सबका त्याग करना चाहिये। ये दुर्नामारि लोह श्रीमहादेवजीने जगत्के उपकारके लिये और कुबेरके ऊपर दया करके कहाहै, इससे बवासीर अवश्य नष्ट होताहै। महादेवजी कहतेहैं कि—जो मैं यह असत्य कहताहूँ तो अपने स्थानसे सुमेरु पर्वत हटजाय, पृथ्वी लौट जाय, चन्द्रमा और तारागण आकाशसे पतित होजायँ, ब्रह्मघाती, कृतघ्नी, क्रूर, असत्यवादी और गुरुनिन्दक, ऐसे मनुष्योंको यह लोहा कदापि नहीं देना चाहिये। इस लोहके सेवन करनेसे जो शरीरमें कोई विकार उत्पन्न होय तो अगस्तियाके रसमें वायविडंगको पीसकर बहुत देरतक धूपमें रखदेवे, जब सूखजाय तब चूर्णकरके अगस्तियाके रसके साथ चाटे। जिसप्रकार अग्नि माखनके पिंड (लौंदा), को पिघला देतीहै उसीप्रकार यह लोहेके दोषोंको पिघला देताहै। पेटमें इस चूर्णके पकनेके समय मल ठीक समय पर उतरताहै, पेटमें हलकापन होताहै, डकार शुद्ध आतीहै, अंगमें ग्लानि नहीं रहती और मनमें प्रसन्नता होतीहै। वायविडंगका चूर्ण करके अगस्तियाके स्वरसमें मिलाकर चाटे तो लोहके अजीर्णसे उत्पन्न हुआ शूल तत्काल अवश्य नष्ट होताहै। यदि इस लोहके सेवन करनेसे अतीसार उत्पन्न होय तो दूध पीना चाहिये, इससे अतीसार नष्ट होजाता है। इस लोहको चार रत्तीसे अधिक भक्षण करै तो भय उत्पन्न होताहै, इसकारण चार रत्तीसे अधिक नहीं खाना चाहिये॥ १००–१३९॥

अथ रक्तार्शश्चिकित्सा।

रक्तार्शसामुपेक्षेत रक्तमादौ स्रवद्भिषक्॥ दुष्टास्रे निःसृते न स्युः शूलानाहासृगामयाः॥ १४०॥ चन्दनकिराततिक्तकधन्वयवासाः सनागराः क्वथिताः॥ रक्तार्शसां प्रशमना दार्वीत्वगुशीरनिम्बाश्च॥ १४१॥

चन्दनमत्र रक्तम्। नागरमत्र मुस्तकम्॥

रुधिरकी बवासीरमें वैद्य निकलते हुए रुधिरको पहिले ही नहीं रोकै, क्योंकि दूषित रुधिरको रोकनेसे शूल, अफारा और रक्तके विकार उत्पन्न होतेहैं॥ १४०॥

लालचंदन, चिरायता, धमासा, नागरमोथा, दारुहलदी, दालचीनी, खस और नीम, इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे रुधिरकी बवासीर नष्ट होजातीहै इसको चन्दनादिक्वाथ कहतेहैं॥ १४१॥

नवनीततिलाभ्यासात्केशरनवनीतशर्कराभ्यासात्॥ दधिसरमथिताभ्यासाद्गुदजाः शाम्यन्ति रक्तवहाः॥ १४२॥ दध्नस्तूपरि यो भागो घनस्नेहयुतः सरः॥ मथितं सररहितं निर्जलं वस्त्रपूतं दधि॥ १४३॥

नैनी घी और तिल मिलाकर नित्य खानेसे, नागकेशर, नैनीघी और मिश्री इनको एकत्र मिलाकर भक्षण करनेसे अथवा दहीकी मलाई और मलाई रहित मथाहुआ दही, इनको सेवन करनेसे खूनी बवासीर दूर होजातीहै, दहीके ऊपरका जो चिकना भाग रहताहै उसको 'सर' कहतेहैं सररहित और कपडेमें छनाहुआ निर्जल दहीको 'मथित' कहतेहैं॥ १४२॥ १४३॥

सपद्मकेशरं क्षौद्रं नवनीतं नवं लिहन्॥ सिताकेशरसंयुक्तं रक्तार्शसि सुखी भवेत्॥ १४४॥

कमलकी केशर, सहत, नवीन नैनी घी, मिश्री और नागकेशर, इनको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे रुधिरकी बवासीरवाला रोगी सुखी होताहै॥ ४४॥

पयसा शृतेन यूषैः सतीनमुद्गाढकीमसूराणाम्॥ ओदनमद्यादम्लैः शालि-

श्यामाककोद्रवजम्॥शशहरिणलावमांसैः कपिञ्जलैरेणमांसैश्च ॥ १४५ ॥ ओदनमद्यादम्लैरीषत्सुगन्धैश्च ॥

मटर, मूग, अरहर और मसूर, इनका किंचित् खट्टे और सुगंधियुक्त किये हुए यूपके साथ, औटाये हुए दूधके साथ और खरगोश, हिरन, लवा, तीतर और काले हिरनके मासके साथ शाली चावलोंका, समेका और कोदोका भात खाय तो रुधिरसंबंधी बवासीर नष्ट होजाती है ॥ १४५ ॥

अथ समंगादिदुग्धम् ।

समंगोत्पलमोचार्कतिरीटोत्पलचन्दनैः ॥ सिद्धं छागीपयो दद्याद्गुदज शोणितात्मके ॥ १४६ ॥

समंगा लज्जालूः । मोचाको मोचरसः । तिरीटो लोध्रः । चन्दनं रक्तम् । इति समंगादिदुग्धम् ॥

लज्जावती, कमल, मोचरस, लोध और लालचदन, इनको बकरीके दूधमें औटाकर उस दूधको पीनेसे रुधिरकी बवासीर दूर होती है ॥ १४६ ॥

अथ क्षारसूत्रम् ।

भावितं रजनीचूर्णं स्नुहीक्षीरैः पुनःपुनः ॥ बन्धनात्सुदृढं सूत्रं छिनत्त्यर्शो भगन्दरम् ॥ १४७ ॥

हलदीके चूर्ण और थूहरके दूधमें सूतको बारंबार भावना देकर उस सूतसे गुदाके अंकुरोंको दृढ बाधनेसे बवासीर और भगदर नष्ट होजाते हैं ॥ १४७ ॥

अथ नासिकाद्यर्शश्चिकित्सा ।

नासानाभिसमुत्थेषु तथा मेढ्रादिजेष्वपि॥ त्रिष्वप्यर्शःसु कुर्वीत तत्रतत्र यथोचितम् ॥ १४८ ॥

नाक, नाभि और लिग आदिमें उत्पन्न हुई बवासीरकी चिकित्सा यथायोग्य करनी चाहिये ॥ १४८ ॥

अथ चर्मकीलचिकित्सा ।

चर्मकीलन्तु संछिद्य दहेत्क्षारेण चाग्निना ॥

चर्मकीलको प्रथम काटकर क्षार अथवा अग्निसे जलादेना चाहिये ॥

अथार्शोऽपथ्यानि ।

वेगावरोधं स्त्रीपृष्ठयानान्युत्कटकासनम् ॥ ॥ १४९ ॥ यथास्वं दोषलं चान्नमर्शसः परिवर्जयेत् ॥ १५० ॥

इत्यर्शोधिकारः ।

मल मूत्रादिके वेगोंको रोकना, स्त्रीका स्पर्श, हाथी घोडे आदिकी सवारी, उकरू बैठना और जिस जिस दोषकी अधिकतावाली बवासीर हो उस उस दोषको बढानेवाला अन्न, इन सबको त्यागदेवै ॥ १४९ ॥ १५० ॥

इति अर्शोऽधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ जठराग्निविकाराऽधिकारः ।

तत्र सन्निकृष्टनिदानपूर्वकजठराग्निविकारसमस्थिती ।

कफपित्तानिलाधिक्यात्तत्साम्याज्जाठरोऽनलः ॥ मन्दस्तीक्ष्णोऽथ विषमः समश्चेति चतुर्विधः ॥ १ ॥

जठराग्नि कफकी अधिकतासे मद होती है, पित्तकी अधिकतासे तीक्ष्ण होती है, वातकी अधिकतासे विषम होती है और तीनों दोषोंकी समतासे समहोती है, इस प्रकार जठराग्नि चार प्रकारकी होती है ॥ १ ॥

अथ मन्दाग्निलक्षणम् ।

स्वल्पापि नैव मन्दाग्नेर्मात्रा भुक्ता विपच्यते ॥ छर्दिः सादः प्रसेकः स्याच्छिरोजठरगौरवम् ॥ २ ॥

मन्दाग्निवाले मनुष्यको थोडा भोजन किया हुआ भी नहीं पचताहै, वमन होती है, ग्लानि रहती है, लार गिरती है, शिर और पेटमें भारीपन रहताहै ॥ २ ॥

अथ तीक्ष्णाग्निलक्षणम् ।

मात्रातिमात्राप्यशिता तीक्ष्णाग्नेः पच्यते सुखम् ॥ अत एव हि केनापि मतस्तीक्ष्णाग्निरुत्तमः ॥ ३ ॥

तीक्ष्ण अग्निवाले मनुष्यको बहुत भोजन किया हुआ भी सहजमें पच जाताहै, इसकारण कोई वैद्य तीक्ष्ण अग्निको उत्तम मानतेहैं ॥ ३ ॥

अथ विषमाग्निलक्षणम्।

अशिता खलु मात्रापि विषमाग्नेस्तु देहिनः ॥ कदाचित्पच्यते सम्यक्कदाचिन्न विपच्यते ॥ ४ ॥ तस्याध्मानगुदावर्त शूलं जठरगौरवम् ॥ प्रवाहणमतीसारस्तथा स्यादन्त्रकूजनम् ॥ ५ ॥

विषम अग्निवाले मनुष्यको किया हुआ भोजन कभी अच्छे प्रकारसे पचजाताहै और कभी नहीं पचजाताहै, विषमाग्निमें अफरा, उदावर्त, शूल, पेटमें भारीपन, अधोवायुके त्यागते समय कफयुक्त विष्ठाका गिरना, अतीसार और आँतोंका गडगडाहट, यह सब लक्षण होतेहैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ समाग्निलक्षणम्।

समा समाग्नेरशिता मात्रा सम्यग्विपच्यते ॥ सोऽग्निरुत्तम एतेषु न तीक्ष्णस्तूत्तमो मतः ॥ ६ ॥

समाग्निवाले मनुष्यको परिमाणका किया हुआ भोजन अच्छे प्रकारसे पच जाताहै, चारों प्रकारकी अग्निमें समाग्नि उत्तम और तीक्ष्णाग्नि उत्तम नहीं है ॥ ६ ॥

स मधुरस्निग्धादिभोज्यः समाग्निः उत्तमः। तर्हि कथं तीक्ष्णाग्नेर्विकारमध्ये गणना ? उच्यते, समोऽग्निः क्षुधाविघातात् आशु एव तथा विकारं न करोति। तीक्ष्णस्तु स्वल्पकालमपि क्षुधाविघातादाश्वेव पैत्तिकान् विकारान् कुरुते ॥

तीक्ष्णः पित्तसमुत्थानान्विषमो वातहेतुकान ॥ तथा करोति मन्दाग्निर्विकारान् कफसम्भवान् ॥ ७ ॥

मधुर और स्निग्ध आदि भोजन करनेपर भी जो अग्नि समान रहती है उसको भी उत्तम जानना।

शंका-जिसमें किया हुआ भोजन अच्छे प्रकारसे पचजाताहै उसको उत्तम कहतेहैं, फिर तीक्ष्ण अग्निको विकारोंमें क्या कहा है?

समाधान-समान अग्निवाला मनुष्य भूँख लगनेपर यदि थोडी देरतक भोजन नहीं करै तो वह कुछ विकार नहीं करती और तीक्ष्ण अग्नि तो भूँखके समय भोजन न मिलनेपर तत्काल पित्तके विकारोंको उत्पन्न करतीहै, इसकारण तीक्ष्ण अग्निको विकारोंमें कहा है। कहा भी है कि-"तीक्ष्ण अग्नि पित्तसम्बन्धी और विषम अग्नि वातसंबधी विकारोंको उत्पन्न करैहै और मन्दाग्नि कफके विकारोंको उत्पन्न करैहै" ॥ ७ ॥

अथ भस्मकरोगनिदानम्।

कट्वतिरूक्षान्नभुजां नराणां क्षीणे कफे मारुतपित्तवृद्धौ ॥ अतिप्रवृद्धः पवनान्वितोऽग्निर्भुक्तं क्षणाद्भस्म करोति यस्मात् ॥ तस्मादसौ भस्मकसंज्ञकोऽभूदुपेक्षितोऽयं पचते च धातून् ॥ ८ ॥

अत्यंत तीक्ष्ण और रूक्ष अन्नको भोजन करनेवाले मनुष्योंके कफ क्षीण होकर वात और पित्तकी वृद्धि होकर जठराग्नि अत्यंत बढकर वातके साथ मिलकर जो कुछ भोजन किया जाताहै उसको क्षणमात्रमें भस्म करदेतीहै, इसीलिये इस अग्निरूप रोगको भस्मक कहतेहैं, इसमें भूँख लगनेपर जो भोजन न मिलै तो रस रक्तादि धातुओंको भस्म करने लगताहै ॥ ८ ॥

अथ भस्मकोपद्रवारिष्टे।

तृट्स्वेददाहमूर्च्छादीन्कृत्वैषोऽत्यग्निसम्भवात् ॥ पक्त्वान्नमाशु धात्वादीन्स क्षिप्रं नाशयेद् ध्रुवम् ॥ ९ ॥

यह भस्मक रोग अग्निकी अत्यत अधिकतासे तृषा, पसीना, दाह और मूर्च्छा आदिको उत्पन्न करके अन्नको तत्काल पचाकर शीघ्रही धातुओंका नाश करैहै ॥ ९ ॥

अथाजीर्णविमकृष्टनिदानम्।

अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाच्च सन्धारणात् स्वप्नविपर्ययाच्च ॥ कालेऽपि सात्म्यं लघु चापि भुक्तमन्नं न पाकं भजते नरस्य ॥ १० ॥

सन्धारणात् क्षुधामूत्रपुरीषादीनाम्। स्वप्नविपर्ययात् दिवाशयनाद्रात्रौ जागरणात्

लघु चापि इति अपिशब्दात् स्निग्धोष्णादिगुणयुक्तमपि। अन्यच्च–

तृष्णाभयक्रोधपरिप्लुतेन लुब्धेन रुग्दैन्यनिपीडितेन॥प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक् परिपाकमेति ॥ ११ ॥

परिप्लुतेन व्याप्तेन ॥

अत्यन्त जल पीनेसे, विषम (कभी कम, कभी ज्यादे) भोजन करनेसे, क्षुधा,मूत्र और मलादिके वेगोको रोकनेसे, दिनमे सोनेसे और रातमें जागनेसे, मनुष्योंके समयपर, स्वभावके अनुसार, हलका और स्निग्ध, उष्ण भोजन किया हुआ भी अन्न पचता नही है ॥ १० ॥

और भी कारण कहते हैं कि–तृषासे, भयसे और क्रोधसे तथा लोभसे, रोग और दीनतासे पीडित अथवा द्वेषसे संयुक्त मनुष्योंके किया हुआ भोजन अच्छे प्रकार नही पचताहै ॥ ११ ॥

अथ बहुभोजनमेवाजीर्णहेतुस्तच्चानेकरोगकारणमित्याह।

अनात्मवन्तः पशुवद्भुञ्जते येऽप्रमाणतः ॥ रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवन्ति हि ॥ १२ ॥

अनात्मवन्तः अबुद्धिमन्तः। रोगानीकस्य विषूच्यादेर्मूलं कारणम् ॥

प्रायेणाहारवैषम्यादजीर्णं जायते नृणाम् ॥ तन्मूलो रोगसंघातस्तद्विनाशाद्विनश्यति ॥ १३ ॥

अजीर्णविनाशाद्विनश्यति । रोगसंघातः रोगसमूहः ॥

जो मूर्ख मनुष्य पशुओंकी समान अप्रमाण (अन्धाधुन्ध) भोजन करतेहैं उनके विषूचिकादि रोगोंका मूल कारणरूप अजीर्ण उत्पन्न होताहै। और भी लिखाहै कि–प्रायः आहारकी विषमतासे मनुष्योंके अजीर्ण रोग उत्पन्न होताहै, उस अजीर्णके होनेसे रोगोंका समूह उत्पन्न होताहै और उस अजीर्णके नष्ट होनेसे वे सब रोग नष्ट होजातेहैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथाजीर्णसामान्यलक्षणम्।

ग्लानिगौरवविष्टम्भभ्रममारुतमूढताः ॥ विबन्धो वा प्रवृत्तिर्वा सामान्याजीर्णलक्षणम् ॥ १४ ॥

मारुतमूढता वायोरवरोधः विबंधः मलाप्रवृत्तिः ॥

ग्लानि, भारीपन, विष्टम्भ, भ्रम, अधोवायुका रुकना और मलका अवरोध अथवा प्रवृत्ति, यह अजीर्णके सामान्य लक्षण है ॥ १४ ॥

अथसन्निकृष्टकारणसहिताजीर्णभेदाः।

आमं विदग्धं विष्टब्धं कफपित्तानिलैस्त्रिभिः ॥ अजीर्णं केचिदीक्षन्ते चतुर्थं रसशेषतः ॥ १५ ॥

त्रिभिरित्येकशो न तु मिलितैः। केचित्तु सुश्रुतादयः। रसशेषतः भुक्तस्य पक्वस्य सारभूतो यो द्रवः स रसः सोपि पच्यते भुक्तस्य सारभूतो यो द्रवः स चापक्वः सारःरसशेषः तस्माच्चतुर्थमजीर्णम्। ननु आमाजीर्णाद्रसशेषस्य को भेदः ? उच्यते–आमं मधुरतां गतमपक्वमन्नमेव। रसशेषस्तु भुक्तस्य पक्वस्य सारभूतो यो द्रवः स चापक्व इति भेदः ॥

अजीर्णं पञ्चमं केचिन्निर्दोषं दिनपाकि च ॥ वदन्ति षष्ठश्चाजीर्णं प्राकृतं प्रतिवासरम् ॥ १६ ॥

निर्दोषं गौरवभ्रमशूलादिदोषाऽजनकम्। दिनपाकि च अहोरात्रेण पाकं यातीति स्वभावः। यत्तु मात्राकालसात्म्यादिदोषाद्दिनान्तरे पाकं याति तद्दिनपाकि । अत एव याममध्ये न भोक्तव्यमिति वचनम् ॥

प्राकृतमविकारकम् । प्रतिवासरं प्रतिदिनभावि । भुक्तं यावन्न जीर्णं तावदजीर्णमित्युच्यते । एतदभिधानस्य प्रयोजनं पाकार्थं वामपार्श्वे शयनं प्रियशब्दसेवनादिकम् । न चात्राहारस्य निषेधः । "प्रातराशे त्वजीर्णे तु सायमाशो न दुष्यति" इति वचनेन सायमाशस्यावश्यं कर्तव्यत्वात् ॥

कफसे आमाजीर्ण, पित्तसे विदग्धाजीर्ण और वातकी अधिकतासे विष्टब्धाजीर्ण होताहै, कितनेक सुश्रुतादि आचार्य कहतेहैं कि–"कियेहुए भोजनका पका हुआ अन्नादिकका जो साररूप द्रव भाग है, उस द्रवभागमें भी पकते पकते जो अपक्व (कच्चा) भाग शेष रहजाताहै उसको रसशेष कहतेहैं और उस रसशेषमें चौथा रसाजीर्ण होताहै" ।

शंका–फिर आमाजीर्ण और रसशेषाजीर्णमें भेदही क्या है ? ।

समाधान–मधुरतासे युक्त जो अपक्व अन्न है उससे उत्पन्न हुए अजीर्णको आमाजीर्ण कहतेहैं, भोजन किये पश्चात् पकेहुए अन्नका साररूप द्रवभाग अपक्व रहगया हो उससे उत्पन्न हुए अजीर्णको रसशेषाजीर्ण कहतेहैं, इस कारण आमाजीर्ण और रसशेषाजीर्ण परस्पर भिन्न हैं ।

कितनेक आचार्य कहतेहैं कि–"भारीपन, भ्रम और शूल इत्यादि दोषोंको नहीं उत्पन्न करनेवाला जो अन्न मात्रा काल तथा सात्म्य आदि दोषोंसे उस दिन नहीं पचै, किन्तु दूसरे दिन पचै, यह दिनपाकी पाचवाँ अजीर्ण है" इसलिये इस अजीर्णमें भोजनके बाद एक प्रहरतक भोजन नही करना चाहिये ऐसा कहा है ।

कितनेक वैद्य कहतेहैं कि–"विकारोंको उत्पन्न नही करनेवाला जो अजीर्ण है वह प्रतिदिन रहताहै अर्थात् कियाहुआ भोजन जबतक पचै तबतक उसकी अजीर्ण संज्ञा है यह छटा अजीर्ण है । इस छटे अजीर्ण कहनेका प्रयोजन यही है कि–इसके पचानेको बाईं करवट लेकर लेटना, लोटपोटकर सोना और मिष्ट गायन कथा आदि प्रिय शब्द सुनना चाहिये । क्योंकि प्रातःकाल भोजन करनेसे उत्पन्न हुए अजीर्णमें सन्ध्याके समय भोजन करना कुछ हानिकारक नहीं है इस वचनानुसार रात्रिमें अवश्य भोजन करना चाहिये ॥ १५॥१६ ॥

अथामाजीर्णलक्षणम् ।

तत्रामे गुरुतोत्क्लेशः शोथो गण्डाक्षिकूटगः ॥ उद्गारश्च यथाभुक्तमविदग्धं प्रवर्तते ॥ १७ ॥

गुरुता उदराङ्गयोः । उत्क्लेशः उपस्थितवमनमिव । अक्षिकूटोऽक्षिपुटकः ॥

आमाजीर्णमें पेट और अगोंमें भारीपन होताहै, वमन कीसी इच्छा होतीहै, गाल और आंखोंके पलकोंपर सूजन और जैसा भोजन किया हो उसीके अनुसार डकार आतीहै ॥ १७ ॥

अथ विदग्धाजीर्णलक्षणम् ।

विदग्धे भ्रमतृण्मूर्च्छाः पित्ताच्च विविधा रुजः ॥ उद्गारश्च सधूमाम्लः स्वेदो दाहश्च जायते ॥ १८ ॥

विविधा रुजः ऊषचोषदाहादयः ॥

विदग्धाजीर्णमें भ्रम होताहै, तृषा लगतीहै, मूर्च्छा होतीहै, पित्तके कारण सताप, चोष और दाहादिक अनेक प्रकारकी व्यथा होती है, धुएँ युक्त खट्टी डकार आतीहै, पसीना और दाह होताहै ॥ १८ ॥

अथ विष्टब्धाजीर्णलक्षणम् ।

विष्टब्धशूलमाध्मानं विविधा वातवेदनाः ॥ मलवाताप्रवृत्तिश्च स्तम्भो मोहोऽङ्गपीडनम् ॥ १९ ॥

वातवेदनाः तोदभेदादयः । स्तम्भोऽङ्गानाम् । मोहो मूर्च्छा ॥

विष्टब्धाजीर्णमें शूल, अफारा, तोडने भेदने (छेदने) सरीखी अनेक वायुकी पीडा होतीहैं, मल और वायुका अवरोध, शरीरका जकडना, अगोंमें पीडा और मूर्च्छा होतीहै ॥ १९ ॥

अथ रसशेषाजीर्णलक्षणम् ।

रसशेषेऽन्नविद्वेषो हृदयाशुद्धिगौरवे ॥ २० ॥

रसशेषाजीर्णमें हृदयके अशुद्ध होनेसे और भारापन होनेसे अन्नमें अरुचि होतीहै ॥ २० ॥

अथाजीर्णोपद्रवाः ।

मूर्च्छा प्रलापो वमथुः प्रसेकः सदनं भ्रमः ॥ उपद्रवा भवन्त्येते मरणश्चाप्यजीर्णतः ॥ २१ ॥

अजीर्णसे मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, लारका गिरना, ग्लानि और भ्रम, ये सब उपद्रव होतेहैं और मरण भी होताहै ॥ २१ ॥

अथोक्ताजीर्णे विषूच्यादिरोगाः ।

आमं विदग्धं विष्टब्धमित्यजीर्णं यदीरितम् ॥ विषूच्यलसकौ तस्माद्भवेच्चापि विलम्बिका ॥ २२ ॥

नात्र यथासंख्यम् । तदा विष्टब्धाद्विलम्बिका भवितुमर्हति । सा च कफवाताभ्यां भवतीति एकैकतोऽजीर्णाद्विषूच्यादित्रयोत्पत्तिः ॥

आमाजीर्ण, विदग्धाजीर्ण और विष्टब्धाजीर्ण, ये जो तीन प्रकारके अजीर्ण कहेहैं, इनसे विषूचिका, अलसक और विलम्बिका महारोग होतेहैं । इनमें आमाजीर्णसे विषूचिका, विदग्धाजीर्णसे अलसक और विष्टब्धाजीर्णसे विलम्बिका होतीहै, यह अनुक्रम नही मानना चाहिये परन्तु एक एक अजीर्णसे विसूची आदि तीनों रोग होतेहैं, यदि अनुक्रम लियाजाय तो पित्तसम्बन्धी विष्टब्धाजीर्णसे विलम्बिका होनी चाहिये सो ठीक नहीं, क्योकि विलम्बिका कफ और वायुसे होतीहै, इस कारण यह अनुक्रम नहीं लेना चाहिये ॥ २२ ॥

अथ विसूचिकार्थः ।

सूचीभिरिव गात्राणि तुदन्सन्तिष्ठतेऽनिलः॥ यत्राजीर्णेन सा वैद्यैर्विसूचीति निगद्यते ॥ २३ ॥

जिस रोगमें अजीर्णके कारण वायु शरीरमे सुई छेदनेके सी पीडा करतीहै उस रोगको वैद्य विसूचिका (हैजा) कहतेहैं (सूची नाम सुईका है) ॥२३॥

अथ विसूचिकानिदानम् ।

न तां परिमिताहारा लभन्ते विदितागमाः ॥ मूढास्तामजितात्मानो लभन्तेऽशनलोलुपाः ॥ २४ ॥ विदितागमाः ज्ञातायुर्वेदाः ॥

परिमाणका भोजन करनेवाले और आयुर्वेदको जाननेवाले मनुष्योंको विसूचिका रोग नहीं उत्पन्न होताहै. किन्तु जिन मूर्ख मनुष्योंके मन और इन्द्रियें वशमे नही हैं और भोजनमे अत्यन्त आशक्त हैं उनको यह विसूचिका उत्पन्न होतीहै ॥ २४ ॥

अथ विसूचिकालक्षणम् ।

मूर्च्छातिसारौ वमथुः पिपासा शूलं भ्रमोद्वेष्टनजृम्भदाहाः ॥ वैवर्ण्यकम्पौ हृदये रुजश्च भवन्ति तस्यां शिरसश्च भेदः ॥ २५ ॥

उद्वेष्टनं हस्तपादयोः । शिरसो भेदः शिरःशूलम् ॥

विसूचिकामें मूर्च्छा अतीसार (दस्तोंका होना) वमन, तृषा, शूल, हाथ पावोंका जकडना,जम्भाई, दाह, शरीरके वर्णका बदलजाना, कम्प, हृदयमे पीडा और शिरमे पीडा होतीहै ॥ २५ ॥

अथ विसूचिकोपद्रवाः ।

निद्रानाशोऽरतिः कम्पो मूत्राघातो विसंज्ञता ॥ अमी उपद्रवा घोरा विसूच्या पञ्च दारुणाः ॥ २६ ॥

अमी निद्रानाशादयः उपद्रवाः । सर्वेषामेव रोगाणां घोरा भयंकराः । विसूच्याः पञ्च दारुणाः विसूच्यास्तु पञ्चापि यदि स्युस्तदा दारुणाः प्राणभयंकराः ॥

निद्राका नाश, वेकली, कम्प, मूत्राघात (मूत्रका अवरोध) और मूर्च्छा, ये पाचों उपद्रव सब रोगोमें भयकर हैं, परन्तु विसूचिकामें उत्पन्न होय तो अत्यन्त दारुण हैं, अर्थात् ये पाचों होजायँ तो प्राण जानेका भय होता है ॥ २६ ॥

अथालसकलक्षणम् ।

कुक्षिरानह्यतेऽत्यर्थं प्रताम्यत्यथ कूजति ॥ निरुद्धो मारुतश्चैव कुक्षावुपरि धावति ॥ ॥ २७ ॥ वातवर्चोनिरोधश्च यस्यात्यर्थं

भवेदपि ॥ तस्यालसकमाचष्टे तृष्णोद्गारौ च यस्य तु ॥ २८ ॥

आनह्यते आध्मायते । प्रताम्यति ताडयति । कूजति आर्तनादं करोति । कुक्षौ अजीर्णे न निरुद्धो मारुत उपरि धावति हृदयकण्ठादिकं गच्छतीत्यर्थः । काश्यपस्त्वाह—

नाधो याति न चाप्यूर्द्ध्वमाहारो यन्न पच्यते ॥ कोष्ठे स्थितोऽलसीभूतस्ततोऽसावलसः स्मृतः ॥ २९ ॥

पेट अत्यन्त अफरजाय, अङ्गोंको पटकै, पीडाके मारे चिल्लावै, पेटमें अजीर्णसे रुकी हुई वायु छाती और कंठ आदि ऊपरके भागोंमें जावै, मल और वायुका अत्यन्त अवरोध हो, तृषा हो और डकार आवै, ये सब लक्षण जिसके हों उसके अलसकरोग उत्पन्नहुआ जानना ॥२७॥२८॥

काश्यपमुनि कहतेहैं कि—"किया हुआ भोजन न तो ऊपरको वमनद्वारा निकले, न नीचे दस्तोंके द्वारा निकलै और जठराग्निसे पकै भी नहीं, किन्तु कोठेमें स्थिर होकर रहताहै, इसकारण इस रोगको अलसक कहतेहैं" ॥ २९ ॥

अथ विसूचिकालसकारिष्टे ।

यः श्यावदन्तौष्ठनखोऽल्पसंज्ञो वम्यर्दितोऽभ्यन्तरयातनेत्रः ॥ क्षामस्वरः सर्वविमुक्तसन्धिर्यायान्नरोऽसौ पुनरागमाय ३०॥

सर्वा विमुक्ताः शिथिलीभूताः सन्धयो यस्य सः ॥

जिसके दांत, होंठ और नख काले पडगये हों, संज्ञा नष्ट होगई हो, वमनसे पीडित हो, आँखें गडगई हों, स्वर क्षीण होगयाहो और सम्पूर्ण सन्धिबन्धन ढीले पडगयेहों, वह मनुष्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ ३० ॥

अथ विलम्बिकालक्षणम् ।

दुष्टन्तु भुक्तं कफमारुताभ्यां प्रवर्तते नोर्द्ध्वमधश्च यत्र ॥ विलम्बिकां तां भृशदुश्चिकित्स्यामाचक्षते शास्त्रविदः पुराणाः॥ ३१॥

भृशदुश्चिकित्स्यां प्रत्याख्येयामनुपचरणीयाम् । इदमसाध्यश्चेति जैयटः ॥

जिसमें भोजन कियाहुआ दुष्ट आहार, कफ और वायुके कारण मुखके द्वारा और गुदाके द्वारा नहीं निकले उसको विद्वान् वैद्य विलम्बिका कहतेहैं, यह विलम्बिका रोग चिकित्सा करनेमें अत्यन्त कठिन है इस लिये इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ ३१ ॥

अथ जीर्णाहारलक्षणम् ।

उद्गारशुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचितः॥ लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम् ॥ ३२ ॥

डकार शुद्ध आवै, चित्तमें उत्साह हो, मल मूत्रादिक ठीक उतरें, शरीरमें हलकापन हो, भूख और प्यास ठीक लगे, यह जीर्ण आहारके लक्षण हैं ॥ ३२ ॥

अथाजीर्णचिकित्सा ।

हरीतकी तथा शुण्ठी भक्ष्यमाणा गुडेन च ॥ सैन्धवेन युता वा स्यात्सातत्येनाग्निदीपनी ॥ ३३ ॥ गुडेन शुण्ठीमथवोपकुल्यां पथ्यां तृतीयामथ दाडिमं वा ॥ आमेष्वजीर्णेषु गुदामयेषु वर्चोविबन्धेषु च नित्यमद्यात् ॥ ३४ ॥ व्योषं दन्ती त्रिवृच्चित्रं कृष्णामूलं विचूर्णितम्॥तच्चूर्णं गुडसम्मिश्रं भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ॥ ३५ ॥ एतद्गुडाष्टकं नाम बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ शोथोदावर्तशूलघ्नं प्लीहपाण्ड्वामयापहम् ॥ ३६ ॥

सर्वचूर्णसमो गुडो देयः ॥

दहनाजमोदसैन्धवनागरमरिचानि चाम्लतक्रेण ॥ सप्ताहादग्निकरं पाण्ड्वर्शोनाशनं परमम् ॥ ३७ ॥ तत्रामे वमनं कार्यं विदग्धे लंघनं हितम् ॥ विष्टब्धे स्वेदनं शस्तं रसशेषे शयीत च ॥ ३८ ॥ वचालवणतोयेन वान्तिरामे प्रशस्यते ॥ कणासिन्धुवचाकल्कं पीत्वा च शिशिराम्भसा ॥ ३९ ॥

जलमत्र शरावमात्रम् । वचा कर्षार्द्धमिता । द्वयोश्चूर्णमुष्णेन जलेन पिबेत् । कणादिकल्कं वा पीत्वा वान्तिरामे प्रशस्यते । इत्यनेनान्वयः ॥

धान्यनागरसिद्धं वा तोयं दद्याद्विचक्षणः॥ आमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं वस्तिशोधनम् ॥ ४० ॥ भवेद्यदा प्रातरजीर्णशङ्का तदाभयां नागरसैन्धवाभ्याम् ॥ विचूर्णितां शीतजलेन भुक्त्वा भुञ्ज्यादशंकं मितमन्नकाले ॥ ४१ ॥ विदह्यते यस्य तु भुक्तमात्रं दन्दह्यते हृच्च गलश्च यस्य ॥ द्राक्षां सितामाक्षिकसम्प्रयुक्तां लीढ्वाऽभयां चापि सुखं लभेत ॥ ४२ ॥

हरड और सोंठ, इन दोनोंको पीसकर गुडमें मिलाकर भक्षण करनेसे, अथवा सैंधेनमकके साथ भक्षण करनेसे जठराग्नि अत्यन्त दीपन होतीहै ॥ ३३ ॥

आमाजीर्ण, बवासीर और मलबन्धमें नित्य गुडके साथ सोंठ, पीपल, हरड, अथवा अनारका सेवन करना चाहिये ॥ ३४ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, जमालगोटेकी जड, निसोत, चीता और पीपलामूल, इन सबको समानभाग लेकर कूट पीसकर चूर्ण करै और सब चूर्णकी बराबर गुड मिलावै इस गुडाष्टकको प्रातःकाल उठकर भक्षण करै यह बल, वर्ण और अग्निको दीपन करैहै, तथा सूजन, उदावर्त, शूल प्लीहा और पाण्डुरोगको नष्ट करैहै ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

चीता, अजमोद, सैंधानिमक, सोंठ और मिरच, इनका चूर्ण करके खट्टे मट्ठेके साथ पियै तौ सात दिनमें अग्निकी वृद्धि होतीहै, पाण्डुरोग और बवासीरको नष्ट करैहै ॥ ३७ ॥

आमाजीर्णमे वमन करानी चाहिये, विदग्धाजीर्णमे लंघन कराने चाहिये, विष्टब्धाजीर्णमें सेक आदिसे स्वेदन कराना चाहिये और रसशेषाजीर्णमें शयन कराना चाहिये ॥ ३८ ॥

आमाजीर्णमे आधा तोला वच और यथायोग्य सैंधानोन दोनोको पीसकर ३२ तोले गरम जलमे डालकर पियै और वमन करै तो आमाजीर्ण दूर होय ॥

पीपल, सैंधानिमक और वच इनका कल्क बनाकर शीतल जलमे मिलाकर पियै, इससे वमन होगी, यह आमाजीर्णमे अत्यन्त हितकारी है ॥ ३९ ॥

जो चतुर वैद्य आमाजीर्णमे धनियाँ और सोठका क्वाथ पिलाताहै, उससे आमाजीर्ण शांत होजाताहै यह प्रयोग शूलको नष्ट करै है और आमाशयको शुद्ध करै है ॥ ४० ॥

जो प्रातःकाल अजीर्णकी शका होय तो हरड, सोठ और सैंधानिमक इनका चूर्ण करके शीतल जलके साथ पिये और जब भोजनका समय होय तब शकाको छोडकर परिमाणका भोजन करै ॥ ४१ ॥

जिसके भोजन करतेही अन्नका विदग्धपाक होकर हृदय और कण्ठमे दाह होय तो वह सहत और मिश्रीके साथ दाख और हरडको चाटे, इससे सुखकी प्राप्ति होती है ४२॥

अथ हिंग्वष्टकम् ।

त्रिकटुकमजमोदा सैन्धवं जीरके द्वे समधरणघृतानामष्टमो हिंगुभागः ॥ प्रथमकवलभुक्तं सर्पिषा चूर्णमेतज्जनयति जठराग्निं वातरोगांश्च हन्ति ॥ ४३ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, अजमोद, सैंधानिमक, जीरा और कालाजीरा, यह सब समान भाग और आठवाँ भाग भुनी हींग लेवै, सबका एकत्र चूर्ण करके घीमें मिलाकर भोजनके प्रथम ग्रासमें खानेसे जठराग्नि दीपन होती है और वात सबधी रोग नष्ट होजाते हैं ॥ ४३ ॥

अथ बृहदग्निमुखचूर्णम् ।

द्वौ क्षारौ चित्रकं पाठा करञ्जं लवणानि च ॥ सूक्ष्मैलापत्रकं भार्ङ्गी क्रिमिघ्नं हिंगुपौष्करम् ॥ ४४ ॥ शटी दार्वी त्रिवृन्मुस्तं वचा चेन्द्रयवास्तथा ॥ वृक्षाम्लं जीरकं धात्री श्रेयसी चोपकुञ्चिका ॥ ४५ ॥ अम्लवेतसमम्लीका यवानी देवदारु च ॥ अभयातिविषा श्यामा हपुषारग्वधं समम् ॥ ४६ ॥ तिलमुष्क-

कशिग्रूणां कोकिलाक्षपलाशयोः ॥ क्षाराणि लोहकिट्टञ्च तप्तं गोमूत्रसेचितम् ॥ ॥ ४७ ॥ सूक्ष्मचूर्णानि कृत्वा तु समभागानि कारयेत् ॥ मातुलुङ्गरसेनैव भावयेद्दिवसत्रयम ॥ ४८ ॥ दिनत्रयन्तु शुक्तेन तथार्द्रकरसेन च ॥ अत्यग्निकारकं चूर्णं प्रदीप्ताग्निसमप्रभम् ॥ ४९ ॥ उपयुक्तं विधानेन नाशयत्यचिराद्गदान् ॥ अजीर्णमथ गुल्मञ्च प्लीहानं गुदजानि च ॥ ५० ॥ उदराण्यन्त्रवृद्धिञ्च अष्ठीलां वातशोणितम् ॥ प्रणुदत्युल्वणान्दोषानष्टाग्निं च प्रदीपयेत् ॥ ५१ ॥

द्वौ क्षारौ स्वर्जिका यवक्षारश्च । लवणानि पञ्च । वृक्षाम्लं वृपाम्बिल इति लोके । श्रेयसी हरीतकी । उपकुञ्चिका मगरेला इति लोके । अम्लवेतसकाभावे चुक्रं दातव्यम् । श्यामा प्रियंगुः । मुष्ककः घण्टापारुल् इति लोके । कोकिलाक्षः कोइलपा इति लोके ॥

जवाखार, सज्जी, चीता, पाढ, करज, पांचो निमक, तेजपात, भारगी, वायविडग, हींग, पोहकरमूल, कचूर, दारुहलदी, निसोत, नागरमोथा, वच, इन्द्रजौ, विषांबिल. जीरा, आमले, हरड, कलौंजी, अमलवेत, इमली, अजवायन, देवदारु, छोटी हरड, अतीस, फूलप्रियगु, हाऊवेर और अमलतास ये सब समान भाग ले, तिल, मोरवा, सहँजना तालमखाना और ढाक, इन सबका खार और अग्निमे तपाकर गोमूत्रमे बुझाया हुआ लोहेका मैल, इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके विजौरेके रसकी तीन दिनतक भावना देवै, पश्चात् तीन दिन तक सिर्केमे और तीन दिन तक अदरखके रसमे खरल करै तो अग्निमुख चूर्ण तैयार हो। यह अग्निमुख चूर्ण अत्यन्त अग्निप्रदीपक दीप्ताग्निके समान है । इसको विधिपूर्वक सेवन करनेसे बहुत दिनके अजीर्ण, गुल्म, प्लीहा, बवासीर, उदररोग, अन्त्रवृद्धि, अष्ठीला और वात रक्त रोग नष्ट होतेहैं। यह चूर्ण उल्वण हुए दोषोंको शमन करैहै और नष्ट हुई अग्निको दीपन करैहै ॥ ४४-५१ ॥

अथ वैश्वानरक्षारः ।

स्नुह्यर्कचित्रकैरण्डवरुणं सपुनर्नवम् ॥ तिलापामार्गकदलीपलाशं तिन्तिडी तथा ॥ ५२ ॥ गृहीत्वा ज्वालयेदेतद्भस्म्थं भस्माखिलं यथा ॥ जलाढके विपक्तव्यं यावत्पादावशेषितम् ॥ ५३ ॥ गृध्रसत्रं विनिस्राव्य लवणप्रस्थसंयुतम् ॥ पक्कं निर्धूमकठिनं सूक्ष्मचूर्णीकृतं पुनः ॥५४॥ यवानीजीरकव्योषस्थूलजीरकहिंगुभिः ॥ शीतोदकेन तच्चूर्णं पिबेत्प्रातर्हि मात्रया॥ ॥ ५५ ॥ तस्मिञ्जीर्णेऽन्नमश्नीयाद्यूषैर्जाङ्गलजै रसैः ॥ ईषदम्लैः सलवणैः सुखोष्णैर्वह्निदीपनैः ॥ ५६ ॥ एतेनाग्निर्विवर्द्धेत बलमारोग्यमेव च ॥ तत्रानुपानं शस्तं हि तक्रं वा भोजने हितम् ॥ ५७ ॥ मन्दाग्न्यर्शोविकारेषु वातश्लेष्मामयेषु च ॥ सर्वांगशोथरोगेषु शूलगुल्मोदरेषु च ॥ अश्मर्यां शर्करायाञ्च विण्मूत्रानिलरोगेषु ॥ ५८ ॥

थूहर, आक, चीता, अड, बरना, पुनर्नवा, तिल, चिरचिटा, केला, ढाक और इमली, इन सबकी लकडियोंको लेकर विधिपूर्वक जलाकर ६४ तोले भस्मको ग्रहण करै, फिर इस भस्मको २५६ तोले जलमे डालकर पकावे जब चौथाई भाग जल शेष रहै तब उतारकर वस्त्रसे छान लेवै फिर उस निर्मल क्षार जलमें १२८ तोले सैंधानिमक डालकर पकावै, जब पकते पकते निर्धूम और कठिन होजाय तब उतार लेवै, फिर उसका बारीक चूर्ण करके उसमे अजवायन, जीरा, सोंठ, मिरच, पीपल, कलौंजी और हींग, इनका चूर्ण मिलाकर प्रातःकाल शीतल जलके साथ खाय, जब इसकी मात्रा पचजाय तब कुछेक खट्टा, नमकीन, कुछेक गरम और अग्निको दीपन करनेवाले यूषके साथ और जगली जीवोंके मासके रसके साथ भोजन करै । इस प्रकार करनेसे अग्निकी वृद्धि होतीहै, बल और आयु बढतीहै, भोजन करनेके पश्चात् तक्र (छाछ) का पीना अथवा भोजनके साथ तक्रका पीना, इस प्रयोगमे हितकारी है । यह वैश्वा-

नर क्षार मन्दाग्नि, बवासीर, वात और कफसंबंधी रोग, सम्पूर्ण शरीरगत सूजन, शूल, गुल्म, उदररोग, पथरी, शर्करा, विष्ठा और मूत्रके रोग तथा वातके रोगोंमे हितकारी है ॥ ५२–५८ ॥

अथ लवणभास्करः।

सामुद्रलवणं कार्यमष्टकर्षमितं बुधैः ॥ सौवर्चलं पञ्चकर्षं विडसैन्धवधान्यकम्॥५९॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं पत्रकं कृष्णजीरकम् ॥ तालीशं केशरं चव्यमम्लवेतसकं तथा ॥ ६० ॥ द्विकर्षमात्राण्येतानि प्रत्येकं कारयेद्बुधः ॥ मरिचं जीरकं विश्वमेकैकं कर्षमात्रकम् ॥ ६१ ॥ दाडिमं स्याच्चतुष्कर्षं त्वगेला चार्द्धकर्षिका॥ एतच्चूर्णीकृतं सर्वं लवणं भास्कराभिधम् ॥ ६२ ॥ भक्षयेच्छाणमानन्तु तक्रमस्तुककाञ्जिकैः ॥ वातश्लेष्मभवं गुल्मं प्लीहानमुदरं क्षयम् ॥ ६३ ॥ अर्शांसि ग्रहणीं कुष्ठं विबन्धश्च भगन्दरम् ॥ शूलं शोथं श्वासकासामदोषांश्चापि हृद्रुजम् ॥ ६४ ॥ अश्मरीं शर्कराश्चापि पाण्डुरोगं क्रिमीनपि ॥ मन्दाग्निं नाशयेदेतद्दीपनं पाचनं परम् ॥ ॥ ६५ ॥ हिताय सर्वलोकानां भास्करेण विनिर्मितम् ॥ हन्यात्सर्वाण्यजीर्णानि भुक्तमात्रमसंशयम् ॥ ६६ ॥

अत्र दाडिमस्य बीजानां कर्षचतुष्टयं देयम् ॥

समुद्रलवण ८ तोले, कालानिमक ५ तोले, विरियासचरनिमक २ तोले, सैंधानिमक २ तोले, धनिया २ तोले, पीपल २ तोले, पीपलामूल २ तोले, तेजपात २ तोले, काला जीरा २ तोले, तालीसपत्र २ तोले, नागकेशर २ तोले, चव्य २ तोले, अमल वेत २ तोले, कालीमिरच १ तोला, जीरा १ तोला, सोंठ १ तोला, अनारके बीज ४ तोले, दालचीनी ६ मासे और इलायचीके दाने ६ मासे लेवै, इन सबको एकत्र पीसकर, चूर्ण कर लेवै, इसको 'लवणभास्कर' कहतेहैं। इस लवणभास्कर चूर्णको तक्र दहीकी मलाई और कॉंजीके साथ २४ रत्ती प्रमाण खाना चाहिये। इस लवणको खानेसे बवासीर, सग्रहणी, कोढ, मलबंध, भगन्दर, वात और कफजनित गुल्म, प्लीहा, उदररोग, क्षयरोग, शूल, सूजन, श्वास, खॉसी, आम सबंघी दोष, हृदयके रोग, पथरी, शर्करा, पाण्डुरोग, कृमि और अग्निकी मन्दता, नष्ट होतीहै। यह निमक–पाचन करनेमें और अग्निको दीपन करनेमे अत्यत उत्तम है। और सब लोकोंके हितके लिये श्रीसूर्यनारायणने बनाया है। इस लवणको भक्षण करनेसे तत्काल अजीर्ण नष्ट होजाताहै, सन्देह नहीं ॥ ५९–६६ ॥

अथ वडवानलचूर्णम्।

सैन्धवसमूलमगधाचव्यानलनागरं पथ्या ॥ क्रमवृद्धमग्निवृद्धौ वडवानलनाम चूर्णं स्यात् ॥ ६७ ॥

सैंधानिमक १ भाग, पीपलामूल २ भाग, पीपल ३ भाग, चव्य ४ भाग, चीता ५ भाग, सोंठ ६ भाग, हरड सात ७ भाग लेव, सबको एकत्र कूट पीसकर चूर्ण करलेवै, इस चूर्णको वडवानलचूर्ण कहतेहैं, इसको भक्षण करनेसे जठराग्नि अत्यत दीपन होतीहै ॥ ६७ ॥

अथ द्वितीयवडवानलचूर्णम्।

पथ्यानागरकृष्णाकरञ्जबिल्वाग्निभिः सितातुल्यः ॥ वडवानल इव जरयति बहु गुर्वतिभोजनं चूर्णम् ॥ ६८ ॥

हरड, सोठ, पीपल, करज, बेलगिरी और चीता इन सबका एकत्र चूर्णकरके और सब चूर्णकी समान खॉड मिलाकर भक्षण करै तो यह वडवानल(समुद्रकी अग्निकी) समान बहुत भोजन किये हुएको भी शीघ्र पचादेता है ॥ ६८ ॥

अथ समशर्करचूर्णम्।

एलात्वङ्नागपुष्पाणां मात्रोत्तरविवर्द्धिता ॥ मरिचं पिप्पली शुण्ठी चतुष्पञ्चोत्तरोत्तरा ॥ ६९ ॥ द्रव्याण्येतानि यावन्ति तावती सितशर्करा ॥ चूर्णमेतत्प्रयोक्तव्यमग्निसन्दीपनं परम् ॥ ७० ॥

इलायची एकभाग, दालचीनी २ भाग, नागकेसर ३ भाग, काली मिर्च ४ भाग, पीपल ५ भाग और सोंठ ६ भाग लेवे, सबका एकत्र चूर्णकरके सब चूर्णकी बराबर खाँड मिलावे, इसको भक्षण करनेसे जठराग्नि अत्यंत दीपन होतीहै ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अथाजीर्णे ।

रसेन्द्रचिंतामणिरसरत्नप्रदीपोक्त-क्रव्यादरसः ।

द्विपलं गन्धकं शुद्धं पलमेकन्तु पारदम् ॥ मृतलोहं तथा ताम्रं कर्षद्वयमितं पृथक् ॥ ॥ ७१ ॥ संचूर्ण्य सर्वं सम्मिश्रं द्रावयित्वाऽग्नियोगतः ॥ सम्यग् द्रुतं समस्तं तत्पञ्चांगुलदले क्षिपेत ॥ ७२ ॥ पुनः सञ्चूर्ण्य तत्सर्वं लोहपात्रे निधापयेत् ॥ जम्बीरस्य रसं तत्र पूतं पलशतं क्षिपेत् ॥ ७३ ॥ चुल्ल्यां निवेश्य तद्यत्नान्मृदुना वह्निना पचेत् ॥ रसे तस्मिन्घनीभूते तत्संशोष्य विचूर्णयेत् ॥ ७४ ॥ पञ्चकोलकषायस्य चुक्रेण सहितस्य च ॥ भावना तत्र दातव्या पश्चात्संशोषयेच्छनैः ॥ ७५ ॥ भृष्टटंकणचूर्णेन तुल्येन सह मेलयेत् ॥ मरिचेनापि तुल्येन तदर्द्धेन बिडेन च ॥ ७६ ॥ भावयेत्सप्तकृत्वस्तु चणकाम्लजलेन च ॥ ततः संशोष्य संपिष्य कूप्यमध्ये निधापयेत् ॥ ७७ ॥ रसः क्रव्यादनामायं भैरवानन्दयोगिना ॥ उक्तः सिहलराजाय बहुमांसाशिने पुरा ॥ ॥ ७८ ॥ भक्षयेद्भोजनस्यान्ते माषद्वयमितं रसम् ॥ भक्षयित्वा रसं पश्चात्पिबेत्तक्रं ससैन्धवम् ॥ ७९ ॥ अत्यर्थं गुरु यद्भुक्तमतिमात्रमथापि च ॥ तत्सर्वं जीर्यति क्षिप्रं रसस्यैतस्य भक्षणात् ॥ ८० ॥ शूलं गुल्मञ्च विष्टम्भं प्लीहानमुदरं तथा ॥ रसः क्रव्यादनामाऽयं विनिहन्ति न संशयः ॥ ८१ ॥

इति क्रव्यादरसोऽजीर्णे रसेन्द्रचिन्तामणौ रसरत्नप्रदीपे च ॥

शुद्ध गंधक ८ तोले, शुद्धपारा ४ तोले, माराहुआ लोहा २ तोले और माराहुआ ताँबा २ तोले लेवे, इन सबको एकत्र करके अग्निके योगसे पिघलाकर अरंडके पत्तेपर डाल देवे पश्चात् उसका चूर्णकरके लोहेके बासनमें डालकर ४०० तोले नीबूका रस डालदेवे, फिर उसको चूल्हेपर चढाकर यत्न पूर्वक मंद मंद आंचसे पकावे, जब पकते पकते रस गाढा होजाय तब उसको सुखाकर चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको पंचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ) के काथकी और चूकके रसकी भावना देकर धीरे धीरे सुखालेवे, फिर इस चूर्णमें बराबर भुना सुहागा. सुहागेकी बराबर मिरचोंका चूर्ण और मिर्चोंके चूर्णसे आधा विडलवणका चूर्ण मिलावै पश्चात् इस चूर्णको चनेके खारकी सात भावना देकर सुखालेवे, फिर पीसकर सीसीमें भरकर रखदेवे, इसको क्रव्याद रस कहतेहैं । यह क्रव्याद रस पूर्वकालमें भैरवानन्द योगीने बहुत मांसको खानेवाले सिंहलद्वीपके राजाके लिये कहाथा, भोजन करनेके पश्चात् बारह (१२) रत्तीप्रमाण इसको खाना चाहिये और ऊपरसे सेंधेनिमकके साथ तक्रको पिये, अत्यत भारी और अधिक भोजन किया हुआ इस रसको भक्षण करनेसे तत्काल पच जाताहै, यह क्रव्यादरस-शूल. गुल्म, मलबन्ध, प्लीहा और उदरके समस्त रोगोंको निःसंदेह दूर करैहै ॥ ७१-८१ ॥

अथ ज्वालानलरसः ।

क्षारत्रयं सूतगन्धौ पञ्चकोलमिदं समम् ॥ सर्वैस्तुल्या जया भृष्टा तदर्द्धा शिग्रुजा जटा ॥ ८२ ॥ एतत्सर्वं जयाशिग्रुवह्नीनां केवलैर्द्रवैः ॥ भावयेत्त्रिदिनं घर्मे ततो लघु पुटे पचेत् ॥ ८३ ॥ मार्कवस्य द्रवैर्घृष्टो रसो ज्वालानलो भवेत् ॥ निष्कोऽस्य मधुना लीढोऽनुपानं गुडनागरम् ॥ ८४ ॥ हन्त्यजीर्णमतीसारं ग्रहणीमग्निमार्दवम् ॥ श्लेष्महृल्लासवमनमालस्यमरुचिं जयेत् ॥ ८५ ॥

अथ पञ्चकोलम् ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः८६
जया अत्र विजया । मार्कवः भृङ्गराजः ॥

जवाखार, सज्जीखार, सुहागा, पारा, गंधक और पंचकोल, ये सब समान भाग लेवै और सबकी समान भुनी हुई भाँग लेवै और भाँगसे आधाभाग सैंजिनेकी जड लेवै, इन सबको तीनदिनतक भाँग, सैंजिना और चीता इनके रसोंकी तीनदिनतक धूपमें भावना देवै, पश्चात् लघुपुटमें पकावै, फिर निकालकर भाँगरेके रसमें पीसलेवै तो ज्वालानलनामक रस सिद्ध होताहै, इसको २४ रत्तीप्रमाण सहतके साथ चाटै और ऊपरसे गुड तथा सोंठका अनुपान करै, इससे अजीर्ण, अतीसार, सग्रहणी, अग्निकी मदता, कफ, उबकाई, वमन, आलस्य और अरुचि नष्ट होजातीहै ॥ ऊपर जो पंचकोल कहा है वह पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ, इन पाँचोंको समझना ॥ ८२–८६ ॥

अथाग्निकुमाररसः ।

टंकणं रसगन्धौ च समं भागत्रयं विषात्॥
कपर्दः स्वर्जिकाक्षारो मागधी विश्वभेषजम् ॥ ८७ ॥ पृथक्पृथक्कर्षमात्रं
वसुभागमिहोषणम् ॥ जम्बीराम्लैर्दिनं
घृष्टं भवेदग्निकुमारकः ॥ विषूचीशूलवातादिवह्निमान्द्यप्रशान्तये ॥ ८८ ॥
क्षारो यवक्षारः । अग्निकुमारो विसूच्यामजीर्णे रसरत्नप्रदीपे, रसेन्द्रचिन्तामणौ च॥

सुहागा १ तोला, पारा १ तोला, गधक १ तोला, वत्सनाभ ३ तोला, कौडी एक तोला, सज्जी १ तोला, पीपल १ तोला, सोंठ १ तोला और कालीमिर्च ८ तोले लेवै, इन सबको एकत्र करके एकदिनतक नींबूके रसमें खरल करै तो 'अग्निकुमार' रस, सिद्ध होताहै । यह रस विसूचिका, शूल, वायु आदि और अग्निकी मंदताको नष्ट करै है ॥ यह रसरत्नप्रदीपमें तथा रसेन्द्रचिन्तामणिमें विशूचिका और अजीर्णपर कहा है ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

अथ रामबाणरसः ।

पारदामृतलवङ्गगन्धकं भागयुग्ममरिचेन
मिश्रितम् ॥ तत्र जातिफलमर्द्धभागिकं
तिन्तिडीफलरसेन मर्दितम् ॥ ८९ ॥
वह्निमान्द्यदशवक्त्रनाशनो रामबाण इति
विश्रुतो रसः ॥ संग्रहग्रहणिकुम्भकर्णकमामवातखरदूषणं जयेत् ॥ ९० ॥
दीयते तु मरिचानुपानतः सद्य एव जठराग्निदीपनः ॥रोचनः कफकुलान्तकारकः
श्वासकासवमिजन्तुनाशनः ॥ ९१ ॥
पारदभागः १ । विषभागः १ । लवङ्गभागः १ । गन्धकभागः १ । मरिचभागः२।
जातीफलार्धभागः ॥

पारा १ भाग, वत्सनाभ १, भाग, लौंग १ भाग, गंधक १ भाग, कालीमिर्च २ भाग और जायफल आधाभाग लेवै, इन सबको एकत्र करके इमलीके रसमें खरल करै तो 'रामबाण' रस सिद्ध होताहै । यह रामबाण नामवाला रस अग्निकी मदतारूप रावणको नष्ट करैहै, संग्रहणी तथा ग्रहणीरूप कुम्भकर्णको जीतैहै और आमवातरूपी खरदूषणका नाश करैहै, यह मिर्चके अनुपानसे सेवन किया हुआ तत्काल जठराग्निको दीपन करैहै, रुचिको उत्पन्न करैहै, कफके समूहको नष्ट करैहै और श्वास, खाँसी, वमन तथा कृमिको भी दूरकरैहै ॥ ८९–९१ ॥

अथ शंखवटी ।

पलं चिञ्चासारं पलमितमिदं पञ्चलवणं
द्वयं सम्यक्पिष्टं भवति लघुनिम्बूफलरसैः॥
ततः पिष्टे तस्मिन्पलपरिमितं शङ्खशकलं
क्षिपेद्वारान्सप्त द्रवमिह च तेनैव विधिना॥
॥ ९२ ॥ पलप्रमाणं कटुकत्रयञ्च
पलार्द्धमानं वचाहिंगुभागः ॥ विषं
पलद्वादशभागयुक्तं तावद्रसो गन्धक एष
चोक्तः ॥ ९३ ॥ बदरास्थिप्रमाणेन
वटीमेतस्य कारयेत् ॥ भक्षयेत्सेवया
साम्यात्सर्वाजीर्णप्रशान्तये ॥ ९४ ॥
सर्वोदरेषु शूलेषु विसूच्यां विविधेषु च ॥
अग्निमान्द्येषु गुल्मेषु सदा शङ्खवटी
हिता ॥ ९५ ॥

इति शंखवटीरसः । रसरत्नप्रदीपे ॥

इमलीका खार ४ तोले और पाँचों नमक ४ तोले लेकर कागजी नींबूके रसमें पीस लेवै, फिर इस रसमें चार तोले शंखका टुकडा सातवार तपा तपाकर नींबूके रसमें बुझाकर मिला देवै, पश्चात् इसमें चार तोले त्रिकुटा, दो तोले वच और हींग, वत्सनाभ १२ पल, वत्सनाभकी बराबर पारा और पारेकी बराबर गंधक लेवै, इन सबको एकत्र मिलाकर बेरकी गुठलीकी समान गोली बनावे। इन गोलियोंको सेवन करनेसे सब प्रकारके अजीर्ण शांत होतेहैं। यह शंखवटी सर्वप्रकारके उदररोगोंपर शूलपर, विसूचिकापर, अग्निकी विविधप्रकारकी मंदतापर और गुल्म रोगपर सदैव हितकारी है ॥ ९२–९५ ॥

अथ बृहच्छंखवटी।

स्नुह्यर्कचिञ्चापामार्गरम्भातिलपलाशजान् ॥ लवणानाददीतेषां प्रत्येकं कर्षमात्रया ॥ ९६ ॥ लवणानि पृथक्पञ्च ग्राह्याणि पलमात्रया ॥ स्वर्जिका च यवक्षारष्टंकनं त्रितयं पलम् ॥ ९७ ॥ सर्वं त्रयोदशपलं सूक्ष्मं चूर्णं विधाय च ॥ निम्बूफलरसे प्रस्थसम्मिते तत्परिक्षिपेत् ॥ ९८ ॥ तत्र शङ्खस्य शकलं पलं वह्नौ प्रताप्य तु ॥ वारान्निर्वापयेत्सप्त सर्वं द्रवति तद्यथा ॥ ९९ ॥ नागरं त्रिपलं ग्राह्यं मरिचन्तु पलद्वयम् ॥ पिप्पली पलमाना स्यात्पलार्द्धं भृष्टहिंगुतः ॥ १०० ॥ ग्रन्थिकं चित्रकश्चापि यवानी जीरकं तथा ॥ जातीफलं लवङ्गञ्च पृथक्कर्षद्वयोन्मितम् ॥१०१॥ रसो गन्धो विषं चापि टंकणञ्च मनःशिला॥ एतानि कर्षमात्राणि सर्वं संचूर्ण्य मिश्रयेत् ॥ १०२ ॥ शरावार्द्धेन चुक्रेण वटिकां तस्य कारयेत् ॥ माषप्रमाणा सद्वैद्यैर्बृहच्छंखवटी स्मृता ॥ १०३ ॥ सर्वाजीर्णप्रशमनी सर्वशूलनिवारिणी॥ विसूच्यलसकादीनां द्यो भवति नाशनी ॥ १०४ ॥

थूहरका खार ४ तोले, इमलीका खार ४ तोले, आकका खार ४ तोले, चिरचिटेका खार ४ तोले, केलेका खार ४ तोले, तिलका खार ८ तोले, ढाकका खार ४ तोले, पाँचों नमक २० तोले, जवाखार, सज्जीखार और सुहागा, ये तीनों ४ तोले, इसप्रकार ५२ तोले द्रव्य लेकर बारीक चूर्ण करके ६४ तोले नींबूके रसमें डालदेवै, पश्चात् ४ तोले भर शंखके टुकडेको अग्निमें तपा तपाकर सातवार इस रसमें बुझा देवै, फिर जिससे यह द्रवरूप होजावै, फिर सोंठ १२ तोले, कालीमिरच ८ तोले, पीपल ४ तोले, भुनी हींग २ तोले, पीपरामूल २ तोले, चीता २ तोले, अजवायन २ तोले, जीरा २ तोले, जायफल २ तोले, लौंग २ तोले, पारा १ तोला, गंधक १ तोला, वत्सनाभ १ तोला, सुहागा १ तोला, और एक तोला मनशिल, सबको एकत्र पीसकर पूर्वोक्तरसमें मिलादेवै, फिर १६ तोले चूकेका रस मिलाकर उडदकी समान गोलियाँ बनावै। इन गोलियोंको बृहत् शंखवटी कहतेहैं। यह गोली सब प्रकारके अजीर्णको शांत करतीहै। सब प्रकारके शूलोंको नष्ट करतीहै और विसूची तथा अलसक आदि रोगोंको तत्काल दूर करतीहै ॥ ९६–१०४ ॥

अथाजीर्णकंटकरसः।

टंकणकणामृतानां सहिंगुलानां समं भागम् ॥ मरिचस्य भागयुगलं निम्बूनीरैर्वटी कार्या ॥ १०५ ॥ वटिकां कलायसदृशीमेकां द्वे वा समश्नीयात् ॥ सत्यमजीर्णे शान्त्यै वह्नेर्वृद्ध्यै कफध्वस्त्यै ॥ १०६ ॥

सुहागा, पीपल, वत्सनाभ और सिंगरफ, इन सबको समान भाग ले और कालीमिरच दो भाग डालकर नींबूके रससे मटरकी समान गोलियाँ बना लेवै। इनमेंसे एक अथवा दो गोली खानेसे अजीर्ण शांत होजाताहै, अग्निकी वृद्धि होतीहै और कफका नाश होताहै यह सत्य है ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

अथ विसूचिकाचिकित्सा।

जलपीतमपामार्गं शूलं हन्याद्विसूचिकाम् ॥ सतैलं कारवेल्यम्बु नाशयेद्धि विसूचिकाम् ॥ १०७ ॥ बालमूल-

स्य तु क्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः ॥ विसूचीनाशनःश्रेष्ठोजठराग्निविवर्द्धनः॥ १०८॥ विल्वनागरनिःक्वाथो हन्याच्छर्दिविसूचिकाम् ॥ विल्वनागरकैटर्यक्वाथस्तदधिको गुणः ॥ १०९ ॥

कैटर्यः कट्फलः ॥

व्योषं करञ्जस्य फलं हरिद्रे मूलं समावाप्य च मातुलुङ्ग्याः ॥ छायाविशुष्का वटिका कृता सा हन्याद्विसूचीं नयनाञ्जनेन ॥ ११० ॥

अनुभूतमिदम् ॥

अपामार्गस्य पत्राणि मरिचानि समानि च ॥ अश्वस्य लालया पिष्टाञ्जनाद्धन्ति विसूचिकाम् ॥ १११ ॥ विसूच्यामतिवृद्धायां तक्रं दधिसमं जलम् ॥ नारिकेलाम्बु पेयं वा प्राणत्राणाय योजयेत् ॥ ॥ ११२ ॥ त्वक्पत्रकैरण्डकशिग्रुकुष्ठैरम्लप्रपिष्टैःसवचाशताह्वैः ॥ उद्वर्तनं खल्विविसूचिकाघ्नं तैलं विपकश्च तदर्थकारि ॥ ॥ ११३ ॥ कुष्ठसैन्धवयोः कल्कं चुक्रं तैले तु साधितम् ॥ विसूच्यां मर्दनं तेन खल्वी शूलनिवारणम् ॥ ११४ ॥ पिपासायां तथोत्क्लेशे लवंगस्याम्बु शस्यते ॥ जातीफलस्य वा पीतं श्रृतं भद्रघनस्य वा ॥ ११५ ॥

चिरचिटेको जलमें घोटकर पीनेसे विसूचिकाका शूल दूर होताहै।

करेलेके रसमे तेल मिलाकर पीनेसे विसूचिका नष्ट होतीहै।

छोटी मूलीके क्वाथमे पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे विसूचिका नष्ट होतीहै और जठराग्नि दीपन होतीहै।

वेलगिरी और सोंठका क्वाथ बनाकर पीनेसे वमन और विसूचिका दूर होतीहै। बेलगिरी, सोंठ और जायफल, इनका क्वाथ ऊपरके क्वाथसे अधिक गुणोंवाला है। सोंठ, मिर्च, पीपल, करजके फल, हलदी, दारुहलदी और बिजौरे नींबूकी जड, इन सबको एकत्र पीसकर गोली बनाकर छायामे सुखादेवै, इस गोलीको नेत्रोमें आँजनेसे विसूचिका नष्ट होजातीहै, यह हमने अपने आप अनुभव कियाहै।

चिराचिटेके पत्ते और काली मिरच समान भाग लेकर घोडेकी लारमे पीसकर नेत्रोमे आँजनेसे विसूचिका नष्ट होजातीहै।

विसूचिका अत्यंत वढगई होय तो उसकी प्राणरक्षाके लिये दही छाछमे बराबरका जल मिलाकर अथवा नारियलका जल मिलाकर पिलावै।

दालचीनी, तेजपात, अड, सैंजिना, कूठ, वच और सोया, इनको नींबूके रसमे पीसकर शरीरमें लगानेसे खल्वी और विसूचिका नष्ट होजातीहै और इन्ही पदार्थोंके द्वारा तेलको पकाकर लेप करनेसे भी खल्वी तथा विसूचिका नष्ट होजातीहै।

कूठ और सैंधानिमक इनका कल्क बनाकर चूकेके रसमे तेलको सिद्ध करै, इस तेलका मर्दन (मालिश) करनेसे खल्वी और विसूचिका (हैजा) एव शूल नष्ट होजाताहै।

जो विसूचिकामें तृषा होय तो अथवा उत्क्लेश होय तो लोंगका पानी पिलावै, अथवा जायफलका क्वाथ पिलावै, किवा भद्रमोथेका क्वाथ पिलावै ॥ १०७-११५ ॥

अथोत्क्लेशलक्षणम्।

उत्क्लिश्यान्नश्च निर्गच्छेत्प्रसेकष्ठीवनेरितम् ॥ हृदयं पीड्यते चास्य तमुत्क्लेशं विनिर्दिशेत् ॥ ११६ ॥

जिस मनुष्यको उबकाई आवै और अन्न न निकलै और मुखसे पानी बहै वा थूकनेके साथ उत्क्लेशित हो, अन्न न निकलै और हृदयमें पीडा होने लगे उसको उत्क्लेशरोग कहतेहैं ॥ ११६ ॥

अथ दारुषट्कम्।

सरुग्वानद्धमुदरमम्लपिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिंगुसैन्धवैः॥ ११७॥

हैमवती श्वेतवचा ॥

तक्रेण युक्तं यवचूर्णमुष्णं सक्षारमार्तिं जठरे निहन्यात्। स्वेदो घटैर्वाप्यथ वाष्पपूर्णैरुष्णैस्तथान्यैरपि पिण्डतापैः॥ ११८॥

देवदारु, सफेद वच, कूट, सोंफ, हींग और सैंधानिमक इन सब औषधियोंको काजीमें पीसकर जिस मनुष्यके उदरमे पीडा होय अथवा पेट फूल गया हो उसपर लेप करना चाहिये ॥ ११७ ॥

जौंका आटा और जवाखार मिलाकर मठेमें पकावै, उसको गरम गरम लेकर उदरपर लेप करे, अथवा स्वेदन करै तो उदरकी पीडा शान्त होतीहै । बाफमें भरेहुए घटेके स्वेद लेनेसे अथवा अन्य उष्ण पदार्थोंके सेकनेसे उदरपीडाकी शान्ति होतीहै ॥ ११८ ॥

अथालसकविलम्बिकयोश्चिकित्सा।

विलम्बिकालसकयोरयमेव क्रियाक्रमः ॥ अत एव तयोरुक्तं पृथङ् नहि चिकित्सितम् ॥ ११९ ॥

जो चिकित्सा विशूचिकाकी कही है, वही चिकित्सा विलम्बिका और अलसक रोगमें करनी चाहिये, इसी लिये हमने उनकी अलग अलग औषधि नहीं लिखी ॥ ११९ ॥

अथ भस्मकरोगचिकित्सा।

तं भस्मकं गुरुस्निग्धसान्द्रमन्दहिमस्थिरैः॥ अन्नपानैर्नयेच्छान्तिं पित्तघ्नैश्च विरेचनैः ॥ ॥ १२० ॥ अत्युद्धताग्निशान्त्यै माहिषदधिदुग्धसर्पींषि ॥ संसेवेत यवागूं समपिष्टे पयसि सर्पिषा सिद्धाम् ॥ १२१ ॥ असकृत्पित्तहरणं पायसं प्रतिभोजनम् ॥ श्यामात्रिवृद्धिपक्वश्च पयो दद्याद्विरेचनम् ॥ १२२ ॥ यत्किञ्चिन्मधुरं मेध्यं श्लेष्मलं गुरु भोजनम् ॥ सर्वं तदत्यग्निहितं भुक्त्वा प्रस्वपनं दिवा ॥ १२३ ॥ सिततण्डुलसितकमलं छागक्षीरेण पायसं सिद्धम् ॥ भुक्त्वा च तेन पुरुषो दशदिवसात्तुच्छभोजनो भवति ॥ १२४ ॥

भारी, स्निग्ध, कठोर, मन्द, शीतल और स्थिर, इस प्रकारके गुणयुक्त अन्न तथा पानीसे और पित्तनाशक पदार्थ अथवा विरेचन (जुलाब) करानेसे भस्मक रोग शान्त होताहै । अत्यत बढीहुई जठराग्निको शमन करनेके लिये भैंसका दूध, दही और घृत परमोत्तम है । अथवा घृत और सहत मिलाकर यवागूका सेवन करनेसे भस्मक रोग शान्त होताहै । अथवा चावलोंका चूर्ण और दूध सम भाग लेकर घृतमें पाक करी हुई वस्तुका भोजन करै, अथवा सर्वत पित्तनाशक द्रव्योंका देना और खीर आदिका खाना अत्यन्त हितकारी है । काली निशोतको दूधमें पकाकर विरेचनके लिये पिलावै तो सर्व दुःखहारी है । मधुर पदार्थ पवित्र, कफकारी और भारी भोजन भस्माग्निवालेको परम हितकारी है और भोजन करनेके उपरान्त दिनमें सोना भी सुखसाधक है । सफेद चावल और सफेद कमलको बकरीके दूधमें खीर बनाकर खानेसे दशदिनमें अल्पभोजन करने लगेगा ॥ १२०–१२४ ॥

अथ द्रव्यविशेषाजीर्णे पाचनद्रव्यम्।

अलं पनसपाकाय फलं कन्दलसम्भवम्॥ कन्दलस्य तु पाकाय बुधैरपि घृतं हितम्॥ घृतस्य परिपाकाय जम्बीरस्य रसो हितः॥ ॥ १२५ ॥ नारिकेलफलतालबीजयोः पाचकं सपदि तण्डुलं विदुः ॥ क्षीरमेव सहकारपाचनं क्षारमज्जनि हरीतकी हिता ॥ १२६॥ मधूकमालूरनृपादनानां परूषखर्जूरकपित्थकानाम् ॥ पाकाय पेयं पिचुमन्दबीजं घृतेऽपि तक्रेऽपि तदेव पथ्यम् ॥ ॥ १२७ ॥ खर्जूरशृंगाटकयोः प्रशस्तं विश्वौषधं कुत्र च भद्रमुस्तम् ॥ यज्ञांगबोधिद्रुफलेषु शस्तं प्लक्षे तथा पर्युषितं प्रपीतम् ॥ १२८ ॥ तण्डुलेषु च पयः स्वस्थो दीपकन्तु चिपिटे कणायुतम् ॥ षष्टिका दधिजलेन जीर्यते कर्कटी च सुमनेषु जीर्यंति ॥ १२९ ॥

सुमनेषु गोधूमेषु जीर्यंति ॥

गोधूममाषहरिमन्थसतीनमुद्गपाको भवेज्झटिति मातुलुङ्गकेण ॥ खर्जूरिकाबिसकशेरुसितासु शस्तं शृंगाटके

मधुफलेष्वपि भद्रमुस्तम् ॥ १३० ॥

मातुलपुत्रकं धत्तूरफलम् ॥

कंगुश्यामाकनीवाराः कुलत्थाश्चाविलम्बितम् ॥ दध्नो जलेन जीर्यन्ति वैदलः काञ्जिकेन तु ॥ १३१ ॥ पिष्टान्नं शीतलं वारि कृशरां सैन्धवं पचेत् ॥ माषेण्डरीं निम्बुफलं पायसं मुद्गयूषकः ॥ १३२ ॥ वटो वेसवाराँल्लवङ्गेन फेनः समं पर्पटः शिग्रुबीजेन याति ॥ कणामूलतो लड्डुकापूपसट्टादिपाको भवेच्छष्कुलीमण्डयोश्च ॥ १३३ ॥

वेसवारो वगस इति लोके । तद्यथा—स्नेहो निशा हिंगुलवंगकैलाधान्याकजीरार्द्रकनागराणि ॥ अम्लोषणं सैन्धवचूर्णमन्ने यथोचितं संस्कृतये प्रणीतम् ॥ इति । सट्टा सट्टकपानविशेषः । मण्डं माण्डेति लोके ॥

किमत्र चित्रं बहुमत्स्यमांसभोजी सुखी काञ्जिकपानतः स्यात् ॥ इत्यद्भुतं केवलवह्निपक्वो मांसेन मत्स्यः परिपाकमेति ॥ ॥ १३४ ॥ आममाम्रफलं मत्स्यं तद्बीजं पिशिते हितम् ॥ कूर्ममांसं यवक्षारः शीघ्रं पाकमुपैति हि ॥ १३५ ॥ कपोतपारावतनीलकण्ठकपिञ्जलानां पिशितानि भुक्त्वा॥ काशस्य मूलं परिपिष्य पीतं सुखी भवेन्ना बहुशो हि दृष्टम् ॥ १३६ ॥

कपोतो धवलः पाण्डुः ॥

मांसानि सर्वाण्यपि यान्ति पाकं क्षारेण सद्यस्तिलनालजेन ॥ चञ्चूकसिद्धार्थकवास्तुकानां गायत्रिसारक्वथितेन पाकः ॥ १३७ ॥

चञ्चूकः चेंचू इति लोके । गायत्री खदिरः ॥

पालङ्किकाकेबुककारवल्लीवार्ताकुवंशाङ्कुरमूलकानाम् ॥ उपैति कालाम्बु पटोलकानां सिद्धार्थको मेघरवश्च पक्ता॥ १३८॥

मेघरवः चौरा इति लोके ॥

विपच्यते शूरणकं गुडेन तथालुकं तण्डुलधावनेन ॥ पिण्डालुकं जीर्यति कोरदूषात्कशेरुपाकः किल नागरेण ॥ १३९ ॥ लवणस्तण्डुलतोयात्सर्पिर्जम्बीरकाद्यम्लात् मरिचादपि तच्छीघ्रं पाकं यात्येव काञ्जिकात्तैलम् ॥ १४० ॥ क्षीरं जीर्यति तक्रेण तद्गव्यं कोष्णमण्डकात् ॥ माहिषं मणिमन्थेन शंखचूर्णेन तद्दधि ॥ १४१ ॥

मण्डकः मांड इति लोके ॥

रसालं जीर्यति व्योषात्खण्डं नागरभक्षणात् ॥ सिता नागरमुस्तेन तथेक्षुश्चार्द्रिकाद्रसात् ॥ १४२ ॥ जरामिरा गैरिकचन्दनाभ्यामभ्योति शीघ्रं मुनिभिः प्रदिष्टम् ॥ उष्णेन शीतं शिशिरेण चोष्णं जीर्णो भवेत्क्षारगणस्तथाम्लैः ॥ १४३ ॥

इरा मदिरा ॥

तप्तंतप्तं हेम वा तारमय्यौ तोये क्षिप्तं सप्तकृत्वस्तदम्भः ॥ पीत्वाजीर्णं तोयजातं निहन्यात्तत्र क्षौद्रं भद्रमुस्तं विशेषात् १४४॥

तत्र तोयाजीर्णे ॥

इति जठराग्निविकाराधिकारः ।

कटहरके अजीर्णमे केलेकी फली खानी उत्तम है और केलेके अजीर्णमें घृत खाना हितकारी है, घृतके अजीर्णमे जम्भीरी नींबूका रस श्रेष्ठ है, नारियल और तालके बीजोके परिपाकके लिये चावल अच्छे हैं, आमके पचानेके लिये दूध श्रेष्ठ है, चिरौंजीके पचानेको हरड ठीक है, महुआ, बेल, खिरनी, फालसे, खजूर और कैथ, इनके परिपाकके लिये नीमकी निबौलियोको घोटकर पीना परमोत्तम है, घी और मठेके अजीर्णमे भी नीमकी निबौलियोका रस फल-

दायक है, खजूर और सिंघाडोंके अजीर्णके लिये सोंठ और नागरमोथा भी किसी वैद्यने उत्तम लिखा है, गूलर, पीपल और पाखरके अजीर्णको जीर्ण करनेके लिये सोंठका वासी क्वाथ पीना परमोत्तम है, चावलोंके अजीर्णमें दूध पीना श्रेष्ठ है और दूधके अजीर्णमें अजवायन ही रसायन है, चावलोंके अजीर्णमें अजवायन और पीपल घोटकर पीनी गुणदायक है, साँठीके चावल दहीका पानी पीनेमे पच-जाते है और ककडियोंका अजीर्ण गेहूँसे पचताहै। गेहूँ, उडद, चने और मटरका अजीर्ण, धतूरेके खानेसे दूर होताहै। कगनी, समा, खजूर, कमलकी डंडी, कसेरु, सिता (मिश्री) सिवाडे और महुएके अजीर्णमें मोथेका क्वाथ हितकारी है । कगनी, समा, तथा कुलथीके अजीर्णमें दहीका पानी पीना श्रेष्ठ है और दालवाली वस्तुके अजीर्ण को काँजी दूर करती है। पिठीके पदार्थों (कचौरी, पकौरी दही वडे और वडी आदि) का अजीर्ण शीतल जलसे दूर होताहै और खिचडीका अजीर्ण सेंधानिमक पचाताहै । माषेण्डरी (अमृती) को नींबूका रस, खीरको मूगका यूष फलदायक है । वडेका अजीर्ण वेसवार (तैलादिक स्नेह, हलदी, हींग, लौंग, मिरच, इलायची, जीरा, धनिया, अदरख, सोंठ, खटाई और सैंधानिमक, ये सम्पूर्ण वस्तु यथायोग्य अन्नादिकके सुधारनेके लिये डाली जाय उसको वेसवार कहते हैं) से पचताहै । लौंगसे फेनीका अजीर्ण पचताहै, पापडके अजीर्णको भुंजनेके बीज दूर करते हैं, लड्डू—मालपुए—और सट्टक (पन्नाविशेष) आ-दिको पीपलामूल पचाताहै और पूरी माडसे पचती है, छलियोंका खानेवाला काँजी पीनेसे सुख पाताहै, इसमें किंचित् मात्र भी आश्चर्य नहीं है, परन्तु यह बात महा-आश्चर्यकी है कि—केवल अग्निसे पकाई हुई मछलियें, मास खानेसे तुरन्त पचजाती हैं, कच्चे आमका फल मछलीके अजीर्णको दूर करै है। कछुएके मांसका अजीर्ण जवाखार-से बहुत शीघ्र पचताहै । कपोत (पाण्डुक), कबूतर, नीलकण्ठ और तीतर इनके मासका अजीर्ण काँसकी जड जडसे खोदेती है। मैंने बहुत वार विचार कर देखा कि, तिलकी नालका खार सम्पूर्ण मासोंके अजीर्णको पचाताहै चच्चू, सरसों और बथुएके शाकका अजीर्ण खैरसारके क्वाथ पीनेसे दूर होताहै, पालक, केवुक, करेला, बैंगन, बाँसका कल्ला, मूली, पोई, लौकी, चौलाई, और परवल इन सबका अजीर्ण सफेदसरसोंके शाक खानेसे शान्त होता है, गुडका अजीर्ण जमीकन्दसे दूर होता है । आलू चौंवलोंके धोवन-से ठीक पचते हैं, पिण्डालू कोदों जवके खानेसे शमन होताहै। कसेरूका अजीर्ण सोंठसे दूर होताहै, नमकका अजीर्ण चावलोंके पानीसे, घी जम्भीरी नींबूके रससे अथवा काली मिर्चसे बहुत शीघ्र शान्त होताहै । और तेलका परिपाक काँजीसे होताहै, दूधका अजीर्ण मट्ठेसे, गौका घी उष्ण माठसे, भैंसका दूध सेंधे नमकसे, और भैंसका दही शंखके चूर्णसे पचताहै। पेठेका अजीर्ण त्रिकुटेसे, सोंठ सोंठके चूर्णसे, चीनी, सोंठ और मोथेसे, और ईखका रस अदरखके रससे पचताहै। मदिरा (शराब), गन्ध और चन्दनको घोटकर पीनेसे, शीतल वस्तुका अजीर्ण गरम वस्तुके खानेसे पचताहै, उष्ण पदार्थ, शीतल पदार्थोंसे; और नमकीन पदार्थ खटाई इत्यादिसे क्षीण होतेहैं, जिस प्राणीको पानीका अजीर्ण होजाय तो सोनेको अथवा चांदी-को बारबार अग्निमें तपाकर पानीमें बुझावे, इसीप्रकार सातबारका बुझाया हुआ पानी पिये तो पानीका अजीर्ण शान्त होताहै और जो गरम पानीसे अजीर्ण होय तो उसके लिये महूत और नागरमोथा विशेष करके परमो-त्तम है ॥ १२५ ॥ १४८ ॥

इति जठराग्निविकाराधिकारः समाप्तः।

अथ कृमिरोगाधिकारः ।

तत्र कृमिभेदाः ।

क्रिमयस्तु द्विधा प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तर-भेदतः ॥

बाहर और भीतरके भेदोंसे कृमि (कीडे) दो प्रकार-के हैं ॥

कृमिनिदानम् ।

बहिर्मलकफासृग्विड्जन्मभेदाच्चतुर्विधाः॥ नामतो विंशतिविधा बाह्यास्तत्र मलो-द्भवाः ॥ १ ॥

तत्र तेषु बाह्याः क्रिमयः मलोद्भवाः । त्वग्लमबहिर्मलस्वेदसंभवाः ॥

बाहरके मल (प्रस्वेदादि), कफ, रुधिर और विष्ठा, इनसे शरीरमें कृमि (कीडे उत्पन्न होते हैं इन कारणोंके भेदसे बाहरके कृमिरोग चार प्रकारके

हैं और नामभेदसे वीस प्रकारके होतेहैं, उनमेंसे मल अर्थात् पसीनेसे उत्पन्न हुए क्रमि वाहरी कहलाते है ॥ १ ॥

अथ बाह्यक्रमिरूपम्।

तिलप्रमाणसंस्थानवर्णाः केशाम्बराश्रयाः॥ बहुपादाश्च सूक्ष्माश्च यूकालिक्षाश्च नामतः॥ २ ॥

तिलानामिव परिणाहावयवसन्निवेशवर्णा येषां ते, द्विधा तत्र यूका बहुपादाः कृष्णाः केशाश्रयाः लिक्षाः सूक्ष्माः श्वेता वस्त्राश्रयाः ॥

बाह्यक्रमि तिलकी समान प्रमाणवाले, तिलकी आकृति और तिलके वर्णवाले होतेहैं। यह क्रमि अधिक पाँवोवाले और सूक्ष्म होतेहैं, उनमे कितनी जूँ और कितनी लीखें होतीहैं, तथा केश और वस्त्रोंके आश्रयसे रहतीहैं ॥ (इनमे जो काले और वहुत पाँववाले क्रमि होतेहैं उनको जूँ कहतेहैं, और सूक्ष्म सफेद वर्णवाले होतेहैं उनको लीख कहतेहैं) ॥ २ ॥

अथ बाह्यक्रमिविकारः।

द्विधा ते कोठपिटिकाः कण्डूगण्डान्प्रकुर्वते॥

वह दोनो प्रकारकी क्रमि कोट (गाठ), पिटिका (फुसी), खुजली और गलगण्ड रोगोंको उत्पन्न करैहै ॥

अथान्तःक्रमिविप्रकृष्टनिदानम्।

अजीर्णभोजी मधुराम्लसेवी द्रवप्रियः पिष्टगुडोपभोक्ता ॥ व्यायामवर्जी च दिवाशयी च विरुद्धभोजी लभते क्रिमींश्च ॥ ३ ॥

अजीर्णमें भोजन करना, मधुर तथा खट्टे पदार्थोंका सेवन, द्रव (पतले) पदार्थोंपर रुचि, पिष्ट (पिसे हुए) तथा गुडसे बने पदार्थोंका भोजन, व्यायाम (परिश्रम) नही करना, दिनमें सोना और विरुद्ध पदार्थोंका भोजन करना इनसे भीतरके क्रमि उत्पन्न होतेहैं ॥ ३ ॥

अथ जातक्रमिलक्षणम्।

ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगः सदनं भ्रमः ॥ भुक्तद्वेषोऽतिसारश्च सञ्जातक्रिमिलक्षणम् ॥ ४ ॥

ज्वर, वर्णका विगडना, शूल, हृदयमें पीडा, ग्लानि, भ्रम, भोजनसे द्वेष और अतीसार (दस्तोंका होना) इन लक्षणोंसे शरीरके भीतर क्रमि उत्पन्नहुए जानना ॥ ४ ॥

अथ कफोत्पन्नक्रिमिविप्रकृष्टनिदानम्।

मांसमाषगुडक्षीरदधिशुक्तैः कफोद्भवाः ॥५॥ शुक्तं कालान्तरेण अम्लीभूत इक्षुरसविकारः ॥

कफसम्बन्धी क्रमि—मांस, माष (उडद), गुड, दूध, दही और शिरका, इनके विकारोंसे होतेहैं ॥ ५ ॥

अथ कफजक्रिमिसम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणम्।

कफादामाशये जाता वृद्धाः सर्पन्ति सर्वतः ॥ पृथुब्रध्ननिभाः केचित्केचिद्गण्डूपदोपमाः ॥ ६ ॥ रूढधान्यांकुराकारास्तनुदीर्घास्तथाणवः ॥ श्वेतास्ताम्रावभासाश्च नामतः सप्तधा तु ते ॥ ७ ॥ अन्त्रादा उदरावेष्टा हृदयादा महागुहाः॥ चुरवो दर्भकुसुमाः सुगन्धास्ते च कुर्वते ॥ ८ ॥ हृल्लासमास्यस्रवणमविपाकमरोचकम् ॥ मूर्च्छाच्छर्दिज्वरानाहकासक्षवथुपीनसान् ॥ ९ ॥

ब्रध्नश्चर्मलता । रूढोऽङ्कुरितः । तनवः परिणाहेन तथा दीर्घास्तनुदीर्घाः। चुरवश्चुरवनामानः । तत्कर्तव्यविकारा हृल्लासादयः ॥

कफसे आमाशयमें उत्पन्नहुए क्रमि वृद्धिको प्राप्त होकर चारों ओर विचरतेहैं, इनमें कितने एक मोटे चर्मलताकी समान, कितने एक गेंडुए (केचुए) की समान, कितने एक धान्यके उत्पन्न हुए अंकुरके सदृश, कितने एक सूक्ष्म लंबे तथा वारीक होतेहै, यह क्रमि—सफेद और लाल वर्णवाले होतेहैं। अन्त्राद, उदरावेष्ट, हृदयाद, महागुह, चुरव, दर्भकुसुम और सुगन्ध, इन नामोंसे ये क्रमि सात प्रकारके हैं। कफसे क्रमि हुए होय तो

हृल्लास, मुखसे लारका गिरना, खायेहुए अन्नका न पचना, अरुचि, मूर्च्छा, वमन, ज्वर, अफारा, खाँसी, छींक और पीनस ये रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ ६-९ ॥

अथ रक्तोत्पन्नकृमिलक्षणम् ।

रक्तवाहिशिरास्थाना रक्तजा जन्तवोऽणवः ॥ अपादा वृत्ताम्राश्च सौक्ष्म्यात्केचिददर्शनाः ॥ १० ॥ केशादा लोमविध्वंसा रोमद्वीपा उदुम्बराः ॥ षट् ते कुष्ठैककर्माणः सहसौरसमातरः ॥ ११ ॥

सौरसमातृभ्यां सह वर्तत इति सहसौरसमातरः ॥

रुधिरसे उत्पन्न हुए कृमि–रुधिरको बहानेवाली शिराओंमें रहतेहैं । सूक्ष्म, बहुत पाँवोंवाले, गोल तथा लाल होतेहैं और सूक्ष्मताके कारण कितने एक नहीं भी दीखते । केशाद, लोमविध्वस, रोमद्वीप, उदुंबर, सौरस और मातर, इन नामोंसे ये कृमि छह प्रकारके हैं, इन कृमियोंसे कोढ उत्पन्न होताहै ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ पुरीषजक्रिमिलक्षणम् ।

पक्वाशये पुरीषोत्था जायन्तेऽधोविसर्पिणः ॥ वृद्धास्ते स्युर्भवेयुश्च ते यदामाशयोन्मुखाः ॥ १२ ॥ तदास्योद्गारनिःश्वासा विड्गन्धानुविधायिनः ॥ पृथुवृत्ततनुस्थूलाः श्यावपीतसितासिताः ॥ ॥ १३ ॥ ते पञ्च नाम्ना क्रिमयः ककेरुकमकेरुकाः ॥ सौसुरादा मलूनाख्या लेलिहा जनयन्ति च ॥ १४ ॥ विड्भेदशूलविष्टम्भकार्श्यपारुष्यपाण्डुताः ॥ रोमहर्षाग्निसदनगुदकण्डूर्विमार्गगाः ॥ १५ ॥

वृद्धास्तेऽधोविसर्पिणः स्युः यदा ते आमाशयोन्मुखा भवेयुरित्यन्वयः । ते विमार्गगाः सन्तो विड्भेदादीन् जनयन्तीत्यर्थः ॥

विष्ठासे उत्पन्न हुए कृमि पक्वाशयमें होतेहैं ये कृमि नीचेको चलतेहैं, जब वृद्धिको प्राप्त होतेहैं तब आमाशयमें विचरतेहैं, फिर डकार और श्वास लेनेमें मलकीसी गन्ध आतीहै । ये बडे, गोल, सूक्ष्म, मोटे, श्याम काले, पीले, सफेद और अत्यंत काले भी होतेहैं। ककेरुक, मकेरुक, सौसुराद, मलून और लेलिह, इन नामोंसे ये कृमि पांच प्रकारके हैं । जब ये कृमि उलटे मार्गमें गमन करतेहैं तब दस्त, शूल, मलबंध, कृशता, कठोरता, पीलापन, रोमांच, मंदाग्नि और गुदामें खुजली, ये सब उपद्रव होतेहैं ॥ १२-१५ ॥

अथ क्रिमिचिकित्सा ।

विडङ्गव्योषसंयुक्तमन्नमण्डं पिबेन्नरः ॥ दीपनं क्रिमिनाशाय जठराग्निविवृद्धये ॥ ॥ १६ ॥ प्रत्यहं कटुकं तिक्तं भोजनं कफनाशनम् ॥ क्रिमीणां नाशनं रुच्यमग्निसन्दीपनं परम् ॥ १७ ॥ विडंगशृतपानीयं विडंगेनावधूलितम् ॥ पीतं क्रिमिहरं दृष्टं क्रिमिजांश्च गदाञ्जयेत् ॥ १८ ॥ लिह्याद्विडङ्गचूर्णं वा मधुना क्रिमिनाशनम् ॥ पलाशबीजस्य रसं पिबेन्माक्षिकसंयुतम् ॥ १९ ॥ पिबेत्तद्बीजकल्कं वा मधुना क्रिमिनाशनम् ॥ ॥ २० ॥ कम्पिल्लचूर्णकर्षार्द्धं गुडेन सह भक्षितम् ॥ पातयेत्तत्क्रिमीन्सर्वानुदरस्थान्न संशयः ॥ २१ ॥ विडंगं कौटजं बीजं तथा बीजं पलाशजम् ॥ सञ्चूर्ण्य खादेत्खण्डेन क्रिमीन्नाशयितुं नरः ॥२२॥ निम्बपत्रसमुद्भूतं रसं क्षौद्रयुतं पिबेत् ॥ धत्तूरपत्रजं वापि क्रिमिनाशनमुत्तमम् ॥ ॥ २३ ॥ रसेन्द्रेण समायुक्तो रसो धत्तूरपत्रजः ॥ ताम्बूलपत्रजो वापि लेपो यूकाविनाशनः ॥ धत्तूरपत्रकल्केन तद्रसेनैव पाचितम् ॥ २४ ॥ तैलमभ्यंगमात्रेण यूका नाशयति क्षणात् ॥ क्रिमीणां विट्कफोत्थानामेतदुक्तं चिकित्सितम् ·

रक्तजानान्तु संहारं कुर्यात्कुष्ठचिकित्सया ॥ २५ ॥

वायविडग, सोठ, मिर्च और पीपल, इनका चूर्ण माडमे मिलाकर पिये तो अग्निदीपन होतीहै और पेटके कीडे नष्ट होतेहैं । सदैव चरपरा और कडवा भोजन करना—कफ तथा कृमियोका नाशक है, रुचिको उत्पन्न करनेवाला है और जठराग्निको अत्यन्त दीपन करैहै ॥ वायविडगका क्वाथ करके फिर उसमे और वायविडगका चूर्ण डालकर पियै तो कृमियोका नाश होताहै और क्रिमियोंसे उत्पन्न हुए रोगोका भी नाश होताहै । वायविडंगका चूर्ण सहतमे मिलाकर चाटै तो कृमि दूर होतेहैं ॥ ढाकके वीजोके रसमे सहत मिलाकर पियै, अथवा ढाकके वीजोका कल्क बनाकर सहत डालकै पिये तो कृमि नष्ट होतेहैं । आधा तोला कवीलेका चूर्ण गुडके साथ खाय तो उससे उदरमें रहनेवाले सम्पूर्ण कृमि निःसदेह निकलजातेहैं । वायविडग, इन्द्रजौ और ढाकके वीज, इनका महीन चूर्णकरके खाडके साथ खाय तो इससे कृमि नष्ट होतेहैं । नींबूके अथवा धतूरेके पत्तोका रस सहतके साथ पियै तो उससे सब प्रकारके कृमि दूर होतेहैं । धतूरेके पत्तोके रसमे अथवा पानोके रसमें पारा संयुक्त करके लेपकरै तो उससे यूक (जूॅ लीख) नष्ट होतीहै । धतूरेके पत्तोके कल्कसे अथवा धतूरेके पत्तोंके रससे पकाये हुए तेलका अभ्यग (मालिस) करै तो क्षणमात्रमे जुँओका नाश होताहै । विष्ठासे तथा कफसे उत्पन्न हुए कृमियोकी तथा यूकनामक कृमियोकी ये चिकित्सा कही, परन्तु रुधिरसे उत्पन्न हुए कृमियोको नष्ट करना होय तो कुष्ठकी सदृश चिकित्सा करै ॥ १६–२५ ॥

अथ क्रिमिरोगिणोऽपथ्यानि ।

क्षीराणि मांसानि घृतानि चापि दधीनि शाकानि च पर्णवन्ति ॥ अम्लश्च मिष्टश्च रसं विशेषात्क्रिमीञ्जिघांसुः परिवर्जयेद्धि॥२६

कृमियोको नष्ट करनेकी इच्छा करनेवाला मनुष्य दूध, मास, घी, दही, पत्तोंवाला चने आदिका शाक और विशेष करके खट्टे मीठे रस, इनका त्याग करै ॥ २६ ॥

इति कृमिरोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

पाण्डुरोगकामलाहलीमकाधिकारः ।

तत्र पाण्डुरोगसंख्यापूर्वकसन्निकृष्टनिदानम् ।

पाण्डुरोगाः स्मृताः पंच वातपित्तकफैस्त्रयः ॥ चतुर्थः सन्निपातेन पंचमो भक्षणान्मृदः ॥ १ ॥

पंचमो भक्षणान्मृद इति—ननु मृत्तिकापि दूषितदोषद्वारेणैव पाण्डुरोगं जनयतीति मृद्भक्षणजः पाण्डुरोगो दोषजादभिन्न एव कथं पंचम इति? उच्यते—अपरकारणकुपिता वातादयोऽन्यानपि रोगान्कुर्वन्ति, मृत्तिकाभक्षणात्कुपितास्तु वातादयो विशेषतः पाण्डुरोगमेव जनयन्त्येवेति विशेषः चिकित्साविशेषाच्च पंचमः चरकेणोक्तः । तच्चिकित्सा अपरकारणकुपितदोषजनितपाण्डुरोगचिकित्सा भवतीति सुश्रुतेन मृत्तिकाजः पृथङ्न पठितः ॥

वायुसे, पित्तसे, कफसे, सन्निपातसे अर्थात् तीनो दोषोसे और मट्टीके खानेसे उत्पन्न हुआ, इसप्रकार पाण्डुरोग पाच प्रकारका है ॥ १ ॥

शंका—मट्टी भी स्वयं दूषित हुए दोषद्वारा पाण्डुरोगको उत्पन्न करैहै, इसकारण मट्टीके भक्षणसे उत्पन्न हुआ पाण्डुरोग दोषसे उत्पन्न हुए पाण्डुरोगसे पृथक् नहीं होता तो पाच प्रकारके पाण्डुरोग क्यो कहे ?

समाधान—अन्य कारणोंसे कुपित हुए वातादि दोष अन्यरोगोंको भी उत्पन्न करैहैं, परन्तु मट्टीके भक्षणसे कुपित हुए होयँ तो विशेष करके पाण्डुरोगको ही उत्पन्न करतेहैं, इसकारण मट्टीके भक्षणसे उत्पन्न हुए पाण्डुरोगकी चिकित्सा भी भिन्न प्रकारकी है, इसीसे चरक मुनिने मट्टीके भक्षणसे उत्पन्न हुए पाण्डुरोगको पाचवाॅ कहा है और सुश्रुतने 'मट्टीके भक्षणसे हुए पाण्डुरोगकी चिकित्सा अन्यकारणों द्वारा कुपित हुए दोषोंसे उत्पन्न हुए पाण्डुरोगकी चिकित्सा करनेसे होजातीहै' ऐसा जानकर मट्टीके भ[illegible]त्पन्न हुए पाण्डुरोगको पृथक् नहीं कहा ।

अथ पाण्डुरोगविप्रकृष्टनिदानपूर्वकसंप्राप्तिः ।

व्यवायमम्लं लवणानि मद्यं मृदं दिवास्वप्नमतीव तीक्ष्णम् ॥ निषेव्यमाणस्य विदूष्य रक्तं दोषास्त्वचं पाण्डुरतां नयन्ति ॥ २ ॥

तीक्ष्णं राजिकादि ॥

अत्यन्त मैथुनसे, खट्टे तथा नमकीन पदार्थोंसे, मद्य (शराब) से, मट्टी खानेसे, दिनमें सोनेसे और अत्यन्त तीक्ष्ण राई आदि पदार्थोंका सेवन करनेसे मनुष्योंका रुधिर दूषित होकर वातादिदोष त्वचाको पाण्डुवर्ण करदेतेहैं ॥ २ ॥

अथ पाण्डुरोगपूर्वरूपम् ।

त्वक्स्फोटनिष्ठीवनगात्रसादमृद्भक्षणप्रेक्षणकूटशोथाः ॥ विण्मूत्रपीतत्वमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥ ३ ॥

प्रेक्षणकूटशोथः अक्षिगोलकशोथः ॥

पाण्डुरोगका आरम्भ होनेसे प्रथमही त्वचाका फटना, थूकना, शरीरमें ग्लानि, मट्टीके खानेकी इच्छा, नेत्रोंके गोलोंपर सूजन, विष्ठा तथा मूत्रका पीला होना और अन्नका न पचना, ये लक्षण प्रथमसे ही होतेहैं ॥ ३ ॥

अथ वातोत्पन्नपाण्डुरोगलक्षणम् ।

त्वङ्मूत्रनयनादीनां रूक्षकृष्णारुणाभता ॥ वातपाण्ड्वामये कम्पस्तोदानाहभ्रमादयः ॥ ४ ॥

कृष्णारुणाभता पाण्डुत्वं न अतिक्रामति अत एव सुश्रुते–"सर्वेषु चैतेष्वपि पाण्डुभावो यतोऽधिकोऽतः खलु पाण्डुरोगः"इति । भ्रमादय इति आदिशब्दाद्भेदशूलादयः ॥

वायुसे उत्पन्न हुए पाण्डु रोगमें त्वचा (चमडी), मूत्र तथा नेत्रादि रूखे, काले और लाली लिये होतेहैं, कंप, अगोंमें पीडा, अफारा और भ्रमादिक (भेदन और शूलादिक) होतेहैं । त्वचा आदिमें 'काला और लाल' जो मिश्रित रंग होताहै वह विना पीलेपनके नहीं होता, क्योंकि सुश्रुतमें कहा है कि–"पाण्डुरोगके सब भेदोंमें पाण्डुता (पीलापन) अधिक होताहै इसीलिये ही इस रोगको पाण्डुरोग कहतेहैं" ॥ ४ ॥

अथ पित्तोत्पन्नपाण्डुरोगलक्षणम् ।

पीतत्वङ्नखविण्मूत्रो दाहतृष्णाज्वरान्वितः ॥ भिन्नविट्कोऽतिपीताभः पित्तपाण्ड्वामये नरः ॥ ५ ॥

भिन्नविट्कः सद्रवमलः ॥

पित्तसे पाण्डुरोग हुआ होय तो मनुष्योंकी त्वचा, नख, विष्ठा तथा मूत्र, पीले होजातेहैं । दाह, तृषा, ज्वर, विष्ठा पतला और शरीरकी कान्ति अत्यन्त पीली पडजातीहै ॥ ५ ॥

अथ कफोत्पन्नपाण्डुरोगलक्षणम् ।

कफप्रसेकः श्वयथुस्तन्द्रालस्यातिगौरवैः ॥ पाण्डुरोगी कफाच्छुक्लैस्त्वङ्मूत्रनयनाननैः ॥ ६ ॥

अत्रोपलक्षणे तृतीया ॥

कफसे पाण्डुरोग हुआ होय तो थूकनेमें कफका आना, सूजन, तन्द्रा, आलस्य, तथा अत्यंत भारीपन होताहै और त्वचा, मूत्र, नेत्र तथा मुख, ये सफेद होजातेहैं ॥ ६ ॥

अथ सन्निपातोत्पन्नपाण्डुरोगलक्षणम् ।

सर्वान्नसेविनः सर्वे दुष्टा दोषास्त्रिदोषजम् ॥ त्रिदोषलिंगं कुर्वन्ति पाण्डुरोगं सुदुःसहम् ॥ ७ ॥

सम्पूर्ण अन्नोंके सेवन करनेवाले मनुष्यके दूषित हुए तीनों दोषोंसे उपरोक्त तीनों दोषोंके लक्षणोंवाला अत्यन्त असह्य पाण्डुरोग होताहै ॥ ७ ॥

अथ मृद्भक्षणजनितपाण्डुरोगसंप्राप्तिः ।

मृत्तिकादनशीलस्य कुप्यत्यन्यतमो मलः ॥ कषाया मारुतं पित्तमूषरा मधुरा कफम् ॥ ८ ॥ कोपयेन्मृद्रसादींश्च रौक्ष्याद्भुक्तञ्च रूक्षयेत् ॥ पूरयत्यविपक्वैव स्रोतांसि निरुणद्ध्यपि ॥ ९ ॥

इन्द्रियाणां बलं हत्वा तेजो वीर्यौजसी तथा ॥ पाण्डुरोगं करोत्याशु बलवर्णाग्निनाशनम् ॥ १० ॥

स्रोतांसि शिरामुखानि। तेजो दीप्तिः। ओजः सर्वधातुरसः ॥

जिस मनुष्यको मट्टी खानेका अभ्यास होय, उसके तीनो दोषोंमेसे एक कुपित होता है। कसैली मट्टीसे वायु कुपित होताहै, खारी मट्टीसे पित्त कुपित होताहै और मीठी मट्टीसे कफ कुपित होताहै। ये मट्टी—अपनी रूक्षतासे रसादिकको तथा खाये हुए अन्नको रूक्ष करैहैं तब ये कच्चेही रस सम्पूर्ण शरीरकी नसोंके स्रोतोंको भरके रोक देतीहै और सम्पूर्ण इन्द्रियोंका बल, तेज वीर्य तथा ओज (सब धातुओंका रस) का विनाश करके तुरत ही बल वर्ण और जठराग्निके मन्द करनेवाले पाण्डुरोगको उत्पन्न करैहैं ॥ ८–१० ॥

अथ मृद्भक्षणोत्पन्नपाण्डुरोगलक्षणम्।

मृद्भक्षणाद्भवेत्पाण्डुस्तन्द्रालस्यनिपीडितः॥ सकासश्वासशूलार्तः सदाऽरुचिसमन्वितः॥ ॥ ११ ॥ शूनाक्षिकूटगण्डभ्रूः शूनपान्नाभिमेहनः ॥ कृमिकोष्ठोऽतिसार्येत मलं सासृक्कफान्वितम् ॥ १२ ॥

क्रिमिकोष्ठः उदराभ्यन्तरस्थकृमिर्भवेदित्यनेन सम्बध्यते। अतिसार्येत मलमिति कर्मकर्तृ तत्कर्मवन्मन्तव्यम्। तस्मिन्कर्मण्यर्थेऽत्र लिङ् प्रत्ययः ॥

मट्टी खानेसे पाण्डुरोगवालेके लक्षण, तन्द्रा, आलस्य-खाँसी, श्वास, शूल और अरुचि बनी रहतीहै पेटमें कीडे रहतेहै, जिसकी आँखोके गोलक, कपोल, भ्रकुटी, पाँव, नाभि और लिंगपर सूजन होतीहै और कफ सयुक्त अनेक दस्त आतेहैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

अथ पाण्डुरोगिणोऽसाध्यलक्षणानि।

ज्वरारोचकहृल्लासच्छर्दितृष्णाक्लमान्वितः पाण्डुरोगी त्रिभिर्दोषैस्त्याज्यः क्षीणो हतेन्द्रियः॥ १३ ॥ पाण्डुरोगश्चिरोत्पन्नः खरीभूतो न सिध्यति ॥ कालप्रकर्षाच्छूनाङ्गो यो वा पीतानि पश्यति ॥ १४ ॥

खरीभूतः अतिरूक्षितसर्वधातुः ॥

बद्धाल्पविट् सहरितं सकफं योऽतिसार्यते ॥ दीनः श्वेदातिदिग्धाङ्गश्छर्दिमूर्च्छातृषान्वितः ॥ १५ ॥ पाण्डुदन्तनखो यस्तु पांडुनेत्रश्च यो भवेत् ॥ पाण्डुसंघातदर्शी च पाण्डुरोगी विनश्यति ॥ १६ ॥

पाण्डुसंघातदर्शी यः पीतवर्णस्य राशिं पश्यति ॥

अन्तेषु शूनं परिहीणमध्यं म्लानं तथान्तेषु च मध्यशूनम्॥गुदे मुखे शेफसि मुष्कयोश्च शूनं प्रताम्यन्तमसंज्ञकल्पम् ॥ विवर्जयेत्पाण्डुकिनं यशोऽर्थी तथातिसारज्वरपीडितश्च ॥ १७ ॥

अन्तेषु हस्तपादादिषु। म्लानं क्षीणम्। प्रताम्यन्तं ग्लानिं गच्छन्तम्। असंज्ञकल्पं मृतसदृशम् ॥

ज्वर, अरुचि, हृल्लास, छर्दि, तृषा, क्लम (ग्लानि) और इन्द्रियोंमें सामर्थ्य न रही हो, तथा त्रिदोषग्रसित हों, तो चतुर वैद्यको चाहिये कि—उस पाण्डुरोग वाले रोगीको त्यागदे। अथवा जो पाण्डुरोग बहुत पुराना हो और उसकी सम्पूर्ण धातुओंमें अत्यन्त रूखापन आगया हो और थोडे ही समयके उपरान्त पाण्डुरोगवाले मनुष्यके शरीरपर सूजन हो तथा उसको सब वस्तु पीली ही दिखाई देती हों तो उस रोगीका अच्छा होना कठिन है। अथवा जिस पाण्डुरोगवाले रोगीका बँधा हुआ मल हरे रग सयुक्त और अत्यत थोडा थोडा उतरै, दीनता आगई हो, पसीना बहुत आता हो और वमन, मूर्च्छा तथा तृषासे चित्त व्याकुल हो वह रोगी असाध्य है किसी प्रकार बच नही सक्ता। अथवा जिस पाण्डुरोगवाले प्राणीके दांत, नख और नेत्रोंमें पीलापन आगया हो और सब वस्तु पीली ही पीली दिखाई देवैं, वह रोगी अवश्य यमलोकको सिधारेगा। अथवा जिस पाण्डुरोगवालेके हाथ, पावोंपर सूजन आजाय और मध्य भागपर सूजन न आवै, अथवा उसके मध्यभागपर सूजन

आगया हो और हाथ पाँव सूजनरहित हों, तथा गुदा, मुख, लिंग और अंडकोषोंपर सूजन हो, चित्तपर ग्लानि हो, संज्ञा न रहकर मृतकके सदृश हो, अतीसार और ज्वरकी पीडा हो, ऐसे पाण्डुरोगीको यशस्वी वैद्य त्याग-देवें ॥ १३–१७ ॥

अथ पाण्डुरोगभेदकामलानिदान-पूर्वकसम्प्राप्तिः ।

पाण्डुरोगी तु योऽत्यर्थं पित्तलानि निषेवते॥तस्य पित्तमसृङ्मांसं दग्ध्वा रोगाय कल्पते ॥ १८ ॥

पित्तं कर्त्तृ, दग्ध्वा सन्दूष्य रोगाय कामलारूपाय ।पाण्डुरोगिण एव अतिशयितपित्तलसेवया कामला भवति नायं नियमः, किंतु कामला स्वतन्त्रापि भवति । यथा राजयक्ष्मा कासादुपेक्षिताद्भवति नायं नियमः, किन्तु राजयक्ष्मा स्वतन्त्रोऽपि भवति तद्वदेव॥

जो पाण्डुरोगवाले मनुष्य अधिक पित्तकारी पदार्थोंका अधिक सेवन करतेहैं उनका पित्त कोपको प्राप्त हो रुधिर और मांसको दूषित करके कामला रोगको उत्पन्न करता-है । ऐसा मत समझना कि,पाण्डुरोगवाले ही रोगीको पित्त-कारी पदार्थोंके खानेसे कामला रोग होताहै, यह कामला रोग आपसे आप भी होजाताहै । जैसे खाँसीका उपाय न करनेसे राजयक्ष्मा रोग होजाताहै ऐसा नियम नहीं है किन्तु राजयक्ष्मा आपसे आप भी उत्पन्न होजाताहै, इसी प्रकार कामलाका भेद समझना चाहिये ॥ १८ ॥

अथ कामलाक्षलणम् ।

हारिद्रनेत्रः सुभृशं हारिद्रत्वङ्नखाननः ॥ पीतरक्तशकृन्मूत्रो भेकवर्णो हतेन्द्रियः ॥ दाहाविपाकदौर्बल्यसदनारुचिकर्षितः॥१९॥

हारिद्रं हरिद्रावर्णम् । पीतरक्तशकृन्मूत्रः पीते रक्ते वा शकृन्मूत्रे यस्य सः । भेकवर्णः बृहद्भेकवर्णः ॥

कामलारोगमें रोगीके नेत्र, त्वक्, नख और मुखका रंग हलदीके सदृश पीले हों, मल, मूत्र पीला वा लाल हो बडे मेंडकके समान शरीरका वर्ण होजाय इन्द्रियें शक्ति हीन होजाय, हृदयमें दाह, भोजनका न पचना, शरीरका दुर्बल और शिथिल होजाना, अरुचि, यह लक्षण होजातेहैं ॥ १९ ॥

अथ कामलाभेदः ।

कामला बहुपित्तैषा कोष्ठशाखाश्रया मता ॥ एका कोष्ठाश्रया । अपरा शाखाश्रया ॥

अधिक पित्तवाला कामलारोग यह एक कोष्ठाश्रय होताहै और दूसरा शाखाश्रय होताहै ॥

अथ कोष्ठाश्रयकामलावर्णनम् ।

कालान्तरात्खरीभूता कृच्छ्रा स्यात्कुम्भकामला ॥ २० ॥

यह कामला रोग जब बहुत पुराना होजाताहै तब रूक्ष अर्थात् खरीभूत होकर जठराग्निको रोक लेताहै जैसे घटका मुख छोटा और पेट बडा होताहै इसी प्रकार रोगीका उदर समझना, कुम्भकी समान आकार कोष्ठके आश्रय जानना, इसीसे यह कुम्भकामला रोग कहलाताहै ॥ २० ॥

अथ कुम्भकामलारिष्टलक्षणम् ।

छर्द्यरोचकहृल्लासज्वरक्लमनिपीडितः ॥ नश्यति श्वासकासार्तो विड्भेदी कुम्भकामली ॥ २१ ॥

वमन, अरुचि, हृल्लास. (गूबीरद्द) ज्वर, क्लम, श्वास, खाँसी और मल फटाहुआपतला होताहै, जब कुम्भ-कामला रोगमें यह लक्षण होय तो वह रोगी शीघ्र ही यम-पुरमें वास करना चाहताहै ॥ २१ ॥

अथ कामलाद्यारिष्टम् ।

कृष्णपीतशकृन्मूत्रो भृशं शूनश्च मानवः॥ सरक्ताक्षिमुखच्छर्दिविण्मूत्रो यश्च ताम्यति ॥ २२ ॥ दाहारुचितृषानाहतन्द्रामोहसमन्वितः॥ नष्टाग्निसंज्ञः क्षिप्रं हि कामलावान्विपद्यते ॥ २३ ॥

जिस कामलावाले रोगीका मल मूत्र काला पीला मिलाहुआ हरे रंगका हो और लाल नेत्र तथा लाल वर्णही मुखका हो वमन भी लाल रंगकी हो, सब शरीरपर सूजन हो, कफ रक्त युक्त हो, चित्तमें ग्लानि रहै, दाह, अरुचि, अफारा, तन्द्रा, मोह, मन्दाग्नि और संज्ञा जाती रहै, ऐसा रोगी किसी प्रकार बच नहीं सक्ता ॥ २२॥ २३ ॥

अथ पाण्डुरोगभेदो हलीमकः।

यदा तु पाण्डोर्वर्णः स्याद्धरितश्यावपीतकः॥ बलोत्साहक्षयस्तन्द्रा मन्दाग्नित्वं मृदुज्वरः॥ २४॥ स्त्रीष्वहर्षोऽङ्गमर्दश्च श्वासतृष्णारुचिभ्रमाः॥ हलीमकं तदा तस्य विद्यादनिलपित्ततः॥ २५॥

पाण्डोः पाण्डुरोगिणः॥

जब पाण्डुरोगवालेके शरीरमे वात, पित्त बढजाताहै तब उसकी त्वचाका रग हरा, काला और पीला पडजाताहै, बल और उत्साहकी क्षीणता, तन्द्रा, मन्दाग्नि, कुछ थोडासा ज्वर, स्त्रीप्रसगमे अरुचि, अंग अगमे पीडा, श्वास तृषा, अरुचि और भ्रम होय तो हलीमक रोग समझना चाहिये, यह रोग वात पित्तसे प्रगट होता है॥ २४॥ २५॥

अथ पाण्डुरोगचिकित्सा।

सप्तरात्रं गवां मूत्रैर्भावितश्चायसो रजः॥ पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थं पयसा प्रपिबेन्नरः॥ ॥ २६॥ गोमूत्रसिद्धं मण्डूरचूर्णं सगुडमश्नतः॥ पाण्डुरोगः क्षयं याति पंक्तिशूलश्च दारुणम्॥ २७॥ अयोमलं सुसन्तप्तं भूयो गोमूत्रसाधितम्॥ मधुसर्पिर्युतं लीढ्वा पाण्डुरोगी सुखी भवेत्॥ २८॥

अथ पुनर्नवादिमंडूरः।

पुनर्नवा त्रिवृद्व्योषं विडङ्गं दारु चित्रकम्॥ कुष्ठं हरिद्रा त्रिफला दन्ती चव्यं कलिंगकम्॥ २९॥ कटुका पिप्पलीमूलं मुस्तं शृंगी च कारवी॥ यवानी कट्फलश्चेति पृथक्पलमितं समम्॥ ३०॥ मण्डूरं द्विगुणं चूर्णाद्गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत्॥ गुडेन वटकान्कृत्वा तक्रेणालोड्य तान्पिबेत्॥ ३१॥ पुनर्नवादिमण्डूरवटकोऽश्विविनिर्मितः॥ पाण्डुरोगं निहन्त्याशु कामलाश्च हलीमकम्॥ श्वासं कासश्च यक्ष्माणं ज्वरं शोथं तथोदरम्॥ ३२॥ शूलं प्लीहानमाध्मानमर्शांसि ग्रहणीक्रिमीन्॥ वातरक्तश्च कुष्ठश्च सेवनान्नाशयेद्ध्रुवम्॥ ३३॥

अत्र पुनर्नवादिमण्डूरम् २४। प्रत्येकपलम् १। लोहकिट्टचूर्णपलानि ४८। गोमूत्रपलानि १९२॥

लोहसारकी भस्मको सात दिनतक गोमूत्रमें भावना देकर फिर पीछे इसको दूधके साथ खाय तो पाण्डुरोग नष्ट होताहै। अथवा गोमूत्रसे बनाहुआ मण्डूर गुडमे मिलाकर खानेसे पाण्डुरोग और महाकठिन परिणामशूलका विनाश होताहै। अथवा मण्डूरको बारबार आगमे तपा तपाकर गोमूत्रमे बुझावे, जब भलेप्रकार भस्म होजाय तब घी और सहतमे मिलाकर चाटनेसे पाण्डुरोग नष्ट होताहै॥

पुनर्नवादि मण्डूर॥ पुनर्नवा, निसोत, सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडग, देवदारु, चीता, कूट, हलदी, हरड, बहेडा, आमला, दन्ती (जमालगोटेकी जड), चव्य, इन्द्रजौ, कुटकी, पीपलामूल, मोथा, काकडासिंगी, कालाजीरा, अजवायन और कायफल, ये सब औषधि एक एक पल लेकर चूर्ण करै और चूर्णसे दूना मण्डूर लेवे, फिर इनसे अठगुना गोमूत्र लेकर उसमें पचावे, फिर उसमे गुड डालकर गोली बनावे, उन गोलियोंको छाँछमें घोलकर पिये, यह पुनर्नवादिमण्डूर अश्विनीकुमारने बनाया है, यह पाण्डुरोग, कामला, हलीमक, श्वास, खाँसी, राजयक्ष्मा, ज्वर, सूजन, उदरशूल, प्लीहा, अफारा, बवासीर, सग्रहणी, कृमिरोग, वातरक्त और कुष्ठका नाशक होता है॥ २६–३३॥

अथ नवायसचूर्णम्।

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं विडंगं चित्रकं तथा॥ एतानि नवभागानि नवभागा हतायसः॥ एकदैकीकृतं चूर्णं नरोऽष्टादशरत्तिकम्॥ ३४॥ प्रलिह्यान्मधुसर्पिर्भ्यां पिबेत्तक्रेण वा सह॥ गोमूत्रेण पिबेद्वापि पाण्डुरोगं विनाशयेत्॥ ३५॥ शोथं हृद्रोगमुदरक्रिमिकुष्ठं भगन्दरम्॥ नाशयेदग्निमान्द्यश्च दुर्नामकमरोचकम्॥ ॥ ३६॥ आर्द्रकस्य रसेनापि लिह्यात्कफसमृद्धिमान्॥ ३७॥

अत्र नवायसलोहं नवरत्तिकापरिमितं भक्षणीयम् । यतः उक्तं रसप्रदीपे-

गुञ्जामेकां समारभ्य यावत्स्युर्नवरत्तिकाः ॥ तावल्लोहं समश्नीयाद्यथादोषानलं नरः ॥ ३८ ॥

एवं सति प्रथमदिने त्र्यूषणादिसहितं रत्तिकाद्वयमितं प्रतिदिनं रत्तिकाद्वयंद्वयं वर्द्धयेत् । यावत् त्र्यूषणादिसहिता दश रत्तिकाः स्युः । ततस्ताः प्रतिदिनं खादेत् । इति नवायसं चूर्णम् ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमले, नागरमोथा, वायविडंग और चीता ये सब औषधि एक एक तोला और लोहभस्म नौ ९ तोले, सबको पीसकर एकत्र करले इसमेंसे अठारह १८ रत्ती, घी और सहतमें मिलाकर चाटै, वा छाँछके साथ अथवा गोमूत्रके साथ पिये इसके खानेकी यह रीति है, पहिले दिन दो रत्ती खाय, दूसरे दिन चार ४ रत्ती खाय, तीसरे दिन छः रत्ती, इस प्रकार नित्य प्रति दो दो २ रत्ती अधिक करै, जिसमें चूर्णके साथ मिलाकर अठारह १८ रत्ती पूरी होजावे, रसप्रदीपमें इसका प्रमाण लिखा है, इस चूर्णके खानेसे पांडुरोग, सूजन, हृद्रोग, उदर, कृमि, कुष्ठ, भगन्दर, मंदाग्नि, बवासीर और अरुचिको दूर करताहै॥३४-३८॥

अथ कामलाचिकित्सा ।

त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या मरिचकस्य वा ॥ क्वाथो माक्षिकसंयुक्तः शीतलः कामलापहः ॥ ३९ ॥ अञ्जने कामलार्तानां द्रोणपुष्पीरसो हितः ॥ गुडूचीपत्रकल्कं वा पिबेत्तक्रेण कामली ॥ ॥ ४० ॥ धात्रीलोहरजोव्योषनिशाक्षौद्राज्यशर्कराः ॥ लीढा निवारयन्त्याशु कामलामुद्धतामपि ॥ ४१ ॥ कुम्भाख्यकामलायां तु हितः कामलिको विधिः॥ गोमूत्रेण पिबेत्कुम्भकामलावाञ्छिलाजतुम् ॥ ४२ ॥ दग्ध्वाक्षकाष्ठैर्मलमायसन्तु गोमूत्रनिर्वापितमष्टवारान् ॥ विचूर्ण्य लीढं मधुनाचिरेण कुम्भाह्वयं पाण्डुगदं निहन्ति ॥ अपहरति कामलार्तिं नस्येन कुमारिकाजलं सद्यः ॥ ४३ ॥

त्रिफलेके, वा गिलोयके अथवा दारुहल्दीके कि वा नीमके क्वाथको शीतल करके उसमें सहत मिलाकर पिये तो कामलाका विनाश होताहै, गूमेके रसका अंजन बनाकर लगावे तो कामलारोगवालेको परम हितकारी है, गिलोयके पत्तोंको पीसकर उसका रस छाँछमें मिलाकर पीनेसे कामला रोग दूर होताहै, आमले, लोहभस्म, त्रिकुटा (सोंठ, मिरच पीपल) हलदी, घी और बूरा, इन सबको मिलाकर चाटनेसे महाप्रबल कामलारोगका विनाश होताहै, कुम्भकामलारोगमें भी सब विधि कामलाकी रोगकी करनी चाहिये, उत्तम शिलाजीतको गोमूत्रके साथ पिये तो कुम्भकामलारोग दूर होताहै, लोहमण्डूरको बहेडेकी लकडियोंमें फूँक कर आठ ८ बार गोमूत्रमें बुझावे, फिर इसका चूर्ण कर सहतके साथ चाटे तो शीघ्रही कुम्भकामलाको दूर करै, घीकुवारके रसका नास लेवे तो तत्कालही कामला रोग दूर होताहै ॥ ३९-४३ ॥

अथ हलीमकचिकित्सा ।

मारितं चायसं चूर्णं मुस्ताचूर्णेन संयुतम्॥ खदिरस्य कषायेण पिबेज्जन्तुं हलीमकम्॥ ॥ ४४ ॥ सितातिलबलायष्टीत्रिफलारजनीयुगैः ॥ लोहं लिह्यात्समध्वाज्यं हलीमकनिवृत्तये ॥ ४५ ॥

लोहसारकी भस्म और मोथेका चूर्ण लेकर खैरसारके क्वाथके साथ पिये तो हलीमकरोग दूर होताहै. खाँड, तिल, खरैंटी, मुलेठी, त्रिफला, हलदी और दारुहलदीके चूर्णके साथ लोहेकी भस्ममें सहत और घी मिलाकर चाटे तो हलीमकरोग नष्ट होताहै ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

अथामृतलतादिघृतम् ।

अमृतलतारसकल्कैः प्रसाधितं तुरगविद्विषः सर्पिः ॥ क्षीरं चतुर्गुणमेतद्वितरेच्च हलीमकार्तेभ्यः ॥ ४६ ॥ मधुरैरन्नपानैस्तं वातपित्तहरैर्हरेत् ॥

कामलापाण्डुरोगोक्तां क्रियां चात्रोपयोजयेत् ॥ ४७ ॥

गिलोयका रस और उसका कल्क भैंसका घृत डालकर बनावै, फिर उसमें चौगुना दूध डालकर पकावै, उस अमृतलतादि घृतको हलीमकरोगवाला सेवन करे तो हलीमकरोग समूल नष्ट हो। इस हलीमकरोगको मधुर और वातपित्त हरनेवाले अन्न पानोंसे और पाण्डुरोग तथा कामलारोगमें कहीहुई औषधियोंसे शमनकरै ॥४६॥४७॥

अथ पाण्डुकामलाहलीमकयोः सामान्यचिकित्सा।

फलत्रिकामृतावासातिक्ताभूनिम्बनिंबजः काथः ॥ क्षौद्रयुतोऽयं हन्याद्धलीमकं पाण्डुकामलारोगम् ॥ ४८ ॥

त्रिफला, गिलोय, अडूसा (वसौटा), कुटकी, चिरायता और नीमकी छालका क्वाथ बनाकर उसमें सहत मिलाकर पिये तो हलीमक, पाडु और कामलारोग विनष्ट होताहै ॥ ४८ ॥

अथ त्र्यूषणादिमंडूरवटकः।

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चव्यचित्रकम् ॥ दार्वीत्वङ्माक्षिको धातुर्ग्रन्थिको देवदारु च ॥ ४९ ॥ एषां द्विपलिकान्भागान्कृत्वा चूर्णं पृथक्पृथक्॥मण्डूरच्चूर्णं द्विगुणं शुद्धमञ्जनसन्निभम् ॥ ५० ॥ मूत्रे चाष्टगुणे पक्त्वा तस्मिंस्तत्प्रक्षिपेन्नरः॥ उदुम्बरसमाकारान्वटकांस्तान्यथाग्नि च ॥ ५१ ॥ उपयुञ्जीत तक्रेण जीर्णे सात्म्यञ्च भोजनम् ॥ मडूरवटिका ह्येताः प्राणदाः पाण्डुरोगिणाम् ॥ ५२ ॥ कुष्ठानि जठरं शोथमूरुस्तम्भं कफामयान् ॥ अर्शांसि कामलां मेहं प्लीहानं शमयन्ति च ॥ ५३ ॥

सोठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, वायविडंग, चव्य, चीता, दारुहलदी, दारुचीनी, सोनामाखी, पीपलामूल और देवदारु इन सब को चार चार तोले लेकर अलग अलग पीस चूर्ण करै, इन सबसे दूने मडूरके चूर्णको अठगुने गोमूत्रमे पकाकर ऊपर कहेहुए चूर्णको उसमें डालकर गूलरकी समान गोली बनाकर मट्ठेके साथ अपनी शक्त्यनुसार भक्षण करै और जब वह पचजाय तो भोजन करै, यह मांडूरवटिका पांडुरोगवालेके लिये प्राणदायक है और कुष्ठ, उदररोग, सूजन, जघाओंका जकडना, कफरोग, बवासीर, कामला, प्रमेह और प्लीहादिक सब रोगोंको शान्त करैहै॥४९-५३

अथाष्टादशांगलौहः।

किराततिक्तः सुरदारु दार्वी मुस्ता गुडूची कटुका पटोलम् ॥ दुरालभा पर्पटकं सनिम्बं कटुत्रिकं वह्निफलत्रिकञ्च ॥ ५४ ॥ फलं विडंगस्य समांशकानि सर्वैः समं चर्णमथायसञ्च। सर्पिर्मधुभ्यां वटिका विधेया तक्रानुपानाद्भिषजा प्रयोज्या ॥ ५५ ॥ निहन्ति पाण्डुञ्च हलीमकं च शोथं प्रमेहं ग्रहणीरुजञ्च ॥ श्वासञ्च कासञ्च सरक्तपित्तमर्शांस्यथो वाग्ग्रहमामवातम् ॥ व्रणांश्च गुल्मान्कफविद्रधिञ्च श्वित्रञ्च कुष्ठञ्च ततः प्रयोगात् ॥ ५६ ॥

चिरायता, देवदारु, दारुहलदी, मोथा, गिलोय, कुटकी, परवल, जवासा, पित्तपापडा, नीम, त्रिकुटा (सोठ, मिर्च,पीपल), चीता, हरड, बहेडा, आमला और वायविडंग, ये सब औषधि समभाग लेकर और सबकी बराबर लोहभस्म मिलाकर घी और सहतके साथ मोदक बनाकर मट्ठेके साथ सेवन करे तो पाण्डु, हलीमक, सूजन, प्रमेह, संग्रहणी, श्वास, खाँसी, रक्तपित्त, अर्श, जीभका लठरा जाना, आमवात, व्रण, वायगोला, कफरोग, विद्रधि, श्वेतकुष्ठ और प्रकारके कुष्ठादिक जो हैं वे सम्पूर्ण शान्त होतेहैं ॥ ५४-५६ ॥

यवगोधूमशाल्यन्नै रसैर्जांगलजैर्हितैः ॥ मुद्गाढकीमसूराद्यैरेषु भोजनमिष्यते॥५७॥ एषु पाण्डुरोगकामलाहलीमकेषु ॥

इति पाण्डुरोगकामलाहलीमकाधिकारः।

जौ, गेहू, शालिधानोंके चावलोंका भात, जगली जीवों-के मासका रस, मूँग, अरहर और मसूर आदिक भोजन पाण्डु, कामला और हलीमक रोगमें देना उचित है॥५७॥

इति पाण्डुकामलाहलीमकरोगाधिकारः ।

अथ रक्तपित्ताधिकारः ।

तत्र रक्तपित्तनिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः ।

घर्मव्यायामशोकाध्वव्यवायैरतिसेवितैः॥
तीक्ष्णोष्णक्षारलवणैरम्लैः कटुभिरेव च ॥
पित्तं विदग्धं स्वगुणैर्विदहत्याशु शोणि-
तम् ॥ १ ॥

तीक्ष्णं मरिचादि । उष्णमग्नितापादि । क्षारो यवक्षारादिः । विदग्धं दूषितम् । स्वगुणैः स्वकारणैः । गुणैः तीक्ष्णादिभिः । गुणैरिति बहुत्वेन तीक्ष्णाम्ललवणकटूष्ण-घर्मादयो गृह्यन्ते । विदहति दूषयति ॥

धूप, व्यायाम (दड कसरत), शोक, मार्गगमन और मैथुन इनका अधिकतर सेवन करनेसे तीक्ष्ण, उष्ण, क्षार तथा लवण पदार्थ इनको अत्यत प्रयोग करनेसे, खट्टे और चरपरे पदार्थोंको अधिक खानेसे दूषित हुआ पित्त अपने गुणोंसे शीघ्रही रुधिरको दूषित करताहै । तीक्ष्ण अर्थात् मरिचादि पदार्थ, उष्ण अर्थात् अग्निका सेवन आदि, क्षार अर्थात् जवाखारादि पदार्थ अपने गुणोंसे अर्थात् अपने कारण रूप तीक्ष्ण, खट्टे, खारी, तीखे, और गरम, आदि गुणोंसे जानना ॥ १ ॥

अथ रक्तपित्तसामान्यलक्षणम् ।

ततः प्रवर्तते रक्तमूर्द्ध्वं चाधो द्विधापि वा॥२॥

अत्र रक्तमित्युपलक्षणम् । तेन संसृष्टं पित्तञ्च । अत एव रक्तञ्च पित्तञ्च रक्तपित्तमिति द्वन्द्व इति सुश्रुतः । रक्तञ्च तत्पित्तं चेति रक्त-पित्तं रागप्राप्तं पित्तरक्तमित्युच्यते रक्तपित्तं कर्मधारयश्च । रक्तपित्तं मनीषिभिरिति उभ-यत्रापि न दोषः कारणत्रयाद्रक्तस्यापि समाख्यानम् ॥

संयोगाद्दूषणात्तत्तु सामान्याद्गन्धवर्णयोः ॥

इस प्रकार पित्तसे दूषित होनेके कारण रुधिर और उसके साथ पित्त मिलकर ऊर्द्ध मार्गोंसे अथवा अधोमा-र्गोसे वा दोनों मार्गोंसे बहने लगताहै उसको रक्तपित्त कहतेहैं ।

यहा सुश्रुत कहताहै कि, रुधिर और पित्त ये दोनों बहन लगतेहैं इस कारण यह रोग रक्तपित्त कहाजाता-है "अन्य ग्रन्थकार कहतेहैं कि, लाल रगका पित्त होकर बहनेलगताहै इसकारण यह रोग रक्तपित्त कहाजाता-है" तीनों कारणोंसे पित्त रजित (लाल) होकर रक्तपित्त कहाजाताहै, अत एव दोनों पक्षोंमें किसी प्रकारका दोष नहीं आता, रुधिरका और पित्तका सयोग होताहै, पित्तसे रुधिर दूषित होताहै और रुधिर तथा पित्तकी गध और वर्ण समान होतेहैं, इन तीनों कारणोंसे रजित हुआ जो पित्त उसको विद्वान् लोग रक्तपित्त कहतेहैं ॥ २ ॥

अथ रक्तपित्तप्रवृत्तिमार्गः ।

ऊर्द्ध्वं नासाक्षिकर्णास्यैर्मेढ्रयोनिगुदैरधः ॥
कुपितं रोमकूपैश्च समस्तैस्तत्प्रवर्तते ॥३॥

कोपको प्राप्त हुआ यह पित्त—नाक, आँख, कान और मुख इन ऊँचे मार्गोंसे बहताहै, तथा लिंग, योनि और गुदा इन नीचे मार्गोंसे बहताहै और सम्पूर्ण रोमकूपोंसे भी बहताहै ॥ ३ ॥

अथ रक्तपित्तपूर्वरूपम् ।

सदनं शीतकामित्वं कण्ठधूमायनं वमिः॥
लोहगन्धश्च निश्वासो भवंत्यस्मिन्भवि-
ष्यति ॥ ४ ॥

जब रक्तपित्त होनेको होताहै तब उससे कुछ पहिले ग्लानि, शीतकी इच्छा, गलेमें धुयेंकासा घुटना, वमनका होना, रुधिरकी समान गधका निकलना और वारवार श्वासोंका आना ये सब लक्षण होतेहैं ॥ ४ ॥

अथ कफजवातजरक्तपित्तरूपम् ।

सान्द्रं सपाण्डु सस्नेहं पिच्छिलं च कफा-

न्वितम् ॥ श्यावारुणं सफेनं च तनु रूक्षञ्च वातिकम् ॥ ५ ॥

कफज रक्तपित्तका रुधिर–गाढा, पांडुवर्ण, स्नेहयुक्त और पिच्छिल होताहै । वातसम्बन्धी रक्तपित्त–काला, लाल, झागो युक्त पतला और रूखा वहताहै ॥ ५ ॥

अथ पित्तजरक्तपित्तस्वरूपम् ।

रक्तपित्तं कषायाभं कृष्णं गोमूत्रसन्निभम्॥ मेचकाङ्गारधूमाभमञ्जनाभञ्च पैत्तिकम्॥६॥

मेचकम् चिक्कणं कृष्णवर्णम् । अञ्जनं स्रोतोञ्जनं तदाभम् ॥

पित्तज रक्तपित्तका रुधिर–क्वाथकी सदृश काला, गोमूत्रकी तुल्य चिकने काले रंगका, कोयलेकी धुँवेकी समान और अंजनकी समान प्रवर्तन होताहै ॥ ६ ॥

अथ संसर्गविशेषेण मार्गभेदाः ।

संसृष्टलिंगं संसर्गात्त्रिलिंगं सान्निपातिकम् ॥ ऊर्द्धगं कफसंसृष्टमधोगं मारुतानुगम् ॥ द्विमार्गं कफवाताभ्यामुभाभ्यां तत्प्रवर्तते ॥ ७ ॥

कफके संसर्गवाला रक्तपित्त–ऊर्ध्व मार्गसे वहताहै, वात सम्बन्धी रक्तपित्त–अधोमार्गसे वहताहै, कफ और वायुके संसर्गवाला रक्तपित्त–दोनो मार्गोंसे वहताहै और जो तीनों दोषोंसे ससर्गज सान्निपातिक रक्तपित्त होताहै उसमें तीनों दोषोंके लक्षण देखे जातेहैं ॥ ७ ॥

अथ रक्तपित्तोपद्रवाः ।

दौर्बल्यं श्वासकासज्वरवमथुमदाः पाण्डुतादाहमूर्च्छा भुक्ते घोरो विदाहस्त्वधृतिरपि सदा हृद्यतुल्या च पीडा ॥ तृष्णा कोष्ठस्य भेदः शिरसि च तपनं पूयनिष्ठीवनञ्च द्वेषो भुक्तेऽविपाको विकृतिरपि भवेद्रक्तपित्तोपसर्गात् ॥ ८ ॥

विकृतिः मांसप्रक्षालनाभतादिः ॥

दुर्बलता, श्वास, खाँसी, ज्वर, वमन, मद, पाडुता, दाह, मूर्च्छा, भोजन करनेके पश्चात् घोर दाह, अधीर्यपन, सदैव हृदयमे असाधारण पीडा, पियास, दस्तोंका होना, मस्तकमे सताप, थूकनेमें दुर्गंधता, अन्नमें अरुचि, भोजनका न पचना और मांसके धोवनकी समान रुधिरका वहना ये सब रक्तपित्तके उपद्रव हैं अर्थात् रक्तपित्तमे यह उन्नीस उपद्रव होतेहैं ॥ ८ ॥

अथ रक्तपित्तसाध्यासाध्यता ।

एकदोषानुगं साध्यं द्विदोषं याप्यमुच्यते॥ यत्त्रिदोषमसाध्यं स्यान्मन्दाग्नेरतिवेगवत् ॥ ९ ॥ ऊर्द्ध्वं साध्यमधो याप्यमसाध्यं युगपद्गतम् ॥ व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्याऽनश्नतस्तु यत् ॥ १० ॥

जो रक्तपित्त एक दोषज होय तो साध्य समझना, जो दो दोषोंवाला होय तो याप्य जानना और जो तीनो दोषोवाला होय, तथा मदाग्निवाले मनुष्यके उत्पन्न हुआ होय और अत्यत वेगवाला होय तो असाध्य जानना, जो रक्तपित्त ऊर्ध्व मार्गसे निकलता होय तो साध्य समझना, अधोमार्गसे वहता होय तो याप्य जानना और जो दोनों मार्गोंसे वहता होय तथा व्याधियोंसे क्षीण हुये, वृद्ध-मनुष्यके और भोजनसे थके हुए मनुष्यके उत्पन्न हुआ रक्तपित्त असाध्य जानना ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ साध्यरक्तपित्तविवेचनम् ।

एकमार्गं बलवतो नातिवेगं नवोत्थितम्॥ रक्तपित्तं सुखे काले साध्यं स्यान्निरुपद्रवम् ॥ ११ ॥

जो रक्तपित्त एक मार्गसे वहता होय, बलवान्के उत्पन्न हुआ, अत्यत वेगरहित, तत्कालका, हेमत और शिशिर ऋतुमें उत्पन्न हुआ और उपद्रवरहित होय तो साध्य जानना ॥ ११ ॥

अथासाध्यरक्तपित्तम् ।

मांसप्रक्षालनाभं क्वथितमिव च यत्कर्दमाम्भोनिभं वा मेदःपूयास्रकल्पं यकृदिव यदि वा पक्वजम्बूफलाभम्॥यत्कृष्णं यच्च नीलं भृशमपि कुणपं यत्र चोक्ता विकारास्तद्वर्ज्यं रक्तपित्तं सुरपतिधनुषा यच्च तुल्यं विभाति ॥ १२ ॥

उक्ता विकारा दौर्बल्यादयः । सुरपति-धनुषा तुल्यं नानावर्णम् ॥

जो रक्तपित्तका रुधिर मांसके धोवनकी समान अथवा काढेकी समान, वा कीचके मिलेहुए पानीकी समान, वा मेद, राध अथवा रुधिरकी समान, वा कलेजेके टुकडेके रंगका, किंवा पकी जामुनकी समान, या काला अथवा मोरके गलेकी समान नीला, अथवा मुरदेकी समान गंध-वाला, अथवा प्रथम कहे हुए विकारोंवाला और इन्द्रधनुष-की समान अनेक प्रकारके रंगवाला होय तो असाध्य जानना ॥ १२ ॥

येन चोपहतो रक्तं रक्तपित्तेन मानवः ॥ पश्येद्दृश्यं वियच्चापि तदसाध्यमसंश-यम् ॥ १३ ॥

येन रक्तपित्तेन उपहतः मनुष्यः दृश्यं घट-पटादिकं रक्तं पश्यति स नश्यति वियच्चापि अदृश्यमपीत्यर्थः ॥

जो रक्तपित्तसे पीडित मनुष्य घटपटादि दृश्य पदार्थोंको और आकाशादि अदृश्य पदार्थोंको अत्यंत रक्त वर्ण देखै वह रक्तपित्त रोगी निश्चय असाध्य है ॥ १३ ॥

अथ रक्तपित्तारिष्टम् ।

लोहितं छर्दयेद्यस्तु बहुशो लोहितेक्षणः॥ लोहितोद्गारदर्शी च म्रियते रक्तपै-त्तिकः ॥ १४ ॥

लोहितोद्गारदर्शी व्याधिमहिम्ना उद्गार-मपि लोहितं पश्यतीत्यर्थः ॥

जो रक्तपित्तवाला रोगी वारंवार रुधिरकी वमन करे, नेत्र लाल लाल होजाँय और उसको वारंवार डकारमें भी रुधिर आवै वह अवश्य मरजाता है ॥ १४ ॥

अथ रक्तपित्तचिकित्सा ।

पित्तास्रं स्तम्भयेन्नादौ प्रवृत्तं बलिनो यतः॥ हृत्पाण्डुग्रहणीरोगप्लीहगुल्मज्वरादिकृत् १५

बलवान् मनुष्यके उत्पन्न हुए रक्तपित्तको प्रथम कदापि स्तम्भन औषधियोंके द्वारा नहीं रोकना चाहिये क्योंकि प्रथम रक्तपित्तको बंद करनेसे हृदयरोग, पाण्डुरोग, संग्रहणी, प्लीहा, गुल्म और ज्वरादि रोग उत्पन्न होते हैं ॥ १५ ॥

शालिषष्टिकनीवारकोरदूषप्रसाधिकाः ॥ श्यामाकाश्च प्रियंगुश्च भोजनं रक्तपित्ति-नाम् ॥ १६ ॥

शालिधान, साठीधान्य, नीवार, कोदों, प्रसाधिका, समा और कगुनी इनका भात रक्तपित्त रोगीको भोजनके लिये देवे ॥ १६ ॥

मसूरमुद्गचणकाः समकुष्ठाढकीफलाः ॥ प्रशस्ताः सूपयूषार्थे कल्पिता रक्तपित्ति-नाम् ॥ १७ ॥

रक्तपित्त रोगीको दालके लिये और यूषके लिये मसूर, मूँग, चने, मोठ और अरहरकी योजना करनी चाहिये ॥ १७ ॥

दाडिमामलकं विद्वानम्लार्थं चापि दापये-त् ॥पटोलनिम्बन्यग्रोधप्लक्षवेतसपल्लवान्॥ ॥ १८ ॥ शाकार्थे शाकसात्म्यानां तण्डु-लीयादयो हिताः ॥ पारावतान्कपोतांश्च लावान्रक्ताक्षवर्तकान् ॥ १९ ॥ शशान्क-पिञ्जलानेणान्हरिणान्कालपुच्छकान् ॥ रक्तपित्तहरान्विद्याद्रसांस्तेषां प्रयोजयेत्॥ ईषदम्लानमम्लांश्च घृतभृष्टान्ससैन्धवान्॥ ॥ २० ॥ कफानुगे यूपशाकान्दद्याद्वाता-नुगे रसम् ॥ पथ्यं सतीनयूषेण ससिते-र्लाजसक्तुभिः ॥ २१ ॥

रक्तपित्त रोगीको खटाईके लिये वैद्य अनार और आमले देवे । जिनको शाक अनुकूल होय तो ऐसे रक्त-पित्त रोगियोंको शाकके लिये परवल नीम बडके अंकुर अथवा कोमल पत्ते, पाखर और वेतके कोमल पत्ते और चौलाई आदि हितकारक शाक होने चाहिये रक्त-पित्तरोगीको मांसके लिये कबूतर, परेवा, लवा, चकोर, वत्तक, खरगोस, तीतर, एण हरिण, हिरन और कालपुच्छ हरिण इनके मांसका रस रक्तपित्तको नष्ट करनेके लिये देवे । कफज रक्तपित्तमें किंचित् अम्ल, अथवा अम्ल नहीं घीमें भुना हुआ और सैंधा निमक मिलाहुआ शाक और यूष देवे । वातज रक्तपित्त-

मे मटरके यूपके साथ और खीलोंके सत्तूमे मिश्री मिलाकर मांसरस पथ्य देवे ॥ १८–२१ ॥

अथ धान्यकादिहिमः।

धान्याकधात्रीवासानां द्राक्षापर्पटयोर्हिमः॥ रक्तपित्तं ज्वरं दाहं तृष्णां शोषश्च नाशयेत् ॥ २२ ॥

धनिया, आमला, अडूसा, दाख और पित्तपापडा इन सबका हिम बनाकर पीनेसे रक्तपित्त, ज्वर, दाह, तृषा और शोष नष्ट होताहै यह धान्यकादि नामसे प्रसिद्ध है॥२२॥

ह्रीवेरमुत्पलं धान्यं चन्दनं यष्टिकाऽमृता॥ उशीरश्च त्रिवृच्चैषां क्वाथं समधुशर्करम् ॥ ॥ २३ ॥ पाययेत्तेन सद्यो हि रक्तपित्तं प्रणश्यति॥रक्तपित्तं जयत्युग्रं तृष्णां दाहं ज्वरं तथा ॥ २४ ॥ पद्मोत्पलानां किञ्जल्कः पृश्णिपर्णी प्रियंगुका ॥ जले साध्या रसे तस्मिन्पेया स्याद्रक्तपित्तिनाम्॥वासापत्रसमुद्भूतो रसः समधुशर्करः ॥ २५ ॥ क्वाथो वा हरते पीतो रक्तपित्तं सुदारुणम्॥ पिष्टानां वृषपत्राणां पुटपाकरसो हिमः ॥ ॥ २६ ॥ समधुर्हरते रक्तपित्तं कासज्वरक्षयान्॥ उत्पलं कुमुदं पद्मं कह्लारं लोहितोत्पलञ्च ॥ २७ ॥ मधुकश्चेति पित्तासृक्तृष्णाच्छर्दिहरो गणः ॥ वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च ॥ रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति ॥ २८ ॥ आटरूषकमृद्वीकापथ्याक्वाथः सशर्करः ॥ क्षौद्राढ्यः सकलश्वासरक्तपित्तनिबर्हणः ॥ २९ ॥

सुगंधवाला, कमल, धनिया, चंदन, मुलेठी, गिलोय, खस और निसोत इनका क्वाथ बनाकर सहत और बूरा मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त तत्काल नष्ट होजाताहै। कमल अथवा उत्पल कमलकी केसर—उग्र रक्तपित्त, तृषा, दाह और ज्वरको दूर करैहै। पिठवन और फूलप्रियंगु इनका क्वाथ बनाकर उसमें पकी हुई पेया (दूधपानी) मिलाकर रक्तपित्त रोगीको पीनेको देवे। अडूसेके पत्तोंका स्वरस अथवा क्वाथ बनाकर उसमे सहत अथवा मिश्री मिलाकर पीनेसे दारुण रक्तपित्त भी नष्ट होजाताहै। अडूसेके पत्तोंको पीसकर पुटपाक करे, फिर उनका रस निकालकर उसमे सहत मिलाकर पियै अथवा अडूसेके पत्तोंका हिम बनाकर उसमे सहत मिलाकर पियै तो रक्तपित्त, खाँसी, ज्वर और क्षयरोग नष्ट हो. उत्पल, कुमुद, कमल, लाल कमोदिनी और लाल कमल, ये पांचो तथा मुलहटी, इन सब औषधियोका समूह रक्तपित्त, तृषा और वमनको दूर करैहै। अडूसेके विद्यमान होनेपर जीवनकी आशा करनेवाले रक्त पित्त, क्षय और खांसीके रोगी क्यो व्यर्थ दुःख पातेहैं। अडूसा, दाख और हरड इनके क्वाथमे मिश्री और सहत डालकर पीनेसे सर्व प्रकारके श्वास और रक्तपित्त रोग नष्टहोतेहैं ॥ २३–२९ ॥

अथ दूर्वाद्यघृतम्।

दूर्वा सोत्पलकिञ्जल्कमञ्जिष्ठासैलवालुका ॥ सिता शीतमुशीरश्च मुस्तं चन्दनपद्मकम् ॥ ३० ॥ विपचेत्कार्षिकैरेतैराजं प्रस्थमितं घृतम् ॥ तण्डुलानां जलं छागीक्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ ३१ ॥ तत्पानं वमतो रक्तं नावनं नासिकागते ॥ कर्णाभ्यां यस्य गच्छेत्तु तस्य कर्णौ प्रपूरयेत् ॥ ३२ ॥ चक्षुः स्रवति रक्तश्चेत्पूरयेत्तेन चक्षुषी ॥ मेढ्रपायुप्रवृत्ते तु वस्तिकर्मसु योजयेत् ॥ ३३ ॥ रोमकूपप्रवृत्ते तु तदभ्यंगं प्रयोजयेत् ॥ सर्वेषु रक्तपित्तेषु तस्माच्छ्रेष्ठमिदं घृतम् ॥ ३४ ॥

दूब, कमल, कमलकी केसर, मँजीठ, एलुआ, मिश्री, शीतलचीनी, या कपूर, खस, नागरमोथा, चन्दन लाल और पद्माख प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेकर कल्क बनावै, इस कल्कको चौगुने चावलोंके जलमें और बकरीके दूधमे ६४ चौंसठ तोले बकरीका घी विधिपूर्वक पकाना चाहिये। जो रुधिरकी वमन होती होय तो इस घृतको पीना उत्तम है। जो नाकमेंसे रुधिर निकलता होय तो इस घृतका नास देना हितकारी है। जो कानमेंसे रुधिर बहता होय तो इस घृतको कानमे डालना शुभ है। जो

नेत्रोंमेंसे रुधिर गिरता होय तो इस घृतको नेत्रोंमें लगाना श्रेष्ठ है। जो लिंगमेंसे अथवा गुदामेंसे रुधिर बहता होय तो इस घृतकी पिचकारी लगानी सुखद है। जो रोमकूपोंमेंसे रुधिर निकलता होय तो इस घृतकी मालिस अत्यन्त फलदायक है। यह दूर्वाद्य घृत सर्व प्रकारके रक्तपित्तोंमें उपयोगी होनेके कारण श्रेष्ठ है ॥ ३०–३४ ॥

मृद्वीका चन्दनं लोध्रं प्रियंगुश्च विचूर्णयेत्॥ चूर्णमेतत्पिबेत्क्षौद्रवासारससमन्वितम् ॥ ॥३५॥ नासिकामुखपायुभ्यो योनिमेढ्रादिवेगिनम् ॥ रक्तपित्तं स्रवद्धन्ति सिद्ध एष प्रयोगराट् ॥ ३६ ॥ यच्च शस्त्रक्षतेनेव रक्तं स्रवति वेगतः ॥ तदप्येतेन चूर्णेन तिष्ठत्येवावचूर्णितम् ॥ ३७ ॥

दाख, चदन, लोध, और फूलप्रियगु इन सबका चूर्ण करके सहत और अडूसेके रसके साथ सेवन करे तो ये उत्तम प्रयोग नाकमेंसे, मुखसे, गुदामेंसे, योनिमेंसे और लिंग आदिसे वेगपूर्वक गिरते रुधिरको तत्काल बदकरदेताहै, जो शस्त्रके लगनेसे घाव होकर उसमें रुधिर बहता हो और वह रुधिर बद नहीं होसके तो उस घावके ऊपर इस चूर्णको बुरकानेसे तत्काल रुधिरका बहना बन्द होजाताहै ॥ ३५–३७ ॥

इक्षूणां मध्यकाण्डानि सकन्दं नीलमुत्पलम्॥केशरं पुण्डरीकस्य मोचामधुकपद्मकैः ॥३८॥ वटप्ररोहशुंगाश्च द्राक्षा खर्जूरमेव च॥एतानि समभागानि कषायं सम्प्रकल्पयेत् ॥ ३९ ॥ उषितं मधुसंयुक्तं पाययेच्छर्करान्वितम्॥सप्रमेहं रक्तपित्तं क्षिप्रमेतन्नियच्छति॥४०॥ द्राक्षया फलिनीभिर्वा प्रियालमधुकेन वा ॥ श्वदंष्ट्रया शतावर्या रक्तजित्साधितं पयः ॥ ४१ ॥

ईखके बीचका काड (गन्नेकी गाठ) जड समेत नील कमल, कमलकी केसर, केला, मुलेठी, पद्माख, वडके अकुर, अथवा कोमल पत्ते, दाख और खजूर इन सबको समानभाग लेकर हिम बनावै, इस हिममें मिश्री और सहत मिलाकर पिये तो रक्तपित्त और प्रमेह तत्काल नष्ट हो जातेहैं।

दाखस तथा फूलप्रियगुसे अथवा चिरौंजीसे तथा मुलैठीसे, अथवा गोखुरूओंसे किवा सतावरसे पकाया हुआ दूध रक्तपित्तको दूर करता है ॥ ३८–४१ ॥

पक्वोदुम्बरकाश्मर्यः पथ्याखर्जूरगोस्तनाः ।मधुना घ्नन्ति संलीढा रक्तपित्तं पृथक्पृथक् ॥ ४२ ॥

अत्र काश्मर्याः फलमेव ग्राह्यं फलसाहचर्यात् ।

अतिनिःसृतरक्तो वा क्षौद्रयुक्तं पिबेदसृक् ॥ सकृद्वा भक्षयेदाज्यं मांसं वा पित्तसंयुतम् ॥ ४३ ॥ नासाप्रवृत्तरुधिरं घृतभृष्टं श्लक्ष्णपिष्टमामलकम् ॥ सेतुरिव तोयवेगं रुणद्धि मूर्ध्नि प्रलेपन ॥ ४४ ॥ घ्राणप्रवृत्ते जलमाशु पेयं सशर्करं नासिकया च यो वा ॥ द्राक्षारसं क्षीरघृतं पिबेद्वा सशर्करश्चेक्षुरसं हिताय ॥ ४५ ॥ नस्ये दाडिमपुष्पस्य रसो दूर्वाभवोऽपि वा ॥ आम्रास्थिजः पलाण्डोर्वा नासिकास्राविरक्तजित् ॥ ४६ ॥

पके गूलरके फल, अथवा कुम्भेरके फल अथवा हरड या खजूर किंवा दाख इनको सहतमें मिलाकर चाटनेसे रक्तपित्त नष्ट होताहै।

जिस मनुष्यके शरीरमेंसे अत्यन्त रुधिर निकल चुका होय वह मनुष्य बकरेके रुधिरमें सहत मिलाकर पिये अथवा एक बार सहतके साथ घी खाय। अथवा पित्तसहित मांसको खाय।

जो नाकमें रुधिर गिरताहो अर्थात् नकसीर छूटती होय तो आमलेको महीन पीसकर घीमें भूनकर माथेपै लेप करदेवै, जिस प्रकार बाधसे जलका वेग रुकजाताहै उसीप्रकार इस लेपसे रुधिरका गिरना बद होजाताहै। अथवा शीतलजलमें बूरा मिलाकर सरबत बनाकर नाकके द्वारा पीनेसे या नाकके द्वारा दूध पीनेसे अथवा दूधके साथ दाखका रस पीनेसे किंवा ईखके रसमें खाड मिलाकर पीनेसे नकसीर बद होजाताहै।

अनारके फूल, वा दाखका रस अथवा आमकी गुठलीका रस, किंवा प्याजके रसका नास देनेसे नाकमेंसे रुधिरका गिरना बंद होजाताहै ॥ ४२–४६ ॥

अथ खण्डकूष्माण्डावलेहः।

पुराणं पीनमानीय कूष्माण्डस्य फलं बृहत्॥ तद्बीजाधारबीजत्वक्छिराशून्यं समाचरेत् ॥ ४७ ॥ ततस्तस्य तुलां नीत्वा पचेज्जलतुलाद्वये ॥ तस्मिन्नीरेऽर्द्धशिष्टे तु यत्नतः शीतलीकृते ॥ तानि कूष्माण्डखण्डानि पीडयेद्दृढवाससा ॥ ४८ ॥ यत्नतस्तज्जलं नीत्वा पुनः पाकाय धारयेत् ॥ कूष्माण्डं शोषयेद्धर्मे ताम्रपात्रे ततः क्षिपेत् ॥४९॥ क्षिप्त्वा तत्र घृतं प्रस्थं कूष्माण्डं तेन भर्जयेत् ॥ मधुवर्णं तदालोक्य तज्जलं तत्र निक्षिपेत् ॥ ५० ॥ सितायाश्च तुलां तत्र क्षिप्त्वा तल्लेहवत्पचेत् ॥ सुपक्के पिप्पलीशुण्ठीजीराणां द्विपले पृथक् ॥ ५१ ॥ पृथक्पलार्द्धं धान्याकं पत्रैलामरिचत्वचम्॥ चूर्णमेषां क्षिपेत्तत्र घृतार्द्धं क्षौद्रमावपेत् ॥ एतत्पलमितं खादेदथ वाऽग्निबलं यथा ॥ ॥ ५२ ॥ खण्डकूष्माण्डलेहोऽयं रक्तपित्तञ्च नाशयेत् ॥ पित्तज्वरं तृषां दाहं प्रदरं कृशतां वमिम् ॥ ५३ ॥ कासं श्वासञ्च हृद्रोगं स्वरभेदं क्षतं क्षयम् ॥ नाशयत्येव वृद्धिञ्च बृंहणो बलवर्द्धनः ॥ ५४ ॥

उत्तम पुराना, बडा, और मोटा पेठा लेकर छील बनाकर उसके बीज और बीजोंके रहनेके स्थान निकालकर वगेल देवै फिर उसमेंसे सौ १०० पल गूदा लेकर ८०० अठसौ तोले जलमे पकावै, जब पकते २ जल आधा बाकी रहजाय तब उतारकर यत्नपूर्वक शीतल करै, फिर उसमेसे पेठेके टुकडोंको निकालकर उत्तम मोटे वस्त्रमें खूब खैंचकर बाँधे और दबाकर जल निचोड देवै और निचुडेहुए जलको फिर पकानेके लिये अलग रख देवै, फिर उन पेठेके टुकडोको धूपमे सुखाकर तांबेके बासनमें डालकर ६४ चौसठ तोले घी मिलाकर भूने, जब भुनते भुनते सहतकी समान होजाय तब पूर्वोक्त पेठेके निचोडे हुए जलमे डालकर और उसमें १०० सौ पल उत्तम मिश्री डालकर अवलेहकी तरह पकावै, जब अच्छे प्रकारसे पककर तैयार होजाय तब उसमे ८ आठ तोले पीपल, ८ आठ तोले सोंठ, ८ आठ तोले जीरा, २ तोले धनिया, २ दो तोले तेजपात, २ तोले इलायची, २ दो तोले काली मिरच और दो तोले दालचीनी इन सबका चूर्ण करके मिलादेवै और ३२ बत्तीस तोले सहत मिला देवे तो यह 'खण्डकूष्माण्ड' अवलेह तैयार होताहै। इसमेसे ४ चार तोले प्रमाण खाय अथवा अपनी अग्निके बलानुसार इसमेसे सेवन करै। यह अवलेह–रक्तपित्त, पित्तज्वर, तृषा, दाह, प्रदर, कृशता, वमन, खाँसी, श्वास, हृदयरोग, स्वरभेद, क्षत, क्षय और अन्त्रवृद्धिको नष्ट करैहै। यह पुष्टिकारक और बलको वढानेवाला है ॥ ४७–५४ ॥

अथ बृहत्कूष्माण्डावलेहः।

पुराणं पीनमानीय कूष्माण्डस्य फलं दृढम्॥ तद्बीजाधारबीजत्वक्छिराशून्यं समाचरेत् ॥ ५५ ॥ ततोऽतिसूक्ष्मखण्डानि कृत्वा तस्य तुलां पचेत् ॥ गोदुग्धस्य तुलामध्ये मन्देऽग्नौ वा पचेच्छनैः ॥ ५६ ॥ शर्करायास्तुलां सार्द्धां गोघृतं प्रस्थमात्रकम् ॥ प्रस्थार्द्धं माक्षिकञ्चापि कुडवं नारिकेलतः ॥ ५७ ॥ प्रियालफलमज्जानं द्विपलं तिखुरीपलम् ॥ क्षिपेदेकं च विपचेल्लेहवत्साधु साधयेत् ॥ ५८ ॥ भिषक्सुपक्कमालोक्य ज्वलनादवतारयेत् ॥ कोष्णे तत्र क्षिपेदेषां चूर्णं तानि वदाम्यहम् ॥ ॥ ५९ ॥ एकोऽक्षः शतपुष्पाया अथ क्षीरी यवानिका ॥ गोक्षुरः क्षुरकः पथ्या कपिकच्छुफलानि च ॥ ६० ॥ सप्तमी त्वक्च सर्वेषामक्षयुग्मं पृथक्पृथक् ॥ धान्याकं पिप्पली मुस्तमश्वगन्धा शतावरी ॥६१॥

तालमूली नागवला वालकं पत्रकं शटी ॥ जातीफलं लवङ्गञ्च सूक्ष्मैला बृहदेलिका ॥ ॥ ६२ ॥ शृंगाटकं पर्पटकं सर्वं पलमितं पृथक् ॥ चन्दनं नागरं धात्रीफलञ्चापि कशेरुकम् ॥ ६३ ॥ प्रत्येकं पञ्च कर्षाणि चत्वार्येतानि निक्षिपेत् ॥ पलद्वयमुशीरस्य मषाणस्योषणस्य च ॥ ६४ ॥ कूष्माण्डस्यावलेहोऽयं भक्षितः पलमात्रया ॥ किं वा यथावह्निवलं भुक्त्वा रोगान्विनाशयेत् ॥ ॥ ६५ ॥ रक्तपित्तं शीतपित्तमम्लपित्तमरोचकम् ॥ वह्निमान्द्यं सदाहञ्च तृष्णां प्रदरमेव च ॥ ६६ ॥ रक्तार्शोऽपि तथा छर्दिं पाण्डुरोगञ्च कामलाम् ॥ उपदंशं विसर्पञ्च जीर्णञ्च विषमं ज्वरम् ॥ ६७ ॥ लेहोऽयं परमो वृष्यो बृंहणो वलवर्द्धनः ॥ स्थापनीयः प्रयत्नेन भाजने मृन्मये नवे ॥ ६८ ॥

पुराना, कठिन, उत्तम पकाहुआ और बडा पेटा लेकर उसको छील बनाकर बीजोंको और बीजोंके रहनेके स्थानको निकालकर फेंकदेवे, फिर उसके छोटे छोटे टुकडे करके उसमेंसे ४०० चारसौ तोले लेकर ४०० चारसौ तोले उत्तम गायके दूधमे धीरे धीरे मंद मद अग्निसे पकावै, फिर उसमे उत्तम सुफेद बूरा १५० डेढसौ पल गायका घी ६४ चौंसट तोले, सहत ३२ बत्तीस तोले, नारियलकी गिरी १६ सोलह तोले, चिरोंजीकी मींग ८ आठ तोले, और तवाखीर ४ चार तोले, डालकर विधिपूर्वक अवलेहकी समान पकावै जब अच्छेप्रकारसे पककर तैयार होजाय तब उसको अग्निमेंसे उतार लेवे, जब कुछ कुछ गरम रहे तब नीचे लिखी औषधियोंको मिलादेवै । जैसे सौंफ १ एक तोला, वंश लोचन २ दो तोले, अजवायन २ दो तोले, गोखुरू २ दो तोले, तालमखाना, २ तोले, हरड २ दो तोले, कौंछके बीज २ दो तोले, दालचीनी २ तोले, धनिया ४ चार तोले, पीपल ४ तोले, नागरमोथा ४ चार तोले, असगंध ४ चार तोले, सतावर ४ चार तोले, काली मुसली ४ चार तोले, गंगेरन ४तोले, सुगंधवाला ४ तोले, तेजपात ४ चार तोले, कचूर ४ चार तोले, जायफल ४ चार तोले, लौंग ४ चार तोले, छोटी इलायची ४ चार तोले, बडी इलायची ४ चार तोले, सिंगाडे ४ चार तोले, पित्तपापडा ४ तोले, चन्दन ५ पाच तोले, सोंठ ५ पाच तोले, आमले ५ पाच तोले, कसेरू ५ पाच तोले, खस ८ आठ तोले, मखाने ८ आठ तोले, और कालीमिरच ८ आठ तोले, इन सबका चूर्ण करके मिला देवे तो यह 'बृहत्कूष्माण्डावलेह' सिद्ध होताहै । इस अवलेहको ४ चार तोले प्रमाण अथवा अपनी अग्निके बलानुसार सेवन करै तो रक्तपित्त, शीतपित्त, अम्लपित्त, अरुचि, मन्दाग्नि, दाह, तृषा, प्रदर, रुधिरकी बवासीर, वमन, पाण्डुरोग, कामला, उपदंश, विसर्प, जीर्णज्वर और विषमज्वर नष्ट होताहै । यह अवलेह मैथुनशक्तिको अत्यन्त बढानेवाला, धातुको पुष्ट करनेवाला और बलको बढानेवाला हैं । इस अवलेहको मट्टीके उत्तम नवीन बासनमे भरकर रखना चाहिये ॥ ५५–६८ ॥

अथ खण्डकूष्माण्डकम् ।

कूष्माण्डकस्य स्वरसं पलानां शतमात्रया । रसतुल्यं गवां क्षीरं धात्रीचूर्णं पलाष्टकम् ॥ ॥ ६९ ॥ मृद्वग्निना पचेत्तावद्यावद्भवति पिण्डवत् ॥७०॥ धात्रीतुल्या सिता योज्या पलार्द्धं लेहयेदनु ॥ खण्डकूष्माण्डकं ह्येतद्भुक्तमभ्यासतो हरेत् ॥ रक्तपित्तमम्लपित्तं दाहं तृष्णाञ्च कामलाम् ॥ ७१ ॥

उत्तम पेठेका स्वरस ४०० चारसौ तोले, गायका दूध ४०० चारसौ तोले, और आमलोंका चूर्ण ३२ बत्तीस तोले सबको एकत्र मिलाकर धीरे २ मंद मद अग्निसे तबतक पकावै जबतक पिंड न बंधे, जब पिड बंधजाय तब इसमें ३२ बत्तीस तोले उत्तम बूरा मिलादेवे तो 'खण्डकूष्माण्डक' नामवाला अवलेह तैयार होताहै । इस अवलेहमेसे नित्य २ दो तोले प्रमाण खाना चाहिये । इस अवलेहको सेवन करनेसे रक्तपित्त, अम्लपित्त दाह, तृषा, और कामलारोग नष्ट होजाताहै ॥ ६९–७१ ॥

अथ खंडखाद्यलौहः ।

शतावरी छिन्नरुहा वृषो मुण्डतिका बला ॥ तालमूली च गायत्री त्रिफलायास्त्वचस्तथा ॥ ७२ ॥ भार्ङ्गी पुष्करमूलञ्च पृथक्पञ्च पलानि च ॥ जलद्रोणे विपक्तव्यमष्टभागावशेषितम् ॥ ७३ ॥ दिव्यौषधिहतस्यापि माक्षिकेण हतस्य वा ॥ पलद्वादशकं देयं रुक्मलौहस्य चूर्णितम् ॥ ७४ ॥ खण्डतुल्यं घृत दयं पलं षोडशकं बुधैः ॥ पचेत्ताम्रमये पात्रे गुडपाको मतो यथा ॥ ७५ ॥ प्रस्थार्धं मधुना देयं शुभाश्मजतुकस्य च ॥ शृंगी कृष्णा विडंगञ्च शुण्ठ्यजाजी पलंपलम् ॥ ७६ ॥ त्रिफला धान्यकं पत्रं कणा मरिचकेशरम् ॥ चूर्णं दत्वा सुमथितं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥ ७७ ॥ यथाकालं प्रयुञ्जीत बिडालपदमात्रकम्॥ गव्यक्षीरानुपानश्च सेव्यो मांसरसः पयः ॥ ७८ ॥ गुरुवृष्यान्नपानानि स्निग्धमांसादिबृंहणम् ॥ रक्तपित्तं क्षयं कासं पार्श्वशूलं विशेषतः ॥ ७९ ॥ वातरक्तं प्रमेहञ्च शीतपित्तं वमिं क्लमम् ॥ श्वयथुं पाण्डुरोगञ्च कुष्ठं प्लीहोदरं तथा ॥ ८० ॥ आनाहं मूत्रसंस्रावमम्लपित्तं निहन्ति च ॥ चक्षुष्यं बृंहणं वृष्यं मंगल्यं प्रीतिवर्द्धनम् ॥ ८१ ॥ आरोग्यं पुत्रदं श्रेष्ठं कामाग्निबलवर्द्धनम् ॥ श्रीकरं लाघवञ्चैव खण्डखाद्यं प्रकीर्तितम् ॥ ॥ ८२ ॥ छागं पारावतं मांसं तित्तिरः क्रकरः शशः ॥ कुरंगः कृष्णसारश्च मांसमेषां प्रयोजयेत् ॥ ८३ ॥ नारिकेलपयःपानं सुनिषण्णकवास्तुकम् ॥ शुष्कमूलकजीवाख्यं पटोलं बृहतीफलम्॥ ॥ ८४ ॥ वार्ताकुं पक्कमाम्रञ्च खर्जूरं स्वादु दाडिमम् ॥ ककारपूर्वकं यच्च मांसञ्चानूपसम्भवम् ॥ वर्जनीयं विशेषेण खण्डखाद्यं समश्नता ॥ ८५ ॥ लोहान्तरवदत्रापि पुटनादिक्रियेष्यते ॥ न पुनर्माक्षिकेणैव शिलयैव हि मारणम् ॥८६॥

भार्ङ्गी [वामन्हाटी] दिव्यौषधी मनःशिला । रुक्मलौहं गजबेली इति लोके । सुनिषण्णं चतुष्पत्री शाकविशेषः । जीवन्ती जीव इति शाकविशेषः । ककारपूर्वकं कटुकः कालशाकं कूष्माण्डं कर्कटी कर्कोटक कलिंग कर्कन्धु करमर्दक करीर कतक कशेरु काञ्जिक इति वर्जनीयम् । इति खण्डखाद्यं लोहम् ।

सतावर, गिलोय, अडूसा, गोरखमुंडी, खिरैटी,मुसली, खैर, त्रिफला, भारंगी और पोहकरमूल ये प्रत्येक औषधि २० बीस २० बीस तोले लेकर १०२४ एक हजार चौबीस तोले भर जलमें पकावै जब पकते २ आठवां भाग काढा शेष रहजाय तब मैनशिल अथवा सोनामाखीसे माराहुआ तक्ष्णि लोहा ४८ अरतालीस तोले, खॉड ६४ तोले,घृत ६४ चौसठ तोले, फिर सबको मिलाकर तांबेके बासनमें जिसप्रकार गुडका पाक बनताहै उसी प्रकार इसको पकावै, शीतल होनेपर ३२ तोले सहत मिलादेवै, वशलोचन, शिलाजीत, काकडाशिगी, पीपल, वायाविडंग, सोंठ, जीरा, त्रिफला, धनिया, तेजपात, कालाजीरा मिरच और नागकेशर प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले लेकर सबको मिलाकर खूब हाथोंसे मथकर चिकने बासनमें भरके रखदेवे, इसको खडखाद्यलोह कहतेहैं । समयानुसार इस औषधिमेंसे एक तोला प्रमाण लेकर गायके दूधके साथ सेवन करना चाहिये । इस लोहेपर मासका रस, (सुरुआ) दूध, भारी और वृष्य अन्नपान, स्निग्ध, मांसादि पुष्टिकारक पदार्थ, ये सब सेवन करने चाहिये, इस लोहको भक्षण करनेसे रक्तपित्त, क्षय, खॉसी, पार्श्वशूल, वातरक्त, प्रमेह शीतपित्त, वमन, ग्लानि, सूजन,पाण्डुरोग, कोढ, प्लीहा, उदररोग, अफारा, मूत्रका स्रवना और अम्लपित्त ये सब रोग नष्ट होतेहैं । यह खंडखाद्य लोह

नेत्रोंको हितकारी पुष्टिका करनेवाला, मैथुनशक्तिको बढानेवाला, मङ्गलरूप, प्रीतिवर्द्धक, आरोग्यदायक, पुत्र उत्पादक, परमोत्तम, कामाग्निबलवर्द्धन, लक्ष्मीजनक और शरीरमें लघुता (हलकापन) करनेवाला है। इस लोहे-पर बकरेका मांस, कबूतरका मांस, तीतरका मांस, कर्कर (केकडा) का मांस, खरगोसका मांस, कुरंग और कृष्णसारादि जीवोंका मांस खाना चाहिये। इस लोहको सेवन करनेवाला मनुष्य नारियलका जल, शिरिआरी, (चौपतिया) का शाक, बथुआ, सूखी मूली, जीवतीका-शाक, परवल, कटेरीके फल, बैंगन, पक्के आम, खजूर और मधुर अनार इन सबको त्याग देवै। जिन पदार्थोंके नामोंमें प्रथम 'कै' आवे ऐसे ककारादि नामवाले समस्त पदार्थ और अनूपदेशके जीवोंका मांस, इनको भी विशेष करके त्यागदेवै। इस लोहमे तीक्ष्ण लोहको मैनशिल और सोनामाखीसे ही केवल मारना ऐसा नहीं समझना चाहिये परन्तु अन्य लोहेकी समान इसमें भी पुटपाक आदि सम्पूर्ण क्रिया करनी चाहिये ॥ ७२-८६ ॥

अथ शतावरीपाकः।

शतावरीमूलकल्कं कल्कात्क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ क्षीरतुल्यं घृतं गव्यं सितया कल्कतुल्यया ॥ ८७ ॥ घृतशेषं पचेत्तत्तु पलार्द्धं लेहयेत्सदा ॥ रक्तपित्तं ह्यम्लपित्तं क्षयं श्वासञ्च नाशयेत् ॥ ८८ ॥

इति रक्तपित्ताधिकारः।

शतावरका कल्क ८ आठ तोले, दूध ३२ बत्तीस तोले, गायका घी ३२ तोले और मिश्री ८ आठ तोले लेवे सबको विधिपूर्वक मिलाकर यथाविधिसे घृतको पकावे। जब पकते पकते घृतमात्र बाकी रहजाय तब उतारलेवे, इसमेंसे, नित्य दो तोले प्रमाण सेवनकरे तो रक्तपित्त, अम्लपित्त, क्षय और श्वास ये नष्ट होतेहैं॥ ८७॥८८

इति रक्तपित्ताधिकारः सम्पूर्णः।

(१) कटुक, कडवे परवल, कालशाक, कूष्माण्ड (पेठा), ककडी, करेला, कलिंग (तरबूज), कर्कन्धु (बेर), कांदा, कतकफल, केला और कांजी इत्यादि जानने।

अथाम्लपित्तश्लेष्मपित्ताधिकारः।

तत्राम्लपित्तविप्रकृष्टनिदानम्।

विरुद्धदुष्टाम्लविदाहिपित्तप्रकोपिपानान्नभुजो विदग्धम् ॥ पित्तं स्वहेतूपचितं पुरा यत्तदम्लपित्तं प्रवदन्ति सन्तः ॥ १ ॥

दुष्टं व्यापन्नमन्नम्। पित्तप्रकोपि इत्युक्तेऽपि अम्लविदाहि इति विशेषार्थम्। पित्तप्रकोपि पानं तक्रसुरादि। अन्नं माषादि स्वहेतूपचितं पुरा यत् वर्षास्वम्लविपाकैः जलैः औषधीभिश्च तादृशीभिरुपचितम् सञ्चितम् अम्लपित्तम्। तदम्लपित्तं वदन्ति अम्लपित्ताख्यं रोगं वदन्ति ॥

विरुद्ध (संयोग विरुद्ध जैसे दूध मछली), दुष्ट (बिगडा हुवा भोजन), खट्टा, दाहकारक और पित्तको कुपित करनेवाले अन्न पानोंको जो मनुष्य खाता पीताहै उसके अम्लपाकको प्राप्त हुआ पित्त प्रथम वर्षादि ऋतुओंमें अम्लपाकी जलोंसे तथा ऐसी औषधियोंसे सञ्चित हुआ पित्त कुपित होताहै उसको महात्मा वैद्य अम्लपित्तरोग कहतेहैं।

यद्यपि पित्तको कुपित करनेवाले, इतना ही कहनेसे खट्टे और दाहकारकका समावेश होताहै तथापि खट्टे और दाहकारक, यह अलग कहेहै, इस कहनेका अभिप्राय यह है कि पित्तका विशेष प्रकोप होताहै, छाँछ तथा मदिरा आदि पान पदार्थ और उडद आदि अन्न पित्तको कुपित करनेवाले जानने ॥ १ ॥

अथाम्लपित्तरोगलक्षणम्।

अविपाकः क्लमोत्क्लेशस्तिक्ताम्लोद्गारगौरवैः ॥ हृत्कण्ठदाहाऽरुचिभिरम्लपित्तं वदेद्भिषक् ॥ अम्लपित्तं द्विधा प्रोक्तमधोगं च तथोर्द्ध्वगम् ॥ २ ॥

अन्नादिकका नहीं पचना, ग्लानि, वमन कीसी इच्छाका होना, कडवी और खट्टी डकारोंका आना

शरीरमे भारीपन, हृदय और गलेमें दाह और अरुचि इन लक्षणोंके होनेसे अम्लपित्तरोग कहना चाहिये ।

अम्लपित्तके दो भेद ।

ऊर्ध्वग (ऊंची गतिवाला) और अधोग (नीची गतिवाला) ऐसे अम्लपित्त रोग दो प्रकारका है ॥ २ ॥

अथोर्द्धगाम्लपित्तलक्षणम् ।

वान्तं हरित्पीतमनीलकृष्णमारक्त क्ताममतीव चाच्छम् ॥ मत्स्योदकाभं त्वतिपिच्छिलाभं श्लेष्मानुजातं सहितं रसेन ॥ ३ ॥

आरक्तम् ईषल्लोहितम् रक्ताभं वा । अतीव चाच्छं निर्मलम् । रसेन लवणकटुतिक्तरूपेण ॥

हरे, पीले, नीले, काले, किंचित् लाल, लाल, अत्यन्त निर्मल, मछलीके धोवनकी समान, अत्यंत चिकने पिच्छिल, कफसयुक्त और खारे तीखे तथा कडवे रसवाले ऐसे पित्त चमनमे गिरते होयँ तो ऊर्ध्वग अम्लपित्त जानना ॥ ३ ॥

अथाधोगाम्लपित्तलक्षणम् ।

तृड्दाहमूर्च्छाभ्रममोहकारि प्रयात्यधो वा विविधप्रकारम्॥हृल्लासकोठानलसादहर्षस्वेदांगपीतत्वकरं कदाचित् ॥ ४ ॥

मूर्च्छा सर्वदा ज्ञानशून्यता । मोहो विपरीतं ज्ञानम् । अधो वांते वा शब्द ऊर्द्धगापेक्षया । विविधप्रकारम् हरिद्रावर्णयोगात् । कदाचिद्धृल्लासादिकरं च भवति ॥

तृषा, दाह, मूर्च्छा, भ्रम और मोहको करनेवाला, उबकाई, मन्दाग्नि, रोमाचोंका होना, पसीना, अगोंमें पीलापन इत्यादि विकारोको करनेवाला जो अम्लपित्त गुदाके मार्गसे वहताहै उसको अधोग अम्लपित्त कहतेहैं ॥ ४ ॥

अथाम्लपित्तविशेषावस्था ।

भुक्ते विदग्धेऽप्यथ वाप्यभुक्ते करोति तिक्ताम्लवमिं कदाचित् ॥ उद्गारमेवंविधमेव कण्ठहृत्कुक्षिदाहं शिरसो रुजश्च ॥ ॥ ५ ॥ करचरणदाहमौष्ण्यं महतीमरुचि ज्वरं च कफपित्तम् ॥ जनयति कण्डूमंडलपिडिकाशतनिचितरोगचयम् ॥ ६ ॥

भुक्ते विदग्धे तिक्ताम्लवमिं करोति । तथा उद्गारम् एवंविधमेव तिक्ताम्लमेव करोति । अथ वा कदाचिद्भुक्तेऽपि तिक्ताम्लां वान्तिं करोति । तथा कण्ठहृत्कुक्षिदाहं शिरोरुजश्च करोति । तथा करचरणदाहादिकं जनयति । तथा कच्छूमण्डलपिडकाव्याप्तगात्रे रोगचयं करोति । अन्नविपाकक्लमादिकं जनयति ॥

भोजन करनेपर जब अन्नका विदग्ध पाक होताहै अथवा कदाचित् विनाही भोजन करनेपर कडवी और खट्टी वमन आवैहै, तथा कडवी और खट्टी डकार आवै है, कंठमे हृदयमे और कोखमें दाह होतीहै ।शिरमे पीडा, हाथ और पावोंमें दाह, सताप होतीहै. भयकर अरुचिको उत्पन्न करैहै, कफ और पित्तजनित ज्वर होताहै, तथा खुजली मण्डलाकार चकत्ते और फुडियोंसे व्याप्त देहमे अन्नका विदग्ध पाक एव ग्लानि आदि रोगोंके समूहको उत्पन्न करैहै ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथाम्लपित्ते दोषससर्गः ।

सानिलं सानिलकफं सकफं तच्च लक्षयेत्॥ दोषलिंगेन मतिमान्भिषङ्मोहकरं हि तत् ॥७॥

ऊर्द्धाधः प्रवृत्त्या छर्द्यतीसाराभ्यां तुल्यतया वैद्यभ्रान्तिकृत् ।

बुद्धिमान् वैद्य दोषोके चिह्नोंसे जाने कि, यह अम्लपित्त वातसम्बन्धी है अथवा वात और कफ इन दोनोंके संसर्गवाला है, या कफसम्बन्धी है, यह अवश्य जानना चाहिये क्यों कि, यदि यह अम्लपित्त ऊर्ध्वगतिसे होय तो वमनकी शान्ति होतीहै और अधोगतिसे होय तो अतिसार प्रतीत होताहै यहां वैद्यको भ्रम उत्पन्न होताहै । इसलिये खूब विचारकर निदान करै जिसमें किसी प्रकारका सन्देह न रहै ॥ ७ ॥

अथ दोषभेदेन लक्षणभेदः ।

कंपप्रलापमूर्च्छाश्चिमिचिमिगात्रावसादशू-

लानि ॥ तमसो दर्शनविभ्रमप्रमोहहर्षास्तथानिलेन युतेन ॥ कफनिष्ठीवनगौरवजडतारुचिशीतसादवमिलेपाः ॥ दहनबलहानिकण्डूनिद्राचिह्नं कफानुगे भवति उभयमिदमेव चिह्नं मारुतकफसंभवेऽम्लपित्ते स्यात् ॥ ८ ॥

चिमिचिमि झिनिझिनीति लोके । हर्षो रोमाञ्चः ॥

वातज अम्लपित्तमे कंप, प्रलाप (बकवाद), मूर्च्छा, सब शरीरमे झनझनाहट, ग्लानि, अन्धकारदर्शन, विभ्रम, मोह रोमाचोंका होना ये सब लक्षण होतेहैं । कफज अम्लपित्तमें कफका थूकना, शरीरमें भारीपन, जडता, अरुचि, शीत, ग्लानि, वमन, मुखमें और छातीमें कफ लिसासा रहै जठराग्निके बलका नाश, खुजली और निद्राका अधिक आना ये सब लक्षण होतेहैं । वात और कफ दोनों दोषोंसे जो अम्लपित्त उत्पन्न हुवा होय तो उसमें उपरोक्त दोनों दोषोंके लक्षण होतेहैं ॥ ८ ॥

अथाम्लपित्तसाध्यासाध्यविचारः ।

रोगोऽयमम्लपित्ताख्यो यत्नात्संसाध्यते नवः ॥ चिरोत्थितो भवेद्याप्यः कृच्छ्रसाध्यः स कस्यचित् ॥ ९ ॥

कस्यचिद्धीनाहाराचारशीलस्य ॥

यह अम्लपित्त रोग जो थोडे ही दिनोंसे उत्पन्न हुआ होय तो औषधि करनेसे साध्य होताहै । बहुत दिनोंसे उत्पन्न हुआ होय तो याप्य जानना और अयोग्य आहार विहारवाले मनुष्यको तो थोडे ही दिनोंका उत्पन्न हुवा कष्टसाध्य जानना ॥ ९ ॥

अथ कफपित्तलक्षणम् ।

तमो मूर्च्छारुचिश्छर्दिरालस्यं च शिरोरुजा ॥ प्रसेको मुखमाधुर्यं श्लेष्मपित्तस्य लक्षणम् ॥ १० ॥

अन्धकारदर्शन, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, आलस्य, मस्तकमें पीडा, मुखसे लारका गिरना और मुखमे मधुरताका होना, ये कफपित्तके लक्षण जानने ॥ १० ॥

अथाम्लपित्तचिकित्सा ।

अम्लपित्ते तु वमनं पटोलारिष्टवासकैः ॥ कारयेन्मदनैः क्षौद्रैः सैन्धवैश्च तथा भिषक् ॥ ११ ॥ विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं मधुधात्रीफलद्रवैः ॥ ऊर्द्ध्वगं वमनैर्विद्वानधोगं रेचनैर्हरेत् ॥ १२ ॥

अम्लपित्तमिति शेषः ॥

यवगोधूमविकृतीस्तीक्ष्णसंस्कारवर्जिताः ॥ यथास्वं लाजसक्तून्वा सितामधुयुतान्पिबेत् ॥ १३ ॥ निस्तुषयववृषधात्रीक्वथितं सलिलं त्रिगन्धमधुयुक्तम् ॥ द्रुततरमपहरति वमिं सञ्जनितामम्लपित्तेन ॥ १४ ॥ छिन्नोद्भवानिम्बपटोलपत्रं क्षौद्रान्वितं पीतमनेकरूपम् ॥ सुदारुणं हन्ति तदम्लपित्तं यथाशनिस्तालतरुं प्रवृद्धम् ॥ १५ ॥ वासामृतापर्पटकनिम्बभूनिम्बमार्कवैः ॥ त्रिफलाकुलकैः क्वाथः सक्षौद्रश्चाम्लपित्तहा ॥ १६ ॥ पाटापटोलयवचन्दनधान्यधात्रीवासावरांगदलनागकणाभयाभिः ॥ लेहः सिताज्यमधुभिः शिलपालपिण्डी हन्त्यम्लपित्तमरुचिज्वरदाहशोषान् ॥ १७ ॥ हंत्यम्लपित्तवमनारुचिदाहमोहखालित्यमेहशिशिरव्रणशुक्रदोषान् ॥ भुक्त्वा नरः सततमामलकीरसेन वृद्धोऽप्यनेन हि भवेत्तरुणो रिरंसुः ॥ १८ ॥

अम्लपित्तरोगमें प्रथम वैद्य पटोल (कडवे परवल), नीम, अडूसा, मैनफल, सहत और सैंधे निमकके क्वाथसे वमन करावै तथा निसोतका चूर्ण, सहत और आमलोंका रस इनके द्वारा विरेचन करावे । ऊर्ध्वगत अम्लपित्तको वमन कराकर दूर करे और अधोगत अम्लपित्तको विरेचन (दस्त) कराकर दूर करे ।

जौ अथवा गेहूके बनाये हुए यूषादि पदार्थ और उनमें मिरचादिक तीक्ष्ण वस्तु न पडी होयँ ऐसे पदार्थ पीने चाहिये अथवा भक्षण करने चाहिये,

तथा खीलेके सत्तुओंमें मिश्री और सहत मिलाकर दोषोंको विचारकर पियै।

तुषरहित जौ, अडूसा और आमला इनका क्वाथ बनाकर उसमे दालचीनी, तेजपात, इलायची और सहत डालकर पियै तो अम्लपित्तसे उत्पन्न हुई वमन तत्काल नष्ट होजातीहै।

गिलोय, नीमके पत्ते और कडवे परवलके पत्ते इनको एकत्र पीसकर सहत मिलाकर पीनेसे जिसप्रकार वज्रसे बडे बडे ताडके वृक्ष नष्ट होजाते है उसी प्रकार इससे अनेक रूपवाले महादारुण रक्तपित्त नष्ट होजाते हैं॥

अडूसा, गिलोय, पित्तपापडा, नीमकी छाल, चिरायता, भांगरा, हरड, बहेडा, आमले और कडवे परवल इनका क्वाथ बनाकर सहत मिलाकर पीनेसे अम्लपित्त नष्ट होजाताहै॥

पाठ, पटोलपत्र, इन्द्रजौ, धनिया, आमला, अडूसा, दालचीनी, तमालपत्र, नागकेशर, पीपल, हरड, खाड, कमल और सहत इनका अवलेह बनावै, इस अवलेहको 'शिवपालपिंडी' कहतेहैं। यह अवलेह अम्लपित्त, अरुचि, ज्वर, दाह और शोषको नष्ट करैहै॥

जो मनुष्य नित्य आमलेंके रसके साथ भोजन करता है तो उसके अम्लपित्त, वमन, अरुचि, दाह, मोह, खालित्य, प्रमेह, शीत, व्रण और समस्त वीर्यके विकार नष्ट होजातेहैं, इसके प्रतापसे वृद्ध मनुष्य भी स्त्रियोंके साथ गमन करनेकी इच्छा करताहै॥ ११-१८॥

अथ खण्डकूष्माण्डकावलेहः।

कूष्माण्डकरसो ग्राह्यः पलानां शतमात्रकम्॥ रसतुल्यं गवां क्षीरं धात्रीचूर्णं पलाष्टकम्॥१९॥ धात्रीतुल्या सिता योज्या गव्यमाज्यं पलद्वयम्॥ मन्दाग्निना पचेत्सर्वं यावद्भवति पिण्डितम्॥२०॥ पलार्द्धं पलमेकं वा प्रत्यहं भक्षयेदिदम्॥ खण्डकूष्माण्डकं ख्यातमम्लपित्तापहं परम्॥ २१॥

उत्तम पेठेका रस ४०० चारसौ तोले, गायका दूध ४०० चारसौ तोले, आमलेका चूर्ण ३२ बत्तीस तोले, खाड ३२ बत्तीस तोले आर गायका घी ८ आठ तोले लेवे सबको एकत्र करके तबतक पकावै जबतक पिंड बँधे, यह 'खडकूष्माण्डक' इस नामसे प्रसिद्ध है। इस अवलेहमेंसे प्रतिदिन दो तोले अथवा चार तोले खाय तो अम्लपित्त अच्छे प्रकारसे नष्ट होजाताहै॥ १९-२१॥

अथ नारिकेलखंडः।

कुडवं नारिकेलस्य जले मृद्वग्निना पचेत्॥ नारिकेलजलालाभे गव्ये पयसि तत्पचेत्॥ ॥२२॥ धान्यकं पिप्पली मुस्तं चातुर्जातं विचूर्णितम्॥ प्रत्येकं टंकमात्रं तु शीते तस्मिन्विनिक्षिपेत्॥ २३॥ पलमात्रस्तदर्द्धोऽपि भक्षितः प्रत्यहं नरैः॥ नारिकेलकखण्डोऽयं पुंस्त्वनिद्राबलप्रदः २४॥ अम्लपित्तं रक्तपित्तं शूलञ्च परिणामजम्॥ क्षयं क्षपयति क्षिप्रं शुष्कं दावानलो यथा॥ २५॥

पलमात्रगव्यघृतेन नारिकेलस्य भर्जनं कर्तव्यमिति सम्प्रदायः॥

नारियलकी गिरी १६ सोलह तोले, लेकर नारियलके जलमें अथवा नारियलका जल न मिले तो गायके दूधमें पकावै, जब पकते पकते गाढा होजाय तब उसमे धनिया, पीपल, नागरमोथा, दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेशर इन प्रत्येक औषधियोंका चूर्ण २४ चौवीस २४ चौवीस रत्तीभर मिला देवे तो "नारिकेलखड" सिद्ध होताहै। प्रतिदिन इस औषधिमेंसे ४ चार तोले अथवा २ दो तोलेभर नित्य खाय तो इससे पुरुपत्व, निद्रा और बलकी प्राप्ति होतीहै। अम्लपित्त, रक्तपित्त, क्षय और परिणाम शूल ये सब नष्ट होजातेहैं जिसप्रकार दावानलसे सूखे वनका नाश होताहै। इस औषधिमे प्रथम चार तोले गायके घीमें नारियलकी गिरीको भूनना चाहिये॥ २२-२५॥

अथ बृहन्नारिकेलखंडः।

प्रस्थन्तु नारिकेलस्य सूक्ष्मं दृषदि पेषितम्॥ निष्कुलीकृतकूष्माण्डखण्डानामर्द्धमाढकम्॥ २६॥ तद्द्वयं भर्जयेद्गव्ये

घृते तु कुडवोन्मिते॥ततस्तत्र क्षिपेच्छुद्धं गोदुग्धश्चाढकोन्मितम् ॥ २७ ॥ तत्रैव निक्षिपेद्द्रव्यां सितां प्रस्थद्वयोन्मिताम् ॥ पचेत्सर्वाणि चैकत्र मृदुना वह्निना भिषक् ॥ २८ ॥ सुपक्वे शीतले तत्र चूर्णीकृत्य विनिक्षिपेत्॥सूक्ष्मैलां धान्यकं धात्री पर्पटं जलदं जलम् ॥ २९ ॥ उशीरं चन्दनं द्राक्षां शृङ्गाटश्च कशेरुकम् ॥ त्वक्पत्रकं सकर्पूरं कर्षयुग्मं पृथक्पृथक् ॥ ॥३०॥ सर्वं संमिश्रयेद्रक्षेद्भाजने मृन्मये नवे॥पलमात्रमिदं प्रातर्भक्षयेद्वा यथानलम् ॥ ३१ ॥ एतन्निषेवितं हन्ति रोगानेतान्न संशयः॥ अम्लपित्तं ज्वरं पित्तं रक्तपित्तमरोचकम् ॥ ३२॥ वातरक्तं तृषां दाहं पाण्डुरोगश्च कामलाम् ॥ क्षयं क्षपयति क्षिप्रं शूलश्च परिणामजम् ॥ ३३ ॥ नारिकेलस्य खण्डाऽयमश्विभ्यां भाषितः पुरा॥ वर्णदो बृंहणो वृष्यः पुंस्त्वनिद्राबलप्रदः ॥ ३४ ॥

पत्थरपर बारीक पिसा हुआ नारियल ६४ चौंसठ तोले छुकले और बीजोंसे रहित पेठेके टुकडे १२८ एकसौ अठाईस तोले लेवे, सबको १६ सोलह तोले गायके घीमें भूनकर पश्चात् उसमें २५६ दोसौ छप्पन तोले उत्तम गायका दूध और १२८ एक सौ अठाईस तोले उत्तम स्वच्छ खाड डाले, फिर सबको मंद मंद अग्निसे धीरे धीरे पकावै जब उत्तम विधिसे पककर तैयार होजाय तब उसको शीतल करके उसमें छोटी इलायची, धनियॉ, आमले, पित्तपापडा, नागरमोथा, सुगंधवाला, खस, चंदन, दाख, सिंघाडे, कसेरू, तज, तेजपत्र और भीमसेनी कपूर ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले लेकर सबका चूर्ण करके मिलादेवे, तो यह 'बृहन्नारिकेल खंड' सिद्ध होताहै । इस औषधिको मट्टीके नवीन बासनमें रखना चाहिये । इस औषधिमेंसे चार तोले भर अथवा अपनी अग्निके बलानुसार प्रात:काल खाय । इसको सेवन करनेसे—अम्लपित्त, ज्वर, पित्त, रक्तपित्त, अरोचक, वातरक्त, तृषा, दाह, पाण्डुरोग, कामला, क्षय और परिणामशूल इन सबका तत्काल नाश होजाताहै । पूर्वकालमें श्रीमान् अश्विनीकुमारोंका कहा हुआ यह नारिकेल खंड शरीरके वर्णको सुंदर करताहै धातुको पुष्ट करताहै, कामी मनुष्योंके लिये परम हितकारी है और पुरुषत्व, निद्रा तथा बलको बढानेवाला है ॥ २६–३४ ॥

अथ कफपित्तचिकित्सा ।

अभया पिप्पली द्राक्षा सिताधान्ययवासकम् ॥ मधुना कण्ठदाहघ्नं पित्तश्लेष्महरं परम् ॥ ३५ ॥ पटोलयवधान्याकपिप्पल्यामलकानि च ॥ एषां क्षौद्रयुतः क्वाथः पित्तश्लेष्महरः परः ॥३६॥ पित्तश्लेष्मवमीकण्डूकोठविस्फोटदाहनुत् ॥ दीपनः पाचनः क्वाथः शृङ्गवेरपटोलयोः ॥ ३७ ॥ पिप्पलीखण्डपथ्याभिस्तुल्याभिर्मोदकः कृतः ॥ पित्तश्लेष्महरो भुक्तो वह्निमान्द्यं च नाशयेत् ॥ ३८ ॥

हरड, पीपल, दाख, खॉड, धनिया और जवासा इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर चाटनेसे कफपित्त और कंठका दाह दूर होताहै ॥

कडवे परवल, इन्द्रजौ, धनिया पीपल और आमला इनका क्वाथ बनाकर सहत मिलाकर पीनेसे श्लेष्मपित्त नष्ट होजाताहै ॥

अदरख और परवल इनका क्वाथ बनाकर पिये तो यह अग्निको दीपन करनेवाला, पाचन और कफ पित्त, वमन, खुजली, चकत्ते, फोडे और दाहको नष्ट करैहै ॥

पीपल, खाड और हरड इनको समान भाग लेकर लड्डू बनाकर खानेसे कफपित्त और अग्निकी मंदता दूर होतीहै ॥ ३५–३८ ॥

इति अम्लपित्तश्लेष्मपित्ताधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ क्षयरोगाधिकारः ।

तत्र क्षयरोगविप्रकृष्टसन्निकृष्टनिदानम् ।

वेगरोधात्क्षयाच्चैव साहसाद्विषमाशनात्॥

त्रिदोषो जायते यक्ष्मा गदो हेतुचतुष्टयात् ॥ १ ॥

वेगोत्र—"वातमूत्रपुरीषाणि निगृह्णाति यदा नरः"। इति चरकवचनात्। क्षयात्क्षीयतेऽनेनेति क्षयः। तेन अतिव्यवायानशनेर्ष्यादयो धातुक्षयहेतवः क्षयशब्देन उच्यन्ते। साहसाद्बलवता समं मल्लयुद्धादितः। विषमाशनात् "बहुस्तोकमकालं वा भुक्तं तद्विषमाशनम्"। तस्मात्। त्रिदोषः सान्निपातिकः। हेतुचतुष्टयात् अन्येऽपि हेतवो हेतुचतुष्टय एव अन्तर्भवन्ति। यक्ष्मणः पर्याया राजयक्ष्मक्षयशोषाः।

अधोवायु आदिके वेगोको रोकनेसे क्षयरोग उत्पन्न होताहै, चरकमे भी कहा है. कि "मनुष्य लज्जा अथवा भय आदि किसी कारणसे जब वायु, मूत्र और मलादिकके वेगोंको रोकताहै तब उसके रोगोंकी उत्पत्ति होतीहै"। अत्यत मैथुन, अत्यत उपवास और अत्यंत ईर्ष्यादि जो धातुओके क्षय होनेके कारण हैं उनसे भी क्षयरोग उत्पन्न होताहै। बलवान्के साथ मल्ल युद्धादिक अथवा द्वेपादिक साहसके कार्य करनेसे भी क्षयरोग उत्पन्न होताहै। बहुत भोजन, बहुत थोडा भोजन अथवा विना समय भोजन करनेसे भी क्षयरोग उत्पन्न होताहै। यह क्षयरोग सान्निपातिक है अर्थात् यह तीनो दोषोंसे होताहै। क्षय, रोगके और भी बहुतसे कारण हैं वह सब इन चार हेतुओके ही अन्तर्भूत हैं ऐसा जानना। यक्ष्मा, राजयक्ष्मा, क्षय और शोप ये चारों इस रोगके नाम हैं ॥ १ ॥

अथ यक्ष्मादिशब्दनिरुक्तिः।

वैद्यो व्याधिमता यस्माद्व्याधेर्यत्नेन यक्ष्यते॥
स यक्ष्मा प्रोच्यते लोके शब्दशास्त्रविशारदैः ॥ २ ॥

यक्ष्यते पूज्यते,

राज्ञश्चन्द्रमसो यस्मादभूदेष किलामयः॥
तस्मात्तं राजयक्ष्मेति प्रवदन्ति मनीषिणः॥
क्रियाक्षयकरत्वाच्च क्षय इत्युच्यते बुधैः॥
संशोषणाद्रसादीनां शोष इत्यभिधीयते ३॥

वैद्य रोगीसे अच्छे प्रकारसे यत्नपूर्वक पूजन अर्थात् पालन कियाजाता है इसकारण शब्दशास्त्रको जाननेवाले विद्वान् इसको 'यक्ष्मा' कहते हैं। प्रथम राजा चद्रमाके यह रोग उत्पन्नहुआ था इसकारण इसको विद्वान् 'राजयक्ष्मा' कहते हैं।

यह सम्पूर्ण क्रियाओका क्षय करताहै इस कारण इसको पडितलोग क्षय कहते है। यह रोग रसादि धातुओकों शोपण करताहै इस कारण इसको 'शोप' ऐसा कहते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ क्षयरोगसम्प्राप्तिः।

कफप्रधानैर्दोषैस्तु रुद्धेषु रसवर्त्मसु ॥ अतिव्यवायिनो वापि क्षीणे रेतस्यनन्तराः॥ क्षीयन्ते धातवः सर्वे ततः शुष्यति मानवः ॥ ४ ॥

कफप्रधानैर्दोषैः रसवर्त्मसु रुद्धेषु अनन्तराः सर्वे धातवः क्षीयन्ते ततो मानवः शुष्यति कारणभूतस्य रसस्य क्षये कार्याणां रक्तादीनामनुक्रमेण क्षीयमाणत्वात्। मार्गावरोधे रसक्षयहेतुमाह चरकः—

रसः स्रोतःसु रुद्धेषु स्वस्थानस्थो विदह्यते ॥ स ऊर्द्ध्वं कासवेगेन बहुरूपः प्रवर्तते ॥ ५ ॥

स्वस्थानस्थः हृदयस्थः। कासं विनापि रसक्षयो भवति। मार्गावरोधकुपितवातेन रसस्य शोषणात् ॥

कफप्रधान वातादि तीनो दोप जब कुपित होते हैं, तब उनसे रसके वहनेवाली नाडियोंके मार्ग रुक जाते है, तब सम्पूर्ण धातु क्षीण होने लगती हैं और धातुओके क्षीण होनेसे मनुष्य भी क्षीण होजाता है। समस्त धातुओके कारण भूत रसके क्षय होनेसे कार्य रूप रुधिर आदि धातुओंका भी अनुक्रमसे क्षय होजाताहै. जब धातु क्षय होने लगती हैं तो

मनुष्यके शरीरका क्षीण होना भी सम्भव है । मार्गोंके रुकनेसे रसके क्षय होनेमें चरक कहतेहैं कि, स्रोतो अर्थात् छिद्रोंके रुक जानेपर हृदयमें रहनेवाले रसका विदाह होजाता है इस प्रकार विदाहको प्राप्तहुआ रस ऊपरसे खासीके वेगसे मुखद्वारा अनेक प्रकारका होकर निकलता है इसको देखकर ऐसा मत समझना कि, खांसीके होनेसे ही रसका क्षय होताहै किन्तु खांसीके विना भी मार्गोके अवरोधसे कुपित वायुसे रसका क्षय होताहै कहा भी है कि, मार्गोंके रुकनेपर वायुके कोपसे भी धातुओंका क्षय होताहै ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ रसक्षयहेतुः ।

वायोर्धातुक्षयात्कोपान्मार्गस्यावरणेन च॥
अनुलोमक्षयं दृष्ट्वा प्रतिलोमक्षयावहः ॥६॥

अति व्यवायिनो वा रेतसि क्षीणे प्रतिलोमक्रमेण अनन्तराः सर्वे धातवो रसपर्यन्ताः क्षीयते । तद्यथा-शुक्रे क्षीणे मज्जा क्षीयते मज्जायां क्षीणायामस्थि क्षीयते एवं पूर्वपूर्वं क्षीयते । ननु कार्यस्य शुक्रस्य क्षये कथं कारणभूतानां मज्जादीनां क्षयः ? उच्यते-शुक्रक्षयात् वायुः कुप्यति । स वायुः सान्निध्यात् क्रमेण मज्जादीन् सर्वान् धातून् शोषयति । ततस्तदनन्तरं मानवः शुष्यति ॥

जिस प्रकार कारणभूत रसके क्षयसे कार्यभूत धातुओंका सीधे क्रमसे क्षय होताहै उसी प्रकार उलटे क्रमसे कार्यभूत वीर्यके क्षयसे कारणभूत धातुओंका भा क्षय होताहै, जैसे अत्यन्त मैथुन करनेवाले पुरुषके वीर्य क्षीण होनेपर वीर्यसे ऊपरकी सम्पूर्ण रस पर्यंत धातु उलटे क्रमसे क्षीण होतीहैं जैसे कि, वीर्यके क्षीण होनेसे मज्जा क्षीण होतीहै, मज्जाके क्षीण होनेसे अस्थि (हड्डी) क्षीण होतीहै, अस्थिके क्षीण होनेपर मेद क्षीण होतीहै, मेदके क्षीण होनेसे मांस क्षीण होताहै, मासके क्षीण होनेपर रुधिर क्षीण होताहै और रुधिरके क्षीण होनेसे रस क्षीण होताहै ।

शंका-कार्यरूप वीर्यके क्षय होनेसे कारणरूप मज्जा आदिका क्षय किस प्रकार होसक्ताहै ? ।

समाधान-वीर्यके क्षय होनेमे वायु कुपित होताहै और वह वायु समीप होनेके कारण अनुक्रमसे मज्जा आदि समस्त धातुओंको शोषण करैहै तो मनुष्य क्षीण होजाताहै ॥ ६ ॥

अथ क्षयरोगपूर्वरूपम् ।

श्वासाङ्गसादकफसंस्रवताल्वशोषवम्यग्निसादमदपीनसकासनिद्राः ॥ शोषे भविष्यति भवन्ति स चापि जन्तुः शुक्लेक्षणो भवति मांसपरो रिरंसुः ॥ ७ ॥ स्वप्नेषु काकशुकशल्लकिनीलकण्ठगृध्रास्तथैव कपयः कृकलासकाश्च ॥ तं वाहयन्ति सनदीर्विजलाश्च पश्येच्छुष्कांस्तरून्पवनधूमदवार्दितांश्च ॥ ८ ॥

जब क्षय रोग होनेको होताहै तब उससे पहिले श्वास, अगोंमे ग्लानि, कफका गिरना, तालूका सूखना, वमन, अग्निकी मंदता, मद (नशा), नाकसे पानीका गिरना (पीनस), खाँसी और निद्रा ये सब लक्षण होतेहैं । और वह मनुष्य मासके खानेकी और स्त्रीप्रसंगकी भी अभिलाषा करताहै और उनके नेत्र सुफेद होजाते हैं और वह सुपनेमें कौआ तोता, शल्लकि (सेई), नीलकंठ, गिद्ध, बन्दर और करकैटा इनपर अपनेको बैठा देखताहै और जल रहित सूखी नदियोंको देखताहै, सूखेहुए तथा पवनसे, धुंवेसे और दावानलसे पीडित वृक्ष उसको दिखाई देते हैं ७॥८

अथ क्षयरोगलक्षणम् ।

अंसपार्श्वाभितापश्च सन्तापः करपादयोः ॥ ज्वरः सर्वाङ्गिकश्चेति लक्षणं राजयक्ष्मणः ॥ ९ ॥

अंसयोः पार्श्वयोश्चाभितापः पीडा । अत्र सकलधातुक्षयपूर्वकः सकलशरीरशोषो बोद्धव्यः । एतानि त्रीणि लक्षणानि प्रायोभावित्वेन चरकेण उक्तानि । सुश्रुतेन यक्ष्मणि षड्लक्षणानि उक्तानि ॥

भक्तद्वेषो ज्वरः श्वासः कासः शोणित-

दर्शनम्॥ स्वरभेदश्च जायन्ते षड्रूपे राजयक्ष्मणि ॥ १० ॥

कंधे और पसलियोमे पीडा, हाथ और पावोमे सताप और सम्पूर्ण अगोमे ज्वर, ये तीन क्षय रोगके लक्षण हैं। इस रोगमें सम्पूर्ण धातुओका क्षय होकर सम्पूर्ण शरीरका शोषण होताहै ऐसा जानना कंधे और पसलियोंमे पीडा आदि जो तीन लक्षण चरकमे कहेहैं वह तो होनहारके कहे हैं परंतु सुश्रुतमे और छः लक्षण कहेहैं जैसे अन्नमें अरुचि, ज्वर, श्वास, खाँसी, रुधिरका दर्शन और स्वरभेद ये छः लक्षण क्षय रोगमें होतेहैं ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ दोषोल्वणताविशेषेण लक्षणम्।

स्वरभेदोऽनिलाच्छूलं संकोचश्चांसपार्श्वयोः॥ ज्वरो दाहोऽतिसारश्च पित्ताद्रक्तस्य चागमः ॥ ११ ॥ शिरसः परिपूर्णत्वमभक्तच्छन्द एव च ॥ कासः कण्ठस्य च ध्वंसो विज्ञेयः कफकोपतः ॥ १२ ॥

अनिलादुल्वणात्। एवं पित्तात्कफाच्च। यत आह सुश्रुतः–

एक एव मतः शोषः सन्निपातात्मको गदः। उद्रेकात्तत्र लिङ्गानि दोषाणां निपतन्ति हि ॥ १३ ॥

वायुकी उल्वणता होय तो स्वरभेद, शूल, कंधे और पसलियोंमे सकोच होताहै। पित्तकी उल्वणता होय तो ज्वर, दाह, अतिसार और रुधिर निकलताहै। कफकी उल्वणता होय तो शिरमें भारीपन, अन्नमें अरुचि, खाँसी और कठका जडकना ये सब लक्षण होतेहैं। सुश्रुत कहताहै कि, यह क्षय रोग तीनों दोषोंका सन्निपात रूप होनेसे एकही प्रकारका मानाजाताहै तो भी उसमे दोषोकी उल्वणता होनेसे उनहीं उन दोषोंके चिह्न देखेजातेहैं ॥ ११–१३ ॥

अथ क्षयरोगासाध्यता।

एकादशभिरेभिर्वा षड्भिर्वापि समन्वितम्॥ त्रिभिर्वा पीडितं लिङ्गैर्ज्वरकासासृगामयैः ॥ जह्याच्छोषार्दितं जन्तुमिच्छन्सुविमलं यशः ॥ १४ ॥

निर्मल कीर्तिकी इच्छा करनेवाले वैद्य उक्त ग्यारह, अथवा छः अथवा ज्वर, खांसी और रुधिरकी वमन ये तीन लक्षणोंसे पीडित क्षयरोगीको छोडदेतेहैं ॥ १४ ॥

अथ विशेषता।

सर्वैं रर्द्धैस्त्रिभिर्वापि लिंगैर्मांसबलक्षये ॥ युक्तो वर्ज्यश्चिकित्स्यस्तु सर्वरूपोऽप्यतोऽन्यथा ॥ १५ ॥

सर्वैर्लिंगैरेकादशभिः। अर्द्धैः षड्भिः। त्रिभिर्ज्वरकासरुधिरवमनैः। अतोऽन्यथा मांसबले सति सर्वरूपोऽपि न प्रत्याख्येयः किंतु चिकित्स्यः॥

महाशन क्षीयमाणमरोचकनिपीडितम्॥ शूनमुष्कोदरञ्चैव यक्ष्मिणं परिवर्जयेत् ॥ १६ ॥

महाशनं क्षीयमाणमित्येकमसाध्यं लक्षणम्। अतीसारनिपीडितमिति द्वितीयम्॥ मलायत्तं बलं पुंसां शुक्रायत्तञ्च जीवितम् ॥ तस्माद्यत्नेन संरक्षेद्यक्ष्मिणो मलरेतसी ॥ १७ ॥

शूनमुष्कोदरमिति तृतीयम्॥

परन्तु जिस रोगीके मास और बलका क्षय होगया हो उसको इन ग्यारह लक्षणों अथवा छः लक्षणों किंवा तीन लक्षणोयुक्त जानकर छोडदेवे किंतु जिनका मांस और बलक्षय नहीं हुआ होय उसको सपूर्ण लक्षणोंयुक्त होनेपर नहीं छोडना चाहिये, उसकी चिकित्सा करनी चाहिये।

जो क्षयरोगी अधिक भोजन करनेपर भी क्षीण होताजाय तो उसको असाध्य समझकर वैद्य त्यागदेवे अर्थात् उसकी चिकित्सा न करे।

जो क्षयरोगी अतीसारसे पीडित होय उसकी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये, कहा भी है कि, मनुष्योंका बल मलके अधीन है और जीवन वीर्यके अधीन है, इस लिये क्षयरोगीके मल और वीर्यकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये।

जिस क्षयरोगीके वृषण (अण्डकोश) और उदर सूजगया हो उसकी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ १५–१७ ॥

अथ क्षयरोगारिष्टम् ।

शुक्लाक्षमन्नद्वेष्टारमूर्द्ध्वश्वासनिपीडितम ॥ कृच्छ्रेण वहु मेहन्तं यक्ष्मा हन्तीह मानवम् ॥ १८ ॥

मेहन्तं शुक्रं क्षरन्तम् । शुक्लाक्षत्वाद्येकैकशोऽरिष्टलक्षणम् ॥

जिस क्षयरोगीकी आखें सफेद होगई हो अन्नमें अरुचि हो, ऊर्द्धश्वाससे पीडितहो, अथवा कष्टसे बहुत सा वीर्य गिरता होय, उस रोगीको अवश्य यह क्षयरोग मारदेताहै ॥ १८ ॥

अथ क्षयरोगिणो जीवनावधिः ।

परं दिनसहस्रन्तु यदि जीवति मानवः ॥ सुभिषग्भिरुपक्रान्तस्तरुणः शोषपीडितः ॥ १९ ॥

शोषपीडितो मानवश्चेत्तरुणो भवति सुभिषग्भिरुपक्रान्तो भवति तदा परं दिनसहस्रं द्वितीयं दिनसहस्रं यदि जीवति तत्र जीवनविकल्प इत्यर्थः । एतेन शोषपीडितो मानवश्चेत्तरुणो भवति सद्वैद्यैश्चिकित्सितो भवति तदा प्रथमंदिनसहस्रं जीवेदेवेत्युक्तम् ॥

क्षयरोगसे पीडित मनुष्य जो तरुण हो और उत्तम वैद्यके द्वारा चिकित्सा कीजाय तो एक हजार दिन तक जीताहै, यह परम अवधि कही है ॥ १९ ॥

अथ क्षयरोगिचिकित्सा ।

ज्वरानुवन्धरहितं वलवन्तं क्रियासहम् ॥ उपक्रमेदात्मवन्तं दीप्ताग्निमकृशं नरम् २० ॥ आत्मवन्तं यत्नवन्तं धृतिवन्तं वा ॥

जो क्षयरोगी ज्वरकी पीडासे रहित, वलवान्, चिकित्सा सम्बन्धी क्रियाओंको सहसके, यत्नवाला, धीरजवान्, प्रदीप्त अग्निवाला और जो कृश न हो ऐसे यक्ष्मरोगीकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २० ॥

अथ निदानविशेषेण शोषविशेषः ।

व्यवायशोकवार्द्धक्यव्यायामाध्वप्रशोषितान् ॥ व्रणोरःक्षतसंज्ञौ च शोषिणौ लक्षणैः शृणु ॥ २१ ॥

व्रणशोषी उरःक्षतशोषी च ॥

अत्यन्त मैथुन करनेसे जो शोष होताहै उसको 'व्यवायशोष' कहते है । शोकसे उत्पन्नहुए शोषको 'शोकशोष' कहतेहैं । वृद्ध अवस्थासे उत्पन्नहुए शोषको 'वार्द्धक्यशोष' कहतेहैं दण्डकसरत आदिके करनेसे उत्पन्न हुए शोषको ' व्यायामशोष ' कहतेहैं । अधिक मार्गके चलनेसे उत्पन्न हुए शोषको 'अध्वशोष' कहतेहैं । व्रण होनेके कारण उत्पन्न हुए शोषको 'व्रणशोष' कहतेहैं । और छातीमे क्षतके होनेसे उत्पन्नहुए शोषको 'उरःक्षतशोष' कहतेहैं । अव इनके अलग अलग लक्षण कहतेहैं सो सुनो ॥ २१ ॥

अथ व्यवायशोषलक्षणम् ।

व्यवायशोषी शुक्रस्य क्षयलिंगैरुपद्रुतः ॥ पाण्डुदेहो यथापूर्वं क्षीयन्ते चास्य धातवः ॥ २२ ॥

शुक्रस्य क्षयलिंगैः सुश्रुतोक्तैः । तानि यथाशुक्रक्षये मेढ्रवृषणवेदना, व्यवाये चाशक्तिः । चिराद्वा प्रसेकः, प्रसेके अल्पशुक्रदर्शनमिति । यथापूर्वं क्षीयन्ते च अस्य धातवः प्रथमं शुक्रं क्षीयते पश्चाच्छुक्रक्षयजनितवायुना मज्जादयोऽपि धातवो यथापूर्वं क्षीयन्ते ॥

व्यवायशोषमें सुश्रुतमें कहेहुए सम्पूर्ण वीर्यक्षयके चिह्न होतेहैं अर्थात् लिंग और अण्डकोषोंमें पीडा होतीहै, मैथुन करनेमें अशक्तता, अथवा मैथुन करते समय अनेक वार वीर्य स्खलित होताहै और वहुत थोडा वीर्य निकलताहै, और उस रोगीका शरीर पाण्डुवर्ण होजाताहै, तथा प्रथम वीर्यके क्षीण होनेसे फिर उसकी क्षीणतासे वायुके कुपित होनेके कारण ऊपरकी मज्जादि धातुऐं भी अनुक्रमसे क्षीण होजातीहैं ॥ २२ ॥

अथ शोकशोषलक्षणम् ।

प्रध्यानशीलः स्रस्तांगः शोकशोष्यपि तादृशः ॥ विना शुक्रक्षयकृतैर्विकारैरुपलक्षितः ॥ २३ ॥

प्रध्यानशीलः यस्याभावेन शोको जनितस्तद्ध्यानपरः । स्रस्ताङ्गः शिथिलाङ्गः । तादृशः व्यवायशोषिसदृशः । तेन शुक्रादिसर्वधातुक्षययुक्तो भवति । परं शुक्रक्षयकृतैर्विकारैर्मेढ्रवृषणवेदनादिभिर्वर्जितो भवति व्याधिस्वभावात् ॥

शोकशोषमें रोगीके जिस वस्तुके अभावसे शोक हुआ होय उसी वस्तुका सदैव ध्यान करताहै, उसके अंग शिथिल होजातेहै और व्यवायशोषवाले रोगीकी समान शुक्रादि सम्पूर्ण धातुओके क्षयसे युक्त होजाताहै किंतु व्याधिके स्वभावसे उसके लिंगमें और अंडकोषोंमे पीडा आदि उपद्रव नहीं होते ॥ २३ ॥

अथ वार्द्धक्यशोषलक्षणम् ।

जराशोषी कृशो मन्दवीर्यबुद्धिबलेन्द्रियः॥ कम्पनोऽरुचिमान्भिन्नकांस्यपात्रहतस्वरः॥ ॥२४॥ ष्ठीवति श्लेष्मणा हीनं गौरवारुचिपीडितः॥संप्रस्रुतास्यनासाक्षः शुष्करूक्षमलच्छविः ॥ प्रसुप्तगात्रावयवः शुष्कक्लोमगलाननः ॥ २५ ॥

मन्दशब्दः स्वल्पार्थः शुष्करूक्षमलच्छविः शुष्के रूक्षे मलच्छवी यस्य सः । प्रसुप्तगात्रावयवः प्रसुप्तः स्पर्शाज्ञः । क्लोम पिपासास्थानम् ॥

वार्द्धक्यशोषवाले मनुष्यका शरीर कृश (दुबला) होजाताहै, वीर्य, बल, बुद्धि और इन्द्रियें मन्द होजाती है, कम्प होताहै, शरीरकी शोभा नष्ट होजातीहै, कासेके फूटे बासनके शब्दकी समान स्वर होजाताहै, थूकनेमें कफ नहीं आता, भारीपन और अरुचिसे पीडित होताहै । मुख, नाक और आखोमेसे पानी बहता रहताहै, विष्ठा और शरीरका रंग सूखा और रूखा होजाताहै ॥ २४ ॥ २५ ॥

अथाध्वशोषलक्षणम् ।

अध्वप्रशोषी स्रस्तांगः सम्भृष्टपरुषच्छविः ॥

सम्भृष्टपरुषच्छविः सम्भृष्टस्येव परुषा छविः यस्य सः ॥

अध्वशोषमें मनुष्यके अंग शिथिल होजातेहैं, शरीरकी कांति अग्निमें भुने हुए पदार्थकी समान और खरदरी होजातीहै शरीरके अवयवोको स्पर्श करनेसे स्पर्शका ज्ञान नष्ट होजाताहै और तृषा लगनेका स्थान, गला और मुख ये सूख जाते हैं ॥

अथ व्यायामशोषिलक्षणम् ।

व्यायामशोषी भूयिष्ठमेभिरेव समन्वितः॥ लिंगैरुरःक्षतकृतैः संयुक्तश्च क्षतं विना॥२६॥

एभिरेव स्रस्तांगत्वादिभिरध्वशोषिलक्षणैरेव भूयिष्ठम् अत्यर्थम् ॥

व्यायामशोषमें विशेष करके अध्वशोषके लक्षण मिलते हैं और क्षतके न होनेपर भी उरःक्षत शोषके लक्षण होतेहै ॥ २६ ॥

अथ व्रणशोषनिदानासाध्यलक्षणे ।

रक्तक्षयाद्वेदनाभिस्तथैवाहारयन्त्रणात् ॥ व्रणितस्य भवेच्छोषः स चासाध्यतमः स्मृतः ॥ २७ ॥

रुधिरके क्षय होनेसे, घावकी पीडासे और आहारके घटनेसे व्रणवाले मनुष्यके शोष होताहै वह तीनोंप्रकारका व्रणशोष अत्यंत असाध्यहै ॥ २७ ॥

अथोरःक्षतशोषनिदानम् ।

धनुषाऽऽयस्यतोऽत्यर्थं भारमुद्वहतो गुरुम्॥ युद्ध्यमानस्य बलिभिः पततो विषमोच्चतः ॥ २८ ॥ वृषं हयं वा धावन्तं दम्यं चान्यं निगृह्णतः ॥ शिलाकाष्ठाश्मनिर्घातान् क्षिपतो निघ्नतः परान् ॥ २९ ॥ अधीयानस्य चात्युच्चैर्दूरं वा व्रजतो द्रुतम्॥ महानदीं वा तरतो हयैर्वा सह धावतः ॥ ॥ ३० ॥ सहसोत्पततो दूरं तूर्णञ्चापि प्रनृत्यतः ॥ तथान्यैः कर्मभिः क्रूरैर्भृशमभ्याहतस्य वा ॥ ३१ ॥ स्त्रीषु चातिप्रसक्तस्य रूक्षाल्पप्रमिताशिनः ॥ विक्षते वक्षसि व्याधिर्बलवान् समुदीर्यते ॥ ३२ ॥

आयस्यतः आयासं कुर्वतः । हयं वृषादिकम् । अन्यं गजोष्ट्रादिकम् । शिला दीर्घपाषाणः । अश्मा प्रस्तरखण्डः । निर्घातोऽस्त्रविशेषः । व्याधिः उरःक्षताख्यः ॥

बहुत धनुषबाण अर्थात् तीरकमान चलानेसे, बडे भारी बोझको उठानेसे, बलवानके साथ युद्ध करनेसे, विषम अथवा ऊंचे स्थानसे गिरनेसे, दौडते हुए बैल, घोडे, हाथी, ऊंट आदिको रोकनेसे, शिला, लकडी, पत्थर और शस्त्रादिकको जोरसे फेंकनेसे, दूसरोंको मारनेसे बहुत ऊंचे स्वरसे बोलने अथवा वेद शास्त्रोंके पढनेसे, वेगपूर्वक दूर जानेसे, बडी गम्भीर नदियोंको तैरनेसे घोडेके साथ दौडनेसे, एक साथ अकस्मात् उछलने कूदनेसे, अथवा कला खानेसे, जल्दी जल्दी नाचनेसे, तथा इसीप्रकार अन्यान्य साहसके काम करनेसे, जिसके अत्यंत चोटलगी हो ऐसे, मनुष्यको स्त्रियोंमें अत्यंत आसक्ति रखनेवाले और रूखा बहुत थोडा तथा प्रमाणका भोजन करनेवाले मनुष्यकी छाती फटकर बलवान् उरःक्षत रोग उत्पन्न होताहै ॥ २८–३२ ॥

अथोरःक्षतशोषलक्षणम् ।

उरो विरुज्यतेऽत्यर्थं भिद्यतेऽथ विभज्यते॥
प्रपीड्यते ततः पार्श्वे शुष्यत्यंगं प्रकम्पते॥
॥ ३३ ॥ क्रमाद्वीर्यं बलं वर्णो रुचिरग्निश्च हीयते ॥ ज्वरो व्यथा मनोदैन्यं विड्भेदोऽग्निवधस्तथा ॥३४॥ दुष्टश्यावः सदुर्गन्धः पीतो विग्रथितो बहु ॥ कासमानस्य चाभीक्ष्णं कफः सासृक् प्रवर्तते॥ स क्षती क्षीयतेऽत्यर्थं तथा शुक्रौजसोः क्षयात् ॥ ३५ ॥

विरुज्यते पीड्यते । भिद्यते विदार्यते इव विभज्यते द्विधा क्रियते इव । स क्षती स पुरुषः क्षती उरःक्षतवान् । अत्यर्थं क्षीयते क्षीणो भवति ॥

उरःक्षत रोगवाले मनुष्यकी छाती अत्यंत दुखतीहै, ऐसा जान पडताहै कोई छातीको चीरे डालताहै अथवा दो टुकडे करे डालताहै, पँसलियोंमें पीडा होतीहै, सम्पूर्ण अंग सूखने लगतेहैं देह कांपने लगतीहै, अनुक्रमसे वीर्य बल, वर्ण, कांति और अग्नि क्षीण होतीजातीहै, ज्वरकी व्यथा, मनमें दीनता, मलका भेद अर्थात् दस्तोंका होना, अग्निकी मंदता, खांसीके आते समय दूषित, काले रंगका, दुर्गन्धित, पीला, गांठदार, बहुतसा और रुधिर युक्त कफ बारबार निकलताहै और उरःक्षतरोगी वीर्यके तथा ओजके क्षयसे अत्यंत क्षीण होजाताहै ॥ ३३–३५ ॥

अथोरःक्षतविशेषलक्षणम् ।

उरोरुक्छोणितच्छर्दिः कासो वैशेषिकः क्षते ॥ क्षीणे सरक्तमूत्रत्वं पार्श्वपृष्ठकटिग्रहः ॥ ३६ ॥

क्षते उरःक्षतवति । उरोरुक् शोणितच्छर्दिः कासो वैशेषिकः विशेषतः भवत्येवास्मिन् उरःक्षतवति सास्रकफशुक्रौजसां क्षयात् क्षीणे स रक्तमूत्रत्वं पार्श्वे पृष्ठकटिग्रहश्च भवति ॥

उरःक्षत रोगवाले मनुष्यकी छातीमें अत्यंत पीडा होतीहै, रुधिरकी वमन और खांसी अधिकतर आतीहै और रुधिर सहित कफका, वीर्यका, तथा ओजका क्षय होनेसे लोहित रंगका रुधिर सहित मूत्र उतरताहै और पँसली, पीठ तथा कमरमें महा वेदना होतीहै ॥ ३६ ॥

अथ निदानविशेषेणोरःक्षतलक्षणम् ।

व्रणरोधात्क्षयाच्चैव कोष्ठात्प्रतिमलात्तथा ॥
क्षतोरस्कस्यान्नपाके निःश्वासो वाति पूतिकः ॥ ३७ ॥

क्षयाद्धातुक्षयहेतोरतिव्यवायोदितात्कोष्ठात्प्रतिमलात्कोष्ठात्प्रतिलोममलात् । पूतकः पूतिगन्धः ।

व्रणके अवरोधसे, धातुको क्षय करनेवाले अत्यंत मैथुनादिकसे और कोठेमें वायुकी प्रतिलोमतासे प्रतिलोम हुए मलसे जिसकी छाती फटगई होय उस मनुष्यका श्वास अन्नके पचते समयमें दुर्गंधित निकलता है ॥ ३७ ॥

अथोरःक्षतसाध्यासाध्यलक्षणम् ।

अल्पलिंगस्य दीप्ताग्नेः साध्यो बलवतो

नवः ॥ परिसंवत्सरो याप्यः सर्वलिंगं तु वर्जयेत् ॥ ३८ ॥

जो उरःक्षतरोगमें अल्प लक्षण हो, अग्निप्रदीप्त हो, शरीरमे बल हो और यह रोग थोडे ही दिनोंसे हुआ होय तो साध्य होताहै। जिसको उत्पन्न हुए एक वर्षसे अधिक बीत गया हो वह याप्य है और जिसमे सम्पूर्ण लक्षण मिलते हों उसको असाध्य समझकर छोड देना चाहिये, अर्थात् उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ ३८ ॥

अथ राजयक्ष्मचिकित्सा ।

बलिनो बहुदोषस्य पञ्च कर्माणि कारयेत्॥ यक्ष्मिणः क्षीणदेहस्य तत्कृतं स्याद्विषोपमम् ॥ ३९ ॥ मलायत्तं बलं पुंसां शुक्रायत्तञ्च जीवितम् ॥ ४० ॥ तस्माद्यत्नेन संरक्षेद्यक्ष्मिणो मलरेतसी ॥ शालिषष्टिक गोधूमयवमुद्गादयो हिताः ॥ ४१ ॥ मद्यानि जांगलाः पक्षिमृगाः पथ्या विशुष्यताम् ॥

बलवान् और बहुत दोषोंसे युक्त राजयक्ष्मावाले रोगीको वमन, विरेचन (दस्त), नस्य, निरूहवस्ति और अनुवासनवस्ति ये पंचकर्म कराने चाहिये, परन्तु क्षीण देहवाले मनुष्यको यह पचकर्म विषकी समान अपकारी होतेहैं, कारण यह कि, मनुष्योंका बल मलके अधीन है और जीवन वीर्यके अधीन है इस कारण क्षयरोगवाले मनुष्योंके वीर्यकी और मलकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये ।

क्षयरोगवाले मनुष्योके लिये शालिचावल, साठीचावल, गेहूँ, जौ और मूँग आदि अन्न, मदिरा और जगल प्रदेशके पशु पक्षियोंका मास पथ्य (हित) है ॥३९–४१॥

अथ षडंगयूषः ।

सपिप्पलीकं सयवं सकुलत्थं सनागरम् ॥ ॥ ४२ ॥ दाडिमामलकोपेतं स्निग्धमाजं रसं पिबेत् ॥ तेन षड्विनिवर्तन्ते विकाराः पीनसादयः ॥ ४३ ॥ द्रव्यतो द्विगुणं मांसं सर्वतोऽष्टगुणं जलम् ॥ पादस्थं संस्कृतश्चाज्ये षडंगो यूष उच्यते ॥ ४४ ॥

तथा यवपलम् १ । कुलत्थपलम् १ । छागमांसपलानि ४ । जलपलानि ४८ । शेषपलानि १२ । ततः पलमिते वृते संस्करणीयम् । तत्र कर्षमितं सैन्धवं देयम् । सौरभार्थ हिंगु देयम् । पिप्पली नागरञ्च पृथङ् माषमितं कल्कीकृत्य देयम् । इति षडंगयूषः ।

ककुभत्वङ्नागबला वानरिबीजं विचूर्णितम्पयसा ॥ पीतं मधुघृतयुक्तं ससितं यक्ष्मादिकासहरम् ॥ ४५ ॥ छागमांसं पयश्छागं छागं सर्पिः सनागरम् ॥ छागोपसेवी शयनं छागमध्ये तु यक्ष्मनुत् ॥ ४६ ॥ मधुताप्यविडंगाश्मजतुलोहघृताभयाः ॥ घ्नन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं सेव्यमाना हिताशिनः ॥ ४७ ॥
ताप्यं सुवर्णमाक्षिकम् ॥

शर्करामधुसंयुक्तं नवनीतं लिहन्क्षयी ॥ क्षीराशी लभते पुष्टिमतुल्ये चाज्यमाक्षिके ॥ ४८ ॥

जौ ४ तोले, कुलथी ४ तोले और बकरेका स्निग्ध मांस १६ तोले, इन सबको अठगुने जलमें पकावै जब पकते पकते चौथा भाग जल बाकी रहजाय तब उसमे चार ४ तोले घी डालकर बघार देवै सैंधानिमक १ तोला डाले, सुगधिके लिये हींग डाले तथा अनार और आमलेका रस डाले, पीपल और सोंठका कल्क छ. छ. रत्ती डाले। इस मांसरसको षडगयूष कहतेहैं। यह क्षयरोगवाले मनुष्योंको पिलाना चाहिये। इसके पीनेसे राजयक्ष्मागत पीनस आदि समस्त विकार निवृत्त होजाते हैं।

अर्जुनकी छाल, गँगेरन (गुलशकरी) और कौंछके बीज इनको दूधमें पीसकर सहत घी और बूरा मिलाकर पिये तो राजयक्ष्मादि रोग और खाँसी दूर होजातीहै।

यक्ष्मारोगी बकरेके मासको खाय, बकरीके दूधको पिये सोंठ मिलाकर बकरीका घी खाय, बकरेकी सेवाकरे और बकरे बकरियोंके रहनेके स्थानमें सोवे, इन उपायोंके करनेसे क्षयरोग नष्ट होजाताहै ।

सहत, सोनामाखी, वायविडग, शिलाजीत, लोहा, घी और हरड इन सबको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे और इसपर पथ्य भोजन करनेसे अत्यत उग्र क्षय रोग नष्ट होजाताहै ।

क्षय रोगवाला मनुष्य खाड और सहत मिलाकर नैनीघी खाय और इसपर दूध युक्त भोजन करे अथवा सहत और घीको विषम (ज्यादेकम) भाग लेकर चाटे तो पुष्टि होतीहै ॥ ४२–४८ ॥

अथ सितोपलाद्यवलेहः ।

सितोपला तुगाक्षीरी पिप्पली बहुलात्वचः ॥ अन्त्यादूर्द्ध्वं द्विगुणिताश्चूर्णिता मधुसर्पिषा ॥ ४९ ॥ लेहयेद्राजरोगार्तं कासश्वासज्वरातुरम् ॥ पार्श्वशूलिनमल्पाग्निं सुप्तजिह्वं रुचिच्युतम् ॥ हस्तपादंगदाहे च ज्वरे रक्ते तथोर्द्ध्वगे ॥ ५० ॥ सितोपला [मिश्री] बहुला सूक्ष्मैला ॥

दालचीनी १ भाग, छोटी इलायची २ भाग पीपल ४ भाग, वंशलोचन ८ भाग और मिश्री १६ भाग, इन सबका चूर्ण करके सहतके तथा घीके साथ क्षय रोगवालेको चटावे । खाँसी, श्वास, क्षय, पार्श्वशूल, मंदाग्नि, जिह्वाकी जडता और अरुचि तथा हाथ, पाव और सम्पूर्ण शरीरका दाह, ज्वर और ऊर्ध्वगत रक्तपित्तको भी यह सितोपलादि चूर्ण दूर करदेताहै ॥ ४९ ॥ ५० ॥

अथ जातीफलाद्यचूर्णम् ।

जातीफलं विडंगानि चित्रकं तगरं तिलाः ॥ तालीसं चन्दनं शुण्ठी लवंगमुपकुञ्चिका ॥ ५१ ॥ कर्पूरश्चाभया धात्री मरिचं पिप्पली तुगा ॥ एषां त्र्यक्षसमा भागाश्चातुर्जातकसंयुताः ॥ ५२ ॥ पलानि सप्त भृंगायाः सिता सर्वसमा मता ॥ चूर्णमेतत्क्षयं कासं श्वासञ्च ग्रहणीगदम् ॥ ५३ ॥ अरोचकं प्रतिश्यायं तथा चानलमन्दताम् ॥ एतान्रोगान्निहन्त्येव वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥५४॥

जायफल, वायविडग, चीता, तगर, तिल, तालीसपत्र, चदन, सोंठ, लौंग, कालाजीरा, भीमसेनीकपूर, हरड, आमले, मिरच, पीपल, वंशलोचन, दालचीनी, तेजपात, इलायची और नागकेसर ये प्रत्येक पदार्थ तीन तीन तोलेभर लेवै, भाग २८ तोले लेवै और सबकी बराबर मिश्री लेवै, सबको एकत्र कूट पीस कर चूर्ण बनावै । जिस प्रकार इन्द्रका वज्र वृक्षोंको नष्ट करताहै उसी प्रकार यह चूर्ण क्षय खाँसी, श्वास, ग्रहणी, अरुचि, प्रतिश्याय (जुकाम) और अग्निकी मदताको नष्ट करेहै । इसको जातीफलाद्य चूर्ण कहतेहैं ॥ ५१–५४ ॥

अथ लाक्षादितैलम् ।

बालरोगाधिकारोक्तं तैलं लाक्षादि योजयेत् ॥ अभ्यंगे यक्ष्मिणो नित्यं वृद्धवैद्यो विशेषतः ॥ ५५ ॥

बालरोगाधिकारमे जो लाक्षादितैल कहाहै उस तैलको वृद्ध वैद्यके उपदेशसे क्षयरोगीके शरीरपै मर्दन (मालिश) करे ॥ ५५ ॥

अथ वासावलेहः ।

वासकस्य रसप्रस्थं मानिका सितशर्करा ॥ पिप्पल्या द्विपलं तावत्सर्पिषश्च शनैः पचेत् ॥ ५६ ॥ तस्मिँल्लेहत्वमायाते शीते क्षौद्रपलाष्टकम् ॥ दत्त्वावतारयेद्वैद्यो लीढो लेहोऽयमुत्तमः ॥ ५७ ॥ हन्त्येव राजयक्ष्माणं कासं श्वासञ्च दारुणम् ॥ पार्श्वशूलञ्च हृच्छूलं रक्तपित्तं ज्वरं तथा ॥ ५८ ॥

अडूसेका रस ६४ तोले, उत्तम सफेद खांड ३२ तोले, पीपल ८ तोले और घी ८ तोले लेवै, सबको एकत्र मिलाकर धीरे धीरे मद अग्निसे पकावै, जब लेहकी समान होकर शीतल होजाय तब ३२ तोले सहत मिलादेवे तो उत्तम वासावलेह तैयार होताहै । यह वासावलेह–राजयक्ष्मा, दारुण खाँसी, श्वास, पार्श्वशूल, हृदयशूल, रक्तपित्त और ज्वरको दूर करेहै ॥ ५६–५८ ॥

अथ व्यवायशोषचिकित्सा।

व्यवायशोषिणं क्षीणं रसमांसाज्यभोजनैः॥
सुकूलैर्मधुरैर्हृद्यैर्जीवनीयैरुपाचरेत्॥ ५९ ॥
रसः मांसरसः। सुकूलैर्हितैः॥

व्यवायशोषसे क्षीण हुए मनुष्यको मांसका रस मास और घृतसंयुक्त भोजन और अनुकूल मधुर तथा जो अपनेको प्रिय लगे ऐसे जीवनीय पदार्थोंके द्वारा उपचार करै ॥ ५९ ॥

अथ शोकशोषचिकित्सा।

हर्षणैः श्वसनैः क्षीरैः स्निग्धैर्मधुरशीतलैः॥
दीपनैर्लघुभिश्चान्नैः शोषरोगमुपाचरेत्॥ ६०॥

शोकशोषवाले मनुष्यका हर्षको बढानेवाले पदार्थोंसे उपचार करे, धीरज बँधावै, दूधका उपयोग करै और स्निग्ध, (चिक्कन) मधुर, शीतल, अग्निको दीपन करनेवाले और हलके अन्न भोजनके लिये देवै ॥ ६० ॥

अथ व्यायामशोषचिकित्सा।

व्यायामशोषिणं स्निग्धैः क्षतक्षयहितैर्हिमैः॥
उपाचरेज्जीवनीयैर्विधिना श्लैष्मिकेण तु ६१

व्यायामशोषवाले मनुष्यको स्निग्ध, उरःक्षतशोषकी चिकित्सामें कहेहुए शीतल और जीवनीय पदार्थ तथा कफको करनेवाले पदार्थोंसे बृंहण चिकित्सा करे ॥ ६१ ॥

अथाध्वशोषचिकित्सा।

आस्यासुखैर्दिवास्वप्नैः शीतैर्मधुरबृंहणैः॥
अन्नमांसरसाहारैरध्वशोषमुपाचरेत्॥ ३२॥

अध्वशोषवाले मनुष्यको उत्तम मुलायम आसन, गद्दी-शय्यापै बिठलावै, दिनमें सुलावै और शीतल मधुर और पुष्टिको करनेवाले अन्न और मासके रस तथा ऐसे भोजनोंसे उपचार करै ॥ ६२ ॥

अथ व्रणशोषचिकित्सा।

व्रणशोषं जयेत्स्निग्धैर्दीपनैः स्वादुशीतलैः॥
ईषदम्लैरनम्लैर्वा यूषमांसरसादिभिः॥ ६३॥

स्निग्ध, अग्निको दीपन करनेवाले, मधुर, शीतल और किंचित् अम्ल अथवा अम्लरहित यूषोंसे और मासके रस आदिसे व्रणशोषकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ६३ ॥

अथोरःक्षतचिकित्सा।

तत्र बलादिचूर्णम्।

बलाश्वगन्धा श्रीपर्णी बहुपुत्री पुनर्नवा॥
पयसा नित्यमभ्यस्ताः शमयन्ति क्षत-क्षयम्॥ ६४॥

श्रीपर्णी गम्भारी। बहुपुत्री शतावरी॥

खिरैटी, असगध, कुम्भेरके फल, सतावर और पुनर्नवा इनको दूधमें पीसकर नित्य पीनेसे उरःक्षतशोष नष्ट होताहै ॥ ६४ ॥

अथैलादिगुटिका।

एलापत्रत्वचोऽर्द्धाक्षाःपिप्पल्यर्द्धपलं पृथक्॥
सितामधुकखर्जूरमृद्वीकाश्च पलोन्मिताः॥
॥ ६५॥ संचूर्ण्य मधुना युक्ता वटिकाः
सम्प्रकल्पयेत्॥अक्षमात्रां ततश्चैकां भक्षये-
त्तु दिनेदिने॥ ६६॥ क्षतं क्षयं ज्वरं कासं
श्वासं हिक्कां वमिं भ्रमम्॥ मूर्च्छां मदं
तृषां शोषं पार्श्वशूलमरोचकम्॥ ६७॥
प्लीहानमाढ्यवातञ्च रक्तपित्तं स्वरक्षयम्॥
एलादिगुटिका हन्ति वृष्या सन्तर्पणी
परा॥ ६८॥

इलायची छः मासे, तेजपात छः मासे, दालचीनी छः मासे, पीपल दो तोले, मिश्री ४ तोले, मुलैठी ४ तोले, खजूर, छोहारे ४ तोले और दाख ४ तोले, इनको एकत्र पीसकर सहतमें मिलाकर एक एक तोलेकी गोलियां बनावै इनमेंसे एक गोली नित्य खाय तो उरःक्षत, शोष, ज्वर, खाँसी, श्वास, हिचकी, वमन, भ्रम, मूर्च्छा, मद, तृषा, शोष, पँसलियोंकी पीडा, अरुचि, प्लीहा, ऊरुस्तम्भ, रक्तपित्त और स्वरभंग ये सब रोग नष्ट होजाते हैं। ये गोली कामी पुरुषोंके लिये अत्यत हितकारी हैं और तृप्तिको करनेवाली हैं॥ ६५–६८ ॥

अथ द्राक्षादिघृतम् ।

द्राक्षायाः प्रस्थमेकन्तु मधुकस्य पलाष्टकम् ॥ पचेत्तोयाढके शुद्धे पादशेषेण तेन तु ॥ ६९ ॥ पलिके मधुकद्राक्षे पिष्टे कृष्णापलद्वयम् ॥ आदाय सर्पिषः प्रस्थं पचेत्क्षीरे चतुर्गुणे ॥ ७० ॥ सिद्धे शीते पलान्यष्टौ शर्करायाः प्रदापयेत् ॥ एतद्द्राक्षाघृतं सिद्धं क्षतक्षीणसुखावहम् ॥७१॥ वातं पित्तं ज्वरं श्वासं विस्फोटकहलीमकान् ॥ प्रदरं रक्तपितञ्च हन्यान्मांसबलप्रदम् ॥ ७२ ॥

उत्तम बडी बडी काली दाख ६४ तोले, मुलहटी, ३२ तोले स्वच्छ जलमें पकावें, जब पकते २ चौथा भाग क्वाथ शेष रहजाय, तब उसमें मुलहटीका चूर्ण ४ तोले, पिसीहुई दाख ४ तोले, पीपलका चूर्ण ८ तोले और घी ६४ तोले भर डालकर चौगुने दूधमें पकावे, जब पकते पकते केवल घी बाकी रहजाय तब उतारलेय, शीतल होनेपर ३२ तोले खाड मिलादेवे तो द्राक्षादिघृत सिद्ध होताहै । यह घृत उरःक्षतशोष, वायु, पित्त, ज्वर, श्वास, विस्फोटक, हलीमक, प्रदर और रक्तपित्तको नष्ट करें है । तथा मांस और बलको बढाताहै ॥ ६९–७२ ॥

अथामृतप्राशावलेहः ।

क्षीरं धात्री च मञ्जिष्ठा क्षीरिणाश्च तथा रसैः ॥ पचेत्समैर्घृतप्रस्थं मधुरैः कर्षसम्मितैः ॥ ७३ ॥ द्राक्षाद्विचन्दनोशीरैः शर्करोत्पलपद्मकैः ॥ मधूककुसुमानन्ताकाश्मरीतृणसंज्ञकैः ॥७४॥ प्रस्थार्द्धं मधुनः शीते शर्करार्द्धतुलां तथा ॥ पलार्द्धिकांश्च संचूर्ण्य त्वगेलापद्मकेसरान् ॥ ७५ ॥ विनीय तत्र संलिह्यान्मात्रां नित्यं सुयन्त्रितः ॥ अमृतप्राशमित्येतदश्विभ्यां परिकीर्तितम् ॥ क्षीरमांसाशिनां हन्ति रक्तपित्तं क्षतक्षयम् ॥ ॥ ७६ ॥ तृष्णारुचिश्वासकासच्छर्दिमूर्च्छाभ्रमर्दनम् ॥ मूत्रकृच्छ्रज्वरघ्नश्च बल्यं स्त्रीरतिवर्द्धनम् ॥ ७७ ॥

उत्तम गायके घीमें आमले, मजीठ और विदारीकन्दका रस इनको समान भाग मिलाकर पश्चात् जीवनीयगणकी समस्त औषधि एक २ तोला, दाख, चन्दन, लालचन्दन, खस, खाड, कमल, पद्माख, महुवेके फूल, सारिवा, कुम्भेरके फल और सुगन्ध रोहिषतृण इनका कल्क बनाकर घीको दूधमें पकावे जब पककर शीतल होजाय तब उसमें सहत ३२ तोले, खाड २०० तोले, दालचीनीका चूर्ण २ तोले, इलायचीका चूर्ण २ तोले और कमलकी केसरका चूर्ण २ तोले इनको मिलादेवे तो अश्विनीकुमारोंका बनायाहुआ यह 'अमृतप्राश' नामवाला अवलेह सिद्ध होताहै । जितेन्द्रिय होकर इस अवलेहका नित्य सेवन करे, इसपर दूध और मांसके साथ भोजन करे। इस प्रकार करनेसे उरःक्षतक्षय, रक्तपित्त, तृषा, अरुचि, श्वास, खासी, वमन, मूर्छा, मूत्रकृच्छ्र और ज्वरका नाश होताहै । स्त्रियोंमें प्रीति उत्पन्न होती है तथा बलकी वृद्धि होती है ॥ ७३–७७ ॥

अथोरःक्षतरोगपथ्यापथ्यानि ।

यद्यच्च तर्पणं शीतमविदाहि हितं लघु ॥ अन्नपानं निषेव्यं स्यात्क्षतक्षीणैः सुखार्थिभिः ॥७८॥ शोकं स्त्रियः क्रोधमसूयताश्च त्यजेदुदारान्विषयान्भजेच्च ॥ तथा द्विजातीस्त्रिदशान्गुरूंश्च वाचश्च पुण्याः शृणुयाद्द्विजेभ्यः ॥ ७९ ॥

उरःक्षतशोषवालेको जो सुखकी इच्छा होय तो जो जो अन्नपान तृप्तिदायक हैं शीतल, दाहरहित हितकारक और हलके, उन सबका सेवन करे, तथा शोक, स्त्रीप्रसग, क्रोध और परनिन्दा, द्वेषबुद्धि आदिको त्यागदेवे, उत्तम शान्ति सन्तोषादि विषयोंको सेवन करे, ब्राह्मण, देवता और गुरुजनोंकी भक्ति करे और ब्राह्मणोंसे पवित्र कथाओंको श्रवण करे ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

अथ राजयक्ष्मणि रसः ।

तत्रामृतेश्वरो रसः ।

रसभस्मामृतासत्त्वं लोहं मधुघृतान्वि-

तम् ॥ अमृतेश्वरनामायं षड्गुञ्जो राजयक्ष्माणि ॥ ८० ॥

रसभस्म मारितो रसः । अमृतासत्त्वं गुडूचीसत्त्वम् । लोहं मारितम् । अमृतेश्वररसो राजयक्ष्मणि रसेन्द्रचिन्तामणौ ॥

पारेकी भस्म, गिलोयका सत्त्व और माराहुआ लोह इनको एकत्र करके सहत और घीमे मिलाकर प्रतिदिन छै रत्तीभर चाटे। यह अमृतेश्वररस राजयक्ष्मा रोगको शमन करे है यह रस रसेन्द्रचिन्तामणिमे लिखाहै ॥ ८० ॥

अथ राजमृगांकरसः।

त्रयोंऽशा मारितात्सूतादेकोंऽशो हेमभस्मतः ॥ एकोंऽशो मृतताम्रस्य शिला गन्धश्च तालकम् ॥ ८१ ॥ प्रत्येकं भागयुग्मं स्यादेतत्सर्व विचूर्णयेत् ॥ वराटीः पूरयेत्तेन छागीक्षीरेण टंकणम् ॥ ८२ ॥ पिष्ट्वा तेन मुखं रुद्ध्वा मृद्भाण्डे ताश्च धारयेत् ॥ कुप्यां पचेद्गजपुटे स्वांगशीतं समुद्धरेत् ॥ ८३ ॥ रसो राजमृगांकोऽयं चतुर्गुञ्जः क्षयापहः ॥ मरिचैरूनविंशत्या कणाभिर्दशभिस्तथा ॥ ८४ ॥ मधुना सर्पिषा चापि दद्यादेतं रसं भिषक् ॥ अनेन नश्यति क्षिप्रं वातश्लेष्मभवः क्षयः ॥ ८५ ॥

इति राजमृगाङ्को रसो राजयक्ष्माणि रसेन्द्रचिन्तामणौ ॥

माराहुआ पारा ३ भाग, सोनेकी भस्म १ भाग, तावेकी भस्म १ भाग, मैनशिल, २ भाग, गन्धक २ भाग और हरिताल २ भाग, इन सबका एकत्र चूर्ण करके एक वडी पीली कौडीमें भरलेवे, फिर बकरीके दूधमें पिसेहुए सुहागेसे कौडीका मुख बन्द करके उस कौडीको मट्टीके पात्रमें रक्खे, फिर बासनपर कपरौटी कर गजपुटमें फूँकदेवे, स्वांगशीतल होनेपर इसको निकालकर मट्टीको अलग करके रस निकाललेवे इसको, 'राजमृगांकरस, कहतेहैं। इस रसको प्रतिदिन चार रत्तीभर खानेसे क्षयरोग नष्ट होजाताहै। वैद्य १९ कालीमिरच, दश पीपल, सहत और घीके साथ इस रसको देवे। इस रसको सेवन करनेसे वायु और कफसम्बन्धी क्षयरोग तत्काल नष्ट होजाताहै ॥ ८१–८५ ॥

अथाग्निरसः।

शुद्धं सूतं द्विधा गन्धं कुर्यात्खल्वेन कज्जलीम् ॥ तयोः समं तीक्ष्णचूर्णं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥ ८६ ॥ द्वियाममातपे गोलं ताम्रपात्रे निधापयेत् ॥ आच्छाद्यैरंडपत्रेण स्यादुष्णं यामयुग्मतः ॥ ८७ ॥ धान्यराशौ न्यसेत्पश्चादष्टरात्रात्तदुद्धरेत् ॥ संचूर्ण्य गालयेद्वस्त्रैः सत्यं वारितरं भवेत् ॥ ८८ ॥ त्रिकटुत्रिफलैलाभिर्जातीफललवंगकैः ॥ नवभागोन्मितैरेभिः समैरेष रसो भवेत् ॥ ८९ ॥ निष्कद्वयमितं नित्यं मधुना सह लेहयेत् ॥ अयमग्निरसो नाम्ना कासक्षयहरः परः ॥ ९० ॥

इति अग्निरसः शार्ङ्गधरे ॥

शुद्धपारा १ भाग और शुद्ध गन्धक २ भाग इन दोनोकी एकत्र खरलमे कजली बनावै, फिर इस कजलीकी बराबर तीक्ष्ण लोहेका चूर्ण लेकर इस कजलीमें मिलादेवे, फिर इसको घीकारके रसमे दो प्रहरतक खरल करै, फिर इसका गोला बनाकर तांबेके पात्रमें रखकर अंडके पत्तोंसे ढककर उस तांबेके पात्रको धूपमें धरदेवे, जब दो प्रहरतक गरम होजाय तब पीछे धानोके ढेरमें गाडदेवे, पश्चात् आठ दिनमें निकाले, फिर इस गोलेका चूर्ण करके कपडेमें छानलेवे तो यह चूर्ण अवश्य जलमें तैरने लगेगा, तत्पश्चात् त्रिकुटा ३ भाग, त्रिफला ३ भाग, इलायची १ भाग, जायफल १ भाग, और लौंग १ भाग सबको एकत्र पीसकर नवभाग रस इसमे मिलादेवे तो यह 'अग्निरस' सिद्ध होताहै। सहतके साथ इसमेंसे नित्य ४८ रत्तीभर चाटे तो खांसी और क्षयका नाश होताहै ॥ ८६–९० ॥

इति क्षयरोगाधिकारः सम्पूर्णः।

अथ कासरोगाधिकारः ।

तत्र कासनिदानसंप्राप्तिपूर्वक-सामान्यलक्षणम् ।

धूमोपघाताद्रजसस्तथैव व्यायामरूक्षान्ननिषेवणाच्च ॥ विमार्गगत्वादपि भोजनस्य वेगावरोधात्क्षवथोस्तथैव ॥ १ ॥ प्राणो ह्युदानानुगतः प्रदुष्टः सम्भिन्नकांस्यस्वनतुल्यघोषः ॥ निरेति वक्त्रात्सहसा सदोषो मनीषिभिः कास इति प्रदिष्टः ॥ २ ॥

सदोषः तादृक् प्राणानिलरूपः ॥

मुख अथवा नाकमे धुँआ और धूल जाकर उसकी श्वसके लगनेसे, अत्यन्त कसरत करनेसे, अधिकतर रूखे अन्नोको भक्षण करनेसे, भोजन करतेसमय नासिकादि छिद्र अथवा अन्यान्यके मार्गोंमें भोजन जानेसे मल दस्त पेशावके वेगोको और छींकको रोकनेसे प्राणवायु दूषित होकर उदान वायुके साथ मिलकर फूटे कासेके वासनकी समान शब्द करती हुई एक साथ मुखसे बाहर निकलती है इस रोगको विद्वान् लोग खांसी (कास) ऐसा कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथ काससंख्या ।

पंच कासाः स्मृता वातपित्तश्लेष्मक्षतक्षयैः ॥ क्षयायोपेक्षिताः सर्वे बलिनश्चोत्तरोत्तरम् ॥ ३ ॥

क्षयाय राजयक्ष्मणे ॥

वातज, पित्तज, कफज, छातीमे क्षतके होनेसे उत्पन्न और क्षयसे उत्पन्न हुई ऐसे खासी पांच प्रकारकी जाननी, इनकी उपेक्षा अर्थात् चिकित्सा न करनेसे यह पांचों प्रकारकी खासी राजयक्ष्मा रोगको उत्पन्न करतीहैं, इन पाचों प्रकारकी खांसियोंमे उत्तरोत्तर बलवान् हैं अर्थात् वातकी खासीसे पित्तकी, पित्तकी खासीसे कफकी, कफकी खांसीसे क्षतकी और क्षतकी खासीसे क्षयकी खासी बलवान् है ॥ ३ ॥

अथ कासपूर्वरूपम् ।

पूर्वरूपं भवेत्तेषां शूकपूर्णगलास्यता ॥ कण्ठे कण्डूश्च भोज्यानामवरोधश्च जायते ॥ ४ ॥

भोज्यानामवरोधः कवलगिलने कण्ठव्यथा ॥

जब खासी उत्पन्न होनेको होतीहै तब उससे कुछ काल पहिले गले और मुखमें फांससी लगने लगतीहै, कण्ठमे खुजलीसी होतीहै और भोजनके ग्रासको निगलने समय गलेमें व्यथा होतीहै ॥ ४ ॥

अथ वातकासलक्षणम् ।

हृच्छङ्खपार्श्वोदरमूर्द्धशूली क्षामाननः क्षीणबलस्वरौजाः ॥ प्रसक्तवेगस्तु समीरणेन भिन्नस्वरः कासति शुष्कमेव ॥ ५ ॥

शंखो ललाटैकदेशः । शुष्कं श्लेष्मादिरहितम् ॥

वातकी खासीमें हृदय, कनपटी, पसली, उदर और मस्तक इनमे शूल होता है, मुखकी कान्ति हीन होजाती है बल, स्वर और ओज क्षीण होजाता है. तथा वारवार बडे वेगसे खासी उठती है, स्वर फटजाता है और कफ नही गिरता अर्थात् सूखी खासी होती है ॥ ५ ॥

अथ पित्तकासलक्षणम् ।

उरोविदाहज्वरवक्त्रशोषैरभ्यर्दितस्तिक्तमुखस्तृषार्तः ॥ पित्तेन पीतानि वमेत्कटूनि कासेत्सपाण्डुः परिदह्यमानः ॥ ६ ॥

सपाण्डुः पाण्डुरोगयुक्तः ॥

पित्तकी खांसीमें, हृदयमें दाह, ज्वरकी व्यथा, मुख शोषकी पीडा होती है, मुखमे कडुवापन, तृषा, पीली और चरपरी वमन, पांडुरोग और दाह होकर खासी उठती है ॥ ६ ॥

अथ कफकासलक्षणम् ।

प्रलिप्यमानेन मुखेन सीदञ्छिरोरुजार्तः कफपूर्णदेहः ॥ अभक्तरुग्गौरवकण्डुयुक्तः कासेद्भृशं सान्द्रकफः कफेन ॥ ७ ॥

प्रलिप्यमानेन मुखेन श्लेष्मलिप्तेन मुखेन

उपलक्षितः। अभक्तरुक् न भक्ते रुक् रुचिर्यस्य सः। कण्डूः कण्ठ एव च॥

कफकी खाँसीमे मुख कफसे लिसासा रहताहै, मस्तकमे पीडा हो, शरीर कफसे पूर्ण रहै, खानेमे रुचि नहीं हो, देह भारी हो, गलेमें खुजली चले और खाँसीमे वार वार बहुत गाढा कफ निकला करे॥ ७॥

अथ क्षतजकासनिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः।

अतिव्यवायभाराध्वयुद्धाश्वगजनिग्रहैः॥ रूक्षस्योरःक्षतं वायुर्गृहीत्वा कासमावहेत्॥ ८॥

अश्वगजयोर्निग्रहो दमनम्॥

अत्यंत मैथुन करनेसे, अत्यत भारको उठानेसे, अधिक तर मार्गके चलनेसे, अत्यत युद्ध करनेसे और भागते हुए घोडे हाथी आदिको बलपूर्वक रोकनेसे, रूक्ष मनुष्यका हृदय फटकर कुपित हुई वायु खाँसीको उत्पन्न करतीहै॥ ८॥

अथ क्षतजकासलक्षणम्।

स पूर्वं कासते शुष्कं ततः ष्ठीवेत्सशोणितम्॥ कण्ठेन कूजत्यत्यर्थं विभग्नेनेव चोरसा॥ ९॥ सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना॥ दुःखस्पर्शेन शूलेन भेदपीडाभितापिना॥ १०॥ पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्यपीडितः॥ पारावत इवाकूजन्कासवेगात्क्षतोद्भवात्॥ ११॥

कण्ठेन इति उपलक्षणे तृतीया। एवमुरसेति।

क्षतज खाँसीवाला रोगी प्रथम सूखा खाँसताहै, फिर खखारमें रुधिर आवै, गला निरतर कूँजता रहताहै और हृदय फटेकी समान मालूम हो, तथा तीक्ष्ण सूइओंसे छेदागया सा मालूम हो, छातीमें शूलकी पीडाहोती हो, हृदयका स्पर्श पीडाके मारे नहीं सहसके, संताप, भेदने सरीखी पीडा, सम्पूर्ण शरीरकी संधियोंमें वेदना हो, श्वास, ज्वर और तृषा उत्पन्न होतीहो (पीडा) स्वर बैठजाय और खाँसीके वेगसे कबूतरकी समान घुट घुट करताहै गुटर गुटर शब्द निकलै॥ ९–११॥

अथ क्षतजकासनिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः।

विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायाद्वेगनिग्रहात्॥ घृणिनां शोचतां नृणां व्यापन्नेऽग्नौ त्रयो मलाः॥ कुपिताः क्षयजं कासं कुर्युर्देहक्षयप्रदम्॥ १२॥

घृणिनां विचिकित्सायुक्तानाम्॥

विषम (कभी थोडा कभी बहुत) भोजन अहित भोजन करनेसे, अत्यन्त स्त्रीप्रसग करनेसे, मूत्र मलादिके वेगोको रोकनेसे घृणा अर्थात् पराये गुणोंमे दोषोंको आरोपण करनेसे और अत्यन्त शोक करनेसे मनुष्योंकी जठराग्नि मद होकर तीनो दोषोंको कुपित करके शरीरको क्षय करने वाली ऐसी क्षयकी खाँसीको उत्पन्न करेहै॥ १२॥

अथ क्षयजकासलक्षणम्।

सगात्रशूलज्वरमोहदाहप्राणक्षयं चोपलभेत कासी॥ शुष्कं विनिष्ठीवति निर्बलस्तु प्रक्षीणमांसो रुधिरं सपूयम्॥ तं सर्वलिंगं भृशदुश्चिकित्स्यं चिकित्सितज्ञाः क्षयजं वदन्ति॥ १३॥

क्षयकी खाँसीमें रोगीके शरीरमे शूल, ज्वर तथा मोह होताहै, दाह इन्द्रियोंकी क्षीणता होतीहै, सूखा थूकताहै और बलकी तथा मासकी क्षीणता होनेसे अत्यत राधयुक्त रुधिर खाँसीमें थूकताहै, यह क्षयसे उत्पन्न हुई जो खाँसी सम्पूर्णलक्षण युक्त होय तो चिकित्सा करनेमे अत्यंत कठिन है॥ १३॥

अथ कासस्साध्यासाध्यता।

इत्येष क्षयजः कासः क्षीणानां देहनाशनः॥ साध्यो बलवतां वा स्याद्याप्यस्त्वेवं क्षतोत्थितः॥ १४॥

एवं क्षतोत्थितः क्षीणानामसाध्यः। बलवतां साध्यो याप्यो वा स्यात्॥

नवौ कदाचित्सिध्येतामपि पादगुणान्वितौ॥ स्थविराणां जराकासः सर्वो याप्यः प्रकीर्तितः॥ १५॥

सिध्येतां क्षतजक्षयजौ सद्वैद्यसद्भेषजसत्परिचारकयुक्तस्य सदातुरस्य जातौ । स्थविराणां जराकासः वृद्धानां यः कासो भवति स जराकाससंज्ञः स सर्व एव वातजादिरपि याप्यः ॥

त्रीन्पूर्वान्साधयेत्साध्यान्पथ्यैर्याप्यांस्तु यापयेत् ॥ १६ ॥

क्षतसे अथवा क्षयसे उत्पन्न हुई खाँसी जो क्षीण मनुष्योंको उत्पन्न होय तो असाध्य होतीहै और बलवान् मनुष्योंको उत्पन्न हुई होय तो साध्य होतीहै अथवा याप्य होतीहै, यदि चिकित्साके चारो पाद (उत्तम वैद्य उत्तम औषधि, उत्तम परिचारक, उत्तम रोगी) ठीक होंय और क्षतज अथवा क्षयज खाँसी थोडे दिनोंसे उत्पन्न हुई होय तो यह खाँसी क्षीण मनुष्योंके उत्पन्न हुई भी कदाचित् साध्य होतीहै । वृद्ध मनुष्योंके उत्पन्न हुई जो खाँसी है जिसको जराकास कहतेहैं, वह किसी प्रकारकी भी होय सब याप्य जाननी, वातज, पित्तज और कफज इन तीन प्रकारकी खाँसीको साध्य समझकर चिकित्सा करके नष्ट करे और क्षतसे तथा क्षयसे उत्पन्न हुई खाँसीको याप्य समझ कर पथ्य देकर कालक्षेप करावे ॥ १४–१६ ॥

अथ कासोपेक्षादोषः ।

ज्वरारोचकहृल्लासस्वरभेदक्षयादयः ॥ भवन्त्युपेक्षया यस्मात्तस्मात्तं त्वरया जयेत् ॥ १७ ॥

खाँसीकी उपेक्षा करनेसे अर्थात् कि, यह है ही क्या अपने आप आराम होजायगा ऐसा समझकर जो लोग खासीकी चिकित्सा नहीं करतेहैं उनके ज्वर, अरुचि, उबकाई, स्वरभेद और क्षयादिक रोग उत्पन्न होतेहैं । इस कारण खाँसीकी शीघ्रही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १७ ॥

अथ कासचिकित्सा ।

तत्र प्रथमं वातजकासचिकित्सा ।

वास्तूको वायसीशाकं मूलकं सुनिषण्णकम् ॥ स्नेहास्तैलादयो भक्ष्यास्तथेक्षुरसगौडिकाः ॥ १८ ॥ दध्यारनालाम्लफलं प्रसन्नापानमेव च ॥ शस्यते वातकासेषु स्वाद्वम्ललवणानि च ॥ १९ ॥

वायसीशाकं काकोदुम्बरिका इति लोके । सुनिषण्णकं सुषुणि इति लोके शाकविशेषः ।

चांगेरीसदृशः पत्रैः सुनिषण्णं चतुर्दलम् ॥ शाको जलान्विते देशे चतुष्पत्रीति चोच्यते ॥ २० ॥

चौपतिया इति लोके ॥

ग्राम्यानूपौदकैः शालियवगोधूमषष्टिकान् ॥ रसैर्माषात्मगुप्तानां यूषैर्वा भोजयेद्द्विपक् २१

ग्राम्यानूपौदकः रसैरित्यन्वयः । आत्मगुप्ता आलकुषी इति लोके ॥

दशमूलीकृता श्वासकासहिक्कारुजापहा ॥ यवागूर्दीपनी वृष्या वातरोगविनाशिनी ॥ ॥ २२ ॥ रसः कर्कोटकानां वा घृतभृष्टः सनागरः ॥ वातकासप्रशमनः शृंगीमत्स्यस्य वा पुनः ॥ २३ ॥

वातकी खाँसीमें—बथुयेका शाक, मकोयका शाक, मूली, गिरिआरी अथवा चौपतियाका शाक, तैलादिक स्नेह पदार्थ, ईखका रस, गुडके बनेहुए पदार्थ, दही, काँजी, खट्टे फल, मीठे, खट्टे तथा खारी अथवा नमकीन पदार्थ और प्रसन्ना(मदिराका भेद)का पीना यह सब हितकारी है । (गिरिआरीका स्वरूप । इसके पत्ते चागेरी अर्थात् लोनियाकी समान होते हैं, एक एक शाखामें चार चार पत्ते होते हैं प्राय इसका शाक सजल भूमिमें उत्पन्न होता है, इसको गिरिआरी अथवा चौपतिया कहते हैं) ॥

वैद्य, वातकी खाँसीमें--ग्राम, जलप्राय देश और जलमे रहनेवाले जीवोंके मासके रसके साथ अथवा उडद या कौंछके यूषके साथ चावल, जौ, गेहू और सॉठीके चावल खाने को देवे ।

दशमूलके द्वारा बनाई हुई यवागू श्वास, खाँसी हिचकी और वातके रोगोको नष्ट करेहै। अग्निको दीपन करेहै और मैथुनशक्तिको बढावेहै।

केकडेका अथवा शृंगमछलीका रस घीमे भूनकर सोंठ डालकर पीनेसे वातकी खाँसी नष्ट होजातीहै॥१८-२३॥

अथ पित्तकासचिकित्सा।

कण्टकारीयुगं द्राक्षा वासाकर्चूरबालकैः॥ नागरेण च पिप्पल्या क्वथितं सलिलं पिबेत्॥ शर्करामधुसंयुक्तं पित्तकासहरं परम्॥ २४॥

कटेरी, बडी कटेरी, दाख, अडूसा, कचूर, सुगंधबाला, सोंठ और पीपल इनका क्वाथ बनाकर मिश्री और सहत मिलाकर पीनेसे पित्तकी खाँसी दूर होतीहै॥२४॥

अथ कफकासचिकित्सा।

पिप्पली कट्फलं शुण्ठी शृङ्गी भार्ङ्गी तथोषणम्॥ कारवी कण्टकारी च सिन्दुवारो यवानिका॥२५॥ चित्रको वासकश्चैषां कषायं विधिवत्कृतम्॥ कफकासविनाशाय पिबेत्कृष्णारजोयुतम्॥ २६॥

पीपल, कायफल, सोंठ, काकडाशिंगी, भारंगी, कालीमिर्चं, कालाजीरा या कलौंजी, कटेरी, सम्हालू, अजवायन, चीता और अडूसा इनका विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे कफकी खाँसी दूर होजातीहै इसको पिप्पल्यादि क्वाथ कहतेहै॥ २५॥ २६॥

अथ क्षतजकासचिकित्सा।

इक्ष्विक्षुवालिकापद्ममृणालोत्पलचन्दनम्॥ मधुकं पिप्पली द्राक्षा लाक्षा शृंगी शतावरी॥२७॥ द्विगुणा च तुगाक्षीरी सिता सर्वचतुर्गुणा॥ लिह्यात्तन्मधुसर्पिर्भ्यां क्षतकासनिवृत्तये॥ २८॥

इक्षुवालिका इक्षुभेदः। चन्द्र इति लोके। पद्मं पद्मकाष्ठम्। मृणालं बिसम्। उत्पलं कमलम्। चन्दनमत्र धवलं चूर्णत्वात्। शृंगी कर्कटशृंगी। तुगाक्षीरी वंशरोचना सा च इक्षोर्द्विगुणा॥

ईख, इक्षुवालिका (एकप्रकारका तृण अथवा ईख) पद्माख, कमलकी नाल, कमल, चंदन, मुलैठी, पीपल, दाख, लाख, काकडाशिगी, सतावर, ईखसे दुगुना वंशलोचन और सबसे चौगुनी मिश्री लेवे, सबका एकत्र चूर्ण करके सहत और घीके साथ चाटनेसे क्षतजन्य खाँसी नष्ट होजातीहै॥ २७॥ २८॥

अथ क्षयजकासचिकित्सा।

चूर्णं काकुभमिष्टं वासकरसभावितं बहून्वारान्॥ मधुघृतसितोपलाभिर्लेह्यं क्षयकासरक्तहरम्॥ २९॥

काकुभं चूर्णं ककुभचूर्णम्॥

लोहके चूर्णको अडूसेके रसमे वारवार भावना देकर सहत, घी और मिश्रीके साथ चाटे तो क्षयजन्य खाँसी दूर होजातीहै॥ २९॥

अथ कासरोगसामान्यचिकित्सा।

ताप्यमानस्य कासेन नासास्रावे स्वरे जडे॥ क्षयथौ गन्धनाशे च धूमपानं प्रयोजयेत्॥ ३०॥ मनःशिलालमरिचमांसीमुस्तेंगुदैः पिबेत्॥ धूमं त्र्यहश्च तस्यानुपयश्च सगुडं पिबेत्॥ ३१॥

आलं हरितालम्॥

एष कासान्पृथग्द्वन्द्वसर्वदोषसमुद्भवान्॥ शतैरपि प्रयोगाणामसाध्यान्साधयेद् ध्रुवम्॥ ३२॥ बदरीदलमालिप्तं शिलयाऽऽतपशोषितम्॥ तद्धूमपानं सक्षीरं महाकासनिवारणम्॥ ३३॥ कण्टकारीकृतः क्वाथः सकृष्णः सर्वकासहा॥ कण्टकार्याः कणायाश्च चूर्णं समधु कासहृत्॥ ३४॥ लवंगजातीफलपिप्पलीनां भागान्प्रकल्प्याक्षसमानमेषाम्॥ पलार्द्धमानं मरिचं प्रदेयं पलानि चत्वारि महौषधस्य॥ ॥ ३५॥ सिता समस्तेन समाऽथ चूर्णं रोगानिमानाशु बलान्निहन्ति॥ कासज्व-

रारोचकमेहगुल्मश्वासाग्निमान्द्यग्रहणीविकारान् ॥ ३६ ॥ कुलटी सैन्धवं व्योषं विडंगामयहिंगुभिः ॥ लेहः साज्यमधुः कासश्वासहिक्कानिवारणः ॥ ३७ ॥ हरीतकी कणा शुण्ठी मरिचं गुडसंयुतम् ॥ कासश्लेष्मापहं प्रोक्तं परं वह्नेः प्रदीपनम् ॥ ३८ ॥ कर्षः कर्षांशपलं पलद्वयं स्यात्ततोऽर्द्धकर्षश्च ॥ मरिचस्य पिप्पलीनाश्च दाडिमगुडयावशूकानाम् ॥ ३९ ॥

कर्षांशोऽत्र कर्षद्वयम् ॥

सर्वौषधिभिरसाध्याः कासा ये वैद्यनिर्मुक्ताः ॥ अपि पूयञ्छर्दयतां तेषामिदमौषधं परमम् ॥ ४० ॥

खाँसीके सताप होनेसे नाकमेंसे पानी गिरता हो, स्वर बैठ गया हो, छींक आती हो और गंध लेनेकी शक्ति नष्ट होगई होय तो धूम पान करे । मैनशिल, हरिताल, मिरच, बालछड (जटामासी), नागरमोथा तथा हिंगोट इन सबका चूर्ण करके बीडी बनाकर चिलममें रखकर धूम पान करै और उसके ऊपर गुड मिलाकर दूध पिये तो एक दोषसे, दो दोषोंसे, अथवा सम्पूर्ण दोषोंसे उत्पन्न हुई खाँसी और सैकडों औषधियोंके सेवन करनेसे जो खाँसी अच्छी नहीं हुई होय वह भी इस धूम पानसे अवश्य नष्ट होजातीहै ।

मैनशिलको जलमें पीसकर बेरीके पत्तो पै लेप करके धूपमें सुखा देवै, फिर इसको चिलममें रखकर पिये तो भयकर खाँसी दूर होजातीहै ।

कटेरीके क्वाथमें पीपलका चूर्ण डाल करके पीनेसे सर्व प्रकारकी खाँसी दूर होजातीहै, कटेरी और पीपल इन दोनोंको एकत्र पीसकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे खाँसी दूर होजातीहै ।

लौंग १ तोला, जायफल १ तोला, पीपल १ तोला, मिरच २ तोले सोंठ १६ तोले और सबकी बराबर उत्तम सफेद बूरा लेवै, इन सबका चूर्ण अथवा गोली बनाकर खानेसे खाँसी, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, श्वास, मन्दाग्नि और ग्रहणीविकार तत्काल नष्ट होतेहैं ।

मैनशिल, सैंधानिमक, सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, कूठ और हींग भूनी इन सबका चूर्ण करके चाटनेसे खासी, श्वास और हिचकी दूर होजातीहै ।

हरड, पीपल, सोंठ और मिरच इनका चूर्ण करके गुडमें मिलाकर खानेसे खासी और कफ नष्ट होजाताहै और अग्नि अत्यंत दीपन होतीहै ।

मिरच १ तोला, पीपल २ तोले, अनार ४ तोले, गुड ८ तोले और जवाखार आधा तोला इन सबको एकत्र मिलाकर चाटनेसे भयकर खाँसी नष्ट होजातीहै. जो खाँसी अनेक प्रकारकी औषधियोके करनेसे आरोग्य नहीं होय तथा जिसको वैद्योंने भी त्याग दिया हो वह खासी इससे शीघ्र नष्ट होजातीहै, तथा जिस खासीमें रुधिरकी वमन होतीहोय उसके लिये यह औषधि परमोत्तम है ॥ ३०–४० ॥

अथ मरिचादिगुटिका ।

मरिचं कर्षमात्रं स्यात्पिप्पली कर्षसम्मिता॥ अर्द्धकर्षो यवक्षारः कर्षयुग्मश्च दाडिमम् ॥४१ ॥ एतच्चूर्णीकृतं युंज्यादष्टकर्षगुडेन हि ॥ शाणप्रमाणां गुटिकां कृत्वा वक्त्रे विधारयेत् ॥ अस्याः प्रभावात्सर्वेऽपिकासायान्त्येव संक्षयम् ॥ ४२ ॥

कालीमिरच १ तोला, पीपल १ तोला, जवाखार ६ मासे और अनारके फलकी छाल २ तोले, इन सबको चूर्ण करके आठ तोले गुडमें मिलाकर २४ चौवीस २४ चौवीस रत्तीकी गोलियां बनावै, एक गोलीको मुखमें रखनेसे सर्व प्रकारकी खासी नष्ट होजातीहै ॥ ४१ ॥ ४२॥

अथ भृगुहरीतकी ।

ससूलवल्कच्छदकण्टकार्यास्तुलां ततो द्रोणमितं जलञ्च ॥ हरीतकीनां शतमेकपात्रे विपाच्य कुर्याच्चरणाम्बुशेषम् ॥ ४३ ॥ तस्मिन्कषाये तनुवस्त्रपूते हरीतकीभिः सहितं गुडस्य ॥ तुलां विनिक्षिप्य पचेत्सुपक्वमेतत्समुत्तार्य सुशीतलञ्च ॥ ४४ ॥ पलं पलञ्चापि कटुत्रयञ्च तथा चतुर्जातपलं विचूर्ण्य ॥ पलानि षट्पुष्परसस्य

चापि विनिःक्षिपेत्तत्र विमिश्रयेच्च ॥४५॥ प्रयुज्यमानो विधिनैष लेहो यथाबलश्चापि यथानलश्च ॥ वातात्मकं पित्तकृतं कफोत्थं त्रिदोषजातान्यपि च त्रिदोषम् ॥४६॥ क्षतोद्भवश्च क्षयजश्च कासं श्वासश्च हन्यात्सह पीनसेन ॥ यक्ष्माणमेकादशरूपमुग्रं हरीतकी या भृगुणोपदिष्टा ॥ ४७ ॥ पुष्परसो मधु ॥

जड, छाल और पत्ते समेत कटेरीका सर्वांग ४०० चारसौ तोले और हरड १०० सौ तोले लेवै, दोनोको एक पात्रमें डालकर १०२४ एक हजार चौवीस तोले जलमे पकावै, पकते पकते जब चौथाई भाग क्वाथ बाकी रहजाय तब उसको उतारकर बारीक वस्त्रमे छानकर रखदेवै, फिर उस छनेहुए क्वाथमें पूर्वोक्त पकाई हुई १०० सौ हरड और गुड ४०० चारसौ तोले डालकर पकावै, जब अच्छे प्रकारसे पककर अवलेहकी समान तैयार होजाय तब उसको उतारकर शीतल कर लेवै, पश्चात् उसमे सोंठ ४ तोले, काली मिरच ४ तोले, पीपल ४ तोले, इलायची ४ तोले, दालचीना ४ तोले, तेजपात ४ तोले, नागकेसर ४ तोले और सहत २४ तोले इन सबको मिला देवै। इस अवलेहको विधिपूर्वक शरीरके बलके अनुसार और अग्निके बलानुसार सेवन करे तो वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज, त्रिदोषज, क्षतज, क्षयज—श्वास, पीनस और एकादश लक्षणोंवाला महाभयंकर राजयक्ष्मा रोग नष्ट हो, यह भृगुऋषिकी कही हुई 'भृगुहरीतकी' नामसे प्रसिद्ध है ॥ ४३–४७ ॥

अथ कंटकार्यवलेहः।

कण्टकारीतुलां नीरद्रोणे पक्त्वा कषायकम् ॥ पादशेषं गृहीत्वा च तत्र चूर्णानि दापयेत् ॥ ४८ ॥ पृथक्पलांशान्येतानि गुडूची चव्यचित्रकौ ॥ मुस्तं कर्कटशृङ्गी च त्र्यूषणं धन्वयासकः ॥ ४९ ॥ भार्ङ्गी रास्ना शटी चैव शर्करापलविंशतिः ॥ प्रत्येकश्च पलान्यष्टौ प्रदद्याद् घृततैलयोः॥ ॥ ५० ॥ पक्त्वा लेहत्वमानीय शीते मधु पलाष्टकम् ॥ चतुर्भागं तुगाक्षीर्याः पिप्पल्याश्च चतुःपलम् ॥ ५१ ॥ क्षिप्त्वा निदध्यात्सुदृढे मृन्मये भाजने शुभे ॥ लेहोऽयं हन्ति हिक्कार्तिकासश्वासानशेषतः ॥ ५२ ॥

इति कासाधिकारः।

कटेरीका पचाङ्ग ४०० चारसौ तोले लेकर १०२४ एक हजार चौवीस तोले भर जलमें पकावै जब पकते पकते चौथाई भाग जल बाकी रहजाय तब उसको उतारकर छान लेवै, फिर इस क्वाथमें गिलोयका चूर्ण ४ तोले, चव्य ४ तोले, चीता ४ तोले, नागरमोथा ४ तोले, काकडाशिंगी ४ तोले, सोंठ ४ तोले, मिरच ४ तोले, पीपल ४ तोले, धमासा ४ तोले, भारगी ४ तोले, रासना ४ तोले, कचूर ४ तोले, खाड ८० तोले, घी ३२ तोले और ३२ तोले तेल, इन सबको डालकर उत्तम विधिसे पकावै, जब पकते २ अवलेहकी समान होजाय तब शीतल करके उसमे ३२ तोले सहत, वंशलोचन ८ तोले और पीपल १६ तोले मिलादेवे। इस अवलेहको उत्तम चिकने मट्टीके बासनमें भरके रखदेवे। इसको सेवन करनेसे हिचकी, खाँसी और श्वास रोग नष्ट होजाता है ॥ ४८–५२ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे शालिग्रामवैश्यकृत-
वैद्यसंजीवनीभाषाटीकाया कास-
रोगाधिकारः सपूर्णः।

अथ हिक्कारोगाधिकारः।

तत्र हिक्कारोगविप्रकृष्टनिदानम्।

विदाहिगुरुविष्टम्भिरूक्षाभिष्यन्दिभोजनैः॥
शीतपानाशनस्नानरजोधूमात्तथानिलैः॥ १॥
व्यायामकर्मभाराध्ववेगाघातापतर्पणैः ॥
हिक्का श्वासश्च कासश्च नृणां समुपजायते २॥

विदाह करनेवाले, भारी, मलरोधक, रूखे और अभिष्यन्दी ऐसे पदार्थ खानेसे, शीतल जल पीनेसे, शीतल अन्न खानेसे, शीतल जलमें नहानेसे, धूल और धुँयेको मुख नासिकामें जानेसे, अत्यत पवन लगनेसे, अत्यत परिश्रमके

काम करनेसे, भारी बोझको उठानेसे, अधिकतर मार्ग चलनेसे, मल मूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे और उपवास आदिसे तृप्तिको नष्ट करनेसे मनुष्योंको हिचकी, श्वास और खाँसी उत्पन्न होतीहैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथ हिक्कासंख्यारूपसम्प्राप्तिः ।

वायुः कफेनानुगतः पञ्च हिक्काः करोति हि॥अन्नजां यमलां क्षुद्रां गम्भीरां महतीं तथा ॥ ३ ॥

वायु कफसे मिलकर अन्नजा १, यमला २, क्षुद्रा ३, गम्भीरा ४ और महती ५ इन पाच प्रकारकी हिचकियोंको उत्पन्न करताहै ॥ ३ ॥

अथ हिक्कासामान्यलक्षणम् ।

मुहुर्मुहुर्वायुरुदेति सस्वनो यकृत्प्लिहान्त्राणि मुखादिवाक्षिपन्॥ सदोषवानाशु हिनस्त्यसून्यतस्ततस्तु हिकेत्यभिधीयते बुधैः४॥

वायुरत्र सोदानप्राणो बोद्धव्यः । उदेति ऊर्द्ध्वं याति । सस्वनः हिगिति शब्दवान् । ऊर्द्ध्वगमनं विशिनष्टि यकृदित्यादि । प्लिह इति शब्दोऽपि अस्ति दीर्घत्वविकल्पात् । मुखादिति ल्यब्लोपे पञ्चमी तेन यकृत्प्लीहान्त्राणि मुखमानीय आक्षिपन् निःसारयन् इव इत्यर्थः । वायुः दोषवान् दोषोऽत्र कफः तद्वान् वायुः कफेन अनुगत इति सम्प्राप्तिः । हिनस्तीति हिक्का पृषोदरादित्वात् रूपसिद्धिः । हिगिति शब्दं करोति ॥

वारम्वार हिक हिक ऐसा शब्द करती हुई और यकृत् (कलेजा), प्लीहा (तिल्ली) तथा आंतोंको खींचकर मुखमें लाती हुई ऐसी जो उदान वायु प्राण वायुके साथ मिलकर ऊंची गतिसे चलतीहै। और कफके अनुसरण होकर प्राणियोंके जीवनका तत्काल नाश करतीहै । इसमें हिक् हिक्, ऐसा जो शब्द होताहै इसलिये पंडित लोग इसको हिक्का कहतेहैं ॥ ४ ॥

अथ हिक्कापूर्वरूपम् ।

कण्ठोरसोर्गुरुत्वञ्च वदनस्य कषायता ॥ हिक्कानां पूर्वरूपाणि कुक्षेराटोप एव च ५॥

वदनस्य कषायता वातात् ॥

कंठमें और छातीमें भारीपन, वातको अधिकताके कारण मुखमें कसैलापन और पेटका फूलना ये हिचकीके पूर्व लक्षण हैं । अर्थात् जब हिक्का रोग उत्पन्न होनेको होताहै तब उससे कुछ काल पहिले यह लक्षण होते हैं ॥ ५ ॥

अथान्नजाहिक्कालक्षणम् ।

पानान्नैरतिसंयुक्तैः सहसा पीडितोऽनिलः ॥ हिक्कयेदूर्द्ध्वगो भूत्वा तां विद्यादन्नजां भिषक् ॥ ६ ॥

अनिलः प्राणो वायुः ॥

अत्यंत अन्न पानीके सेवन करनेसे एक साथ प्राण वायु दबकर ऊर्ध्वगति होकर (हिक् हिक्) ऐसा शब्द करतीहै उसको वैद्य अन्नजा हिक्का कहते हैं ॥ ६ ॥

अथ यमलाहिक्कालक्षणम् ।

चिरेण यमलैर्वेगैर्या हिक्का सम्प्रवर्तते ॥ कम्पयन्ती शिरोग्रीवां यमलां तां विनिर्दिशेत् ॥ ७ ॥

बहुत देरमें वेगसे, एक साथ दो दो हिचकी आवें, तथा शिर और गरदनको कँपावे उसको वैद्य यमला हिक्का कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ क्षुद्राहिक्कालक्षणम् ।

विकृष्टकालैर्या वेगैर्मन्दैः समभिवर्तते ॥ क्षुद्रिका नाम सा हिक्का जत्रुमूलात्प्रधावति ॥ ८ ॥

विकृष्टकालैः चिरेण । जत्रुः कक्षोरसोः सन्धिः ॥

जो हिचकी बहुत देरमे वारवार कंठ हृदयकी संधिसे चलती है उसको क्षुद्रा हिचकी कहते हैं ॥ ८ ॥

अथ गम्भीराहिक्कालक्षणम् ।

नाभिप्रवृत्ता या हिक्का घोरा गम्भीरनादिनी ॥ अनेकोपद्रववती गम्भीरा नाम सा स्मृता ॥ ९ ॥

अनेकोपद्रववती तृष्णाज्वरादियुक्ता ॥

जो हिचकी नाभिमे उत्पन्न होकर भयकर रूप धारण करके गम्भीर शब्द करतीहै, तथा जिसमे तृषा और ज्व-रादि उपद्रव होतेहै उसको गभीरा हिचकी कहतेहैं ॥ ९॥

अथ महतीहिक्कालक्षणम् ।

मर्माणि पीडयन्तीव सततं या प्रवर्तते ॥ महाहिक्केति सा ज्ञेया सर्वगात्रप्रकम्पिनी ॥ १० ॥

मर्माणि बस्तिहृदयशिरःप्रभृतीनि ॥

जो हिचकी सम्पूर्ण गात्रोंको कम्पायमान करतीहै, तथा बस्ति, हृदय और मस्तक आदि मर्मस्थानोंको पीडित करती हुई निरंतर प्रवर्तन होती है उसको महती अथवा 'महाहिक्का' कहतेहै ॥ १० ॥

अथ हिक्काऽसाध्यता ।

आकम्पते हिक्कतो यस्य देहो दृष्टिश्चोर्द्ध्वं ताम्यते नित्यमेव ॥ क्षीणोऽन्नद्विट् क्षौति यश्चातिमात्रं तौ द्वौ चान्त्यौ वर्जयेद्धिक्कमानौ ॥ ११ ॥

आकम्पते विस्फार्यत इव । तौ द्वाविति । आकम्पत इत्यादिना नित्यमेव इत्यनेनैको हिक्कमानः । क्षीण इत्यादिना अतिमात्रमित्यन्तेन अपरः । तौ द्वौ अन्त्यौ च गम्भीरया महत्या हिक्कया हिक्कमानौ वर्जयेत् । अपरश्च ।

हिचकीके आते समय जिस मनुष्यका शरीर पसरजाय और दृष्टि ऊपरको ग्लानि युक्त होकर फैल जावै, उसको वैद्य त्यागदेवे तथा जिस मनुष्यका शरीर क्षीण होगया हो, अन्नमें अरुचि हो और छींकैं अधिक आवै उसको भी वैद्य त्यागदेवे। तैसेही जिसको गम्भीरा हिचकी अथवा महती हिचकी होय उसकी चिकित्सा वैद्यको नहीं करनी चाहिये ॥ ११ ॥

अथ यमलाहिक्काऽसाध्यता ।

अतिसञ्चितदोषस्य भक्तद्वेषकृशस्य च ॥ व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्यातिव्यवायिनः ॥ १२ ॥ आयासाच्च समुत्पन्ना हिक्का हन्त्याशु जीवितम् ॥ यमिका च प्रलापार्तिमोहतृष्णासमन्विता ॥ १३ ॥

जिस मनुष्यके अत्यत दोषोका संचय हो, जिसके अन्नपर अरुचि होनेके कारण दुर्बलता उत्पन्न हुई हो, जिसका शरीर व्याधियोंसे क्षीण होगया हो, जिसका शरीर वृद्ध हो और जो अत्यंत स्त्रीप्रसंग करताहो, उसके उत्पन्न हुई हिचकी तत्काल जीवनको नष्ट करदेतीहै । तथा परिश्रमसे उत्पन्न हुई हिचकी भी तत्काल मारदेतीहै, यमला नामवाली हिचकी जो प्रलापसे, पीडासे, मोहसे और तृषासे सयुक्त होय तो वह तत्काल रोगीके प्राणोंको नष्ट करतीहै ॥ १२ ॥ १३ ॥

अक्षीणस्याप्यदीनस्य स्थिरधात्विन्द्रियस्य च ॥ तस्य साधयितुं शक्या यमिका हन्त्यतोऽन्यथा ॥ १४ ॥

बलवान्, प्रसन्नचेष्टा और जिसकी धातु इन्द्रिये स्थिर है ऐसे मनष्यको उत्पन्न हुई यमला हिक्का साध्य है। और जो क्षीण है, दीन होगया है और जिसकी धातु और इन्द्रिये स्थिर हैं ऐसे मनुष्यको उत्पन्न हुई यमला हिचकी मार-देतीहै ॥ १४ ॥

अथ हिक्काचिकित्सा ।

यत्किञ्चित्कफवातघ्नमुष्णं वातानुलोमनम् ॥ भेषजं पानमन्नं वा हिक्काश्वासेषु तद्धितम् ॥ १५ ॥

जो औषधि अथवा अन्नपान कफको और वायुको हरने वाली है, उष्ण हैं और वायुको अनुलोमन करनेवाली है वे सब औषधि और अन्नपान हिक्कारोगमे और श्वासमें हितकारी हैं ॥ १५ ॥

हिक्काश्वासातुरे पूर्वं तैलाक्ते स्वेद इष्यते ॥ ऊर्द्ध्वाधःशोधनं शस्तं दुर्बले शमनं मतम् ॥ १६ ॥

हिक्का और श्वाससे पीडित मनुष्यको प्रथम तेलकी मालिस करके पश्चात् स्वेदन क्रिया करे और वमन तथा विरेचन देवे, यह हितकारी है। जो हिक्का अथवा श्वासवाला रोगी दुर्बल होय तो उसको शमन औषधि देवे ॥ १६ ॥

प्राणावरोधतर्जनविस्मापनशीतवारिपरिषेकैः ॥ चित्रैः कथाप्रयोगैः शमयेद्धिक्कां मनोऽभिघातैश्च ॥ १७ ॥

श्वासको रोकना, तिरस्कार करना, आश्चर्यजनक वार्तोको कहना, शरीरपर शीतल जलको छिडकना, चित्रविचित्र कथा वार्ता कहना और मनको खेदित करनेवाले प्रयोगोको करना, इन सबसे हिक्काको शात करना चाहिये ॥ १७ ॥

हिक्कार्तस्य पयश्छागं हितं नागरसाधितम् ॥ मधुसौवर्चलोपेतं मातुलुंगरसं पिबेत् ॥ १८ ॥ मधुकं मधुसंयुक्तं पिप्पली शर्करान्विता ॥ नागरं गुडसंयुक्तं हिक्काघ्नं नावनं त्रयम् ॥ १९ ॥

सोंठ डालकर औटाया हुवा बकरीका दूध हिचकीवाले मनुष्यको हितकारी है। सहत और काला नमक इनको बिजौरेके रसमे मिलाकर पीनेसे हिचकी नष्ट होजातीहै, मुलेठी और सहत (१) पीपल और मिश्री (२) सोंठ और गुड (३) इन तीनों नस्योमेंसे किसी एक नासको देनेसे हिचकी दूर होतीहै ॥ १८ ॥ १९ ॥

प्रवालशङ्खत्रिफलाचूर्णं मधुघृतप्लुतम् ॥ पिप्पली गैरिकश्चेति लेहो हिक्कानिवारणः ॥ २० ॥ नैपाल्या गोविषाणाद्वा कुष्ठात्सर्जरसस्य वा ॥ धूपं कुशस्य वा कार्यं पिबेद्धिक्कोपशान्तये ॥ २१ ॥

मूगा, शख, हरड, बहेडा, आमला, पीपल और गेरू इनका चूर्ण करके सहत और घीमें मिलाकर चाटनेसे हिचकी दूर होती है ॥ २० ॥ हिक्काको शात करनेके लिये मैनशिल गायके सींगका, अथवा कूटका वा रालका, अथवा कुशाका धुआँ पीना चाहिये ॥ २१ ॥

निर्धूमांगारनिक्षिप्तहिंगुमाषरजोभवः ॥ हिक्काः पञ्चापि हन्त्याशु धूमः पीतो न संशयः ॥ २२ ॥

हींग और उरदोंका चूर्ण करके निर्धूम अगारोपर डालकर उनका धुआँ पिये, तो उससे निश्चय पाचो प्रकारकी हिचकी शीघ्र शमन होजातीहैं ॥ २२ ॥

हरेणुककणानाञ्च क्वाथो हिंगुसमन्वितः॥ हिक्काप्रशमनः श्रेष्ठो धन्वन्तरिवचो यथा ॥ २३ ॥

रेणुका और पीपल इनका क्वाथ बनाकर हींग डालकर पीनेसे निस्सदेह हिचकी शात होजातीहैं, यह धन्वन्तरिका वाक्य है ॥ २३ ॥

चन्द्रसूरस्य बीजानि क्षिपेदष्टगुणे जले ॥ यदा मृदूनि मृदूनीयात्ततो वाससि गालयेत् ॥ २४ ॥ हिक्कातिवेगविकलस्तज्जलं पलमात्रया ॥ पिबेत्पिबेत्पुनश्चापि हिक्कावश्यं प्रशाम्यति ॥ २५ ॥

इति चन्द्रसूररसः । इति हिक्काविकारः ।

हालोके बीजोंको लेकर अटगुने जलमे पकावे जब वह पकते पकते गाढे और नरम होजायँ तब उनको खूब अच्छे प्रकारसे वस्त्रमें छान लेवै, इस जलमेसे हिक्कारोगी वारवार चार चार तोले पिये, इस जलको पीनेसे अत्यन्त वेगसे उत्पन्न हुई हिचकी अवश्य शात होजातीहैं । इसको 'चन्द्रसूररस' कहतेहैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

इति हिक्काविकारः सपूर्णः ।

अथ श्वासरोगाधिकारः ।

तत्र श्वासनिदानम् ।

यैरेव कारणैर्हिक्का देहिनां सम्प्रवर्तते ॥ तैरेव बहुभिः श्वासो व्याधिर्घोरः प्रजायते ॥ १ ॥

मनुष्योंको जिन कारणोसे हिक्कारोग उत्पन्न होताहै उन्ही बहुतसे कारणोंसे भयकर श्वास रोग उत्पन्न होताहै ॥ १ ॥

अथ श्वासभेदः ।

महोर्द्ध्वच्छिन्नतमकक्षुद्रभेदैस्तु पञ्चधा ॥ भिद्यते स महाव्याधिः श्वास एको विशेषतः ॥ २ ॥

विशेष करके यह श्वासनामक एक महाव्याधि महाश्वास ऊर्ध्वश्वास, छिन्नश्वास, तमकश्वास और क्षुद्रश्वास ये पांच भेदोंसे पाच प्रकारका श्वासरोग गिना जाताहै ॥ २ ॥

अथ श्वासपूर्वरूपम् ।

प्राग्रूपं तस्य हृत्पीडा शूलमाध्मानमेव च ॥ आनाहो वक्त्रवैरस्यं शंखनिस्तोद एव च ॥ ३ ॥

हृदयमें पीडाका होना, शूल, अफारा, पेटका फूलना, मुखमे विरसता और कनपट्टियोंमें तोडने सरीखी पीडाका होना ये सब श्वासके पूर्वलक्षण हैं ॥ ३ ॥

अथ श्वाससम्प्राप्तिः।

यदा स्रोतांसि संरुध्य मारुतः कफपूर्वकः॥ विष्वग्व्रजति संरुद्धस्तदा श्वासं करोति सः ॥ ४ ॥

विष्वक् व्रजति सर्वतो विमार्गान् याति संरुद्धः कफेन रुद्धमार्गः ॥

जब वायु कफयुक्त होकर उस कफसे प्राण, अन्न और जलके वहानेवाले मार्गोंको रोकलेतीहै और अपने आप उस कफसे विचरण करनेसे चारो ओरको रुककर पश्चात् श्वासको उत्पन्न करतीहै ॥ ४ ॥

अथ महाश्वासलक्षणम्।

ऊर्ध्वायमानवातो यः शब्दवद्दुःखितो नरः ॥ उच्चैः श्वसिति सन्नद्धो मत्तर्षभ इवानिशम् ॥ ५॥ प्रनष्टज्ञानविज्ञानस्तथा विभ्रान्तलोचनः ॥ विवृताक्ष्याननो बद्धमूत्रवर्चा विशीर्णवाक् ॥ ६ ॥ दीनस्य श्वसितश्चास्य दूराद्विज्ञायते भृशम् ॥ महाश्वासोपसृष्टस्तु क्षिप्रमेव विपद्यते ॥७॥

ऊर्ध्वायमानवातः ऊर्ध्वं नीयमानो वातो यस्य सः। शब्दवत् सशब्दं यथा स्यात्। कीदृक् सशब्दः तद्बोधयितुमाह। मत्तर्षभ इव उच्चैः श्वसिति इति अन्वयः। सन्नद्धः आनद्धः आनाहयुक्त इति यावत्। ज्ञानं शास्त्रम्। विज्ञानं तदर्थविनिश्चयः। विशीर्णवाक् स्खलितवचनः। दीनः म्लानः। मारकश्चायं महाश्वासः ॥

जिस मनुष्यको महाश्वास होताहै उसके प्राण वायु शब्द करतीहुई ऊर्ध्वगतिको प्राप्त होतीहै तब वह मनुष्य उससे महादुःखित होताहै, जिस प्रकार भागनेसे रोकाहुआ मस्त बैल (साड) श्वास लेताहै उसीप्रकार यह मनुष्य निरंतर श्वास लेताहै, उसका ज्ञान विज्ञान सब भ्रष्ट होजाताहै, नेत्र भ्रमयुक्त होजातेहैं, आखें और मुख फैलजाताहै, मूत्र और मल रुकजाताहै, जीभ तुतला जातीहै, दीन होजाताहै और इसके श्वासका शब्द दूरसेही सुनाई देताहै, इस महाश्वाससे पीडित रोगी तत्काल मरजाताहै, यह श्वास मनुष्योंके मारनेके लियेही उत्पन्न होताहै ॥ ५–७ ॥

अथोर्ध्वश्वासलक्षणम्।

ऊर्द्ध्वं श्वसिति योऽत्यर्थं न च प्रत्याहरत्यधः॥ श्लेष्मावृतमुखस्रोताः क्रुद्धगन्धवहार्दितः॥ ॥ ८ ॥ ऊर्द्ध्वदृष्टिर्विपश्यंस्तु विभ्रान्ताक्ष इतस्ततः॥प्रमुह्यन्वेदनार्तश्च शुष्कास्योऽरतिपीडितः ॥ ९ ॥ ऊर्द्ध्वं श्वासे प्रकुपिते ह्यधःश्वासो निरुद्ध्यते ॥ मुह्यतस्ताम्यतश्चोर्द्ध्वं श्वासस्तस्य निहन्त्यसून् ॥ १० ॥

सर्वेषु श्वासेषु ऊर्द्ध्वं श्वासोऽत्र अत्यर्थमितिविशेषः। न च प्रत्याहरत्यधः न श्वासमधः करोति। श्लेष्मावृतेत्यादिश्लेष्मणा वृतं यन्मुखं स्रोतांसि च तैः क्रुद्धो यो गन्धवहस्तेन अर्दितः। विपश्यन् इतस्ततो विकृतं यथा स्यादेवं पश्यन्। अधःश्वासो निरुद्ध्यते श्वासो नाधःप्रवर्तत इत्यर्थः। मुह्यतो मोहं प्राप्नुवतस्ताम्यतो ग्लानिं प्राप्नुवतश्च ऊर्द्ध्वश्वासः असून् प्राणान्हन्ति ॥

जिस मनुष्यके ऊर्ध्वश्वास उत्पन्न होताहै उस मनुष्यका बहुत ऊंचा श्वास चलताहै, उसका कभी नीचेको श्वास नहीं जाता, मुख और सम्पूर्ण शरीरके स्रोत (छिद्र) कफसे घिर जानेके कारण वायु कुपित होकर तीव्र पीडाको करतीहै, उसकी दृष्टि सदैव ऊपरको रहतीहै, आँखोंको चारों ओरको चकराकर विकृति रूपसे देखताहै, मूर्च्छित होताहै, वेदनासे पीडित होताहै, मुख सूखजाताहै और अत्यन्त वेकली होतीहै ऊर्ध्वश्वासके कुपित होनेपर नीचेका श्वास प्रवर्त नहीं होताहै और वह ऊर्ध्वश्वास मोहको प्राप्त हुए और ग्लानिको प्राप्तहुए उस मनुष्यके जीवनको नष्ट करताहै, सर्व प्रकारके श्वासोंमें यह ऊर्ध्वश्वास बहुत ऊँचेसे चलताहै, यह विशेष है ॥ ८–१० ॥

अथ छिन्नश्वासलक्षणम् ।

यस्तु श्वसिति विच्छिन्नं सर्वप्राणेन पीडितः ॥ न वा श्वसिति दुःखार्तो मर्मच्छेदरुजार्दितः ॥ ११ ॥ आनाहस्वेदमूर्च्छार्तो दह्यमानेन वस्तिना ॥ विप्लुताक्षः परिक्षीणः श्वसन्रक्तैकलोचनः १२॥ विचेताः परिशुष्कास्यो विवर्णः प्रलपन्नरः॥ छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः स शीघ्रं विजहात्यसून् ॥ १३ ॥

विच्छिन्नं सविच्छेदम्, सर्वप्राणेन सर्वबलेन । मर्मच्छेदरुजार्दितः हृदयशिरश्छेदवेदनयैव पीडितः । दह्यमानेन वस्तिना उपलक्षितः । विप्लुताक्षः अश्रुपूर्णनेत्रः । विचेताः उद्विग्नचित्तः । छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः । यस्तु श्वसिति विच्छिन्नमित्यादिलक्षणयुक्तो यः स नरः छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः पीडितो बोद्धव्यः । मारकश्चायं छिन्नश्वासः ॥

जिसके छिन्नश्वास उत्पन्न होताहै, वह दुःखित होकर रह रहकर अपने सम्पूर्ण वलसे श्वासको त्यागताहै, मर्मस्थानोंमें छेदने सरीखी पीडा होतीहै, तथा हृदय और मस्तकके छेदन सरीखी पीडा होतीहै, समयपर श्वास लेनेको असमर्थ होताहै, पेटके अफरनेसे, पसीनेसे, मूर्च्छासे और मूत्राशयकी दाहसे दुःखी होताहै, नेत्र जलसे डुबे डुबेसे रहतेहैं, शरीर अत्यन्त क्षीण होजाताहै, निरन्तर हाँफता रहताहै, चित्तमें उद्वेग होताहै, वृथा वकवाद करताहै, मुख सूख जाताहै, शरीरका रंग बदल जाताहै अथवा बिगडजाताहै और एक आँख लाल हो जातीहै इन लक्षणोंवाला छिन्नश्वाससे पीडित मनुष्य तत्काल प्राणोंको त्यागदेताहै यह छिन्नश्वास मारनेके लिये ही उत्पन्न होताहै ॥ ११-१३ ॥

अथ तमकश्वासलक्षणम् ।

प्रतिलोमो यदा वायुः स्रोतांसि प्रतिपद्यते ॥ ग्रीवां शिरश्च संगृह्य श्लेष्माणं समुदीर्य च ॥ १४ ॥ करोति पीनसं तेन कण्ठे घुर्घुरकं तथा ॥ अतीव तीव्रवेगश्च श्वासं प्राणप्रपीडकम् ॥ १५ ॥ प्रताम्यति स वेगेन अस्यते सन्निरुध्यते ॥ प्रमोहं कासमानश्च स गच्छति मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥ श्लेष्मणा मुच्यमानेन भृशं भवति दुःखितः॥ तस्यव च विमोक्षान्ते मुहूर्तं लभते सुखम् ॥ १७ ॥ तथास्योद्धंसते कण्ठः कृच्छाच्छक्नोति भाषितुम् ॥ न चापि निद्रां लभते शयानः श्वासपीडितः ॥ १८ ॥ पार्श्वे तस्यावगृह्णाति शयानस्य समीरणः ॥ आसीनो लभते सौख्यमुष्णञ्चैवाभिनन्दति ॥ १९ ॥ उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमार्तिमान् ॥ विशुष्कास्यो मुहुःश्वासी मुहुश्चैवावधम्यते ॥ २० ॥ मेघाम्बुशीतप्राग्वातैः श्लेष्मलैश्च विवर्द्धते॥ स याप्यस्तमकः श्वासः साध्यो वा स्यान्नवोत्थितः ॥ २१ ॥

संगृह्य व्यथया । समुदीर्य वर्द्धयित्वा । पीनसं नासास्रावम् । तेन श्लेष्मणा घुर्घुरं घुर्घुरशब्दम् । प्राणप्रपीडकं प्राणाधिष्ठानहृदयप्रपीडकम् । प्रताम्यति तमसि प्रविशतीव । वेगेन श्वासवेगेन सन्निरुध्यते निश्चेष्टो भवति इति चरकः । सन्निरुध्यते श्वास इति जयटः श्लेष्मणा मुच्यमानेन सुखं सुखमिव । उद्धंसते व्यथितो भवति । शयानः शयननिहितांगः । अवगृह्णाति पीडयति । उष्णञ्चैवाभिनन्दति इत्यनेन तमको वातकफारब्ध इति बोद्धव्यः । उच्छ्रिताक्षोऽशूनाक्षः । ललाटेन स्विद्यता उपलक्षितः । अवधम्यते गजारूढस्येव सर्वं गात्रं चाल्यते । तमकस्यैव पित्तानुबन्धजनितज्वरादियोगेन ॥

जब वायु अपने मार्गको छोडकर कुमार्गी होकर नाडियोंमे प्राप्त होतीहै तब गरदनको और शिरको जडकर कफको बढाकर उस कफसे नाकमें पीनस, कंठमें घुरघुर शब्दको और हृदयको पीडित करनेवाले तीव्र श्वासको उत्पन्न करताहै, यह श्वास जिस मनुष्यको होताहै वह मनुष्य अपनेको घोर अन्धकारमे पडाहुआ देखताहै, त्रासको प्राप्त होताहै, श्वासके वेगसे चेष्टारहित होजाताहै खाँसीके वारवार आनेसे मूर्च्छित होजाताहै, कफके निकलते समय अत्यन्त दुःख होताहै, जब कफ निकल जाताहै तो थोडी देरके लिये चैन पडजाताहै कंठमें पीडा होतीहै बोलते समय कष्ट होताहै, सोते समय लेटने पर वायुके कारण पसलियोंमें अत्यन्त पीडा होतीहै, उठ वैठनेपर कुछ आराम मालूम होताहै, निरतर उष्ण पदार्थोकी इच्छा करताहै, नेत्र ऊचे सूजेसे रहतेहैं, मस्तकमें पसीना आताहै, अत्यंत पीडा होतीहै,मुख वारवार सूखा करता है, वारवार श्वास,ले लेकर हाथी पै बैठे हुए मनुष्यकी समान हिलताहै, यह श्वास मेघोके उदय होनेमे, वर्षासे, शीतसे, पूर्वकी पवनसे और कफको करनेवाले पदार्थोंको सेवन करनेसे वृद्धिको प्राप्त होताहै । यह तमक श्वास याप्य है,जो नवीन हो तो कदाचित् साध्य भी होताहै ।

'श्वासके वेगसे चेष्टारहित होजाताहै' ऐसा जो लक्षणोंमें कहा है सो चरकके मतानुसार कहा है किंतु जैयट तो ऐसा कहताहै कि 'उस मनुष्यका श्वास रुकजाताहै' 'तमक श्वासवाले मनुष्यके उष्ण वस्तुओंकी अभिलाषा उत्पन्न होतीहै' ऐसा जो लक्षणोंमे कहा है सो ऊपरसे जानना कारण तमक श्वास वात और कफसे उत्पन्न होता है ॥ १४–२१ ॥

अथ प्रतमकश्वासलक्षणम् ।

ज्वरमूर्च्छापरीतश्च विद्यात्प्रतमकं भिषक् २२

जो तमक श्वास ज्वर और मूर्छासे अत्यंत युक्त होय तो उसको प्रतमक श्वास कहतेहैं ॥ २२ ॥

अथ मतान्तरम् ।

उदावर्तरजोजीर्णक्लिन्नकायनिरोधजः ॥
तमसा वर्द्धतेऽत्यर्थं शीतलैश्च प्रशाम्यति॥
मज्जतस्तमसीवास्य विद्यात्प्रतमकन्तुतम् २३

उदावर्तो रोगविशेषः । रजो धूलिः । अत्र अजीर्णमामादि क्लिन्नं विदग्धम् । कायनिरोधः अंगयोगानां निरोधः तस्मादुत्पन्नः । अथ वा क्लिन्नकायः वृद्धनरः निरोधः वेगानान्तु सप्तदशविधः ॥

उदावर्त, रज, आम आदि अजीर्ण और योगका निरोध करनेसे, वृद्ध अवस्थाके होनेसे और मूत्रादि सतरह वेगोंके रोकनेसे उत्पन्न हुआ, तथा अंधकारसे बढनेवाला और शीतल पदार्थोंसे शात होनेवाला ऐसा जो श्वास होताहै, उसको प्रतमक कहतेहैं इसमे रोगीको ऐसा प्रतीत होताहै कि, मैं घोर अधकारमें पडाहू ॥२३॥

अथ क्षुद्रश्वासलक्षणम् ।

रूक्षायासोद्भवः कोष्ठे क्षुद्रवातमुदीरयन् ॥ क्षुद्रश्वासो न सोऽत्यर्थं दुःखो नांगप्रबाधकः ॥ २४ ॥ हिनस्ति न च गात्राणि न च दुःखं यथेतरे ॥ न च भोजनपानानां निरुणद्ध्युचितां गतिम् ॥ २५ ॥ नेन्द्रियाणां व्यथाञ्चापि काञ्चिदुत्पादयेद्रुजम्॥ स साध्य उक्तो बलिनः सर्वे चाव्यक्तलक्षणाः ॥ २६ ॥

क्षुद्रः अल्पनिदानलिंगः । उदीरयन्नूर्द्ध्वं गच्छन् । दुःखः दुःखप्रदः । इतरे चत्वारः श्वासाः तथा नायम्। सर्वे महाश्वासादयोऽपि अव्यक्तलक्षणाः सन्तः साध्याः ॥

रूक्षतासे और अत्यत परिश्रम करनेसे उत्पन्न हुआ जो श्वास उसको क्षुद्र श्वास कहतेहैं, वह वायुको बढाताहै, किंतु अत्यंत दुःख नहीं देताहै तथा अन्यान्य दूसरे श्वासोंकी समान शरीरको पीडित करनेवाला और दुःखदायक भी नहीं है, अन्न पानोकी योग्य गतिको नहीं रोकताहै, इद्रियोंको व्यथित भी नहीं करताहै और वेदनाको भी नहीं करताहै, यह क्षुद्र श्वास साध्य है और दूसरे महाश्वासादि जो चार प्रकारके श्वास हैं उनके यदि लक्षण प्रकट नहीं हुए होय तो वह भी साध्य हैं ॥ २४–२६ ॥

अथ श्वाससाध्यासाध्यता।

क्षुद्रःसाध्यतमस्तेषां तमकः कृच्छ्र उच्यते ॥ त्रयः श्वासा न सिध्यन्ति तमको दुर्वलस्य च ॥ २७ ॥ कामं प्राणहरा रोगा वहवो न तु ते यथा ॥ यथा श्वासश्च हिक्का च हरतः प्राणमाशु वै ॥ २८ ॥

वहवो ज्वरादयः ॥

तथा यथा श्वासहिक्के हरतो जीवमाशु ते २९॥

इन पाचों श्वासोंमें क्षुद्र श्वास सुखसाध्य है, तमक श्वास कष्ट साध्य है और बाकीके तीनों श्वास असाध्य हैं। तम्क श्वास भी जो दुर्वल मनुष्यको उत्पन्न हुआ होय तो असाध्य है। ज्वरादिरोग प्रायः प्राणोंको हरनेवाले हैं, परन्तु श्वास और हिचकीकी समान तत्काल प्राणोंको हरनेवाला कोई भी रोग नहीं है ॥ २७–२९ ॥

अथ श्वासचिकित्सा।

श्वासहिक्कातुरं प्रायः स्निग्धैः स्वेदैरुपाचरेत् ॥ युक्तैर्लवणतैलाभ्यां तैरस्य ग्रथितः कफः ॥ ३० ॥ श्वासो विलयमायाति मारुतश्चोपशाम्यति ॥ स्विन्नं ज्ञात्वा ततश्चैनं भोजयेच्च रसौदनम् ॥ ३१ ॥ स्वरसं शृंगवेरस्य माक्षिकेण समन्वितम्॥ पाययेच्छ्वासकासघ्नं प्रतिश्यायकफापहम् ॥ ३२ ॥

शृंगवेरमार्द्रकम् ॥

श्वास और हिक्कासे पीडित मनुष्यको विशेष करके निमक और तेल सयुक्त स्निग्ध स्वेदन क्रियाओंसे उपचार करे, इस उपचार करनेसे कफ टूट जाताहै और श्वास नष्ट होजाताहै और वात भी शांत होजातीहै, स्वेदन क्रियासे जब पसीना निकल चुके तब उस रोगीको मांसके रसके साथ भात देवै, तथा सहतके साथ अदरखका रस मिलावै तो श्वास, खाँसी, प्रतिश्याय, जुखाम और कफ दूर होताहै ॥ ३०–३२ ॥

प्रस्थं विभीतकानामस्थि विना साधयेदजामूत्रे ॥ अयमवलेहो लीढो मधुसहितः श्वासकासघ्नः ॥ ३३ ॥

वहेडे ६४ चौंसठ तोले लेकर उनकी गुठली निकाल डाले, फिर उनको बकरेके मूत्रमें पकावै उसमें सहत मिलाकर चाटनेसे श्वास और खाँसी दूर होजातीहै ॥ ३३ ॥

देवदारुबलामांसीः पिष्ट्वा वर्तिं प्रकल्पयेत्॥ तां घृताक्तां पिवेद्धूमं श्वासं हन्ति सुदारुणम् ॥ ३४ ॥

देवदारु, खिरैंटी और वालछड (जटामांसी) इनको एकत्र पीसकर वत्ती वनावै, उस वत्तीको घीमें सानकर उसका धुआँ पान करनेसे महादारुण श्वास भी दूर होजाताहै ॥ ३४ ॥

दशमूलीशटीरास्नापिप्पलीविश्वपौष्करैः॥ शृंगीतामलकीभार्ङ्गीगुडूचीनागराग्निभिः॥ ॥ ३५ ॥ यवागूं विधिना सिद्धां कषायं वा पिवेन्नरः ॥ श्वासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिहिक्काकासप्रशान्तये ॥ ३६ ॥

दशमूल, कचूर, रासना, पीपल, अतीस, अडकी जड, काकडाशिंगी, भुई आमला, भारंगी, गिलोय, सोंठ और चीता, इनकी विधिपूर्वक बनाई हुई यवागू अथवा क्काथको पीनेसे श्वास, हृदयकी जडता, पसलीकी पीडा, हिचकी और खाँसी दूर होजातीहै ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

दशमूलस्य वा क्काथः पौष्करेणावचूर्णितः॥ श्वासकासप्रशमनः पार्श्वशूलनिवारणः३७॥

दशमूलका क्काथ वनाकर उसमें अंडकी जडका (अथवा पोहकर मूलका चूर्ण) डालकर पान करनेसे श्वास खाँसी और पसलीकी पीडा दूर होतीहै ॥ ३७ ॥

रम्भाकुन्दशिरीषाणां कुसुमं पिप्पलीयुतम् ॥ पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन पीत्वा श्वासमपोहति ॥ ३८ ॥

केला, कुन्द और सिरस इन सबके फूलोंको पीपलके साथ पीसकर चावलोके जलके साथ पीनेसे श्वास दूर होजाताहै ॥ ३८ ॥

शृंगीमहौषधकणाघनपौष्कराणां चूर्णं शटीमरिचयोश्च सिताविमिश्रम् ॥ क्वाथेन पीतममृतावृषपञ्चमूल्याः श्वासं त्र्यहेण विनिहन्ति हि घोररूपम् ॥ ३९ ॥ पञ्चमूली तु सामान्या पित्ते योज्या कनीयसी॥ महती मारुते देया सैव देया कफाधिके॥ ॥ ४० ॥ कूष्माण्डकशिफाचूर्णं पीतं कोष्णेन वारिणा ॥ शीघ्रं शमयति श्वासं कासञ्चापि सुदारुणम् ॥ ४१ ॥

काकडाशिगी, सोंठ, पीपल, नागरमोथा, पोहकरमूल, कचूर और कालीमिर्च इन सबको एकत्र पीसकर चूर्ण बनावै, फिर उस चूर्णको खांडमें मिलाकर गिलोय, अडूसा तथा पंचमूलके क्वाथमें मिलाकर पिये तो भयकर श्वास भी तीन दिनमे नष्ट होजाताहै. जहा 'पचमूली' शब्द साधारण है तहा पित्तपर लघु पचमूली और वातपर तथा कफाधिक्य वातपर बृहत्पचमूली लेना चाहिये । पेठेकी जडके चूर्णको कुछ कुछ गरम जलके साथ पीनेसे श्वास और दारुण खाँसी दूर होजाती है ॥ ३९–४१ ॥

हरिद्रां मरिचं द्राक्षां कणां रास्नां शटीं गुडम् ॥ कटुतैलं लिहन्हन्याच्छ्वासान्प्राणहरानपि ॥ ४२ ॥

हलदी, मिर्च, दाख, पीपल, रास्ना, कचूर और गुड इन सबको सरसोंके तेलमे मिलाकर चाटनेसे भयकर प्राणोंको हरनेवाला भी श्वास नष्ट होजाताहै ॥ ४२ ॥

अथ भार्ङ्गीगुडः ।

शतं संगृह्य भाङ्‌र्यास्तु दशमूल्यास्तथा शतम् ॥ शतं हरीतकीनाञ्च पचेत्तोये चतुर्गुणे ॥ ४३ ॥ पादावशेषे तस्मिंस्तु रसे वस्त्रनिपीडिते ॥ आलोड्य च तुलां पूतां गुडस्य त्वभयास्ततः ॥ ४४ ॥ पुनः पचेत्तु मृद्वग्नौ यावल्लेहत्वमेति तत् ॥ शीते च मधुनस्तत्र षट्पलानि विनिक्षिपेत् ॥४५॥ त्रिकटु त्रिसुगन्धञ्च पलमात्रं पृथक्पृथक् ॥ यवक्षारं कर्षयुग्मं संचूर्ण्य प्रक्षिपेत्ततः ॥ ॥ ४६ ॥ भक्षयेदभयामेकां लेहस्यार्द्धपलं तथा ॥ श्वासं सुदारुणं हन्ति कासं पञ्चविधं तथा ॥ ४७ ॥ अर्शांस्यरोचकं गुल्मं शकृद्भेदं क्षयं तथा ॥ स्वरवर्णप्रदो ह्येष जठराग्नेश्च दापनः ॥ नाम्ना भार्ङ्गीगुडः ख्यातो भिषग्भिः सकलैर्मतः ॥ ४८ ॥

भारगी ४०० चारसौ तोले, दशमूलकी औषधि ४०० चारसौ तोले और हरड ४०० चारसौ तोले लेकर चौगुने जलमे पकावै जब पकते पकते चौथाई भाग जल बाकी रहजाय तब उसको उतारकर वस्त्रमे छानलेवे, फिर उसमें ४०० चारसौ तोले गुड और उसी क्वाथमे की हरड डालकर मंद मंद अग्निसे धीरे धीरे पकावै, जब पकते २ सीरेकी समान होजाय तब उसमें, शीतल होनेपर २४ चौवीस तोले सहत, मिलादेवे तथा सोंठ ४ तोले, मिर्च ४ तोले, पीपल ४ तोले, दालचीनी ४ तोले, तेजपात ४ तोले, इलायची ४ तोले और जवाखार २ तोले, इनका चूर्ण करके मिलादेवे फिर इसमेंसे प्रतिदिन १ हरड और दो तोले इस अवलेहको सेवनकरे तो इससे महादारुण श्वास, पाचप्रकारकी खाँसी, बवासीर, अरुचि, गुल्म, अतिसार और क्षयरोग नष्ट होताहै । यह 'भार्ङ्गी गुड' इस नामसे प्रसिद्ध है। भार्ङ्गीगुड अवलेह–स्वर और वर्णको उत्तम करनेवाला और जठराग्निको दीप्त करनेवाला है॥४३–४८॥

अथ महाकट्फलादियोगः ।

अष्टांगचूर्णसंयुक्तं छागक्षीरं प्रयोजयेत् ॥ श्वासं कासान्वितं घोरं हन्यादेतन्न संशयः ॥ ४९ ॥

कायफल, अडकी जड, काकडाशिगी, अजवायन, कलौंजी, सोंठ, मिरच और पीपल इन आठ पदार्थोंको समान भाग लेकर चूर्ण करके बकरीके दूधके साथ पीनेसे घोर खाँसी युक्त भी श्वास अवश्य नष्ट होजाताहै ॥४९॥

अथ दशमूलरसः।

दशमूलरसो देयः श्वासनिर्मूलशान्तये ॥ अवश्यं मरणीयो यो जीवेद्वर्षशतं नरः ॥ ५० ॥

श्वासको जडसे नष्ट करनेके लिये दशमूलका रस सेवन करना चाहिये, जो मनुष्य श्वाससे अवश्य मरनेवाला हो वह मनुष्य भी इसके प्रसादसे सौ वर्षतक जीताहै ॥५०॥

अथ श्वासकुठाररसः।

रसो गन्धो विषश्चापि टंकणश्च मनःशिला॥ एतानि कर्षमात्राणि मरिचं चाष्टकर्षकम् ॥ ५१ ॥ कटुत्रयं कर्षयुग्मं पृथगत्र विनिक्षिपेत् ॥ रसः श्वासकुठारोऽयं सवश्वासनिवारणः ॥ ५२ ॥

इति श्वासाधिकारः।

पारा १ तोला, गधक १ तोला, वत्सनाभ १ तोला, सुहागा १ तोला, मैनशिल १ तोला और काली मिर्च ८ तोले इन सबका बारीक चूर्ण करके उसमें दो तोले सोंठका चूर्ण, दो तोले मिर्चका चूर्ण और दो तोले पीपलका चूर्ण अलग अलग मिलादेवे तो यह 'श्वासकुठार' नामवाला रस सिद्ध होताहै। इस रसमेंसे दो रत्तीभर पानमे रखकर खाय इससे सब प्रकारके श्वास नष्ट होतेहैं ॥५१॥५२॥

इति श्रीभावप्रकाशे शालिग्रामवैश्यकृतवैद्यसंजीवनीभाषाटीकायां श्वासाधिकारः संपूर्ण.।

अथ स्वरभेदाधिकारः।

तत्र स्वरभेदनिदानसम्प्राप्तिपूर्वकसामान्यलक्षणम्।

अत्युच्चभाषणविषाध्ययनाभिघातसन्दूषणैः प्रकुपिताः पवनादयस्तु ॥ स्रोतःसु ते स्वरवहेषु गताःप्रतिष्ठां हन्युः स्वरं भवति चापि हि षड्विधः सः ॥ १ ॥

अध्ययनमुच्चैर्वेदादिपाठः। अभिघातः कण्ठादिदेशे लगुडादिभिः। एतैरत्युच्चभाषणादिभिश्चतुर्भिःसंदूषणैरन्यैरपि निजैर्दुष्टहेतुभिः स्रोतःसु स्वरवहेषु चतुर्षु प्रतिष्ठां स्थितिं गताः स्वरं हन्युरिति लक्षणम्।स स्वरभेदः षड्विधः। वातपित्तकफसन्निपातमेदोभवभेदैः ॥

अत्यत ऊंचे स्वरसे बोलनेसे, विषको भक्षण करनेसे, स्वरसे वेद शास्त्रादिकके पाठ करनेसे, कंठ आदि प्रदेशमें लकडी इत्यादिकी चोटके लगनेसे और अन्यान्य अपने अपने दुष्ट कारणोंसे कोपको प्राप्त हुए वातादि दोष स्वरके वहनेवाले स्रोतों (छिद्रो) में स्थित होकर स्वरको नष्ट करते हैं उस रोगको स्वरभेद कहते हैं। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, क्षयज और मेदज इस रीतिसे स्वरभेद छे प्रकारका है ॥ १ ॥

अथ वातजस्वरभेदलक्षणम्।

वातेन कृष्णनयनाननमूत्रवर्चा भिन्नं शनैर्वदति गर्दभवत्स्वरञ्च ॥

वातसे उत्पन्न हुए स्वरभेदमें टूटे फूटे धीरे धीरे गधेके स्वरकी समान वचन बोलताहै, तथा उसके नेत्र, मुख, मूत्र और विष्ठा ये काले पड जाते हैं।

अथ पित्तजस्वरभेदलक्षणम्।

पित्तेन पीतनयनाननमूत्रवर्चा ब्रूयाद्गलेन स च दाहसमन्वितेन ॥ २ ॥

गलदाहः वचनसमय एव बोद्धव्यः ॥

पित्तज स्वरभेदमें वह मनुष्य दाह युक्त गलेसे बोलताहै, तथा उसके नेत्र, मुख, मूत्र और विष्ठा वे सब पीले पड जाते हैं ॥ २ ॥

अथ कफजस्वरभेदलक्षणम्।

ब्रूयात्कफेन सततं कफरुद्धकण्ठः स्वल्पं शनैर्वदति चापि दिवा विशेषात् ॥

दिवा सूर्यरश्मिभिः कफस्य अल्पीभावात्।

कफज स्वरभेदमें निरंतर कफसे गला रुकासा रहताहै धीरे धीरे थोडा बोलताहै और दिनमें सूर्यकी किरणोंके निकलनेसे कफ कटकर कुछ अधिक बोलताहै।

अथ सन्निपातजस्वरभेदलक्षणम्।

सर्वात्मिके भवति सर्वविकारसम्पत्तं चाप्यसाध्यमृषयः स्वरभेदमाहुः ॥ ३ ॥

तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुए स्वरभेदमें तीनों दोषोंके लक्षण होतेहैं, यह स्वरभेद असाध्य है ऐसा ऋषियोंने कहा है ॥ ३ ॥

अथ क्षयजस्वरभेदलक्षणम्।

धूम्येतवाक्क्षयकृते क्षयमाप्नुयाच्च स्यादेव चापि हतवाक्परिवर्जनीयः ॥

वाक् धूम्येत सधूमेव निःसरति। क्षयं वाप्नुयात् वागेव ॥

क्षयज स्वरभेदमें बोलते समय मुखमेंसे धुआँसा निकलताहै, अथवा बोलते समय शब्द नष्ट होजातेहैं, इस प्रकार नष्ट वाणीवाले मनुष्यको असाध्य समझकर उसकी चिकित्सा नहीं करे ॥

अथ मेदोजन्यस्वरभेदलक्षणम्।

अन्तर्गलं स्वरमलक्ष्यपदं चिरेण मेदोन्वयाद्वदति दिग्धगलस्तृषार्तः ॥ ४ ॥

अन्तर्गलं गलस्य मध्य एव स्वरं वदति। दिग्धगलः मेदसा श्लेष्मणा च लिप्तगलः। तृषार्तः मेदस उष्मणा आर्तवरोधात् ॥

मेदोजस्वरभेदमें मनुष्य बहुत देरसे गलेके भीतर ही जो दूसरोंके समझमें नही आवै ऐसे शब्द बोलताहै, मेदसे और कफसे उत्पन्न हुए स्वरभेदमें गला कफसे लिसासा रहताहै और तृषासे पीडित रहताहै ॥ ४ ॥

अथ स्वरभेदासाध्यलक्षणम्।

क्षीणस्य वृद्धस्य कृशस्य चापि चिरोत्थितो यश्च सहोपजातः ॥ मेदस्विनः सर्वसमुद्भवश्च स्वरामयो नैव स सिद्धिमेति ॥ ५ ॥

क्षीणस्य क्षयरोगिणः। कृशस्य अपुष्टस्य ॥

क्षयरोगीका, वृद्धका, दुर्बल मनुष्यका स्वरभेद, अथवा बहुत दिनोंका पुराना वा, जन्मसे उत्पन्न हुआ, मेदवाले मनुष्यको उत्पन्न हुआ और तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुआ ऐसा स्वरभेद असाध्य होताहै ॥ ५ ॥

अथ स्वरभेदचिकित्सा।

वातादिजनितश्वासकासघ्ना ये प्रकीर्तिताः ॥ योगास्तानत्र युञ्जीत यथादोषं चिकित्सकः ॥ ६ ॥ वाते सलवणं तैलं पित्ते सर्पिः समाक्षिकम् ॥ कफे सक्षारकटुकं क्षौद्रं कवल इष्यते ॥ ७ ॥ गले तालुनि जिह्वायां दन्तमूलेषु चाश्रितः ॥ तेन निष्कृष्यते श्लेष्मा स्वरश्चाशु प्रसीदति ॥ ८ ॥ आद्ये कोष्णं जलं पेयं भुक्त्वा घृतरसौदनम् ॥ क्षीराम्बुपानं पित्तोत्थे पिबेत्सर्पिरतन्द्रितः ॥ ९ ॥ पिप्पलीं पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम् ॥ पिबेन्मूत्रेण मतिमान्कफजे स्वरसंक्षये ॥ १० ॥

वातादिसे उत्पन्न हुए श्वासको और खाँसीको हरनेवाले जो प्रयोग कहे हैं, उन्हीं प्रयोगोंको वैद्य लोग दोषोंकी पद्धतिके अनुसार इस स्वरभेदमें योजे।

जो वातसे स्वरभेद हुआ होय तो लवणके साथ तेलको, पित्तसे स्वरभेद हुआ होय तो सहतके साथ घीको, और जो कफसे स्वरभेद हुआ होय तो क्षार तथा चरपरे पदार्थोंके साथ सहतका कवल करना चाहिये। कवल करानेसे गला, तालू, जीभ और दन्तमूलोंमें रहा हुआ कफ निकलजाताहै और स्वर तत्काल साफ होजाताहै। वातजस्वरभेदमें घी और मासके रसके साथ भात खाय और मंदोष्ण जल पीवै, पित्तज स्वरभेदमें आलस्यको छोडकर दूध और पानी तथा घी पीवै और कफजस्वरभेदमें पीपल, पीपलामूल, मिर्च और सोंठ इनका चूर्ण करके गोमूत्रछा सेवन करै ॥ ६–१० ॥

अथ निदिग्धिकावलेहः।

निदिग्धिकातुला ग्राह्या तदर्द्धं ग्रन्थिकस्य तु ॥ तदर्द्धं चित्रकस्यापि दशमूलश्च तत्समम् ॥ ११ ॥ जलद्रोणद्वये काथ्यं गृह्णीयादाढकं ततः ॥ पूते क्षिपेत्तदर्द्धन्तु पुराणस्य गुडस्य च ॥ १२ ॥ सवमेकत्र कृत्वा तु लेहवत्साधु साधयेत् ॥ अष्टौ पलानि पिप्पल्यास्त्रिजातकपलं तथा ॥ १३ ॥ मरिचस्य पलं चैकं सर्वमेकत्र

चूर्णितम् ॥ मधुनः कुडवं दत्त्वा तदश्नीयाद्यथानलम् ॥ १४ ॥ निदिग्धिकावलेह्योऽयं भिषग्भिर्मुनिभिर्मतः ॥ स्वरभेदहरो मुख्यः प्रतिश्यायहरस्तथा ॥ १५ ॥ कासश्वासाग्निमान्द्यादीन्गुल्ममेहगलामयान् ॥ आनाहमूत्रकृच्छ्राणि हन्याद्ग्रन्थ्यर्बुदानि च ॥ १६ ॥

कटेरी ४०० चारसौ तोले, पीपलामूल २०० दोसौ तोले, चीता १०० सौ तोले और दशमूलकी औषधि १०० सौ तोले, इन सबको २०४८ दोहजार अडतालीस तोले जलमें पकावै, जब पकते पकते २५६ दोसौ छप्पन तोले जल बाकी रहजाय तब उस क्वाथको वस्त्रमे छानकर फिर उस क्वाथसे आधा पुराना गुड डालकर अवलेहकी तरह पकावै, जब यह सीरेकी समान हो जाय तब इसमें त्रिजातकका चूर्ण ३२ वत्तीस तोले और कालीमिर्चोंका चूर्ण ४ तोले और सहत १६ सोलह तोले मिलावै तो यह निदिग्धिकादि अवलेह तैय्यार होताहै, इस अवलेहको अपनी जठराग्निके बलानुसार सेवन प्रतिश्यायको नष्ट करनेवाला है तथा खाँसी, श्वास, अग्निकी मन्दता, गुल्म, प्रमेह, गलेके रोग, विष्ठाके अवरोधसे पेटका अफरना, मूत्रकृच्छ्र, ग्रंथि और अर्बुदको नष्ट करै है ॥ ११-१६ ॥

अथ मृगनाभ्याद्यवलेहः ।

मृगनाभिः ससूक्ष्मैलालवङ्गकुसुमानि च ॥ त्वक्क्षीरी चेति लेहोऽयं मधुसर्पिःसमायुतः ॥ वाक्स्तम्भमुग्रं जयति स्वरभ्रंशसमन्वितम् ॥ १७ ॥

कस्तूरी, छोटी इलायची, लौंग वंशलोचन इनका चूर्ण करके सहत और घीमें मिलाकर चाटनेसे स्वरभेद और जिह्वाकी जडता दूर होतीहैं ॥ १७ ॥

अथ ब्राह्म्याद्यवलेहः ।

ब्राह्मी वचाऽभयावासा पिप्पली मधुसंयुता ॥ अस्य प्रयोगात्सप्ताहात्किन्नरैः सह गीयते ॥ १८ ॥

ब्राह्मी, वच, हरड, अडूसा और पीपल इनको पीसकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे सातदिनमे किन्नरकी समान गायन करसक्ताहै ॥ १८ ॥

इति स्वरभेदाधिकारः सपूर्णः ।

इति स्वरभेदाधिकार. ।

अथारोचकाधिकारः ।

तत्र सनिदानवातारोचकलक्षणम् ।

वातादिभिः शोकभयातिलोभक्रोधैर्मनोघ्नाशनरूपगन्धैः ॥ अरोचकाः स्युः परिहृष्टदन्तः कषायवक्त्रश्च मतोऽनिलेन ॥ १ ॥

वातादि दोषोंसे, शोकसे, भयसे, पीडासे, लोभसे, क्रोधसे, मनको विगाडनेवाले भोजन, रूप और गंधसे, अन्नादिकपर जो अरुचि उत्पन्न होतीहै उसको अरोचक कहतेहैं । वातज, पित्तज, कफज, शोकादि आगतुज और त्रिदोष ऐसे अरोचक रोग पाचप्रकारकाहै । वातज अरोचकके लक्षण । तहा वातज अरुचिमे दाँत खट्टे और मुख कसैला रहता है ॥ १ ॥

अथ पित्तजारुचिलक्षणम् ।

कट्वम्लमुष्णं विरसञ्च पूति पित्तेन विद्याल्लवणञ्च वक्त्रम् ॥

यतो विदग्धश्लेष्मास्य लवणभावमुपैति लवणं हि वक्त्रम् ॥

पित्तकी अरुचिमें मुख चरपरा, खट्टा, विरस और दुर्गंधित रहताहै । क्योंकि दाहको प्राप्त हुआ कफ खारी होनेके कारण मुख खारी होजाताहै ।

अथ कफजारुचिलक्षणम् ।

माधुर्यपैच्छिल्यगुरुत्वशैत्यस्निग्धत्वदौर्गन्ध्ययुतं कफेन ॥ २ ॥

तथा पैच्छिल्यं मुखस्य अभ्यन्तरे । स्निग्धत्वं वहिः ॥

कफकी अरुचिमें तथा मधुर, पिच्छिल, भारी, शीतलतायुक्त और दुर्गंधित होजाताहै ॥ २ ॥

अथागन्तुजारुचिलक्षणम् ।

अरोचके शोकभयातिलोभक्रोधाद्यहृद्याशुचिगन्धजे स्यात् ॥ स्वाभाविकश्चास्य मथारुचिश्च त्रिदोपजे नैकरसं भवेच्च ॥३॥

क्रोधादीत्यादिशब्देन अहृद्ययोरशनरूपयोर्ग्रहणम् । स्वाभाविकश्च अविकृतरसम् । त्रिदोषजमाह–नैकरसम् अनेकरसमास्यं स्यात् ॥

शोकसे, भयसे, अत्यन्त लोभसे, क्रोधादिकसे, अप्रिय भोजन करनेसे, अप्रिय रूपको देखनेसे और अप्रिय गंधको सूंघनेसे मुख स्वाभाविक रसयुक्त होताहै । कुछ विकृति नहीं होतीहै । त्रिदोपसे उत्पन्न हुई अरुचिमें मुख अनेक रसोंवाला होताहै ॥ ३ ॥

अथ वातजाद्यरोचकविशेषलक्षणम् ।

हृच्छूलपीडनयुतं पवनेन पित्तात्तृड्दाहचोषबहुलं सकफप्रसेकम् ॥ श्लेष्मात्मकं बहुरुजं बहुभिश्च विद्याद्वैगुण्यमोहजडताभिरथापरश्च ॥ ४ ॥

हृच्छूलपीडनयुतं हृदि शूलेन पीडनं तेन युतम् । चोषः पार्श्वस्थिताग्निनेव सन्तापः । बहुभिः त्रिभिर्दोषैः बहुरुजम् उक्तवातादिरोगयुक्तम् । वैगुण्यं मनसो व्याकुलत्वम् । जडता शून्यता । अपरम् आगन्तुजम् । भक्तद्वेषभक्ताच्छन्दौ चरकसुश्रुताभ्याम् अरोचकत्वेनैव संगृहीतौ । वृद्धभोजस्तेषां लक्षणानि पृथगाह–

प्रक्षिप्तन्तु मुखे चान्नं यत्र नास्वादते नरः ॥ अरोचकः स विज्ञेयो भक्तद्वेषमतः शृणु ॥ ५ ॥

न आस्वादते अन्नस्य मिष्टतां न प्राप्नोति । तदन्नं मिष्टं न लगतीति यावत् ॥

चिन्तयित्वा तु मनसा दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा तु भोजनम् ॥ द्वेषमायाति यो जन्तुर्भक्तद्वेषः स उच्यते ॥ ६ ॥ कुपितस्य भयार्तस्य तथा भक्तविरोधिनः ॥ यत्र नान्ने भवेच्छ्रद्धा स भक्ताच्छन्द उच्यते ॥ ७॥

वातकी अरुचिमें हृदयमें शूलकी समान पीडा होतीहै पित्तकी अरुचिमें तृषा, अत्यन्त दाह और अग्नि सेवनके समान संताप होताहै, कफकी अरुचिमें मुखमेंसे कफ युक्त थूक निकलताहै, त्रिदोषकी अरुचिमे उपरोक्त सब लक्षण होतेहैं और आगन्तुज कारणोंसे उत्पन्न हुई अरुचिमे मनमें व्याकुलता, मोह (बेहोशी) और शून्यता होतीहै ।

विशेषविवेचनम् ।

भक्तद्वेष और भक्ताच्छन्दको यद्यपि चरक और सुश्रुतमे अरुचिहीमें माना है तथापि वृद्ध भोजने इसके लक्षण अरुचिसे अलग लिखेहैं । वृद्ध भोज कहताहै कि मुखमें दिया हुवा अन्नका ग्रास अच्छा न लगे तो उसको 'अरोचक' कहतेहैं । मनसे भोजनका चिन्तवन करके, भोजनको देखकरके और भोजनका स्पर्श करके, जो भोजनपर द्वेष उत्पन्न होताहै उसको 'भक्तद्वेष' कहते है । क्रोधसे, भयसे, पीडासे और प्रेमके अनुरोधसे जो अन्नपर श्रद्धा नहीं रहती उसको 'भक्ताच्छन्द कहतेहैं ॥ ४–७ ॥

अथारोचकचिकित्सा ।

भोजनाग्रे सदा पथ्यं लवणार्द्रकभक्षणम्॥ रोचनं दीपनं वह्नेर्जिह्वाकण्ठविशोधनम् ॥ ॥ ८ ॥ शृंगवेररसं वापि मधुना सहयोजयेत् ॥ अरुचिश्वासकासघ्नं प्रतिश्यायकफापहम् ॥ ९ ॥

भोजनसे आगे सदैव लवण और अदरखका भक्षण पथ्य है, रुचिको करनेवाला, अग्निको दीपन करनेवाला और जिह्वा तथा कण्ठको शुद्ध करनेवाला है । सहतके साथ अदरखके रसको पीनेसे अरुचि, श्वास, खांसी प्रतिश्याय और कफ नष्ट होताहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

अथाम्लीकापानकम् ।

पक्वाम्लीका सिता शीतवारिणा वस्त्रगालिता ॥ एलालवंगकर्पूरमरिचैरवधूलिता ॥ १० ॥ पानकस्यास्य गण्डूषं धारयित्वा मुखे मुहुः ॥ अरुचिं नाशयत्येव पित्तं प्रशमयेत्तथा ॥ ११ ॥

पकीहुई इमली और खांड इनको शीतल जलमें घोलकर उसको वस्त्रमे छानलेवे, फिर उसमे इलायची, लौंग, कपूर और मिरचका चूर्ण डालदेवे, इसको अम्लीकापानक

कहतेहैं इस पानक (पन्ना) के मुखमें वारवार गण्डूष (कुल्ले) धारण करनेसे अरुचि नष्ट होतीहै और पित्त-शमन होताहै ॥ १०-११ ॥

अथ तक्रम् ।

राजिकाजीरकौ भृष्टौ भृष्टं हिङ्गु सनागरम् ॥ सैन्धवं दधि गोः सर्वं वस्त्रपूतं प्रकल्पयेत् ॥ १२ ॥ तावन्मात्रं क्षिपेत्तत्र यथा स्याद्रुचिरुत्तमा ॥ तक्रमेतद्भवेत्सद्यो रोचनं वह्निवर्द्धनम् ॥ १३ ॥

भुनीहुई राई, भुनाहुआ जीरा, भुनीहुई हींग, भुनीहुई सोंठ, सैंधानिमक और गायका दही इन सबको मिलाकर वस्त्रमें छान लेवे,फिर जितनीमे वह ठीक होजाय उतनी ही उसमें छॉछ मिलावे । यह तक्र-तत्काल रुचिको उत्पन्न करेहै और जठराग्निको वढावेहै ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथ शिखरिणी ।

सम्यगावर्तितं दुग्धं निबद्धं दधि माहिषम् ॥ एकीकृत्य पटे घृष्टं शुभ्रशर्करया समम् ॥ १४ ॥ एलालवंगकर्पूरमरिचैश्च समन्वितम् ॥ नाम्ना शिखरिणी कुर्याद्रुचि सकलवल्लभाम् ॥ १५ ॥

अच्छे प्रकारसे औटाया हुआ दूध और वस्त्रमें बाँधा हुआ पानी रहित भैंसका दही इनको एकत्र करके उसमे उत्तम सफेद चीनी मिलाकर मोटे वस्त्रमें घिसकर छान लेवैं फिर उसमें इलायची, लौंग भीमसेनीकपूर और काली-मिरच, डाले तो सिखरन सिद्ध होजातीहै । सब लोगोंको प्रिय यह सिखरन रुचिको उत्पन्न करेहै ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ दाडिमादिचूर्णम् ।

द्वे पले दाडिमाम्लस्य खण्डं दद्यात्पलत्रयम् ॥ त्रिसुगन्धि पलं चैकं चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥ १६॥ तच्चूर्णं मात्रया भुक्तमरोचकहरं परम्॥दीपनं पाचनं च स्यात्पीनसज्वरकासजित् ॥ १७ ॥

खट्टे अनारके दाने ८ तोले,खाड १२ तोले,त्रिसुगन्धि (दालचीनी, इलायची, तेजपात), ४ तोला, इन सबका एकत्र चूर्ण करके मात्रानुसार खाय तो अरुचि नष्ट होजातीहै । यह चूर्ण-अग्निको दीपन करनेवाला, पाचन है, पीनस, ज्वर और खाँसीको दूर करेहै ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ लवंगादिचूर्णम् ।

लवंगकंकोलमुशीरचन्दनं नतं सनीलोत्पलकृष्णजीरकम् ॥ जलं सकृष्णागुरुभृंगकेसरं कणा च विश्वा नलदं सहेलया ॥ ॥ १८ ॥ तुषारजातीफलवंशरोचनाः सितार्द्धभागाः सकलं विचूर्णितम् ॥ सुरोचनं तर्पणमग्निदीपनं बलप्रदं वश्यतमं त्रिदोषजित् ॥ १९ ॥ उरोविबन्धं तमकं गलग्रहं सकासहिक्कारुचियक्ष्मपीनसम्॥ ग्रहण्यतीसारमुरःक्षतं नृणां तथा प्रमेहान्निखिलान्निहन्ति ॥ २० ॥

कंकोलं सुगन्धविशेषः । नतं तगरम् । जलं वालकं भृंगं त्वक् । नलदमुशीरम् । तुषारः कर्पूरः । इति लवंगादिचूर्णम् ॥

लौंग, ककोच, मिरच, खस, चन्दन, तगर,नीलेकमल के बीज, कालाजीरा, सुगन्धवाला, अगर, तज, नागकेशर, पीपल, सोंठ, इलायची, भीमसेनीकपूर, जायफल, वंशलोचन और सबसे आधी खाड लेवै, सबको एकत्र मिला-लेवै, इसको सेवन करनेसे रुचि उत्पन्न होतीहै, तृप्ति होतीहै, अग्नि दीपन होतीहै, बलकी वृद्धि होतीहै मैथुन-शक्ति वढतीहै, तीनों दोष शमन होतेहैं, तथा छातीका जकडना, तमक, श्वास, गलग्रह, खाँसी, हिचकी, अरुचि, क्षयरोग, पीनस, सग्रहणी, अतिसार, उरःक्षत और सर्व प्रकारके प्रमेह रोग नष्ट होजातेहैं॥ १८-२० ॥

यवानीखाण्डवचूर्णम् ।

यवानी दाडिमं शुण्ठी तिन्तिडीकाम्लवेतसैः ॥ बदराम्लश्च कुर्वीत चतुःशाणमितानि च ॥ सार्द्धद्विशाणं मरिचं पिप्पली दशशाणिका ॥ २१ ॥ त्वक् सौवर्चलधान्याकजीरकं द्विद्विशाणिकम्॥ चतुःषष्टिमितैः शाणैः शर्करामत्र योजयेत् ॥ २२ ॥ चूर्णितं सर्वमेकत्र यवा-

नोखाण्डवाभिधम् ॥ चूर्णं जयेत्पाण्डुरोगं हृद्रोगं ग्रहणीज्वरम् ॥ २३ ॥ छर्दिशोषातिसारांश्च प्लीहानाहविबन्धताम् ॥अरुचिं शूलमन्दाग्निमर्शोजिह्वागलामयान्॥२४॥

अजवायन, अनार, सोंठ, इमली, अमलवेत और सुखाया हुआ बेरका गूदा ये प्रत्येक पदार्थ एक एक तोला कालीमिरच ६० रत्ती, पीतल २४० रत्ती, दालचीनी, कालानिमक, धनिया और जीरा प्रत्येक पदार्थ ४८ रत्ती भर लेवै, खाड २४ शाण लेवै, सबका एकत्र चूर्ण करले तो यवानीखांड व चूर्ण तैयार होजाताहै। इस चूर्णको सेवन करनेसे पाडुरोग, छातीका दर्द, ग्रहणी, ज्वर,वमन, शोष, अतीसार, प्लीहा, अफारा, मलबंध, अरुचि, शूल, अग्निकी मंदता, बवासीर, जिह्वाके रोग और गलेके रोग नष्ट होजातेहैं ॥ २१–२४ ॥

इति अरोचकाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ छर्द्यधिकारः ।

तत्र विप्रकृष्टसन्निकृष्टनिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः ।

अतिद्रवैरतिस्निग्धैरहृद्यैर्लवणैरपि ॥ अकाले चातिमात्रैश्च तथाऽसात्म्यैश्च भोजनैः ॥ १ ॥ आमाद्भयात्तथोद्वेगादजीर्णात्क्रिमिदोषतः ॥ नार्याश्चापन्नसत्त्वायास्तथातिद्रुतमश्नतः ॥ बीभत्सैर्हेतुभिश्चान्यैर्भुक्तमुत्क्लिश्यते बलात् ॥ २ ॥

आमात् असम्यक् पक्वात् रसात्। अजीर्णात् यथास्थितात् भुक्तात् ।आपन्नसत्त्वायाः प्राप्तगर्भायाः । अन्यैर्बीभत्सैर्विकृतैः हेतुभिः घृणाकारिभिः। अनिष्टश्रवणस्पर्शनदर्शनभक्षणपानैः उत्क्लिश्यते ॥

दुष्टैर्दोषैः पृथक्सर्वैर्बीभत्सालोकनादिभिः। छर्दयः पञ्च विज्ञेयास्तासां लक्षणमुच्यते ॥ ३ ॥

अत्यंत पतले और चिकने भोजन करनेसे और अप्रिय और खारी भोजन करनेसे, विनासमय भोजन करनेसे, अत्यत भोजन करनेसे, अहित भोजन करनेसे, आमसे, भयसे, उद्वेगसे, अजीर्णसे, कृमिदोषसे, गर्भके रहनेसे,बहुत शीघ्र शीघ्र भोजन करनेसे, दूषित हुई वायु, दुष्ट हुआ पित्त और दुष्ट हुए कफसे तथा दुष्ट हुए तीनो दोषोसे, ग्लानिजनक पदार्थोंके देखनेसे , सुननेसे, स्पर्श करनेसे, अथवा भक्षण करनेसे, अथवा बलात्कार भोजन करनेसे और अत्यत भयकर कारणोसे, कुपित दोषोसे भोजन करी हुई वस्तु पीछे उछलकर पाँच प्रकारकी छर्दिको उत्पन्न करैहै, अब उनके लक्षण कहेजातेहैं ॥१–३॥

(१) आम–अर्थात् अच्छे प्रकारसे नहीं पका हुआ अन्नरस। (२) अजीर्ण–अर्थात् जैसा भोजन किया होय वैसाही पेटमे रक्खा रहे पका न होय।

अथ वमनपूर्वलक्षणम् ।

हृल्लासोद्गारसंरोधौ प्रसेको लवणास्यता॥ द्वेषोऽन्नपाने च भृशं वमीनां पूर्वलक्षणम्॥४॥

उवकाईका आना, डकारका रुकना, मुखसे पानीका गिरना, मुखमें खारीपन और अन्नपानमे अत्यन्त अरुचि होतीहै। यह पूर्वलक्षण जानने ॥ ४ ॥

अथ वमनसामान्यलक्षणम् ।

छादयन्नाननं वेगैरर्दयन्नङ्गभञ्जनैः॥ निरुच्यते छर्दिरिति दोषो वक्त्रं प्रधावितः॥५॥

छादयन् पूरयन् अंगभञ्जनैः अङ्गभेदैः अर्दयन् अंगानि पीडयन्। वक्त्रं प्रधावितः दोषः छर्दिः इत्युच्यते ॥

जो रोग वेगोंसे मुखको भरताहुआ, अंगोको तोडता हुआ और पीडाको करताहुआ जो दोषोका मुखमें आता है उसको वमन कहतेहैं ॥ ५ ॥

अथ वातजच्छर्दिलक्षणम् ।

हृत्पार्श्वपीडामुखशोषशीर्षनाभ्यर्तिकासस्वरभेदतोदैः॥उद्गारशब्दप्रबलं सफेनं विच्छिन्नकृष्णं तनुकं कषायम् ॥ कृच्छ्रेण चाल्पं महता च वेगेनार्तोऽनिलाच्छर्दयतीव दुःखम् ॥ ६ ॥

कषायं कषायरसम्। दुःखमिव छर्दयति ॥

वातकी छर्दिमे छाती और पसलियोंमे पीडा, मुखशोष, मस्तक और नाभिमें दर्द, खाँसी, स्वरभग, अंगोमे सुई चुभोने सरीखी पीडा, डकारका प्रबल शब्द झागोंयुक्त, टूटीसी, काली, पतली, कसैली और थोडी छर्दि (उलटी) अत्यन्त कष्टसे तथा बडे वेगसे होतीहै ॥ ६ ॥

अथ पित्तजच्छर्दिलक्षणम्।

मूर्च्छापिपासामुखशोषमूर्द्धताल्वक्षिसन्तापतमोभ्रमार्तः ॥ पीतं भृशोष्णं हरितञ्च तिक्तं धूम्रञ्च पित्तेन वमेत्सदाहम् ॥७॥

पित्तकी छर्दिमें मूर्च्छा, तृषा, मुखमें शोष, मस्तक, तालू और नेत्रोंमें सन्ताप, अन्धेरी आवे, भ्रम हो, तथा पीली बहुत गरम, हरी, कडवी, धुँएँयुक्त और दाहयुक्त वमन होतीहै ॥ ७ ॥

अथ कफवमनलक्षणम्।

तन्द्रास्यमाधुर्यकफप्रसेकसन्तोषनिद्राऽरुचिगौरवार्तः ॥ स्निग्धं घनं स्वादु कफाद्धि शुक्लं सलोमहर्षोऽल्परुजं वमेत्तु ॥ ८ ॥

कफकी वमनमें तन्द्रा, मुखमें मधुरता, कफका गिरना, तृप्तिका होना, निद्राका आना, अरुचि और भारीपन इनसे पीडित होताहै, रोमाचोंका खडा होना तथा स्निग्ध (चिकनी), गाढी, मीठी, सुफेद और अल्प पीडावाली वमन होतीहै ॥ ८ ॥

अथ त्रिदोषजवमनलक्षणम्।

शूलाविपाकारुचिदाहतृष्णाश्वासप्रमोहप्रबला प्रसक्ता ॥ छर्दिस्त्रिदोषाल्लवणाम्लनीलसान्द्रोष्णरक्तं वमतां नृणां स्यात् ॥९॥

त्रिदोषजन्य वमनमें शूल, अन्नका अच्छे प्रकारसे परिपाक न होना, अरुचि, दाह, तृषा, श्वास और अत्यन्त मोह होताहै । तथा खारी, खट्टी, नीलेरगकी, गाढी, गरम और रुधिरवाली वमन होतीहै ॥ ९ ॥

अथागन्तुजवमनलक्षणम्।

असात्म्यजा च क्रिमिजामजा च बीभत्सजा दौर्हृदजा च या हि ॥ सा पञ्चमी ताञ्च विभावयेत्तु दोषोच्छ्रयेणैव यथोक्तनादौ ॥ १० ॥

एताः पञ्च अपि आगन्तुजत्वेन साम्यात् एकैव । अत एव सा आगन्तुजा पञ्चमी । विभावयेत् अनुबन्धयेत् ॥

अहित भोजन करनेसे कृमि तथा आमसे ग्लानिकारक पदार्थोंके देखनेसे और गर्भवती स्त्रियोंके गर्भके रहनेसे उत्पन्नहुई, इस प्रकार आगन्तुज वमन पाँच प्रकारकी है । और वह आगन्तुज वमन पूर्वोक्त लक्षणोंसे यथादोषानुसार जाननी चाहिये ॥ १० ॥

अथ वमनोपद्रवाः।

कासः श्वासो ज्वरस्तृष्णाहिक्कावैचित्त्यमेव च ॥ हृद्रोगस्तमकश्चैव ज्ञेयाश्छर्देरुपद्रवाः ॥ ११ ॥

वैचित्त्यं विकृतचित्तत्वम्। तमकोऽत्र तमःश्वासपदेनैव तमकाख्यस्यापि श्वासस्य उक्तिः ॥

खाँसी, श्वास, ज्वर, तृषा, हिचकी, चित्तकी विकृति (घबराहट), छातीकी पीडा और अन्धकारसा दिखाई देना, ये सब वमनके उपद्रव हैं ॥ ११ ॥

अथ वमनसाध्यासाध्यता।

क्षीणस्य या छर्दिरतिप्रसक्ता सोपद्रवा शोणितपूययुक्ता ॥ सचन्द्रिकां तां प्रवदन्त्यसाध्यां साध्यां चिकित्सेन्निरुपद्रवां च ॥ १२ ॥

सचन्द्रिकां मयूरपिच्छचन्द्रिकाप्रभायुक्ताम्।

जो वमन क्षीण मनुष्यको, अधिकतर, उपद्रवयुक्त रुधिर और राध (मवाद) सहित, तथा मोरपूँछकी समा कांतिवाली वमन होय तो असाध्य जाननी और जो वम उपद्रवरहित होय तो साध्य है ॥ १२ ॥

अथ वमनचिकित्सा।

आमाशयोत्क्लेशभवा हि सर्वाश्छर्द्यो मता लंघनमेव तस्मात् ॥ विधीयते मारुतजां विना तु संशोधनं वा कफपित्तहारि ॥१३॥

सर्व प्रकारकी वमन आमाशयमे उत्क्लेद (दोष) के होनेसे होतीहैं इस कारण इनमें लंघन कराने चाहिये अथवा कफ और पित्तनाशक संशोधन देवे किंतु वातकी छर्दिमें यह चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ १३ ॥

हन्यात्क्षीरोदकं पीतं छर्दिं पवनसम्भवाम् ॥ मुद्गामलकयूषो वा ससर्पिष्कः ससैंधवः ॥ १४ ॥

क्षीरोदकं नाशितस्य क्षीरस्य उदकम् ॥

दही डालकर दूधको फाडकर उस दूधका पानी पीनेसे अथवा घृतसहित और सैंधेनिमकके साथ मूँगका तथा आमलोका यूष पीनेसे वातकी वमन दूर होतीहै ॥ १४ ॥

गुडूचीत्रिफलानिम्बपटोलैः क्वथितं जलम्॥ पिबेन्मधुयुतं तेन छर्दिर्नश्यति पित्तजा ॥ १५ ॥

गिलोय, हरड, बहेडा, आमला, नीम और पटोलपत्र इनका क्वाथ बनाकर सहत डालकर पीनेसे पित्तजन्य वमन दूर होतीहै ॥ १५ ॥

हरीतकीनां चूर्णन्तु लिह्यान्माक्षिकसंयुतम् ॥ अधोमार्गीकृते दोषे छर्दिः शीघ्रं निवर्तते ॥ १६ ॥

हरडका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे दोषोंको गुदाके मार्गसे जानेपर वमन शीघ्र दूर होतीहै ॥ १६ ॥

विडंगत्रिफलाविश्वाचूर्णं मधुयुतं जयेत् ॥ विडंगप्लवशुण्ठीनां चूर्णं वा कफजां वमिम् ॥ १७ ॥

प्लवं कैवर्तमुस्तकं गुडतजी इति लोके ॥

वायविडग, हरड, बहेडा, आमला और सोंठ इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर चाटनेसे अथवा वायविडंग, केवटी मोथा और सोंठ इनका चूर्ण करके सहतमे मिलाकर चाटनेसे कफकी वमन दूर होजातीहै ॥ १७ ॥

पिष्ट्वा धात्रीफलं लाजाञ्छर्कराश्च पलोन्मिताम् ॥ दत्त्वा मधुपलश्चापि कुडवं सलिलस्य च ॥ वाससा गालितं पीतं हन्ति छर्दिं त्रिदोषजाम् ॥ १८ ॥

आमले धानकी खील और चार तोले खांड इनको पीसकर चारतोले सहत और सोलह १६ तोले जल डालकर वस्त्रमे छान लेवे, इसको पीनेसे त्रिदोपजन्य वमन दूर होजाती है ॥ १८ ॥

गुडूच्या रचितं हन्ति हिमं मधुसमन्वितम् ॥ दुर्निवारामपि च्छर्दिं त्रिदोषजनितां बलात् ॥ १९ ॥

गिलोयका हिम बनाकर सहत डालकर पीनेसे त्रिदोष सम्बन्धी अत्यत दुर्निवार वमन बलात्कारसे नष्ट होजाती है ॥ १९ ॥

एलालवंगजकेसरकोलमज्जालाजाप्रियंगुघनचन्दनपिप्पलीनाम् ॥ चूर्णानि माक्षिकसितासहितानि लीढ्वा छर्दिं निहन्ति कफमारुतपित्तजाताम् ॥ २० ॥

इलायची, लौंग, नागकेसर, बेरका गूदा, धानकी खीलें, फूलप्रियगु, मोथा, चन्दन और पीपल इनका चूर्ण बनाकर सहत तथा खाडमें मिलाकर चाटनेसे कफ वायु तथा पित्तसे उत्पन्न हुई वमन दूर होजाती है, इसको एलादि चूर्ण कहते हैं ॥ २० ॥

अश्वत्थवकुलं शुष्कं दग्धं निर्वापितं जले ॥ तज्जलं पानमात्रेण छर्दिं जयति दुर्जयाम् ॥ २१ ॥

सूखी हुई पीपलकी तथा मौलसिरीकी छालको जलाकर पानीमे बुझालेवे उस पानीको पीनेसे तत्काल दुर्जय वमन दूर होजाती है ॥ २१ ॥

पथ्यात्रिकटुधान्याकजीरकाणां रजो लिहन् ॥ मधुना नाशयेच्छर्दिमरुचिश्च त्रिदोषजाम् ॥ २२ ॥

हरड, सोंठ, मिरच, पीपल, धनिया और जीरा इनका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुई वमन और अरुचि नष्ट होजाती है ॥ २२ ॥

बिल्वत्वचो गुडूच्या वा क्वाथः क्षौद्रेण संयुतः ॥ छर्दिं त्रिदोषजां हन्ति पर्पटः पित्तजां तथा ॥ २३ ॥

बेलकी छाल अथवा गिलोयका क्वाथ बनाकर सहत डालकर पीनेसे त्रिदोषजन्य वमन दूर होजातीहै तथा पित्तपापडेको पीसकर पीनेसे पित्तकी वमन दूर होजातीहै ॥ २३ ॥

आम्रास्थिबिल्वनिर्यूहः पीतः समधुशर्करः ॥ निहन्याच्छर्द्यतीसारं वैश्वानर इवाहुतिम् ॥ २४ ॥

आमकी गुठली और बेलगिरी इनका क्वाथ बनाकर सहत तथा खाड मिलाकर पीनेसे जिसप्रकार अग्नि आहुतिका नाश करताहै उसीप्रकार इससे वमन सहित अतिसारका नाश होताहै ॥ २४ ॥

जम्ब्वाम्रपल्लवशृतं लाजरजःसंयुतं शीतम् ॥ शमयति मधुना युक्तं वमिमतिसारं तृषामुग्राम् ॥ २५ ॥

जामुनके पत्ते और आमके पत्ते इनका क्वाथ बनाकर उसमें धानकी खीलोका चूर्ण और सहत डालकर पीनेसे वमन, अतिसार, और घोर तृषा शांत होतीहै ॥ २५ ॥

बीभत्सजां हृद्यतमैरिष्टैर्दौर्हृदजां फलैः ॥ लंघनैरामजां छर्दिं जयेत्सात्म्यैरसात्म्यजाम् ॥ २६ ॥

बीभत्स पदार्थोंके दर्शन आदिसे उत्पन्न हुई वमनको अत्यन्त प्रिय पदार्थोंके उपयोगसे जीते । गर्भसे उत्पन्न हुई वमनको प्रियफलोंके उपयोगसे जीते । आमसे उत्पन्न वमनको लंघनोंसे जीते और अहित पदार्थोंसे उत्पन्न हुई वमनको हितपदार्थोंसे जीते ॥ २६ ॥

कृमिहृद्रोगवद्धन्याच्छर्दिं कृमिसमुद्भवाम् ॥ तत्रतत्र यथादोषं क्रियां कुर्याच्चिकित्सकः ॥ २७ ॥

वैद्य कृमिदोषसे उत्पन्न हुई वमनको कृमिरोगोक्त और हृदयरोगोक्त चिकित्सा करनी चाहिये और उसी दोषानुसार विचारकर क्रिया करे ॥ २७ ॥

सोद्गारायां भृशं छर्द्यां मूर्वाया धान्यमुस्तयोः ॥ समधूकाञ्जनं चूर्णं लेहयेन्मधुसंयुतम् ॥ २८ ॥

बहुत डकारवाली वमन होय तो मूर्वा, धनियाँ, नागरमोथा, मुलैठी और रसौत इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर चाटे ॥ २८ ॥

सौवर्चलमजाजी च शर्करामरिचानि च ॥ क्षौद्रेण सहितं लीढं सद्यश्छर्दिनिवारणम् ॥ २९ ॥

कालानिमक, जीरा, खाड और काली मिरच इनका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे वमन तत्काल शमन होजातीहै ॥ २९ ॥

इति वमनाधिकारः संपूर्णः ।

अथ तृष्णाधिकारः ।

तत्र तृषानिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः ।

भयश्रमाभ्यां बलसंशयाद्वाप्यूर्द्ध्वं चितं पित्तविवर्द्धनैश्च ॥ पित्तं सवातं कुपितं नराणां तालुप्रपन्नं जनयेत्पिपासाम् ॥ १ ॥ स्रोतःस्वपां वाहिषु दूषितेषु दोषैश्च तृट् सम्भवतीह जन्तोः ॥ तिस्रः स्मृतास्ताः क्षतजा चतुर्थी क्षयात्तथान्यामसमुद्भवा च ॥ भक्तोद्भवा सप्तमिकेति तासां निबोध लिंगान्यनुपूर्वशस्तु ॥ २ ॥

नराणां पित्तं स्वस्थान एव संचितं पित्तं सवातम् पित्तविवर्द्धनैः कट्वम्लोष्णादिभिः कुपितम्पित्तं भयश्रमाभ्यां बलसंक्षयादुपवासादेश्च वातः कुपितः तद्द्वयमूर्द्ध्वं प्राप्तम् ऊर्द्ध्ववशात्पिपासां जनयेत् । न केवलं तालुनि एव दूषिते तृषा भवति किन्तु जलवाहिस्रोतःसु अपि । अत आह स्रोतःसु इत्यादि । ननु अत्र बहुवचनं न युक्तं यतो जलवहे द्वे स्रोतसी सुश्रुतेन उक्ते । उच्यते । तयोरेव अनेकप्रतानयोगान्न दोषः अपां

वाहिषु स्रोतःसु इति जिह्वादेरपि उपलक्षणम्। यत आह चरकः-

रसवाहिनीश्च धमनीर्जिह्वाहृदयगलतालुक्लोमसंशोषान् ॥ नृणां देहेषु कुरुतस्तृष्णामतिबलां पित्तानिलौ ॥ ३ ॥

मनुष्योंके अपने स्थानमे सञ्चित हुआ पित्त अपने बढानेवाले तीखे, खट्टे तथा उष्ण आदि पदार्थोंसे कोपको प्राप्त होताहै और अपने स्थानमें सञ्चित हुई वायु भयसे, श्रमसे तथा बलका क्षय करनेवाले उपवासादिकसे कोपको प्राप्त होतीहै इस प्रकार कोपको प्राप्तहुआ पित्त और वायु यह दोनों ऊपरको आकर तालुयेको दूषित करके तृषाको उत्पन्न करतेहैं। केवल तालुयेके ही दूषित होनेसे मनुष्योंके तृषा (प्यास) उत्पन्न होतीहै किन्तु जलवाहिस्रोतोंके दूषितहोने पर भी उत्पन्न होतीहै। जलको वहानेवाले दो स्रोत (छिद्र) हैं ऐसा सुश्रुत कहताहै, फिर यहां 'जलको वहानेवाले स्रोत' ऐसा बहुवचन क्यो कहा ?

समाधान—दो स्रोतोंका बहुतसे तन्तुओंकरिके योग है इसकारण यहां बहुवचन आनेमे कुछ भी दोष नहीं आता। स्रोत, यह शब्द उपलक्षण रूप है इस कारण इस शब्दसे जीभ आदिका भी ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि चरक कहताहै कि, पित्त और पवन रसको बहानेवाली नाडी, जीभ, गला, तालू और तृषा लगनेके स्थानके सशोषणसे मनुष्योंके शरीरमें प्रबल तृषा उत्पन्न होतीहै ॥

वातज, पित्तज, कफज, क्षतज, क्षयज, आमदोषज और भोजन किये हुए अन्नसे उत्पन्न होनेवाली, इस प्रकार तृषा सात प्रकारकी है। अब इनके अनुक्रमसे लक्षण कहताहू ॥ १–३ ॥

अथ तृषासामान्यलक्षणम्।

ताल्वोष्ठकण्ठास्यविशोषदाहः सन्तापमोहभ्रमविप्रलापाः ॥ सर्वाणि रूपाणि भवन्ति तस्यामुत्पत्तिकाले तु विशेषतो हि ॥ ४ ॥

तालू, होठ, कंठ और मुख इनमें शोष तथा दाह, सताप, मोह, भ्रम और बकवाद ये सब तृषाके लक्षण हैं। तृषाकी उत्पत्तिके समयमे यह लक्षण विशेष करके उत्पन्न होतेहैं ॥ ४ ॥

अथ वातजतृषालक्षणम्।

क्षामास्यता मारुतसम्भवायां तोदस्तथा शङ्खशिरःसु चापि ॥ स्रोतोनिरोधो विरसश्च वक्त्रं शीताभिरद्भिश्च विवृद्धिमेति ॥ ५ ॥

शङ्खशिरःसु शङ्खयोः शिरसि च तोदः। स्रोतोनिरोधः रसाम्बुवाहिनीधमनीनिरोधः॥

वायुकी तृषामे मुख उतरजाताहै, कनपटी और मस्तकमें पीडा होतीहै, रसको तथा जलको वहनेवाली धमनीं रुकजातीहैं, मुखका स्वाद निरस होजाताहै और यह तृषा शीतल जलसे वृद्धिको प्राप्त होतीहै ॥ ५ ॥

अथ पित्तजतृषालक्षणम्।

मूर्च्छान्नविद्वेषविलापदाहा रक्तेक्षणत्वं प्रततश्च शोषः ॥ शीताभिनन्दा मुखतिक्तता च पित्तात्मिकायां परिधूपनश्च ॥ ६ ॥

विलापः प्रलापः। प्रततश्च शोषः अविरतः शोषः। शीताभिनन्दा शीतेच्छा। परिधूपनं कण्ठाद्धूमनिर्गम इव ॥

पित्तकी तृषामे मूर्छा, अन्नपर अरुचि, बकवाद, दाह, नेत्रोंमें लाली, निरतर शोष, शीतकी इच्छा, मुख कडवा होजाताहै और कठमेंसे धुँआ सा निकलताहै ॥ ६ ॥

अथ कफजतृषालक्षणम्।

बाष्पावरोधात्कफसंवृतेऽग्नौ तृष्णा बलासेन भवेन्नरस्य ॥ निद्रा गुरुत्वं मधुरास्यता च तयार्दितः शुष्यति चातिमात्रम् ॥७॥

अग्नौ जठराग्नौ कफसंवृते स्वकारणकुपितेन कफेन उपरिष्टाच्छादिते। बाष्पावरोधादग्नेरूष्मावरोधादवरुद्धानलोष्मणा अम्बुवहस्रोतःशोषणाद्बलासेन कफेन नरस्य तृट् भवेत्। तया तृष्णया अर्दितः पीडितः शुष्यति कृशो भवति ॥

जठराग्निके ऊपर भागमें अपने कारणोंसे कोपको प्राप्त हुए कफसे आच्छादित होनेके कारण जठराग्निकी उष्णता रुककर उस उष्णतासे जलको बहानेवाले स्रोतोंका शोषण होनेके कारण कफसे जो तृषा होतीहै, उस तृषासे पीडित हुए मनुष्यके शरीरमें अत्यंत कृशता होजातीहै, निद्रा बढजातीहै, भारीपन होताहै और मुख मधुर होजाताहै ७॥

अथ क्षतजतृषालक्षणम् ।

क्षतस्य रुक्छोणितनिर्गमाभ्यां तृष्णा चतुर्थी क्षतजा मता तु ॥ ८ ॥

क्षतस्य शस्त्रादिक्षतयुक्तस्य रुक् पीडा ॥

शस्त्रादिकसे जखमी हुए मनुष्यको पीडाके होनेसे और रुधिरके निकलनेसे जो तृषा लगतीहै उसको क्षतज कहते हैं ॥ ८ ॥

अथ क्षतजतृषालक्षणम् ।

रसक्षयाद्या क्षयसम्भवा सा तयाभिभूतस्तु निशादिनेषु ॥ पेपीयतेऽम्भः स सुखं न याति तां सन्निपातादिति केचिदाहुः॥ रसक्षयोक्तानि च लक्षणानि तस्यामशेषेण भिषग्व्यवस्येत् ॥ ९ ॥

रसक्षयलक्षणानि सुश्रुतेन उक्तानि "रस क्षये हृत्पीडा कम्पः शोषः शून्यता तृष्णा चेति" । व्यवस्येज्जानीयात् ॥

रसके क्षय होनेसे जो तृषा उत्पन्न होतीहै उसको क्षयज कहतेहैं । इस तृषासे पीडित मनुष्य रात दिन पानी पिया करताहै परन्तु कभी संतोष नहीं होता, कोई कोई वैद्य इसको सन्निपातकी तृषा भी कहतेहैं सुश्रुतमें जो रसक्षय होनेके लक्षण कहेहैं वे सब लक्षण इस तृषामें होतेहैं ऐसा वैद्य जाने ।

सुश्रुतमें कहा है कि "जब रसका क्षय होताहै तो हृदयमें पीडा, कंप, शोष, जडता और तृषा उत्पन्न होतीहै" ॥९॥

अथामोत्पन्नतृषालक्षणम् ।

त्रिदोषलिंगामसमुद्भवा च हृच्छूलनिष्ठीवनसादकर्त्री ॥ १० ॥

जो तृषा त्रिदोषसे उत्पन्न होतीहै उसमें तीनों दोषोंके चिह्न होतेहैं, उसमें हृदयमें पीडा, थूकआना और ग्लानि ये विकार उत्पन्न होतेहैं ॥ १० ॥

अथ भक्तोद्भवतृषालक्षणम् ।

स्निग्धं तथाम्लं लवणञ्च भुक्तं गुर्वन्नमेवाशु तृषां करोति ॥ ११ ॥

लवणश्चेति चकारात्कटु च ॥

स्निग्ध, खट्टे, खारी, तीखे और भारी अन्नोंको भक्षण करनेसे जो तृषा उत्पन्न होतीहै उसमें वारवार शीघ्र शीघ्र जल पीनेकी इच्छा होतीहै ॥ ११ ॥

अथ तृषोपद्रवाः ।

दीनस्वरः प्रताम्यन्दीनाननहृदयशुष्कगलतालुः॥ भवति खलु सोपसर्गा तृष्णा सा शोषिणी कष्टा ॥ १२ ॥

शोषिणी धातुशोषिणी ॥

स्वरका दुबला होजाना, ग्लानि, मुख और हृदयकी दीनता, गले और तालुयेका सूखना इन सब उपद्रववाली तृषा होय तो कष्टसाध्य है और धातुओंको भी शोषण करेहै ॥ १२ ॥

अथोपद्रवयुक्ततृषाऽरिष्टम् ।

ज्वरमोहक्षयकासश्वासाद्युपसृष्टदेहानाम्॥ सर्वास्त्वतिप्रसक्ता रोगकृशानां वमिप्रसक्तानाम् ॥ घोरोपद्रवयुक्ता तृष्णा मरणाय विज्ञेया ॥ १३ ॥

आदिशब्दादतीसारादीनां ग्रहणम् । अतिप्रसक्ताः नितरां घोरोपद्रवयुक्ताः अतीव मुखशोषादियुक्ताः ॥

ज्वर, प्रमेह, क्षय, खाँसी, श्वास और अतीसार इत्यादि रोगोंसे पीडित मनुष्योंको रोगसे कृशहुए मनुष्योंको और वमन करनेवाले मनुष्योंको जो अत्यन्त घोर तृषा लगतीहै, तथा मुखशोष आदि उपद्रवोंसे युक्त जो सर्व प्रकारकी तृषा उत्पन्न होतीहै वह मारनेके लिये ही उत्पन्न होतीहै ॥ १३ ॥

अथ तृषाचिकित्सा ।

वातघ्नमन्नपानं मृदु लघु शीतञ्च वाततृष्णायाम् ॥

तृष्णायां पवनोत्थायां सगुडं दधि शस्यते ॥ स्वादु तिक्तं द्रवं शीतं पित्ततृष्णापहं परम् ॥ १४ ॥

वातकी तृषामें वातनाशक, कोमल हलके और शीतल ऐसे अन्नपान उपयोग करे। वातकी तृषामें गुडके साथ दहीका सेवन श्रेष्ठ है।

मधुर, कडवे, पतले और शीतल पदार्थोंके उपयोग करनेसे पित्तकी तृषा शांत होजातीहै ॥ १४ ॥

मुस्तपर्पटकोदीच्यच्छत्राख्योशीरचन्दनैः॥ शृतं शीतं जलं दद्यात्तृड्दाहज्वरशान्तये ॥ १५ ॥

छत्रा धान्यकं कश्चिद्धात्रीश्च दद्यात्। चन्दनमत्र धवलं तस्य अतितृष्णाहरत्वात्। शृतमर्द्धपक्वमत्र कर्तव्यम्। इति षडङ्गपानम्॥

नागरमोथा, पित्तपापडा, सुगन्धवाला, धनिया, खस और चन्दन इन सबको जलमें औटाकर उस जलको शीतल करके पीनेसे तृषा, दाह और ज्वर शांत होजाताहै इसमें कुछेक आमले भी डालने चाहियें। यहा चन्दन शब्दसे लालचन्दन नहीं सफेद चन्दन समझना चाहिये। कारण यह है कि, सफेद चन्दनसे तृषा विशेष करके दूर होतीहै। इसे औटाते समय जब इसमेंसे आधा जल जलजाय तब इसको अग्निपैसे उतार लेना चाहिये। इस जलको 'षडगपान' ऐसा कहतेहैं ॥ १५ ॥

लाजोदकं मधुयुतं शीतं गुडविमर्दितम्॥ काश्मरीशर्करायुक्तं पिबेत्तृष्णार्दितो नरः१६

धानकी खीलोको शीतल जलमें भिजो देवे, फिर उसको मलकर उसमें गुड घोलकर कुम्भेरके फल और मिश्री डालकर पियै तो उससे तृषाकी पीडा शांत होजातीहै ॥ १६ ॥

आस्तरणमार्द्रवासः प्रावरणं चार्द्रवासः स्यात्॥ तेन पिपासा शाम्यति दाहश्चोग्रोऽपि देहिनां नियतम् ॥ १७ ॥

भीजेहुए वस्त्रपर सोनेसे अथवा भीजे वस्त्रको ओढकर सोनेसे तृषा और उग्र दाह नष्ट होजाताहै ॥ १७ ॥

गोस्तनीक्षुरसक्षीरयष्टीमधुमधूत्पलैः॥ नियतं नासिकापीते तृष्णा शाम्यति दारुणा ॥ १८ ॥

ईखका रस और दूध मिलाकर उसमें दाख, मुलहटी, सहत और कमल डालकर उसको नासिकाके द्वारा पान करनेसे दारुण तृषा शांत होजातीहै ॥ १८ ॥

वैशद्यं जनयत्यास्ये सन्दधाति मुखे जलम्॥तृष्णादाहप्रशमनं मधुगण्डूषधारणम् ॥ १९ ॥

मुखमें विशदता उत्पन्न होतीहै और गीलापन होताहै। तथा सहतका गण्डूष (कुल्ला) मुखमें धारण करनेसे घोर तृषा और दाह दूर होतीहै ॥ १९ ॥

जिह्वाताल्लुगलक्लोमशोषे मूर्ध्नि निधापयेत् ॥ केशरं मातुलुंगस्य घृतसैन्धवसंयुतम् ॥ २० ॥

जीभ, तालु, कण्ठ और तृषा लगनेका स्थान सूखता होय तो बिजोरे नीबूके रसको घीमें तथा सैंधेनिमकमें पीसकर मस्तकपर लगावे तो तुरन्त शान्ति होय ॥२०॥

दाडिमं बदरं लोध्रं कपित्थं बीजपूरकम्॥ पिष्ट्वा मूर्द्धनि लेपस्तु पिपासादाहनाशनः ॥ २१ ॥

अनार, बेर, लोध, कैथ और बिजोरानीबू इनको एकत्र पीसकर मस्तकपर प्रलेप करनेसे तृषा और दाह शात होतीहै ॥ २१ ॥

वारि शीतं मधुयुतमाकण्ठाद्वा पिपासितम् ॥ पाययेद्वामयेच्चाथ तेन तृष्णा प्रशाम्यति ॥ २२ ॥

तृषातुर मनुष्यको सहत डालकर शीतल जल गले तक पिलाकर कय करादेवे तो तृषा शांत होजायगी ॥ २२ ॥

प्रातः शर्करयोपेतः क्वाथो धान्याकसम्भवः ॥ जयेत्तृष्णां तथा दाहं भवेत्स्रोतोविशोधनम् ॥ २३ ॥

प्रातःकाल धनियोंका क्वाथ बनाकर उसमें खांड डालकर पीनेसे तृषा और दाह दूर होजातीहै और स्रोत शुद्ध होजातेहैं ॥ २३ ॥

आमलं कमलं कुष्ठं लाजाश्च वटरोहकम् ॥ एतच्चूर्णस्य मधुना गुटिकां धारयेन्मुखे ॥

तृष्णां प्रवृद्धां हन्त्येषा मुखशोषश्च दारुणम् ॥ २४ ॥

आमले, कमल, कूठ, धानकी खीलैं और वडके अङ्कुर इन सबका एकत्र चूर्ण करके सहतमें गोली बनाकर मुखमें रखनेसे महा उग्र तृषा और मुखका दारुण शोष नष्ट होजाताहै ॥ २४ ॥

क्षतोद्भवां रुग्विनिवारणेन जयेद्रसानामसृजश्च पानैः ॥

घावके होनेसे उत्पन्नहुई तृषाको उसकी पीडाको दूर करनेसे, रसोंको पिलानेसे और रुधिरके पिलानेसे दूर करे।

क्षयोत्थितं क्षीरजलं निहन्यान्मांसोदकं वा मधुरोदकं वा ॥ २५ ॥

रसके क्षय होनेसे उत्पन्नहुई तृषाको दूधसहित जल पिलाकर, मासका रस पिलाकर और मधुर पानी (शरवत वगैरह) पिलाकर शमन करै ॥ २५ ॥

आमोद्भवां बिल्ववचायुतानां जयेत्कषायैरथ दीपनानाम् ॥

आमसे उत्पन्नहुई तृषाको बेलगिरी और वच तथा दीपन पदार्थोंका क्काथ पिलाकर शमन करै ॥

गुर्वन्नजामुल्लिखनैर्जयेच्च क्षयं विना सर्वकृताश्च तृष्णाम् ॥ २६ ॥

उल्लिखनैः लेखनद्रव्यैः ॥

भारी भोजन करनेसे तृषा उत्पन्न होय तो कफको उखाडनेवाले पदार्थोंसे दूर करे। क्षयकी तृषाको छोडकर सर्व प्रकारकी तृषाको इनहीं पदार्थोंसे दूर करना चाहिये ॥ २६ ॥

स्निग्धेऽन्ने भुक्ते या तृष्णा स्यात्तां गुडाम्बुना शमयेत् ॥ अतिरोगदुर्बलानां तृष्णां शमयेन्नृणामिहाशु पयः ॥ २७ ॥

पयोऽत्र दुग्धम् ॥

स्निग्ध अन्नको भक्षण करनेसे जो तृषा उत्पन्न होय तो उसको गुडके सरबतसे शांत करे। अत्यत रोगसे दुर्बल हुए मनुष्यकी तृषा दूधसे तत्काल शांत होजातीहै ॥ २७ ॥

मूर्च्छाछर्दितृपानाहस्त्रीमद्यभृशकर्षिताः॥ पिबेयुः शीतलं तोयं रक्तपित्ते मदात्यये॥ ॥ २८ ॥ सात्म्यान्नपानभैषज्यैस्तृष्णां तस्य जयेत्पुरः॥तस्यां जितायामन्योऽपि व्याधिः शक्यश्चिकित्सितुम् ॥ २९ ॥

मूर्च्छा, वमन, तृषा, अफारा, स्त्रीप्रसग और मद्यपानसे पीडित मनुष्योंको शीतल जल पिलावे ॥

रक्तपित्तमे तथा मदात्ययमे हितकारक अन्न पानोंसे एव हितकारक औषधियोंसे तृषाको शांत करे। जब तृषा शात होजाय तो फिर पश्चात् दूसरे रोग भी चिकित्सा करने योग्य होजातेहैं ॥ २८ ॥ २९ ॥

तृषापूर्वमपक्षीणो न लभेत जलं यदि ॥ मरणं दीर्घरोगं वा प्राप्नुयात्त्वरितं नरः ॥ ३० ॥

तृषासे व्याकुल हुए मनुष्यको प्रथम जो जल न मिले तो वह मनुष्य मरजाताहै अथवा कोई बडा रोग उत्पन्न होताहै ॥ ३० ॥

तृषितो मोहमायाति मोहात्प्राणान्विमुञ्चति ॥ तस्मात्सर्वास्ववस्थासु न क्वचिद्वारि वारयेत् ॥ ३१ ॥ अन्नेनापि विना जन्तुः प्राणान्धारयते चिरम् ॥ तोयाभावात्पिपासार्तः क्षणात्प्राणैर्विमुच्यते ॥ ३२ ॥

इति तृष्णाधिकारः।

तृषातुर मनुष्यको मोह उत्पन्न होताहै और मोहसे प्राण नष्ट होजातेहैं। इस कारण कभी किसी अवस्थामें भी जल देना वर्जित नहींहै। अन्नके न मिलनेपर तो प्राणी बहुत दिनोंतक जीसक्ताहै किंतु जलके न मिलनेपर तृषासे पीडित मनुष्य क्षणमात्रमें मर जाताहै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

इति तृष्णाधिकारः सम्पूर्णः।

अथ मूर्च्छाधिकारः।

तत्र मूर्च्छानिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः।

क्षीणस्य बहुदोषस्य विरुद्धाहारसेविनः॥ वेगाघातादभीघाताद्धीनसत्त्वस्य वा पुनः॥ ॥ १ ॥ करणायतनेषूग्रा बाह्येष्वभ्यन्तरेषु च ॥ निविशन्ते यदा दोषास्तदा मूर्च्छन्ति मानवाः ॥ २ ॥

क्षीणहुए, बहुत दोषवाले, विरुद्ध भोजनको सेवन करनेवाले, मलमूत्रादिकके वेगोंको रोकनेवाले, लकडी आदिकी जिनके चोट लगी हो और अल्प सत्त्व गुणवाले जिनके मनके स्थानोंमें ज्ञानेन्द्रियोंमें और कर्मेन्द्रियोंमें दोष प्रवेश करतेहैं उनको मूर्च्छा उत्पन्न होतीहै ॥ १ ॥ २ ॥

बहुदोषस्य अधिकदोषस्य न तु अनेकदोषस्य। तदा मूर्च्छा त्रिदोषजैव स्यात् तथैव अस्तु को दोषः तत्र पृथक् दोषजानां मूर्च्छानां वक्ष्यमाणत्वात्। वेगाघातात् मलादेः, अभिघातात् लगुडादिना हीनसत्त्वस्य स्वल्पसत्त्वगुणस्य, अर्थात् अधिकतमोगुणस्य। यत उक्तम् "मूर्च्छा पित्ततमःप्राया" इति। करणायतनेषु करणं मनस्तस्य आयतनेषु स्वस्थानेषु बाह्येषु कर्मेन्द्रियेषु आभ्यन्तरेषु बुद्धीन्द्रियेषु ॥

'बहुत दोषवाले' इस शब्दका अर्थ 'अधिक दोषवाले' ऐसा समझना। 'अनेक दोषवाले' ऐसा नहीं समझना। कारण यह है कि, यदि ऐसा समझा जाय तो मूर्च्छा तीनों दोषोंके समुदायसे होतीहै ऐसा अर्थ होताहै।

शंका—मूर्च्छा तीनों दोषोंके समुदायसे होतीहै ऐसा अर्थ होनेमें क्या अनुचित है?

समाधान—एक एक दोषसे मूर्च्छा होती है ऐसा कहा है, इस कारण यहां निदानपूर्वक सम्प्राप्तिके विषयमें तीनों दोषोंके समुदायसे मूर्च्छा होतीहै, ऐसा कहना उचित नहीं है।

'अल्प सतोगुणवाले मनुष्यको मूर्च्छा आतीहै' इस वाक्यका अर्थ 'अधिक तमोगुण वालेको मूर्च्छा आतीहै' ऐसा समझना। कारण यह है कि, मूर्च्छामें पित्त और तमोगुण अधिक होताहै।

अथ मूर्च्छासामान्यलक्षणम्।

संज्ञावहासु नाडीषु पिहितास्वनिलादिभिः। तमोऽभ्युपैति सहसा सुखदुःखव्यपोहकृत् ॥ ३ ॥ सुखदुःखव्यपोहाच्च नरः पतति काष्ठवत् ॥ मोहो मूर्च्छेति तामाहुः षड्विधा सा प्रकीर्तिता ॥ ४ ॥

तमोगुणः अज्ञानहेतुः। अभ्युपैति आगच्छति। सुखदुःखव्यपोहकृत्सुखदुःखज्ञाननाशकरम्। नष्टे सुखदुःखज्ञाने नरः काष्ठवत्पतति तां मोहो मूर्च्छेति प्राहुः इत्यन्वयः। मूर्च्छाया मूर्च्छायोऽपि पर्यायः। यत उक्तम्—

संज्ञोपघातो मूर्च्छायो मूर्च्छा स्यान्मूर्च्छनं तथा ॥ कश्मलं प्रलयो मोहः संन्यासस्तु मृतोपमः ॥ ५ ॥

संज्ञाको वहानेवाली नाडियोंको वायु आदिसे अवरुद्ध होनेपर सहसा सुखका तथा दुःखका ज्ञान नष्ट करनेवाला तमोगुण प्राप्त होताहै और इस तमोगुणसे, सुख दुःखका ज्ञान नष्ट होकर मनुष्य काष्ठकी समान गिरजाताहै यह रोग मूर्च्छा अथवा मोह कहाजाताहै और यह मूर्च्छा छः प्रकारकी है। मूर्च्छाका पर्यायशब्द 'मूर्च्छाय' भी है, कहा भी है कि "संज्ञोपघात,मूर्च्छाय,मूर्च्छा,मूर्च्छन,कश्मल, प्रलय और मोह, ये सब मूर्च्छाके नाम हैं। जिससे यह मनुष्य मृतककी समान होजाय ऐसा जो मोह वह 'संन्यास' कहाजाताहै ॥ ३–५ ॥

अथ मूर्च्छाषड्विधत्वम्।

वातादिभिः शोणितेन मद्येन च विषेण च ॥ षट्स्वप्येतासु पित्तन्तु प्रभुत्वेनावतिष्ठते ॥ ६ ॥

यत उक्तम्—मूर्च्छा पित्ततमःप्रायेति ॥

वातज, पित्तज, कफज, रक्तज, मद्यसे उत्पन्न होनेवाली और विषसे उत्पन्न होनेवाली ऐसी मूर्च्छा छै प्रकारकी हैं। इन सब प्रकारकी मूर्च्छाओंमें भी पित्त अध्यक्षपनेसे रहताहै।

कहा भी है कि, मूर्च्छामें पित्त और तमोगुण अधिकतासे होता है ॥ ६ ॥

अथ मूर्च्छापूर्वरूपम्।

हृत्पीडा जृम्भणं ग्लानिः संज्ञानाशो बलक्षयः ॥ सर्वासां पूर्वरूपाणि यथास्वं तां विभावयेत् ॥ ७ ॥

हृदयकी पीडा, जम्भाईओंका आना, ग्लानि, संज्ञाको नाश और बलका नाश ये सब मूर्च्छाओंके पूर्व लक्षण हैं। आगे उसके वातादि भेदोंसे अलग अलग लक्षण कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ वातमूर्च्छालक्षणम् ।

नीलं वा यदि वा कृष्णमाकाशमथ वारुणम्॥ पश्यंस्तमः प्रविशति शीघ्रञ्च प्रतिबुध्यते ॥ ८ ॥ वेपथुश्चाङ्गमर्दश्च प्रपीडा हृदयस्य च ॥ कार्श्यं श्यावारुणा छाया मूर्च्छाये वातसम्भवे ॥ ९ ॥

नीलं नीलवर्णम्, कृष्णं कज्जलाभम् अरुणम् अलक्तरागम्, तमः प्रतिशति मूर्च्छति श्यावारुणा छाया गात्रस्य ॥

वातकी मूर्च्छामें आकाशको नीला, काला अथवा लाल देखता देखता मूर्च्छित होजाताहै, फिर तत्काल चैतन्य अर्थात् होशमे होजाताहै । शरीरमे कंप, अगोंमे तोडने सरीखी पीडा, हृदयमें पीडा, शरीर कृश होजाताहै और शरीरका रंग कालेपनको लिये लाल होजाताहै ॥ ८ ॥ ९॥

अथ पित्तजमूर्च्छालक्षणम् ।

रक्तं हरितवर्णं वा वियत्पीतमथापि वा॥ पश्यंस्तमः प्रविशति सस्वेदः प्रतिबुध्यते ॥ ॥ १० ॥ सपिपासः ससन्तापो रक्तपित्ताकुलेक्षणः॥ सम्भिन्नवर्चाः पीताभो मूर्च्छाये पित्तसम्भवे ॥ ११ ॥

आकाशको लाल, हरा, अथवा पीले रंगका देखता २ मूर्च्छित होजाय,पसीने युक्त होकर फिर होश हो,तृषा लगे, सताप उत्पन्न हो, नेत्र लाल तथा पित्तसे व्याकुल होजायँ, दस्त पतला होनेलगे और शरीरका रग पीला होजाय तो जानना कि,उसको पित्तसे मूर्च्छा उत्पन्न हुई है१०॥११॥

अथ कफमूर्च्छालक्षणम् ।

मेघसङ्काशमाकाशं तमोभिर्वा घनैर्वृतम्॥ पश्यंस्तमः प्रविशति चिराच्च प्रतिबुध्यते ॥ ॥ १२ ॥ गुरुभिः प्रावृतैरङ्गैर्यथैवार्द्रेण चर्मणा ॥ सप्रसेकः सहृल्लासो मूर्च्छाये कफसम्भवे ॥ १३ ॥

मेघसंकाशं शुभ्रमेघसंकाशमित्यर्थः ॥ यत आह सुश्रुतः "कफेन पश्येद्रूपाणि श्वेताभ्रप्रतिमानि तु" । घनैर्निबिडैस्तमोभिः । गुरुभिरङ्गैरुपलक्षितः मूर्च्छायः षड्विध उक्तः सुश्रुतेन-

आकाशको बादलोंसे आच्छादित देखकर अथवा घोर अंधकारसे घिरा हुआ देखकर मूर्च्छित होजाय । फिर बहुत कालमे चैतन्य हो, जिसप्रकार गीले चमडेसे ढकदेते हैं उसी प्रकार उसका शरीर भारी अंगोसे युक्त जान पडता है। मुखमे पानी भर भर आवै और उबकाई आवै तो जानना कि, यह कफकी मूर्च्छा है ।

'बादल' यहां जो बादल शब्द कहा सो बादल सुफेद समझने । क्योंकि सुश्रुतने कहा है कि, कफसे सुफेद बादलोंकी समान रूपोंको देखताहै ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथ चरकमतेन त्रिदोषजमूर्च्छालक्षणम् ।

सर्वाकृतिः सन्निपातादपस्मार इवागतः॥ सजन्तुं पातयत्याशुविना बीभत्सचेष्टितैः१४

अपस्मार इवागतस्तेन महता अभिघातेन पतति चिरेण प्रतिबुध्यते तर्हि तयोः को भेद इत्यत आह-

सान्निपातिकमूर्च्छायो विना बीभत्सचेष्टितैः ॥

कफेन वमनदन्तघट्टनाक्षिविकृत्यादिभिर्विना पातयति ॥ १५ ॥

जो मूर्च्छा सन्निपातसे होतीहै उसमें तीनो दोषोंके चिह्न देखनेमे आतेहैं और उसमे मृगीकी समान मनुष्य बडे जोरसे गिरजाताहै उससे गिराहुआ मनुष्य बहुत कालमे चैतन्य होताहै ।

जब मृगी और सन्निपातकी मूर्च्छाके लक्षण तो एकसेही मिलतेहैं । फिर इनमें अतरही क्या रहा ? यदि कोई ऐसी शका करे तो उसके समाधानके लिये चरक कहता है कि "मृगीमें झागोंसहित वमन" दांतोंका चबाना और नेत्रोंमें विकृति इत्यादिक भयानक चेष्टा होतीहैं और सान्निपातिक मूर्च्छामे यह चेष्टा नहीं होती ॥ १४॥१५॥

अथ रुधिरोत्पन्नमूर्च्छानिदानम् ।

पृथिव्यम्भस्तमोरूपं रक्तगन्धस्तदन्वयः॥

तस्मादृक्तस्य गन्धेन मूर्च्छन्ति भुवि मानवाः ॥ १६ ॥

तमोरूपं तमोबहुलम्। मानवाश्च ये तामसाः। न तु सात्त्विका राजसाश्च। अत्रैके वदन्ति नैव युक्तिः समीचीना तर्हि चम्पकादिगन्धेन अपि मूर्च्छा प्रसज्येत तत्रापि गन्धस्य पार्थिवत्वात्। अत आह–

द्रव्यस्वभावमित्येके दृष्ट्वा यदपि मुह्यति ॥
दर्शनादसृजस्तज्जाद्गन्धाच्चैव प्रमुह्यति॥ १७॥

पृथिवी और जल यह दोनों तमोगुणके अधिक अंशो युक्त हैं। और गंध तथा रुधिर पृथिवीके तथा जलके पदार्थ रूप हैं इस कारण सतोगुणी और रजोगुणी नहीं किन्तु जो तमोगुणी मनुष्य हैं वह रुधिरकी गंधसे मूर्च्छित होजाते हैं।

इस विपयमे बहुतसे मत हैं कोई कहते हैं कि, गंध तमोगुणके कार्यरूप पृथ्वीका भाग है इस कारण इससे मनुष्य मूर्च्छित होते हैं यह युक्ति ठीक नहीं। क्योंकि यदि ऐसा होय तो चंपक आदिकी गंध भी पृथ्वी सम्बन्धी है इसलिये उसकी गधसे भी मूर्च्छा होनी चाहिये।

इस युक्तिको छोडकर कितनेक वैद्य कहते हैं कि, "रुधिरकी गंधसे नहीं किन्तु रुधिरके देखनेसे अत्यंत मूर्च्छा होतीहै। यह रुधिरके ऐसे स्वभाव होनेसे ही होती है"।

भोज तो ऐसा कहताहै कि, रुधिरके दर्शनसे और गधसे भी मूर्च्छा होतीहै ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ रुधिरमूर्च्छालक्षणम्।

स्तब्धांगयष्टिस्त्वसृजाद्गूढोच्छ्वासश्च मूर्च्छितः ॥ १८ ॥

रुधिरकी मूर्च्छा होय तो शरीर स्तब्ध (जकडासा) होजाताहै और गूढ श्वास होजाताहै ॥ १८ ॥

अथ मद्यमूर्च्छालक्षणम्।

गुणास्तीव्रतरत्वेन स्थितास्तु विषमद्ययोः॥
त एव तस्मात्ताभ्यान्तु मोहौ स्यातां यथेरितौ ॥ १९ ॥

ये गुणाः लघुरूक्षाशुविशदव्यवायितीक्ष्णविकाशिसूक्ष्मोष्णानिर्देश्यरसत्वादयः तैलादौ द्रव्ये व्यस्तास्तीव्राश्च सन्ति त एव गुणाः विषमद्ययोस्तु तीव्रतरत्वेन स्थिताः तत्रापि भेदः–"त एव मद्ये दृश्यन्ते विषे तु बलवत्तराः" इति ॥

लघुता, रूक्षता, शीघ्रता, विशदता, व्यवायिपन, तीक्ष्णता, विकाशीपन, सूक्ष्मपन, उष्णपन और निरूपण करनेके लिये अशक्य रसयुक्तपन, इत्यादि जो गुण तैलादिक पदार्थोंमें अलग अलग रहते हैं और तीव्र हैं वही गुण विषमें और मद्यमे अत्यंत तीव्रतासे रहते हैं। उनमे भी इतना भेद है कि, मद्यकी अपेक्षा ये गुण विषमें अधिक बलवान् हैं, मद्यमें तथा विषमें ये गुण दोनो होनेसे मद्य और विषसे मूर्च्छा होती है ॥ १९ ॥

अथ मद्यमूर्च्छालक्षणम्।

मद्येन प्रलपञ्छेते नष्टविभ्रान्तमानसः ॥
गात्राणि विक्षिपन्भूमौ जरां यावन्न याति तत् ॥ २० ॥

नष्टविभ्रान्तमानसः नष्टं सर्वथा स्मृतिहीनं विभ्रान्तं रज्जौ सर्पज्ञानयुक्तं मानसं यस्य सः। जरां जीर्णताम्। तन्मद्यम् ॥

मद्य (सराव) की मूर्च्छामें मन सर्वथा स्मृतिहीन होजाताहै और ऐसी भ्रान्ति होजाती है कि, जेवरी (रस्सी) आदिको सॉप समझने लगताहै जबतक पी हुई मदिरा जीर्ण नहीं होती तबतक मूर्च्छित मनुष्य अपने अंगोंको धरतीपर पटका करता है ॥ २० ॥

अथ विषमूर्च्छालक्षणम्।

वेपथुस्वप्नतृष्णाः स्युः स्तम्भश्च विषमूर्च्छिते ॥ वेदितव्यं तीव्रतरं यथास्वं विषलक्षणैः ॥ २१ ॥

विषस्य मूलकन्दफलपत्रक्षीरादिभेदभिन्नस्य यथास्वं लक्षणमुक्तं सुश्रुते कल्पस्थाने तल्लक्षणं मद्यापेक्षया तीव्रतरं वेदितव्यं न तु संज्ञानाशेन साम्यधर्मात् ॥

विषकी मूर्च्छामें कप,निद्रा, तृषा और अंधकार उत्पन्न होताहै, विषके जो मूल, कंद, फल, पत्र और क्षीरादिक अलग अलग भेद हैं उनके जो जो लक्षण सुश्रुतके कल्पस्थानमें कहे हैं वही वही लक्षण मद्यके लक्षणोंकी अपेक्षा अधिक तीव्र हैं ऐसा जानना। किन्तु संज्ञानाश करनेका धर्म मद्यमें और विषमें समान है कुछ लक्षण समान नहीं हैं ॥ २१ ॥

अथ मूर्च्छाभ्रमतंद्रादिपरस्परभेदः।

मूर्च्छा पित्ततमःप्राया रजःपित्तानिलाद् भ्रमः ॥ तमोवातकफात्तन्द्रा निद्रा श्लेष्मतमोभवा ॥ २२ ॥

रजःपित्तानिलाद् भ्रम इति न अत्र समुच्चयः। केवलपित्तज्वरे भ्रमस्य उक्तत्वाद् भ्रमश्च चक्रारूढस्येव भ्रमवस्तुज्ञानं स्वदेहस्य भ्रमत इव ज्ञानश्च ॥

मूर्च्छामें पित्त और तमोगुण अधिक होताहै, भ्रम, रजोगुण, पित्त और वायुसे होताहै, तंद्रा तमोगुण,वायु और कफसे होती है और निद्रा, कफ तथा तमोगुणसे होती है।

रजोगुण पित्त और वायु इन तीनोंके समुदायसे भ्रम होताहै ऐसा नहीं समझना क्योंकि केवल पित्तज्वरमें भी भ्रम होताहै ऐसा कहा है।

जिसप्रकार घूमते हुए चाकके ऊपर सम्पूर्ण पदार्थ घूमते हुए दिखाई देते हैं उसीप्रकार सब वस्तुओंको घूमता हुआ देखे और अपने शरीरको भी घूमता हुआ देखे, यह लक्षण जिसमें होते हैं उसको भ्रम कहते हैं ॥ २२ ॥

अथ तंद्रालक्षणम्।

इन्द्रियार्थेष्वसंवित्तिर्गौरवं जृम्भणं क्लमः ॥ निद्रार्तस्येव यस्येहा तस्य तन्द्रां विनिर्दिशेत् ॥ २३ ॥

इन्द्रियाणामर्थः प्रयोजनं येषु अर्थाद्विषयेषु, असंवित्तिः असम्यक् ज्ञानम् इति इन्द्रियार्थाऽसम्यग्ज्ञानादि। निद्रायां प्रबुद्धस्य क्लमाभावस्तन्द्रायान्तु प्रबोधितस्याऽपि क्लम इत्यनयोर्भेदः।

निद्रासे घिरे हुएकी समान जिसमें विषयोंका ज्ञान नष्ट हो जाय, शरीरमें भारीपन, जम्भाई, तथा क्लम (ग्लानि) प्राप्त हो उनको तन्द्रा कहते हैं। जब मनुष्यको निद्रा आती है फिर जागनेपर उसको क्लम नहीं रहता और तन्द्रामें तो जागनेके पश्चात् भी क्लम रहता है। इतना ही निद्रामें और तन्द्रामें भेद है ॥ २३ ॥

अथ क्लमलक्षणम्।

योऽनायासः श्रमो देहे प्रवृद्धः श्वाससङ्गतः ॥ क्लमः स इति विज्ञेय इन्द्रियार्थप्रबाधकः ॥ २४ ॥

इन्द्रियाणां बुद्धीन्द्रियाणां कर्मेन्द्रियाणाञ्च। अर्थः प्रयोजनं विषयग्रहणं तस्य प्रबाधकः प्राबल्येन बाधकः ॥

विना ही परिश्रमकिये उत्पन्न हो, श्वाससयुक्त और ज्ञानेन्द्रियोंके तथा कर्मेन्द्रियोंके विषयोंके ग्रहणको जो अत्यंत रोकनेवाला देहमें श्रम होताहै उसको क्लम कहते हैं॥२४॥

अथ निद्रालक्षणम्।

यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्विताः ॥ विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्वपिति मानवः ॥ २५ ॥

क्लान्ते ग्लाने श्रान्ते इति यावत् कर्मात्मानः क्लमान्विताः कर्मेन्द्रियाणि ज्ञानेन्द्रियाणि च क्लमान्विताः इन्द्रियाणि श्रान्तानि ॥

जब मन क्लमको प्राप्त होकर थकी हुई ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंके विषयके ग्रहणसे रुकता है तब मनुष्य सोजाता है ॥ २५ ॥

अथ संन्याससम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणम्।

वाग्देहमनसां चेष्टामाक्षिप्यातिबला मलाः॥ संन्यस्यन्त्यबलं जन्तुं प्राणायतनमाश्रिताः ॥ २६ ॥ स ना संन्याससंन्यस्तः काष्ठीभूतो मृतोपमः ॥ प्राणैर्विमुच्यते शीघ्रं मुक्त्वा सद्यःफलां क्रियाम् ॥ २७ ॥

आक्षिप्य विनाश्य संन्यस्यन्ति मूर्च्छयन्ति प्राणायतनं हृदयम्। संन्यस्तः मूर्च्छितः काष्ठीभूतः क्रियारहितः। अत

एव मृतोपम इति। सद्यःफलां क्रियां सूचीव्यधनाञ्जनावपीडकपिकच्छुघर्षणवृश्चिकादिदंशनादिरूपाम् ॥

जब हृदयमे रहनेवाले अत्यत बलवान् कुपित दोष प्राणोके स्थानरूप हृदयमें वाणीकी, देहकी तथा मनकी चेष्टाको नष्ट करके बलहीन मनुष्यको मूर्च्छित करदेतेहैं उसको सन्यास कहतेहैं। जब वह मनुष्य काष्ठकी समान क्रियारहित मृतककी समान होजाताहै । इस मनुष्यके शरीरमें सुई चुभोना, तीक्ष्ण अजन लगाना, तीक्ष्ण नस्य देना, कौंचकी फली घिसकर लगानी, और बिच्छू आदिसे कटवाना इत्यादि तत्काल फल करनेवाली क्रिया यदि न की जावे तो यह मनुष्य शीघ्र ही मर जाताहै २६॥२७॥

अथ संन्यासमूर्च्छाभेदः ।

दोषेषु मदमूर्च्छाया गतवेगेषु देहिनः ॥ स्वयमप्युपशाम्यन्ति संन्यासो नौषधैर्विना ॥ २८ ॥

मदमूर्च्छाया मदः अप्रवृद्धः उन्मादः। मूर्च्छायो मूर्च्छा।

दोषोंके वेगव्यतीतनेपर मूर्च्छा और नहीं बढा हुआ उन्माद अपने आपही शात होजातेहैं किन्तु संन्यास तो विना औषधियोके शात होताही नहीं ॥ २८ ॥

अथ मूर्च्छाचिकित्सा ।

सेकावगाहा मणयः सहाराः शीताः प्रदेहा व्यजनानिलाश्च ॥ शीतानि पानानि च गन्धवन्ति सर्वासु मूर्च्छास्वनिवारितानि ॥ २९ ॥

मणयश्चन्द्रकान्तादयः । हारा मुक्तादिहाराः शीताः प्रदेहाः सकर्पूरचन्दनानुलेपनानि । शीतानि पानानि सितामलकादिपानकानि। गन्धवन्ति कर्पूरादिसुगन्धवन्ति। सर्वासु मूर्च्छासु अनिवारितानि। अस्यायमभिप्रायः सेकादीनि अन्यासु मूर्च्छासु हितानि एव किन्तु वातश्लेष्मजासु अपि न निवारितानि तत्र अपि पित्तस्य प्राधान्यात् ॥

सिद्धानि वर्गे मधुरे पयांसि सदाडिमा जांगलजा रसाश्च ॥ तथा यवा लोहितशालयश्च मूर्च्छासु पथ्याः ससतीनमुद्गाः ॥ ३० ॥

सतीनः कलायः ॥

शीतल जलका सींचना, शीतल जलमें अवगाहन, चन्द्रकांत आदि मणि और मोती आदिके हारोंका धारण, कपूर मिश्रित चंदनादिकका लेपन, मिश्री संयुक्त और कपूरसे सुवासित किया हुआ आमले आदिके रसका पानक, और पखेकी पवन ये सब उपचार सर्वप्रकारकी मूर्च्छामे हितकारी हैं ।

मधुर औषधियोंके द्वारा पकाहुआ दूध, दाडिमका रस मिला हुआ जांगल देशके जीवोंका मासरस, जो, लालचावल, मटर और मूंग ये सब मूर्च्छामें पथ्य हैं२९॥३०॥

कोलमज्जोषणोशीरकेसरं शीतवारिणा ॥ पीतं मूर्च्छां जयेल्लीढ्वा कृष्णां वा मधुसंयुताम् ॥ ३१ ॥

बेरकी गिरी, काली मिरच, खस और नागकेसर इनको शीतल जलके साथ पीसकर पीनेसे मूर्च्छा नष्ट होतीहै ॥ ३१ ॥

शीतेन तोयेन विषं मृणालं कृष्णाश्च पथ्यां मधुनाऽवलिह्यात् ॥ कुर्याच्च नासावदनावरोधं क्षीरं पिबेद्वाप्यथ मानुषीणाम् ॥ ३२ ॥ द्राक्षासितादाडिमलाजवन्ति कट्वारनीलोत्पलपद्मवन्ति ॥ पिबेत्कषायाणि च शीतलानि पित्तज्वरं यानि च यापयन्ति ॥ ३३ ॥ शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैन्धवैः ॥ अञ्जनं स्यात्प्रबोधाय सरसोनशिलावचैः ॥ ३४ ॥ अञ्जनं सम्यगारब्धं मधुसिन्धुशिलोषणैः॥ प्रमोहद्रोहि भवति भाषितं भिषजां वरैः ॥ ३५ ॥

शिला मनःशिला । ऊषणं मरिचम् ॥

मधूकसारसिन्धूत्थवचोपणकणाः समाः॥ श्लक्ष्णं पिष्ट्वाम्भसा नस्यं कुर्यात्संज्ञाप्रबोधनम् ॥ ३६ ॥

पीपलका चूर्ण बनाकर सहतमे मिलाकर चाटनेसे मूर्च्छा नष्ट होतीहै । कमलका कंद, कमलकी नाल, पीपल और हरड इनको पीसकर सहतके साथ चाटनेसे मूर्च्छा नष्ट होतीहै । नाकके तथा मुखके श्वॉसको रोकनेसे मूर्च्छा नष्ट होतीहै । स्त्रीका दूध पीनेसे मूर्च्छा नष्ट होतीहै ।

दाख, खाड, अनार, धानकी खीलें, दहीका तोड, नीले कमल और सुफेद कमल इनका शीतल कषाय (हिम) पिये और जो क्वाथ पित्तज्वरको नष्ट करनेवाले हैं वह भी पिये ।

सिरसके बीज पीपल, कालीमिरच, सैंधानिमक, लसुन, मैनशिल, और वच इनको गोमूत्रमें पीसकर अजन बनाकर नेत्रोंमें ऑजनेसे चेतना प्राप्त होतीहै ।

सहत, सैंधानिमक, मैनशिल और काली मिर्चे इनका अंजन अच्छे प्रकारसे बनाकर नेत्रोंमें ऑजनेसे मूर्च्छाकी बेहोसी दूर होजातीहै ।

महुवेका सार, सैंधानिमक, वच, मिर्चे और पीपल इनको समान भाग लेकर जलमें बारीक पीसकर नास लेनेसे संज्ञा उत्पन्न होतीहै ॥ ३२–३६ ॥

अथ रुधिरोत्पन्नमूर्च्छादिचिकित्सा ।

रक्तजायान्तु मूर्च्छायां हितः शीतक्रियाविधिः ॥ मद्यजानां पिबेन्मद्यं निद्रां सेवेत वा सुखम् ॥ विषजायां विषघ्नानि भेषजानि प्रयोजयेत् ॥ ३७ ॥

रुधिरकी मूर्च्छामें शीत चिकित्सा हितकारी है । मद्यकी मूर्च्छामें फिर दुवारा मद्य पिये अथवा सुख पूर्वक सोना हितकारी है । और विषकी मूर्च्छामें विषनाशक औषधियोंका प्रयोग हितकारी है ॥ ३७ ॥

अथ संन्यासचिकित्सा ।

प्रभूतदोषस्तमसोऽतिरेकात्सम्मूर्च्छितो नैव विबुध्यते यः ॥ सन्यस्तसंज्ञः स हि दुश्चिकित्स्यो नरो भिषग्भिः परिकीर्तितोऽसौ ॥ ३८ ॥ अञ्जनान्यवपीडाश्च धूमाः प्रधमनानि च ॥ सूचीभिस्तोदनं शस्तं दाहपीडा नखान्तरे ॥ ३९ ॥ लुञ्चनं केशलोम्नाञ्च दन्तैर्दशनमेवच ॥ आत्मगुप्तावघर्षश्च हितस्तस्य प्रबोधने ॥ ४० ॥॥

अवपीडः कल्कीकृतौषधरसस्य नासापुटे दानम् । प्रधमनम् औषधचूर्णस्य द्विमुख्या नाडिकया मुखवातेन नासापुटे दानम् । तस्य संन्यस्तस्य ॥

अधिक दोषवाला मनुष्य तमोगुणकी अधिकतासे मूर्च्छित होकर पीछे जाग्रत नहीं हो उसको वैद्य सन्यास रोग युक्त कहतेहैं और उसकी चिकित्सा अत्यत कठिनहै ।

संन्यास रोगवाले मनुष्यके अजन लगावे औषधियोंका कल्क बनाकर उनका रस नाकमें निचोडे, धुँवॉ देवे, औषधिके चूर्णको दो मुखवाली नलीमें भरकर उसमें मुखसे फूक मारकर नाकमें चढावे । अगोंमें सुई चुभोवे, नखूनोंमें अग्निका दाह देवे, केश और रोमोको उखाडे, दॉतोंसे कटवावे और शरीरपर कौंछकी फलीको घिसे ॥ ३८–४० ॥

अथ मूर्च्छोपयोगीरसः ।

कणामधुयुतं सूतं मूर्च्छायां प्राशयेद्भिषक् ॥ शीतसेकावगाहादीन्सर्वांगे पीडनं हठात् ॥ ४१ ॥ ताम्रचूर्णसमोशीरं केशरं शीतवारिणा ॥ पीतं मूर्च्छां द्रुत हन्याद्वृक्षमिन्द्राशनियथा ॥ ४२ ॥ ताम्रचूर्णं मारितताम्रचूर्णम् ॥

वैद्य मूर्च्छाको दूर करनेके लिये पारेकी भस्मको पीपलके चूर्ण और सहतके साथ चटावे, शीतल सेचन और शीतलजलका अवगाहन आदि कर्मकरे । तथा बलात्कारसे सम्पूर्ण अंगोंको दबावे ।

तावेकी भस्म, खस और नागकेसर इनको समान भाग लेकर सबको एकत्र मिलाकर शीतल जलके साथ पीनेसे जिस प्रकार बिजलीसे वृक्ष नष्ट होजावेहै उसी प्रकार इससे मूर्च्छा तत्काल नष्ट होजाती है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अथ भ्रमचिकित्सा।

पिबेद्दुरालभाक्वाथं सघृतं भ्रमशान्तये ॥ पथ्याक्वाथेन संसिद्धं घृतं धात्रीरसेन वा ॥ ४३ ॥ शुण्ठीकृष्णाशताह्वानां साभयानांपलंपलम् ॥ गुडस्य षट्पलान्येषा गुटिका भ्रमनाशिनी ॥ ४४ ॥ ताम्रं दुरालभाक्वाथैः पीतन्तु घृतसंयुतम्॥ निवारयेद् भ्रमं शीघ्रं तं यथा शंभुभाषितम् ॥ ४५ ॥

धमासेका क्वाथ बनाकर घी डालकर पीनेसे भ्रम (भौंर) दूर होजाताहै। हरडके क्वाथसे अथवा आमलेंके रससे सिद्ध किये हुए घीको पीनेसे भ्रम दूर होजाताहै।

सोंठ, पीपल, सतावर और हरड ये सब औषधि चार चार तोले और गुड चौवीस तोले इन सबको मिलाकर बेर बराबर गोली बनाकर खाय तो भ्रमरोगका विनाश होताहै।

तावेकी भस्मको जवासेके क्वाथके साथ मिला कर पिये तो तुरन्तही भ्रमरोग शान्त होताहै, जिस प्रकार शिवजीने शिवसंहितामें कहाहै ॥ ४३-४५ ॥

अथ तन्द्रानिद्राचिकित्सा।

तुरंगलालालवणोत्तमेन्दुमनःशिलामागधिकामधूनि ॥ नियोज्य तान्यक्षिण विमिश्रितानि तन्द्रां सनिद्रां विनिवारयन्ति ॥ ४६ ॥

इन्दुः कर्पूरः ॥

सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्षपाः कुष्ठमेव च ॥ बस्तमूत्रेण सम्पिष्टं नस्यं तन्द्रानिवारणम् ॥ ४७ ॥

श्वेतमरिचं शिग्रुबीजम् ॥

शुण्ठीकणोग्रालवणोत्तमानि नस्येन तंद्राविजयोल्वणानि ॥ क्षुद्रामृतापौष्करनागराणि भार्ङ्गीशिवाभ्यां क्वथितानि पानात् ॥ ४८ ॥

शिवा हरीतकी ॥

इति मूर्च्छाभ्रमनिद्रातन्द्रासंन्यासाधिकारः।

घोडेकी लारमें, सैंधानिमक, कपूर, मैनशिल, पीपल और सहत इनको महीन पीसकर नेत्रोंमें लगावे तो निद्रासहित तन्द्रारोग निवारण होताहै।

सैंधानिमक, सहँजनेके बीज, सरसो और कूट इन सबको कूट पीसकर बकरेके मूत्रमें खरलकरके नास लेय तो उसी समय तन्द्राका नाश होताहै।

सोंठ, पीपल, वच और सैंधानिमक इनको महीन पीस कर नास लेय तो महाघोर तन्द्राका भी विनाश होताहै।

कटेहरी, गिलोय, पुहकरमूल, सोंठ, भारंगी और हरडके काढेको पीनेसे तन्द्रा और निद्रा दोनोंका निवारण होताहै ॥ ४६-४८ ॥

अथ मदात्ययाधिकारः।

तत्र मद्यस्वभावः।

मद्यं स्वभावतः प्राज्ञयथैवान्नं तथा स्मृतम् ॥ अयुक्तियुक्तं रोगाय युक्तियुक्तं रसायनम् ॥ १ ॥

मद्य स्वभावहीसे अन्नके समान है, ऐसा विद्वान् लोगोने कहा है, अर्थात् जो मद्य विना युक्तिके साथ पियाजाताहै तो अनेक रोगोंको उत्पन्न करताहै और जो युक्ति (विधि पूर्वक) के साथ पिया जाय तो महारसायन है ॥ १ ॥

प्राणाः प्राणभृतामन्नं तदयुक्त्या निहन्त्यसून् ॥ विषं प्राणहरं तच्च युक्तियुक्तं रसायनम् ॥ २ ॥ विधिना मात्रया काले हितैरन्नैर्यथाबलम् ॥ प्रहृष्टो यः पिबेन्मद्यं तस्य स्यादमृतं यथा ॥ ३ ॥

अन्नही प्राणियोका प्राण है परन्तु युक्तिविना अन्न सेवन करनेसे प्राणोंका नाशकारक है, यह सब जानते हैं कि, विष प्राण हरताहै परन्तु युक्तिके साथ सेवन करनेसे महारसायन है।

जो मनुष्य आनन्दसहित विधिपूर्वक यथायोग्य समयपर मात्रानुसार प्रसन्न चित्त होकर हितकारक अन्नोंके साथ बलाबल विचार मद्य पान करतेहैं उनको मद्य अमृतकी समान गुणकारी है ॥ २-३ ॥

अथ मद्यपानविधिः।

कृतशारीरसंस्कारः शुचिरुत्तमगन्धवान्॥

उद्दामगन्धिभिः स्फीतैर्मृदुभिर्वसनैर्वृतः ॥ ॥ ४ ॥ विचित्रविविधस्रग्वी रक्ताभरणभूषितः ॥ सानन्दः सावधानश्च पिबेन्मद्यं शनैःशनैः ॥ ५ ॥

शरीरको अच्छेप्रकारसे स्वच्छ करके, अर्थात् मलमूत्र दतवावनादि करके पवित्र होकर, उत्तम फुलेल आदि सुगंधोंको लगाकर, उत्तम सुवासित महीन अथवा कोमल वस्त्र धारणकर, अनेक प्रकारके चित्र विचित्र मदनबाणादि सुगन्धित पुष्पोंकी मालाओंसे उरःस्थलको सुशोभित करके लाल रंगके आभूषणोंको भूषितकर आनन्द युक्त होकर सावधानीके साथ धीरे धीरे ठहर ठहरकर थोडी थोडी मदिरा पीवै ॥ ४–५ ॥

अथ मद्यपानस्थानम् ।

उपवनेषु सुरभिसुरंगसुमनःसमूहमनोहरेषु ॥ मंजुगुंजन्मधुकरनिकरेषु कूजत्कलकण्ठेषु ॥ ६॥ सुरभिशिशिरमधुरसमीरेषु मन्दिरेषु ॥ सुधाशुभ्रेषु सुधूपधूपितेषु सूपधानेषु ॥ संस्तीर्णविहितशयनासनेषु॥ ॥ ७ ॥ उपविष्टोऽथ वा तिर्यक् भृशं हृष्टः सुरां पिबेत् ॥ सौवर्णै राजतैः पात्रैः पिबेन्मणिमयैरपि ॥ ८ ॥ रूपयौवनमत्ताभिर्वल्लभाभिर्विशेषतः ॥ वस्त्राभरणमाल्यैश्च भूषिताभिर्यथर्तुकैः ॥ दीयमानं मृगाक्षीभिः पिबेन्मद्यं मुदान्वितः ॥ ९ ॥

जहां उत्तम वर्णवाले सुगंधित सुगंधित पुष्प मनको हरन करनेवाले खिल रहे हों. उनपै मधुर ध्वनिसे भ्रमरोंके समूह गुंजार करतेहों, जहा मधुर स्वरसे कोयल कूह कूह करतीहो और जहा शीतल मन्द सुगन्ध पवन मधुर मधुर चलती हो, ऐसे उपवन अथवा कुसुम काननके भीतर चूने कलईसे स्वच्छ पुताया हुआ, हवादार और उत्तम धूपोंसे सुवासित किये हुए बगलेमें उत्तम आसन अथवा पलँग बिछा होय और उसपै गद्दे तकिये नरम नरम लगे हुए हों, तथा उसके ऊपर स्वच्छ चादर बिछी हुई हो उस शयन करनेके आसनपै बैठकर अथवा तिरछा लेटकर अत्यन्त आनन्दके साथ मद्यको पीवै, रूप और यौवनसे उन्मत्त हुई अत्यन्त प्रिय, यथा यथा ऋतुके अनुसार वस्त्रोंसे, आभूषणोसे और सुवासित पुष्पोंसे सुसज्जित तथा हिरनकी समान नेत्रवाली ऐसी स्त्रियें, सोनेके, चादीके, अथवा रत्नोंके या काचके प्याले गिलासोंमें भर भरकर वारवार देवे तो पुरुष प्रीतिपूर्वक उस मदिराको पीवै ॥ ६–९ ॥

अथ तन्त्रान्तरोक्तमद्यपानमात्रा ।

शुद्धकायः पिबेन्मद्यं सोपदंशं पलद्वयम् ॥ मध्याह्ने द्विगुणं तच्च सुस्निग्धं भक्षयेदनु ॥ १० ॥ प्रदोषेऽष्टपलं तद्वन्मात्रा मद्यरसायने ॥ अनेन विधिना सेव्यं मद्य नित्यमतन्द्रितैः ॥ ११ ॥

शुद्धकायः उत्सृष्टमलमूत्रः । पलद्वयं पारिशेष्यात्पूर्वाह्णे बोद्धव्यम् । अतन्द्रितैः मात्रया सावधानैः । अन्ये त्वाहुः—

बुद्ध्यादयो गुणा यावदुल्लसन्ति निरत्ययाः ॥ मात्रेयं विहिता मद्यपानेऽन्या रोगजन्मने ॥ १२ ॥

काल इति यस्मिन्काले यादृशं मद्यमुचितं तस्मिंस्तादृशं पेयम् ॥

मल मूत्रादिको त्याग शुद्ध होकर पूर्वाह्ण (प्रातःकाल) में चाट (दाल, सेव, नमकीन पदार्थ) के साथ आठ रुपये भर मदिरा पीवे, मध्याह्नके समय सोलह रुपये भर मदिरा पीवै और उसके उपरान्त अत्यन्त स्निग्ध भोजन करै और सायकालमे ३२ रुपयेभर मद्य पीवै, मद्यकी यह मात्रा रसायन रूप है, इसकारण मनुष्योंको मात्रामे भूल नहीं करनी चाहिये, नित्य इसी विधिसे मद्यका सेवन करना चाहिये । अन्य ग्रथोंमे तो यह कहा है कि, जबतक शुद्ध बुद्धि आदिगुण अबाधित रीतिसे प्रकाशित रहैं तबतक उतनीही मद्य पीवै, इसके सिवाय अन्यमात्रा रोगियोंके लिये जाननी अधिक मात्रा सदैव रोगको उत्पन्न करतीहै ॥ १०–१२ ॥

अथ कस्मिन्नृतौ कीदृङ् मद्यं पेयमित्याह।

ग्रीष्मे मद्यं हिमं स्वादु माध्वीकादि सुखप्रदम् ॥ शीते प्रशस्यते चोष्णं तीक्ष्णं गौडिकपैष्टिकम् ॥ १३ ॥

जिस ऋतुमें जैसी मद्य पीनी योग्य है वही पीनी चाहिये। जैस कि, ग्रीष्म ऋतुमे शीतल और मधुर माधवी नामक मदिरा सुखदायी है। और शीतकालमें उष्ण तथा तीक्ष्ण गौडिक और पौष्टिक मद्य हितकारी है ॥ १३ ॥

अथ हितकार्यन्नम्।

मद्यानुकूलैर्विविधैः फलैर्वर्णमनोहरैः ॥ सुगन्धैर्लवणैर्हृद्यैर्भृष्टैर्मांसैः पृथग्विधैः ॥ ॥ १४ ॥ स्निग्धैरन्नैश्च भक्ष्यैश्च सह मद्यं पिबेन्नरः ॥ १५ ॥

अन्नैः सिद्धैः ओदनपर्पटकादिभिः। भक्ष्यैः लड्डुकफेणिकादिभिः ॥

अभ्यंगोत्सादनस्नानवासोधूपानुलेपनैः ॥ स्निग्धोष्णैस्तादृशैरन्नैर्वातप्रकृतिकः पिबेत् ॥ शीतोपचारैर्विविधैर्मधुरस्निग्धशीतलैः ॥ १६ ॥ फलैरन्नैः सह नरः पित्तप्रकृतिकः पिबेत् ॥ श्लैष्मिको जांगलैर्मांसैर्मरिचैर्मदिरां पिबेत् ॥ १७ ॥ प्राक् पिबेच्छ्लैष्मिको मद्यं भक्तस्योपरि पैत्तिकः ॥ वातिकस्तु पिबेन्मद्यं समदोषो यथेक्षते ॥ १८ ॥ वातिकस्तु पिबेन्मद्यं प्रायो गौडिकपैष्टिकम् ॥ कफपित्तात्मको यस्तु माध्वीकं माधवं पिबेत् ॥ १९ ॥ विधिर्वसुमतामेष कथितश्चरकादिभिः ॥ यथोपपत्तिकं वापि पिबेन्मद्यं हि मात्रया ॥ २० ॥

मद्यको पीनेवाला मनुष्य मद्यके अनुकूल मनोहर फल, सुगंधित और प्रिय नमकीन पदार्थ, अलग अलग प्रकारके मांस, भात, पापड और लड्डू तथा फेनी आदि स्निग्ध भक्ष्योंके साथ मद्य पिये।

वातप्रकृतिवाला मनुष्य स्निग्ध और उष्ण अभ्यङ्ग (मालिश), अगर आदि सुगंधित वस्तुका लेपकर, स्नान, वस्त्र, धूप और अनुलेपन इत्यादि उपचार करके उसी प्रकार अन्नके साथ मद्यको पियै।

पित्तप्रकृतिवाला मनुष्य अनेक प्रकारके शीतल उपचार करके मधुर, स्निग्ध तथा शीतल फलोंके साथ और उसीप्रकार अन्नोंके साथ मद्य पियै। कफ प्रकृतिवाला मनुष्य जांगल देशके जीवोंके मासके साथ और मिरचके साथ मद्य पियै।

कफप्रकृतिवाला मनुष्य भोजनसे पहिले मद्य पियै, पित्तप्रकृतिवाले पुरुषको भोजन करनेके बाद मद्य पीनी चाहिये, वातप्रकृतिवाला भोजनके मध्यमे मद्य पियै और समदोषवाला मनुष्य जैसी रुचि हो उसीप्रकार पियै। वातप्रकृतिवाले मनुष्यको विशेष करके गुडकी और जौके आटेकी मदिरा पीनी चाहिये, कफप्रकृतिवाले और पित्तप्रकृतिवालेको खांड आदि मधुर पदार्थोंकी मदिरा पीनी चाहिये। चरकादि ऋषि कहतेहैं कि, यह विधि केवल धनवानोंके लिये कही है इसलिये निर्धन मनुष्योंको जैसी मिलजाय वैसीही पीलेवे ॥ १४–२० ॥

अथ मद्यगुणाः।

रसवातादिमार्गाणां सत्त्वबुद्धीन्द्रियात्मनाम ॥ प्रधानस्यौजसश्चैव हृदयं स्थानमुच्यते ॥ २१ ॥ मद्यं हृदयमाविश्य स्वगुणैरोजसो गुणान् ॥ दशभिर्दश संक्षोभ्य चेतो नयति विक्रियाम् ॥ ॥ २२ ॥ लघूष्णतीक्ष्णसूक्ष्माम्लव्यवायाशुकरं तथा ॥ रूक्षं विकाशि विशदं मद्यं दशगुणं स्मृतम् ॥ २३ ॥ गुरु शीतं मृदु स्निग्धं सान्द्रं स्वादु स्थिरं तथा ॥ प्रसन्नं पिच्छिलं सूक्ष्ममोजो दशगुणं स्मृतम् ॥ २४ ॥ गौरवं लाघवाच्छैत्यमौष्ण्यादम्लस्वभावतः ॥ माधुर्यं मार्दवं तैक्ष्ण्यात्प्रसादश्चाशुभावनात् ॥ ॥ २५ ॥ रौक्ष्यात्स्नेहं व्यवायित्वात्स्थिरत्वं सूक्ष्मतामपि ॥ विकाशिभावात्पैच्छिल्यं वैशद्यात्सान्द्रतां तथा ॥ २६ ॥

सौक्ष्म्यान्मद्यं निहन्त्येवमोजसः स्वगुणैर्गुणान् ॥ सत्त्वं तदाश्रयं चाशु संक्षोभ्य कुरुते मदम् ॥ हृदि मद्यगुणाविष्टे हर्षस्तर्षो रतिः सुखम् ॥ २७ ॥ विकाराश्च यथासत्त्वं चित्रा राजसतामसाः॥जायन्ते मोहनिद्रान्ता इत्येतन्मदलक्षणम् ॥ २८॥ हर्षमोजो बलं पुष्टिमारोग्यं पौरुषं तथा॥ युक्त्या पीतं करोत्याशु मद्यं मदसुखप्रदम् ॥ २९॥ रोचनं दीपनं हृद्यं स्वरवर्णप्रसादनम्॥प्रीणनं बृंहणं बल्यं भयशोकश्रमापहम् ॥ ३० ॥ स्वापनं नष्टनिद्राणां मूकानां वाग्विशोधनम् ॥ नाशनं चातिनिद्राणां विबन्धानां विबन्धनुत ॥ ॥३१॥ वधवन्धपरिक्लेश दुःखानां चाप्यबोधकम् ॥ अपि प्रवयसां मद्यमुत्सर्गामोदकारकम् ॥ ३२ ॥ बहुदुःखक्षतस्यास्य शोकैरुपहतस्य च ॥ विश्रामो जीवलोकस्य मद्यं युक्त्या निषेवितम् ॥ ३३ ॥

मदस्त्रिलक्षणो भवति । एको मदोऽधिकसत्त्वगुणस्य पुंसो भवति । द्वितीयोऽधिकरजोगुणस्य । तृतीयोऽधिकतमोगुणस्य ॥

प्रधानाधममध्यानां रुक्माणां व्यक्तिदायकः ॥ यथाग्निरेवं सत्त्वानां मद्यं प्रकृतिदर्शकम् ॥ ३४ ॥

रस और वातादि मार्गोंका, चित्त, बुद्धि, अहंकार और शरीरमें प्रधान ओजका स्थान हृदय है, यह मद्य उस हृदयमें प्रवेश होकर अपने दश गुणोंसे ओजके दश गुणोंको क्षोभित करके चित्तमें विकार उत्पन्न करतीहै, मद्य-लघु, उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, अम्ल, व्यवायी (प्रथम सब शरीरमें व्याप्त होकर पश्चात् पचनेवाली),आशुकर (शीघ्र शरीरमें फैलनेवाली),रूक्ष, विकाशि और विशद (शरीरकी आर्द्रताको दूर करनेवाली), इन दश गुणों वाली है । ओज–गुरु, शीतल, मृदु,स्निग्ध, सान्द्र, मधुर, स्थिर, प्रसन्न, पिच्छिल और सूक्ष्म इन दश गुणो करके युक्त है । तहा मद्य लघु होनेसे ओजके गुरु गुणको, उष्ण होनेसे ओजकी शीतलताको, अम्ल होनेसे ओजके मधुर गुणको, तीक्ष्ण होनेसे ओजके मृदुगुणको, आशुकारी होनेसे ओजकी प्रसन्नताको, रूक्ष होनेसे ओजकी स्निग्धताको, व्यवायि होनेसे ओजकी स्थिरताको, विकाशी होनेसे ओजके सूक्ष्म गुणको, विशद होनेसे ओजकी पिच्छिलताको और सूक्ष्म होनेसे ओजके सान्द्र गुणको नष्ट करैहै,इसप्रकार मद्य अपने दश गुणोंसे ओजके दश गुणोंको क्षोभित करतीहै, इसीप्रकार मद्य अपने गुणोंसे ओजके गुणोको, चित्तको और चित्तके रहनेके स्थानको तत्काल क्षोभित करके मद (मस्तपने) को उत्पन्न करैहै, मद्यके गुण हृदयमें प्राप्त होकर हर्ष, तृषा, रतिसुख और प्रकृतिके अनुसार मोहसे निद्रापर्यत रजोगुणके तथा तमोगुणके विचित्र विकार उत्पन्न होतेहैं, ये मद्यका स्वरूप अर्थात् लक्षण हैं । जो लोक मद्यसे मदके सुखको चाहते हैं वही मद्यको युक्तिपूर्वक पिये, क्योंकि मद्य युक्तिपूर्वक पीनेसे तत्काल हर्ष, ओज, बल, पुष्टि, आरोग्यता और पुरुषत्वको उत्पन्न करैहै । युक्तिसे सेवन कीहुई मदिरा रुचि उत्पन्न करैहै, अग्निको दीपन करैहै, हृदयको प्रिय, स्वर और वर्णको शुद्ध करनेवाली, तृप्तिकारक, धातुओंको पुष्ट करनेवाली, बलको बढानेवाली, भय, शोक और श्रमको हरनेवाली जिन मनुष्योंको निद्रा न आती हो उनके निद्रा लानेवाली, गूगे मनुष्योंकी वाणीको शुद्ध करनेवाली, अत्यत निद्राको नष्ट करनेवाली, मलबधवाले रोगियोंके मलबधको तोडनेवाली, वध, बधन क्लेशादि दुःखोंके बोधनको हरनेवाली युक्तिपूर्वक पी हुई मदिरा वृद्ध मनुष्योंको भी स्वाभाविक रीतिसे परमानन्द उत्पन्न करनेवाली है, अनेक प्रकारके दुःखोंसे पीडित, घावयुक्त और विविध प्रकारके क्लेशोंसे फँसे हुए शोकसे, व्याकुल प्राणियोंको मद्य जगत्में विश्राम रूप है । मद तीन प्रकारका होताहै, तहा एक तो अधिक सतोगुणवाले पुरुषोंको होताहै, दूसरे प्रकारका मद अधिक रजोगुणवाले मनुष्योको होताहै, और तीसरे प्रकारका मद अधिक तमोगुणवाले प्राणियोंको होताहै, जैसे कि, चरकमें लिखा है जिसप्रकार सुवर्णकी उत्तमता, मध्यमता और अधमता अग्नि तपानेसे प्रकट करदेती है उसीप्रकार मद्य, मनुष्योंकी

उत्तम अधम और मध्यम प्रकृतिको प्रकट करनेवाली है ॥ २१-३४ ॥

अथ सात्त्विकमदलक्षणम् ।

बुद्धिस्मृतिप्रीतिकरः सुखश्च पानान्ननिद्रारतिवर्द्धनश्च ॥ सम्पाठगीतस्वरवर्द्धनश्च प्रोक्तोऽतिरम्यः प्रथमो मदो हि ॥ ३५ ॥

प्रीतिः परेण मैत्री । सुखः सुखयतीति सुखः सुखकर इत्यर्थः । पानादित्यादि पानादेषु अनुषङ्गवर्द्धनः अतिरम्यः मनोविकारित्वेऽपि न दुःखकरः । प्रथमगुणविकारित्वात् प्रथमः । एवं द्वितीयं तृतीयं च ॥

पहिले प्रकारका मद जो कि, सत्त्वगुणनामक पहिले गुणका विकार रूप है यह मद—बुद्धि, स्मरणशक्ति और प्रीतिको उत्पन्न करैहै, सुखको करैहै, अन्नमे, पानमे, तथा निद्रामे रुचिको बढानेवालाहै, गीत, वादित्र और पढनेमें स्वरको शुद्ध करनेवाला है और मनको विकृत करनेपर भी दुःखदायक नही. होता, यह मद पहिले गुणका विकार रूप होनेसे पहिले गिनाजाताहै । इसीप्रकार जो दूसरा (रजो गुणका) विकार रूप है वह दूसरा और जो तीसरे गुणका (तमोगुण) विकार रूप है वह तीसरा मद जानना ॥ ३५ ॥

अथ राजसमदलक्षणम् ।

अव्यक्तबुद्धिस्मृतिवाग्विचेष्टः सोन्मत्तलीलाकृतिरप्रशान्तः ॥ आलस्यनिद्राभिहतो मुहुश्च मध्येन मत्तः पुरुषो मदेन ॥३६॥

अव्यक्तेत्यत्र ईषदर्थे नञ् । विचेष्टः विरुद्धचेष्टः । उन्मत्तस्य लीलाकृतिभ्यां सहितः ।

राजस मदसे मत्त हुआ पुरुष विरुद्ध चेष्टा करताहै, उन्मत्तकी समान लीला करताहै, उन्मत्तकी आकृति समान आकृति करलेताहै, वारवार आलस्यसे और वारंवार निद्रासे मूर्च्छित होजाताहै और उस मनुष्यकी बुद्धि, स्मृति और वचन यथार्थ स्पष्ट नही रहतेहैं ॥ ३६ ॥

अथ तामसमदलक्षणम् ।

गच्छेदगम्यां न गुरूंश्च मन्येत्खादेदभक्ष्याणि च नष्टसंज्ञः ॥ ब्रूयाच्च गुह्यानि हृदि स्थितानि मदे तृतीये पुरुषोऽस्वतन्त्रः ३७॥

मन्येदिति परस्मैपदमार्षत्वात् ।अस्वतन्त्रः मदपरवशः ॥

तीसरे (तमोगुण) प्रकारके मदसे मत्त हुआ मनुष्य मदके परवश होजाताहै, अगम्या स्त्रियोमे गमन करने लगताहै, माता पिता आदि गुरुजनोको कुछ नहीं समझता, अभक्ष्य पदार्थोंको भक्षण करने लगताहै, सज्ञा जाती रहती है अर्थात् ज्ञान रहित होजाताहै और हृदयमें स्थित छिपी हुई गुप्त बातोको कहने लगताहै ॥ ३७ ॥

यद्यपि मदस्त्रिविधोऽस्ति तथापि सुश्रुतेनाऽतितामसनामा चतुर्थोऽन्यो मतस्तल्लक्षणमाह ।

चतुर्थे तु मदे मूढो भग्नदार्विव निष्क्रियः॥ कार्याकार्यविभागज्ञो मृतादपि परो मृतः ॥ ३८ ॥

मूढो मोहयुक्तः ॥

को मदं तादृशं गच्छेदुन्मादमिव चापरम्॥ बहुदोषमिवामूढः कान्तारं स्ववशः कृती३९

अमूढः विचारबहुलः ।

चौथे प्रकारके मदमे मनुष्य मोह (वेहोश) युक्त होजाताहै, टूटी लकडीकी समान क्रिया रहित मृतकसे भी अधिक मृतक होजाताहै, और उस मनुष्यको कार्य अकार्यकी कुछ भी सुधि बुधि नहीं रहती, इस चौथे प्रकारके उन्मादकी समान मदको कौन विचारशील, स्वतंत्र और विचक्षण पुरुष प्राप्त होताहै अर्थात् कोई भी प्राप्त नहीं होता, जिसप्रकार विचारशील, स्वतंत्र और विचक्षण पुरुष निर्जनवनमें नही गमन करते उसी प्रकार इस चौथे मदको कोई पुरुष सेवन नहीं करते ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अथ केषां मदाधिक्यं केषां च मदाल्पत्वं भवतीत्याह।

नातिमाद्यन्ति बलिनः कृताहारा महाशनाः॥ स्निग्धाः सत्त्ववयोयुक्ता मद्यनित्यास्तदन्वयाः॥ ४०॥ मेदःकफाधिका मंदवातपित्ता दृढाग्नयः॥ विपर्ययेऽतिमाद्यंति विष्टब्धाः कुपिताश्च ये॥ मद्येन चाम्लरूक्षेण साजीर्णे बहुनापि च॥ ४१॥

बलवान्, जो आहार कर चुका हो, बहुत भोजन करनेवाला हो, स्निग्ध, वीर्ययुक्त, युवाअवस्थावाला, नित्य मद्य पीनेवाला, जिसके कुलमें परम्परासे मद्य पीतेहैं, जिसके शरीरमें मेद और कफ अधिक है, वात और पित्तकी मन्दता है और दृढ अग्निवाले पुरुषोंको मद अत्यन्त नहीं चढताहै और जो इससे विपरीत गुणोंवाले हैं, तथा मलबद्धवाले और क्रोधी मनुष्योंका मद अधिक चढता है खट्टा और रूक्ष मद पीनेसे अजीर्णमें मद पीनेसे और अधिक मद पिया जाय तो भी अत्यत मद चढताहै॥ ४०॥ ४१॥

अथ मदात्ययनिदानम्।

विषस्य ये गुणा दृष्टाः सन्निपातप्रकोपनाः॥ त एव मद्ये दृश्यन्ते विषे तु बलवत्तराः॥ ४२॥ तस्मादविधिपीतेन तथा मात्राधिकेन च॥ युक्तेन चाहितैरन्नैरकाले सेवितेन च॥ मद्येन खलु जायन्ते मदात्ययमुखा गदाः॥ ४३॥

तीनों दोषोंको कुपित करनेवाले जो गुण विषमें देखनेमें आतेहैं वही गुण मद्यमें भी देखनेमें आतेहैं, परन्तु विषके गुण मद्यके गुणोंसे बलवान् हैं, मद्यमें विषके गुणोंसे हीन शक्तिवाले गुण हैं, इसलिये विधि रहित पिया हुआ, अधिक पिया हुआ, अहितकारक अन्नोंके साथ पिया हुआ और अयोग्य समय सेवन किया हुआ मद्य मदात्यय आदि रोगोंको उत्पन्न करताहै॥ ४२॥ ॥ ४३॥

अथ विधिमन्तरासेवितमद्यमन्यविकारोत्पादकमित्याह।

निर्भुक्तमेकान्तत एव मद्यं निषेव्यमाणं मनुजेन नित्यम्॥ उत्पादयेत्कष्टतमान्विकारानुत्पादयेच्चापि शरीरभेदम्॥ ४४॥ एकान्ततो नैरन्तर्येण। विकारान् मदात्ययादीन्। शरीरस्य भेदं नाशम्॥

विना अन्नके पिया हुआ मद्य अथवा जो मनुष्य निरतर बारबार मद्य पिये तो मद्य महादुःखदायक मदात्यय आदि विकारोंको उत्पन्न करैहै और शरीरका भी नाश करैहै॥ ४४॥

अथ मदात्ययादिविकारान्यहेतुः।

क्रुद्धेन भीतेन पिपासितेन शोकाभितप्तेन बुभुक्षितेन॥ व्यायामभाराध्वपरिक्षतेन वेगावरोधाभिहतेन चापि॥ ४५॥ अत्यम्लरूक्षावततोदरेण साजीर्णभुक्तेन तथाऽबलेन॥ उष्णाभितप्तेन च सेव्यमानं करोति मद्यं विविधान्विकारान्॥ ४६॥

क्रोधको प्राप्त हुआ, भयभीत, तृषासे व्याकुल, शोकसे संतापित, क्षुधासे पीडित, दंड, कसरतके करनेसे और बोझके ढोनेसे तथा अधिक मार्गके चलनेसे थका हुआ, मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे पीडित, अत्यन्त खट्टे और रूखे पदार्थोंके खानेसे जिसका उदर भर रहा हो, अजीर्णमें भोजन करनेवाला, निर्बल और उष्णतासे संतापित ऐसे मनुष्योंका सेवन किया हुआ मद्य अनेक प्रकारके विकारोंको उत्पन्न करैहै॥ ४५॥ ४६॥

अथ मद्योत्पन्नविकाराः।

पानात्ययं परमदं पानाजीर्णमथापि च॥ पानविभ्रममत्युग्रं तेषां वक्ष्यामि लक्षणम्॥ ४७॥

मद्यसे मदात्यय, परमद, पानाजीर्ण और अत्यन्त उग्र पानविभ्रम यह विकार उत्पन्न होतेहैं, अब इनके लक्षण कहतेहैं॥ ४७॥

अथ मदात्ययसामान्यलक्षणम्।

शरीरदुःखं बलवत्प्रमोहो हृदयव्यथा ॥ अरुचिः सततं तृष्णा ज्वरः शीतोष्णलक्षणः ॥ ४८ ॥ शिरःपार्श्वास्थिसन्धीनां वेदना विक्षते यथा ॥ जायतेऽतिबला जृम्भा स्फुरणं वेपनं श्रमः ॥ ४९ ॥ उरोविबन्धः कासश्च हिक्का श्वासः प्रजागरः ॥ शरीरकम्पः कर्णाक्षिमुखरोगास्त्रिकग्रहः ॥ ५० ॥ छर्दिविड्भेद उत्क्लेशो वातपित्तकफात्मकः ॥ भ्रमः प्रलापो रूपाणामसताञ्चैव दर्शनम् ॥ ॥ ५१ ॥ तृणभस्मलतापर्णपांशुभिश्चावपूरणम् ॥ प्रधर्षणं विहङ्गैश्च भ्रान्तचेताः स मन्यते ॥ ५२ ॥ व्याकुलानामशस्तानां स्वप्नानां दर्शनानि च ॥ मदात्ययस्य रूपाणि सर्वाण्येतानि लक्षयेत् ॥ ५३ ॥

जिसके मदात्यय हुआ हो उस मनुष्यके शरीरमे अत्यंत दुःख होताहै, बलवान् मोह, हृदयमें व्यथा (पीडा), अरुचि, निरतर तृषाका लगना, शीतल और उष्ण ज्वरका होना, शिर, पसली और हड्डीकी संधियोंमे पके फोडेकी समान वेदना, जम्भाइयोंका अधिक आना, अंगोंका स्फुरण होना, अर्थात् फडकना, कम्प, श्रम, छातीका जकडना, खाँसी, हिचकी, श्वास और जागरण हो, कान, नेत्र और मुखमे रोग हो, त्रिक स्थानमे पीडा, वमन, विरेचन, वात, पित्त और कफका उत्क्लेद होना, भ्रम और प्रलाप होना तथा बुरे रूपोंका देखना, भ्रमयुक्त चित्तवाला यह मनुष्य अपने शरीरपर तृण, भस्म, बेल, और पत्ते उड उडकर गिरते देखै, चहूँओरसे पक्षी उडे चले आतेहैं ऐसा प्रतीत हो, व्याकुल और अमंगल (अशुभ) रूप स्वप्न देखै, यह सब लक्षण जिसके होयँ उसको मदात्यययुक्त जानना ॥ ४८–५३ ॥

अथ वातजमदात्ययनिदानम्।

स्त्रीशोकभयभाराध्वकर्मभिर्योऽतिकर्षितः ॥ ५४ ॥ रूक्षाल्पप्रमिताशी च यः पिबत्यतिमात्रया ॥ रूक्षं परिणतं मद्यं निशि निद्रां निहत्य च ॥ करोति तस्य तच्छीघ्रं वातप्रायं मदात्ययम् ॥ ५५ ॥ तन्मद्यम् ॥

मैथुन, शोक, भय, भार, पंथा और श्रम आदि कर्मोंके करनेसे जो मनुष्य कृश होगयेहैं, तथा रूक्ष अल्प और बहुत थोडे भोजन करनेवाले ऐसे मनुष्य जो रूक्ष मद्यको अत्यन्त पीतेहैं तो उनके वह मद्य पेटमे परिणामको प्राप्त होकर रात्रिकी निद्राको नष्ट करके तत्काल वायुसम्बन्धी मदात्ययको उत्पन्न करैहै ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

अथ वातजमदात्ययलक्षणम्।

हिक्काश्वासशिरःकम्पपार्श्वशूलप्रजागरैः ॥ विद्याद्बहुप्रलापस्य वातप्रायं मदात्ययम् ५६

हिचकी, श्वास, शिरका कांपना, पसलियोंमें पीडा, जागरण और प्रलाप (बकवाद) सब लक्षण वातके मदात्ययमें होतेहैं ॥ ५६ ॥

अथ पित्तजमदात्ययनिदानम्।

तीक्ष्णोष्णमद्यमम्लं च योऽतिमात्रं निषेवते ॥ अम्लोष्णतीक्ष्णभोजी च क्रोधनो ज्ञानवान्नरः ॥ तस्योपजायते तीव्रः पित्तप्रायो मदात्ययः ॥ ५७ ॥

खट्टे, गरम और तीक्ष्ण पदार्थोंको भोजन करनेवाला क्रोधी और अज्ञानी मनुष्य तीक्ष्ण, उष्ण और अम्ल मद्यको अत्यन्त सेवन करताहै उसके तीव्र पित्तका मदात्यय उत्पन्न होताहै ॥ ५७ ॥

अथ पित्तजमदात्ययलक्षणम्।

तृष्णादाहज्वरस्वेदमोहातीसारविभ्रमैः ॥ विद्याद्धरितवर्णस्य पित्तप्रायं मदात्ययम् ५८

तृषा, दाह, ज्वर, पसीना, मोह, अतीसार, विभ्रम और शरीरके रंगका हरा होना ये सब लक्षण पित्तके मदात्ययमें होतेहैं ॥ ५८ ॥

अथ कफजमदात्ययनिदानम्।

मधुरस्निग्धगुर्वाशी यः पिबत्यतिमात्रया ॥ अव्यायामदिवास्वप्नशय्यासनसुखे रतः ॥ मदात्ययं कफप्रायं स नरो लभते ध्रुवम् ५९ ॥

· कसरत अर्थात् परिश्रम नहीं करनेवाला, दिनमें सोनेवाला, नित्य शय्यापर बैठा रहनेवाला अथवा गद्दे तकिये लगाकर लेटे रहनेवाला तथा मधुर, स्निग्ध और भारी भोजन करनेवाला मनुष्य जो अत्यन्त मद्य पीता है उस मनुष्यके अत्यन्त कफका मदात्यय उत्पन्न होताहै ॥५९॥

अथ कफजमदात्ययलक्षणम् ।

छर्द्यरोचकहृल्लासतन्द्रास्तैमित्यगौरवैः ॥ विद्याच्छीतपरीतस्य कफप्रायं मदात्ययम् ॥ ६० ॥

वमन, अरुचि, उबकाई, तन्द्रा, शरीर भीजे वस्त्रसे ढकासा मालूम होवे और भारीपन रहै और शीत लगै ये सब लक्षण कफके मदात्ययमे होतेहैं ॥ ६० ॥

अथ सान्निपातिकमदात्ययनिदानलक्षणे ।

त्रिदोषो हेतुभिः सर्वैः सर्वैर्लिङ्गैर्मदात्ययः।

उपरोक्त सपूर्ण कारणोंसे उत्पन्न हुआ और सम्पूर्ण लक्षणोंवाला जो मदात्यय होताहै उसको त्रिदोषज कहतेहैं।

अथ परमदलक्षणम् ।

श्लेष्मक्षयोऽङ्गगुरुता विरसास्यता च विण्मूत्रसक्तिरथ तन्द्रिररोचकश्च ॥ लिङ्गं परस्य तु मदस्य वदन्ति तज्ज्ञास्तृष्णा रुजा शिरसि सन्धिषु चापि भेदः ॥ ६१ ॥

कफका क्षय, अगोंमे भारीपन, मुखमे विरसता, मल और मूत्रका अवरोध, तन्द्रा अरुचि, तृषा, मस्तकमें दर्द और सन्धियोंमे अर्थात् जोडोंमें तोडने सरीखी पीडा, ये, सब पर मदके लक्षण जानने,ऐसा विद्वान् वैद्य कहतेहैं ६१

अथ पानाजीर्णलक्षणम् ।

आध्मानमुग्रमथ वोद्गिरणं विदाहः पानेत्वजीर्णमुपगच्छति लक्षणानि ॥ ज्ञेयानि तत्र भिषजा सुविनिश्चितानि पित्तप्रकोपजनितानि च कारणानि ॥ ६२ ॥

उद्गिरणं वान्तिरुद्गारो वा । पीयत इति पानं मद्यम् ॥

मद्यके अजीर्णमें उग्र अफारा होताहै अथवा वमन होतीहै, अथवा डकार अधिक आतीहैं, दाह होताहै और पित्तके प्रकोपसे जो लक्षण होतेहैं वह सब लक्षण देखनेमें आतेहैं, इसको वैद्य पानाजीर्ण कहतेहैं ॥६२॥

अथ पानविभ्रमलक्षणम्

हृद्गात्रतोदकफसंस्रवकण्ठधूममूर्च्छावमीमदशिरोरुजनप्रदेहाः ॥ द्वेषः सुरान्नविकृतेषु च तेषु तेषु तं पानविभ्रममुशन्त्यखिलेषु धीराः ॥ ६३ ॥

कण्ठधूमः कण्ठाद्धूमनिर्गम इव । प्रदेहः कफेन लिप्तास्यता । द्वेषः सुरान्नविकृतेषु च तेषु सुराविकारेषु अन्नविकारेषु च द्वेषः । अखिलेषु मद्यविकारेषु ॥

हृदयमें तथा गात्रो (देह) मे सुई चुभानेकी सी व्यथा होय, कफका स्राव, कण्ठमेसे धुँआँसा निकलता प्रतीत हो, मूर्च्छा आवै,वमन मद और शिरमें पीडा होती हो, मुख कफसे लिसासा हो, सर्व प्रकारकी मदिरापर और सब प्रकारके अन्नके ऊपर द्वेष उत्पन्न होय तो जानना कि, मद्यके विकारोंमें 'पानविभ्रम' विकार उत्पन्न हुआ है ऐसा प्राचीन धन्वन्तरि वैद्य कहतेहैं ॥ ६३ ॥

अथ मदात्ययाद्यसाध्यलक्षणम् ।

हीनोत्तरौष्ठमतिशीतममन्ददाहं तैलप्रभास्यमतिपानहतं त्यजेच्च ॥ जिह्वौष्ठदन्तमसितन्त्वथ वापि नीलं पीते च यस्य नयने रुधिरप्रभे च ॥ ६४ ॥ हिक्काज्वरो वमथुवेपथुपार्श्वशूलाः कासभ्रमावपि च पानहतं त्यजेत्तम् ॥ ६५ ॥

अत्यन्त मद्यपान करनेसे जिस मनुष्यका ऊपरका होठ ऊपरको सुकड गया हो, शीत अत्यन्त हो, मुख तेलकी समान वर्णवाला हो जाय, ऐसे मनुष्यकी वैद्य चिकित्सा नहीं करे । मद्यपानसे मूर्च्छितहुए मनुष्यके जो जीभ, होंठ, तथा दात काले अथवा नीले, नेत्र पीले अथवा लाल रगके

होगये हो और हिचकी, ज्वर, वमन, कप पसलियोंमे शूल, खाँसी तथा भ्रम होय तो उस मनुष्यकी वैद्य चिकित्सा नहीं करे ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

अथ मदात्ययादिविकार-चिकित्सा ।

मद्योत्थानाश्च रोगाणां मद्यमेव हि भेषजम् ॥ यथा दहनदग्धानां दहनं स्वेदनं हितम् ॥ ६६ ॥ मिथ्यातिहीनमद्येन यो व्याधिरुपजायते ॥ समेनैव निपीतेन मद्येन स हि शाम्यति ॥ ६७ ॥ बीजपूरकवृक्षाम्लकोलदाडिमसंयुतम् ॥ यवानीहपुषाजाजीशृङ्गवेरावचूर्णितम् ॥ ॥ ६८ ॥ सस्नेहैः सक्तुभिर्युक्तमुपदंशैश्चिरोत्थितम् ॥ दद्यात्सलवणं मद्यं वातपैत्तिकशान्तये ॥ ६९ ॥ मद्यं सौवर्चलव्योषयुक्तं किञ्चिज्जलान्वितम् ॥ जीर्णमद्याय दातव्यं वातपानात्ययापहम् ॥ ॥ ७० ॥ चव्यं सौवर्चलं हिंगु पूरकं विश्वदीप्यकम् ॥ चूर्णं मद्येन पातव्यं पानात्ययरुजापहम् ॥ ७१ ॥ लावतित्तिरदक्षाणां रसैश्च शिखिनामपि ॥ पक्षिणां मृगमत्स्यानामानूपानां तथौदनैः ॥ ७२ ॥ स्निग्धोष्णलवणाम्लैश्च वेशवारैर्मुखप्रियैः ॥ स्निग्धैर्गोधूमकैरन्नैर्वातप्रायं मदात्ययम् ॥ ७३ ॥ नारीणां यौवनोष्माणां निर्दयैरुपगूहनैः ॥ श्रोण्यूरुकुचभारैश्च संरोधोष्णसुखप्रदैः॥ ७४ ॥ शयनाच्छादनैरुष्णैश्चान्तर्गेहैः सुखप्रदैः ॥ मारुतैः प्रबलैः शीघ्रं प्रशाम्यति मदात्ययः ॥ ७५ ॥ पित्तपानात्यये योज्याः सर्वतश्च क्रिया हिमाः ॥ सितामाक्षिकसंयुक्तं मद्यमर्द्धोदकं पिबेत् ॥ ७६ ॥ मद्यं खर्जूरमृद्वीकापरूषकरसैर्युतम् ॥ सदाडिमरसं शीतं सक्तुभिश्चावचूर्णितम् ॥ ७७ ॥ सशर्करं वा माध्वीकं संयुक्तमथ वा परम् ॥ दद्याद्बहूदकं काले पातुं पित्तमदात्यये ॥ ७८ ॥ शशान्कपिञ्जलानेणाल्लँावानसितपुच्छकान् ॥ मधुराम्लान्प्रयुञ्जीत भोजने शालिषष्टिकान् ॥ ७९ ॥ पटोलयवमिश्रं वा छागलं कल्पयेद्रसम् ॥ सतीनमुद्गमिश्रं वा दाडिमामलकान्वितम् ॥ ८० ॥ द्राक्षामलकखर्जूरपरूषकरसेन च ॥कल्पयेत्तर्पणान्यूषान्रसांश्च विविधात्मिकान् ॥ ॥ ८१ ॥ शीतानि चान्नपानानि शीतशय्यासनानि च ॥ शीतवातजलस्पर्शाः शीतान्युपवनानि च ॥ ८२ ॥ क्षौमपद्मोत्पलानाश्च मणीनां मौक्तिकस्य च ॥ चन्दनोदकशीतानां स्पर्शाश्चन्द्रांशुशीतलाः ॥ ८३ ॥ रूक्षतर्पणसंयुक्तं यवानीव्योषसंयुतम् ॥ यवगोधूमकश्चान्नं रूक्षयूषेण भोजयेत् ॥ ८४ ॥ कुलत्थकानां शुष्काणां मूलकानां रसेन वा ॥ प्रभूतकटुसंयुक्तं यवान्नं वा प्रदापयेत् ॥ ॥ ८५ ॥ छागमांसरसं रूक्षमम्लं वा जांगलं रसम् ॥ व्योषयूषमनागम्लं पिबेत्कफमदात्यये ॥ ८६ ॥ स्थाल्यामथ कपाले वा भृष्टं कृत्वा तु नीरसम् ॥ कटूम्ललवणं मांसं खादेत्कफमदात्यये ॥ ॥ ८७ ॥ वामकद्रव्ययुक्तेन मद्येनोल्लेखनं मतम् ॥ मदात्यये कफोद्भूते लंघनञ्च यथाबलम् ॥ ८८ ॥ यदिदं कर्म्म निर्दिष्टं वातपित्तकफान्प्रति ॥ सर्वजे सर्वमेवेदं प्रयोक्तव्यं चिकित्सकैः ॥ ८९ ॥

जिस प्रकार अग्निसे जलेहुएको दाहन और स्वेदन हितकारी है उसी प्रकार मद्यसे उत्पन्न हुए रोगोको मद्य ही औषधि है । मद्यके मिथ्या योगसे वा अत्यन्त योगसे और हीन योगसे जो रोग उत्पन्न होय वे रोग समयोगवाले मद्य पीनेसे ही शात होतेहैं ।

वातसे तथा पित्तसे उत्पन्न हुए मदात्यय रोगको शमन करनेके लिये पुरानी मद्यमें नमक डालकर तथा बिजौरा नींबू, अमलवेत, वेर, अनार, अजवायन, हाऊवेर, जीरा और सोंठ इनका चूर्ण डालकर स्नेह युक्त सत्तुओंके साथ और मसालेके साथ रोगीको पीनेको देवे।

प्रथम पिया हुआ मद्य जीर्ण होनेपर काला नमक, सोंठ, मिरच और पीपल इनके साथ तथा जलके साथ मद्य देवे तो वातज मदात्यय नष्ट होजाता है।

चव्य, काला नमक, भूनी हींग, बिजौरा, सोंठ और अजवायन इनका चूर्ण करके मद्यके साथ पीनेसे मदात्यय रोग दूर होजाताहै।

लवा, तीतर, मुरगा, मोर, जलप्रायदेशमें रहनेवाले मृग और मछली इनके मासके रससे संयुक्त भात, स्निग्ध, उष्ण, खारी, खट्टे और मुखको प्रिय लगे ऐसे अचार मसालेके साथ और स्निग्धतायुक्त गेहूँके भोजनेसे वातका मदात्यय शात होताहै।

जिन युवतियोंके शरीरमें जौवनकी छटा छिटक रही हो उनके निर्दय आलिंगनसे, नितंब, जंघा और कुच इनके भारसे तथा प्यारसे और दवानेसे, जो गरमीका सुख होताहै उससे, गरम शयन शय्या, गद्दी आदिके सुखसे, गरम आच्छादनोंसे और सुखदायक मन्दिरोंके भीतरके भवनोंमें रहनेसे वातकी प्रबलतावाला मदात्यय शात होताहै।

पित्तके मदात्ययमें सम्पूर्ण शीतल क्रिया प्रयोग करनी चाहिये। मद्यमें आधा पानी डालकर मिश्री और सहत मिलाकर पीनेसे पित्तज मदात्यय नष्ट होजाता है।

खजूर, दाख, फालसे, अनार इनके रसके साथ, मिश्री तथा सत्तू डालकर शीतल गुणवाली माध्वीक मद्य अथवा इनसे संयुक्त की हुई दूसरे प्रकारकी मद्य उसमें बहुतसा पानी मिलाकर समयपर पिये तो पित्तका मदात्यय नष्ट होजाताहै।

पित्तके मदात्ययमें खरगोश, तीतर, एणमृग, लवा, तथा कालपुच्छ मृग इनका मास देना चाहिये, मीठे तथा खट्टे पदार्थ, शालिचावल और साटीके चावल देने चाहिये, परवलके यूषसे अथवा मटर सहित मृगके यूषके साथ अथवा अनारके और आमलेके रसके साथ बकरेके मासका रस उपयोगी है। पित्तके मदात्ययमें तृप्तिकारक द्रव्योंकी, अलग अलग प्रकारके रसोंकी, शीतल अन्न पानोंकी, शीतल शय्याकी, शीतल आसनोंकी शीतल पवनकी, शीतल जलके स्पर्शकी, शीतल उपवनोंकी और चन्द्रमाकी किरणोंकी योजना करनी चाहिये।

कफसम्बन्धी मदात्ययमें रूक्ष, तर्पण (तृप्ति करनेवाले पदार्थ) तथा अजवायन, सोंठ, मिरच और पीपल इनके साथ जौ तथा गेहूका भोजन रूक्ष यूषोंके साथ भक्षण करना चाहिये, अथवा कुलथीके और सूखी मूलीके रसके साथ अथवा तीखे पदार्थोंके साथ जौका भोजन करना चाहिये।

कफके मदात्ययमे रूक्ष द्रव्योंके साथ बकरेके मासका रस, अथवा अम्ल किये हुए जागलदेशके जीवोंका मांस रस, अथवा कुछ खटाई डालकर सोंठ, मिरच, तथा पीपलका यूष पिलावै।

मासको हॅडीमें अथवा खीवटेमें सूखा भूनकर उसमें तीखे खट्टे और खारी पदार्थ मिलाकर खाय तो कफका मदात्यय दूर होजाताहै।

कफके मदात्ययमें वमनकारक औषधियोंसे संयुक्त मद्य पिलाकर कफको निकालना चाहिये तथा शक्त्यनुसार लंघन कराने चाहिये।

सान्निपातिक मदात्ययमे वातज, पित्तज और कफज मदात्ययकी जो अलग चिकित्सा कही हैं वे सब चिकित्सा वैद्य इसमें करे॥ ६६–८९॥

अथ प्रसंगप्राप्तकोद्रवादिमदचिकित्सा।

सगुडः कूष्माण्डरसः शमयति मदमाशु कोद्रवजम्॥ धत्तूरजश्च दुग्धं सशर्कर-श्चाशु पानेन॥ ९०॥ सच्छर्दिमूर्च्छातीसारं मदं पूगफलोद्भवम्॥ सद्यः प्रशमयेत्पीतमात्रस्तेवारि शीतलम्॥ ९१॥ वन्यकरीषघ्राणाज्जलपानाल्लवणभक्षणादपि च॥ शाम्यति पूगफलोद्भवमदः सशूलः शर्कराकवलात्॥ ९२॥ तत्क्षणान्मृदितं चूर्णं समाघ्रातं प्रणाशयेत्॥ ताम्बूलोत्थं मदं पुंसामेकमेव स्वभावतः॥ ९३॥ जातीफलमदं शीघ्रं हन्ति पथ्या निषेविता॥ शीततोयाव-

गाहश्च शर्करा दधियोजिता ॥ विभीतमदशान्त्यर्थमेतदेव मतं पुनः ॥ ९४ ॥ मद्यं पीत्वा यदि ना तत्क्षणमवलेढि शर्करां सघृताम् ॥ जातु न मदयति मद्यं मनागपि प्रथितवीर्यमपि ॥ ९५ ॥

इति मदात्ययपरमदपानाजीर्णपानविभ्रमाधिकारः ।

कोदोंको खानेसे जो मद होय तो पेठेके रसमे गुड मिलाकर सेवन करे, इससे कोदोंका मद तत्काल शमन होजाताहै । धतूरेका मद (आमला) मिश्री मिलाकर दूधको पीनेसे नष्ट होजाताहै ।

सुपारीके खानेसे उत्पन्न हुए वमन, मूर्छा और अतिसार सहित मदको तृप्तिपूर्वक कण्ठपर्यंत पिया हुआ शीतल जल तत्काल दूर करदेताहै । सुपारीका मद अन्ने उपलोको सूघनेसे, जलको पीनेसे और नमक खानेसे भी दूर होजाताहै । सुपारीका मद शूलसहित होय तो खॉडयुक्त कवल धारण करे इससे तत्काल शांत होजाताहै ।

पानका मद तत्काल चूनेको हार्थोसे मलकर सूँघनेसे शांत होजाताहै । जायफलका मद हरडके खानेसे, शीतल जलमे प्रवेश करनेसे, अथवा खांडके साथ दही खानेसे शात होजाता है । बहेडेका मद भी दहीमे बूरा मिलाकर खानेसे शात होजाताहै ।

मनुष्य यदि मद्य पीकर तत्काल घीमे मिलाकर बूरा खाय तो प्रबल पराक्रमवाला भी मद किंचित् भी नशा नहीं करता ॥ ९०–९५ ॥

इति मदात्यय–परमद–पानाजीर्ण–पान-
विभ्रमाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ दाहाधिकारः ।

तत्र प्रथमं पित्तदाहः ।

पित्तज्वरसमः पित्तदाहः स्यात्तस्य संक्रमः ॥ १ ॥

दाह उष्मात्मको व्याधिः पित्तज्वरसमानः पित्तज्वरलक्षणयुक्तः पित्तज्वरे तु आमाशयदुष्टात् दाहो ज्वराधिक इति भेदः । तस्य दाहस्य पित्तज्वरोक्तः क्रमः चिकित्सा ॥

दाहरोग सात प्रकारका है, तहां सबसे पहिले पित्तके दाहको कहतेहैं, दाह गरमीरूप व्याधि है, इसमे पित्तज्वरके लक्षण होतेहैं इस कारण जो पित्तज्वरकी चिकित्सा कही है वही चिकित्सा दाहकी करनीचाहिये, पित्तज्वरमें आमाशयके दुष्ट होनेसे दाह और ज्वर यह दोनो होतेहैं और यह व्याधि तो केवल दाहरूप है, इस कारण पित्तज्वर और दाहमे भेद है ॥ १ ॥

अथ रुधिरदाहः ।

कृत्स्नदेहानुगं रक्तमुद्रिक्तं दहति ध्रुवम् ॥ सन्धूप्यते चोष्यते च ताम्राभस्ताम्रलोचनः ॥ लोहगन्धांगवदनो वह्निनेवावकीर्यते ॥ २ ॥

उद्रिक्तम् अतिरिक्तं सत् दहति दाहाख्यं व्याधिं करोति । सन्धूप्यते अग्निना दह्यत इव । उष्यते समीपस्थेनैव वह्निना ताप्यते चूष्यत इति पाठान्तरे आचूषणेनेव पीडामनुभवति इत्यर्थः । वह्निनेव अवकीर्यते शरीरोपरि वह्निः प्रक्षिप्यत इव ॥

सम्पूर्ण शरीरमे रहनेवाला रुधिर सो अत्यत वृद्धिको प्राप्त और कुपित होकर दाह नामवाली व्याधिको उत्पन्न करताहै, इसमे रोगीको सब ससार अग्निसे जलते हुएकी समान प्रतीत होताहै, अथवा समीपमे रक्खी हुई अग्निसे सब शरीर तपता हुआ मालूम होताहै, शरीरमें चूसने सरीखी पीडा होतीहै, शरीरपर अग्नि डालनेकी समान वेदना होतीहै, इस मनुष्यका शरीर, नेत्र, लालवर्ण होजातेहैं शरीरमेंसे तथा मुखमेसे तत्ते लोहेपर जल डालनेके समान गध आनेलगताहै ॥ २ ॥

अथ रक्तपूर्णकोष्ठजदाहः ।

असृजा पूर्णकोष्ठस्य दाहोन्यः स्यात्सुदुस्तरः ॥ ३ ॥

असृजा शस्त्रादिक्षतात् निस्सृतरक्तेन ॥

शस्त्र आदिके लगनेसे घाव जो होजाताहै, उस घावमेंसे निकलेहुए रुधिरसे जिस मनुष्यका कोठा भर जाताहै उसके जो महादुस्तर दाह उत्पन्न होताहै वह तीसरे प्रकारका दाह गिनाजाताहै ॥ ३ ॥

अथ मद्यदाहः ।

त्वचं प्राप्तः स पानोष्मा पित्तरक्ताभिमूर्च्छितः ॥ दाहं प्रकुरुते घोरं पित्तवत्तत्र भेषजम् ॥ ४ ॥

स पानोष्मा मद्यपानजनित ऊष्मा पित्तरक्ताभिमूर्च्छितः पित्तरक्ताभ्यां वर्द्धितः ॥

मद्यपानके करनेसे त्वचा (चमडी) मे प्राप्तहुई और पित्त तथा रुधिरसे बढीहुई भयकर दाहको उत्पन्न करती-है, इसमे पित्तकी समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥४॥

अथ तृष्णानिरोधजदाहः ।

तृष्णानिरोधादब्धातौ क्षीणे तेजः समुद्धतम् ॥ ५ ॥ स बाह्याभ्यन्तरं देहं प्रदहेन्मन्दचेतसः ॥ संशुष्कगलताल्वोष्ठो जिह्वां निष्कास्य वेपते ॥ ६ ॥

अब्धातौ रसे क्षीणे क्षयं प्राप्ते । तेजः समुद्धतं वृद्धम्, मन्दचेतसः अल्पबुद्धेः यतस्तेन तृषानिरोधः कृतः ॥

जो मनुष्य अपनी मूर्खतासे तृषा (प्यास) को रोकता है उसके तृषाके अवरोधसे शरीरकी जलमय धातु क्षीण होकर वृद्धिको प्राप्त हुआ तेज शरीरके बाहर तथा भीतर दाहको उत्पन्न करताहै और उसमें गला, तालू और होठ सूखजातेहै और वह जीभ निकालकर हॉपताहै ॥५॥६॥

अथ धातुक्षयजदाहः ।

धातुक्षयोत्थो यो दाहस्तेन मूर्च्छातृषान्वितः ॥ क्षामस्वरः क्रियाहीनः स सीदेद्भृशपीडितः ॥ ७ ॥

सीदेत् म्रियेत ॥

धातुके क्षयसे जो दाह होतीहै उससे पीडित मनुष्य मूर्च्छासे तथा तृषासे युक्त होताहै, क्रिया रहित होजाताहै, स्वर बैठजाताहै और वह मनुष्य अतमे मरजाताहै ॥ ७ ॥

अथ मर्माभिघातजदाहः ।

मर्माभिघातजोऽप्यस्ति सोऽसाध्यः सप्तमो मतः ॥

मर्माणि शिरोहृदयबस्त्यादीनि ॥

मस्तक, हृदय और मूत्राशय आदि मर्मोंके अभिघात (चोट) से जो दाह होताहै वह असाध्य है । यह सातवां दाह है ।

अथ दाहासाध्यता ।

सर्व एव च वर्ज्याः स्युः शीतगात्रस्य देहिनः ॥ ८ ॥

जिसके शरीरमे भीतर तो दाह हो और ऊपरसे शरीर शीतल हो ऐसा सब प्रकारका दाह वर्जित है ॥ ८ ॥

अथ दाहचिकित्सा ।

शतधौतघृताभ्यक्तं लेपं वा यवसक्तुभिः॥ कोलामलकयुक्तैर्वा धान्याम्लैरपि बुद्धिमान् ॥ ९ ॥

छादयेत्तस्य सर्वांगमारनालार्द्रवाससा ॥ लामज्जकेन युक्तेन चन्दनेनानुलेपयेत् ॥ चन्दनाम्बुकणास्यन्दितालवृन्तोपवीजनैः ॥ १० ॥ सुप्याद्दाहार्दितोऽम्भोजकदलीदलसंस्तरे ॥ परिषेकावगाहेषु व्यजनानाञ्च सेवने ॥ ११ ॥ शस्यते शिशिरं तोयं दाहतृष्णोपशान्तये ॥ फलिनी लोध्रसेव्याम्बु हेमपत्रं कुटन्नटम् । कालेयकरसोपेतं दाहे शस्तं प्रलेपनम् ॥ १२ ॥

फलिनी प्रियंगुः । सेव्यम् उशीरम् । अम्बु वालकं हेमपत्रं नागकेशरपत्रम्, कुटन्नटं वितुन्नकं गुडतजी इति लोके कच्चिच्चम्पावती इति नाम । कालीयकं कलम्बक इति लोके ॥

ह्रीवेरपद्मकोशीरचन्दनाम्बुजवारिणा ॥ सम्पूर्णामवगाहेत द्रोणीं दाहार्दितो नरः॥ ॥ १३ ॥ वाप्यः कमलहासिन्यो जलयन्त्रगृहाः शुभाः ॥ नार्यश्चन्दनदिग्धाङ्ग्यो दाहदैन्यहरा मताः ॥ १४ ॥ पाययेत्कमलस्याम्भः शर्कराम्भः पयोऽपि च ॥ क्षीरमिक्षुरसञ्चापि कारयेत्पित्तजिद्विधिम् ॥ १५ ॥

बुद्धिमान् वैद्य दाहवाले मनुष्यके शरीरमें घीको

सौवार धोकर मालिसकरे, अथवा जौके सत्तू और बेर तथा आमले सहित धान्याम्ल नामक कॉजीका लेपकरे दाहसे पीडित मनुष्यके शरीरको कॉजीमे भीजे हुए वस्त्रसे ढके शरीरपर लामज्जक संयुक्त चदनका प्रलेप करे।

दाहसे व्याकुल मनुष्यको कमलके पत्र और केलेके पत्तोकी शय्यापर सुलावे। चंदन मिले हुए जलके कण जिनमेसे गिरते हो ऐसे पंखोंसे पवन करे।

दाह और तृषाको शात करनेके लिये जलका सीचना वा छिडकना, जलमें घुसकर स्नान करना और शीतल जलका ही उपयोग करना चाहिये।

फूलप्रियंगू, लोध, सुगधबाला, खस नागकेसरके पत्ते केवटी मोथा और पीला चंदन इनका रस निकालकर प्रलेप करना दाहमें हितकारी है।

सुगंधवाला, पद्माख, खस, चदन और कमल इनसे सुवासित किया हुआ जल चौबच्चेमें भरदेवे उसमें दाहसे पीडित मनुष्यको बैठावे।

जिनमें सुन्दर सुन्दर रग रगके मनोहर कमल खिलरहे हैं ऐसी बावडी, जिनमे फुहारे छूटरहे हैं ऐसे भवन और सर्व अंगोंमे जिनके चंदन लगरहा है ऐसी स्त्री दाहसम्बन्धी दुःखको दूर करै है।

दाहवाले मनुष्यको कमलका जल पिलावे, खाडका सरबत पिलावे, मिश्री मिलाकर दूध पिलावे, केवल दूध ही पिलावे और ईखका रस पिलावे इत्यादि पित्तको शमन करनेवाले उपचार करने चाहिये॥ ९–१५॥

अथ चंदनादिक्वाथः।

पटीरपर्पटोशीरनीरनीरदनीरजैः॥ मृणालमिसिधान्याकपद्मकामलकैः कृतः १६॥ अर्द्धशिष्टः सिताशीतः पीतः क्षौद्रसमन्वितः॥ क्वाथो व्यपोहयेद्दाहं नृणाञ्च परमोल्वणम्॥ १७॥

पटीरं चन्दनम्॥

सफेद चदन, पित्तपापडा, सुगधबाला, खस, नागरमोथा, कमलगट्टा, कमलकी नाल, सौंफ, धनियॉ, पद्माख और आमले इनका अर्द्धावशेष क्वाथ बनावे, उसमें मिश्री और शीतल होनेपर सहत डालकर पीनेसे मनुष्योंका अत्यत उग्रदाह शात होजाता है॥ १६॥ १७॥

अथ कांजिकतैलम्।

तिलतैलं भवेत्प्रस्थं तत्षोडशगुणे शनैः॥ काञ्जिके विपचेत्तत्स्याद्दाहज्वरहरं परम् १८

इति दाहाधिकारः।

सोलह १६ भाग कॉजीमे धीरे धीरे पकाया हुआ तिलका चौसठ ६४ तोले तेल दाह और ज्वरके संतापको दूर करताहै॥ १८॥

इति दाहाधिकारः संपूर्णः।

अथोन्मादाधिकारः।

तत्रोन्मादनिरुक्तिः।

मदयन्त्युद्धता दोषा यस्मादुन्मार्गमाश्रिताः॥ मानसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्तितः॥ १॥

अयमर्थः। यस्माद्धेतोरुद्धताःप्रवृद्धाःदोषा उन्मार्गमाश्रिताः मदयन्ति चित्तं विक्षिपन्ति अस्मिन्सोऽयमुन्माद इति कीर्तितः स उन्मादः मानसो व्याधिः मनोवैकृत्यकरणात्॥

इस रोगमे वृद्धिको प्राप्त हुए दोष (वात पित्त कफ) अपने मार्गोको छोडकर अन्यमार्गोंमे आश्रित होकर चित्तको विक्षिप्त करते हैं इसलिये इसको उन्माद कहते हैं यह मनको विकृत करदेताहै अत एव यह मानसिक रोग है॥ १॥

अथावस्थाभेदेनोन्मादनामान्तरम्।

स चाप्रवृद्धस्तरुणो मदसंज्ञां बिभर्ति च२॥ स उन्मादः तरुणो नवीनः॥

यह उन्माद बढा न हो नवीन होय तो मद कहाजाता-है॥ २॥

अथोन्मादविप्रकृष्टनिदानम्।

विरुद्धदुष्टाशुचिभोजनानि प्रधर्षणं देवगुरुद्विजानाम्॥ उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वो मनोऽभिघातो विषमा च चेष्टा॥ ३॥

दुष्ट धत्तूरबीजादिसहितम् अशुचि रजस्वलास्पर्शादि। प्रधर्षणमभिभवः। विषमा चेष्टा बलवद्विग्रहादिः॥

विरुद्ध भोजन (धतूरे आदि मिश्रित भोजन), रजस्वलाआदिसे स्पर्श किया हुआ भोजन, देवता. गुरु और ब्राह्मणोंके अपमानसे, भयसे अथवा हर्षसे मनमें डरके लगनेसे एव बलवान्के साथ द्वेषादिक विरुद्ध चेष्टा करनेसे इत्यादि कारणोंसे उन्माद रोग उत्पन्न होता है ॥ ३ ॥

अथोन्मादसन्निकृष्टनिदानम् ।

एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः ॥ मानसेन च दुःखेन स पञ्चविध उच्यते ॥ विषाद्भवति षष्ठश्च यथास्वं तत्र भेषजम् ॥ ४ ॥

अत्यत कुपित हुई वायुसे, अत्यन्त कुपित हुए पित्तसे, अत्यत कुपित हुए कफसे अत्यत कुपित हुए तीनो दोषोंसे, मनके दुःखसे और विषादिकोंके भक्षण करनेसे, छः प्रकारका उन्माद होताहै । इस उन्मादरोगमें यथादोषानुसार औषधि देनी चाहिये ॥ ४ ॥

अथोन्मादसम्प्राप्तिः ।

तैरल्पसत्त्वस्य मलाः प्रदुष्टा बुद्धेर्निवासं हृदयं प्रदूष्य ॥ स्रोतांस्यधिष्ठाय मनोवहानि प्रमोहयन्त्याशु नरस्य चेतः ॥ ५ ॥

अल्पसत्त्वस्य अल्पसत्त्वगुणस्य । मला वातादयः। बुद्धेर्निवासं हृदयं प्रदूष्येति एतेन आश्रयस्य दुष्ट्या तदाश्रितायाःबुद्धेरपि दुष्टिरुक्ता। मनोवहानि स्रोतांसि हृदयाश्रितानि दश एतानि विशेषतो बोद्धव्यानि । चरकेण सकलशरीरस्रोतांसि एव मनोऽधिष्ठानत्वेन उक्तानि। प्रमोहयन्ति विकृतिं कुर्वन्ति ॥

अल्पसत्त्वगुणवाले मनुष्यके विरुद्ध भोजन आदि कारणोंसे दुष्ट हुए वातादिदोष बुद्धिके निवास रूप हृदयको और बुद्धिको भी दूषित करके मनको वहानेवाले हृदयमें रहकर दश स्रोतोंमें स्थित होकर तत्काल मनुष्योंके चित्तको विकृत करते हैं ।

ऊपरके वचनमें मनको वहन करनेवाले स्रोतोंकी जो दश सख्या कही हैं उनपर विशेष ध्यान देना चाहिये कारण कि, चरक तो 'शरीरमें जितने स्रोत हैं वे सब मनके अधिष्ठान हैं' ऐसा कहताहै ॥ ५ ॥

अथोन्मादसामान्यलक्षणम् ।

धीविभ्रमः सत्त्वपरिप्लवश्च पर्याकुला दृष्टिरधीरता च ॥ अबद्धवाक्यं हृदयञ्च शून्यं सामान्यमुन्मादगदस्य लिङ्गम् ॥ ६ ॥

धीविभ्रमः शुक्तिकायां रजतज्ञानम् । सत्त्वपरिप्लवः सत्त्वं मनस्तस्य चाञ्चल्यम् । अबद्धवाक्यम् असंबद्धभाषित्वम् । शून्यं स्मृतिशून्यम् ॥

सीपको चादी समझना ऐसा बुद्धिमानका भ्रम, मनकी चचलता, दृष्टिको चारोंओर व्याकुलतासे फिराना, अधीरजता, असंबद्ध भाषण और हृदयकी शून्यता (विचारणाशक्ति जातीरहै) ये उन्मादके सामान्य लक्षण हैं ॥ ६॥

अथ वातजोन्मादनिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः ।

रूक्षोष्णशीतान्नविरेकधातुक्षयोपवासैरनिलोऽतिवृद्धः ॥ चिन्तादिदुष्टं हृदयं प्रदूष्य बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहन्ति शीघ्रम् ॥ ७ ॥

रूक्ष, गरम और शीतल अन्नको भोजन करनेसे, विरेचनसे, धातुओंके क्षयसे और उपवासादिकोंसे अत्यत वृद्धिको प्राप्त हुई वायु चिन्तादिकसे दुष्ट होकर हृदयको अतिशय दूषित करके बुद्धिको तथा स्मरण शक्तिको भी तत्काल नष्ट करदेती है ॥ ७ ॥

अथ वातजोन्मादलक्षणम् ।

अस्थानहास्यस्मितनृत्यगीतवागंगविक्षेपणरोदनानि ॥ पारुष्यकार्श्यारुणवर्णताश्च जीर्णे बलश्चानिलजस्य रूपम् ॥ ८ ॥

अस्थाने अनवसरे । हास्यादीनि रोदनान्तानि जीर्णे आहारे बलं व्याधेः ॥

विनाही कारण हँसना या मुसकराना,प्रसग विना नाचना प्रसगविना गाना, विना प्रसग बोलना, विना कारण इधर उधर हाथ पैरोंको चलाना, विना प्रसग रोना, गाल बजाना, दुर्बलता, रूखापन, शरीरका लाल रग होजाना और आहारके जीर्ण होनेपर रोगका बढना यह सब वातसम्बन्धी उन्मादके लक्षण जानने ॥ ८ ॥

अथ पित्तजोन्मादसम्प्राप्तिः।

अजीर्णकट्वम्लविदाह्यशीतैर्भोज्यैश्चितं पित्तमुदीर्णवेगम् ॥ उन्मादमत्युग्रमनात्मकस्य हृदि स्थितं पूर्ववदाशु कुर्यात् ॥९॥

हृदि स्थितं पित्तं चितं सञ्चितं पुनः अजीर्णकट्वम्लविदाह्यशीतैर्भोज्यैरुदीर्णवेगं सदुन्मादं कुर्यात्पूर्ववत् हृदयं प्रदूष्य इत्यर्थः ॥

अस्थिर बुद्धिवाले मनुष्योंके हृदयमें सचित हुआ पित्त अजीर्णसे और तीखे, खट्टे दाहकारक तथा उष्ण भोजनोंसे प्रकुपित होकर हृदयको अत्यंत दूषित करके अत्यत उग्र भयानक उन्मादको उत्पन्न करताहै ॥ ९ ॥

अथ पित्तजोन्मादलक्षणम्।

अमर्षसंरम्भविनग्नभावाः सन्तर्जनाभिद्रवणौष्ण्यरोषाः ॥ प्रच्छायशीतान्नजलाभिलाषाः पीतास्यता पित्तकृतस्य लिंगम् ॥ १० ॥

अमर्षोऽसहिष्णुता संरम्भ आडम्बर इति यावत्। सन्तर्जनं परित्रासनम्। अभिद्रवणं पलायनम्। औष्ण्यं गात्रे च उष्णो दाहविशेषः। प्रच्छाय इत्यादि छायायां शीतयोश्चान्नजलयोरभिलाषा।

असहनता, शीलता न रहै, इधर उधर हाथ पांवोको पटकै तथा अन्यान्य और उपद्रव मचावे, नगा हो जाय, दूसरोंको त्रास देवे, भाग जाय, शरीरमें एक प्रकारकी दाह हो, छायाकी इच्छा, शीतल अन्नकी इच्छा, शीतल जलकी इच्छा और मुखमे पीलापन ये सब पित्तजन्य उन्मादके लक्षण जानने ॥ १० ॥

अथ कफजोन्मादनिदानपूर्वक सम्प्राप्तिः।

सम्पूरणैर्मन्दविचेष्टितस्य सोष्मा कफो मर्मणि सम्प्रवृद्धः ॥ बुद्धिं स्मृतिश्चाप्युपहन्ति चित्तं प्रमोहयन्सञ्जनयेद्विकारम् ॥ ११ ॥

सम्पूरणैः भोजनादिभिः। मन्दविचेष्टितस्य व्यायामरहितस्य। सोष्मा कफेति कफोऽपि उन्मादं करिष्यन्पित्तसहायम् अपेक्षते व्याधिस्वभावात्। मर्मणि अत्र मर्मशब्देन हृदयमुच्यते ॥

परिश्रम नही करनेवाले मनुष्योंके भोजन आदिसे वृद्धिको प्राप्तहुआ पित्तसहित कफ हृदयमें वृद्धिको तथा स्मृतिको नष्ट करदेताहै और चित्तको मोहयुक्त करके उन्मादको उत्पन्न करताहै।

इस वचनमे 'पित्तसहित कफ' कहा इससे यह जान पडताहै कि जब कफ उन्माद करनेको, तैयार होताहै तब उसको व्याधिके स्वभावसे पित्तकी सहायताकी आवश्यकता होतीहै ॥ ११ ॥

अथ कफजोन्मादलक्षणम्।

वाक्चेष्टितं मन्दमरोचकश्च नारीविविक्तप्रियता च निद्रा ॥ छर्दिश्च लाला च बलश्च भुक्ते नखादिशौक्ल्यश्च कफात्मके स्यात् ॥ १२ ॥

वाक्चेष्टितं मन्दं वचनमल्पम्। नारीविविक्तप्रियता नारीप्रियता विजनप्रियता च। भुक्ते सति बलं व्याधेः ॥

कफके उन्मादमें थोडा बोलताहै, स्त्रीकी इच्छा होतीहै एकात वास अच्छा मालूम होताहै, निद्रा आतीहै वमन होतीहै, लार गिरतीहै, भोजन करनेके पश्चात् व्याधिका बल बढताहै और नखादिक बहुत सफेद होजातेहैं॥१२॥

अथ सान्निपातिकोन्माद निदानपूर्वकलक्षणम्।

यःसन्निपातप्रभवोऽतिघोरः सर्वैः समस्तैः स तु हेतुभिः स्यात् ॥ सर्वाणि रूपाणि बिभर्ति तादृग्विरुद्धभैषज्यविधिर्विवर्ज्यः ॥ १३ ॥

स सान्निपातिक उन्मादः। सन्निपातग्रहणेनैव सर्वात्मकत्वं लब्धं पुनः सर्वैरिति यत्कृतं तद्रजस्तमःप्रापणार्थं तेन रजस्तमोमिलित इत्यर्थः। तेन वातादयो रजस्तमोभिर्मनोदोषैः मिलितोः समस्तैश्च निदानैः कुपिता उन्मादं जनयन्ति। सर्वै-

हेतुभिः समस्तैर्मिलितैः स्यात् । यतोऽन्यो व्याधिः सर्वैर्हेतुभिः मिलितैरेव भवतीति नियमो नास्ति । अयं तु व्याधिप्रभावात्सर्वैर्हेतुभिर्मिलितः स्यात् । तादृक् उन्मादः विरुद्धभैषज्यविधिरिति कोऽर्थः ? त्रिदोषजे प्रत्येकं वातादेः प्रत्यनीका चिकित्सा कार्या सा च परस्परविरोधिनी त्रिदोषं हन्ति किञ्चिदेव द्रव्यम् आमलकादि न च अत्र यौगिकं व्याधिप्रभावादत एव विवर्ज्यः न चिकित्स्य इत्यर्थः ॥

सम्पूर्ण कारणोंसे कुपित हुए और रजोगुण तथा तमोगुण मनके दोषोंके साथ मिलकर वात, पित्त और कफ इन तीन दोषोंसे जो अत्यंत घोर उन्माद होताहै उसको सान्निपातिक उन्माद कहतेहैं उसमें सब लक्षण देखेजातेहैं । अन्य त्रिदोषजन्य रोग सम्पूर्ण कारणोंके मिलनेसे ही होतेहैं ऐसा नियम नहीं है किन्तु यह सान्निपातिक उन्माद तो सम्पूर्ण कारणोंके मिलनेसे ही होताहै ऐसा इसका स्वभाव है । इस उन्मादमें जो कुछ औषधि आदि की जावे वह सब विरुद्ध पडतीहै, इसकारण इस उन्मादकी चिकित्सा ही नहीं करनी चाहिये । अन्य रोगोंमें त्रिदोषजन्य वायु आदि प्रत्येक दोषोंकी परस्पर विपरीत चिकित्सा कीजातीहै और वह चिकित्सा एक दूसरे दोषोंसे विरुद्ध होतीहै । इस उन्मादकी चिकित्सा तो तीनों दोषोंकी समान प्रबलता होनीहै इसकारण इसमें एक दूसरे दोषसे विरुद्ध चिकित्सा काम नहीं देती । आमला आदि कोई एकही द्रव्य तीनो दोषोंको एक साथमें शमन करताहै किन्तु वह द्रव्य इस उन्मादमें व्याधिके स्वभावसे उपयोगी नहीं होसक्ता । इस उन्मादकी चिकित्सा व्यर्थ जाती है ॥ १३ ॥

अथ मनोदुःखजोन्मादविप्रकृष्टनिदानम् ।

चौरैर्नरेन्द्रपुरुषैररिभिस्तथान्यैर्वित्रासितस्य धनबांधवसंक्षयाद्वा ॥ गाढं क्षते मनसि च प्रियया रिरंसोर्जायेत चोत्कटतरो मनसो विकारः ॥ १४ ॥

अन्यैः हिंस्रादिभिः गाढमतिशयेन क्षते ऽभिहते । प्रियया प्राप्तुमशक्यया रिरंसोः पुरुषस्य । विकारः उन्मादरूपः ॥

चोर, राजपुरुष, शत्रु अथवा अन्यान्य मनुष्योंके त्रास देनेसे, या धनका और बांधवोंका नाश होनेसे मन अत्यंत दुःखित (घायल) होकर अथवा जो अपनेको न मिलसके ऐसी स्त्रीके साथ रमण करनेकी इच्छासे मनमें अत्यंत चोट लगकर अधिकतर प्रबल उन्माद उत्पन्न होताहै ॥ १४ ॥

अथ मनोदुःखजोन्मादलक्षणम् ।

चित्रं ब्रवीति च मनोऽनुगतं विसंज्ञो गायत्यथो हसति रोदिति चातिमूढः ॥ १५ ॥

चित्रमाश्चर्यं मनोऽनुगतं गोप्यमपि विसंज्ञो विरुद्धज्ञानः । अतिमूढः अतीव ज्ञानशून्यः । अत्र विकल्पो बोद्धव्यः ॥

मनके दुःखसे जो उन्माद होताहै उसमें विपरीत ज्ञानवाला अथवा ज्ञानसे रहित होकर वह विचित्र प्रकारसे बोलताहै, मनमें स्थित गुप्त बातको भी कहदेताहै, कभी गाताहै, कभी हँसताहै और कभी रोताहै ॥ १५ ॥

अथ विषजन्योन्मादलक्षणम् ।

रक्तेक्षणो हतबलेन्द्रियभाः सुदीनः श्यावाननो विषकृते तु भवेत्परासुः ॥ १६ ॥

विषजन्य उन्मादमें आँखें लाल होजातीहैं, बल, इन्द्रियोंकी सामर्थ्य और शरीरकी कांति नष्ट होजातीहै, मुख काला होजाताहै और मन अत्यत दीन होजाताहै यह मनुष्य जीता नही ॥ १६ ॥

अथोन्मादारिष्टम् ।

अवाङ्मुखस्तन्मुखो वा क्षीणमांसबलो नरः ॥ जागरूको ह्यसन्देहमुन्मादेन विनश्यति ॥ १७ ॥

जो उन्मादसे पीडित मनुष्य मुखको नीचेही करे रहै, अथवा सदैव ऊपरको उठायेरहै, जागाकरे, तथा जिसका मांस और बल क्षीण होगया हो ऐसा मनुष्य उन्मादसे अवश्य मरजाताहै ॥ १७ ॥

अथ देवाद्युन्मादसामान्यलक्षणम्।

अमर्त्यवाग्विक्रमवीर्यचेष्टो ज्ञानादिविज्ञानबलादियुक्तः॥ प्रकोपकालो नियतश्च यस्य देवादिजन्मा मनसो विकारः॥१८॥

अमर्त्यवाग्विक्रमवीर्यचेष्टः न मर्त्यस्येव वागादयो यत्र सः। विक्रमः पराक्रमः। वीर्यं शौर्यम्, ज्ञानादिविज्ञानबलादियुक्त- ज्ञानं बुद्धिः आदिपदेन तद्भेदाः मेधाविचारणात्स्मृत्यादयो गृह्यन्ते। विज्ञानं शिल्पादिविषयकं ज्ञानम्। बलम् चेष्टापाटवम्। आदिपदेन अभिमानादि गृह्यते। नियतः वक्ष्यमाणतिथ्यादिभिः। मनोविकार उन्मादः॥

देवादिकजुष्ट उन्मादमें उस मनुष्यका वोलना, पराक्रम, शूरता और चेष्टा मनुष्योंके सी नहीं होती और वह मनुष्य बुद्धि, विचारशक्ति, धारणाशक्ति, स्मरणशक्ति, शिल्प आदिके ज्ञान, वल तथा अभिमान इत्यादिसे संयुक्त होताहै। इस उन्मादके प्रकोपका समय अमुक तिथिमें नियमित होताहै जो कि, आगे कहा जायगा॥ १८॥

अथ देवग्रहजुष्टलक्षणम्।

सन्तुष्टः शुचिरतिदिव्यमाल्यगन्धो
निस्तन्द्रोऽप्यवितथसंस्कृतप्रभाषी॥
तेजस्वी स्थिरनयनो वरप्रदाता
ब्रह्मण्यो भवति नरः स देवजुष्टः॥ १९॥

अतिदिव्यमाल्यगन्धः अतिशयेन दिव्यस्य माल्यस्येव गन्धो यस्य सः। निस्तन्द्रो निद्रारहितः। अवितथं सत्यम्। ब्रह्मण्यः ब्राह्मणभक्तः॥

देवग्रहग्रसित उन्मादमे मनुष्य सतोषी होताहै, पवित्र रहताहै, उसके शरीरमे दिव्य पुष्पोंकी सुगन्ध आतीहै, निद्रारहित होताहै, सत्य सत्य शुद्ध सस्कृतभाषा बोलताहै, तेजस्वी होताहै, उसके नेत्र स्थिर होतेहैं, दूसरोंको वरदान देताहै और ब्राह्मणोकी भक्ति करताहै॥ १९॥

अथ दैत्याविष्टलक्षणम्।

संस्वेदी द्विजगुरुदेवदोषवक्ता जिह्माक्षो विगतभयो विमार्गदृष्टिः॥ सन्तुष्टो भवति न चान्नपानजातैर्दुष्टात्मा भवति स देवशत्रुजुष्टः॥ २०॥

विमार्गदृष्टिः कुमार्गरतः। दुष्टात्मा दुष्टस्वभावः॥

दैत्यग्रह ग्रसित उन्मादवाला मनुष्य पसीनेसे तराबोर होजाताहै, ब्राह्मण गुरु और देवताओंकी निन्दा करताहै, उसके नेत्र टेढे होजातेहैं, किसीसे भयभीत नही होता, कुमार्गमें रुचि रखताहै, किसी अन्नपानसे सन्तुष्ट नही होता और उसका स्वभाव दुष्ट होजाताहै॥ २०॥

अथ गन्धर्वाविष्टलक्षणम्।

हृष्टात्मा पुलिनवनान्तरोपसेवी स्वाचारः प्रियपरिगीतगन्धमाल्यः॥ नृत्यन्वै प्रहसति चारु चाल्पशब्दं गन्धर्वग्रहपरिपीडितो मनुष्यः॥ २१॥

हृष्टात्मा हृष्टजीवात्मा पुलिनं तोयोत्थितं तटं वनान्तरं वनमध्यं तयोः सेवी। चारु च अल्पशब्दमित हसनक्रियाविशेषणम्॥

गन्धर्व ग्रहसे पीडित मनुष्य प्रसन्नअन्तःकरणयुक्त रहताहै, जलाशय, तट और वन उपवनोमें निवास करताहै, उत्तम आचरण रखताहै, गायन, सुगन्ध तथा पुष्पोके ऊपर प्रेम रखताहै और नाचते २ मन्द मुसकान करताहै॥ २१॥

अथ यक्षाविष्टलक्षणम्।

ताम्राक्षः प्रियतनुरक्तवस्त्रधारी गम्भीरो द्रुतगतिरल्पवाक्सहिष्णुः॥ तेजस्वी वदति च किं ददामि कस्मै यो यक्षग्रहपरिपीडितो मनुष्यः॥ २२॥

यक्षग्रहग्रसित मनुष्य गम्भीर होताहै, उसके नेत्र लाल होतेहैं, प्रिय सुन्दर वारीक और रगीनवस्त्र पहनताहै, शीघ्र २ चलताहै, थोडा बोलताहै, सहन शील और तेजस्वी होताहै तथा किसको क्या दू ऐसा बोलताहै॥ २२॥

अथ पित्राविष्टलक्षणम् ।

प्रेतानां स दिशति संस्तरेषु पिण्डान् शान्तात्मा, जलमपि चापसव्यवस्त्रः ॥ मांसेप्सुस्तिलगुडपायसाभिलाषी तद्भक्तो भवति पितृग्रहाभिजुष्टः ॥ २३ ॥

प्रेतानां मृतानां पितॄणाम् दिशति ददाति। अपसव्यवस्त्रः दक्षिणस्कन्धकृतोत्तरीयः ॥

पितृग्रहसे पीडित मनुष्य कुशा आदिपै अपने पित्रोंको पिड देताहै, शांतचित्त रहताहै, अपसव्य अर्थात् दहिने कन्धेपर वस्त्र रखकर अपने पित्रोंको जल भी देताहै, मांस, तिल, गुड और खीर खानेकी इच्छा करताहै और पित्रोंकी भक्ति करताहै ॥ २३ ॥

अथ नागाविष्टलक्षणम् ।

यस्तव्यां प्रसरति सर्पवत्कदाचित् सृक्किण्यौ मुहुरपि जिह्वयाऽवलेढि ॥ क्रोधालुर्घृतमधुदुग्धपायसेप्सुर्विज्ञेयः स खलु भुजंगमेतजुष्टः ॥ २४ ॥

प्रसरति स सर्पवदुरसा चलति। सृक्किण्यौ ओष्ठप्रान्तौ ॥

सर्पग्रहसे ग्रसित मनुष्य कभी सापकी समान पृथिवीमें छातीके बलमें चलताहै, वारवार जीभसे गलफुओंको चाटताहै, क्रोधित होताहै और सहत, घी, दूध तथा खीर खानेकी इच्छा करताहै ॥ २४ ॥

अथ राक्षसाविष्टलक्षणम् ।

मांसासृग्विविधसुराविकारलिप्सुर्निर्लज्जो भृशमतिनिष्ठुरोऽतिशूरः ॥ क्रोधालुर्विविधबलो निशाविहारी शौचद्विड् भवति स राक्षसैर्गृहीतः ॥ २५ ॥

राक्षसग्रहसे दुष्ट मनुष्य मांस, रुधिर और मदिराके विकारोंकी इच्छा करताहै, अत्यन्त निर्लज्ज होजाताहै, अत्यन्त निर्दय होजाताहै, अत्यन्त शूर होजाताहै, क्रोधी होजाताहै, उसके शरीरमें अनेक प्रकारके बल आजाते हैं, रात्रिमे भ्रमण कियाकरताहै और पवित्रतासे द्वेष करताहै ॥ २५ ॥

अथ ब्रह्मराक्षसाविष्टलक्षणम् ।

देवविप्रगुरुद्वेषी वेदवेदांगनिन्दकः ॥ आत्मपीडाकरोऽहिंस्रो ब्रह्मराक्षससेवितः २६

अहिंस्रः अहिंसाशीलः ॥

ब्रह्मराक्षससे पीडित मनुष्य देवता, ब्राह्मण और गुरु इनसे द्वेष करताहै, वेद और वेदके अंगोंकी निन्दा करताहै, अन्य किसी मनुष्यको नही मारता किन्तु अपने शरीरको पीडित करताहै ॥ २६ ॥

अथ पिशाचाविष्टलक्षणम् ।

उद्ध्वस्त्रः कृशपरुषो विरुद्धभाषी दुर्गन्धो भृशमशुचिस्तथातिलोलः ॥ बह्वाशी विजनवनान्तरोपसेवी व्याचेष्टंस्त्रसति रुदन्पिशाचजुष्टः ॥ २७ ॥

उद्ध्वस्त्रः नग्नः दिगम्बर इति विदेहवचनात् कृशो निर्मांसः । परुषो रूक्षः । अतिलोलः सर्वस्मिन्नन्नपानादौ लोलुपः । व्याचेष्टन्विरुद्धमाचेष्टन् ।

पिशाचग्रहसे पीडित मनुष्य नग्न होजाताहै दुर्बल और बलहीन होजाताहै, विरुद्ध वाक्य बोलताहै, दुर्गन्धि होजाताहै, अत्यन्त अपवित्र रहताहै, रूखा होजाताहै सर्व प्रकारके अन्न पानोंमें लपट होजाताहै, बहुत भोजन करताहै, निर्जन स्थान और वनोंके मध्यमे रहताहै और विरुद्ध चेष्टा करता २ तथा रोता २ त्रासको प्राप्त होजाताहै ॥ २७ ॥

अथ हिंस्रकराक्षसादिग्रहग्रासितनिदानम् ।

अशुचि भिन्नमर्यादं क्षतं वा यदि वाक्षतम् ॥ हिंस्रहिंसाविहारार्थं सत्कारार्थमथापि वा ॥ २८ ॥

जो मनुष्य अपवित्र रहनेवाला और मर्यादाको तोडनेवाला होताहै वह मनुष्य घावयुक्त हो अथवा घावरहित हो तो भी राक्षसादिक हिंसक जाति उस मनुष्यको मारनेके लिये अथवा उससे अपनी पूजा करनेके लिये उसको पकडतेहैं ॥ २८ ॥

अथ हिंसार्थगृहीतलक्षणम् ।

स्थूलाक्षो द्रुतमटनः सफेनवामी निद्रालुः पतति च कम्पते च योऽति ॥ यश्चाद्रिद्विरदनगादिविच्युतः स्यात्सोऽसाध्यो भवति तथा त्रयोदशेऽब्दे ॥ २९ ॥

यश्चाद्रि इत्यादि यः पर्वतादिपतितः स ग्रहैर्गृह्यत इत्यर्थः। आदिशब्देन भित्तिप्रासादादयो गृह्यन्ते तथा त्रयोदशेऽब्दे सर्व एव देवादिगृहीता असाध्याः॥

पर्वतके ऊपरसे, हाथीके ऊपरसे, वृक्षादिकके ऊपरसे, भीतके ऊपरसे और ऊचे भवन आदिके ऊपरसे गिरेहुए मनुष्यको राक्षसादिक हिंसक जाति ग्रसलेतीहैं तब उस मनुष्यके नेत्र जड होजातेहैं॥

वेगसे शीघ्रचले, झागोयुक्त वमन करे, निद्रा अधिक आवे, गिरपडे और अत्यन्त कॉपे यह मनुष्यका उन्माद असाध्य है। देवादिक ग्रह ग्रसित सर्व प्रकारके उन्माद तेरहवे वर्ष असाध्य होजातेहैं॥ २९॥

अथ देवाद्यावेशसमयः।

देवग्रहाः पौर्णमास्यामसुराः सन्ध्ययोरपि॥ गन्धर्वाः प्रायशोऽष्टम्यां यक्षाश्च प्रतिपत्तिथौ॥३०॥ पितरः कृष्णपक्षे च पञ्चम्यामपि चोरगाः॥रक्षःपिशाचा रात्रौ च चतुर्दश्यां विशन्ति हि॥ ३१॥

कृष्णपक्षे अमावास्यायां प्रायशः यदन्यत्रापि तिथ्यभिधानप्रयोजनं लक्षणार्थं तत्र तिथौ च बलिदानार्थम्॥

विशेष करके देवग्रह पूर्णमासीके दिन, दैत्य दोनों संध्याकालमें, गन्धर्व अष्टमीके दिन, यक्षग्रह, पडवाके दिन, पितृग्रह कृष्णपक्षमें, सर्पग्रह पचमीके दिन, राक्षस रात्रिमें और पिशाचग्रह चतुर्दशीके दिन मनुष्यके शरीरमे प्रवेशकरतेहैं। पितृग्रह विशेष करके कृष्णपक्षकी अमावास्याके दिन प्रवेश करतेहैं और किसी समय अन्य तिथियोंमे भी प्रवेश करतेहैं। लक्षण समझनेके लिये और उन उन तिथियोंमें बलिदान करनेके लिये तिथि कही है॥ ३०॥ ३१॥

अथ देवादिग्रहो मनुष्यशरीरे प्रविशन्न दृश्यत इत्याह।

दर्पणादीन्यथा छाया शीतोष्णं प्राणिनो यथा॥स्वमणिं भास्करार्चिश्च तथा देहं च देहधृक्॥ विशन्ति च न दृश्यन्ते ग्रहास्तद्वच्छरीरिणाम्॥ ३२॥

दर्पणादीनिति आदिशब्देन अन्यदपि निर्मलद्रव्यं जलतैलादिद्रवद्रव्यञ्च गृह्यते। छाया प्रतिबिम्बम्। स्वमणिः सूर्यमणिः॥ देहधृक् जीवात्मा॥

देवादिक ग्रह जो मनुष्योंके शरीरमें प्रवेश करतेहैं वह मनुष्योंके शरीरमे प्रवेश करते समय क्यों नहीं दीखते? ऐसी कोई शका करे तो उसके समाधानके लिये कहते हैं। "जिसप्रकार दर्पण अथवा जल वा तेल आदिक द्रव पदार्थोंमें छाया प्रवेश करतीहै और प्रवेश करती दीखती नहीं, जिस प्रकार शीत और गरमी मनुष्योंके शरीरमें प्रवेश करतीहै किंतु प्रवेश करती दीखती नहीं, जिसप्रकार सूर्यकी किरणें सूर्यकात (आतशीसीसा) मणिमें प्रवेश करती हैं और प्रवेश करती नहीं दीखती, जिसप्रकार जीव शरीरमें प्रवेश करताहै और प्रवेश करता दीखता नहीं, उसीप्रकार देवादिक ग्रह शरीरमे प्रवेश करतेहैं किंतु प्रवेश करते दीखते नहीं॥ ३२॥

अथोन्मादचिकित्सा।

वातिके स्नेहपानं प्राग्विरेकः पित्तसम्भवे॥ कफजे वमनं कार्यं परो वस्त्यादिकःक्रमः॥ ॥३३॥ यच्चोपदेक्ष्यते किञ्चिदपस्मारे चिकित्सितम्॥ उन्मादे तच्च कर्तव्यं सामान्यं दोषदूष्ययोः॥ ३४॥ जलाग्निद्रुमशैलेभ्यो विषमेभ्यश्च तं सदा॥ रक्षेदुन्मादिनं यत्नात्सद्यःप्राणहरं हि तत्॥ ३५॥ब्राह्मीकूष्माण्डीफलषड्ग्रन्थाशंखपुष्पिकास्वरसाः॥दृष्टा उन्मादहृतः पृथगेते कुष्ठमधुमिश्राः॥ ३६॥

अयमर्थः। ब्राह्मीरसः (तोला) ४, कुष्ठचूर्ण माषाः २, मधु अष्टौ माषाः ८ पेयाः। इति एको योगः। माण्डबीजचूर्णमाषाः ८ कुष्ठचूर्णमाषौ २ अय द्वितीयो योगः। शंखपुष्पीस्वरसं पलैकं १, कुष्ठचूर्णं माषद्वयं २, मधुनः अष्टौ माषाः पेयाः। तृतीयो योगः॥

वातके उन्मादमे प्रथम स्नेहपान करना चाहिये, पित्तके

उन्मादमें प्रथम विरेचन (दस्त) कराना चाहिये, और कफके उन्मादमें प्रथम वमन (उलटी) करानी चाहिये पश्चात् पिचकारी आदि लगानी चाहिये ॥

अपस्मार रोगमें दोषोंके लिये तथा दोषोंसे दूषित हुई धातुओंके लिये जो कुछ चिकित्सा कीजातीहै वह सब चिकित्सा उन्मादमें भी करनीचाहिये । उन्मादरोगीकी जलसे, अग्निसे, वृक्षोंसे, पर्वतोंसे, तथा अन्यान्य विषमस्थानोंसे यत्नपूर्वक सर्वदा रक्षा करनीचाहिये । कारण यह है कि, जल और अग्निआदि तत्काल मृत्युको करतेहैं ॥

ब्राह्मीका रस ४ तोले, कूटका चूर्ण १२ रत्ती और सहत ४८ रत्ती इन सबको एकत्र मिलाकर पीनेसे उन्माद नष्ट होताहै ॥

पेठेके बीजोंका चूर्ण ४८ रत्ती, और कूठका चूर्ण १२ रत्ती इनको सहतमें मिलाकर खानेसे उन्माद नष्ट होजाताहै ॥

शंखाहूलीका रस ४ तोले,कूठका चूर्ण १२ रत्ती और सहत ४८ रत्ती इनको एकत्र मिलाकर पीनेसे उन्मादका नाश होताहै ॥ ३३–३६ ॥

अथ सिद्धार्थकादि ।

सिद्धार्थको हिंगु वचा करञ्जो देवदारु च ॥ मञ्जिष्ठा त्रिफला श्वेता कटभी त्वक् कटुत्रयम् ॥ ३७ ॥ समांशानि प्रियंगुश्च शिरीषो रजनीद्वयम् ॥ वस्तमूत्रेण पिष्टोऽयमगदः पानमञ्जनम् ॥ ३८ ॥ नस्यमालेपनञ्चैव स्नानमुद्धर्तनं तथा ॥ अपस्मारविषोन्मादकृत्याऽलक्ष्मीज्वरापहम् ॥ ३९ ॥ भूतेभ्यश्च भयं हन्ति राजद्वारे च शस्यते ॥ सर्पिरेतेन संसिद्धं सगोमूत्रं तदर्थकृत् ॥ ४० ॥

सरसों, हींग, वच, करंज, देवदारु, मजीठ, हरड, बहेडा, आमला, फटकरी, मालकागुनी, दालचीनी, सोंठ, मिर्च, पीपल, फूलप्रियंगु, सिरस, हलदी और दारुहलदी इन सबको समान भाग लेकर बकरेके मूत्रमें पीसकर औषधि बनावे । इस औषधिको पीनेसे, नेत्रोंमें आँजनेसे, नास देनेसे, शरीरपर प्रलेप करनेसे, स्नान करनेसे और उबटन करनेसे अपस्मार, विष, उन्माद, अभिचार, अलक्ष्मी, ज्वर और भूतबाधा दूर होतीहै, इस औषधिका उपयोग करके राजद्वारमें जाना बहुत श्रेष्ठ है । इनही औषधियोंके द्वारा पकाया हुआ घी गोमूत्रके साथ सेवन किया जाय तो वह भी येही गुण करताहै ॥ ३७–४० ॥

अथोन्मादिनस्त्रासभयकरणम् ।

ब्रूयादिष्टविनाशश्च दर्शयेदद्भुतानि च ॥ बद्धं सार्षपतैलाक्तं रक्षेदुत्तानमातपे ॥ ४१ ॥ कपिकच्छ्वाथ वा तप्तैर्लौहतैलजलैः स्पृशेत् ॥ कशाभिस्ताडयेत्तं वा सुबद्धं विजने गृहे ॥ ॥ ४२ ॥ सर्पेणोद्धृतदन्तेन दंशैः सिंहैर्गजैश्च तम् ॥ त्रासयेच्छस्त्रहस्तैश्च शत्रुभिस्तस्करैस्तथा ॥ ४३ ॥ अथ वा राजपुरुषा बहिर्नीत्वा सुसंयतम् ॥ त्रासयेयुर्वधैरेनं तर्जयन्तो नृपाज्ञया ॥ ४४ ॥ देहदुःखभयेभ्यो हि यतः प्राणभयं भवेत् ॥ ततस्तस्य शमं याति सर्वतो विप्लुतं मनः ॥ ४५ ॥ इष्टद्रव्यविनाशेन मनो यस्याभिहन्यते ॥ तस्य तत्सदृशप्राप्त्या ज्ञात्वाऽऽश्वासैः शमं नयेत् ॥ ४६ ॥

उन्माद रोगीसे उसकी प्रिय इष्ट वस्तुका नाश होना कहे इसको आश्चर्यजनक खेल दिखावे और उसके शरीरमें सरसोंके तेलका लेपकर धूपमें चित्त सुलावे, शरीरमें कौंछकी फली घिसकर लगावे, तपे हुए लोहेसे, तेलसे अथवा जलसे स्पर्श करावे, एकांत घरमें अच्छे प्रकारसे उसको बाँधकर खूब कोडे लगावे, जिसके दाँत निकाललियेगये हों ऐसे साँपसे कटवावे, सिंह तथा हाथियोंसे डरपावे, शत्रु तथा चोरोंने भयभीत करावे, अथवा राजासे आज्ञा लेकर उनके राजनौकरोंसे नगरके बाहर लिया जाकर खूब बाँधकर तिरस्कार करते २ मार डालनेकी धमकी देवे, कारण यह है कि, भयके लगनेसे और शरीरपर दु.खोंके पडनेसे प्राण जानेका भय उत्पन्न होताहै और उस भयके होनेसे विकृत हुआ चित्त कदाचित् अपने ठिकाने आजाताहै । उन्मादरोगीकी

गई हुई वस्तुकी समान दूसरी वस्तु देवै, जिसका मन किसी प्रिय वस्तुके विनाशसे अभिघातको प्राप्त हुआ हो उस मनुष्यके लिये विचार करके उसी वस्तुकी समान दूसरी वस्तु देनेका धीरज देकर चित्तको शांत करे, इस प्रकार करनेसे बिगडा हुआ मन शांत होताहै ॥ ४१–४६ ॥

अथ त्र्यूषणांजनम् ।

त्र्यूषणं हिंगु लवणं वचा कटुकरोहिणी ॥ शिरीषस्य करञ्जस्य बीजं गौराश्च सर्षपाः॥ ॥ ४७ ॥ गोमूत्रपिष्टैरेभिस्तु वर्त्तिर्नेत्राञ्जने हिता ॥ हन्त्युन्मादमपस्मारं तथा चातुर्थकं ज्वरम् ॥ ४८ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हींग, सैंधानिमक, वच, कुटकी, सिरसके बीज, करजके बीज और सुफेद सरसों इनको गोमूत्रमे पीसकर वत्ती बनाकर नेत्रोंमें आँजनेसे उन्माद, मृगी और चौथिया ज्वर नष्ट होजाताहै ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

अथ सारस्वतचूर्णम् ।

कुष्ठाश्वगन्धे लवणाजमोदे द्वे जीरके त्रीणि कटूनि पाठा ॥ माङ्गल्यपुष्पी च समान्यमूनि सर्वैः समानाश्च वचां विचूर्ण्य ॥४९॥ ब्राह्मीरसेनाखिलमेव भाव्यं वारत्रयं शुष्कमिदं हि चूर्णम् ॥ अक्षप्रमाणं मधुना घृतेन लिह्यान्नरः सप्त दिनानि चूर्णम् ॥ ५० ॥

माङ्गल्यपुष्पी शङ्खपुष्पी शङ्खाहुलीति लोके ॥

सारस्वतमिदं चूर्णं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा॥ हिताय सर्वलोकानां दुर्मेधानां विचेतसाम् ॥ ५१ ॥ एतस्याभ्यासतः पुंसां बुद्धिर्मेधाः धृतिः स्मृतिः ॥ सम्पत्तिः कविताशक्तिः प्रवर्द्धेच्चोत्तरोत्तरम् ॥५२॥

कूठ, असगध, सैंधानिमक, अजमोद, जीरा, कालाजीरा, सोंठ, मिरच, पीपल, पाढ और शंखाहूली इनको समान भाग लेवै और सब औषधियोंकी बराबर वच लेवै, सबका एकत्र चूर्ण करके ब्राह्मीके रसकी तीन भावनादेवै, जब यह चूर्ण सूखजाय तब इसमेंसे एक एक तोला लेकर सहतमें तथा घीमें मिलाकर सात दिन तक चाटे । ब्रह्माजीने पूर्वकालमें सर्व लोकोंके हितके लिये विशेष करके दुष्ट बुद्धिवाले मनुष्योंके लिये यह सारस्वतचूर्ण निर्माण किया है, इस चूर्णको नित्य सेवन करनेसे मनुष्योंकी बुद्धि, धारणाशक्ति, धीरज, स्मरणशक्ति, संपत्ति और कविता शक्तिकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती है ॥ ४९–५२ ॥

अथ विश्वाद्यचूर्णम् ।

विश्वाजमोदरजनीद्वयसैन्धवोग्रायष्ट्याह्वकुष्ठमगधोद्भवजीरकाणाम् ॥ चूर्णं प्रभातसमये लिहतः ससर्पिर्वाग्देवता निवसति स्वयमेव वक्त्रे ॥ ५३ ॥

सोंठ, अजमोद, हलदी, दारुहलदी, सैंधानिमक, वच मुलैठी, कूठ, पीपल और जीरा इनका चूर्ण करके घीमें मिलाकर प्रातःकाल चाटे तो साक्षात् सरस्वती देवी मुखमें निवास करती है ॥ ५३ ॥

अथ महाचैतस घृतम् ।

क्वाथे विचूर्णिते क्षिप्त्वा तत्षोडशगुणं जलम् ॥ पादशेषं प्रकर्तव्यमेष क्वाथविधिः स्मृतः ॥५४॥ दशमूली तथा रास्ना वातारिस्त्रिवृता बला ॥ मूर्वा शतावरी चेति क्वाथैस्तु कुडवैः पृथक् ॥ ५५ ॥ कृतैः क्वाथैर्घृतप्रस्थद्वयं मृद्वग्निना पचेत् ॥ कल्कीकृतैर्वक्ष्यमाणद्रव्यैः सम्यक्पुनः पचेत् ॥ ॥५६॥ विशाला त्रिफला कौन्ती देवदार्वेलवालुकम् ॥ स्थिराऽनन्ता रजन्यौ द्वे प्रियंगुः सारिवाद्वयम् ॥ ५७ ॥ नीलोत्पलैला मञ्जिष्ठा दन्ती दाडिमकेसरम् ॥ विडंगं ह्यग्निपत्री च कुष्ठं चन्दनपद्मके ५८॥

अग्निपत्री अग्निनौतीति लोके अगिया इति च ॥

तालीशपत्रं बृहती मालतीकुसुमं नवम् ॥ अष्टाविंशतिभिः कल्कैरेतैः कर्षमितैः पृथक् ॥ ५९ ॥ चतुर्गुणं जलं दत्त्वा पिष्टैस्त-

द्विपचेद् घृतम्॥ महाचैतसनामेदं सर्वचेतोविकारनुत् ॥ ६० ॥ अपस्मारे महोन्माद मन्देऽग्नौ ज्वरकासयोः ॥ वातरक्ते प्रतिश्याये शोषे कार्श्ये तृतीयके ॥ ६१॥ मूत्रकृच्छ्रे कटीशूले विसर्पाभिहतेषु च ॥ पाण्ड्वामये तथा कण्ड्वां विषे मेहे गरेऽपि च ॥ ६२ ॥ देवादिहतचित्तानां गद्गदानामचेतसाम् ॥ शस्तं स्त्रीणाञ्च वन्ध्यानां धन्यमायुर्बलप्रदम् ॥ ६३ ॥ अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ हंति भ्रमं मदं मूर्च्छां मेधास्मृतिमतिप्रदम् ॥ ६४॥

दशमूल, रायसन, एरंड, निसोत, खिरेंटी, मूर्वा और सतावर ये प्रत्येक औषधि सोलह सोलह तोले लेकर कूट लेवे, सबको एकत्र करके सोलहगुने जलमें पकावे जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे, फिर इस क्वाथमें २८८ तोले घीको मद मद अग्निसे पकावे, फिर इन्द्रायन, हरड, बहेडा, आमले, रेणुका, देवदारु, एलवालुक (एलुआ), सालपर्णी, धमासा, हलदी, दारुहलदी, फूलप्रियगु, दोनों प्रकारकी सारिवा, नीले कमल, इलायची, मजीठ, जमालगोटेके बीज, अनारकी छाल, वायविडंग, अग्निपर्णी, कूट, लालचदन, पद्माख, तालीसपत्र, कटाई और मालतीके नवीन फूल, ये प्रत्येक पदार्थ चार चार तोले लेकर चौगुने जलमें तथा पीसकर अलग अलग कल्क बनाकर उस कल्कसे अच्छे प्रकार घृतको सिद्ध करे तो यह महाचैतस नामक घृत सिद्ध होताहै । यह घी चित्तके समस्त विकारोंको शांत करताहै तथा अपस्मार, महोन्माद, अग्निकी मदता, ज्वर, खांसी, वातरक्त, सरेकमा, शोष, कृशता, एकान्तरज्वर, मूत्रकृच्छ्र, कटीशूल, विसर्प, पाण्डुरोग, खुजली, विष, प्रमेह और [illegible] विषादिकोंको नष्ट करता है उसी प्रकार देवादिक ग्रहोंसे पीडित हुआ चित्तका विकार, मनकी [illegible], [illegible] स्त्रियोंको पुत्रको देनेवाला, धन, आयु, [illegible], मेधा, बुद्धि, स्मृतिको वृद्धि देनेवाला है, भ्रम, मद, मूर्च्छा, गद्गद कण्ठका होना, अलक्ष्मीके निवासको, [illegible] उन्मादादि सम्पूर्ण रोगोंको निवारण करनेवाला है ॥ ६०-६४ ॥

अथ देवाद्युन्मादचिकित्सा ।

पूजाबल्युपहारेष्टिहोममंत्राञ्जनादिभिः ॥ जयेदागन्तुमुन्मादं यथाविधि शुचिर्भिषक् ॥ ६५ ॥

श्रेष्ठ वैद्य पूजा, बलिदान, उपहार, हवन, इष्ट मन्त्रका आराधन और अञ्जनादिकोंसे आगन्तुक, देवतादिकोंकी यथायोग्य पूजनकरै ॥ ६५ ॥

अथ कृष्णाञ्जनम् ।

कृष्णामरिचसिंधूत्थमधुगोरोचनाकृतम् ॥ अंजनं सर्वदेवादिकृतोन्मादहरं परम् ॥ ६६ ॥

पीपल, मिरच, सेंधानिमक, सहत और गोरोचन इन सब औषधियोंको कूटपीस छानकर अञ्जन बनावे, इस कृष्णाञ्जनके लगानेसे, देवादिकोंके कोपसे सब प्रकारके उत्पन्न हुए उन्माद तत्काल नष्ट होतेहैं ॥ ६६ ॥

अथर्क्षलोमकधूपः ।

ऋक्षजम्बूकलोमानि शल्लकी लशुनं तथा॥ हिंगु मूत्रञ्च बस्तस्य धूममस्य प्रयोजयेत् ॥ एतेन शाम्यति क्षिप्रं बलवानपि यो ग्रहः ॥ ६७ ॥

ऋक्ष और गीदड (स्यार) के रोम, सेईके काटे, लहसुन, हींग और बकरेका मूत्र, इन सबको मिलाकर धूप देनेसे बलवान् ग्रहदोषोंकी भी तुरन्त शान्ति होतीहै ॥ ६७ ॥

अथ कल्याणघृतम् ।

कल्याणकञ्च युञ्जीत महद्वा चैतसं घृतम्॥ तैलं नारायणं वाथ महानारायणं तथा ॥ ॥ ६८ ॥ ऋते पिशाचादन्येषु प्रतिकूलं न चाचरेत् ॥ रोगिणं भिषजं यत्ते क्रुद्धा हन्युर्महौजसः ॥ ६९ ॥

इति उन्मादाधिकारः ।

कल्याण घृत, वा महाचैतस घृत, अथवा नारायण तैल वा महानारायण तैलका उन्माद रोगमें चतुर वैद्य सेवन करावे पिशाचोंके अतिरिक्त और देवताओंके विरुद्ध और कोई किसीप्रकारका आचरण न करै, क्योंकि यह महा बलवान् प्रतिकूल आचरण करनेसे कोपित होकर

रोगीको वा वैद्यको तत्कालही मारडालते हैं फिर कोई उपाय नहीं बन सक्ता ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

इति उन्मादाधिकारः।

अथाऽपस्माराधिकारः।

तत्रापस्मारनिदानसहितसम्प्राप्तिः।

चिन्ताशोकादिभिर्दोषाः क्रुद्धा हृत्स्रोतसि स्थिताः॥ कृत्वा स्मृतेरपध्वंसमपस्मारं प्रकुर्वते ॥ १ ॥

चिन्ता और शोकादिकोसे कुपित हुए दोष हृदयके स्रोतोमें अर्थात् मनके वहनेवाली नाडियोंमें स्थित होकर स्मृतिका नाश करके अपस्मार नामक रोगको उत्पन्न करते-हैं ॥ १ ॥

अथापस्मारसंख्या।

वातात्पित्तात्कफात्सर्वैर्दोषैः स स्याच्चतुर्विधः ॥ २ ॥

वातसे, पित्तसे, कफसे और त्रिदोषसे, इस रीतिसे अपस्मार चार प्रकारका है ॥ २ ॥

अथापस्मारसामान्यलक्षणम्।

तमःप्रवेशः संरम्भो दोषोद्रेकहतस्मृतिः॥ अपस्मार इति ज्ञेयो गदो घोरतरो हि सः॥३

संरम्भः नेत्रविकृतिहस्तपादादिविक्षेपणादिकम् ॥

जिस रोगमे ऐसा जानपडे कि, मैं अन्धकारमे प्रवेश करताहूँ और दोषोके प्रकोपसे स्मृति नष्ट होजाय, नेत्रोंमें विकार हो और हाथ पाओंको इधर उधर फेंके, यह अपस्मार रोगके लक्षण हैं इसी महा भयकर रोगको वैद्य लोग मृगी भी कहतेहैं ॥ ३ ॥

अथापस्मारपूर्वरूपम्।

हृत्कम्पः शून्यता स्वेदो ध्यानं मूर्च्छा प्रमूढता॥ निद्रानाशश्च तस्मिंश्च भविष्यति भवन्त्यथ ॥ ४ ॥

शून्यता हृदयस्यैव ध्मानम्। विस्मापनं मूर्च्छा मनोमोहः। प्रमूढता इन्द्रियमोहः। भविष्यति भाविनि तस्मिन् अपस्मारे ॥

अपस्मार रोग होनेसे हृदय कम्पायमान और शून्यता, पसीना, विस्मय, मूर्च्छा, मनमे मोह, इन्द्रियोंमे मूढता, निद्राका नाश होजाताहै ॥ ४ ॥

अथ वातजापस्मारलक्षणम्।

कम्पते प्रदशेद्दन्तान्फेनोद्वामी श्वसित्यपि ॥ अभितोऽरुणवर्णानि पश्येद्रूपाणि चानिलात् ॥ ५ ॥

जिसको वातकी मृगी होय उसके शरीरमें कम्प, दाँतोका चावना, मुखसे झागोका उगलना, ऊँची श्वासलेना, नेत्रोमे अग्निकी समान चारो ओर लाल रूपोंका देखना, यह वातकी मृगीके लक्षण हैं ॥ ५ ॥

अथ पित्तजापस्मारलक्षणम्।

पीतफेनांगवक्त्राक्षः पीतासृग्रूपदर्शनः ॥ सतृष्णोष्णानलव्याप्तलोकदर्शी च पैत्तिके ॥ ६ ॥

पीतस्य असृग्रूपस्य वा वस्तुनो दर्शनं यस्य स पीतासृग्रूपदर्शनः ॥

जिसको पित्तकी मृगी होय उस मनुष्यके शरीरमें और नेत्रोंमे पीलापन, तृषा और संसारके सब पदार्थोंमें अग्निकी प्रचण्ड ज्वालासी व्याप्त दिखाई देवे, यह पित्तकी मृगीके लक्षण हैं ॥ ६ ॥

अथ कफजापस्मारलक्षणम्।

शुक्लफेनांगवक्त्राक्षः शीतो हृष्टांगजो गुरुः ॥ पश्येच्छुक्लानि रूपाणि श्लैष्मिके मुच्यते चिरात् ॥ ७ ॥

शीतः शीतांगः। हृष्टांगजो हृष्टरोमा। गुरुः गुरुगात्रता ॥

जिसको कफकी मृगी होय उस पुरुषके शरीरका, फेनका, नेत्रोंका रंग सफेद, अगोंमे भारीपन, शीत और रोमोंका खडा होना, सब लोकको वस्तुको सफेद ही सफेद देखना और बहुत कालोपरान्त चित्तका शान्त होना, ये लक्षण कफकी मृगीके हैं ॥ ७ ॥

अथ सन्निपातापस्मारलक्षणम्।

समस्तैर्लक्षणैरेतैर्विज्ञातव्यस्त्रिदोषजः ॥ अपस्मारः स चासाध्यो यः क्षीणस्यानवश्च यः ॥ ८ ॥

स च त्रिदोषजः असाध्यः तथा क्षीणस्य अनवश्च एकदोषजोऽपि असाध्य इत्यर्थः ॥

अपस्मारमें ऊपर कहे हुए त्रिदोषके सम्पूर्ण लक्षणोंसे जो पूर्ण हो उस प्राणीको तीनो दोषोंसे अपस्मार रोग जानना, यह रोग असाध्य है और क्षीण मनुष्यको बहुत दिनोकी (पुरानी) मृगी एक दोषसे उत्पन्न हुई भी असाध्य है यह लक्षण सन्निपातकी मृगीके हैं ॥ ८ ॥

अथापस्मारारिष्टम् ।

प्रस्फुरन्तश्च बहुशः क्षीणं प्रचलितभ्रुवम् ॥ नेत्राभ्याश्च विकुर्वाणमपस्मारो विनाशयेत् ॥ ९ ॥

प्रस्फुरन्तं गात्रस्फुरणयुक्तम् । नेत्राभ्याश्च विकुर्वाणं नेत्रे विकृते कुर्वन्तम ॥

जिस मृगीवाले मनुष्यके अंग अधिक फडकते होयँ, शरीर क्षीण होगया होय, नेत्र विकृत होय, भृकुटी भौंह चलायमान होय तो वह रोगी किसीप्रकार मृत्युके पञ्जेसे बच नहीं सकता ॥ ९ ॥

अथापस्मारप्रकोपसमयः ।

पक्षाद्वा द्वादशाहाद्वा मासाद्वा कुपिता मलाः ॥ अपस्मारं प्रकुर्वन्ति वेगं किश्चिदथान्तरम् ॥ १० ॥

पक्षात्पित्तं द्वादशाहाद्वायुर्मासात्कफः अपस्मारं करोतीत्यर्थः । वेगं किञ्चिदथान्तरं किञ्चित्स्वल्पं वेगम् आन्तरम् उक्तकालानामन्तरालेऽपि कुर्वन्ति ॥

प्रकुपित होनेपर पित्तका अपस्मार एक पक्षमें अर्थात् पन्द्रह दिनमें उत्पन्न करेहै और पक्षके मध्यमें भी थोडा सा वेग करेहै, वातका अपस्मार बारह दिनमें उत्पन्न होताहै और इसके मध्यमें भी किञ्चित् वेग करे है, और कफका अपस्मार एक महीनेमें उत्पन्न होताहै और एक महीनेके मध्यमें भी अणुमात्र अपना वेग करैहै ॥ १० ॥

ननु हेतुभूतेषु दोषेषु विद्यमानेषु सदैव तद्व्याधिप्रकोपः कथं न स्यादत आह ।

देवे वर्षत्यपि यथा भूमौ बीजानि कानिचित ॥ शरदि प्रतिरोहन्ति तथा व्याधिसमुच्छ्रयः ॥ ११ ॥

अयमर्थः । यथा उत्पत्तिकारणसामग्र्यां सत्यामपि वास्तुकादिबीजानि स्वभावात् शरदि एव प्ररोहन्ति, तथा हेतुभूतेषु दोषेषु विद्यमानेषु अपि स्वभावात् अपस्मारो द्वादशाहादिषु एव वेगं करोति इत्यर्थः ॥

शंका—अपस्मारके कारणरूप दोषोंके सदैव विद्यमान रहनेपर अपस्मार सर्वदा क्यों नहीं रहता ।

समाधान—जिसप्रकार उत्पत्तिके कारणरूप पूर्ण वर्षा होनेपर भी बथुए इत्यादिके बीज स्वभावके कारण शरदऋतुमे ही उपजतेहैं, ऊसीप्रकार कारणरूप दोषोंके विद्यमान होनेपरभी अपने स्वभावसे ही द्वादशादिकदिवसमें अपस्मार भी अपने कोपको प्राप्त होताहै ॥ ११ ॥

अथापस्मारचिकित्सा ।

तैलेन लशुनः सेव्यः पयसा च शतावरी ॥ ब्राह्मीरसश्च मधुना सर्वापस्मारभेषजम् ॥ ॥ १२ ॥ चूर्णैः सिद्धार्थकादीनां भक्षितैरथवाऽपि तैः ॥ गोमूत्रपिष्टैः सर्वांगलेपैः शाम्यत्यपस्मृतिः ॥ १३ ॥ सिद्धार्थशिग्रुकट्वंगकिणिहीभिः प्रलेपनम् ॥ चतुर्गुणगवां मूत्रे तैलमभ्यञ्जने हितम् ॥ १४ ॥ कट्वंगः [सोनापाठा] किणिही [चिरचिटा] ॥ निर्गुण्डीभववन्दारनावनस्य प्रयोगतः ॥ उपैति सहसा नाशमपस्मारो महागदः ॥ ॥ १५ ॥ मनोह्वा तार्क्ष्यविष्ठा च शकृत्पारावतस्य च ॥ अञ्जनाद्धन्त्यपस्मारमुन्मादश्च विशेषतः ॥ १६ ॥

मनोह्वा मनःशिला । शकृद्विष्ठा ॥

यः खादेत्क्षीरभक्ताशी माक्षिकेण वचारजः ॥ अपस्मारं महाघोरं चिरोत्थं स जयेद् ध्रुवम् ॥ १७ ॥ कूष्माण्डकफलोत्थेन रसेन परिपेषितम् ॥ अपस्माराविनाशाय यष्ट्याह्वं स पिबेत्र्यहम् ॥ १८ ॥

त्र्यहमिति एकस्य पानात् दिवसत्रयेणैव अपस्मारोपशमो भवति इति अभिप्रायः॥

तेलमें मिलाकर लहसुन, दूधमें औटाकर सतावर और सहतमे मिलाकर ब्राह्मीका रस सेवन करे तो सब प्रकार का अपस्मार निवारण होताहै।

सरसों, सहँजना, सोनापाठा (अरलू), लटजीरा (चिरचिटा) इन सबका चूर्ण खानेसे अथवा इनको मूत्रमें पीसकर शरीरपर लेप करनेसे अथवा इनही औषधियोंमे चौगुना गोमूत्र मिलाकर और उतनाही तेल मिलाकर विधिपूर्वक पकाकर सब शरीरपर मालिस करनेसे अपस्मार रोग शान्त होताहै।

निर्गुण्डीके वन्देकेरसका नास लेनेसे महाबलवान् अपस्मार रोगका तुरन्त ही नाश होताहै। मैनशिल,रसौत, गोबर और कबूतरकी बीट, इन सब औषधियोंको महीन पीस अञ्जन बनावे, इस अञ्जनको नेत्रोंमें लगानेसे अपस्मार और उन्माद अवश्य ही दूर होताहै।

सहतके साथ ब्रुडवचके चूर्णको चाटै और दूध भात खाय तो महाघोर बहुत दिनोका पुराना अपस्मार अवश्य ही नष्ट होताहै।

मुलैठीको महीन पीसकर पेठेके रसके साथ तीन दिन पीनेसे अपस्मारका नाश होताहै॥ १२–१८॥

अथ ब्राह्मीघृतम्।

ब्राह्मीरसवचाकुष्ठशङ्खपुष्पीश्रृतं घृतम्॥ पुराणं स्यादपस्मारोन्मादग्रहहरं परम्॥ १९॥

एतस्य प्रक्रिया पुराणं गोघृतं प्रस्थमितम्। वचाकुष्ठशङ्खपुष्पीणां समुदितानां कुडवमितानां कल्केन प्रस्थमितब्राह्मीरसपिष्टेन पचेत्॥

वच सोलह १६ तोले, कूट सोलह १६ तोले, शखपुष्पी (कौडिला) सोलह १६ तोले, इन सबको चौसठ ६४ तोले ब्राह्मीके रसमे पीसकर उसमे चौसट ६४ तोला पुराना गौका घृत मिलाकर कल्क बनावे, उसका सेवन करनेसे अपस्मार, उन्माद और सम्पूर्ण ग्रहदोषोका विनाश होताहै॥ ९॥

अथ कूष्माण्डघृतम्।

... सर्पिरष्टादशगुणे पचेत्॥ यष्टयाह्वकल्कं तत्पानमपस्मारविनाशनम्॥ २०॥

अठारह गुणे पेठेके रसमे स्वच्छ गायके घीमें मुलेठीका कल्क मिलाकर पकावे, जब पक करके स्वांगशीतल होजाय तब उस कूष्माण्डघृतका सेवन करे तो अपस्मारका शीघ्रही विनाश होताहै॥ २०॥

अथ कल्याणचूर्णम्।

हृत्कम्पोऽक्षिरुजा यस्य स्वेदो हस्तादिशीतता॥ २१॥ दशमूलीजलं तस्य कल्याणाख्यं प्रयोजयेत्॥ पञ्चकोलं समरिचं त्रिफला बिडसैन्धवम्॥ २२॥ कृष्णाविडङ्गपूतीकयवानीधान्यजीरकम्॥ पीतमुष्णाम्बुना चूर्णं वातश्लेष्मामयापहम्॥ ॥ २३॥ अपस्मारे तथोन्मादेऽप्यर्शसां ग्रहणीगदे॥ एतत्कल्याणकं चूर्णं नष्टस्याग्नेश्च दीपनम्॥ २४॥

हृदयमे कंप, नेत्रोमे पीडा, शरीरमें पसीना और हाथपाओंमे शीतलता, जिस मृगी रोगवाले मनुष्यके होय उसको दशमूलका क्वाथ और कल्याण चूर्ण देवे, उस कल्याणचूर्णमें क्या क्या औषधि हैं सो सब लिखतेहैं, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, मिर्च, हरड, बहेडा, आमला, विडलौन, सैंधानोन, वायविडंग, करजुआ, अजवायन, धनियाँ और जीरा, इन सब औषधियोंका चूर्ण महीन पीसकर गरम पानीके साथ फॉकनेसे वात, कफके रोग, अपस्मार, उन्माद, बवासीर, संग्रहणी और मन्दाग्नि, इन सबको शान्त करेहै॥ २१–२४॥

द्वौ कीटमेढ्रौ विधिवदानीय रविवासरे॥ कण्ठे भुजे वा सन्धार्य जयेदुग्रामपस्मृतिम्॥ २५॥

अयन्तु कीटो नदीतीरे सिकतामध्ये तिष्ठति॥ शिग्रुकुष्ठजलाजाजीलशुनव्योषहिंगुभिः॥ बस्तमूत्रे श्रृतं तैलं नावनं स्यादपस्मृतौ २६ जलं वालकम्। अजाजी जीरकः। बस्तः छागः। नावनं नस्यम्॥

उन्मादेषु यदुद्दिष्टं पथ्यं नस्याञ्जनौषधम्॥ अपस्मारेऽपि तत्सर्वं प्रयोक्तव्यं भिषग्वरैः ॥ २७ ॥

नदीके किनारे बालू (रेत) के भीतर रहनेवाले कीडों (मिरगचना) के दो भेद रविवारके दिन विधिपूर्वक लाकर अपस्मारवाले रोगीके कंठ और भुजामें बाँधनेसे महा भयंकर अपस्मारका भी विनाश होताहै।

सहँजना, कूट, सुगन्धवाला, जीरा, लहसुन, त्रिकुटा (सोंठ मिरच पीपल) और हींग, इन औषधियोंको पीसकर बकरेके मूत्र और तेलमें पकाले, उसका नास लेनेसे अपस्मार नाश होताहै।

उन्मादमें जो जो पथ्य, नास, अञ्जन और औषधि लिखी हैं वे सब औषधि अपस्मारमें भी व्यवहारमें लानी चाहिये ॥ २५–२७ ॥

अथ भूतभैरवरसः।

मृतसूताभ्रलोहश्च शिलागन्धश्च तालकम्॥ रसाञ्जनश्च तुल्यांशं नरमूत्रेण मर्दयेत् ॥ ॥ २८ ॥ तद्गोलद्विगुणं गन्धं लौहपात्रे क्षणं पचेत्॥ पञ्चगुंजोन्मितं भक्ष्यमपस्मारहरं परम् ॥ २९॥ व्योषं सौवर्चलं हिंगु नरमूत्रेण सर्पिषा ॥ पिबेत्कर्षमितं पश्चाद्-सोऽयं भूतभैरवः ॥ ३० ॥

इति अपस्माराधिकारः।

पारेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, लोहेकी भस्म, मैनशिल, गन्धक, हरिताल और रसौत, इन सबको समान भाग लेकर मनुष्यके मूत्रमें खरल करे, फिर इसका गोला बनाकर, गोलेसे दूनी गन्धकके साथ लोहके वर्तनमें क्षणमात्र पकावे, इस प्रकार 'भूतभैरव' नाम रस सिद्ध होता है, इस रसको पाँचरत्ती खानेसे अपस्मारका नाश होताहै, इसको खाकर त्रिकुट, कालानिमक और भूनी हींग, इनको महीन पीसकर मनुष्यके मूत्र और घृतके साथ पिवै ॥ २८–३० ॥

इति अपस्माररोगाधिकारः समाप्तः।

अथ वातव्याध्यधिकारः।

तत्र वातव्याधिसामान्यकारणानि।

कषायकटुतिक्तकैः प्रमितरूक्षलघ्वन्नतः पुरःपवनजागरप्रतरणाभिघातश्रमैः ॥ हिमादनशनात्तथा निधुवनाच्च धातुक्षयान्मलादिरयधारणान्मदनशोकचिन्ताभयैः ॥ १ ॥ अतिक्षतजमोक्षणाद्द्रुतातिमात्रसक्षयादतीववमनात्तृणामतिविरेचनादामतः॥पयोदसमये दिनक्षणदयोस्तृतीयांशयोर्जरामतिगतेऽशिते शिशिरसंज्ञकालेऽपि च ॥ २ ॥ देहे स्रोतांसि रिक्तानि पूरयित्वाऽनिलो बली ॥ करोति विविधान्रोगान्सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रयान् ॥ ३ ॥

प्रमितम् अत्र वैपरीत्येन उपसर्गस्तेन अपरिमितमित्यर्थः। प्रकर्षेण मितमत्यल्पं वा लघ्वन्नम्। अतिपुराणं शाल्यादि। कतिचिदन्नानि नवानि अपि वातलानि। यत आह—गुणरत्नमालायाम्।

नीवारस्त्रिपुटः सतीनचणकश्यामाकमुद्गाढकीनिष्पावश्च मकुष्ठकश्च वरटा मंगल्यकः कोद्रवः ॥ ४ ॥

एते वातकरा इति शेषः। नीवारः प्रसाधिका तीनीति लोके। त्रिपुटः खेसारीति लोके। सतीनः कलायः। निष्पावो राजमाषः बोडा इति लोके। मकुष्ठकः मोठ इति लोके। वरटा वरटिका वर्रे इति लोके। मंगल्यः मसूरी। पुरःपवनः प्राग्वातः। आमतः आमेन मार्गावरणात्। यत उक्तम् "वायोर्धातुक्षयात्कोपो मार्गस्यावरणेन च" इति पयोदसमये वर्षासु। जरामतिगते अशिते भुक्तेऽतीव जीर्णतां गते। देहे स्रोतांसि इत्यादिना संप्राप्तिरुक्ता कषायादिभिर्हेतुभिः॥

कसैला, चरपरा, कडवा, अत्यन्त थोडा, अत्यन्त अधिक, रूखा तथा हलका ऐसा अन्न भोजन करनेसे, पूर्वदिशाकी पवनको सेवन करनेसे, जागनेसे, पानीमें तैरनेसे, चोट आदिके लगनेसे, श्रमसे, अत्यन्त शीतके लगनेसे, उपवास (व्रत) आदि करनेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे, धातुओंके क्षयसे, मल मूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे, कामदेवकी पीडासे, शोकसे, चितासे, भयसे, बहुत रुधिरके निकलवानेसे, रोगसे मासके क्षीण होनेसे, अत्यन्त वमन और विरेचन करनेसे और आमसे वातसम्बन्धी व्याधि उत्पन्न होतीहैं ॥

वर्षाऋतुमें, दिनके तथा रात्रिके तीसरे भागमें, भोजन किये अन्नके जीर्ण होनेपर और शिशिर ऋतुमें भी बलवान् वायु शरीरके खाली स्रोतोंमें भरकर सम्पूर्ण शरीरमें रहनेवाले अथवा एक किसी अंगमें रहनेवाले अनेक प्रकारके रोगोंको उत्पन्न करैहै ।

अत्यन्त पुराने शालिचावल आदि अन्न हलके अन्न गिने जातेहैं, कितनेक नवीन अन्न भी वायुको उत्पन्न करनेवाले है गुणरत्नमाला निघण्टुमें लिखाहै कि, तिनी (नीवार, पुनेरा) कस्सा (खेसारी) मटर, चने, समा, मूंग, अडहर, लोविया, मोठ, कर्र और मसूर तथा कोदों ये धान्य वायुको उत्पन्न करनेवाले हैं । आमसे मार्गका आवरण होताहै इस कारण आमसे भी वायुसम्बन्धी रोग उत्पन्न होतेहैं । अन्य ग्रन्थोंमे भी कहाहै कि, धातुओके क्षयसे और मार्गोंके आवरणसे वायुका कोप होताहै १–४॥

अथ वर्षर्त्वादिकारणप्रबलवातोत्पन्नव्याधिनामान्याह ।

शिरोग्रहोऽल्पकृशता जृम्भात्यर्थं हनुग्रहः ॥ जिह्वास्तम्भो गद्गदत्वं मिन्मिनत्वञ्च ॥ ५ ॥ वाचालता प्रलापश्च मूकता ... रसानाम् ...नभिज्ञता ॥ बाधिर्यं कर्णनादश्च स्पर्शाज्ञ...त्वं तथार्दितम् ॥ ६ ॥ मन्यास्त-म्भोऽत्र ...गणितो बाहुशोषोऽपबाहुकः ॥ वर्णिता ...त्रैव विश्वाची ऊर्द्ध्ववात उदीरितः॥ ॥ ७ ॥ ...आध्मानश्च प्रत्याध्मानं वाताष्ठीला प्रत्यष्ठील...र्वा ॥ तूनी च प्रतितूनी च वह्निवैष-म्यमेव च...हो ॥ ८ ॥ आटोपः पार्श्वशूलश्च त्रिकशूलं तथैव च॥ मुहुश्च मत्रणं मूत्रनिग्रहो मलगाढता॥९॥ पुरीषस्याप्रवृत्तिश्च गृध्रसी च ततः परा ॥ कलायखञ्जता वापि खञ्जता पंगुता तथा ॥ १०॥ क्रोष्टुशीर्षकखल्ल्यौ च वातकण्टक एव च ॥ पादहर्षः पाददाह आक्षेपो दण्डकाभिधः ॥ ११ ॥ वातपित्तकृताक्षेपस्तथा दण्डापतानकः ॥ अभिघातकृताक्षेप आयामो द्विविधः स्मृतः ॥ १२ ॥ आन्तरश्च तथा बाह्यो धनुर्वातश्च कुब्जकः ॥ अपतन्त्रोऽपतानश्च पक्षाघातोऽखिलांगकः ॥ ॥ १३ ॥ कम्पः स्तम्भो व्यथा तोदो भेदश्च स्फुरणं तथा ॥ रौक्ष्यं कार्श्यंश्च कार्ष्ण्यंश्च शैत्यं लोम्नाश्च हर्षणम् ॥१४॥ अंगमर्दोऽगविभ्रंशः शिरासंकोच एव च ॥ अंगशोषश्च भीरुत्वं मोहश्च चलचित्तता ॥ १५ ॥ निद्रानाशः स्वेदनाशो बलहानिस्तथैव च ॥ शुक्रक्षयो रजोनाशो गर्भनाशः परिश्रमः ॥ १६ ॥ एत एवाशीतिसंख्या रोगा योगेन रूढितः ॥ वातव्याधीति नामानो मुनिभिः परिकीर्तिताः ॥ १७ ॥

एत एव शिरोग्रहादय एव । योगेन वातेन वाताद्व्याधिर्वातव्याधिरिति निरुत्तया तदा वातज्वरादिष्वपि प्रसंगः स्यादत आह रूढितः प्रसिद्धितः । शिरोग्रहादयोऽशीतिरेव वातव्याधिसंख्याः प्रसिद्धा न तु वातज्वरादयः

शिरोग्रह । १ । अल्पकृशता । २ । जृम्भा । ३ । हनुग्रह । ४ । जिह्वास्तम्भ । ५ । गद्गदता । ६ । मिन्मिनत्व । ७ । मूकता । ८ । वाचालत्व । ९ । प्रलाप। १०। रसाज्ञान । ११ । बाधिर्य । १२ । कर्णनाद । १३ । त्वक्छून्यता । १४। अर्दित । १५ । मन्यास्तम्भ । १६। बाहुशोष १७ । अपबाहुक । १८ । विश्वाची । १९ । ऊर्ध्ववाहु । २० । आध्मान । २१ । प्रत्याध्मान । २२ । वाताष्ठीला । २३ । प्रत्यष्ठीला । २४ । तूनी । २५ ।

प्रतितूनी । २६ । वह्निवैषम्य । २७ । आटोप । २८ । पार्श्वशूल । २९ । त्रिकशूल । ३० । मुहुर्मूत्रणा ।३१।मूत्रनिग्रह । ३२ । मलगाढता । ३३ । मलप्रवृत्ति । ३४ । गृध्रसी । ३५ । कलायखञ्जता । ३६ । खञ्जता । ३७ । पङ्गुता । ३८ । क्रोष्टुशीर्ष । ३९ । खल्ली । ४० । वातकंटक । ४१ । पादहर्ष । ४२ । पाददाह । ४३ । दण्डकाक्षेप । ४४ । वातपित्तकृताक्षेप । ४५ । दण्डापतानक । ४६ । अभिघाताक्षेप । ४७ । अन्तरायाम । ४८ । बाह्यायाम । ४९ । धनुर्वात । ५० । कुब्जक । ५१ । अपतन्त्र । ५२ । अपतानवात । ५३ । पक्षाघात ।५४। सर्वांगवात । ५५ । कम्प । ५६ । स्तम्भ । ५७ । व्यथा । ५८ । तोद । ५९ । भेद । ६० । स्फुरण । ६१ । रौक्ष्य । कार्श्य । ६३ । कार्ष्ण्य । ६४ । शैत्य । ६५ । लोमहर्ष । ६६ । अंगमर्द ।६७ । अंगविभ्रंश । ६८ । शिरासंकोच । ६९ । अंगशोष । ७० । भीरुता । ७१ । मोह । ७२ । चलचित्तता । ७३ । निद्रानाश । ७४ । स्वेदनाश । ७५ । बलहानि । ७६ । शुक्रनाश । ७७ । रजनाश । ७८ । गर्भनाश । ७९ । परिश्रम । ८० । ये अस्सी ८० रोग वातव्याधि नामसे कहलाते हैं ऐसा मुनियोंका वाक्य है ।

'वातव्याधि' यह यौगिक नाम है और रूढि नामभी है शिरोग्रह आदि वातसे उत्पन्न होतेहैं इस कारण ये वातव्याधि कहलातेहैं अत एव वातव्याधि शब्दका जो समास सिद्ध अर्थ है उस उसमे प्रवर्तन होनेसे 'वातव्याधि' शब्द यौगिक गिनाजाताहै,किन्तु ये अस्सी व्याधिही 'वातव्याधि' कहीजातीहैं पर वातज्वर आदि व्याधि 'वातव्याधि' नही कहीजातीं ऐसी प्रसिद्धिहै इस कारण 'वातव्याधि' शब्द रूढिभी गिना जाताहै, जो इकला यौगिकही गिना जाता तो वातज्वर आदि व्याधियोंमें भी इस शब्दकी प्रवृत्ति होजाती ॥ ५–१७ ॥

अथ वातव्याधिसामान्यचिकित्सा ।

मधुरलवणसाम्लस्निग्धनस्योष्णनिद्रागुरुरविकरबस्तिस्वेदसन्तर्पणानि ॥ दहनजलदशोपाभ्यंगसंमर्दनानि प्रकुपितपवनानां शान्तिमेतानि कुर्युः ॥ १८ ॥

मधुर, खारी, खट्टे और स्निग्ध पदार्थ, नस्य (नासलेना), गरम पदार्थ, निद्रा, भारी पदार्थ, सूर्यकी धूप, बस्तिकर्म (पिचकारी आदि लगाना), सेक आदि स्वेदनकर्म, तर्पण करना, दाग देना, जलका छिडकना, क्रोध, स्नेहका अभ्यंग (मालिस) और शरीरको मर्दन करना ये सब कर्म कुपित हुई वायुको शांत करैं-हैं ॥ १८ ॥

अथ शिरोग्रहलक्षणम् ।

रक्तमाश्रित्य पवनः कुर्यान्मूर्द्धधराः शिराः ॥ रूक्षाः सवेदनाः कृष्णाः सोऽसाध्यः स्याच्छिरोग्रहः ॥ १९ ॥

मूर्द्धधराः ग्रीवागताः । पवनः शिरोग्रहः स्यात् इत्यन्वयः । स च असाध्यः ॥

कुपित वायु रुधिरमें प्राप्त होकर नाडमें रहनेवाली शिराओंको रूक्ष वेदनायुक्त और काली करदेतीहै उसके शिरोग्रह कहतेहैं यह शिरोग्रह असाध्य है ॥ १९ ॥

अथ शिरोग्रहचिकित्सा ।

शिरोग्रहे तु कर्तव्या शिरागतमरुत्क्रिया॥ दशमूलीकषायेण मातुलुंगरसेन च ॥ शृतेन तैलेनाभ्यंगः शिरोबस्तिश्च युज्यते ॥ २० ॥

शिरोग्रह हुआ होय तो शिराओंमें रहनेवाली वायुकी चिकित्सा करनी चाहिये, दशमूलके क्वाथसे और विजौरे नींबूके रसके द्वारा पकायेहुए तेलका अभ्यंग और इसी तेलकी शिरोबस्ति देनी चाहिये (शिरोबस्तिकी विधि प्रथम खंडमें कहआयेहैं,) सो देखलेना ॥ २० ॥

अथ जृम्भालक्षणम् ।

पीत्वैकं श्वासमनिलः पुनस्त्यजति वेगवान्॥ आलस्यनिद्रायुक्तश्च स जृम्भ इति कथ्यते ॥ २१ ॥

जृम्भशब्दस्त्रिलिंगः । तथा च "जृम्भस्तु त्रिषु जृम्भणम्" इत्यमरः ॥

वेगवाला पवन एक श्वासको पीकर फिर उस श्वासको बाहर निकालताहै और उसके साथ आलस्य तथा निद्राभी प्रतीत होतीहै उसको जृम्भा (जभाई) कहतेहैं ।

मूल श्लोकमें जृंभा शब्दके बदले जृम्भ लिखाहै उसका कारण यह है कि, संस्कृत भाषामें जृम्भ शब्द त्रिलिंग है, जृम्भ शब्द तीनों लिंगोंमें होताहै

और जृम्भण शब्द नपुंसक लिंगमे है ऐसा अमरकोषमे कहा है ॥ २१ ॥

अथ जृम्भाचिकित्सा ।

शुण्ठी पिप्पल्यूषणं दीप्यकश्च सिन्धूद्भूतं चेति सर्वं पृथग्वा ॥ तद्रूपं वा सूक्ष्मचूर्णीकृतं वा जृम्भारम्भस्तंभकृत्स्यात्तदेव२२॥ जृम्भावेगे समुत्पन्ने शोभने शयने नरम् ॥ स्वापयेत्तेन नियमाज्जृम्भावेगः प्रशाम्यति ॥ २३॥ जृम्भावेगः क्षयं याति कटुतैलेन मर्दनात् ॥ भोजनात्स्वादुभोज्यानां तथा ताम्बूलभक्षणात् ॥ २४ ॥

सोंट, पीपल, कालीमिरच,अजवायन और सैधानिमक इन पदार्थोंको अलग अलग अथवा एकत्र मिलाकर बारीक चूर्ण करके खाय तो तत्कालही जम्भाई रुक जाती ह ।

जब जम्भाई आना आरम्भ होय तब उस मनुष्यको सुंदर शय्यापर शनयभवनमे सुला देवै इससे जम्भाई रुक जाती हैं ।

सरसोंके तेलकी मालिस करनेसे, मधुर भोजनसे और नागवेल (ताम्बूलके) खानेसे जम्भाई शांत होजाती- है ॥ २२–२४ ॥

अथ हनुग्रहनिदानलक्षणे ।

जिह्वानिर्लेखनाच्छुष्कभक्षणादभिघाततः ॥ कुपितो हनुमूलस्थः स्रंसयित्वाऽनिलो हनुम् ॥ २५ ॥ करोति विवृतास्यत्वमथ वा संवृतास्यताम् ॥ हनुग्रहः स तेन स्यात्कृच्छ्राच्चर्वणभाषणम् ॥ २६ ॥

निर्लेखनं कर्षणम् । शुष्कं चणकादि । स्रंसयित्वा अधः कृत्वा विवृतास्यत्वं व्यात्तमुखत्वम् । संवृतास्यत्वं दन्तलग्नताम् ॥

जीभको घिसनेसे, चने आदि सूखे पदार्थोंके चाबनेसे, तथा अभिघात (चोट) से कोपको प्राप्तहुई ठोडीकी जडमें रहनेवाला वायु ठोडीको नीचे करके मुखको बंद करदेताहै अथवा खोलदेताहै इसमें कठिनतासे चाबना और बोलना होताहै इसको हनुग्रह कहते हैं ।

इस रोगमे जो मुख बंद रहजाताहै तो दांतके जावडे परस्पर मिलजाते हैं और जो मुख खुलारहजाताहै तो दातके जावडे परस्पर नहीं मिलसक्ते ॥ २५ ॥ २६ ॥

अथ हनुग्रहचिकित्सा ।

संवृतं चिबुकं स्निग्धं स्विन्नमुन्नमयेद्भिषक्॥ विवृतं नमयित्वा तु कुर्यात्प्राप्तामिह क्रियाम् ॥ २७ ॥ पिप्पलीमार्द्रकञ्चापि सञ्चर्व्य च मुहुर्मुहुः॥ निष्ठीवेत्तप्ततोयेन शोधयेद्वदनान्तरम् ॥ २८ ॥ निष्कुल्य लशुनं सम्यक्संक्षुद्य तिलतैलवत् ॥ सैन्धवेनान्वितं खादेद्धनुस्तम्भार्दितो नरः॥ २९ ॥ रसोनगुठिकामाषविदलं परिपेष्य च ॥ योजयेत्पिष्टिकां ताञ्च सैन्धवार्द्रकहिंगुभिः ॥ ॥ ३० ॥ ततस्तु वटकान्कृत्वा तिलतैले पचेच्छनैः ॥ भक्षयेत्तान्यथावह्नि हनुस्तम्भात्सुखी भवेत् ॥ ३१ ॥ अभ्यज्य पक्कतैलेन स्वेदयेन्मृदुनाग्निना ॥ वस्तिं विधारयेन्मूर्ध्नि तैलेन परिपूरितम् ॥ ३२ ॥

मुख बंद होगया होय तो जावडेको स्नेहन और स्वेदन संस्कार कराकर मुखको खोल देवै और जो मुख खुल गया होय तो ठोडीको नमाकर योग्य क्रिया करे ।

पीपल और अदरख इनको चाब चाबकर वारवार थूके और गरम जलसे मुखके भीतरके भागको स्वच्छ करे ।

लसुनको कूटकर तिलके तेलके साथ और सैंधेनिमकके साथ खाय तो हनुग्रह दूर होजाता है ।

लसुन और उडदकी भीजी हुई धुली दाल दोनोकी एकत्र पिठी पीसकर उसमें सैंधानिमक, अदरख और हींग डालकर वडे बनावे, इन बडोंको तिलके तेलमे धीरे धीरे मंदाग्निसे पकावै, अपनी जठराग्निके बलानुसार सेवन करै तो हनुग्रह नष्ट होजाताहै ।

पकाये हुए प्रसारणी तेलकी मालिस करके मद अग्निसे सेककर मस्तकके ऊपर तेलसे भरी हुई वस्तिको धारण करे तो हनुग्रह नष्ट होजाताहै ॥ २७–३२ ॥

अथ प्रसारणीतैलम् ।

समूलपत्रशाखायाः प्रसारण्याः शतं पलैः ॥ सम्यक्संक्षुद्य सलिले द्रोणमात्रे पचेद्भिषक् ॥ ३३ ॥ सलिलस्य चतुर्थांशं क्वाथं समवशेषयेत् ॥ ततः पलशते तैले तं कषायं पुनः पचेत् ॥ ३४ ॥ पचेत्पलशतं मस्तु काञ्जिकं मस्तुनः समम् ॥ ततः शुद्धं पचेद्दुग्धं गव्यं तैलाच्चतुर्गुणम् ॥ ३५ ॥ चित्रकं पिप्पलीमूलं मधुकं सैन्धवं वचा ॥ शतपुष्पा देवदारु रास्ना च गजपिप्पली ॥ ३६ ॥ प्रसारणीभवं मूलं मांसी रक्तञ्च चन्दनम् ॥ तथा वातारिमूलञ्च बलामूलञ्च नागरम् ॥ ३७ ॥ तैलस्य चाष्टमांशेन सर्वकल्कानि साधयेत् ॥ नाम्ना प्रसारणीतैलं विख्यातं तत्प्रयुज्यते ३८ ॥ पाने नस्ये शिरोवस्तौ मर्दने स्वेदने तथा ॥ प्रयुक्तं वातजान्रोगान्सर्वानपि विनाशयेत् ॥ ॥ ३९ ॥ विशेषतो हनुस्तम्भं जिह्वास्तम्भं तथार्दितम् ॥ गद्गदत्वञ्च विश्वाचीं मन्यास्तम्भापबाहुकौ ॥ ४० ॥ त्रिकशूलं गृध्रसीञ्च खञ्जतां पंगुतां तथा ॥ कलायखञ्जतां खञ्जं स्तम्भं संकोचमेव च ॥ ४१ ॥ आन्तरं बाह्यमायामं तथा दण्डापतानकम् ॥ धनुर्वातञ्च कुब्जत्वं व्यपोहति न संशयः ॥ ४२ ॥ क्षीणानां स्थविराणाञ्च वातसंकोचितात्मनाम् ॥ प्रसारयेद्यतोऽङ्गानि तदुक्तैषा प्रसारणी ॥ ४३ ॥

चारसौ तोले मूल, पत्र और शाखाओं समेत प्रसारणी (पसरन, गधप्रसारी खीम, नारी इत्यादि कचित् प्रचलित भाषा) का पञ्चाग लेकर अच्छेप्रकारसे कूटकर १०२४ एक हजार चौवीस तोले जलमें पकावे, जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतार लेवे, फिर उस क्वाथको उत्तम छानकर चूल्हे पै चढादेवे और उसमें तिल्का तेल ४०० चारसौ तोले, दहीका तोड ४०० चारसौ तोले काँजी ४०० चारसौ तोले और तेलसे चौगुना उत्तम गायका दूध डालकर यथाविधि पकावै, फिर इसमें चीता पीपलामूल, मुलैठी, सैंधानिमक, वच, सोया, देवदारु, रासना, गजपीपल, प्रसारिणीकी जड वालछड (जटामासी), लाल चंदन, अंडकी जड, खिरैटीकी जड और सोंठ ये सब ५० तोले लेकर कल्क बनाकर तेलमें मिलाकर पकावै, तो प्रसारणी तैल सिद्ध होताहै । इस प्रसारिणी तैलको पीनेसे, नस्यसे, शिरोवस्तिसे, मर्दनसे और स्वेदनकर्मसे सम्पूर्ण वातजन्य व्याधि नष्ट होजाती हैं और विशेष करके हनुग्रह, जिह्वास्तम्भ, अर्दित, गद्गदता, विश्वाची, मन्यास्तम्भ, अपबाहुक, त्रिकशूल, गृध्रसी, खंजता, पङ्गुता, कलायखजता, खज, स्तम्भ, सकोच, अंतरायाम, बाह्यायाम, दडापतानक धनुर्वात और कुब्जत्वका नाश होता है । यह प्रसारिणी औषधि वातके कारण अगमे सकोच हुआ क्षीण हुआ और वातसे सुकडे हुए वृद्ध मनुष्योंके अगोंको फैलादेती है, इस कारण सकोचको नष्ट करनेवाली यह प्रसारिणी नामसे कहीजाती है ॥ ३३-४३ ॥

अथ जिह्वास्तम्भलक्षणम् ।

वाग्वाहिनीशिरासंस्थो जिह्वां स्तम्भयतेऽनिलः ॥ जिह्वास्तम्भः स तेनान्नपानवाक्येष्वनीशता ॥ ४४ ॥

अनीशता असामर्थ्यम् ॥

कुपित वायु वाणीकी वहानेवाली शिराओंमें प्राप्त होकर जीभको स्तब्ध करदेता है इसको जिह्वास्तम्भ कहते हैं । इसमें मनुष्य खान, पान और बोलनेमें असमर्थ होजाता है ॥ ४४ ॥

अथ जिह्वास्तम्भचिकित्सा ।

जिह्वास्तम्भे यथावस्थं वातव्याधिचिकित्सितम् ॥ सामान्योक्ता क्रिया चात्रार्दितस्यापि हिता मता ॥ ४५ ॥

जिह्वास्तम्भ रोगमें अवस्था आदिकी योग्यताके अनुसार वातव्याधिहीकी चिकित्सा करे और अर्दित रोगमें जो सामान्य चिकित्सा कही है वह भी हितकारी है ॥ ४५ ॥

अथ गद्गदमिन्मिनमूकतालक्षणानि ।

आवृत्य वायुः सकफो धमनीः शब्दवा-

हिनीः ॥ नरान्करोत्यवचनान्मूकमिन्मिनगद्गदान् ॥ ४६ ॥

अवचनान् अत्र ईषदर्थे नञ् तेन ईषद्वचनान् ।। स एव वायुः प्रबलश्चेत्तदा मूकान् अवचनान् मिन्मिनान्सानुनासिकवचनान् । गद्गदाँल्लुप्तपदव्यञ्जनाभिधायिनः करोति इति अन्वयः । एषां समानाधिकरणत्वेऽपि दुष्टेरनुत्कर्षादिना अदृष्टवशाद्वा भेदो वोद्धव्यः ॥

कफसहित वायु शब्दको चलानेवाली धमनियोंको आवरण करके मनुष्योंके वचनको क्रियारहित करदेताहै । यही वायु जो प्रवल होय तो मनुष्योंको मूक करदेताहै, अर्थात् गूँगा करदेताहै और जिसमें पदोंका तथा व्यंजनोंका लोप होजाय ऐसा गद्गदपन युक्त करदेताहै ।

पदोंका तथा व्यजनोंका जिसमें बोलते समय लोप होजाय उसको गद्गदत्व कहतेहैं गूंगेकी समान जो अक्षरोंको नाकमें बोले उसको मिन्मिनत्व कहतेहैं । और गूंगापनको मूकता कहतेहै । यद्यपि इन सब रोगोंका एकही स्थान है तथापि दोषोंकी न्यूनाधिकतासे अथवा प्रारब्धके योगसे इन रोगोके भेद होजातेहैं, ऐसा जानना ॥ ४६ ॥

अथ गद्गदमिन्मिनमूकता चिकित्सा ।

अथ सारस्वतघृतम् ।

प्रस्थं घृतस्य पलिकैः शिग्रुवचालवणधातकीलोध्रैः ॥ आजे पयसि सपाठैः सिद्धं सारस्वतं नाम्ना ॥ ४७ ॥ विधिवदुपयुज्यमानं जडगद्गदमूकतां क्षणाज्जित्वा ॥ स्मृतिमतिमेधाप्रतिभाः कुर्यात्सुस्पष्टवाग्भवति ॥ ४८ ॥

सैंजिना, वच, सैंधानमक, धायके फूल, लोध और पाढ इनको चारचार तोले लेकर कल्क बनाकर उस कल्कसे बकरीके दूधमें चौंसठ तोले घृतको पकावै, इसको 'सारस्वत घृत' कहतेहैं, इस घृतको विधिपूर्वक सेवन करनेसे जडता, गद्गदपना और मूकता क्षणभरमें नष्ट होजातीहै, वाणी स्पष्ट होतीहै और स्मृति, मेधा तथा तर्कशक्ति प्राप्त होतीहै ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

अथ कल्याणावलेहः ।

सहरिद्रा वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम् ॥ अजाजी चाजमोदा च यष्टीमधुकसैंधवम् ॥ ४९ ॥ एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ तच्चूर्णं सर्पिषा लेह्यं प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥ ५० ॥ एकविंशतिरात्रेण भवेच्छ्रुतिधरो नरः ॥ मेघदुन्दुभिनिर्घोषो मत्तकोकिलनिस्वनः ॥ ५१ ॥

हलदी, वच, कूठ, पीपल, सोंठ, जीरा, अजमोद, मुलैठी, सैंधानिमक, इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके घीमें मिलाकर नित्य चाटे तो मनुष्य २१ दिनमें श्रवणमात्रसे धारणकरनेकी शक्तिवाले मेघके तथा दुन्दुभि शब्दकी समान स्वरवाले और मदोन्मत्त कोयलकी समान स्वरवाले होजातेहैं ॥ ४९–५१ ॥

अथ प्रलापलक्षणम् ।

स्वहेतुकुपिताद्वातादसंबद्धं निरर्थकम् ॥ वचनं यन्नरो ब्रूते स प्रलापः प्रकीर्तितः ॥ ५२ ॥

अपने कारणोंसे कुपित हुई वायुसे जो मनुष्य असंवद्ध और व्यर्थ बोलनेलगताहै उसको प्रलाप कहतेहैं ॥ ५२ ॥

अथ प्रलापचिकित्सा ।

सतगरवरातिक्तारेवताम्भोदतिक्ता नलदतुरगगन्धाभारतीहारहूराः ॥ मलयजदशमूलीशंखपुष्प्यः सुपक्काः प्रलपनमपहन्युः पानतो नातिदूरात् ॥ ५३ ॥

वरतिक्तोऽत्र पर्पटः।नलदमुशीरम्। भारती ब्राह्मी । हारहूरा द्राक्षा ॥

तगर, पित्तपापडा, अमलतास, नागरमोथा, कुटकी, सुगंधवाला, असगध, ब्राह्मी, दाख, चदन, दशमूल और शंखाहुली इनका विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर सेवन करनेसे प्रलाप तत्काल नष्ट होजाताहै ॥ ५३ ॥

अथ रसाज्ञानलक्षणम्।

भुञ्जानस्य नरस्यान्नं मधुरप्रभृतीन्रसान् ॥ रसज्ञा यन्न जानाति रसाज्ञानं तदुच्यते ॥ ५४ ॥

भोजन करते समय जिस मनुष्यकी जिह्वा मधुर आदि रसोंको न जाने उसको 'रसाज्ञान' कहतेहैं ॥ ५४ ॥

अथ रसाज्ञानचिकित्सा।

घर्षेज्जिह्वां जडां सिन्धुत्र्यूषणैः साम्लवेतसैः ॥ अम्लवेतसकाभावे चुक्रं दातव्यमीरितम् ॥ ५५ ॥

सैंधानिमक, सोंठ, मिरच, पीपल और अमलवेत इनको एकत्र पीसकर जिह्वाको घिसे। जो अमलवेत नहीं मिले तो उसके वदले चूका ले लेवे ॥ ५५ ॥

अथ किराततिक्तादिकल्कः।

किराततिक्तका कट्वी कुटजस्य फलं वचा ॥ ब्राह्मी फलश्च पालाशं सर्जिका कृष्णजीरकम् ॥ ५६ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रं नागरमूषणम्॥ एषां कल्कैर्भुहुर्घर्षेज्जिह्विकामार्द्रिकारसैः ॥ ५७ ॥ तेन सम्यग्विजानाति रसना सकलान्रसान् ॥ कल्कः किराततिक्तादिर्जिह्वायाः शून्यतां हरेत् ॥ ५८ ॥

चिरायता, कुटकी, इन्द्रजौ, वच, ब्राह्मी, ढाकके वीज, सज्जीखार, कालाजीरा, पीपल, पीपलामूल, चीता, सोंठ और मिरच इन सबको अदरखके रसमें पीसकर जीभपर वारंवार घिसे तो जीभको रसका ज्ञान अच्छे प्रकार हो जाताहै, यह 'किराततिक्तादि' कल्क जीभकी जडताको दूर करैहै ॥ ५६–५८ ॥

अथ बाधिर्यकर्णनादौ।

बाधिर्यकर्णनादयोर्लक्षणं चिकित्सा च तदधिकारे वक्ष्यामः ॥

बधिरता और कर्णनाद इनके लक्षण तथा चिकित्सा कर्णरोगाधिकारमें कहेंगे ॥

अथ त्वक्शून्यतालक्षणम्।

स्पृश्यमाना त्वचा या तु शीतोष्णं मृदु कर्कशम् ॥ न जानाति बुधैस्त्वक्च शून्येति परिकीर्त्तिता ॥ ५९ ॥

जो स्पर्श करते समय त्वचामें शीतल, गरम, कोमल, कठिन इनकी खबर न पडे उसको पंडित त्वक्शून्य कहतेहैं ॥ ५९ ॥

अथ त्वक्शून्यचिकित्सा।

सुप्तवाते त्वसृङ्मोक्षं कारयेद्बहुशो भिषक् ॥ दद्याच्च लवणागारधूमैस्तैलसमन्वितैः ॥ ६० ॥

त्वक्शून्यता हुई होय तो वैद्य वारंवार रोगीके शरीरमेंसे रुधिर निकलवावे, फस्त खुलवावे तथा अगारोंके ऊपर तेल और सैंधानिमक, डालकर धुंआँ देवै ॥ ६० ॥

अथार्दितसम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणम्।

उच्चैर्व्याहरतोऽत्यर्थं खादतः कठिनानि च ॥ हसतो जृम्भतो भाराद्विषमाच्छयनासनात् ॥ ६१ ॥ शिरोनासौष्ठचिबुकललाटेक्षणसन्धिगः ॥ अर्दयत्यनिलो वक्रमर्दितं जनयेत्ततः ॥ ६२ ॥ वक्री भवति वक्रार्द्धं ग्रीवा चाप्यपवर्तते ॥ शिरश्चलति वाक्संगो नेत्रादीनाञ्च वैकृतम् ॥ ६३ ॥ ग्रीवाचिबुकदन्तानां तस्मिन्पार्श्वे च वेदना ॥ तमर्दितमिति प्राहुर्व्याधिं व्याधिविशारदाः ॥ ६४ ॥

व्याहरतः वदतः। कठिनानि पूगफलादीनि। विषमाच्छयनासनात्। ग्रीवादिवैपरीत्येन शयनादासनाच्च। अर्दयति पीडयति ततस्तदनन्तरम् अर्दितं जनयेत्। अर्दिते जाते किं स्यात्तदाह वक्री भवति इत्यादि। अपवर्तते वक्रा भवति। चलति कम्पते। वाक्संगः वाङ्निरोधः। नेत्रादीनामिति आदिशब्देन भ्रूगण्डनासिकादीनां ग्रहणम्। वैकृत्यं वेदनास्फुरणवक्रत्वादि। ग्रीवेत्यादि यस्मिन् पार्श्वे अर्दितं तस्मिन् पार्श्वे ग्रीवादीनां वेदना ॥

ऊंचे स्वरसे बोलनेसे, सुपारी आदि कठिन पदार्थोंके खानेसे, अत्यन्त हँसनेसे, अत्यन्त जम्भाई लेनेसे, अधिकतर भारको उठानेसे, नाडको टेढी तिरछी रखकर विषम रीतिसे सोनेसे और विषम रीतिसे बैठनेसे मस्तक, नाक, होंठ, ठोडी, ललाट और नेत्रोंकी संधि इनमें रहनेवाला वायु मुखको पीडित करताहै इससे अर्दित रोग उत्पन्न होताहै जब यह अर्दित रोग उत्पन्न होताहै तब इसमें आधा मुख टेढा होजाताहै, नाड टेढी होजातीहै, मस्तक कांपनेलगताहै, बोलनेमें असमर्थ होजाताहै, नेत्र, भौंह, गाल और नाक इनमें वेदना स्फुरण तथा टेढापन होताहै और जिस ओर यह अर्दित रोग होताहै उसी ओरकी गरदन, ठोडी और दांतोंमें वेदना होतीहै, रोगके ज्ञाता वैद्य इस रोगको 'अर्दित लकवा' कहतेहैं॥ ६१–६४॥

वातात्पित्तात्कफाच्च स्यात्त्रिविधं तत्समासतः ॥ लालास्रावो व्यथा कम्पः स्फुरणं हनुवाग्ग्रहः ॥६५॥ ओष्ठयोः श्वयथुः शूलं चार्दिते वातजे भवेत् ॥ पीतमास्यं ज्वरस्तृष्णा पित्तजे मोहधूपने ॥ गण्डे शिरसि मन्यायां शोथस्तम्भः कफात्मके ॥ ६६ ॥

वातज, पित्तज और कफज इस प्रकार संक्षिप्त रीतिसे अर्दित रोग तीन प्रकारका है।

वातके अर्दित रोगमें रोगीके मुखमें लार गिराकरतीहै, पीडा होतीहै, शिराओंमें स्फुरण होताहै, कंप होताहै, ठोडी जकड जातीहै, कम बोला जाताहै, होठमें सूजन और शूल होताहै।

पित्तके अर्दित रोगमें मुख पीला होजाताहै, ज्वर आजाताहै, तृषा अधिक लगतीहै, मोह और उष्णता होतीहै।

कफके अर्दित रोगमें गले, माथे और मन्यानाडीमें सूजन और स्तम्भ होताहै॥ ६५–६६॥

अथार्दितासाध्यलक्षणम्।

क्षीणस्यानिमिषाक्षस्य प्रसक्ताव्यक्तभाषिणः ॥ न सिध्यत्यर्दितं गाढं त्रिवर्षं वेपनस्य च ॥ ६७ ॥

अनिमिषाक्षस्य निमेषासमर्थचक्षुषः। प्रसक्तं प्रकर्षेण लग्नम् अव्यक्तञ्च भाषितुं शीलं यस्य तस्य अर्दितं न सिध्यति। त्रिवर्षम् अतीतवर्षत्रयम्, अथ वा त्रयाणां चक्षुर्नासामुखानां वर्षः स्रावो यत्र तत्। वेपनस्य कम्पनशीलस्य तस्य गाढमतिशयेन न सिध्यति इति अन्वयः॥

जो मनुष्य अस्फुट तथा परस्पर मिलेहुए अक्षरोंको बोलता होय और जिसके नेत्र पलक मारनेमें असमर्थ होयँ उस मनुष्यका अर्दित रोग आरोग्य नहीं होता।

जिस मनुष्यके अर्दित रोगको उत्पन्न हुए तीन वर्ष बीत गये हों अथवा नेत्र, नाक तथा मुख स्रवता होय और शरीर कांपता होय उस मनुष्यका अर्दित रोग आराम नहीं होता॥ ६७॥

अथार्दितरोगचिकित्सा।

स्नेहपानानि नस्यञ्च भोज्यान्यनिलहारि च ॥ उपनाहाश्च शस्यन्ते नावनं वस्तयोऽर्दिते ॥ ६८ ॥

वस्तिरत्र शिरोवस्तिरेव॥

दशमूलकषायेण मातुलुंगरसेन वा ॥ बलया पञ्चमूल्या वा क्षीरं वातात्मके हितम् ॥ ६९ ॥ पिष्टं मांसघृतं जग्ध्वा नवनीतेन सोऽर्दिती ॥क्षीरमांसरसैर्भुक्त्वा दशमूलीरसं पिबेत् ॥ ७० ॥ अर्दिते पित्तजे शीतान्स्नेहांश्चैव विनिर्दिशेत् ॥ घृतवस्तिप्रसेकञ्च क्षीरमेकं तथैव च ॥ ॥ ७१ ॥ जिह्मीभूताननो मूको दाहवान्योऽर्दिती भवेत् ॥ कुर्यात्प्रतिक्रियां तस्य वातपित्तविनाशिनीम् ॥ ७२ ॥ श्लेष्मभागे क्षयं नीते बृंहणैः समुपाचरेत् ॥ अर्दिते शोथसंयुक्ते वमनं च प्रशस्यते ॥ ७३ ॥ रसोनकल्कं तिलतैलमिश्रं खादेन्नरो योऽर्दितरोगयुक्तः ॥ तस्यार्दितं नाशमुपैति शीघ्रं वृन्दं घनानामिव वायुवेगात् ॥ ७४ ॥

अर्दित रोगीको घृतादि स्नेहपान करावै, वातनाशक नास्य देवै, वातनाशक भोजन खिलावे, उपनाह स्वेद और शिरोवस्ति करावै ।

वातज अर्दित रोगमें दशमूलके क्वाथसे, अथवा विजोरेके रससे अथवा खिरैटीके क्वाथसे अथवा पचमूलके क्वाथसे पकाये हुए दूधको पिये ।

अर्दितरोगी मासको घीमें पीसकर नैनी घीके साथ खाय और ऊपरसे दूध और मांसरसके साथ भोजन करे तथा दशमूलका रस पिये ।

पित्तज अर्दित रोगमें शीतल स्नेहोंका उपयोग करे, शिरमे घीकी पिचकारी लगावे, घृत अथवा दूधका सेवन करे और विशेष करके दूधका उपयोग करे ।

जिस अर्दित रोगीका मुख टेढा होगया होय दाह होता होय और अपने आप गूगा होगया होय उसको वातपित्तनाशक चिकित्सा करनीचाहिये ।

कफके अर्दित रोगवाले मनुष्यका कफ क्षय करके पुष्टिकारक पदार्थोंसे उपचार करे । जो अर्दित रोग सूजन युक्त होय तो उसमें वमन कराना उत्तम है ।

जो अर्दित रोगवाला मनुष्य तिलके तेलमें मिलाकर लसुनके कल्कको सेवन करताहै उसका अर्दित रोग तत्काल नष्ट होजाताहै, जिस प्रकार वायुके वेगसे बादलोंका समूह तत्काल विनाश होजाताहै ॥ ६८–७४ ॥

अथ मन्यास्तम्भनिदानलक्षणे ।

दिवास्वप्नासनस्थानविकृतोर्द्ध्वनिरीक्षणैः ॥ मन्यास्तम्भं प्रकुरुते स एव श्लेष्मणावृतः ॥ ७५ ॥

आसनस्थानविकृतोर्द्ध्वनिरीक्षणैः, आसनेन स्थानेन वा अतिशयेन विकृतं ग्रीवादि विकृतं यथा स्यादेवम् उपरिभागे यन्निरीक्षणं तेन स एव कुपितो वातः श्लेष्मणा आवृतः मन्यास्तम्भं करोति । ग्रीवायाः पश्चाद्भागे चतुर्दशशिरा मन्यासंज्ञाः । तथा च अमरसिंहः " पश्चाद्ग्रीवाशिरा मन्याः" इति । तासां स्तम्भं करोति च ॥

दिनमें सोनेसे, अथवा विपरीत आसनपर बैठनेसे, अथवा विपरीत शैतिसे ऊपर गरदनको करके देखनेसे कोपको प्राप्त हुई वायु कफके साथ मिलकर नाडके पिछले भागमे रहनेवाली मन्या नामक शिराओंको स्तब्ध कर देतीहै, इसको मन्यास्तम्भ रोग कहतेहैं ॥ ७५ ॥

अथ मन्यास्तम्भचिकित्सा ।

दशमूलीकृतं क्वाथं पञ्चमूल्यापि कल्पितम् ॥ रूक्षं स्वेदं तथा नस्यं मन्यास्तम्भे प्रयोजयेत् ॥ ७६ ॥ तैलेनाज्येन वा ग्रीवामभ्यज्यार्कदलैरथ ॥ एरण्डपत्रैर्वाच्छाद्य स्वेदयेद्बहुशो भिषक् ॥ ७७ ॥ कुक्कुटाण्डद्रवैरुष्णैः सैन्धवाज्यसमन्वितैः ॥ ग्रीवां संमर्दयेत्तेन मन्यास्तम्भः प्रशाम्यति ॥ ७८ ॥

दशमूलके क्वाथका अथवा पचमूलके क्वाथका, रूक्ष स्वेदन और नस्य इनका उपयोग मन्यास्तम्भको नष्ट करदेताहै ।

तेल अथवा घीका गर्दनपर मालिस करके आकके पत्तोंसे अथवा अण्डके पत्तोंसे गरदनको बाधे और बारबार सेक करै तो मन्यास्तम्भ नष्ट होजाताहै ।

मुरगेके अण्डेके रसको गरम करके उसमें सैंधानमक और घी डालकर गर्दनको मलनेसे मन्यास्तम्भ दूर होजाताहै ॥ ७६–७८ ॥

अथ बाहुशोषलक्षणम् ।

अंसदेशे स्थितो वायुः शोषयेदंसबन्धनम् ॥ अंसबन्धनशोषात्स्याद्बाहुशोषः सवेदनः ॥ ७९ ॥

कन्धे अथवा खवेमे रहनेवाली वायु खवोंके बधनको सुखा देतीहै, उस खवोंके बधनके सूखनेसे अत्यन्त वेदनावाला बाहुशोष रोग उत्पन्न होताहै ॥ ७९ ॥

अथ बाहुशोषचिकित्सा ।

बाहुशोषे पिबेद्भुक्त्वा सर्पिः कल्याणकं महत् ॥ बलामूलशृतं तोयं सैन्धवेन समन्वितम् ॥ बाहुशोषकरे वाते मन्यास्तम्भे च शस्यते ॥ ८० ॥

बाहुशोष उत्पन्न हुआ होय तो भोजन करनेके पश्चात् महाकल्याण नामक घी पिये ।

खिरैटीकी जडका क्वाथ बनाकर उसमें सैंधानिमक

मिलाकर पिये तो बाहुशोष और मन्यास्तम्भको नष्ट करैहै ॥ ८० ॥

अथापबाहुकलक्षणम् ।

शिराः संकोच्य बाहुस्थः स कुर्यादपबाहुकम् ॥ ८१ ॥

स वायुः बाहुस्थः । शिराः बाहुस्थशिराः ॥

बाहुमे रहनेवाली वायु बाहुमें रहनेवालीशिराओंको सकुचित करके अपबाहुक रोगको उत्पन्न करैहै ॥ ८१ ॥

अथापबाहुकचिकित्सा ।

परमौषधमपबाहुकमन्यास्तम्भोर्द्धजत्रुगतरोगे ॥ शीतलजलेन नस्यं तदुपशमे जिङ्गिनी च पुरः ॥ ८२ ॥ मूलं बलायास्त्वथ पारिभद्रजं तथात्मगुप्तास्वरसं पिबेद्वा ॥ युञ्जीत यो माषरसेन नस्यं भवेदसौ वज्रसमानबाहुः ॥ ८३ ॥

बलाया मूलं कल्कीकृतं पिबेत् तथा पारिभद्रमूलञ्च । पारिभद्रोऽत्र फरहद इति लोके वातहरत्वात् ॥

अपबाहुक रोगमे, मन्यास्तम्भ रोगमें और कंठसे ऊपरके रोगोंमें शीतल जलका नस्य देवे, नस्यके शान्त होनेके पश्चात् जिंगिनी और गूगलका उपयोग करे, यह उत्तम औषधि है।

खिरैटीकी जड और फरहदकी जडको पीसकर पीनेसे अथवा कौछके स्वरसको पीनेसे और उडदोंके रसका नास लेनेसे बाहु वज्रकी समान होजातीहै ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

अथ माषतैलम् ।

माषातसीयवकुरण्टककण्टकारीगोकण्टटुण्टुकजटाकपिकच्छुतोयैः॥कार्पासकास्थिशणबीजकुलत्थकोलक्वाथेन बस्तपिशितस्यरसेन वापि ॥८४॥ शुण्ठ्या समागधिकया शतपुष्पया च सैरण्डमूलकपुनर्नवया सरण्या ॥ रास्नाबलामृतलताकटुकाविपक्वं माषाख्यमेतदपबाहुहरं हि तैलम् ८५॥

उडद, अलसी, जौ, कटसरैया, कटेरी, गोखरू, अरुलुकी जड, जटामॉसी, कौंछ, सुगधबाला, कपास, सनकेबीज, कुलथी और बेर इनके क्वाथसे, बकरेके मांसके रससे, सोंठ, पीपल, सोया (सौंफ), अंडकी जड, पुनर्नवा, प्रसारणी, रास्ना, खिरैटी, गिलोय और कुटकी इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल अपबाहुकको नष्ट करैहै। इसको 'माषतैल' कहतेहैं ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

अथ विश्वाचीलक्षणम् ।

तलं प्रत्यंगुलीनां या कण्डरा बाहुपृष्ठतः॥ बाह्वोः कर्मक्षयकरी विश्वाची सा निगद्यते ॥ ८६ ॥

कण्डरा महास्नायुः । तलं हस्तस्य उपरिभागः तलशब्दोऽत्र उपरिवाचकः यथा भूमितलमिति । तेन अयमर्थः, बाहुपृष्ठतः बाह्वोः पृष्ठं बाहुपृष्ठमारभ्य तलं प्रतिहस्ततलं यावल्लक्षीकृत्य अंगुलीनां या कण्डरा तां सन्दूष्य बाह्वोः प्रसारणाकुञ्चनादिकर्मक्षयकरी भवति सा इह वातव्याधिषु विश्वाची इत्युच्यते । बाह्वोरिति द्वित्वं सम्भवपरम् एकस्मिन्नपि बाहौ विश्वाची भवति ॥

बाहुकी पृष्ठसे लेकर हाथके ऊपरभाग तक अंगुलियों तक रहनेवाली कंडराका नाम मोटीनसे हैं उनको दूषित करके दोनो बाहुको फैलाने, सकोडने आदि कामोको नष्ट करनेवाला जो रोग उत्पन्न होताहै उसको 'विश्वाची' कहते हैं। यह रोग एक बाहुमें भी होजाताहै ॥ ८६ ॥

अथ विश्वाचीचिकित्सा ।

दशमूलीबलामाषक्वाथं तैलाज्यमिश्रितम् ॥ सायं भुक्त्वा पिबेन्नस्यं विश्वाच्यामपबाहुके ॥ ८७ ॥

जो विश्वाची अथवा अपबाहुकरोग उत्पन्न हुआ होय तो सन्ध्याके समय दशमूल, खिरैटी और उडद इनके क्वाथमें तैल और घी मिलाकर सायकालको भोजनकरनेबाद पीवे और फिर नास लेवे ॥ ८७ ॥

अथ माषादितैलम् ।

माषसिन्धुबलारास्नादशमूलकहिंगुभिः ॥

चचाशिवजटाख्याभिः सिद्धं तैलं सनागरम्॥ ८८ ॥ ऊर्द्ध्वं भक्ताशनाद्धन्याद्वाहुशोषापवाहुकौ॥ विश्वाचीमुद्धतां चापि पक्षाघातं तथार्दितम् ॥ ८९ ॥

भोजन करनेके पश्चात् उडद, सैंधानिमक, खिरैटी, रायसन, दशमूल, हींग, वच और वेलगिरी इनके द्वारा पकाया हुआ तेल सोंठके साथ उपयोग किया जाय तो बाहुशोष, अपबाहुक, अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुई विश्वाची, पक्षाघात और अर्दित (लकवा) इन सबका नाश होता-है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

अथोर्द्ध्ववातलक्षणम्।

अधःप्रतिहतो वायुः श्लेष्मणा मारुतेन च॥ करोत्युद्गारवाहुल्यमूर्द्ध्ववातः स उच्यते॥९०॥

वायुः समानवायुः। मारुतेन अपानवायुना स्वहेतुदुष्टेन। अधःप्रतिहतः अधोनिरुद्धः ॥

अपने कारणोंसे दुष्ट हुई समान वायु और कफ वायु नीचेसे रुककर वारवार डकार आनेके रोगको करतीहैं उसको ऊर्ध्ववात कहतेहैं ॥ ९० ॥

अथोर्द्ध्ववातचिकित्सा।

भागा दश विश्वायास्तत्तुल्यावृद्धदारकस्यापि ॥ त्रय एव च पथ्यायाश्चतुरंशं हिंगु संभृष्टम् ॥९१॥ एकः सैन्धवभागस्तत्तुल्यं चित्रकं चात्र॥ संवृद्धमूर्द्ध्ववातं हन्त्येतच्चूर्णितं भुक्तम् ॥ ९२ ॥

अत्र वृद्धदारकालाभे त्रिवृन्मूलं ग्राह्यम् ॥

सोंठ दशभाग, विधारा दशभाग, जो विधारा कहीं नहीं मिले तो निसोत दशभाग, हरड तीन भाग, भुनी हींग चार भाग, सेंधानिमक एकभाग और चीता एक भाग लेवे, इन सबका एकत्र चूर्ण करके सेवन करे तो इससे उग्र ऊर्ध्ववात नष्ट होजाताहै ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

अथाध्मानलक्षणम्।

साटोपमत्युग्ररुजमाध्मातमुदरं भृशम् ॥ आध्मानमिति जानीयाद्घोरं वातनिरोधजम् ॥ ९३ ॥

आटोपो गुडगुडाशब्दः भृशमाध्मातं वातपूर्णभस्त्रावत्। वातनिरोधजम् अधोवातनिरोधजम् ॥

जिस रोगमें नीचेकी वायुके रुकनेसे उदरमें अधिक पीडायुक्त गुडगुडाहट और पेट मसककी समान फूल जाय इस भयकर रोगको आध्मान कहतेहैं ॥ ९३ ॥

अथाध्मानचिकित्सा।

आध्माने लंघनं पूर्वं दीपनं पाचनं ततः ॥ फलवर्त्तिक्रियां कुर्याद्वस्तिकर्म च शोधनम् ॥ ९४ ॥

आध्मान रोगमे प्रथम लघन करावे और फिर अग्निदीपन करनेवाली और पाचन औषधि देवे, फलवर्ती क्रिया, पिचकारी लगावे और सशोधन भी करावे ॥ ९४ ॥

अथ नारायणचूर्णम्।

कर्षमात्रा भवेत्कृष्णा त्रिवृता स्यात्पलोन्मिता ॥ खण्डादपि पलं ग्राह्यं चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥ मधुनाऽक्षमितं लिह्याच्चूर्णमाध्माननाशनम् ॥ ९५ ॥

पीपल १ तोला, निसोत ४ तोले और खाड ४ तोले इनका एकत्र चूर्ण करके उस चूर्णको सहतके साथ एक तोलाभर चाटे तो आध्मान तत्काल नष्ट होजाताहै ॥ ९५ ॥

अथ दारुषट्कलेपः।

दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिंगुसैन्धवैः॥ लिंपेदुष्णैरम्लपिष्टैः शूलाध्मानयुतोदरम् ॥ ९६ ॥

हैमवती वचा ॥

देवदारु, वच, कूठ, सोया, हींग और सैंधानिमक, इनको तक्रमे अथवा नींबूके रसमें पीसकर गरम करके लेप करनेसे पेटका शूल और आध्मान नष्ट होजाताहै ॥ ९६ ॥

अथ महानाराचरसः।

अभयारग्वधो धात्री दन्ती तिक्ता स्नुही त्रिवृत् ॥ मुस्ता प्रत्येकमेतानि ग्राह्याणि पलमात्रया ॥ ९७ ॥ तानि संकुट्य

सर्वाणि जलाढकयुगे पचेत् ॥ तत्र तोयेऽष्टमं भागं कषायमवशेषयेत् ॥ ९८ ॥ निस्त्वग्जैपालबीजानि नवानि पलमात्रया॥ तनुवस्त्रधृतान्येव तस्मिन्काथे शनैः पचेत्॥ ॥ ९९ ॥ ज्वालयेदनलं मंदं यावत्काथो घनो भवेत् ॥ ततः खल्वे क्षिपेद्भागानष्टौ जैपालबीजतः ॥ १०० ॥ भागांस्त्रीन्नागराद्द्वौ च मरिचाद्द्वौ च पारदात् ॥ गन्धकाद्द्वौ च तानीह यावद्यामं विमर्दयेत् ॥ ॥ १०१ ॥ रसो नाराचनामाऽयं भक्षितो रत्तिकामितः ॥ जलेन शीतलेनैव रोगानेतान्विनाशयेत् ॥ १०२ ॥ आध्मानं शूलमानाहं प्रत्याध्मानं तथैव च ॥ उदावर्तं तथा गुल्ममुदराणि हरत्यसौ॥१०३॥ वेगे शांते तु भुञ्जीत शर्करासहितं दधि ॥ ततस्तत्सैंधवेनापि ततो दध्योदनं मनाक् ॥ १०४ ॥

अमलतास, आमला, जमालगोटा, कुटकी, थूहर और निसोत तथा नागरमोथा प्रत्येक चार २ तोला लेकर सबको एकत्र कूटकर पांचसौ तोले जलमे पकावै, जब पकते पकते आठवा भाग जल शेष रह जाय तब उसमें छुकले रहित नये जमालगोटेके बीज बारीक कपडेकी पोटलीमे बाधकर धीरे २ पकावै, अग्निकी मन्द २ आच देनेसे जब यह क्वाथ गाढा हो जाय तब इसको खरलमे डालकर उसमें आठभाग जमालगोटेके बीज तीन भाग सोंठ, दो भाग कालीमिर्च, दो भाग पारा और दो भाग गन्धक डालकर एक प्रहरतक खरल करे तो 'महानाराच' नामक रस तैयार होजाताहै, इस रसको शीतल जलके साथ खाय तो इससे आध्मान, शूल, आनाह, प्रत्याध्मान, उदावर्त, गुल्म और उदरके सम्पूर्ण रोग नष्ट होजातेहैं। रोगके वेग शान्त होनेपर रोगीको मिश्रीके साथ दही खिलावे और सैंधेनिमकके साथ कुछेक दही भात खिलावे ॥ ९७–१०४ ॥

अथ प्रत्याध्मानलक्षणम्।

विमुक्तपार्श्वहृदयं तदेवामाशयोत्थितम् ॥ प्रत्याध्मानं विजानीयात्कफव्याकुलितानिलम् ॥ १०५ ॥

विमुक्तपार्श्वहृदयं पार्श्वहृदये विहाय जातम्, तदेव आध्मानं कफव्याकुलितानिलं कफेन अवरुद्धवातम् ॥

पसली और हृदयको छोडकर आमाशयमें उत्पन्न हुआ और जिसमें कफके कोपसे वायु रुकगई होय ऐसा जो आध्मान है उसको प्रत्याध्मान कहतेहैं ॥ १०५ ॥

अथ प्रत्याध्मानचिकित्सा।

प्रत्याध्माने समुत्पन्ने कुर्याद्वमनलंघने ॥ दीपनादीनि युञ्जीत पूर्ववद्बस्तिकर्म च ॥ १०६ ॥

प्रत्याध्मान उत्पन्न हुआ होय तो प्रथम वमन तथा लंघन करावै, दीपन तथा पाचन औषधियोका उपयोग करे और आध्मानकी समान वस्तिकर्म करावे ॥१०६॥

अथ वाताष्ठीलालक्षम्।

नाभेरधस्तात्सञ्जातः सञ्चारी यदि वाऽचलः ॥ अष्ठीलावद्घनो ग्रन्थिरूर्द्धमायत उन्नतः॥वाताष्ठीलां विजानीयाद्बहिर्मार्गनिरोधिनीम् ॥ १०७ ॥

अष्ठीला वर्तुलः पाषाणखण्डः। आयतः दीर्घः। वाताष्ठीलेति स्वरूपपरं न तु विशेषपरं व्यावर्तकाभावात्। बहिर्मार्गनिरोधिनी शिश्नभगगुदनिरोधिनी। तेन मूत्रमरुन्मलावरोधः सूचितः ॥

नाभीके नीचे गोल पथरीकी समान कठोर, भारी, ऊँची, ऊपरके भागमें लम्बी और स्थिर अथवा चंचल जो गाठ उत्पन्न होतीहै उसको वाताष्ठीला कहतेहैं। यह गाठ लिंग, योनि तथा गुदाको रोक देतीहै कि, जिससे विष्ठा, मूत्र और वायुका अवरोध होजाताहै।

पित्तकी और कफकी अष्ठीला नहीं होतीहैं इसकारण यहा 'वाताष्ठीला' येही नाम समझना, परन्तु वातज अष्ठीला ऐसा भेद नही समझना ॥ १०७ ॥

अथ प्रत्यष्ठीलालक्षणम् ।

एतामेव रुजायुक्तां वातविण्मूत्ररोधिनीम् ॥ प्रत्यष्ठीलामिति वदेज्जठरे तिर्यगुत्थिताम् ॥ १०८ ॥

एतामेव अष्ठीलामेव जठरे तिर्यगुत्थितामिति भेदः ॥

वेदनायुक्त और वायु, विष्ठा तथा मूत्रको रोकनेवाली जो अष्ठीला (गाठ) पेटमे होतीहै उसको प्रत्यष्ठीला कहतेहैं ॥ १०८ ॥

अथ वाताष्ठीलाप्रत्यष्ठीलाचिकित्सा ।

अष्ठीलायाः क्रिया कार्या गुल्मस्यान्तरविद्रधेः ॥ चूर्णं हिंग्वादिकं चात्र पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ १०९ ॥

गुल्मकी और अन्तरविद्रधिकी जो चिकित्सा कही है वही चिकित्सा अष्ठीलाकी भी करनीचाहिये और इस रोगमें नीचे कहा हुआ हिंग्वादि चूर्णको भी गरम जलके साथ पीनाचाहिये ॥ १०९ ॥

अथ हिंग्वादिचूर्णम् ।

हिंगुग्रन्थिकधान्यजीरकवचाचव्याग्निपाठाः शटी वृक्षाम्लं लवणत्रयं त्रिकटुकं क्षारद्वयं दाडिमम् ॥ पथ्यापौष्करवेतसाम्लहपुषा योज्यं तदेभिः कृतं चूर्णं भावितमेतदार्द्रकरसैः स्याद्बीजपूरद्रवैः ॥ ११० ॥

भूनी हींग, पीपलामूल, धनिया, जीरा, वच, चव्य, चीता, पाठ, कचूर, बिपाविल, तीनों प्रकारके निमक, सोंठ, मिरच, पीपल, जवाखार, सज्जी, अनार, हरड, पोहकरमूल अमलबेत और हाऊबेर इन सबका एकत्र चूर्ण करके अदरखके रसकी तथा बिजौरे नींबूके रसकी भावना देवे तो हिंग्वादि चूर्ण सिद्ध होताहै ॥ ११० ॥

अथ तूनीलक्षणम् ।

अधो या वेदना याति वर्चोमूत्राशयोत्थिता ॥ भिन्दंतीव गुदोपस्थं सा तूनी नामतो मता ॥ १११ ॥

उपस्थं शिश्नं भगश्च ॥

विष्ठाके स्थानसे तथा मूत्राशयसे उत्पन्न हुई गुदा, लिंग तथा योनिमें भेदने सरीखी पीडा करतीहुई जो वेदना नीचे को जातीहै उसको 'तूनी' कहतेहैं ॥ १११ ॥

अथ प्रतितूनीलक्षणम् ।

गुदोपस्थोत्थिता सैव प्रतिलोमं विधाविता ॥ वेगैः पक्वाशयं याति प्रतितूनीति सोच्यते ॥ ११२ ॥

अधस्तादुत्थिता ऊर्द्ध्वगामिनी वेगैर्वेदनावेगैर्मुहुर्मुहुः स्वभावोपशमोपलक्षितैः सा तु नामतः प्रतितूनी । सैव वेदना वेगैः उत्पत्तिप्रशमलक्षितैः ॥

जो वेदना गुदामेंसे तथा उपस्थमेंसे उठकर उलटी दौडकर वारवार शान्त होकर वेगपूर्वक पक्वाशयमें जाती होय उसको 'प्रतितूनी' कहतेहैं ॥ ११२ ॥

अथ तूनीप्रतितूनीचिकित्सा ।

तून्याश्च प्रतितून्याश्च प्रशस्ताः स्नेहवस्तयः ॥ पिबेद्वा स्नेहलवणं पिप्पल्यादिमथाम्बुना ॥ उष्णेन रामठं क्षारं प्रगाढमथ वा घृतम् ॥ ११३ ॥

तूनी अथवा प्रतितूनी हुई होय तो स्नेहकी पिचकारी लगावे, अथवा तेलमें सैंधानिमक डालकर पिये अथवा पिप्पल्यादि गणका क्वाथ पिये, अथवा हींग तथा जवाखारको गरमजलसे पिये, अथवा अच्छे प्रकारसे घी पीये ॥ ११३ ॥

अथ त्रिकशूललक्षणम् ।

स्फिगस्थ्नोः पृष्ठवंशास्थ्नोर्यः सन्धिस्तत्त्रिकं मतम् ॥ तत्र वातेन या पीडा त्रिकशूलं तदुच्यते ॥ ११४ ॥

कूलेकी दो अस्थियोंकी और पीठके बासकी दो अस्थियोंकी जो संधि है उनको त्रिक कहतेहैं । इस त्रिकस्थानमें वायुसे जो पीडा उत्पन्न होतीहै उसको त्रिकशूल कहतेहैं ॥ ११४ ॥

अथ त्रिकशूलचिकित्सा ।

कारयेद्वालुकास्वेदं त्रिकशूले प्रयत्नतः ॥

यद्वाऽधस्तात्करीषाग्निं धारयेत्सततं नरः ॥ ११५ ॥

त्रिकशूलमे उस मनुष्यको यत्नपूर्वक वालुकास्वेद देवै, अथवा उसकी खाटके नीचे वनके उपलोकी अग्नि रखकर सेंक देवै ॥ ११५ ॥

अथ त्रयोदशांगगुग्गुलुः।

आभाऽश्वगन्धा हपुषा गुडूची शतावरी गोक्षुरकश्च रास्ना ॥ श्यामा शताह्वा च शटी यवानी सनागरा चेति समं विचूर्ण्य ॥ ११६ ॥ सर्वैः समं गुग्गुलमत्र दद्यात्क्षिपेदिहाज्यश्च तदर्द्धभागम् ॥ तद्भक्षयेदर्द्धपिचुप्रमाणं प्रभातकाले पयसाऽथ यूषैः ॥११७॥ मद्येन वा कोष्णजलेन चाथ क्षीरेण वा मांसरसेन वापि ॥ त्रिकग्रहे जानुहनुग्रहे च वाते भुजस्थे चरणस्थिते च ॥ ११८ ॥ सन्धिस्थिते चास्थिगते च तस्मिन्मज्जास्थिते स्नायुगते च कोष्ठे ॥ रोगान्हरेद्वातकफानुविद्धान्वातेरितान्हृद्ग्रहयोनिदोषान् ॥ ११९ ॥ भग्नास्थिविद्धेषु च खञ्जतायां सगृध्रसीके खलु पक्षघाते ॥ महौषधं गुग्गुलुमेतमाहुस्त्रयोदशाङ्गं भिषजः पुराणाः ॥ १२० ॥

आभा बब्बूलः। तथा च "आभा बब्बूलपर्यायः कथितः कोविदैरिह" इति ॥

बबूर, असगध, हाऊबेर, गिलोय, सतावर, गोखरू, रासना, निसोत, सोया, कचूर, अजवायन और सोंठ इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करे और सब चूर्णकी बराबर गूगल लेवै और गूगलसे आधा घी लेवै, सबको एकत्र मिलाकर खूब कूटे तो त्रयोदशाग गूगल बनजाताहै। इस गूगलको प्रातःकाल दूधके साथ, वा यूषके साथ, अथवा मद्यके साथ, वा कुछेक गरम जलके साथ, वा केवल ताजे पानीके साथ अथवा मासके रसके साथ आधे तोले प्रमाण खाय तो इससे त्रिकशूल, जानुस्तम्भ, हनुग्रह, भुजागतवायु, पादगतवायु, सधिगतवायु, अस्थिगतवायु, मज्जागतवायु, स्नायुगतवायु, कोष्ठगतवायु, वातकफके समस्त रोग, वायुके रोग, छातीका स्तम्भ, योनिदोष, भग्नास्थिसे उत्पन्न हुए रोग, विद्धहोनेसे उत्पन्न हुए रोग, खंजता, गृध्रसी और पक्षाघात ये सम्पूर्ण रोग दूर होजातेहैं। प्राचीन वैद्य इस त्रयोदशाग गूगलको वायु सम्बन्धी रोगोंपर उत्तम औषधि कहतेहैं ११६-१२०

अथ मुहुर्मूत्रमूत्रनिग्रहनिदानपूर्वकलक्षणम्।

मारुतेऽविगुणे वस्तौ मूत्रं सम्यक्प्रवर्तते ॥ विकारा विविधाश्चापि तस्मिन्दुष्टे भवन्ति हि ॥ १२१ ॥

अविगुणे अनुलोमे। विकाराः विविधाः मुहुर्मूत्रमूत्रनिग्रहादयः ॥

वायु जब दुष्ट नहीं होतीहै तब मूत्राशयमें अच्छे प्रकारसे मूत्रको प्रवर्तन करातीहै और जब वायु दुष्ट होजातीहै तब मुहुर्मूत्रण तथा मूत्रनिग्रह आदि अनेक प्रकारके विकारोको उत्पन्न करतीहै। वारवार मूते उसको 'मुहुर्मूत्रण' कहतेहैं और जिसमे मूत्रका अवरोध (रुकावट) होताहै उसको मूत्रनिग्रह कहतेहैं, मुहुर्मूत्रण आदि विकार 'वस्तिवात' इस नामसे भी कहेजातेहैं ॥ १२१ ॥

अथ मुहुर्मूत्रणमूत्रनिग्रहचिकित्सा।

बलामूर्वात्वचश्चूर्णं ससितं कर्षसम्मितम् ॥ पिबेत्कुडवदुग्धेन मुहुर्मूत्रणशांतये ॥ १२२ ॥ पथ्याविभीतधात्रीणां चूर्णं चूर्णं मृतायसः ॥ मधुना सह संलीढं मुहुर्मूत्रणशान्तिकृत् ॥ १२३ ॥ यवक्षारस्य चूर्णन्तु संयोज्य सितया सह॥ भक्षयेन्नियतं तस्य प्रशमेन्मूत्रनिग्रहः ॥ ॥ १२४ ॥ कूष्माण्डस्य तु बीजानि बीजानि त्रपुसस्य च ॥ वस्तौ सन्धारयेत्तेन प्रशाम्येन्मूत्रनिग्रहः ॥ १२५ ॥ आमलक्याश्च कल्केन वस्तिभागं प्रलेपयेत् ॥ तेन प्रशाम्यति क्षिप्रं नियमान्मूत्रनिग्रहः ॥ १२६ ॥ मेहनस्याथ योनेर्वा

मुखस्याभ्यन्तरे शनैः ॥ घनसारयुतां वर्तिं धारयेन्मूत्रनिग्रहे ॥ १२७ ॥

खिरेंटी, चुरनहार (चिन्हार) और दालचीनी इनका चूर्ण करके मिश्री मिलाकर सोलह तोलेभर दूधके साथ, इस चूर्णको एक तोले प्रमाण खाय तो मुहुर्मूत्रणकी शांति होतीहै ।

हरड, बहेडा और आमला इनका चूर्ण तथा मारेहुए लोहेका चूर्ण सहतमें मिलाकर चाटे तो मुहुर्मूत्रकी शांति होतीहै ।

जवाखारके चूर्णको खाडके साथ मिलाकर सेवन करे तो मूत्रनिग्रह अवश्य नष्ट होजाताहै ।

पेटेके बीज और खीरेके बीजोंको पेडूके ऊपर पीसके रखनेसे मूत्रनिग्रह दूर होजाताहै ।

आमलेका कल्क बनाकर पेडूके ऊपर रखनेसे मूत्रनिग्रह तत्काल नष्ट होजाताहै । लिंगके अथवा योनिके मुखमें धीरे धीरे कपूरकी बत्ती चढावे तो मूत्रका अवरोध दूर होजाताहै ॥ १२२-१२७ ॥

अथ गृध्रसीलक्षणम् ।

स्फिक्पूर्वा कटिपृष्ठोरुजानुजंघापदं क्रमात् ॥ गृध्रसी स्तम्भरुक्तोदैर्गृह्णाति स्पन्दते मुहुः ॥ १२८ ॥ वाताद्वातकफाभ्यां सा विज्ञेया द्विविधा पुनः ॥ वातजायां भवेत्तोदो देहस्यातीव वक्रता ॥ १२९ ॥ जानुजंघोरुसन्धीनां स्फुरणं स्तम्भता भृशम् ॥ वातश्लेष्मोद्भवायान्तु गौरवं वह्निमार्दवम् ॥ तन्द्रा मुखप्रसेकश्च भक्तद्वेषस्तथैव च ॥ १३० ॥

गृध्रसी वातजा केवला स्फिगादिपदपर्यंतम स्तम्भरुक्तोदैर्गृह्णाति । क्रमाद् वृद्धिक्रमात् । तेन यथायथा वर्द्धते तथातथा स्फिगादीनि आक्रामति नात्र ग्रहणे निर्देशक्रमनियमः ॥ तथा मुहुः स्पन्दते स्फिगादिषु शिराकम्पं करोतीत्यर्थः ॥

कूल्हेकी संधि, कमर, पीठ, ऊरु, जानु, जंघा और पांव इनमें स्तब्धता, वेदना तथा सुई चुभोने सरीखी पीडा और कूल्हेकी संधिआदि शिरा वारम्वार कांपे, यह गृध्रसी रोग कहाजाताहै, अब यह रोग जितना जितना अधिक बढताजाताहै उतना उतना ही कूले आदिकी संधियोंको विशेष दबाताहै ।

वातज और कफज इसप्रकार गृध्रसी दो प्रकारकी है तहा वातकी गृध्रसी रोगमें सुई चुभोने सरीखी पीडा होती-है, देह अत्यत वॉका होजाताहै घुटने, जघा और सांथलकी सधियोंकी शिरा कॉपतीहैं और बहुत स्तम्भ होताहै और जो वात तथा कफ दोनोंसे उत्पन्नहुई गृध्रसी होय तो शरीरमें भारीपन, अग्निकी मदता, तन्द्रा, मुखसे पानीका गिरना और अन्नपर अरुचि होतीहै ॥ १२८-१३० ॥

अथ गृध्रसीचिकित्सा ।

गृध्रस्यार्तं नरं सम्यग्रेकेण वमनेन वा ॥ ज्ञात्वा निरामं दीप्ताग्निं वस्तिभिः समुपाचरेत् ॥ १३१ ॥ नादौ वस्तिविधिं कुर्याद्यावदूर्द्ध्वं न शुध्यति ॥ स्नेहो निरर्थकः स स्याद्भस्मन्येव हुतं यथा ॥ ॥ १३२ ॥ तैलमेरण्डजं प्रातर्गोमूत्रेण पिबेन्नरः ॥ मासमेकं प्रयोगोऽयं गृध्रस्यूरुग्रहापहः ॥ १३३ ॥ तैलं घृतं चार्द्रकमातुलुंगरसं सचक्रं सगुडं पिबेद्वा ॥ कट्यरुपृष्ठत्रिकशूलगुल्मगृध्रस्युदावर्तहरः प्रयोगः ॥ १३४ ॥ निष्कुष्यैरण्डबीजानि पिष्ट्वा क्षीरे विपाचयेत् ॥ तत्पानन्तु कटीशूले गृध्रस्यां परमौषधम् ॥ १३५ ॥ एरण्डमूलं बिल्वञ्च बृहती कण्टकारिका॥ कषायो रुचकोपेतः पीतो वंक्षणवस्तिजम् ॥ १३६ ॥ गृध्रसीजं हरेच्छूलं चिरकालानुबन्धि च ॥ गोमूत्रैरण्डतैलाभ्यां कृष्णाचूर्णं पिबेन्नरः ॥ दीर्घकालोत्थितां हन्ति गृध्रसीं कफवातजाम् ॥ १३७ ॥ सिंहास्यदन्तीकृतमालकानां पिबेत्कषायं रुवुतैलमिश्रम्॥ यो गृध्रसीनष्टगतिः प्रसुप्तः स शीघ्रगः स्याद्धि किमत्र चित्रम् ॥ ॥ १३८ ॥ बृहन्निम्बतरोः सारो वारिणा

परिपेषितः ॥ स पीतो नाशयेत्क्षिप्रमसाध्यामपि गृध्रसीम् ॥ १३९ ॥ शेफालिकादलैः क्वाथो मृद्वग्निपरिपाचितः ॥ दुर्वारं गृध्रसीरोगं पीतमात्रः प्रणाशयेत् ॥ १४० ॥

शेफालिका निर्गुण्डी ॥

गृध्रसीवातसे पीडित मनुष्यको अच्छेप्रकार विरेचन और वमन देकर आमरहित और दीप्ताग्निको जानकर स्नेहकी पिचकारी लगावै, जबतक वमनरूप ऊर्ध्व शोधन नही होता तबतक राखमें हवनकी समान स्नेहकी पिचकारी व्यर्थ होतीहै ।

प्रातःकाल गोमूत्रके साथ अण्डीका तेल एक महीने तक पिये तो गृध्रसीवात और ऊरुग्रह नष्ट होजाताहै ।

तेल, घी अदरखका रस और बिजोरेका रस इन सबको एकत्र मिलाकर उसमें चूकेका रस अथवा गुड डालकर पियै तो कटिशूल, ऊरुशूल, पृष्ठशूल, त्रिकशूल, गुल्म, गृध्रसी और उदावर्त ये सब रोग नष्ट होजातेहैं ।

अण्डके बीजोंको छीलकर उनके छिलके अलग करके गिरीको दूधमें पीसकर पीनेसे कटिशूल और गृध्रसी वात नष्ट होतीहै, यह परमौषधि है ।

अण्डकी जड, बेलगिरी, बडी कटेरी और छोटी कटेरी इनके क्वाथमें कालानिमक डालकर पीनेसे वंक्षणशूल, वस्तिशूल और गृध्रसीसम्बन्धी शूल बहुत दिनोंका पुराना भी नष्ट होजाताहै ।

गोमूत्रके और अण्डके तेलके साथ पीपलका चूर्ण पिये तो बहुत दिनोंकी पुरानी और कफ तथा वात दोनोंसे उत्पन्न हुई गृध्रसी नष्ट होतीहै ।

गृध्रसीसे मनुष्यकी चलनशक्ति नष्ट होगई होय और जो जड होगया होय वह मनुष्य अडूसा, जमालगोटा और चिरायता इनका क्वाथ बनाकर उसमें अण्डीका तेल मिलाकर पिये तो अत्यन्त शीघ्र गमन करनेकी शक्ति उत्पन्न होतीहै ।

बकायनके भीतरकी छालको पानीमें पीसकर पीनेसे असाध्य गृध्रसी भी नष्ट होजातीहै ।

निर्गुण्डीके पत्तोका क्वाथ मन्द मन्द अग्निसे पचाकर पीनेसे असाध्य गृध्रसी भी नष्ट होजातीहै ॥ १२१-१४० ॥

अथ रास्नागुग्गुलुः ।

रास्नायास्तु पलं चैकं पञ्च कर्षाणि गुग्गुलोः॥ सर्पिषा वटिकां कृत्वा भक्षयेद्गृध्रसीहरीम् ॥ १४१ ॥

चार तोलेभर रास्ना और पांच तोलेभर गूगल इनको एकत्र मिलाकर घीके योगसे गोली बनाकर सेवन करनेसे गृध्रसी नष्ट होजातीहै ॥ १४१ ॥

अथ रास्नासप्तकक्वाथः ।

रास्नामृतारग्वधदेवदारुत्रिकण्टकैरण्डपुनर्नवानाम् ॥ क्वाथं पिबेन्नागरचूर्णमिश्रं जंघोरुपृष्ठत्रिकपार्श्वशूली ॥ १४२ ॥

रासना, गिलोय, अमलतास, देवदारु, गोखुरू, अण्ड और पुनर्नवा (सांट) इनका क्वाथ बनाकर उसमें सोठका चूर्ण डालकर पीनेसे जघागत वायु, ऊरुगत वात, पृष्ठगत वात, त्रिकशूल और पार्श्वशूल नष्ट होजाताहै ॥ १४२ ॥

अथ पथ्यादिगुग्गुलुः ।

पथ्याविभीतामलकीफलानां शतं क्रमेण द्विगुणाभिवृद्धम् ॥ प्रस्थेन उक्तश्च पलंकषाणां द्रोणे जले संस्थितमेकरात्रम् ॥ ॥ १४३ ॥ अर्द्धावशिष्टं क्वथितं कषायं भाण्डे पचेत्तत्पुनरेव लौहे ॥ अमूनि वह्नेरवतार्य दद्याद्द्रव्याणि सञ्चूर्ण्य पलार्द्धकानि ॥ १४४ ॥ विडङ्गदन्तीत्रिफलागुडूचीकृष्णात्रिवृन्नागरकोषणानि ॥ यथेष्टचेष्टस्य नरस्य शीघ्रं हिमाम्बुपानानि च भोजनानि ॥ १४५ ॥ निषेव्यमाणो विनिहन्ति रोगान्सगृध्रसीं नूतनखञ्जताश्च प्लीहानमुग्रं जठराग्निगुल्मं पाण्डुत्वकण्डूवमिवातरक्तम् ॥ १४६ ॥ पथ्यादिको गुग्गुलुरेष नाम्ना ख्यातः क्षितावप्रमितप्रभावः ॥ बलेन नागेन समं मनुष्यं जवेन कुर्यात्तुरगेण तुल्यम् ॥ १४७ ॥ आयुःप्रकर्षं विदधाति चक्षुर्बलं तथा पुष्टिकरो विषघ्नः ॥ क्षतस्य सन्धा-

नकरो विशेषाद्रोगेषु शस्तः सकलेषु तज्ज्ञैः ॥ १४८ ॥

हरड १००, बहेडे २००, आमले ४०० और गूगल ६४ तोले, इन सबको १०२४ एक हजार चौबीस तोले जलमें एक रात्रिभर भिगो रक्खे फिर इसका अर्द्धावशेष क्वाथ बनाकर और छानकर लोहेके बासनमें पकावे, जब अच्छा गाढा होजाय तब अग्निपरसे उतारकर इसमें वायविडंग, जमालगोटा, हरड, बहेडा, आमला, गिलोय, निशोत, पीपल, सोंठ और कालीमिर्च इनका दो दो तोले चूर्ण डालै यह पथ्यादि गुग्गुलु सिद्ध होताहै। इस गूगलको सेवन करनेवाला मनुष्य यथेष्ट विहार करे। और इसपर शीतल जल पिये तथा शीतलही पदार्थोंका भोजन करे। गूगलको सेवन करनेसे गृध्रसी, नवीन खञ्जता, अत्यन्त उग्र प्लीहा, गुल्म, पांडुरोग, मन्दाग्नि, कण्डू, वमन, वातरक्त और विशेष करके गृध्रसी वात, नष्ट होतीहै। यह पथ्यादि नामवाला गूगल पृथिवीमें अत्यन्त प्रभाववाला है। इसको सेवन करनेवाला मनुष्य बलमें हाथी समान, वेगमें घोडेकी समान होजाताहै। तथा आयुकी वृद्धि करता है, नेत्रोंकी ज्योति बढाताहै, शरीरकी पुष्टि करताहै, विषको दूर करताहै, घावको भरताहै और विशेष करके सम्पूर्ण रोगोंमें हितकारी है ऐसा वैद्योंका मत है ॥ १४२–१४८ ॥

अथ खंजपंगुलक्षणम् ।

वायुः कट्याश्रितः सक्थ्नः कण्डरामाक्षिपेद्यदा ॥ खंजस्तदाभवेज्जन्तुः पंगुः सक्थ्नोर्द्वयोर्वधात् ॥ १४९ ॥

सक्थ्नः कट्यादिगुल्फस्य कण्डरां महास्नायुम् आक्षिपेद्गमनादौ कम्पयेत् । वधाद्गमनादिक्रियाघातात् ॥

कटिमें रहनेवाली वायु कुपित होकर कमरसे लेकर पाँवके गुल्फोंतककी जो मोटी नसें हैं उनको जब खींचती है अर्थात् चलते समय कँपातीहै तब वह मनुष्य खञ्जा अर्थात् लँगडा होजाताहै।

कमरसे पावकी गांठोंतक दोनों साँथलोंकी चलनेकी क्रिया नष्ट होजातीहै उसको पंगु (लूला) कहतेहैं ॥१४९॥

अथ खञ्जपंगुचिकित्सा ।

उपाचरेदभिनवं खंजं पंगुमथापि च ॥ विरेकास्थापनस्वेदगुग्गुलुस्नेहवस्तिभिः१५०

खञ्जता अथवा पंगुता रोग जो थोडे दिनोंका उत्पन्न हुआ होय तो विरेचनसे, निरूह वस्तिसे, स्वेदनसे, गूगलको सेवन कराकर तथा स्नेह वस्तिओंसे चिकित्सा करे ॥ १५० ॥

अथ कलायखंजलक्षणम् ।

कम्पते गमनारम्भे खंजन्निव च लक्ष्यते ॥ कलायखंजं तं विद्यान्मुक्तसन्धिप्रबन्धनम् ॥ १५१ ॥

गमनारम्भे कम्पते एतस्य खंजादयमेव भेदः । कलायखञ्ज इति शास्त्रे रूढा संज्ञा न तु यौगिकी ॥

चलते समय लँगडेकी समान चले या काँपे और जिसके सब सन्धिबन्धन शिथिल होजायँ उस मनुष्यको कलायखञ्ज हुआ जानना। इसमें चलते समय कम्प होय और लङ्गडाता चले इस लिये खञ्जता और कलायखञ्जतामें अन्तर है। (कलायखञ्ज) यह नाम वैद्यकशास्त्रमें अर्थके अनुसार नहीं होनेसे यौगिक नहीं किन्तु रूढ है ऐसा जानना ॥ १५१ ॥

अथ कलायखञ्जचिकित्सा ।

क्रमः कलायखञ्जस्य खञ्जपङ्गोरिव स्मृतः॥ विशेषात्स्नेहनं कर्म कार्यमत्र विचक्षणैः ॥ १५२ ॥

कलायखञ्जताकी चिकित्सा खञ्जता और पंगुताकी समान करनी चाहिये और इसमें विशेष करके स्नेहक्रिया करे ॥ १५२ ॥

अथ क्रोष्टुकशीर्षलक्षणम् ।

वातशोणितजः शोथो जानुमध्ये महारुजः ॥ ज्ञेयः क्रोष्टुकशीर्षस्तु स्थूलः क्रोष्टुकशीर्षवत् ॥ १५३ ॥

क्रोष्टुः शृगालः ।

वायुसे तथा रुधिरसे घुटनोंके मध्यमें गीदडके मस्तककी समान बहुत बडी और मोटी अत्यन्त

पीडावाली सूजन होती है उसको क्रोष्टुकशीर्ष कहते हैं ॥ १५३ ॥

अथ क्रोष्टुकशीर्षचिकित्सा ।

गुग्गुलुं क्रोष्टुशीर्षे तु गुडूचीत्रिफलाम्भसा॥
क्षीरेणैरण्डतैलं वा पिबेद्वा वृद्धदारकम् १५४

गुग्गुलुं शुद्धं कर्षमितं गुडूचीत्रिफलाम्भसा गुडूचीपथ्याविभीतामलकैः समुदितैः चतुष्कर्षमितैः प्रस्थमितेन जलेन पक्का क्राथेन उष्णेन पलद्वयमितेन गुग्गुलुं पिबेत् । एरण्डतैलं कर्षमितं क्षीरेण गव्येन पलपरिमितेन पिबेत् । वृद्धदारकचूर्णं वा दुग्धेन गव्येन पलचतुष्टयमितेन पिबेत् ॥

रसैस्तित्तिरमांसस्य पीतैर्गुग्गुलसंयुतैः ॥
वातरक्तक्रियाभिश्च जयेज्जम्बूकमस्तकम् ॥ १५५ ॥

गिलोय, हरड, बहेडा और आमला यह प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेकर ६४ चौसठ तोले जलमें पकाकर क्राथ बनावे। जब आठ तोले जल शेष रहै तब इस गरमागरम क्राथके साथ शुद्ध किये गूगलको एक तोलाभर खाय तो कोष्टुकशीर्ष रोग नष्ट होजाता है। दूधके साथ अडीका तेल अथवा विधारेको पीनेसे क्रोष्टुकशीर्षरोग नष्ट होजाताहै। जो अडीका तेल पीना होय तो तेल एक तोला और गायका दूध चार तोले लेना चाहिये। विधारेका चूर्ण पीना होय तो गायके सोलह तोले दूधके साथ पिये।

गूगलके साथ तीतरके मासका रस पिये, तथा वातरक्तकी चिकित्साके समान क्रोष्टुशीर्षकी चिकित्सा करे ॥ १५४ ॥ १५५ ॥

अथ खल्लीलक्षणम् ।

खल्ली तु पादजंघोरुकरमूलावमोटिनी १५६
अवमोटिनी परिवर्तनशीला ॥

जिससे पाव, जघा, साथल और हाथकी जड ये सब ठिठरा जायँ उसको खल्लीवात कहतेहैं ॥ १५६ ॥

अथ खल्लीचिकित्सा ।

कुष्ठसैन्धवयोः कल्कश्चुक्रतैलसमन्वितः॥
सुखोष्णो मर्दने योज्यः खल्लीशूलनिवारणः ॥ १५७ ॥

कूठ और सैंधेनिमकका कल्क बनाकर तेल और चूका मिलाकर कुछेक गरम करके मर्दन करनेसे खल्लीवात नष्ट होजातीहै ॥ १५७ ॥

अथ वातकण्टकलक्षणम् ।

रुक्पादे विषमे न्यस्ते श्रमाद्वा जायते यदा ॥ वातेन गुल्फमाश्रित्य तमाहुर्वातकण्टकम् ॥ १५८ ॥

पांव विषमरीतिसे पडे अथवा परिश्रमसे वातके कारण जो घुटुनोंमे पीडा होतीहै उसको वातकण्टक कहते हैं ॥ १५८ ॥

अथ वातकण्टकचिकित्सा ।

रक्तावसेचनं कुर्यादभीक्ष्णं वातकण्टके ॥
पिबेदैरण्डतैलं वा दहेत्सूचीभिरेव च १५९॥
अभीक्ष्णं पुनः पुनः ॥

वातकटक हुआ होय तो वारंवार रुधिर निकलवावे, अथवा अडीका तेल पिये अथवा सुइयोसे दागदेवे१५९॥

अथ पाददाहलक्षणम् ।

पादयोः कुरुते दाहं पित्तासृक्सहितोऽनिलः॥
विशेषतश्चङ्क्रमणे पाददाहं तमादिशेत् १६०

पित्त तथा रुधिरसयुक्त वायु पावोंमें दाह करतीहै और चलते समय विशेष करके दाह (जलन) होताहै इसको पाददाह कहतेहैं ॥ १६० ॥

अथ पाददाहचिकित्सा ।

वातरक्तक्रमं कुर्यात्पाददाहे विशेषतः ॥ मसूरविदलैः पिष्टैः शृतशीतेन वारिणा ॥ चरणौ लेपयेत्सम्यक्पाददाहप्रशान्तये ॥ १६१ ॥

विशेष करके पाददाहरोगमें वातरक्तकी चिकित्सा करे

औटायेहुए जलको शीतल करके उत्तम मसूरको पीसकर पावपर लेपकरे, इससे पाददाह नष्ट होजाता है ॥ १६१ ॥

नवनीतेन संलिप्तौ वह्निना परितापितौ ॥ मुच्येते चरणौ क्षिप्रं परितापात्सुदारुणात् ॥ १६२ ॥

पांवपर नैनी घीका लेप करके अग्निमें सेके तो दारुण पाददाह भी नष्ट होजाताहै ॥ १६२ ॥

अथ पादहर्षलक्षणम् ।

हृष्येते चरणौ यस्य भवतश्च प्रसुप्तकौ ॥ पादहर्षः स विज्ञेयः कफवातप्रकोपजः १६३

हृष्येते रोमाञ्चितौ भवतः । प्रसुप्तकौ सिनिसिनीयुक्तौ ॥

कफके तथा वायुके कुपित होनेसे दोनों पांव रोमांच युक्त होकर झसझन करने लगते हैं, उसको पादहर्ष कहतेहैं ॥ १६३ ॥

अथ पादहर्षचिकित्सा ।

पादहर्षे तु कर्तव्यः कफवातहरो विधिः ॥ १६४ ॥

पादहर्ष रोगमें कफ तथा वायुको हरणकरनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १६४ ॥

अथ दण्डकाक्षेपादिचतुर्विधाक्षेपकाणां संप्राप्तिपूर्वकसामान्यलक्षणम् ।

यदा तु धमनीः सर्वाः कुपितोऽभ्येति मारुतः ॥ तदा क्षिपत्याशु मुहुर्मुहुर्देहं मुहुश्चलः ॥ मुहुराक्षेपणाद्वायुराक्षेपक इति स्मृतः ॥ १६५ ॥

मुहुर्मुहुर्देहमाक्षिपति गजारूढस्य इव पुरुषस्य गात्रं दोलयति। किंविशिष्टो मारुतः मुहुश्चलः वारंवारं सञ्चरणशीलः अयं वायुराक्षेपक इति स्मृतः । देहस्य यत् मुहुराक्षेपणं चालनं ततः ॥

जब क्षेपको प्राप्त हुई वायु सर्व धमनियोंमें प्राप्त होती है तब वारम्वार संचरण करनेवाली उस वायुसे मनुष्य हलता है जिस प्रकार हाथीपर बैठेहुए मनुष्यका शरीर हलताहै, इस कारण शरीरको वारवार हलानेवाली होनेसे इसको आक्षेपक कहतेहैं ॥ १६५ ॥

पित्तश्लेष्मान्वितो वायुर्वायुरेव च केवलः॥ कुर्यादाक्षेपकं चान्यं चतुर्थमभिघातजम् ॥ १६६ ॥

पित्तान्वितः श्लेष्मान्वितश्च केवलश्च वायुः आक्षेपकत्रितयं कुर्यात् । अन्यं चतुर्थमभिघातजम् । अन्यो दण्डात् अभिघातजो वायुः चतुर्थमाक्षेपकं कुर्यादित्यर्थः ॥

पित्तसंयुक्त वायुसे उत्पन्न हुआ, कफ संयुक्त वायुसे उत्पन्न हुआ, केवल वायुसे उत्पन्न हुआ और अभिघातसे उत्पन्न हुआ इस प्रकार आक्षेपक रोग चार प्रकारका है॥ १६६ ॥

अथ केवलवातोत्पन्नाक्षेपकलक्षणम् ।

पाणिपादशिरःपृष्ठश्रोणीः स्तभ्नाति मारुतः ॥ दण्डवत्स्तब्धगात्रस्य दण्डकः सोऽनुपक्रमः ॥ १६७ ॥

अयं वातजाक्षेपको दण्डाख्यः सोऽनुपक्रमः । स्वस्वभावादेव असाध्यः । अत्र च मुहुर्मुहुराक्षेपणं बोद्धव्यम् ॥

वायुसे हाथ, पांव, मस्तक, पीठ और श्रोणी ये जकड जायँ, जिसमें सम्पूर्ण शरीर लकडीकी समान जडक जाय उसको दडापतानक कहतेहैं । केवल वायुसे उत्पन्न हुआ और जिसमें शरीर हाथीपर बैठेकी समान हालाकरे ऐसा यह दडकाक्षेप स्वभावसेही असाध्य है ॥ १६७ ॥

अथ कफयुक्तवातोत्पन्नदंडापतानकलक्षणम् ।

कफावृतो यदा वायुर्धमनीष्वेव तिष्ठति ॥ स दण्डवत्स्तम्भयति कृच्छ्रो दण्डापतानकः ॥ १६८ ॥

दण्डापतानकः, स आक्षेपको दण्डापतानकाख्यः। कृच्छ्रः कष्टसाध्यः। अत्र च मुहुर्मुहुराक्षेपणं बोद्धव्यम्। आगन्तुजाक्षेपकस्य लक्षणं सामान्यमेव बोद्धव्यम्॥

जब कफसे व्याप्त वायु धमनिओमे रहती है तब धमनी लकडीकी समान स्तब्ध होजाती हैं और शरीर हाथीपै बैठेहुएकी समान वारवार हिलाकरताहै इसको दडापतानकाक्षेप रोग कहते हैं, यह दंडापतानकाक्षेप कष्टसाध्य है॥

अभिघातकृताक्षेपक जो आगन्तुजाक्षेपक कहाजाताहै उसके लक्षण अलग नहीं कहे हैं अत एव आक्षेपकके जो सामान्य लक्षण कहेहैं वे उसके भी जानने चाहिये पित्तसयुक्त वायुसे उत्पन्न हुए आक्षेपकके लक्षण भी अलग नही देखनेमें आते इसकारण उसके लक्षण भी सामान्य लक्षणोसे न्यूनाधिक रहित जानने॥ १६८॥

अथ चतुष्प्रकाराक्षेपकचिकित्सा।

तत्र महाबलातैलम्।

बलामूलकषायस्य दशमूलीशृतस्य च॥ यवकोलकुलत्थानां क्वाथस्य पयसस्तथा॥॥ १६९॥ अष्टावष्टौ स्मृता भागास्तैलादेकस्तदेकतः॥ पचेदवाप्य मधुरं गणं सैन्धवसंयुतम्॥ १७०॥ तथाऽगुरुं सर्जरसं सरलं देवदारु च॥ मञ्जिष्ठां पद्मकं कुष्ठमेलां कालाश्च सारिवाम्॥॥ १७१॥ मांसीं शैलेयकं पत्रं तगरं सारिवां वचाम्॥ शतावरीमश्वगन्धां शतपुष्पां पुनर्नवाम्॥ १७२॥ तत्साधुसिद्धं सौवर्णे राजते मृन्मयेऽपि वा॥ प्रक्षिप्य कलशे सम्यक्स्वनुगुप्तं निधापयेत्॥ १७३॥ एतन्महाबलातैलं प्रयुक्तमविलम्बितम्॥ सर्वानाक्षेपकादींस्तु वातव्याधीन्व्यपोहति॥ १७४॥ हिक्कां श्वासमधीमन्थं गुल्मं कासं सुदुस्तरम्॥ षण्मासादुपयुक्तं तदन्त्रवृद्धिश्च नाशयेत् १७५॥ यथाबलमलं मात्रां सूतिकायै च दापयेत्॥ या च गर्भार्थिनी नारी क्षीणशुक्रश्च यः पुमान्॥ १७६॥ क्षीणवाते मर्महते ह्यभिघातहते तथा॥ भग्ने श्रमाभिपन्ने च सर्वथैतत्प्रयुज्यते॥ १७७॥ एतद्धि राज्ञा कर्तव्यं कर्तव्यं राजपूजितैः॥ सुखिभिः सुकुमारैश्च धनिभिर्मानवैः सदा॥ १७८॥

एकतः एकत्र। अवाप्य प्रक्षिप्य॥

खिरैटीका क्काथ आठभाग, दशमूलका क्काथ आठ भाग, जौ, कालीमिर्च और कुलथीका क्काथ आठभाग, दूध आठ भाग और तेल एक भाग, इन सबको एक बासनमें डालकर और उसमें जीवनीय गणकी औषधि सैंधानिमक, अगर, राल, धूपसरल, देवदारु, मजीठ, पद्माख, कूठ, इलायची, कालीसारिवा, वालछड (जटामासी), छारछवीला, तेजपत्र, तगर, गौरीसारिवा, वच, सतावर, असगन्ध, सोया और पुनर्नवा इन सब पदार्थोंको डालकर यथाविधिसे तेलको पकावै तौ महाबला नामक तैल तैयार होताहै। इस तेलके सिद्ध होनेके पश्चात् सोने, चादी, अथवा मट्टीके कलशेमें भरकर उत्तमरीतिसे रखदेवे। इस तेलका प्रयोग करनेसे सर्व प्रकारकी वातव्याधि नष्ट होती हैं विशेष करके, आक्षेपकादि रोग नष्ट होते हैं तथा हिचकी, श्वास, अधिमन्थ, गुल्म और भयंकर खाँसी भी दूर होजाती है और छः महीनेके प्रयोग करनेसे अन्त्रवृद्धिका भी नाश होजाताहै बल और मलके अनुसार प्रसूता स्त्रीको इस तेलकी मात्रा देवे॥

जिन स्त्रियोंको गर्भ रहनेकी इच्छा है तथा जो पुरुष वीर्यक्षीण होगये हैं उनके लिये भी यह तेल महाहितकारी है। क्षीणवातपर, मर्महत अभिघातपर, अन्यान्य अभिघातोपर, टूटे हुएपर और परिश्रमके दुःखपर अच्छे प्रकारसे इस तेलका प्रयोग करना चाहिये। राजा, राजमान्य, सुखी लोग, सुकुमार लोग और धनवान् मनुष्योंको यह तेल सदैव रखना चाहिये॥ १६९–१७८॥

अथान्तरायामलक्षणम् ।

अंगुलीगुल्फजठरहृद्वक्षोगलसंश्रितः ॥ स्नायुप्रतानमनिलस्तदाक्षिपति वेगवान् ॥ १७९ ॥ विष्टब्धाक्षः स्तब्धहनुर्भग्नपार्श्वः कफं वमन् ॥ अभ्यन्तरे धनुरिव यदा नमति मानवः ॥ तदा सोऽभ्यन्तरायामं कुरुते मारुतो बली ॥ १८० ॥

यदा स बली मारुतोऽभ्यन्तरायामं कुरुते॥ तदंगुल्यादिसंश्रितोऽनिलः । स्नायुरत्र उपलक्षणम् । तेन शिराकण्ठयोरपि ग्रहणम् । आक्षिपति कम्पयति । तदा स मानवः विष्टब्धाक्षः स्तब्धनेत्रः भग्नपार्श्वः भग्ने इव पार्श्वे यस्य सः ॥

जब बलवान् वायु अंतरायामको करती है तब अंगुली, गुल्फ, पेट, हृदय, वक्षःस्थल और गला इनमें रहनेवाली पवन वेगवान् होकर स्नायुके समूहको, शिराओंको और कंठको भी कँपाती है और उस समय उस मनुष्यकी आँखें पथराजाती हैं, ठोडी जकडजाती है, पसली टूटीकी समान होती है, कफकी वमन करताहै और वह छातीसे कमानकी समान नव जाताहै ॥ १७९ ॥ १८० ॥

अथ बाह्यायामलक्षणम् ।

महाहेतुर्बली वायुः सशिराः स्नायुकण्डराः ॥ मन्यापृष्ठाश्रिता बाह्याः संशोष्यानामयेद्बहिः ॥ १८१ ॥ यत्र तं बहिरायामं प्रवदन्ति भिषग्वराः ॥ तमसाध्यं बुधाः प्राहुर्वक्षःकट्यूरुभञ्जनम् ॥ १८२ ॥

वक्षःकट्यूरुभञ्जनम् तत्रापि यो वक्षःकट्यूरून्भञ्जति संमर्दयति तमसाध्यं प्राहुः ॥

बडे बडे कारणोंसे प्रबल हुई वायु नाडीमें तथा पीठमें रहनेवाली पीठकी शिराओंको, स्नायुओंको तथा कंडराओंको सुखा देतीहै उससे मनुष्य पीठकी ओर कमानकी समान नव जाताहै इस रोगको उत्तम वैद्य बाह्यायाम कहते हैं, यह रोग असाध्य है। और इसमें भी जो छाती, कमर, तथा साँथलोंमें मर्दनकी समान पीडा होती होय तो अत्यत असाध्य है ॥ १८१ ॥ १८२ ॥

अथ चिकित्सा ।

बाह्यायामेऽन्तरायामे विधेयाऽर्दितवत्क्रिया ॥ १८३ ॥

जो अंतरायाम और बाह्यायाम उत्पन्न हुआ होय तो अर्दितकी समान चिकित्सा करे ॥ १८३ ॥

अथ धनुस्तम्भलक्षणम् ।

धनुस्तुल्यो नमेद्यस्तु स धनुस्तम्भसंज्ञितः ॥ विवर्णबद्धवदनः स्रस्तांगो नष्टचेतनः ॥ प्रस्विद्येच्च धनुस्तम्भो दशरात्रं न जीवति ॥ १८४ ॥

अन्तरायामेऽङ्गुल्यादिषु आक्षेपः स्तब्धाक्षत्वादिकश्च भवति । धनुस्तम्भे तु धनुर्वन्नमनमात्रमिति एतयोर्भेदः । विवर्णबद्धवदनः बन्धोऽत्र चिबुकस्य ज्ञेयः ॥

वायुके कोप होनेसे मनुष्य कमानकी समान नव जाता है उसको धनुर्वात कहते हैं, शिथिल अगोंवाला, भयानकता युक्त, पसीने सहित और जिसका मुख फैलगया हो तथा विपरीत रंगवाला होगया होय तो ऐसा धनुर्वातका रोगी दश रात्रिके भीतर मर जाताहै ।

अंतरायाममें तो अंगुली आदियोंमें आक्षेप होताहै तथा आखें पथरा जाती हैं और धनुर्वातमें तो केवल कमानकी समान नवजाताहै इस कारण अतरायाम और धनुर्वातमें भेद है ॥ १८४ ॥

अथ कुब्जकलक्षणम् ।

हृदयं यदि वा पृष्ठमुन्नतं क्रमशः सरुक् ॥ क्रुद्धो वायुर्यदा कुर्यात्तदा तं कुब्जमादिशेत् ॥ १८५ ॥

यदेत्युक्ता यदि वेति विकल्पार्थस्तेन न पुनरुक्तिदोषः । ननु अन्तरायामः क्रोडनतो भवति । बहिरायामः पृष्ठतो भवति ताभ्यामस्य को भेदः, उच्यते—अन्तरायामबहिरायामयोः प्रकृतस्यैव अन्तःशरीरस्य बहिःशरीरस्य च नमनम् अत्र तु हृदयं पृष्ठं वा शरीराद्बहिर्भवतीति भेदः ॥

कोपको प्राप्त हुई वायु छातीको अथवा पीठको अनुक्रमसे ऊँचे और वेदनायुक्त कर देवे इस रोगको कुब्जक कहतेहैं।

शंका–अंतरायाममे छातीसे नवताहै और बाह्यायाममें पीठसे नवताहै फिर इस कुब्जकमें कौनसा भेद रहा।

समाधान–अतरायाममें और बाह्यायाममे शरीर जैसा तैसा ही रहकर छातीसे अथवा पीठसे नवताहै परतु कुब्जकमे तो छाती तथा पीठ शरीरके भागसे बाहर निकलजाती है यह भेद है ॥ १८५ ॥

अथ धनुर्वातकुब्जकचिकित्सा।

बाह्यायामेऽन्तरायामे धनुःस्तम्भे च कुब्जके ॥ योज्यं प्रसारणीतैलं तेन तेषां शमो भवेत् ॥ १८६ ॥ वातव्याधिषु सामान्या याः क्रियाः कथिताः पुरा ॥ कर्तव्या एव ताः सर्वास्तैलमेतद्विशेषतः १८७ ॥

धनुर्वात, कुब्जक, अंतरायाम और बाह्यायाम उत्पन्न हुआ होय तो प्रसारिणीतैल (जो कि हनुग्रहकी चिकित्सामें कह चुके हैं) का उपयोग करनेसे ये रोग शांत होजाते हैं। प्रथम वातव्याधियोंमें जो सामान्य चिकित्सा कही है वह सब चिकित्सा इसमें अवश्य करनी चाहिये और विशेष करके प्रसारिणीतैलका उपयोग करना चाहिये ॥ १८६ ॥ १८७ ॥

अथापतंत्रकलक्षणम्।

क्रुद्धः स्वैः कोपनैर्वायुः स्थानादूर्द्ध्वं प्रपद्यते ॥ पीडयन्हृदयं गत्वा शिरःशंखौ च पीडयन् ॥ १८८ ॥ धनुर्वन्नमयेद्गात्राण्याक्षिपेन्मोहयेत्तथा ॥ स कृच्छ्रादुच्छ्वसेदुच्चैः स्तब्धाक्षोऽथ निमीलकः ॥ कपोत इव कूजेच्च निःसञ्ज्ञः सोऽपतन्त्रकः॥१८९॥

स्थानात्पक्वाशयात्। ऊर्द्ध्वं शिर उद्दिश्य। आक्षिपेच्चालयेत्। अथ निमीलकः। अथ वा निमीलिताक्षः। यत्रैतानि भवन्ति सोऽपतन्त्रकः॥

अपने कारणोंसे कोपको प्राप्त हुई वायु पक्वाशयमेंसे ऊपर जाकर हृदयको पीडित करैहै, मस्तक तथा कनपटिओको भी पीडित करैहै, गात्रको कमानकी समान नवादेतीहै और कँपातीहै और चित्तको मोहयुक्त करतीहै जिससे कि यह मनुष्य अत्यत कठिनतासे ऊंचाश्वास लेताहै, आंखोंको खोलदेताहै अथवा मीचलेताहै, कबूतरकी समान कूँजताहै, बेसुधि होजाताहै यह सब लक्षण जिसमें होंयँ उसको अपतत्रक रोग कहतेहैं ॥ १८८ ॥ १८९ ॥

अथापतंत्रकचिकित्सा।

अथापतन्त्रकेणार्तमातुरं नापतर्पयेत् ॥ निरूहवस्तिं वमनं सेवयेन्न कदाचन ॥ ॥ १९० ॥ श्वसनाः कफवाताभ्यां रुद्धास्तस्य विमोक्षयेत् ॥ तीक्ष्णैः प्रधमनैः संज्ञां तासु मुक्तासु विन्दति ॥ १९१ ॥ श्वसनाः प्रश्वासोच्छ्वासवहा धमनीः ॥

अपतत्रसे पीडित मनुष्यके तृप्ति विरुद्ध क्रिया नही करे और कभी भी निरूहवस्ति तथा वमनका सेवन नहीं करावे, परंतु कफसे तथा वायुसे रुकी हुई उन श्वासको चलानेवाली नाडियोंको तीक्ष्ण प्रधमन (तीक्ष्ण चूर्णका नस्य) देकर खोलदेवे, क्योंकि नाडियोंके खुलजानेसे रोगीको संज्ञा प्राप्त होतीहै ॥ १९० ॥ १९१ ॥

अथ मरिचादिनस्यम्।

मरिचं शिग्रुबीजानि विडङ्गञ्च फणिज्जकम् ॥ एतानि सूक्ष्मचूर्णानि दद्याच्छीर्षविरेचने ॥ १९२ ॥

फणिज्जको मरुबकः॥

शिरोविरेचन अर्थात् शिरको खाली करनेके लिये कालीमिर्च, सैंजिनेके बीज, वायविडंग और मरुआ इनका बारीक चूर्ण करके नासदेवे ॥ १९२ ॥

अथ हरीतक्यादियोगः।

हरीतकी वचा रास्ना सैन्धवं साम्लवेतसम् ॥ घृतमार्द्रकसंयुक्तमपतन्त्रकनाशनम् ॥ अम्लवेतसकाभावे चुक्रं दातव्यमीरितम् ॥ १९३ ॥

हरड, वच, रासना, सैंधानमक, अमलवेत, (अम-

स्वेत न मिलसके तो चूका) घी और अदरखका रस इनका प्रयोग करनेसे अपतन्त्र रोग नष्ट होजाताहै॥ १९३॥

अथापतानकलक्षणम् ।

दृष्टिं संस्तभ्य संज्ञाश्च हत्वा कण्ठेन कूजति ॥ हृदि मुक्ते नरः स्वास्थ्यं याति मोहं वृते पुनः ॥ वायुना दारुणं प्राहुरेके तमपतानकम् ॥ १९४ ॥ गर्भजातनिमित्तश्च शोणितातिस्रवाच्च यः ॥ अभिघातनिमित्तश्च न सिध्यत्यपतानकः ॥ १९५ ॥

दृष्टिं रूपग्रहणशक्तिं संस्तभ्य नाशयित्वा ॥

वायु कुपित होकर मनुष्यके देखनेकी शक्ति तथा सज्ञा (होश) को नष्ट करदेवे, गलेमें कूँजे और मोहसे घिरे हुए हृदयको जब वायु त्यागदेवे तब फिर होश होवे, इस महादारुण रोगको कितनेक वैद्य अपतानक कहतेहैं।

गर्भकी उत्पत्तिसे उत्पन्न हुआ रुधिरके बहुत निकलनेमें उत्पन्न हुआ और अभिघातसे उत्पन्नहुआ अपतानक नहीं आरोग्य होताहै ॥ १९४ ॥ १९५ ॥

अथापतानकचिकित्सा ।

अथापतानकेनार्तमस्रुताक्षमवेपनम् ॥ अखट्वापातिनं चैव त्वरया समुपाचरेत् ॥ १९६ ॥ अपतानकिने शस्तं दशमूलीशृतं जलम् ॥ पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं जीर्णे मांसरसौदनम् ॥ १९७ ॥ तैलेन मर्दनं चैव तथा तीक्ष्णं विरेचनम् ॥ स्रोतोविशोधनं पश्चात् सर्पिःपानं हितं स्मृतम् ॥ १९८ ॥ हन्त्यभुक्तवता पीतमम्लं दध्यपतानकम् ॥ मरिचेन समायुक्तं स्नेहबस्तिरथापि वा ॥ १९९ ॥

अपतानकरोगसे पीडित मनुष्यके नेत्रोंमेसे पानी बहताहो, कम्प नहीं होताहो और खाटपै न पडगया होय तो इसकी पहिले ही तत्काल चिकित्सा करनीचाहिये।

अपतानक रोगीको दशमूलके क्वाथमें पीपलका चूर्ण डालकर पिलावे, क्वाथ पचजाय तब मांसरस युक्त भात खिलावे, तैलसे मर्दन करे, तीक्ष्ण विरेचन (जुलाब) देवे और पश्चात् घी पिलावे कि जिससे स्रोत साफ होजायँ।

भोजनसे पहिले मरिचके चूर्णके साथ खट्टे दहीको पिये तो अपतानकरोग नष्ट होजाताहै। स्नेहकी पिचकारी लगानेसे भी अपतानकरोग नष्ट होजाताहै ॥ १९६–१९९ ॥

अथ पक्षाघातलक्षणम् ।

गृहीत्वार्द्धं तनोर्वायुः शिराः स्नायूर्विशोष्य च ॥ पक्षमन्यतमं हन्ति सन्धिबन्धान्विमोक्षयन् ॥ २०० ॥ कृत्स्नोर्द्धकायस्तस्य स्यादकर्मण्यो विचेतनः ॥ एकांगवातं तं केचिदन्ये पक्षवधं विदुः ॥ २०१ ॥

अर्द्धम् अर्द्धनारीश्वरवत्पक्षं बाहुपार्श्वोरुजङ्घादिभागम् । अन्यतमं वामं दक्षिणं वा विमोक्षयन् शिथिलीकुर्वन् । अकर्मण्यः कर्मासमर्थः । विचेतनः ईषत्स्पर्शादिज्ञानयुक्तः ॥

वायु शरीरके आधे भागको पकडकर शिराओंको तथा स्नायुओंको सुखा डालतीहै, सन्धियोंके बन्धनोंको शिथिल करके दहिने अथवा बायें किसी एक ओरके अंगको मारदेतीहै कि जिससे मनुष्यका आधा शरीर कुछ काम नहीं करसक्ता और स्पर्शज्ञान आदि भी अल्प रहजाताहै। इस रोगको कितनेक वैद्य पक्षाघात कहतेहैं, कितनेक वैद्य एकांगवात कहतेहैं, और कितनेक वैद्य पक्षवध कहतेहैं। जिस प्रकार अर्द्धनारीश्वरका आधाशरीर स्त्रीमय है और आधा शरीर पुरुषमय है उसी प्रकार इस रोगवाले मनुष्यका आधा शरीर मारा जाता है और वह आधा शरीर किसी कार्य करनेके योग्य नहीं रहता है ॥ २०० ॥ २०१ ॥

अथान्यदोषयुक्तवायुलक्षणम् ।

दाहसन्तापमूर्च्छाः स्युर्वायौ पित्तसन्विते ॥ शैत्यशोथगुरुत्वानि तस्मिन्नेव कफावृते ॥ २०२ ॥

दाहो बाह्यः, सन्तापः आभ्यन्तरः । एतल्लक्षणमन्यत्रापि वातव्याधौ बोद्धव्यं निर्दिष्टत्वात ॥

वायु जो पित्तसंयुक्त होय तो अन्तर्दाह, बाहर संताप तथा मूर्च्छा होतीहै और कफसंयुक्त होय तो शीतलता, सूजन तथा भारीपन होताहै, यही लक्षण अन्यान्यवातव्याधियोंमे भी जानने, क्यो कि यह लक्षण सामान्य रीतिसे वायु शब्दका ग्रहण करतेहैं ॥ २०२ ॥

अथ पक्षाघातसाध्यासाध्यता ।

शुद्धवातहतं पक्षं कृच्छ्रसाध्यतमं विदुः ॥ साध्यमन्येन संयुक्तमसाध्यं क्षयहेतुकम् ॥ २०३ ॥

शुद्धः केवलः । अन्येन पित्तेन कफेन वा । क्षयहेतुकं क्षयो धातुक्षयस्तत्कुपितवातनिमित्तकम् ॥

पक्षाघात जो केवल वायुसे उत्पन्न हुआ होय तो अत्यन्त कष्टसाध्य है, पित्तसे और कफसे सयुक्त वायुस उत्पन्न हुआ होय तो साध्यहै और धातुओंके क्षयसे कुपित हुई वायुसे उत्पन्न हुआ होय तो असाध्य है ॥ २०३ ॥

उपरमसाध्यलक्षणम् ।

गर्भिणीसूतिकाबालवृद्धक्षीणेष्वसृक्क्षये ॥ पक्षाघातं परिहरेद्वेदनारहितो यदि॥२०४॥

वेदनारहितो यदि इति भिन्नमसाध्यलक्षणम्॥

गर्भवती स्त्री, प्रसूतास्त्री, बालक, वृद्ध, क्षीण और जिसके रुधिरका क्षय होगया होय ऐसे मनुष्योके उत्पन्न हुआ पक्षाघात आराम नहीं होता, अत एव इसकी चिकित्सा नही करनी चाहिये ।

पक्षाघात जो वेदनासे रहित होय तो असाध्य है इसलिये इसकी चिकित्सा नही करनी चाहिये ॥ २०४ ॥

अथ पक्षाघातचिकित्सा ।

तत्र माषादिक्काथः ।

माषात्मगुप्तावातारिवाट्यालकजटाश्टतम् ॥ हिंगुसैन्धवसंयुक्तं पक्षाघातं विनाशयेत् ॥ माषिके हिंगुसिन्धूत्थे जरणाद्यास्तु शाणिकाः ॥ २०५ ॥

उडद, कौंछ, एरण्ड और खिरैटीकी जड इनका क्काथ बनाकर उसमें हींग और सैंधानिमक डालकर पीनेसे पक्षाघात नष्ट होताहै (हीग और सैंधानिमक पाच पांच रत्ती लेना चाहिये और जीरा आदि पदार्थ चौवीस रत्ती लेना ऐसी मर्यादा है) ॥ २०५ ॥

अथ ग्रंथिकादितैलम् ।

ग्रन्थिकाग्निकणाशुण्ठीरास्नासैन्धवकल्कितम् ॥ माषक्काथश्टतं तैलं पक्षाघातं व्यपोहति ॥ २०६ ॥

पीपलामूल, चीता,पीपल, सोठ, रास्ना और सैधानिमक इनका कल्क डालकर उडदके क्काथमें पकाया हुआ तेल पक्षाघातको दूर करैहै ॥ २०६ ॥

अथ माषादितैलम् ।

माषात्मगुप्तातिविषारुबूकरास्नाशताह्वालवणैः सुपिष्टैः ॥ चतुर्गुणे माषबलाकषाये तैले श्टतं हन्ति हि पक्षघातम् ॥ २०७ ॥

उडद, कौंछ, अतीस, अरण्ड, रासन, सोया और सैंधानिमक इनका उत्तम विधिसे कल्क बनाकर तेलसे चौगुने उडदके तथा खिरैटीके क्काथमें पकाया हुवा तेल पक्षाघातको नष्ट करदेताहै ॥ २०७ ॥

अथ सर्वाङ्गवातलक्षणम् ।

सर्वाङ्गपवने क्रुद्धे गात्रस्फुरणभञ्जने ॥ वेदनाभिः परीताश्च स्फुटन्तीवास्य सन्धयः ॥ २०८ ॥

सन्धयो वेदनाभिः परीता युता स्फुटन्तीव॥

संपूर्ण अंगोंमें वायुका कोप होनेसे गात्रकी शिरा कापने लगतीहैं, अंग टूटने लगतेहैं, और वेदनाके मारे सन्धि फटीसी जातीहैं इसको सर्वागवात कहतेहैं ॥ २०८ ॥

अथ सर्वाङ्गवातचिकित्सा ।

सर्वाङ्गगतमेकांगगतश्चापि समीरणम् ॥ तैलावगाहनं हन्ति तोयवेगमिवाचलः ॥ २०९ ॥

जिस प्रकार जलके वेगसे पर्वत नष्ट होजातेहैं उसीप्रकार तेलका अवगाहन सर्वांगवात तथा पक्षाघातको नष्ट करेहै ॥ २०९ ॥

अथ स्थाननामलक्ष्यलक्षण-वातव्याधिविवर्णनम् ।

स्थाननामानुरूपैश्च लिंगैः शेषान्विनिर्दिशेत् ॥ सर्वेष्वेतेषु संसर्गं पित्ताद्यैरुपलक्षयेत् ॥ २१० ॥ प्रथमं ह्रस्वकेशत्वं ततो वाचालतापि च ॥ आटोपः पार्श्वशूलश्च पुरीषस्यातिगाढता ॥ २११ ॥ तथा मलाप्रवृत्तिश्च कम्पः स्तम्भश्च रूक्षता ॥ कार्श्यं कार्ष्ण्यश्च शैत्यश्च लोमहर्षा व्यथा तथा ॥ २१२ ॥ तोदो भेदः शिरास्फूर्तिरंगमर्दोऽङ्गशुष्कता ॥ संकोचश्चांगविभ्रंशो मोहश्चश्चलचित्तता ॥ २१३ ॥ निद्रानाशः स्वेदनाशो बलहानिश्च भीरुता ॥ शुक्रक्षयो रजोनाशो गर्भनाशः परिश्रमः ॥ २१४ ॥

आटोपो गुडगुडाशब्दः । तोदः सूचीव्यधनेनेव पीडा । भेदो विदारणेनेव व्यथा अंगविभ्रंशः अंगस्य स्थानत्यागेन स्खलनम् । निद्रानाशो निद्राल्पत्वमपि । गर्भनाशः आमगर्भपातः । गर्भशय्यायां वाताधिष्ठानाद्गर्भग्रहणमिति जेज्जटः । परिश्रमः आयासं विना श्रमः ॥

शेष (बाकी) वातरोग (जो कि यहां नहीं कहे हैं) उनको उनके स्थान और नामके अनुसार लक्षणोंसे जानलेने चाहिये और इन सबमें पित्तादिकका संसर्ग कल्पना करके जानलेना । जैसे कि केशोंकी अल्पताको 'ह्रस्वकेशत्व' कहतेहैं । बहुत बोलना वाचालता कहीजातीहै । पेटमें जो गुडगुडशब्द होताहै वह आटोप कहाजाता है । पसलियोंमें जो शूल होताहै वह 'पार्श्वशूल' कहाजाताहै। विष्ठाकी जो अत्यन्तकठिनता है वह 'मलगाढता' कहीजातीहै । दस्तका जो नहीं उतरना है वह 'मलाप्रवृत्ति' कहीजातीहै । अंगका जो कांपना है वह 'कम्प' कहाजाताहै । अंगका जो जकडजानाहै वह 'स्तम्भ' कहाजाताहै । शरीरका जो रूखापन है वह 'रूक्षता' कहीजातीहै । शरीरकी जो दुर्बलता है वह 'कार्श्य' कहीजातीहै । शरीरका जो कालापन है वह 'कार्ष्ण्य' कहाजाताहै । शरीरकी जो शीतलता है वह 'शैत्य' कहाजाताहै । रोमाचोंका जो खडा होनाहै वह 'रोमहर्षण' कहाजाताहै । अंगमें जो पीडा होतीहै वह 'व्यथा' कहीजातीहै । अंगमे जो सुई छेदने सरीखी पीडा होतीहै वह 'तोद' कहाजाताहै । मानों शरीरको कोई चीरेडालताहै ऐसी जो पीडा होतीहै वह 'भेद' कहाजाताहै । शिराओंका जो फडकना वह 'शिरास्फूर्ति' कहीजातीहै । अंगोंका जो टूटना है वह 'अंगमर्द' कहाजाताहै । अंगोंका जो सूखनाहै वह 'अंगशुष्कता' कहीजातीहै । अंगोंका जो सकुचना है वह 'अंगसंकोच' कहाजाताहै । अंगोंका जो अपने स्थानसे स्खलन होनाहै वह 'अंगविभ्रंश' कहाजाताहै । चित्तका जो मूढ होजाना है वह 'मोह' कहाजाताहै । चित्तका जो चञ्चलपन है वह 'चलचित्तता' कहीजातीहै । निद्राका बिलकुल नहीं आना अथवा कम आना वह 'निद्रानाश' कहाजाताहै । पसीनेका जो न आनाहै वह 'स्वेदनाश' कहाजाताहै । बलका जो नाश होनाहै वह 'बलहानि' कहीजातीहै । डरपोकपन जो है वह 'भीरुता' कहीजातीहै । वीर्यका नष्ट होना जो है वह 'शुक्रक्षय' कहाजाताहै । स्त्रीके रजका नाश होताहै तो 'रजोनाश' कहाजाताहै । अपक्व गर्भका गिरजाना अथवा जेज्जटके मतानुसार गर्भाशयमे वायुके स्थित होनेसे गर्भका नहीं रहना जो है वह 'गर्भनाश' कहाजाताहै । विना परिश्रम कियेहुए थकजाना जो है वह 'परिश्रम' कहाजाताहै । वह्निवैषम्य, अर्थात् अग्निकी विषमताके लक्षण जठराग्निके विकारोंमें अग्निमाद्यमें कह आये हैं सो देखलेना ॥ २१०—२१४ ॥

अथोक्तवातव्याधिचिकित्सा ।

सामान्यवातरोगाणां या चिकित्सा प्रवक्ष्यते ॥ एषां सैव विधातव्या तयैते यान्ति संक्षयम् ॥ २१५ ॥

वातव्याधियोंमें जो सामान्य औषधि कही है वही औषधि ह्रस्वकेशत्व आदि रोगोंमें प्रयोग करनी चाहिये, इस प्रकार करनेसे उन रोगोंका नाश होताहै ॥२१५॥

अथान्यप्रकारेण वातव्याधिनिरूपणम् ।

एवंविधानि रूपाणि करोति कुपितोऽनिलः ॥ हेतुस्थानविशेषेण भवेद्रोगविशेषकृत् ॥ २१६ ॥

एवंविधानि रूपाणि शिरोग्रहादीनि अशीतिः । हेत्वित्यादिहेतुविशेषः पित्तश्लेष्माद्यावृतत्वादिः । यथा श्लेष्मावृतो वायुः मन्यास्तम्भं करोति । स्थानविशेषः कोष्ठादिः । यथा "तत्र कोष्ठाश्रिते दुष्टे निग्रहो मूत्रवर्चसोः" इत्यादि ॥

कोपको प्राप्त हुई इस प्रकार यह वायु शिरोग्रह आदि अस्सी रूपोंको उत्पन्न करतीहै । हेतुओंके भेदसे तथा स्थानोंके भेदसे भी वातव्याधियोंका विशेष विवेचन समझना योग्य है ॥ २१६ ॥

अथोदानादिवायोः पित्तकफसंबन्धेन लक्षणम् ।

उदाने पित्तसंयुक्ते दाहो मूर्च्छा भ्रमः क्लमः ॥ अस्वेदहर्षौ मन्दाग्निः शीतता च कफावृते ॥ २१७ ॥ प्राणे पित्तावृते छर्दिर्दाहश्चैवोपजायते ॥ दौर्बल्यं सदनं तन्द्रा वैरस्यञ्च कफावृते ॥ २१८ ॥

प्राणो हृदयाश्रयो वायुः ॥

स्वेदो दाहस्तृषा मूर्च्छा समाने पित्तसंयुते ॥ कफेन सक्ते विण्मूत्रे गात्रहर्षश्च जायते ॥ २१९ ॥

कफेन संयुक्ते समाने विण्मूत्रे सक्ते अवरुद्धे भवतः । गात्रहर्षो रोमाञ्चः ॥

अपाने पित्तसंयुक्ते दाहौष्ण्यं रक्तमूत्रता ॥ अधःकाये गुरुत्वञ्च शीतता च कफावृते ॥ २२० ॥

अत्र गुदाश्रयः अपानः ॥

व्याने पित्तावृते दाहो गात्रविक्षेपणं क्लमः ॥ स्तम्भोऽथ दण्डकश्चापि शूलशोथौ कफावृते ॥ २२१ ॥

दण्डकः आक्षेपकभेदः ॥

कठमे रहनेवाली उदान वायु जो पित्तसे सयुक्त होय तो दाह, मूर्छा, भ्रम तथा ग्लानि होतीहै । जो कफसे सयुक्त होतीहै तो पसीनेका अभाव, रोमांचोंका हो आना, अग्निकी मन्दता और शरीरकी शीतलता होतीहै । हृदयमें रहनेवाली जो प्राणवायु पित्तसे सयुक्त होय तो वमन तथा दाह होताहै । और कफसे संयुक्त होय तो दुर्बलता, ग्लानि, तंद्रा तथा विरसता होतीहै । जठराग्निके नीचे रहनेवाली जो समान वायु पित्तसे संयुक्त होय तो पसीना दाह तृषा तथा मूर्छा होतीहै और कफसे सयुक्त होय तो विष्ठा तथा मूत्रका अवरोध और रोमाचोंका खडा होना ये लक्षण होतेहैं ॥

गुदामें रहनेवाली अपान वायु पित्तसे सयुक्त होय तो दाह, उष्णता और लालमूत्र होजाताहै । और जो कफसे सयुक्त होय तो शरीरके नीचेके भागमे भारीपन तथा शीतपन होताहै ॥

सम्पूर्ण शरीरमें रहनेवाली व्यानवायु जो पित्तसे संयुक्त होय तो दाह, अगोंका फेंकना, तथा ग्लानि होतीहै और जो कफसे सयुक्त होय तो जडता, दंडकाक्षेप, शूल तथा सूजन ये लक्षण होतेहैं ॥ २१७–२२१ ॥

अथ पित्तकफावृतवायुचिकित्सा ।

वाते सपित्ते कुर्वीत वातपित्तहरीं क्रियाम् ॥ सकफे तत्र कुर्वीत वातश्लेष्महरीं क्रियाम् ॥ २२२ ॥

वायु पित्तसे सयुक्त होय तो वात तथा पित्त दोनोंको हरनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये और जो कफसे सयुक्त होय तो वायु तथा कफ इन दोनोंको हरनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २२२ ॥

अथ त्वगादिस्थानस्थितरसादिधातुगतवायुलक्षणम् ।

त्वग्रूक्षा स्फुटिता सुप्ता कृशा कृष्णा

च तुद्यते ॥ आतन्यते सरागा च सर्व-रुक्त्वग्गतेऽनिले ॥ २२३ ॥

सर्वरुक्सप्तत्वग्व्यथा त्वग्गते त्वक्छब्देन अत्र रस उच्यते । त्वगाधार्यत्वात्तेन रसगत इत्यर्थः ॥

रुजस्तीव्राः ससन्तापो वैवर्ण्यं कृशता-ऽरुचिः ॥ गात्रे चारूंषि भुक्तस्य स्तम्भ-श्चासृग्गतेऽनिले ॥ २२४ ॥

अरूंषि व्रणानि । भुक्तस्य भुक्तेत्यत्र अध्यवसितादित्वात् कर्तरि क्तः तेन भुक्त-वतः स्तम्भः सन्तर्पणेन रक्तवृद्धेः ॥

गुर्वङ्गं तुद्यते स्तब्धं दण्डमुष्टिहतं यथा ॥ सरुक्स्तिमितमत्यर्थं वाते मांससमा-श्रिते ॥ २२५ ॥

दण्डमुष्टिताडितमिव तुद्यते स्तिमितं निश्चलमित्यर्थः । मांसमेदसोर्गतवातयोरे-कलिङ्गत्वम् अदूरान्तरेण प्रत्यासत्तेः आश्र-यप्रभावात् ॥

तथा मेदःश्रितः कुर्याद्ग्रन्थीन्मन्दरुजो व्रणान् ॥ २२६ ॥

तथा मेदःश्रितः मांसगतवत् । दूरेण प्रत्यासत्तेरस्थिरूपाया मेदाच्च कुर्यात् ग्रन्थी-नित्यादिर्विशेषः ॥

भेदोऽस्थिपर्वणां सन्धिशूलं मांसबलक्षयः॥ अस्वप्नं सतता रुक् च वाते दुष्टेऽस्थिसं-स्थिते ॥ वाते मज्जगते पीडा न कदा-चित्प्रशाम्यति ॥ २२७ ॥

मज्जगते अस्थिगतवत् । यथा मेदोगतो मांसगतवत्स्यात्।पीडात्र कदापि न शाम्यत्य-यं विशेषः ॥

क्षिप्रं मुञ्चति बध्नाति शुक्रं गर्भमथापि वा ॥ विकृतिं जनयेच्चापि शुक्रस्थः कुपितोऽनिलः ॥ २२८ ॥

शुक्रं बध्नाति स्खलयत्येव न । गर्भं क्षिप्रं मुञ्चति । आममेव पातयति । बध्नाति मूढं करोति । वातदुष्टशुक्रारब्धत्वात् । विकृतिं शुक्रस्य वर्णान्तरत्वादिरूपां गर्भस्य विकृताङ्गत्वादिरूपां जनयति ॥

जब वायु रसमें स्थित होजातीहै तब शरीरकी चमडी रूखी, फटीहुई, जड, पतली, काली, सुई चुभोने सरीखी पीडायुक्त, खिचीसी और ललाई लिये होतीहै और सातों त्वचाओंमे व्यथा होती है । रुधिरगत वायु होय तो तीव्रपीडा होतीहै, सताप होताहै, शरीरका रग बिगड जाताहै, दुर्बलता होजातीहै, अरुचि होजातीहै, गात्रमें व्रण होतेहैं और भोजन करनेके पश्चात् तृप्तिसे रुधिरकी वृद्धि होकर स्तब्धता होतीहै ॥

वायु मासगत होय तो अग भारी होजाताहै, लकडी अथवा मुट्ठीके मारनेकी समान पीडा होतीहै, स्तब्धता होतीहै, व्यथायुक्त होताहै और अत्यन्त निश्चल होजाताहै ।

वायु मेदगत होय तो मासगत वायुकी समान सम्पूर्ण लक्षण होतेहैं, तथा अल्पपीडावाली ग्रंथि और फोडे होतेहैं, इतनी मेदगत वायुमें विशेषता है कि, दुष्ट वायु अस्थियोंमें स्थित होय तो अस्थियोंकी सधिओंमें तोडने सरीखी पीडा होतीहै । संधियोंमें शूल चलताहै, मास तथा बलका क्षय होताहै, निद्रा नहीं आती और प्रबल पीडा होतीहै । मज्जागत वायुमें अस्थिगत वायुके समान लक्षण होतेहैं, परन्तु इतना विशेष होताहै कि मज्जागत वायुसे उत्पन्न हुई पीडा कभीभी शांत नहीं होतीहै ॥

कोपको प्राप्त हुई वायु वीर्यमें प्राप्त होय तो वीर्य स्खलित नहीं होने देती, अपक्क गर्भकोही गिरादेतीहै तथा मूढ करदेतीहै, वीर्यके रंगको बदलदेतीहै, अथवा वीर्यको बिगाड देतीहै और गर्भमें अंगविकृति आदि करतीहै, वातदूषितवीर्यसे उत्पन्न होनेके कारण गर्भ कच्चाही गिर जाताहै अथवा मूढ होजाय है यह सम्भव है ॥ २२३–२२८ ॥

अथ रसादिधातुगतवायु-चिकित्सा ।

वायौ त्वगाश्रिते स्नेहाभ्यंगं स्वेदश्च कार-येत् ॥ रक्तस्थे शीतलाँल्लेपान्विरकं रक्त-मोक्षणम् ॥ २२९ ॥ मांसमेदोगते वाते सविरेकं निरूहणम् ॥ अस्थिमज्जगते स्नेहं बहिरन्तश्च योजयेत् ॥ २३० ॥

वायु रसमे स्थित होय तो स्नेहका अभ्यंग तथा स्वेदन क्रिया करे। वायु रुधिरमे प्राप्त होय तो शीतल लेप करे, विरेचन देवे तथा फस्त आदि खुलवाकर रुधिर निकलवावे।

वायु मांस अथवा मेदमें स्थित होय तो विरेचन देवे और निरूहवस्ति (क्वाथकी पिचकारी) करे।

वायु अस्थियोंमें अथवा मज्जामें स्थित होय तो बाहर तथा भीतर स्नेहकी योजना करे ॥ २२९ ॥ २३० ॥

केतकिनागबलातिबलानां यद्बहुलेन रसेन विपक्वम् ॥ तैलमनल्पतुषोदकसिद्धं मारुतमस्थिगतं विनिहन्ति ॥२३१॥ हर्षोऽन्नपानं शुक्रस्थे वलशुक्रकरं हितम् ॥२३२॥

केवडा और गगेरन (गुलसकरी) तथा कंघी इनके बहुतसे स्वरससे और बहुतसे तुषोदकसे पकाये हुए तेलको केतक्यादितैल कहतेहैं। इस तेलका उपयोग करनेसे अस्थिगत वायु नष्ट होजातीहै ॥२३१॥ वायु वीर्यमें प्राप्त होय तो स्त्रीआदिसे हर्ष उपजावे और वीर्यको बढानेवाले अन्नपान देवे क्योंकि इस प्रकार करनेसे बल तथा वीर्यकी वृद्धि होतीहै ॥२३१॥ २३२ ॥

अथ स्थानविशेषेण वातव्याधिविशेषस्तत्र कोष्ठगतवायुलक्षणम् ।

वाते कोष्ठाश्रिते दुष्टे निग्रहो मूत्रवर्चसोः ॥ ब्रध्नहृद्रोगगुल्मार्शःपार्श्वशूलश्च जायते२३३

जब दुष्ट वायु कोठेमे स्थित होतीहै तो मूत्र तथा विष्ठाका अवरोध होताहै और गुल्म (वायगोला), हृदयरोग, ब्रध्न, बवासीर और पसलियोंमें शूल ये सब लक्षण होतेहैं ॥ २३३ ॥

अथ कोष्ठलक्षणम् ।

स्थानान्यामामिपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च ॥ हृदुन्दुकः फुप्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते ॥ २३४ ॥

उन्दुकः पीठ इति लोके । एतेन कोष्ठशब्देन सर्व एवाशयाः कथ्यन्ते । तथापि विशेषार्थमामाशयादिगतवातलक्षणान्यपि पृथग्वक्ष्यंते ॥

कच्चे भोजन रहनेका स्थान, अग्निके रहनेका स्थान, पक्व भोजनके रहनेका स्थान, मूत्रका स्थान, रुधिरका स्थान, हृदय, पीठ और फेफडा इन सबको मिलकर कोठा कहाजाताहै। यद्यपि 'कोठा' यह शब्द सब आशयोंको कहाजाताहै तोभी विशेष जाननेके लिये आमाशयादिमें रहनेवाली वायुके लक्षण पृथक् ही कहे हैं ॥ २३४ ॥

अथ कोष्ठवात चिकित्सा ।

पाचनीयै रसैर्युक्तैरन्यैर्वा पाचयेन्मलान् ॥ विशेषतः पिबेत्क्षीरं नरः कोष्ठगतेऽनिले ॥ २३५ ॥

दुष्ट वायु कोठेमे स्थित होय तो मनुष्य पाचन करनेवाले रसोंकी योजना करे, अथवा अन्यान्य उपायोंसे मलको पकावे और विशेष करके दूध पिये ॥ २३५ ॥

अथामाशयगतवायुलक्षणम् ।

हृत्पार्श्वोदरनाभीरुक्तृष्णोद्गारविसूचिकाः ॥ कासः कण्ठस्य शोषश्च श्वासश्चामाश्रयेऽनिले ॥ २३६ ॥

चरक कहताहै कि " जब वायु आमाशयमें रहती है तब हृदय, पसली, पेट और नाभि इनमें पीडा होती है, तृषा लगती है, डकार आती हैं, विसूचिका (हैजा) खाँसी कंठमे शोष और श्वास होताहै " ॥ २३६ ॥

अथामाशयलक्षणम् ।

नाभेस्तनान्तरं जन्तोराहुरामाशयं बुधाः२३७

चरक कहताहै " कि प्राणियोंके शरीरमें नाभि और स्तनके बीचका जो भाग है उसको आमाशय कहतेहैं" ॥ २३७ ॥

अथामाशयगतवायुचिकित्सा ।

आमाशयस्थे त्वनिले प्रशस्तं प्राग्लंघनं दीपनपाचनञ्च ॥ प्रच्छर्दनं तीक्ष्णविरेचनं वा मुद्गा यवाः शालियुताः पुराणाः ॥

॥ २३८ ॥ भूतीकपथ्याशटिपुष्कराणि विल्वामृतादारुकनागराणि ॥ उग्राविषामागधिकाविडानि क्वाथास्त्रयः सामसमीरणघ्नाः ॥ २३९ ॥

भूतीकः रोहिषः सुगन्धस्तृणविशेषः तदलाभे उशीरं ग्राह्यम् ।। पुष्करं पुष्करमूलम् । दारुकं देवदारु । उग्रा वचा । विषा अतिविषा ॥

वायु आमाशयमें स्थित होय तो प्रथम लंघन कराने चाहिये और दीपन तथा पाचन औषधि देनी उत्तम है अथवा वमन और तीक्ष्णविरेचन देना उत्तम है । इस रोगवाले मनुष्यको पुरानी मूग, जौ और चावल पथ्य (हित) है ।

रोहिप, सुगन्धितृण, हरड, कचूर और पोहकरमूल, इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे आमाशयगतवायु नष्ट होजातीहै, जो रोहिप तृण न मिलसके तो उसके अभावमें खस डालनी चाहिये ।

बेलगिरी, गिलोय, देवदारु और सोंठ इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे आमाशयगतवायु नष्ट होजातीहै ।

वच, अतीस, पीपल और विरियासंचरनिमक इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे आमाशयगतवायु नष्ट होजाती है ॥ २३८ ॥ २३९ ॥

अथ षड्धरणयोगः ।

चित्रकेन्द्रयवौ पाठा कटुकातिविषाऽभया ॥ आमाशयोत्थवातघ्नं चूर्णं पेयं सुखाम्बुना ॥ योगेऽस्मिन्भिषजा ग्राह्याः षण्णां षड्धरणा पृथक् ॥ दिनेषु षट्सु दातव्यास्तेन षड्धरणः स्मृतः ॥ २४० ॥

अत्र षण्णां समुदितानां षड्धरणमितानां चूर्णीकृतानाम एकस्मिन्नहनि एकटंको ज्ञेयः ॥

चीता, इन्द्रजौ, पाठ, कुटकी, अतीस और हरड ये प्रत्येक औषधि चौबीस चौबीस रत्तीभर लेकर उनका चूर्ण करके कपडेमें छानलेवे । फिर इसमेंसे नित्य २४ रत्ती चूर्ण लेकर कुछेक गरम जलके साथ पिये तो आमाशयगत वायु नष्ट होजातीहै । इस चूर्णको इसी प्रकार छै दिनतक पिये तो छै दिनमें आराम होजाताहै इस लिये यह षड्धरण योग कहाजाताहै ॥ २४० ॥

अथान्यषड्धरणयोगः ।

आमाशयगते वाते छर्दिश्चापि यथाक्रमम् ॥ देयः षड्धरणो योगः सप्तरात्रं सुखाम्बुना ॥ २४१ ॥

अयमर्थः । प्रथमदिवसे वमनं कारयितव्यं ततो द्वितीयं दिनमारभ्य षड्दिनपर्यंतं पाठक्रमेणैकैकस्य चूर्णं टंकमितं देयमित्यर्थः ॥

पहिले दिन वमन कराकर दूसरेदिन चीतेका चौवीस रत्ती चूर्ण गरमजलसे पिये, तीसरेदिन इन्द्रजौका चौवीस रत्तीचूर्ण गरमजलसे पिये, चौथेदिन पाढेका चौवीस रत्ती चूर्ण गरमजलके साथ पिये, पांचवें दिन कुटकीका चूर्ण चौवीसरत्ती गरमजलके साथ पिये, छठेदिन अतीसका चूर्ण चौवीसरत्ती गरमजलके साथ पिये और सातवेंदिन हरडका चूर्ण, चौवीसरत्ती गरमजलके साथ पिये । इसप्रकार करनेसे भी आमाशयगतवायु नष्ट होजाती है ॥ २४१ ॥

अथ पक्वाशयगतवायुलक्षणम् ।

पक्वाशयस्थोऽन्त्रकूजं शूलाटोपौ करोति च ॥ कृच्छ्रमूत्रपुरीषत्वमानाहं त्रिकवेदनाम् ॥ २४२ ॥

आटोपो वातस्य क्षुब्धत्वम् । न तु गुडगुडाशब्दस्तस्य अन्त्रकूजनोक्तत्वात् ॥

जब वायु पक्वाशयमें स्थित होतीहै तो पेटमें आतें गुडगुड कराकरतीहैं, शूलकी पीडा होतीहै, वायु कुपित होती है, मूत्र और विष्ठा थोडी थोडी उतरतीहै, अफारा आजाताहै और त्रिकस्थानमें पीडा होतीहै ॥ २४२ ॥

अथ पक्वाशयगतवायुचिकित्सा ।

वह्नेः संवर्द्धनं कार्यं कर्मोदावर्तकं तथा ॥ देयः स्नेहविरेकश्च पक्वाशयगतेऽनिले २४३॥

वायु पक्वाशयमे स्थित होय तो जठराग्निको बढानेका उपाय करना चाहिये, उदावर्तकी जो चिकित्सा कहीहै वह सब करनी चाहिये और स्नेहसंयुक्त विरेचन कराना अत्यन्त सुखकारी है ॥ २४३ ॥

अथोदरगतवायुचिकित्सा।

वाते जठरगे दद्यात्क्षारचूर्णादिदीपनम् ॥

वायु पेटमें स्थित होय तो क्षार तथा चूर्ण आदि दीपन औषधि देनी चाहिये ॥

अथ कुक्षिगतवायुचिकित्सा।

शुण्ठीकुटजबीजाग्निचूर्णं कोष्णाम्बु कुक्षिगे ॥ २४४ ॥

वायु कोखमे स्थित होय तो सोठ, इन्द्रजौ और चीता इनका चूर्ण करके कुछेक गरमजलके साथ पिये ॥ २४४ ॥

अथ गुदगतवायुलक्षणम्।

ग्रहो विण्मूत्रवातानां शूलाध्मानाश्मशर्कराः ॥ जङ्घोरुत्रिकपार्श्वांसपृष्ठरोगो गुदेऽनिले ॥ २४५ ॥

रोगोऽत्र रुजा पीडेति यावत् ॥

जब वायु गुदामे स्थित होतीहै तो विष्ठा, मूत्र और अधोवायुका अवरोध होताहै, शूल चलताहै, पेट अफरताहै, पथरी और शर्करा रोग होताहै, तथा पिडली, साँथल, कमर, पसली, कंधे और पीठ इनमें पीडा होतीहै ॥ २४५ ॥

अथ गुदगतवायुचिकित्सा।

वाते गुदगते दुष्टे कर्मोदावर्तकं हितम् ॥ २४६ ॥

दुष्ट वायु जो गुदामें स्थित होय तो उदावर्तमे जो चिकित्सा कही है वह सब करनी चाहिये ॥ २४६ ॥

अथ हृदयगतवायुचिकित्सा।

हृदयानिलनाशाय गुडूचीं मरिचान्विताम्॥पिबेत्प्रातः प्रयत्नेन सुखं तप्ताम्भसा सह ॥२४७॥ पिबेदुष्णाम्भसा पिष्टमाश्वगन्धं विभीतकम्॥गुडयुक्तं प्रयत्नेन हृदयानिलनाशनम् ॥ २४८ ॥ देवदारुसमायुक्तं नागरं परिपेषितम् ॥ हृद्वातवेदनायुक्तः पीत्वा सुखमवाप्नुयात् ॥ २४९ ॥

प्रातःकाल यत्नपूर्वक कुछेक गरमजलके साथ मिरच तथा गिलोयको पिये तौ हृदयमें रहनेवाली दुष्ट वायु नष्ट होतीहै ॥

असगंध और बहेडा इनको एकत्र पीसकर गुडमें मिलाकर गरमजलके साथ पिये तो हृदयमें रहनेवाली दुष्ट वायु नष्ट होतीहै।

देवदारु और सोठ इनको एकत्र पीसकर गरम जलके साथ पीनेसे हृदयगत वायुसे पीडित मनुष्य सुखी होताहै ॥ २४७–२४९ ॥

अथ कर्णेन्द्रियादिगतवायुलक्षणम्।

श्रोत्रादिष्विन्द्रियवधं कुर्यात्क्रुद्धः समारणः ॥ २५० ॥

कोपको प्राप्त हुई वायु जब इन्द्रियोमें रहतीहै तब इन्द्रियोकी शक्तिका नाश करतीहै ॥ २५० ॥

अथ कर्णेन्द्रियादिस्थितवायुचिकित्सा।

श्रोत्रादिष्वनिले दुष्टे कार्यो वातहरः क्रमः॥ स्नेहाभ्यंगावगाहाश्च मर्दनालेपनानि च२५१

दुष्ट हुई वायु जब कान आदि इन्द्रियोंमे स्थित होय तो वायुकी चिकित्सा करे, स्नेहपदार्थोंकी मालिस करे, स्नेहकी कोठीमें अवगाहन करावै, स्नेहको शरीरपर लगावे और स्नेहका लेप करे ॥ २५१ ॥

अथ शिरागतवायुलक्षणम्।

कुर्याच्छिरागतः शूलं शिराकुञ्चनपूरणम्॥ स बाह्याभ्यन्तरायामं खल्लीं कुब्जत्वमेव च ॥ २५२ ॥

कुञ्चः संकोचः बाह्यायामं पृष्ठेन नतम्। अभ्यन्तरायामं क्रोडेन नतम्। शूलं शिरायामेव पूरणं स्थूलत्वम् ॥

शिराओंमे रहनेवाली वायु शिराओंमे शूलकी पीडा, शिराओंका संकोच, शिराओंकी स्थूलता, अतरायामको, बाह्यायामको, खल्लीको और कुब्जताको करतीहै ॥२५२॥

अथ शिरागतवायुचिकित्सा।

स्नेहाभ्यंगोपनाहश्च मर्दनालेपनानि च ॥

वाते शिरागते कुर्यात्तथा चासृग्विमोक्षणम् ॥ २५३ ॥

वायु शिराओंमें स्थित होय तो स्नेहका अभ्यंग करे, स्नेहसहित बफारा, स्नेहकी मालिश करे, स्नेहका लेपन और रुधिर निकलवावे ॥ २५३॥

अथ स्नायुगतवायुलक्षणम् ।

शूलमाक्षेपकः कम्पः स्तम्भः स्नाय्वनिलाद्भवेत् ॥ २५४ ॥ स्वेदोपनाहाग्निकर्मबन्धनोन्मर्दनानि च ॥ क्रुद्धे स्नायुगते वाते कारयेत्कुशलो भिषक् ॥ २५५ ॥

स्नायुगतवातसे शूल आक्षेपक और स्तम्भ होताहै कोपको प्राप्त हुई वायु जब स्नायुमें प्राप्त होय तो पसीने निकलवावे, दाग देवे, दृढ (सख्त) बंधन बाँधे और स्नेह चुपडे, यह उपाय बुद्धिमानोको करना चाहिये२५४॥२५५॥

अथ सन्धिगतवायुलक्षणम् ।

हन्ति सन्धिगतः सन्धीञ्छूलशोथौ करोति च ॥ २५६ ॥

हन्ति विश्लेषयति ॥

संधि (जोड)में रहनेवाली वायु संधियोंको छोड देतीहै और शूल तथा सूजनको उत्पन्न करतीहै ॥ २५६ ॥

अथ संधिगतवायुचिकित्सा ।

कुर्यात्सन्धिगते वाते दाहस्नेहोपनाहनम्॥ इन्द्रवारुणिकामूलं मागधीगुडसंयुतम् ॥ भक्षयेत्कर्षमात्रं तत्सन्धिवातं व्यपोहति ॥ २५७ ॥

जब वायु संधियोंमें प्राप्त होय तो दाग देना और पसीना निकलवाना चाहिये, इन्द्रायनकी जड और पीपल इनको गुडमें मिलाकर एक तोले प्रमाण भक्षण करे तो संधियोंके रहनेवाली वायु नष्ट होतीहै ॥ २५७ ॥

अथ वातरोगकष्टसाध्यत्वम् ।

हनुस्तम्भार्दिताक्षेपपक्षाघातापतानकाः ॥ कालेन महता यत्नात्सिध्यन्ति ह्यथ वा न वा ॥ २५८ ॥

शतेषु एकः कश्चिन्मुच्यते इत्यर्थः । परं कः सिध्यति ? यस्तरुणो भवति तथा बलवानुपद्रवरहितश्च ॥

हनुग्रह, अर्दित, आक्षेप, पक्षाघात और अपतानक ये व्याधि यत्न करनेसे बहुतदिनोंमें आराम होजातीहैं अथवा नहीं भी आराम होतीहैं, इन रोगीमनुष्योंमे सैकडोंमे कोई एक दो मनुष्य जो युवा, बलवान् और उपद्रवरहित होय तो उसके आराम होजाताहै नहीं तो नहीं आराम होता सब यमलोकको चलेजातेहैं ॥ २५८ ॥

अथ वातव्याध्युपद्रवाः ।

विसर्पदाहरुग्भंगमूर्च्छारुच्यग्निमार्दवैः ॥ क्षीणमांसबलं वाता घ्नन्ति पक्षवधादयः ॥ २५९ ॥

वाता वातविकाराः कार्यकारणयोरभेदोपचारात् । वातादिति पाठे वातात्पक्षवधादय इति योज्यम् ॥

वातके प्रकोपसे होनेवाली व्याधियोंसे जिनका मास तथा बल क्षीण होजाताहै वह मनुष्य विसर्प, दाह, व्यथा, भंग, मूर्च्छा, अरुचि और मंदाग्निकी पीडासे मरजातेहैं॥२५९॥

अथ वातव्याध्यसाध्यलक्षणम् ।

शूनं सुप्तत्वचं म्लानं कम्पाध्मानानिपीडितम् ॥ रुजार्तिमन्तश्च नरं वातव्याधिर्विनाशयेत् ॥ २६० ॥

जिसका शरीर सुन्न होगयाहै, त्वचा जड होगई हो, ग्लानियुक्त, कप और अफारेसे पीडित और पीडासे व्याकुल ऐसे मनुष्योंको वातव्याधि अंतमें मारदेतीहै ॥ २६० ॥

अथ प्रकृतिस्थितवातपञ्चककार्य्यम् ।

अव्याहतगतिर्यस्य स्थानस्थः प्रकृतौ स्थितः ॥ वायुः स्यात्सोऽधिकं जीवेद्वीतरोगः समाः शतम् ॥ २६१ ॥

जिस मनुष्यके वायु अप्रतिहतगतिवाली, अपने स्थानमे रहनेवाली और सम प्रकृतिवाली होय वह मनुष्य रोगरहित होकर सौ वर्षसे भी अधिक जीताहै ॥ २६१ ॥

अथ चक्रदत्तप्रोक्तमहामाषादि-तैलम् ।

माषस्यार्द्धाढकं देयं तुलार्द्धं दशमूलतः ॥ पलानि च्छागमांसस्य त्रिंशद्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ २६२ ॥ चतुर्भागावशेषं तं कषायमवतारयेत् ॥ प्रस्थे द्वे तिलतैलस्य पयो दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ २६३ ॥ जीवनीयानि मञ्जिष्ठा चव्यं चित्रककट्फलम् ॥ सव्योषं पिप्पलीमूलं रास्नामलकगोक्षुरम् ॥ २६४ ॥ आत्मगुप्ता तथैरण्डः शताह्वा लवणत्रयम् ॥ देवदार्वमृताकुष्ठमश्वगन्धा वचा शटी ॥ २६५ ॥ एतैरक्षमितैः कल्कैः पाचयेन्मृदुनाग्निना ॥ पक्षाघातार्दिते पुंसि हनुस्तम्भार्दिते तथा ॥ २६६ ॥ कर्णशूले शिरःशूले तिमिरे च त्रिदोषजे ॥ पाणिपादशिरोग्रीवाश्रवणे मन्द एव च ॥ २६७ ॥ कलायखञ्जे पङ्गौ च गृध्रस्यामपबाहुके ॥ पाने वस्तौ तथाभ्यङ्गे नस्ये कर्णादिपूरणे ॥ २६८ ॥ तैलमेतत्प्रशंसन्ति सर्ववातविकारनुत् ॥ महामाषादिनामेदं भाषितं मुनिभिः पुरा ॥ २६९ ॥

उडद १२८ तोले, दशमूल २०० तोले और बकरेका मास १२० तोले, इन सबको एक हजार चौवीस १०२४ तोले जलमे पकावे, जब पकते पकते चौथाई भाग जल बाकी रहजाय तब उसको उतारकर उसमें १२८ तोले तिलका तेल और तेलसे चौगुना ५०४ तोले दूध डाले और जीवनीय गण, मजीठ, चव्य, चीता, कायफल, सोंठ, मिरच, पीपल, पीपलामूल, रायसन, आमले, गोखुरू, कौंछके बीज, अड, सोया, तीनों प्रकारके निमक, देवदारू, गिलोय, कूठ, असगध, वच और कचूर इन प्रत्येक औषधियोंका एक एक तोले कल्क डालकर उसको मद मंद अग्निसे पकावे तो यह महामाषादि तेल सिद्ध होताहै । यह तेल पक्षाघात, हनुग्रह, कानकी पीडा, मस्तककी पीडा, त्रिदोषजन्य तिमिर, हाथकी जडता, पॉवकी जडता, शिर, गरदन और कानोंकी मदता, कलायखंज पंगुता, गृध्रसी और अपबाहुक रोग इन सब रोगोंमे यह तेल हितकारी है । पान, नस्य, पिचकारी और कान आदिके भरनेमें इस तेलका उपयोग करना वायुसम्बन्धी सम्पूर्ण रोगोको नष्ट करेहै । यह महामाषादि तेल पूर्वकालमे मुनियोंने कहा है ॥ ॥ २६२–२६९ ॥

अथ द्वितीयमहामाषादितैलम् ।

माषा यवातसी क्षुद्रा मर्कटी च कुरण्टकः ॥ गोकण्टष्टुण्टुकश्चैषां प्रत्येकं पलसप्तकम् ॥ चतुर्गुणाम्बुना पक्का पादशेषं शृतं नयेत् ॥ २७० ॥ कार्पासकास्थि बदरं शणबीजं कुलत्थकम् ॥ पृथक्चतुर्दशपलं चतुर्गुणजले पचेत् ॥ २७१ ॥ कषायं तत्र गृह्णीयाच्चतुर्थांशावशेषितम् ॥ प्रस्थश्च छागमांसस्य चतुःषष्टिपले जले ॥ २७२ ॥ प्रक्षिप्य पाचयेद्धीमान्पादशेषं रसं नयेत् ॥ तैलप्रस्थे ततः क्राथान्सर्वांस्तान्क्रमशः पचेत् ॥ २७३ ॥ कल्कद्रव्यैः पचेदेभिरमृताकुष्ठसैन्धवैः ॥ रास्नापुनर्नवैरण्डैः पिप्पल्या शतपुष्पया ॥ २७४ ॥ बलाप्रसारिणीभ्याश्च मांस्या कटुकया तथा ॥ पृथक्कर्षमितैरेतैः साधयेन्मृदुनाग्निना ॥ २७५ ॥ हन्यात्तैलमिदं शीघ्रं वातव्याधीनशेषतः ॥ आक्षेपकं पक्षघातमूरुस्तम्भापबाहुकौ ॥ हस्तकम्पं शिरःकम्पं विश्वाचीमर्दितं तथा ॥ २७६ ॥

उडद, जौ, अलसी, कटेरी, कौंछ, कटसरैया, गोखरू और अरलु, यह प्रत्येक औषधि सातसात पल लेकर चौगुने जलमें पकावे जब पकते पकते चौथाई भाग जल बाकी रहजाय तब उस क्राथको उतारलेवे, फिर उसमें कपासके बीज, (बिनोले) बेर, सनके बीज और कुलथी ये प्रत्येक औषधि चौदह १४ चौदह १४ पल लेकर चौगुने जलमें पकावे जब चौथाई भाग जल बाकी रहजाय

तब उसको उतार लेवे, फिर चौंसठ तोले भर बकरेका मांस लेकर चौंसठ पल जलमें पकावे जब चौथाई भाग जल रहजाय तब उतारलेवे, फिर ६४ तोले तेलमें इन काथोंको अनुक्रमसे पकावे, फिर गिलोय, कूठ, सैंधानिमक, रायसन, पुनर्नवा, एरंड, पीपल, सोया (सौंफ), खिरैटी, प्रसारणी, बालछड और कुटकी प्रत्येक पदार्थ एक एक तोला लेकर अलग अलग कल्क बनाकर तेलमें डालकर मंद मंद अग्निसे पकावे तो माषादि तैल सिद्ध होजाताहै। यह तेल आक्षेपक, पक्षाघात, ऊरुस्तम्भ, अपबाहुक, हस्तकंप, शिरकंप, विश्वाची, अर्दित (लकवा) और सम्पूर्ण वातव्याधियोंको तत्काल नष्ट कर देता है ॥ २७०–२७६ ॥

अथ मध्यमनारायणतैलम्।

अश्वगन्धा बला बिल्वं पाटला बृहतीद्वयम् ॥ श्वदंष्ट्रातिबला निम्बः श्योनाकश्च पुनर्नवा ॥२७७॥ प्रसारिणी चाग्निमन्थः कुर्याद्दशपलं पृथक् ॥ चतुर्द्रोणे जले पक्त्वा पादशेषं शृतं नयेत् ॥ २७८ ॥ तैलाढकेन संयोज्य शतावर्या रसाढकम्॥ प्रक्षिपेत्तत्र गोक्षीरं ततस्तैलाच्चतुर्गुणम् ॥ २७९ ॥ पृथक्पलमितैः कल्कैर्द्रव्यैरेभिः पचेद्भिषक् ॥ वचाचन्दनकुष्ठैलामांसीशैलेयसैन्धवैः ॥ २८० ॥ अश्वगन्धाबलारास्नाशतपुष्पेन्द्रदारुभिः ॥ पर्णीचतुष्टयेनैव तगरेण प्रसाधयेत् ॥ २८१ ॥ तत्तैलं भोजनेऽभ्यंगे पाने वस्तौ च योजयेत् ॥ पक्षाघातं हनुस्तम्भं मन्यास्तम्भं गलग्रहम ॥ २८२ ॥ कुब्जत्वं बधिरत्वञ्च गतिभंगं कटीग्रहम् ॥ गात्रशोषेन्द्रियध्वंसं शुक्रनाशं ज्वरक्षयान् ॥२८३॥ अन्त्रवृद्धिं कुरण्डञ्च दन्तरोगं शिरोग्रहम् ॥ पार्श्वशूलञ्च पंगुत्वं बुद्धिनाशञ्च गृध्रसीम् २८४ अन्यांश्च विविधान्वातान्हरेत्सर्वांगसंश्रयान ॥ अस्याः प्रभावाद्वन्ध्यापि नारी पुत्रं प्रसूयते ॥ २८५ ॥ यथा नारायणो देवो दुष्टदैत्यविनाशनः ॥ तथेदं वातरोगाणां नाशनं तैलमुत्तमम् ॥ २८६ ॥

असगंध, खिरैटी, बेलगिरी, पाढल, कटेरी, बडी कटेरी, गोखुरू, कंघी, नीम, अरलू, पुनर्नवा, प्रसारणी और अरनी ये प्रत्येक औषधि दशदश पल लेकर चार द्रोण जलमें पकावे जब पकते पकते चौथाई भाग जल बाकी रहजाय तब उस काथको छान लेवे, फिर इस काथमे तेल १ आढक, सतावरका रस १ आढक और गायका दूध ४ आढक डाले तथा वच, लाल चदन, कूट, इलायची, बालछड, पत्थरका फूल (छारछबीला), सैंधानिमक, असगंध, खिरैटी, रायसन, सोया, देवदारु, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी और तगर इन प्रत्येक औषधिका कल्क चार चार तोले डालकर वैद्य इस तेलको उत्तमरीतिसे तैयारकरे इस प्रकार करनेसे मध्यम नारायण तेल सिद्ध होताहै।

इस तेलको भोजनमें, अभ्यगमें, पिचकारीमें और पीनेमें उपयोग करे तो इससे पक्षाघात, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, गलग्रह, कुब्जता, बधिरता, गतिभंग, कमरकी पीडा, गात्रशोष, इन्द्रियध्वंस, वीर्यका क्षय, ज्वर, क्षय, अन्त्रवृद्धि, कुरंड, दंतरोग, मस्तककी वेदना, पार्श्वशूल, पंगुता, बुद्धिका नाश, गृध्रसी और अन्यान्य भी समस्त शरीरमें रहनेवाले वातरोग नष्ट होजातेहैं। इसके प्रतापसे वन्ध्या स्त्रियें भी पुत्रको उत्पन्न करतीहैं। जिस प्रकार नारायणदेव दुष्ट दैत्योंका नाश करतेहैं उसी प्रकार यह उत्तम नारायण तेल वायुसम्बन्धी समस्त रोगोंको दूर करैहै ॥ २७७–२८६ ॥

अथ महानारायणतैलम्।

तिलतैलं समादाय चतुराढकसम्मितम्॥ पञ्चपल्लवकल्केन शोधयेद्दोषशान्तये ॥ ॥ २८७ ॥ तत्राजं दुग्धमथ वा गव्यं तैलसमं पचेत् शतावरीरसञ्चापि तैलतुल्यं पचेद्भिषक् ॥ २८८ ॥ दशमूली बला रास्ना शिग्रूत्पलपुनर्नवाः ॥ शेफालिका नागबला बला चैव प्रसारिणी ॥ २८९ ॥ अश्वगन्धा सहचरो

दर्भमूलं करञ्जकः ॥ खदिरं चन्दनं लोध्रं वचाशनपलाशकम् ॥ बकुलैरण्डवरुणशालयुग्मकदम्भराः ॥ २९० ॥ शिरीषः शिखरी वासा हिंस्रा जम्बूर्बिभीतकम् ॥ काञ्चनारः कपित्थश्च पारिभद्रः प्रियालकम्॥पाषाणभेदः शम्पाको दुग्धिका दाडिमीफलम् ॥ २९१ ॥ उदुम्बरः सप्तला च कन्यका मालती त्वचम् ॥ मागधीफलमूलश्च यवकोलकुलत्थकम्॥२९२॥ आत्मगुप्तार्ककार्पासबीजं वृक्षादनी स्नुही॥ केतकीमूलधत्तूरलाङ्गलीगर्दभाण्डकम् ॥ ॥ २९३ ॥ चित्रकश्च महानिम्बं पञ्चवल्कलमेव च ॥ मुण्डी ठेकारि मुसली हंसपादीविशल्यकम् ॥ २९४ ॥ एषां दशपलान्भागान्वारिण्यष्टगुणे पचेत् ॥ पाददेशं परिस्राव्य तत्र तैलं पुनः पचेत्॥ ॥ २९५ ॥ छागो मेषश्च हरिण एणश्च बहुशृंगकः ॥ शशः शल्यः शिवा गोधा सिंहो व्याघ्रश्च भल्लुकः ॥ २९६ ॥ वन्यो वराहः खड्गी च महिषो घोटकस्तथा ॥ कपिर्बभ्रुर्बिडालश्च मूषकश्चोरुदर्दुरः ॥ ॥ २९७ ॥ वर्तीकस्तित्तिरिर्लावः खञ्जरीटश्चकोरकः ॥ उलूको नीलकण्ठश्च वनकुक्कुट एव च ॥ २९८ ॥ गृध्रश्च गरुडो हंसश्चक्रः कारण्डवोऽपि च ॥ कपोतः सारसः क्रौञ्चो वन्यः पारावतस्तथा ॥ रोहितो मद्गुरश्चापि शिलीन्ध्रः शृंगकस्तथा ॥ २९९ ॥ इल्लीसो गर्गरो वर्मिः क्रथकाकः पिकोऽपि च ॥ महामत्स्यः कच्छपश्च शिशुमारश्च सांकुचिः ॥३००॥ मकरो घंटिकाकारस्तदलाभे तु गोधिका ॥ यथालाभममी षाश्च क्वाथं तैलसमं पचेत् ॥ ३०१ ॥ रास्नाश्वगन्धामिसिदारुकुष्ठपर्णीचतुष्काऽगुरुकेसराणि॥ सिन्धूत्थमांसी रजनीद्वयश्च शैलेयकं चन्दनपुष्करश्च ॥ ३०२ ॥ एला सयष्टी तगराब्दपत्रं भृङ्गोऽष्टवर्गस्तु वचा पलांसी ॥ स्थौणेयवृश्चीवकचोरकाख्यं मूर्वात्वचं कट्फलपद्मकश्च ॥ ३०३ ॥ मृणालजातीफलकेतकाख्यं सनागपुष्पं सरलं मुरा च ॥ जीवन्तिकोशीरवरास्तथैव दुरालभा वानरिका नखश्च॥३०४॥ कैवर्तमुस्तार्जुनतिक्तकश्च वातामखर्जूरकतुम्बराश्च ॥ सधातकीग्रन्थिकपर्पटाश्च पटोलहेमाजजयन्तिकाश्च ॥ ३०५ ॥ त्रायन्तिकालम्बुषशक्रबीजं रसाञ्जनाभा त्रिवृतारुणा च॥द्राक्षाकणाद्रोणपुनर्नवाश्च कौन्ती क्रिमिघ्नो हयमारकश्च ॥ ३०६ ॥ नीलोत्पलं पद्मककारवीभ्यां रम्भानलो गोक्षुरकः क्षुरश्च॥ कंकोलकालेयकुसुम्भपुष्पन्तुरुष्ककाश्मीरकसिक्थकश्च ॥ लवंगकर्पूररसालकाण्डकस्तूरिकाबालकमम्बरश्च ॥ ३०७ ॥

दारु देवदारु । पर्णीचतुष्कं शालिपर्णी पृष्ठिपर्णी मुद्गपर्णी माषपर्णी । केशरः पुन्नागस्तस्य पुष्पं ग्राह्यम् । तदलाभे नागकेशरं ग्राह्यम् । शैलेयकम् छरीला इति लोके । चन्दनमत्र श्वेतम् । पुष्करं पुष्करमूलम् । तगरस्याप्यलाभे तु कुष्ठं दद्याद्भिषग्वरः । भृंगस्त्वक् । अष्टवर्गालाभे शतावरी विदार्यश्वगन्धा वाराही द्विगुणा दद्यात् । वाराही गेटि इति लोके । पलांसी कर्चूरभेदः गन्धपलाशीति काश्मीरे प्रसिद्धा तदलाभे कर्चूर एव देयः ॥ स्थौणेयं गठिवनभेदः ईषत्सुगन्धि थनेर इति लोके । वृश्चीवः श्वेतमूला पुनर्नवा । चोरकः ग्रन्थिपर्णस्यैव भेदः भडिउर इति नैपालदेशे प्रसिद्धः ।

केतकस्य मूलं पुष्पञ्च दद्यात्। कैवर्तमुस्ता केवटीमोथा गुडतजी इति च लोके। तिक्तकः किराततिक्तकः वातामं वादाम इति लोके। हेमाह्वं धत्तूरस्य फलं मूलं पत्रञ्च। जयन्तिका जेत्रित्वक्। त्रायन्तिका अत्र लभ्यत एव न। अलम्बुषा लज्जालूभेदः। आभा वब्बूलः तस्य त्वक्। अरुणा मञ्जिष्ठा। द्रोणः द्रोणु मारुक् पञ्चांगः। पुनर्नवा रक्तपुष्पा। हयमारकः करवीरस्तस्य मूलम्। पद्मकं नीलोत्पलादन्योत्पलम्। पद्मकाष्ठम् उक्तमेव। कारवी मगरैला इति। रम्भायाः कन्दम्। क्षुरस्य फलानि रसालकाण्डम्। आण्डी सुगन्धद्रव्यम्॥

कल्कानमीषां विपचेत्सुवैद्यः पृथक्पृथक् कर्षयुगोन्मितानाम्॥ शुभे च नक्षत्रमुहूर्तलग्ने सन्तोष्य विप्रांश्च भिषग्वरांश्च॥ ३०८॥ सम्पूज्य नारायणनामधेयं देवं त्रिनेत्रं जगतामधीशम्॥ पात्रेषु हेम्नः खलु राजते वा ताम्रेऽथ वा लोहमयेऽपि रक्षेत्॥ ३०९॥ अभ्यञ्जनेऽञ्जने नस्ये निरूहे चावगाहने॥ पाने चैतद्यथाव्याधि प्रयुञ्जीत चिकित्सकः॥ ३१०॥ बहुनाऽत्र किमुक्तेन तैलमेतत्प्रयोजितम्॥ अवश्यं वातजान्व्याधीनशीतिमपि नाशयेत्॥ ३११॥ एतस्याभ्यासतो जन्तोर्जरा जातु न जायते॥ पतन्ति वलयो नैव पलितञ्च न जायते॥ ॥ ३१२॥ नेत्रं तेजस्वि नितरां गरुडस्येव जायते॥ नोच्चैः श्रुतिर्न बाधिर्यं कर्णनादो न जायते॥ पाणिकम्पः शिरःकम्पः प्रलापश्च न जायते॥ ३१३॥ बुद्धिभ्रंशो न जायेत तस्मात्कर्मसु पाटवम्॥ यथा जलेन सिक्तस्य शाखिनः पल्लवादयः॥ ३१४॥ वर्द्धन्ते धातवस्तद्वद्देहिनोऽनेन नित्यशः॥ आमं गर्भं त्यजेज्जातु सूतिका रुग्युता च या॥ ॥ ३१५॥ या च दुःप्रसवक्षीणा ताभ्य एतद्धितं परम्॥ वन्ध्या च लभते पुत्रं गर्भपातो न जायते॥ ३१६॥ योनिरोगाः प्रणश्यन्ति प्रदरश्च प्रशाम्यति॥ अस्मात्तैलवरादन्यत्कुत्रचिन्नास्ति भेषजम्॥ ३१७॥ बल्यं वृष्यं बृंहणञ्च रसायनमिदं महत्॥ पुरा देवासुरे युद्धे दैत्यैरभिहतान्सुरान्॥ ३१८॥ भिन्नान्भग्नास्थिकान्विद्धान्पिञ्चितान्व्यथयाऽर्दितान्॥ दृष्ट्वा हिताय देवानां नराणां चाऽब्रवीदिदम्॥ तैलं नारायणो देवो महानारायणाभिधम्॥ ३१९॥

चार आढक तिलका तेल लेकर दोषकी शातिके लिये उसको पचपल्लवके काथसे शुद्ध करे फिर उस तेलमें चार आढक बकरीका अथवा गायका दूध और चार आढक सतावरका रस पकावे, फिर दशमूल, खिरैटी, रायसन, सैंजिना, नीलकमल, पुनर्नवा, निर्गुण्डी, कघो, गगेरन, प्रसारण, असगन्ध, कटसरैया, डाभकी जड, करजुआ, खैर, लालचन्दन, लोध, वच, विजयसार, ढांक, मौलसिरी, अड, वरना, दो प्रकारका साल, कुटकी, सिरस, चिरचिटा, अडूसा, वालछड, जामुनकी छाल, बहेडा, कचनार, कैथ, नीम, चिरौंजी, पाषाणभेद, अमलतास, दुद्धी, अनार, गूलर, सातला, घीक्वार, मालती, (चमेली) तज, पीपल, नरसलकी जड, जौ, बेर, कुलथी, कौंछ, आककी जड, कपास, गिलोय, थूहर, चीता, केवडेकी जड, धतूरा, कलिहारी, वेलिया, पीपलकी छाल, बकायन, पचवल्कल, गोरखमुडी, टेकारी, मुसली, लाललज्जालू और इन्द्रायन ये प्रत्येक पदार्थ दगदग पल लेकर अठगुने जलमें पकावे जब पकते पकते चौथाई जल शेष रह जाय तब उतारकर छानलेवे, फिर इस काथमें इस तेलको पकावे, फिर बकरा, मेढा, हिरन, एणहिरण, सांवर, खरगोश, सेई, छपकली, गोय, सिंह, बाघ, रीछ, जगलीसुअर, गेंडा, भैंसा, घोडा, बन्दर, नौला, बिलाव, चूहा, मेडक, वत्तक, तीतर, लवा, खजन (ममोला) चकोर, उल्लू, नीलकंठ, वनमुरगा, गीध, गरुड, हस, चकवा, कार-

डव, कबूतर, सारस, कुडा, जगली कबूतर, रोहू मछली, मद्गुर मछली, शिलीन्ध्र, शृंगक, इल्लीस, गर्गरीमछली, वर्मि, छथ मछली, कौआ, कोयल, महामत्स्य, कछुवा, शिशुमार, संकुच, मगर, घडियाल, अगर घडियाल न मिलसके तो उसके अभावमे गोय लेनी चाहिये । इनमें जितने जीवोंके मांस मिलसके उतनेही लेने चाहिये । इनके चार आढक रसमे तेलको पकावे फिर रास्ना, असगन्ध, सोया, देवदारु, पृश्निपर्णी, शालिपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, कूठ, अगर, पुन्नाग, अगर पुन्नाग न मिलसके तो उसके अभावमें नागकेसर लेनी चाहिये, सेंधानिमक, बालछड, हलदी, दारुहलदी, भूरीछरीला, चन्दन, पोहकरमूल, इलायची, मुलैठी, तगर, जो तगर न मिलसके तो कूठ लेना चाहिये, नागरमोथा, तेजपात, तज, मेदा आदि अष्टवर्ग जो अष्टवर्ग न मिलसके तो उसके बदलेमें दोनों सतावर, विदारीकन्द, असगन्ध, तथा वाराहीकन्द, वच, गन्धपलाशी (काश्मीर देशमें प्रसिद्ध है) अगर गन्धपलाशी न मिले तो कचूर लेना चाहिये । थुनेर, सफेद फूलका पुनर्नवा, नेपाल देशमे होनेवाला भटेउर, मूर्वाकी छाल, तज, कायफल, पद्माख, कमलकी नाल, जायफल, केवडेकी जड और फूल, नागकेसर, धूपसरल, कपूरकचरी, गिलोय, सुगन्धवाला, हरड, बहेडा, आमला, धमासा, कौंछ, नख, सुगधद्रव्य, केवटीमोथा, अर्जुन, चिरायता, बादाम, खजूर (छोहारे), धनिया, तुम्बुरु, धायके फूल, पीपलामूल, पित्तपापडा, परवल, धतूरेकी छाल, अरणी, त्रायमाण, अलम्बुषा (एक प्रकारकी लज्जावन्ती), इन्द्रजौ, रसोत, बबूरकी छाल, निसोत, मजीठ, दाख, पीपल, गूँमा, लालफूलकी पुनर्नवा, निर्गुण्डीके बीज अथवा मेहदीके बीज, वायविडग, कनेरकी जड, नीले कमल, कमल, कालाजीरी (कलौंजी), केलेका कंद, चीता, गोखुरू, तालमखाना, कंकोल, पीलाचंदन, कसूमके फूल, शिलारस, केसर, मोम, लौंग, कपूर, सालके काड, जवादि कस्तूरी, सुगधबाला और अम्बर इन प्रत्येक औषधिका अलग अलग दो दो तोले कल्क बनाकर उस कल्कसे इस तैलको पकावे तो यह महानारायण नामक तैल सिद्ध होताहै । शुभ नक्षत्रमें शुभ, मुहूर्तमे तथा शुभलग्नमें वैद्य ब्राह्मणोका और उत्तम प्राचीन वैद्योका पूजन करके जगत्के स्वामी और तीनों गुणोंको चलानेवाले नारायण देव और त्रिनेत्र शूलपाणि शिवजीका पूजन करके सोनेके, रूपेके, ताबेके अथवा लोहेके वासनमें इस तेलको भरकर रखदेवै । वैद्य व्याधिके, अनुसार अभ्यगमें, अजनमे, नस्यमें, निरूहवस्तिमें, अवगाहनमें और पानमें इसको प्रयोग करे । विशेष कहनेसे क्या प्रयोजन परंतु इतना अवश्य कहेगे कि इस तेलका विधिपूर्वक व्यवहार किया जाय तो यह अस्सी प्रकारके वातरोगोको अवश्य नष्ट करदेताहै । इस तेलका अभ्यास करनेसे शरीरमें वली नहीं पडती, बिना समयही बाल सफेद नहीं होजाते, नेत्र गरुडकी समान अत्यत तेजयुक्त होतेहैं, ऊचेसे सुन्ना, बहरापन और कानमे अनेक प्रकारके शब्द होना यह कभी नही होता, हाथ नहीं कांपते, मस्तक नहीं कॉपता, प्रलाप नहीं होता, बुद्धि भ्रष्ट नहीं होती और सब काम करनेमें समर्थ होताहै । जिस प्रकार जलसे सींचेहुए वृक्षके पल्लवआदि वृद्धिको प्राप्त होतेहै उसीप्रकार इस तेलके सींचनेसे प्राणियोंकी धातु वृद्धिको प्राप्त होतीहैं । जिस स्त्रीके कच्चा गर्भ गिर जाताहै, सूतिका रोगवाली और जो स्त्रियें प्रसवकी वेदनासे क्षीण होगई हैं उनके लिये यह तेल अत्यंत हितकारी है, इस तेलका उपयोग करनेसे वंध्यास्त्रियोंके भी पुत्रकी प्राप्ति होतीहै । गर्भपात नही होता, योनिके समस्तरोग नष्ट होतेहैं और प्रदररोग शात होताहै इस परमोत्तम तैलसे अधिक बलवर्द्धक, मैथुनशक्तिको बढानेवाली और धातुओंको पुष्ट करनेवाली अन्य औषधि नही है । यह तैल श्रेष्ठ रसायन है, पूर्वकालमे दैत्योंके तथा देवताओके युद्धमे दैत्योंके प्रहारसे जो देवताओके शरीरमें चोट लगीथी, हड्डी टूट गईथीं, शरीर वेधा गया था, हाड पिंजर चूर्ण होगयेथे और पीडासे व्याकुल थे तब श्रीनारायण देवने मनुष्योंके हितके लिये यह नारायण तैल निर्माण किया था ॥ २८७–३१९ ॥

इति महानारायणतैलम् ।

अथ महायोगराजगुग्गुलुः ।

नागरं पिप्पलीमूलं चव्यमूषणचित्रकम्॥ भृष्टं हिंग्वजमोदा च सर्षपो जीरकद्वयम् ॥ ३२० ॥ रेणुकेन्द्रयवौ पाठा विडंगं गजपिप्पली ॥ कटुकाऽतिविषा भार्ङ्गी वचा मर्वा च पत्रकम् ॥ ३२१ ॥ देवदारु कणा कुष्ठं रास्ना मुस्ता च सैन्ध-

वम् ॥ एला त्रिकण्टकं पथ्या धान्यकश्च विभीतकम् ॥ धात्री च त्वगुशीरश्च यवक्षारोऽखिलान्यपि ॥ ३२२ ॥ एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ यावन्त्येतानि चूर्णानि तावानेवात्र गुग्गुलुः ॥ ३२३ ॥ संमर्द्य सर्पिषा पश्चात्सर्वं संमिश्रयेच्च तत् ॥ एकं पिण्डश्च तत्कृत्वा धारयेद्घृतभाजने॥ गुटिकाष्टकमात्रास्तु खादेत्तास्तु यथोचिताः ॥ ३२४ ॥ अत्र दोषकालाद्यपेक्षया ॥

सोंठ, पीपलामूल, चव्य, कालीमिरच, चीता, भुनीहुई हींग, अजमोद, सरसों, जीरा, कालाजीरा, रेणुका, इन्द्रजौ, पाढ, वायविडग, गजपीपल, कुटकी, अतीस, भारगी, वच, मूर्वा, तेजपात, देवदारु, पीपल, कूठ, रायसन, नागरमोथा, सेंधानिमक, इलायची, गोखुरू, हरड, धनिया, बहेडा, आमला, तज, खस और जवाखार इन सब पदार्थोंको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण बनावे, फिर इस सब चूर्णकी बराबर गूगल लेवैं, सबको एकत्र मिलाकर खूब घीमें मर्दन करके एक पिंड बनावे उस पिंडको घीके बासनमें रखदेवें, फिर उसकी चौबीस चौबीस रत्तीकी गोलिया बनावे। दोष और कालानुसार विचारकर इन गोलियोंको सेवन करे ॥ ३२०–३२८ ॥

आदौ शाणोन्मितं खादेत्सार्द्धशाणं ततः परम् ॥ तदग्रे कर्षमर्द्धन्तु पूर्ण कर्षं ततः परम् ॥३२५॥ गुग्गुलुर्योगराजोऽयं महामुख्यो रसायनम् ॥ मैथुनाहारपानानां नियमो नात्र विद्यते ॥ ३२६ ॥ अर्शांसि ग्रहणीरोगं प्लीहगुल्मोदरानपि ॥ आनाहं मन्दमग्निश्च श्वासं कासमरोचकम् ॥ ॥ ३२७ ॥ प्रमेहं नाभिशूलञ्च क्रिमिक्षयमुरोग्रहम ॥ सर्वान्वातामयान्हन्यादामवातमपस्मृतिम् ॥३२८॥ वातरक्तं तथा कुष्ठं तथा दुष्टव्रणानपि ॥ शुक्रदोषं रजोदोषमुदावर्तं भगन्दरम् ॥ ३२९ ॥

इन गोलियोंको सेवन करनेकी यह विधि है कि प्रथम कुछेक दिनोतक तो एक एक गोली खाय, फिर डेढ डेढ गोली खाय, फिर छैः छैः मासे खाय, फिर एक एक तोला भर खाय, यह योगराज गूगल अत्यत मुख्य है और रसायन है। इसके सेवन करनेमें मैथुन और अन्नपानका कुछ नियम नहीं है। इस गूगलको सेवन करनेसे ववासीर, सग्रहणी, प्लीहा, गुल्म, उदरके समस्तरोग, पेटका अफारा, अग्निकी मंदता, श्वास, खाँसी, अरुचि, प्रमेह, नाभिशूल, कृमि, क्षय, छातीका जकडना, सर्व प्रकारके वातरोग, आमवात, अपस्मार, कोढ, दुष्टव्रण, वीर्यविकार, रजोदोष, उदावर्त और भगन्दर इन सब रोगोंका नाश होताहै ॥ ३२५–३२९ ॥

रास्नादिक्वाथसंयुक्तः सर्ववातामयान्हरेत्॥ काकोल्यादिशृतात्पित्तं कफमारग्वधादिना ॥ ३३० ॥ दार्वीशृतेन मेहांश्च गोमूत्रेण च पाण्डुताम् ॥ मधुना मेदसो वृद्धिं कुष्ठं निम्बशृतेन च ॥ ३३१ ॥ छिन्नाक्वाथेन वातास्रं शोथं मूलकजाच्छृतात् ॥ पाटलाक्वाथसहितो विषं मूषकसम्भवम् ॥ ३३२ ॥ त्रिफलाक्वाथसंयुक्तो दारुणां नेत्रवेदनाम् ॥ पुनर्नवादिक्वाथेन हन्ति सर्वोदराण्यपि ॥ ३३३ ॥

इस गूगलको रास्नादि क्वाथके साथ पीनेसे सर्व प्रकारकी वातव्याधि शमन होतीहै। इसको काकोल्यादि क्वाथके साथ पीनेसे पित्त शमन होताहै। आरग्वधादि क्वाथके साथ पीनेसे कफ दूर होताहै। दारुहलदीके क्वाथके साथ पीनेसे प्रमेह नष्ट होताहै। गोमूत्रके साथ पान करनेसे पाण्डुरोग नष्ट होताहै। सहतके साथ खानेसे मेदकी वृद्धि नष्ट होतीहै। नीमके क्वाथके साथ पीनेसे कोढ नष्ट होताहै। गिलोयके क्वाथके साथ पीनेसे वातरक्त नष्ट होताहै। मूलीके क्वाथके साथ पीनेसे सूजन दूर होतीहै। पाढलके क्वाथके साथ पीनेसे चूहेका विष दूर होताहै। त्रिफलेके क्वाथके साथ पीनेसे नेत्रकी दारुण पीडा शमन होतीहै।

और पुनर्नवादिक्वाथके साथ पीनेसे सर्व प्रकारके उदर रोग नष्ट होते हैं ॥ ३३० ॥ ३३३ ॥

रास्ना पुनर्नवा शुण्ठी गुडूच्येरण्डजं शृतम् ॥ सप्तधातुगते वाते सामे सर्वांगगेऽपि चेत् ॥ ३३४ ॥

रास्ना, पुनर्नवा, सोंठ, गिलोय और एरंड इनका क्वाथ रास्नादिक्वाथ कहा जाताहै । सप्तधातुगत वायु आमसंयुक्तवायु और सर्वशरीरस्थवातके विकारोंमे यह क्वाथ उपयोगी है ॥ ३३४ ॥

अथ रसोनकल्कः ।

युक्तः कल्को रसोनस्य तिलतैलेन सिन्धुना ॥ वातरोगान्हरेत्सर्वाञ्ज्वरांश्च विषमानपि ॥ ३३५ ॥

लसुनका कल्क बनाकर उसमे तिलका तेल और सैंधानिमक मिलाकर भक्षण करे तो समस्त वायु सम्बन्धी रोग और विषमज्वर नष्ट होजाते है ॥ ३३५ ॥

अथ द्वितीयरसोनकल्कः ।

क्षीरेण तैलेन घृतेन वाऽपि मांसेन सार्द्धं लशुनानि खादेत् ॥ शाल्योदनेनापि च षष्टिकेन पलार्द्धवृद्धया दिवसानि सप्त ॥ ॥ ३३६ ॥ वातोत्थरोगान्विषमज्वरांश्च शूलान्सगुल्मान्दहनस्य मान्द्यम् ॥ प्लीहानमुग्रं भुजपार्श्वशूलं शिरोव्यथां कृन्तति शुक्रदोषान् ॥ ३३७ ॥

दूध, तेल, घी, मांस, भात अथवा साठीके चावलोंका भात इनके साथ सात दिन तक क्रमसे प्रत्येक दिन दो दो तोले बढाकर लसुनका कल्क भक्षण करे तो वातसम्बन्धी रोग, विषमज्वर, शूल, गुल्म, अग्निकी मंदता, प्लीहाकी पीडा, हाथ और पसलियोकी पीडा, मस्तककी व्यथा और वीर्यके समस्त दोष दूर होते हैं ॥ ३३६ ॥ ३३७ ॥

अथ लशुनसेवनस्य तृतीयविधिः ।

अन्नप्रकारैः पललप्रकारैर्गोधूमकैर्वा यवसक्तुभिर्वा ॥ दुग्धेन तैलेन घृतेन वापि युक्तानि शाते लशुनानि खादेत् ॥ ३३८ ॥ संवर्तकैर्लावकपिञ्जलैर्वा मृग्याः पलैर्वाप्यथकौक्कुटैर्वा ॥ वाराहवार्त्तीरकहारिणैर्वा सुसंस्कृतैरग्निबलं समीक्ष्य ॥ ३३९ ॥

अन्नके पदार्थोंके साथ, मांसके बनेहुए पदार्थोंके साथ, गेहूंके बनेहुए पदार्थोंके साथ, जौके सत्तूके साथ, दूधके साथ, तेलके साथ, घीके साथ, संवर्तकके मासके साथ, लवाके मासके साथ, तीतरके मांसके साथ, हिरनीके मासके साथ, मुरगेके मासके साथ, सुअरके मासके साथ, बटेरके मासके साथ अथवा हिरनके मांसके साथ शीतकालमें अग्निका बलाबल विचारकर लसुनको सेवन करना चाहिये । जो अन्न मांस आदि पदार्थोंके साथ लसुन खाना होय तो उन पदार्थ आदिसे अच्छे प्रकारसे सस्कृत (सशोधन) करना चाहिये ॥ ३३८ ॥ ३३९ ॥

अथ रसोनाष्टकम् ।

रसोनपक्वकन्दस्य गुलिका निस्तुषीकृताः॥ पाटयित्वा च मध्यस्थं दूरीकुर्यात्तदंकुरम्॥ ॥ ३४० ॥ निश्युग्रगन्धनाशाय दध्ना सन्नीय रक्षयेत् ॥ ततः प्रक्षाल्य संशोष्य शिलायां परिपेषयेत् ॥ ३४१ ॥ कल्कस्य पञ्चमे भागे चूर्णमेषां विनिःक्षिपेत् ॥ सौवर्चलं यवानीश्च भर्जितं हिंगु सैन्धवम्॥ ॥ ३४२ ॥ कटुत्रिकं जीरकश्च समभागानि चूर्णयेत् ॥ तिलतैलश्च कल्कस्य तुर्यांशं तत्र मिश्रयेत् ॥३४३॥ खादेत्कर्षमितं प्रातः किं वा दोषाद्यपेक्षया ॥ अनुपानं प्रकुर्वीत वातारिशृतमन्वहम् ॥ ३४४ ॥ सर्वांगैकांगजं वातमर्दितश्चापतन्त्रकम् ॥ अपस्मारं तथोन्मादमूरुस्तम्भश्च गृध्रसीम् ॥ ३४५ ॥ उरःपृष्ठकटीपार्श्वकुक्षिपीडां कृमीन्हरेत् ॥ मद्यं मांसं तथाऽम्लश्च रसं सेवेत नित्यशः ॥ ३४६ ॥ आयासमातपं रोषमतिनीरं गुडं स्त्रियम् ॥ रसोनमश्नन्पुरुषस्त्यजेदेतन्निरन्तरम् ॥ ३४७ ॥ वर्जयेत्तदतीसारी प्रमेही पाण्डुरोगवान् ॥ अरोचकी गर्भिणी च मूर्च्छार्शोरोगसंयुतः॥

॥ ३४८ ॥ रक्तपित्ती च शोषी च यक्ष्मी छर्द्यर्दितो नरः ॥ पित्ते तु पथ्यमुक्कुर्यात्प्रयोगान्ते विरेचनम् ॥ ३४९ ॥ अन्यथा तस्य जायन्ते कुष्ठपाण्ड्वामयादयः ॥ स्त्रीस्तन्ये त्वरितं दद्याद्बालानामप्यनिच्छताम् ॥ तथा च लभते सिद्धिं महावीर्याद्रसोनतः ॥ ३५० ॥

लसुनकी पकीहुई गाठको छीलकर साफ करले फिर उसको चीरकर उसके बीचके अकुरोंको निकाल डाले, पश्चात् उसकी उग्रगंधको दूर करनेके लिये उन कलियोंको रात्रिमें दहीके बीचमें गाड देवे, फिर प्रातःकाल धोकर सुखावे और शिलपर पीसकर कल्क बनावे उसमें कालानिमक, अजवायन, भुनी हींग, सैंधानिमक,सोंठ, मिरच, पीपल और जीरा इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करे लसुनके कल्कसे पांचवा भाग इस चूर्णको मिलावे और कल्कसे चौथाई भाग तिलका तेल मिलावे, फिर इसमेंसे प्रातःकाल एक तोलाभर खाय अथवा दोषोंका विचार करके योग्य मात्रानुसार खाय और नित्य एरंडका क्वाथ पिये। यह रसोनाष्टक सर्वांगवात, एकांगवात, अर्दित, अपतत्रक, अपस्मार, उन्माद, ऊरुस्तम्भ, गृध्रसी, छातीकी पीडा, पीठकी पीडा, कमरकी पीडा, पसलियोंका शूल, तथा कोखकी पीडा और कृमिओंको नष्ट करे है। रसोनाष्टकको सेवन करनेवाला नित्य मद्यको, मासको तथा खट्टे रसको सेवन करे और परिश्रम, धूप, क्रोध, अत्यत जल तथा मैथुन इनका त्याग करदेवे। अतिसार, प्रमेह, पाडुरोग, अरुचि, मूर्च्छा, बवासीर, रक्तपित्त, शोष, भयकर क्षयरोग और वमन इनसे पीडित तथा गर्भवती स्त्रियें लसुनका भक्षण त्यागदेवें। पित्तकी पीडा होय तो पथ्यसे भोजन करे इस रसोनाष्टकको सेवन करनेके पश्चात् विरेचन लेवे, जो विरेचन न लेवे तो कोढ तथा पाण्डुरोगादि उत्पन्न होते हैं रसोनाष्टककी नहीं इच्छा करनेवाले बालकोंको भी उनकी माताके दूधमें तत्काल इस रसोनाष्टकको मिलाकर देवे इस प्रकार करनेसे लसुनके गुणोंकी बाहुल्यतासे बालकोंके समस्त वातविकार शमन होते हैं ॥ ३४०–३५० ॥

अथ वातारिरसः।

रसो गन्धो वरा वह्निर्गुग्गुलुः क्रमवर्द्धितः ॥ तत्रैकभागः सूतः स्याद्गन्धको द्विगुणः स्मृतः ॥ ३५१ ॥ त्रिभागा त्रिफला योज्या चतुर्भागस्तु चित्रकः॥ गुग्गुलुः पञ्चभागः स्याद्रुबुतैलेन मर्दितः ॥ ३५२ ॥ क्षिप्त्वा तत्रोदितं चूर्णं तेन तैलेन मर्दयेत्॥ गुटिकां कर्षमात्रान्तु भक्षयेत्प्रातरेव हि ॥ ॥ ३५३ ॥ नागरैरण्डमूलानां कषायं प्रपिबेदनु ॥ अभ्यज्यैरण्डतैलेन स्वेदयेत्पृष्ठदेशकम् ॥ ३५४ ॥ विरेकपरिणामे तु स्निग्धमुष्णञ्च भोजयेत् ॥ वातारिसंज्ञको ह्येष रसो नियतसेवितः ॥ मासेन मरुतो रोगान्हरेत्सुरतवर्जिनः ॥ ३५५ ॥

इति वातारिरसः।

पारा १ भाग, गधक २ भाग, त्रिफला ३ भाग, चीता ४ भाग और अडके तेलमें मर्दन किया हुआ गूगल ५ भाग, इन सबको एकत्र मिलाकर अडीके तेलमें मर्दन करे,इसमेंसे प्रतिदिन एक एक तोलेकी गोली बनाकर भक्षण करे और गोली खानेके पश्चात् सोंठ और अडकी जडके क्वाथका नुपान करे फिर अडीके तेलको पीठपर मलकर, सेकदेवे। कदाचित् रेचन लगे तो स्निग्ध और गरम अन्न भोजन करे यह वातारिनामक रस नियमपूर्वक सेवन किया जाय और मैथुनका त्याग करदेवे तो एक महीनेमें वातसम्बन्धी सम्पूर्ण रोग नष्ट होजाते हैं ॥ ॥ ३५१–३५५ ॥

इति वातव्याध्यधिकारः सम्पूर्णः।

अथ ऊरुस्तम्भाधिकारः।

तत्रोरुस्तम्भस्य विप्रकृष्टसन्निकृष्टनिदान सम्प्राप्तिपूर्वकलक्षणानि।

शीतोष्णद्रवसंशुष्कगुरुस्निग्धैर्निषेवितैः ॥ जीर्णाजीर्णे तथाऽऽयाससंक्षोभस्वप्नजागरैः ॥ १॥ सश्लेष्ममेदःपवनः साममत्यर्थसञ्चितम् ॥ अभिभूयेतरं दोषमूरू चेत् प्रतिपद्यते ॥ २ ॥ सक्थ्यस्थीनि प्रपूर्यान्तः

श्लेष्मणा स्तिमितेन सः ॥ तदा स्तम्भाति तेनोरू स्तब्धौ शीतावचेतनौ ॥ ३ ॥ परकीयाविव गुरू स्यातामतिभृशव्यथौ॥ ध्यानांगमर्दस्तैमित्यं तन्द्राच्छर्द्यरुचिज्वरैः ॥ ४ ॥ संयुतौ पादसदनकृच्छ्रोद्धरणसुप्तिभिः ॥ तमूरुस्तम्भमित्याहुराढ्यवातमथापरे ॥ ५ ॥

जीर्णाजीर्णे किञ्चित् जीर्णे किंचित् अजीर्णे। शीतादिभिः निषेवितैः भुक्तः। संक्षोभेण संचलनेन। दिवास्वप्नेन रात्रौ जागरणेन। अभिभूय दूषयित्वा। इतरं दोषं कफं पित्तञ्च। स्तिमितेन आर्द्रेण वृतेनेति यावन्नतु घनेन। स पवनः तदा ऊरू स्तम्भाति। तेन स्तम्भेन अचेतनौ शून्यौ। परकीयाविव अक्रियावित्यर्थः। ध्यानम् मूढता। पादसम्बन्धिनीभिः सदनकृच्छ्रोद्धरणसुप्तिभिश्च संयुक्तौ। अयं सुश्रुतेन महावातव्याधिषु पठितः॥

कुछेक जीर्ण और कुछेक अजीर्ण होय ऐसी अवस्थामें शीतल, गरम, पतले, सूखे, भारी और चिकने ऐसे भोजन करनेसे, परिश्रम करनेसे, शरीरको सचलन करनेसे, दिनमें सोनेसे और रात्रिमे जागनेसे कफ तथा मदसहित वायु आमसयुक्त तथा अत्यन्त सचित हुए कफको तथा पित्तको दूषित करके साथलोंमें प्राप्त होतीहै। और साथलोंमें प्राप्त होकर लिपटे हुए कफसे साथलकी हड्डियोंमें मिलकर स्तब्ध करदेतीहै कि जिससे साथल अकड जातीहैं, सुन्न होजातीहैं, अत्यन्त भारी और जैसे कि दूसरोंकी होय ऐसी जानपडतीहैं इस रोगमें मूढता, अंगोंका टूटना, तन्द्रा, वमन, अरुचि, ज्वर, पावकी ग्लानि, पावोंकी मन्दता और जडता यह सब लक्षण होतेहैं यह रोग ऊरुस्तम्भ कहाजाताहै कितने एक वैद्य इसको आढ्यवात कहतेहैं, सुश्रुतने इसको महाव्याधिओंमें कहाहै ॥ १–५ ॥

अथोरुस्तम्भपूर्वरूपम्।

प्राग्रूपं तस्य निद्रातिध्यानं स्तिमितता ज्वरः ॥ रोमहर्षोऽरुचिश्छर्दिर्जंघोर्वोः सदनं तथा ॥ ६ ॥

जब ऊरुस्तम्भ होनेको होताहै तो निद्रा, अत्यन्तध्यान, क्रियारहितपना, ज्वर, रोमांचोका हो आना, अरुचि, वमन और पिण्डलिओंमे तथा सांथलोंमे पीडा उत्पन्न होतीहै ॥ ६ ॥

अथोरुस्तम्भरूपम्।

वातशंकिभिरज्ञानात्तत्र स्यात्स्नेहनात्पुनः॥ पादयोः सदनं सुप्तिः कृच्छ्रादुद्धरणं तथा॥ जंघोरुग्लानिरत्यर्थं शश्वद्दा दाहवेदने ॥ ७ ॥ पादश्च व्यथत न्यस्तं शीतस्पर्शं न वेत्ति च ॥ संस्थाने पीडने गत्यां चालने चाप्यनीश्वरः ॥ अन्यनेयौ हि सम्भग्नावूरूपादौ च मन्यते ॥ ८ ॥

अज्ञानादनिश्चयात्। स्तम्भसुप्तिकर्मरहितपाददर्शनेन वातशंकिभिः वातव्याधिशंकिभिः। तत्र ऊरुस्तम्भे स्नेहनात् स्नेहदानात्। स्नेहादिना स्नेहन्या चिकित्सया पादसदनादयः ऊरुभग्नोपमत्वात् ते विकाराः स्युः। जंघोर्वोर्गमनादौ अशक्तिः। अदाहवेदना ईषद्दाहेन सह वेदना। अन्यनेयौ अन्यचाल्यौ भवतः॥

पावोंका सोना, पावोंकी जडता और क्रियाओंसे रहित होना इत्यादि लक्षणोंके मिलनेसे प्रायः मनुष्योको वातरोगका भ्रम होताहै। उस भ्रमसे वह वातरोगोकी समान तैलादिकका मलना आदि स्नेहनचिकित्सा करताहै तो उसके दूनी पीडा होजातीहै, पावोंमें पीडा, जडता और सुन्नता होय, पैरोका उठाते धरते समय अत्यन्त वेदना होय, पैरोंकी पिण्डली और साथलोंमे अत्यन्त ग्लानि, चलनेमे असमर्थ, कुछ २ दाहयुक्त पीडा, यह सब अधिकतासे होतीहै। जब यह रोग होताहै तो पैरोको उठाते चलाते समय विशेष पीडा होतीहै, शीतल पदार्थोका स्पर्श मालूम नही होता और बैठनेमे, दबानेमे, चलानेमें एवं हलानेमें असमर्थ होताहै और वह मनुष्य अपनी साथ-

लोंको तथा पावोंको टूटासा जानताहै और उसके पाव दूसरोंके उठानेसे उठतेहैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथोरुस्तम्भारिष्टम् ।

यदा दाहार्तितोदार्तो वेपनः पुरुषो भवेत् ॥ ऊरुस्तम्भस्तदा हन्यात्साधयेदन्यथा नवम् ॥ ९ ॥

अन्यथा दाहाद्युपद्रवरहितं तमपि नवम् उत्पन्नमात्रं साधयेत् ॥

जो ऊरुस्तम्भमें दाह, व्यथा, सुई चुभानेसरीखी पीडा हो और रोगी कांपने लगे तो उस मनुष्यको वह ऊरुस्तम्भ मारदेताहै और जो दाहादिक उपद्रव नहीं होंय तथा ऊरुस्तम्भ तत्कालका उत्पन्न हुआ होय तो साध्य है ॥ ९ ॥

अथोरुस्तम्भचिकित्सा ।

स्नेहासृक्स्राववमनं वस्तिकर्म विरेचनम् ॥ वर्जयेदामवाते तु यतस्तैस्तस्य कोपनम् ॥ १० ॥ तस्मादत्र सदा कार्यं स्वेदलंघनरूक्षणम् ॥ आममेदःकफाधिक्यान्मारुतं परिरक्षता ॥ ११ ॥ यत्स्यात्कफप्रशमनं न तु मारुतकोपनम् ॥ तत्सर्वं सर्वदा कार्यमूरुस्तम्भस्य भेषजम् ॥ सर्वो रूक्षः क्रमः कार्यस्तत्रादौ कफनाशनः ॥ ॥ १२ ॥ पश्चाद्वातविनाशाय विधातव्याः खिलाः क्रियाः ॥ भोज्याः पुराणाः श्यामाककोद्रवोद्दालशालयः ॥ १३ ॥ जांगलैरघृतैर्मांसैः शाकैश्चाऽलवणैर्हितैः ॥ शाकैरलवणैर्दध्याज्जलैस्तैलाज्यसाधितैः ॥ ॥ १४ ॥ सुनिषण्णकनिंबार्कवृन्तारग्वधपल्लवैः ॥ वायसीवास्तुकाद्यैश्च साधितैः शाकमूलकैः ॥ १५ ॥ शाकैरलवणैर्युक्तं जीर्णे शाल्योदनं भिषक् ॥ रूक्षणाद्वातकोपश्चेन्निद्रानाशार्तिपूर्वकः ॥ १६ ॥ स्नेहस्वेदक्रमस्तत्र कार्यो वातामयापहः ॥ प्रतारयेत्प्रतिस्रोतो नदीं शीतजलां शिवाम् ॥ १७ ॥ सरश्च विमलं शीतं स्थिरतोयं पुनःपुनः ॥ यथा विशुष्केऽस्य कफे शान्तिमूरुग्रहो व्रजेत् ॥ १८ ॥

ऊरुस्तम्भमें स्नेहन, रुधिरका निकलवाना (फस वगैरह) वमनक्रिया, वस्तिकर्म (पिचकारी) और विरेचन (जुलाब) इनको त्यागदेवे क्योंकि इन स्नेहनादिक कर्मोंसे ऊरुस्तम्भका उलटा प्रकोप होताहै इसकारण ऊरुस्तम्भमे सदैव स्वेदन, लंघन तथा रूक्षक्रिया करनी चाहिये । इस रोगमें वायुका बचाव करके आम, मेद और कफ अधिक होनेसे जो जो औषधि कफको शमन करनेवाली और वायुको कुपित नहीं करनेवाली है उनको सदैव इसमें सेवन करे । इस ऊरुस्तम्भरोगमें सकल रूक्ष क्रिया करनी चाहिये । उसमे भी प्रथम कफको नष्ट करनेवाली क्रिया प्रयोग करनी चाहिये और फिर वातनाशक क्रिया प्रयोग करे । घृतरहित जंगल प्रदेशके प्राणियोंके मासके साथ और लवणरहित हितकारक शाकोंके साथ, पुराना सामा, पुराने कोदो, पुराने वनकोदो और पुराने चावल इनका भोजन करे, गिरआरी नीमके पत्ते, आककी शाखा, अमलतासके पत्ते, मकोय, वथुआ और मूली इत्यादि बनायेहुए जलमे, तेलमें और घीसे पकायेहुए निमकरहित शाक खाने चाहिये । खायाहुआ भोजन जीर्ण होनेके पश्चात् वैद्य उसको निमकरहित शाकोंके साथ लाल शालिचावलोंका भात भक्षण करावे । जो रूक्ष क्रिया करनेसे निद्राका नाश तथा पीडासहित वायुका प्रकोप होय तो वायुकी वेदनाको हरनेवाली स्नेहन तथा स्वेदन क्रिया करे । रोगीको शीतल जलवाली सुन्दर नदीमे उसके प्रवाहके साथ चलावे अर्थात् तैरावे और निर्मल तथा शीतल और स्थिर जलवाले तालावमे वारंवार तैरावे ॥ १०–१८ ॥

शरीरबलमग्निश्च कार्यैषा रक्षता क्रिया ॥ सक्षारमूत्रस्वेदांश्च रूक्षाण्युत्सादनानि च ॥ १९ ॥ कुर्याद्दाहे च मूत्राद्यैः करञ्जफलसर्षपैः ॥ मूलैर्वाप्यश्वगन्धाया मूलैरर्कस्य वा भिषक् ॥ २० ॥ पिचुमर्दस्य वा मूलैरथ वा देवदारुणः ॥ क्षौद्रसर्षपवल्मीकमृत्तिकासंयुतैर्भिषक् ॥ ॥ २१ ॥ गाढमुत्सादनं कुर्यादूरुस्तम्भे

सवेदने । दन्तीद्रवन्तीसुरसासर्षपैश्चापि बुद्धिमान् ॥ २२ ॥ तर्कारी सुरसाशिग्रु-वचावत्सकनिम्बकैः । पत्रमूलफलैस्तोयं शृतमुष्णञ्च सेवनम् ॥ २३ ॥

शरीरके बलका और अग्निका बचाव करके जिस प्रकार कफ सूखकर ऊरुस्तम्भ शांत होय उसीप्रकार चिकित्सा करनी चाहिये । क्षार तथा मूत्र सयुक्त पदार्थोंसे स्वेदन करे । और रूक्ष पदार्थोंसे साथलोंको मले । दाह होय तो मूत्रादिकसे अथवा करजवेके फलोंसे, सयुक्त सरसोंसे अथवा असगन्धके चूर्णसे, अथवा आककी जडके चूर्णसे, अथवा नीमकी जडके चूर्णसे, अथवा देवदारुके चूर्णसे साथलोको खूब मले । वेदनायुक्त ऊरुस्तम्भमें उपरोक्त पदार्थोंको सहत, सरसो और बॉबीकी मट्टी इनसे साथलोको खूब दृढ रीतिसे मर्दन करे । ऊरुस्तम्भकी पीडामे बुद्धिमान् वैद्य दन्ती (जमालगोटेकी जड), छोटी दन्ती,काली तुलसी और सरसों इनसे भी साथलोंको खूब मर्दन करे । अरणी, काली तुलसी, सैंजिना, वच, कुडा और नीम इनके पत्तोका, जडका तथा फलोंका क्काथ बनाकर उस क्काथको गरम २ सेवन करे ॥ १९–२३ ॥

भल्लातकाऽमृताशुण्ठीदारुपथ्यापुनर्नवाः॥ पञ्चमूलीद्वयोन्मिश्रा ऊरुस्तम्भनिबर्हणाः ॥ २४ ॥

भिलावे, गिलोय, सोंट, देवदारु, हरड, पुनर्नवा और दशमूल इनको सेवन करनेसे ऊरुस्तम्भरोग नष्ट होताहै ॥ २४ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं भल्लातकफलानि च ॥ कल्कं मधुयुतं पीत्वा ऊरुस्तम्भाद्विमुच्यते ॥ २५ ॥

पपिल, पीपलामूल और भिलावे इनका कल्क बनाकर सहत मिलाकर सेवन करनेसे ऊरुस्तम्भ रोग नष्ट होताहै ॥ २५ ॥

रास्नाश्यामाकपथ्यामरिचमिसिशिवावेल्लशट्यश्वगन्धा यासच्छिन्नाजमोदासुमुषमतिविषात्रृद्धदारौ बृहत्यौ ॥ २६ ॥ शुण्ठी तिक्ता यवानी सहचरचविकैरण्डदार्व्याजकर्ण्यं ऊरुस्तम्भामवातं कफपवनरुजं दण्डकांश्चाशु हन्यात् ॥२७॥

रायसन, समा, हरड, काली मिरच, सोया, हलदी, वायविडग, कचूर, असगध, जवासा, गिलोय, अजमोद वनतुलसी, अतीस, विधारा, कटेरी, कटाई, सोठ, कुटकी, अजवायन, कटसरैया, चव्य, अरड, दारुहलदी और राल इनका क्काथ ऊरुस्तम्भ, आमवात कफके रोग, वातके रोग और दडकाक्षेपको तत्काल नष्ट करदेताहै । इसको रास्नादि क्काथ कहते हैं ॥ २६ ॥ २७ ॥

ग्रन्थिकारुष्ककृष्णानां क्काथं क्षौद्रान्वितं पिबेत् ॥ लिह्याद्वा त्रिफलाचूर्णं क्षौद्रेण कटुकायुतम् ॥ २८ ॥

पीपलामूल, भिलावे और पीपल इनका क्काथ बनाकर सहत मिलाकर पीनेसे ऊरुस्तम्भ नष्ट होताहै ।

त्रिफलेका तथा कुटकीका चूर्ण बनाकर सहतमे मिलाकर चाटनेसे ऊरुस्तम्भ नष्ट होताहै ॥ २८ ॥

सुखाम्बुना पिबेद्वापि चूर्णं षड्धरणं नरः॥ पिप्पलीवर्द्धमानं वा माक्षिकेण गुडेन वा ॥ २९ ॥

षड्धरण चूर्ण जो कि वातव्याधिमें कहाहै उसको सुखोष्ण जलके साथ पीनेसे ऊरुस्तम्भ रोग नष्ट होताहै ।

सहतके साथ अथवा गुडके साथ वर्द्धमानपीपलका सेवन करे तो ऊरुस्तम्भ रोग नष्ट होताहै ॥ २९ ॥

ऊरुस्तम्भे प्रशंसन्ति गण्डीरारिष्टमेव च ॥ शिलाजतु गुग्गुलं वा पिप्पलीमथ नागरम् ॥ ३० ॥ ऊरुस्तम्भे पिबेन्मूत्रैर्दशमूलीरसेन वा ॥

ऊरुस्तम्भ रोगमें कडवे सूरणका आसव भी सेवन करना लिखाहैं । मूत्रके साथ अथवा दशमूलके रसके साथ शिलाजीत, गूगल, पीपल और सोंठको पीनेसे ऊरुस्तम्भकी पीडा दूर होजातीहै ॥ ३० ॥

त्रिफला पिप्पली मुस्तं चव्यं कटुकरोहिणी ॥ ३१ ॥ लिह्याद्वा मधुना चूर्णमूरुस्तम्भार्दितो नरः ॥ घृतं सौरेश्वरं

दद्यादूरुस्तम्भे कफोत्तरे ॥ ३२ ॥ दद्याच्छुण्ठीघृतं वापि वैश्वानरमथापि वा ॥ सैन्धवाद्यं हितं तैलममृताख्योऽपि गुग्गुलुः ॥ ३३ ॥

त्रिफला, पीपल, नागरमोथा, चव्य और कुटकी इन सबका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे ऊरुस्तम्भकी पीडा शान्त होतीहै । ऊरुस्तम्भमें कफकी अधिकता होय तो सौंठेश्वरघृत, अथवा वैश्वानर चूर्ण, अथवा शुंठीघृत व सैंधवाद्यतैल, अथवा अमृतागुग्गुल देना हितकारी है ॥ ३१–३३ ॥

अथ कुष्ठाद्यतैलम् ।

कुष्ठश्रीवेष्टकोदीच्यसरलं दारु केशरम् ॥ अजगन्धाश्वगन्धे च तैलं तैः सार्षपं पचेत् ॥ सक्षौद्रं मात्रया तस्मादूरुस्तम्भार्दितः पिबेत् ॥ ३४ ॥

कूठ, सरलनिर्यास (लोबान), सुगधबाला, सरल धूप, देवदारु, नागकेसर, वनतुलसी और असगध इनके कल्कसे पकाया हुआ सरसोंका तेल सहतके साथ यथामात्रानुसार पियाजाय तो ऊरुस्तम्भ नष्ट होजाताहै ॥ ३४ ॥

अथाष्टकट्वरतैलम् ।

पलाभ्यां पिप्पलीमूलान्नागरादष्ट कट्वरम्॥ तैलप्रस्थं समं दध्ना गृध्रस्यूरुग्रहापहम् ॥ ३५ ॥ सस्नेहदधि सघृतं तक्रं कट्वरमुच्यते ॥ अष्टकट्वरतैलं च तैलं सार्षपमिष्यते ॥ पिप्पलीमूलशुण्ठ्याश्च प्रत्येकं द्विपलं कृतम् ॥ ३६ ॥

पीपलामूल ८ तोले, सोंठ ८ तोले, मलाई युक्त दहीसे बनाई हुई खट्टी छाछ ६४ तोले और दही ६४ तोले, सरसोंका तेल ६४ तोले इन सबको एकत्र मिलाकर विधिपूर्वक तेलको सिद्ध करे । इसको अष्टकटर तैल कहते हैं । इस तेलका उपयोग करनेसे ऊरुस्तम्भ रोग दूर होजाताहै ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

अथ द्विपञ्चमूलाद्यतैलम् ।

द्विपञ्चमूली त्रिफला चित्रकं देवदारु च॥ एकाष्ठीला त्वपामार्गं श्रेयसी वायसी शुभा ॥ ३७ ॥ बला भार्ङ्गी पृथक्पर्णी सुवहा मदयन्तिका ॥ विशालोशीरका-श्मर्यास्तिस्रो देयास्तथाग्निकः ॥ ३८ ॥ चिरबिल्वो ह्यशोकश्च कलश्यंशुमती तथा॥ पयस्यापीलुपर्ण्यश्च गुडूची च शतावरी ॥ ३९ ॥ एषां पञ्च पलान्भागाञ्जलद्रोणेषु सप्तसु ॥ अष्टभागावशेषेण पचेत्तैलाढकं शतम् ॥ ४० ॥ कुष्ठश्च शतपुष्पा च त्र्यूषण चित्रकं वरा ॥ देवदार्वगुरु श्रेष्ठं विडङ्गं मुस्तमेव च ॥ ४१ ॥ अश्वगन्धा स्थिरा पाठा मूली श्यामाकमेव च॥ पिप्पल्यः शृङ्गवेरश्च दन्ती हिङ्ग्वम्लवेतसम् ॥ ४२ ॥ अनेन गर्भेण भिषक्कषायेण च साधयेत्॥ सिद्धशीतश्च पूतश्च क्षौद्रेण सह संसृजेत् ॥ ४३ ॥ तदस्य नस्यपानार्थं तदेवाभ्यञ्जने भवेत्॥ ऊरुस्तम्भश्चिरोद्भूतस्तैलेनानेन शाम्यति॥ आमवातं शीतवातं क्षुद्रवातश्च नाशयेत् ॥ ४४ ॥

दशमूल, त्रिफला, चीता, देवदारु, बडी मौलसरी, चिरचिटा, गजपीपल, कौआठोडी, मकोय, खिरैटी, भारगी, पृश्निपर्णी, निर्गुण्डी, मल्लिका (मोतिया), इन्द्रायन, खस, कुम्भेर, लालचीता, करज, अशोकके पत्र, शालपर्णी, क्षीरकाकोलीकी प्रतिनिधि, मूर्वा, गिलोय और सतावर यह प्रत्येक औषधि वीस २० वीस २० तोले सात द्रोण जलमे पकावे, जब पकते पकते आठवॉ भाग जल शेष रहजाय तब उस क्वाथमें एक आढक परिमाण तेल पकावे, फिर इस तेलको कूट, सोया, सोंठ, दुगुनी मिरच, पीपल, चीता, त्रिफला, देवदारु, उत्तम अगर, वायविडग, नागरमोथा, असगध, पृष्ठिपर्णी, पाढ, मूली, समा, अदरख, दन्ती, हींग और अमलवेत इनके क्वाथसे तथा कल्कसे पकावे जब पककर स्वय शीतल होजाय तब कपडेमें छान लेवे फिर उसमें सहत मिलाकर व्यवहार करे । इस तेलसे नस्य, पान और अभ्यग (मालिश) करे तो बहुत दिनोका ऊरुस्तम्भ नष्ट होजाताहै । यह तेल आमवात, क्षुद्रवात और शीतवातको भी दूर करेहै ॥ ३७–४४ ॥

अथ महासैन्धवाद्यतैलम्।

सिन्धुरुग्विश्वजा सोग्रा भार्ङ्गीयष्टीस्थिराफलैः॥ दारुविश्वशटीधान्यकृष्णाकट्फलपौष्करैः॥ ४५॥ दीप्यकातिविषैरण्डनीलीनीलाम्बुजैः पचेत्॥ तैलं सकाञ्जिकं हन्ति पानाभ्यञ्जननावनैः॥ ४६॥ आमवातं कृमीन्गुल्मान्प्लीहोदराशिरोरुजः॥ मन्दाग्नि पक्षसन्ध्यण्डवातस्तम्भगदानपि॥ ४७॥

सैंधानिमक, कूट, छोटीसतावर, वच, भारगी, मुलैठी, पृश्निपर्णी, जायफल, देवदारु, सोंठ, कचूर, धनियाँ, पीपल, कायफल, पोहकरमूल, अजवायन, अतीस, एरंड, नील और नीलकमल, इनके द्वारा पकायाहुआ तेल काँजी मिलाकर पान, अभ्यग तथा नस्यमे प्रयोग करे तो आमवात, कृमि, गुल्म, प्लीहा, उदररोग, मस्तककी पीडा, मदाग्नि, पक्षाघात, सधिवात, अंडकोषकी पीडा और वातस्तम्भ रोग दूर होताहै॥ ४५–४७॥

अथ सैन्धवाद्यतैलम्।

द्वे पले सैन्धवात्पञ्च शुण्ठ्या ग्रन्थिकचित्रकात्॥ द्वेद्वे भल्लातकास्थीनि विंशतिर्द्वे तथाऽऽढके॥ ४८॥ आरनालात्पञ्चप्रस्थं तैलस्यैरण्डजस्य च॥ गृध्रस्यूरुग्रहास्यार्तिसर्ववातविकारनुत्॥ ४९॥

इति ऊरुस्तम्भनिदानचिकित्साधिकारः।

सैंधानिमक २ दो पल, सोंठ ५ पाँच पल, चीता २ पल, पीपलामूल २ दो पल, भिलावेंकी गुटली २० वीस पल और आरनाल काँजी २ दो आढक, इनसे पाच ५ प्रस्थ अडीके तेलको पकावे तो सैन्धवाद्य तेल सिद्ध होताहै। यह तेल–गृध्रसी, ऊरुस्तम्भ, मुखकी पीडा और सर्व प्रकारके वायु सम्बन्धी विकारोंको नष्ट करता है॥ ४८॥ ४९॥

इति ऊरुस्तम्भाधिकारः सम्पूर्णः।

अथ आमवाताधिकारः।

तत्रामवातनिदानपूर्वकसम्प्राप्तिः।

विरुद्धाहारचेष्टस्य मन्दाग्नेर्लोलुपस्य च॥ ॥ १॥ स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायामं कुर्वतस्तथा॥ वायुना प्रेरितो ह्यामः श्लेष्मस्थानं प्रधावति॥ २॥ तेनात्यर्थमपक्कोऽसौ धमनीभिः प्रपद्यते॥ वातपित्तकफैर्भूयो दूषितः सोऽन्नजो रसः॥ ३॥ स्रोतांस्यभिष्यन्दयति नानावर्णोऽतिपिच्छिलः॥ जनयत्यग्निदौर्बल्यं हृदयस्य च गौरवम्॥ ॥ ४॥ व्याधीनामाश्रयो ह्येष आमसंज्ञोऽतिदारुणः॥ ५॥

विरुद्धाहारचेष्टस्य विरुद्धाहारः क्षीरमत्स्यादिः विरुद्धचेष्टा भुक्तव्यायामादि ताभ्यां युक्तस्य। निश्चलस्य निर्व्यायामपरस्य। स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायामं कुर्वत इति मिलितो हेतुः। श्लेष्मस्थानम् आमाशयसन्ध्यादि। तेन श्लेष्मस्थानगमनेन अत्यन्तम् अपक्वः। पित्तस्थानगमनेन पक्वो भविष्यति इति अभिप्रायः। असौ आमः धमनीभिः प्रपद्यते, धमनीमार्गश्चलति। भूयो दूषितः अतिशयेन दूषितः। सोऽन्नजो रसः आमः स्रोतांसि अभिष्यन्दयति संश्रित्य रसवहशिरावरोधं कृत्वा स्रोतांसि गुरूणि कुर्यात्। नानावर्णः वातादिजनितवर्णभेदात् नानावर्णः॥

दूध मछली आदि विरुद्ध आहार और विरुद्ध चेष्टा करनेवाले वा कसरत नही करनेवाले, मंद अग्निवाले, भोजनमें लंपट, और स्निग्ध अन्न खाकर कसरत करनेवाले, मनुष्यके वायुसे प्रेरित हुआ आम रस कफके आमाशय और संधियें आदि स्थानोंमें दौडकर पहुँच जाताहै आम जो पित्तके स्थानोंमे जाय तो पकजाताहै किन्तु ऊपर कहे-अनुसार कफके स्थानमें प्राप्त होनेकेकारण अत्यत अपक्व रहा यह आम धमनिओंके मार्गसे चलता है, इसप्रकार

प्रचलन करताहुआ यह आम फिर वातसे, पित्तसे तथा कफसे अत्यन्त दूषित होकर स्रोतों (छिद्रों) में रहनेवाले रसको वहन करनेवाली शिराओंको रोककर स्रोतोंको भारी करदेताहै । वातादिदोषोंसे अनेक प्रकारके वर्णवाली और अत्यन्त चिकना पिच्छिल यह आम अग्निको निर्बल कर देताहै और हृदयमें भारीपनको करताहै । यह महादारुण आम व्याधियोंका आश्रयरूप है ॥ १–५ ॥

अथामस्वरूपम् ।

अजीर्णाद्यो रसो जातः सञ्चितो हि क्रमेण वै ॥ आमसंज्ञां स लभते शिरोगात्ररुजाकरः ॥ ६ ॥

अजीर्णाद्भुक्तादजीर्णात् ॥

भोजन किये हुए अन्नके नहीं पकनेसे जो अन्नका अपक्व रस उत्पन्न होताहै वह क्रम क्रमसे जब एकत्रित होजाताहै तब वह आम कहाजाताहै और वह आम मस्तकमें तथा गात्रमें वेदना करतीहै ॥ ६ ॥

अथामवातसामान्यलक्षणम् ।

युगपत्कुपितावेतौ त्रिकसन्धिप्रवेशकौ ॥ स्तब्धञ्च कुरुतो गात्रमामवातः स उच्यते ॥ ७ ॥

एतौ वातकफौ त्रिकसन्धिप्रवेशकौ वेदनयेति बोद्धव्यम् ॥

एकही समय कुपित हुए वात और आम यह दोनों त्रिकस्थानकी सन्धियोंमें पीडा करतेहुए प्रवेश करके गात्रको जकड देते हैं तब यह रोग आमवात कहाजाताहै ॥ ७ ॥

अथ तन्त्रान्तरोक्तामवातलक्षणम् ।

अंगमर्दोऽरुचिस्तृष्णा ह्यालस्यं गौरवं ज्वरः ॥ अपाकः शून्यतांगानामामवातस्य लक्षणम् ॥ ८ ॥

विशेषार्थम् अस्य संग्रहः ॥

अंगोंका टूटना, अरुचि, तृषा, आलस्य, भारीपन, ज्वर, अन्नका नहीं पचना और अंगोंकी शून्यता यह आमवातके लक्षण हैं ।

आमवातमें विशेष जाननेके लिये अन्यग्रंथोंमें कहे हुए यह लक्षण इसने इस ग्रन्थमें लिखे हैं ॥ ८ ॥

अथ वाताधिक्यामवातलक्षणम् ।

स कष्टः सर्वरोगाणां यदा प्रकुपितो भवेत् ॥ हस्तपादशिरोगुल्फत्रिकजानूरुसन्धिषु ॥ ९ ॥ करोति सरुजं शोथं यत्र दोषः प्रपद्यते ॥ स देशो रुज्यतेऽत्यर्थं व्याविद्ध इव वृश्चिकैः ॥ १० ॥ जनयेत्सोऽग्निदौर्बल्यं प्रसेकारुचिगौरवम् ॥ उत्साहहानिं वैरस्यं दाहञ्च बहुमूत्रताम् ॥ ॥ ११ ॥ कुक्षौ कठिनतां शूलं तथा निद्राविपर्ययम् ॥ तृट्छर्दिभ्रममूर्च्छाश्च हृद्ग्रहं विड्विबद्धताम् ॥ जाड्यान्त्रकूजमानाहं कष्टांश्चान्यानुपद्रवान् ॥ १२ ॥

यदा प्रकुपितो भवेत्प्रकर्षेण कुपितः स्यात्तदा वक्ष्यमाणानुपद्रवान्करोति । हस्तेत्यादि यत्र दोषः दुष्टः आमः प्रपद्यते गच्छति तानाह जाड्यम् अकर्मण्यत्वम् । अन्यानुपद्रवान् कलायखञ्जत्वादीन् ॥

सम्पूर्ण रोगोंमें अत्यतकष्टजनक जब यह आमवात अधिक कुपित होताहै तब हाथ, पाँव, मस्तक, गुल्फ, त्रिक, घुटने, साँथल और घुटनोंके जोड इनमें पीडा युक्त सूजन उत्पन्न करताहै । दुष्ट हुआ यह आम जिसप्रदेशमें जाताहै उसी शरीरके प्रदेशमें बीछूके काटे हुएकी समान घोर पीडा करताहै, आम वातसे जठराग्नि निर्बल होजातीहै, मुखमें थूक आने लगताहै, अरुचि होतीहै, शरीरमें भारीपन, उत्साहका नाश, विरसता, दाह, मूत्रकी बाहुल्यता, पेटमें कठिनता, शूल, निद्राका नाश, तृषा, वमन, मूर्छा, हृदयमें जडता, मलका अवरोध, जडता, आंतोंका कूँजना, अफारा और दूसरे कलायखजादिक भी दुःखदायक उपद्रव होतेहैं ॥ ९–१२ ॥

अथामवातविशेषलक्षणम ।

पित्तात्सदाहरागञ्च सशूलं पवनात्मकम् ॥ स्तिमितं गुरुकण्डूकं कफजुष्टं तमादिशेत् ॥ १३ ॥

गुरुकण्डकम् बहुकण्डूकम् ॥

दाह तथा लाली होय तो आमवातको पित्तका जानना, जो शूल चले तो वायुका आमवात जानना और खुजली बहुत चलती होय तथा जडता होय तो कफका आमवात जानना ॥ १३ ॥

अथामवातसाध्यासाध्यता ।

एकदोषानुगः साध्यो द्विदोषो याप्य उच्यते ॥ सर्वदेहचरैः शोथैः स कष्टः सान्निपातिकः ॥ १४ ॥

जो आमवात एक दोषका होय तो साध्य जानना, दो दोषोंका होय तो याप्य जानना और जो तीन दोषोंका होय तथा सम्पूर्ण शरीरमें सूजन होय तो असाध्य जानना ॥ १४ ॥

अथामवातचिकित्सा ।

लंघनं स्वेदनं तिक्तं दीपनानि कटूनि च ॥ विरेचनं स्नेहनश्च वस्तयश्चाममारुते ॥ १५ ॥

आमवातमें प्रथम लंघन करना, सेक करना, तिक्तपदार्थ, अग्निको दीपन करनेवाले पदार्थ और तीक्ष्ण पदार्थ सेवन करे, विरेचन देवै, स्नेहन कर्म करे और पिचकारी लगानी यह सब उपचार करे ॥ १५ ॥

रूक्षः स्वेदो विधातव्यो वालुकापुटकैस्तथा ॥ उपनाहाश्च कर्तव्यास्तेऽपि स्नेहविवर्जिताः ॥ १६ ॥

रेतीकी पोटली बनाकर उसका रूक्ष सेक करे और स्नेहरहित उपनाह स्वेद देवै ॥ १६ ॥

आमवाताभिभूताय पीडिताय पिपासया ॥ पञ्चकोलेन संसिद्धं पानीयं हितमुच्यते ॥ १७ ॥

आमवातसे दुःखित मनुष्य तृषासे पीडित होय तो उसको पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोठ इनसे पकाया हुआ जल देना उत्तम है ॥ १७ ॥

शुष्कमूलकयूषं वा यूषं वा पाञ्चमौलिकम् ॥ रसकं काञ्जिकं वापि शुण्ठीचूर्णावचूर्णितम ॥ १८ ॥

आमवातवाले मनुष्यको सूखी मूलीका यूष अथवा पंचमूलका यूष अथवा जिसमें सोठका चूर्ण मिला होय ऐसी काँजीको देवै ॥ १८ ॥

सौवीरं स्विन्नवार्त्ताकं तथा तिक्तफलानि च ॥ वास्तूकशाकं सारिष्टशाकं पौनर्नवं हितम् ॥ १९ ॥ पटोलं गोक्षुरश्चैव वरुणं कारवल्लकम् ॥ यवान्नं कोरदूषान्नं पुराणशालिषष्टिकम् ॥ २० ॥ लावकानां तथा मांसं हितं तक्रेण संस्कृतम्॥हितश्च यूषः कौलत्थः कालायश्चणकस्य च ॥२१॥

सौवीर नामक काँजीमें बैंगनको उबालकर अथवा कडवे फलोको उबालकर सेवन करे । बथुयेका शाक, नीमके पत्तोका शाक, पुनर्नवेका शाक, परवलो, गोखुरुओका शाक, बरना, करेला, जौ, कोदों, पुरानेशालिधान और साठी धान, तक्रमें संशोधन किया हुआ लवाका मांस कुलथीका यूष, मटर और चने यह सब आमवातमें हितकारी हैं ॥ १९-२१ ॥

रुच्यं दद्याद्यथासात्म्यमामवातहितश्च यत् ॥ शतपुष्पा वचा विश्वश्वदंष्ट्रावरुणत्वचः ॥ २२ ॥ पुनर्नवा सदेवाह्वाशटीमुण्डितकाः समाः ॥ प्रसारणी च तर्कारीफलश्च मदनस्य च ॥ २३ ॥ शुक्तकाञ्जिकपिष्टा च कोष्णा च लेपने हिता ॥ अहिंस्रा केबुकान्मूलं शिग्रुर्वल्मीकमृत्तिका॥ मूत्रपिष्टैश्च कर्तव्यमुपनाहः प्रलेपनम् २४॥

आमवात रोगीकी प्रकृतिके अनुसार जो उसको रुचे और आमवातमें हितकारी होय वही उसको देवै ।

सोया, वच, सोंठ, गोखुरू, वरनाकी छाल, पुनर्नवा, देवदारु, कचूर और गोरखमुंडी, प्रसारणी, अरणी, मैनफल, इनको सिरकेकी काँजीमें पीसकर सुखोष्ण लेप करे तो आमवातमें अत्यत हितकारी है ।

अहिंस्रा (हींस), अंडकी जड, सैंजिना और बाँबीकी मट्टी इनको एकत्र गोमूत्रमें पीसकर पीडाके स्थानमें बाँधनेसे अथवा लेप करनेसे आमवात रोग शमन होता है ॥ २२-२४ ॥

चित्रकं कटुका पाठा कलिंगातिविषाऽमृताः ॥ २५ ॥ देवदारुवचामुस्तनागरातिविषाभयाः ॥ पिवेदुष्णाम्बुना नित्यमामवातस्य भेषजम् ॥ २६ ॥

चीता, कुटकी, पाढ, इन्द्रजौ, अतीस, गिलोय, देवदारु, वच, नागरमोथा, सोंठ, अतीस और हरड इनको एकत्र पीसकर गरम जलके साथ नित्य पिये तो आमवात शमन होताहै ॥ २५ ॥ २६ ॥

शटीशुण्ठ्यभयाश्वोग्रा देवाह्वातिविषाऽमृताः॥ कषायमामवातस्य पाचनं रूक्षभोजनम् ॥ २७ ॥

कचूर, सोंठ, हरड, वच, देवदारु, अतीस और गिलोय इनका क्वाथ पिये और रूक्ष भोजन करे तो आमवात नष्ट होजाताहै ॥ २७ ॥

पुनर्नवा च बृहतीवर्द्धमानफणिज्जकैः॥ कल्पयेत्क्वाथमाने तु मूर्वाशिग्रुद्रुमैर्भिषक् २८॥

पुनर्नवा, कटाई, एरंड, मरुआ, मूर्वा और सैजिनेका पञ्चाग इनका क्वाथ बनाकर वैद्य आमवातरोगीको पिलावे ॥ २८ ॥

सेचनं चामवातस्य रुवूकपयसापि वा ॥ लिह्यात्पथ्यां सविश्वां वा मूत्रैर्वा गुग्गुलुं पिबेत् ॥ २९ ॥ विश्वालम्बुषयोः कल्कमद्याद्वा तिलविश्वयोः ॥ विश्वपथ्यामृताक्वाथं कवोष्णं कौशिकान्वितम्॥कटीजंघोरुपृष्ठानां रुजं पीतं निवर्तयेत् ॥ ३० ॥

आमवात रोगपर एरंडके पानीका सेचन करे, अथवा सोंठके साथ हरडको खाय, अथवा मूत्रके साथ गूगलको खाय । अथवा सोंठ तथा गोरखमुण्डीका कल्क खाय । अथवा तिलका तथा सोंठका कल्क खाय अथवा सोंठ, हरड तथा गिलोय इनका क्वाथ बनाकर उसमें गूगल डालकर कुछेक गरम करके पिये, तो कमर, सांथल तथा पीठकी पीडा शांत होजातीहै ॥ २९ ॥ ३० ॥

हिंग्वाद्यचूर्णम् ।

हिंगु चव्यं विडं शुण्ठी कृष्णाजाजी सपुष्करम् ॥ भागोत्तरमिदं चूर्णं पीतं वातामजिद्भवेत् ॥ ३१ ॥

हींग, चव्य, विरियासचरनिमक, सोंठ, कालाजीरी (कलौंजी) और अडकी जड यह सब पदार्थ एकसे एक दुगुना लेकर चूर्ण बनाकर सेवन करे तो आमवातकी पीडा शात होजातीहै ॥ ३१ ॥

अथ पिप्पल्यादिचूर्णम् ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं सैन्धवं कृष्णजीरकम् ॥ चव्यचित्रकतालीसपत्रकं नागकेशरम् ॥ ३२ ॥ एषां द्विपलिकान्भागान्पश्च सौवर्चलस्य च ॥ मरिचाऽजाजिशुण्ठीनामेकैकस्य पलंपलम् ॥ ३३ ॥ दाडिमात्कुडवश्चैव द्वे पले चाम्लवेतसात्॥ सर्वमेकत्र संक्षुद्य योजयेत्कुशलो भिषक् ॥ ॥ ३४ ॥ पिप्पल्याद्यमिति ख्यातं नष्टस्याग्नेश्च दीपनम् ॥ अर्शांसि ग्रहणी गुल्ममुदरं सभगन्दरम् ॥ ३५ ॥ कृमिकण्डूरुचीर्हन्यात्सुरयोष्णोदकेन वा ॥ नातः परतरं किञ्चिदामवातस्य भेषजम् ॥ ३६ ॥

पीपल, पीपलामूल, सैंधानिमक, कालाजीरा, चव्य, चीता, तालीसपत्र और नागकेसर यह प्रत्येक पदार्थ आठ आठ तोले लेवे, कालानिमक पाच तोले लेवे, कालीमिर्च, जीरा और सोंठ चार ४ चार ४ तोले लेवे, दाडिमीसार सोलह तोले लेवे और अमलवेत आठ तोलेभर ले, इन सब औषधियोंको एकत्रित करके चतुर वैद्य कूट पीस चूर्ण बनाकर रोगीको देवे । इसको पिप्पल्यादिचूर्ण कहतेहैं । इसको सहतके साथ अथवा गरमजलके साथ पिये तो नष्ट हुई जठराग्नि फिरसे दीपन होतीहै । और बवासीर, ग्रहणी, गुल्म, उदरके रोग, भगन्दर, कृमि, खुजली और अरुचि दूर होजातीहै । आमवातकी इससे उत्तम अन्य औषधि नहीं है ॥ ३२-३६ ॥

अथ पथ्याद्यचूर्णम् ।

पथ्याविश्वयवानीभिस्तुल्याभिश्चूर्णितं पिबेत् ॥ तक्रेणोष्णोदकेनापि काञ्जिकेना-

थ वा पुनः ॥३७॥ आमवातं निहन्त्याशु शोथं मन्दाग्नितामपि॥ पीनसं कासहृद्रोगं स्वरभेदमरोचकम् ॥ ३८ ॥

हरड, सोठ और अजवायन इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर तक्र (मट्ठा) के साथ, गरमजलके साथ अथवा कॉजीके साथ पिये तो आमवात, सूजन, जठराग्निकी मंदता, पीनस, खॉसी, हृदयकी पीडा, स्वर भेद और अरुचि दूर होतीहै ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

अथ रसोनादिकषायः ।

रसोनविश्वनिर्गुण्डीक्वाथमामार्दितः पिबेत् ॥ नातः परतरं किञ्चिदामवातस्य भेषजम् ॥ ३९ ॥

आमसे पीडित मनुष्यको लहसुन, सोठ और निर्गुण्डी इनका क्वाथ पीना चाहिये, इस क्वाथसे अधिक आमवातकी अन्य औषधि नहीं है ॥ ३९ ॥

अथ रास्नापंचककाथः ।

रास्नां गुडूचीमेरण्डं देवदारु महौषधम् ॥ पिबेत्सर्वाङ्गिके वाते सामे सन्ध्यस्थिमज्जगे ॥ ४० ॥

रासना, गिलोय, अडकी जड, देवदारु और सोंठ इनका क्वाथ सर्वांगवात, आमवात, सधिगतवात, अस्थिगतवात और मज्जागतवातमे पीनाचाहिये ॥ ४० ॥

अथ पिप्पल्यादिकाथः ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ॥ क्वथितं वारि तत्पेयमामवातविनाशनम् ॥ ४१ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनका क्वाथ बनाकर पिये तो आमवात नष्ट होजाताहै ॥ ४१ ॥

अथ शट्यादिकल्कः ।

शटी विश्वौषधीकल्कं वर्षाभूक्वाथसंयुतम् ॥ सप्तरात्रं पिबेज्जन्तुरामवातविनाशनम् ॥ ४२ ॥

कचूर तथा सोठ इनका कल्क बनाकर पुनर्नवेके क्वाथके साथ सात दिनतक पिये तो आमवात नष्ट होजाता है ॥ ४२ ॥

अथ रास्नासप्तककाथः ।

रास्नामृतारग्वधदेवदारुत्रिकण्टकैरण्डपुनर्नवानाम् ॥ क्वाथं पिबेन्नागरचूर्णमिश्रं जङ्घोरुपार्श्वत्रिकपृष्ठशूली ॥ ४३ ॥

रासना, गिलोय, अमलतास, देवदारू, गोखुरू, अंडकी जड और पुनर्नवा इनका क्वाथ बनाकर उसमें सोठका चूर्ण डालकर पीनेसे पिडालिओका, सांथलोका, पसलियोका, त्रिकस्थानका और पीठका शूल नष्ट होजाताहै ॥ ४३ ॥

आमवाते कणायुक्तं दशमूलीजलं पिबेत्॥ खादेद्वाप्यभयाविश्वं गुडूचीं नागरेण वा ॥ ४४ ॥

पीपलका चूर्ण डालकर दशमूलका क्वाथ पीनेसे अथवा सोंठ तथा हरडको भक्षण करनेसे अथवा गिलोय तथा सोंठको भक्षण करनेसे आमवात नष्ट होजाताहै ॥ ४४ ॥

अथ चित्रकादिचूर्णम् ।

चित्रकेन्द्रयवापाठाकटुकातिविषाभयाः॥ आमाशयोत्थवातघ्नं चूर्णं पेयं सुखाम्बुना ॥ ४५ ॥

चीता, इन्द्रजौ, पाढ, कुटकी, अतीस और हरड इनका चूर्ण करके कुछेक गरमजलके साथ पीनेसे आमाशयकी वायु दूर होजातीहै ॥ ४५ ॥

अथ पुनर्नवादिचूर्णम् ।

पुनर्नवाऽमृता शुण्ठी शताह्वा वृद्धदारकम्॥ शटी मुण्डितिका चूर्णमारनालेन पाययेत् ॥ ४६ ॥ आमाशयोत्थवातघ्नं चूर्णं पेयं सुखाम्बुना ॥ आमवातं निहन्त्याशु गृध्रसीमुद्धतामपि ॥ ४७ ॥

पुनर्नवा, गिलोय, सोठ, सोया, विधारा, कचूर और गोरखमुडी इनका चूर्ण बनाकर आरनालनामक कांजी अथवा गरमजलके साथ पीनेसे आमवातरोग तत्काल नष्ट होजाताहै और भयकर गृध्रसीवात नष्ट होतीहै॥४६॥४७॥

अथ नागरचूर्णम् ।

कर्षं नागरचूर्णस्य काञ्जिकेन पिबे-

त्सदा ॥ आमवातप्रशमनं कफवातहरं परम् ॥ ४८ ॥

सोंठका चूर्ण एक तोलाभर लेकर कांजीके साथ नित्य पिये तो आमवातरोग शांत होजाताहै । यह औषधि कफ तथा वायुको हरनेवाली उत्तम है ॥ ४८ ॥

अथ पंचकोलचूर्णम् ।

पञ्चकोलकचूर्णन्तु पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ मन्दाग्निशूलगुल्मामकफारोचकनाशनम् ॥ ४९ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनका चूर्ण बनाकर गरम जलके साथ पिये तो अग्निकी मन्दता, शूल, गुल्म, आम, कफ और अरुचि इनका नाश होताहै ॥ ४९ ॥

अथैरण्डतैलम् ।

आमवातगजेन्द्रस्य शरीरवनचारिणः ॥ एक एव निहन्ताशु ऐरण्डतैलकेशरी ॥ ५० ॥

शरीररूपी वनमें विचरण करनेवाले आमवातरूपी उन्मत्त हाथीको इकला अंडीका तेलरूप सिंह मारदेताहै ॥ ५० ॥

अथैरंडतैलहरीतकी ।

ऐरण्डतैलयुक्तां हरीतकीं भक्षयेन्नरो विधिवत् ॥ आमानिलार्तियुक्तो गृध्रसीवृद्ध्यार्दितो नियतम् ॥ ५१ ॥

आमवातसे, गृध्रसीसे और अर्दितवातसे पीडित मनुष्यको अंडीके तेलके साथ हरडका चूर्ण अवश्य सेवन करना चाहिये ॥ ५१ ॥

अथारग्वधपत्रप्रयोगः ।

आरग्वधस्य पत्राणि भृष्टानि कटुतैलतः ॥ आमघ्नानि नरः कुर्यात्सायं भक्तावृतानि च ॥ ५२ ॥

सन्ध्याके समय सरसोंके तेलमें अमलतासके पत्तोंको सेककर भक्षण करे और उसके पश्चात् भोजन करे तो आमकी पीडा नष्ट होजातीहै ॥ ५२ ॥

अथ कटिग्रहपंगुरोगलक्षण चिकित्से ।

वायुः कट्याश्रितः शुद्धः सामो वा जनयेद्रुजम् ॥ कटीग्रहः स एवोक्तः पंगुसक्थ्नोर्द्वयोर्वधात् ॥ ५३ ॥ शुण्ठीगोक्षुरककाथः प्रातःप्रातर्निषेवितः ॥ सामे वातकटीशूले पाचनं रुक्प्रणाशनम् ॥ ५४ ॥

कटिमें रहनेवाली शुद्ध अथवा आमसहित वायु व्यथाको उत्पन्न करतीहै इसको कटिग्रह कहतेहैं जो इसमें दोनों साथल विकारको प्राप्त होजावें तो इसको पंगुरोग कहतेहैं। सोंठ और गोखुरू इनका क्काथ नित्य प्रातःकाल सेवन करे तो आमसहित वायुरोगीका कटिशूल नष्ट होताहै और आमका पाचन होताहै ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

यवक्षारसमायुक्तं मूत्रकृच्छ्रविनाशनम् ॥ दशमूलीकषायेण पिबेद्वा नागराम्भसा ॥ ॥ ५५ ॥ कटीशूलेषु पातव्यं तैलमैरण्डसम्भवम् ॥ महौषधगुडूच्योश्च क्काथं पिप्पलिसंयुतम् ॥ पिबेदामे सरुक्कोष्ठे कटीशूले विशेषतः ॥ ५६ ॥

अंडीके तेलमें जवाखार डालकर पीनेसे मूत्रकृच्छ्ररोग नष्ट होताहै और दशमूलके साथ अथवा सोंठके क्काथके साथ अंडीका तेल पीनेसे कटीशूल नष्ट होताहै ॥

आममें, कोठेकी पीडामें और विशेष करके कटिग्रहपर सोंठ और गिलोयके क्काथमें पीपलका चूर्ण डालकर पिये ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

विशोध्यैरण्डबीजानि पिष्ट्वा क्षीरे विपाचयेत् ॥ ५७ ॥ तत्पायसं कटीशूले गृध्रस्यां परमौषधम् ॥ सर्पिस्तैलं गुडं शुक्तं पञ्चमं विश्वभेषजम् ॥ ५८ ॥ पीतमेतद्भवेत्सद्यस्तर्पणं कटिशूलनुत् ॥ न हि चैतत्समं किञ्चिन्निरामे कटिमारुते ॥ ॥ ५९ ॥ शुकतरुवल्कलसहितं गोमूत्रं स्थापितन्तु सप्ताहम् ॥ हिंगुवचा-ग्न्यासैन्धवयुक्तेन तेनाथ ॥ ६० ॥ तत्पुटपक्वं हन्यात्कटीरुजं दारुणं पुंसाम् ॥ आममेदोवृद्धिभवान्विकारांश्चानिलोद्भवान् ॥ ६१ ॥

अडीके बीजोको साफकर पीस करके दूधमे पकाकर उस दूधपाकको सेवन करनेसे कटिग्रह तथा गृध्रसीवात दूर होजाताहै। कटिग्रह तथा गृध्रसीका यह उत्तम उपायहै। घी, तेल, गुड, शुक्तनामक कांजी और सोंठ इन सबको एकत्र मिलाकर पिये तो तत्काल तृप्ति होतीहै और कटिग्रह नष्ट होताहै, आमरहित कटिग्रहपर इससे उत्तम अन्य औषधि नहीं है। देवदारुकी छालको गोमूत्रमे पीसकर सातदिनतक रखदेवे; फिर इसको हीग, वच, सोया और सैंधेनिमकके साथ पीसकर पुटपाककी विधिसे पकावे इसको सेवनकरनेसे दारुण कटिग्रह तथा आम, मेद और वायुकी वृद्धिसे उत्पन्न हुए दूसरे विकारभी शात होजातेहैं ॥ ५७–६१ ॥

अथामृताद्यचूर्णम् ।

अमृतानागरगोक्षुरमुण्डितिकावरुणकैः कृतं चूर्णम् ॥ मस्त्वारनालपीतं सामानिलनाशनं ख्यातम् ॥ ६२ ॥

गिलोय, सोठ, गोखरू, गोरखमुंडी और वरना इनका चूर्ण करके दहीके तोडके साथ अथवा आरनालके साथ पिये तो आमवातका नाश होताहै ॥ ६२ ॥

अथालम्बुषादिचूर्णम् ।

अलम्बुषा गोक्षुरकं त्रिफलानागरामृताः॥ यथोत्तरं भागवृद्ध्या श्यामाचूर्णश्च तत्समम् ॥ ६३ ॥ पिबेन्मस्तु सुरां तत्र काञ्जिकोष्णोदकेन वा ॥ आमवातं जयत्याशु सशोथं वातशोणितम् ॥६४॥ त्रिकजानूरुसन्धिस्थज्वरारोचकनाशनम्॥ अलम्बुषादिकं चूर्णं रोगानीकविनाशनम् ॥ ६५ ॥

गोरखमुडी १ भाग, त्रिफला २ भाग, सोठ ४ भाग, गिलोय ५ भाग और निसोतका चूर्ण १५ भाग लेवे, सबको एकत्र कूट पीसकर दहीके पानीके साथ, मदिराके साथ, कॉजीके साथ अथवा गरम जलके साथ पिये तो सूजनरहित आमवात, वातरक्त, त्रिकस्थानमें प्राप्त हुआ ज्वर, घुटने, जघा और सॉथलोंकी पीडा और अरुचि इन सबका नाश होताहै। यह अलम्बुषादिचूर्ण रोगोंकी सेनाको नष्ट करनेवाला है ॥ ६३–६५ ॥

हरीतक्यक्षधात्रीभिः प्रसिद्धा त्रिफला क्रमात् ॥ प्रत्येकं तेन वा युंज्याद्भागवृद्धिं यथोत्तरम् ॥ ६६ ॥

हरड, वेहेडा, आमला इन तीनोंको त्रिफला कहतेहैं। एक एक भागसे बढायके उपयोग करना, अथवा प्रत्येक एक एकसे उपयोग करना ॥ ६६ ॥

अथ द्वितीयालम्बुषादिचूर्णम् ।

अलम्बुषा गोक्षुरकं मूलं वरुणकस्य च ॥ गुडूची नागरश्चेति समभागानि कारयेत् ॥ ६७ ॥ काञ्जिकेन तु तत्पेयं बिडालपदमात्रकम् ॥ आमवाते प्रवृद्धे च योगोऽयममृतोपमः ॥ ६८ ॥

गोरखमुडी, गोखुरू, वरनाकी जड, गिलोय और सोंठ इन सबको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करै इसमे एक-तोला चूर्ण लेकर कॉंजीके साथ पीवे. बढे हुए आमवातरोगपर यह उपाय अमृतकी समान है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

अथ तृतीयालम्बुषादिचूर्णम् ।

अलम्बुषा गोक्षुरकं गुडूची वृद्धदारुकम् ॥ पिप्पली त्रिवृता मुस्ता वरुणं सपुनर्नवम् ॥ त्रिफला नागरश्चेति सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ६९ ॥ मस्त्वारनालतक्रेण पयोमांसरसेन वा॥ आमवातं निहन्त्याशु श्वयथुं सन्धिसंस्थितम् ॥ ७० ॥

गोरखमुंडी, गोखुरू, गिलोय, विधारा, पीपल, निसोत, नागरमोथा, वरना, पुनर्नवा, त्रिफला और सोंठ इनका बारीक चूर्ण बनाकर दहीके पानीके साथ, तक्रके साथ, दूधके साथ अथवा मासरसके साथ पीवे तो तत्काल आमवात नष्ट होजाताहै तथा सधियोंमे प्राप्त हुई सूजन भी दूर होजातीहै ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अथ वैश्वानरचूर्णम् ।

मणिमन्थस्य भागौ द्वौ यवान्यास्तद्वदेव तु ॥ भागास्त्रयोऽजमोदाया नागराद्भागपञ्चकम् ॥ ७१ ॥ दश द्वौ च हरीतक्याः

सूक्ष्मचूर्णीकृतं शुभम् ॥ मस्त्वारनालतक्रेण सर्पिषोष्णोदकेन वा ॥ ७२ ॥ पीतं जयत्यामवातं गुल्महृद्वस्तिजान्गदान् ॥ प्लीहानं ग्रन्थिशूलादीनानाहं गुदजानि च ॥ ७३ ॥ विबन्धं जाठरान्रोगान्कटीवस्तिसमुत्थितान् ॥ वातानुलोमनमिदं चूर्णं वैश्वानरं स्मृतम् ॥ ७४ ॥

सैंधानिमक २ भाग, अजवायन २ भाग, अजमोद ३ भाग, सोंठ ४ भाग और हरड १२ भाग इन सबका बारीक चूर्ण बनाकर दहीके पानीके साथ और आरनालनामक कॉजीके साथ, तक्रके साथ, घीके साथ अथवा गरम जलके साथ पीवे तो आमवात, गुल्म, हृदयकी पीडा, मूत्राशयकी पीडा, प्लीहा, ग्रन्थि, शूलादि, अफारा, बवासीर, मलबंध, उदरके रोग और कमरके तथा मूत्राशयके रोग सब नाश होतेहैं । यह वैश्वानर चूर्ण वायुको योग्यमार्गमें संचार करानेवाला है ॥ ७१–७४ ॥

अथासीतकचूर्णम् ।

असीतकं मागधिका गुडूची श्यामा वराही गजकर्णशुण्ठी ॥ समा धृताः कृत्स्नमिदन्तु चूर्णं पिबेत्तदुष्णोदकमण्डयूषैः ॥ ७५ ॥ तक्रै रसैर्मद्यसमस्तुभिर्वा यथेष्टचेष्टस्य च भोजनस्य ॥ अवाहुकं गृध्रसिखञ्जवातं विश्वाचितूनीप्रतितूनिरोगान् ॥ जंघामवातार्दितवातरक्तं कटीग्रहं गुल्मगुदामयश्च ॥ प्रकोष्ठकं पाण्डुगरोग्रशोफं हन्यादुरुस्तम्भमुदीर्णवेगम् ॥ ७६ ॥

विष्णुकान्ता, पीपल, गिलोय, निसोत, वाराहीकंद, एरंड और सोंठ इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर उस चूर्णको गरम जलके साथ, माडके साथ, यूषके साथ, तक्रके साथ, मांसके रसके साथ, मद्यके साथ अथवा दहीकेपानीके साथ पिये । इसपर आहार विहार इच्छानुसार करे । इस चूर्णसे—अपबाहुक, गृध्रसी, खज, विश्वाची, तूनी, प्रतितूनी, पिंडलीके रोग, आमवात, अर्दित, वातरक्त, कटिग्रह, गुल्म, बवासीर, क्रोष्टुशीर्ष, पाडुरोग, विष, उग्र सूजन और प्रबलवेगवाला ऊरुस्तम्भरोग नष्ट होताहै ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

अथ शुंठीधान्यकघृतम् ।

शुंठीनां षट्पलं पिष्टं धान्याकं द्विपलं तथा ॥ चतुर्गुणं जलं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ७७॥ वातश्लेष्मामयान्हन्यादग्निवृद्धिकरं परम् ॥ दुर्नामश्वासकासघ्नं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ ७८ ॥

सोंठ २४ तोले और आठ तोले धनिया इनका कल्क बनाकर वह कल्क डालकर चौंसठ ६४ तोलेभर घी चौगुने जलमें डालकर पकावे तो शुंठीधान्यक घृत सिद्ध होताहै । यह घी अग्निको अच्छे प्रकारसे दीपन करताहै, बलको बढाताहै, वर्णको उत्तम करताहै और वायुसम्बन्धी रोग, कफ सम्बन्धी रोग, बवासीर, श्वास और खासी इन सब रोगोको दूर करैहै ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

अथ घृतसिद्धिः ।

पुष्ट्यर्थं पयसा साध्यं दध्ना विण्मूत्रसंग्रहे ॥ दीपनार्थं मतिमता मस्तुना च प्रकीर्तितम् ॥ ७९ ॥ सर्पिर्नागरकल्केन सौवीरं तच्चतुर्गुणम् ॥ सिद्धमग्निकरं श्रेष्ठमामवातहरं परम् ॥ ८० ॥

जो पुष्टिके लिये बनावे तो इसको दूधमें पकाना चाहिये। मल तथा मूत्रके अवरोधके लिये बनावे तो इसको दहीसे पकावे । और अग्निको दीपन करनेके लिये बनावे तो बुद्धिमान् वैद्य इसको दहीके तोडके साथ पकावे, सोंठका कल्क डालकर चौगुनी सौवीरनामक कॉजीमें घृतको पकावे तो शुंठीघृत सिद्ध होताहै । यह घी अग्निको दीपनकरनेमें उत्तम है और आमवातको नष्टकरनेका सहज उपाय है ।

अथ शुंठीघृतम् ।

नागरक्वाथकल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ चतुर्गुणेन तेनाथ केवलेन जलेन वा ॥ ८१ ॥ वातश्लेष्मप्रशमनमग्निसन्दीपनं परम् ॥ नागरं घृतमित्युक्तं कटीशूलामनाशनम् ॥ ८२ ॥

चौसठ तोलेभर घीमे सोंठका कल्क डालकर उस घीको चौगुने सोठके क्वाथमे अथवा केवल पानीमे पकावे तो शुंठीघृत सिद्ध होताहै। यह घी वात तथा कफको शमन करताहै। अग्निको अच्छे प्रकारसे दीपन करताहै और कटिग्रह तथा आमको दूर करैहै ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

अथ कांजिकाद्यघृतम्।

हिंगु त्रिकटुकं चव्यं माणिमन्थं तथैव च ॥ कल्कान्कृत्वा तु पलिकान्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ८३ ॥ आरनालाढकं दत्त्वा तत्सर्पिर्जठरापहम् ॥ शूलं विबन्धमानाहमामवातकटीग्रहम् ॥ नाशयेद्ग्रहणीदोषं मन्दाग्नेर्दीपनं परम् ॥ ८४ ॥

हीग, सोंठ, मिरच, पीपल, चव्य और सैंधानिमक इन प्रत्येकको एक एक तोला लेकर कल्क बनाकर चौंसठ तोलेभर धीको दोसौ छप्पन २५६ तोले कॉजीमें पकावे तो काजिकाद्यघृत सिद्ध होताहै। यह घी मंदाग्निको अच्छे प्रकारसे दीपन करताहै तथा शूल, मलबध, उदरके रोग, अफारा, आमवात, कटिग्रह और ग्रहणीदोष इनको नाश करै है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

अथ शृंगवेराद्यघृतम्।

शृङ्गवेरयवक्षारपिप्पलीमूलपिप्पलीः ॥ पिष्ट्वा विपाचयेत्सर्पिरारनालं चतुर्गुणम् ॥ ८५ ॥ शूलं विबन्धमानाहमामवातं कटिग्रहम् ॥ नाशयेद्ग्रहणीदोषमग्निसन्दीपनं परम् ॥ ८६ ॥

अदरख, जवाखार, पीपलामूल और पीपल इनका कल्क बनाकर चौगुनी आरनालनामक कॉजीमें घृतको सिद्ध करे। इसको शृंगवेराद्यघृत कहते हैं। यह घी अग्निको अच्छे प्रकारसे दीपन करताहै और शूल, मलबंध अफारा, आमवात, कटिग्रह और ग्रहणीदोष इन सबका नाश करै है ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

पिबेद्विन्दुघृतं वापि धान्वन्तरमथापि वा ॥ महाशुण्ठीघृतं वापि आमवाते पुनःपुनः ॥ ८७ ॥ यत्किञ्चिल्लेखनं सर्पिर्दीपनं पाचनञ्च यत् ॥ तत्सर्वमामवातेषु योज्यं वा मस्तु षट्पलम् ॥ ८८ ॥

आमवातमें विदुघृत अथवा धान्वन्तरघृत अथवा महाशुंठीघृत वारंवार पीना चाहिये। जो जो घी कफके उखाडनेवाले, अग्निको दीपन करनेवाले और आमको पाचन करनेवाले हैं उन सबका आमवातपर उपयोग करना चाहिये। अथवा २४ तोले मस्तुका उपयोग करे ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

अथाजमोदादिचूर्णवटकौ।

अजमोदमरिचपिप्पलीविडंगसुरदारुचित्रकशताह्वाः ॥ सैन्धवं पिप्पलीमूलं भागा नवकस्य पलिकाः स्युः ॥ ८९ ॥ शुण्ठी दशपलिका स्यात्पलानि तावन्ति वृद्धदारस्य ॥ पथ्यापलानि पञ्च च सर्वाण्येकत्र कारयेच्चूर्णम् ॥ ९० ॥ समगुडवटकानदतश्चूर्णं वात्युष्णवारिणा पिबतः ॥ नश्यन्त्यामानिलजाः सर्वे रोगाः सुकष्टाश्च ॥ ९१ ॥ प्रतितूनी विश्वाची रोगाश्चान्येऽपि गृध्रसी चोग्रा ॥ कटिपृष्ठगुदस्फुटनश्चैवार्ति जंघयोस्तीव्राम् ॥ ९२ ॥ श्वयथुश्च सर्वसन्धिषु ये चान्येऽप्यामवातसम्भूताः॥ सर्वे प्रयान्ति नाशं तम इव सूर्यांशुविध्वस्तम् ॥ ९३ ॥ क्षुद्बोधमरोगित्वं स्थिरयौवनमथ वलीपलितनाशम् ॥ कुरुते च तथाभ्यासाद्गुणानथान्यांस्तथा सुबहून् ॥ ९४ ॥

अजमोद, मिर्च, पीपल, वायविडंग, देवदारु, चीता, सोया, सैंधानिमक, और पीपलामूल ये प्रत्येक पदार्थ चार २ तोले लेवे, सोंठ ४० तोले लेवे, विधारा ४० तोले लेवे, और हरड २० तोले लेवे, इन सब पदार्थोंको एकत्रित करके सबका चूर्णकर उसमे बराबरका गुड मिलाकर बडे बनावे उन बडोको सेवन करनेसे अथवा कुछेक गरम जलसे उस चूर्णको खानेसे जिस प्रकार सूर्यकी किरणोंसे अन्धकारका नाश होताहै उसीप्रकार इस औषधिसे आमवातसम्बन्धी समस्त दुःखदायक रोग नष्ट होतेहैं।

इसको सेवन करनेसे तूनी, प्रतितूनी, विश्वाची, अन्यान्य वातरोग, उग्रगृध्रसी, कमर, पीठ, गुदा और पिंडलियोंमें फोडने सरीखी पीडाका होना, सर्व सन्धियोंमें प्राप्तहुई सूजन और अन्यान्यभी आमसे तथा वातसे उत्पन्न हुए रोग नष्ट होते हैं । इस अजमोदादि औषधिका अभ्यास करनेसे सुख जागृत होताहै । आरोग्यता प्राप्त होती है । यौवन स्थिर होताहै । वली तथा पलित रोगोंका नाश होताहै । यह अत्यत गुणो करके युक्त है ॥ ८९–९४ ॥

अथ योगराजगुग्गुलुः ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं यवानीं कारवीं तथा ॥ विडंगमजमोदाश्च जीरके सुरदारु च ॥ ९५ ॥ चव्यैला सैन्धवं कुष्ठं रास्ना गोक्षुरधान्यकम् ॥ त्रिफला मुस्तकं व्योषन्त्वगुशीरं यवाग्रजम् ॥ ९६ ॥ तालीसपत्रं पत्रश्च सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रन्तु गुग्गुलुम् ॥ ९७॥ संमर्द्य सर्पिषा गाढं स्निग्धं भाण्डे निधापयेत् ॥ अतो मात्रां प्रयुंजीत यथेष्टाहारवानपि ॥ ९८ ॥ अग्निमान्द्यामवातादीन् क्रिमिदुष्टव्रणानपि ॥ प्लीहगुल्मोदरानाहदुर्नामानि विनाशयेत् ॥ अग्निश्च कुरुते दीप्तं तेजोवृद्धि बलं तथा ॥ वातरोगं जयत्येप सन्धिमज्जागतानपि ॥ १०० ॥

चीता, पीपलामूल, अजवायन, कलौंजी, वायविडग, अजमोद, जीरा, काला जीरा, देवदारु, चव्य, इलायची, सैंधानिमक, कूट, रासना, गोखरू, धनियाँ, त्रिफला, नागरमोथा, सोंठ, मिरच, पीपल, तज, खस, जवाखार, तालीसपत्र और तेजपत्र इनका वारीकचूर्ण वनावे और इस सव चूर्णकी बराबर गूगल लेकर घीमें खूब मर्दनकरके चूर्णमें मिलावे । इस गूगलको घीके चिकने वासनमें भरके रख देवे । अग्निका बलाबल विचारकर इसकी मात्राको सेवन करे । और इस पे यथेच्छ भोजन करे । इससे मंदाग्नि, उदरके रोग, अफारा, ववासीर, आमवातादिरोग, कृमि, दुष्टव्रण, प्लीहा, इन सब रोगोंका नाश होताहै । और अग्नि दीपन होताहै । तेजकी वृद्धि होती है, बल बढता है, यह गूगल सन्धियोमे तथा मज्जामे रहनेवाले वातरोगोको दूर करताहै ॥ ९५–१०० ॥

अथ प्रसारणीलेहः ।

प्रसारण्याढके क्वाथे प्रस्थो गुडरसो मतः॥ पक्वः पञ्चोषणरजोयुक्तः स्यादामवातहा ॥ १०१ ॥

दोसौ छप्पन्न २५६ तोलेभर प्रसारणीके क्वाथमे चौंसठ तोलेभर गुडका रस डालकर पकावे, फिर उसमे पीपल, पीपलामूल, सोंठ, चीता और चव्य, इनका चूर्ण डालकर मिलाकर सेवनकरे तो आमवातका नाश होताहै ॥ १०१॥

अथ खंडशुंठी ।

नागरस्य पलान्यष्टौ घृतस्य पलविंशतिम् ॥ क्षीरं द्विप्रस्थसंयुक्तं खंडस्यार्द्ध शतं पचेत् ॥ १०२ ॥ व्योषत्रिजातकद्रव्यात्प्रत्येकञ्च पलं पलम् ॥ निदध्याच्चूर्णतं तत्र खादेदग्निबलं प्रति ॥ १०३ ॥ आमवातप्रशमनं बलपुष्टिविवर्द्धनम् ॥ बल्यमायुष्यमोजस्यं वलीपलितनाशनम् ॥ आमवातप्रशमनं सौभाग्यकरमुत्तमम्॥ १०४॥

सोंठ ३२ तोले, घी ८० तोले, दूध १२८ तोले और खॉड २० तोले इनका पाक करके उसमें सोंठ, मिरच, पीपल, तज, तेजपात और इलायची प्रत्येक पदार्थ चार चार तोले लेकर चूर्ण बनाकर मिलादेवे तो खडशुंठी सिद्ध होती है । इस खडशुठीको अग्निके बलानुसार सेवन करे तो आमवात शात होती है । बल तथा पुष्टि बढती है । आयुष्यकी वृद्धि होती है । ओज बढताहै और उत्तम सौभाग्य प्राप्त होताहै ॥ १०२–१०४ ॥

रसोनपिंडः ।

पलं शतं रसोनस्य तिलस्य कुडवं तथा ॥ हिंगु त्रिकटुकं क्षारौ द्वौ पञ्च लवणानि च ॥ १०५ ॥ शतपुष्पा निशा कुष्ठं पिप्पलीमूलचित्रकौ ॥ अजमोदा यवानी च धान्याकञ्चापि बुद्धिमान्

॥ १०६ ॥ प्रत्येकञ्च पलञ्चैषां श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ घृतभाण्डे दृढे चैव स्थापयेद्दिनषोडशम् ॥ १०७ ॥ प्रक्षिप्य तैलमानाञ्च प्रस्थार्द्धं कांजिकस्य च ॥ खादेत्कर्षप्रमाणन्तु तोयं मद्यं पिबेदनु ॥ १०८ ॥ आमवाते रक्तवाते सर्वाङ्गैकाङ्गसंस्थिते ॥ अपस्मारेऽनले मन्दे कासे श्वासे गरेषु च ॥ सोन्मादे वातभग्ने च शूले जन्तुषु शस्यते ॥ १०९ ॥

लसुन ४०० तोले, तिल १६ तोले, हींग ४ तोले, सोंठ ४ तोले, मिर्च ४ तोले, पीपल ४ तोले, जवाखार ४ तोले, सज्जी ४ तोले, पंचलवण ४ तोले, सोया सौंफ ४ तोले, हलदी ४ तोले, कूठ ४ तोले, पीपलामूल ४ तोले, चीता ४ तोले, अजमोद ४ तोले, अजवायन ४ तोले और धनियाँ ४ तोले इन सबका बारीक चूर्ण करके उसमें ३२ तोले तेल और ३२ तोले काँजी डालकर घीके चिकने उत्तम मजबूत बासनमें भरके सोलह दिनतक रखदेवे । इसमेसे नित्य एक तोलाभर खाय और जल तथा सहतका अनुपान करे । इससे आमवात, वातरक्त, सर्वांगवात, एकांगवात, अपस्मार, अग्निकी मंदता, खाँसी, श्वास, विष, उन्माद, वातभग्न, शूल और कृमि इन सबका नाश होताहै ॥ १०५–१०९ ॥

अथ प्रसारणीतैलम् ।

प्रसारण्या रसे सिद्धं तैलमैरण्डजं पिबेत् ॥ सर्वदोषहरञ्चैव कफरोगहरं परम् ॥ ११० ॥

प्रसारणीके रससे पकाया हुआ अडीका तेल पिया जाय तो सर्वप्रकारके रोग नष्ट होतेहैं और विशेष करके कफके रोग नष्ट होतेहैं ॥ ११० ॥

द्विपञ्चमूलाद्यतैलम् ।

द्विपञ्चमूलीनिर्यासफलदध्यम्लकांजिकैः॥ तैलं कट्यरुपार्श्वार्तिकफवातामयान्ग्रहान् ॥ हन्ति वस्तिप्रदानेन करोत्यग्निबलं महत ॥ १११ ॥

दशमूल, गोंद, जायफल, दही और खट्टी काँजी इनसे पकाये हुए तेलकी पिचकारी लगावै तो कमरका दर्द, पसलियोका शूल, कफके रोग, वातरोग इन सबका नाश होता है तथा अग्निका बल बढताहै ॥ १११ ॥

अथ बृहत्सैन्धवाद्यतैलम् ॥

सैन्धवं श्रेयसी रास्ना शतपुष्पा यवानिका ॥ स्वर्जिका मरिचं कुष्ठं शुण्ठी सौवर्चलं विडम् ॥ ११२ ॥ वचाऽजमोदा सरणी पौष्करं मधुकं कणा ॥ एतान्यर्द्धपलांशानि सूक्ष्मपिष्टानि कारयेत् ॥ ॥ ११३ ॥ प्रस्थमेरंडतैलस्य प्रस्थन्तु शतपुष्पजम् ॥ कांजिकं द्विगुणं दत्त्वा मस्तुं च द्विगुणं तथा ॥ ११४ ॥ एतत्सम्भृत्य सम्भारं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ सिद्धमेतत्प्रयोक्तव्यमामवातहरं परम् ॥ ॥ ११५ ॥ पानाभ्यञ्जनबस्तौ च कुरुतेऽग्निबलं भृशम् ॥ वातार्तिवंक्षणे शस्तं कटीजानूरुसन्धिजे ॥ ११६ ॥ शूले हृत्पार्श्वजे तद्वद्वृद्धे श्लेष्मणि पीडिते ॥ बाह्यायामार्दितानाहैरंत्रवृद्धिनिपीडिते ॥ अन्यांश्चानिलजान्रोगान्नाशयत्याशु देहिनाम् ॥ ११७ ॥

सैंधानिमक, हरड, रास्ना, सोया, अजवायन, सज्जी, मिरच, कूठ, सोंठ, कालानिमक, विरियासञ्चरनिमक, वच, अजमोद, या परसन अडकी जड, पोखरमूल, मुलैठी और पीपल ये प्रत्येक पदार्थ दो दो तोले लेकर खूब पीसकर कल्क बनावे, फिर ६४ चौसठ तोले तेल, ६४ चौसठ तोले सोया, १२८ एकसौ अठाईस तोले कांजी और १२८ एकसौ अठाईस तोले दहीका तोड इन सबको एकत्र करके उसमें पहिला कल्क डालकर उस तेलको कोमल अग्निसे धीरे २ पकावे तो बृहत्सैन्धवाद्यतैल सिद्ध होताहै । पीनेमें अभ्यंग (मालिश) करनेमें और वस्तिकर्ममें इस तेलका उपयोग करे तो आमवात अच्छे प्रकारसे नष्ट होजाताहै । यह तेल अग्निके, बलको अत्यन्त बढाताहै । वातसे उत्पन्न हुई वंक्षणकी पीडा, कटिग्रह, घुटनोंकी पीडा, जघाकी वायु, सन्धियोकी पीडा, हृदयका शूल, पसलियोंका शूल, कफकी वृद्धि, बाह्यायाम, आर्दित, अफारा,

अंत्रवृद्धि तथा इसके सिवाय और भी मनुष्योंके वातसम्बन्धी रोग नष्ट होजातेहैं ॥ ११२–११७ ॥

अथ निरूहवस्तिः ।

स्वल्पप्रसारणीतैलं तैलं वा सैन्धवादिकम् ॥ दशमूलाद्यतैलेन वस्तिदानं प्रशस्यते ॥ ११८ ॥ तैलस्य द्विपलं दद्यात्कांजिकस्य चतुःपलम् ॥ दशमूलरसं मूत्रं पृथक्पञ्च पलानि तु ॥ ११९ ॥ वचा मदनवाट्या वा सताह्वाकुष्ठसैन्धवैः ॥ पिप्पल्यतिविषामुस्तारास्नाकट्फलपौष्करैः ॥ १२० ॥ अक्षांसिकैश्च तत्सर्वं मन्थयीत विचक्षणः ॥ प्रस्थार्हं प्रथमं देयो वस्तिर्निरभिशंकितः ॥ १२१ ॥ द्वितीये च तृतीये च वर्जयेत्प्रसृतद्वयम् ॥ सर्ववातविकारेषु मेहेषु वृषणामये ॥ १२२ ॥ कुक्षौ हृत्पृष्ठपार्श्वेषु जानुजंघाकटीग्रहे ॥ विबन्धानाहरोगेषु शर्कराश्मरिपीडिते ॥ १२३ ॥ भग्नविश्लिष्टगात्रेषु पिच्चितेषु क्षतेषु च ॥ एतन्निरूहवस्त्याज्ञो निरायासो महागुणः ॥ १२४ ॥

लघुप्रसारणीतैलकी, अथवा सैंधवाद्यतैलकी, अथवा दशमूलाद्यतैलकी पिचकारी लगानी आमवातमें हितकारी है । इस पिचकारीमें तेल आठ तोले काँजी सोलह तोले, दशमूलका रस बीस तोले और गोमूत्र बीस तोले भरे । फिर इन सब पदार्थोंको एकत्र मिलाकर वच, मैनफल, खिरेंटी, गोया, कूठ, सेंधानिमक, पीपल, अतीस, नागरमोथा रासना, कायफल और अटकी जड यह प्रत्येक एक एक तोला लेकर पहिला मिश्रित किया हुआ तेल आदि औषधियोंका मथन करै । फिर निःशंक होकर बत्तीस तोले इस द्रवकी पिचकारी लगावे । दूसरीवार तथा तीसरीवार चौबीस तोले इस द्रवकी पिचकारी लगावे, सर्व प्रकारके वातविकार, प्रमेह, वृषणकी पीडा, कुक्षिरोग, हृदयरोग, पीठकी पीडा, पसलियोंकी पीडा, जानुगतवायुकी पीडा, जंघागत वायुकी पीडा, कमरका दर्द, विबन्ध, अफारा, शर्करारोग, अश्मरीरोग, भग्नशरीर और पिचित हुए व्रणमें यह निरूहवस्ति अत्यंत गुणकारक है और थोडा परिश्रम करनेवाली है ॥ ११८–१२४ ॥

अथामवातेऽपथ्यम् ।

दधिमत्स्यगुडक्षीरं पोतकी माषपिष्टकम् ॥ वर्जयेदामवातार्तो मांसमानूपसम्भवम् ॥ १२५ ॥ अभिष्यन्दकरा ये च ये चान्ये गुरुपिच्छिलाः ॥ वर्जनीयाः प्रयत्नेन आमवातार्दितैर्नरैः ॥ १२६ ॥

आमवातसे पीडित मनुष्य दही, मछली, गुड, दूध, पोईका शाक, उडदोंके वडे और अनूपदेशके जीवोंका मांस इन सबका त्यागकर देवे, जो पदार्थ अभिष्यन्दी हैं, जो पदार्थ पिच्छिल और भारी हैं, उन सबको आमवातसे पीडित मनुष्य अवश्य त्याग देवे ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

अथ मध्यमरास्नादिक्काथः ।

रास्नैरण्डशतावरीसहचरीदुःस्पर्शवासामृतादेवाह्वातिविषाभयाघनशटीशुण्ठीकषायः कृतः ॥ पीतः सोरुवुतैल एष विहितः सामे सशूलेऽनिले कटचूरुत्रिकपृष्ठकोष्ठजठरक्रोडेषु चामार्तिजित् ॥ १२७ ॥

रासना, अडकी जड, सतावर, कटसरैया, जवासा अडूसा, गिलोय, देवदारु, अतीस, हरड, नागरमोथा, कचूर और सोंठ इनका क्काथ बनाकर अडीका तेल डालकर पीनेसे आमसहित तथा शूलसहित वायु, कटिग्रह ऊरुस्तम्भ, पीठकी पीडा, पीठका रहजाना, कोठेकी पीडा और उदरकी पीडा जो कि आमसे उत्पन्न होतीहै सब नष्ट होजातीहैं ॥ २२७ ॥

अथ महारास्नादिक्काथः ।

रास्ना वातारिमूलश्च वासकश्च दुरालभम् ॥ शटीदारुबलामुस्तनागरातिविषाभयाः ॥ १२८ ॥ श्वदंष्ट्रा व्याधिघातश्च मिसिधान्यपुनर्नवाः ॥ अश्वगन्धामृता कृष्णा वृद्धदारः शतावरी ॥१२९॥ वचा सहचरश्चैव चविका बृहतीद्वयम् ॥ समभागान्वितैरेतै रास्नाद्विगुणभागिकैः ॥ १३० ॥ कषायं पाययेत्सि-

द्वमष्टभागावशेषितम् ॥ शुण्ठीचूर्णसमायुक्तमाभाद्येन युतं तथा ॥ १३१॥ अलम्बुषादिसंयुक्तमजमोदादिसंयुतम्॥ यथादोषं यथाव्याधि प्रक्षेपं कारयेद्भिषक् ॥ १३२ ॥ सर्वेषु वातरोगेषु सन्धिमज्जगतेषु च ॥ आनाहेषु च सर्वेषु सर्वगात्रानुकम्पने ॥ १३३ ॥ कुब्जके वामने चैव पक्षाघाते तथार्दिते ॥ जानुजंघास्थिपीडासु गृध्रस्यां च हनुग्रहे ॥ १३४ ॥ प्रशस्तं वातरक्ते स्यादूरुस्तम्भे तथार्शसि ॥ विश्वाचीगुल्महृद्रोगविषूचीक्रोष्टुशीर्षके ॥ ॥ १३५ ॥ अंत्रवृद्धौ श्लीपदे च योनिशुक्रामये तथा ॥ पुंसां मेढ्रगते रोगे स्त्रीणां वन्ध्यामये तथा ॥ १३६ ॥ योषितां गर्भदं मुख्यं नास्ति किंचिदतः परम् ॥ सर्वेषां पाचनानान्तु श्रेष्ठमेतद्धि पाचनम्॥ महारास्नादिकं नाम प्रजापतिविनिर्मितम् ॥ १३७ ॥

रासना, अण्डकी जड, अडूसा, जवासा, कचूर, खिरैंटी, नागरमोथा, अतीस, हरड, गोखुरू, अमलतास, सौंफ, धनियाँ, पुनर्नवा, असगन्ध, गिलोय, पीपल, विधारा, सतावर, वच, कटसरैया, चव्य, कटेरी और कटाई इन सब औषधियोंमें रास्ना दो भाग लेवै और सब औषधि एक एक भाग लेकर इनका अष्टावशेष क्काथ बनावे इसमे वैद्य दोष तथा व्याधिके अनुसार शुण्ठीचूर्ण, अथवा आभाद्यचूर्ण अथवा अलम्बुषादिचूर्ण अथवा अजमोदादिचूर्ण डाले, इस क्काथको पीनेसे समस्त वातरोग, सन्धिवात, मज्जागतवात, सर्व प्रकारका आनाह, सर्व अंगोंका कापना, कुब्जकवात, वामनवात, पक्षाघात, अर्दितवात, जानुगत वायु, जंघागत वायु अस्थियोंमें प्राप्त हुई वायुकी पीडा, गृध्रसी वात, हनुग्रह, वातरक्त, ऊरुस्तम्भ, बवासीर, विश्वाची, गुल्म, हृदयरोग, विषूचिका, क्रोष्टुशीर्ष, अन्त्रवृद्धि, श्लीपदरोग, योनिरोग शुक्ररोग, लिंगगतरोग और स्त्रियोंके वन्ध्यारोग नष्ट होतेहैं। स्त्रियोंको गर्भ देनेवाला इससे उत्तम अन्य औषधि नहीं है। सर्वप्रकारके क्काथोंमें यह उत्तम पाचन है। यह महारास्नादि प्रजापतिने स्वयं कहाहै ॥ १२८-१३७ ॥

अथ रास्नादिदशमूलक्काथः।

रास्नाविश्वविडंगानि रुबूकं त्रिफला तथा ॥ दशमूलं पृथक् श्यामा क्काथो वातामयापहः ॥ १३८ ॥ अर्द्धावभेदके त्वाढ्ये चार्दिते वातखंजके ॥ नेत्ररोगे शिरःशूले ज्वरापस्मारयोस्तथा॥मनोभ्रंशे च विविधे कथितश्च शुभप्रदम् ॥ १३९ ॥

इति आमवातनिदानचिकित्साधिकारः।

रासना, सोंठ, वायविडंग, एरण्ड, त्रिफला, दशमूल और निसोत इनका क्काथ बनाकर पीनेसे वातसम्बन्धी रोग, आधाशीशी, ऊरुस्तम्भ, अर्दित, खञ्ज, नेत्रके समस्तरोग, मस्तकका शूल, ज्वर, अपस्मार और अनेक प्रकारके मनसम्बन्धी रोग नष्ट होतेहैं ॥ १३८ ॥ १३९॥

इति आमवाताधिकारः सपूर्णः।

अथ पित्तव्याध्यधिकारः।

तत्र पित्तव्याधिविप्रकृष्टसंनिकृष्टनिदानम्।

कट्वम्लोष्णविदाहितीक्ष्णलवणक्रोधोपवासातपस्त्रीसम्भोगतृषाक्षुधाभिहननव्यायाममद्यादिभिः ॥ मध्ये चापि हि भोजनस्य जरता भुक्तेन मध्यक्षणे मध्याह्न रजनी निदाघशरदोः पित्तं करोत्यामयान् ॥ १ ॥

मद्यादिभिः इत्यादिशब्देन दधिमस्त्यमाषतिलातसीकांजिकादीनि संगृह्यन्ते तीक्ष्ण राजिकादि। मध्ये चापिहि भोजनस्य यावत् कालेन भुंक्ते तस्य कालस्य मध्यमभागे। जरता भुक्तेन भुक्तस्य जरणकालमध्ये। मध्यन्दिने त्रिधा विभक्तस्य दिवसस्य मध्यांशे तथा रात्रेः मध्यमेंऽशे ॥

चरपरे वा तीखे, खट्टे, गरम, दाहकारक, तीक्ष्ण नमकीन वा खारी पदार्थोंके खानेसे, क्रोध करनेसे, उपवास

लवनादि करनेसे, सताप अथवा धूपको सेवन करनेसे, स्त्रीप्रसंग करनेसे, तृषाको रोकनेसे, भूँखको मारनेसे, कसरत दड अथवा परिश्रमके काम करनेसे, मदिरा पीनेसे, दही, मछली, उडद, तिल, अलसी तथा काजी आदि पदार्थोंको सेवन करनेसे, भोजन करते समयके मध्य कालमे, भोजन पचनेके मध्यकालमे, दिनके मध्यभागमें, रात्रिके मध्यभागमें, ग्रीष्मऋतु और शरद् ऋतुमें पित्त कुपित होकर रोगको उत्पन्न करताहै ॥ १ ॥

अथ पित्तरोगाः ।

अकालपलितं नेत्ररक्तत्वं तस्य पीतिमा ॥ तद्वन्मूत्रस्य पीतत्वं मलस्यापि च पीतता ॥ २ ॥ नखानामामरक्तत्वं तेषामपि च पीतता ॥ दंतानाश्चापि पीतत्वं पीतत्वं वपुषस्तथा ॥ ३ ॥ तमसो दर्शनश्चापि तथा च वदनाम्लता ॥ उच्छ्वासस्योष्णता चापि धूमोद्गारस्तथैव च ॥ ॥ ४ ॥ भ्रमः क्लमस्तथा क्रोधो दाहो भेदसमन्वितः ॥ तेजो द्वेषश्च शीतेच्छा ह्यतृप्तिररतिस्तथा ॥ ५ ॥ भक्षितस्य विदाहश्च जठरानलतीक्ष्णता ॥ रक्तप्रवृत्तिविड्भेदः पुरीषस्योष्णता तथा ॥ ६ ॥ मूत्रोष्णता मूत्रकृच्छ्रं शुक्राल्पत्वं तनूष्णता ॥ स्वेदस्य चापि दौर्गन्ध्यं देहप्रावरणं तथा ॥ ७ ॥ शरीरस्यावसादश्च पाकश्च वपुषस्तथा ॥ चत्वारिंशदमी पित्तव्याधयो मुनिभिर्मताः ॥ ८ ॥

एषां चिकित्सा तु स्वप्रकरणे बोद्धव्या ॥

इति पित्तव्याधिकार. ।

विनाही समय बालोंका पकना अर्थात् सफेद होजाना, नेत्र लाल हों, नेत्र पीले हों, मूत्र पीला हो, विष्टा पीला हो, नखोंमें गुलाबीपन, नखोंमें पीलापन, दांतोंमें पीलापन, शरीर पीला हो, अन्धकार दर्शन, मुखमे खट्टापन, श्वासका गरम होना, मुखमेंसे धुयेंकीतरह डकारका आना, भ्रम, ग्लानि, क्रोध, दाह, भेद, प्रकाशसे द्वेष, शीतकी इच्छा, अतृप्ति, अरति, भोजनका विदाहपाक होना. जठराग्निकी तीक्ष्णता, रुधिरका निकलना, दस्तोंका आना, विष्टाका गरम होना, मूत्रका गरम होना, मूत्रकृच्छ्र, वीर्यकी अल्पता, शरीरका गरम रहना, पसीनेमे दुर्गन्धका होना, देहका फटना, शरीरमे पीडा और शरीरका पकना यह चालीस रोग मुनियोंने पित्तव्याधि कही हैं । इन पित्तव्याधियोंकी चिकित्सा इन इन व्याधियोंके प्रकरणमे कही सो उस उस प्रकरणमें समझलेनी चाहिये ॥ १–८ ॥

इति पित्तव्याध्यधिकारः ।

अथ श्लेष्मव्याध्यधिकारः ।

तत्र श्लेष्मव्याधिसंनिकृष्टविप्रकृष्टनिदानम् ।

गुरुमधुररसादिस्निग्धमंदोदराग्निद्रवदधिदिननिद्राशीतनिश्चेष्टितानि ॥ प्रथमदिवसभागे भुक्तमात्रे वसन्ते भवति हि कफरोगो रात्रिभागेऽपि चाद्ये ॥ १ ॥

मधुररसादि इत्यादिशब्देन अम्ललवणौ गृह्येते । निश्चेष्टितं कायिकव्यापाराकरणम् । प्रथमादिवसभागे त्रिधा विभक्तस्य दिवसस्य आद्यभागे । भुक्तमात्रे भुक्तस्य पाककालस्य त्रिधा विभक्तस्य प्रथमकाले कफरोगो भवति ॥

भारी पदार्थोंके खानेसे, मधुररसको सेवन करनेसे, खट्टेरसको भक्षण करनेसे, स्निग्ध पदार्थोंको सेवन करनेसे, जठराग्निकी मन्दतासे, द्रव (जलदुग्धादि) पदार्थसे, दहीको सेवन करनेसे, दिनमे सोनेसे, शीतसे और कामकाज आदि शरीरके व्यापार नहीं करनेसे अर्थात् खाली बेकाम बैठे रहनेसे, दिनके प्रथम भागमें, भोजन पचनेके पहिले समयमें, तथा रात्रिके पहिले भागमें कफके रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ १ ॥

अथ कफरोगाः ।

प्रथमं मुखमाधुर्यं तथैव मुखलिप्तता ॥ २ ॥ मुखप्रसेकश्च तथा निद्राधिक्यं तथैव च ॥ कंठे घुर्घुरता चापि कटुकांक्षोष्णकामिता ॥ ३ ॥ बुद्धिमांद्यमचैतन्यमालस्यं ततिरेव च ।

अग्निमान्द्यं मलाधिक्यं मलशैत्यं तथैव च ॥४॥ मूत्राधिक्यं मूत्रशौक्ल्यं शुक्राधिक्यं तथैव च ॥ स्तैमित्यं गौरवं शैत्यमेत एव हि विंशतिः ॥ योगतो रूढितः प्रोक्ता मुनिभिः श्लैष्मिका गदाः ॥ ५ ॥

एषां चिकित्सा तु स्वप्रकरणे बोद्धव्या।

इति श्लेष्मव्याध्यधिकारः।

मुखमें मधुरता, मुखमे कफका लिहसा रहना, मुखसे थूकका निकलना, निद्राकी अधिकता, कठमें घरघराहट, तीखे पदार्थोंकी इच्छा, उष्णपदार्थोंकी इच्छा, बुद्धिकी मदता, अचैतन्यता, चपलताका घटजाना, आलस्य, तृप्ति, अग्निकी मंदता, विष्ठाकी अधिकता, विष्ठाकी शीतलता, मूत्रकी अधिकता, मूत्रका श्वेत होना, वीर्यकी अधिकता, शरीरको भीजेवस्त्रसे ढके हुएकी माफिक मालूम होना, शरीरका भारीपन और शरीरका शीतल रहना यह बीस व्याधि मुनियोंनें श्लेष्मव्याधि कहीं हैं यद्यपि इनके सिवाय और भी कफके रोग होतेह तथापि योगरूढि रीतिके अनुसार इनही व्याधियोंमें 'श्लेष्मव्याधि' यह शब्द प्रवर्त्त होताहै। इन व्याधियोंकी चिकित्सा अपने अपने प्रकरणोंमे कही है इस कारण उनहीं उन प्रकरणोंमे समझनी चाहिये ॥ २–५ ॥

इति श्लेष्मव्याध्यधिकारः सपूर्णः।

अथ वातरक्ताधिकारः।

तत्र प्रथमवातरक्तनिदानम्।

लवणाम्लकटुक्षारस्निग्धोष्णाजीर्णभोजनैः॥ क्लिन्नशुष्काम्बुजानूपमांसपिण्याकमूलकैः ॥ १ ॥ कुलत्थमाषनिष्पावशाकादिपललेक्षुभिः॥दध्यारनालसौवीरशुक्ततक्रसुरासवैः ॥ २ ॥ विरुद्धाध्यशनक्रोधदिवास्वप्नातिजागरैः॥ प्रायशः सुकुमाराणां मिथ्याहारविहारिणाम् ॥स्थूलानां सुखिनाञ्चापि प्रकुप्येद्वातशोणितम्॥ हस्त्यश्वोष्ट्रैर्गच्छतश्चाश्नतश्च विदाह्यन्नं सविदाहाशनस्य ॥ ३ ॥

कृत्स्नं रक्तं विदहत्याशु तच्च दुष्टं शीघ्रं पादयोश्चीयते तु॥ तत्संपृक्तं वायुना दूषितेन तत्प्राबल्यादुच्यते वातरक्तम् ॥४॥

क्षारो यवक्षारादि। अजीर्णभोजनैः अजीर्णे भोजनैः अतिमात्रभोजनैरित्यर्थः। क्लिन्नादीनि मांसविशेषणानि। शुष्कमातपे शोषितम्। अम्बुजं मत्स्यादि। मांसम् आनूपं गौडादि पूर्वदेशजम्। पिण्याकं तिलखलिः। मूलकं प्रसिद्धमेव। निष्पावः [वोडा] शाकं पत्रशाकम्। आदिशब्देन वृन्ताकादीनां फलशाकादीनां फलं गृह्यते। दोषरहितमपि मांसं वातशोणितं प्रकोपयेत्। शीतादिषु मांसं विशेषतो वातशोणितं प्रकोपयेत्। आरनालसौवीरशुक्तानि सन्धानभेदाः। तक्रं चतुर्थांशजलयुक्त वस्त्रपूतं दधि। सुरा सन्धानभेदः। विरुद्धं क्षीरमत्स्यादि। अध्यशनम् 'अजीर्णे भुज्यते यत्तु तदध्यशनमुच्यते'। अतिजागरो निशि। प्रायशः बाहुल्येन सुकुमाराणां अल्पतरकायव्यापाराणाम्। अथ च मिथ्याहारविहारिणाम् अल्पाहारविहारिणां स्थूलानां सुखिनां रक्तवृद्ध्या। हस्त्यश्वोष्ट्रैर्गच्छतः यतः वायुर्वर्द्धते रुधिरञ्च अधो गच्छति। हस्त्यादय उपलक्षणानि। पद्भ्यामपि चलतः। अश्नतश्च विदाह्यन्नम्। विदाहि निष्पावकुलत्थसर्षपशाकादि। सविदाहाशनस्य सविदाहि अशनं यस्य। भुक्ते विदग्धे तदुपरि भुञ्जानस्य इत्यर्थः। अध्यशनमुक्तमप्येतद्वचनं विदग्धं जीर्णम्। भोजनस्य विशेषतो हेतुत्वम्। पश्चात् वातशोणितं प्रकुप्यति इति अन्वयः। एतेषां कारणानां मध्ये केनचिद् वायुः केनचिद् रक्तं केनचिदुभयमपि प्रकुप्येत्। अथ

सम्प्राप्तिमाह कृत्स्नेत्यादि-पूर्वोक्तैर्हेतुभिः कृत्स्नं समस्तम् । अधोगतम् पादयोः चीयते संचितं भवति, तत् रुधिरम् दूषितेन स्वहेतुभिर्वायुना सम्पृक्तं मिलितम् वातरक्तम् उच्यते । ननु च एतस्य सम्प्राप्तिरुक्ता सुश्रुतेन-

शीघ्रं रक्तं दुष्टिमायाति तच्च वायोर्मार्गं संरुणद्ध्याशु वातम्॥क्रुद्धोऽत्यर्थं मार्गरोधात्स वायुरत्युद्रिक्तं दूषयेद्रक्तमाशु ॥ ५ ॥

अत्र प्रथमं रक्तस्य दुष्टिरतो रक्तवातमिति व्यपदेष्टुमुचितं भवति । तत्राह तत् प्राबल्यादिति । तस्य वातस्य दोषत्वेन प्राधान्यात् वातरक्तमिति व्यपदिश्यते ॥

नमकीन, खट्टे, चरपरे, तीखे, जवाखारादि खारी, चिकने और गरम ऐसे पदार्थोंका भोजन करनेसे, अत्यत भोजन करनेसे, सडा हुआ तथा धूपमे सूखा हुआ ऐसा मछलियोंका तथा गौट आदि पूर्व देशके जीवोंका मांस खानेसे, तिलोंकी खलको खानेसे, मूली, कुलथी, उडद, लोबिया, पत्रशाक, वैंगन आदि फल शाक और मांसको खानेसे, ईख, दही, आरनाल, सौवीर, शुक्त, तक्र, सुरा और आसवको सेवन करनेसे, दूधके साथ मछली आदि विरुद्ध आहार करनेसे अजीर्णमें भोजन करनेसे, क्रोध करनेसे दिनमें सोनेसे और अत्यन्त रात्रिमें जागनेसे प्राय॰ मिथ्याहार विहार करनेवाले सुकुमार (कोमल, कृश, दुर्बल) स्थूल शरीरवाले और बैठे रहकर सुख भोगनेवाले, हाथी घोडेपर चढकर जानेवाले, तथा बहुत मार्ग चलनेवाले, लोबिया, कुलथी, सरसो आदि शाकको भक्षण करनेवाले और भोजनके विदग्ध पाक होनेपर भोजन करनेवाले मनुष्योंके वायु तथा रुधिर प्रकुपित होताहै । इन सब कारणोंमें किसी कारणसे वायु कुपित होतीहै, किसी कारणसे रुधिर प्रकुपित होताहै और किसी कारणसे दोनों कुपित होते-है ॥ १-३ ॥

---

(१) निर्विकार मास भी वायु तथा रुधिरको कुपित करताहै और सडा हुआ तथा धूपमें सुखाया हुआ तो विशेष करके वात और रक्तको दूषित करताही है ॥

ऊपर कहे हुए कारणोसे सम्पूर्ण रुधिर तत्काल विगड जाताहै और वह विगडा हुआ रुधिर नीचे जाकर दोनो पांवोंमें एकत्रित होजाताहै यह रुधिर कारणोसे दूषित होकर वायुके साथ मिलजाताहै और इसमें वायुकी प्रबलता होतीहै इस कारण इसको वातरक्त कहतेहैं ।

शंका-"रुधिर तत्काल विगड जाताहै और वह शीघ्र गतिवाला रुधिर वायुके मार्गको तुरत रोक देताहै, मार्गके रोकनेसे अत्यंत वृद्धिको प्राप्त हुए रुधिरको तत्काल दूषित करताहै" यह सुश्रुतके वचनमे प्रथम रुधिरका विगडना कहा है, इस कारण इस रोगको 'रक्तवात' ऐसा कहना ठीक था किन्तु 'वातरक्त' ऐसा नाम क्यों कहा ?

समाधान-दोषोंके कारणोसे इस रोगमे वायुकी प्राधान्यता है इस कारण यह रोग वातरक्त कहाजाताहै ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ वातरक्तपूर्वरूपम् ।

स्वेदोऽत्यर्थं न वा कार्श्यं स्पर्शाज्ञत्वं क्षतेऽतिरुक् ॥ सन्धिशैथिल्यमालस्यं सदनं पिडिकोद्गमः ॥ ६ ॥ जानुजंघोरुकट्यंसहस्तपादांगसन्धिषु ॥ निस्तोदः स्फुरणं भेदो गुरुत्वं सुप्तिरेव च ॥ ७ ॥ कण्डूः सन्धिषु रुग्दाहो भूत्वा नश्यति चासकृत् ॥ वैवर्ण्यं मण्डलोत्पत्तिर्वातासृक्पूर्वलक्षणम् ॥ ८ ॥

घर्मागमनमत्यर्थं भवति न वा सर्वथा भवति एतच्च व्याधिमहिम्ना कुष्ठवद्बोद्धव्यम् । क्षतेऽतिरुक् यदि क्षतं स्यात् तदा तत्र अतिरुक् । सदनं सुप्तिः । अंगानां पिडिकाप्रादुर्भावः । जान्वादिषु निस्तोदः पीडाविशेषः । वैवर्ण्यं त्वक्कान्तिक्षयः ॥

जब वातरक्त होनेको होताहै तब पसीना अत्यत आताहै अथवा किञ्चिन्मात्र भी नहीं आता, शरीरमें कृशता, स्पर्शका ज्ञान नष्ट होजाताहै, व्रण होय तो उसमे अत्यंत पीडा होतीहै, सन्धियोंमें

शिथिलता, आलस्य, अंगोमें जडता, फूडिये, फुंसियोका निकलना, जानु, जंघा, ऊरु, कटि, हाथ, पॉव और सम्पूर्ण अंगोकी संधियोमें शस्त्र छेदने सरीखी पीडा होती है तथा अंग फडकतेहैं, मेद वढजाताहै भारीपन, ग्लानि, खुजली, संधियोमें व्यथा, वारंवार दाह होकर शांत होना, त्वचा (चमडी) की कांतिका नष्ट होजाना और अंगोमें चकत्ते पडजातेहैं।

पसीनेका अत्यंत होना अथवा किञ्चिन्मात्र भी नहीं होना, यह व्याधिके प्रभावसे होताहै ॥ ६-८ ॥

अथ वाताधिक्यवातरक्तलक्षणम्।

वातेऽधिकेऽधिकं तत्र शूलं स्फुरणतोदनम् ॥ शोथस्य रौक्ष्यं कृष्णत्वं श्यावता वृद्धिहानयः ॥ ९ ॥ धमन्यंगुलिसन्धीनां संकोचोऽङ्गग्रहोऽतिरुक्॥ शीतद्वेषानुपशयौ स्तम्भवेपथुसुप्तयः ॥ १० ॥

तत्र पादयोः शूलादिकम्। यत आह सुश्रुतः। "स्पर्शोद्विग्नौ तोदभेदप्रशोषौ स्वापोपेतौ वातरक्तेन पादौ" इति। तथा शोथस्य रौक्ष्यादिकं वृद्धिहानयश्च विज्ञेयाः। सुप्तिः स्पर्शाज्ञता ॥

वातरक्तमें वायुकी अधिकता होय तो शूल होताहै, अंगोंका फडकना, व्यथा, सूजनमें रूक्षता, तथा कालापन और कुछेक कालापन होताहै, सूजन बढतीहै, घटतीहै, नाडियोंमे तथा अंगुलियोंकी संधियोमें संकोच होताहै, अंग रहजातेहैं, अत्यंत व्यथा होतीहै, शीतपर द्वेष होताहै शरीर अकड जाय, कंप और स्पर्शका ज्ञान नष्ट होजाताहै।

शूल तथा फडकना आदि पॉवमेंही होताहै ऐसा जानना, कारण यह है कि "वातरक्तमें दोनों पॉव स्पर्शसे उद्वेगको प्राप्त होतेहैं और दोनों पाँवोमें व्यथा, भेदन, सूजन तथा जडता होतीहै" ऐसा सुश्रुतने कहा है ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ रक्ताधिक्यवातरक्तलक्षणम्।

रक्ते शोथोऽतिरुक्तोदस्ताम्रश्चिमिचिमायते ॥ स्निग्धरूक्षैः शमं नैति कण्डूक्लेदसमन्वितः ॥ ११ ॥

रक्तेऽधिक इत्यनुवर्तनीयम्। एवं वक्ष्यमाणपित्तादिषु इति एतच्च आरम्भकरक्ताद्रक्तान्तरं बोद्धव्यम्। रक्तमपि रक्तान्तरदूषकं भवति। यदुक्तं दुष्टरक्तलक्षणम्—पित्तवद्रक्तेन अतिकृष्णश्चेति। अतिरुक् तोदः अतिरक्तादौ यत्र सः शोथः चिमचिमायते। चिमचिमेति कण्डूभेदः स्पर्शप्रियेति यावत्। चुहचुहा इति लोके तद्युक्तः। क्लेदसमन्वितः क्लेद आर्द्रता तद्युक्तः ॥

वातरक्तमें रुधिरकी अधिकता होय तो अत्यंत व्यथायुक्त, तोडने सरीखी पीडा सहित, लालरंगकी, खुजली और क्लेदसंयुक्त सूजन होती है। इसमें चिमचिम ऐसा होताहै और स्निग्ध पदार्थ तथा रूक्ष पदार्थोंसे यह सूजन शांत नहीं होती है। इसमें जो रुधिरकी अधिकता होती है वह रुधिर वातरक्तको उत्पन्न करनेवाले रुधिरसे अलग समझना चाहिये क्योंकि रुधिर भी अन्य रुधिरको दूषित करताहै ॥ ११ ॥

अथ पित्ताधिक्यवातरक्तलक्षणम्।

पित्ते विदाहः संमोहः स्वेदो मूर्च्छा मदस्तृषा ॥ स्पर्शासहत्वं रुग्दाहः शोथः पाको भृशोष्णता ॥ १२ ॥

पित्ते अधिके विदाहः विशेषेण दाहः विदाहादयश्च पादयोरेव बोद्धव्याः। यत आह सुश्रुतः—"पित्तासृग्भ्यामुग्रदाहौ भवेतामत्यर्थोष्णौ रक्तशोथौ मृदू च।" पादाविति शेषः। संमोहः आतुरस्य। स्वेदः पादयोः। मूर्च्छा पादयोः समुच्छ्रायः शोथ इति यावत्। न तु मूर्च्छा मोहः संमोहस्य उक्तत्वात् ॥

वातरक्तमें जो पित्तकी अधिकता होय तो अत्यंत दाह होताहै, रोगी बहुत बेहोश होजाता है, पसीने आते हैं, मूर्च्छा होती है, मद होताहै, तृषा लगती है,

स्पर्शको नहीं सहारसक्ता, व्यथा, शरीरमें दाह, सूजन पकतीहै और बहुत गरमी होतीहै अत्यन्त दाहका होना और किसीके स्पर्शको नहीं सहारना इत्यादि धर्म पावमें होतेहैं क्योंकि "पित्तसे और रुधिरसे दोनो पांव अत्यन्त दाह युक्त, अत्यन्त गरम, लाल, सूजनयुक्त और मृदुता युक्त होतेहैं" ऐसा सुश्रुतने कहाहै ॥ १२ ॥

अथ कफाधिकद्विदोषत्रिदोषाधिकवातरक्तलक्षणम् ।

कफे स्तैमित्यगुरुता सुप्तिः स्निग्धत्वशीतता ॥ कण्डूर्मन्दा च रुग्द्वन्द्वसर्वलिंगश्च संकरे ॥ १३ ॥

कफे अधिके स्तैमित्यं शरीरस्यार्द्रचर्मावगुण्ठितत्वमिव । गुरुतादयः पादयोरेव । यत आह सुश्रुतः—"कण्डूमन्तौ श्वेतशीतौ सशोथौ पीनौ स्तब्धौ श्लेष्मदुष्टे तु रक्ते" । पादाविति शेषः । अधिकद्विदोषम् अधिकत्रिदोषं च तदाह—द्वन्द्वसर्वलिंगं च संकरे द्वित्रिदोषसंसर्गे ॥

वातरक्तमें जो कफकी अधिकता होय तो शरीर गीले चमडेसे ढकेहुएकी माफिक मालूम होताहै, भारीपन होताहै, जडता होतीहै, स्निग्धता होतीहै, शीतता होतीहै, कुछ कुछ खुजली, चलतीहै और व्यथा होतीहै । दो दोषोंकी अधिकता होय तो दोनों दोषोंके लक्षण होते हैं ।

भारीपन तथा जडता आदि पावमें होतीहै ऐसा जानना, कारण यह है कि, रुधिर जब कफसे दूषित होताहै तो पावोंमें खुजली, सुफेद और शीतल सूजन युक्त कठिन और स्तब्ध होजातेहैं, ऐसा सुश्रुतमें कहाहै ॥ १३ ॥

अथ वातरक्तप्रसर्पणप्रकारः ।

पादयोर्मूलमास्थाय कदाचिद्धस्तयोरपि॥ आखोर्विषमिव क्रुद्धं तद्देहमनुसर्पति॥१४॥

आखोर्मूषकस्य आखोर्विषमिवेत्यनेन मन्दविसर्पत्वं बोधितम् । देहमनुसर्पति अप्रतिक्रियाणाम् ॥

पावोंकी जडमें और किसी समय हाथोंकी जडमेंसे उत्पन्न होकर जिसप्रकार चूहेका विष धीरे धीरे शरीरमें फैलताहै उसी प्रकार कुपित हुआ वातरक्त चिकित्सा नहीं करनेवाले मनुष्योंके शरीरमें धीरे धीरे फैलताहै ॥ १४ ॥

अथ वातरक्तोपद्रवाः ।

अस्वप्नारोचकश्वासमांसकोथशिरोग्रहाः॥ मूर्च्छा चाऽमन्दरुक्तृष्णाज्वरमोहप्रवेपकाः॥ ॥ १५ ॥ हिक्कापांगुल्यवीसर्पपाकतोदभ्रमक्लमाः॥ अंगुलीवक्रतास्फोटदाहमर्मग्रहार्बुदाः ॥ १६ ॥

मांसकोथो मांसगलनम् । मूर्च्छा तदङ्गसमुच्छ्रायः । अमन्दरुक् पीडाबाहुल्यम् । प्रवेपकः कम्पः । प्रवेपनं प्रवेपः ततः स्वार्थे कः ॥

निद्राका नहीं आना, अरुचि, श्वास, मांस गल गलकर गिरना, शिरमें व्यथा, मूर्च्छा, कम दीखना, तृषा, ज्वर, मोह, कम्प, हिचकी, पगुता, विसर्प (चकत्तोंका होना), पकना, सुई चुभोने सरीखी पीडा, भ्रम, क्लम (ग्लानि), अंगुलियोंका टेढा हो जाना, फूटना, दाह, मर्मस्थानोंमें पीडा और अर्बुद (गांठ) यह सब वातरक्तके उपद्रव जानने ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथ वातरक्तासाध्ययाप्यसाध्यता ।

एतैरुपद्रवैर्वर्ज्यं मोहेनैकेन चापि यत् ॥ अकृत्स्नोपद्रवं याप्यं साध्यं स्यान्निरुपद्रवम् ॥ १७ ॥

मोहेनैकेनेति वचनम् अस्वप्नादिभिः समस्तैरसाध्यत्वं बोधयति ॥

एकदोषानुगं साध्यं नवं याप्यं द्विदोषजम् ॥ त्रिदोषजमसाध्यं स्याद्यस्य च स्युरुपद्रवाः ॥ १८ ॥

नवं संवत्सरात् अर्वाचीनं तत्साध्यम् ॥

आजानु स्फुटितं यच्च प्रभिन्नं प्रस्रुतश्च यत्॥

उपद्रवैश्च यज्जुष्टं प्राणमांसक्षयादिभिः ॥ वातरक्तमसाध्यं स्याद्याप्यं संवत्सरोत्थितम् ॥ १९ ॥

आजानु पद्भ्यां जानुपर्य्यन्तं यद्भवति तदसाध्यं स्यात् । स्फुटितं यच्च त्वङ्मात्रे शीतेन वै किंचिद्विदीर्णम् प्रभिन्नम्, अधिकविदीर्णम् । प्रस्रुतं वहत् ।

उपरोक्त सब उपद्रव वातरक्तमे होंयँ तो उसको असाध्य जानना अथवा केवल एक मोहही होय तो भी उसको असाध्य जानना और जो इन उपद्रवोंमें थोडे बहुत उपद्रव होयँ तो उस वातरक्तको याप्य समझना और जो कोई उपद्रव न होयँ तो उसको साध्य समझना।

जो वातरक्त एक दोपवाला और एक वर्षका होय तो उसको साध्य जानना । दो दोषवालेको याप्य जानना। और तीनों दोष युक्त अथवा जिसमें सब उपद्रव होयँ तो उसको असाध्य जानना ।

जो वातरक्त पावोंसे लेकर घुटनोतक फैले उसको असाध्य जानना। जिस प्रकार त्वचा फटजाती है उसीप्रकार जिस वातरक्तमे त्वचा फट जाय उसको असाध्य जानना। जो वातरक्त अत्यन्त फटगया हो अथवा बलक्षय या मांसक्षयआदि उपद्रवोंसे सयुक्त होय तो उसको असाध्य जानना।

जो वातरक्तको उत्पन्न हुए एक वर्ष हुआ हो उसको याप्य जानना ॥ १७–१९ ॥

अथ वातरक्तचिकित्सा ।

वातशोणितिनो रक्तं स्निग्धस्य बहुशो हरेत् ॥ अल्पाल्पं रक्षयेद्वायुं यथादोषं यथाबलम् ॥ २० ॥

रक्षयेत् वायुं यथावायुर्न वर्द्धते तथा रक्तं हरेदित्यर्थः ॥

उग्रांगदाहतोदेषु जलौकोभिर्विनिर्हरेत् ॥ ॥ २१ ॥ शृंगन्तु वै चिमिचिमा कण्डूरुग्वेपनान्वितम् ॥ प्रच्छन्नेन शिराभिर्वा देशाद्देशान्तर व्रजेत् ॥ २२ ॥

निर्हरेन्निष्काशयेच्चिमिचिमा चुहचुहा इति लोके । प्रच्छन्नं पच्छना इति लोके । व्रजेदिति रक्तविशेषणम् ॥

अंगे ग्लाने तु न स्राव्यं रक्षेद्वातोत्तरञ्च यत् ॥ २३ ॥ गम्भीरं श्वयथुं स्तम्भं कम्पवायुशिरामयान् ॥ ग्लानिमन्यांश्च वातोत्थान्कुर्याद्वायुरसृक्क्षयात् ॥ २४ ॥ खञ्जादीन्वातरोगांश्च मृत्युञ्चानवशेषितम् ॥ कुर्यात्तस्मात्प्रमाणेन स्निग्धाद्रक्तं विनिर्हरेत् ॥ २५ ॥

प्रथम वातरक्तवाले रोगीको स्नेहपान आदिसे स्निग्ध करके उसके दोष और बलानुसार थोडा२रुधिर वा खार निकलवावे । किन्तु रुधिरको निकलवानेमे वायुकी अवश्य रक्षा करनी चाहिये अर्थात् जिससे वायु न बढे उस रीतिसे रुधिर निकलवाना चाहिये । घोर दाह होता होय अथवा सुई चुभोने सरीखी पीडा होती होय तो जोंक लगाकर रुधिर निकलवाना चाहिये । चमचमाटी, खुजली, व्यथा, तथा कम्प होय तो सिंगी लगाकर रुधिर निकलवाना चाहिये । और जो वातरक्त शरीरके एक प्रदेशमेंसे दूसरे प्रदेशमे जाताहोय तो प्रच्छना लगाकर रुधिर निकलवाना चाहिये । शरीरमें ग्लानि होय तो रुधिर नहीं निकलाना चाहिये और जो काढे तो जिसमे वायुकी वृद्धि न होय ऐसी रीतिसे निकालना चाहिये, रुधिरके क्षय होनेसे वायुकी वृद्धि होय तो गम्भीर सूजन, अकडपन, कम्प, शिराओमे पीडा, ग्लानि और अन्यान्य भी वातसम्बन्धी रोग उत्पन्न होतेहैं, रुधिर जो योग्यरीत्यनुसार अवशेष न रहे तो खंजतादिवातरोगोंको उत्पन्न करताहै, तथा मरणको भी करताहै, इस कारण वातरक्तरोगीको स्निग्ध करके उसके शरीरमेंसे प्रमाणके समान रुधिर निकलवावे ॥२०–२५॥

विरेच्यः स्नेहयित्वादौ स्नेहयुक्तैर्विरेचनैः ॥ रूक्षैर्वा मृदुभिः शस्तमसकृद्बस्तिकर्म च ॥ नहि बस्तिसमं किञ्चिद्वातरक्तचिकित्सितम् ॥ २६ ॥ बाह्यमालेपनाभ्यंगपरिषेकोपनाहनैः ॥ विरेकास्थापनस्नेहपानैर्गम्भीरमाचरेत् ॥ २७ ॥ दिवास्वप्नं ससन्तापं व्यायामं मैथुनं तथा ॥ कटूष्णगुर्वभिष्यन्दि लवणाम्लौ च वर्जयेत् ॥२८॥

पुराणा यवगोधूमा नीवाराः शालिषष्टिकाः ॥ भोजनार्थे रसार्थे तु विष्किराः प्रतुदा हिताः ॥ २९ ॥

वातरक्त रोगीको प्रथम स्निग्ध करके स्नेहयुक्त विरेचन (दस्तावर) औषधि अथवा रूक्षता कोमलविरेचन औषधि देकर मलरहित करे। वातरक्त रोगीके वारवार पिचकारी लगाना भी उत्तम है पिचकारीके समान वातरक्तका अन्य उपाय नहीं है।

जो वातरक्त वाहर होय तो आलेपन, अभ्यंग, सेचन, तथा औषधियोंको बांधकर चिकित्सा करनी चाहिये। और जो वातरक्त गम्भीर होय तो रेचन, निरूहवस्ति, तथा स्नेहपानसे चिकित्सा करे।

वातरक्तरोगी, दिनमें सोना, धूपका सेवन, दंड कसरत आदि, मैथुन, कडवे रसवाले पदार्थ, भारी पदार्थ, अभिष्यन्दी पदार्थ, नमकीन पदार्थ और अम्लरसके पदार्थोंको त्यागदेवे।

वातरक्तरोगीके भोजनके लिये पुराने जौ, पुराने गेहूँ, नीवार (तीनी, पुनेग) लाल शालिधान तथा साठीधान हितकारी है। और विष्किर (मुरगा आदि) तथा प्रतुद (तोता चिडे आदि) जातिके पक्षियोंका मांसरस हितकारी है ॥ २८-२९ ॥

आढक्यश्चणका मुद्गा मसूराः सकुलत्थकाः ॥ यूपार्थे बहुसर्पिष्काः प्रशस्ता वात शोणिते ॥ ३० ॥ सुनिषण्णकवेत्राग्रकाकमाची शतावरी ॥ वास्तुकोपोदिकाशाकं शाकं सौवर्चलं तथा ॥ घृतमांसरसैर्भृष्टं शाकं सात्म्याय दापयेत् ॥ ३१ ॥

सुनिषण्णः चांगेरीसदृशः चतुष्पत्रशाकः स जले स्थले भवति, सूसुनि इति लोके। धवली चिल्मी इति क्वचित् ॥

वातरक्तरोगीको यूपके लिये अडहर, चने, मूँग, मसूर और कुलथी इनसे बहुत घीवाले यूप हितकारी है।

जिनको शाक सात्म्य है ऐसे वात रोगियोंको शिरि यारी, वेतका अग्रभाग, पुनर्नवा, शतावर, बथुआ, पोई और सांची इनका शाक घीमें तथा मांसरसमें भूनकर सेवन करना चाहिये ॥ ३० ॥ ३१ ॥

सर्पिस्तैलवसामज्जापानाभ्यञ्जनवस्तिभिः ॥ ॥ ३२ ॥ सुखोष्णैरुपनाहैश्च वातोत्तरमुपाचरेत् ॥ हितो गोधूमचूर्णश्च च्छागक्षीरघृताप्लुतः ॥ ३३ ॥

घी, तेल, चरवी और मज्जा इनका पान, अभ्यंग, वस्तिकर्म और सुखोष्ण उपनाह इनसे वातोत्तर वातरक्तकी चिकित्सा करनी चाहिये। बकरीके घीमें अथवा दूधमें गेहूँके आटेको उवालकर उसका लेप करनेसे वातरक्त शमन होताहै ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

लेपस्तद्वत्तिला भृष्टाः पिष्टाः पयसि निर्वृताः ॥ क्षीरपिष्टातसीलेपो वर्द्धमानफलेन वा ॥ ३४ ॥ उभे शताह्वे मधुकं बलां च प्रियालकं चापि कसेरुकं च ॥ घृतं विदारीश्च सितोपलाश्च कुर्यात्प्रदेहं पवने सरक्ते ॥ ३५ ॥

तिलोंको भूनकर पीसलेवे फिर दूधमें पकाकर उसका लेपकरे अथवा अलसीको दूधमें पीसकर उसका लेपकरे अथवा अंडीको पीसकर लेप करना हितकारी है।

सौंफ, कागनी, मुलैठी, खिरैटी, चिरौंजी, कसेरू, विदारीकंद और खाँड इनको घीमें पीसकर लेप करनेसे वातरक्त शमन होताहै ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

रास्ना गुडूची मधुकं बले द्वे सजीवकं सर्षभकं पयश्च ॥ घृतञ्च सिद्धं मधुशेषयुक्तं रक्तानिलार्ति प्रणुदेत्प्रदेहः ॥ ३६ ॥ वासा गुडूची चतुरंगुलानामेरण्डतैलेन पिबेत्कषायम् ॥ क्रमेण सर्वांगजमप्यशेषं जयेदसृग्वातभवं विकारम् ॥ ३७ ॥

रासना, गिलोय, दोप्रकारकी खिरैटी, जीवक, ऋषभक, दूध और घी इनको एकत्र पकावे और उसमें मोम मिलाकर उसका गाढा लेप करनेसे वातरक्तकी पीडा शमन होतीहै।

अडूसा, गिलोय और अमलतास इनका क्वाथ बनाकर उसमें अंडीका तेल डालकर पीनेसे सम्पूर्ण शरीरमें उत्पन्न हुआ वातरक्तका विकार अनुक्रमसे सर्व प्रकारसे नष्ट होजाताहै ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

दशमूलीशृतं क्षीरं सद्यः शूलनिवार-

णम् ॥ परिषेकोऽनिलप्राये तद्वत्कोष्णेन सर्पिषा ॥ ३८ ॥

वाताधिक्य वातरक्तमे दशमूलसे पकाये हुए दूधको पान करे और सुहाते सुहाते गरमघीका सेचन करे, इससे तत्काल शूल शमन होताहै ॥ ३८ ॥

पटोलकटुकाभीरुत्रिफलाऽमृतसाधितम् ॥ क्वाथं पीत्वा जयेज्जन्तुः सदाहं वातशोणितम् ॥ ३९ ॥

कडवे परवल, कुटकी, सतावर, त्रिफला और गिलोय इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे दाहयुक्त वातरक्त शमन होजाताहै ॥ ३९ ॥

त्रिवृद्विदारीक्षुरकक्वाथो वातास्रनाशनः ॥ अमृता कफवातघ्नी कफमेदोविशोषिणी ॥ ॥ ४० ॥ वातरक्तप्रशमनी कण्डूवीसर्पनाशिनी ॥ गुडूच्याः स्वरसः कल्कश्चूर्णं वा क्वाथ एव च ॥ प्रभूतकालमासेव्य मुच्यते वातशोणितात् ॥ ४१ ॥

निसोत, विदारीकद और गोखुरू, इनका क्वाथ बनाकर पान करनेसे वातरक्तका नाश होताहै।

गिलोय—कफ और वायुको हरनेवाली है। कफ तथा मेदको सुखानेवाली है। वातरक्तको शमन करनेवाली है। और खुजली तथा विसर्पको हरने वाली है इसलिये गिलोयके स्वरसको, कल्कको, चूर्णको अथवा क्वाथको बहुत दिनोंतक सेवन करे तो वातरक्तसे मुक्त होजाता है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अमृतानागरधान्यककर्षत्रितयेन पाचनं सिद्धम् ॥ जयति सरक्तं वातं सामं कुष्ठान्यशेषाणि ॥ ४२ ॥

गिलोय १ तोला, सोंठ १ तोला और धनियाँ १ तोला इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे वातरक्त, आमवात और सर्वप्रकारके कुष्ठ नष्ट होतेहैं ॥ ४२ ॥

वत्सादन्युद्भवः क्वाथः पीतो गुग्गुलुमिश्रितः ॥ समीरणसमायुक्तं शोणितं सम्प्रणाशयेत् ॥ ४३ ॥ तिस्रोऽथ वा पञ्च गुडेन पथ्या जग्ध्वा पिबेच्छिन्नरुहाकषायम् ॥ तद्वातरक्तं शमयत्युदीर्णमाजानुभिन्नञ्च्युतमप्यवश्यम् ॥ ४४ ॥

गिलोयका क्वाथ बनाकर उसमे गूगल डालकर पीनेसे वातरक्तका नाश होता है।

तीन अथवा पाच हरडोका चूर्ण बनाकर गुडमे मिलाकर खाय और उसके ऊपर गिलोयका क्वाथ पिये तो घुटनोंतक भेदा हुआ और स्रवताहुआ भयकर वातरक्त अवश्य नष्ट होजाता है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

गुग्गुल्वमृतवल्लीभिर्द्राक्षालुङ्गरसेन वा ॥ त्रिफलाया रसैर्युक्ता गुटिकाः कोलसम्मिताः ॥ ४५ ॥ भक्षयेन्मधुनालोड्य शृणु कुर्वन्ति यत्फलम् ॥ पादस्फोटं महाघोरं स्फुटत्सर्वाङ्गसञ्चयम् ॥ तत्सर्वं नाशयत्याशु साध्यश्चैव सशोणितम् ॥ ४६ ॥ माहिषं नवनीतं तु बलिना परिमिश्रितम् ॥ गोमूत्रमिश्रितं कृत्वा क्षीरेण लवणेन च ॥ ४७ ॥ तदेकत्र समालोड्य वह्निना भावयेच्छनैः ॥ गात्रमुद्वर्तयेत्तेन देहस्फुटनशान्तये ॥ ४८ ॥

गूगल और गिलोय इनको दाख और बिजोरा निबूके रसमे अथवा त्रिफलेके रसमें बेरकी बराबर गोली बनाकर उनको सहतमे मिलाकर चाटनेसे महाघोर और सम्पूर्ण अंगोंको तोडनेवाला पादस्फोटरोग और वातरक्त तत्काल नष्ट होजाताहै। यह औषधि गुग्गुलुवटिका कहीजातीहै। आमलेसारगंधकको भैंसके माखन, गोमूत्र, दूध और सैंधेनिमकके साथ मिलाकर धीरे धीरे अग्निसे गरम करके शरीरमे लगानेसे अगोंका फटना शात होताहै॥४५—४८॥

घृतेन वातं सगुडा विबन्धं पित्तं सिताढ्या मधुना कफञ्च ॥ वातासृगुग्रं रुबुतैलमिश्रा शुण्ठ्यामवातं शमयेद्गुडूची ॥ ४९ ॥

गिलोय घीके साथ सेवन की जाय तो वायुको नष्ट करतीहै। गुडके साथ सेवन की जाय तो मलबंधको दूर करैहै। खाडके साथ सेवन की जावे तो पित्तको शमन करतीहै। सहतके साथ सेवन की जाय तो कफ नष्ट होताहै। अंडीके तेलके साथ सेवन की जाय तो उग्रवातरक्त नष्ट होताहै। और सोठके क्वाथके साथ सेवन की जाय तो आमवातको शमन करतीहै ॥ ४९ ॥

सिंहास्यपञ्चमूलीछिन्नरुहैरण्डगोक्षुरक्वाथः ॥ एरण्डतैलरामठसैन्धवचूर्णान्वितः पीतः ॥ ५० ॥ प्रशमयति वातरक्तं तथामवातं कटीशूलम् ॥ मूत्रपुरीषविबन्धं ब्रध्नविकारं सुदुर्वारम् ॥ ५१ ॥

अडूसा, पंचमूल, गिलोय, एरंड और गोखरू इनका क्वाथ बनाकर उसमें अंडीका तेल, हींगका चूर्ण और सैंधेनिमकका चूर्ण डालकर पीनेसे वातरक्त, आमवात, कटिशूल, मूत्र तथा मलका अवरोध और दुःसाध्य ब्रध्न रोग भी नष्ट होजाताहै ॥ ५० ॥ ५१ ॥

गन्धर्वहस्तवृषगोक्षुरकामृतानां मूलं बलेक्षुरकयोश्च पचेत्तु धीमान् ॥ वातासृगाशु विनिहन्ति चिरप्ररूढमाजानुगं स्फुटितमूर्द्ध्वगतन्तु धीमान् ॥ ५२ ॥

एरंड, अडूसा, गोखरू, गिलोय, खिरैटी और गोखरू इनकी जडका क्वाथ बनाकर पीनेसे बहुत दिनोंका घुटनोंतक पहुंचा हुआ, फटा हुआ और ऊपरको चलता हुआ उग्र वातरक्त तत्काल नष्ट होजाताहै ॥ ५२ ॥

कफपित्तप्रशमनं कण्डूवीसर्पनाशनम् ॥ वातरक्तप्रशमनं हृद्यं गुडघृतं स्मृतम् ॥५३॥

गुडके साथ घीको मिलाकर सेवन करनेसे कफ और पित्तको शमन करताहै कण्डू और विसर्पका नाश करताहै । वातरक्तको शमन करताहै और हृदयको भी हितकारी है ॥ ५३ ॥

पिप्पलीवर्द्धमानं वा सेव्यं पथ्या गुडेन वा ॥ ५४ ॥

वर्द्धमानपिप्पलीको सेवन करनेसे अथवा हरडके चूर्णको गुडमें मिलाकर सेवन करनेसे वातरक्त शांत होताहै ॥ ५४ ॥

कोकिलाक्षामृताक्वाथे पिबेत्कृष्णां यथाबलम् ॥ पथ्यभोजी त्रिसप्ताहान्मुच्यते वातशोणितात् ॥ ५५ ॥

तालमखाना तथा गिलोय इनका क्वाथ बनाकर उसमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे इक्कीस २१ दिनमें वातरक्त नष्ट होजाताहै । परन्तु अग्निके बलानुसार इसपर पथ्य भोजन करना चाहिये ॥ ५५ ॥

मधुकाद्द्विगुणं तैलं तैलादाजं पयो भवेत् ॥ तद्यथाग्निबलं पेयं वातरक्तरुजापहम् ॥ ५६ ॥

मुलैठी, मुलैठीसे दुगुना तेल और तेलसे दुगुना बकरीका दूध इन सबको मिलाकर अग्निके बलानुसार पिये तो वातरक्त नष्ट होजाताहै ॥ ५६ ॥

अगस्तिपुष्पचूर्णेन माहिषं जनयेद्दधि ॥ तदुत्थनवनीतेन देहजं स्फुटनं जयेत् ॥ त्रिफलानिम्बमञ्जिष्ठा वचा कटुकरोहिणी ॥ ५७ ॥ वत्सादनी दारुनिशा कषायो नवकार्षिकः॥ वातरक्तं तथा कुष्ठं पामानं रक्तमण्डलम् ॥ ५८ ॥ कण्डूकपालिका कुष्ठं पानादेवापकर्षति ॥ पञ्चरक्तिकमाषेण कषायो नवकार्षिकः ॥५९॥ किञ्चैवं साधिते क्वाथे योग्या मात्रा प्रदीयते ॥ कर्षादौ तु पलं यावद्दद्यात्षोडशिकं जलम् ॥ ६० ॥ ततस्तु कुडवं यावदष्टादशगुणं जलम् ॥ चतुर्गुणमतश्चोर्द्ध्वं यावत्प्रस्थादिकं भवेत् ॥ ६१ ॥

अगस्त्यके फूलोंका चूर्ण बनाकर भैंसके दूधमें डालकर दही जमावे फिर उसमेंसे माखन निकालकर उपयोग करे तो शरीरका फटना दूर होजाताहै ।

हरड, बहेडा, आमला, नीम, मजीठ, वच, कुटकी, गिलोय और दारुहलदी यह प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेकर उसका क्वाथ बनाकर पिये तो वातरक्त, कोढ, पामा, रक्तमंडल, कण्डू और कपालकुष्ठ तत्काल नष्ट होताहै । सोलह सोलह मासेका एक तोला होताहै यहां पांच पांच रत्तीका एक एक मासा जानना । इसको नवकार्षिक क्वाथ कहतेहैं, इसमेंसे योग्य मात्रानुसार पिये । क्वाथ करनेके लिये एक तोलेसे लेकर चार तोलेतक औषधिमें सोलह गुना जल डालना चाहिये । इसके ऊपर सोलह तोले औषधिमें अठगुना जल डालना चाहिये और इसके उपरान्त चौसठ तोलेतक औषधिमें चौगुना पानी डालना चाहिये ॥ ५७–६१ ॥

विरेचनैर्घृतक्षीरपानैः सेकैः सबस्तिभिः ॥

लेपनं शाल्मलीकल्कमविक्षीरेण संयुतम् ॥ ६२ ॥ रक्तोत्तरं क्षीरघृतं मधुकोशीरवारिभिः ॥ सेचनं चात्र कर्तव्यमाविक्षीरैः क्षणंक्षणम् ॥ ६३ ॥ सहस्रशतधौतेन घृतेन रुधिरोत्तरे ॥ लेपनं सुष्ठु शीतेन घृतसर्जरसेन वा ॥६४ ॥ शीतैर्निर्वापणैश्चापि रक्तपित्तोत्तरं जयेत् ॥ ६५ ॥

विरेचन, घी, तथा दुग्धपान, सेचन और पिचकारी लगाना तथा सेमलके चूर्णको भेडके दूधमे लेप करना इनसे वातरक्त नष्ट होताहै।

वातरक्तमे रुधिरकी अधिकता होय तो दूध, घी, मुलैठीका पानी और खसका पानी इनसे अथवा भेडके दूधसे क्षण क्षणभरमें सेचन करे सौवार अथवा हजारवार घृतको धोकर उस घीसे अथवा घी और राल इनको मिलाकर लेप करनेसे रुधिरकी अधिकतावाला वातरक्त नष्ट होजाताहै रुधिरकी तथा पित्तकी अधिकता वातरक्तमें होय तो उसको भी शीतल पदार्थोंसे सेचन करना चाहिये ॥ ६२–६५ ॥

सरागे सरुजे दाहे रक्तं विस्राव्य लेपयेत्॥ तिलाः प्रियालं मधुकं बिसमूलं च वेतसम् ॥ सघृतं पयसा पिष्टं प्रलेपाद्दाहरोगनुत् ॥ ६६ ॥

लाल, दाह और व्यथायुक्त वातरक्त होय तो रुधिरको निकलवाकर पश्चात् तिल, चिरौंजी, मुलैठी, कमलकी जड और बेंत इनको दूधमें पीसकर घी डालकर गाढा लेप करे तो दाहकी पीडा शात होजातीहै ॥ ६६ ॥

पित्तोत्तरे तु काश्मर्यद्राक्षारग्वधचन्दनैः ॥ ६७ ॥ मधुकक्षीरकाकोलीयुक्तैः क्वाथं सुशीतलम् ॥ शर्करां मधुसंयुक्तां वातरक्ते पिबेन्नरः ॥ ६८ ॥

वातरक्तमें पित्तकी अधिकता होय तो कुम्भेरके फल, दाख, अमलतास, लाल चन्दन, मुलैठी और क्षीरकाकोली इनका क्वाथ बनाकर उसको अच्छे प्रकारसे शीतल करके उसमें खाड तथा सहत डालकर पिये॥६७॥६८॥

धारोष्णं मूत्रसंयुक्तं क्षीरं दोषानुलोमनम् ॥ पिबेद्वा सत्रिवृच्चूर्णं पित्तरक्तावृतानिले ॥ ६९ ॥

मूत्रके साथ धारोष्ण दूधमे निसोतका चूर्ण डालकर पीनेसे पित्ताधिक्य वातरक्त नष्ट होताहै, यह दोषोंको अनुलोमन करनेवाला है ॥ ६९ ॥

क्षीरेणैरण्डतैलं वा प्रयोगेण पिबेन्नरः ॥ बहुदोषे विरेकार्थं जीर्णे क्षीरौदनाशनः ॥ ७० ॥

अधिक दोषवाले मनुष्य रेचन (जुलाब) के लिये दूधके साथ अडीका तेल पिये और जीर्ण होनेपर दूध भातका भोजन करे ॥ ७० ॥

पटोलं त्रिफला भीरुर्गुडूची कटुरोहिणी ॥ क्वाथः पित्ताधिके शस्तः शर्करामधुसंयुतः ॥ ७१ ॥

कडवे परवल, सतावर, गिलोय और कुटकी इनका क्वाथ बनाकर उसमे खाड तथा सहत डालकर पीनेसे पित्ताधिक्य वातरक्त शमन होजाताहै ॥ ७१ ॥

तिक्तस्य सर्पिषः पानं बहुशश्च विरेचनम् ॥ वमनं मृदुनात्यर्थं स्नेहसेको विलंघनम् ॥ ७२ ॥

वातरक्तमें कफकी अधिकता होय तो कडवी औषधियोंके द्वारा पकायेहुए घृतको पिये, वारबार विरेचन लेवे, मृदुरीतिसे कुछेक वमन करे, स्नेहपान करे, लंघन करे और सुहाते २ गरम पदार्थोंसे सेचन करे ॥ ७२ ॥

कोष्णाः सेकाश्च शस्यन्ते वातरक्ते कफोत्तरे ॥ तैलमूत्रसुराशुक्तैः परिषेकाः सदा हिताः ॥ ७३ ॥

तेल, मूत्र, मद्य और शुक्तका पानी इनका सेचन करना हितकारी है। सफेद सरसोंका कल्क बनाकर उसका उत्तम रीतिसे गाढा लेप करनेसे भी पीडा शात होजातीहै॥७३॥

गौरसर्षपकल्केन प्रदेहो वा रुजापहः ॥

अथवा पीलीसरसोंका कल्क करके कियाहुआ लेप पीडाको नष्ट करताहै।

शिग्रुः सवरुणकल्को धान्याम्लेनानिलार्ति-जिल्लेपात् ॥ भवति न वेति विकल्पो न विधेयः सिद्धयोगेऽस्मिन् ॥ ७४ ॥

सैंजना और वरना इनको धान्याम्ल नामक काजीमे पीसकर लेप करनेसे वातरक्तकी पीडा शमन होजातीहै । यह सिद्ध योग है,इसमें कुछ सन्देह नहीं करना चाहिये ७४

कल्कः श्लेष्मोत्तरे लेपो वाजिगन्धानिलोद्भवः ॥ लेपः सर्षपनिंबार्कहिंस्राक्षारतिलैर्हितः ॥ ७५ ॥ श्रेष्ठः सक्तुघृतक्षारकपित्थत्वग्भिरेव च ॥

असगन्ध और तिल इनका कल्क बनाकर लेप करनेसे कफाधिक्य वातरक्त नष्ट होजाताहै ।

सरसों, नीम, आक, वालछड जवाखार और तिल इनका लेप करनेसे कफाधिक्य वातरक्त शमन होजाताहै ।

सत्तू, घी, जवाखार और कैथकी छाल इनको पीसकर लेप करनेसे कफाधिक्य वातरक्त शमन होताहै ॥ ७५ ॥

मसूरशिग्रोस्तद्बीजं हितं धान्याम्लसंयुतम् ॥ मुहूर्ताल्लिप्तमम्लैश्च सिंचेद्वातकफोत्तरे ॥ ७६ ॥ मुस्तामलकनिशाभिः कथितं तोयं समाक्षिकं पेयम् ॥ जयति सदागतिरक्तं सकफं वा सततयोगेन ॥ ७७ ॥

मसूरकी दाल और सैंजिनेके बीज इनको धान्याम्ल नामक कांजीके साथ पीसकर इसका दो घडीतक लेप करे फिर खट्टे पदार्थोंसे सेचन करे तो वायुकी तथा कफकी अधिकतावाला वातरक्त शमन होताहै ।

नागरमोथा, आमले और हलदी इनका क्वाथ बनाकर सहत डालकर नित्य पीनेका अभ्यास करे तो केवल वातरक्त अथवा कफाधिक्य वातरक्त शमन होताहै ७६ ॥ ७७

हरिद्रामृतकक्वाथं मधुना मधुरीकृतम् ॥ पिबेद्वा त्रिफलाक्वाथं वातरक्ते कफाधिके ॥ ७८ ॥

हलदीका तथा गिलोयका क्वाथ अथवा त्रिफलेका क्वाथ सहत डालकर पीनेसे कफाधिक्य वातरक्त नष्ट होताहै ॥ ७८ ॥

हरीतकीं वा तक्रेण पाययेदुदकेन वा ॥ गृहधूमो वचा कुष्ठं शताह्वा रजनीद्वयम् ॥ प्रलेपः शूलनुद्वातरक्ते वातकफोत्तरे ॥ ॥ ७९ ॥ अमृता कटुका यष्टी शुंठी-कल्कं समाक्षिकम् ॥ ८० ॥ गोमूत्रपीतं जयति सकफं वातशोणितम् ॥ धात्रीहरिद्रामुस्तानां कषायं वा समाक्षिकम् ॥ ८१ ॥

तक्रके साथ अथवा जलके साथ हरडका चूर्ण सेवन किया जाय तो कफाधिक्य वातरक्त नष्ट होताहै ।

घरका धुआँ, वच, कूठ, सोया, हलदी और दारुहलदी इनको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे वाताधिक्य और कफाधिक्य वातरक्तका शूल नष्ट होजाताहै ।

गिलोय, कुटकी, मुलेठी और सोंठ इनका कल्क बनाकर सहत मिलाकर गोमूत्रके साथ पीनेसे कफाधिक्य वातरक्त नष्ट होताहै । अथवा आमले, हलदी और नागरमोथेका क्वाथ पिये तो परम हितकारी है ॥७९-८१॥

अथ लांगलीगुटिका ।

लांगल्यास्त्वमृतातुल्यं कन्दमुद्धृत्य यत्नतः ॥ योजयेत्त्रिफलालौहरजस्त्रिकटुकैः समैः ॥ ८२ ॥ गुग्गुल्वमृतवल्लीभिर्द्राक्षालुंगरसेन वा ॥ त्रिफलाया रसैर्युक्ता गुटिकाः कोलसंमिताः ॥ ८३ ॥ भक्षयेन्मधुनालोड्य शृणु कुर्वंति यत्फलम् ॥ पादस्फुटितं दुर्भग्नं जानुप्राप्तं च यद्भवेत् ॥ ८४ ॥ यच्च देहोद्गतं रक्तं यच्चासाध्यं प्रकीर्तितम् ॥ घ्नंत्येता भक्ष्यमाणस्य प्रबलं वातशोणितम् ॥ ८५ ॥

लाङ्गली गुटिका—कलिहारीका कंद यत्नपूर्वक लाकर और उस कदकी बराबर गिलोय लेवे तथा हरड, बहेडा आमला, लोहचूर्ण, सोंठ, मिरच और पीपल यह समान भाग मिला देवे, फिर गूगल अथवा

दाखके या विजोरेके रससे अथवा त्रिफलेके रससे बेरकी समान गोली बनावे, इन गोलियोंको सहतमें मिलाकर खाय तो प्रबल वात रोग, पादस्फोट, दुर्भग्न घुटनोतक प्राप्त हुआ, असाध्य और शरीरमेंसे रुधिर निकलता हुआ ये सब दूर होते हैं ॥ ८२–८५ ॥

अथ बलाघृतम्।

बलामतिबलां मेदामात्मगुप्तां शतावरीम्॥ काकोलीं क्षीरकाकोलीं रास्नां मृद्वीं च पेषयेत् ॥ ८६ ॥ घृतं चतुर्गुणं क्षीरं तैः सिद्धं वातरक्तनुत् ॥ हृत्पांडुरोगवीसर्पकामलादाहनाशनम् ॥ ८७ ॥

खिरैंटी, कंघी, मेदा, कौंछ, सतावर, काकोली, क्षीरकाकोली, रासना और दाख इनका कल्क डालकर चौगुने दूधमें घृतको सिद्ध करे। यह घृत वातरक्त, हृदयकी पीडा, पाडुरोग, विसर्प, कामला और दाहको दूर करे है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

अथापरपिंडतैलम्।

बलास्थिरानागबलागुडूचीशतावरीकल्ककषायसिद्धम् ॥ तैलं विदध्यादनुवासनेषु तद्वातरक्तं शमयत्युदीर्णम् ॥ ८८ ॥

खिरैंटी, पृश्निपर्णी, गगेरन, गिलोय और सतावर इनके कल्क और क्राथसे तेलको सिद्ध करे। इस तेलकी पिचकारी लगावे तो प्रबल वातरक्त नष्ट होताहै ॥ ८८ ॥

अथ पारूषकघृतम्।

त्रायन्तिका चामलकी द्विकाकोली शतावरी ॥ कसेरुका कषायेण कल्कैरेभिः पचेद्घृतम् ॥ ८९॥ उभे परूषके द्राक्षाकाश्मर्यसुरद्रुमान् ॥ पृथग्विदार्याः स्वरसं तथा क्षीरं चतुर्गुणम्॥ ९० ॥ एतदायोजितं सर्पिः पारूषकमिति स्मृतम् ॥ वातरक्ते क्षते क्षीणे विसर्पे पैत्तिके ज्वरे ॥ ९१ ॥

त्रायमाणा, आमले, काकोली, क्षीरकाकोली, सतावर और कसेरू इनका क्राथ बनाकर उसमें दोनों प्रकारके फालसे, दाख, कुम्भेरके फल तथा देवदारु इनका कल्क डालकर विदारीकंदके स्वरससे घृतको चौगुने दूधमें पकावे तौ पारूषक घृत सिद्ध होताहै। इस घृतका उपयोग करनेसे वातरक्त, क्षत, क्षीणता, विसर्प तथा पित्तज्वर नष्ट होताहै ॥ ८९–९१ ॥

अथ शतावरीघृतम्।

शतावरीकल्कगर्भं रसे तस्याश्चतुर्गुणे ॥ क्षीरतुल्यं घृतं सिद्धं वातशोणितनाशनम् ॥ ९२ ॥

सतावरका कल्क डालकर सतावरके चौगुने स्वरसमें दूधकी बराबर घी डालकर पकावे तो शतावरीघृत सिद्ध होताहै। इस घृतका उपयोग करनेसे वातरक्त नष्ट होताहै ॥ ९२ ॥

अथर्षभकघृतम्।

श्रावणीक्षीरकाकोलीक्षीरिकाजीवकैः समैः॥ सिद्धं त्वर्षभकं सर्पिः सक्षीरं वातरक्तनुत् ॥ ९३ ॥

अत्र क्षीरं चतुर्गुणम् ॥

गोरखमुडी, क्षीरकाकोली, वशलोचन और जीवक यह सब औषधि समान भाग लेकर कल्क बनाकर उस कल्कको डालकर चौगुने दूधमें घृतको सिद्ध करे इसको 'ऋषभक' घृत कहते हैं। यह घी वातरक्तको नष्ट करे है ॥ ९३ ॥

अथ गुडूचीघृतम्।

गुडूचीक्वाथकल्काभ्यां सपयस्कं घृतं शृतम् ॥ हन्ति वातं तथा रक्तं कुष्ठं जयति दुस्तरम् ॥ ९४ ॥

गिलोयका क्राथ और कल्क डालकर चौगुने दूधमें घीको पकाकर सेवन करे तौ वह घी वातरक्त तथा दुस्तर कोढको भी दूर करे है ॥ ९४ ॥

अथ द्वितीयं गुडूचीघृतम्।

क्षीरं स्नेहसमं दद्याच्चतुर्भिश्च चतुर्गुणम् ॥ एकद्वित्रिद्रवैर्द्रव्यैः कुर्यात्स्नेहाच्चतुर्गुणम् ॥ ९५ ॥

अमृतायाः कषायेण कल्केन च महौषधात् ॥ मृद्वग्निना घृतं सिद्धं वातरक्तहरं परम् ॥ ९६ ॥ आमवाताढ्यवातादीन्कृमिकुष्ठव्रणानपि ॥ अर्शांसि गुल्मांश्च तथा नाशयेदाशु योजितम् ॥ ९७ ॥

गिलोयका क्काथ और सोंठका कल्क डालकर मृदु अग्निसे पकाया हुआ घी वातरक्तको विशेष करके दूर करताहै और आमवात तथा ऊरुस्तम्भादि वातरोग, कृमि, कोढ, व्रण, बवासीर तथा गुल्मको भी दूर करै है९५–९७॥

अथ तृतीयं गुडूचीघृतम्।

अमृतास्वरसविपक्वं सर्पिस्तत्कल्कसाधितं पीतम् ॥ अपहरति वातरक्तमुत्तानं चावगाढं च ॥ ९८ ॥

गिलोयके स्वरसमें गिलोयके कल्कसे घृतको पकाकर सेवन करे तो अत्यंत बढा हुआ वातरक्त नष्ट होताहै ९८॥

अथ चतुर्थं गुडूचीघृतम्।

अमृतायाः पलशतं जलद्रोणावशेषितम् ॥ घृतप्रस्थं विपक्तव्यं कल्कादष्टौ पलानि च ॥ ९९ ॥ चतुर्गुणेन पयसा वातासृक्कुष्ठनाशनम् ॥ कामलापांडुरोगघ्नं प्लीहकासज्वरापहम् ॥ १०० ॥

गिलोय चारसौ ४०० तोले भर लेकर १०२४ एक हजार चौबीस तोले जलमें क्काथ बनावे, फिर इस क्काथमें ३२ तोले गिलोयका कल्क डालकर चौगुने दूधमें घी पकावे। यह चतुर्थ गुडूची घी वातरक्त, कोढ, कामला, पाडुरोग, प्लीहा, खाँसी और ज्वरको दूर करे- ॥ ९९ ॥ १०० ॥

अथ पंचमगुडूचीघृतम्।

अमृता मधुकं द्राक्षा त्रिफला नागरं बला ॥ वासारग्वधवृश्चीवदेवदारुत्रिकंटकम् ॥ १०१ ॥ कटुका रोहिणी कृष्णा काश्मर्यस्य फलानि च ॥ रास्नाक्षुरकगन्धर्ववृद्धदारघनोत्पलैः ॥ १०२ ॥ कल्कैरेभिः समैः कृत्वा सर्पिःप्रस्थं विपाचयेत् ॥ धात्रीरसः समो देयो वारित्रिगुणसंयुतः ॥ १०३ ॥ सम्यक्सिद्धं च विज्ञाय भोज्ये पाने च शस्यते ॥ बहुदोषोत्थितं वातरक्तेन सह मूर्च्छितम् ॥ १०४ ॥ उत्तानं चापि गंभीरं त्रिकं जंघोरुजानुकम् ॥ क्रोष्टुशीर्षमहाशूले आमवाते सुदारुणे ॥ ॥ १०५ ॥ दाहरोगोपसृष्टस्य वेदनां चातिदुस्तराम् ॥ मूत्रकृच्छ्रमुदावर्तं प्रमेहं विषमज्वरान् ॥ १०६ ॥ एतान्सर्वान्निहंत्याशु वातपित्तकफोत्थितान् ॥ सर्वकालोपयोगेन वर्णायुर्बलवर्द्धनम् ॥ अश्विभ्यां निर्मितं श्रेष्ठं घृतमेतदनुत्तमम् ॥ १०७ ॥

गिलोय, मुलैठी, दाख, त्रिफला, सोंठ, खिरैटी, अडूसा, अमलतास, सफेद्पुनर्नवा, देवदारु, गोखुरू, कुटकी, मजीठ, पीपल, कुम्भेरके फल, रासना, तालमखाना, एरंड, विधारा, नागरमोथा और नीले कमल इन सबको समानभाग लेकर कल्क बनाकर उस कल्कको डालकर चौसठ तोले आमलोके रसमें और उससे तिगुने जलमे चौसठ तोले घीको पकावे, उत्तम रीतिसे सिद्ध करनेके पश्चात् भोजनमें तथा पीनेमे इस घृतका उपयोग करे तो अनेक दोषोंसे उत्पन्न हुआ वातरक्त, ऊपरको उभरा हुआ और गम्भीर वातरक्त, त्रिक, जंघा, ऊरु, जानु और क्रोष्टुशीर्ष इनका शूल, महाभयकर शूल, दारुण आमवात, दाहरोग, अत्यंतदुस्तर पीडा, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, विषमज्वर और वातपित्त तथा कफसे उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके रोग इन सबको दूर करे है। इसका सदैव उपयोग करनेसे वर्ण, आयु और बल अधिक बढताहै। यह अश्विनीकुमारोंका बनाया हुआ घृत परमोत्तम है ॥ १०१–१०७ ॥

अथ षष्ठं गुडूचीघृतम्।

गुडूचीस्वरसे सर्पिर्जीवनीयैश्च साधितम् ॥ कल्कैश्चतुर्गुणैः क्षीरैः सिद्धं वाऽजस्रवातनुत् ॥ १०८ ॥

गिलोयके स्वरससे और जीवनीय गणके कल्कसे चौगुने दूधमे पकाया हुआ घी वातरक्तको शमन करताहै १०८॥

अथ महागुडूचीघृतम् ।

अमृतायाः शतं प्राप्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ चतुर्भागावशिष्टन्तु घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १०९ ॥ क्षीरं चतुर्गुणं तत्र दापयेन्मतिमान् भिषक् ॥ कल्कश्चात्र प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ११० ॥ काकोली क्षीरकाकोली जीवकर्षभकौ च यत् ॥ शतावरी पयस्या च मधुकं नीलमुत्पलम् ॥ १११ ॥ अश्वकन्दस्य मूलानि स्थिरं वा कटुरोहिणीम् ॥ ऋद्धिं वृद्धिं तथा मेदे श्वदंष्ट्रां बृहतीद्वयम् ॥ ॥ ११२ ॥ गडूचीं पिप्पली रास्नां वासकं चापि संहरेत् ॥ तदेकस्थं समैर्भागैः पाचयेन्मृदुनाग्निना ॥ ११३ ॥ पानाभ्यञ्जननस्येषु परिषेके च दापयेत् ॥ वातरक्तं सशोषाढ्यं सदाहं क्रोष्टुशीर्षकम् ॥ ॥ ११४ ॥ खञ्जोरुस्तम्भवातश्च वातरक्तं सुदारुणम् ॥ बहूदितं वातकृच्छ्रं गृध्रसीं वातकण्टकम् ॥ नाशयेद्योजितं सर्पिर्धन्वन्तरिवचो यथा ॥ ११५ ॥

४०० चारसौ तोले गिलोयको १०२४ एक हजार चौबीस तोले जलमें पकावे जब पकते २ चौथा भाग जल शेष रहजाय तब उस क्राथमें ६४ चौसठ तोले घी तथा चौगुना दूध डालकर काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, सतावर, विदारीकद मूलैठी, नीले कमल, असगंधकी जड, पृश्निपर्णी, कुटकी, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, गोखुरू, कटेरी, बडी कटेरी, गिलोय, पीपल, रासना और अडूसा इन सब पदार्थोको समान भाग लेकर कल्क बनाकर उसमे डालकर मंद मद अग्निसे पकावे तो महागुडूची घृत सिद्ध होताहै । धन्वन्तरि भगवान् कहतेहैं कि इस घृतको पान करनेमें अभ्यगमें, नस्यमें तथा सेचनमे प्रयोग करे तो शोष और दाहयुक्त वातरक्त, क्रोष्टुशीर्ष, खंजवात, ऊरुस्तम्भ, दारुणवातरक्त, बहुत दिनोंका उत्पन्न हुआ वातकृच्छ्र गृध्रसी और वातकंटक इन सब रोगोका नाश होताहै ॥ १०९–११५ ॥

अथ शताह्वादितैलम् ।

क्वाथेन शतपुष्पायाः कुष्ठस्य मधुकस्य च ॥ एकैकं साधयेत्तैलं वातरक्तरुजापहम् ॥ ११६ ॥

सोये (सौंफ) के क्वाथसे एकवार, दूसरी बार कूठके क्वाथसे और तीसरी बार मुलैठीके क्वाथसे पकाया हुआ तैल वातरक्तकी पीडाको शमन करताहै ॥ ११६ ॥

अथ महापिंडतैलम् ।

सारिवारिष्टकूष्माण्डपोतकीभस्मजाम्बुना ॥ गुडूचीगव्यदुग्धाभ्यां कर्मरंगरसेन च ॥ ११७ ॥ विपचेत्तिलजं तैलं द्रव्यैतानि भिषग्वरः ॥ काकोल्यौ जीवकं मेदे शताह्वाक्षीरिणीयुतैः ॥ ११८ ॥ जिंगीसिक्थाऽमृतानन्तासार्जसैन्धवचन्दनैः ॥ हन्याद्वातास्रजं घोरं स्फुटितं गलितं तथा ॥ ११९ ॥ चर्मदलाख्यं पामादींस्त्वग्दोषश्च विपादिकाम् ॥ कुष्ठान्यर्शांसि वीसर्पं व्रणशोथं भगन्दरम् ॥ १२० ॥ न सोऽस्ति वातरक्तस्य विकारो योऽभिवर्द्धितः ॥ यन्न हन्यात्प्रसह्यैतत्पिण्डतैलं महत्स्मृतम् ॥ १२१ ॥

सारिवा, नीम, पेठा और पोई इनके भस्मके जलसे, गिलोयके क्वाथसे, गायके दूधसे, कमरखके रससे और काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, मेदा, महामेदा, सोया, खिरनी, मजीठ, मोम, गिलोय, सारिवा, राल, सैंधानिमक और लाल चदन इनके कल्कसे पकाया हुआ तैल 'महापिड तैल' कहाजाताहै इस तेलका उपयोग करनेसे घोर वातरक्त, फटता और गलता हुआ चर्मदल कोढ, पामादिरोग, त्वचाके समस्त विकार, विपादिका, कोढ, बवासीर, वीसर्प, व्रण, शोथ और भगन्दर इन सब रोगोको

दूर करेहै । ऐसा कोई भी वातरक्तका वढा हुआ विकार नहीं है कि जिसको यह महापिंडतैल दूर न करदेवे ॥ ११७–१२१ ॥

अथ पिंडतैलम् ।

सारिवासर्जमञ्जिष्ठायष्टीसिक्थैः पयोन्विन्वितैः ॥ तैलं पक्वं प्रयोक्तव्यं पिण्डाख्यं वातशोणिते ॥ १२२ ॥

सारिवा, राल, मजीठ, मुलैठी और मोम इनका, कल्क डालकर चौगुने दूधमें पकायाहुआ तेल 'पिंडतेल' कहाजाताहै । इस तेलका वातरक्तपर उपयोग करना चाहिये ॥ १२२ ॥

अथ द्वितीयं पिंडतैलम् ।

सारिवासर्जयष्ट्याह्वमधुसिक्थैः पयोन्वितैः ॥ सिद्धमैरण्डजं तैलं वातरक्तरुजापहम् ॥ अपूतमथितस्यास्य पिंण्डतैलस्य योगतः ॥ १२३ ॥

सारिवा, राल, मुलैठी औरमोम इनका कल्क डालकर चौगुने दूधमें पकाया हुआ अर्डीका तेल वातरक्तकी पीडाको शमन करताहै ॥ १२३ ॥

अथ महापद्मकतैलम् ।

पद्मकेशरयष्ट्याह्वफेनिलापद्मकोत्पलैः ॥ पृथक्पञ्चपलैर्दत्तं वलाकिंशुकचन्दनैः ॥ ॥ १२४ ॥ जले श्रृतं पचेत्तैलं प्रस्थं सौवीरसम्मितम् ॥ लोध्रकाकोलिकोशीरजीवकर्षभकेशरैः ॥ १२५ ॥ मदयन्तिलतापत्रपद्मकेशरपद्मकैः ॥ प्रपौण्डरीककालीयमेदोमांसीप्रियंगुभिः ॥ १२६ ॥ कुंकुमैर्द्विगुणैः कर्षैर्मञ्जिष्ठायाः पलेन च ॥ महापद्मकमिदं तैलं वातासृग्ज्वरनाशनम् ॥ १२७ ॥

कमलकी केसर, मुलैठी, रीठा, पद्माख, नीलेकमल, गिरैटी, टेसू और लालचंदन यह प्रत्येकपदार्थ बीस बीस तोले लेकर इनका क्वाथ बनाकर उसमें लोध, काकोली, खस, जीवक, ऋषभक, नागकेसर, मदनबान, तेजपात, कमलकी केसर, पद्माख, प्रपौंडरीक, दारुहलदी, मेदा, जटामांसी और प्रियंगु इन प्रत्येक पदार्थका एक एक तोला कल्क डाले, केसरका दो तोले कल्क डाले और मजीटका चार तोले कल्क डाले तथा सौवीर नामक कॉजी ६४ तोले और तेल ६४ तोले मिलाकर यत्नपूर्वक पकावे तो 'महापद्मक तेल' सिद्ध होताहै यह तेल—वातरक्त और ज्वरका नाश करताहै ॥ १२४–१२७ ॥

अथ खुड्डाकपद्मकतैलम् ।

पद्मकोशीरयष्ट्याह्वरजनीक्वाथसाधितम् ॥ स्यात्पिष्टैः सर्जमञ्जिष्ठावीराकाकोलिचन्दनैः ॥ खुड्डाकपद्मकमिदं तैलं वातास्रपित्तनुत् ॥ १२८ ॥

पद्माख, खस, मुलैठी और हलदी इनके क्वाथमें राल, मजीठ, बडीसतावर, काकोली और लालचंदन इनका कल्क डालकर पकाया हुआ तेल 'खुड्डाकपद्मक' कहाजाताहै । यह तेल वातरक्तको नष्ट करताहै ॥ १२८ ॥

अथ गुडूचीतैलम् ।

तुलां पचेज्जलद्रोणे गुडूच्याः पादशेषितम् ॥ क्षीरद्रोणन्तु ताभ्यां च पचेत्तैलाढकं शनैः ॥ कल्कैर्मधुकमञ्जिष्ठाजीवनीयगणोत्थितैः ॥ १२९ ॥ कुष्ठैलागुरुमृद्वीकामांसी व्याघ्रनखं नखी ॥ हरेणु श्रावणी व्योषं शताह्वा श्रृंगिसारिवे ॥ १३० ॥ त्वक्पत्रागुरुविक्रान्ता स्थिरा तामलकी तथा ॥ नतकेशरह्रीवेरं पद्मकोत्पलचन्दनम् ॥ सिद्धं कर्षसमैर्भागैः पानाभ्यंगानुवासनैः ॥ १३१ ॥ सेव्यं वातास्रजान्हन्ति स्रोतोधात्वन्तराश्रितान् ॥ धन्यं पुंसवनं स्त्रीणां गर्भदं वातपित्तनुत् ॥ ॥ १३२ ॥ स्वेदकण्डूरुजायामाशिरःकम्पामयार्दितान् ॥ हन्याद्व्रणकृतान्दोषान्गुडूचीतैलमुत्तमम् ॥ १३३ ॥

४०० चारसौ तोले गिलोयको एक हजार चौवीस तोले जलमें पकावे जब पकते पकते जल चौथाई भाग शेष रहजाय तब उस क्वाथमें १०२४ एक हजार चौवीस तोले दूध डाले और मुलैठी, मजीठ, जीवनीय-

गणकी औषधि, कूठ, इलायची, अगर, दाख, वालछड, थूहर, नख, निर्गुण्डीके बीज, गोरखमुण्डी, सोंठ, मिरच, पीपल, सोया, काकडासिंगी, सारिवा, तज, तेजपत्र अगर, अरणी, पृश्निपर्णी, भुईआमला, तगर, नागकेशर, सुगन्धवाला, पद्माख, नीलकमल और लाल चन्दन यह प्रत्येक औषधि एक एक तोलाभर ले कल्क डालकर २५६ दोसौ छप्पन तोले तेल धीरे धीरे पकावे तो यह 'गुडूचीतेल' सिद्ध होताहै । पीनेमें, अभ्यगमे तथा पिचकारी लगानेमे इस तेलका उपयोग करनेसे स्रोतोमे तथा धातुओंमें प्राप्त हुए वातरक्तके विकार शमन होतेहैं । यह उत्तम गुडूचीतेल धन्य है, पुत्रको देनेवाला है, स्त्रियोंके गर्भको उत्पन्न करैहै और वात तथा पित्तको शमन करनेवालाहै । यह तेल पसीना, खुजली, व्यथा, आयाम, शिरःकंप, अर्दित और व्रणके विकारोंको शमन करता है ॥ १२९-१३३ ॥

अथ मृताह्वयतैलम् ।

गुडूची मधुकं ह्रस्वपंचमूलं पुनर्नवा ॥ रास्नामेरण्डमूलञ्च जीवनीयानि लाभतः ॥ १३४ ॥ पलानां शतिकैर्भागैर्बलापंचशतं भवेत् ॥ कोलं बिल्वं यवान्माषान्कुलत्थांश्चाढकोन्मितान् ॥ १३५ ॥ काश्मर्याणाञ्च शुष्काणां द्रोणं द्रोणशतेऽम्भसः ॥ साधयेज्जर्जरं पूतं चतुर्द्रोणञ्च शेषयेत् ॥ ॥१३६॥ तैलद्रोणं पचेत्तेन दत्त्वा पंचगुणं पयः ॥ पिष्ट्वा त्रिपलिकञ्चैव चन्दनोशीरकेशरम् ॥ १३७ ॥ पत्रैलागुरुकुष्ठानि तगरं मधुयष्टिका ॥ मञ्जिष्ठार्द्धपलञ्चैव तत्सिद्धं सर्वयौगिकम् ॥ १३८ ॥ वातरक्ते क्षते क्षीणे भारार्त्ते क्षीणरेतसि ॥ वेपनोत्क्षिप्तभग्नानां सर्वैकांगजरोगिणाम् ॥ १३९ ॥ योनिदोषमपस्मारमुन्मादं विषमज्वरम् ॥ हन्यात्पुंसवनञ्चैव तैलाग्र्यममृताह्वयम् ॥ १४० ॥

गिलोय, मुलेठी, लघुपचमूल, पुनर्नवा, रासना, अण्डकी जड और जितनी मिलसके उतनी जीवनीयगणकी औषधी यह प्रत्येकद्रव्य ४००चार सौ तोले लेवे, खिरैटी दोहजार २०० तोले लेवे,बेर,बेलगिरी,जौ,उडद और कुलथी यह प्रत्येक पदार्थ २५६ दोसौ छप्पन तोले लेवे, सुखायेहुए कुम्भेरके फल एक द्रोण लेवे इन सब पदार्थोंको कूटकर सौ द्रोण जलमे क्काथ बनावे जब यह पककर नरम होजायँ तब वस्त्रमें क्काथको छान लेवे, फिर अग्निसे पकावे जब चार द्रोण जल शेष रहजाय तब उतार लेवे, फिर इस क्काथमे दूध पाच भाग, लाल चन्दन, खस और नागकेसर यह प्रत्येक पदार्थ बारह बारह तोले लेवे, सबको पीसकर कल्क बनाकर डालदेवे, तेजपत्र, इलायची अगर, कूठ, तगर, मुलैठी, तथा मँजीठ यह प्रत्येक औषधी दो दो तोले लेकर कल्क बनाकर, डालदेवे, फिर इस कल्क तथा उस दूध मिले क्काथसे एक द्रोण तेलको पकावे तो यह 'अमृताह्वय' नामक तेल सिद्ध होताहै, यह तेल वातरक्तपर, क्षतमें, क्षीणतामें, भारसे पीडित हुएपर, वीर्यकी क्षीणतामे, कम्पमें, क्षिप्त, भग्न, सर्वांग वातरोगपर और एकागवातरोगपर हितकारी है । इस तेलसे योनिके विकार, अपस्मार, उन्माद, तथा विषमज्वर भी दूर होताहै और स्त्रियोके गर्भको देनेवाला है ॥ १३४-१४० ॥

अथ मृणालाद्यमिश्रकतैलम् ।

मृणालोत्पलशालूकसारिवोदीच्यकेशरैः ॥ चन्दनद्वयभूनिम्बपद्मबीजकसेरुकैः ॥ ॥ १४१ ॥ पटोलकटुकानन्तागुन्द्रापर्पटवासकैः ॥ पिष्ट्वा तैलं घृतं पक्वं तृणमूलरसेन वा ॥ क्षीरद्विगुणसंयुक्तं वस्तिकर्मसु योजितम् ॥ नस्याभ्यञ्जनपानैर्वा हन्यात्पित्तगदानिदम् ॥ १४२ ॥

कमलकी नाल, नीलकमल, कमलकन्द, सारिवा, सुगन्धवाला, नागकेसर, लालचन्दन, सफेदचन्दन, चिरायता, कमलगट्टे, कसेरू, परवल, कुटकी, सारिवा (जहा एक पाठमे एक औषधि दो वार आवे तो दो भाग और तीन बार आवे तो तीन भाग लेनी चाहिये ऐसी सम्प्रदाय है) गोंद, पटेर, पित्तपापडा और अडूसा इनका कल्क डालकर तृणपञ्चमूलके क्काथमें दुगुने दूधके

साथ दूध और घृतको पकावे तो 'मृणालाद्यमिश्रक' सिद्ध होताहै । वस्तिकर्म, नस्य, अभ्यङ्ग और पीनेसे यह मिश्रक पित्तसम्बन्धी रोगोंको दूर करैहै ॥१४१॥१४२॥

अथ धत्तूराद्यतैलम् ।

कनकशिखरिमानक्षारसंसिद्धतोये कुसुमलवणयुक्तैः सर्जनिर्यासपूर्णैः ॥ विधिश्रृततिलतैलं कल्कयुक्तं निहन्ति प्रचुरतरमिदानीमिन्द्रलुप्तासवातम् ॥ १४३ ॥

धतूरा, चिरचिटा और मानकन्द इनकी भस्मका क्वाथ बनाकर उसमें लौंग, सैंधानिमक और रालका कल्क डालकर विधिपूर्वक तिलके तेलको इसी कल्कके साथ व्यवहार करे तो विशेष करके वातरक्त और इन्द्रलुप्त रोगको दूर करे है ॥ १४३ ॥

अथ नागबलातैलम् ।

शुद्धां पचेन्नागबलातुलान्तु जलार्मणे पादकषायसिद्धम् ॥ विस्राव्य तैलाढकमत्र देयमजापयस्तैलविमिश्रितन्तु ॥ १४४ ॥ नतं सयष्टिं मधुकश्च कल्कं दत्त्वा पृथक्पंचपलं विपक्वम् ॥ तद्वातरक्तं शमयत्युदीर्णं वस्तिप्रदानेन हि सप्तरात्रात् ॥ दशाहयोगेन करोत्यरोगं पीतश्च तैलोत्तममश्विनोक्तम् ॥ १४५ ॥

४०० चार सौ तोले उत्तम गगेरन (गुलशकरी) लेकर १०२४, एक हजार चौबीस तोले जलमें क्वाथ बनावे जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उस क्वाथको वस्त्रमें छानलेवे फिर उस क्वाथमें तगर और मुलैठी इनका बीस २० तोले कल्क डालकर तथा चौगुना बकरीका दूध डालकर उससे २५६ दोसौ छप्पन तोले तेल पकावे तो 'नागबला तेल' सिद्ध होताहै । अश्विनीकुमारोंका कहाहुआ यह तेल है। इस तेलकी पिचकारी लगानेसे वृद्धिको प्राप्तहुआ भी वातरक्त सात दिनमें नष्ट होजाताहै और जो यह तेल पियाजाय तो दश दिनमें वातरक्त नष्ट होजाताहै ॥ १४४ ॥ १४५ ॥

अथ जीवकाद्यमिश्रकतैलघृते ।

जीवकर्षभकौ मेदे ऋष्यप्रोक्ता शतावरी॥ मधुकं मधुपर्णी च काकोलीद्वयमेव च॥ ॥ १४६ ॥ मुद्गमाषाख्यपर्णी च दशमूलं पुनर्नवा ॥ बलामृता विदारी च साश्वगन्धाश्मभेदकौ ॥ १४७ ॥ कुर्यात्कल्कं कषायश्च ताभ्यां तैलं घृतं पचेत् ॥ लाभतश्च वसा मज्जा मांसं प्रतुदविष्किरात् ॥ ॥ १४८ ॥ चतुर्गुणेन पयसा तत्सिद्धं वातशोणितम् ॥ सर्वदेहाश्रितान्हन्ति व्याधीन्घोरांश्च वातजान् ॥ १४९ ॥

जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, सतावर, मुलैठी, गिलोय, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, दशमूलकी दशौंऔषधि, पुनर्नवा, खिरैंटी, गिलोय, विदारीकन्द, असगन्ध और पाखानभेद इनका कल्क और इनहींके क्वाथमें चौगुने दूधके साथ जितना मिलसके उतना प्रतुद और विष्किर पक्षियोंके मास, चर्वी तथा मज्जा डालकर घी और तेलको पकावे तो यह जीवकाद्यमिश्रक सिद्ध होताहै । यह मिश्रक वातरक्त और सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त भयकर वातव्याधियोंको भी दूर करै है ॥ १४६–१४९ ॥

अथ शतपाकबलातैलम् ।

बलाकषायकल्काभ्यां तैलं क्षीरचतुर्गुणम् ॥ शतपाकं भवेदेतद्वातासृग्वातपित्तनुत् ॥१५०॥ धन्यं पुंसवनश्चैव नराणां शुक्रवर्द्धनम् ॥ रेतोयोनिविकारघ्नमेतद्वातविकारनुत् ॥ १५१ ॥

खिरैंटीके क्वाथमें खिरैंटीका कल्क डालकर तथा चौगुना दूध डालकर तेलको पकावे जब पकजाय तब फिर इनहीं द्रव्योंके साथ इस तेलको पकावै, इस प्रकार सौवार इस तेलको पकावै तो यह 'शतपाकबलातैल' सिद्ध होताहै । यह तेल भाग्यको बढानेवाला, पुत्रको देनेवाला, मनुष्योंके वीर्यको बढानेवाला, शुक्र और योनिके रोगोंको हरनेवाला, वात तथा पित्तके विकारोंको नष्ट करनेवालाहै और वातसबंधी सपूर्ण रोगोंको दूर करैहै॥१५०॥१५१॥

अथ मधुकाद्यतैलम् ।

मधुयष्ट्याः पलशतं कषाये पादशेषिते॥ तैलाढकं समक्षीरं पचेत्कल्कैः पलोन्मितैः ॥ १५२ ॥ शतपुष्पावरीमूर्वापयस्यागुरुचन्दनैः ॥ स्थिराहंसपदीमांसीद्धिमेदामधुपर्णिभिः ॥ १५३ ॥ काकोलीक्षीरकाकोलीतामलक्यृद्धिपद्मकैः ॥ जीवकर्षभजीवन्तीत्वक्पत्रनखवालकैः॥ १५४॥ प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठासारिवेन्दुवितुन्नकैः ॥ वातासृक्पित्तदाहार्तिज्वरघ्नं बलवर्णकृत् ॥ १५५ ॥

४०० चार सौ तोले मुलैठीका क्काथ बनावे जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उसमें सोया, सतावर, मूर्वा, विदारीकंद, अगर, लालचंदन, पृश्निपर्णी, हंसपदी (एक प्रकारकी लज्जावन्ती) बालछड, मेदा, महामेदा, गिलोय, काकोली, क्षीरकाकोली, भुँईआमले, ऋद्धि, पद्माख, जीवक, ऋषभक, जीवन्ती, दालचीनी, तेजपात, सुगधनख, सुगंधबाला, कमल, मजीठ, सारिवा, कपूर और केवटीमोथा इनका चार चार तोले कल्क २५६ तोले दूध और २५६ तोले तेल डालकर उत्तम विधिसे तेलको पकावे तो यह 'मधुकाद्यतैल' सिद्ध होताहै । इस तेलको सेवन करनेसे बल और वर्णकी वृद्धि होतीहै तथा वातरक्त, पित्त, दाहकी पीडा और ज्वर नष्ट होताहै ॥ १५२–१५५ ॥

अथ शतपाकमधुकतैलम् ।

मधुयष्ट्याः पलं पिष्ट्वा तैलप्रस्थं चतुर्गुणे॥ क्षीरे साध्यं शतं वारांस्तदेव मधुकान्वितम् ॥१५६ ॥ सिद्धं देयं त्रिदोषे स्याद्वातास्रश्वासकासनुत् ॥ धन्यं पुंसवनञ्चैव कामलादाहनाशनम् ॥ १५७ ॥

४०० चारसौ तोले मुलैठीका कल्क डालकर चौगुने दूधमें चौसठ तोले तेलको पकावे, जब पकजाय तब फिर इसी तेलको दूसरी बार इनही द्रव्योंसे पकावे, इस प्रकार सौवार इसी तेलको इस कल्क और दूधसे पकावे तो यह 'शतपाक मधुकतैल' तैय्यार होताहै । यह तेल भाग्यको बढानेवाला, पुत्रको देनेवाला, तथा वातरक्त, श्वास, खाँसी, कामला और दाहको दूर करेहै, तीनों दोषोके प्रकोपमे भी इस तेलको देना चाहिये ॥ १५६–१५७ ॥

अथ सहस्रपाकबलातैलम् ।

बलाकषायकल्काभ्यां तैलं क्षीरसम पचेत्॥ सहस्रशतपाकं वा वातासृग्वातरक्तनुत् ॥ ॥ १५८ ॥ रसायनमिदं श्रेष्ठमिन्द्रियाणां प्रसादनम् । जीवनं बृंहणं स्वर्यं शुक्रासृग्दोषनाशनम् ॥ १५९ ॥

खिरैंटीके क्काथसे और कल्कसे दूध और तेल डालकर विधिपूर्वक पकावे, इस प्रकार हजारवार इस तेलको पकावे तो यह 'सहस्रपाकबलातैल' सिद्ध होताहै यह तेल वात रुधिरके विकार, वातरक्त और वीर्यके दोषोंको दूर करेहै. उत्तम रसायन, इन्द्रियोंको स्वच्छ करनेवाला, जीवनको बढानेवाला, धातुओंको पुष्ट करनेवाला और स्वरको उत्तम करनेवाला है ॥ १५८ ॥ १५९ ॥

अथ पुनर्नवागुग्गुलुः ।

पुनर्नवामूलशतं विशुद्धं रुबूकमूलञ्च तथा प्रयोज्य ॥ दत्त्वा पलं षोडशकञ्च शुण्ठ्याः संकुट्य सम्यग्विपचेद्धटेऽपाम् ॥ १६० ॥ पलानि चाष्टावथ कौशिकस्य तेनाष्टशेषेण पुनः पचेत्तु ॥ एरण्डतैलं कुडवञ्च दद्यादत्त्वा त्रिवृच्चूर्णपलानि पंच ॥१६१॥ निकुम्भचूर्णस्य पलं गुडूच्याः पलद्वयं चार्द्धपलं पलं प्राति ॥ फलत्रयत्र्यूषणाचित्रकाणि सिन्धूत्थभल्लातविडङ्गकानि ॥ ॥ १६२ ॥ कर्षं तथा माक्षिकधातुचूर्णं पुनर्नवायाः पलमेव चूर्णम् ॥ चूर्णानि दत्त्वा ह्यवतार्य शीते खादेन्नरः कर्षसमप्रमाणम् ॥ १६३ ॥ वातासृजं वृद्धिगदं च सप्त जयत्यवश्यं त्वथ गृध्रसीं च ॥ जंघोरुपृष्ठत्रिकवस्तिजं च तथामवातं प्रवलं च हन्ति ॥ १६४ ॥

पुनर्नवेकी जड ४०० तोले अडकी जड ४०० तोले और सोंठ ६४ तोले इनको उत्तम रीतिसे कूट कर १०२४ तोले जलमें पकावे जब पकते पकते

आठवा भाग जल शेष रहजाय तब उस क्वाथको छान-लेवे, फिर इस क्वाथमें ३२ तोले गूगल डालकर पकावे, पकते समय इसमें १६ तोले अंडीका तेल, निसोतका चूर्ण २० तोले, जमालगोटेका चूर्ण ४ तोले, गिलोयका चूर्ण १० तोले, हरडका चूर्ण ४ तोले, बहेडेका चूर्ण ४ तोले, आमलोंका चूर्ण ४ तोले, सोंठका चूर्ण ४ तोले, मिरचका चूर्ण ४ तोले, पीपलका चूर्ण ४ तोले, चीतेका चूर्ण ४ तोले, सैंधेनिमकका चूर्ण ४ तोले, भिलावेका चूर्ण ४ तोले, वायविडंगका चूर्ण ४ तोले, सोनामाखीका चूर्ण १ तोला और पुनर्नवेका चूर्ण १ तोला डालकर पकावे, जब अच्छे प्रकारसे पकजाय तब अग्निपरसे उतार लेवे। शीतल होनेपर इसमेंसे एक तोलाभर नित्य खाय। यह गूगल—वातरक्त, सात प्रकारकी वृद्धि, गृध्रसी, जॅघा, ऊरु, पृष्ठ, त्रिक और वस्ति इनमें प्राप्त हुए वातके विकारोंको शमन करेहै तथा प्रबल आमवातको नष्ट करे-है ॥ १६०–१६४ ॥

अथ समशर्करागुग्गुलुः ।

यावशूकसुरदारुसैन्धवं मुस्तकत्रुटिवचा-यवानिकाः ॥ व्योषदीप्यकनिशाफलत्रिकं जीरकद्वयविडंगचित्रकम् ॥ १६५ ॥ कार्षिकं सुमसृणं सुयोजितं संयुतं पुरप-लैश्च पंचभिः ॥ शर्करां पुरसमां सुपपये-त्तप्तसर्पिषि विनिक्षिपेत्ततः ॥ १६६ ॥ वातरक्तमुदरं भगन्दरं प्लीहयक्ष्मविषम-ज्वरं गरम् ॥ श्वित्रकुष्ठमखिलव्रणानयं चित्तविभ्रममदांश्च दारुणान् ॥ १६७ ॥ गृध्रसीं च गुदजाग्निमन्दतां हन्ति कोष्ठज-नितं महागदम् ॥ वज्रमिन्द्रसुकरादिव च्युतं गुप्तशैलकुलमुत्तमं द्रुतम् ॥ १६८ ॥ अन्नपानपरिहारवर्जितं सर्वकालसुखदं निरत्ययम् ॥ सेव्यमानमिदमश्विनिर्मितं गुग्गुलोर्हि वटिकारसायनम् ॥ १६९ ॥ चत्वारो मापका हीने मध्यमेऽष्टौ च मा-पकाः॥श्रेष्ठा द्वादशकाः प्रोक्ताः कोष्ठं विज्ञाय पाययेत ॥ १७० ॥ स्रंसनत्वाद्गु-रुत्वाच्च गुग्गुलोः करणक्रमः ॥ १७१ ॥

जवाखार, देवदारु, सैंधानिमक, नागरमोथा, इला-यची, वच, अजवायन, सोंठ, मिरच, पीपल, अजमोद, हलदी, हरड, बहेडा, आमला, जीरा, कालाजीरा, वायविडंग और चीता इनको एकत्र बारीक पीसकर इसमें २० तोले गूगल मिलाकर और २० तोले खांड मिलावे, फिर उस गूगलको गरम घीमें मिलाकर खूब कूटे तो यह 'शर्करासमगूगल' सिद्ध होताहै। जिसप्रकार इन्द्रके हाथसे छूटा हुआ वज्र बडे बडे पर्वतोंको भेदन करदेताहै उसीप्रकार यह गूगल वातरक्त, उदरके रोग, भगन्दर, प्लीहा, क्षयरोग, विषमज्वर, विष, श्वित्र-कोढ, सर्वप्रकारके व्रण, चित्तविभ्रम सम्बन्धी दारुणरोग, गृध्रसी, बवासीर, अग्निकी मंदता और कोष्ठगत बडे बडे रोगोंको दूर करेहै। अश्विनीकुमारोंका बनाया हुआ यह समशर्करागूगल—रसायन, सर्वकालमें सुख देनेवाला और इसपरअन्नपान किसीका परहेज नहीं है। हीन कोठे-वाले मनुष्यको यह गूगल चारमासे देवे, मध्यम कोठेवाले मनुष्यको आठमासे देवे और श्रेष्ठ कोठेवाले मनुष्यको बारहमासे देवे। कोठेको देखकर गूगलको देवे। गूगल स्रंसन पदार्थ है और भारी है इसकारण गूगल देनेमें यह क्रम कहा है ॥ १६५–१७१ ॥

अथामृतागुग्गुलुः ।

प्रस्थमेकं गुडूच्याश्च अर्द्धप्रस्थं च गुग्गुलोः॥ प्रत्येकं त्रिफलायास्तु तत्प्रमाणं विनि-र्दिशेत् ॥ १७२ ॥ सर्वमेकत्र संकुट्य क्वाथयेद्लवणेऽम्भसि ॥ पादशेषं परि-स्राव्य कषायं ग्राहयेद्भिषक्॥ पुनः पचे-त्कषायन्तु यावत्सान्द्रत्वमागतम् ॥ ॥ १७३ ॥ दन्तीव्योषविडंगानि गुडू-चीत्रिफलात्वचः ॥ ततश्चार्द्धपलं चूर्णं गृह्णीयाच्च पृथक्पृथक् ॥ १७४ ॥ कर्षन्तु-त्रिवृतायाश्च सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ तस्मि-न्सुसिद्धं विज्ञाय कवोष्णे प्रक्षिपेद्बुधः ॥ ॥ १७५ ॥ ततश्चाग्निबलं मत्वा खादे-त्कर्षप्रमाणतः ॥ वातरक्तं तथा कुष्ठं गुदजान्यग्निसादनम् ॥ १७६ ॥ दुष्ट-

व्रणं प्रमेहांश्च आमवातं भगन्दरम् ॥ नाड्याढ्यवातं श्वयथुं सर्वानेतान्व्यपोहति ॥ १७७ ॥

गिलोय ६४ तोले, गूगल ३२ तोले, हरड ६४ तोले, बहेडे ६४ तोले और आमले ६४ तोले लेवे, इन सबको एकत्र करके अत्यंत गरम पानीमे इनका क्वाथ बनावे, जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उसको उतारकर छानलेवे, फिर उसको अग्निपर चढाकर पकावे जब गाढा होनेलगे तब जमालगोटे, सोठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, गिलोय, हरड, बहेडा, आमला और दालचीनी यह प्रत्येक पदार्थ दो दो तोले लेकर और निसोतका एक तोला चूर्ण इसमे मिलादेवे, जब यह गूगल अच्छेप्रकारसे पककर तैय्यार होजाय तब उतारलेवे, मंदोष्ण होय तब इसको ढालदेवे, फिर अग्निके बलाबलका विचार करके इस गूगलमेंसे नित्य एक तोलाभर खाय, यह गूगल—वातरक्त, कोढ, बवासीर, मंदाग्नि, दुष्टव्रण, प्रमेह, आमवात, भगन्दर, नाडीव्रण, ऊरुस्तम्भ और सूजनको दूरकरेहै ॥ १७२–१७७ ॥

अथ द्वितीयोऽमृतागुग्गुलुः ।

त्रिप्रस्थममृतायाश्च प्रस्थमेकन्तु गुग्गुलोः ॥ प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थं वर्षाभूप्रस्थमेव च ॥ ॥ १७८ ॥ सर्वमेकत्र संकुट्य साधयेदुल्वणेऽम्भसि ॥ पुनः पचेत्पादशेषं यावत्सान्द्रत्वमागतम् ॥ १७९ ॥ दन्तीचित्रकमूलानां कणाविश्वफलत्रिकम् ॥ गुडूचीत्वग्विडङ्गानां प्रत्येकार्द्धपलं मतम् ॥ १८० ॥ त्रिवृताकर्षमेकन्तु सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ सिद्धे चोष्णे क्षिपेत्तच्च अमृतागुग्गुलुं परम् ॥ १८१ ॥ अतो यथा बलं खादेदम्लपित्ती विशेषतः ॥ वातरक्तं तथा कुष्ठं गुदजान्यग्निसादनम् ॥ ॥ १८२ ॥ दुष्टव्रणं प्रमेहांश्च आमवातं भगन्दरम् ॥ नाड्याढ्यवातं श्वयथुं हन्यात्सर्वामयांस्तथा ॥ अश्विभ्यां निर्मितश्चायममृताख्यो हि गुग्गुलुः॥१८३॥ गुडरामठशुण्ठीनां मांसकूष्माण्डयोरपि॥ गुडूच्या गुग्गुलोश्चैव प्रस्थः षोडशभिः पलैः ॥ १८४ ॥

गिलोय ३ प्रस्थ, गूगल १ प्रस्थ, हरड १ प्रस्थ, बहेडे १ प्रस्थ, आमले १ प्रस्थ और पुनर्नवा १ प्रस्थ, इन सब पदार्थोंको एकत्र कूटकर अत्यत गरम पानीमे पकावे जब पकते पकते जल चौथाई भाग शेष रहजाय तब उस क्वाथको छानकर अग्निपर चढादेवे, जब यह पकते पकते गाढा होजाय तब इसमे जमालगोटेकी जड, चीतेकी जड, पीपल, सोंठ, हरड, बहेडा, आमले, गिलोय, तज और वायविडंग यह प्रत्येक पदार्थ दोदो तोले और निसोत एक तोला लेवे, सबका एकत्र चूर्ण करके मिलादेवे। जब गूगल अच्छे प्रकारसे पकजाय तब उसको उतारकर ढालदेवे तो यह 'अमृतागुग्गुलु' सिद्ध होताहै। विशेषकरके अम्लपित्तके रोगियोको अग्निके बलानुसार यह गूगल सेवन करना चाहिये। अश्विनीकुमारोका बनाया हुआ यह गूगल—वातरक्त, कोढ, बवासीर, अग्निकी मंदता, दुष्टव्रण, प्रमेह, आमवात, भगन्दर, नाडीव्रण, ऊरुस्तम्भ, सूजन और सम्पूर्ण रोगोको नष्ट करै है ॥ १७८–१८४ ॥

अथ नवपुराणगुग्गुलोर्लक्षणम् ।

स्निग्धः काञ्चनसंकाशः पक्वजम्बूफलोपमः॥ नूतनो गुग्गुलुः प्रोक्तः सुगन्धिर्यस्तु पिच्छिलः ॥ १८५ ॥ शुष्को दुर्गन्धिकश्चैव वर्णान्यत्वमुपागतः ॥ पुराणः स तु विज्ञेयो न स देयस्तु रोगिणे ॥ १८६ ॥

जो गूगल चिकना, सोनेकी समान चमकदार, पकीहुई जामुनकी समान कांतिवाला, सुगधी और पिच्छिल ऐसा होय तो उसको नवीन जानना। जो गूगल सूखा, दुर्गंधित तथा जिसका रग बदल गया होय उसको पुराना जानना। ऐसा गूगल रोगीको नहीं देना चाहिये ॥ १८५॥१८६ ॥

अथ चंद्रप्रभावटिका ।

क्रिमिरिपुदहनव्योषत्रिफलामरदारुचव्यः भूनिम्बाः ॥ मागधिमूलं मुस्तं शटीवचाधातुमाक्षिकञ्चैव ॥ लवणक्षारनिशायुक्कु-

स्तुम्बुरुगजकणाः सहातिविषाः ॥१८७॥ कर्षांशिकान्येव समानि कुर्यात्पलाष्टकं चाश्मजतु प्रदद्यात् ॥ निष्पन्नशुद्धस्य पुरस्य धीमान्पलद्वयं लौहरजस्तथैव ॥ ॥ १८८ ॥ सिताचतुष्कं पलमत्र वा स्यान्त्रिकुम्भकुम्भत्रिसुगन्धियुक्तम् ॥ पृथक्पलं चूर्णमथावपेच्च चन्द्रप्रभेयं गुटिका विधेया ॥ १८९ ॥ ज्वरातिसारग्रहणीविकारांश्चार्शांसि निर्णाशयते षडेव ॥ भगन्दरान्कामलपाण्डुरोगान्निर्णष्टवह्नेः कुरुते च दीप्तिम् ॥ १९० ॥ हन्त्यामयान्पित्तकफानिलोत्थान्नाडीगते मर्मगते व्रणे च ॥शतक्षये गृध्रसियक्ष्मरोगे मेहे गजाख्ये प्रबले प्रयोज्या ॥ १९१ ॥ शुक्रक्षये चाश्मरिमूत्रकृच्छ्रे शुक्रप्रवाहेऽप्युदरामये च ॥ शम्भुं समभ्यर्च्य कृतप्रसादं प्राप्ता गुटी चन्द्रमसा प्रशस्ता १९२॥ न पानभोज्ये परिहारवादो न शीतवातातपमैथुनेषु ॥ भक्तस्य पूर्वं सततं प्रयोज्या तक्रानुपानाप्प्यथ मस्तुपाना ॥ अजारसो जाङ्गलजो रसो वा पयोऽथ वा शीतजलानुपानम् ॥ १९३ ॥ शुक्रदोषान्निहन्त्यष्टौ प्रमेहांश्चापि विंशतिम् ॥ वलीपलितनिर्मुक्तो वृद्धोऽपि तरुणायते॥ १९४॥गिरिजतुगुग्गुलुलौहान्येकीकृत्याथ भावयेद्बहुशः ॥ काथैस्तद्व्याधिहरैस्तदनु च चूर्णीकृतं मिलितम् ॥ कृमिरिप्वादिकचूर्णैर्गिरिजतु समधान्यपटोलयूषेण ॥ १९५ ॥

वायविडंग, चीता, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, देवदारु, चिरायता, पीपलामूल, नागरमोथा, कचूर, वच, सोनामाखी, सैंधानिमक, जवाखार, हल्दी, दारुहल्दी, धनिया, गजपीपल और अतीस यह प्रत्येक पदार्थ एक एक तोला लेकर चूर्ण बना लेवे, शिलाजीत बत्तीस तोले लेवे, शुद्ध किया हुआ गूगल आठ तोले लेवे, लोहचूर्ण आठ तोले लेवे (शिलाजीत, गूगल और लोहचूर्णको एकत्र करके जिन जिन रोगोंमे देना है उनहीं उन रोगोंको हरनेवाली औषधियोंके क्वाथमें अवश्य भावना देनी चाहिये), खाड १६ तोले लेवे, निसोत, जमालगोटा, तज, तमालपत्र तथा इलायची इन प्रत्येक औषधियोंका चूर्ण चार चार तोले लेना चाहिये, इन सब पदार्थोंको एकत्रित करके गोली बनावै, इनको चन्द्रप्रभा गोली कहतेहैं । यह चन्द्रप्रभा वटी—ज्वर, अतिसार, ग्रहणीके विकार, छे प्रकारकी बवासीर, भगन्दर, कामला और पाडुरोगको नष्ट करैहै और अत्यन्त मद हुई अग्निको दीपन करैहै । वात पित्त कफसे उत्पन्न हुए रोगोपर, नाडीव्रणपर, मर्म्मगतव्रणोपर, क्षयसे उत्पन्न हुए क्षयपर, गृध्रसीपर, क्षयरोगमे तथा अत्यंत प्रवल गजमेह, वीर्यकी क्षीणता, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, वीर्य्यप्रवाह और उदरके रोगोंपर भी इन चन्द्रप्रभा गोलियोंको प्रयोग करना चाहिये । प्रसन्न हुए श्रीसदाशिवका पूजन करनेपर यह उत्तम गोली चन्द्रमाको प्राप्त हुई है । इन गोलियोंको सेवन करनेवाले मनुष्यको भोजन, पान, शीत, पवन, धूप, और मैथुन इनका परहेज करनेकी आवश्यकता नहीं है । भोजन करनेसे पहिले तक्रके साथ, दहीके तोडके साथ, बकरीके मांसके रसके साथ, जागल प्रदेशके प्राणियोंके मासरसके साथ, दूध और शीतल जलके साथ सदैव इन गोलियोंको उपयोग करना चाहिये । यह गोली वीर्यके आठ प्रकारके दोष और वीस प्रकारके प्रमेहको नष्ट करै है । इन गोलियोंका उपयोग करनेसे वृद्ध मनुष्य भी वलि और पलित रोगसे मुक्त, होकर युवाकी समान होजाताहै ॥ १८७–१९५ ॥

अथ कैशोरगुग्गुलुः ।

वरमहिषलोचनोदरसन्निभवर्णस्य गुग्गुलोः प्रस्थम् ॥ प्रक्षिप्य तोयराशौ त्रिफलाञ्च यथोक्तपरिमाणाम् ॥ १९६ ॥ द्वात्रिंशच्छिन्नरुहापलानि देयानि यत्नेन ॥ विपचेत्तदप्रमत्तो दर्व्या संघट्टयेन्मुहुर्यावत् ॥ १९७ ॥ अर्द्धक्षयितं तोयं जातं ज्वलनस्य सम्पर्कात ॥ अवतार्य वस्त्रपूतं पुनरपि संसाधयेदयःपात्रे ॥ १९८ ॥

सान्द्रीभूते तस्मिन्नवतार्य हिमोपलस्पर्शे ॥ त्रिफलाचूर्णार्द्धपलं त्रिकटोश्चूर्णं षडक्षपरिमाणम् ॥ १९९ ॥ क्रिमिरिपुचूर्णार्द्धपलं कर्षं कर्षं त्रिवृद्दन्त्योः ॥ पलमेकन्तु गुडूच्या दत्त्वा संचूर्ण्य यत्नेन ॥२००॥ उपयुज्य चानुपानं यूषं क्षीरं सुगन्धि सलिलञ्च ॥ इच्छाहारविहारी भेषजमुपयुज्य सर्वकालमिदम् ॥ २०१॥ तनुरोधि वातशोणितमेकद्वित्र्युल्वणं चिरोत्थमपि ॥ भग्नश्रुतपरिशुष्कं स्फुटितं दीर्णमाजानु यच्चापि ॥२०२ ॥ व्रणकासकुष्ठगुल्मश्वयथुं गरपाण्डुमेहांश्च ॥ मन्दाग्निश्च विबन्धं प्रमेहपिडकांश्च नाशयत्याशु ॥ २०३ ॥ सततं निषेव्यमाणः कालवशाद्धन्ति सर्वगदान् ॥ अभिभूय जरादोषं करोति कैशोरकं रूपम्॥२०४॥ प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थौ जलश्चाढकमाढकम्॥ गुडवद्गुग्गुलोः पाकः सन्धेयस्तु विशेषतः ॥ २०५ ॥

उत्तम भैंसेके नेत्र तथा उदरकी समान ६४ चौसठ तोले गूगल लेकर पानीमें डालदेवे फिर उसमें चौसठ तोले हरड, वहेडा और आमले तथा वत्तीस पल गिलोय यत्नपूर्वक डालकर आगपर चढादेवे । सावधान होकर जबतक आधा न जलजाय तबतक वारवार करछीसे चलातारहै फिर उसको अग्निपरसे उतारकर वस्त्रमें छानकर पश्चात् लोहेके बासनमें करके अग्निपर चढावे, गाढे होनेपर उतार लेय । जब शीतल होजाय तब हरड, बहेडा और आमलेका चूर्ण दो दो तोले, सोंठ, मिरच और पीपलका चूर्ण दो दो तोले, वायविडगका चूर्ण दो तोले, निसोतका चूर्ण दो तोले, दती (जमालगोटेकी जड)का चूर्ण दो तोले और गिलोयका चूर्ण चार तोले मिलादेवे । इसको यथायोग्य अनुपान, यूष, दूध, सुगंधित गुलाब केवडा आदिके अर्कके साथ देवे । इसपर यथेच्छ आहारविहार करे । यह शरीरको विगाडनेवाला वातरक्त, एकदोषज, द्विदोषज, त्रिदोषज, बहुत दिनोका उत्पन्न हुआ, भग्नरोग, स्रवताहुआ, सूखा हुआ, फटाहुआ घुटनोतक प्राप्त हुआ वातरक्त, व्रण, खाँसी, कोढ, गुल्म, सूजन, विषविकार, पांडुरोग, प्रमेह, मदाग्नि, विबन्ध और प्रमेह पिडका इन सबको शीघ्रही दूर कर देताहै । यह सदैव सेवन किया हुआ कालवशसे सर्व रोगोंको नष्ट करदेताहै । वृद्ध अवस्थाको दूर करके किशोर अवस्थाको प्राप्त करताहै ॥ १९६–२०५ ॥

अथ त्रिफलागुग्गुलुः ।

त्रिफलातिविषादारुदार्वीमुस्तापरूषकैः ॥ खदिरासननक्ताह्वगुडूचीनृपपादपैः२०६॥ भूनिम्बनिम्बकटुकाकालिंगकुलकैः समैः ॥ क्काथं कृत्वा ततः पूतं शृतमष्टगुणेऽम्भसि ॥ २०७ ॥ गुडूच्यास्तत्र सुकृतं चूर्णमर्द्धंतु वारिणि ॥ क्षिप्त्वा सुनूतने भाण्डे वासयेद्रजनीगतम् ॥ २०८ ॥ सोमोपेतेन पूतेन कौशिकं परिभावयेत् ॥ षड्गुणेन तु सप्ताहं शिलाजतुसमन्वितम् ॥ २०९ ॥ शुक्तस्य तु पलान्यष्टौ समावाप्य विचक्षणः ॥ ताप्यचूर्णं पलञ्चैकं द्वे पले मधुसर्पिषोः ॥ २१० ॥ एकीकृत्य समं सर्वं लिह्यात्सुत्रिफलाम्बुना ॥ तनुना मुद्गयूषेण जांगलानां रसेन वा ॥ जीर्णेऽजीर्णे च भुञ्जीत पुराणं शालिषष्टिकम् ॥ २११ ॥ यथारोगं यथासात्म्यं रसैर्यूषैश्च संस्कृतैः ॥ त्रिसप्ताहप्रयोगेण वातरक्तं सुदारुणम् ॥ २१२ ॥ निहन्ति वीर्यतः क्षिप्रं कुष्ठरोगान्व्रणानपि॥ छिन्नं भिन्नञ्च सन्धत्ते त्रिफलाख्यो हि गुग्गुलुः ॥ २१३ ॥

त्रिफला, अतीस, देवदारु, दारुहलदी, नागरमोथा, फालसे, खैर, विजयसार, हलदी, गिलोय, अमलतास, चिरायता, नीम, कुटकी, इन्द्रजौ और पटोलपत्र यह सब समान भाग लेकर अटगुने जलमें पकावे, गिलोय, क्काथके जलसे आधी लेवे, पश्चात् उस जलको उत्तम मट्टीके बासनमें करके एक रात्रितक सुवासित करे । फिर इसमें छे गुनी वावची मिलाकर वस्त्रमें छानकर इसमे गूग

लकी सात दिनतक शिलाजीत मिलाकर भावना देवे। फिर शुक्तनामक कांजी ३२ तोले, सोनामाखीका चूर्ण चार तोले, सहत और घी आठ तोले सबको मिलाकर एकमें एक कर लेवे। इसको त्रिफलेके जलके साथ, अथवा मूगके यूषके साथ या जांगल जीवोंके मांसके रसके साथ मिलाकर खाय। जब जीर्ण होने लगे तब पुराने शालि या साठी धान और यथारोगानुसार और प्रकृतिके अनुसार रस और यूषोंको सेवन करे। इसको तीन सप्ताह पर्यंत सेवन करनेसे दारुण वातरक्त नष्ट होताहै। और यह अपने प्रभावसे कुष्ठ और व्रणोंको भी दूर करदेताहै। यह त्रिफलागूगल छिन्न भिन्न अंगोंको जोडनेवाला है ॥ २०६–२१३ ॥

अथ सिंहनादगुग्गुलुः ।

पलत्रयं कषायस्य त्रिफलायाः सुचूर्णितम् ॥ सौगन्धिकं पलश्चैकं कौशिकस्य पलत्रयम् ॥ २१४ ॥ कुडवं चित्रतैलस्य सर्वमादाय यत्नतः ॥ पाचयेत्पाकविद्वैद्यः पात्रे लौहमये दृढे ॥ २१५ ॥ हन्ति वातं तथा पित्तं श्लेष्माणं खञ्जपंगुताम् ॥ श्वासं सुदुर्जयं हन्ति कासं पञ्चविधं तथा ॥ २१६ ॥ कुष्ठानि वातरक्तञ्च गुल्मं शूलोदराणि च ॥ आमवातं जयत्येतदपि वैद्यविवर्जितम् ॥ २१७ ॥ सर्वदास्योपयोगेन जरापलितनाशनम् ॥ सर्पिस्तैलरसोपेतमश्नीयाच्छालिषष्टिकम् ॥२१८॥ सिंहनाद इति ख्यातो रोगवारणदर्पहा ॥ वह्नेर्दीप्तिकरं पुंसां भाषितो दण्डपाणिना ॥ २१९ ॥ अत्राहुस्त्रिफलाक्काथं पृथक् त्रिपलसम्मितम् ॥ किञ्चिन्निर्याति चैरण्डस्नेहे पाकोऽधिके खरः ॥ २२० ॥

सिंहनाद गूगल–त्रिफलेका क्वाथ १२ तोले, कूटा हुआ गन्धक चार तोले, गूगल बारह तोले और अंडीका तेल पावभर लेवे सबको एकत्र करके पाकको जाननेवाला वैद्य लोहेके दृढ और उत्तम पात्रमें पकावे। यह वात, पित्त तथा कफके विकार, खंज पंगुता, दुर्जर श्वास, पांचों प्रकारकी खांसी, कोढ, वातरक्त, गुल्म, शूल, उदररोग और दुर्जर आमवात रोगको भी नष्ट करैहै। इसका सदैव उपयोग करनेसे जरा और पलितरोगोंको नष्ट करे है। घी तेल और मांसरसके साथ शालि और साठी धानोंके चावलोंको खाय। सिंहनाद नामक यह गूगल रोगरूपी हाथियोंके मदको हरनेवाला है। अग्निको दीपन करनेवाला है। ऐसा श्रीमहादेवजीने कहा है ॥ २१४–२२० ॥

अथ द्वितीयः सिंहनादगुग्गुलुः ।

अष्टौ पलान्यत्र पलङ्कषायाः प्रस्थः पृथक् शुद्धफलत्रयस्य ॥ दत्त्वा पचेद्द्रोणयुगे जलस्य पादावशेषं पुनरेव वैद्यः ॥ ॥ २२१ ॥ दन्तीत्रिवृत्त्र्यूषणवारुणीनां विडंगमुस्तत्रिफलामृतानाम् ॥ कन्दोग्रगन्धालुकमाणकानां सगन्धकानाञ्च सपारदानाम् ॥ २२२ ॥ पलार्द्धमानं प्रमितं सुचूर्णं दद्याद्द्विपक्कं पुनरेव तत्र ॥ फलानि संचूर्ण्य च कानकानि सहस्रसंख्याकलितानि पश्चात् ॥ २२३ ॥ खादेद्धि माषद्वितयं प्रतप्तं तोयादिकं देयमतोऽनुपाने॥ आमानिलं सन्धिगतं सशूलं शिरोगतं जानुकटिस्थितञ्च ॥ २२४ ॥ अर्शोऽतिवृत्तिं विषमज्वरार्तिं प्रमेहकुष्ठानि भगन्दरञ्च ॥ हन्यान्नराणामिति सिंहनादो मेदोमरुच्छ्लेष्मगदान्पुरोऽयम् ॥ २२५ ॥ दाहोऽत्यन्तप्रवृत्तिर्वा विकारोऽन्यो भवेद्धुः ॥ तत्कृतस्तु तदा तत्र तक्रभक्तं हितं भवेत् ॥ उद्वर्तनं शीतजलस्नानञ्च शयनं तथा ॥ २२६ ॥ विरेकातिशयं कुर्यात्सिंहनादो यतः सुधीः ॥ ज्ञात्वा बलं शरीरं तु दद्यादेवं न वा भिषक् ॥ २२७ ॥ तोयारनालगोक्षीरैः क्रमात्पक्कं विशुध्यति॥ फलं कतकसंज्ञन्तु कृत्वा चूर्णं ततः क्षिपेत् ॥ २२८ ॥

शुद्ध गूगल बत्तीस ३२ तोले, शुद्ध हरड ३२ तोले, शुद्ध बहेडा ३२ तोले और शुद्ध आमले ३२

तोले इन सबको दो हजार अडतालीस तोले भर जलमें पकावे, जब पकते पकते जल चौथाई भाग रहजाय तब उतारलेवे, फिर इसमे जमालगोटे, निसोत, सोंठ, मिरच, पीपल, भुँईआमले, वायविडग, नागरमोथा, हरड, बहेडा, आमला, गिलोय, सूरण, वच, आलुक, मानकन्द, गन्धक और पारा ये प्रत्येक पदार्थ दो २ तोले लेकर चूर्ण बनाकर उसमें डालकर दूसरी बार पकावे। पक जानेके बाद एक हजार धत्तूरेके फलोका चूर्ण करके मिलादेवे तो यह 'सिंहनाद गूगल' तय्यार होताहै। यह गूगल बारह रत्ती प्रमाण खाय और गरम जल आदिका अनुपान करे। यह गूगल मनुष्योंकी बवासीर, विषम-ज्वरकी पीडा, प्रमेह, कोढ, भगन्दर और मेद, वायु, तथा कफसे उत्पन्नहुए रोगोको दूर करेहै। इस गूगलको सेवन करनेसे दाह, अतीसार, अथवा अन्यान्य कोई विकार होय तो तक्रके साथ भात खाय। उबटन, शीतल जलसे स्नान और शयन करना हितकारी है। यह सिंह-नादगूगल बहुत दस्त लाताहै इस कारण बुद्धिमान् वैद्य रोगीके शरीरका बल विचारकर बारह रत्ती प्रमाण देवे अथवा इससे भी कम देवे। इस गूगलमे धत्तूरेके फलोका चूर्ण डालना कहा है सो उनको ऐसेही नही डालना चाहिये किंतु प्रथम उसके फलोको अनुक्रमसे पानीसे, आरनालसे तथा गायके दूधसे पकावे, प्रथम शुद्ध करके फिर इनका चूर्ण करके डाले। पानी आदिमे पकानेसे धत्तूरेके फल शुद्ध होजातेहैं ॥ २२१-२२८ ॥

अथ तृतीयसिंहनादगुग्गुलुः ।

पिच्चितो गुग्गुलोर्मानी कटुतैले पलाष्टके॥ प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थं सार्द्धद्रोणे जले पचेत् ॥ २२९ ॥ पादशेषं सुपूतश्च पुनरग्नावधिश्रयेत् ॥ त्रिकटुत्रिफलामुस्ताविडंगामलकानि च ॥ २३० ॥ गुडूच्यग्नित्रिवृद्दन्तीवचासूरणमानकम् ॥ कस्तूरीरससूतांशं प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम् ॥ २३१ ॥ सहस्रं कानकफलं सिद्धे संचूर्ण्य निक्षिपेत् ॥ ततो माषद्वयं जग्ध्वा पिबेत्तप्तजलादिकम् ॥ २३२ ॥ अग्निश्च कुरुते शीघ्रं वडवानलसन्निभम् ॥ धातुवृद्धिं वयोवृद्धिं बलं सुविपुलं तथा ॥ २३३ ॥ आमवातं शिरोवातं ग्रन्थिवातं भगन्दरम् ॥ जानुजंघाश्रितं वातं सकटीग्रहवेदनम् ॥ २३४ ॥ अश्मरीमूत्रकृच्छ्रे च भग्ने च तिमिरोदरे ॥ अम्लपित्तं तथा कुष्ठं प्रमेहं गुदनिर्गमम् ॥ २३५ ॥ कासं पञ्चविधं श्वासं क्षयश्च विषमज्वरम् ॥ प्लीहानं श्लीपदं गुल्मान्पाण्डुरोगं सकामलम् ॥ २३६ ॥ शोथान्त्रवृद्धिशूलानि गुदजानि विनाशयेत् ॥ मेदःकफामसञ्जातरोगवारणदर्पहा ॥२३७॥ सिंहनाद इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ॥ भिषग्भिर्वर्जिते रोगे भाषितो दण्डपाणिना ॥ २३८ ॥

बत्तीस ३२ तोले सरसोंके तेलमे खूब कूटाहुआ बत्तीस ३२ तोले गूगल लेवे, हरड ६४ तोले, बहेडे ६४ तोले और आमले ६४ तोले इन सबको डेढ द्रोणजलमें पकावे जब पकते २ जल चौथाईभाग शेष रहजाय तब उतारकर कपडेमें छानलेवे, फिर दूसरीबार आगपर पकावे उसमे सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, वायविडग, आमले, गिलोय, चीता, निसोत, जमालगोटेके बीज, वच, जमींकंद, मानकद, कस्तूरी, रसौत और पारा ये प्रत्येक पदार्थ दो दो तोले लेकर पीसकर डालदेवे विधिपूर्वक पकावे, जब पकजाय तब जल, आरनाल, कॉजी और गायके दूधसे शुद्ध किये हुए धतूरेके एक हजार फल उनका चूर्ण बनाकर डाल देवे तो यह 'सिंहनाद गूगल' सिद्ध होताहै। इस गूगलको बारहरत्ती प्रमाण खाय और गरमजल आदिका अनुपान करे। यह गूगल तत्काल जठराग्निको वडवानलकी समान दीपन करताहै, धातुओंको बढाताहै, जीवनकी वृद्धि करताहै, विपुल बलको उत्पन्न करताहै। तथा आमवात, शिरोवात, ग्रन्थिवात, भगन्दर, जानु और जंघागतवात, कमरकी पीडा, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, भग्न, तिमिर, उदररोग, अम्ल-पित्त, कोढ, प्रमेह, गुदाका निकलना (कांच), खॉसी, पांच प्रकारका श्वास, विषमज्वर, प्लीहा, श्लीपद, गुल्म, पांडुरोग, कामला, सूजन, अन्त्रवृद्धि, शूल और बवासीर इन सब रोगोंको नष्ट करताहै। मेद, कफ और आम इन रोगरूपी हाथियोंके गर्वको हरनेवाला यह 'सिंहनाद

गूगल इस नामसे प्रसिद्ध योग अमृतकी समान है । वैद्य करके वर्जित रोगोंको दूर करनेके लिये यह श्रीमहादेवजीने कहा है ॥ २२९–२३८ ॥

अथ योगसारामृतः ।

शतावरी नागवला वृद्धदारकमुच्चटा ॥ पुनर्नवाऽमृता कृष्णा वाजिगन्धा त्रिकण्टकम् ॥ २३९ ॥ पृथग्दशपलान्येषां श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ तदर्द्धशर्करायुक्तं चूर्णं संमर्दयेद् बुधः ॥२४०॥ स्थापयेत्सुदृढे भाण्डे मध्वर्द्धाढकसंयुतम् ॥ घृतप्रस्थेन वाऽऽलोडय त्रिसुगन्धपलेन च२४१ तं खादेदिष्टभक्ष्यान्नो यथावह्निबलं नरः॥ वातरक्तं क्षयं कुष्ठं कार्श्यं पित्तास्रसम्भवम् ॥ २४२ ॥ वातपित्तककोत्थांश्च रोगानन्यांश्च तत्कृतान् ॥ हत्वा करोति पुरुषं हत्वा सर्वामयान्द्रुतम् ॥ २४३ ॥ वलीपलितनिर्मुक्तं मेधास्मृतिविभूषितम्॥ करोति पुरुषं धन्यं पञ्चवर्षशतायुषम् ॥ योगसारामृतो नाम लक्ष्मीकीर्तिविवर्द्धनः ॥ २४४ ॥

सतावर, गगेरन (गुलशकरी), विधारा, उटंगनबीज, पुनर्नवा, गिलोय, पीपल, असगन्ध और गोखुरू ये प्रत्येक पदार्थ ४० चालीस ४० चालीस तोले लेकर उनका वारीक चूर्ण बनाकर उसमें आधाभाग खांड मिलावे, सबको खूब मर्दनकरे फिर उसमे १२८ तोले सहत और ६४ तोले घी तथा तज, तेजपत्र और इलायचीका चूर्ण प्रत्येक चार चार तोले मिलाकर अत्यन्त दृढ बासनमें भरकर रखदेवे तो यह 'योगसारामृत' सिद्ध होताहै । मनुष्योंको यह 'योगसारामृत'अपनी जठराग्निके बलानुसार खाना चाहिये और यथेष्ट अन्नपान भोजनकरे । लक्ष्मी तथा कीर्तिको बढानेवाला यह योगसारामृत—वातरक्त, कोढ, कृशता, पित्त तथा रुधिरसे उत्पन्न होनेवाले रोग और वात, पित्त तथा कफसे उत्पन्न हुये अन्यान्य रोगोंको भी दूर करके वलि और पलित रोग नष्ट करैहै, मेधा और स्मरणशक्तिसे शोभायमान करताहै । भाग्यको बढाता है और उसकी पांचसो वर्षकी आयु करताहै २३९–२४४

अथ वातरक्ते त्याज्यानि ।

व्यायामं मैथुनं कोपमुष्णाम्ललवणं रसम् ॥ दिवास्वप्नमभिष्यन्दि गुरु चान्यद्विवर्जयेत् ॥ २४५ ॥

इति वातरक्तनिदानचिकित्साधिकारः ।

व्यायाम (दंड, कसरत), मैथुन, क्रोध, उष्ण, खट्टा और खारी रसवाले पदार्थ, दिनमें सोना और जो जो पदार्थ अभिष्यन्दि तथा भारी हैं उन सबको यह वातरक्तरोगी त्याग देवे ॥ २४५ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे शालिग्रामवैद्यकृतवैद्यसजीविनी-
भाषाटीकायां मध्यखडे द्वितीयो
भागः सम्पूर्णः ।

॥ श्रीवेंकटेशाय नमः ॥



अथ भावप्रकाशः ।

मध्यमखण्ड-तृतीयो भागः ३.

भाषाटीकासमेतः

अथ शूलाधिकारः ।

अथ शूलनिदानम् ।

दोषैः पृथक्समस्तामद्वन्द्वैः शूलोऽष्टधा भवेत् ॥ सर्वेष्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवनः प्रभुः ॥ १ ॥

वायुसे, पित्तसे, कफसे, तीनों दोषोंसे, आमसे, वातपित्तसे, वात तथा कफसे और पित्तकफसे, इसप्रकार शूल आठ प्रकारका है, इन सम्पूर्ण शूलोंमें वातका शूल अधिक प्रबल है ॥ १ ॥

अथ वातोत्पन्नशूलस्य निदान-संप्राप्ति-लक्षणानि ।

व्यायामयानादतिमैथुनाच्च प्रजागराच्छीतजलातिपानात् ॥ कलायमुद्गाढकिकोरदूषादत्यर्थरूक्षाध्यशनाभिघातात् ॥ २ ॥ कषायतिक्तातिविरूढजान्नविरुद्धवल्लूरकशुष्कशाकैः ॥ विट्छुक्रमूत्रानिलसन्निरोधाच्छोकोपवासादतिहास्यभाषात् ॥ वायुः प्रवृद्धो जनयेद्धि शूलं हृत्पृष्ठपार्श्वत्रिकवस्तिदेशे ॥ जीर्णे प्रदोषे च घनागमे च शीते च कोपं समुपैति गाढम् ॥ ३ ॥ मुहुर्मुहुश्चोपशमप्रकोपौ विण्मूत्रसंस्तम्भनतोदभेदैः ॥ संस्वेदनाभ्यञ्जनमर्दनाद्यैः स्निग्धोष्णभोज्यैश्च शमं प्रयाति ॥ ४ ॥

व्यायामो मल्लयुद्धादिः । यानं तुरगरथादि । मैथुनं स्त्रीसेवा । प्रजागरं रात्रौ । एषामतियोगाच्छीतलजलप्रभूतपानात् । कलायः त्रिपुटः । आढकी तुवरी । कोरदूषः कोद्रवः । अत्यर्थरूक्षम्, अतिरूक्षद्रव्यसेवा । अध्यशनं भुक्तस्य उपरि भोजनम् । अभिघातो लोष्टादिभिः । कषायतिक्तरससेवा कषायः विरूढजान्नम् विरूढमंकुरितमन्नम् । कला-

यच्चणकादि तज्जमन्नं भक्ष्यम् । वल्लूरकं शुष्कमांसम् । तस्य शूलस्य देशमाह-हृदादिषु । तत्र-हृच्छूलस्य पृथगपि लक्षणं पठन्ति ॥

व्यायाम (कसरत), यान (रथ, घोडे आदिकी सवारी), मैथुन, रात्रिमें जागरन इनको अत्यत करनेसे, शीतलजलके अधिकपीनेसे, मटर, मूँग, अरहर तथा कोदोंके अत्यन्त भक्षणसे, रूक्ष पदार्थोके अत्यत सेवन करनेसे अध्यशन (भोजनपर भोजन करने) से अभिघात (लाटी ईंट आदिकी चोट लगनेसे,) कसेले कडवे रसके सेवनसे, जिसमें अंकुर निकल आये हो ऐसा अन्न तथा विरुद्ध पदार्थ दूध मछली आदि खानेसे, सूखा हुआ मास तथा सखेहुए शाक भिडिग्वालके भक्षणसे, विष्ठा, वीर्य, मूत्र, अधोवायु, इनके वेगको रोकनेसे, अत्यन्त शोक तथा अत्यताधिक उपवास करनेसे, वहुत हँसनेसे और अत्यन्त बोलनेसे वृद्धिको प्राप्त हुई वायु हृदय, पीठ, पसली, त्रिकस्थान और मूत्राशयमे शूलको उत्पन्न करेहै पश्चात् खाया हुआ अन्न पच जानेपर प्रदोष (संध्याकाल) मे, वर्षासमयमें, शीतकाल समयमे, वायुका कोप होनेपर शूल अधिक कुपित होताहै । यह शूल वारवार कुपित होताहै और वारवार शान्त होताहै । इस शूलसे विष्ठा तथा मूत्र रुक जाताहै. और पीडा अधिक होतीहै । और अगोंमें भेद होताहै यह वातशूलके लक्षण हैं सेक आदि स्वेदन करनेसे, अभ्यंग (तेलकी मालिश) से, मर्दन (मलने आदि) से और स्निग्ध तथा गरम भोजन करनेसे यह शूल शात होताहै ॥ २–४ ॥

अन्य ग्रन्थोंमे हृदयके शूलके, पसलीके और वस्तिशूलके अलग लक्षण भी कहे हैं सो कहते है ।

अथ हृदयशूललक्षणम् ।

कफपित्तावरुद्धस्तु मारुतो रसवर्द्धितः ॥ ॥ ५ ॥ हृत्स्थः प्रकुरुते शूलमुच्छ्वासस्यावरोधकम् ॥ स हृच्छूल इति ख्यातो रसमारुतकोपजः ॥ ६ ॥

कफ पित्तसे रुकी हुई और रससे बढी हुई हृदयमें [illegible] वायु [illegible] रुकनेवाला शूलको उत्पन्न [illegible] [illegible] कुपित होनेसे उत्पन्न हुआ यह शूल हृदयशूल कहलाताहै ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ पार्श्वशूललक्षणम् ।

कफं निगृह्य पवनः सूचीभिरिव निस्तुदन् ॥ पार्श्वस्थः पार्श्वयोः शूलं कुर्यादाध्मानसंयुतम् ॥ ७ ॥ तेनोच्छ्वसिति वक्त्रेण नरोऽन्नञ्च न कांक्षति ॥ निद्राञ्च नाप्नुयादेव पार्श्वशूलः प्रकीर्तितः ॥ ८ ॥

कफ वायुको लेकर सुईके चुभोनेकी सदृश पसलियोमें पीडा उत्पन्न करतीहै और साथमे पेटपर अफारा भी करेहै । यह शूल हुआ होय तो मनुष्य मुखसेही ऊँचे श्वास लेताहै, अन्नकी इच्छा नहीं होती और निद्रा भी नहीं आती यह इन लक्षणोवाला शूल पार्श्वशूल कहाजाता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ वस्तिशूललक्षणम् ।

संरोधात्कुपितो वायुर्वस्तिं संश्रित्य तिष्ठति ॥ वस्तेरध्वनि नाडीषु ततः शूलोऽस्य जायते ॥ विण्मूत्रवातसंरोधी वस्तिशूलः स उच्यते ॥ ९ ॥

प्रकृतमनुसरति । जीर्णे भुक्ते । प्रदोषे राज्यागमे रात्रिभवशीतेन वातप्रकोपात् । घनागमे वर्षासु मेघोदये च ॥

वेगोंके रोकनेसे कुपित हुई वायु मूत्राशयमे भरी रहती है, इससे मूत्राशयके मार्गकी नाडियोंमें शूल होताहै और इससे मल, विष्ठा, मूत्र तथा वायु भी रुकजाती है, यह वस्तिशूल कहलाताहै ॥ ९ ॥

अथ पित्तजशूलनिदानसंप्राप्तिलक्षणानि ।

क्षारातितीक्ष्णोष्णविदाहितैलनिष्पावपिण्याककुलत्थयूषैः ॥ कट्वम्लसौवीरसुराविकारैः क्रोधानलायासरविप्रतापैः ॥ ग्राम्यातियोगादशनैर्विदग्धैः पित्तं प्रकुप्याथ करोति शूलम् ॥ तृण्मोहदाहार्तिकरं हि नाभ्यां संस्वेदमूर्च्छाभ्रमशोषयुक्तम् ॥ ॥ १० ॥ मध्यन्दिने कुप्यति चार्द्धरात्रे निदाघकाले जलदात्यये च ॥ शीते च शीतैः समुपैति शांति सुस्वादुशीतैररतिभोजनैश्च ॥ ११ ॥

निष्पावो राजमाषः। सौवीरं सन्धानभेदः। सुराविकारैः 'परिपक्वान्नसन्धानसमुत्पन्ना सुरा मता' तस्याः प्रकारैः। रविप्रतापः आतपः। ग्राम्यातियोगो मैथुनाधिक्यम्। विदाहीत्युक्तापि अशनैर्विदग्धैरिति बाधयति। अविदाहिवस्तुनोऽपि पित्तवशाद्विदाहित्वं भवति जलदात्यये शरदि शीतैर्वातादिभिः॥

खारोंसे अत्यन्त तीक्ष्ण-गरम मरिच आदि और विदाहकारक पदार्थोंसे, तेल-चौरा-खल और कुलथीके यूषसे, तीक्ष्ण तथा खट्टे पदार्थोंसे सौवीर कच्चे यवोंको अथवा पकेभयोको अर्थात् उनकी भूसी दूर करके जलमें सन्धान करनेको सौविर कहतेहैं बरन् अंग्रेजीमे उसको भी राव कहतेहैं सुराका विकार क्रोध, अग्निके तापसे, परिश्रमसे, सूर्यकी तीक्ष्ण धूपसे, फिरनेसे, अधिक मैथुन करनेसे और विदाही भोजनोंसे कुपित हुआ पित्त नाभिमें शूलको उत्पन्न करैहै, इससे-तृषा, मोह, दाह, पसीना, मूर्च्छा, भ्रम और शोष होताहै। यह शूल मध्याह्नके समयमे, अर्धरात्रिमे, ग्रीष्म ऋतुमें और शरद् ऋतुमें अधिक कुपित होताहै। शीत कालमे, शीतल वायु आदिके लगनेसे, अत्यन्त शीतल अति मधुर भोजनोंसे शान्त होता है॥ १०॥ ११॥

अथ कफजशूलनिदानसंप्राप्तिलक्षणानि।

आनूपवारिजकिलाटपयोविकारैः मांसेक्षुपिष्टकृशरातिलशष्कुलीभिः॥ अन्यैर्बलासजनकैरपि हेतुभिश्च श्लेष्मा प्रकोपमुपगम्य करोति शूलम्॥ १२॥ हृल्लासकासस दनारुचिसंप्रसेकैरामाशयैस्तिमितकोष्ठशिरोगुरुत्वैः॥ भुक्ते सदैव हि रुजं कुरुतेऽतिमात्रं सूर्योदयेऽथ शिशिरे कुसुमागमे च॥ १३॥

आनूपं बहुलजलदेशजं भक्ष्यम्। वारिजं शालूकादि॥

पक्वं दध्ना समं क्षीरं विज्ञेया दधिकूर्चिका॥ तक्रेण तत्कूर्चकं स्यात्तयोः पिण्डः किलाटकः॥ १४॥

पयोविकारः पायसादिः। पिष्टं माषादिः। अन्यैर्गुर्वादिभिः। स्तिमितमार्द्रपटावगुण्ठितमिव यत्कोष्ठं शिरश्च तयोर्गुरुत्वैः सहसूर्योदय इति त्रिधा विभक्तदिवसप्रथमभागस्य उपलक्षणम्। शिशिरे तत्र कफस्य अतिसञ्चयात्। कुसुमागमे वसन्ते॥

अधिक जलवाले देशोंमे उत्पन्न हुए भक्षोंसे, पक्षियोका मांस और मछलीआदिका मांस और फटे दूधके मावेको किलाट कहते हैं, जलमें उत्पन्न हुए कमलकन्द आदि पदार्थोंसे किलाट फटे दूधके मावेसे, दूधपाक आदिके पदार्थोंसे, मांससे, ईखके रससे, उडदादि पिसे अन्नसे, खिचडी, तिल, पूरी, कचौरी, दहीवडे और अन्य कफको उत्पन्न करनेवाले कारणोंसे, कुपित हुआ कफ आमाशयमें शूलको उत्पन्न करैहै। इस शूलसे हृल्लास (सूखी रद्द), खाँसी, ग्लानि, अरुचि और मुखसे लार गिरती हैं, उदर और मस्तक भारी रहताहै। भोजन करनेके पश्चात् यह शूल सर्वदा अत्यन्त पडिा करताहै और दिनके पहिले भागमें, शिशिर ऋतुमे, वसन्तऋतुमें, कफका सञ्चय तथा वृद्धि होनेसे यह शूल अधिक पीडा करताहै॥१२-१४॥

अथ द्विदोषोत्पन्नशूललक्षणम्।

द्विदोषलक्षणैरेतैर्विद्याच्छूलं द्विदोषजम्॥ १५॥

सम्पूर्ण दोषोके लक्षण ऊपर कहे हैं, उनमेंसे जिस शूलमें दो दोषोके लक्षण एकत्र देखनेमे आवें उस शूलको दो दोषोंसे उत्पन्न हुआ जानना॥ १५॥

अथ त्रिदोषोत्पन्नशूललक्षणम्।

सर्वेषु देशेषु च सर्वलिंगं विद्याद्भिषक्सर्वभवं हि शूलम्॥ सुकष्टमेनं विषवज्रकल्पं विवर्जनीयं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः॥ १६॥

सर्वेषु देशेषु हृत्पृष्ठपार्श्वत्रिकवस्तिनाभ्यामाश येषु। सर्वभवं त्रिदोषजम्॥

जो शूल (दर्द) ऊपर कहे हुए हृदय, पीठ, पसली, त्रिक, वस्ति, नाभि और आमाशय, इन सब स्थानोंमे होताहो और तीनो दोषोके लक्षणोंयुक्त होय, उसको

त्रिदोषज शूल जानना। यह शूल बहुत कष्टदायक है, विष तथा वज्रकी सदृश है और चिकित्सा करनेके योग्य भी नहीं है ऐसा वैद्योंने कहा है ॥ १६ ॥

अथामोत्पन्नशूललक्षणम्।

आटोपहृल्लासवमीगुरुत्वस्तैमित्यमानाहकफप्रसेकैः॥ कफस्य लिंगेन समानलिंगमामोद्भवं शूलमुदाहरन्ति ॥ १७ ॥

कफस्य कफशूलस्य। आमोद्भवम् आमादुद्भवो यस्य तम्। अत्र आमशूले जाते पश्चाद्दोषसम्बन्धः अत एव अस्य शूलस्य अष्टमत्वमुक्तम्। स च प्रथमम् आमाशये भवति पश्चात् सम्बन्धिभिः दोषैः वस्तिनाभिहृत्पार्श्वकुक्षिषु भवति यथादोषसम्बन्धः ॥

जिस शूलमें अफारा, हृल्लास (उबकाई), वमन, शरीरमें भारीपन, मन्दता, मुखसे कफका गिरना, यह उपद्रव होय तथा कफज शूलके सदृश लक्षण होय उस शूलको आमशूल कहते हैं। यह आमशूल उत्पन्न होनेपर उसमें दोषोंका सबन्ध होताहै इसकारण आमशूलको आठवा कहा है, यह शूल प्रथम आमाशयमें होताहै और पीछेसे दोषोंका सम्बन्ध होनेपर जिस दोषका सबध हुआ होय उस दोषकी रीतिके अनुसार वस्तिमें, नाभिमें, कोखमें, हृदयमें, पसलियोंमें और पेटमें होताहै ॥ १७ ॥

दोषभेदेन आमशूलस्थानभेदः।

वातात्मकं वस्तिगतं वदन्ति पित्तात्मकञ्चापि वदन्ति नाभ्याम् ॥ हृत्पार्श्वकुक्षौ कफसन्निविष्टं सर्वेषु देशेषु च सन्निपातात् ॥ १८ ॥

हृत्पार्श्वकुक्षौ हृत्पार्श्वाभ्यां सहिते कुक्षौ। कफसन्निविष्टं कफेन आविष्टम् ॥

वस्तौ हृत्कटिपार्श्वेषु स शूलः कफवातिकः॥ कुक्षौ हृन्नाभिमध्ये तु स शूलः कफपैत्तिकः॥ दाहज्वरकरो घोरो विज्ञेयो वातपैत्तिकः ॥ १९ ॥

आम[illegible] वायुके संबधसे हुआ होय तो मूत्राशयमें, पित्तके संबधसे हुआ होय तो नाभिमें, कफके संबधसे हुआ होय तो हृदयमें, पसलियोंमें तथा उदरमें और तीनो दोषोंके संबधसे हुआ होय तो संपूर्ण प्रदेशोंमें होताहै। कफके तथा वायुके सबधसे हुआ होय तो मूत्राशय, हृदय, कमर और पसलियोंमे होताहै, कफ तथा पित्तके सबधसे हुआ होय तो पेटमे, हृदय और नाभिके मध्यमें होताहै और वायु तथा पित्तके सबधसे हुआ होय तो दाह तथा ज्वरको उत्पन्न करै है परन्तु यह अत्यन्त भयदायक है यह शूल वातपित्तका समझना और यह भयकर है ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथ तंत्रान्तरोक्तामशूललक्षणम्।

अतिमात्रं यदा भुक्तं पावके मृदुतां गते॥ स्थिरीकृतन्तु तत्कोष्ठे वायुरावृत्य तिष्ठति ॥ २० ॥ यदान्नं न गतं पाकं तच्छूलं कुरुते भृशम् ॥ मूर्च्छाध्मानविदाहांश्च हृत्क्लेशं सविलम्बिकम् ॥ २१॥ कम्पं वान्तिमतीसारं प्रमेहं जनयेदपि ॥ अविपाकोद्भवं शूलमेतमाहुर्मनीषिणः २२॥

अविपाकोद्भवम् आमोद्भवमित्यर्थः ॥

अत्यन्त भोजन किये अन्नसे जठराग्नि मन्द होजानेके कारण वायु कोठेमें अन्नको स्थिरकरती है, वह अन्न वातमें मिलकर उदरमें स्थिर होकर जमजाता है और वात अन्नके चारो ओर रहताहै फिर वह अन्न पक्व नहीं होता तो वही दुष्ट अन्न नहीं पचकर भारी शूलको उत्पन्न करै है, तथा मूर्च्छा, अफारा, दाह, हृदयमें क्लेश, विलंबिका, कफ, वमन अतीसार और प्रमेहको उत्पन्न करै है, इस शूलको विद्वान् आमशूल कहते हैं ॥ २०–२२ ॥

अथ शूलोपद्रवाः।

वेदनातितृषा मूर्च्छा आनाहो गौरवारुची ॥ कासः श्वासो वमिर्हिक्का शूलस्योपद्रवाः स्मृताः ॥ २३ ॥

वेदना (पीडा), अत्यन्त तृषा, मूर्च्छा, मलबन्ध, भारीपन, अरुचि, खाँसी, श्वास, वमन और हिचकी, यह शूलके दश उपद्रव जानने ॥ २३ ॥

अथ शूलसाध्यासाध्यत्वम्।

एकदोषानुगः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः ॥ सर्वदोषान्वितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥ २४ ॥

जो शूल एक दोषवाला होय वह साध्य, दो दोषवाला होय वह कष्टसाध्य और तीन दोषोंवाला होय तथा अधिक उपद्रव सहित होय वह असाध्य तथा भयकर जानना ॥ २४ ॥

अथ शूलारिष्टम्।

वेदनाऽतितृषा मूर्च्छा आनाहो गौरवं ज्वरः॥ भ्रमोऽरुचिः कृशत्वञ्च बलहानिस्तथैव च॥ उपद्रवा दशैवैते यस्य शूलेषु नास्ति सः॥ २५॥

वेदना, अत्यन्त तृषा, मूर्च्छा, अफारा, भारीपन, ज्वर, भ्रम, अरुचि, दुर्बलता और बलकी हानि, इन दश उपद्रवों सहित शूलरोगी होय तो वह रोगी कदापि नही बच सक्ता ॥ २५ ॥

अथ शूलभेदः परिणामः।

स्वैर्निदानैः प्रकुपितो वातः सन्निहितो यदा॥ कफपित्ते समावृत्य शूलकारी भवेद्बली॥ भुक्ते जीर्यति यच्छूलं तदेव परिणामजम्॥ २६॥

स्वैर्निदानैरित्यादिना निदानपूर्विका संप्राप्तिरुक्ता। भुक्ते जीर्यतीत्यादिना लक्षणमुक्तम्। समावृत्य व्याप्य॥

तस्य लक्षणमप्येतत्समासेनाभिधीयते॥ आध्मानाटोपविण्मूत्रविबन्धारतिवेपनैः॥ स्निग्धोष्णोपशमप्रायं वातिकं तद्वदेद्भिषक्॥ २७॥ तृष्णादाहारतिस्वेदकट्वम्ललवणोत्तरम्॥ शूलं शीतशमप्रायं पैतिकं लक्षयेद् बुधः॥ २८॥ छर्दिहृल्लाससंमोहस्वल्परुग्दीर्घसन्ततिः॥ कटुतिक्तोपशान्तौ च विज्ञेयश्च कफात्मकम्॥ २९॥ संसृष्टलक्षणं बुद्ध्वा द्विदोषं परिकल्पयेत्॥ त्रिदोषजमसाध्यं स्यात्क्षीणमांसबलानलम्॥ ३०॥

अपने कारणोंसे कुपित हुआ बलवान् वायु जब कफ और पित्तमें व्याप्त होताहै तब शूल उत्पन्न होताहै और वह शूल भोजन किये अन्नके पचनेके समयमे होताहै इसको परिणाम शूल कहतेहैं। पेटका फूलजाना, गुड गुड शब्द होना, मलमूत्रका अवरोध, अरति, (मनका न लगना) तथा कप, यह लक्षण होयँ और स्निग्ध तथा उष्ण पदार्थोसे शांत होता होय उसको वैद्य वातसे उत्पन्न हुआ परिणामशूल कहतेहैं। जिसमें तृषा, दाह, अरति, स्वेद (पसीना), तीक्ष्ण खट्टे तथा खारी पदार्थोंसे हुआ होय और शीतल पदार्थोंसे जो शान्त होता होय उसको विद्वान्,पित्तसे उत्पन्न हुआ परिणाम शूल कहतेहै। जिसमें वमन, हृल्लास,मोह तथा अल्प पीडा होय बहुत दिनोंतक रहै और तीक्ष्ण तथा कडवे पदार्थोंसे जो शात होताहोय तो उस शूलको कफसे उत्पन्न हुआ परिणाम शूल जानना। उपरोक्त लक्षणोमेंसे दो दोषके लक्षण मिलते होयँ तो वह द्वन्द्वज और जिसमे उपरोक्त तीनों दोषोके लक्षण मिलते होयँ उसको त्रिदोषज जानना। जो शूल त्रिदोषज होय और जिसने मांस बल तथा अग्निको क्षीण करदिया होय वह परिणाम शूल असाध्य जानना ॥ २६-३० ॥

अथाद्रवनामकशूललक्षणम्।

जीर्णे जीर्यति चाप्यन्ने यच्छूलमुपजायते॥ पथ्यापथ्यप्रयोगेण भोजनाभोजनेन वा॥ न शमं याति नियमात्सोऽन्नद्रव उदाहृतः॥ ३१॥

नेदं शूलमसाध्यं चिकित्साभिधानात्॥

भोजन किया हुआ अन्न पचनेके ससयमें अथवा पचनेके पश्चात् जो शूल उत्पन्न होजाताहै, तथा पथ्यसे, अपथ्यसे, भोजनसे, अथवा अभोजनसे जिसके शात होनेका नियम नहीं है वह अन्नद्रव शूल कहाताहै, इस शूलको असाध्य नही जानना, क्योंकि ग्रथोंमे वैद्य लोगोंने चिकित्सा कही है ॥ ३१ ॥

अथ शूलचिकित्सा।

वमनं लंघनं स्वेदः पाचनं फलवर्तयः॥ क्षारश्चूर्णानि गुटिकाः शस्यन्ते शूलशान्तये॥ ३२॥ विज्ञाय वातशूलन्तु स्नेहस्वेदैरुपाचरेत्॥ स्वल्पशूलाकुलस्य स्यात्स्वेद एव सुखावहः॥ ३३॥

वमन, लघन, स्वेदन, पाचन, फलवर्त्ति (गुदामे वत्ती चढाना,) क्षार, चूर्ण और गोली, यह सब उपाय शूलके

शांति करनेके लिये उत्तम कहे हैं । शूल वायुसे हुआ जाने तो स्नेहन तथा स्वेदन उपचार करै, किंचित् शूल होय तो स्वेद करनेसे सुख होताहै ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अथ मृत्तिकास्वेदः ।

मृत्तिकां सजलां पाकाद्घनीभूतां पटे क्षिपेत् ॥ कृत्वा तत्पोटलीं शूली यथास्वेदं विधारयेत् ॥ ३४ ॥

मट्टीमें पानी डालकर पकावे, जब गाढी होजाय तब कपडेमें रख पोटली कर लेवे, इससे योग्य सेक करै तो वायुका शूल दूर होताहै, इसको मृत्तिकास्वेद कहते हैं ॥ ३४ ॥

अथ कार्पासास्थ्यादिस्वेदः ।

कार्पासास्थिकुलत्थकैस्तिलयवैरेरण्डमूलातसीवर्षाभूशणबीजकाञ्जिकयुतैरेकीकृतैर्वा पृथक् ॥ स्वेदः स्यादथ कूर्परोदरशिरःस्फिग्जानुपादांगुलीगुल्फस्कन्धकटीरुजो विजयते निःशेषवातार्तिहा ॥ ३५ ॥

कपासकी अस्थि (विनोले), कुलथी, तिल और जो इन सबको अथवा एक एकको अरंडकी जड, अलसी, सांठ, सनके बीज और काँजी, इन सबके साथ मिलाकर गरम करलेवे, इससे स्वेद देवे तो पहुचा, पेट, शिर, कूल्हा, घटुआ, पैर, पांव, अगुली, एडी, कंधा और कमर इनका शूल नष्ट होताहै और अन्यवायु संबंधी सम्पूर्ण पीडा दूर होतीहै, इसको कार्पासास्थ्यादिस्वेद कहतेहैं ॥ ३५ ॥

अथ तिलादिगुटिका ।

तिलैश्च गुटिकां कृत्वा भ्रामयेज्जठरोपरि॥ शूलं सुदुस्तरं तेन शान्तिं गच्छति सत्वरम् ॥ नाभिलेपाज्जयेच्छूलं मदनं काञ्जिकान्वितम् ॥ ३६ ॥

मदनं मयनफलम् ॥

निर्भंगरण्डजं मूलं क्वाथयित्वा जलं पिबेत् ॥ हिंगुसौवर्चलोपेतं सद्यः शूलनिवारणम् ॥ ३७ ॥

तिलोंकी [illegible] गोली बनावे और पेटके ऊपर फेरे तो इससे [illegible], भी तुरंत शान्त होजाताहै । अथवा [illegible] नाभिके ऊपर लेप करे तो शूल, मूलसे जातारहताहै । सोंठ और अंडीकी जड, इनका क्वाथ करके उसमें भूनी हींग तथा कालानोन डालकर पिये तो तुरंतही शूल नष्ट होताहै ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

अथ वातजशूलचिकित्सा ।

पुंसः शूलाभिपन्नस्य स्वेद एव सुखावहः ॥ पायसैः कृशरैः पिंडैः स्निग्धैर्वा पिशितोत्करैः ॥ ३८ ॥ वातात्मकं हन्त्यचिरेण शूलं स्नेहेन युक्तस्तु कुलत्थयूषः ॥ ससैंधवव्योषयुतः सलावः सहिंगुसौवर्चलदाडिमाढ्यः ॥ ३९ ॥

शूल रोगीको तिल चावलकी यवागू तथा स्निग्ध मेडक आदिके मांससे स्वेदन करना अत्यन्त उपकारी है । लवापक्षीका मांस और कुलथी इन दोनोंका क्वाथ करके उसके साथ थोडासा सैंधव निमक, त्रिकुटा, (सोंठ मिरच पीपल) अनारदानेका रस और सचरनिमक मिलायके सेवन करै तो शीघ्र वातशूल दूर होताहै ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

बलापुनर्नवैरंडबृहतीद्वयगोक्षुरैः ॥ सहिंगुलवणोपेतं सद्यो वातरुजापहम् ॥४०॥ तुंबुरुण्यभया हिंगु पौष्करं लवणत्रयम् ॥ पिबेदुष्णांबुना वापि शूलगुल्मापतंत्रकी॥ ॥ ४१ ॥ यवानी हिंगुसिंधूत्थक्षारसौवर्चलाभयाः ॥ सुरामंडेन पातव्या वातशूलनिषूदनाः ॥ ४२ ॥ सौवर्चलाम्लिकाजाजी मरिचैर्द्विगुणोत्तरैः॥ मातुलुंगरसैः पिष्टा गुटिका वातशूलनुत् ॥ ४३ ॥ बीजपूरकमूलं च घृतेन सह पाययेत् ॥ जयेद्वातभवं शूलं कर्षमेकं प्रमाणतः ॥ ४४ ॥

सिरैंटी, पुनर्नवा, अंड, छोटीकटेरी, बडीकटेरी इनके क्वाथमे हींग और सैंधानिमक डालके पीवे तो वातशूल नष्ट होय अथवा तुंबुरू, हरड, हींग, पोहकरमूल, सचर सैंधा और बिड निमक इनका समानभाग चूर्णकर गरम जलके साथ पीवे तो शूल, गोला और अपतंत्रवात, दूर होय । अथवा अजमायन, हींग, सैंधानिमक, सज्जीखार, जवाखार, संचरनिमक और हरडके चूर्णको, मद्य, अथवा माडके पीवे तो वातशूल दूर होय अथवा सचरनिमक २ भाग, इमली ४ भाग, जीरा ८ भाग और कालीमिरच

१६ भाग, इन सबको बिजोरेके रसमे खरलकर गोली बनावे, यह वातशूलको नष्ट करेहै अथवा बिजोरेकी जडका २ तोले चूर्ण कर घीके साथ पीये तो वातशूल नष्ट होय ॥ ४०-४४ ॥

अथ पित्तजशूलचिकित्सा।

गुडं शालिर्यवक्षारः सर्पिःपानं विरेचनम्॥ जांगलानि च मांसानि भेषजं पित्तशूलिनाम् ॥ ४५ ॥ मणीरजतताम्राणां भाजनानि गुरूणि च ॥ तोयेन परिपूर्णानि शूलस्योपरि धारयेत् ॥ ४६ ॥ विरेचनं पित्तहरं प्रशस्तं रसाश्च शस्ताः शशलावकानाम् ॥ सगुडां घृतसंयुक्तां भक्षयेद्वा हरीतकीम् ॥ प्रलिह्याच्छूलशान्त्यर्थं धात्रीचूर्णं समाक्षिकम् ॥ ४७ ॥

जिसको पित्तका शूल हुआहो उसके लिये गुड, शालि चावलोंका भात, जवाखार, घी पीना, विरेचन और जांगलदेशके पशु पक्षियोका मांस, यह औषधिरूप हैं। मणि (रत्नादिक), चांदी, अथवा तांबेके भारीभारी पात्रोंमें भर कर पित्तज शूलके ऊपर धरै इससे पित्तजशूल नष्ट होता है। पित्तको हरनेवाला विरेचन, खरगोश और लवेके मांसका रस यह पित्तजशूलको शान्त करैहै। हरडोंका चूर्ण करके उसको गुड घीमे मिलाकर चाटनेसे अथवा सहतके साथ आमलेका चूर्ण चाटे तो पित्तजशूलकी शांति होतीहै ॥ ४५-४७ ॥

अथ कफजशूलचिकित्सा।

शाल्यन्नं जांगलं मांसमरिष्टं कटुकं रसम् ॥ मधुना जीर्णगोधूमं कफशूले प्रयोजयेत् ॥ ४८ ॥
अरिष्टं भेषजवारिकाथसिद्धं मद्यम् ॥
लवणत्रयसंयुक्तं पंचकोलं सरामठम् ॥
सुखोष्णेनांबुना पीतं कफशूलं प्रणाशयेत् ४९

कफसम्बन्धी शूल हुआ होय तो शालिचावल, जांगलदेशके पशु पक्षियोंका मांस, अरिष्ट (योग्य औषधियोंके जलके क्वाथसे बनाईहुई मदिरा), तीक्ष्ण रस और मदिराके साथ पुराने गेहूँके पदार्थ यह सेवन करे। सैंधानोन, बिडनोंन, कालानोन, सोंठ, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, मिरच और हींग इनका चूर्ण करके सुहाते २ गरम जलके साथ पिये तौ इससे कफजशूल नष्ट होताहै ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

अथामशूलचिकित्सा।

आमशूले क्रिया कार्या कफशूलप्रणाशिनी ॥ सेव्यमामहरं सर्वमग्नेर्मन्दस्य वर्द्धनम् ॥ ५० ॥ तीक्ष्णायश्चूर्णसंयुक्तं त्रिफलाचूर्णमुत्तमम् ॥ प्रयोज्यं मधुसर्पिर्भ्यां सर्वशूलनिवारणम् ॥ ५१ ॥ दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिंगुसैन्धवैः ॥ अम्लपिष्टैः सुखोष्णैश्च लिम्पेच्छूलयुतोदरम् ॥ ५२ ॥ मूलं बैल्वं तथैरण्डं चित्रकं विश्वभेषजम् ॥ हिंगुसैन्धवसंयुक्तं सद्यः शूलनिवारणम् ॥ ५३ ॥

वातरोगान्तर्गताध्मानचिकित्सायां लिखितो नाराचनामा रसोऽन्यच्च विरेचनं शूले हितम् ॥

आमशूल हुआ होय तो कफशूलको नष्ट करनेवाली क्रिया करै, आमको नष्ट करनेवाले सब पदार्थोंका सेवन करै और मन्दहुई अग्निको प्रदीप्त करै। राईका चूर्ण और हरड, बहेडा तथा आमले इनका चूर्ण सहतमे तथा घीमे मिलाकर खावे तो उससे सर्व प्रकारके शूल नष्ट होतेहैं अथवा देवदारु, सफेदवच, कूठ, सोया, हींग, और सैंधानिमक इनको नींबूके रसमे पीसकर सुहाता २ गरम लेप करै, इससे उदरका शूल निर्मूल होताहै। अथवा बेलकी जड, अण्डकी जड, चीता और सोंठ इनका चूर्ण करके हींग और सैंधेनोनके साथ खाय तो इससे तत्काल शूल निवृत्त होताहै ॥ ५०-५३ ॥

वायुसम्बन्धी रोगोंके प्रकरणमें आध्मानकी चिकित्सापर जो नाराचनामक रस कहाहै वह और अन्य भी विरेचन शूलपर हितकारी हैं।

अथ कूष्माण्डक्षारः।

कूष्माण्डं तनु कृत्वा तु क्षिप्त्वा घर्मे विशोषयेत् ॥ स्थाल्यां निक्षिप्य तत्सर्वं पिधानेन पिधाय च ॥ ५४ ॥ चुल्ल्यां निवेश्य वह्निश्च ज्वालयेत्कुशलो जनः ॥ यथा तन्न भवेद्भस्म किन्त्वंगारो दृढो भवेत् ॥ तदा निर्वापयेच्छीतं सर्वथा

चूर्णितन्तु तत् ॥ ५५ ॥ माषद्वयमितं तावच्छुण्ठीचूर्णेन मिश्रितम् ॥ जलेन भक्षयेन्नित्यं महाशूलाकुलो नरः ॥ असाध्यमपि यच्छूलं तदप्येतेन शाम्यति ॥ ५६ ॥

पेठेके छोटे २ टुकडे करके धूपमें सुखावे, पश्चात् इन सब टुकडोंको हांडीमें भरकर ऊपरसे ढकदेवे, फिर चूल्हेपर चढाकर नीचे अग्नि जलादेवे, परन्तु अग्नि इस प्रकार जलावे कि जिससे पेठेके टुकडे जल न जायँ किंतु दृढ अंगारोंकी सदृश होजावँ फिर इनको शीतल होनेपर चूर्ण करलेवे, और बारह रत्ती इसके चूर्णमें, बारह रत्ती सोंठका चूर्ण मिलाकर पानीसे नित्य भक्षण करै तो इससे असाध्य शूलभी शान्त होजाताहै । अत्यन्त शूलसे व्याकुल हुए मनुष्योंको यह उपाय करना चाहिये, इसको कूष्माण्डक्षार कहतेहैं ॥ ५४–५६ ॥

अथ परिणामशूलचिकित्सा ।

लंघनं प्रथमं कुर्याद्वमनं सविरेचनम् ॥ पक्तिशूलोपशान्त्यर्थं तत्र वान्तेर्विधिर्यथा ॥ ५७ ॥ पीत्वा तु क्षीरमाकण्ठं मदनक्वाथसंयुतम् ॥ कान्तारकस्य पौण्ड्रस्य कोशकारस्य वा रसम् ॥ ५८ ॥ कषायो वाथ निम्बस्य कटुतुम्बीरसोऽथ वा ॥ यथाविधि वमेद्धीमान्पक्तिशूलार्दितो जनः ॥ ५९ ॥ त्रिवृता च तथा दन्त्या तलैर्वैरंडजेन वा ॥ दत्तं विरेचनं सद्यः पक्तिशूलनिवारणम् ॥ ६० ॥

परिणामशूलकी शांतिके लिये प्रथम लंघन और पश्चात् वमन तथा विरेचन करावे । वमनकी विधि इस प्रकार है कि, परिणाम शूलसे पीडित मनुष्यको मैनफलके क्वाथसे युक्त दूधको, अथवा कांतार (काल्पोन्ने) के रसको, अथवा पौण्ड्रक ईखके रसको वा कोशकार ईखके रसको वा नीमके क्वाथको अथवा कडवी तोंबीके क्वाथको कण्ठतक पीकर विधिपूर्वक वमन करै । निसोत, दन्ती (जमालगोटेकी जड) अथवा अण्डीके तेलका विरेचन (जुलाब) दे तो तुरन्त परिणामशूल नष्ट होताहै ५७–६०

अथ विडंगादिमोदकः ।

विडंगतण्डुलव्योषत्रिवृद्दन्तीसचित्रकम् ॥ सर्वाण्येतानि संहृत्य सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ६१ ॥ गुडेन मोदकान्कृत्वा खादेदुष्णेन वारिणा ॥ जयेत्त्रिदोषजं शूलं परिणामसमुद्भवम् ॥ ६२ ॥

वायविडंग, चावल, सोंठ, मिरच, पीपल, निसोत, दन्ती और चीता, इन सबका एकत्र बारीक चूर्ण करके गुडमें मिलाकर लड्डू बनालेवे, फिर गरम जलके साथ खाय तो तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुआ परिणामशूल नष्ट होता है, इसको विडंगादिमोदक कहतेहैं ॥ ६१–६२ ॥

अथ शुण्ठ्यादिकल्कः ।

नागरतिलगुडकल्कं पयसा संपिष्य यः पुमाँल्लिह्यात् ॥ उग्रं परिणतिशूलं नश्येत्तस्य त्रिरात्रेण ॥ ६३ ॥ पीतशम्बूकजं भस्म जलेनोष्णेन तत्क्षणात् ॥ पक्तिजं नाशयत्येव शूलं विष्णुरिवासुरान् ॥ ६४ ॥

जो मनुष्य सोंठ, तिल और गुड इनका कल्क करके दूधमें पीसकर चाटे तो उग्र परिणामशूल भी तीन दिनमें नष्ट होजाता है । अथवा छोटे २ घोंघोंकी भस्मको गरम जलके साथ पिये तो जिस प्रकार विष्णु दैत्योंका नाश करतेहैं उसीप्रकार यह भस्म परिणाम शूलको तुरन्त शान्त करदे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

अथ पथ्यादिलोहः ।

लौहपथ्याकणाशुण्ठीचूर्णं समधुसर्पिषा ॥ विलिहन्विनिहन्त्येव शूलं हि परिणामजम् ॥ ६५ ॥

लोहेकी भस्म, हरड, पीपल और सोंठ इनका चूर्ण करके सहत और घीके साथ चाटे तो इससे परिणामशूल अवश्य नष्ट होजाताहै ॥ ६५ ॥

अथ नारिकेलक्षारः ।

नारिकेलं सतोयश्च लवणेन सुपूरितम् ॥ मृदा च वेष्टितं शुष्कं पक्वगोमयवह्निना ॥ ६६ ॥ पिप्पल्या भक्षितं हन्ति शूलं हि परिणामजम् ॥ वातिकं पैत्तिकञ्चापि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ ६७ ॥

पानी भरेहुए गीले नारियलके पेटमें भलीभांति नोंन भरदेवे, पश्चात् कपडमट्टी करके सुखाकर अरने उपलोंकी अग्निसे पकावे और भस्म करलेवे, यह भस्म पीपलके चूर्णके साथ खाय तो इससे वायुसम्बन्धी, पित्तसम्बन्धी,

कफसम्बन्धी और त्रिदोषसम्बन्धी परिणामशूल भी नष्ट होताहै ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

अथान्नद्रवशूलचिकित्सा ।

अन्नद्रवाख्ये शूले तु न तावत्स्वास्थ्यमश्नुते ॥ यावत्कटुकपित्ताम्लमन्नं न च्छर्दयेद्द्रवम् ॥ ६८ ॥ जातमात्रे जरत्पित्ते शूलमाशु विनाशयेत्॥पित्तार्तं वमनं कृत्वा कफार्तश्च विरेचनम् ॥ ६९ ॥ अन्नद्रवे च तत्कार्यं जरत्पित्ते यदीरितम्॥ जरत्पित्तेऽपि यत्पथ्यं प्रोक्तमन्नद्रवे तु यत् ॥ ७०॥ आमपक्वाशये शुद्धे गच्छेदन्नद्रवः शमम्॥ माषेण्डरीं सलवणां सुस्विन्नां तैलपाचिताम् ॥ तादृशीं सर्पिषा खादेदन्नद्रवनिपीडितः ॥ ७१ ॥ धात्रीफलभवं चूर्णमयश्चूर्णसमन्वितम् ॥ यष्टीचूर्णेन वा युक्तं लिह्यात्क्षौद्रेण तद्द्रवे ॥ ७२ ॥

जबतक तीक्ष्ण, गरम और पित्तमिले खट्टे अन्नको रोगी वमन न करैगा तबतक अन्नद्रवके शूलमे स्वस्थता प्राप्त नहीं होसक्ती। परिणामशूल पित्तसे उत्पन्न हुआ होय तो तुरन्तही वमन करके नष्ट करदेवे और कफसे हुआ होय तो विरेचनसे नष्ट करदेवे। जो चिकित्सा परिणामशूलमें कही है वही अन्नद्रव शूलमें भी करै।जो चिकित्सा अन्नद्रव शूलमें कही है वह परिणामशूलमे भी करै। रोगीका आमाशय और पक्वाशय शुद्ध होनेसे अन्नद्रवशूल शान्त होताहै। अन्नद्रवशूलसे पीडित मनुष्य हींग,मिरच, जीरा तथा अदरख पडीहुई उडदकी पिट्ठीकी छोटी छोटी बडियें करके उनको भलीभांति तेलमे पकाकर घीके साथ खाय। आमलेका चूर्ण करके उसमे लोहेका चूर्ण अथवा मुलैठीका चूर्ण मिलाकर सहतके साथ खाय तो इससे अन्नद्रवशूल नष्ट होजाताहै ॥ ६८-७२ ॥

श्यामाकतण्डुलैः सिद्धं सिद्धं कोद्रवतण्डुलैः॥प्रियंगुतण्डुलैः सिद्धं पायसं सहितं हितम् ॥ ७३ ॥

अत्र प्रियंगुः कंगुविशेषः ॥

गौडिकं शौरणं कन्दं कूष्माण्डमपि भक्षयेत्॥ कलाययवसक्तून्वा सक्तून्वा लाजसम्भवान् ॥ ७४ ॥

गौडिकं गुडेन संस्कृतं पक्वान्नम् ॥

कुलत्थसक्तूनथ वा दध्ना दद्याच्च दाधिकम् ॥ चणकानामथो सक्तून्कोद्रवस्यौदनं तथा ॥ ७५ ॥

दाधिकं दध्ना संस्कृतं भक्तं महेरि इति लोके॥

गोधूममण्डकं तत्र सर्पिषा गुडसंयुतम् ॥ ससितं शीतदुग्धेन मृदितं कथितं हितम् ॥ ७६ ॥ अन्नद्रवो दुश्चिकित्स्यो दुर्विज्ञेयो महागदः ॥ तस्मात्तस्य प्रशमने परं यत्नं समाचरेत्॥७७॥ अन्नद्रवे जरत्पित्ते वह्निर्मन्दो भवेद्यतः ॥ तस्मादत्रान्नपानानि मात्राहीनानि कारयेत् ॥ ७८ ॥ कलाययवगोधूमाः श्यामाकाः कोरदूषकाः ॥ राजमाषाश्च माषाश्च कुलत्थाः कंगुशालयः ॥ ७९ ॥ दधिलुप्तरसं क्षीरं सर्पिर्गव्यं समाहिषम् ॥ वास्तूकं कारवेल्लं च कर्कोटकफलानि च ॥८०॥बर्हिणो हरिणो मत्स्या रोहिताद्याः कपिञ्जलाः ॥ एतस्मिन्नामये शस्ता मता मुनिचिकित्सकैः ॥ ८१ ॥

दधिलुप्तरसं दध्ना लुप्तः प्रकृतो रसो यस्य तत्क्षीरं दधियुक्तं क्षीरमित्यर्थः ॥

समा, कोदो, अथवा कंगनीकी दूधमे खीर बनाकर उसमे पथ्य (बूरा वगैरह) इत्यादि पदार्थ डालकर खाय, अन्नद्रवशूलवालेको हितकारी है। अथवा गुडके बने पदार्थ, सूरनकद, पेठा, मटर, जौके सत्तू, खीलेके सत्तू, कुलथीके सत्तू दहीके साथ खाय, अथवा दहीके बने पदार्थ खाय, चनेके सत्तू अथवा कोदोंका भात खाय यह भी हितकारी है। गेहूँके मांडक (गेहूँकी खीर) को घी और गुड तथा बूरा मिलाकर शीतलदूधमें मलकर खाय यह भी हितकारी है। और भिषक्जनोंको उचित है कि, अन्नद्रव शूल भयकर महारोग और दुश्चिकित्स्य है इस कारण इसकी शाति करनेमे भलीभाँति प्रयत्नकरै, अन्नद्रव शूलमें और परिणामशूलमे जठराग्नि मंद होजातीहै इसलिये इस रोगमे अन्न और जलकी अल्प मात्रा देनी चाहिये। मटर, जौ, गेहूँ, समा, कोदों, चौरा, उडद, कुलथी,

चगनी, शालिचावल, दहीमिला दूध, गाय तथा भैंसका घी, बथुआ, करेले, ककोडे, मोर तथा हिरनका मास, रोहू आदि मछलिये और तीतरका मास, यह अन्नद्रवशूलमें परम हितकारी है ऐसा वैद्योंने माना है ॥ ७३-८१ ॥

अथ गुडमंडूरम् ।

गुडामलकपथ्यानां चूर्णं प्रत्येकशः पलम् ॥ त्रिपलं लोहकिट्टस्य तत्सर्वं मधुसर्पिषा ॥ ८२ ॥ समालोड्य समश्नीयादक्षमात्रप्रमाणतः ॥ आदिमध्यावसानेषु भोजनस्य निहन्ति तत् ॥ ८३ ॥ अन्नद्रवं जरत्पित्तमम्लपित्तं सुदारुणम् ॥ परिणामसमुत्थश्च शूलं संवत्सरोत्थितम् ॥ ८४ ॥

गुड, आमलेका चूर्ण, हरडोंका चूर्ण यह प्रत्येक चार चार तोले, लोहेकी कीटकी भस्म १२ तोले इनको सहत तथा घीमें मिलाकर भोजनके आदिमें मध्यमें तथा अंतमें एक एक तोलाभर खाय तो यह महादारुण अन्नद्रवशूल, परिणामशूल और जरत्पित्त, इनको नष्ट करैहै । इसको गुडमंडूर कहते हैं ॥ ८२-८४ ॥

अथ शूलरोगेऽपथ्यम् ।

व्यायामं मैथुनं मद्यं लवणं कटुकं रसम् ॥ वेगरोधं शुचं क्रोधं द्विदलं शूलवांस्त्यजेत् ॥ ८५ ॥

इति शूलपरिणामशूलान्नद्रवजरत्पित्ताधिकारः ।

व्यायाम, मैथुन, मद्यपान, नमक, तीक्ष्ण रस, विष्ठा आदिके वेगका अवरोध, शोक क्रोध और चना, मूंग आदिकी दाल इनको शूलरोगी त्याग देवै ॥ ८५ ॥

इति शूलाधिकारः समाप्तः ।

अथोदावर्ताधिकारः ।

तत्रोदावर्तनिदानम् ।

वातविण्मूत्रजृम्भाश्रुक्षवोद्गारवमीन्द्रियैः ॥ क्षुत्तृष्णोच्छ्वासनिद्राणां धृत्योदावर्तसम्भवः ॥ १ ॥

इन्द्रियमत्र शुक्रम् । अत्र तृतीया सहार्था धृत्या वेगविधानेन ॥

अधोवायु, विष्ठा, मूत्र, जम्भाई, आंसू, छींक, डकार, वमन, वीर्य, भूँख, प्यास, श्वास और नींद, इनके तेरह वेगोंके रोकनेसे उदावर्त रोगकी उत्पत्ति होतीहै ॥ १ ॥

अथोदावर्तसामान्यलक्षणम् ।

यत्रोर्ध्वं जायते वायोरावर्तः स चिकित्सकैः ॥ उदावर्त इति प्रोक्तो व्याधिस्तत्रानिलः प्रभुः ॥ २ ॥

आवर्तो भ्रमः ॥

जिस रोगमें वायुका आवर्त (चक्कर) ऊपरको जाताहै उसको वैद्य उदावर्त कहतेहैं, इस रोगमें वायु मुख्य है ॥ २ ॥

अथाधोवातावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् ।

वातमूत्रपुरीषाणां संगो ध्मानं क्लमो रुजा ॥ जाठरे वातजाश्चान्ये रोगाः स्युर्वातनिग्रहात् ॥ ३ ॥

संगः अप्रवृत्तिः । ध्मानमाध्मानम् । क्लमः अनायासश्रमः रुजा जठरे । अन्ये तोदशूलगुल्मादयः ॥

अधोवायुके रोकनेसे वायु, मूत्र तथा विष्ठाका अवरोध होताहै, तथा पेटका फूलना, अनायासही परिश्रम और पीडाका होना और शूल, गुल्म आदि अन्य वायुसम्बधी रोगभी होतेहैं ॥ ३ ॥

अथ पुरीषावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् ।

आटोपशूलौ परिकर्तिका च संगः पुरीषस्य तथोर्ध्ववातः ॥ पुरीषमास्यादथ वा निरेति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य ॥ ४ ॥

पुरीषवेगे धारिते सति आटोपः सरुक् गुडगुडाशब्दः शूलमिति पक्वाशये । परिकर्तिका गुदे कर्तनवत्पीडा । ऊर्द्ध्ववातः उद्गारः ॥

विष्ठाके वेगको रोकनेसे पेटमें गुडगुडाहट, पक्वाशयमें पीडा, गुदामें कतरनेकी तरह पीडा, होतीहै, मलका रुक जाना, खट्टी खट्टी डकारोंका आना अथवा डकारके साथ मल भी निकलताहै ॥ ४ ॥

अथ मूत्रावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम्।

वस्तिमेहनयोः शूलं मूत्रकृच्छ्रं शिरोरुजा॥ विनामो वङ्क्षणानाहः स्याल्लिंग मूत्रनिग्रहे ॥ ५ ॥

विनामः व्यथया वपुषो नमनम्। वंक्षणानाहः वंक्षणयोराकर्षणवद्व्यथा ॥

मूत्रका वेग रोकनेसे मूत्राशयमे तथा लिगमे शूल, मूत्रकृच्छ्, मस्तकमे पीडा, पीडासे शरीरका न उठना और पेडूमे अफारा होताहै ॥ ५ ॥

अथ जृम्भावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम्।

मन्यागलस्तम्भशिरोविकारा जृम्भोपघातात्पवनात्मकाः स्युः ॥ तथाक्षिनासावदनामयाश्च भवन्ति तीव्राः सह कर्णरोगैः ॥ ६ ॥

जम्भाईको रोकनेसे मन्या (गले नाडके पीछेकी नस) और गलेका स्तम्भ, मस्तकमें वातसंबधी पीडा, नेत्र, नाक, मुखमें और कानोंमे तीव्र पीडा होतीहै ॥ ६ ॥

अथ नेत्रोदकावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम्।

आनन्दजं वाप्यथ शोकजं वा नेत्रोदकं प्राप्तममुञ्चतो हि ॥ शिरोगुरुत्वं नयनामयाश्च भवन्ति तीव्राः सह पीनसेन ॥ ७ ॥

आनन्द अथवा शोकके कारण प्राप्तहुए आंसुओके वेगोको कभी न रोके, क्योकि रोकनेसे मस्तकमे भारीपन नेत्रपीडा और पीनसरोग होताहै ॥ ७ ॥

अथ छिक्कावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम्।

मन्यास्तम्भः शिरःशूलमर्दितार्द्धावभेदकौ॥ इन्द्रियाणाञ्च दौर्बल्यं क्षवथोः स्याद्विधारणात् ॥ ८ ॥

छींकके रोकनेसे मन्या (नाडीके पीछेकी नस) का स्तम्भ, शिरमें शूल, अर्दित वात, आधे मुखका टेढा हो जाना और सब इन्द्रियोकी दुर्बलता, ये रोग उत्पन्न होजातेहै ॥ ८ ॥

अथोद्गारावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम्।

कण्ठास्यपूर्णत्वमतीव तोदः कूजश्च वायोरथ वाऽप्रवृत्तिः ॥ उद्गारवेगेऽभिहते भवन्ति जन्तोर्विकाराः पवनप्रसूताः॥९॥

कण्ठास्यपूर्णत्वं कवलेनेव। तोदो हृदि आमाशये च ॥ कूजोऽव्यक्तशब्दः उदरे वायोरप्रवृत्तिः ॥ उच्छ्वासादिनिरोधात् पवनप्रसूताः पवनाज्जाता विकाराः हिक्कादयः॥

डकारके रोकनेसे कठ कौरसे रुका हुआसा प्रतीत हो, हृदय तथा आमाशयमे चैंठोंके काटनेकेसी अत्यत पीडा, पेटमे वायुका कूजना, श्वास आदिके रुकनेसे पवनकी अप्रवृत्ति और अन्य हिचकी आदि वायुसवधी विकार होते हैं ॥ ९ ॥

अथ वमनावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम्।

कण्डूकोठारुचिव्यङ्गशोथपाण्ड्वामयज्वराः ॥ कुष्ठहृल्लासवीसर्पाश्छर्दिनिग्रहजा गदाः ॥ १० ॥

वमनका वेग रोकनेसे शरीरमें खुजली, चकत्ते, दाह, अरुचि, झॉई, सूजन, पाण्डुरोग, ज्वर, कोढ, हृल्लास और विसर्प, ये सब उत्पन्न होते है ॥ १० ॥

अथ वीर्यावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम्।

मूत्राशये वै गुदमुष्कयोश्च शोथो रुजा मूत्रविनिग्रहश्च ॥ शुक्राश्मरी तत्स्रवणं भवेच्च तेते विकारा विहते तु शुक्रे ॥ ११ ॥

तत्स्रवणं शुक्रस्रावः। तेते विकाराः वातकुण्डलिकादयः ॥

स्त्रीप्रसग करनेके समय वीर्यका वेग रोकनेसे मूत्राशय, गुदा तथा अडकोषोंमे सूजन और पीडा, मूत्रका अवरोध, शुक्राश्मरी (वीर्यकी पथरी), वीर्यका स्राव और अन्य वातकुण्डलिका आदि विकार होते है ॥ ११ ॥

अथ क्षुधावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम्।

तन्द्रांगमर्दावरुचिः श्रमश्च क्षुधाविघातात्कृशता च दृष्टेः ॥ १२ ॥

भूँखके रोकनेसे—तन्द्रा, अगोंका टूटना, अरुचि, परिश्रम और दृष्टिकी मदता, ये उपद्रव होते हैं ॥ १२ ॥

अथ तृषावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् ।

कण्ठस्य शोथः श्रवणावरोधस्तृष्णाविघाताद्धृदये व्यथा च ॥ १३ ॥

प्यासके रोकनेसे कण्ठ और मुखका सूजन, श्रवणशक्तिका मन्द होना और हृदयमें पीडा ये लक्षण होते हैं ॥ १३ ॥

अथ श्वासावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् ।

श्रान्तस्य निःश्वासविनिग्रहेण हृद्रोगमोहावथ वापि गुल्मः ॥ १४ ॥

थका हुआ मनुष्य श्वासको रोके तो हृदयमें पीडा मोह और गुल्म रोग उत्पन्न होता है ॥ १४ ॥

अथ निद्रावरोधोत्पन्नोदावर्तलक्षणम् ।

जृम्भांगमर्दोऽतिशिरोऽतिजाड्यं निद्राविघातादथ वापि तन्द्रा ॥ १५ ॥

अतिजाड्यं गौरवम् । शिरोगात्राक्षिगौरवमिति तन्त्रान्तरे पाठात् ॥

निद्राको रोकनेसे जम्भाई, अगोंका टूटना, मस्तक, शरीर तथा नेत्रोंमें भारीपन होताहै और तन्द्रा भी होतीहै ॥ १५ ॥

अथ रूक्षादिवस्तुकुपितवातोत्पन्नोदावर्तनिदानसम्प्राप्तिलक्षणानि ।

वायुः कोष्ठानुगो रूक्षैः कषायकटुतिक्तकैः ॥ भोजनैः कुपितः सद्य उदावर्तं करोति च ॥ १६ ॥ वातमूत्रपुरीषास्रुकफमेदोवहानि वै ॥ स्रोतांस्युदावर्तयति पुरीषं च प्रवर्तयेत् ॥१७॥ ततो हृद्वस्तिशूलार्तो हृल्लासारतिपीडितः ॥ वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण लभते नरः ॥ १८ ॥ श्वासकासप्रतिश्यायदाहमोहतृषाज्वरान्॥ वमिहिक्काशिरोरोगमनःश्रवणविभ्रमान् ॥ बहूनन्यांश्च लभते विकारान्वातकोपजान ॥ १९ ॥

उदावर्तयति वायुः ऊर्द्ध्वं भ्रमेणैव वातादियानि स्रोतांसि निरुणद्धि न तु विडादीनधोगमयति । मनोविभ्रमः रज्जौ सर्पज्ञानम् । श्रवणविभ्रमः अन्यथा श्रवणम् ॥

रूखे, कसैले, तीक्ष्ण और कडवे भोजनसे कुपित हुआ कोठेमें रहनेवाला वायु तुरन्त उदावर्तको उत्पन्न करैहै । कुपित हुई वात—अधोवायु, मूत्र, विष्ठा, आँसू, कफ और मेदाको वहानेवाली नाडियोंके मार्गको रोककर मलको स्तंभित करैहै तब हृदय तथा वस्तिशूल, हृल्लास, अरति इनकी पीडा होनेसे मनुष्यके अधोवायु, मूत्र और विष्ठा थोडे थोडे अत्यन्त परिश्रमसे उतरतेहैं, तथा श्वास, खाँसी, प्रतिश्याय, दाह, मोह, तृषा, ज्वर, वमन, हिचकी मस्तकमें दर्द, मनका भ्रम, श्रवणमें भ्रम (कुछका कुछ सुनाई मालूम होना) तथा और भी बहुतसे वायुके कोपसे हुए विकार होते हैं ॥ १६–१९ ॥

अथोदावर्तासाध्यलक्षणम् ।

तृष्णाछर्दिपरिक्लिष्टं क्षीणं शूलैरुपद्रुतम् ॥ शकृद्वमन्तं मतिमानुदावर्तिनमुत्सृजेत् २० ॥

परिक्लिष्टं क्लेशसंयुक्तम् ॥

उदावर्त रोगी जो तृषा तथा वमनसे व्याकुलहो, क्षीण होगया हो, शूलोंसे दुःखित हो और विष्ठाकी वमन करता होय तो विद्वान् वैद्य उसकी चिकित्सा नहीं करै ॥ २० ॥

अथानाहसामान्यलक्षणम् ।

आमं शकृद्वा निचितं क्रमेण भूयो विबद्धं विगुणानिलेन ॥ प्रवर्तमानं न यथास्वमेनं विकारमानाहमुदाहरन्ति ॥ २१ ॥

आमम् अपक्वमाहाररसम् । शकृत्पुरीषं वा । क्रमेण निचितं सञ्चितम् । भूयो विगुणानिलेन दुष्टवायुना विबद्धं व्यायामशोषितं वा यथास्वं पूर्ववदप्रवर्तनम् । एनं विकारमानाहम् आहुः ॥

आम (आहारका नहीं पचा रस) अथवा मल क्रमसे संचित हो दुष्ट वायुसे बँधकर अथवा सूखकर अपने मार्गसे नहीं निकले, इस विकारको वैद्य आनाह कहतेहैं ॥ २१ ॥

अथामजातानाहलक्षणम् ।

तस्मिन्भवन्त्यामसमुद्भवे तु तृष्णाप्रतिश्यायशिरोविदाहाः॥आमाशये शूलमथो गुरुत्वं हृत्स्तम्भ उद्गारविघातनञ्च ॥२२॥

विघातनम् अप्रवृत्तिः ॥

आहारके कचे रससे जो आनाह हुआ होय तो तृषा, प्रतिश्याय, मस्तकमें दाह, आमाशयमे शूल, शरीरमे भारीपन, हृदयका जकडजाना और डकारका न आना, ये लक्षण होतेहैं ॥ २२ ॥

अथ मलसंचयेनोत्पन्नानाहलक्षणम् ।

स्तम्भः कटीपृष्ठपुरीषमूत्रे शूलोऽथ मूर्च्छा शकृतो वमिश्च । श्वासश्च पक्काशयजे भवन्ति तथालसोक्तानि च लक्षणानि ॥ २३ ॥

पक्काशयजे शकृत्सञ्चयजे आनाहे । स्तम्भशब्दः कटीपृष्ठयोः स्तब्धतावाची पुरीषमूत्रयोरप्रवृत्तिवाची च । अलसोक्तानि लक्षणानि, आध्मानवातविघातादीनि ॥

जो मलके संचयसे आनाह हुआ होय तो कमर, पीठ, मल, मूत्र इनका अवरोध, शूल, मूर्च्छा, विष्ठा मिली हुई वमन और अलसक, अफारा तथा वायुका विघात आदि लक्षण होताहै ॥ २३ ॥

अथोदावर्तचिकित्सा ।

अधोवातनिरोधोत्थे उदावर्ते हितं मतम्॥ स्नेहपानं तथा स्वेदो वर्तिर्वस्तिर्हितो मतः ॥२४॥ विड्विघातसमुत्थे तु विड्भंगान्नं तथौषधम् ॥ वर्त्यभ्यंगावगाहाश्च स्वेदो वस्तिर्हितो मतः ॥ २५ ॥

वर्तिः फलवर्तिः ॥

मूत्रावरोधजनिते क्षीरवारिवचां पिबेत् ॥ दुःस्पर्शास्वरसं वापि कषायं ककुभस्य च ॥ २६ ॥

दुःस्पर्शा कण्टकारी दुरालभा च तुल्यगुणत्वात् ॥

एर्वारुबीजं तोयेन पिबेद्वा लवणीकृतम्॥ सितामिक्षुरसं क्षीरं द्राक्षां यष्टीमथापि वा॥ सर्वथैव प्रयुञ्जीत मूत्रकृच्छ्राश्मरीविधिः ॥ २७ ॥ जृम्भाभिघातजे स्नेहं स्वेदं वापि प्रयोजयेत् ॥ अन्यानपि प्रयुञ्जीत समीरणहरान्विधीन् ॥ २८ ॥ नेत्रनीरावरोधोत्थे मुञ्चेद्वापि दृशोर्जलम् ॥ स्वप्यात्सुखेन तस्याग्रे कथयेच्च कथाः प्रियाः ॥२९॥ छिक्काविघातजे तीक्ष्णघ्राणस्यार्कप्रदर्शनैः॥ प्रवर्तयेत्क्षुतं सक्तां स्नेहस्वेदौ च शीलयेत् ॥ ३० ॥ उद्गारस्यावरोधे तु स्नैहिकं धूममाचरेत् ॥ छर्दिनिग्रहसञ्जाते वमनं लंघनं हितम् ॥ ३१ ॥ विरेचनं चात्र मतं तैलेनाभ्यञ्जनं तथा ॥ वस्तिशुद्धिकरैः सिद्धं चतुर्गुणजलं पयः ॥ ३२ ॥ आवारिनाशं कथितं पीतवन्तं प्रकामतः॥ रमयेयुः प्रिया नार्यः शुक्रोदावर्तिनं नरम् ॥ ३३ ॥ तस्याभ्यङ्गोऽवगाहश्च मदिरा चरणायुधाः ॥ शालिः पयोनिरूहश्च हितं मैथुनमेव च ॥ ३४ ॥ क्षुद्विघातसमुद्भूते स्निग्धमुष्णं तथा लघु॥ रुच्यमल्पहितं भक्ष्यं पुष्पं सेव्यं सुगन्धि यत् ॥ ॥ ३५ ॥ तृषाविघातसम्भूते शीतः सर्वो विधिर्हितः ॥ कर्पूरशिशिरं स्वल्पं पिबेत्तोयं शनैःशनैः ॥ ३६ ॥ श्रमश्वासधृतौ शस्तौ विश्रामः सरसौदनौ ॥ निद्रावेगविघातोत्थे पिबेत्क्षीरं सितायुतम् ॥ संवाहनं सुशय्यात्र हितः स्वमः प्रियाः कथाः ॥ ३७ ॥

अधोवायुका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो उसमें स्नेहपान, स्वेद, फलवर्ति (गुदामे बत्तीका प्रवेश करना) और वस्तिकर्म (पिचकारी) यह हितकारी हैं, विष्ठाका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो दस्तावर अन्न, दस्तावर औषधि, फलवर्ति, अभ्यंग, मालिश, अवगाहन (जल या तेलमें बैठना), स्वेदन तथा वस्तिकर्म करना हितकारी है ।

मूत्रका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो दूधमें जल मिलाकर और आगे वचका चूर्ण डालकर पिये अथवा कटेरीका स्वरस अथवा कोह (अर्जुन) की छालका स्वरस पिये ।

अथवा ककडीके बीजोंको पानीमे पीसकर इसमे निमक

डालकर पानीमें पिये अथवा मिश्री, ईखका रस, दूध, दाख तथा मुलहटीका रस पिये। इस उदावर्तमें मूत्रकृच्छ्रके उपाय तथा पथरीके उपाय भी सर्वथा करै ।

जम्भाईके वेगको रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो स्नेहन अथवा स्वेदन क्रिया करै और वातनाशक अन्य उपाय भी करै ।

आँसुओंका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो भली भाँति रोकर नेत्रोंसे अश्रुधारा बहावे निकाल डालै, फिर सुखसे शयन करै और आनन्द सहित प्रिय कथायें कहै ।

छींकका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो मिरच तथा राई आदि तीक्ष्ण पदार्थोंको सूंघकर उनका नस्य लेवे और यदि सूर्यके सामने देखनेसे भी छींकें आवें तो सूर्यको देखै और छींक लेवे नाकमें वस्त्रादिककी वत्ती डालकर छींक लेवे, स्नेहन तथा स्वेदनका भी सेवन करै ।

डकारका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो स्नेहयुक्त पदार्थोंका धूमपान करै । वमनके वेगको रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो वमन तथा लंघन करना हितकारी है। दस्त करावे, तेलका मर्दन करै यह सब उपाय इस रोगमें अत्यन्त उपयोगी है । वीर्यके वेगको रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो पुष्ट दूधमें चौगुना पानी डालकर तथा मूत्राशयको शुद्ध करनेवाले पदार्थ डालकर जब सब जल जल जाय केवल दूधही शेष रहे तब मिश्री डालकर पिये और प्यारी नारीके साथ रमण करै । और अभ्यंग, अवगाहन, मद्यका पीना, मुर्गेका मांस, शालिचावल, दूध, निरूहवस्ति, तथा मैथुन, यह भी हितकारी हैं । भूँखका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो-स्निग्ध, हलका, रुचिकारी और मनोहारी उत्तम भोजन करना चाहिये, यह उदावर्तरोगी सुगन्धित पुष्पोंका भी सेवन करै । तृषाका वेग रोकनेसे उदावर्त हुआ होय तो-सम्पूर्ण शीतल उपचार [illegible], तथा स्पर्श वा उत्पलसे सुवासित किया [illegible] थोडा थोडा बारबार पिये । परिश्रमके श्वास [illegible] उदावर्त हुआ होय तो विश्राम करे और मांसरस [illegible] । निद्राका वेग रोकनेसे उदा[illegible] हुआ [illegible] मिश्री डाला हुआ गरम दूध पिये अथवा [illegible] सुन्दर [illegible] शयन करै और [illegible] ॥ २८-३७ ॥

अथ रूक्षादिहेतुकुपितवातोत्पन्नोदावर्तचिकित्सा ।

हिंगुमाक्षिकसिन्धूत्थैः पिष्टैर्वर्तिं विनिर्मिताम् ॥ घृताभ्यक्तां गुदे न्यस्येदुदावर्तविनाशिनीम् ॥ ३८ ॥

हींग, सहत और सैंधानोंन, इनको पीसकर वत्ती बनावे, फिर घीमें भिजोकर गुदामें रखवावे तो यह उदावर्त नष्ट होताहै, इसको फलवर्तिक कहतेहैं ॥ ३८ ॥

अथ मदनफलादिफलवर्तिः ।

मदनं पिप्पली कुष्ठं वचा गौराश्च सर्षपाः॥ गुडक्षीरशमायुक्ता फलवर्तिरिहोदिता ३९

मैनफल, पीपल, कूठ, वच और सफेद सरसों इनको गुड तथा दूधमें पीसकर गुदामें रक्खे तो उदावर्त रोग नष्ट होताहै ॥ ३९ ॥

अथ नाराचचूर्णम् ।

खण्डपलं त्रिवृताक्षः कृष्णाकर्षो द्वयोश्चूर्णम् ॥ प्राग्भोजनस्य मधुना बिडालपदकं नरो लिह्यात् ॥ ४० ॥ एतद्गाढपुरीषे देयं विज्ञैरुदावर्ते ॥ मधुरं नरपतियोग्यं चूर्णं नाराचकं नाम्ना ॥ ४१ ॥

खाँड चार तोले, निसोत १ तोला और पीपलका चूर्ण १ तोला, इनको एकत्र करके भोजनसे पहिले इसमें १ तोला सहत मिलाकर चाटे तो उदावर्त दूर होताहै । जिसमें विष्ठा अत्यन्त दृढ होगई हो ऐसे उदावर्तमें वैद्य यह यत्नकरे,यह चूर्ण अत्यन्त धनी और राजाओंके खाने योग्य है, इसका नाम नाराचचूर्ण है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अथ गुडाष्टकम् ।

सव्योषपिप्पलीमूलं त्रिवृद्दन्ती च चित्रकम् ॥ तच्चूर्णं गुडसंमिश्रं भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ॥ ४२ ॥ एतद्गुडाष्टकं नाम्ना बलवर्णाभिवर्द्धनम् ॥ उदावर्तप्लीहगुल्मशोथपाण्ड्वामयापहम् ॥ ४३ ॥

सोठ, मिरच, पीपल, पीपलामूल, निसोत, दन्ती, जमालगोटेकी जड और चीता इनका चूर्ण करके गुडमें मिलाकर प्रातःकाल उठतेही खाय, गुडाष्टकके सेवनसे बल काति तथा अग्निकी वृद्धि होतीहै और उदावर्त, प्लीहा, गुल्म, सूजन तथा पाण्डुरोग इनका नाश होताहै ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अथ शुष्कमूलाद्यघृतम् ।

मूलकं शुष्कमार्द्रं वा वर्षाभूः पञ्चमूलकम् ॥ कृतमालफलं चाप्सु पक्त्वा तेन घृतं पचेत् ॥ तत्पीतं शमयेत्क्षिप्रमुदावर्तमशेषतः ॥ ४४ ॥

पञ्चमूलकमत्र बृहत् ॥

सूखी अथवा गीली मूली, सोंठ, बृहत्पंचमूल और अमलतासका गूदा, इनका क्वाथ करके इसमे घृतको पचावे, यह घी पिये तो तत्काल उदावर्त रोग भली भाति शान्त होजातेहैं ॥ ४४ ॥

अथानाहचिकित्सा ।

तुल्यकारणकार्यत्वादुदावर्तहरीं क्रियाम् ॥ आनाहेषु च कुर्वीत विशेषश्चाभिधीयते ॥ ॥ ४५ ॥ त्रिवृत्कृष्णाहरीतक्यो द्विचतुष्पञ्चभागिकाः ॥ गुडेन तुल्या गुटिका हरत्यानाहमुल्बणम् ॥ ४६ ॥

उदावर्त और आनाहके कारण तथा कार्य समान ही हैं, इसलिये आनाहमें उदावर्तकी ही चिकित्सा करै । जो विशेष चिकित्सा है सो कहते हैं । दो भाग निसोत, चार भाग पीपल और पॉच भाग हरड, इनको सबकी समान गुडमें मिलाकर गोली बनावै और फिर सेवनकरै तो उग्र आनाह भी दूर होजाताहै ॥४५॥४६॥

अथ त्रिकटुकादिवर्तिः ।

वर्तिस्त्रिकटुकसैन्धवसर्षपगृहधूमकुष्ठमदनफलैः ॥ मधुनि गुडे वा पक्वैर्विहिता सांगुष्ठसम्मिता विज्ञैः ॥ ४७ ॥ वर्तिरियं दृष्टफला शनैः प्रणिहिता गुदे घृताभ्यक्ता ॥ आनाहमुदरजार्तिं शमयति जठरे तथा गुल्मम् ॥ ४८ ॥

इति उदावर्तानाहनिदानचिकित्साधिकारः ।

सोठ, मिर्च, पीपल, सैधव, सरसों, घरका धुआँ, कूठ और मैनफल, इनका चूर्ण करके सहत अथवा घीमे पकावै, फिर अंगूठेकी बराबर बत्ती बनावै, इसको घीसे चुपडकर धीरे धीरे गुदामे रक्खे, इससे आनाह (अफारा) उदररोग और गुल्मरोग नष्ट होताहै, विद्वान् लोगोने इस बत्तीका फल प्रत्यक्ष देखाहै ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

इति उदावर्तानाहाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ गुल्माधिकारः ।

तत्र गुल्मसन्निकृष्टविप्रकृष्टकारणपूर्वकलक्षणम् ।

दुष्टा वातादयोऽत्यर्थं मिथ्याहारविहारतः ॥ कुर्वन्ति पञ्चधा गुल्मं कोष्ठान्तर्ग्रन्थिरूपिणम् ॥ १ ॥

दुष्टाः स्वकारणैः मिथ्याहाराध्यशनादिभिः ॥ मिथ्याविहारो बलवद्विग्रहादिः । पञ्चधेति वातपित्तकफसन्निपातरक्तजा एवं पञ्च । द्वन्द्वजास्तु प्रकृतिसमवेतत्वात् पृथक् न गण्यन्ते अर्शोवत् । कोष्ठान्तः हृदयाद्बस्तिपर्यन्तं कोष्ठस्तस्य मध्ये कुत्रापि ग्रन्थिरूपिणम् गुटिकाकारम् ॥

भोजनके ऊपर भोजन करना आदि मिथ्या आहारसे और बलवान् मनुष्यके साथ लडना आदि मिथ्या विहारोंसे अत्यत दूषित हुए वात, पित्त, कफ और रुधिर, यह कोठेमें अर्थात् हृदयसे लेकर मूत्राशयतकके भागमें गोलीकी सदृश गुल्मको उत्पन्न करेहैं । वायुसे, पित्तसे, कफसे, तीनो दोषोंसे और रुधिरसे उत्पन्न हुआ, इस भाँति गुल्म पॉच प्रकारका होताहै । यद्यपि जो गुल्म दो दोषोसे होतेहैं उनको गिनो तो पाचसे अधिक संख्या होतीहै तथापि सन्निकृष्ट निदानरूप वातपित्तादिकसेही संयुक्त होतेहैं इसलिये अर्शोंकी सदृश उनको भी पृथक् नहीं गिनाहै ॥ १ ॥

अथ गुल्मभेदाः ।

स व्यस्तैर्जायते दोषैः समस्तैरपि चोच्छ्रितः ॥ पुरुषाणां तथा स्त्रीणां रक्तजं चोपजायते ॥ २ ॥

यह गुल्म पुरुषोंके तथा स्त्रियोंके कुपित हुए वात, पित्त, कफ, त्रिदोष और रुधिरसे भी होताहै ॥ २ ॥

अथार्तवोत्पन्नगुल्मः ।

आर्तवादपि गुल्मः स्यात्स तु स्त्रीणां प्रजायते ॥ अन्यस्त्वसृग्भवः पुंसां तथा स्त्रीणां प्रजायते ॥ ३ ॥

आतर्व (रज) से भी गुल्म होताहै परन्तु यह गुल्म स्त्रियोंके ही होताहै, रुधिरसे होनेवाले जो अन्य गुल्म हैं वे पुरुषोंके भी होतेहैं और स्त्रियोंके भी होतेहैं ॥ ३ ॥

अथ गुल्मस्थानानि ।

तस्य पञ्चविधं स्थानं पार्श्वहृन्नाभिवस्तयः ॥ ४ ॥

गुल्म–दोनों पसलियोंमें, हृदय, नाभि और मूत्राशयमें होताहै, इस भाँति गुल्मके पाँच स्थान हैं ॥ ४ ॥

अथ गुल्मसामान्यलक्षणम् ।

हृद्वस्त्योरन्तरे ग्रन्थिः सञ्चारी यदि वा चलः ॥ वृत्तश्चयोपचयवान्स गुल्म इति कीर्तितः ॥ ५ ॥

नाभिशब्देन वस्तिर्बोध्यः सामीप्यादेव यथा गङ्गायां घोष इति वस्तेरपि गुल्माश्रयत्वेन उक्तत्वादन्ये हृद्वस्त्योरेव पाठान्तरं पठन्ति अन्ये तु वस्तौ विद्रधिः स्यात् न गुल्म इति तन्न वस्तेरपि गुल्मस्थानत्वात् । तथा च चरके–"पञ्चस्थानानि गुल्मस्य पार्श्वहृन्नाभिवस्तयः ।" इति । सञ्चारी चलनशीलः । अचलः स्थिरः वृत्तो वर्तुलः । चयोपचयवानिति कदाचिच्चीयते वृद्धिं गच्छति कदाचिदपचीयते हीनो भवति । एतल्लक्षणं सामान्योक्तमपि वातिके व्यवतिष्ठते इति जेज्जटः । गणदासस्तु सामान्यमेवाह, सर्वगुल्मानां वातमूलत्वात् ॥

हृदय तथा नाभिके मध्यमें होनेवाला अथवा विचरनेवाला, किसी समय बढनेवाला और किसी समय अल्प होनेवाला जो गोला होताहै उसको गुल्म कहतेहैं । यहां नाभि कहनेसे मूत्राशय जानना, जैसे 'गगामें घोष है' इस वाक्यमें "गगा" शब्दसे समीप होनेके कारण गगाका किनारा समझना, तैसेही इस वाक्यमें भी मूत्राशय नाभिके समीप होनेके कारण 'नाभिसे' मूत्राशयही जानना । कितनेक वैद्य तो उपरोक्त वाक्यको 'हृदय तथा मूत्राशयके मध्यमें फेरकर' ऐसा पढतेहैं और कितने कहतेहैं कि 'मूत्राशयमें विद्रधि होताहै गुल्म नहीं होता' परन्तु यह बात भूलकी है, क्यों कि गुल्मके हृदय, नाभि, पसलियें तथा मूत्राशय ये पाच स्थान हैं, ऐसा चरकमें कहा है उपरोक्त लक्षण यद्यपि सामान्य रीतिसे कहेहैं तथापि ये लक्षण वातज गुल्मसेही मिलते हैं, ऐसा जैजट नामक वैद्यने कहा है । गणदास नामक वैद्य कहताहै कि 'यह लक्षण सब गुल्मोंके लिये साधारण है क्यो कि सब गुल्मोंकी जड वायु है' ॥ ५ ॥

अथ गुल्मपूर्वरूपम् ।

उद्गारबाहुल्यपुरीषबन्धतृप्त्यक्षमत्वान्त्रविकूजनानि ॥ आटोपमाध्मानमपक्तिशूलमासन्नगुल्मस्य वदन्ति चिह्नम् ॥ ६ ॥ अरुचिं कृच्छ्रविण्मूत्रवातत्वं चान्त्रकूजनम् ॥ आनाहं चोर्द्ध्ववातञ्च सर्वगुल्मेषु लक्षयेत् ॥ ७ ॥

डकारोंका बहुत आना, मलबन्ध, तृप्तिका होना, सामर्थ्यका नाश, आंतोंका बोलना, पेटमें गुडगुड शब्द होय, अफारा हो और अन्न न पचनेके कारण पीडा हो, यह लक्षण होंय तो जानना कि गुल्मरोग हुआ है । विष्ठा, मूत्र तथा अधोवायुका कष्टसे उतरना, अरुचि, आंतोंमें शब्द होना, अफारा और वायु ऊर्ध्वगत हो यह लक्षण सब गुल्मोंमे होतेहैं ॥ ६ ॥ ७ ॥

अथ वातगुल्मनिदानम् ।

रूक्षान्नपानं विषमातिमात्रं विचेष्टनं वेगविनिग्रहश्च ॥ शोकाभिघातोऽतिमलक्षयश्च निरन्नता चानिलगुल्महेतुः ॥ ८ ॥

विचेष्टनं विरुद्धा चेष्टा बलवद्विग्रहादिः । शोकाभिघातः शोकेन मनो-

ऽधिष्ठानस्य हृदयस्य अभिघातः। अतिमलक्षयः विरेकादिना। निरन्नता उपवासः॥

रूक्ष विषम और अत्यंत, ऐसे अन्नपानको सेवन करनेसे, मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे, बलवान पुरुषके साथ लडना आदि विरुद्ध चेष्टा, हृदय(कि जो मनके रहनेका स्थान है)में शोक और अभिघात (चोट) लगनेसे विरेचन आदिसे मलका अत्यंत क्षय और उपवास इन कारणोंसे वायुसंबंधी गुल्म होताहै ॥ ८ ॥

अथ वातगुल्मलक्षणम्।

न्यः स्थानसंस्थानरुजा विकल्पं विड्वातसङ्गं गलवक्त्रशोषम् ॥ श्यावारुणत्वं शिशिरज्वरश्च हृत्कुक्षिपार्श्वाङ्गशिरोरुजश्च ॥ ९ ॥ करोति जीर्णेऽत्यधिकं प्रकोपं भुक्ते मृदुत्वं समुपैति यश्च॥ वातात्स गुल्मो नच तत्र रूक्षं कषायतिक्तं कटु चोपशेते ॥ १० ॥

श्यावारुणत्वं शरीरस्य । शिशिरज्वरं शीतज्वरम्। जीर्णे आहारे प्रकुप्यति भुक्ते च शान्तिं गच्छति, स वातिको गुल्मः। रूक्षः आहारः। कषायतिक्तकटुरसाः। तत्र तस्मिन्वातगुल्मे नोपशेते न सुखयति ॥

स्थान स्थानमें पीडा होतीहै,मल तथा अधोवायु रुकती हो, गला तथा मुख सूख जाता हो, शरीर नीला और लाल हो जाय, शीतज्वर हो, हृदय, कोख, पसली, कंधा और शिर इनमें पीडा हो, अन्नके पचनेके समय गोला अधिक होजाय और भोजन करने पर गोला मृदु (नरम) हो जाय, ये लक्षण होंय तो वायुसे उत्पन्न हुआ गुल्म जानना, इसमें रूक्ष, कसैले, कडवे और चरपरे पदार्थ अहितकारी हैं ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ पित्तगुल्मनिदानम्।

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्रोधाऽतिमद्यार्कहुताशसेवा ॥ आमोऽभिघातो रुधिरञ्च दुष्टं पैत्तस्य गुल्मस्य निमित्तमुक्तम् ॥ ११ ॥

विदाहि वंशकरीरादि । अतिशब्दो मद्यादिषु योज्यः। आमोऽत्र विदग्धाजीर्णबोधकः। अभिघातो लगुडादिना ॥

चरपरे, खट्टे, तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही तथा रूक्ष पदार्थोंके सेवन करनेसे क्रोध, मद्यपान तथा धूपके अत्यंत सेवनसे, अग्निके समीप रहनेसे, विदग्ध अजीर्ण, लकडी आदिके अभिघात (चोट) और बिगडे हुए रुधिरसे पित्त संबंधी गुल्म उत्पन्न होताहै ॥ ११ ॥

अथ पित्तगुल्मलक्षणम्।

ज्वरः पिपासा सदनाङ्गरागः शूलं महज्जीर्यति भोजने च ॥ स्वेदो विदाहोऽव्रणवच्च गुल्मः स्पर्शासहः पैत्तिकगुल्मरूपम् ॥ १२ ॥

अङ्गरागः देहस्य लौहित्यम् ॥

ज्वर, प्यास, ग्लानि, अगोंका लाल होना,भोजन पचनेके समयमें भारी शूल होना, पसीना आवे, दाह हो और गुल्म व्रणकी सदृश स्पर्श न सह सके, यह लक्षण होयँ तो पित्तसे उत्पन्न हुआ गुल्म जानना ॥ १२ ॥

अथ कफजत्रिदोषजगुल्मकारणम्।

शीतं गुरुस्निग्धमचेष्टनञ्च सम्पूरणं प्रस्वपनं दिवा च॥ गुल्मस्य हेतुः कफसम्भवस्य सर्वस्तु दिष्टो निचयात्मकस्य ॥ १३ ॥

सम्पूरणम् उदरपूरणम्। निचयात्मकस्य सान्निपातिकस्य । सर्वो हेतुः वातपित्तकफानां हेतुः ॥

शीतल, भारी तथा स्निग्ध अन्नपान, व्यायामका त्याग और दिनमें सोना, इनसे कफसंबंधी गुल्म उत्पन्न होताहै वात, पित्त तथा कफके जो निदान है वे सब मिलनेसे तीनो दोषसंबंधी गुल्म होताहै ॥ १३ ॥

अथ कफजगुल्मलक्षणम्।

स्तैमित्यशीतज्वरगात्रसादहृल्लासकासा-

रुचिर्गौरवाणि ॥ कफस्य लिङ्गानि च यानि तानि भवन्ति गुल्मे कफकोपजाते ॥ १४ ॥

कफस्य लिङ्गानि वेदनाल्पता वह्निमान्द्यादीनि ॥

शरीरमें गीलापन, शीतज्वर, ग्लानि, हृल्लास (उबकाई), खाँसी, अरुचि, शरीरमें भारीपन और थोडी २ पीडाका होना, तथा अग्निकी मंदता, यह लक्षण होवें तो कफसे हुआ गुल्म जानना ॥ १४ ॥

अथ द्विदोषजगुल्मकल्पना ।

व्यामिश्रलिंगानपरांस्तु गुल्मांस्त्रीनादिशेदौषधकल्पनार्थम् ॥ १५ ॥

सान्निपातिके सर्वो हेतुः उपलक्षणम् ॥

जो दो दोषोंके मिश्रित लक्षण दीखते होवें तो औषधिकी कल्पनाके लिये वातसे तथा पित्तसे हुए, वायु तथा कफसे हुए, और पित्त तथा कफसे हुए इस प्रकार और भी तीन गुल्मोंकी कल्पना करलेवें ॥ १५ ॥

अथ त्रिदोषजगुल्मलक्षणम् ।

महारुजं दाहपरीतमश्मवद्धनोन्नतं शीघ्रविदाहि दारुणम् ॥ मनःशरीराग्निबलापहारिणं त्रिदोषजं गुल्ममसाध्यमादिशेत् ॥ १६ ॥

जो तीनों दोषोंसे गुल्म हुआ हो तो अत्यंत पीडा तथा दाह होताहै, गोला पत्थरकी सदृश घन तथा ऊपरको उठा हुआ, तत्काल विदग्धाजीर्णको उत्पन्न करनेवाला, मनको भ्रमित करता शरीरको दुर्बल तथा जठराग्निके बलको हरनेवाला और मृत्युको करनेवाला गुल्म होताहै इसको असाध्य समझना ॥ १६ ॥

अथार्तवरुधिरोत्पन्नगुल्मलक्षणम् ।

नवप्रसूताऽहितभोजना या या चामगर्भं विसृजेदृतौ वा ॥ वायुर्हि तस्याः परिगृह्य रक्तं करोति गुल्मं सरुजं सदाहम् ॥ १७ ॥ पैत्तस्य लिंगेन समानलिंगं विशेषणश्चाप्यपरं निबोध ॥ यः स्पन्दते पिण्डित एव नांगैश्चिरात्सशूलः समगर्भलिङ्गः ॥ स रौधिरः स्त्रीभव एव गुल्मो मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः ॥ १८ ॥

नवप्रसूता प्रकृताग्निबलवर्णमांसहीना अहितभोजना या च आमगर्भं विसृजेत् नवममासादर्वाक् प्रसूयते सापि अहितभोजना ऋतौ वा आर्तवप्रवृत्तिकाले अहितभोजना अपथ्याचरणाद्वा वायुः रक्तं परिगृह्य गुठिकाकारं गर्भाशये गुल्मं करोति भोजनपदं विहारस्यापि उपलक्षणम् । यतश्चाह चरकः—"ऋतावनाहारतया भयेन विरूक्षणैर्वेगविनिग्रहैश्च । संस्तम्भनोल्लेखनयोनिदोषैर्गुल्मः स्त्रिया रक्तभवोऽभ्युपैति।" धातुरूपरक्तजस्यापि विप्रकृष्टनिदानानि लक्षणानि च पैत्तिकस्येव बोद्धव्यानि। परमत्र अभिघातादिहेतुर्विशेषः । चिरात् स्पन्दते चलति नाङ्गैः न हस्तपाद्याद्यैः। समगर्भलिङ्गः अत्र समशब्दः सर्वशब्दार्थः तेन समानि सर्वाणि गर्भलिंगानि आर्तवप्रवृत्तिकाले आर्तवादर्शनमुखपीततास्तनमुखकृष्णतादोहदादीनि यत्र सः। एते च व्याधिप्रभावात्। यथा यक्ष्मिणे रिरंसा। स रौधिर आर्तवरूपरक्तजः स्त्रीणां प्रजायते इति गर्भसमानलिंगत्वे विशेषज्ञानार्थमाह— 'मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः' । नवमदशममासयोः प्रसवकालत्वादित्येके, तन्न, यः स्पन्दते पिण्डित एव नांगैरित्यादिनैव संशयस्य निराकृतत्वात् । गर्भः प्रत्यंगैः निरन्तरं निःशूलं स्पन्दते गुल्मश्चैतद्विपरीत इति । किञ्च नवमे दशमे प्रसूयत इति उत्सर्गो न तु नियमः ।

तदधिककालेऽपि प्रसवदर्शनादागमाच्च । यत आह चरकः-"तं स्त्री प्रसूते सुचिरेण गर्भं पुष्टं यदा वर्षगणैरपि स्यात् ।" तस्मान्मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्य इति न संशयव्यवच्छेदार्थं किन्तु तदा सुखेन चिकित्सार्थं यत उक्तम्-"रक्तगुल्मपुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम् ।" पुराणता चास्य दशमासातिक्रमेणैव भवति । जैज्जटेनापि उक्तम् । दशमासोपरि पिण्डिते गुल्मे स्नेहादिना उपस्कृतदेहाय न गर्भाशयक्षतिमादधाति रक्तभेदनमिति ॥

जो नवप्रसूता स्त्री अहित आहार विहार करै, अथवा जो स्त्री अपने गर्भको गिराकर अहित आहार विहार करै अथवा जो स्त्री रजस्वला होनेपर अहित आहार विहार करै, उस स्त्रीके रुधिरको वायु ग्रहण करके गर्भाशयमे गोलेकी सदृश गुल्मको उत्पन्न करेहै, इस गुल्ममें पीडा, दाह और पित्तजगुल्मके लक्षण होते हैं । चरकमे भी कहा है कि "रजोधर्मके समय-उपवास करनेसे, भयसे, रूक्ष पदार्थोंका उपयोग करनेसे, मूत्र आदिके वेगोको रोकनेसे, स्तम्भन करनेसे, उल्लेखन आदि योनिसंबंधी दोषोसे स्त्रीके रुधिरजन्य गुल्म उत्पन्न होताहै" धातुरूप रुधिरसे उत्पन्न हुए गुल्मके विप्रकृष्ट निदान तथा 'लक्षण पित्तसे उत्पन्न हुए गुल्मकी सदृशही जानने, परन्तु अभिघात (चोट) आदि निदान विशेष करके होतेहैं, रजोरूप गुल्ममें और भी विशेष कहतेहैं कि-रज गिरते समयमें रजका नही दीखना, मुखका पीलापन, स्तनोंके आग्रभाग काले होना, तथा खानेपीने आदिके भाव-अभाव इत्यादि जो जो गर्भके चिह्न हैं वे सब चिह्न व्याधिके प्रभावसे जिस गुल्मके देखनेमें आवैं (जिसप्रकार क्षय रोगवालेको स्त्रीके साथ रमण करनेकी इच्छा व्याधिके प्रभावसे होतीहै तिसीप्रकार रजसम्बन्धी रुधिरके गुल्मवाली स्त्रीके चिह्न व्याधिके प्रभावसे होतेहैं) तथा जिसमें हाथ पाँव आदि अगोंका नही चलना अधिक तर केवल पिडाकारही चलना ज्ञात हो और जिसमें शूल हो उस गुल्मको रजरूप रुधिरसे उत्पन्न हुआ जानना । यह गुल्म स्त्रियोंके ही होताहै । गर्भ तो हाथ पाँव आदि शाखाओंसे निरन्तर और शूल विनाही चलताहै (फडकता) है और यह गुल्म तो अधिकवार पिडाकारही चलताहै और शूलयुक्त होताहै। इस गुल्मकी चिकित्सा दशमे महीनेके व्यतीत होनेपर करै । कोई कहतेहैं कि-"गर्भ होनेका सन्देह न रहै इसकारण दशमे मासके व्यतीत हो जानेपर चिकित्सा करना कहाहै क्यों कि नवमा और दशमा महीना प्रसव होनेका काल है" परन्तु ऐसा कहना अयोग्य है, क्योंकि-'गर्भ तो हाथ पाँव आदि अंगोसे निरंतर और शूल विनाही चलताहै' इत्यादि कथनके द्वारा गर्भके संशयको दूर किया है, तब 'नवमे अथवा दशमें महीने प्रसव होय' यह भी एक सामान्य बात है, कुछ नियमरूप नहीं है, क्योंकि दशमें महीनेसे अधिक काल बीतनेपर भी प्रसव होते दीखतेहैं, और ग्रन्थोंमें भी दशमें मासके बीतनेपर प्रसव होना लिखा है। चरकमे कहा है कि-"स्त्री गर्भ रहनेके पश्चात् अत्यन्त अधिक काल अर्थात् बहुत वर्ष व्यतीत होनेपर भी गर्भको जनतीहै और इस प्रकार उत्पन्न हुआ बालक अति पुष्ट होताहै" इसलिये दशमें महीने चिकित्सा करना जो कहा है वह गर्भका संशय दूर करनेके लिये नहीं कहा है बरन् दशमें महीने सुगमतासे चिकित्सा हो सक्ती है इससे कहा है, ऐसा जानना चाहिये । कहीं है कि-"रुधिरसंबधी गुल्म यदि जीर्ण (पुराना) होय तो उसको सुखसाध्य समझना" फिर दशमा महीना व्यतीत होनेपर रुधिरसबंधी गुल्म जीर्ण हुआ मानने योग्य होताहै । जैज्जट आचार्य भी कहताहै कि-"दशमा महीना व्यतीत होनेके पश्चात् गुल्मकी स्थिति होतीहै तब तेल आदिसे स्त्रीके शरीरको संस्कार देकर रुधिरका भेदन करे तो इससे गर्भाशयको हानि नहीं होतीहै" ॥ १७ ॥ १८ ॥

अथाऽसाध्यगुल्मलक्षणम् ।

महारुजं दाहपरीतमश्मवद्घनोन्नतं शीघ्रविदाहि दारुणम् ॥ मनःशरीराग्निबलापहारिणं त्रिदोषजं गुल्ममसाध्यमादिशेत् ॥ १९ ॥

दाहपरीतं दाहेन व्याप्तसकलदेहम् । शीघ्रविदाहि शीघ्रं विदग्धाजीर्णकरम् ।

दारुणम् मारकम् । मनोऽपहारिणम् मनोवैकृत्यकारकम् । शरीराग्निबलापहारिणम् शरीरस्य कार्श्यकरम् । अपरम् असाध्यलक्षणमाह–

सञ्चितः क्रमशो गुल्मो महावास्तुपरिग्रहः ॥ कृतमूलः शिरानद्धो यदा कूर्म इवोन्नतः ॥२० ॥ दौर्बल्यारुचिहृल्लासकासच्छर्घरतिज्वरैः॥तृष्णातन्द्राप्रतिश्यायैर्युज्यते न स सिध्यति ॥ २१ ॥

महावास्तुपरिग्रहः व्यापकतया बृहत्स्थलं गृह्णाति । युज्यते युक्तो भवति । अपरञ्च–

गृहीत्वा सज्वरं श्वासं छर्घतीसारपीडितम् ॥ हृन्नाभिहस्तपादेषु शोथः कर्षति गुल्मिनम् ॥ २२ ॥

कर्षति मारणाय कर्षति । अपरञ्च–

श्वासः शूलं पिपासान्नविद्वेषौ ग्रन्थिमूढता ॥ जायते दुर्बलत्वञ्च गुल्मिनो मरणाय वै ॥ २३ ॥

ग्रन्थिमूढता ग्रन्थिरूपस्य गुल्मस्य अकस्माद्विलयनम् ॥

जो गुल्म—अत्यन्त पीडा तथा दाहयुक्त हो, पत्थरकी सदृश घन तथा ऊपरको उठा हुआ हो, तत्काल विदग्धाजीर्णको उत्पन्न करनेवाला हो, मनको भ्रमित करता, शरीरको दुर्बल तथा जठराग्निके बलको हरनेवाला हो और त्रिदोषज गुल्म, यह असाध्य जानना ॥ १९ ॥

जो गुल्म—क्रम क्रम करके अत्यन्त बढगया हो और बहुत स्थान घेर लिया हो, शूलको करनेवाला हो, शिराओंसे व्याप्त हो कछुएकी भाँति ऊँचा होगया हो और दुर्बलता, अरुचि, हृल्लास, खाँसी, वमन, अत्यन्त ज्वर, तृषा, तन्द्रा तथा प्रतिश्याय, इनसे युक्त हो इस गुल्मरोगीको असाध्य जानना ॥ २० ॥ २१ ॥

जो गुल्मरोगी ज्वर, श्वास, वमन और अतीसार इनसे पीडित हो तथा हृदय, नाभि, हाथ तथा पाँवमें सूजन हो उस गुल्मरोगीकी मृत्यु होजाती है ॥ २२ ॥

श्वास, शूल, तृषा, अन्नमें अरुचि, गुल्मका अकस्मात् गुप्त होजाना और दुर्बलता, इन लक्षणों युक्त गुल्मरोगी मृत्युगत हुआ जानना ॥ २३ ॥

अथ गुल्मचिकित्सा ।

वातारितैलेन पयोयुतेन पथ्यासमेतेन विरेचनं हि ॥ संस्वेदनं स्निग्धमतिप्रशस्तं प्रभञ्जनक्रोधकृते च गुल्मे ॥ २४ ॥ स्वर्जिकाकुष्ठसहितः क्षारः केतकसम्भवः । पीतस्तैलेन शमयेद् गुल्मं पवनसम्भवम् ॥ २५ ॥ तित्तिरांश्च मयूरांश्च कुक्कुटान्क्रौञ्चवर्तकान् ॥ सर्पिः शालीन्प्रसन्नाञ्च वातगुल्मे प्रयोजयेत् ॥ २६ ॥ पित्तगुल्मे त्रिवृच्चूर्णं पातव्यं त्रिफलाम्बुना ॥ विरेकाय सितायुक्तं कम्पिल्लं वा समाक्षिकम् ॥ २७ ॥

त्रिफलाम्बुना त्रिफलाक्वाथेन । कम्पिल्लकं कबीला इति लोके ॥

अभयां द्राक्षया खादेत्पित्तगुल्मी गुडेन वा ॥ योगैश्च वातगुल्मोक्तैः श्लेष्मगुल्ममुपाचरेत् ॥ २८ ॥ अपरैश्च बलासघ्नैर्युक्तियुक्तैः शमं नयेत् ॥ २९ ॥

वायुके कोपसे गुल्म हुआ होय तो दूध और हर्डों सहित अंडीका तेलका विरेचन (जुलाब) देवे, तथा स्निग्ध पदार्थोंसे स्वेदन करे, यह हितकारक है । अथवा सज्जी, कूट और केतकीका खार, इनको मिलाकर तेलमें डालकर पिये तो इससे वायुसम्बन्धी गुल्म शांत होजाता है । अथवा वायुसे उत्पन्न हुए गुल्ममें तीतर, मोर, मुरगा, कौंच तथा बटेरका मांस, घी, शालिचावल और प्रसन्ना नामक मदिरा इनका सेवन करावे, पित्तके कोपसे गुल्म हुआ होय तो विरेचनके लिये हरड, बहेडा तथा आमलेके काथके साथ निशोतका चूर्ण खाय अथवा सहतके साथ कबीलेका उपयोग करे । अथवा

पित्तगुल्मवाला मनुष्य दाखके साथ अथवा गुडके साथ हरड खाय तो पित्तज गुल्म नष्ट होताहै ।

कफसे गुल्म हुआ होय तो–वायुसे हुए गुल्ममें जो प्रयोग कहे हैं वे प्रयोग करै और कफको नष्ट करनेवाले जो प्रयोग हैं उन प्रयोगोंसे भी कफगुल्मको शांत करै ॥ २४–२९ ॥

अथ हिंग्वादिचूर्णम् ।

हिंगुग्रन्थिकधान्यजीरकवचाचव्याग्निपाठाशटीवृक्षाम्लं लवणत्रयं त्रिकटुक क्षारद्वयं दाडिमम् ॥ पथ्यापौष्करवेतसाम्लहपुषाजाज्यस्तदोभिः कृतं चूर्णं भावितमेतदार्द्रकरसैः स्याद्बीजपूरद्रवैः॥ ३०॥गुल्माध्मानगुदांकुरान्ग्रहणिकोदावर्तसंज्ञं गदं प्रत्याध्मानगरोदराश्मरियुतांस्तूनीद्वयारोचकान् ॥ ऊरुस्तम्भमतिभ्रमं च मनसो बाधिर्यमष्ठीलिकां प्रत्यष्ठीलिकया सहापहरते प्राक्पीतमुष्णाम्बुना ॥ ३१ ॥ हृत्कक्षिवंक्षणकटीजठरान्तरेषु वस्तिस्तनांसफलकेषु च पार्श्वयोश्च ॥ शूलानि नाशयति वातबलासजानि हिंग्वाद्यमाद्यमिदमाश्विनसंहितोक्तम् ॥ ३२ ॥

हींग, पीपलामूल, धनिया, जीरा, बच, चव्य, चीता, पाढ, कचूर, तितडीक, तीनों जातिके नमक, सोंठ, मिरच, पपिल, जवाखार, सज्जीखार, दाडिम, हरड, पोहकरमूल, अमलवेत, हाऊबेर और जीरा, इनका चूर्ण करके अदरकके रसकी तथा बिजौरे नीबूकी भावना देकर उष्णजलके साथ खाय तो इससे गुल्म, अफारा, बवासीर, ग्रहणी, उदावर्त्त, प्रत्याध्मान, विष, उदरके रोग, पथरी, दोनों प्रकारकी तूनी, अरुचि, ऊरुस्तभ, मनका अत्यत भ्रम, बहरापन, अष्ठीलिका और प्रत्यष्ठीलिंका, ये रोग तुरंत नष्ट होतेहै । अश्विनीकुमारकी सहितामे कहा हुआ यह हिंग्वाद्यनामक चूर्ण हृदयमे कोख, वंक्षण, कमर, पेट, वस्ती, स्तन, खभा और पसलिये, इनमें वायुसे हुए तथा कफसे हुए शूलको नष्ट करैहै ॥ ३०–३२ ॥

अथ क्षाराष्टकादियोगः ।

धीमानुपचरेद्गुल्मं प्रत्येकश्च त्रिदोषजम् ॥ सन्निपातोत्थिते गुल्मे त्रिदोषघ्नो विधिर्हितः ॥ ३३ ॥ शरपुंखस्य लवणं पथ्याचूर्णं समं द्वयम् ॥ शाणप्रमाणमश्नीयाच्चूर्णं गुल्मगदापहम् ॥ ३४॥ स्वर्जिका शाणमाना स्यात्तावदेव गुडं भवेत् ॥ उभयोर्वटिकां खादेद्गुल्मामयविनाशिनीम् ॥ ३५ ॥ पलाशवज्रिशिखरीचिञ्चार्कतिलनालजाः ॥ यवजः स्वर्जिका चेति क्षारा ह्यष्टौ प्रकीर्तिताः ॥ एते गुल्महराः क्षारा अजीर्णस्य च पाचकाः ॥ ३६ ॥

बुद्धिमान् वैद्य वायुसे हुए गुल्ममें वातनाशक उपचार करै, पित्तसे हुए गुल्ममें पित्त नाशक उपचार करै और कफसे हुए गुल्ममें कफनाशक उपचार करै। यदि तीनों दोषोंसे गुल्म हुआ हो तो उसमे त्रिदोषनाशक उपचार करै । सरफोंकेका खार और हरडोंका चूर्ण, इनको समान भाग लेकर चार मासे खाय, तो इससे गुल्म नष्ट होताहै । अथवा चार मासे सज्जी और चार मासे गुड, इनकी गोली बनाकर खाय तो गुल्मका नाश होताहै । अथवा पलाश (ढाक), थूहर, ओंगा, इमली, आक, तिल, जौ और सज्जी, ये आठ क्षार कहातेहैं । ये गुल्मको नष्ट करतेहैं और अजीर्णका पाचन करतेहैं ॥ ३३–३६ ॥

अथ वज्रक्षारः ।

सामुद्रं सैन्धवं काचं यवक्षारः सुवर्चलम्॥ टंकणं स्वर्जिका क्षारतुल्यं चूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ ३७ ॥ वज्रीक्षीरै रविक्षीरैरातपे भावयेत्र्यहम् ॥ वेष्टयेदर्कपत्रेण रुद्ध्वा भाण्डे पुनः पचेत् ॥ ३८ ॥ तत्क्षारं चूर्णयेत्पश्चात्त्र्यूषणं त्रिफला तथा ॥ यवानी जीरको वह्निचूर्णमेषाञ्च कारयेत् ॥ ३९ ॥ सर्वचूर्णसमं क्षारं सर्वमेकत्र कारयेत् ॥ तच्चूर्णं टंकयुगलं सलिलेन प्रयोजयेत् ॥ ४० ॥ गुल्म-

शूले तथाजीर्णे शोथे सर्वोदरेषु च ॥ मन्दे वह्नावुदावर्ते प्लीह्नि चापि परं हितम् ॥ ४१ ॥ वातेऽधिके जलैः कोष्णैर्हितं पित्तेऽधिके घृतैः ॥ गोमूत्रेण कफाधिक्ये कांजिकेन त्रिदोषजे ॥ ४२॥ वज्रक्षार इति ख्यातः प्रोक्तः पूर्वं स्वयम्भुवा ॥ सेवितो हरतेऽजीर्णं तथाऽजीर्णभवान्गदान् ॥ ४३ ॥ सुवर्चिका टंकमिता तत्समानार्द्रिकापि च ॥ उभे भुञ्जीत युगपद्गुल्माभयनिवृत्तये ॥ ४४ ॥

सुवर्चिका सोरा इति लोके ॥

गुल्मी कुमारिकामांसं कर्षार्द्धं गोघृतान्वितम् ॥ शुक्तिचूर्णस्य गुटिकां टंकमात्रां सुवेष्टयेत् ॥ ४५ ॥

कुमारिका घिवकुमारी इति लोके ॥

गुडेन शाणमानेन तां लिहेद्गुल्मरोगवान् ॥ गिलेद्व्योषाभयासिन्धुसूक्ष्मचूर्णावधूलिताम् ॥ ४६ ॥

समुद्रनोंन, सेंधानोंन, कचियानोंन, जवाखार, सोरा, सुहागा और सज्जी इनको समान भाग लेकर उस चूर्णको थूहरके दूधकी अथवा आकके दूधकी तीन दिनतक धूपमें भावना देवे पश्चात् उसका गोला बनाकर आकके पत्तोंमें लपेट हांडीमें रक्खे और हांडीका मुख बन्द करके उस गोलेको अग्निमें पकावे और पश्चात् उस क्षारका चूर्ण करै। तदनन्तर सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, अजवायन, जीरा और चीता इनका चूर्ण करै, इस क्षारके चूर्णको और सोंठ आदिके चूर्णको समानभाग लेकर एकत्र करै, पश्चात् उसमेंसे आठ मासे चूर्ण पानीमें घोलकर पीवे तो इससे गुल्मशूल, अजीर्ण, सूजन, सब प्रकारके उदररोग, अग्निकी मन्दता, उदावर्त और प्लीहा, ये भली भाँति नष्ट होतेहैं, जो वायु अधिक होय तो किंचित् उष्ण जलसे, पित्त अधिक होय तो घीसे, कफ अधिक होय तो गोमूत्रसे और तीनों दोषोंके कोपसे हुआ होय तो काँजीसे इस चूर्णको उपयोग करै। पूर्व कालमें ब्रह्माके कहे हुए इस वज्रक्षार नामक प्रयोगको सेवन करनेसे अजीर्ण तथा अजीर्णजन्य भी रोग नष्ट होतेहैं ॥ ३७–४३ ॥

चारमासे सोरा और चारमासे अदरख, इनको एकत्र करके खाय तो गुल्मका नाश होताहै । अथवा गुल्मवाला मनुष्य आधा तोला घीक्वारका गूदा लेकर उससें घी मिलावे, पश्चात् उसके ऊपर सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड और सेंधा निमक इनका बारीक चूर्ण बुर बुराकर खाय तो इससे गुल्म नष्ट होताहै ॥ ४३–४६ ॥

अथ गुल्मरोगित्याज्यपदार्थाः ।

वल्लूरं मूलकं मत्स्यं शुष्कशाकानि वैदलम् ॥ न खादेदालुकं गुल्मी मधुराणि फलानि च ॥ ४७ ॥

वैदलानां निषेधेऽपि माषकुलत्थयोः नात्र निषेध इति सुश्रुतटीका ॥

सूखा हुआ मांस, मूली, मछली, सूखे हुए शाक, विदल (दो दालवाले) अन्न, आलु और मधुर फल, इनको गुल्मरोगी मनुष्य त्यागदेवे । सुश्रुतकी टीकामें लिखा है कि–"जिनकी दो दाल होतीहैं.ऐसे विदल अन्न गुल्म रोगीको निषेध है, परन्तु उडद और कुलथीका निषेध नहीं है" ॥ ४७ ॥

अथ रौधिरगुल्मचिकित्सा ।

स्निग्धस्विन्नशरीरस्य योज्यं स्नेहविरेचनम् ॥ शताह्वा चिरबिल्वत्वग्दारुभार्ङ्गीकणोद्भवः ॥ ४८ ॥ कल्कः पीतो जयेद्गुल्मं तिलक्काथेन रक्तजम् ॥ तिलक्काथो गुडव्योषघृतभार्ङ्गीयुतो भवेत् ॥ ४९ ॥ योनिरक्तभवे गुल्मे नष्टपुष्पेषु योषिताम् ॥ पीतो धात्रीरसो युक्तो मरिचैश्चास्रगुल्मनुत् ॥ ५० ॥ सुररोचनिकाचूर्णं शर्करामाक्षिकान्वितम् ॥ विदधीतासु गुल्मिन्या मलसंचंक्रमेण च ॥ ५१ ॥ विशेषमपरश्चामुं शृणु रक्तप्रभेदनम् ॥ पलाशक्षारतोयेन सर्पिः सिद्धं पिबेच्च सा ॥ ५२ ॥ यस्मिन्न च रसक्षीरतोयसाध्यरसादिषु ॥ सक्षारं

त्र्यूषणं सर्पिः प्रपिबेदसृग्गुल्मिनी ॥ ५३॥ फेनोद्गारस्य निष्पत्तिर्मिष्टदुग्धसमाकृतेः॥ स एव तस्य पाकस्य कालो नेतरलक्षणः ॥ ५४ ॥

इति गुल्मनिदानचिकित्साधिकारः ।

रक्तगुल्मवाले रोगीके शरीरको स्वेदनका तथा स्नेहनका सस्कार देकर स्नेहयुक्त पदार्थोंका विरेचन देवै और तदनन्तर अन्य चिकित्सा करै । सतावर, करजकी छाल, दारुहलदी, भारगी और पीपल, इनका कल्क करकै तिलके क्वाथके साथ पिये तो इससे रुधिरसम्बन्धी गुल्म नष्ट होताहै । स्त्रियोका रज नष्ट हुआ हो अथवा योनिके रुधिरसे गुल्म हुआ होय तो तिलका; क्वाथ करके उसमें गुड, सोंठ, मिरच, पीपल, घी और भारगी ये पदार्थ डालकर पिये । आमलोंके रसमें कालीमिरच डालकर पिये तो इससे रुधिरसम्बन्धी गुल्म नष्ट होताहै । रुधिरसम्बन्धी गुलमवाली स्त्रीको दोषोंसे स्वच्छ करनेके लिये गोरखमुण्डी और वशलोचन, इनका चूर्ण मिश्री तथा सहतमें मिलाकर खिलावै । स्त्रियोंका रुधिरसम्बन्धीगुल्म जिससे तत्काल नष्ट होजाय ऐसा और प्रयोग कहतेहैं कि–ढाकके खारके पानीमें पकाया हुआ घी पिये, अथवा जवाखार, सोंठ, मिरच और पीपल, इनका चूर्ण घीमें डालकर पियै तो स्त्रीका रुधिरसम्बन्धी गुल्म नष्ट होजाताहै ॥ ४८–५४ ॥

इति श्रीभावप्रकाशे गुल्माधिकारः सपूर्णः ।

अथ प्लीहयकृदधिकारः ।

तत्र शरीरावयवविशेषेण प्लीहास्वरूपम् ।

शोणिताज्जायते प्लीहा वामतो हृदयादधः ॥ रक्तवाहिशिराणां स मूलं ख्यातो महर्षिभिः ॥ १ ॥

बाईं ओर हृदयसे नीचे रुधिरसे प्लीहा (तिल्ली) उत्पन्न होतीहै और रुधिरको वहानेवाली शिराओंका मूल है, ऐसा महर्षियोने कहाहै ॥ १ ॥

अथ प्लीहरोगनिदानसम्प्राप्तिलक्षणानि ।

विदाह्यभिष्यन्दिरतस्य जन्तोः प्रदुष्टमत्यर्थमसृक्कफश्च ॥ प्लीहाभिवृद्धिं कुरुतः प्रवृद्धौ तं प्लीहसंज्ञं गदमामनन्ति ॥ २ ॥ वामे स पार्श्वे परिवृद्धिमेति विशेषतः सीदति चातुरोऽत्र ॥ मंदज्वराग्निः कफपित्तलिंगैरुपद्रुतः क्षीणबलोऽतिपांडुः ॥ ३ ॥

विदाहि कुलत्थमाषसर्षपशाकादि। अभिष्यन्दि माहिषं दध्यादि कफपित्तलिंगैरुपद्रुत इत्यर्थः । प्रदुष्टमत्यर्थमसृक्कफश्चेति सम्प्राप्तेः असृजः पित्तस्य च समानधर्मत्वात् ॥

कुलथी, उडद तथा सरसोंका शाक आदि विदाही पदार्थोंको और भैंसका दही आदि अभिष्यन्दि पदार्थोंको सेवन करनेवाले मनुष्यका अत्यन्त दूषित हुआ रुधिर और कफ, वृद्धिको प्राप्त होकर प्लीहाको वढातेहैं, इसको प्लीहारोग कहतेहैं । अत्यन्त दूषित हुए रुधिर और कफसे प्लीहाकी वृद्धि होतीहै ऐसा जो कहा सो इस रोगकी संप्राप्ति जानना, क्यों कि रुधिर और पित्तका धर्म समान है । यह प्लीहा–बांई पसलीमें वढती है, इससे रोगी अत्यन्त दुःखी होताहै, तथा मन्द मन्द ज्वर, अग्निकी मन्दता, कफ तथा पित्तके चिह्न, बलक्षीण और शरीर अत्यन्त पीला होजाताहै ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ रौधिरप्लीहलक्षणम् ।

क्लमो भ्रमो विदाहश्च वैवर्ण्यं गात्रगौरवम् ॥ मोहो रक्तोदरत्वञ्च ज्ञेयं रक्तजलक्षणम् ॥ ४ ॥

ग्लानि, भ्रम, दाह, वर्णकी विपरीतता, शरीरमे भारीपन, मोह और रक्तोदरका होना, ये लक्षण रुधिरसे हुई प्लीहाके जानने ॥ ४ ॥

अथ पित्तजप्लीहलक्षणम् ।

सज्वरः सपिपासश्च सदाहो मोहसंयुतः ॥ पीतगात्रो विशेषेण प्लीहा पैत्तिक उच्यते ॥ ५ ॥

यदि प्लीहारोग पित्तसे हुआ होय तो ज्वर, तृषा, दाह, मोह और विशेष करकै शरीरका पीला पडजाना, ये लक्षण होतेहैं ॥ ५ ॥

अथ कफजप्लीहलक्षणम् ।

प्लीहा मन्दव्यथः स्थूलः कठिनो गौरवान्वितः ॥ अरोचकेन संयुक्तः प्लीहा कफज उच्यते ॥ ६ ॥

जो प्लीहा हीनपीडावाली हो, तथा मोटी, कठोर, भारी और अरुचि युक्त होय तो जानना कि–कफसे हुआ प्लीहा रोग है ॥ ६ ॥

अथ वातजप्लीहलक्षणम् ।

नित्यमानद्धकोष्ठः स्यान्नित्योदावर्तपीडितः ॥ वेदनाभिः परीतश्च प्लीहा वातिक उच्यते ॥ ७ ॥

जो वायुसे हुआ प्लीहारोग होय तो कोठा जकडा हुआ रहताहै, नित्य उदावर्तकी पीडा और पीडा चारों ओर व्याप्त रहतीहै ॥ ७ ॥

अथ प्लीहासाध्यलक्षणम् ।

दोषत्रितयरूपाणि प्लीहासाध्ये भवन्त्यपि ॥

जिस प्लीहामें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते होयँ, उस प्लीहारोगको असाध्य जानना ॥

अथ शरीरावयवविशेषे यकृत्स्वरूपम् ।

अधो दक्षिणतश्चापि हृदयाद्यकृतः स्थितिः ॥ तत्तु रंजकपित्तस्य स्थानं शोणितजं मतम् ॥ ८ ॥

दाहिनी पसलीमें हृदयके नीचे यकृत्की स्थिति होती है, यह यकृत् रुधिरसे होताहै और मनोरञ्जक पित्तका स्थान मानाजाताहै ॥ ८ ॥

अथ यकृद्रोगः ।

प्लीहामयस्य हेत्वादि समस्तं यकृदामये ॥ किन्तु स्थितिस्तयोर्ज्ञेया वामदक्षिणपार्श्वयोः ॥ ९ ॥

प्लीहारोगके जो जो निदान, संप्राप्ति और लक्षण हैं वेसब यकृत् रोगकेभी निदान, संप्राप्ति और लक्षण जानो, केवल इतनाही अन्तर है कि–प्लीहाकी स्थिति बाई पसलीमें है और यकृत्की स्थिति दाहिनी पसलीमें है ॥ ९ ॥

अथ प्लीहरोगचिकित्सा ।

पातव्यो युक्तितः क्षारः क्षीरेणोदधिशुक्तिजः ॥ तथा दुग्धेन पातव्याः पिप्पल्यः प्लीहशान्तये ॥ १० ॥ अर्कपत्रं सलवणं पुटदग्धं सुचूर्णितम् ॥ निहन्ति मस्तुना पीतं प्लीहानमतिदारुणम् ॥ ११ ॥ हिंगु त्रिकटुकं कुष्ठं यवक्षारं च सैन्धवम् ॥ मातुलुंगरसोपेतं प्लीहशूलहरं भवेत् ॥ १२ ॥ पलाशक्षारतोयेन पिप्पली परिभाविता ॥ प्लीहगुल्मार्तिशमनी वह्निमान्द्यहरी मता ॥ १३ ॥ रसेन जम्बीरफलस्य शंखनाभीरजः पीतमवश्यमेव ॥ शाणप्रमाणं शमयेदशेषं प्लीहामयं कूर्मसमानमाशु ॥ ॥ १४ ॥ शरपुंखमूलकल्कस्तक्रेणालोडितः पीतः ॥ प्लीहानं यदि न हरति शैलोऽपि तदा जले प्लवते ॥ १५ ॥ सुपक्वसहकारस्य रसः क्षौद्रसमन्वितः ॥ पीतः प्रशमयत्येव प्लीहानं नेह संशयः ॥ ॥ १६ ॥ सुस्विन्नं शाल्मलीपुष्पं निशापर्युषितं नरः ॥ राजिकाचूर्णसंयुक्तं खादेत्प्लीहोपशान्तये ॥ १७ ॥ यवानिकाचित्रकयावशूकषड्ग्रन्थिदन्तीमगधोद्भवानाम् ॥ चूर्णं हरेत्प्लीहगदं निपीतमुष्णाम्बुना मस्तुरसासवैर्वा ॥ १८ ॥

प्लीहाकी शांतिके लिये समुद्रकी सीपका भस्म करके दूधके साथ पिये, अथवा पीपलका चूर्ण दूधके साथ पिये । अथवा आकके पत्तेमें नोन रखकर उसको पुटपाकसे जलाकर चूर्ण करलेवे, पश्चात् ये चूर्ण दहीके पानीके साथ पिये, तो इससे अत्यन्त दारुण प्लीहाभी शांत होतीहै । अथवा हींग, सोंठ, मिरच, पीपल, कूट, जवाखार और सैंधानिमक इनका चूर्णकर बिजौरे नींबूके रससे पिये तो इससे प्लीहा और शूलका नाश होताहै अथवा पीपलका चूर्ण पलाशक्षार (ढाकका खार) के जलकी भावना देकर खाय तो इससे प्लीहाकी तथा गुल्मकी पीडा शान्त होजाती है और अग्निकी मन्दता भी नष्ट होजातीहै । अथवा शंखकी नाभिकी भस्म

करकै नीबूके रसके साथ चार मासे पिये तो इससे कछुएकी सदृश ऊंची प्लीहा भी अवश्य भले प्रकार नष्ट होजातीहै । वा सरफोकेकी जडका कल्क करकै तक्र (मठे) मे मिलाकर पिये तो इससे भी यदि प्लीहा रोग नष्ट न होय तो पत्थरभी जलमे तैरने लगैं अर्थात् जिसप्रकार जलमे पत्थरका तैरना असभव है उसी प्रकार इस यत्नसे प्लीहा रोगका न नष्ट होना असंभव है । भलीभाँति पकेहुए आमके रसको सहतके साथ पिये तो इससे प्लीहा रोग अवश्य नष्ट होजाताहै । इसमें किञ्चित् सशय नहीं है । सेमलके फूलको भलीभांति उसेकर रात्रिमें धरा रहने दे, फिर राईके चूर्णके साथ खाय तो प्लीहा रोगकी शांति होती है । अथवा अजवायन, चीता, जवाखार, पीपलामूल, दन्ती और पीपल इनका चूर्ण करकै उष्ण पानीसे अथवा मद्यसे पियै तो इससे प्लीहा रोग नष्ट होजाताहै॥ १०–१८॥

अथ यकृद्रोगचिकित्सा ।

प्लीहोद्दिष्टाः क्रियाः सर्वा यकृद्रोगे समाचरेत् ॥ कार्यश्च दक्षिणे बाहौ तत्र शोणितमोक्षणम् ॥ १९ ॥ क्षारं विडङ्गकृष्णाभ्यां पूतीकस्याम्बुनि शृतम् ॥ पिबेत्प्रातर्यथावह्नि यकृत्प्लीहप्रशान्तये ॥२०॥

अत्र पूतीकः करञ्जः ॥

इति प्लीहयकृदाधिकारः ।

यकृत् रोगमें प्लीहाके लिये जो क्रिया कही हैं वह सब करै और दाहिनी बाँहकी नस खुलवाकर रुधिर निकलवा देवै। अथवा वायविडग तथा पीपलकी भस्म करकै जठराग्निके बलानुसार प्रातःकाल करंजके रसके साथ पिये तो इससे प्लीहा तथा यकृत् रोग शांत होताहै ॥१९॥२०॥

इति प्लीहायकृदधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ हृद्रोगाधिकारः ।

अथ हृदयरोगनिदानम् ।

अत्युष्णगुर्वम्लकषायतिक्तश्रमाभिघाताध्यशनप्रसङ्गैः ॥ संचिन्तनैर्वेगविधारणैश्च हृदामयः पंचविधः प्रदिष्टः ॥ १ ॥

प्रसङ्गः सततं सेवा । संचिन्तनम् अतिचिन्ता राजभयादिकमिति यावत् । हृदामयः स पंचविधः । वातिकः पैत्तिकः श्लैष्मिकः सान्निपातिकः क्रिमिजश्चेति ॥

अत्यत उष्ण, भारी, खट्टे, कसैले और कडवे पदार्थ निरंतर सेवन करनेसे, परिश्रमसे, अभिघात (चोट) से भोजनके ऊपर भोजन करनेके अभ्याससे, राजभय आदिके अत्यत चितवनसे और मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे वात पित्त कफ तथा त्रिदोष संबधी और कृमिज इस भाँति पाँच प्रकारका हृदयरोग होताहै ॥ १ ॥

अथ हृदयरोगसंप्राप्तिलक्षणे ।

दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयङ्गताः॥ हृदि बाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते॥२॥

विगुणाः दुष्टाः । बाधां दोषभेदेन नानाविधां व्यथाम् । भङ्गवत्पीडामिति गणदासः॥

दूषित हुए वातादि दोप हृदयमे रहकर रसको दूषित कर अनेक प्रकारकी पीडा उत्पन्न करेहैं, उसको हृदय रोग कहतेहैं ॥ २ ॥

अथ वातजहृदयरोगलक्षणम् ।

आयम्यते मारुतजे हृदयं तुद्यते तथा ॥ निर्मथ्यते दीर्यते च स्फोट्यते पाट्यतेऽपि वा ॥ ३ ॥

मारुतजे हृद्रोग इति शेषः । आयम्यते व्यथया विस्तार्यत इव । तुद्यते सूचीभिरिव विद्ध्यते । निर्मथ्यते मन्थनेनेव । दीर्यते करपत्रेण द्विधा क्रियत इव । स्फोट्यते अस्त्रेणेव । पाट्यते कुठारेण बहुधा क्रियत इव ॥

वायुसबंधी हृदयरोगमें सम्पूर्ण हृदयमें पीडा व्याप्त होजातीहै। सुई चुभोनेकीसी, मथनेकी सदृश, चीरनेकी समान, शस्त्रसे फाडने सरीखी और कुल्हाडीसे काटनेकी सदृश अनेक प्रकारकी पीडा होतीहै ॥ ३ ॥

अथ पित्तजहृदयरोगलक्षणम् ।

तृष्णोष्मदाहचोषाः स्युः पैत्तिके हृदये क्लमः॥ धूमायनं च मूर्च्छा च स्वेदः शोषो मुखस्य च ॥ ४ ॥

तृष्मा शीतगात्रस्येव शीतवाताभिलाषहेतुः किंचिदन्तरौष्ण्यम् । दाहः पार्श्वस्थेन वह्निनेव दुःखहेतुर्गात्रस्य सन्तापः। चोषं चूषणेनेव पीडा । हृदये क्लमः हृदयाकुलत्वं ग्लानिर्वादित्यर्थः। धूमायनम् कण्ठाद्धूमनिर्गमः। क्लेदः किंचिद्दुर्गन्धः शटित इव ॥

पित्तसम्बन्धी हृदयरोगमें तृषा जिससे शीतल पवनकी इच्छा होय ऐसी भीतर किंचित् गरमी रहतीहै, जैसे अग्नि शरीरके समीपमेंही रहती हो ऐसा शरीरको दुःखदायी संताप होताहै, चूसनेकी सदृश पीडा होतीहै, हृदयको व्याकुल करनेवाली ग्लानि होतीहै, कंठसे धुआँ निकलताहै, मूर्च्छा होतीहै, सडा हुआ पसीना आताहै और मुख सूख जाताहै ॥ ४ ॥

अथ कफयुक्तहृदयरोगलक्षणम् ।

गौरवं कफसंस्रावोऽरुचिः स्तम्भोऽग्निमार्दवम् ॥ माधुर्यमपि चास्यस्य बलासावतते हृदि ॥ ५ ॥

बलासावतते हृदि कुपितकफव्याप्ते । गौरवं हृदयस्य । स्तम्भो जडता । मार्दवं जलप्लुतमिव । माधुर्यं मुखे ॥

कफसंबंधी हृदयरोग हुआ होय तो कुपित कफसे व्याप्त हुए हृदयमें भारीपन रहताहै, तथा कफका स्राव, अरुचि, जडता, जठराग्नि मृदुता और मुखमें मीठापन रहताहै॥५॥

अथ त्रिदोषजहृदयरोगलक्षणम् ।

विद्यात्त्रिदोषमप्येवं सर्वलिंगं हृदामयम् ६॥

तीनों दोषोंके कोपसे जो हृदयरोग हुआ होय तो उपरोक्त तीनों दोषोंके लक्षण होतेहैं ॥ ६ ॥

अथ कृमिजहृदयरोगनिदानसंप्राप्ती।

त्रिदोषजेतुहृद्रोगे यो दुरात्मा निषेवते ॥ तिलक्षीरगुडादींश्च ग्रन्थिस्तस्योपजायते॥ ॥ ७ ॥ मर्मैकदेशे संक्लेदं रसश्चाप्युपगच्छति ॥ संक्लेदात्कृमयश्चास्य पतन्त्युपहतात्मनः ॥ ८ ॥

अत्र क्रिमयो जायन्ते अस्मिन्निति क्रिमिजनिरुक्तिः।मर्मैकदेशे हृदयैकदेशे संक्लेदं शटितत्वं रस उपगच्छति । संक्लेदाद्रसस्य शटितत्वादुपहतात्मनः तिलाद्यहिताहारेण ॥

तीनों दोषोंसे हुए हृदय रोगमें जो मूर्ख मनुष्य तिल दूध तथा गुडादिक पदार्थोंका सेवन करताहै उसका रस हृदयके एक भागमें सडजाताहै, उसके सडनेसे इस दूषित हृदयमें कृमि (कीडे) उत्पन्न होजातेहैं । जिस हृदयरोगमें कृमियें उत्पन्न होतेहैं इस लिये इसको कृमिज कहतेहैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ कृमिजहृद्रोगलक्षणम् ।

उत्क्लेदः ष्ठीवनं तोदः शूलं हृल्लासकस्तमः ॥ अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोषश्च कृमिजे भवेत् ॥ ९ ॥

उत्क्लेदः वमनमिव उपस्थितत्वम् । शोषो यक्ष्मा ॥

जो कृमियोंसे हृदयरोग हुआ होय तो उत्क्लेद (मानों वमन होनेवाली है), मुखसे पानी गिरना, सुईसे छेदने सरीखी पीडा, शूल, हुल्लास, अंधेरेका आना, अरुचि, नेत्रोंका काला होना और क्षयरोग यह लक्षण होतेहैं॥९॥

अथ हृदयरोगोपद्रवाः ।

क्लमः सादो भ्रमः शोषो ज्ञेयास्तेषामुपद्रवाः॥क्रिमिजे तु क्रिमीणां ये श्लेष्मिकाणां हि ते मताः ॥ १० ॥

क्लमः पिपासास्थानस्य सादः शोषः। शोषो मुखस्य । तेषां हृद्रोगाणाम् । क्रिमि-

जे तु हृद्रोगे श्लैष्मिकाणां क्रिमीणां ये उपद्रवा हृल्लासास्यस्रवणविपाकादयः ते मताः ॥

तृषा लगनेके स्थानमे शोष, मुखका सूखना और भ्रम होता है, और हृदयरोगोके जो उपद्रव हैं, परन्तु यदि कृमिज हृदयरोग होय तो कफसे हुए कृमियोंके हृल्लास और मुखस्राव आदि उपद्रव भी होतेहैं ॥ १० ॥

अथ हृदयरोगचिकित्सा।

घृतेन दुग्धेन गुडाम्भसा वा पिबन्ति चूर्णं ककुभत्वचो ये ॥ हृद्रोगजीर्णज्वर-रक्तपित्तं हत्वा भवेयुश्चिरजीविनस्ते ॥ ११ ॥ हरीतकीवचारास्नापिप्पलीनागरोद्भवम् ॥ शटीपुष्करमूलोत्थं चूर्णं हृद्रोगनाशनम् ॥ ॥ १२ ॥ पुटदग्धं हरिणशृंगं पिष्टं गव्येन सर्पिषा पिबतः ॥ हृत्पृष्ठशूलमचिरादुपैति शान्तिं सुकष्टमपि ॥ १३ ॥ तैलाज्य-गुडविपक्वं चूर्णं गोधूमपार्थोत्थम् ॥ पिबति पयोभुक्स भवति गतसकलहृदामयः पुरुषः ॥ १४ ॥

पार्थः कौह इति लोके ॥

गोधूमककुभचूर्णं पक्वमजाक्षीरगव्यसर्पिर्भ्याम् ॥ मधुशर्करासमेतं शमयति हृद्रोगमुद्धतं पुंसाम् ॥ १५ ॥

घीके साथ, दूधके साथ, अथवा गुडके पानीके साथ कोहकी छालका चूर्ण पिये तो इससे हृदयरोग, जीर्णज्वर, तथा रक्तपित्तका नाश होताहै और आयुकी वृद्धि होतीहै। अथवा हरड, वच, रायसन, पीपल, सोंठ, कचूर और पोहकरमूल, इनका चूर्ण करके खाय तो हृदयरोगका नाश होताहै। अथवा हिरनके सींगको संपुटमे रख भस्म करके चूर्ण कर लेवै, पश्चात् गायके घीके साथ पिये तो इससे हृदयका, पीठका शूल महादुःखदायी होय तो भी तत्काल शांत होजाताहै। अथवा गेहूँ तथा कोहके चूर्णको बराबरके दूधमे अथवा गायके घीमे पकावै, पश्चात् सहत तथा मिश्रीके साथ भक्षण करे तो इससे अत्यत वृद्धिको प्राप्त हुआ हृदयरोग भी शांत होजाताहै ॥ ११-१५ ॥

अथार्जुनघृतम्।

पार्थस्य कल्केन रसेन सिद्धं शस्तं घृतं सर्वहृदामयेषु ॥ १६ ॥

कोहकी छालके कल्कसे तथा स्वरससे पकायाहुआ घी सम्पूर्ण हृदयरोगोंमे हितकारी होता है ॥ १६ ॥

अथ बलाद्यघृतम्।

घृतं बलानागबलार्जुनानां क्वाथेन कल्केन च यष्टिकायाः ॥ सिद्धन्तु हन्याद्धृदयामयं हि सवातरक्तक्षतरक्तपित्तम् ॥ १७ ॥

इति हृद्रोगनिदानचिकित्साधिकारः।

खिरैंटी, गुलसकरी तथा कोह, इनके क्वाथसे और मुलेठीके कल्कसे पकायाहुआ घी हृदयरोग, वातरक्त, क्षत और रक्तपित्तको नष्ट करैहै ॥ १७ ॥

इति हृदयरोगाधिकारः सम्पूर्णः।

अथ मूत्रकृच्छ्राधिकारः।

तत्र मूत्रकृच्छ्रनिदानम्।

व्यायामतीक्ष्णौषधरूक्षमद्यप्रसंगनृत्यद्रुत-पृष्ठयानात् ॥ आनूपमत्स्याध्यशनादजीर्णात्स्युर्मूत्रकृच्छ्राणि नृणां तथाष्टौ ॥ १ ॥

तीक्ष्णौषधं राजिकासूरणादिकयुक्तम्। रूक्षेति मद्यविशेषणम्। प्रसंगः सन्ततं सेवा। नृत्यं नर्तनम्। नित्येति द्वितीयः पाठः। द्रुतपृष्ठयानात् अश्वादिना गमनात्। आनूपं प्रचुरजलदेशसम्भवम्। अष्टौ वातिकपैत्तिकश्लैष्मिकसान्निपातिकशल्यजपुरीषज शुक्रजाश्मरीजानि ॥

अत्यन्त व्यायाम (कसरत) करनेसे राई आदि तीक्ष्ण पदार्थोंकी औषधिका तथा रूक्ष मद्यका अत्यन्त सेवन करनेसे, बहुत नाचनेसे, घोडा आदिकी सवारी पै चढकर बहुत दौडानेसे, अधिक जलवाले देशकी मछलियोंको खानेसे, भोजनपर भोजन और अजीर्णसे, मनुष्योंके आठ प्रकारका मूत्रकृच्छ्र होता है। वातसे, पित्तसे, कफसे, तीनों दोषोंसे, शल्यसे, विष्ठासे, वीर्यसे और पथरीसे हुआ, इस प्रकार मूत्रकृच्छ्रके आठ भेद जानने ॥ १ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्रसम्प्राप्ति-सामान्यलक्षणे ।

पृथङ्मलाः स्वैः कुपिता निदानैः सर्वेऽथ वा कोपमुपेत्य वस्तौ ॥ मूत्रस्य मार्गं परिपीडयन्ति यदा तदा मूत्रयतीह कृच्छ्रात् ॥ २ ॥

अपने अपने कारणोंसे कुपित हुआ एक एक दोष अथवा इसी प्रकार कुपितहुए सम्पूर्ण दोष मूत्राशयमें कुपित होकर जब मूत्रके मार्गको पीडित करते हैं तब मनुष्य बहुत कष्टसे मूत्र करसक्ताहै ॥ २ ॥

अथ वातजमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् ।

तीव्रा च रुग्वंक्षणवस्तिमेढ्रे स्वल्पं मुहुर्मूत्रयतीह वातात् ॥ ३ ॥

तीव्रा मारणात्मिका । वंक्षणः ऊरुमेढ्रागामभ्यन्तरालसन्धिः ॥

जो वायुसे मूत्रकृच्छ्र हुआ होय तो वंक्षण तथा मूत्राशयमें और लिंगमें अत्यन्त तीव्र पीडा होतीहै और वारवार अल्प २ मूत्र आता है ॥ ३ ॥

अथ पित्तजमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् ।

पीतं सरक्तं सरुजं सदाहं कृच्छ्रं मुहुर्मूत्रयतीह पित्तात् ॥ ४ ॥

कृच्छ्रमिति क्रियाविशेषणम् ॥

जो पित्तसे मूत्रकृच्छ्र हुआ होय तो वारवार, पीला रुधिरयुक्त, वेदनासहित और दाहयुक्त थोडा २ मूत्र उतरता है ॥ ४ ॥

अथ कफजमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् ।

वस्तेः सलिंगस्य गुरुत्वशोथौ मूत्रं सपिच्छं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ ५ ॥

सपिच्छं पिच्छिलम् ।

जो कफसे मूत्रकृच्छ्र हुआ होय तो मूत्राशय और लिंगमें भारीपन तथा सूजन होतीहै और चिकनासा मूत्र उतरताहै ॥ ५ ॥

अथ सन्निपातजमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् ।

सर्वाणि रूपाणि तु सन्निपाताद्भवन्ति तत्कृच्छ्रतमं हि कृच्छ्रम् ॥ ६ ॥

जो तीनों दोषोंसे मूत्रकृच्छ्र हुआ होय तो उपरोक्त तीनों दोषोंके लक्षण होतेहैं, यह मूत्रकृच्छ्र बहुत दुःखदायी है ॥ ६ ॥

अथ शल्यजनितमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् ।

मूत्रवाहिषु शल्येन क्षतेष्वभिहतेषु च ॥ मूत्रकृच्छ्रं तदाघाताज्जायते भृशदारुणम् ॥ वातकृच्छ्रेण तुल्यानि तस्य लिंगानि निर्दिशेत् ॥ ७ ॥

मूत्रवाहिषु स्रोतःसु शल्येन कण्टकेन क्षतेषु सक्षतीकृतेषु । अथ वा । अभिहतेषु मुष्ट्यादिभिः अभिहतेषु तदाघातान्मूत्रमार्गाघातात्तत्कृच्छ्रं जायते । भृशदारुणं मारकम् । तस्य शल्यजस्य ॥

मूत्रका वहन करनेवाले स्रोत (मार्ग) काटे आदि शल्यसे क्षतयुक्त होजायँ, अथवा मुठी आदिकी चोट लगै तो मूत्रके मार्गका आघात होनेसे मृत्युकी सदृश महादारुण मूत्रकृच्छ्र उत्पन्न होताहै और वह शल्यज मूत्रकृच्छ्र कहलाताहै, इस मूत्रकृच्छ्रके लक्षण वायुसे हुए मूत्रकृच्छ्रकी सदृशही होतेहैं ॥ ७ ॥

अथ पुरीषजमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् ।

शकृतस्तु प्रतीघाताद्वायुर्विगुणतां गतः ॥ आध्मानं वातशूलञ्च मूत्रसंगं करोति च ॥ ८ ॥

विष्ठाका प्रतिघात (अवरोध) होनेसे दूषित हुआ वायु पेटमें अफारेको उत्पन्न करैहै और मूत्रका अवरोध होताहै ॥ ८ ॥

अथ वीर्यजन्यमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् ।

शुक्रदोषैरुपहते मूत्रमार्गे विधारिते ॥ सशुक्रं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्वस्तिमेहनशूलवान् ॥ ९ ॥

उपहते दूषित ॥

वीर्यके दोषोंसे दूषित होकर मूत्रका मार्ग संकुचित होताहै तब अल्प २ मूत्र उतरताहै मूत्रके साथ वीर्य निकलताहै और मूत्राशय तथा लिंगमें शूल होताहै ॥ ९ ॥

अथाश्मरीजन्यमूत्रकृच्छ्रलक्षणम् ।

अश्मरीहेतुकञ्चापि मूत्रकृच्छ्रमुदाहृतम् १०

सुश्रुते शर्कराजमपि मूत्रकृच्छ्रमुक्तमत्र तु तस्य नवमसंख्यानियमार्थमश्मरीशर्करयोः साम्यमाह–

अश्मरी शर्करा चैव तुल्यसम्भवलक्षणे ॥ विशेषणं शर्करायाः शृणु कीर्तयतो मम ॥ ११ ॥

सम्भवः कारणम् ॥

पच्यमानाऽश्मरी पित्ताच्छोष्यमाणा च वायुना ॥ विमुक्तकफसन्धाना क्षरन्ती शर्करा मता ॥ १२ ॥

पित्तेन पच्यमाना मूत्रशुक्रश्लेष्मसंहतिः प्रथमं पित्तेन इन्धनकर्मणा पच्यमाना पश्चाद्वातेन शोषिता कफेनाश्लिष्टा अश्मरी सैव विमुक्तकफसन्धाना त्यक्तकफाश्लेषा सती शर्करारूपा मूत्रमार्गात्क्षरन्ती शर्करा मता एतावता किञ्चिदेव भेदः ॥

पथरी होनेसे मूत्र जो कष्टसे होताहै वह अश्मरीज मूत्रकृच्छ्र कहाताहै । जो कि सुश्रुतमे 'शर्कराज' (कंकरीसे हुआ) नामक नवमा मूत्रकृच्छ्रभी कहा है तो भी इस प्रकरणमें मूत्रकृच्छ्रकी आठ सख्याका नियम रखनेके कारण और पथरी तथा कंकरी यह समानही होनेके कारण शर्कराज मूत्रकृच्छ्रको पृथक् नहीं गिना । कहा है कि "पथरी और कंकरी इनके निदान तथा लक्षण तुल्यही है तो भी पथरीसे ककरीमें जो भेद हैं उनको कहतेहैं सुनो, पित्त–कि जो पकानेका काम करताहै उससे पककर पश्चात् वायुसे सूखकर और कफके संयोगको प्राप्त हुई पथरी नामक वस्तु–कि जो मूत्र वीर्य और कफका समुदायरूप है वह पथरी जब कफके संयोगसे छूटकर मूत्रके मार्गमेंसे कंकरीरूप झरने लगतीहै तब वह ककरी कहातीहै" इस प्रकार पथरी और ककरीमें केवल इतनाही भेद है ॥ १०–१२ ॥

अथ शर्करोपद्रवाः ।

हृत्पीडा वेपथुः शूलं कुक्षावग्निश्च दुर्बलः ॥ तथा भवति मूर्च्छा च मूत्रकृच्छ्रश्च दारुणम् ॥ १३ ॥

हृदयमे पीडा, कम्प, शूल, पेटमें अग्निकी मन्दता, मूर्च्छा और दारुण मूत्रकृच्छ्र ये शर्करासे हुए मूत्रकृच्छ्रमें उपद्रव होतेहैं ॥ १३ ॥

अथ वातजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

अभ्यञ्जनस्नेहनिरूहवस्तिस्वेदोपनाहोत्तरवस्तिसेकान् ॥ स्थिरादिभिर्वातहरैश्च सिद्धान्दद्याद्रसांश्चानिलमूत्रकृच्छ्रे ॥ १४ ॥ अमृता नागरं धात्री वाजिगन्धात्रिकण्टकैः ॥ प्रपिबेद्वातरोगार्तः शूलवान्मूत्रकृच्छ्रवान् ॥ १५ ॥

वायुसे मूत्रकृच्छ्र हुआ होय तो वैद्य रोगीको अभ्यंग (तैलादिकी मालिश) स्नेहन, निरूहवस्ति तथा उत्तरवस्ति देवै, अगोंमे योग्य औषधिये बँधवावै घी आदिसे सिकवावे, तथा वातनाशक, शालिपर्णी आदि पदार्थोंसे पकाये हुए रस पिलावै । अथवा गिलोय, सोंठ, आंवला, असगन्ध और गोखुरू, इनका क्वाथ करके पिलावै तो इससे वायुसम्बन्धी रोग, शूल तथा मूत्रकृच्छ्र नष्ट होताहै ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ पुनर्नवाद्यमिश्रकम् ।

पुनर्नवैरण्डशतावरीभिः पत्तूरवृश्चीवबलाश्मभिद्भिः ॥ द्विपञ्चमूलेन कुलत्थकेन यवैश्च तोयोत्क्वथिते कषाये ॥ १६ ॥ तैलं वराहर्क्षवसाघृतञ्च तैरेव कल्कैर्लवणैश्च सिद्धम् ॥ तन्मात्रयाऽत्र प्रतिहन्ति पीतं शूलान्वितं मारुतमूत्रकृच्छ्रम् ॥ १७ ॥

पुनर्नवा, एरण्ड, शतावर, पत्तूर, सफेद फूलवाली सांठ, खिरेटी, पाखानभेद, वृहत्पञ्चमूल, लघुपचमूल, कुलथी और जौ, इनका क्वाथ करके उस क्वाथमे इनहीं पदार्थोंका कल्क डालकर तथा सैंधानोन डालकर पकाया हुआ तेल, सुअरकी चरबी, रीछकी चरबी और घी इनको योग्यमात्रानुसार पियै तो इससे शूलसहित वायुसबंधी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होताहै ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ पित्तजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

सेकावगाहाः शिशिराः प्रदेहा ग्रैष्मो विधिर्वस्तिपयोविकाराः ॥ द्राक्षाविदा-

रीक्षुरसैर्घृतैश्च कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु कार्याः ॥ १८ ॥

मूत्रकृच्छ्र पित्तसे हुआ होय तो वैद्य रोगीके अंगोंपर जल आदि शीतल पदार्थोंका सेचन करावे, रोगीको ऐसेही शीतल पदार्थों युक्त कोटीमें अवगाहन करावे, शीतल लेप करे, ग्रीष्म ऋतुके योग्य उपचार करे और दाखका रस, विदारीकंदका, रस, ईखका रस तथा घी, इनकी पिचकारी लगावे, तथा इनही पदार्थोंको डालकर दूधके विकार खिलावे ॥ १८ ॥

अथ तृणपञ्चमूलम् ।

कुशः काशः शरो दर्भ इक्षुश्चेति तृणोद्भवम् ॥ पित्तकृच्छ्रहरं पञ्चमूलं वस्तिविशोधनम् ॥ १९ ॥

कुश, काँस, रामसर, डाभ, और ईख, इन पाँचोंकी जडको तृणपंचमूल कहतेहैं, इन पंचमूलका उपयोग करनेसे पित्तसम्बन्धी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होताहै और वस्त्याशय शुद्ध होताहै ॥ १९ ॥

अथ शतावर्यादिक्वाथः ।

शतावरीकाशकुशश्वदंष्ट्राविदारिशालीक्षुकसेरुकाणाम् ॥ क्वाथं सुशीतं मधुशर्कराभ्यां युक्तं पिबेत्पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रे ॥ २० ॥

सतावर, काँस, कुशा, गोखुरू, विदारीकन्द, शालिधान्य, ईख और कसेरू, इनका क्वाथ करके सहत और मिश्री डाले जब शीतल होजाय तब पिये तो पित्तसम्बन्धी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होताहै ॥ २० ॥

अथैर्वारुबीजादिपानम् ।

एर्वारुबीजं मधुकञ्च दार्वीं पैत्ते पिबेत्तण्डुलधावनेन ॥ दार्वीं तथैवामलकीरसेन समाक्षिकं पित्तकृते तु कृच्छ्रे ॥ २१ ॥

ककडीके बीज मुलेठी और दारुहल्दी इन सबको चावलोंके पानीमें पीसकर चावलोंके जलमेंही पिये तो इससे पित्तसंबंधी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होताहै। अथवा दारुहल्दीको आमलेके रसमें पीसकर सहत डालकर पिये तो इससे पित्तसंबंधी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होजाताहै ॥ २१ ॥

अत्र हरीतक्यादिक्वाथः ।

हरीतकीगोक्षुरराजवृक्षपाषाणभिद्धन्वयवासकानाम् ॥ क्वाथं पिबेन्माक्षिकसंप्रयुक्तं कृच्छ्रे सदाहे सरुजे विबन्धे ॥ २२ ॥

हरड, गोखुरू, अमलतासका गूदा, पाखानभेद, धनिया और धमासा, इनका क्वाथ करके सहत डालकर पिये तो इससे दाहयुक्त तथा वेदनायुक्त मूत्रकृच्छ्र और मलबंध नष्ट होताहै ॥ २२ ॥

अथ शतावरीघृतम् ।

शतावरीकाशकुशश्वदंष्ट्राविदारिकेक्ष्वामलकेषु सिद्धम् ॥ सर्पिः पयो वा सितया विमिश्रं कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु योज्यम् ॥ २३

शतावर, काँस, कुशा, गोखुरू, विदारीकन्द, ईखका रस और आमले, इनको दूध अथवा घीमें पकाकर मिश्री डाले, पश्चात् इसको पिये तो इससे पित्तसबंधी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होजाताहै ॥ २३ ॥

अथ त्रिकंटकाद्यघृतम् ।

त्रिकण्टकैरण्डकुशाद्यभीरुकर्कारुकेषु स्वरसेषु सिद्धम् ॥ सर्पिर्गुडार्द्धांशयुतं प्रयोज्यं कृच्छ्राश्मरीमूत्रविघातदोषे ॥ २४ ॥ अय विशेषेण पुनर्विधेयः सर्वाश्मरीणां प्रवरः प्रयोगः ॥ २५ ॥

गोखरू, एरण्ड, कुशा आदिकी जड, शतावर, ककडीके बीज और ईखका स्वरस, इनको घीमें पकावे, फिर इसमें आधाभाग गुड डालकर खाय तो इससे मूत्रकृच्छ्र, पथरी और मूत्राघात ये नष्ट होतेहैं । यह उत्तम प्रयोग, सब प्रकारकी पथरियोंमें विशेष करके देवै॥२४॥२५॥

अथ कफजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

क्षारोष्णतीक्ष्णौषधमन्नपानं स्वेदो यवान्नं वमनं निरूहः ॥ तक्रञ्च तिक्तोषणसिद्धतैलान्यभ्यंगपानं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ २६ ॥ मूत्रेण सुरया वापि कदलीस्वरसेन वा ॥ कफकृच्छ्रविनाशाय सूक्ष्मं पिष्ट्वा त्रुटिं पिबेत् ॥ २७ ॥ तक्रेण युक्तं शितिवार-

कस्य बीजं पिबेन्मूत्रविघातहेतोः ॥ पिबेत्तथा तण्डुलधावनेन प्रवालचूर्णं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ २८ ॥ त्रिकटु त्रिफला मुस्तं गुग्गुलुश्च समाक्षिकम् ॥ गोक्षुरक्राथसंयुक्तं गुटिकां भक्षयेद्बुधः ॥ २९ ॥ प्रमेहं मूत्रकृच्छ्रश्च मूत्राघातं तथैव च॥ अश्मरीं प्रदरश्चैव नाशयेदविकल्पतः ॥ ३० ॥

खार, उष्ण तथा तीव्र औषधि और अन्नपान, स्वेदन, जौका भोजन, वमन, निरूहणवस्ति, तक्र और कडवे पदार्थोंसे तथा काली मिरचोंसे पकाये हुए तेलका अभ्यग अथवा पीनेसे कफसंबंधी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होताहै ॥

अथवा गोमूत्रसे, मदिरासे तथा केलेके स्वरससे छोटी इलायचीको बारीक पीसकर पिये तो कफसंबंधी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होताहै। अथवा शितिवार (शिरिआरी) के बीजोंको तक्रमें पीसकर पियै तो कफसंबंधी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होताहै। अथवा मूँगेकी भस्मको चावलोंके धोवनसे पियै तो कफसंबंधी मूत्रकृच्छ् दूर होताहै। अथवा सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, मोथा, गूगल और सहत, इनकी गोली बनाकर गोखुरूके क्राथके साथ खाय तो इससे प्रमेह, प्रदर, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और पथरी इनको नष्ट करैहै, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ २६-३० ॥

अथ त्रिदोषजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा।

सर्वत्रिदोषप्रभवे च वायोः स्थानानुपूर्व्या प्रसमीक्ष्य कार्यम् ॥ त्रिभ्योऽधिके प्राग्वमनं कफे स्यात्पित्ते विरेकः पवने तु वस्तिः ॥ ३१ ॥ बृहती धावनी पाठा यष्टीमधुकलिंगका॥पाचनीयो बृहत्यादिः कृच्छ्रदोषत्रयापहः ॥ ३२ ॥ गुडेन मिश्रितं क्षीरं कटूष्णं कामतः पिबेत् ॥ मूत्रकृच्छ्रेषु सर्वेषु शर्करावातरोगनुत् ॥ ३३ ॥

तीनो दोषोंसे मूत्रकृच्छ्र हुआ होय तो रोगीके बलको विचारकर तीनों दोषोंकी चिकित्सा करै। कफ अधिक होय तो प्रथम वमन करावै, पित्त अधिक होय तो प्रथम विरेचन देवै और वायु अधिक होय तो प्रथम पिचकारी लगावै। अथवा बडी कटेरी, पिठवन, पाढ, मुलहठी और इन्द्रजौ इनका क्राथ तीनों दोष संबधी मूत्रकृच्छ्रको दूर करताहै अथवा दूधमें गुडको मिलाकर उसको किंचित् उष्णकर इच्छानुसार पिलावै तो इससे सर्वप्रकारके मूत्रकृच्छ्र शर्करा और वायुसबंधी रोग नष्ट होतेहैं ॥ ३१-३३ ॥

अथाभिघातजन्यमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा।

मूत्रकृच्छ्रेऽभिघातोत्थे वातकृच्छ्रक्रिया मता ॥ ३४ ॥ मद्यं पिबेद्वा ससितं ससर्पिः शृतं पयो वार्द्धसिताप्रयुक्तम् ॥ धात्रीरसश्चेक्षुरसं पिबेद्वा कृच्छ्रे सरक्ते मधुना विमिश्रम् ॥ ३५ ॥

चोटके लगनेसे मूत्रकृच्छ्र हुआ होय तो वायुसे हुए मूत्रकृच्छ्रके लिये जो क्रिया कहीं हैं वो करै, रुधिर सहित मूत्र उतरता होय तो घी, मिश्री तथा सहत, इनसे मिलाकर मद्य पियै अथवा औटाया हुआ दूध सहतके साथ तथा आधाभाग बूरा डालकर पिये। वा आमलोंका रस तथा ईखका रस, इनको मिलाकर उसमें सहत डालकर पियै ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

अथ पुरीषजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा।

स्वेदचूर्णक्रियाभ्यंगवस्तयः स्युः पुरीषजे॥ क्राथो गोक्षुरबीजस्य यवक्षारयुतः सदा॥ मूत्रकृच्छ्रं शकृज्जन्म पीतं शीघ्रं नियच्छति ॥ ३६ ॥

मूत्रकृच्छ्र विष्ठाके रोकनेसे हुआ होय तो स्वेदन, दस्तावर चूर्णोंका सेवन, तैलादिक अभ्यग और वस्तिकर्म करै। अथवा गोखुरूके बीजोंका क्राथ करकै उसमे जवाखार डालकर नित्य पिवै तो विष्ठासे हुआ मूत्रकृच्छ्र तत्काल नष्ट होजाताहै ॥ ३६ ॥

अथ वीर्यजन्यमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा।

लेहः शुक्रविबन्धोत्थे सशिलाजतु माक्षिकम् ॥ एलाहिंगुयुतं क्षीरं सर्पिर्मिश्रं पिबेन्नरः ॥ ३७ ॥ मूत्रदोषप्रशुद्ध्यर्थं शुक्रदोषहरश्च तत् ॥ वृष्यबृंहितधातोश्च विधेयाः प्रमदोत्तमाः ॥ ३८ ॥

शिलाजीत, तथा सहत, इनको मिलाकर चाटे तो इससे वीर्यजनित मूत्रकृच्छ्र नष्ट होताहै अथवा दूधमें इलायची, हींग तथा घी, इनको मिलाकर पिये तो मूत्रके दोष स्वच्छ होजातेहैं और वीर्यके दोष नष्ट होजातेहैं । अथवा जिसको वीर्यके दोषसे मूत्रकृच्छ्र हुआ होय तो उसको वृष्य पदार्थ खिलाकर वीर्यको बढावै, पश्चात् उस पुरुषको उत्तम स्त्रियोंसे रमण करावै ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

अथाश्मरीजन्यमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

सप्तच्छदारग्वधकेवुकैला निम्बः करञ्जः कुटजो गुडूची ॥ साध्या जले तेन पचेद्यवागूं सिद्धं कषायं मधुसंयुतं वा॥३९॥ एर्वारुबीजकल्कश्च श्लक्ष्णपिष्टोऽक्षसंमितः॥ धान्याम्ललवणैः पेयो मूत्रकृच्छ्रविनाशनः ॥ ४० ॥ त्रिकण्टकारग्वधदर्भकाशदुरालभापर्वतभेदपथ्याः ॥ निघ्नन्ति पीता मधुनाऽश्मरीन्तु संप्राप्तमृत्योरपि मूत्रकृच्छ्रम् ॥ ४१ ॥

सतोना, अमलतास, सुपारी, इलायची, नीम, करंज, कुडेकी छाल और गिलोय, इनका क्वाथ करके उसमें सहत डालकर पिये, अथवा इस क्वाथमें यवागू बनाकर खाय तो पथरीसे हुआ मूत्रकृच्छ्र नष्ट होजाताहै । अथवा ककडीके बीजोंका कल्क करके खूब पीसलेवे, इसको एक तोला लेकर कांजी तथा सेंधेके साथ खाय तो मूत्रकृच्छ्र नष्ट होताहै । वा गोखरू, अमलतास, डाभ, काँस, धमासा, पाषाणभेद, और हरड, इनको पीस सहतके साथ पिये तो इससे मृत्युकी सदृश मूत्रकृच्छ्रभी नष्ट होजाताहै ॥ ३९-४१ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्रसामान्यचिकित्सा ।

निदिग्धिकायाः स्वरसं कुडवं मधुसम्मितम् ॥ मूत्रदोषहरं पीत्वा नरः सम्पद्यते सुखी ॥ ४२ ॥ कषायोऽतिबलामूलसाधितोऽशेषकृच्छ्रजित् ॥ पीतश्च त्रपुसीबीजं सतिलाज्यपयोन्वितम् ॥ ४३ ॥ त्रिफलायाः सुपिष्टायाः कल्कं कोलसमन्वितम् ॥ वारिणा लवणीकृत्य पिबेन्मूत्ररुजापहम् ॥ ४४ ॥ यवोरुबूकतृणपञ्चमूलीपाषाणभेदैः सशतावरीभिः ॥ कृच्छ्रेषु गुग्गुल्वभयाविमिश्रैः कृतः कषायो गुडसंप्रयुक्तः ॥ ४५ ॥ मूलानि कुशकाशेक्षुशराणां चेक्षुबालिका ॥ मूत्रघाताश्मरीकृच्छ्रे पञ्चमूली तृणात्मिका ॥४६॥ गुडमामलकं वृष्यं श्रमघ्नं तर्पणं प्रियम् ॥ पित्तासृग्दाहशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रनिवारणम् ॥ ॥ ४७ ॥ सितातुल्यो यवक्षारः सर्वकृच्छ्रप्रसाधनः ॥ द्राक्षासितोपलाकल्कं कृच्छ्रघ्नं मस्तुना युतम् ॥ ४८॥ विदारी सारिवा छागशृंगी वत्सादनी निशा ॥ कृच्छ्रं पित्तानिलाद्धन्ति वल्लिजं पञ्चमूलकम् ॥ ॥ ४९ ॥ एलाश्मभेदकशिलाजतुपिप्पलीनामेर्वारुबीजलवणोत्तमकुंकुमानाम् ॥ चूर्णानि तण्डुलजले लुलितानि पीत्वा प्रत्यग्रमृत्युरपि जीवति मूत्रकृच्छ्री॥५०॥ अयोरजः सूक्ष्मपिष्टं मधुना सह योजितम् ॥ मूत्रकृच्छ्रं निहन्त्याशु त्रिभिर्लेहैर्न संशयः ॥ ५१ ॥

कटेरीका सोलहतोले स्वरस सहत डालकर पिये तो मूत्रदोष दूरहोकर मनुष्यको सुखकी प्राप्ति होतीहै । अतिबला (कघी) की जडका क्वाथ करके पिये तो इससे सर्व प्रकारके मूत्रकृच्छ्र दूर होजातेहैं । अथवा खीराके बीज और तिल, इनको घीमें तथा दूधमें पीसकर पिये तो मूत्रकृच्छ्र नष्ट होताहै । हरड, बहेडा और आमला, इनका कल्क करके इसमें बेरकी मींग और सैंधानोन डालकर पानीसे पिये तो इससे मूत्रकृच्छ्र नष्ट होजाताहै जौ, एरंड, तृणपञ्चमूल, पाषाणभेद, शतावर, गूगल और हरड इनका क्वाथ करके गुड डालकर पिये तो इससे मूत्रकृच्छ्र नष्ट होताहै । अथवा कुशा, काँस, ईख, रामसर और नरसल इनकी जडको पीसकर पिये तो मूत्रा-

वात और पथरिसंबधी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होताहै। गुड और आमलोंका सेवन–वृष्य, श्रमनाशक, तृप्तिदायक, प्रिय और पित्त, रुधिरविकार, दाह तथा शूल नाशक है। मिश्री मिलाकर जवाखार खाय तो सर्वप्रकारके मूत्रकृच्छ्र नष्ट होतेहैं। अथवा दाख और मिश्री इनका कल्क करकै दहीके पानीके साथ पियै तो मूत्रकृच्छ्र दूर होताहै। विदारी कंद, सारिवा, मेंढासिंगी, गिलोय, हलदी, वायविडंग और तृणपंचमूल, इनको पीसकर पियै तो तत्काल मूत्रकृच्छ्र नष्ट होताहै। अथवा इलायची, पाषाणभेद, शिलाजीत, पीपल, ककडीके बीज, सैंधानिमक और केसर, इनका चूर्ण करकै चावलोंके पानीमें मिलाकर पियै तो मृत्युको प्राप्त होनेवालाभी मूत्रकृच्छ्ररोगी रोगरहित होकर जीवित रहताहै। वा लोहेकी भस्मको बारिक पीस सहतमें मिलाकर तीन दिनतक चाटै तो इससे शीघ्र मूत्रकृच्छ्र नष्ट होताहै, इसमें किंचित् भी संदेह नहीं है॥ ४२–५१॥

अथ सुकुमारकुमारकपुनर्नवावलेहः।

पुनर्नवामूलतुलां दर्भमूलं शतावरीम्॥ बला तुरङ्गगन्धा च तृणमूलं त्रिकण्टकम्॥ ५२॥ विदारिकन्दनागाह्वगुडूच्यतिबलास्तथा॥ पृथग्दशपलान्भागानपां द्रोणे विपाचयेत्॥ ५३॥ तेन पादावशेषेण घृतस्यार्द्धाढकं पचेत्॥ मधुकं शृङ्गवेरञ्च द्राक्षां सैन्धवपिप्पलीम्॥ ५४॥ द्विपलांशान्पृथग्दत्त्वा यवान्याः कुडवं तथा॥ त्रिंशद्गुडपलान्यत्र तैलस्यैरण्डजस्य च॥ ५५॥ एतदीश्वरपुत्राणां प्राग्भोजनमनिन्दितम्॥ राज्ञां राजसमानानां बहुस्त्रीपतयश्च ये॥ ५६॥ मूत्रकृच्छ्रे कटिस्रस्ते तथा गाढपुरीषिणाम्॥ मेढ्रवंक्षणशूले च योनिशूले च शस्यते॥ ५७॥ यथोक्तानाञ्च गुल्मानां वातशोणितनिश्चये॥ बल्यं रसायनं श्रीदं सुकुमारकुमारकम्॥ पुनर्नवाशते द्रोणे प्रदेयः सोऽपि चापरः॥ ५८॥ मूत्राघातादिविधानमपि कार्यम्॥

इति सुकुमारकुमारकावलेहः।

चारसौ तोले पुनर्नवाकी जड और डाभकी जड, सतावर, खिरेटीकी जड, असगध, तृणपंचमूल, गोखरू, विदारीकंद, नागकेसर, गिलोय तथा ये प्रत्येक चालीस चालीस तोले लेकर एक हजार चौवीस (१०२४) तोले जलमें क्वाथ करे, जब चौथा भाग शेष रहै तब उस क्वाथमें एकसौ अट्ठाईस (१२८) तोले घी पकावे, इस घीमें–मुलैठी, अदरख, मुनक्का, सैंधानिमक और पीपल, इन प्रत्येक पदार्थके चूर्णको आठ आठ तोले डाले और एकसौ वीस (१२०) तोले अंडीका तेल डाले तब 'सुकुमारकुमारकपुनर्नवा अवलेह' सिद्ध होताहै, इस अवलेहको सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्र, कमरकी शिथिलता, विष्ठाकी अत्यत दृढता, लिंगका शूल, वक्षणशूल, योनिका शूल, सर्व प्रकारके गुल्म और वातरक्त, इनका नाश होताहै। यह अवलेह–राजाओंको, राजाके सदृश पुरुषोंको और अधिक स्त्रीवाले पुरुषको सेवन करावे। यह लेह–बलवर्द्धक, लक्ष्मीदायक और बालकोंको सुकुमार (शोभायमान) करनेवाला है॥ ५२–५८॥

और भी मूत्राघातमें जो चिकित्सा कही है सो करे॥

इति मूत्रकृच्छ्राधिकारः सम्पूर्णः।

अथ मूत्राघाताद्यधिकारः।

तत्र मूत्राघातकारणम्।

जायन्ते कुपितैर्दोषैर्मूत्राघातास्त्रयोदश॥ प्रायो मूत्रविघाताद्यैर्वातकुण्डलिकादयः॥ १॥

विशेष करकै मूत्रादिकके वेगोंको रोकनेसे कुपित हुए दोष वातकुंडलिका आदि तेरह प्रकारके मूत्राघातोंको उत्पन्न करै हैं॥ १॥

अथ वातकुंडलिकालक्षणम्।

रौक्ष्याद्वेगविघाताद्वा वायुर्बस्तौ सवेदनः। मूत्रमाविश्य चरति विगुणः कुण्डलीकृतः॥ २॥ मूत्रमल्पाल्पमथवा सरुजं सम्प्रवर्तते॥ वातकुण्डलिकां तां तु व्याधिं विद्यात्सुदारुणम्॥ ३॥

रौक्ष्यात्कायस्य । वेगविघातान्मूत्रादिवेगनिरोधात्, आविश्य आवृत्य मूत्रमिति, रौक्ष्यादिभिर्वेगविघातादिभिश्च विगुणः दुष्टः कुण्डलीकृतः वातावर्तो वस्तावेव भ्रमन् तिष्ठति । कुण्डलीभूतो वायुः वस्तौ मूत्राशये चरति प्रधावति । आवद्धत्वाद् भ्रमन् तिष्ठति ॥

शरीरके रुक्ष होनेसे अथवा मूत्रआदिके वेगोंको रोकनेसे दूषित हुई वायु कुण्डलाकार (गोलाकार) हो मूत्रमें मिलकर पीडाको उत्पन्न करतीहै तब मूत्रमें मिली हुई होनेसे मूत्राशयमेंही विचरती रहतीहै इससे अल्प अल्प और पीडायुक्त मूत्र उतरता है, यह तीव्र और महादारुण रोग वातकुण्डलिका कहाताहै ॥ २ ॥ ३ ॥

अथाष्ठीलालक्षणम् ।

आध्मापयन्वस्तिगुदं रुद्ध्वा वायुश्चलोन्नताम् ॥ कुर्यात्तीव्रार्तिमष्ठीलां मूत्रविण्मार्गरोधिनीम् ॥ ४ ॥

वातः वस्तिगुदं रुद्ध्वा अर्थात्तदन्तर्गतं मूत्रं मलञ्च निरुध्य वस्तिं गुदञ्च आध्मापयन् आध्मानं कुर्वन् अष्ठीलाम् अष्ठीलातुल्यां ग्रंथिं कुर्यात् । चलोन्नतां चलामुन्नताञ्च ॥

वायु, मूत्र तथा मलको रोककर मूत्राशय तथा गुदामें अफारा करके चंचल, ऊँची, तीव्रपीडावाली और मूत्रके तथा विष्ठाके मार्गको रोकनेवाली पिंडीकी सदृश गांठको उत्पन्न करैहै, इसको अष्ठीला कहतेहैं ॥ ४ ॥

अथ वातलक्षणम् ।

वेगं विधारयेद्यस्तु मूत्रस्याकुशलो नरः ॥ निरुणद्धि मुखं तस्य वस्तेर्वस्तिगतोऽनिलः ॥ ५ ॥ मूत्रसङ्गो भवेत्तेन वस्तिकुक्षिनिपीडितः ॥ वातवस्तिः स विज्ञेयो व्याधिः कृच्छ्रप्रसाधनः ॥ ६ ॥

अकुशलो मूर्खः । पुरुषस्य वस्तेर्मुखं निरुणद्धि वस्तिगतो वायुः । तेन वायुना मूत्रसंगः विघातो भवति, वस्तिकुक्षिनिपीडित इति, वस्तौ कुक्षौ निपीडितः संपीडितो वायुरिति सम्बन्धः । मूत्रसङ्गः मूत्रावरोधः ॥

जो मूर्ख मनुष्य मूत्रके वेगको रोकताहै उसके मूत्राशयमें रहनेवाली वायु वस्ति (मूत्राशय) के मुखको बंदकरदेतीहै, तब मूत्र रुकजाताहै और वस्त्याशय तथा कोखमें पीडा होतीहै इसको वातवस्ति कहतेहैं । य वातवस्तिरोग कष्टसाध्य जानना ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ मूत्रातीतलक्षणम् ।

चिरं धारयतो मूत्रं त्वरया न प्रवर्तते ॥ मेहमानस्य मन्दं वा मूत्रातीतः स उच्यते ॥ ७ ॥

मेहमानस्य मूत्रमुत्सृजतः मन्दं वा अल्पं वा ।

मूत्रको अधिक समय रोकनेसे फिर मूत्र तत्काल नहीं उतरै अथवा थोडा थोडा उतरै उसको मूत्रातीत रोग कहतेहैं ॥ ७ ॥

अथ मूत्रजठरलक्षणम् ।

मूत्रस्य वेगेऽभिहते तदुदावर्तहेतुकः ॥ अपानः कुपितो वायुरुदरं पूरयेद्भृशम् ॥ ८ ॥ नाभेरधस्तादाध्मानं जनयेत्तीव्रवेदनाम् ॥ तन्मूत्रजठरं विद्यादधोवस्तिनिरोधनम् ॥ ९ ॥

तदुदावर्तहेतुक इति मूत्रवेगधारणजनितोदावर्तनिदानम् । आध्मानं कुर्यात् अधोवस्तिनिरोधनम् वस्तेरधोदेशे विबन्धकारकम् ।

मूत्रका वेग रुकनेसे कुपित हुआ अपानवायु पेटको अत्यत भरदेताहै तब इस प्रकारका उदावर्त हुआ नाभिके नीचे तीव्रवेदनायुक्त अफारा करताहै कि जिससे अधोवस्ति (मूत्राशयके नीचेका भाग) रुकजाताहै, इस रोगको मूत्रजठर कहतेहैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

अथ मूत्रोत्संगलक्षणम् ।

वस्तौ वाप्यथवा नाले मणौ वा यस्य

देहिनः ॥ मूत्रं प्रवृत्तं सज्येत सरक्तं वा प्रवाहतः ॥ १० ॥ स्रवेच्छनैरल्पमल्पं सरुजं वापि नीरुजम् ॥ विगुणानिलजो व्याधिः स मूत्रोत्संगसंज्ञितः ॥ ११ ॥

नाले मेढ्रे । मणौ मेहनग्रन्थौ । सज्येत निरुद्धं स्यात् । सरक्तं प्रवाहतः कण्ठहृद्बलेन सशब्दं मूत्रपुरीषवातानामधः प्रेरणम् प्रवाहणं तेन कुपितेन वायुना वस्त्यादिभेदान् सरक्तं मूत्रं स्रवेदित्यर्थः ॥

जिस पुरुषका प्रवर्ता हुआ मूत्र मूत्राशयमें लिंगमे अथवा लिंगके अग्रभागमें रुका रहै और हृदयके श्वासादि बलसे करै तब वायु वस्तिको भेदन करकै पीडा युक्त अथवा विना पीडाके रुधिरयुक्त थोडा थोडा मूत्र धीरे धीरे स्रवे ऐसे दूषित वायुसे उत्पन्न हुआ मूत्रोत्सर्ग नामक रोग कहाताहै ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ मूत्रक्षयलक्षणम् ।

रूक्षस्य क्लान्तदेहस्य वस्तिस्थौ पित्तमारुतौ ॥ मूत्रक्षयं सरुग्दाहं जनयेतां तदाह्वयम् ॥ १२ ॥

क्लान्तदेहस्य म्लानदेहस्य । तदाह्वयं मूत्रक्षयसंज्ञम् ॥

जिसका शरीर रूक्ष और ग्लानियुक्त हो ऐसे मनुष्यके मूत्राशयमे रहनेवाले पित्त और वायु मूत्रका क्षय करके पीडा तथा दाहको उत्पन्न करते हैं यह रोग मूत्रक्षय कहाताहै ॥ १२ ॥

अथ मूत्रग्रन्थिलक्षणम् ।

अन्तर्वस्तिमुखे वृत्तः स्थिरोऽल्पः सहसा भवेत् ॥ अश्मरीतुल्यरुग्ग्रन्थिर्मूत्रग्रन्थिः स उच्यते ॥ १३ ॥

अन्तर्वस्तिमुखे वस्त्यभ्यन्तरे । अल्पः क्षुद्रामलकप्रमाणः । ननु अस्य अश्मर्या सह को भेदः । उच्यते—अश्मरी क्रमशः सञ्चयेन स्यात् अयन्तु सहसा भवेत् इति भेदः । अपरो भेदः अश्मर्या पित्ताधिक्यम् मन्यते अत्र तु रक्तमेव । यत उक्तं तन्त्रान्तरे—

"रक्तं वातकफादुष्टं वस्तिद्वारे सुदारुणम् । ग्रन्थिं कुर्यात्स कृच्छ्रेण सृजेन्मूत्रं तदावृतम् ॥"

मूत्राशयके भीतर सहसा गोल आकारवाली स्थिर छोटे आमलेकी सदृश बडी और पथरीकी समान पीडायुक्त गांठ उत्पन्न होती है उसको मूत्रग्रंथि कहते हैं ॥ १३ ॥

शंका—इस मूत्रग्रन्थिमें और पथरीमे क्या अन्तर है ?

समाधान—पथरी क्रम क्रमसे मूत्र आदिका संचय होकर होती है और यह गाठ तो सहसा होजाती है इतनाही अन्तर है । दूसरा भेद यह भी है कि पथरीमे पित्त अधिक होताहै और इस मूत्रग्रन्थिमें तो रुधिरही अधिक होताहै । अन्य ग्रंथोंमे कहा है कि "वायुसे तथा कफसे दूषित हुआ रुधिर मूत्राशयमें अत्यंत दारुण गांठको उत्पन्न करे है कि—जिससे बहुत पीडायुक्त मूत्र उतरता है वह मूत्र रुधिरसहित होताहै" ।

अथ मूत्रशुक्रलक्षणम् ।

मूत्रितस्य स्त्रियं यातो वायुना शुक्रमुद्धतम् ॥ स्थानाच्च्युतं मूत्रयतः प्राक् पश्चाद्वा प्रवर्तते ॥ भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्रं तदुच्यते ॥ १४ ॥

मूत्रितस्य मूत्रवेगयुक्तस्य शुक्रं स्थानाच्च्युतं पश्चाद्वायुना उद्धृतम् ऊर्ध्वं नीतं भस्मोदकप्रतीकाशं भस्मसहितजलसदृशम्, मूत्रशुक्रं तदुच्यते ॥

जो पुरुष मूत्रका वेग होनेपर विना मूते स्त्रीका संग करै उसका स्थानसे भ्रष्ट हुआ और पश्चात् वायुसे ऊपरको चढा वीर्य मूतनेसे प्रथम अथवा पीछे राखमिले हुए पानीकी सदृश निकलताहै, इस रोगको मूत्रशुक्र कहते हैं ॥ १४ ॥

अथोष्णपातलक्षणम् ।

व्यायामाध्वातपैः पित्तं वस्तिं प्राप्यानिलावृतम् ॥ वस्तिं मेढ्रं गुदञ्चैव प्रदहन्स्रावयेदधः ॥१५॥ मूत्रं हारिद्रमथवा सरक्तं रक्तमेव वा ॥ कृच्छ्रात्पुनःपुनर्जन्तोरुष्णवातं वदन्ति तम् ॥ १६ ॥

सरक्तम् ईषल्लोहितम् ॥

व्यायाम (परिश्रम) करनेसे, अत्यत मार्ग चलनेसे, तथा धूपमें फिरनेसे पित्त मूत्राशयमे प्राप्त हो वायुसे लिपट कर मूत्राशय, लिंग, योनि और गुदा, इनमें दाह करके मनुष्यको अधिक कष्टसे वारंवार हलदीकी समान वर्णवाला किंचित् लाल अथवा रुधिर युक्त मूत्र उतरताहै इसको उष्णवात कहते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथ मूत्रसादलक्षणम् ।

पित्तं कफो द्वावपि वा संहन्येतेऽनिलेन चेत् ॥ कृच्छ्रान्मूत्रं तथा पीतं रक्तं श्वेतं घनं स्रवेत् ॥ १७ ॥ सदाहं रोचनाशंखचूर्णवर्णं भवेच्च तत् ॥ शुष्कं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदन्ति तम् ॥ १८ ॥

संहन्येते घनीक्रियेते शुष्कम् अल्पम् । समस्तवर्णम् उक्तसकलवर्णयुक्तम् ॥

पित्त कफ अथवा दोनों पवनसे गाढे हुए होंयँ तो वारवार पीला, लाल, अथवा सफेद वा शखकी भस्मकी सदृश, वा इन सब रगोंवाला, गाढा दाहयुक्त और थोडा थोटा मूत्र स्रवताहै उसको मूत्रसाद कहते हैं॥१७॥१८॥

अथ विड्विघातलक्षणम् ।

रूक्षदुर्बलयोर्वातेनोदावर्तं शकृद्यदा ॥ मूत्रस्रोतोऽनुपद्येत विट्संसृष्टं तदा नरः ॥ विड्गन्धं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्विड्विघातं विनिर्दिशेत् ॥ १९ ॥

उदावर्तम् ऊर्ध्वनीतं विड्गन्धं वा शब्दोऽत्र योजनीयः ॥

रूक्ष हुए मनुष्यकी अथवा दुर्बल हुये मनुष्यकी वायुसे ऊपरको चढी हुई विष्ठा जब मूत्रके स्रोत (मार्ग) को प्राप्त होती है तब वह मनुष्य विष्ठायुक्त वा विष्ठाकी गंधयुक्त मूत्र कष्टसे करताहै इसको विड्विघात कहते हैं ॥ १९ ॥

अथ वस्तिकुंडललक्षणम् ।

द्रुताध्वलंघनायासैरभिघातात्प्रपीडनात् ॥ स्वस्थानाद्वस्तिरुद्वृत्तः स्थूलस्तिष्ठति गर्भवत् ॥ २० ॥ मूलस्पन्दनदाहार्तो बिन्दुं बिन्दुं स्रवत्यपि ॥ पीडितस्तु सृजेद्धारां संस्तम्भोद्वेष्टनार्तिमान् ॥ २१ ॥ वस्तिकुण्डलमाहुस्तं घोरं शस्त्रविषोपमम् ॥ पवनप्रबलं प्रायो दुर्निवारमबुद्धिभिः ॥ २२ ॥ तस्मिन् पित्तान्विते दाहः शूलं मूत्रविवर्णता ॥ श्लेष्मणा गौरवं शोथः स्निग्धं मूत्रं घनं सितम् ॥ २३ ॥

द्रुताध्वलंघनं शीघ्रं मार्गचलनम् । उद्वृत्तः उत्थितः । स्पन्दनं किञ्चित् चलनम् । घोरं मारकम् । शस्त्रविषोपमं शस्त्रं खड्गादि तद्वच्छीघ्रमारकम्, विषमत्र गरलस्तद्वद्विलम्ब्य मारकम् । एतावता मारकमवश्यं शीघ्रं विलम्बेन वा ॥

वेगपूर्वक अत्यत चलनेसे, अत्यत परिश्रम करनेसे, अभिघात (चोट) से अथवा दवानेसे वस्ति अपने स्थानसे उठकर गर्भकी सदृश मोटी तथा शूलयुक्त होजाती है किंचिद् कॉपती रहती है दाहसे पीडा करती है, मूत्र बूँद २ स्रवताहै और दवानेसे मूत्रकी धारभी निकलती है, परन्तु धार निकलनेसे जडतायुक्त होजाती है और पीडा होती है इसको वस्तिकुडल कहते हैं। यह रोग भयकर है, खड्ग आदि शस्त्रकी सदृश तत्काल मृत्यु करनेवाला है, विषकी सदृश विलम्बसे भी मार डालता है, वायुकी प्रबलतायुक्त है और अधिक करके मूर्ख लोगोंसे निवारण भी नहीं होसक्ता। यही रोग पित्तसे युक्त हो तो दाह, शूल, तथा मूत्रकी विवर्णता होती है। और यदि कफसे युक्त होय तो भारीपन तथा शोथ (सूजन) होताहै और मूत्र स्निग्ध, गाढा तथा सफेद होताहै, यह रोग थोडे समयमें वा अधिक समयमें मार डालताहै ॥ २०–२३ ॥

अथ वस्तिकुण्डलासाध्यलक्षणम् ।

श्लेष्मरुद्धबिलो वस्तिः पित्तोदीर्णो न सिद्ध्यति ॥ अविभ्रान्तबिलः साध्यो न च यः कुण्डलीकृतः ॥ स्याद्वस्तौ कुण्डलीभूते तृण्मोहः श्वास एव च ॥ २४ ॥

विलं वस्तिमुखरन्ध्रम् । पित्तोदीर्णः पित्तेन उद्धृतः । अविभ्रान्तबिलः कफेन अनावृतविलः पश्चात्कुण्डलीकृतः स साध्यः । एतेन कुण्डलीभूतोऽसाध्यः । कुण्डलीभूतस्य लक्षणमाह-तृडित्यादि । कुण्डलीभूतस्य अयमर्थः,कफेन बिलावरोधात्तत्र वातः कुंडलाकारेण तिष्ठति इत्यर्थः ॥

जो मूत्राशय पित्तसे ऊँचा होगया हो और मूत्राशयका मुख कफसे रुक गया हो वह वस्तिकुण्डल असाध्य होता-है । जिस मूत्राशयका मुख कफसे न ढका हो और कुण्डलाकार न हुआहो वह वस्तिकुडल साध्य जानना । जिस मूत्राशयमे वायु कुडलाकार होगया होय तो तृषा, मोह, तथा श्वास होताहै अर्थात् यह लक्षण कुंडलीभूत हुएके जानने ॥ २४ ॥

अथ मूत्राघातचिकित्सा ।

स्नेहस्वेदोपपन्नस्य हितं स्नेहविरेचनम् ॥ दद्यादुत्तरवस्तींश्च मूत्राघाते सवेदने ॥ ॥ २५ ॥ नलकुशकाशेक्षुबलाक्वाथं प्रातः सुशीतलं ससितम् ॥ पिबतो नश्यति नियतं मूत्रग्रह इत्युवाच कविः ॥ २६ ॥ गोजानाम्नो मूलं पलमेकं क्वथितशेषितं पीतम्॥क्षिप्त्वा मधु च सिताश्च प्रणुदति मूत्रस्य संरोधम् ॥२७॥ गोधापद्या मूलं क्वथितं वृततैलगोरसोन्मिश्रम् ॥ पीतं निरुद्धमचिराद्भिनत्ति मूत्रस्य संघातम् ॥ ॥ २८ ॥ पिबेच्छिलाजतुक्वाथे युक्तं वीरतरादिजे ॥ क्वाथं सपत्नमूलस्य गोक्षुरस्य फलस्य च ॥ २९ ॥ पिबेन्मधुसितायुक्तं मूत्रकृच्छ्ररुजापहम् ॥ घनसारस्य चूर्णेन वस्तस्याथाविकाम्बुना ॥ गुण्डयित्वा ध्वजे क्षिप्त्वा मूत्ररोधं जहाति तम् ॥ ॥ ३० ॥ सदाभद्राश्मभिन्मूलं शतावर्याः सचित्रकम ॥ रोहिणीकोकिलाक्षौ च वचाशैलत्रिकण्टकम् ॥ ३१ ॥ श्लक्ष्णपिष्टः सुरापीतो मूत्राघातप्रबाधनः ॥ पिबेद्बर्हिशिखामूलं दुग्धभुक्तण्डुलाम्भसा ॥ ३२ ॥ वस्तिमुत्तरवस्तिं वा सर्वेषामेव दापयेत् ॥ निदिग्धिकायाः स्वरसं पिबेद्वा तत्परिस्रुतम् ॥ ३३ ॥ जले कुंकुमकल्कं वा सक्षौद्रमुषितं निशि ॥ सतैलं पाटलाभस्मक्षारं बद्धा परिस्रुतम् ॥ ३४ ॥ त्रिकण्टकैरण्डशतावरीभिः सिद्धं पयो वा तृणपंचमूले ॥ गुडप्रगाढं सघृतं पयो वा रोगेषु कृच्छ्रादिषु शस्तमेतत् ॥३५॥ सितक्षारान्वितं मूलं वायसीतैलकूर्चयोः॥ कोशकाररसैः पीतं वस्तिकुण्डलजिद्भवेत् ॥ ३६ ॥ शृतशीतपयोऽन्नाशी चन्दनं तंडुलांबुना ॥ पिबेत्सशर्करं श्रेष्ठमुष्णवाते सशोणिते ॥ ३७ ॥

पीडायुक्त मूत्राघात होय तो स्नेहन तथा स्वेदन क्रिया करके पश्चात् स्नेहयुक्त पदार्थोंसे विरेचन देवै तथा उत्तरवस्ति भी देवै, यह हितकारी है । अथवा नरसल, कुशा, कास, ईख और खिरैटी, इनका क्वाथ बनावे शीतल होनेपर मिश्री डालकर पिये तो इससे मूत्राघात अवश्य नष्ट होता है ऐसा शुक्राचार्यने कहा है । वा चार तोले गोजियाकी जड लेकर इसका क्वाथ करै इसमें सहत तथा मिश्री डालकर पिये तो मूत्रका अवरोध नष्ट होजाताहै । अथवा गोधापदी (काली मुसली) की जडका क्वाथ करके इसमें घी, तेल तथा दहीका पानी डालकर पियै तो इससे अधिक समयका रुका हुआ मूत्रभी उतरताहै । अथवा वीरतरादिगण (पथरीकी चिकित्साके प्रकरणमें कहेंगे) का क्वाथ करकै उसमें शिलाजीत डालकर अथवा धमासेका क्वाथ डालकर वा अडूसेका क्वाथ डालकर पियै तो इससे मूत्राघात नष्ट होताहै । पत्ते जड तथा फलसहित गोखरू लेकर उसका क्वाथ करकै उसमे सहत तथा मिश्री डालकर पियै तो इससे मूत्रकृच्छ्रकी पीडा नष्ट होतीहै । कपूरका चूर्णकर बकरी और भेडके मूत्रमें पीस कपडेकी वत्ती-

पर लपेटकर लिङ्गमें डाले तो इससे मूत्रका रोग नष्ट होताहै । अथवा कुमारी, पाखानभेद तथा शतावरकी जड, चीता, कुटकी, तालमखाने, वच, छारछबीला और गोखरू इनको बारीक पीस मदिराके साथ पिये तो इससे मूत्राघात नष्ट होताहै । मोरशिखाकी जड पीसकर चावलोंके धोवनसे पिये और दूधका भोजन करै तो मूत्राघात दूर होताहै । अथवा सब मूत्राघातोंमें वस्ति और उत्तरवस्ति देवै । वा कटेरीकी जडका स्वरस निकालकर पिये तो मूत्राघात दूर हो । केशरका कल्क करके उसमें सहत डालकर रात्रिमें रखा रहने देवै, फिर प्रातःकाल पिये तो मूत्राघात दूर होताहै । अथवा पाढलकी भस्म और जवाखार जलमें घोलकर तेल डालके पिये तो मूत्राघात नष्ट होताहै । गोखरू, अण्डकी जड और सतावर इनका क्वाथ करके पिये तो मूत्राघात नष्ट होताहै । तृणपञ्चमूलका क्वाथ करके पिये तो इससे मूत्राघात नष्ट होताहै गुडसे मिश्रित किया हुआ घी दूधमें डालकर पीवै तो मूत्रकृच्छ्र आदि रोगोंपर हितकारी होता है, मालकांगनी और चौयेकी जड इनको पीस इसमें मिश्री तथा जवाखार डालकर गाढे ईखके रसके साथ पीवै तो मूत्राघात नष्ट होताहै । चन्दनको घिस उसमें मिश्री मिलाकर चावलोंके जलके साथ पीवै और औटाया हुआ शीतल दूधके साथ अन्न खाय तो इससे रुधिरसहित उष्णवातका नाश होताहै ॥ २५-३७ ॥

अथ शिलोद्भिदादितैलम् ।

शिलोद्भिदेरण्डशमास्थिरादिपुनर्नवाभीरुरसेषु सिद्धम् ॥ तैलं शृतं क्षीरमथानुपानं कालेषु कृच्छ्रादिषु सम्प्रयोज्यम् ॥ ३८॥

पाखानभेद, एरण्डकी जड, शालपर्णी, पुनर्नवा और सतावर, इनके रससे तेल पकावै और दूधके अनुपानसे सेवन करै इससे मूत्रकृच्छ्रादि रोग नष्ट होतेहैं ॥ ३८ ॥

अथ धान्यगोक्षुरकघृतम् ।

धान्यगोक्षुरकक्वाथकल्कयुक्तं घृतं हितम् ॥ मूत्राघाते मूत्रकृच्छ्रे शुक्रदोषे च दारुणे ॥ ३९ ॥

धनिया तथा गोखरू, इनके क्वाथसे तथा कल्कसे पकाया हुआ घी खाय तो मूत्राघात, मूत्रदोष और वीर्यके दारुण रोगोंमें हितकारी होताहै ॥ ३९ ॥

अथ भद्रावहघृतम् ।

अम्बष्ठा पाटला चैव वर्षाभूद्वयमेव च ॥ विदारीकन्दः काशश्च कुशमोरटगोक्षुराः॥ ॥ ४० ॥ पाषाणभेदो वाराही शालिमूलं शरस्तथा॥ भल्लातकं शिरीषस्य मूलमेषामथाहरेत् ॥ ४१ ॥ समभागानि सर्वाणि क्वाथयित्वा विचक्षणः॥ पादशेषकषायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४२ ॥ कल्कं दत्त्वाऽथ मतिमान्गिरिजं मधुकं तथा ॥ नीलोत्पलश्च काकोलीं बीजं त्रापुसमेव च ॥ ४३ ॥ कूष्माण्डश्च तथैर्वारुसम्भवश्च समं भवेत् ॥ उष्णवातं निहन्त्येतद् घृतं भद्रावहं स्मृतम् ॥ ४४ ॥

पाठा, पाढल, साठ, विसखपरा, विदारीकन्द, कास, कुशा, ईखकी जड, गोखरू, पाखानभेद, वाराहीकन्द, शालिधान्यकी जड, रामसर, भिलावा और सिरसकी जड, इनको समान भाग लेकर क्वाथ करै जब चौथा भाग जल शेष रहै तब उसमें शिलाजीत, मुलेठी, नील कमल, काकोली, खीरेके बीज, पेठेके बीज और ककडीके बीज समान भाग ले कल्क डालकर चौसठ तोले घी पकावै, यह भद्रावह नामक घी उष्णवात (मूत्रकृच्छ्र) को नष्ट करताहै ॥ ४०-४४ ॥

अथ विदारीघृतम् ।

विदारी वृषको यूथी मातुलुंगी च भूस्तृणम् ॥ पाषाणभेदः कस्तूरी वसुको वशिरोऽनलः ॥ ४५ ॥ पुनर्नवा वचा रास्ना बला चातिबला तथा ॥ कशेरुविषशृंगाटतामलक्यः स्थिरादयः ॥ ४६ ॥ शरेक्षुदर्भमूलश्च कुशः काशस्तथैव च ॥ पलद्वयन्तु संहृत्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥४७॥ पादशेषे रसे तस्मिन्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ शतावर्यास्तथा धात्र्याः स्वरसो घृतसम्मितः ॥ ४८ ॥ षट्पलं शर्करायाश्च

कार्षिकाण्यपराणि च ॥ यष्ट्याह्वं पिप्पली द्राक्षा काश्मर्यं सपरूषकम् ॥ ४९ ॥ एला दुरालभा कौन्ती कुंकुमं नागकेसरम् ॥ जीवनीयानि चाष्टौ च दत्त्वा च द्विगुणं पयः ॥ ५० ॥ एतत्सर्पिर्विपक्तव्यं शनैर्मृद्वग्निना बुधैः ॥ मूत्राघातेषु सर्वेषु विशेषात्पित्तजेषु च ॥ ५१ ॥ शर्कराऽश्मरिशूलेषु शोणितप्रभवेषु च ॥ हृद्रोगे पित्तगुल्मे च वातासृक्पित्तजेषु च ॥ ५२ ॥ कासश्वासक्षतोरस्कधनुःस्त्रीभारकर्षिते ॥ तृष्णाच्छर्दिमनःकम्पशोणितच्छर्दने तथा ॥ ५३ ॥ रक्ते यक्ष्मण्यपस्मारे तथोन्मादे शिरोग्रहे ॥ योनिदोषे रजोदोषे शुक्रदोषे स्वरामये ॥ ५४ ॥ एतत्स्मृतिकरं वृष्यं वाजीकरणमुत्तमम् ॥ पुत्रदं बलवर्णाढ्यं विशेषाद्वातनाशनम् ॥ ॥ ५५ ॥ पानभोजननस्येषु न क्वचित्प्रतिहन्यते ॥ विदारीघृतमित्युक्तं रसायनमनुत्तमम् ॥ ५६ ॥

विदारीकंद, अडूसा, जुही, बिजोरा, भूतृण, पाखानभेद, कस्तूरी, साँभरनोन, दरियाई नोंन, चीता, पुनर्नवा, वच, रासना, खिरैटी, गगेरन, कसेरू, भसींडा, सिंघाडे, भुँई आमला, स्थिरादि गण, रामसर, ईख, डाभ, कुशा और काँस, ये प्रत्येक पदार्थ आठ आठ तोले लेकर १६ सोलह सेर जलमे पकावै, जब चौथा भाग जल शेष रहै तब उसमें एक सेर घी, शतावर तथा आमलोंका ६४ तोले स्वरस, चौवीस तोले बूरा और मुलहठी, पीपल, दाख, कंभारी, फालसे, इलायची, धमासा, रेणुक, केसर, नागकेसर और जीवनीयगणकी आठो औषधि ये प्रत्येक एक एक तोला और दो सेर दूध ये सब डालकर मंद मंद अग्निसे धीरे धीरे पकावै तो यह विदारी घृत सिद्ध होताहै। यह घृत सब प्रकारके मूत्राघात, विशेषकरकै पित्तसे हुए मूत्राघात, शर्करा, पथरी, शूल, रुधिरविकारसे हुए शूल, हृदयरोग, पित्तसे हुआ गुल्म, पित्तज वातरक्त, खाँसी, श्वास, क्षत, धनुष चढानेसे कर्षित हुए तथा स्त्रीप्रसंग करनेसे कर्षित हुए, तृषा, वमन, मनकी पीडा, कंप, रुधिरकी वमन, क्षयरोग, अपस्मार, उन्माद, शिरोग्रह, योनिदोष, रजके दोष, वीर्यके दोष और स्वरभंग आदि स्वरके रोग, इन सब रोगोंमें हितकारी है। यह घी स्मृतिको बढानेवाला, वृष्य, उत्तम वाजीकरण, पुत्रदायक, बलवर्णकर्ता, और विशेषकरकै वातविनाशक है और पीनेमें, खानेमें तथा नस्यमे सर्वत्र उपयोगी है और उत्तम रसायन है ॥ ४५–५६ ॥

पिष्ट्वाखुमूलमुष्णेन चारनालेन पेष्यते ॥ बद्धमूत्रं निहन्त्याशु तथैव करभीभवम् ॥ ५७ ॥ स्त्रीणामतिप्रसङ्गेन शोणितं यस्य रिच्यते॥ मैथुनोपरमश्चास्य बृंहणीयो विधिर्हितः ॥ ५८ ॥ ताम्रचूडवसातैलं हितं चोत्तरवस्तिषु ॥स्वगुप्ताफलमृद्वीकाकृष्णेक्षुरसितारजः ॥ ५९ ॥ समांशमर्द्धभागानि क्षीरक्षौद्रघृतानि च ॥ सर्वं सम्यग्विमथ्याक्षमात्रं लीढ्वा पयः पिबेत्॥ ६०॥ हन्ति शुक्रक्षयोत्थांश्च दोषान्वन्ध्यासुतप्रदम् ॥

मूसाकानीकी जडको अथवा सफेद अरनीकी जडको पीसकर उष्ण आरनाल (काँजी) से पिये तो मूत्रका अवरोध तत्काल दूर होताहै। अथवा जिसके अत्यंत मैथुन करनेसे मूत्रमें रुधिर आवै उसको मैथुनसे रोककर धातुको बढानेवाले उपाय करै पश्चात् मुरगेकी चरबी और तेलसे उत्तरवस्ति देवै यह अत्यत हितकारी है। अथवा कौंछके बीज, दाख, काली ईखका रस और काली मिट्टी इनको समान भाग लेवै और दूध, सहत तथा घी इनका आधा भाग लेवै, सबको मिलाकर एक तोलाभर खाय और ऊपरसे दूधको पिये तो इससे वीर्यके क्षयसे उत्पन्न हुई पीडा नष्ट होतीहै और वध्या स्त्रीको पुत्रकी प्राप्ति होतीहै ॥ ५७-६० ॥

अथ क्षौद्रार्द्धभागघृतम्।

क्षौद्रार्द्धभागः कर्तव्यो भागः स्यात्क्षीरसर्पिषोः ॥ ६१ ॥ शर्करायाश्च चूर्णं च द्राक्षाचूर्णं च तत्समम् ॥ स्वयंगुप्ताफल-

श्चैव तथैवेक्षुरकस्य च ॥ ६२ ॥ पिप्पलीनां तथा चूर्णं समभागं प्रदापयेत् ॥ तदेकध्यं समानीय खल्लेनातिविमथ्य च ॥ ६३ ॥ तस्य पाणितलं चूर्णं लिहेत्क्षीरं ततः पिबेत् ॥ एतत्सर्पिः प्रयुञ्जाना योनिदोषात्प्रमुच्यते ॥ ६४ ॥

एक भाग दूध, एकभाग घी, आधाभाग सहत, एक भाग मिश्री, दाख, कौंछके बीज, तालमखाना और पीपल, ये एक एक भाग लेवे । इनको एकत्र करके रईसे भली- भाँति मथकर इसमेंसे एक तोला घी चाटे और उसके ऊपर दूध पिये । इस घीको सेवन करनेवाली स्त्री योनिके दोषसे मुक्त होतीहै ॥ ६१-६४ ॥

अथ वर्तिः ।

कर्पूररसजा युक्ता वस्त्रवर्तिः शनैःशनैः ॥ मेढ्रमार्गान्तरे न्यस्ता मूत्राघातं व्यपोहति ॥ ६५ ॥

वस्त्रको कपूरके चूर्णसे भलीभाँति लपेटकर लिंगके मार्गमें रक्खे तो इससे मूत्राघात नष्ट होताहै ॥ ६५ ॥

अथातिदेशः ।

मूत्रकृच्छ्रेऽश्मरीरोगे भेषजं यत्प्रकीर्तितम् ॥ मूत्राघातेषु कृच्छ्रेषु तत्कुर्याद्देशकालवित् ॥ ६६ ॥

इति मूत्राघाताधिकारः ।

मूत्रकृच्छ्रमें जो औषधि कही है तथा पथरीरोगमें जो औषधि कही है वे सब औषधि देशके तथा कालके अनुसार मूत्राघात और मूत्रकृच्छ्ररोगमें देवे ॥ ६६ ॥

इति मूत्राघाताधिकारः समाप्तः ।

अथाश्मर्यधिकारः ।

तत्राश्मरीनिदानम् ।

वातपित्तकफैस्तिस्रश्चतुर्थी शुक्रजा मता ॥ प्रायः श्लेष्माश्रयाः सर्वा अश्मर्यः स्युर्यमोपमाः ॥ १ ॥

श्लेष्माश्रयाः श्लेष्मसमवायिकारणाः शुक्रजां विना शुक्रजायास्तु शुक्रस्यैव समवायिकारणत्वात् अन्ये तु शुक्राश्मर्यामपि कफकारणत्वमिच्छन्ति । प्रायःशब्दश्च मात्रविशेषार्थः । यमोपमाः चिकित्सां विना ॥

वात, पित्त और कफसे, ऐसे तीनप्रकारकी और चौथीपथरी वीर्यसे होतीहै । वीर्यसे हुई पथरीको छोडकर शेष तीनों प्रकारकी पथरी अधिक करके कफाश्रयसे होतीहैं और वीर्यसे हुई पथरीमें वीर्यही कारण है । कोई कोई वैद्य तो वीर्यसे हुई पथरीमेभी कफको कारण मानतेहैं । सर्वप्रकारकी पथरी विना चिकित्साके अवश्य यमरूप (मृत्युकर्ता) होजातीहैं ॥ १ ॥

अथाश्मरीसम्प्राप्तिः ।

विशोषयेद्वस्तिगतं सशुक्रं मूत्रं सपित्तं पवनः कफं वा ॥ यदा तदाश्मर्युपजायते तु क्रमेण पित्तेष्विव रोचना गोः ॥ २ ॥

यदा पवनो वस्तिगतं सशुक्रं मूत्रं सपित्तं कफं वा शोषमुपनयेत्तदाऽश्मरी भवति क्रमेण क्रमशो वर्द्धमाना । यथा गोपित्तेषु रोचना इव इति अन्वयः । तस्याः अनेकदोषाश्रयत्वमाह । नैकदोषाश्रयाः सर्वाः ॥

जब वायु मूत्राशयमें रहनेवाले वीर्यसहित मूत्रको अथवा पित्त सहित कफको सुखातीहै तब पथरी उत्पन्न होतीहै, यह पथरी जिसप्रकार गायके पित्तमें गोरोचन बढताहै उसीप्रकार अनुक्रमसे बढतीहै । सब प्रकारकी पथरी अनेक दोषोंके समागमसे होतीहैं ॥ २ ॥

अथाश्मरीपूर्वरूपम् ।

वस्त्याध्मानं तदासन्नदेशेषु परितोऽतिरुक् ॥ मूत्रे वस्तसगन्धत्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्वरोऽरुचिः ॥ ३ ॥

वस्तः छगलकः ॥

जब पथरी होनेको होतीहै तब मूत्राशयमें अफारा, मूत्राशयके चारोंओर अत्यत पीडा, मूत्रमें बकरेके

मूत्रकी दुर्गन्ध, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर और अरुचि ये लक्षण होतेहैं ॥ ३ ॥

अथाश्मरीसामान्यलक्षणम् ।

सामान्यलिंगं रुङ्नाभिसेवनीवस्तिमूर्द्धसु ॥ विशीर्णधारं मूत्रं स्यात्तया मार्गनिरोधने॥ ॥ ४ ॥ तद्व्यपायात्सुखं मेहेदच्छं गोमेदकोपमम् ॥ तत्संक्षोभात्क्षते सास्रमायासाच्चातिरुग्भवेत् ॥ ५ ॥

वस्तिमूर्द्धा नाभेरधोदेशः, विशीर्णधारं सविच्छेदधारम्, तया अश्मर्या । मार्गः मूत्रवाहिस्रोतः । तद्व्यपायात्कदाचिद्वायुना अश्मर्या मूत्रमार्गादन्यत्र गमनात्सुखं मेहेन्मूत्रयेद्गोमेदकोपमं गोमेदको मणिः किञ्चिल्लोहितः तद्वर्णम् । तत्संक्षोभात्तस्याः अश्मर्याः सञ्चाराद्धर्षणेन मूत्रवह स्रोतसि क्षते जाते सास्रं सरक्तं मेहेत् । आयासात्प्रवाहनादिजनितात् ॥

पथरी हुई होय तो नाभिमें, सीमनमें तथा नाभिसे नीचेके प्रदेशमें पीडा होतीहै, पथरीसे मूत्रके वहन करनेवाले स्रोतोका रोध होनेपर मूत्रकी धार बीचमेंही कटजाती है, किसी समय वायुसे पथरी मूत्रके मार्गसे अन्यस्थानको चलीजातीहै तब गोमेद मणिके सदृश वर्णवाला स्वच्छ मूत्र सुखसे उतरताहै, पथरीके सञ्चारसे मूत्रका मार्ग घिसकर मूत्र रुधिरयुक्त उतरताहै और अत्यत पीडा होतीहै ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ वातोल्वणाश्मरीलक्षणम् ।

तत्र वाताद्भृशं चार्तो दन्तान्खादति वेपते ॥ मृद्नाति मेहनं नाभिं पीडयत्यनिशं क्वणन् ॥ ६ ॥ सानिलं मुञ्चति शकृन्मुहुर्मेहति बिन्दुशः ॥ श्यावा रूक्षाश्मरी सा स्यात्सञ्चिता कण्टकैरिव ॥७॥

पथरीमे यदि वायुकी उल्वणता होय तो मनुष्य अत्यत पीडायुक्त होताहै, तथा दाँतोको चबावै, काँपता है, लिग तथा नाभिको दबावै और निरतर पीडासे चिल्लाताहै और अधोवायुके साथ विष्ठा आतीहै, वारंवार बूँदबूँद मूततांहै। यह पथरी नीली, रूखी और मानों ऊपर कांटे लगे हैं ऐसी होती है ॥ ६ ॥ ७ ॥

अथ वातोल्वणाश्मरीचिकित्सा ।

तस्याः पूर्वेषु रूपेषु स्नेहादिक्रम इष्यते ॥ ८ ॥

पथरीके पूर्वरूप होनेपर स्नेहन आदि प्रयोग करने चाहिये ॥ ८ ॥

अथ शुण्ठ्यादिकषायः ।

शुण्ठ्यग्निमन्थपाषाणशिग्रुवरुणगोक्षुरैः ॥ काश्मर्यारग्वधफलैः क्वाथं कृत्वा विचक्षणः ॥ रामठक्षारलवणचूर्णं दत्त्वा पिबेन्नरः ॥ ९ ॥ अश्मरीमूत्रकृच्छ्रघ्नं दीपनं पाचनं परम् ॥ हन्यात्कोष्ठाश्रितं वातं कट्यूरुगुदमेढ्रजम् ॥ १० ॥

सोंठ, अरनी, पाखानभेद, सहँजना, वरना, गोखुरू, कंभारी और अमलतास, इनका क्वाथ करकै उसमें हींग, जवाखार और सैंधानिमक, इनका चूर्ण डालकर पिये तो इससे पथरी, मूत्रकृच्छ्र, कोठेकी वायु तथा कमर, घुँटुने, गुदा और लिगकी वायु नष्ट होतीहै, अग्नि दीपन होतीहै, और अन्न आदि भलीभाँति पचतेहैं ॥ ९ ॥ १० ॥

अथैलादिक्वाथः ।

एलोपकुल्यामधुकाश्मभेदकौन्तीश्वदंष्ट्रावृषकोरुबूकैः ॥ शृतं पिबेदश्मजतु प्रगाढं सशर्करश्चाश्मरिमूत्रकृच्छ्रे ॥ ११ ॥

इलायची, पीपल, मुलेठी, पाखानभेद, रेणुक, गोखरू, अडूसा और अण्डकी जड, इनके क्वाथमे शिलाजीतको भलीभाँति पकाकर क्वाथ पियै तो पथरी और मूत्रकृच्छ्र नष्ट होताहै ॥ ११ ॥

अथ वरुणादिक्वाथः ।

वरुणस्य त्वचं श्रेष्ठां शुण्ठीं गोक्षुरसंयुताम् ॥ यवक्षारगुडं दत्त्वा क्वाथयित्वा पिबेद्धिमम् ॥ अश्मरीं वातजां हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ १२ ॥

वरनाकी छाल, सोंठ, गोखरू, जवाखार और गुड, इनका काथ करके पिये तो वायुकी उल्वणतासे हुई पथरी अधिक कालकी होय तो भी नष्ट होजातीहै ॥ १२ ॥

अथ पाषाणभेदाद्यघृतम् ।

पाषाणभेदो वसुको वशीरोऽश्मन्तकस्तथा ॥ शतावरी श्वदंष्ट्रा च बृहती कण्टकारिका ॥ १३ ॥ कपोतवङ्कार्तगलकाञ्चनोशीरगुन्द्रकाः ॥ वृक्षादनी भल्लुकश्च वरुणः शाकजं फलम् ॥ १४ ॥ यवाः कुलत्थाः कोलानि कतकस्य फलानि च ॥ ऊषकादिप्रतीवापमेषां क्काथे शृतं घृतम् ॥ भिनत्ति वातसम्भूतामश्मरीं क्षिप्रमेव तु ॥ १५ ॥

पाषाणभेद, आककी जड, लाल चिरचिटा, कोविदार, सतावर, गोखरू, भटकटैया, कटेरी, ब्राह्मी, नीलेफूलकी कटसरैया, कचनार, खस, गुन्द्रतृण, बदा, वरना, सागोनके फल, जौ, कुलथी, बेर और निर्मलीफल इनका क्काथ करके उसम ऊषकादिगणकी औषधि डालकर उस क्काथमें पकायाहुआ घी खाय तो वायुकी उल्वणतासे हुई पथरी तत्काल नष्ट होजातीहै ॥ १३–१५ ॥

अथ वीरतरादिगणः ।

क्षारान्यवागूं पेयां च कषायांश्च पयांसि च ॥ भोजनानि प्रकुर्वीत वर्गेऽस्मिन्वातनाशने ॥ १६ ॥ वीरवृक्षोऽग्निमन्थश्च काशवृक्षादनीकुशाः ॥ मोरटेन्दीवरः सूर्यभक्ता गोक्षुरुटुण्टुकाः ॥ १७ ॥ वसुको वशीरो दर्भशैरीयावश्मभेदकः ॥ गुन्द्रो नलः कुरुण्टश्च गणो वीरतरादिकः ॥ ॥ १८ ॥ अश्मरीशर्कराकृच्छ्रमारुतार्तिहरो मतः ॥ वृहद्वाते वीरतरस्तदभावे मतः शरः ॥ १९ ॥

ते वातादमरी ।

बेर, अरनी, काम, बादा, दृभा, मोरट (ईखकी [illegible]), [illegible], [illegible], गोखरू, टेंटू, आककी जड, लाल चिरचिटा, डाभ, कटसरैया, पाखानभेद, गुन्द्रतृण, नरसल और कुरण्ट, यह वीरतरादिगण कहाताहै । ये सब औषधि–पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र और वायुके रोगोको नष्ट करेहैं, इस लिये इन औषधियोंमें क्षार, यवागू, पेया, क्काथ, दूध और भोजन सिद्ध करके देवे तो इससे पथरी आदि वायुसे उत्पन्न हुए रोग नष्ट होजातेहैं ॥ १६–१९ ॥

इति वाताश्मरीचिकित्सा ।

अथ पित्तोल्वणाश्मरीलक्षणम् ।

पित्तेन दह्यते वस्तिः पच्यमान इवोष्मणा ॥ भल्लातकास्थिसंस्थाना रक्ता पीता सिताश्मरी ॥ २० ॥

पित्तकी उल्वणतासे पथरी हुई होय तो वस्तीमे दाह और अग्निसे पकानेकी सदृश पीडा होतीहै, और पथरी भिलावेकी गुठलीकी सदृश, लाल, पीली, तथा सफेद होतीहै ॥ २० ॥

अथ पित्ताश्मरीचिकित्सा ।
तत्र कुशादिघृतम् ।

कुशः काशः शरो गुन्द्र उत्कटो मोरटाश्मभित् ॥ दर्भो विदारी वाराही शालिमूलं त्रिकण्टकः ॥ २१ ॥ भल्लुकः पाटला पाठा पत्तूरोऽथ कुरुण्टकः ॥ पुनर्नवा शिरीषश्च कथितास्तेषु साधितम् ॥ २२ ॥ घृतं शिलाह्वमधुकैर्बीजैरिन्दीवरस्य च ॥ त्रपुसैर्वारुकादीनां बीजैश्चावापितं शुभम् ॥ भिनत्ति पित्तसंभूतामश्मरीं क्षिप्रमेव च २३ बीजं बीजसारः सरोबीजं वा ॥

कुश, कास, रामसर, गुन्द्रतृण, उत्कट (एक प्रकारके तृण) मोरट (ईखकी जड), पाखानभेद, डाभ, विदारीकन्द, वाराहीकन्द, शालिपर्णीकी जड, गोखुरू, भिलावे, पाढर, पाढ, पत्तूर, कटसरैया, पुनर्नवा, और सिरस इनके क्काथमें घी पकावे, उसमें शिलाजीत, मुलेठी, महुएके बीज खीरे और ककडीके बीज इनका चूर्ण डालकर खाय तो इससे तत्काल पित्ताश्मरी नष्ट होतीहै ॥ २१–२३ ॥

क्षारान्यवागूं पेयाश्च कषायांश्च पयांसि च ॥ २४॥ भोजनानि च कुर्वीत वर्गेऽस्मिन्पित्तनाशने ॥ शिलाजतु शिलाह्वं स्यात्पटीरो गुत्थगुन्द्रकौ ॥ २५॥ मधुकः कृतह्रस्वत्वाद्बीजैर्बीजकमुच्यते ॥ कुर्यात्क्षीरादिकं क्वाथे तस्मिन्क्षेपमवापकैः ॥ वर्गत्वेन यथालाभं परिभाषा प्रवर्तते ॥ २६॥

इति पित्ताश्मरी।

पित्तको नष्ट करनेवाला वीरतरादि वर्ग जो ऊपर कहा है उसमे क्षार, यवागू, पेया, कषाय, दूध और भोजन सिद्ध करकै पित्तकी उल्वणतासे हुई पथरीवालेको देवै। वर्गके लिये वैद्यक ग्रंथोकी यह परिभाषा है कि—वर्गमें की सब औषधि नहीं मिले तो उनमेंसे जितनी मिले उनकाही उपयोग करै ॥ २४-२६ ॥

अथ कफोल्वणाश्मरीलक्षणम्।

वस्तिर्निस्तुद्यत इव श्लेष्मणा शीतलो गुरुः ॥ अश्मरी महती श्लक्ष्णा मधुवर्णाऽथवा सिता ॥ २७॥ एता भवन्ति बालानां तेषामेव तु भूयसाम्॥ आश्रयोपचयाल्पत्वाद्ग्रहणाहरणे सुखाः ॥२८॥

कफकी उल्वणतासे पथरी हुई होय तो नोचने सरीखी पीडा होतीहै और पथरी शीतलता युक्त, भारी, मोटी, सहतके समान वर्णवाली, अथवा सफेद होतीहै। यह पथरी अधिक करकै बालकोंकेही होतीहै, और बालकोके वृद्धिका आश्रय अल्प होताहै इससे बालकोंकी पथरी निकालनेमें सुगम होतीहै ॥ २७॥२८ ॥

अथ कफाश्मरीचिकित्सा। तत्र वरुणादिघृतम्।

गणे वरुणकादौ तु गुग्गुल्वेलाहरेणुभिः ॥ कुष्ठभद्राह्वमरिचचित्रकैः समुराह्वयैः ॥२९॥ एतैः सिद्धमजासर्पिरूषकादिगणेन वा ॥ भिनत्ति कफसम्भूतामश्मरीं क्षिप्रमेव च ॥ शठ्यादिस्तेन चात्रेष्टो गणः श्यामादिको बुधैः ॥ ३० ॥

वरुणादि गण (जो नीचे कहा है), गूगल, इलायची, रेणुका, कूट, नीम, काली मिर्च, चीता और देवदार इनको डालकर अथवा ऊषकादि गणकी औषधि डालकर इनमें पकाया हुआ बकरीका घी खाय तो कफकी उल्वणतासे हुई पथरी तुरत नष्ट होजातीहै। शठ्यादि गणके क्वाथमें अथवा श्यामादि गणके क्वाथमें घी पकाकर उसका उपयोग करनेसे भी कफकी उल्वणतासे हुई पथरी नष्ट होतीहै ऐसा पंडितोने माना है ॥ २९ ॥ ३० ॥

अथ वरुणादिगणः।

वरुणार्तगलौ शिग्रुस्तर्कारी नक्तमालकौ ॥ मोरटारणिबिल्वाश्च बिम्बीवसुकचित्रकाः ॥ ३१ ॥ शैरीयो वशिरः क्षौद्रमजशृङ्गी शतावरी ॥ दर्भौ बृहतिका व्याघ्री मुनिभिः परिकीर्तितः ॥ ३२ ॥ वरुणादिगणो ह्येष कफमेदोनिवारणः ॥ विनिहन्ति शिरःशूल गुल्माभ्यन्तरविद्रधीन् ॥ ३३ ॥

वरना, झिंटी, सहँजना, तर्कारी (जैंती), करज, ईखकी जड, अरनी, वेल, कुदरू, आककी जड, चीता, शैरेय (कटसरैया), लाल चिरचिटा, सहत, मेंढासिंगी, शतावर, डाभ, भटकटैया और बडी भटकटैया, इन औषधियोंको वरुणादिगण कहतेहैं, यह वरुणादि गण—कफ तथा मेदाको निवारण करे है और मस्तकशूल, गुल्म तथा भीतरके विद्रधिको नष्ट करैहै ॥ ३१-३३ ॥

क्षारान्यवागूं पेयां च कषायांश्च पयांसि च ॥ भोजनानि च कुर्वीत वर्गेऽस्मिन्कफनाशने ॥ ३४ ॥

कफको नष्ट करनेवाले इस वर्गमें क्षार, यवागू, पेया, कषाय, दूध तथा भोजनको सिद्ध करकै कफके रोगोमें देवै ॥ ३४ ॥

अथ शुक्राश्मरीनिदानम्।

शुक्राश्मरी तु महती जायते शुक्रधारणात ॥

अव्ययानामनेकार्थत्वात्तुशब्दोऽत्र अवधारणार्थः तेन महतामेव न तु बालानां वक्ष्य-

माणसम्प्राप्तिरसम्भवान्नतु शुक्राभावो वाच्यः शुक्रधारणाच्छुक्रवेगागमस्य धारणात् ॥

वीर्यकी पथरी अधिक अवस्थावालोंके ही होतीहै, बालकोंके नहीं होती. यद्यपि बालकोंके भी वीर्य होताहै तो भी शुक्राश्मरीकी जो सम्प्राप्ति कहेंगे वह बालकोंके होनी असम्भव है इसलिये बालकोंके वीर्यकी पथरी होतीही नहीं । स्थानसे भ्रष्ट होकर प्रवर्त्ते हुए वीर्यके रुकनेसे वीर्यकी पथरी होजातीहै ।

अथ शुक्राश्मरीसंप्राप्तिः ।

स्थानाच्च्युतममुक्तं हि मुष्कयोरन्तरेऽनिलः ॥ शोषयित्वोपसंहृत्य शुक्रं तच्छुक्रमश्मरी ॥ ३५ ॥

अनिलः मैथुनवेगेन स्थानाच्च्युतं शुक्रं मैथुनवेगनिवारणेन धृतं शुक्रं मुष्कयोः मेढ्रसहितयोः मेढ्रवृषणयोरंतर इति सुश्रुतवचनात्तेन मेढ्रवृषणमध्यगतवस्तिमुखे उपसंहृत्य एकीकृत्य शोषयति तच्छुक्राश्मरी तथाभूतं शुक्रमेवाश्मरी ॥

मैथुनका वेग होनेपर स्थानसे पतित हुए और पीछे मैथुनका वेग शांत होनेपर नहीं निकले हुए वीर्यको वायु लिंगके तथा अंडकोषोंके मध्यमें मूत्राशयके मुखपर एकत्रकरके सुखादेताहै, तब वह वीर्य पथरीरूप होजाताहै ॥ ३५ ॥

अथ शुक्राश्मरीलक्षणम् ।

वस्तिरुक्कृच्छ्रमूत्रत्वमुष्कश्वयथुकारिणी ॥ तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुक्रमेति विलीयते ॥ पीडिते त्ववकाशेऽस्मिन्नश्मर्येव च शर्करा ॥ ३६ ॥

तस्यां शुक्राश्मर्याम् उत्पन्नमात्रायां यदा सा कथमपि विलीयते विलयं याति तदा शुक्रम् एति मूत्रमार्गात् प्रवर्तते । पीडिते तु अवकाशेऽस्मिन् । तुशब्दोऽवधारणे तेन अस्मिन्नेव अवकाशे स्थाने मेढ्रवृषणयोरन्तरे पीडिते सति सा विलीयते अन्तर्लीना भवति । अवस्थाभेदात् अश्मरी शर्करा सिकता भवतीति आह—'अश्मर्येव च शर्करा' । चकारात् सिकता च भवति शर्करासिकतयोश्च भेदो महत्त्वाल्पत्वाभ्यां बोद्धव्यः ॥

वीर्यकी पथरी होते ही मूत्राशयमें पीडा, बूँद बूँद मूत्रका उतरना और अंडकोषोंमें सूजन होतीहै । लिंग और अंडकोषोंका मध्यभाग दबानेसे यह पथरी भीतर लीन होजातीहै, इसप्रकार जब लीन होजातीहै तब ही मूत्रके मार्गसे वीर्य प्रवर्त्तताहै, जिस वीर्यकी पथरी होतीहै वह अपनी स्थितिके भेदसे शर्करारूप तथा रेतीरूप होजाताहै । वीर्यके कण मोटे होयँ तो शर्करारूप और सूक्ष्म होयँ तो रेतेकी समान होताहै ॥ ३६ ॥

अथ शुक्राश्मर्य्याः शर्करारूपत्वमाह ।

सा भिन्नमूर्तिर्वातेन शर्करेत्यभिधीयते ॥ ३७ ॥

सा अश्मरी ॥

इस वीर्यकी पथरी जब वायुसे बिखर जातीहै तब शर्करा कहातीहै ॥ ३७ ॥

अथ शर्करानिःसरणावरोधकारणम् ।

अणुशो वायुना भिन्ना सा तस्मिन्ननुलोमगे ॥ निरेति सह मूत्रेण प्रतिलोमे विबध्यते ॥ मूत्रस्रोतःप्रवृत्ता सा सक्ता कुर्यादुपद्रवान् ॥ ३८ ॥

अश्मरी तस्मिन् आश्रये सा शर्करा सक्ता लग्ना सती ॥

वायुसे बिखर २ कर टुकडे टुकडे रूप यह पथरी वायुके सीधे चलनेसे मूत्रके साथ निकलतीहै और वायु उलटा चले तब रुकतीहै । मूत्रके मार्गमें प्रवर्तकर अनेक उपद्रवोंको करती है ॥ ३८ ॥

अथाश्मर्य्युपद्रवाः ।

दौर्बल्यं सदनं कार्श्यं कुक्षिरोगमथारुचिम् ॥ पाण्डुत्वमुष्णवातश्च तृष्णां हृत्पीडनं वमिम ॥ ३९ ॥

उष्णवातं मूत्राघातविशेषणम् ॥

शर्करासे दुर्बलता, ग्लानि, शरीर कृश, कूखमें पीडा, अरुचि, पाण्डुता, उष्णवात (मूत्राघात), तृषा, हृदयमें पीडा और वमन होतीहै ॥ ३९ ॥

अथाश्मरीशर्करारिष्टम्।

प्रसूननाभिवृषणं बद्धमूत्रं रुजातुरम् ॥ अश्मरी क्षपयत्याशु शर्करा सिकतान्विता ॥ ४० ॥

शर्करा सिकतेति नामद्वयमन्वर्थम् ॥

जिसकी नाभि और अडकोष सूजजायँ, मूत्र रुक रहा हो और पीडासे व्याकुलता हो, तो वह मनुष्य तत्काल मरजाताहै। वीर्यकी पथरी ही शर्करारूप होजाय तो शर्करा और रेतरूप होजाय तो सिकता कहातीहै ॥ ४० ॥

अथाश्मरीचिकित्सा।

शुक्राश्मर्यान्तु सामान्यो विधिरश्मरिनाशनः ॥ यवक्षारगुडोन्मिश्रं रसं पुष्पफलोद्भवम् ॥ ४१ ॥ पिबेन्मूत्रविबन्धघ्नं शर्कराश्मरिनाशनम् ॥ तिलापामार्गकदलीपलाशयवबिल्वजः ॥ ४२ ॥ क्राथः पेयोऽविमूत्रेण शर्कराश्मरिनाशनः ॥ केबुकांकोलकतकशाकेन्दीवरजैः फलैः ॥ पीतमुष्णाम्बु सगुडं शर्करां पातयत्यधः ॥ ॥ ४३ ॥ पाषाणभिद्गोक्षुरकोरुबूकौ द्वौ कण्टकार्यौ क्षुरकाह्वमूलम् ॥ दध्ना पिबेत्क्षीरसुपिष्टमेतत्स्याद्भेदनार्थं सिकताश्मरीणाम् ॥ ४४ ॥ यः पिबेद्रजनीं सम्यक् सगुडां तुषवारिणा ॥ तस्याशु चिरगूढापि यात्यस्तं मेढ्रशर्करा ॥ ४५ ॥ पिबतः कटजं दध्ना पथ्यमन्नश्च खादतः ॥ निपतत्यचिरात्तस्य नियतं मेढ्रशर्करा ॥ ॥ ४६ ॥ त्रापुसबीजं पयसा पीतं वा नालिकेलजं कुसुमम्। विण्मूत्रशर्करायां भवति सुखी कतिपयैर्दिवसैः ॥ ४७ ॥ श्वदंष्ट्रा वरुणः शुण्ठी क्राथं क्षौद्रयुतं पिबेत् ॥ शर्कराश्मरिशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रहरं परम् ॥ ४८ ॥ कूष्माण्डकरसो हिंगुयवक्षारसमायुतः ॥ वस्तौ मेढ्रे च शूलघ्नो मूत्रकृच्छ्रहरस्तथा ॥ ४९ ॥ पुनर्नवाऽयोरजनीश्वदंष्ट्राफलप्रवालश्च सदर्भपुष्पः ॥ क्षीराम्रमद्येक्षुरसप्रविष्टो हितो भवेदश्मरिशर्करासु ॥ ५० ॥ वरुणत्वक्छिलाभेदशुण्ठीगोक्षुरकैः कृतः ॥ कषायः क्षारसंयुक्तः शर्कराश्च भिनत्यपि ॥ ५१ ॥

जो अन्य पथरियोंकी चिकित्सा कही है वह भी शुक्राश्मरीमे करै। अथवा नारियलके रसमे जवाखार तथा गुड मिलाकर पियै तो इससे मूत्रकी रुकावट, पथरी तथा शर्करा नष्ट होजातीहै। वा तिल, चिराचिटा, केला, ढाक, जौ और वेल, इनका क्राथ करकै बकरीके मूत्रके साथ पियै तो शर्करा तथा शुक्राश्मरीका नाश होताहै। सुपारी, अंकोल, निर्मलीके फल, सागोनके फल और कमलगट्टे इनका क्राथ करकै गुड डालकर पिये तो शर्करा नष्ट होतीहै। पाखानभेद, गोखुरू, एरंडकी जड, छोटी और बडी कटेरी तथा तालमखाने इनको दूधमे पीसकर दहीमें डालकर खाय इससे पथरी तथा शर्करा नष्ट होजातीहै। अथवा हलदीको गुडके साथ भली भाँति मिलाकर तुषोदकके साथ पियै तो इससे अधिक कालकी पथरी भी नष्ट होजातीहै। कुडेकी छालके कल्कको दहीमे डालकर पियै और पथ्य अन्न खाय तो शर्करा अवश्य नष्ट होजाती है। खीरेके बीजोंको अथवा नारियलके फूलोंको पीसकर दूधमें डालकर पिये तो मूत्रसे पीडित तथा शर्करासहित मनुष्य किंचित् दिनोंमें सुखी होताहै। गोखरू, बरना और सोंठ इनका क्राथ करकै सहत डालकर पियै तो इससे पथरी, शर्करा, शूल तथा मूत्रकृच्छ्र भली भाँति नष्ट होताहै। अथवा पेठेके रसमें हींग, तथा जवाखार डालकर पिये तो इससे मूत्राशयकी पीडा, लिंगका शूल, पथरी तथा मूत्रकृच्छ्र अवश्य नष्ट होताहै। पुनर्नवा, लोहेकी भस्म, हलदी, गोखुरू, मूँगेकी भस्म, और डाभके फूल, इन सबको दूध, आमका रस, मदिरा, और ईखका रस इनमे पीसकर पिये तो इससे वीर्यकी पथरी तथा शर्करा नष्ट होतीहै। अथवा बरनाकी छाल, पाखानभेद, सोंठ और गोखुरू, इनका क्राथ करकै उसमे जवाखार डालकर पिये तो शर्करा नष्ट होजातीहै ॥ ४१-५१ ॥

अथ तृणपञ्चमूलाद्यघृतम् ।

पञ्चमूल्यास्तृणाख्यायास्तथा गोक्षुरकस्य तु ॥ पृथग्दशपलान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ५२ ॥ चतुर्भागावशिष्टेन घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ गुडगोक्षुरबीजश्च कल्कं तत्र प्रदापयेत् ॥ ५३ ॥ तत्सिद्धं मूत्रदोषेषु शर्करास्वश्मरीषु च ॥ स्नेहने भोजने चैव प्रयोज्यं सर्पिरुत्तमम् ॥ ५४ ॥

तृणपञ्चमूल और गोखुरु, इन प्रत्येकको चालीस चालीस तोले लेकर १६ सेर जलमे पकावै, जब चौथा भाग जल शेष रहै तब उसमे गुड तथा गोखरूका कल्क डाल कर एक सेर घी पकावे । इस उत्तम घीको स्नेहनमे तथा भोजनमें सेवन करै तो इससे मूत्रसंबंधी विकार, पथरी और शर्करा नष्ट होजातीहैं ॥ ५२–५४ ॥

अथ वरुणतैलम् ।

त्वक्पत्रफलमूलस्य वरुणस्य त्रिकण्टकात् ॥ कषायेण पचेत्तैलं वस्तिनास्थापनेन च ॥ शर्कराश्मरिशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रात्प्रमुच्यते ॥ ५५ ॥

छाल, पत्ते, फल तथा मूलसहित वरना तथा गोखरू लेकर इनके क्वाथमें पकाये हुए तेलसे निरूह वस्ति देवै तो इससे पथरी, शर्करा, शूल तथा मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता-है ॥ ५५ ॥

अथ कुशाद्यतैलम् ।

कुशाग्निमन्थशैरेयनलदर्भेक्षुगोक्षुराः ॥ कपोतवंकावसुकवशीरेन्दीवरीशराः ॥५६॥ धातक्यरलुवन्दाकाः कणपूराश्मभेदकाः ॥ एषां कल्ककषायाभ्यां सिद्धं तैलं प्रयोजयेत् ॥ ५७ ॥ पानाभ्यञ्जनयोगेन वस्तिनोत्तरवस्तिना ॥ शर्कराश्मरिरोगेषु मूत्रकृच्छ्रे च दारुणे ॥ ५८ ॥ प्रदरे योनिशूले च शुक्रदोषे तथैव च ॥ वन्ध्यागर्भप्रदं प्रोक्तं तैलमेतत्कुशादिकम् ॥ ५९ ॥

कुशा, अरणी, पियावासा, नरसल, डाभ, ईख, गोखरू, ब्राह्मी, आककी जड, लाल चिरचिटा, सतावर, रामसर, आमला, अरलू, बॉंदा, सिरस और पाखानभेद, इनके क्वाथसे पकायाहुआ तेल कुशाद्यतैल कहाता-है । इस तेलको पीनेमे, अभ्यंगमें, वस्तिमें और उत्तरवस्तिमें उपयोग करै तो इससे शर्करा, पथरी, दारुण मूत्रकृच्छ्र, प्रदर, योनिशूल और वीर्यके दोष नष्ट होजातेहैं. यह तेल वन्ध्याओंको गर्भदायक है ॥ ५६–५९ ॥

अथाश्मरीणां सामान्यचिकित्सा ।

नागरवरुणगोक्षुरपाषाणभित्कपोतवंकजः क्वाथः ॥ गुडयवशूकविमिश्रः पीतो हन्त्यश्मरीमुग्राम् ॥ ६० ॥ त्रिकण्टकस्य बीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम् ॥ अविक्षीरेण सप्ताहं पेयमश्मरिनाशनम् ॥ ६१ ॥ पिबेद्वरुणजं मूलं क्वाथं तत्कल्कसंयुतम् ॥ क्वाथः शिग्रुमलोत्थश्च कदूष्णोऽश्मरिनाशनः ॥ ६२ ॥ शृङ्गवेरयवक्षारपथ्याकालीयकान्वितः ॥ दधिमण्डो भिनत्त्युग्रामश्मरीमाशु पानतः ॥ ६३ ॥ पाषाणभेदवरुणगोक्षुरककपोतवंकजः क्वाथः ॥ गिरिजतुगुडप्रगाढः कर्कटिकात्रपुसबीजयुतः ॥ ६४ ॥ पयोऽश्मरीमवश्यं दुर्भेदामपि भिनत्ति योगवरः ॥ शिखरिणमिव शतकोटिः शतमन्योर्हस्तनिर्मुक्तः ॥ ६५ ॥ श्रीकारिणीफलबीजं पिष्टं मथितेन यः पुमानद्यात् ॥ शाकमशितमथवास्या हन्यादश्मरी भवौ पीडाम् ॥ ६६ ॥ श्वदंष्ट्रैरण्डबीजानि नागरं वरुणत्वचः ॥ एतत्क्वाथवरं प्रातः पिबेदश्मरिनाशनम् ॥ ६७ ॥ रक्तोद्भवे सूक्ष्मणालताल्काशेक्षुनालेक्षुकुशोदकानि ॥ पिबे-

त्सिताक्षौद्रयुतानि खादेद्विदारिमिक्षुत्रपुसानि चैव ॥ ६८ ॥ पलान्यष्टौ तु कुर्वीत क्षाराणां वरुणत्वचम् ॥ तद यावशूकन्तु ततोऽप्यर्द्धं गुडात्स्मृतम् ॥ ६९॥ एकीकृत्य विमृद्यैतत्खादेत्कर्षप्रमाणतः ॥ घर्माम्बुपानतोऽवश्यं कृच्छ्राश्मरिविनाशनम् ॥ ७० ॥

सोंठ, वरना, गोखरू, पाखानभेद और ब्राह्मी इनका क्काथ करकै उसमें गुड तथा जवाखार डालकर पिये तो इससे उग्र पथरी भी नष्ट होजातीहै। अथवा गोखरूके बीजोंका चूर्णकर सहतमे मिलावे और सात दिनतक बकरीके दूधके साथ पिये तो इससे पथरीका नाश होताहै। वरनाकी जडका क्काथ करकै उसमें वरनेकी जडकाही कल्क डालकर पियै तो इससे पथरीका नाश होताहै। सहँजनेकी जडका क्काथ करकै किञ्चित् उष्ण पिये तो इससे पथरी दूर होतीहै। अदरख, जवाखार, हरड, और दारुहलदी, इनका चूर्णकर दहीके मडके साथ पिये तो उससे भयंकर पथरी भी तत्काल नष्ट होजातीहै। अथवा पाखानभेद, वरना, गोखरू और ब्राह्मी, इनका क्काथ करकै उसमें शिलाजीत तथा गुडको भलीभाँति मिलावै और ककडी तथा खीरेके बीजोंका कल्क डालकर पिये तो इस उत्तम उपायसे जो पथरी किसीसे न भिदै वह भी अवश्य भिदजातीहै। जिस प्रकार इन्द्रके हाथमे से निकला हुआ वज्र पर्वतोंको भेद डालताहै तिसी प्रकार यह योग पथरीको भेद डालताहै। अथवा श्रीकरिणी (अरणी) के फलोंके बीजोंको विना पानी पडे तक्र (मठे) में पीसकर खाय, अथवा इसके शाकको खाय तो इससे पथरीकी पीडा दूर होजातीहै। गोखरू, एरंडके बीज, सोंठ और वरनाकी छाल, इनका उत्तम क्काथ करकै प्रातःकाल पिये तो इससे पथरीका नाश होताहै। अथवा पथरीसे मूत्रमें रुधिर देखनेमें आवै तो सूखे हुए कमलकी नाल, ताडका फल, काँस, ईख, वाली ईख और डाभ, इनको पानीमें पीसकर उसमें सहत तथा मिश्री डालकर पिये और विदारीकंद, ईख, तथा खीरेका भक्षण करै। वरनाकी छालका बत्तीस (३२) तोले खार, सोलह तोले जवाखार और आठ तोले गुड, इनको एकत्र कर इसमेंसे एक तोला खाय और ऊपरसे गरम जल पिये तो इससे मूत्रकृच्छ्र तथा पथरीका नाश होताहै ॥ ६०–७० ॥

अथ वरुणाद्यचूर्णम्।

वरुणकभस्मपरिस्रुतसलिलं तच्चूर्णयावशूकयुतम् ॥ क्वथनीयं तत्तावद्यावच्चूर्णत्वमायाति ॥ ७१ ॥ तद्गुडयुक्तं हन्यादुदारामश्मरीं घोराम् ॥ प्लीहानं गुल्मवरं श्रोण्यां कुक्षौ रुजां तीव्राम् ॥ ७२ ॥ आमचयं वस्तिगदान्कृच्छ्रं वा वातजं घोरम् ॥ वह्निसदनं सुकष्टमश्ममयीमश्मरीश्चाशु ॥ ७३ ॥

वरनेकी भस्म करकै उस भस्मको पानीमें डाले और वस्त्रमें डालकर नितारै, पश्चात् उस नितरे हुए पानीको जवाखारके चूर्णसे मिश्रित करकै तबतक पकावै जबतक वह सब जलकर चूर्णरूप होय, फिर इस चूर्णको गुडमे मिलाकर खाय तो इससे भयंकर पथरी, प्लीहा, गुल्म, कमर तथा पेटकी पीडा, आमका संचय, वस्तिरोग, वायुसे हुआ भयंकर मूत्रकृच्छ्र, अग्निकी मंदता, और पत्थरकी समान कठोरपथरी तत्काल नष्ट होजातीहै ॥ ७१–७३ ॥

अथ वरुणकगुडः।

नो जग्धं कृमिभिर्घनं सुतरुणं स्निग्धं शुचिस्थानजं घस्रे पुण्यनिरीक्षिते वरुणकं छित्त्वा तुलां ग्राहयेत् ॥ संगृह्याशु चतुर्गुणासु विपचेत्पादावशेषं जलं तत्तुल्येन गुडेन वै दृढतरे भाण्डे पचेत्तत्पुनः ॥ ७४ ॥ ज्ञात्वैवं घनतां गुडे परिणते प्रत्येकमेषां पलं शुण्ठ्येर्वारुकबीजगोक्षुरकणापाषाणभिच्छीतलाः ॥ कूष्माण्डत्रपुसाक्षबीजकुनटीवास्तूकशोभाञ्जनैर्द्राक्षैलागिरिजाभयाकृमिहृतां चूर्णीकृतानां क्षिपेत् ॥ ७५॥ पथ्याशी प्रतिवासरं गुडममुं युंज्यात्प्रमाणं नरः ॥ खादेत्तस्य समस्तदोषजनिताऽश्मर्यः पतन्ति द्रुतम् ॥ ७६ ॥

अथ प्रमेहाधिकारः ।

तत्र प्रमेहनिदानम् ।

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि ग्राम्यौदकानूपरसः पयांसि ॥ नवान्नपानं गुडवैकृतं च प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम् ॥ १ ॥

बैठरहनेका सुख, निद्राका सुख, दही, ग्राम्य जीवोंका मांस, जलचरजीवोंका मांस, जलवाले देशके प्राणियोंका मांस, दूध, नवीन अन्न, नवीन पान, गुड, गुडके विकार (राब आदि) और सम्पूर्ण कफकारी पदार्थ, ये सब प्रमेह होनेके कारण हैं ॥ १ ॥

अथ प्रमेहसंप्राप्तिः ।

मेदश्च मांसञ्च शरीरजञ्च क्लेदं कफो वस्तिगतं प्रदूष्य ॥ करोति मेहान्समुदीर्णमुष्णैस्तानेव पित्तं परिदूष्य चापि ॥ क्षीणेषु दोषेष्ववकृष्य धातून्संदूष्य मेहान्कुरुतेऽनिलश्च ॥ २ ॥

कफ-मूत्राशयमें रहनेवाली मेदा (चरबी) को, मांसको और शरीरके क्लेदको दूषित करके प्रमेहको उत्पन्न करैहै। उष्ण पदार्थोंसे बढाहुआ पित्तभी सौम्यधातु कफ आदिका क्षय होनेपर उनही मेद आदि पदार्थोंको दूषित करके प्रमेहोंको उत्पन्न करैहै। कफ आदि सब धातु क्षीण होने पर वायु भी प्रमेहकी संपादन करनेवाली धातुओंको दूषित करके प्रमेहोंको उत्पन्न करैहै ॥ २ ॥

अथ प्रमेहसंख्यासाध्यत्वादिकं ।

साध्याः कफोत्था दश पित्तजाः षट् याप्या न साध्याः पवनाच्चतुष्काः ॥ समक्रियत्वाद्विषमक्रियत्वान्महात्ययत्वाच्च यथाक्रमं ते ॥ ३ ॥

कफसे दशप्रकारके प्रमेह होतेहैं वे साध्य हैं, पित्तसे छः प्रकारके प्रमेह होतेहैं वे याप्य हैं वायुसे चार प्रकारके प्रमेह होतेहैं वे असाध्य हैं। कफसे हुए प्रमेह साध्य इस कारण होतेहैं कि-वे केवल मेदा आदिके दूषित होनेसे होतेहैं, और समक्रियासेही नष्ट होतेहैं, पित्तसे हुए प्रमेह याप्य इस कारण हैं कि-वे कफ आदि सौम्य धातुके क्षय होनेपर मेदा आदिके दूषितपनेसे होतेहैं और मधुर तथा रूक्ष आदि विषम क्रियासे नष्ट होतेहैं, वायुसे हुए प्रमेह असाध्य इस कारण हैं कि सम्पूर्ण धातुओंके क्षयसे होतेहैं और शरीरका क्षय करनेवाले हैं ॥ ३ ॥

अथ प्रमेहदोषदूष्यज्ञानम् ।

कफश्च पित्तं पवनश्च दोषा मेदोऽस्रशुक्राम्बुवसालसीकाः ॥ मज्जारसौजः पिशितश्च दूष्याः प्रमेहिणां विंशतिरेव मेहाः ॥ ४ ॥

कफ, पित्त और वायु यह दोष हैं और उनसे मेदा, रुधिर, वीर्य, रस, वसा, लसीक, मज्जा तथा ओज और मांस ये दूषित होतेहैं, जो दूषित होतेहैं वे दूष्य कहातेहैं। उपरोक्त प्रमेह वीस प्रकारके हैं ॥ ४ ॥

अथ प्रमेहपूर्वरूपम् ।

दन्तादीनां मलाढ्यत्वं प्राग्रूपं पाणिपादयोः ॥ दाहश्चिक्कणता देहे तृट् स्वाद्वास्यञ्च जायते ॥ ५ ॥

प्रमेह होनेवाला होय तो दांत आदिमें मैल, हाथ पावोंमें दाह, शरीरमें चिकनापन, तृषा और मुखमें मीठापन होताहै ॥ ५ ॥

अथ प्रमेहसामान्यलक्षणम् ।

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताविलमूत्रता ॥ दोषदूष्याविशेषेऽपि तत्संयोगविशेषतः ॥ मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कल्प्यते ॥ ६ ॥

मूत्रकी अधिकता और मैलापन, यह प्रमेहोंका सामान्य लक्षण है। दोष और दूष्य इनकी विशेषतासे और संयोगकी विशेषतासे मूत्रके वर्ण आदिमें जो अंतर होताहै उससे प्रमेहोंके भेदोंकी कल्पना करी है ॥ ६ ॥

अथ कफजप्रमेहलक्षणम् ।

अच्छं बहुतरं शीतं निर्गन्धमुदकोपमम ॥ मेहत्युदकमेहेन किञ्चिच्चाविलपिच्छिलम ॥ ७ ॥ इक्षो रसमिवात्यर्थं मधुरं चेक्षुमेहतः ॥ सान्द्रीभवेत्प-

युषितं सान्द्रमेहेन मेहति ॥ ८ ॥ सुरामेही सुरातुल्यमुपर्यच्छमधो घनम् ॥ संहृष्टरोमा पिष्टेन पिष्टवद्बहुलं सितम् ॥ ॥ ९ ॥ शुक्राभं शुक्रमिश्रं वा शुक्रमेही प्रमेहति ॥ मूत्राणून्सिकतामेही सिकतारूपिणो मलान् ॥ १० ॥ शीतमेही सुबहुशो मधुरं भृशशीतलम् ॥ शनैः शनैः शनैर्मेही मन्दं मन्दं प्रमेहति ॥ लालातंतुयुतं मूत्रं लालामेहेन पिच्छिलम् ॥ ११ ॥

जो उदकमेह हुआ होय तो स्वच्छ, अधिक सफेद, शीतल, गन्धरहित, पानीकी सदृश, किंचित् गदला और चिकना मूत्र आताहै (१) इक्षुमेह हुआ होय तो ईखके रसके सदृश अत्यन्त मीठा मूत्र होताहै (२) सान्द्रमेह हुआ होय तो मूत्र रात्रिमें धरा हुआ जैसा गाढा होताहै ऐसा आताहै (३) सुरामेह हुआ होय तो मदिराकी सदृश मूत्र उतरताहै और वह मूत्र रात्रिमें रखे हुए की सदृश ऊपर स्वच्छ और नीचे गाढा होताहै (४) पिष्टमेह हुआ होय तो चावलोंके धोवनके समान सफेद और अधिक मूतताहै तथा मूत्र करते समय रोमांच होजातेहैं (५) शुक्रप्रमेह हुआ होय तो वीर्यकी सदृश तथा वीर्य मिला मूत्र आताहै (६) सिकतामेह हुआ होय तो मूत्रमें रेतीकी सदृश सूक्ष्म और परस्परमें नहीं मिले कफके कण होतेहैं (७) शीतमेह हुआ होय तो बारंबार मीठा और शीतल मूत्र आताहै (८) शनैर्मेह हुआ होय तो धीरे धीरे मन्द मन्द मूत्र उतरताहै (९) और लालामेह हुआ होय तो लारके तन्तुकी समान तारवाला और चिकना मूत्र आताहै (१०) ॥ ७–११ ॥

अथ पित्तजप्रमेहलक्षणम् ।

गन्धवर्णरसस्पर्शैः क्षारेण क्षारतोयवत् ॥ ॥ १२ ॥ नीलमेहेन नीलाभं कालमेही मषीनिभम् ॥ हारिद्रमेही कटुकं हरिद्रासन्निभं दहत् ॥ १३ ॥ विस्रं माञ्जिष्ठमेहेन मञ्जिष्ठासलिलोपमम् ॥ विस्रमुष्णं सलवणं रक्ताभं रक्तमेहिनः ॥ १४ ॥

क्षारमेह हुआ होय तो जिसमें खारी जलकी सदृश गन्ध, वर्ण, रस और स्पर्श होय ऐसा मूत्र आताहै (११) नीलप्रमेह हुआ होय तो नीलकी सदृश मूत्र होताहै (१२) कालप्रमेह हुआ होय तो स्याहीकी सदृश श्यामवर्णका मूत्र आताहै (१३) हारिद्रमेह हुआ होय तो हलदीकी सदृश वर्णवाला, दाहयुक्त और तीक्ष्ण मूत्र आताहै (१४) मांजिष्ठ मेह हुआ होय तो कच्चे पदार्थकी सदृश गंधवाला और मजीठके पानी सदृश रंगका मूत्र होताहै (१५) रक्तमेह हुआ होय तो गन्धयुक्त, गरम, खारी और रक्तकी सदृश लाल मूत्र आताहै (१६) ॥ १२–१४ ॥

अथ वातजप्रमेहलक्षणम् ।

वसामेही वसामिश्रं वसाभं मूत्रयेन्मुहुः ॥ मज्जाभं मज्जमिश्रं वा मज्जमेही मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥ कषायं मधुरं रूक्षं क्षौद्रमेहं वदेद् बुधः ॥ हस्ती मत्त इवाजस्रं मूत्रवेगविवर्जितम् ॥ सलसीकं विबद्धश्च हस्तिमेही प्रमेहति ॥ १६ ॥

वसामेह हुआ होय तो वारवार चरबीसे मिला और चरबीकी सदृश वर्णवाला होताहै (१७) मज्जामेह हुआ होय तो मज्जासे मिश्रित और मज्जाकी सदृश वर्णवाला मूत्र वारवार आताहै (१८) मधुमेह (क्षौद्रमेह) हुआ होय तो कसेला, मीठा, और रूक्ष मूत्र होताहै (१९) और हस्तिमेह हुआ होय तो उन्मत्त हस्तीकी सदृश निरन्तर वेगरहित लसीकासहित और रुकरुक कर मूत्र आताहै (२०) ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथ कफजप्रमेहोपद्रवाः ।

अविपाकोऽरुचिश्छर्दिर्निद्रा कासः सपीनसः ॥ उपद्रवाः प्रजायन्ते मेहानां कफजन्मनाम् ॥ १७ ॥

यदि कफसे प्रमेह हुआ होय तो खाये हुए अन्नका नहीं पचना, अरुचि, वमन, निद्रा, खांसी और पीनस ये उपद्रव होतेहैं ॥ १७ ॥

अथ पित्तजप्रमेहोपद्रवाः ।

वस्तिमेहनयोस्तोदो मुष्कावदरणं ज्वरः ॥

दाहस्तृष्णाम्लको मूर्च्छा विड्भेदः पित्तजन्मनाम् ॥ १८ ॥

पित्तसे प्रमेह हुआ होय तो मूत्राशय तथा लिंगमें शूल, अण्डकोषोंका फटना, ज्वर, दाह, तृष्णा, खट्टी डकारोंका आना मूर्च्छा और पतले दस्तका होना ये लक्षण होते-हैं ॥ १८ ॥

अथ वातजप्रमेहोपद्रवाः ।

वातजानामुदावर्तकम्पहृद्ग्रहलोलताः ॥ शूलमुन्निद्रता शोषः श्वासः कासश्च जायते ॥ १९ ॥

यदि वायुसे प्रमेह हुआ होय तो उदावर्त, कंप, हृदयका रुकना, चपलता, शूल, निद्रासे रहितपना, शोष, श्वास और खांसी ये उपद्रव होतेहैं ॥ १९ ॥

अथ प्रमेहारिष्टम् ।

यथोक्तोपद्रवाविष्टमतिप्रस्रुतमेव च ॥ पिडिकापीडितं गाढं प्रमेहो हन्ति मानवम् ॥ २० ॥ मूर्च्छाच्छर्दिज्वरश्वासकासवीसर्पगौरवैः ॥ उपद्रवैरुपेतो यः प्रमेही दुष्प्रतिक्रियः ॥ २१ ॥

प्रमेहयुक्त मनुष्य जो उपरोक्त उपद्रवोंसे घिरा हो, मूत्र अधिक आता हो और पिडका (फुन्सियों) ओंसे अत्यंत पीडित हुआ होय वह मनुष्य मरजाताहै । अथवा जो प्रमेही मनुष्य मूर्च्छा, वमन, ज्वर, श्वास, खांसी, विसर्प और गुरुता, इन उपद्रवोंसे युक्त होय तो असाध्य जानना ॥ २० ॥ २१ ॥

अथ स्त्रीणामप्रमेहे कारणम् ।

रजः प्रवर्तते यस्मान्मासिमासि विशोधयत् ॥ सर्वाञ्छरीरदोषांश्च न प्रमेहन्त्यतः स्त्रियः ॥ २२ ॥

स्त्रियोंके महीनेके महीने रज प्रवर्तताहै उससे ही शरीरके सब दोष नष्ट होजातेहैं, इस लिये स्त्रियोंके प्रमेह नहीं होता ॥ २२ ॥

अथासाध्यप्रमेहलक्षणम् ।

जातः प्रमेही मधुमेहिनो वा न साध्यरोगः स हि बीजदोषात् ॥ ये चापि केचित्कुलजा विकारा भवन्ति तांश्चापि वदन्त्यसाध्यान् ॥ २३ ॥ सर्व एव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः ॥ मधुमेहत्वमायान्ति तदाऽसाध्या भवन्ति च ॥ ॥ २४ ॥ मधुमेहो मधुनिभो जायते स किल द्विधा ॥ क्रुद्धे धातुक्षयाद्वायौ दोषावृतपथेऽथ वा ॥ २५ ॥ आवृतो दोषलिंगानि सोऽनिमित्तं प्रदर्शयन् ॥ क्षीणः क्षणात्क्षणात्पूर्णो भजते कृच्छ्रसाध्यताम् ॥ २६ ॥

जिसको जन्मसेही प्रमेह हुआ होय, अथवा माता पिताकी परंपरासे जिसको प्रमेह हुआ हो वह असाध्य है, क्यों कि–यह प्रमेह वीर्यके दोषसे ही उत्पन्न होताहै अन्य भी जो कोई रोग, कुलकी परंपरासे प्राप्त हुआ होय वह भी असाध्य है ऐसा विद्वानोंने कहा है । अथवा सब प्रकारके प्रमेह जो अधिक कालतक चिकित्सा विना रहे तो मधुमेह रूप होजातेहैं ये भी असाध्य हैं । मधुमेह दोप्रकारका होताहै वह इस भांति है कि–धातुओंके क्षयसे वायुका कोप होनेपर होताहै, अथवा दोषसे वायुका मार्ग रुकजानेसे होताहै, दोषसे वायुका मार्ग रुकजानेपर वह वायु अकस्मात् दोषोंके चिह्नोंको दिखातीहै और तैसेही क्षणमात्रमें मूत्राशयको खालीकर डालै है तथा क्षणमात्रमे पूर्ण करदेहै, इसीसे प्रमेह कष्टसाध्य होजाताहै ॥ २३–२६ ॥

अथ मधुमेहशब्दप्रवृत्तौ कारणम् ।

मधुरं यच्च सर्वेषु प्रायो मध्विव मेहति ॥ सर्वेऽपि मधुमेहाख्या माधुर्याच्च तनोरतः ॥ २७ ॥

अधिक करके सब प्रमेहोंमें मनुष्य मीठा और मधुकी सदृश मूत्र मूतता है और शरीरमें मधुरता होतीहै, इस लिये सब प्रमेहोंको मधुमेह इस नामसे कहतेहैं ॥ २७ ॥

अथ प्रमेहोपेक्षाजनितदशपिडिकानां नामस्थानानि ।

शराविका कच्छपिका जालिनी विनताल्जी ॥ मसूरिका सर्षपिका पुत्रिणी सविदारिका ॥ २८ ॥ विद्रधिश्चेति

पिडिकाः प्रमेहोपेक्षया दश ॥ सन्धिमर्मसु जायन्ते मांसलेषु च धामसु ॥ २९ ॥

प्रमेहोकी उपेक्षा करनेसे संधियोंमे, मर्मस्थानोंमें और अधिक मांसवाले प्रदेशोंमे दश प्रकारकी पिडिका (फुसी) होतीहैं और वे अनुक्रमसे शराविका, कच्छपिका, जालिनी, विनता, अलजी, मसूरिका, सर्षपिका, पुत्रिणी, विदारिका तथा विद्रधि, इन नामोंसे कही है ॥ २८ ॥ २९ ॥

अथ दशप्रकारकपिडिकालक्षणम् ।

अन्तोन्नता च तद्रूपा निम्नमध्या शराविका ॥ गौरसर्षपसंस्थाना तत्प्रमाणा तु सर्षपी ॥ ३० ॥ सदाहा कूर्मसंस्थाना ज्ञेया कच्छपिका बुधैः ॥ जालिनी तीव्रदाहा तु शिराजालसमावृता ॥ ३१ ॥ अविगाढरुजा क्लेदा पृष्ठे वाप्युदरेऽपि वा ॥ महती पिडिका नीला सा बुधैर्विनता स्मृता ॥ ३२ ॥ महत्यल्पचिता ज्ञेया पिडकापि च पुत्रिणी ॥ मसूरदलसंस्थाना विज्ञेया तु मसूरिका ॥ ३३ ॥ रक्ता सितास्फोटचिता विज्ञेया त्वलजी बुधैः ॥ विदारीकन्दवद्वृत्ता कठिना च विदारिका ॥ विद्रधेर्लक्षणैर्युक्ता ज्ञेया विद्रधिका तु सा ॥ ३४ ॥

जो पिडिका—अंतमे ऊंची, मध्यमें नीची हो और मट्टीके सकोरे (सरइया) की सदृश हो, उसको शराविका जाननी । जो पिडिका दाह युक्त, तथा कछुएकी पीठकी सदृश होय उसको कच्छपिका जाननी । जो पिडिका तीव्र दाहवाली और सूक्ष्म सूक्ष्म नसोंके जालसे लिपटी हुई होय उसको जालिनी जाननी । जो पिडिका बडी, मोटी, नीलवर्णवाली और पीठ तथा पेटमें हुई होय वह विनता जाननी । जो पिडिका लाल तथा काली होय और अन्य फुसियोंसे व्याप्त होय वह अलजी जाननी । जो पिडिका मसूरकी दालकी बराबर बडी हो वह मसूरिका जाननी । जो पिडिका सफेद सरसोंकी समान आकारवाली और इतनीही बडी होय वह सर्षपिका जाननी । जो पिडिका बडी और सूक्ष्म सूक्ष्म फुसियोंसे व्याप्त हो वह पुत्रिणी जाननी । जो पिडिका विदारीकंदकी सदृश गोल होय और कठोर होय वह विदारिका जाननी । जो पिडिका विद्रधिके लक्षणो (जो आगे कहेंगे) से युक्त होय वह विद्रधिका जाननी ॥ ३०–३४ ॥

अथ प्रमेहपिडकादोषनिर्णयः ।

ये यन्मयाः स्मृता मेहास्तेषामेतास्तु तन्मयाः ॥ ३५ ॥

जो प्रमेह जिस दोपयुक्त हो उस प्रमेहकी पिडिकाभी उसी दोषवाली होतीहै ॥ ३५ ॥

अथ प्रमेहमन्तरा पिडिकोत्पत्तिः ।

विना प्रमेहमप्येता जायन्ते दुष्टमेदसः ॥ तावच्चैता न लक्ष्यन्ते यावद्वास्तुपरिग्रहः ३६

जिस मनुष्यकी मेदा दूषित होय उसके विना प्रमेहभी पिडिका होतीहैं, जबतक इन पिडिकाओंने अपने अपने स्थानको भलीभांति पकडा न होय तबतक यें पिडिका नहीं दीखतीहैं ॥ ३६ ॥

अथ पिडिकासाध्यत्वम् ।

गुदे हृदि शिरस्यंसे पृष्ठे मर्मसु चोत्थिताः॥ सोपद्रवा दुर्बलाग्नेः पिडिकाः परिवर्जयेत् ॥ ३७ ॥

गुदा, हृदय, शिर, कधा, पीठ, इनके मर्मस्थानोंमे उत्पन्न हुई, उपद्रवयुक्त और मदाग्निवालेके हुई पिडिकाओंकी चिकित्सा नहीं करै ॥ ३७ ॥

अथ पिडिकोपद्रवाः ।

तृट्च्छ्वासमांससंकोचमेहहिक्कामदज्वराः ॥ विसर्पमर्मसंरोधाः पिडिकानामुपद्रवाः ॥ ३८ ॥

तृषा, श्वास, मांसका सकोच, मोह (बेहोसी), हिचकी, मद, ज्वर, विसर्प और मर्मस्थानोंका अवरोध ये पिडिकाओंके उपद्रव हैं ॥ ३८ ॥

अथ प्रमेहपथ्यानि ।

श्यामाककोद्रवोद्दालगोधूमाश्चणकास्तथा॥ आढक्यश्च कुलत्थाश्च पुराणा मेहिनां हिताः ॥ ३९ ॥ मेहिनां तिक्तशाकानि जाङ्गला हरिणाण्डजाः ॥ यवान्नविकृतिर्मुद्गाः शस्यन्ते शालिषष्टिकाः ॥४०॥

समा, कोदों, वनकोदो, गेहूं, चना, अरहर और कुलथी, यह धान्य यदि पुराने होंयँ तो प्रमेह रोगीको हितकारी हैं। कडवे शाक, जागल देशके हिरन तथा पक्षी, जौके आटेके बने पदार्थ, मूँग, लाल चावल और सांठीके चावल, ये प्रमेह रोगीको हितकारी हैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥

अथ प्रमेहेऽहितवस्तूनि ।

सौवीरकं सुरा तक्रं तैलं क्षीरं घृतं गुडम् ॥
अम्लेक्षुरसपिष्टान्नानूपमांसानि वर्जयेत् ४१

सौवीर, मदिरा, तक्र, तेल, दूध, घी, गुड, अम्लपदार्थ, ईखका रस, आटेके बने पदार्थ और अनूप देशके जीवोंका मास, इनको प्रमेहरोगी त्याग देवै ॥ ४१ ॥

अथ प्रमेहचिकित्सा ।

तत्र आदित एव प्रमेहिणमुपस्निग्धमन्यतमेन प्रियंग्वादिसिद्धेन तैलेन वामयेत् प्रगाढं विरेचयेच्च । विरेचनादनन्तरं सुरसादिकषायेण आस्थापयेत्। महौषधभद्रदारुमुस्तावापेन मधुसैन्धवयुक्तेन दह्यमानं वा न्यग्रोधादिकषायेण निस्तैलेन ॥

वातोत्कटेषु मेहेषु स्नेनपानं विशेषतः ॥ पारिजातजयानिम्बवह्निगायत्रिणां पृथक् ॥ ४२ ॥ पाठायाः सागुरोः पीता द्वयस्य शारदस्य च ॥ जलेक्षुमद्यसिकताशनैर्लवणपिष्टकान् ॥ सान्द्रमेहान्क्रमाद्धन्ति क्वाथाश्चाष्टौ समाक्षिकाः ॥ ४३ ॥ हरीतकीकट्फलमुस्तलोध्राः पाठाविडङ्गार्जुनधन्वनाश्च ॥ उभे हरिद्रे तगरं विडङ्गं कदंबशालार्जुनदीप्यकाश्चं ॥४४॥ दार्वी विडङ्गः खदिरो धवश्च सुराह्वकुष्ठागुरुचन्दनानि ॥ दार्व्यग्निमन्थौ त्रिफला वचा च पाठा च मूर्वा च तथा श्वदंष्ट्रा ॥ ४५ ॥ वचाह्वुशीराण्यभया गुडूची वृषं शिवाचित्रकसप्तपर्णाः ॥ पादैः कषायाः कफमेहविज्ञैर्दशोपदिष्टा मधुसम्प्रयुक्ताः ॥ ४६ ॥ उशीरलोध्रार्जुनचन्दनानामुशीरमुस्तामलकाभयानाम् ॥ पटोलनिम्बामलकामृतानां मुस्ताभयामुष्ककवृक्षकाणाम् ॥ ४७ ॥ लोध्राम्रकालीयकधातकीनां विश्वार्जुनैलानिविपोत्पलानाम् ॥शिरीषधान्यार्जुनकेशराणां प्रियंगुपद्मोत्पलकिंशुकानाम् ॥ ४८ ॥ अश्वत्थपाठासनवेतसानां कटंकटेर्युत्पलमुस्तकानाम् ॥ पैत्तेपु मेहेषु दशोपदिष्टाः कषाययोगा मधुसम्प्रयुक्ताः ॥ ४९ ॥ कफमेहहरक्वाथसिद्धं सर्पिः कफे हितम् ॥ पित्तमेहघ्ननिर्यूहसिद्धं पित्तहरं घृतम् ॥ ५० ॥ कम्पिल्लसप्तच्छदशालजानि वैभीतरोहीतककौटजानि ॥ पटोलकालीयगदागुरूणि क्षौद्रेण लिह्यात्कफपित्तमेही ॥ ५१ ॥ दूर्वाकसेरुपूतीककुम्भीकप्लवशैवलम् ॥ जलेन क्वथितं पीतं शुक्रमेहहरं परम् ॥ ॥ ५२ ॥ त्रिफलारग्वधद्राक्षाकषायो मधुसंयुतः ॥ पीतो निहन्ति फेनाभं प्रमेहं नियतं नृणाम् ॥ ५३ ॥ अश्वत्थाच्चतुरंगुलया न्यग्रोधादेः फलत्रयात् ॥ सरक्तसारमञ्जिष्ठाः क्वाथाः पञ्च समाक्षिकाः ॥ ५४ ॥ मधुना त्रिफलाचूर्णमथवाश्मजतूद्भवम् ॥ लोहजं वाभयोत्थं वा लिहेन्मेहनिवृत्तये ॥ ५५ ॥ कटंकटेरीमधुकत्रिफलाचित्रकैः समैः ॥ सिद्धः कषायः पातव्यः प्रमेहाणां विनाशनः ॥ ॥ ५६ ॥ फलत्रिकं दारुनिशां विशालां मुस्तां च निष्क्वाथ्य निशांशकल्कम् ॥ पिवेत्कषायं मधुसम्प्रयुक्तं सर्वप्रमेहेषु समुच्छ्रितेषु ॥ ५७ ॥ गोभक्षितान्यवान्मूत्रभावितान्केवलानपि ॥ चित्रितोद्श्विता खादन्निम्बमुद्गरसेन वा ॥ ५८ ॥

भक्षयीताम्बुना मांसं प्रमेही यवपिष्टकम् ॥ मेदोघ्ना बद्धमूत्राश्च समाः सर्वेषु धातुषु॥यवास्तस्माद्विशिष्यन्ते प्रमेहेषु विशेषतः ॥ ९९ ॥

जिसको प्रमेह हुआ होय उसको प्रथमसेही प्रियगु आदिसे सिद्ध किये तैलसे स्निग्ध करकै वमन तथा बिरेचन करावै, विरेचन करानेके पीछे सुरसादिक्काथमें सोंठ, देवदार तथा मोथेका चूर्ण डालकर सहत तथा सैंधा मिलावै और पश्चात् उस क्काथसे निरूहवस्ति देवै, जो दाह होती होय तो तेल रहित न्यग्रोधादि क्काथसे निरूहवस्ति देवै । वायुकी अधिकतावाले प्रमेहोंमे विशेष करके स्नेहपान करावै । पारिजात (फरहद) का क्काथ करकै उसमे सहत डालकर पिये तो इससे उदकप्रमेह नष्ट होता है । नीलीदूब अथवा अरनेका क्काथ करकै उसमे सहत डालकर पिये तो इससे इक्षुमेह नष्ट होता है । नीमका क्काथकर उसमे सहत डालकर पिये तो इससे सुरामेह नष्ट होताहै । चीतेका क्काथकर उसमें सहत डालकर पिये तो इससे सिकतामेह दूर होताहै । खैरका क्काथकर उसमें सहत डालकर पिये तो इससे शनैर्मेह नष्ट होताहै । कालीपाढका क्काथकर उसमे सहत डालकर पिये तो इससे क्षारमेह नष्ट होताहै । अगरका क्काथकर उसमें सहत डालकर पिये तो इससे पिष्टप्रमेह नष्ट होताहै । दोनों जातिकी हलदीका क्काथकरके उसमें सहत डालकर पिये तो इससे सान्द्रप्रमेह नष्ट होताहै । हरड, कायफल, मोथा और लोध, इनका क्काथ करके उसमें सहत मिलाकर पिये तो इससे कफसबधी प्रमेह नष्ट होताहै । पाढ, वाय विडग, कोह और धमासा इनका क्काथकरके उसमे सहत डालकर पिये तो इससे कफसबधी प्रमेह नष्ट होताहै । हलदी, दारुहलदी, तगर और वायविडग, इनका क्काथ करके उसमे सहत डालकर पिये तो इससे कफसबधी प्रमेह नष्ट होताहै । कदब, शाल, कोह और चीता, इनका क्काथ करके उसमें सहत डालकर पिये तो इससे कफसंबंधी प्रमेह नष्ट होताहै । दारुहलदी, वायविडग, खैर और धाय, इनका क्काथ करके उसमें सहत डालकर पिये तो इससे कफसंबधी प्रमेह दूर होताहै । देवदार, कूठ, अगर और चन्दन, इनका क्काथ करके उसमें सहत डालकर पिये तो इससे कफसंबधी प्रमेह नष्ट होताहै । दारुहलदी, अरनी, हरड, बहेडा, आमला और वच, इनका क्काथ करके सहत डालकर पिये तो कफसंबंधी प्रमेह दूर होता है । अथवा पाढ, मूर्वा और गोखरू इनका क्काथ करके सहत डालकर पिये तो इससे कफसंबंधी प्रमेह नष्ट होजाताहै । वच, खस, हरड और गिलोय इनका क्काथ करकै उसमे सहत डालकर पिये तो उससे कफसबधी प्रमेह दूर होताहै । अडूसा, हरड, चीता और सतौना, इनका क्काथकर उसमे सहत डालकर पिये तो कफसबधी प्रमेह नष्ट होताहै । खस, लोध, कोह और चन्दन, इनका क्काथकरकै सहत डालकर पीनेसे पित्तसबधी प्रमेह दूर होताहै । अथवा खस, मोथा, आमले और हरड इनका क्काथ करकै उसमे सहत डालकर पिये तो पित्तसबधी प्रमेह दूर होताहै । परवल, नीम, आमले और गिलोय इनका क्काथकर उसमे सहत डालकर पियै तो पित्तसबधी प्रमेह नष्ट होताहै । मोथा, हरड और मोखा इनका क्काथ करकै उसमें सहत डालकर पिये तो इससे पित्तसबधी प्रमेह दूर होताहै । लोध, आमकी छाल, दारुहलदी तथा धाय, इनका क्काथकरकै सहत डालकर पिये तो पित्तसंबंधी प्रमेह नष्ट होताहै । सोंठ, अर्जुन (कोह), इलायची, अतीस और कमल, इनका क्काथ करकै सहत डालकर पीनेसे पित्तसंबंधी प्रमेह नष्ट होताहै । सिरस, धनियां, कोह और नागकेसर, इनका क्काथ करकै इसमे सहत डालकर पिये तो इससे पित्तसबधी प्रमेह दूर होताहै । प्रियगु, कमल उत्पल तथा कसूम इनका क्काथ करकै सहत डालकर पिये तो इससे पित्तसबधी प्रमेह नष्ट होताहै । पीपलकी छाल, पाढ, पीतशाल, तथा वेंत इनका क्काथ करकै सहत डालकर पिये तो पित्तसबधी प्रमेह दूर होता है । दारुहलदी, उत्पल और मोथा, इनका क्काथ करकै सहत डालकर पिये तो पित्तसंबंधी प्रमेह दूर होताहै । कफसबधी प्रमेहको नष्ट करनेवाले क्काथोंसे पकाया हुआ घी कफसबधी प्रमेहको नष्ट करेहै । पित्तसबधी प्रमेहको नष्ट करनेवाले क्काथोंसे पकाया हुआ घी पित्तसबधी प्रमेहोको नष्ट करेहै । अथवा कबीला, सतौना, शाल, बहेडा, रोहेडा, कुडेके बीज, परवल, दारुहलदी, कूट और अगर इनका चूर्णकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे कफसबधी प्रमेह दूर होताहै । दूब, कसेरु, करज, कायफल, मोथा तथा सिवार इनका क्काथ पिये तो इससे शुक्रमेह अवश्य दूर होताहै । हरड, बहेडा, आमला, अमलतास और दाख, इनका क्काथकर उसमें सहत मिलाकर पिये तो फेनोकी सदृश प्रमेह दूर होताहै । त्रिफला अथवा शिलाजीत वा

हरडोका चूर्णकर सहतमें मिलाकर खाय तो प्रमेह नष्ट होजाताहै। दारुहलदी, मुलहटी, त्रिफला और चीता, इन सबका काढा पीनेसे सब प्रकारके प्रमेह दूर होतेहैं। अथवा त्रिफला, दारुहलदी, इन्द्रायन, मोथा और हलदी इनका क्राथ करके सहत डालकर पिये तो सम्पूर्ण प्रमेह नष्ट होतेहैं, इस क्राथको फलत्रिकादि क्राथ कहतेहैं। गायके खाये हुए जौंको गोवरमेंसे निकालकर गोमूत्रकी भावना देवे, अथवा विना भावनाकेही चितकवरी गायके उदश्वित् (आधापानी पडा हुआ मट्ठा) के साथ अथवा नीमके तथा मूगके रसके साथ खाय तो प्रमेह नष्ट होता है। अथवा एक मासतक पानीके साथ जौके आटेका भक्षण करनेसे प्रमेह नष्ट होजातेहैं, जो प्रमेहको नष्ट करनेवाले, मूत्रको रोकनेवाले और सब धातुओंमें समास्थितिवाले हैं, इस लिये विशेष करके प्रमेहमें जौ बहुत हितकारी हैं ॥ ४२–५९ ॥

अथ त्रिकट्वाद्यमोदकः।

त्रिकटु त्रिफला पाठा मूलं शोभाञ्जनस्य च ॥ ६० ॥ विडंगतण्डुला हिंगु तथा कटुकरोहिणी ॥ बृहती कण्टकारी च हरिद्रे द्वे यवानिका ॥ ६१ ॥ केबुकं शालपर्णी च तथातिविषचित्रकौ ॥ सौवर्चलं जीरकञ्च हपुषा धान्यमेव च ॥ ६२ ॥ एषां कर्षप्रमाणञ्च श्लक्ष्णचूर्णञ्च कारयेत् ॥ यवसक्तुपलानाञ्च नवतिं द्वितयाधिकाम् ॥ ६३ ॥ घृततैलमधूनाञ्च प्रत्येकञ्च पलानि षट् ॥ एभिः कर्षप्रमाणञ्च प्रत्यहं मोदकं सुधीः ॥ भक्षयन्नाशयेदुग्रान्प्रमेहानतिदारुणान् ॥ ६४ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, वहेडा, आमला, पाढ, सहँजनेकी जड, वायविडगके दाने, हींग, कुटकी, दोनों प्रकारकी कटेरी, हलदी, दारुहलदी, अजवायन, सुपारी, शालपर्णी, अतीस, चीता, कालानोंन, जीरा, हाउवेर और धनिया, इन प्रत्येक पदार्थोंको एक एक तोले लेकर वारीक चूर्ण करके पश्चात् तीनसौ अडसठ (३६८) तोले जौके सत्तुओंमें यह चूर्ण डालकर चौवीस (२४) तोले घी और चौवीस तोले सहत डाले और एक एक तोलेके लड्डू वनालेवे, इन लड्डुओंमेंसे नित्य एक एक लड्डू खाय तो अत्यत दारुण प्रमेह भी नष्ट होजाताहै ॥ ६०–६४ ॥

अथ न्यग्रोधाद्यचूर्णम्।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थश्योनाकारग्वधासनम् ॥ आम्रं कपित्थं जम्बूञ्च प्रियालं ककुभं धवम् ॥ ६५ ॥ मधूकं मधुकं लोध्रं वरुणं पारिभद्रकम् ॥ पटोलं मेषशृंगी च दन्ती चित्रकमाढकी ॥ ६६ ॥ करञ्जत्रिफलासक्रुभल्लातकफलानि च ॥ एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ६७ ॥ न्यग्रोधाद्यमिदं चूर्णं मधुना सह योजयेत् ॥ फलत्रयरसं चानु पीत्वा मूत्रं विशुध्यति ॥ ॥ ६८ ॥ एतेन विंशतिर्मेहा मूत्रकृच्छ्राणि यानि च ॥ प्रशमं यान्ति योगेन पिडिका न च जायते ॥ ६९ ॥

वड, गूलर, पीपल, अरलू, अमलतास, विजैसार, आम, कैथ, जामुन, चिरोंजी, कोह, धाय, महुआ, मुलेठी, लोध, वरुणा, फरहद, परवल, मेढासिंगी, दन्ती, चीता, अरहर, हरड, वहेडा, आमला, इन्द्रजौ और भिलावे इनको समान भाग लेकर वारीक चूर्ण करै, इस चूर्णको सहतमें मिलाकर खाय और ऊपरसे त्रिफलेका क्राथ पियै तो इससे मूत्र शुद्ध होजाताहै, वीसों प्रकारके प्रमेह और सब प्रकारके मूत्रकृच्छ्र शात होजातेहैं तथा प्रमेह पिडिकाभी नहीं होती ॥ ६५–६९ ॥

अथ लोहादिचूर्णगुडूचीस्वरसौ।

चूर्णानि लोहत्रिफलासितानां क्षौद्रेण लिह्याच्च पृथक् समं वा ॥ मेहान्समस्तानपि नाशयन्ति पीताः कदाचित्स्वरसा गुडूच्याः ॥ ७० ॥

लोहेकी भस्म, त्रिफला और मिश्री, इनका चूर्ण मिश्रित कर सहतमें मिलाकर चाटे अथवा केवल लोहेकी भस्म, अथवा त्रिफलेके चूर्णको तथा केवल मिश्रीके चूर्णको सहतमे मिलाकर पृथक् पृथक् चाटे तो सब प्रकारके प्रमेह नष्ट होजातेहैं। अथवा केवल गिलोयका स्वरस निकालकर पीनेसे भी प्रमेह नष्ट होजाताहै ॥ ७० ॥

अथ त्रिकटुगुटिका।

त्रिकटु त्रिफलातुल्यं गुग्गुलुश्च समांशिकम् ॥ गोक्षुरक्काथसंयुक्तां गुटिकां कारयेद्बुधः ॥ ७१ ॥ दोषकालबलापेक्षी भक्षयेच्चानुलोमिकाम् ॥ न चात्र परिहारोऽस्ति कर्म कुर्याद्यथेप्सितम् ॥ ७२ ॥ प्रमेहान्वातरोगांश्च वातशोणितमेव च ॥ मूत्राघातं मूत्रदोषं प्रदरं चाशु नाशयेत् ॥ ७३ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, बहेडा और आमला, इनका समानभाग चूर्णकर उसमें समानभाग गूगल डाले, पश्चात् गोखरूके क्वाथसे इसकी गोली बनालेवे। वायुका अनुलोमन करनेवाली यह गोली दोष काल तथा शरीरके बलको विचारकर खाय तो प्रमेह, वायुसबधी रोग, वातरक्त, मूत्राघात, मूत्रदोष तथा प्रदरका नाश होताहै। यह गोली खानेवाले अपनी इच्छाके अनुसार प्रवर्तें और किसीप्रकारका परहेज नहीं करै ॥ ७१-७३ ॥

अथ दाडिमाद्यघृतम्।

दाडिमस्य च बीजानि कृमिघ्नस्य च तण्डुलाः ॥ रजनी चविकाऽजाजी नागरं त्रिफला कणा ॥ ७४ ॥ त्रिकण्टकस्य च फलं यवानी धान्यकं तथा ॥ वृक्षाम्लचविकालोध्रसिन्धूद्भवसमाहितैः ॥ ७५ ॥ कल्कैरक्षसमैरेभिर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ भोज्ये पाने प्रदातव्यं सर्वर्त्तुषु च मात्रया॥ ॥ ७६ ॥ प्रमेहान्विंशतिं चैव मूत्राघातं तथाश्मरीम् ॥ कृच्छ्रं सुदारुणञ्चैव हन्यादेव न संशयः ॥ ७७ ॥ विबन्धानाहशूलघ्नं कामलाज्वरनाशनम् ॥ दाडिमाद्यं घृतं चैतदश्विभ्यां परिकीर्तितम् ॥ ७८ ॥

दाडिमी अनारके दाने, वायविडग, हलदी, चव्य, जीरा, सोंठ, हरड, बहेडा, आमला, पीपल, गोखरू, अजवायन, धनिया, वृक्षाम्ल (तंतडीक), लोध और सैंधानोंन, इन प्रत्येक पदार्थोंका एक एक तोले कल्कसे एकसेर घी पकावे तो 'दाडिमाद्य नामक घृत' सिद्ध होताहै। अश्विनीकुमारोका कहा यह घी सर्व ऋतुओंमें मात्राके अनुसार भोजन पानके उपयोगमे सेवनकरै, इससे बीसो प्रकारके प्रमेह, मूत्राघात, पथरी, महादारुण मूत्रकृच्छ्र, मलबन्ध, आनाह, शूल, कामला तथा ज्वर, ये अवश्यही नष्ट होतेहैं ॥ ७४-७८ ॥

अथ गोक्षुरादिचूर्ण गुटिका च।

श्वदंष्ट्रा सकणा मुस्ता गुडूची फल्गुपल्लवाः ॥ दर्भांकुरास्तु गण्डीरी रोहिषस्य च पल्लवाः ॥ ७९ ॥ काला पुनर्नवा श्यामा शारिवा देवदारु च ॥ पिप्पली शृंगवेरश्च विडंगं मरिचानि च ॥ ८० ॥ पाठा कम्पिल्लकं भार्ङ्गी द्वे हरिद्रे निदिग्धिका ॥ एरण्डमूलं दन्ती च चित्रकं कटुरोहिणी ॥ ८१ ॥ एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ यावन्त्येतानि चूर्णानि स्युस्तावत्स्यादयोरजः ॥ ८२ ॥ ततो बिडालपदकं पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ अलाभे चापि मद्यानां प्रमेहान्हन्ति विंशतिम् ॥ ८३ ॥ श्वयथुश्च तथार्शांसि पाण्डुरोगं हलीमकम् ॥ औदराण्यथ शूलानि प्लीहानं चापकर्षति ॥ ८४ ॥ एभिर्गोमूत्रपिष्टैस्तु गुटिकाः कारयेद्भिषक् ॥ रोगेष्वेतेषु मुख्याः स्युर्बलमांसविवर्द्धनाः ॥ ८५ ॥

गोखरू, पीपल, मोथा, गिलोयके सूक्ष्मसूक्ष्म पत्ते, डाभके अकुर, मजीठ, रोहिषके पत्ते, निसोत, पुनर्नवा, शारिवा, देवदार, पीपल, अदरख, वायविडंग, मिरच, पाढ, कबीला, भारगी, दोनो हलदी, कटेरी, एरंडकी जड दन्ती (जमालगोटेकी जड), चीता और कुटकी, इनको

समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करै, पश्चात् सब चूर्णसे दूना लोहेका चूर्ण लेवै, इन सबको मिलानेसे गोक्षुरादि चूर्ण सिद्ध होताहै, यह चूर्ण मद्यसे और मद्य न मिले तो उष्ण पानीसे पियै तो बीसों प्रकारके प्रमेह, सूजन, बवासीर, पाण्डुरोग, हलीमक, सब प्रकारके उदररोग, शूल तथा प्लीहा नष्ट होतीहै । इस चूर्णको गोमूत्रमें पीसकर गोलियें बना लेवै इनको 'गोक्षुरादि गुटिका' कहतेहैं ये गोलीभी उपरोक्त रोगोंको नष्ट करनेमें मुख्य हैं, तथा बल और मांसको बढानेवाली हैं ॥ ७९-८५ ॥

अथ सिंहामृतघृतम् ।

कण्टकार्या गुडूच्याश्च संहरेच्च शतं शतम् ॥ संकुट्योदूखले विद्वांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ ८६ ॥ तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ त्रिकटुत्रिफलारास्नाविडङ्गान्यथ चित्रकम् ॥ ८७ ॥ काश्मर्याणाञ्च मूलानि पूतीकस्य त्वगेन च ॥ कलिङ्ग इति सर्वाणि सूक्ष्मपिष्टानि कारयेत् ॥ ८८ ॥ अक्षमात्रां पिबेत्प्राज्ञः शालिभिः पयसा हितैः ॥ प्रमेहं मधुमेहञ्च मूत्रकृच्छ्रं भगन्दरम् ॥ ॥ ८९ ॥ आलस्यं चान्त्रवृद्धिञ्च कुष्ठरोगं विशेषतः ॥ क्षयञ्चैव निहन्त्येतन्नाम्ना सिंहामृतं घृतम् ॥ ९० ॥

सौ सौ तोले कटेरी और गिलोय लेकर चारद्रोण (एकहजार चौवीस १०२४ तोलेका एकद्रोण) जलमें क्राथ करै, जब चौथा भाग जल शेष रहै तब उसमें १ सेर घी पकावै और पकातेसमय उस घीमें सोठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, रासना, वायविडग, चीता, खभारीकी जड, करजकी छाल और इन्द्रजौ, इनका बारीक चूर्ण करके डाले, यह घी एकतोलाभर सेवन करै, और उसके ऊपर दूध चावल खाय तो प्रमेह, मधुमेह, मूत्रकृच्छ्र, भगदर, आलस्य, अत्रवृद्धि, कुष्ठरोग और क्षय, इनका नाश होता है । इसको 'सिहामृत घृत' कहतेहैं ॥ ८६-९० ॥

अथ धान्वन्तरघृतम् ।

दशमूलं करञ्जौ द्वौ देवदारु हरीतकी ॥ वर्षाभूर्वरुणो दन्ती चित्रकं सपुनर्नवम् ॥ ॥ ९१ ॥ सुधानीपकदम्बाश्च बिल्वं भल्लातकानि च ॥ शटी पुष्करमूलं च पिप्पलीमूलमेव च ॥ ९२ ॥ पृथग्दशपलान्भागानेतांस्तोयार्मणे पचेत् ॥ यवकोलकुलत्थानां प्रस्थंप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ९३ ॥ तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं पचेद्भिषक् ॥ निचुलं त्रिफला भार्ङ्गी रोहिषं गजपिप्पली ॥ ९४ ॥ शृङ्गवेरविडंगानि चव्यं कम्पिल्लकं तथा ॥ गर्भेणानेन तत्सिद्धं पाययेत्तु यथाबलम् ॥ ९५ ॥ एतद्धान्वन्तरं नाम विख्यातं सर्पिरुत्तमम् ॥ कुष्ठप्रमेहगुल्मांश्च श्वयथुं वातशोणितम् ॥ ॥ ९६ ॥ प्लीहोदराणि चार्शांसि विद्रधिं पिडिकाश्च याः ॥ अपस्मारं तथोन्मादं सर्पिरेतन्नियच्छति ॥ ९७ ॥ पृथक्तोयार्मणे ह्यत्र पचेद्द्रव्याच्छतंशतम् ॥ शतत्रयाधिके तोये व्युत्सर्गः क्रमतो भवेत् ॥ ९८ ॥

दशमूल, दोनो प्रकारकी करञ्ज, देवदार, हरड, सफेद गदहपूर्णा, बरना, दन्ती, चीता, पुनर्नवा, लालगदह पूर्णा, दोनों प्रकारके करंज, बेल, भिलावे, कचूर, पोहकरमूल और पीपलामूल इन प्रत्येक पदार्थोंका चालीस ४० तोले चूर्ण, चौसठ तोले जौ, चौसठ तोले मिरच और चौसठ तोले कुलथी, इनका एक द्रोण (१०२४ तोले) जलमें क्राथ करै, जब चौथा भाग जल शेप रहै तब इसमें १ सेर (६४ तोले) घी पकावै, और उस घीमें पकातेसमय नीम, त्रिफला, भारगी, रोहिषतृण, गजपीपल, सोंठ, वायविडग, बच और कबीला, इनका चूर्ण डालै, इस भाँति सिद्धकिया घी 'धान्वन्तरघृत' कहाताहै । शरीर आदिके बलके अनुसार यह उत्तम घी सेवन करै तो कोढ, प्रमेह, गुल्म, सूजन, वातरक्त, प्लीहा, उदररोग, विद्रधि, प्रमेहसबधी पिडिका, अपस्मार और उन्माद इन सबका नाश होताहै ॥ ९१-९८ ॥

अथार्जुनाद्यघृततैले ।

अर्जुनपटोलनिम्बैः सवचादीप्यकरसास-

मञ्जिष्ठैः ॥ भल्लातकागुरुघनैः सगदानलचन्दनोशीरैः ॥ ९९ ॥ गोक्षुरकसोमवल्कैर्नवपटोलैर्हरिद्रया त्रिफलाः ॥ अश्मन्तकार्जुनाभ्यां दीप्यकयुक्तेन चैव लोध्रेण॥ ॥ १०० ॥ मञ्जिष्ठातिविषाभ्यां कल्ककषायैः पचेत्तैलम् ॥ कफवातोत्थे मेहे पित्तकृते साधयेत्सर्पिः ॥ १०१ ॥

कोह, परवल, नीम, वच, अजमाइन, रास्ना, मजीठ, भिलावे, अगर, मोथा, कूठ, चीता, चन्दन, खस, गोखुरू और सफेद कत्था इनका क्राथ कर, उसमें नवीन परवल, हलदी, हरड, बहेडा, आमला, पाखानभेद, कोह, अजमोद, लोध, मजीठ और अतीस, इनका कल्क डालकर पकाया हुआ घी 'अर्जुनाद्यघृत' कहाताहै, इस घीका उपयोग करनेसे पित्त सबंधी प्रमेह नष्ट होतेहै, इसही क्राथमे इसही कल्कसे पकाया हुआ तैल 'अर्जुनाद्यतैल' कहाताहै, इस तेलका उपयोग करनेसे कफसंबंधी तथा वायु संबधी प्रमेह दूर होतेहैं ॥ ९९-१०१ ॥

अथ सारलेहः ।

सारवर्गकषायं चतुर्थांशावशिष्टमवतार्य । परिस्राव्य पुनरपनीय साधयेत् । सिध्यति चामलकलोध्रप्रियंगुदन्तीकृष्णायसताम्रचूर्णान्यावपेत् । तदेतददग्धं लेहीभूतमवतार्यानुगुप्तं निदध्यात् । ततो यथायोगमुपयुञ्जीत। एष लेहः सर्वमेहानपहन्ति ॥ १०२ ॥

सारवर्ग की औषधियोंका क्राथ करै, चौथाई पानी शेष रहनेपर उतारलेवै, वस्त्रसे छानकर फिर चूल्हे पै चढादेवै, पकनेपर उसमें आमले, लोध, प्रियगू, दन्ती, लोहेकी भस्म और ताँबेकी भस्म, इनका चूर्ण डाले, जब वह अवलेहके सदृश गाढा होजाय तो उसको उतार लेवै जिससे जल न जाय, फिर स्वच्छ पात्रमें करदेवै और योग्य रीतिसे सेवन करै तो इससे सर्व प्रकारके प्रमेह नष्ट होतेहैं ॥ १०२ ॥

अथ गोक्षुरकाद्यवलेहः ।

गोकण्टकं सदलमूलफलं गृहीत्वा संकुट्टितं पलशतं क्वथितं तु तोये ॥ पादस्थितेन सलिलेन पलानि दत्त्वा पञ्चाशतं तु विपचेदथ शर्करायाः ॥ १०३ ॥ तस्मिन्घनत्वमुपगच्छति चूर्णितानि दद्यात्पलद्वयमितानि सुभाजनानि ॥ शुण्ठीकणामरिचनागदलत्वगेलाज्जातीयकोषककुभत्रपुसीफलानि ॥ १०४ ॥ वांसीपलाष्टकमिह प्रणिधाय नित्यं लेह्यं तु शुद्धममृतं पलसंमितन्तु ॥ हन्त्याशु मूत्रपरिदाहविबन्धशुक्रकृच्छ्राश्मरीरुधिरमेहमधुप्रमेहान् ॥ १०५ ॥

पत्र, जड तथा फलसहित चारसौ (४००) तोले गोखुरू लेवै, भलीभाँति कूटकर पानीमें क्राथकरै, चौथा भाग जलशेष रहनेपर उसमे दोसौ (२००) तोले बूरा (चीनी) डालकर पकावै, जब यह पानी गाढा होने लगै तब उसमें सोंठ, पीपल, मिरच, नागकेसर, तेजपात, इलायची, जायफल, ककोल, कोहके फल और खीरेके बीज, इन प्रत्येक पदार्थको आठ आठ तोले चूर्ण और बत्तीस तोले वंशलोचनका चूर्ण डालकर उतार लेवै तो 'गोक्षुरकाद्यवलेह' सिद्ध होताहै । यह शुद्ध अमृतकी सदृश अवलेह नित्य चार तोले चाटै तो मूत्रका दाह, मलबध, वीर्यके दोष, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, रक्तप्रमेह और मधुमेह इनको तत्काल नष्ट करैहै ॥ १०३-१०५ ॥

अथासनादियोगः ।

असनञ्च प्रियालञ्च शालं खदिरकं तथा ॥ शालवर्गं तथा ग्राह्यं भवेच्चैतद्विचक्षणैः ॥ ॥ १०६ ॥ मधुमेहत्वमापन्नं भिषग्भिः परिवर्जितम् ॥ योगेनानेन मतिमान्प्रमेहिणमुपाचरेत् ॥ १०७ ॥

पीतसाल, चिरोंजी, शाल, खैर और शालवर्गकी औषधि, इनका योगकर बुद्धिमान् वैद्य प्रमेह रोगीका उपचार करै तो जो प्रमेह मधुमेहताको प्राप्त होगयाहो तथा जिसकी चिकित्सा अन्य वैद्योंनें छोड दी हो, वह प्रमेहभी नष्ट होजाताहै ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

अथ शिलाजतुस्वर्णमाक्षिकरौप्यमाक्षिकप्रयोगाः ।

मासि शुक्रे शुचौ वापि शैलाः सूर्यांशुतापिताः ॥ जतुप्रकाशं स्वरसं शिलाभ्यः

प्रस्रवन्ति हि ॥ १०८ ॥ शिलाजत्विति विख्यातं महाव्याधिनिवारणम् ॥ त्रपुवादीनां तु लोहानां षण्णामन्यतमश्च यत् ॥ १०९ ॥ ज्ञेयं स्वगन्धतश्चापि षड्योनिप्रथितं क्षितौ ॥ लोहाद्द्रवति तद्यस्माच्छिलाजतु जतुप्रभम् ॥ ११० ॥ तस्य लोहस्य तद्वीर्यरसं वापि बिभर्ति तत् ॥ त्रपुसीसायसादीनि प्रधानान्युत्तरोत्तरम् ॥ १११ ॥ यथा तथा प्रयोगेऽपि श्रेष्ठे श्रेष्ठगुणाः स्मृताः ॥ तत्सर्वं तिक्तकटुकं कषायानुरसं सरम् ॥ ११२ ॥ कटुपाक्युष्णवीर्यश्च शोषणं छेदनं तथा ॥ तत्र यल्लघु कृष्णाभं स्निग्धं निःशर्करश्च यत् ॥ ११३ ॥ गोमूत्रगन्धि नीलं वा तत्प्रधानश्च वक्ष्यते ॥ तद्भावितं सारगणैर्हतदोषं दिनादितः ॥ ११४ ॥ पिबेत्सारोदकेनैव श्लक्ष्णपिष्टं यथाबलम् ॥ जांगलेन रसेनाद्यात्तस्मिञ्जीर्णे तु भोजनम् ॥ ११५ ॥ उपयुज्य तुलामेकाममृतस्यास्य जन्मतः ॥ विजित्य मधुमेहाख्यमातंकं रोगकारकम् ॥ ११६ ॥ वपुर्वर्णबलोपेतः शतं जीवत्यनामयः ॥ शतंशतं तुलायां तु सहस्रं दशतौलिकम् ॥ ११७ ॥ भल्लातकविधानेन परिहारविधिः स्मृतः ॥ मेहं कुष्ठमपस्मारसुन्मादं श्लीपदं परम् ॥ ११८ ॥ शोषं शोफार्शसी गुल्मं पाण्डुतां विषमज्वरम् ॥ व्यपोहत्यचिरात्कालगच्छिलाजतु निषेवितम् ॥ ११९ ॥ न सोऽस्ति रोगो यं वापि न निहन्याच्छिलाजतु ॥ शर्करां शिरसम्भूतां भिनत्ति च तथाश्मरीम् ॥ ॥ १२० ॥ भावनालोडने चास्य कर्त्तव्ये भेषजैर्हितैः ॥ एवं च माक्षिकं धातुं तापीजममृतोपमम् ॥ १२१ ॥ मधुरं काञ्चनाभासमम्लं वा रजतप्रभम् ॥ व्यपोहति जराकुष्ठमेहपाण्ड्वामयक्षयान् ॥ तद्भावितान्कुलत्थांश्च कपोतांश्च विवर्जयेत् ॥ १२२ ॥

जेठ अथवा आषाढके महीनेमें सूर्यकी किरणोसे तपकर पर्वत अपनी शिलाओंमेसे लाखकी सदृश रसको छोडताहै वह रस शिलाजीत कहाताहै और महारोगोंको नष्ट करताहै । सीसेको आदि लेकर लोहे पर्यंत छहों धातुओंका शिलाजीत होताहै इस भाँति शिलाजीत छै प्रकारका है । अपनी अपनी गंधसे परीक्षा करनी चाहिये। जो शिलाजीत लोहसे लाखकी सदृश उत्पन्न होताहै उसमें लोहेका रसवीर्य होताहै । राग, सीसा और लोहेमे जो लाखकी सदृश शिलाजीत उत्पन्न होतेहैं ये उत्तरोत्तर अधिक गुणवाले हैं। सब प्रकारके शिलाजीतोंमें लोहेका शिलाजीत श्रेष्ठ गुणवाला है । सब प्रकारके शीलाजीत कडवे, चरपरे, कसैले रसके संबधी, दस्तावर, पाकमे चरपरे, वीर्यमें गरम, शोषण और मलच्छेदक हैं । जो शिलाजीत हलका, काली तथा नीली कातियुक्त, स्निग्ध, शर्करारहित और गोमूत्रकी सदृश गंधवाला होय वह श्रेष्ठ कहाताहै । सारवर्गकी औषधियोंसे भावना देकर बारीक पीस शरीर आदिके बलानुसार सारगणके क्वाथके साथ पिये और इसके पचनेपर जंगली जीवोंके मांसरसके साथ भोजन करै । जन्मसे अमृतकी सदृश यह शिलाजीत चारसौ तोले खाय तो इससे मनुष्य महापीडायुक्त मधुमेहनामक हाथीको जीतकर सौ वर्षतक आरोग्यतासे जीताहै और उसका, शरीर वर्ण तथा बल अति उत्तम होताहै । जब एक तुला (४०० तोले) खानेसे सौ वर्षतककी आयु होतीहै तो दशतुला खानेसे हजार वर्षकी आयु होतीहै । जितना परहेज भिलावे खानेमें होताहै, उतनाही परहेज इसमे करै । शिलाजीतका सेवन करनेसे प्रमेह, कोढ, अपस्मार, उन्माद, श्लीपद, क्षय, सूजन, बवासीर, गुल्म, पाण्डुरोग और विषमज्वर, ये तत्काल नष्ट होजातेहैं । जिसको शिलाजीत नष्ट नही करसके ऐसा कोई रोग भी नहीं है । शिलाजीत अधिक कालसे हुई पथरी शर्कराको भी नष्ट करदेताहै । हितकारी औषधियोंमें शिलाजीतकी भावना देवै तथा ऐसीही औषधियोंमें मिलावै । इसीप्रकार सोनामाखी अथवा रूपामाखी कि जो अमृतकी तुल्य हैं उनको सारगणकी औषधियोसे भावन

देकर सारगणके क्वाथके साथ पिये तो इससे ज्वर, कोढ, प्रमेह, पांडुरोग तथा क्षय, इनका नाश होताहै। जो सोनामाखी मधुर होय तथा सुवर्णकी सदृश वर्णवाली होय तथा जो रूपामाखी खारी और चाँदीके सदृश वर्णवाली होय वह उत्तम जाननी। सोनामाखी तथा रूपामाखी सेवन करनेवाले कुलथी और कबूतरका मांस त्याग देवैं॥ १०८-१२२॥

अथ प्रमेहपिडिकाचिकित्सा।

प्रमेहपिडिकानां प्राकार्यं रक्तावसेचनम्॥ पाटनञ्च विपक्कानां तासां पाने प्रशस्यते॥ १२३॥ क्वाथो वनस्पतेर्बस्तमूत्रं तीक्ष्णञ्च शोधनम्॥ एलादिकेन कल्केन तैलं च व्रणरोपणम्॥ १२४॥ आरग्वधादिना क्वाथं कुर्यादुद्वर्तनानि च॥ शालसारादिना सेकान्भोज्यादींश्चणकादिना॥ १२५॥

प्रमेहसंबंधी पिडिका होगई होयँ तो प्रथम उनमेंसे रुधिर निकलवावै और पकगई होयँ तो शस्त्रसे चिरवाना उत्तम है। वनस्पतियोके क्वाथसे, बकरीके मूत्रसे और तीक्ष्ण पदार्थोंसे पिडिकाओंकी जगह शुद्ध करै। शुद्ध करनेके पश्चात् इलायची आदि पदार्थोंके कल्कसे पकायाहुआ तेल लगावै कि जिससे व्रण भर आताहै। पिडिकावालेको अमलतासआदिका क्वाथ पिलावे और योग्य पदार्थोंसे उबटन और शालसारादिके योग्य क्वाथसे सेचन करै, पिडिकावालेको चने आदि पदार्थोंका भोजन करावै॥ १२३-१२५॥

अथ प्रमेहिण आरोग्यपरीक्षा।

प्रमेहिणो यदा मूत्रमनाविलमपिच्छिलम्॥ विशदं तिक्तकटुकं तदारोग्यं प्रचक्षते॥ १२६॥

इति प्रमेहपिडिकानिदानचिकित्साधिकारः।

जब प्रमेहरोगीका मूत्र स्वच्छ, पिच्छिलता रहित, विशद और तिक्त तथा कटुरसयुक्त होय, तब आरोग्य हुआ जानना॥ १२६॥

इति प्रमेहाधिकारः समाप्तः।

अथ मेदोऽधिकारः।

तत्र मेदोवृद्धिनिदानम्।

अव्यायामदिवास्वप्नश्लेष्मलाहारसेविनः॥ मधुराऽन्नरसप्रायःस्नेहान्मेदो विवर्द्धते॥ १॥

व्यायाम (कसरत) नहीं करनेसे, दिनमें सोनेके अभ्याससे, कफकारी आहारोंके सेवन करनेसे, मधुर अन्नोंसे, मधुर रसोंसे और घी आदि स्नेहोंके सेवनसे मेदकी वृद्धि होतीहै॥ १॥

अथ मेदोवृद्धिसम्प्राप्तिः।

मेदसावृतमार्गत्वात्पुष्यन्त्यन्ये न धातवः॥ मेदस्तु चीयते तस्मादसक्तः सर्वकर्मसु॥ २॥

मेदसे मार्ग रुकनेके कारण अन्य धातुओंका पोषण नहीं होता इससे मेदा बढतीजातीहै कि जिससे मनुष्य सर्व कामोंमे अशक्त होजाताहै॥ २॥

अथ मेदोवृद्धिलक्षणम्।

क्षुद्रश्वासतृषामोहस्वप्नक्रथनसादनैः॥ युक्तः क्षुत्स्वेददौर्गन्ध्यैरल्पप्राणोऽल्पमैथुनः॥ ३॥ मेदस्तु सर्वभूतानामुदरे हि व्यवस्थितम्॥ अत एवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो भवेत्॥ ४॥ मेदसावृतमार्गत्वाद्वायुः कोष्ठे विशेषतः॥ चरन्सन्धुक्षयत्यग्निमाहारं शोषयत्यपि॥ ॥ ५॥ तस्मात्स शीघ्रं जरयत्याहारञ्चापि कांक्षति॥ विकारांश्चाश्नुते घोरान्कांश्चित्कालविपर्ययात्॥ ६॥ एतावुपद्रवकरौ विशेषादग्निमारुतौ॥ एतौ हि दहतः स्थूलं वनं दावानलौ यथा॥ ७॥ मेदस्यतीव संवृद्धे सहसैवानिलादयः॥ विकारान्दारुणान्कृत्वा नाशयन्त्याशु जीवितम्॥ ८॥ मेदोमांसातिवृद्धत्वाच्चलस्फिगुदरस्तनः॥ मेदसोऽयथोपचयान्नरोऽतिस्थूल उच्यते॥ ९॥ स्थूले स्युर्दुस्तराः कुष्ठा विसर्पाः सभ-

गन्दराः ॥ ज्वरातीसारमेहार्शःश्लीपदापचिकामलाः ॥ १० ॥ मेदसः स्वेददौर्गन्ध्याज्जायन्ते जन्तवोऽणवः ॥ ११ ॥

जिसके मेदकी वृद्धि हुई होय वह मनुष्य क्षुद्रश्वास, तृषा, मोह, निद्रा, पीडा, ग्लानि,क्षुधा, पसीना तथा दुर्गन्धतासे युक्त होताहै और अल्पशक्तिवाला तथा अल्पमैथुनवाला होजाताहै । मेद सब प्राणियोंके पेटमें रहतीहै इस लिये मेदकी वृद्धिवाले मनुष्यका अधिक करकै पेट बढजाताहै । वायुका मार्ग मेदसे रुकनेके कारण वह वायु विशेष करकै कोठेमेंही फिरती रहनेसे अग्निको प्रदीप्त करैहै और खाये हुए अन्नको सुखाभी डाले है कि जिससे मेदवृद्धिवाले मनुष्यको आहार तत्काल पचजाताहै और फिर भोजन करनेकी इच्छा होतीहै । कुछ कालके अनन्तर इस मनुष्यके भयकर विकार भी उत्पन्न होतेहैं, अग्नि और वायु ये विशेष करकै उपद्रवोंको उत्पन्न करैं हैं और जिस प्रकार दावानल (अग्नि) वनको जला देतीहै उसी प्रकार ये मेद उस मोटे मनुष्यको जला देतीहै । मेद अत्यंत बढनेपर वायुआदि धातु सहसा दारुण विकारोंको उत्पन्न करके तत्काल जीवनका नाश करदेतीहैं, मेद और मासकी अत्यत वृद्धि होनेपर मनुष्यके कूले पेट और स्तन हला करतेहैं । जिसका मेद अयोग्य प्रकारसे बढता होय, वह मनुष्य बहुत मोटा कहाताहै । मोटे मनुष्यको कोढ, विसर्प, भगदर, ज्वर, अतीसार, प्रमेह, बवासीर, श्लीपद, अपची और कामला, ये रोग दुस्तर होजातेहैं । मेदसे पसीनेमें दुर्गन्धता होनेपर सूक्ष्म सूक्ष्म जीवभी होजातेहैं ॥ ३–११ ॥

अथ मेदोवृद्धिचिकित्सा ।

पुराणाः शालयो मुद्गाः कुलत्थोद्दालकोद्रवाः ॥ लेखना वस्तयश्चैव सेव्या मेदस्विना सदा ॥ धूमपानं तथा क्रोधो रक्तमोक्षणमेव च ॥ १२ ॥ जीर्णे च भोजनं कार्यं यवगोधूमयोः सदा ॥ उपवासोऽसुखा शय्या सत्त्वौदार्यं तमोजयः ॥ १३ ॥ सन्तर्पणकृतैर्दोषैः स्थौल्याद्युत्तया विमुच्यते ॥ श्रमचिन्ताव्यवायाध्वक्षौद्रजागरणाप्रियः ॥ १४ ॥ हन्त्यवश्यमतिस्थौल्यं यवश्यामाकभोजनः ॥ सचव्यजीरकव्योषहिंगुसौवर्चलानलाः ॥ १५ ॥ मस्तुना सक्तवः पीता मेदोघ्ना वह्निदीपनाः ॥ फलत्रयं त्रिकटुकं सतैलं लवणान्वितम् ॥ १६ ॥ षण्मासादुपयोगेन कफमेदोऽनिलापहम् ॥ विडङ्गं नागरं क्षारः काललोहरजो मधु ॥ १७ ॥ यवामलकचूर्णैस्तु योगोऽयं स्थौल्यनाशनः । मूलं वा त्रिफलाचूर्णं मधुयुक्तं मधूदकम् ॥ १८ ॥ बिल्वादिपञ्चमूलस्य प्रयोगः क्षौद्रसंयुतः ॥ अतिस्थौल्यहरः प्रोक्तो मण्डलं सेवितो ध्रुवम् ॥ १९ ॥ कर्कशदलवह्निसलिलं शतपुष्पाहिंगुसंयुक्तम् ॥ पुटके निहन्ति नियतं सर्वभवां मेदसां वृद्धिम् ॥ २० ॥ क्षारं वातारिपत्रस्य हिंगुयुक्तं पिबेन्नरः॥ मेदोवृद्धिविनाशाय भक्तं मण्डसमन्वितम् ॥ २१ ॥ गवेधुकानां पिष्टानां यवानाञ्चाथ सक्तवः॥ सक्षौद्रत्रिफलाक्वाथः पीता मेदोहरा मताः ॥ २२ ॥ गुडूची त्रिफलाक्वाथस्तथा लोहरजोऽन्वितः ॥ अश्मजं महिषाक्षं वा तेनैव विधिना पचेत् ॥ २३ ॥ अतिमुक्ताद्बीजमध्यं मधुलीढं हन्त्युदरवृद्धिम्॥ मधुना चित्रकमूलं तथैव हितभोजनो भुंक्ते ॥ यद्वोरुबूकमूलं मधुदिग्धं स्थाप्यते निशां सकलाम् ॥ तस्य सलिलस्य पानाज्जठरे वृद्धिं शमं याति॥२४॥ प्रातर्मधुयुतं वारि सेवितं स्थौल्यनाशनम् ॥ उष्णमन्नस्य मण्डं वा पिबन्कृशतनुर्भवेत् ॥२५॥बदरीपत्रकल्केन पेया काञ्जिकसाधिता ॥ स्थौल्यनुत्स्यादग्निमन्थरसक्वाथः शिलाजतु ॥ २६ ॥ शैलेयकुष्ठागुरुदेवदारुकौन्तीसमुस्तान्यथ पञ्चपत्रैः ॥

श्रीवासपृक्काखरपुष्पदेवपुष्पं तथा सर्व-मिदं प्रपिष्य ॥ २७ ॥ धत्तूरपत्रस्य रसेन गाढमुद्वर्तनं स्थौल्यहरं प्रदिष्टम् ॥ २८ ॥

मेदकी वृद्धिवाला मनुष्य सदा पुराने चावल, मूग, कुलथी, वनकुलथी और कोदों तथा लेखनवस्ति, इनका सेवन करै। यह मनुष्य धूमपान, क्रोध तथा रक्तमोक्षण (फस्त खुलवाना) इनका सेवन करै। उपवास, सुख न हो ऐसी शय्यामे शयन, मनकी उदारता और निद्रा आदि तमोगुणके जीतनेसे स्थूलता नष्ट होजातीहै। स्थूलता कि जो अत्यन्त तृप्त करनेवाले दोषोंसे हुई है उससे मुक्त होनेके लिये यह युक्ति है कि परिश्रम, मैथुन, मार्ग, मदिरा और रात्रिजागरण, इनसे प्रेम रक्खै, चिंतामें तत्पर रहै और जौ तथा समेके भोजन करै ऐसा मनुष्य अपनी अत्यन्त स्थूलताको अवश्य नष्ट करदेताहै। चव्य, जीरा, त्रिकुटा, हींग, कालानोंन और चीता, इनका चूर्ण डालकर दहीके पानीके साथ सत्तू पिये तो इससे मेद नष्ट होजातीहै और अग्निदीपन होतीहै। अथवा हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपल, तेल और लवण, इनको छै महीनेतक भली भाँति उपयोग करे तो इससे कफ, मेद तथा वायु नष्ट होतीहै। वायविडग, सोंठ, जवाखार, कान्तिसार, जौ तथा आमला, इनके चूर्णमें सहत मिलाकर खाय तो इससे अत्यन्त स्थूलता नष्ट होतीहै। मूली अथवा त्रिफलेका चूर्ण सहतमें मिलाकर सहत मिले पानीके साथ सेवन करे, अथवा बृहत्पञ्चमूलका चूर्ण सहतमें मिलाकर खाय, इसप्रकार जो चालीस दिनतक करे तो इससे अवश्य अत्यन्त स्थूलता नष्ट होतीहै। परवल और चीता, इनका क्वाथ कर, इसमें सोफ तथा हींगका चूर्ण डालकर पिये तो इससे पेटमें सर्व प्रकारसे हुई मेदकी वृद्धि अवश्य नष्ट होतीहै अथवा एरंडका क्षार हींग डालकर पिये और ऊपरसे मांडसहित भात खाय तो इससे मेदकी वृद्धि नष्ट होजातीहै। गवेधुक, (मुनियोके खानेका अन्नविशेष) अथवा जौके सत्तू और त्रिफलेके क्वाथमे सहत डालकर पिये तो इससे मेदकी वृद्धि दूर होतीहै। गिलोय, हरड, बहेडा और आमला, इनके क्वाथमे लोहभस्म डालकर पिये तो मेदकी वृद्धि नष्ट होतीहै। शिलाजीत अथवा गूगलको उपरोक्त गिलोय आदिके क्वाथमें पकाकर खाय तो मेदकी वृद्धि दूर होतीहै। अतिमुक्त (कुन्दपुष्पभेद या माधवीलता) के बीजके मध्यभागको सहतमें मिलाय चाटनेसे मेदोवृद्धि दूर होतीहै, चीतेकी जडका चूर्ण सहतमें मिलाकर चाटे, अथवा एरंडकी जडको रात्रिभर सहतमे भीजा रहनेदेवे उसके रसको प्रातःकाल पिये और हितकारी भोजनका नियम रक्खै तो उदरकी वृद्धि नष्ट होतीहै। प्रातःकाल नित्य सहत मिलाकर जल पिये तो मोटापन दूर होताहै। पकाये हुए भातका गरम मांड पिये तो शरीर कृश होताहै। बेरके पत्तोका कल्क डालकर, कांजीसे पकाई पेया सेवन करै तो इससे मेदकी वृद्धि दूर होतीहै। अथवा अरनीके क्वाथमे शिलाजीत डालकर पिवै तो इससे स्थूलता नष्ट होतीहै। शिलाजीत, कूठ, अगर, देवदार, रेणुकानामक सुगंधित द्रव्य, मोथा, श्रीवास, स्पृक्का, पिण्डशाक, ब्राह्मी और लोग इन सबको धत्तूरेके पत्तोंके रससे पीसकर, शरीरको भलीभाँति मलै तो स्थूलता नष्ट होतीहै ॥ १२–२८ ॥

अथामृतादिगुग्गुलुः।

अमृतात्रुटिवेल्लवत्सकं कलिपथ्यामलकानि गुग्गुलुः ॥ क्रमवृद्धमिदं मधुप्लुतं पिडिकास्थौल्यभगन्दराञ्जयेत् ॥ २९ ॥

गिलोय एक भाग, इलायची दो भाग, वायविडंग तीन भाग, इन्द्रजौ चार भाग, बहेडा पांच भाग, हरड छै भाग, आमला सात भाग और गूगल आठ भाग, इनको सहतमे मिलाकर खाय तो इससे पिडिका स्थूलता और भगदर इनका नाश होताहै ॥ २९ ॥

अथ दशांगगुग्गुलुः।

व्योषाग्नित्रिफलामुस्ताविडंगैर्गुग्गुलुं समम् ॥ खादन्सर्वाञ्जयेद्व्याधीन्मेदःश्लेष्मामवातजान् ॥ ३० ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, मोथा और वायविडग इनका चूर्णकर सबकी बराबर गूगल मिलाकर खाय तो मेद, कफ, आम और वायु इनसे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण रोग नष्ट होतेहै ॥ ३० ॥

अथ त्र्यूषणादिगुग्गुलुः।

त्र्यूषणाग्निवनवेल्लवचाभिर्भक्षयन्समघृतं महिषाक्षम् ॥ आशु हन्ति कफमारुतमेदोदोषजान्बलवतोऽपि विकारान् ॥ ३१ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, चीता, मोथा और वच इनका चूर्ण गूगलमें डालकर गूगलकी बराबर ही मिलावे तो त्र्यूषणादि गूगल सिद्ध होताहै, यह गूगल कफसे, वायुसे, तथा, मेदके दोषोंसे हुए बलवान् विकारोंको तत्काल नष्ट करेहै ॥ ३१ ॥

अथ लोहरसायनम् ।

गुग्गुलुस्तालमूली च त्रिफला खदिरं वृषम् ॥ त्रिवृताऽलम्बुषी शुण्ठी निर्गुण्डी चित्रकस्तथा ॥ ३२ ॥ एषां दशपलान्भागांस्तोये पञ्चाढके पचेत् ॥ पादशेषं ततः कृत्वा कषायमवतारयेत् ॥ ॥ ३३ ॥ पलद्वादशकं देयं रुक्मलोहं सुचूर्णितम् ॥ ३४ ॥ पुराणसर्पिषः प्रस्थं शर्कराष्टपलान्वितम् ॥ पचेत्ताम्रमये पात्रे सुशीते चावतारिते ॥ ३५ ॥ प्रस्थार्द्धं माक्षिकं देयं शिलाजतु पलद्वयम् ॥ एलात्वचः पलार्द्धञ्च विडंगानि पलत्रयम् ॥ ३६ ॥ मरिचाञ्जनकृष्णे द्वे द्विपलञ्च फलान्वितम् ॥ पलद्वयन्तु कासीसं सूक्ष्मचूर्णीकृतं बुधैः ॥ ३७ ॥ चूर्णं दत्त्वा सुमथितं स्निग्धे भांडे निधापयेत् ॥ ततः संशुद्धदेहस्तु भक्षयेदक्षमात्रकम् ॥ ३८ ॥ अनुपानं पिबेत्क्षीरं जांगलानां रसं तथा ॥ वातश्लेष्महरं श्रेष्ठं कुष्ठमेहोदरापहम् ॥ ३९ ॥ कामलां पाण्डुरोगञ्च श्वयथुं सभगन्दरम् ॥ मूर्च्छामोहविषोन्मादगराणि विषमाणि च ॥ ४० ॥ स्थूलानां कर्षणं श्रेष्ठं मेदुरे परमौषधम् ॥ कर्षयेच्चातिमात्रेण कुक्षिं पातालसन्निभम् ॥ ४१ ॥ बल्यं रसायनं मेध्यं वाजीकरणमुत्तमम् ॥ श्रीकरं पुत्रजननं वलीपलितनाशनम् ॥ ४२ ॥ नाश्नीयात्कदलीकन्दं काञ्जिकं करमर्दकम् ॥ करीरं कारवेल्लञ्च ककारादि विवर्जयेत् ॥ ४३ ॥

गूगल, मुसली, हरड, बहेडा, आमला, खैर, अडूसेकी छाल, निसोत, गोरखमुडी, सोंठ, निर्गुण्डी और चीता ये प्रत्येक पदार्थ चालीस चालीस तोले लेकर पाँच आढक (२० सेर) जलमें क्वाथकरे, चौथा भाग जल शेष रहै तब क्वाथको उतार उसमें भली भाँति चूर्णित किया हुआ अडतालीस (४८) तोले कानलोह, चौसठ तोले पुराना घी और बत्तीस तोले शर्करा (बूरा, चीनी) डालकर ताँबेके पात्रमें फिर उसका पाककरे, शीतल होजानेपर उतारलेवे, फिर उसमें बत्तीस तोले सहत, आठ तोले शिलाजीत, दो तोले इलायची, दो तोले दालचीनी, बारह तोले वायविडंग, आठ तोले मिर्च, आठ तोले रसोत, चार तोले पीपल और आठ तोले कसीस, इनका चूर्ण डाल मथकर स्निग्ध पात्रमें उसको रक्खै तो लोहरसायन सिद्ध होतीहै । वमन विरेचनादिसे शरीरको शुद्ध करके उसमेंसे एक तोलेभर खाय और उसके ऊपर दूध तथा जांगल देशके जीवोंके मांसका रस पिये । यह रसायन श्रेष्ठ है और वायु, कफ, कोढ, प्रमेह, उदररोग, कामला, पाण्डुरोग, सूजन, भगंदर, मूर्च्छा, मोह, विष, उन्माद और विषम विषको भी नष्ट करै है । यह रसायन स्थूलताको कर्षण करनेका उत्तम उपाय है, मेदरोगीकी परम औषधि है, पातालकी सदृश पेटको अत्यंत पतला करनेवाला है, तथा बलदायक, बुद्धिको स्वच्छ करनेवाला, उत्तम वाजीकरण, लक्ष्मीदायक, पुत्रदाता और वलीपलितनाशक है । इस रसायनको सेवन करनेवालेने केला, कन्द, काँजी, करोंदे, करील, करेला, यह छै ककार त्याग करने चाहिये ॥ ३२–४३ ॥

अथ लौहारिष्टः ।

शालसारादिनिर्यूहं चतुर्थांशावशेषितम् ॥ परिस्रुत ततः शीतं मधुना मधुरीकृतम् ॥ ॥ ४४ ॥ फाणितीभावमापन्नं गुडे शोधितमेव च ॥ सूक्ष्मपिष्टानि चूर्णानि पिप्पल्यादेर्गणस्य च ॥ ४५ ॥ ऐकध्यमावपेत्कुम्भे संस्कृते घृतभाविते ॥ पिप्पलीचूर्णमधुभिः प्रलिप्ते चान्तरे शुचौ ॥ ४६ ॥ श्लक्ष्णानि तीक्ष्णलोहस्य तनुपत्राणि बुद्धिमान् ॥

खदिराङ्गारतप्तानि बहुशः प्रक्षिपेद् बुधः॥ ॥ ४७ ॥ सुपिधानं ततः कृत्वा यवखल्वे निधापयेत् ॥ मासांस्त्रींश्चतुरो वापि यावद्वा लोहसंक्षयात् ॥ ४८ ॥ ततो जातरसं जन्तुः प्रातःप्रातर्यथाबलम् ॥ उपयुञ्ज्याद्यथायोग्यमाहारं चास्य कल्पयेत् ॥ ४९॥ एष स्थूलं समाकर्षेन्नष्टस्याग्नेः प्रशोधनः ॥ शोथघ्नः कुष्ठमेहघ्नो गुल्मपाण्ड्वामयापहः ॥ ॥ ५० ॥ प्लीहोदरहरः शीघ्रं विषमज्वरनाशनः ॥ अभिष्यन्दापहरणे लोहारिष्टो महागुणः ॥ ५१ ॥

शालसार आदि औषधियोंका क्वाथ कर चौथा भाग जल शेष रहनेपर वस्त्रसे छान लेवै फिर शीतल होनेपर सहत डालकै मधुर करै, पश्चात् गुडकी चासनीकर पिप्पल्यादि गणका चूर्ण और वह क्वाथ मिलावै, फिर घी चुपडे पवित्र पात्रमें पीपलका चूर्ण और सहत लगाकर उसको रक्खै, पश्चात् बुद्धिमान् वैद्य तीक्ष्ण लोहके पतले पत्रोंको खैरके अग्निमें बारबार तपातपाकर उसमें डालै, फिर पात्रका मुख भलीभाँति बंदकर उस घडेको तीन चार महीनेतक अथवा जबतक लोहा गले तबतक जौके ढेरमें रक्खै, यह सब लोहा उसमें रसरूप होजाय तो लोहारिष्ट सिद्ध होताहै । शरीरादिकके बलानुसार प्रातःकाल यह लोहारिष्ट पिये और उसके ऊपर योग्य आहार करै तो लोहारिष्ट स्थूल शरीरको पतला करदेताहै, नष्ट हुई जठराग्निको प्रदीप्त करताहै और सूजन, कोढ, प्रमेह, गुल्म, पाण्डुरोग, प्लीहा, उदररोग और अभिष्यन्द इनको नष्ट करैहै, विषमज्वरको तत्काल नष्ट करैहै और भी अधिक गुण करैहै ॥ ४४–५१ ॥

अथ व्योषाद्यसक्तुप्रयोगः ।

व्योषचित्रकशिग्रूणि त्रिफलां कटुरोहिणीम् ॥ बृहत्यौ द्वे हरिद्रे च पाठामतिविषां स्थिराम् ॥ ५२ ॥ हिंगुकेमुकमूलानि यवानीं धान्यचित्रकम् ॥ सौवर्चलमजाजीश्च हपुषाश्चेति चूर्णयेत् ॥ ५३ ॥ चूर्णतैलघृतक्षौद्रभागाः स्युर्मानतः समाः॥ सक्तूनां षोडशगुणे भागे सन्तर्पणं पिबेत् ॥ ५४ ॥ प्रयोगात्त्वस्य शाम्यन्ति रोगाः सन्तर्पणोत्थिताः ॥ प्रमेहा मूढवाताश्च कुष्ठान्यर्शांसि कामलाः ॥ ॥ ५५ ॥ प्लीहा पाण्ड्वामयः शोथो मूत्रकृच्छ्रमरोचकः ॥ हृद्रोगो राजयक्ष्मा च कासश्वासौ गलग्रहः ॥ ५६ ॥ कृमयो ग्रहणीदोषः श्वैत्यं स्थौल्यमतीव च ॥ नराणां दीप्यते वह्निः स्मृतिर्बुद्धिश्च वर्द्धते ॥ ५७ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, दूनोचीता, सहँजना, हरड, बहेडा, आमला, कुटकी, दोनों प्रकारकी कटेरी, हलदी, दारुहलदी, पाढ, अतीस, शालपर्णी, हींग, सुपारीकी जड, अजवायन, धनिया, कालानोंन, जीरा और हाउबेर इनका चूर्ण करै, पश्चात् इस चूर्णको घीके और सहतके समान ले सोलह गुने सत्तू डालकर सत्तू पियै । इस प्रयोगकी तृप्तिसे हुए रोग, प्रमेह, मूढवात, कोढ, बवासीर, कामला,प्लीहा, पाण्डुरोग, सूजन, मूत्रकृच्छ्र, अरुचि, हृदयरोग, क्षयरोग, खासी, श्वाँस, गलग्रह, कृमि, ग्रहणी, श्वेतकोढ और अत्यत स्थूलता, इनको नष्ट करेहै, अग्नि दीपन होतीहै और बुद्धि तथा स्मरणशक्ति बढती-है ॥ ५२–५७ ॥

अथ त्रिफलाद्यतैलम् ।

त्रिफलातिविषा मूर्वा त्रिवृच्चित्रकवासकैः॥ निम्बारग्वधषड्ग्रन्थासप्तपर्णनिशाह्वयैः ॥ ॥ ५८ ॥ गुडूचीन्द्रासुरीकृष्णाकुष्ठसर्षपनागरैः ॥ तैलमेभिः समैः पक्वं सुरसादिरसप्लुतम् ॥ ५९ ॥ पानाभ्यञ्जनगण्डूषनस्यवस्तिषु योजितम् ॥ स्थूलतालस्यपाण्ड्वादीञ्जयेत्कफकृतान्गदान् ॥६०॥

हरड, बहेडा, आमला, मूर्वा, निसोत, चीता, अडूसा, नीम, अमलतास, वच, सतवन, हलदी, गिलोय, इन्द्रवारुणी, पीपल, कूठ, सरसों और सोंठ, इनको समान भाग लेकर उनके कल्कसे पकाया हुआ तेल सुरसादिगणके क्वाथके साथ पीनेमें, अभ्यङ्गमें, गण्डूष धारण (कुल्ले करने) में, नस्यमें और पिचकारी देनेमें, उप-

योग करै तो इससे स्थूलता, आलस्य तथा पाण्डुता आदि कफसंबंधी सब रोग नष्ट होतेहैं ॥ ५८-६० ॥

अथ महासुगंधितैलम् ।

चन्दनं कुंकुमोशीरप्रियंगुत्रुटिरोचनाः ॥ तुरुष्कागुरुकस्तूरी कर्पूरो जातिपत्रिका ॥ ॥ ६१ ॥ जातीकंकोलपूगानां लवंगस्य फलानि च ॥ नलिका नलदं कुष्ठं हरेणु-तगरं प्लवम् ॥ ६२ ॥ नवव्याघ्रनखं स्पृक्का बोलो दमनकं तथा ॥ स्थौणेयकं चोरकश्च शैलेयं शैलवालुकम् ॥ ६३ ॥ सरलं सप्तपर्णश्च लाक्षा तामलकी तथा ॥ लामज्जकं पद्मकश्च धातक्याः कुसुमानि च ॥ ६४ ॥ प्रपौण्डरीकं कर्चूरं समांशैः शाणमात्रकैः ॥ महासुगन्धमित्येतत्तैल-प्रस्थेन साधयेत् ॥ ६५ ॥ प्रस्वेदमल-दौर्गन्ध्यकण्डूकुष्ठहरं परम् ॥ अनेनाभ्य-क्तगात्रस्तु वृद्धः सप्ततिकोऽपि वा ॥ ६६॥ युवा भवति शुक्राढ्यः स्त्रीणामत्यन्तव-ल्लभः ॥ सुभगो दर्शनीयश्च गच्छेच्च प्रमदाशतम् ॥ ६७ ॥ वन्ध्यापि लभते गर्भं षण्ढोऽपि पुरुषायते॥अपुत्रः पुत्रमा-प्नोति जीवेच्च शरदां शतम् ॥ ६८ ॥

चदन, केसर, खस, प्रियंगु, इलायची, गोरोचन, लोवान, अगर, कस्तूरी, कपूर, जावित्री, जायफल, ककोल, सुपारी, लौंग, नली, जटामॉसी, कूठ, रेणुका, तगर, नागरमोथा, नवीन व्याघ्रका नख, स्पृक्का, वाल, दौना, स्थौणेयक, चोरक, शैलेय, एलुआ, सरल, सतवन, लाख, आमला, लामज्जकतृण, पद्माख, धायके फूल,पुण्डरीक और कचूर, ये प्रत्येक पदार्थ तीन तीन मासे लेकर इससे चौसठ तोले तैल पकावै, तो महासुगन्धि तैल सिद्ध होताहै । इस तेलसे पसीना, मलसे हुई दुर्गन्धता, खुजली तथा कोढ, भली भाँति नष्ट होताहै । इस तैलका अभ्यग (मालिस) करै तो सत्तर वर्षका वृद्ध भी युवा, अधिक वीर्यवान्, स्त्रियोंको अत्यत प्रिय, भाग्यवान, सुन्दर और सौ स्त्रियोंसे सग करने को समर्थ होताहै । वन्ध्या स्त्रियोंके गर्भ रहताहै, नपुसक पुरुषताको प्राप्त होताहै, विना पुत्रवाली स्त्रीके पुत्रकी प्राप्ति होतीहै और आयु सौ वर्षकी होती-है ॥ ६१-६८ ॥

वासादलरसो लेपाच्छङ्खचूर्णेन संयुतः ॥ बिल्वपत्ररसो वापि गात्रदौर्गन्ध्यनाशनः ॥ ६९ ॥ अलम्बुपाभवं चूर्णं पीतं काञ्जिकसंयुतम् ॥ दौर्गन्ध्यं नाशयत्याशु दृष्टं मेदोभवं नृणाम् ॥ ७० ॥ बिल्व-शिवासमभागा लेपाद्भुजमूलगन्धमपहर-ति ॥ परिणतपिडकामपि पूतिकरञ्जो-त्थबीजं वा ॥ ७१ ॥ चिञ्चापत्रस्वरसं म्रक्षितकक्षादियोजितं जयति ॥ ह्रस्व-हरिद्रोद्वर्तनमचिराच्चिरदेहदौर्गन्ध्यम् ॥ ॥ ७२ ॥ शिरीषलामज्जकहेमलोध्रैस्त्व-ग्दोषसंस्वेदहरः प्रघर्षः ॥ पत्राम्बुलोहा-भयचन्दनानि शरीरदौर्गन्ध्यहरः प्रदेहः ॥ ७३ ॥ हिलमोचिरसो युक्तश्चूर्णैरुद-धिफेनजैः ॥ प्रलेपेन हरत्याशु देहदौर्ग-न्ध्यमुत्कटम् ॥ ७४ ॥ हरीतकी तु सम्पि-ष्य गात्रमुद्वर्तयेन्नरः ॥ पश्चात्स्नानं प्रकु-र्वीत देहस्वेदप्रशान्तये ॥ ७५ ॥ हरीतकी लोध्रमरिष्टपत्रं चूतत्वचो दाडिमवल्कलं-च ॥ एषोऽङ्गरागः कथितोऽङ्गनानां जम्ब्वाः कषायस्तु नराधिपानाम् ॥ ७६ ॥ गोमूत्रपिष्टं विनिहन्ति कुष्ठं वर्णोज्ज्वलं गोपयसा च युक्तम् ॥ कक्षादिदौर्गन्ध्यहरं पयोभिः शस्तं वशीकृद्रजनीद्वयेन ॥७७॥ बब्बुलस्य दलैः सम्यग्वारिणा परिपे-षितैः ॥ गात्रमुद्वर्त्तयेत्पश्चाद्धरीतक्या सुपिष्टया ॥ ७८ ॥ भूय उद्वर्त्तनं कृत्वा पश्चात्स्नानं समाचरेत् ॥ प्रस्वेदान्मुच्यते शीघ्रं ततस्त्वेवं समाचरेत् ॥७९॥ बिल्वा-म्रजम्बूफलपूरकाणां पत्रैः कपित्थस्य दला नुमिश्रैः ॥ अनूपवत्कर्मविधानयोगैर्वचा

विशोध्या वरगन्धहेतोः ॥ ८० ॥ पथ्यानखीचन्दनकुष्ठसर्जैः पुनःपुनश्चागुरुशर्कराभ्याम् ॥ धूपो जनानां हृदयापहारी विख्यातनामा मलयानिलोऽयम् ॥ ८१ ॥ चण्डांशुगतिलैर्लोध्रशिरीषोशीरकेसरैः ॥ उद्वर्त्तनं भवेद्ग्रीष्मे स्वेदकर्मनिवारणम् ॥ ॥ ८२ ॥ सुरया सममभयाफलचूर्णं मधुना विलिह्य प्रत्यूषे ॥ स्वेदान्हत्वा लभते पुरुषोऽप्यत्यन्तसौरभ्यम् ॥ ८३ ॥ मल्लीकुसुमाभयकरिलेपो घर्मे विचर्चिकादाहे॥ विचकिलपत्रहरिद्रे पर्कटिपत्रश्च दूर्वया सहितम् ॥ ८४ ॥ सम्पिष्य गात्रलेपाद्धर्मविचर्ची शमं याति ॥ ८५ ॥ हस्तपादस्रुतौ योज्यं गुग्गुलुः पञ्चतिक्तकम् ॥अशक्तौ पञ्चतिक्तं वा पक्वं खादेदतन्द्रितः ८६॥

इति मेदोरोगाधिकारः ।

अडूसेके पत्तोंके रसमें शखका चूना मिलाकर लेप करनेसे अथवा वेलके पत्तोंके स्वरसका लेप करनेसे शरीरकी दुर्गंध दूर होती है ॥

गोरखमुंडीको पीसकर कांजीके साथ पीनेसे मेदसे उत्पन्न हुई मनुष्यके शरीरकी दुर्गंध दूर होती है ॥

वेलके पत्ते और हरड इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे बगलकी दुर्गंध दूर होती है ॥

इमलीके पत्तोंका रस निकालकर किसी उत्तम औषधिके कल्कके साथ मिलाकर लेप करनेसे शरीरकी दुर्गन्ध दूर होतीहै ॥

हलदीको दूधमें पीसकर उसका शरीरपर लेप करनेसे शरीरकी दुर्गंध बहुत दिनोंकी होय तो भी दूर होजाती है॥

सिरस, लामज्जक, नागकेसर और लोध इनका चूर्ण करके शरीरपर मलनेसे त्वचाके दोष और पसीना दूर होजाताहै ॥

वेलके पत्ते, सुगंधवाला, काली अगर, खस और चदन इनको पीसकर शरीरपर लेप करनेसे शरीरकी दुर्गंध दूर होती है ॥

समुद्रफेनको ब्राह्मीके रसमे पीसकर शरीरपर लेप करनेसे शरीरकी विशेष दुर्गंध तत्काल नष्ट होजातीहै ॥

हरडेको पीसकर शरीरपर मलकर पश्चात् स्नान करनेसे शरीरका पसीना बद होताहै ॥

हरड, लोध, नीमके पत्ते, आमकी छाल और अनारकी छाल इनको पीसकर स्त्री और पुरुषोके शरीरपर मलनेसे शरीरकी दुर्गंधता दूर होती है ॥

जामुनके पत्तोका कल्क बनाकर उसका लेप करनेसे शरीरकी दुर्गंधता दूर होती है ॥

हरड, लोध, नीमके पत्ते, आमकी छाल और अनारकी छाल इनको गोमूत्रमे पीसकर लेप करनेसे कोढ दूर होजाताहै । गायके दूधमें पीसकर लेप करनेसे वर्ण उज्ज्वल होताहै । जलमें पीसकर लेप करनेसे शरीरकी दुर्गंध दूर होती है । और हलदी तथा दारुहलदीके साथ पीसकर लेप करनेसे उत्तम वशीकरण होताहै ॥

बबूरके पत्तोंको उत्तम प्रकारसे जलमे पीसकर शरीरपर मले, फिर हरडको जलमें पीसकर उससे शरीरको मले और इन दोनों पदार्थोंको मलनेबाद स्नान करै तो पसीनेकी अधिकता तत्काल दूर हो जाती है ॥

स्नान करनेके पश्चात् हरड, छोटी नखी, चदन, कूठ, राल, अगर और खाड इनकी धूप वारंवार देवे, इससे शरीरमे सुगधता उत्पन्न होती है । मनुष्योंके चित्तको हरनेवाली यह धूप 'मलयानिल' इस नामसे प्रसिद्ध है ॥

दारुहलदी, तिल, लोध, सिरसकी छाल, खस और केसर इनको पीसकर शरीर पर मलनेसे ग्रीष्म ऋतुमें पसीनेका अधिक आना बद होताहै ।

हरडके चूर्णको मद्य अथवा सहतके साथ चाटे तो पसीना दूर होकर अत्यंत सुगध आती है ॥

पसीना अधिक आता होय और विचर्चिका तथा दाह होय तो मोतियाके पत्ते सुगंधवाला और नागकेसर इनका लेप करे ॥

मोतियाके पत्ते, हलदी, जलपीपलके पत्ते और दाख इनको पीसकर शरीरपर लेप करनेसे पसीना और विचर्चिका दूर होती है ॥

जो हाथ पॉव पसीजते होंय तो गूगल और पचतिक्त नामक सिद्ध किये घीका उपयोग करे । शरीरमें शक्ति न होय तो पथ्यसे रहकर पचतिक्त घृतको भक्षण करे ॥ ६९-८६ ॥

इति मेदोरोगाधिकारः ।

अथ कार्श्याधिकारः ।

तत्र कृशतानिदानम् ।

वातो रूक्षान्नपानानि लंघनं प्रमिताशनम् ॥ क्रियातियोगः शोकश्च वेगनिद्राविनिग्रहः ॥ १ ॥ नित्यं रोगो रतिर्नित्यं व्यायामो भोजनाल्पता ॥ भीतिर्धनादिचिन्ता च कार्श्ये कारणमीरितम् ॥ २ ॥

लंघनमुपवासः । प्रमितमल्पम् । क्रियातियोगः वमनविरेकाद्यतिविधानम् । वेगनिद्राविनिग्रहः निद्रानिग्रहः विशोषाय ॥

वायु, रूक्ष अन्नपान, लंघन, अल्पभोजन, वमन, तथा विरेचन आदि क्रियाओंका अतियोग, शोक, मूत्र आदिके वेगोंका रोकना, निद्राका रोकना, सर्वदा रोग, नित्य मैथुन, नित्य कसरत, भोजनका थोडा मिलना, भय और धनआदिचिंता, इनसे कृशता (दुबलापन) होताहै, निद्राको रोकनेसे तुरत कृशता होती है ॥१॥२॥

अथ कृशलक्षणम् ।

शुष्कस्फिगुदरग्रीवाधमनीजालसन्ततिः॥ त्वगस्थिशेषोऽतिकृशः स्थूलपर्वाननो मतः ॥ ३ ॥

जिसका कूला, पेट, तथा गरदन सूखीहुई होय, शरीर मे नसोंका जाल दीखताहो, त्वचा तथा हड्डिये ही शेष होय, तथा संधियें और मुख मोटा होय वह मनुष्य अत्यंत कृश कहाताहै ॥ ३ ॥

अथात्यंतकृशतारोगाः ।

प्लीहकासक्षयश्वासगुल्माशांस्युदराणि च ॥ भृशं कृशं प्रधावन्ति रोगाश्च ग्रहणीमुखाः॥ कश्चिदन्यः कृशोऽतीव वलवान्दृश्यते तदा ॥ ४ ॥

अत्यत कृश मनुष्यको प्लीहा, खाँसी, श्वास, गुल्म, बवासीर, उदररोग और ग्रहणीआदि रोग दौडकर प्राप्त होते हैं, कोई २ कृश मनुष्य भी अत्यंत बलवान् दीखते हैं ॥ ४ ॥

अथ सत्यपिकृशे वलवत्वकारणम् ।

आधानसमये यस्य शुक्रभागोऽधिको भवेत् ॥ मेदोभागस्तु हीनः स्यात्स कृशोऽपि महाबलः ॥ ५ ॥

यस्य आधानसमये जनयितुः शुक्रस्य आधिक्यं भवति, मेदसोऽल्पता तस्य कृशस्यापि बहुबलमित्यर्थः ॥

गर्भाधानके समय जिसमें पिताके वीर्यका भाग अधिक आया हो और मेदका भाग अल्प होय, वह मनुष्य कृश होनेपर भी बहुत बलवाला होताहै ॥ ५ ॥

अथ सत्यामपि स्थूलतायां बलहीनत्वकारणम् ।

मेदसस्त्वधिको यस्य शुक्रभागोऽल्पको भवेत् ॥ स स्निग्धोऽपि सुपुष्टोऽपि बलहीनो विलोक्यते ॥ ६ ॥

व्याख्यानं पूर्ववत् ॥

गर्भाधानके समय जिसमें पिताके वीर्यका भाग अल्प आया हो, और मेदका भाग अधिक हो, वह मनुष्य भली भाँति स्निग्ध होनेपर और भली भाँति पुष्ट होनेपर भी बलहीन देखनेमें आते हैं ॥ ६ ॥

अथ कार्श्यचिकित्सा ।

रूक्षान्नादिनिमित्ते तु कृशे युञ्जीत भेषजम् ॥ बृंहणं बलकृद्वृष्यं तथा वाजीकरञ्च यत् ॥ ७ ॥ पीताश्वगन्धा पयसार्द्धमासं घृतेन तैलेन सुखाम्बुना वा ॥ कृशस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते बालस्य शस्यस्य यथाम्बुवृष्टिः ॥ ८ ॥

जो मनुष्य रूक्ष अन्नपानादिसे कृश हुआ हो उसको बलदायक, धातुओंको पुष्ट करनेवाले, मैथुनमें रुचिकर्ता और वाजीकर औषधि देवै । अथवा एक पक्षतक दूधके साथ, घीके साथ, तैलके साथ,

अथवा उष्ण जलके साथही असगंधका चूर्ण पिये तो जिस प्रकार जलकी वृष्टिसे धान्योकी पुष्टता होतीहै उसी प्रकार, उसके शरीरकी पुष्टता होतीहै ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथाश्वगंधातैलम्।

अश्वगन्धस्य कल्केन क्काथे तस्मिन्पय-स्यपि॥ सिद्धं तैलं कृशाङ्गानामभ्यंगादंग-पुष्टिदम् ॥ ९ ॥

असगधके क्काथमें दूध तथा असगंधकाही कल्क डालकर पकाये हुए तेलसे अभ्यग करै तो मनुष्यके अंग पुष्ट होतेहैं ॥ ९ ॥

अथाश्वगंधाघृतादि।

पुष्टिकृद्बालरोगोक्तमश्वगन्धाघृतं भजेत् ॥ वाजीकरोदितं तद्वदश्वगन्धाघृतादि-कम् ॥ १० ॥

बालकोंके रोगोमे जो अश्वगधाघृत कहेंगे वह तथा वाजीकरणके प्रकरणमें जो अश्वगधा घृतादि कहेंगे वह सब पुष्टिकारक हैं ॥ १० ॥

अथासाध्यकृशता।

स्वभावादतिकार्श्यो यः स्वभावादल्पपा-वकः ॥ स्वभावादबलो यश्च तस्य नास्ति चिकित्सितम् ॥ ११ ॥

इति कार्श्यचिकित्साधिकारः।

जो मनुष्य स्वाभाविक रीतिसेही अत्यत कृश होय,अल्प अग्निवाला होय और निर्बल होय वह असाध्य है उसकी चिकित्सा नहीं करै ॥ ११ ॥

इति कार्श्यचिकित्साधिकारः समाप्तः।

अथोदराधिकारः।

तत्रोदरनिदानम्।

रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ सुतरामुदराणि च ॥ अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मल-सञ्चयात् ॥ १ ॥

अग्नौ मन्दे सर्वे रोगाः जायन्ते। किन्तु सुतराम् अतिशयेन उदराणि जायन्ते। अपरानपि हेतूनाह, अजीर्णात् मलिनैश्चान्नैः अत्यन्तदोषजनकैः। मलसञ्चयात् मलादीनां पुरीषस्य च अतिवृद्धेः। अत्र उदरशब्देन उदरस्थो रोग उच्यते। यत आह—

अर्थतो धर्मतः साम्यात्तत्समीपतयापि च ॥ तत्साहचर्याच्छब्दानां वृत्तिरुक्ता चतुर्विधा ॥ २ ॥

यदि जठराग्नि मंद होगई होय तो सम्पूर्ण रोग होतेहैं, और उनमें उदरके रोग तो अत्यंत होतेहैं। अजीर्णसे, अत्यत दोप उत्पन्न करनेवाले अन्नोंसे और दोप तथा विष्ठाकी अत्यन्त वृद्धिसेभी उदररोग होतेहैं ॥ १ ॥

मूलमें केवल उदर शब्द है, परन्तु उस शब्दसे यहाँ उदरमें रहनेवाले रोग जानने, क्योंकि कहा है कि—"कहीं अर्थसे, कहीं धर्मसे, तथा उस पदार्थमें रहनेसे, कहीं समीपमें रहनेसे, और कहीं साथ रहनेसे, इस भाँति शब्दोंकी वृत्ति चार प्रकारकी मानी जाती है ॥ २ ॥

अथोदररोगसम्प्राप्तिः।

रुद्ध्वा स्वेदाम्बुवाहीनि दोषाः स्रोतांसि सञ्चिताः॥ प्राणाग्न्यपानान्संदूष्य जनय-न्त्युदरं नृणाम् ॥ ३ ॥

सचय हुए दोष पसीना तथा जलको वहन करनेवाले स्रोतोंको रोककर जठराग्नि, प्राणवायु और अपान वायुको दूषित करके उदरके रोगोको उत्पन्न करैहैं ॥ ३ ॥

अथोदररोगसामान्यरूपम्।

आध्मानं गमनेऽशक्तिर्दौर्बल्यं दुर्बलाऽ-ग्निता ॥ शोथः सदनमंगानां संगो वात-पुरीषयोः ॥ दाहस्तन्द्रा च सर्वेषु जठरेषु भवन्ति हि ॥ ४ ॥

अफारा, चलनेंमे अशक्तता, दुर्बलता, अग्निकी मदता, सूजन, अगोंमें ग्लानि, वायु तथा विष्ठाका अवरोध, दाह और तन्द्रा, ये लक्षण सर्व प्रकारके उदर रोगोंमें होतेहैं ॥ ४ ॥

अथोदररोगनिदानपूर्वकसंख्या।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्लीहबद्धक्षतोदकैः ॥

सम्भवन्त्युदराण्यष्टौ तेषां लिंगं पृथक्छृणु ॥ ५ ॥

वात, पित्त, कफ, तीनोंदोष, प्लीहा, गुदाका अवरोध, क्षत, और पेटमें पानीकी एकत्रता, इनसे आठ प्रकारके उदररोग होतेहैं। इन आठ प्रकारके उदररोगोंके अनुक्रमसे वातोदर, पित्तोदर, कफोदर, सन्निपातोदर, प्लीहोदर, बद्धोदर, क्षतोदर और जलोदर, इस भाँति आठ नाम हैं। इनके पृथक् पृथक् लक्षण कहतेहैं सुनो ॥ ५ ॥

अथ वातोदरलक्षणम् ।

तत्र वातोदरे शोथः पाणिपन्नाभिकुक्षिषु ॥ कुक्षिपार्श्वोदरकटीपृष्ठरुक्पर्वभेदनम् ॥ ६ ॥ शुष्ककासोऽङ्गमर्दश्च गुरुता मलसंग्रहः ॥ श्यावारुणत्वगादित्वमकस्माद्वृद्धिह्रासवद्भिमत् ॥ ७ ॥ सतोदभेदमुदरं तनुकृष्णशिराततम् ॥ आध्मातदृतिवच्छब्दमाहतं प्रकरोति च ॥ वायुश्चात्र सरुक्छब्दो विचरेत्सर्वतोगतिः ॥ ८ ॥

कुक्षिपार्श्वोदरेत्यत्र कुक्षिशब्द उदरस्य वामदक्षिणभागद्वयवाची । सर्वतोगतिः सकलकोष्ठे सञ्चरन् ॥

वातोदर हुआ होय तो हाथ पाँव, नाभि तथा पेटमें सूजन होतीहै, पेटकी दोनों पसलियोंमें, कोखमें, पेट तथा कमर और पीठमें पीडा होतीहै, सन्धियें टूटतीहैं, सूखी खाँसी होतीहै तथा अंगोंका टूटना, भारीपन, मलोंका सग्रह, त्वचा आदिमें कालापन तथा लाली, पीडका अकस्मात् बढना घटना, पेटमें छेदना तथा भेदनकी भाँति पीडा, पेटका काली सूक्ष्म सूक्ष्म नसोंसे व्याप्त होना, पेटको हाथसे बजानेपर फुली मशककासा शब्द हो और सब कोठेमें वायु विचरता हुआ पीडा तथा शब्द करताहै ये लक्षण होतेहैं ॥ ६-८ ॥

अथ पित्तोदरलक्षणम् ।

पित्तोदरे ज्वरो मूर्च्छा दाहस्तृट् कटुकास्यता ॥ भ्रमोऽतिसारः पीतत्वं त्वगादावुदरं हरित् ॥ ९ ॥ पीतताम्रशिरानद्धं सस्वेदं सोष्म दह्यते ॥ धूमायते मृदुस्पर्शं क्षिप्रपाकं प्रदूयते ॥ १० ॥

हरित् शाकवर्णात्मकम् । सोष्म अन्तस्तापयुक्तम् । दह्यते बहिर्दाहयुक्तं भवति । धूमायते धूममिव उद्वमति । क्षिप्रपाकं क्षिप्रपाकाज्जलोदरं जायते । प्रदूयते व्यथते ॥

पित्तोदर हुआ होय तो ज्वर, मूर्च्छा, दाह, तृषा, मुखमें तीखापन, भ्रम, अतीसार और त्वचा आदिमें पीलापन होताहै । पेट शाककी भाति हरे वर्णवाला, पीली तथा लाल नसोंसे बंधेहुएकी समान, पसीने सहित हो, भीतर उष्णतायुक्त हो, बाहर दाह हो और आँतोंसे धुआँसा निकलता हो, स्पर्शमें मृदु, पाक शीघ्रहोय और पीडायुक्त होताहै, तथा तुरन्त पकजावे उससे जलोदर होजाताहै ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ कफोदरलक्षणम् ।

श्लेष्मोदरेऽङ्गसदनं श्वयथुर्गौरवं तथा ॥ तन्द्रोत्क्लेशोऽरुचिः स्वापः कासः शौक्ल्यं त्वगादिषु ॥ ११ ॥ उदरं स्तिमितं स्निग्धं शुक्लराजीततं महत् ॥ चिराभिवृद्धिं कठिनं शीतस्पर्शं गुरु स्थिरम् ॥ १२ ॥

गौरवमंगानाम् । तन्द्रा निद्राबाहुल्यम् । उत्क्लेशो हृल्लासः । स्वापः स्पर्शाज्ञता । शुक्लराजीततं शुक्लशिराव्याप्तम् ॥

कफोदर हुआ होय तो अंगोंमें ग्लानि, सूजन, गुरुता, तन्द्रा, उत्क्लेश (वमन होनेवालीसी ज्ञातहो), अरुचि, अंगोंमें स्पर्श करनेसे मालुम न हो, खाँसी, त्वचादिक श्वेत हों, और पेट बँधासा चिकना, सफेद नसोंसे व्याप्त, मोटा, अधिककालमें बढनेवाला, कठोर, स्पर्शमें शीतल, भारी तथा गडगडाहट रहित हो, यह लक्षण होतेहैं ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥

अथ सन्निपातोदरलक्षणम् ।

स्त्रियोऽन्नपानं नखलोममूत्रविडार्तवैर्युक्तमसाधुवृत्ताः ॥ यस्मै प्रयच्छन्त्यरयो गरांश्च दुष्टाम्बुदूषीविषसेवनाच्च ॥ १३ ॥ तस्याशु रक्तं कुपिताश्च दोषाः कुर्युः

सघोरं जठरं त्रिलिंगम् ॥ तच्छीतवाते भृशदुर्दिने च विशेषतः कुप्यति दह्यते च ॥ १४ ॥ स चातुरो मूर्च्छति हि प्रसक्तं पाण्डुः कृशः शुष्यति तृष्णया च ॥ दूष्योदरं कीर्तितमेतदेव प्लीहोदरं कीर्तयतो निबोध ॥ १५ ॥

स्त्रिय इत्यविवेकिसन्निहितजनोपलक्षणम्। ताश्च स्वसौभाग्यमिच्छन्त्यः। विट् मार्जारादीनाम्। आर्तवं रजः। अरयः शत्रवः। गरान्संयोगजानि विषाणि। दुष्टमम्बु सविषमत्स्यतृणपर्णादियुक्तम्। दूषीविषं विषमेव अग्न्याद्युपघातेन स्वल्पप्रभावम्। यत उक्तम् "जीर्णं विषघ्नौषधिभिर्हतं वा दावाग्निवातातपशोषितं वा। स्वभावतो वा गुणविप्रयुक्तं विषं हि दूषीविषतामुपैति॥" गुणविप्रयुक्तं गुणवियुक्तं तदुदरं शीतादिषु कुप्यति। तत्र दूषीविषस्य प्रकोपात्। मूर्च्छति विषयोगात्। प्रसक्तं निरन्तरम्। एतदेव सन्निपातोदरं तन्त्रान्तरे दूष्योदरं कीर्तितम्। अथ वा परस्परं दूषयन्ति दोषा एव दूष्याः तैः कृतम् उदरं दूष्योदरम् ॥

खोटे आचरणयुक्त स्त्री—वशीकरण आदिकी इच्छासे जिस पुरुषको नख, रोम, मूत्र, विष्ठा, आर्तव (रजोदर्शका रक्त), इनसे युक्त किया हुआ अन्न खिलावै उस पुरुषको अन्य भी पाका अविवेकी मनुष्य जिसको ऐसा अन्न खिलावै उसको, शत्रु जिसके सयोगसे विष खिलावै, अथवा विषैली मछली, विषैले पत्ते आदिका पानी जो पियै उसको और दूषित विष (अग्निआदिसे उपघात होनेके कारण शल्य प्रभाव युक्त विष) जिसके खानेपीनेमें आवै उसके कुपित हुआ रुधिर और कुपित हुए दोष तत्काल त्रिदोषोंके चिह्नयुक्त अति भयंकर उदर रोगको उत्पन्न करैहैं यह उदररोग शीतल पवनके समयमें और जिस समय अधिक बादल घिरे होयँ उस समय विशेष करके कुपित होताहै तथा दाह और मूर्च्छित भी कर देताहै। क्योंकि इन समयोमे दूषित विषका प्रकोप होताहै, तथा विषके योगसे मूर्च्छा होना भी संभव है। यह रोगी मनुष्य नित्य पाण्डु, कृश और तृषासे व्याकुल रहताहै। यह उदररोग 'सन्निपातोदर' कहाताहै और अन्य ग्रन्थोंमें इसको 'दूष्योदर' इस नामसे भी कहा है। परस्परसे दूषित हुए दोष भी दूष्य कहातेहैं इस कारण दूष्यके किये उदररोगको 'दूष्योदर' भी कहाहै अब प्लीहोदरके लक्षण कहतेहैं सुनो ॥ १३–१५ ॥

अथ प्लीहोदरलक्षणम्।

वर्द्धते प्लीहवृद्ध्या यद्विद्यात्प्लीहोदरं हि तत् ॥ तद्वामे वर्द्धते पार्श्वे निमित्तं तत्र तस्य यत् ॥ १६ ॥ प्रवृद्धे प्लीह्नि लिंगानि यान्युक्तानि भिषग्वरैः ॥ प्लीहोदरेऽपि दृश्यन्ते तानि सर्वाणि देहिनाम् ॥ प्लीहोदरस्यैव भेदो यकृद्दाल्युदरं तथा ॥ १७ ॥

तस्य पुनरपि विशेषकमित्याह।

सव्यान्यपार्श्वे यकृति प्रवृद्धे ज्ञेयं यकृद्दाल्युदरं तदेव ॥ १८ ॥

यकृद्दालयति दोषैर्भिनत्तीति यकृद्दाल्युदरम्। तदेव उदरमेव ॥

प्लीहाके बढनेसे पेट जो बढजाताहै उसको प्लीहोदर कहतेहैं, प्लीहा बाँई पसलीमें होतीहै इससे पेटभी वामओरका बढताहै। उत्तम वैद्योने प्लीहा बढनेके जो लक्षण कहेहैं वे लक्षण सब प्राणियोंके प्लीहोदर नामक रोगमें भी दीखतेहैं। 'यकृद्दाल्युदर' नामक जो उदररोगका एक भेद है वह भी प्लीहोदरकी एक जाति है। प्लीहोदरसे यकृद्दाल्युदरमें पृथक्ता इतनीही है कि जो दाहिनी ओरकी गाठ है वह 'यकृत्' कहाती है, उसके बढनेसे दाहिनी ओरका पेट बढजाताहै, उसको 'यकृद्दाल्युदर' कहतेहैं। इस रोगमे दोषोंके कारण यकृत् भिदजाताहै इस लिये इस रोगका नाम यकृद्दाल्युदर है ॥ १६–१८ ॥

जिसकी अन्नमे अरुचि हो, सूजन तथा दस्त होते हों और विरेचन देनेपर भी पेट पूर्ण होगया हो उसकी चिकित्सा नहीं करै ॥ २६–३१ ॥

अथोदररोगचिकित्सा ।

ऐरण्डतैलं दशमूलमिश्रं गोमूत्रयुक्तं त्रिफलारसो वा ॥ निहन्ति वातोदरशोथशूलं क्वाथः समूत्रो दशमूलजश्च ॥ ३२ ॥

अण्डीका तेल, दशमूलका क्वाथ मिलाकर अथवा गोमूत्र, त्रिफलेका रस मिलाकर वा दशमूलके क्वाथमे गोमूत्र मिलाकर पिये तो इससे वायुसम्बन्धी उदररोग सूजन तथा शूल नष्ट होताहै ॥ ३२ ॥

अथ कुष्ठादिचूर्णम् ।

कुष्ठं दन्ती यवक्षारो व्योषं त्रिलवणं वचा ॥ अजाजी दीप्यकं हिंगु स्वर्जिका चव्यचित्रकम् ॥ शुण्ठी चोष्णाम्भसा पीता वातोदररुजापहा ॥ ३३ ॥

कूठ, दन्ती (जमालगोटेकी जड), जवाखार, सोंठ, मिरच, पीपल, सैंधा, साभर, सोंचलनोंन, वच, जीरा, अजवायन, हींग, सज्जी, चव, चीता और सोंठ इनका चूर्णकर उष्ण जलसे पिये तो वायुसंबंधी उदररोग नष्ट होताहै, इसको 'कुष्ठादि चूर्ण' कहतेहैं ॥ ३३ ॥

अथ लशुनतैलम् ।

लशुनस्य तुलामेकां जलद्रोणे विपाचयेत्॥ त्रिकटु त्रिफला दन्ती हिंगु सैन्धवचित्रकम् ॥ ३४ ॥ देवदारु वचा कुष्ठं मधु शिग्रुः पुनर्नवा ॥ सौवर्चलं विडंगानि दीप्यको गजपिप्पली ॥ ३५ ॥ एतेषां पलिकान्भागांस्त्रिवृतः षट्पलानि च ॥ पिष्ट्वा कषायेणानेन तैलं मृद्वग्निना पचेत् ॥ ३६ ॥ तत्पिबेत्प्रातरुत्थाय यथाग्निबलमात्रया ॥ निहन्ति सकलान्रोगानुदराणि विशेषतः ॥ ३७ ॥ मूत्रकृच्छ्रमुदावर्त्तमन्त्रवृद्धिं गुदक्रिमीन् ॥ पार्श्वकुक्षिभवं शूलमामशूलमरोचकम् ॥ ३८ ॥ यकृदष्ठीलिकानाहान्प्लीहानं चांगवेदनाम् ॥ मासमात्रेण नश्यन्ति अशीतिर्वातजा गदाः ॥ ३९ ॥

एक तुला (चारसौ तोले) लहसनका एक द्रोण (१०२४ तोले) जलमें क्वाथकरै, पश्चात् सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, दन्ती, हींग, सैंधा, चीता, देवदार, वच, कूठ, मुलेठी, सहँजना, पुनर्नवा, सोंचलनोंन, वायविडंग, अजमाइन, तथा गजपीपल, ये प्रत्येक पदार्थ चार चार तोलेभर और निसोत २४ तोले लेकर पीस लेवै, यह कल्क उस क्वाथमें डालकर कोमल अग्निसे तैल पकावै । प्रातःकाल उठकर अग्नि तथा बलानुसार योग्य मात्रासे यह तेल पिये तो इससे सब रोग नष्ट होतेहैं और उदररोग विशेष करके दूर होतेहैं । मूत्रकृच्छ्र, उदावर्त, अन्त्रवृद्धि, गुदाकी कृमि, पसली तथा कोखका शूल, आमशूल, अरुचि, यकृत्, अष्ठीलिका, आनाह, प्लीहा और अंगमे हुई पीडा, इस तेलके प्रयोगसे नष्ट होतीहै । तथा वायुसम्बन्धी अस्सी प्रकारके वायुरोग एक महीनेतक इस तेलका सेवन करनेसे नष्ट होतेहैं, इसको 'लशुनतैल' कहतेहैं ॥ ३४–३९ ॥

अथ पित्तोदरकफोदरचिकित्सा ।

पित्तोदरे तु बलिनं पूर्वमेव विरेचयेत् ॥ पयसा च त्रिवृत्कल्कै रुवूकस्य शृतेन च ॥ ४० ॥ पिप्पल्यादिगणेनाज्यं पाचितं पाययेद्भिषक् ॥ नरं पथ्यभुजं नित्यं कफोदरनिवृत्तये ॥ ४१ ॥ नागरत्रिफलाकल्कैर्दध्यम्बुपरिपेषितैः ॥ पाचितं तैलमाज्यं वा पिबेत्सर्वोदरेषु च ॥ ४२ ॥ शालिषष्टिकगोधूमयवनीवारभोजनम् ॥ निरूहो रेचनं श्रेष्ठं सर्वेषु जठरेषु च ॥ ॥ ४३ ॥ आनूपमौदकं मांसं शाकं पिष्टकृतं तिलाः ॥ व्यायामाध्वदिवास्वप्नस्नेहपानानि वर्जयेत् ॥ ४४ ॥ तथोग्रलवणोष्णानि विदाहीनि गुरूणि च ॥ नाद्यादन्नानि जठरे तोयपानञ्च वर्जयेत् ॥ ४५ ॥ उदराणां मलाढ्यत्वादुद्रुशः शोधनं हितम् ॥ क्षीरमेरण्डजं तैलं पिबेन्मूत्रेण वा शकृत ॥ ४६ ॥ वातोदरी पिबेत्तक्रं पिप्पलीलवणान्वि-

तम् ॥ शर्करामारिचोपेतं स्वादु पित्तोदरी पिबेत् ॥ ४७ ॥ यवानीहपुषाजाजीव्योषयुक्तं कफोदरी ॥ सन्निपातोदरी युक्तं त्रिकटुक्षारसैन्धवैः ॥ ४८ ॥

पित्तसंबंधी उदररोग हुआ होय और रोगी बलवान् हो तो उसको प्रथमही दूध, निसोतका कल्क और अडीका क्राथ, इनसे विरेचन देवै। और यदि उदररोग कफसे हुआ होय तो रोग नष्ट करनेके लिये नित्य पथ्य खानेका रोगी नियम रक्खै, वैद्य पिप्पली आदि गणकी औषधियोंसे पकाया हुआ तेल पिलावे। सोंठ, हरड, बहेडा तथा आमला, इनको दहीके पानीमें पीस कल्क करै, फिर उस कल्कसे पकाया हुआ तेल अथवा घी पिलावे तो सर्वप्रकारके उदररोग नष्ट होजातेहैं। ये नागरादि तैल वा घृत इन नामोंसे कहेहैं। शालिचावल, साठीके चावल, गेहूँ, जौ तथा नीवार इनका भोजन, निरूहवस्ति और विरेचन, ये सब विधि उदररोगोंमें हितकारी हैं। अथवा उदररोगी अनूप देशके जीवोंका तथा जलजंतुओंका मांस, शाक, पिष्टीसे बने पदार्थ, तिल, व्यायाम (कसरत), मार्गका चलना, दिनमें सोना और स्नेहपान, इनका त्याग करै। उदररोग हुआ होय तो उग्र (तीक्ष्ण), खारी, गरम, दाहकारक, और भारी पदार्थ नहीं खाय तथा पानीभी नहीं पियै। इस रोगमें पेट अधिक मलके समूहसे युक्त रहताहै इस कारण अधिकवार विरेचनसे शुद्ध करै यह हितकारी होताहै। दूधमें अण्डीका तेल मिलाकर पियै, अथवा गायका गोबर मूत्रमें डालकर पियै। वायुसे हुआ उदररोगी पीपल तथा सैंधा, इनका चूर्ण डालकर गाढा तक्र (मट्ठा) पियै, पित्तसे हुआ उदररोगी बूरा तथा मिरचोंको डालकर मीठा मट्ठा पियै और कफसे हुआ उदररोगी अजवायन, हाऊबेर, जीरा, सोंठ, मिरच तथा पीपल इनका चूर्ण डालकर गाढा मट्ठा पियै, और त्रिदोष (सन्निपात) से हुआ उदररोगी सोंठ, मिरच, पीपल, जवाखार और सैंधानिमक, इनका चूर्ण डालकर गाढा मट्ठा पिये ॥ ४०-४८ ॥

अथ नारायणचूर्णम्।

यवानी हपुषा धान्यं त्रिफला चोपकुञ्चिका ॥ कारवीपिप्पलीमूलमजगन्धा शटी वचा ॥ ४९ ॥

उपकुञ्चिका कारवी च बृहज्जीरकः मंगरैला इति लोके ॥

शताह्वा जीरकं व्योषं स्वर्णक्षीरी च चित्रकम् ॥ द्वौ क्षारौ पौष्करं मूलं कुष्ठं लवणपञ्चकम् ॥ ५० ॥ विडंगश्च समांशानि दन्त्या भागत्रयं भवेत् ॥ त्रिवृद्विशाला द्विगुणा शातला स्याच्चतुर्गुणा ॥ ५१ ॥

विशाला इन्द्रवारुणी। शातला सेहुण्ड इति प्रसिद्धः ॥

एष नारायणो नाम्ना चूर्णो रोगगणापहः ॥ एनं प्राप्य निवर्तन्ते रोगा विष्णुमिवासुराः ॥ ५२ ॥ तक्रेणोदारिभिः पेयो गुल्मिभिर्बदराम्बुना ॥ आनद्धवाते सुरया वातरोगे प्रसन्नया ॥ ५३ ॥ दधिमण्डेन विड्भेदे दाडिमाम्बुभिरर्शसि ॥ परिकर्तिषु वृक्षाम्लैरुष्णाम्बुभिरजीर्णके ॥ ५४ ॥

परिकर्तिः गुदे परिकर्तनवत्पीडा ॥

भगन्दरे पाण्डुरोगे कासे श्वासे गलग्रहे ॥ हृद्रोगे ग्रहणीरोगे कुञ्जे मन्देऽनले ज्वरे ॥ ५५ ॥ दंष्ट्राविषे मूलविषे सगरे कृत्रिमे विषे ॥ यथार्ह स्निग्धकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम् ॥ ५६ ॥

अजवायन, हाउबेर, धनिया, हरड, बहेडा, आमला, कालाजीरा, कलौंजी, पीपलामूल, अजमोद, कचूर, वच, सतावर, जीरा, सोंठ, मिरच, पीपल, चोक, चीता, जवाखार, सज्जी, पोहकरमूल, कूठ, पाँचोनोन और वायविडंग, इनको समान भाग लेवै, तथा दन्ती (जमालगोटेकी जड), तीन भाग, निसोत दो भाग, इन्द्रायन दो भाग और थूहर चार भाग लेव, फिर इन सबका चूर्ण करै तो 'नारायणचूर्ण' बनताहै। यह चूर्ण रोगोंके समूहको नष्ट करताहै, जिस प्रकार विष्णुके प्रभावसे दैत्य भागजाते हैं, उसी प्रकार

इस चूर्णके प्रभावसे रोग भागजाते हैं । यह चूर्ण उदररोगवाले गाढे मठेके साथ पिये, गुल्मरोगी बेरकी छालके काथसे पिये, आनाहरोगमें मदिराके साथ पिये, वायु रोगवाले मदिराकी कांजीके साथ पिये, दस्तोंमें दहीके मठसे पिये, बवासीर रोगवाला दाडिमके रससे पिये, पेटमें कतरनेकेसी पीडा होय तो तितडीकसे पिये और अजीर्ण रोगी गरम पानीके साथ पिये। भगदर, पाण्डुरोग, खांसी, श्वास, गलगण्ड, हृदयरोग, ग्रहणीरोग, कुब्जवात रोग, मदाग्नि, ज्वर, दातका विष, मूलका विष और अकृत्रिम विषसे बनाये हुए विष, इनमें भी प्रथम कोठेको स्निग्ध करके पश्चात् योग्य पदार्थके साथ यह विरेचन करनेवाला नाराचूर्ण पिये ॥ ४९–५६ ॥

अथ नाराचघृतम् ।

स्नुक्क्षीरदन्तीत्रिफलाविडंगसिंहीत्रिवृच्चित्रककर्षकर्षम् ॥ घृतं विपक्कं कुडवप्रमाणं तोयन तस्याक्षमथार्द्धकर्षम् ॥ ५७ ॥ पीत्वोष्णमम्भोऽनुपिबेद्विरेके पेयां रसं वा प्रपिबेद्विधिज्ञः ॥ नाराचमेतज्जठरामयानां युक्त्योपयुक्तं प्रवदन्ति सन्तः ॥ ५८ ॥

थूहरका दूध, दन्ती, हरड, बहेडा, आमला, वायविडंग, कटेरीकी जड, निसोत और चीता, ये प्रत्येक पदार्थ एक एक तोलाभर ले. उनके कल्कसे सोलह तोले घी पकावै, तो 'नाराचघृत' सिद्ध होताहै । विरेचनके लिये पानीके साथ एक तोला अथवा आधा तोला, घी पीकर- ऊपरसे गरम पानी पिये । विधि जाननेवाला पुरुष इस घीसे विरेचन होनेपर योग्य पेया अथवा योग्य रस पिये । जिस प्रकार बाण निशानको तोडता है तिसी प्रकार युक्तिसे उपयोगमें लाया हुआ यह घी उदरके रोगोंको नष्ट करदेताहै ऐसा वैद्य कहते हैं ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

अथ वज्रकल्कः ।

वज्रायाः कर्षमात्रायाः कल्कं दध्यादिवेष्टितम् ॥ निगिलेद्धारिणा नित्यमुदरव्याधिशान्तये ॥ ५९ ॥

वज्राण्डीति वनसूरणेति लोके ॥

वनसूरणका एक तोला कल्क करके उस कल्कको दही वगैरहसे मिलाकर नित्य पानीसे खावे तो उदररोग शान्त होतेहैं ॥ ५९ ॥

अथ पुनर्नवादिकाथः ।

पुनर्नवा दारुनिशा सतिक्ता पटोलपथ्यापिचुमन्दमुस्ताः ॥ सनागरच्छिन्नरुहेति सर्वैः कृतः कषायो विधिना विधिज्ञैः ॥ ६० ॥ गोमूत्रयुग्गुग्गुलुना च युक्तः पीतः प्रभाते नियतं नराणाम् ॥ सर्वांगशोथोदरपाण्डुशूलश्वासान्वितं पाण्डुगदं निहन्ति ॥ ६१ ॥

पुनर्नवादिः क्वाथः ॥

इति उदररोगनिदानचिकित्साधिकारः ।

पुनर्नवा, दारुहलदी, कुटकी, परवल, हरड, नीम, मोथा, सोंठ और गिलोय, इन सब पदार्थोंको एकत्र करके विधिअनुसार काथ करै, उस काथमें गोमूत्र तथा गूगल डालकर प्रातःकाल पियै तो इससे सब प्रकारके अंगकी सूजन, उदररोग, पाण्डुरोग, शूलरोग और श्वास आदि रोगोंका समूह अवश्य नष्ट होताहै ॥ ६० ॥ ६१ ॥

इति उदररोगाधिकारः सपूर्णः ।

अथ शोथाधिकारः ।

तत्र शोथनिदानम् ।

शुद्ध्यामयाभक्तकृशाबलानां क्षाराम्लतीक्ष्णोष्णगुरूपसेवा ॥ दध्यामममृच्छाकविरोधिपिष्टगरोपसृष्टान्ननिषेवणं च ॥ १ ॥ अर्शांस्यचेष्टा वपुषो ह्यशुद्धिर्मर्माभिघातो विषमा प्रसूतिः ॥ मिथ्योपचारः प्रतिकर्मणाश्च निजस्य हेतुः श्वयथोः प्रदिष्टः ॥ २ ॥

शुद्धिः–वमनविरेकादिः । आमयाः पांडुरोगादयः । अभक्तम्–अभोजनम् । आमः अपक्वो भुक्तस्य रसः । पिष्टगरोपसृष्टान्नम् पिष्टो यो गरः संयोगजं विषं तेन संसृष्टमन्नम् । वपुषो ह्यशुद्धिः शोधनार्हस्य वपु-

षोऽशोधनम् । मर्मोपघातः दोषकृत् एव ज्ञेयः । बाह्यहेतुकृतस्तु मर्मोपघात आगन्तुजशोथहेतुरेव । विषमा प्रसूतिः आमगर्भपतनादिका । प्रतिकर्मणां वमनादिपञ्चकर्मणाम् । मिथ्योपचारः असम्यक्करणम् । श्वयथोः शोथस्य । निजस्य आत्मीयस्य सन्निकृष्टस्य हेतुर्वाताद्यात्मकस्य उक्तः ॥

वमन, विरेचन आदि शोधनसे, पाण्डुरोगादि रोगोंसे अथवा उपवासोंसे कृश हुए अथवा निर्बल हुए लोगोंके सूजन होतीहै । खारी, खट्टे, तीक्ष्ण, उष्ण अथवा भारी पदार्थोंको सेवन करनेसे भी सूजन होतीहै । दहीके सेवनसे, खाये हुए अन्नके अपक्वरससे, मट्टी, शाक परस्परमे विरुद्ध अथवा सयोगसे विरुद्ध हुए ऐसे अन्नोके सेवनसे, बवासी रसे, शरीरको परिश्रम नही होनेसे, शोधनके योग्य हुए शरीरको वमन विरेचनादि देकर शुद्ध नही करनेसे, दोषोंसे हुए मर्मस्थलोंके उपघातसे, कच्चा गर्भ गिरना आदि विषम प्रसवसे और वमन आदि पॉचो कर्म अयोग्य रीतिके होनेसे, वायु आदि दोषसबधी सूजन उत्पन्न होतीहै ॥ १ ॥ २ ॥

अथ शोथस्य सम्प्राप्तिपूर्वकसामान्यलक्षणम् ।

रक्तपित्तकफान्वायुर्दुष्टो दुष्टान्बहिः शिराः ॥ नीत्वा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्यात्त्वङ्मांससंश्रयम् ॥ उत्सेधं संहतं शोथं तमाहुर्निचयादतः ॥ ३ ॥ सगौरवं स्यादनवस्थितत्वं सोत्सेधमूष्माऽथ शिरातनुत्वम् ॥ सलोमहर्षश्च विवर्णता च सामान्यलिंगं श्वयथोः प्रदिष्टम् ॥ ४ ॥

उत्सेधम् उन्नतत्वम् । किंविशिष्टम् उत्सेधम् । अतः पूर्वोक्तान्निचयाद्रक्तपित्तकफवातानां समुदायात् संहतं घनम् । तमुत्सेधं शोथमाहुरित्यन्वयः । तस्य शोथस्य किं स्यात् । इत्याकांक्षायामाह अनवस्थितत्वं स्यात्, अनियता स्थितिः स्यादित्यर्थः । चिकित्साव्यतिरेकेणापि निवृत्तेः । तच्च अनवस्थितत्वं सगौरवं स्यात् । गौरवमपि अनवस्थितं स्यात् । अथ च सोत्सेधं स्यात् । उन्नतत्वमपि अनवस्थितं स्यादित्यर्थः ॥

दूषित वायु रुधिर, पित्त तथा कफ यह बाहरकी शिराओंमे प्राप्त होय और गति रुकजाय तो त्वचा तथा मांसमे रुधिर, पित्त तथा कफके समुदायसे अधिक ऊँचाईको उत्पन्न करैहै उसको सूजन कहतेहैं, इस सूजनकी स्थिति अनियमित होतीहै, क्योकि वह सूजन समयपर चिकित्सा न होनेसे भी उतर जातीहै, यह अनियमितपन गुरुतायुक्त होताहै, गुरुता (भारीपन) भी विना नियमके होतीहै और सूजनकी ऊँचाई भी विना व्यवस्थाके होतीहै । सूजनसे उष्णता, शिराओंकी दुर्बलता, रोमोंका खडा होना और वर्णका बदलना ये सामान्य लक्षण सूजनमें होतेहैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथ वातजशोथलक्षणम् ।

चरस्तनुत्वक्परुषोऽरुणोऽसितः प्रसुप्तिहर्षार्तियुतोऽनिमित्ततः ॥ प्रशाम्यति प्रोन्नमति प्रपीडितो दिवाबली स्याच्छ्वयथुः समीरणात् ॥ ५ ॥

चरः सञ्चारी । प्रसुप्तिः स्पर्शाज्ञता । हर्षोऽत्र फिनिफिनी रोमाञ्चो वा । अर्तिः पीडा । एतद्युतः दिवाबली विकृतिविषमसमवायारब्धत्वात् । अत एव उक्तं चरकेण—

स्नेहोष्णवमनाद्यैर्यः प्रशाम्येत स वातिकः ॥ यश्चाप्यरुणवर्णः स्याच्छोथो नक्तं प्रशाम्यति ॥ ६ ॥

वायुसबंधी सूजन—चंचल, पतली त्वचावाली, कठोर, लाल, काली, स्पर्शमें अज्ञान, रोमाच तथा पीडा सहित, विना कारणही शात होनेवाली, दबानेसे ऊँची और दिनमें बलवान् होतीहै । इस सूजनमें दिनको बलवान् होनेका कारण यह है कि, वह विकृतिविषमसमवायसे होतीहै, इस कारणही चरकमें कहा है कि "जो सूजन स्नेहसे, उष्णसे तथा वमन आदिसे

शांत होय और लालवर्णकी हो वह सूजन वायुसंबधी जाननी" ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथपित्तजशोथलक्षणम् ।

मृदुः सगन्धोऽसितपीतरागवान्भ्रमज्वरस्वेदतृषामदान्वितः ॥ यस्तूष्यते स्पर्शसहोऽक्षिरागवान्स पित्तशोथो भृशदाहपाकवान् ॥ ७ ॥

उष्यते सन्तप्यते । भृशदाहपाकवान् भृशं दाहो यः पाकस्तद्युक्तः ॥

जो सूजन—मृदु, गन्धसहित, काले तथा पीलेवर्णवाली हो, भ्रम, ज्वर, स्वेद (पसीना), तृष्णा, तथा मदसे संयुक्त हो, दाह हो, स्पर्शको सहै, नेत्रोंमें लाली होजाय, और पकते समय अत्यत दाह हो उसको पित्त संबंधी जानना ॥ ७ ॥

अथ कफजशोथलक्षणम् ।

गुरुः स्थिरः पाण्डुररोचकान्वितः प्रसेकनिद्रावमिवह्निमान्द्यकृत् ॥ सकृच्छ्रजन्मप्रशमो निपीडितो न चोन्नमेद्रात्रिबली कफात्मकः ॥ ८ ॥

जो सूजन भारी, स्थिर, पाण्डुवर्णवाली होय, अरुचि, लारका झरना, निद्रा तथा वमनसे युक्तहो, अग्निको मंद करनेवाली हो, दवानेसे ऊँची न होती हो, रातमें बलवान् हो और जिसकी उत्पत्ति तथा शांति बहुत दुःखदायक हो उसको कफ संबंधी जानना ॥ ८ ॥

अथ द्विदोषजशोथलक्षणम् ।

निदानाकृतिसंसर्गाज्ज्ञेयः शोथो द्विदोषजः ॥ ९ ॥

जिसमें दो प्रकारके कारण दीखैं और उपरोक्त प्रकारोंमें दोके लक्षण मिलते होयँ तो वह सूजन दो दोषोंसे उत्पन्न हुई जाननी ॥ ९ ॥

अथ सन्निपातजशोथलक्षणम् ।

सर्वाकृतिः सन्निपाताच्छोथो व्यामिश्रलक्षणः ॥ १० ॥

व्यामिश्रलक्षण इत्युक्ते सर्वाकृतिरिति उक्तवातजादिशोथसकललक्षणनियमार्थम् ॥

जो सूजन मिश्रित लक्षणोंवाली, अथवा उपरोक्त सब सूजनोंके लक्षणोंवाली होय उसको सन्निपातिज जानना ॥ १० ॥

अथाभिघातजशोथलक्षणम् ।

अभिघातेन शस्त्रादिच्छेदभेदक्षतादिभिः ॥ हिमानिलोदध्यनिलैर्भल्लातकपिकच्छुजैः ॥ ॥ ११ ॥ रसैः शूकैश्च संस्पर्शाच्छ्वयथुः स्याद्विसर्पवान् ॥ भृशोष्मा लोहिताभासः प्रायशः पित्तलक्षणः ॥ १२ ॥

छेदः खड्गादिना । भेदः पाषाणादिना । क्षतं शरादिना । आदिना व्रणादि । आदिशब्देन लगुडप्रहारादि गृह्यते । भल्लातजैः रसैः । कपिकच्छुजैः शूकैः । विसर्पवान्प्रसरणशीलः । पित्तलक्षणः पैत्तिकशोथलक्षणः ॥

जो सूजन खड्ग आदिके छेदनसे, पत्थर आदिके भेदनसे, वाणआदिके घाव हो जानेसे, अथवा लकडी आदिके प्रहार होने आदि कारणोंसे हुई हो, अथवा भिलावेके रससे वा कौंछकी फलीके स्पर्शसे हुई होय, फैलतीहो, दाहयुक्त, लालवर्णवाली और अधिक करके पित्तसे हुई सूजनके लक्षणोंयुक्त हो वह सूजन अभिघातसे हुई जाननी ॥ ११ ॥ १२ ॥

अथ विषजशोथलक्षणम् ।

विषजः सविषप्राणिपरिसर्पणमूत्रणात् ॥ दंष्ट्रादन्तनखाघातादविषप्राणिनामपि ॥ ॥ १३ ॥ विण्मूत्रशुक्रोपहतमलवद्वस्तुसङ्करात् ॥ विषवृक्षानिलस्पर्शाद्गरयोगावचूर्णनात् ॥ मृदुश्चलोऽवलम्बी च शीघ्रो दाहरुजाकरः ॥ १४ ॥

परिसर्पणाच्छरीरोपरि सञ्चरणात् । दंष्ट्रा द्विगुणीकृता दन्तावलिः चोढ इति लोके । दन्ताः अग्रेभवाः । अविषप्राणिनां दंष्ट्रादिविषं शोथव्यथादिकरं भवतीति विशेषः । विण्मूत्रेत्यादि । विडाद्युपहतं मलिनञ्च यद्वस्तु, तथा संकरः सम्मार्जनीभिः क्षिप्तो-

धूल्यादिः तेषां सम्पर्कात्। गरयोगावचूर्णनात्, गरः संयोगजं विषं तस्य योगो यस्य तेन वस्तुना अवधूलनात्। अवलम्बी लम्बमानः। अयमपि आगन्तुजस्तथापि सामान्यागन्तुजशोथचिकित्सातोऽस्य विशिष्टचिकित्साभिधानात्पृथक्पठितः॥

शरीरके ऊपर विषैले जीवोंके फिरनेसे, अथवा मूतनेसे, जो जीव विषैले नहीं हैं उनके भी दाढ दाँतोंसे, नखोसे, आघात होनेसे, (विना विषवाले जीवोंके भी दाढ आदिका विष सूजन तथा पीडा आदिको उत्पन्न करताहै) विष्ठासे, मूत्रसे, वीर्यसे, उपहत हुई वस्तुके संबधसे, बुहारकर फेंकी हुई धूल आदि कूडेके संबंधसे, विषैले वृक्ष अथवा विषैली पवनके स्पर्शसे और जिसमें संयोगज विषका योग हुआ होय वह वस्तु शरीरके मिलनेसे जो सूजन उत्पन्न हुई हो उसको विषसे उत्पन्न हुई जाननी। यह सूजन—मृदु, चचल, लटकती हुई, तत्काल होनेवाली और पीडा अधिक करनेवाली होती है १३॥१४॥

अथ दोषस्थानस्थितिविशेषेण शोथस्थानविशेषः।

दोषाः श्वयथुमूर्द्धं हि कुर्वन्त्यामाशये स्थिताः॥ पित्ताशयस्था मध्ये तु वर्चःस्थानगतास्त्वधः॥ कृत्स्नं देहमनुप्राप्य कुर्युः सर्वसरास्तथा॥ १५॥

ऊर्द्धम् उरःप्रभृत्यूर्द्धम्। मध्ये उरःपक्काशयमध्ये। अधः पक्काशयादधः॥

दोष आमाशयमें रहनेवाले होयँ तो हृदयसे ऊपरके भागमे सूजनको उत्पन्न करैं हैं, पित्ताशयमें रहनेवाले होयँ तो हृदय और पक्वाशयके बीचमें सूजनको उत्पन्न करैंहैं, मलाशयमें रहनेवाले दोष होयँ तो पक्वाशयसे नीचेके भागमें सूजनको उत्पन्न करैहै, और सम्पूर्ण स्थानमें फैलेहुए होयँ तो सम्पूर्ण शरीरमें सूजन उत्पन्न करैंहैं॥ १५॥

अथ शोथोपद्रवाः।

छर्दिः श्वासोऽरुचिस्तृष्णाज्वरोऽतीसार एव च॥ सम्पाक आमदौर्बल्यं शोथस्यैत उपद्रवाः॥ १६॥

वमन, श्वास, अरुचि, तृषा, ज्वर, अतीसार, अत्यत पाक और अत्यंत निर्बलता ये सूजनके उपद्रव हैं॥ १६॥

अथ शोथासाध्यता।

श्वासः पिपासा छर्दिश्च दौर्बल्यं ज्वर एव च॥ यस्य चान्ने रुचिर्नास्ति शोथिनं तं विवर्जयेत्॥ १७॥

जिस सूजनवालेको श्वास, तृषा, वमन, निर्बलता, ज्वर और अन्नमें अरुचि हो उसकी चिकित्सा नही करै॥ १७॥

अथ शोथकष्टसाध्यत्वादिः।

यो मध्यदेशे श्वयथुः कष्टः सर्वांगगश्च यः॥ अर्द्धांगोऽरिष्टभूतः स्याद्यश्चोर्द्ध्वं परिसर्पति॥ १८॥

मध्यदेशे उरःपक्काशयमध्ये। सर्वांगः सकलशरीरव्यापी। सर्वांगज इति वा पाठः। सान्निपातिकः। अर्द्धांगः अर्द्धनारीश्वराकारः। यश्चोर्द्ध्वं परिसर्पतीति पुरुषविषयः। तथाच—

ऊर्द्धगामी नरं पद्भ्यामधोगामी तथा स्त्रियम्॥ उभयं वस्तिसञ्जातः शोथो हन्ति न संशयः॥ १९॥

ऊर्ध्वगामी मुखगामी। उभयं नरं नारीञ्च। तथाच तन्त्रांतरे—

पादात्प्रवृत्तः श्वयथुर्नृणां यः प्राप्नुयान्मुखमिति॥ २०॥

स न सिध्यतीति शेषः। अधोगामी पदगामी। तथाच तन्त्रान्तरे—

नृणां वक्त्रात्पदं याति वस्तिजश्च न सिध्यतीति॥ २१॥

अनन्योपद्रवकृतः शोथः पादसमुत्थितः॥ पुरुषं हन्ति नारीन्तु मुखजो वस्तिजो द्वयम्॥ २२॥

अयमर्थः । पादसमुत्थितः पादाभ्यामुत्थितो मुखगामीति यावत् । शोथः पुरुषं हन्ति । स किंविशिष्टः ? अन्योपद्रवकृतः शोथादन्ये व्याधयोऽतिसारग्रहण्यर्शःप्रभृतयः तेषामुपद्रवैः कृतः तदुपद्रवत्वेन जात इत्यर्थः । न अन्योपद्रवकृतः अनन्योपद्रवकृतः अर्थात् स्वहेतुभिरेव जातः । द्वयम् पुरुषञ्च नारीञ्च हन्ति सोऽपि अनन्योपद्रवकृत एव ॥

जो सूजन हृदय तथा पक्वाशयके मध्यमें हुई हो अथवा जो सूजन सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त होय (सान्निपातिक होय) वह सूजन कष्टसाध्य है । जो सूजन अर्द्धनारीश्वरके आकारकी आधे शरीरमें हुई होय वह सूजन मृत्युदायक है । पुरुषके हुई सूजन ज्यों ज्यों ऊपरको चढती है त्यों त्यों मृत्युको ढूँढकर, लातीहै । पुरुषोंके हुई सूजन पाँवोंसे ऊपरको चढै वह सूजन अवश्य मृत्यु करतीहै । स्त्रीके हुई जो सूजन मुखसे नीचे नीचे को जाय वह सूजन स्त्रीको अवश्य मारडालतीहै । जो सूजन मूत्राशयमें हुई हो वह सूजन पुरुष और स्त्री दोनोंको मारडालतीहै, इसमें कुछ भी संशय नहीं है । अन्य ग्रंथोंमे भी कहा है कि—" पुरुषोंके पावोंसे चढा जो शोथ मुखको प्राप्त होय और स्त्रीके मुखसे हुआ जो शोथ पाँवो को प्राप्त होय वह सूजन असाध्य है, पुरुष अथवा स्त्रीके मूत्राशयमें हुआ शोथभी असाध्यही है "। और भी कहा है कि—" पुरुषके पाँवोंमें हुई सूजन जो मुखमें जाय और अतीसार, ग्रहणी तथा बवासीर आदि अन्य रोगोंके उपद्रव रूप नहीं हुई हो अर्थात् अपने कारणोंसे ही हुई हो तो पुरुषको मारडालतीहै । स्त्रीके मुखमें हुई सूजन जो पाँवोंपर जाय और वह सूजन अतीसार, ग्रहणी तथा बवासीर आदि अन्य रोगोंके उपद्रवरूप न हुई हो, अर्थात् अपने कारणोंसे हुई वह स्त्रीको मारडालतीहै । मूत्राशयमें हुई जो सूजन अन्य रोगोके उपद्रव रूप नही हुई हो, अर्थात् अपने कारणोंसेही हुई हो वह सूजन पुरुष और स्त्री दोनोंको मारडालतीहै ॥ १८–२२ ॥

अथ शोथचिकित्सा ।

शुण्ठीपुनर्नवैरण्डपञ्चमूलीशृतं जलम् ॥ वातिके श्वयथौ शस्तं पानाहारपरिग्रहे ॥ २३ ॥ पटोलत्रिफलारिष्टदार्वीक्वाथः सगुग्गुलुः ॥ तद्वत्पित्तकृतं शोथं हन्ति श्लेष्मोद्भवं तथा ॥ २४ ॥ मिश्रे मिश्रक्रमं कुर्यात्सर्वजे सर्वमेव हि ॥ बिल्वपत्ररसं पूतं शोषणं त्रिभवे पिबेत् ॥ २५ ॥ शोथे त्वागन्तुजे कुर्यात्सेकलेपादि शीतलम् ॥ भल्लातक्या हरेच्छोथं सतिला कृष्णमृत्तिका ॥ २६ ॥ महिषीक्षीरसंपिष्टैर्नवनीतसमन्वितैः । तिलैर्लिप्तः शमं याति शोथो भल्लातकोत्थितः ॥ २७ ॥ यष्टीदुग्धतिलैर्लेपो नवनीतन संयुतः ॥ शोथमारुष्करं हन्ति चूर्णैः शालदलस्य च ॥ २८ ॥

विषजशोथचिकित्सा तु विषचिकित्सायां द्रष्टव्या ॥

सोंठ, पुनर्नवा, एरंड और बृहत्पंचमूल, इनका क्वाथ करके पिवै और भोजनमें भी उस क्वाथको ही सेवनकरै तो इससे वायुसंबंधी सूजन नष्ट होतीहै । परवल, हरड, बहेडा, आमला, नीम और दारुहलदी, इनका क्वाथकर उसमें गूगल डालकर पिये तो इससे पित्तसंबंधी और कफसंबंधी सूजन दूर होतीहै । जो सूजन दो दोषोंसे हुई हो उसमें दो दोषकी मिश्रित चिकित्सा करे और जो सूजन तीनों दोषोंमे हुई हो उसमें बेलके पत्तोंका रस निकाल करके वस्त्रसे छानके फिर उसमें सोंठ, मिरच तथा पीपलका चूर्ण डालकर पिये तो इससे सान्निपातिक सूजन नष्ट होतीहै । अथवा उपरोक्त तीनों दोषोंकी मिश्रित चिकित्सा करे । जो आगंतुज (अभिघात आदिसे) सूजन हुई हो तो उसके ऊपर शीतल सेचन तथा शीतल लेप आदिक करे । तिल और काली मिट्टी इनको पीसकर लेप करै तो इससे भिलावेकी सूजन दूर होतीहै । भैंसके दूधमें तिल पीसकर उसमें भैंसका मक्खन मिलाकर लेप करै तो भिलावेकी सूजन दूर होतीहै । मुलेठी, दूध, तिल और मक्खन इनका लेप करै तो भिलावेकी सूजन दूर होतीहै । अथवा शालके पत्तोंका चूर्ण पानीसे पिये तो भिलावेकी

सूजन दूर होतीहै । विषसे हुए शोथकी चिकित्सा तो विषकी चिकित्साके प्रकरणमे कहेंगे इसलिये उस प्रकरण-मेसे देख लेना ॥ २३-२८ ॥

अथ शोथसामान्यचिकित्सा ।

महिष्या नवनीतं वा लेपाद्दुग्धतिलान्वितम् ॥ २९ ॥

अत्र दुग्धश्च महिष्या एव ॥

पथ्यानिशाभार्ङ्ग्यमृताग्निदार्वीपुनर्नवादारुमहौषधानाम् ॥ क्वाथः प्रसह्योदरपाणिपादमुखाश्रितं हन्त्यचिरेण शोथम् ॥ ३० ॥

भैंसका मक्खन और भैंसका दूध इनमे तिल पीसकर लेपकरै तो सूजन दूर होतीहै । हरड, हलदी, भारंगी, गिलोय, चीता, दारुहलदी, पुनर्नवा, देवदार और सोंठ, इनका क्वाथ पेटमें, हाथमें, पाँवोंमें तथा मुखमें हुई सूजन तत्काल वलात्कारसे नष्ट करदेताहै । यह क्वाथ 'पथ्यादिक्वाथ' इस नामसे कहाजाताहै ॥ २९ ॥ ३० ॥

फलत्रिकोद्भवं क्वाथं गोमूत्रेणैव साधितम् ॥ वातश्लेष्मोद्भवं शोथं हन्याद्वृषणसम्भवम् ॥ ३१ ॥ वृश्चीवदेवद्रुमनागरैर्वादन्तीत्रिवृत्त्र्यूषणचित्रकैर्वा ॥ दुग्धं सुसिद्धं विधिना निपीतं गीतं परं शोथहरं भिषग्भिः ॥ ३२ ॥

अत्र वृश्चीवः श्वेतवर्षाभूः ॥

सेकस्तथार्कवर्षाभूनिम्बक्वाथेन शोथहृत् ॥ गोमूत्रेणापि कुर्वीत सुखोष्णेनावसेचनम् ॥ ३३ ॥ पुनर्नवा दारु शुण्ठी शिग्रुः सिद्धार्थकस्तथा ॥ अम्लपिष्टः सुखोष्णोऽयं प्रलेपः सर्वशोथहृत् ॥ ३४ ॥ गुडार्द्रकं वा गुडनागरं वा गुडाभयां वा गुडपिप्पलीं वा ॥ कर्षाभिवृद्ध्या त्रिपलप्रमाणं खादेन्नरः पक्षमथापि मासम् ॥ ॥ ३५ ॥ शोथप्रतिश्यायगलास्यरोगान्सश्वासकासारुचिपीनसादीन् ॥ जीर्णज्वरार्शोग्रहणीविकारान्हन्यात्तथान्यान्कफवातरोगान् ॥ ३६ ॥ विश्वं गुडेन तुल्यं वृश्चीवरसानुपानमभ्यस्तम् ॥ विनिहन्ति सर्वशोथं घनवृन्दं चण्डवायुरिव ॥ ॥ ३७ ॥ कणानागरकं चूर्णं सगुडं शोथनाशनम् ॥ आमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं वस्तिशोधनम् ॥ ३८ ॥

हरड, बहेडा तथा आमला, इनका क्वाथ कर गोमूत्रमें मिलाकर पिये तो इससे वृषणो (पोतो) में हुई वायुसंबंधी तथा कफसबंधी सूजन नष्ट होतीहै । अथवा सफेद पुनर्नवा, देवदारु और सोंठ, इनसे अथवा दन्ती, निसोत, सोंठ, मिरच, पीपल और चीता इनसे भलीभाँति पकाया-हुआ दूध योग्यविधिसे पिये तो सूजन अवश्य दूर होजाती-है ऐसा वैद्योंने कहा है। आक, पुनर्नवा और नीम, इनका क्वाथ करकै उस सूजनके ऊपर सेचन करै तो सूजन दूर होतीहै । गोमूत्रको किंचित् गरम करके उस सूजनके ऊपर सेचन करै तो सूजन दूर होतीहै । पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ, सहँजना और सरसों इनका क्वाथ करकै अम्लरसमें पीस किंचित् गरम करकै लेप करै तो सर्व प्रकारकी सूजन नष्ट होतीहै । गुड और अदरख, अथवा गुड और सोंठ, अथवा गुड और हरड वा गुड और पीपल इनका नित्य एक एक तोला अधिक करकै बारह तोलेतक सेवन करै इस भाँति एक मास अथवा एक पक्षतक खाय तो इससे सूजन, प्रतिश्याय, गलेके रोग, मुखके रोग, श्वास, खाँसी, अरुचि, पीनस, जीर्णज्वर, बवासीर, संग्रहणी और अन्यभी कफसंबंधी तथा वायुसंबंधी रोग दूर होजातेहैं अथवा सोंठ और गुड इनको समान भाग लेकर खाय और इसके ऊपर सफेद पुनर्नवाका रस पीनेका अभ्यास करै तो जिस प्रकार प्रचंड पवनसे बादलोंका समूह नष्ट होजाताहै उसी प्रकार सर्व प्रकारकी सूजन भी दूर हो जाती है । वा सोंठ और पीपल इनके चूर्णको गुडमें मिलाकर खावै इससे सूजन, आमाजीर्ण तथा शूल दूर होताहै और मूत्राशय शुद्ध होताहै ॥ ३१-३८ ॥

अथ गुडादिवटिका ।

गुडात्पलत्रयं ग्राह्यं शृङ्गवेरपलत्रयम् ॥ शृङ्गवेरसमा कृष्णा लोहविट्तिलयोः

पलम् ॥ चूर्णमेतत्समुद्दिष्टं सर्वश्वयथुनाशनम् ॥ ३९ ॥

बारह तोले गुड, बारह तोले सोंठ, बारह तोले पीपल, चार तोले कीटीकी भस्म और चार तोले तिल, इनको चूर्ण करके खाय तो सर्व प्रकारकी सूजन दूर होतीहै ३९॥

अथ मानकघृतम् ।

मानकक्काथकल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ एकजं द्वन्द्वजं शोथं त्रिदोषञ्च व्यपोहति ॥ ४० ॥

मानकदके क्काथमे मानकदकाही कल्क डालकर ६४ तोले घी पकावे तो 'मानकघृत' सिद्ध होताहै । इस घीके सेवन करनेसे एक दोष सबधी, दो दोषसंबधी, और तीनों दोष सबधी सूजन दूर होतीहै ॥ ४० ॥

अथ शुष्कमूलकतैलम् ।

शुष्कमूलकवर्षाभूदारुरास्नामहौषधैः ॥ पक्कमभ्यञ्जनं तैलं सशूलं श्वयथुं हरेत् ॥ ४१ ॥

इति शोथनिदानचिकित्साधिकारः ।

सूखीमूली, पुनर्नवा, देवदारु, रायसन और सोंठ इन औषधियोंके कल्कके द्वारा तैलको सिद्धकरे यह तेल शूल सहित सूजनको दूर करेहै ॥ ४१ ॥

इति शोथाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ वृद्धिब्रध्नाधिकारः ।

तत्र वृद्धिनिदानसंख्ये ।

दोषास्रमेदोमूत्रान्त्रैः स वृद्धिः सप्तधा गदः ॥ मूत्रान्त्रजावप्यनिलाद्धेतुभेदस्तु केवलः ॥ १ ॥

वात, पित्त, कफ, रुधिर, मेद, मूत्र और आँतें इन भेदोंसे वृद्धिरोग सात प्रकारका है । इनमें मूत्र और अन्त्रजन्य वृद्धि वातरूप निदानके होनेसे एकही प्रकारकी है तथापि निदान और चिकित्सामें भेद होनेसे अलग गिनी है ॥ १ ॥

अथ वृद्धिसम्प्राप्तिः ।

वृद्धिं करोति कोषस्थः फलकोषाभिवाहिनीः ॥ रुद्धा रुद्धगतिर्वायुर्धमनीर्मुष्क-गामिनीः ॥ २ ॥

अपने कारणोंसे कुपित हुई वायु अडकोषोंमें प्राप्त होकर अडकोषोंकी शिराओंको (नसोंको) रोककर अंडोंकी तथा त्वचाकी वृद्धि करतीहै ॥ २ ॥

अथ वातवृद्धिलक्षणम् ।

वातपूर्णदृतिस्पर्शो रूक्षो वातादहेतुरुक् ॥ ३ ॥

अहेतुरुक् अत्रेषदर्थे नञ् । तेन स्वल्पादपि विप्रकृष्टात् कारणाद्रुक् पीडा यत्र सः ॥

जो वृद्धि वायुसे भरीहुई मसककी समान स्पर्शवाली हो, रूक्ष हो, और जिसमें अंडकोषोंमे स्वल्प कारणोंसे पीडा हो, उसको वातकी वृद्धि जानना ॥ ३ ॥

अथ पित्तजन्यवृद्धिलक्षणम् ।

पक्कोदुम्बरसंकाशः पित्ताद्दाहोष्मपाकवान् ॥ ४ ॥

दाहः आभ्यन्तरः ऊष्मा बहिस्तप्तता ॥

जो वृद्धि पकेहुए गूलरके फलकी समान हो, दाह, गरमी और पकनेवाला हो उसको पित्तकी वृद्धि जानना ॥ ४ ॥

अथ कफवृद्धिलक्षणम् ।

कफाच्छीतो गुरुः स्निग्धः कण्डुमान्कठिनोल्परुक् ॥

जो वृद्धि शीतल होय, भारी होय, स्निग्ध (चिकनी) होय, खुजलीयुक्त होय, कठिन होय और जिसमें अल्प पीडा होय, उसको कफकी वृद्धि जानना ॥

अथ रुधिरवृद्धिलक्षणम् ।

कृष्णस्फोटावृतः पित्तवृद्धिलिङ्गश्च रक्तजः ॥ ५ ॥

कृष्णस्फोटावृत इति पैत्तिकोद्भवः ॥

जो वृद्धि काले फोडोंसे व्याप्त हो और जिसमें पित्तकी वृद्धिके सब लक्षण होयँ उस वृद्धिको रक्तकी जानना॥५॥

अथ मेदोवृद्धिलक्षणम् ।

कफवन्मेदसा वृद्धिर्मृदुस्तालफलोपमः ॥ ६ ॥

जो वृद्धि नरम होय, तालके फलकी समान नीली और गोल होय तथा जिसमें कफकी वृद्धिके सम्पूर्ण लक्षण मिलते होयँ उस वृद्धिको मेदकी जानना ॥ ६ ॥

अथ मूत्रवृद्धिलक्षणम् ।

मूत्रधारणशीलस्य मूत्रजः स तु गच्छतः ॥ अम्भोभिः पूर्णदृतिवत्क्षोभं याति सरुङ् मृदुः ॥ मूत्रकृच्छ्रमधः कुर्यात्सश्चलन्फलकोषयोः ॥ ७ ॥

सश्चलन्फलकोषयोः अधः मूत्रकृच्छ्रं मूत्रेण व्यथां कुर्यात् इत्यर्थः ॥

जिस मनुष्यको मूत्र रोकनेका अभ्यास होय अथवा स्वभाव होय उस मनुष्यको मूत्रकी वृद्धि होती है, मूत्रकी वृद्धि चलते समय जलसे भरी हुई, पखाल या मसककी समान हिलती है, पीडा होती है, नरम होती है, उसमें मूत्रकृच्छ्रकी समान वेदना हो और अंडकोषोंको चलायमान करती है ॥ ७ ॥

अथांत्रवृद्धिलक्षणम् ।

वातकोपिभिराहारैः शीततोयावगाहनैः ॥ धारणेरणभाराध्वविषमांगप्रवर्त्तनैः ॥८॥ क्षोभणैः क्षोभितोऽन्यैश्च क्षुद्रान्त्रावयवं यदा ॥ पवनो विगुणीकृत्य स्वनिवेशादधो नयेत् ॥ कुर्याद्वंक्षणसन्धिस्थो ग्रन्थ्याभं श्वयथुं तदा ॥ ९ ॥

धारणम् उपस्थितस्य वेगस्य । ईरणमनुपस्थितस्य वेगस्य प्रेरणम् । विषमांगप्रवर्तनं वक्रत्वेनांगमोटनम् । अन्यानि क्षोभणानि बलवद्विग्रहकठोरधनुराकर्षणादीनि तैः क्षोभितः सन्दूष्य सञ्चालितः पवनः यदा क्षुद्रान्त्रावयवं विगुणीकृत्य स्वनिवेशादधो नयेत् तदा वंक्षणसन्धिस्थः सन्वंक्षणसन्धौ ग्रन्थिरूपं श्वयथुं कुर्यात् इत्यर्थः ॥

उपेक्षमाणस्य च मुष्कवृद्धिमाध्मानरुक्स्तम्भवतीं स वायुः ॥ प्रपीडितोऽन्तःस्वनवान्प्रयाति प्रध्मापयन्नेति पुनश्च मुक्तः ॥ १० ॥

तत्र आध्मानमुदरे रुग् वृद्धयोर्मुष्कयोः स्तम्भो गात्रे तद्युक्तां कुर्यात् इत्यर्थः ॥

अन्त्रं विगुणमादाय वातो नयति वंक्षणम् ॥ वंक्षणात्तद्रुजा युक्तं फलकोषं प्रपद्यते ॥ ११ ॥

स मुष्कवृद्धिम् अन्तः उदरे प्रध्मापयन् आगमनमार्गं निरुद्धं कुर्वन् एति आयाति ॥

वायुको कुपित करनेवाले आहारोंके सेवन करनेसे, शीतल जलमें घुसकर स्नान करनेसे, मूत्रादिके वेगोको रोकनेसे, मूत्रादिको बलात्कारसे प्रवर्तन करनेसे, बहुत बोझको उठानेसे, बहुत मार्गके चलनेसे, अगोंकी विषम चेष्टा करनेसे और बलवानके साथ युद्ध तथा कठिन धनुष आदिको चढानेसे, इत्यादि कारणोसे अत्यंत क्षोभको प्राप्त हुई वायु छोटी छोटी ऑतोंके प्रदेशको दूषित करकै उनके स्थानसे नीचे लेजाती है तब वह वायु वृषण और कोषकी संधियोमें प्राप्त होकर उन सधियोंमें गाठकी समान सूजनको उत्पन्न करती है । यह अन्त्रवृद्धि कहीजाती है । जो इस अत्रवृद्धिकी उपेक्षा की जावे तो पेट अफरआताहै, बढेहुए वृषणोंमें पीडा होती है और शरीर स्तम्भितसा होजाताहै । इस वृद्धिको जो हाथसे दबायाजाय तो शब्द होकर भीतरको बैठजाती है और दबानेसे छोटी होकर फिर फूलजाती है ॥ ८–११ ॥

अथांत्रवृद्धिसाध्यलक्षणम् ।

यस्यान्त्रावयवाश्लेषो मुष्कयोर्वातसञ्चयात् ॥ अन्त्रवृद्धिरसाध्योऽयं वातवृद्धिसमाकृतिः ॥ १२ ॥

अत्रवृद्धि कि जिसमे वायुके संचय होनेसे दोनो वृषणोंमें ऑतोंके अवयव मिलजाते हैं वह यदि वायुकी वृद्धिकी समान आकारवाली होय तो उसको असाध्य जानना ॥ १२ ॥

अथ ब्रध्नस्यापि वृद्धिसमीपोत्पन्नत्वादत्र तन्निदानलक्षणमाह ।

अत्यभिष्यन्दिगुर्वन्नशुष्कपूत्यामिषाशनात् ॥ करोति ग्रन्थिवच्छोथं दोषो वंक्षणस-

न्धिषु ॥ ज्वरशूलांगसादाढ्यं तं ब्रध्नंति विनिर्दिशेत् ॥ १३ ॥

अत्यत अभिष्यन्दि पदार्थ, भारी अन्न, सूखा तथा दुर्गंधित सडाहुआ मास, इनको भक्षण करनेसे कोपको प्राप्त हुये दोष साथलकी सन्धियोंमें गांठकी समान सूजनको उत्पन्न करते हैं उस सूजनकी समान गिल्टीके होनेसे ज्वर, शूल तथा शरीरमें अत्यत ग्लानि होती है, यह सूजन ब्रध्न (बद) इस नामसे कही-जाती है ॥ १३ ॥

अथ वृद्धिरोगचिकित्सा।

वृद्धावत्यशनं मार्गमुपवासं गुरूणि च ॥ वेगाघातं पृष्ठयानं व्यायामं मैथुनं त्यजेत् ॥ १४ ॥ वातवृद्धौ पिबेत्स्निग्धं यथाप्राप्तं विरेचनम् ॥ सक्षीरश्च पिबेत्तैलं मासमेरण्डसम्भवम् ॥ १५ ॥

वृद्धिरोगवाले मनुष्यको अधिकतर भोजन, मार्ग, मूत्रादि वेगोंका रोकना, चलना, उपवास, भारी पदार्थोंका खाना, घोडे आदिकी सवारी, दृढ कसरत आदि परिश्रम और मैथुन ये सब त्यागदेने चाहिये। जो मिलसके ऐसे स्निग्ध विरेचन पीनेसे वातसम्बन्धी वृद्धि दूर होजाती है, दूध और अंडीके तेलको एक महीनेतक पीनेसे वातकी वृद्धि दूर होजाती है ॥ १४ ॥ १५ ॥

गुग्गुलुवेरण्डजं तैलं गोमूत्रेण पिबेन्नरः ॥ वातवृद्धिं जयत्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ १६ ॥ पित्तग्रन्थिक्रमेणैव पित्तवृद्धिमुपाचरेत् ॥ जलौकाभिर्हरेद्रक्तं वृद्धौ पित्तसमुद्भवे ॥ १७ ॥ चन्दनं मधुकं पद्ममुशीरं नीलमुत्पलम् ॥ क्षीरपिष्टं प्रलेपेन दाहशोथरुजापहम् ॥ १८ ॥

अंडीका तेल और गूगल इनको मिलाकर गोमूत्रके साथ पीनेसे बहुत दिनोंकी पुरानी वातकी वृद्धि तत्काल नष्ट होजाती है। जो चिकित्सा पित्तग्रन्थिकी कही है वही चिकित्सा योग्यायोग्य विचारकर पित्तकी वृद्धिकी भी करनी चाहिये, इससे पित्तकी वृद्धि नष्ट होजाती है। जोंक लगाकर रुधिर निकलवानेसे पित्तसम्बन्धि वृद्धि नष्ट होजाती है। लालचन्दन, मुलेटी, कमल, खस और नीले कमल इनको दूधमें पीसकर लेप करनेसे पित्तकी वृद्धिकी सूजन तथा दाहकी पीडा शांत होजाती-है ॥ १६–१८ ॥

त्रिकटुत्रिफलाक्काथं सक्षारलवणं पिबेत् ॥ विरेचनमिदं श्रेष्ठं कफवृद्धिविनाशनम् ॥ १९ ॥

सोंट, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा और आमला इनका क्काथ बनाकर उसमे जवाखार तथा सैंधानिमक डालकर पीनेसे कफकी वृद्धि दूर होती है। यह विरेचन कफकी वृद्धिको दूर करनेके लिये उत्तम है ॥ १९ ॥

लेपनाः कटुतीक्ष्णोष्णाः स्वेदनं सूक्ष्ममेव च ॥ परिषेकोपनाहौ च सर्वमुष्णमिहेष्यते ॥ २० ॥

तीखे, तीक्ष्ण तथा उष्णप्रलेप, सूक्ष्मस्वेदन, और सपूर्ण गरम सेचन और उष्ण बंधन, कफकी वृद्धिपर करने चाहिये ॥ २० ॥

मुहुर्मुहुर्जलौकाभिः शोणितं रक्तजे हरेत् ॥ पिबेद्विरेचनं वापि शर्कराक्षौद्रसंयुतम् ॥ २१ ॥

जो रुधिरकी अंडवृद्धि होय तो वारंवार जोंक लगवाकर रुधिर निकलवावे और खांड तथा सहत मिलाकर विरेचन पिये ॥ २१ ॥

शीतमालेपनं शस्तं सर्वं पित्तहरं तथा ॥ पित्तवृद्धिक्रमं कुर्यादामे पक्के च रक्तजे ॥ २२ ॥

रुधिरकी अंडवृद्धि कच्ची होय अथवा पकी होय तो भी उसके ऊपर शीतल प्रलेप करे और पित्त नाशक सपूर्ण क्रिया करे। रुधिरकी वृद्धिमें पित्तकी वृद्धिकी जो चिकित्सा कही है वह सब करनी चाहिये ॥ २२ ॥

स्विन्नमेदःसमुत्थन्तु लेपयेत्सुरसादिना ॥ शिरोविरेचनद्रव्यैः सुखोष्णैर्मूत्रसंयुतैः ॥ ॥ २३ ॥ संस्वेद्य मूत्रप्रभवं वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत् ॥ सीवन्याः पार्श्वतोऽधस्ताद्विध्येद्व्रीहिमुखेन वै ॥ २४ ॥ मुष्कको-

शमगच्छन्त्यामन्त्रवृद्धौ विचक्षणः ॥ वातवृद्धिक्रमं कुर्यात्स्वेदं तत्राग्निना हितम् ॥ २५ ॥

व्रीहिमुखेन शस्त्रविशेषेण । अगच्छन्त्याम् अस्रवन्त्याम् ॥

तैलमेरण्डजं पीत्वा बलासिद्धं यथोचितम् ॥ आध्मानशूलोपचितामन्त्रवृद्धिं जयेन्नरः ॥ २६ ॥ रास्नायष्ट्यमृतैरण्डबलारग्वधगोक्षुरैः ॥ पटोलेन वृषेणापि विधिना विहितं शृतम् ॥ रुवुतैलेन संयुक्तमन्त्रवृद्धिं व्यपोहति ॥ २७ ॥

मेदकी वृद्धिमें सेकादिक करके उसके ऊपर सुरसादि गणकी सम्पूर्ण औषधियोंका प्रलेप करे।

मूत्रसम्बन्धी वृद्धि होय तो शिरको खाली करनेवाली जो औषधि कही हैं उनमे गोमूत्र डालकर जरा गरम करके उनसे सेककरे. फिर वस्त्रकी पट्टीसे खूब बाँध देवे।

अन्त्रवृद्धि जो स्रवती न होय तो विचक्षण वैद्य सीवनीके पडखेके नीचेके भागमें व्रीहिमुख नामक शस्त्रसे वेध देवे और फिर वातसबन्धी वृद्धिकी समान चिकित्सा करै। अन्त्रवृद्धिपर अग्निसे सेककर स्वेदन करना हितकारीहै।

खिरैटीका चूर्ण डालकर पकाया हुआ अंडीका तेल यथारीतिसे पिये तो अफारे सहित तथा शूल सहित अन्त्रवृद्धि नष्ट हो जातीहै। रासना, मुलैठी, गिलोय, अंडकी जड, खिरैटी, अमलतास, गोखरू, कडवे परवल और अडूसा इनका विधिपूर्वक क्काथ बनाकर उसमें अंडीका तेल डालकर पान करनेसे अंत्रवृद्धि नष्ट होजातीहै। इसको रास्नादि क्काथ कहतेहैं ॥ २३-२७ ॥

गन्धर्वहस्ततैलेन क्षीरेण विहितं शृतम् ॥ विशालामूलजं चूर्णं वृद्धिं हन्ति न संशयः ॥ २८ ॥

विशाला इन्द्रवारुणी ॥

वचासर्षपकल्केन प्रलेपः शोथनाशनः ॥ शिग्रुत्वक्सर्षपैर्लेपाच्छोथश्लेष्मानिलापहः ॥ २९ ॥

अंडीका तेल, दूध और इन्द्रायनकी जडका चूर्ण इनका क्काथ बनाकर पीनेसे निःसन्देह अंडवृद्धि रोग नष्ट होताहै।

वच और सरसोंका कल्क बनाकर लेपकरनेसे वृद्धिकी सूजन दूर हो जाती है। सैंजिनेकी छाल और सरसो इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे वृद्धिकी सूजन कफ और वायु नष्ट होजातीहै ॥ २८ ॥ २९ ॥

वृद्धिबाधिका वटिका।

शुद्धसूतं तथा गन्धं मृतान्येतानि योजयेत् ॥ लौहं रंगं तथा ताम्रं कांस्यश्चाथ विशोधितम् ॥ ३० ॥ तालकं तुत्थकश्चापि तथा शङ्खवराटकम् ॥ त्रिकटु त्रिफला चव्यं विडङ्गं वृद्धदारकम् ॥ ३१ ॥ कर्चूरं मागधीमूलं पाठां सहपुषां वचाम्॥ एलाबीजं देवकाष्ठं तथा लवणपञ्चकम् ॥ ३२ ॥ एतानि समभागानि चूर्णयेदथ कारयेत् ॥ कषायेण हरीतक्या वटिकां टंकसंमिताम् ॥ ३३ ॥ एकां तां वटिकां यस्तु निर्गिलेद्वारिणा सह ॥ अण्डवृद्धिरसाध्यापि तथ्यं नश्यति सत्वरम् ॥ ३४ ॥

शुद्ध पारेकी भस्म, शुद्धगंधक, लोहेकी भस्म, रांगेकी भस्म, तांबेकी भस्म, कांसीकी भस्म, शुद्ध हरितालकी भस्म, शुद्ध तूतिया, शखकी भस्म, कौडीकी भस्म, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, चव्य, वायविडंग, विधारा, कचूर, पीपलामूल, पाढ, गंधपलाशी, वच, इलायचीके दाने, देवदारु और पाचोंनिमकइन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर हरडके क्काथमे खरल करकै चौवीस २ रत्तिकी गोलियां बना लेवै। इन गोलियोंमेंसे एक गोली नित्य जलके साथ निगल जाय तो अंत्रसम्बन्धी असाध्य वृद्धिभी तत्काल नष्ट होजातीहै ॥ ३०-३४ ॥

अथ ब्रध्न (वद) चिकित्सा।

भ्रष्टश्चैरण्डतैलेन सम्यक्कल्कोऽभयाभवः ॥

कृष्णासैन्धवसंयुक्तो ब्रध्नरोगहरः परः ॥ ३५ ॥ अजाजी हपुषा कुष्ठं गोमेदवदरान्वितम् ॥ काञ्जिकेन तु संपिष्टं तल्लेपो ब्रध्नजित्परः ॥ ३६ ॥

गोमेदं पत्रकम् । तथा निघण्टौ धन्वन्तरिः-

पत्रं दलाह्वयं रासं गोमेदं वसनाह्वयमिति ॥ ३७ ॥

इति वृद्धिब्रध्नरोगनिदानचिकित्साधिकारः ।

हरडका अच्छे प्रकारसे कल्क बनाकर उसको अंडीके तेलमें भूनकर पीपल तथा सैंधेनिमकका चूर्ण मिलाकर खाय तो ब्रध्न रोग अवश्य नष्ट होजाताहै ।

जीरा, पलाशी, कूट, तेजपात और बेर इनको काँजीमें पीसकर लेप करनेसे ब्रध्न रोग अवश्य नष्ट होजाताहै (मूल श्लोकमें जो गोमेद शब्द है उसका हमने यहां तेजपत्र ऐसा अर्थ किया है यह धन्वन्तरिनिघण्टुके अनुसार किया है, धन्वन्तरिनिघण्टुमें कहा है कि, पत्र, रास और गोमेद ये सब तेजपत्रके नाम हैं। जो जो नाम पत्रके अथवा वस्त्रके हैं वे सब तेजपत्रके जानने) ॥ ३५-३७ ॥

इति वृद्धिब्रध्नाधिकारः सपूर्णः ।

अथ गलगंडगंडमालाग्रंथ्यर्बुदाधिकारः ।

तत्र गलगंडलक्षणम् ।

निबद्धः श्वयथुर्यस्य मुष्कवल्लम्बते गले ॥ महान्वा यदि वा ह्रस्वो गलगण्डं तमादिशेत् ॥ १ ॥

निबद्धः दृढः अचलो वा । मुष्कवदण्डवत् । गले इति हनुमन्ययोरुपलक्षणम् । तथाच भोजः-

महान्तं शोथमल्पं वा हनुमन्यागलाश्रयम् । मुष्कवल्लम्बमानन्तु गलगण्डं विनिर्दिशेत् ॥ २ ॥

गलेमें बडी अथवा छोटी, दृढ, और अचल सूजन अंडकोषकी समान लटकती होय उसको गलगंड कहतेहैं। 'गलेमें जो सूजन लटकती हो' ऐसा कहना तो उपलक्षणमात्र है इसकारण ऐसा जानना कि ठोडी, डाढी और नाडमें जो ऐसी सूजन लटकती होय तो उसको भी गलगड कहतेहैं. भोज कहताहै कि "बडी अथवा छोटी सूजन डाढीमें अथवा ठोडीमें, नाडमें और गलेमें अडकोषकी समान लटकती होय उसको भी गलगड कहतेहैं" ॥ १ ॥ २ ॥

अथ गलगंडसम्प्राप्तिः ।

वातः कफश्चापि गले प्रदुष्टौ मन्ये तु संश्रित्य तथैव मेदः ॥ कुर्वन्ति गण्डं क्रमशः स्वलिङ्गैः समाचितं तं गलगण्डमाहुः ॥ ३ ॥

स्वलिंगैः वातकफमेदोलक्षणैः ॥

गलेमें दुष्ट हुए वायु, कफ और मेद ये सब गलेके मध्यमें प्राप्त होकर अनुक्रमसे अपने अपने लक्षणोंवाली सूजन करतेहैं वह रोग गलगड कहाजाताहै ॥ ३ ॥

अथ वातजगलगंडलक्षणम् ।

तोदान्वितः कृष्णशिरावनद्धः श्यावारुणो वा पवनात्मकस्तु ॥ पारुष्ययुक्तश्चिरवृद्ध्यपाको यदृच्छया पाकमियात्कदाचित् ॥ वैरस्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रशोषः ॥ ४ ॥

चिरवृद्ध्यपाकः चिरेण वृद्धिः अपाकश्च यस्य सः ॥

जो गलगंड तोदने सरीखी पीडायुक्त हो, काली शिराओंसे व्याप्त हो, कालापन तथा लाली लिये हो, उसको वातका जानना । यह गलगड कठिन होताहै, बहुत दिनोंमें बढताहै, पकता नहीं है और किसीसमय अपनी इच्छासे पकभी जाताहै, तथा उस रोगीका मुख नीरस रहताहै और तालु तथा गला सूखा रहताहै ॥ ४ ॥

अथ कफगलगंडलक्षणम् ।

स्थिरः सवर्णो गुरुरुग्रकण्डूः शीतो महांश्चापि कफात्मकस्तु ॥ चिराच्च वृद्धिं भजतेऽचिराद्वा प्रपच्यते मन्दरुजः कदाचित् ॥ माधुर्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रलेपः ॥ ५ ॥

कदाचित्प्रपच्यते वा पाकोऽपि चिराद्भवति । प्रलेपः श्लेष्मणा ॥

जो गलगण्ड स्थिर होय, जिस स्थानमें उत्पन्न हो उसी स्थानकी त्वचाके वर्णकी समान हो, भारी हो, तीक्ष्ण खुजली हो, शीतल हो और बडा हो उसको कफजन्य गलगण्ड जानना । यह गलगंड बहुत दिनोंमें बढताहै, बहुत दिनोंमे किसी समय पकजाताहै और मन्द पीडा होतीहै और उस रोगीके मुखका स्वाद स्निग्ध और मधुर रहताहै सदैव गलेसे शब्द होताहै और तालू तथा गला कफसे लिप्त रहताहै ॥ ५ ॥

अथ मेदोजन्यगलगण्डलक्षणम् ।

स्निग्धो मृदुः पाण्डुरनिष्टगन्धो मेदोऽन्वितः कण्डुयुतोऽरुजश्च ॥ प्रलम्बतेऽलाबुवदल्पमूलो देहानुरूपक्षयवृद्धियुक्तः ॥ ६ ॥ स्निग्धास्यता तस्य भवेच्च जन्तोर्गलेऽनुशब्दं कुरुते च नित्यम् ॥ ७ ॥

जो गलगण्ड नरम, पाडुवर्ण, दुर्गन्धित, खुजलीयुक्त, पीडारहित, तोम्बीकी समान लटकता हो, अल्प जडवाला हो और शरीरके बढनेसे बढता हो तथा शरीरके क्षीण होनेसे क्षीण होता हो, उस गलगंडको मेदसम्बन्धी जानना । यह गलगड जिस मनुष्यके उत्पन्न होताहै उस मनुष्यका मुख स्निग्ध रहताहै और सदैव गलेमेंसे शब्द होतारहताहै ॥ ६ ॥ ७ ॥

अथासाध्यगलगण्डलक्षणम् ।

कृच्छ्राच्छ्वसन्तं मृदु सर्वगात्रं संवत्सरातीतमरोचकार्तम् ॥ क्षीणश्च वैद्यो गलगण्डयुक्तं भिन्नस्वरं नैव नरं चिकित्सेत् ॥ ८ ॥

जिस गलगंडमें बडे कष्टसे धीरे धीरे श्वास लेसके, संपूर्ण शरीर नरम पड गया हो, अरुचि तथा क्षीणता होगई हो, स्वर बैठगया हो, तथा जिसको उत्पन्न हुए एक वर्ष बीतगया हो ऐसे गलगंडकी वैद्य चिकित्सा न करै ॥ ८ ॥

अथ गण्डमालालक्षणम् ।

कर्कन्धुकोलामलकप्रमाणैः कक्षांसमन्यागलवंक्षणेषु ॥ मेदःकफाभ्यां चिरमन्दपाकैः स्याद्गण्डमाला बहुभिश्च गंडैः॥९॥

कर्कन्धुः क्षुद्रबदरम् । कोलं बृहद्बदरम् । चिरमन्दपाकैः चिरेण मन्दोऽल्पः पाको येषां तैः ॥

कोखमें, कन्धोंमें, अथवा खवोंमें, नाडके पीछे मन्या नाडीमें, गलेमे, तथा वंक्षण स्थानमे मेद और कफसे छोटे बेरकी समान अथवा बडे बेरकी समान आमलेकी समान बहुतसी गड (गाठें) उत्पन्न होंयँ उसको गंडमाला कहतेहैं । ये गंड बहुत दिनोंमे थोडे थोडे पकतेहैं ॥ ९ ॥

अथापचीलक्षणम् ।

ते ग्रन्थयः केचिदवाप्तपाकाः स्रवन्ति नश्यन्ति भवन्ति चान्ये ॥ कालानुबन्धं चिरमादधाति सैवापचीति प्रवदन्ति केचित् ॥ १० ॥

ते ग्रन्थयः गण्डमालाया एव गण्डाः केचिदवाप्तपाकाः सन्तः स्रवन्ति । केचिन्नश्यन्ति संरोहन्ति । अन्ये भवन्ति च कालानुबन्धं चिरमादधाति सा गलगण्डमाला चिरं तिष्ठति सैवापचीति केचिद्वदन्ति ॥

उस गडमालाकी कोई कोई गड पककर स्रवने लगतीहैं, कोई कोई नष्ट होजातीहैं, और कोई कोई नवीन उत्पन्न होजातीहैं उन गडोंकी ऐसी स्थिति बहुत दिनोंतक रहतीहै, बहुत वैद्य इस गडमालाकोही 'अपची' कहतेहैं ॥ १० ॥

अथापचीसाध्यासाध्यता ।

साध्या स्मृता पीनसपार्श्वशूलकासज्वरच्छर्दियुता त्वसाध्या ॥ ११ ॥

विना उपद्रवकी अपची साध्य है किन्तु जो पीनस, पार्श्वशूल, खासी, ज्वर तथा वमनयुक्त होय तो असाध्य है ॥ ११ ॥

अथ ग्रन्थिलक्षणम् ।

वातादयो मांसमसृक्प्रदुष्टाः सन्दूष्य मेदश्च तथा शिराश्च ॥ वृत्तोन्नतं विग्रथितन्तु शोथं कुर्वन्त्यतो ग्रन्थिरिति प्रदिष्टः ॥ १२ ॥

विग्रथितं ग्रन्थिरूपम् अत एव ग्रन्थिः स पञ्चधा वातिकः पैत्तिकः श्लैष्मिको मेदोजः शिराजश्च इति ॥

वात, पित्त, कफ, मेद और शिरा ये मांस तथा रुधिरको दूषितकरके ऊंची तथा गोलाकार गांठ रूप सूजनको उत्पन्न करैहैं उन गांठोंको ग्रंथि कहतेहैं । वातज, पित्तज, कफज, मेदोज, और शिरासम्बन्धी इस प्रकार ग्रन्थिके पांच भेद है ॥ १२ ॥

अथ वातजग्रन्थिलक्षणम् ।

आयम्यते वृश्चति तुद्यते च प्रभ्रंशते मथ्यति भिद्यते च ॥ कृष्णो मृदुर्वस्तिरिवाततश्च भिन्नः स्रवेच्चानिलजोऽस्रमच्छम् ॥ १३ ॥

आयम्यते आकृष्य दीर्घ क्रियत इव । वृश्चति आश्रयं छिनत्ति इव । प्रभ्रंशते स्खलतीव । भिद्यते विदार्यत इव । आततः विस्तारित इव । मृदुः न तु अत्यन्तकठिनः । अस्रम् रुधिरम् । अच्छम् प्रकृतं स्रवेदित्यर्थः ॥

जो ग्रंथि मानो खींचकर बढाई गई हो ऐसी मालूम हो, अपने स्थलको छेदती हो, गिरीसी पडे, सुई चुभोने सरीखी पीडा हो, मथनेकी समान, चीरने सरीखी पीडा हो और स्वरकी समान फैल जाय, तथा काले रंगकी, अत्यन्त कठिन न होय, भेदने सरीखी पीडा हो और स्वाभाविक स्वच्छ रुधिर उसमेंसे स्रवता हो उसको वायुसंबंधी ग्रंथि जानना ॥ १३ ॥

अथ पित्तजग्रन्थिलक्षणम् ।

दन्दह्यते धूप्यति चूष्यते च पापच्यते प्रज्वलतीव चापि ॥ रक्तः सपीतोप्यथवापि पित्ताद्भिन्नः स्रवेदुष्टमतीव चास्रम् ॥ १४ ॥

दन्दह्यते भृशं दाहं करोति सकलशरीरे । धूप्यति अन्तस्तापं करोति । चूष्यते शृंगेण इव । पापच्यते भृशं पाकं करोति । प्रज्वलति इव अग्निरिव ज्वालायुक्त इव भवति ग्रन्थिः । अस्रम् रुधिरम् । अतीव दुष्टं कृष्णतादियुक्तम् ॥

जो ग्रंथि शरीरमे अग्निकी समान अत्यन्त दाह करती हो, अत्यन्त संताप देती हो, अत्यन्त पकतीहो, लाल अथवा पीली हो, जब वह फूटे तब उसमेंसे मज्जासहित दुष्ट और काला रुधिर निकले, उसमें चूसने सरीखी पीडा होय अर्थात् सींगी लगाकर चूसते हैं ऐसी पीडा हो, तथा अग्निकी समान ज्वालासे युक्त हो उसको पित्तकी ग्रन्थि जानना ॥ १४ ॥

अथ कफजग्रन्थिलक्षणम् ।

शीतोऽविवर्णोऽल्परुजोऽतिकण्डूः पाषाणवत्संहननोपपन्नः ॥ चिराभिवृद्धिश्च कफप्रकोपाद्भिन्नं स्रवेच्छुक्लघनञ्च पूयम् ॥ १५ ॥

अविवर्णः प्रकृतिवर्णः । पाषाणवत् संहननोपपन्नः संहततायुक्तः ॥

जो ग्रंथि शीतल हो, स्वाभाविक वर्णवाली हो, थोडी पीडावाली हो, अत्यन्त खुजलीयुक्त हो, पत्थरकी समान अत्यन्त कठिन हो, बहुत दिनोंमे वृद्धिको प्राप्त हो, जब वह फूटे तब उसमेंसे सुफेद तथा गाढी राध निकले उसको कफकी ग्रन्थि कहते है ॥ १५ ॥

अथ मेदोजग्रन्थिलक्षणम् ।

शरीरवृद्धिक्षयवृद्धिहानिः स्निग्धो महान् कंडुयुतोऽरुजश्च ॥ मेदः कृतो गच्छति चात्र भिन्ने पिण्याकसर्पिःप्रतिमन्तु मेदः ॥ १६ ॥

तिलसदृशं घृतसदृशं वा मेदः गच्छति स्रवतीत्यर्थः ॥

जो ग्रंथि शरीरके बढनेसे बढे, शरीरके क्षीण होनेसे क्षीण होती हो, स्निग्ध हो, बडी हो, खुजलीयुक्त हो, पीडारहित और फूटते समय खलकी समान अथवा घीकी समान उसमेंसे मेद स्रवे उस ग्रन्थिको मेदसंबधी जानना ॥ १६ ॥

अथ शिराजन्यग्रन्थिलक्षणम् ।

व्यायामजातैरबलस्य तैस्तैराक्षिप्य वायुश्च शिराप्रतानम् ॥ संकोच्य सम्पीड्य विशोष्य चापि ग्रन्थिं करोत्युन्नतमाशु वृत्तम् ॥ १७ ॥

निर्बल मनुष्य बलवान्के साथ युद्ध आदि परिश्रम करे तो उससे कुपित हुई वायु शिराओंके समूहको चलायमान करकै दबाकर, सचय करकै और सुखाकर तत्काल ऊँची तथा गोल आकारवाली ग्रथिको उत्पन्न करतीहै, इस ग्रथिको शिरासम्बधी जानना ॥ १७ ॥

अथ ग्रन्थिकष्टसाध्यासाध्यता ।

ग्रन्थिः शिराजः स तु कृच्छ्रसाध्यो भवेद्यदि स्यात्सरुजश्चलश्च ॥ अरुक्स एवाप्यचलो महांश्च मर्मोत्थितश्चापि विवर्जनीयः ॥ १८ ॥

तैस्तैर्बलवद्विग्रहादिभिः । आक्षिप्य चालयित्वा । सम्पीड्य संहतीकृत्य । अरुजत्वादियुक्ता अन्येऽपि ग्रन्थयोऽसाध्याः ॥

पञ्चैतानरुजो ग्रन्थीन्मर्मजानचलांस्त्यजेत् ॥ कपोलगलमन्यासु दुश्चिकित्स्या हि सन्धिषु ॥ १९ ॥

जो शिराजन्य ग्रथि पीडासहित हो और चचल होय तो कष्टसाध्य है, जो शिरासम्बन्धी ग्रथि पीडारहित हो, अचल हो, बडी हो और मर्मस्थलमें उत्पन्न हुई होय तो असाध्य है इसकारण इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। दूसरी ग्रथिभी जो पीडारहित, अचल, बडी और मर्मस्थलमे उत्पन्न हुई होय तो उसको भी असाध्य जानना क्योंकि भोजने भी कहा है कि "पांचप्रकारकी ग्रथियोंमें जो ग्रथी पीडारहित होय, मर्मस्थलमें उत्पन्न हुई हो और अचल हो उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये" । गाल (कपोल),नाड और संधियोंमे उत्पन्न हुई ग्रथियोंकी चिकित्सा करनी बहुत कठिन है ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथार्बुदस्य सम्प्राप्तिपूर्वकसामान्यलक्षणम् ।

गात्रप्रदेशे क्वचिदेव दोषा संमूर्च्छिता मांसमसृक्प्रदूष्य ॥ २० ॥ वृत्तं स्थिरं मन्दरुजं महान्तमनल्पमूलं चिरवृद्ध्यपाकम् ॥ कुर्वन्ति मांसोच्छ्रयमत्यगाधं तदर्बुदं शास्त्रविदो वदन्ति ॥ २१ ॥

महान्तं ग्रन्थ्यपेक्षया । चिरेण वृद्धिः यस्य तत् चिरवृद्धि । अपाकम् इति ग्रन्थेः सकाशादस्य भेदज्ञापकम् । अत्यगाधं दूरमनुप्रविष्टम् ॥

कोपको प्राप्त हुए दोष शरीरके किसी प्रदेशमेभी मांसको तथा रुधिरको दूषित करकै गोल आकारवाली, स्थिर, अल्प पीडावाली, ग्रथिकी अपेक्षा बडी, बहुत उठी हुई, बडी जडवाली, बहुत समयमे बढनेवाली और बहुत दिनोंमें भी नहीं पकनेवाली मासकी ऊचाईको उत्पन्न करे है । शास्त्रवेत्ता इस मासकी ऊंचाईको अर्बुद कहतेहैं, देशभाषामें इसको रसोली कहतेहैं । ग्रथी पकती है और अर्बुद नहीं पकताहै ॥ २० ॥ २१ ॥

अथार्बुदनिदानपूर्वकविशिष्टलक्षणम् ।

वातेन पित्तेन कफेन चापि रक्तेन मांसेन च मेदसा च॥ तज्जायते तस्य च लक्षणानि ग्रन्थेः समानानि सदा भवन्ति ॥२२॥

ग्रन्थेः समानानि वातिकपैत्तिकश्लैष्मिकमेदोजानाम् अर्बुदानां लक्षणानि तुल्यानि भवन्ति ॥

यह अर्बुद—वात, पित्त,कफ, रुधिर, मास और मेदसे उत्पन्न होताहै, और इसमें वात, पित्त, कफ तथा मेदके अर्बुदके लक्षण सर्वदा ग्रथियोके लक्षणोकी समान होतेहैं ॥ २२ ॥

अथ रुधिरजन्यार्बुदनिदानसम्प्राप्तिलक्षणानि ।

दोषःप्रदुष्टो रुधिरं शिराश्च संकोच्य सम्पीड्य ततस्त्वपाकम् ॥ सास्रावमुन्नह्यति मांसपिण्डं मांसांकुरैरावृतमाशु वृद्धिम् ॥ ॥ २३ ॥ स्रवत्यजस्रं रुधिरं प्रदुष्टमसाध्यमेतद्रुधिरात्मकं तु ॥ रक्तक्षयोपद्रवपीडितत्वात्पाण्डुर्भवेदर्बुदपीडितस्तु ॥२४॥

दोषोऽत्र पित्तम् । रुधिरं शिराश्च संकोच्य सम्पीड्य संहतीकृत्य मांसासृजोः सर्वेषु अर्बुदेषु दूष्यत्वम् । रक्तजे तु

विशेषतो रक्तदुष्टिः। एवं मांसार्बुदे विशेषतो मांसदुष्टिर्बोद्धव्या । ततः मांसपिण्डम् उन्नह्यति उद्वृतं करोति । अपाकम् ईषत्पाकं यथा स्यादेवमिति क्रियाविशेषणम्। ईषत्पाकश्चैकदेशपाकेन । रक्तक्षयोपद्रवाः सुश्रुतोक्ताः तैः पीडितत्वात्। अर्बुदपीडितः रक्तार्बुदपीडितः ॥

दुष्ट हुआ पित्त रुधिरको तथा शिराओंको सकुचित करकै तथा जिससे एकत्रित होजाय ऐसी रीतिसे दबाकर, स्रावयुक्त, मासके अकुरोंसे व्याप्त, और तत्काल बढनेवाले तथा यत्किंचित् पकनेवाले मांसके पिंडको उत्पन्न करते हैं और उसमेंसे दूषित रुधिर नित्य स्रवताहै इसको रुधिरजन्य अर्बुद कहतेहैं। यह अर्बुद असाध्य है । इस अर्बुदसे पीडित मनुष्य सुश्रुतमें कहे हुए रुधिरके क्षयके उपद्रवोंसे पीडित होकर पाडुवर्ण होजाताहै। सर्वप्रकारके अर्बुदोंमें मास तथा रुधिर दूषित होताहै और रुधिरसे उत्पन्न हुए अर्बुदमें तो विशेष करकै रुधिर दूषित होताहै तथा मासके अर्बुदमें विशेष करकै मास दूषित होताहै ॥ ॥ २३ ॥ २४ ॥

अथ मांसार्बुदसम्प्राप्तिः।

मुष्टिप्रहारादिभिरर्दितेऽङ्गे मांसं प्रदुष्टं समुपैति शोथम् ॥ अवेदनं स्निग्धमनन्यवर्णमपाकमश्मोपममप्रचाल्यम् ॥ २५ ॥

मांसं प्रदुष्टं वातेन। अवेदनम् वेदनारहितमीषद्वेदनं वा। अपाकं पाकरहितमीषत्पाकं वा ॥

मुष्टि आदिके प्रहारसे अग पीडित होकर उस अगके पीडित होनेसे वात कुपित होकर मासमें वेदनारहित, अथवा अल्पवेदनासहित स्निग्ध, अभिन्न वर्णवाली, वा नहीं पकनेवाली, अथवा कुछेक पकनेवाली, पत्थरकी समान और अचल ऐसी सूजनको उत्पन्न करैहै ॥ २५ ॥

अथ मांसजन्यार्बुदनिदानम्।

प्रदुष्टमांसस्य नरस्य गाढमेतद्भवेन्मांसपरायणस्य ॥ २६ ॥

मांसाशनाभ्यासेन यः प्रदुष्टमांसस्तस्य एतद्भवतीत्यर्थः ॥

मासको भक्षण करनेके अभ्याससे जिसका मांस दुष्ट हो जाताहै उसके यह दृढ अर्बुद उत्पन्न होताहै ॥ २६ ॥

अथासाध्यार्बुदलक्षणम्।

मांसार्बुदं त्वेतदसाध्यमाहुः साध्येष्वपीमानि विवर्जयेच्च ॥ संप्रस्रुतं मर्मसु यच्च जातं स्रोतःसु वा यच्च भवेदचाल्यम् ॥ २७ ॥

साध्येष्वपि वातजादिष्वपि इमानि वक्ष्यमाणानि विवर्जयेच्च सम्प्रस्रुतादीनि ॥

मांससे उत्पन्न हुआ अर्बुद असाध्य है ऐसा वैद्योंने कहा है, वातादिसे जो उत्पन्न हुये अर्बुद वे साध्य हैं, उनमें भी जो अर्बुद स्रावयुक्त, मर्मस्थलमें उत्पन्न हुआ, स्रोतोंमें उत्पन्न हुआ और अचल होय उसकी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ २७ ॥

अथार्बुदापाके कारणम्।

यज्जायतेऽन्यत्खलु पूर्वजाते ज्ञेयं तदध्यर्बुदमर्बुदज्ञैः ॥ यद्द्वन्द्वजातं युगपत्क्रमाद्वा द्विरर्बुदं तच्च भवेदसाध्यम् ॥ २८ ॥

प्रथम उत्पन्न हुये अर्बुदमें जो दूसरा अर्बुद उत्पन्न हो जाय तो उसका नाम अध्यर्बुद, कहा जाताहै। यह अध्यर्बुद एकही समय अथवा अनुक्रमसे उत्पन्न हुआ होय और दो दोषोंसे उत्पन्न हुआ हो तो असाध्य है॥२८॥

न पाकमायान्ति कफाधिकत्वान्मेदोबहुत्वाच्च विशेषतस्तु ॥ दोषस्थिरत्वाद्ग्रथनाच्च तेषां सर्वार्बुदान्येव निसर्गतस्तु ॥ २९ ॥

ग्रथनाद्ग्रन्थिरूपत्वात्। ननु अपच्यां कफमेदसोराधिक्येऽपि पाको दृश्यते, तथा अत्र कथं न पाक इत्याह। निसर्गतः स्वभावात् ॥

सर्व प्रकारके अर्बुद कफकी तथा मेदकी अधिकतावाले और विशेष करकै दोषोंकी स्थिरतावाले तथा गाठरूप होयें वेभी नहीं पकते हैं।

शंका—अपचीमें कफ तथा मेद अधिक होताहै,

तो भी अपचीका पाक होताहै । फिर अर्बुदका पाक क्यो नही होता ।

समाधान—अर्बुदका स्वभाव ही ऐसा है कि जिससे पाक बहुत कालतक नही होता और होय तो बहुत थोडा पकताहै ॥ २९ ॥

अथ गलगंडचिकित्सा ।

सर्षपाञ्छिग्रुबीजानि शणबीजातसीयवान् ॥ मूलकस्य च बीजानि तक्रेणाम्लेन पेषयेत् ॥ ३० ॥ गलगण्डो गण्डमाला ग्रन्थयश्चैव दारुणाः ॥ प्रलेपादेव नश्यन्ति विलयं यान्ति सत्वरम् ॥ ३१ ॥ रक्षोघ्नतैलयुक्तेन जलकुम्भीकभस्मना ॥ लपनं गलगण्डस्य चिरोत्थस्यापि शस्यते ॥ ३२ ॥

रक्षोघ्नः सर्षपः ॥

श्वेतापराजितामूलं प्रातः पिष्ट्वा पिबेन्नरः ॥ सर्पिषा नियताहारो गलगण्डप्रशान्तये ॥ ॥ ३३ ॥ तिक्तालाबूफले पक्के सप्ताहमुषितं जलम् ॥ सद्यः स्याद्गलगण्डघ्नं पानात्पथ्यान्नसेविनाम् ॥ ३४ ॥ तैलं पिबेद्वाऽमृतवल्लिनिम्बहिंस्राभयावृक्षकपिप्पलीभिः ॥ सिद्धं बलाभ्यां सह देवदारुणा हिताय नित्यं गलगण्डरोगिणः ॥ ३५ ॥

वृक्षकोऽत्र तुणिः । उक्तश्च निघण्टौ धन्वन्तरिणा—

तुणिस्तूणीकशीतश्च नन्दिवृक्षश्च वृक्षकः ३६

बलाभ्यां बलातिबलाभ्याम् ॥

सरसों, सैंजिनेके बीज, सनके बीज, अलसी, जौ और मूलीके बीज इनको खट्टे मट्ठेमें पीसकर गाढा लेपकरे, इससे गलगड, गडमाला और दारुण ग्रंथि तत्काल नष्ट होजाती और गलजातीहै ।

खिवारकी भस्म बनाकर उसको सरसोंके तेलमें पकाकर लेपकरै तो बहुत दिनोका गलगण्डभी शांत होजाताहै

श्वेत अपराजिता (कोइली) की जडको पीसकर प्रातःकाल घीके साथ पिये और इसपर पथ्य आहार करै तो गलगण्ड शांत होजाता है ।

कडवी तोम्बीके पके हुए फलमे पानीको भरकर सात दिनतक रख देवे, फिर उसको पीवे और पथ्य आहार सेवन करे तो उससे गलगड तत्काल नष्ट होजाताहै ।

गिलोय, नीम, हिंस्रकवृक्ष, हरड, वेलियापीपल, पीपल, दोनोंप्रकारकी खिरैटी और देवदारु इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल नित्य पिये तो गलगड रोग अवश्य नष्ट होजाता है । इसको अमृतादि तैल कहते हैं ॥ ३०–३६ ॥

यवमुद्गपटोलादिकटुरूक्षान्नभोजनम् ॥ वमनं रक्तमोक्षश्च गलगण्डे प्रयोजयेत् ॥ ॥ ३७ ॥ दापयेत्प्रच्छनान्यत्र गण्डगोपालिकोद्भवः ॥ प्रलेपस्त्वनुभूतोऽयं बहुधा बहुभिर्जनैः ॥ ३८ ॥

प्रच्छनानि पच्छना इति लोके । गण्डगोपालिका गण्डगुयालीति च प्रसिद्धा । आम्रवाटिकायां सुलभः कीटविशेषो भवति ॥

लवणं जलकुम्भश्च कणाचूर्णेन संयुतम् ॥ प्रभाते नित्यमश्नीयाद्गलगण्डप्रशान्तये ॥ ३९ ॥

गलगड रोगमें जौ, मूँग, कडवे परवल, तीक्ष्ण तथा रूक्ष पदार्थ भोजन करने चाहियें, वमन करनी, और रुधिर निकलवाना चाहिये ।

गलगडपर पछने लगावे और उसपर गडगोपाल नामक कीडेका लेप करे इससे गलगण्ड नष्ट होजाताहै यह प्रयोग बहुतसे मनुष्योंने बहुतही वार अनुभव किया है ।

सियारकी भस्म बनाकर उसमें पीपलका चूर्ण डालकर नित्य प्रात.काल पिये तो गलगण्ड नष्ट होजाताहै ॥ ३७–३९ ॥

अथ गण्डमालाचिकित्सा ।

काञ्चनारत्वचः क्वाथः शुण्ठीचूर्णेन संयुतः ॥ माक्षिकाढ्यः सकृत्पीतः क्वाथो

वरुणमूलजः ॥ ४० ॥ गण्डमालां हरत्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ ४१ ॥ पलमर्द्धपलश्चापि पिष्टां तण्डुलवारिणा ॥ काञ्चनारत्वचं पीत्वा गण्डमलां व्यपोहति ॥ ४२ ॥

कचनारकी छालका क्काथ बनाकर उसमे सोटका चूर्ण डालकर पिये तो एकही वारमें गण्डमाला नष्ट होजाती है।

वरनाकी जडका क्काथ बनाकर उसमे सहत डालकर पिये तो एकही वारमें तत्काल बहुत दिनोकी पुरानी गण्डमाला नष्ट होजाती है।

दो तोले अथवा चार तोले कचनारकी छाल लेकर उसको चावलोंके पानीमें पीसकर पिये तो गण्डमाला नष्ट होतीहै ॥ ४०–४२ ॥

अथ कांचनारगुग्गुलुः ।

कांचनारस्य गृह्णीयात्त्वचं पंचपलोन्मिताम् ॥ नागरस्य कणायाश्च मरिचस्य पलं पलम् ॥ ४३ ॥ पथ्याविभीतधात्रीणां पलमर्द्धं पृथक्पृथक् ॥ वरुणस्याक्षमेकं च पत्रकैलात्वचं पुनः ॥ ४४ ॥ टंकंटंकं समादाय सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत्॥ यावच्चूर्णमिदं सर्वं तावानेवात्र गुग्गुलुः ॥ ४५ ॥ संकुट्य सर्वमेकत्र पिण्डं कृत्वा विधारयेत् ॥ गुटिकाः शाणिकाः कृत्वा प्रभाते भक्षयेन्नरः ॥ ४६ ॥ गलगण्डं जयत्युग्रमपचीमर्बुदानि च ॥ ग्रन्थीन्व्रणानि गुल्मांश्च कुष्ठानि च भगन्दरम् ॥ ॥ ४७ ॥ प्रदेयश्चानुपानार्थं क्काथो मुण्डितिकाभवः ॥ क्काथः खदिरसारस्य क्काथः कोष्णोऽभयाभवः ॥ ४८ ॥

कचनारकी छाल २० तोले, सोंट ४ तोले, पीपल ४ तोले, मिर्च ४ तोले, हरट २ तोले, बहेडे २ तोले, आंवले २ तोले, वरना १ तोला, तेजपात २४ रत्ती, इलायची २४ रत्ती और दालचीनी २४ रत्ती लेवे, इन सबको एकत्र करके बारीक चूर्ण बनावे, फिर इस सब चूर्णकी बराबर गूगल मिलाकर उत्तम विधिसे कूटकर गोली बनालेवे। इसको कांचनार गूगल कहतेहैं। इस गूगलकी चौबीस चौबीस रत्तीकी गोलिया बनावे। प्रातःकाल एक गोली नित्य खाय तो महाउग्र गलगड, अपची, अर्बुद, ग्रथि, व्रण, गुल्म, कोढ तथा भगन्दर यह सब नष्ट होजातेहैं। इन गोलियोंपर अनुपानके लिये कुछ कुछ गरम गोरखमुण्टीका अथवा खैरसारका वा हरडक क्काथ पिये ॥ ४३–४८ ॥

अथ चक्रमर्दतैलम् ।

चक्रमर्दकमूलस्य पले कल्के विपाचयेत् ॥ केशरागरसे तैलं कटुकं मृदुनाग्निना ॥ ॥ ४९ ॥ पादांशिकं विनिक्षिप्य सिन्दूरमवतारयेत् ॥ एतत्तैलं निहन्त्याशु गंडमालां सुदारुणाम् ॥ ५० ॥ केशरागो भृंगराजः ॥

पमारकी जडका कल्क चार तोले डालकर भांगरेके रसमें सरसोंके तेलको मद मद अग्निसे पकावे जब पकजाय तब उसमे चौथाई भाग सिन्दूर डालकर उतार लेवे तो चक्रमर्दतैल सिद्ध होताहै इस तेलकी मालिस करनेसे तत्काल महादारुण गडमाला नष्ट होजातीहै ॥४९॥५०॥

अथ गुञ्जातैलम् ।

गुञ्जामूलफलैस्तैलं विपक्वं द्विगुणाम्भसा ॥ हरेदभ्यंगनस्याभ्यां गण्डमालां सुदारुणाम् ॥ ५१ ॥

चौटलीकी जड तथा चौटलीके बीज इनका कल्क डालकर दुगुने जलसे तेलको पकावे तो यह 'गुजातैल सिद्ध होताहै। इस तेलका अभ्यग और नस्य लेनेसे महादारुण गटमाला नष्ट होजातीहै ॥ ५१ ॥

अथापचीचिकित्सा ।

तत्र चन्दनादितैलम् ।

चन्दनं साभया लाक्षा वचा कटुकरोहिणी ॥ एतत्तैलं शृतं पीत्वा समूलामपची हरेत् ॥ ५२ ॥

लालचंदन, हरड, लाख, वच और कुटकी, इनके क्वाथमें पकाया हुआ तेल 'चंदनादितैल' कहाजाता है इस तेलको पीनेसे जडसहित अपची नष्ट होजातीहै ॥ ५२ ॥

अथ व्योषादितैलम्।

व्योषं विडंगमधुकं सैन्धवं देवदारु च॥ तैलमेभिः शृतं नस्यात्सकृच्छ्रामपचीं हरेत् ॥ ५३ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, मुलैठी, सैंधानिमक और देवदारु इनके क्वाथमें पकायाहुआ तेल 'व्योषादितैल' कहाजाताहै। इस तेलका नास देनसे दारुण अपची नष्ट होजातीहै ॥ ५३ ॥

अथ ग्रंथ्यर्बुदचिकित्सा।

स्वर्जिकामूलकक्षारःशङ्खचूर्णसमन्वितः॥ एतेन विहितो लेपो हन्ति ग्रन्थिं तथार्बुदम् ॥५४॥ ग्रन्थिर्न यो नश्यति भेषजेन निष्कास्य तं शस्त्रचिकित्सितेन ॥जात्यादिपकेन घृतेन वैद्यो व्रणेन चान्येन च संचिकित्सेत् ॥ ५५ ॥ ग्रन्थिमुद्धृत्य तत्रापि व्रणोक्तं क्रममाचरेत् ॥ शिराग्रन्थिं विहायान्ये शेषे शस्त्रं प्रयुञ्जते ॥ ५६ ॥

सज्जी, मूलीका खार और शंखका चूर्ण इनको पीसकर लेप करनेसे ग्रंथि तथा अर्बुद नष्ट होजाताहै ॥

जिस ग्रंथिमें औषधिसे आराम न होय तो उसको वैद्य शस्त्रचिकित्सासे निकाल देवे फिर व्रणकी समान जात्यादिघृत अथवा अन्यान्य व्रणमें हितकारक औषधियोंको उपयोग करे ॥

गाठको निकालकर फिर व्रणकी समान चिकित्सा करनी चाहिये केवल शिराजन्य ग्रंथिको छोडकर बाकी सर्वप्रकारकी ग्रथियोंकी शस्त्रसे चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५४-५६ ॥

ग्रन्थ्यर्बुदानां न यतो विशेषः प्रदेशहेत्वाकृतिदोषदूष्यैः ॥ अतश्चिकित्सेद्भिषगर्बुदानि विधानविद्ग्रन्थिचिकित्सितेन ॥ ५७ ॥

अन्य आचार्य ऐसा कहतेहैं कि, ग्रंथि और अर्बुदोके प्रदेशोंमे, निदानोमें, आकारोंमे, दोषोंमे और दूष्योंमें कुछभी अन्तर नही है। इस कारण शस्त्रचिकित्साको जाननेवाले वैद्य अर्बुदपरभी ग्रथिकी समान चिकित्सा करें ॥ ५७ ॥

हरिद्रालोध्रपत्राङ्गगृहधूममनःशिलाः ॥ मधुप्रगाढलेपोऽयं मेदोऽर्बुदहरः परः ॥ ॥ ५८ ॥ मूलकस्य कृतः क्षारो हरिद्रायास्तथैव च ॥ शंखचूर्णेन संयुक्तो लेपः सिद्धोऽर्बुदापहः ॥ ५९ ॥

हलदी, लोध, पतंग, घरका धुँआँसा और मैनशिल इनको सहतमे मिलाकर लेप करनेसे मेदसम्बन्धी अर्बुद नष्ट होजाताहै ॥

मूलीकी भस्म, हलदीकी भस्म और शंखका चूर्ण इन सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे अर्बुद नष्ट होजाताहै। अर्बुद दूर करनेका यह सिद्ध उपाय है ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

वटदुग्धकुष्ठरोमकलिप्तं बद्धं वटस्य पत्रेण॥ अध्यस्थि सप्तरात्रान्महदप्युपशान्तिमर्बुदं गच्छेत् ॥ ६० ॥

बडका दूध, कूठ और सांभरनिमक इनका अर्बुदके ऊपर लेप करे और ऊपरसे बडके पत्ते बाँध देवे तो हड्डीके ऊपर उत्पन्न हुआ भी अर्बुद नष्ट होजाताहै॥ ६० ॥

शिग्रुमूलकयोर्बीजं रक्षोघ्नं सुरसा यवम् ॥ तक्रेणाश्वरिपोः पिष्ट्वा लिम्पेदर्बुदशान्तये ॥ ६१ ॥

रक्षोघ्नं सर्षपम्। सुरसा तुलसी। यवम् इन्द्रयवम्। अश्वरिपुर्महिषी।

इति गलगण्डगण्डमालाग्रन्थ्यर्बुदनिदानचिकित्साधिकारः।

सैंजिनेके बीज, मूलीके बीज, सरसों, तुलसी और इन्द्रजौ इनको भैंसके तक्रमे पीसकर लेप करनेसे अर्बुद नष्ट होजाताहै ॥ ६१ ॥

इति गलगडगंडमालाग्रथ्यर्बुदाधिकारः सम्पूर्णः।

अथ श्लीपदाधिकारः ।

तत्र श्लीपदसामान्यकारणम् ।

पुराणोदकभूयिष्ठाः सर्वर्तुषु च शीतलाः ॥ ये देशास्तेषु जायन्ते श्लीपदानि विशेषतः ॥ १ ॥

विशेषत इति वचनेन अन्यत्रापि श्लीपदं भवतीति बोध्यते ॥

जिस देशमें मेहका जल बहुत दिनोंतक भरा रहताहै और सब ऋतुओंमें जिसमें शीतलता रहतीहै उस देशमें श्लीपद रोग विशेष करके उत्पन्न होताहै ॥

"विशेष करके" ऐसा कहनेसे यह समझना चाहिये कि अन्य देशोंमें भी श्लीपद रोग उत्पन्न होताहै ॥ १ ॥

अथ श्लीपदसामान्यलक्षणम् ।

यः सज्वरो वङ्क्षणजो भृशार्तिः शोथो नृणां पादगतः क्रमेण ॥ तच्छ्लीपदं स्यात्करकर्णनेत्रशिश्नौष्ठनासास्वपि केचिदाहुः ॥ २ ॥

तत्त्रिविधम् । वातिकं पैत्तिकं श्लैष्मिकञ्चेति ॥

मनुष्योंकी साथलोंकी जडमें जो सूजन ज्वरसहित और अत्यत पीडायुक्त अनुक्रमसे धीरे धीरे पावमें पहुचे उस सूजनको श्लीपद कहतेहैं । कितनेक आचार्य कहतेहैं कि हाथ, कान, नेत्र, लिंग, होठ और नाक इनमेंभी श्लीपद होताहै ॥

वातिक, पैत्तिक और कफज ऐसे श्लीपद रोग तीन प्रकारका है ॥ २ ॥

अथ त्रिविधश्लीपदसामान्यलक्षणम् ।

वातजं कृष्णरूक्षं हि स्फुटितं तीव्रवेदनम् ॥ अनिमित्तरुजश्चास्य बहुशो ज्वर एव च ॥ ३ ॥ पित्तजं पीतसंकाशं दाहज्वरयुतं भृशम् ॥ श्लैष्मिकन्तु भवेत्स्निग्धं तथा पाण्डुरमस्थिरम् ॥ ४ ॥

वातिक श्लीपद काला, रूखा, फटाहुआ, तीव्र पीडायुक्त होताहै उसमें अकस्मात् वेदना होतीहै तथा वारवार ज्वर आताहै ।

पैत्तिक श्लीपद पीले रंगका, अत्यत दाह और ज्वरयुक्त होताहै । कफका श्लीपद स्निग्ध, पाण्डुवर्ण और अल्प पीडायुक्त होताहै ॥ ३ ॥ ४ ॥

त्रीण्यप्येतानि जानीयाच्छ्लीपदानि कफोच्छ्रयात् ॥ गुरुत्वञ्च महत्त्वञ्च यस्मान्नास्ति विना कफात् ॥ ५ ॥

यह तीनों प्रकारके श्लीपद कफके उत्कर्षसे होतेहैं क्योंकि कफके विना भारीपन और महत्‌पन नहीं होसक्ता ॥ ५ ॥

अथ श्लीपदासाध्यता ।

वल्मीकमिव सञ्जातं कण्टकैरुपचीयते ॥ अब्दात्मकं महत्तत्तु वर्जनीयं विशेषतः ॥ ॥ ६ ॥ यच्छ्लैष्मिकाहारविहारजातैर्जातं तथा भूरिकफस्य पुंसः ॥ सास्रावमत्युन्नतसर्वलिंगं सकण्डुरं श्लेष्मयुतं विवर्ज्यं ॥ ७ ॥

जो श्लीपद साँपकी बाँबीकी समान, अनेक काँटा युक्त बडा हो और जिसको उत्पन्न हुये एक साल बीत गया हो उस श्लीपदकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये । जो श्लीपद कफजन्य आहार विहारोंसे उत्पन्न हुआ हो, अधिक कफवाले मनुष्यके उत्पन्न हुआ हो, स्रवता हो, अत्यंत ऊंचा हो, तीनों दोषोंके लक्षणोंयुक्त हो और खुजलीयुक्त हो, उसकी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये॥ ६॥ ७॥

अथ श्लीपदचिकित्सा ।

लंघनालेपनस्वेदरेचनै रक्तमोक्षणैः ॥ प्रायः श्लेष्महरैरुष्णैः श्लीपदं समुपाचरेत् ॥ ८ ॥ सिद्धार्थशोभाञ्जनदेवदारुविश्वौषधैर्मूत्रयुतैः प्रलिम्पेत् ॥ पुनर्नवानागरसर्षपाणां कल्केन वा काञ्जिकमिश्रितेन ॥ ९ ॥

श्लीपदमिति शेषः ॥

लघन, लेपन, स्वेदन, विरेचन, रक्तमोक्षण और विशेष करके कफको हरनेवाली गरम औषधियोंसे श्लीपदकी चिकित्सा करनी चाहिये ।

सरसों, सँजिना, देवदारु और सोंठ इन सबको गोमूत्रमें पीसकर श्लीपदके ऊपर लेप करनेसे श्लीपद नष्ट होजाताहै ।

पुनर्नवा, सोंठ, और सरसो इनका कल्क बनाकर उसमें कांजी डालकर लेप करनेसे श्लीपद नष्ट होजाताहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

धत्तूरैरण्डनिर्गुण्डीवर्षाभूशिग्रुसर्षपैः ॥ प्रलेपः श्लीपदं हन्ति चिरोत्थमपि दारुणम् ॥ १० ॥ असाध्यमपि यात्यस्तं श्लीपदं चिरकालजम् ॥ मूलेन सहदेवायास्तालमिश्रेण लेपनात् ॥ ११ ॥ सप्ततांबूलपत्राणां कल्कं तप्तेन वारिणा ॥ संसृष्टं लवणोपेतं सेवितं श्लीपदं हरेत् ॥ १२ ॥

धतूरा, एरड, निर्गुण्डी, पुनर्नवा, सैंजिना और सरसों इन सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे वहुत दिनोका दारुण श्लीपद नष्ट होजाताहै। खिरैटी अथवा सहदेवीकी जडको ताडके फलोंके रसमे पीसकर लेप करनेसे बहुत कालसे उत्पन्न हुआ असाध्य श्लीपद भी नष्ट होजाताहै। नागरवेलके सात पानोका कल्क बनाकर उसमें सैंधानिमक डालकर गरम जलके साथ नित्य पिये तो श्लीपद नष्ट होजाताहै ॥ १०-१२ ॥

शाखोटवल्कलक्वाथं गोमूत्रेण युतं पिबेत् ॥ श्लीपदानां विनाशाय मेदोदोषनिवृत्तये ॥ १३ ॥ रजनीं गुडसंयुक्तां गोमूत्रेण पिबेन्नरः ॥ वर्षाभूत्रिफलाचूर्णं पिप्पल्या सह योजितम् ॥ सक्षौद्रं श्लीपदे लिह्याच्चिरोत्थं श्लीपदं जयेत् ॥ १४ ॥ गन्धर्वतैलसिद्धां हरीतकीं गोऽम्बुना पिबेन्नित्यम् ॥ श्लीपदबन्धनमुक्तो भवत्यसौ सप्तरात्रेण ॥ १५ ॥

गन्धर्वतैलम् एरण्डतैलम् । गोऽम्बु गोमूत्रम् ॥

इति श्लीपदनिदानचिकित्साधिकारः।

सिहोरेकी छालका क्वाथ बनाकर गोमूत्रके साथ पीनेसे श्लीपदका नाश होताहै और मेद दोषभी नष्ट होताहै ॥

हलदी और गुडको एकत्र मिलाकर गोमूत्रमे घोलकर पीनेसे श्लीपद नष्ट होजाताहै।

पुनर्नवा, हरड, बहेडा, आमला और पीपल इनका चूर्ण बनाकर सहतमे मिलाकर चाटनेसे बहुत दिनोका श्लीपद नष्ट होजाताहै।

अण्डीके तेलमे हरडोंको पकाकर नित्य गोमूत्रके साथ पीनेसे सात दिनमे श्लीपद रोग नष्ट होजाताहै ॥ १३-१५ ॥

इति श्लीपदाधिकारः संपूर्णः।

अथ विद्रध्यधिकारः।

तत्र विद्रध्याः सम्प्राप्तिपूर्वकं सामान्यलक्षणम्।

त्वग्रक्तमांसमेदांसि प्रदूष्यास्थिसमाश्रिताः ॥ दोषाः शोथं शनैर्घोरं जनयन्त्युच्छ्रिता भृशम् ॥ १ ॥ महामूलं रुजावन्तमल्पं वाप्यथ वायतम् ॥ स विद्रधिरिति ख्यातो विज्ञेयः षड्विधश्च सः ॥ २ ॥

अस्थिसमाश्रिता दोषा इति वक्ष्यमाणशोथाद्विद्रधेर्भेदार्थम्। यतो व्रणशोथे दोषाणामस्थिसमाश्रयनियमो नास्ति । घोरं दारुणम्। आयतं दीर्घम् ॥

अस्थियोमे रहनेवाले और अत्यत वृद्धिको प्राप्त हुए दोष, त्वचाको, रुधिरको, मासको तथा मेदको दूषित करकै धीरे धीरे छोटी अथवा बडी, बहुतबडी जडवाली और वेदनायुक्त भयकर सूजनको उत्पन्न करतेहैं यह सूजन 'विद्रधि' कहीजातीहै और यह छै प्रकारकी है।

इस विद्रधि अधिकारके पश्चात् जो व्रणसम्बन्धी सूजन कही जायगी उससे पृथक्ता दिखलानेके लिये 'अस्थियोमे रहनेवाले' ऐसा कहा है क्यो कि व्रणसम्बन्धी सूजनमें दोषोका अस्थियोंमें रहनेका नियम नहीं है ॥ १ ॥ २ ॥

अथ विद्रधिषट्प्रकाराः।

यथा दोषैः समस्तैश्च क्षतेनाप्यसृजा तथा ॥ षण्णां तेषां तुल्यमेव लक्षणं संप्रचक्षते ॥ ३ ॥

वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, क्षतज और रुधिरजन्य ऐसे विद्रधि छै प्रकारकी हैं। समस्त विद्रधियोंके सामान्य लक्षण एकसेही होतेहैं ॥ ३ ॥

अथ वातजविद्रधिलक्षणम्।

कृष्णोऽरुणो वा विषमो भृशमत्यर्थवेदनः॥ चिरोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिर्वातसम्भवः॥ ४॥

विषमो भृशं क्षणमल्पः क्षणं महान्। चिरोत्थानप्रपाकः चिराद्विलंबादुत्थानप्रपाकौ यस्य सः॥

जो विद्रधि काली अथवा लाल हो, क्षणमें छोटी और क्षणमें बडी होजाय, अत्यन्त वेदनायुक्त और जिसका उठना तथा पकना बहुत कालमें होय उसको वातज विद्रधि जानना इस विद्रधिमें पतला स्राव होता है॥ ४॥

अथ पित्तजविद्रधिलक्षणम्।

पक्वोदुम्बरसंकाशः श्यावो वा ज्वरदाहवान्॥ क्षिप्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः पित्तसंभवः॥ ५॥

जो विद्रधि पके गूलरकी समान अथवा कलौंज लिये हो, ज्वरसे तथा दाहसे युक्त हो. जिसका उठना और पकना शीघ्र हो, उसको पित्तकी विद्रधि जानना। इस विद्रधिका स्राव पीला होताहै॥ ५॥

अथ कफजविद्रधिलक्षणम्।

शरावसदृशः पाण्डुः शीतः स्निग्धोऽल्पवेदनः॥ चिरोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः कफसंभवः॥ तनुपीतसिताश्चैषामास्रावाः क्रमशो मताः॥ ६॥

जो विद्रधि मट्टीके सिकोरेकी समान बडी हो, पाडुवर्ण हो, शीतल हो, स्निग्ध हो, थोडी पीडा युक्त हो और जिसका उठना तथा पकना बहुत देरमें होय उसको कफकी विद्रधि कहतेहैं। इस विद्रधिका स्राव सफेद होताहै॥ ६॥

अथ सान्निपातिकविद्रधिलक्षणम्।

नानावर्णरुजास्रावो घाटलो विषमो महान्॥ विषमं पच्यते वापि विद्रधिः सान्निपातिकः॥ ७॥

नाना अनेकविधाः वर्णाः कृष्णरक्तपाण्डुरूपाः रुजः तोददाहकण्ड्वादिरूपाः स्रावाः तनुपीतसिताः यस्य सः। घाटलः घाटा कोटिः सा अस्य अस्तीति घाटलः अत्युच्छ्रिताग्र इत्यर्थः। विषमः निम्नोन्नतः। विषमं पच्यते वापि चिराच्चिरगम्भीरोत्तानोर्द्ध्वानूर्द्ध्वभेदेन विषमं यथा स्यात्तथा पच्यते।

जो विद्रधि काली, लाल तथा पाडुवर्ण हो, भेदन छेदने सरीखी पीडा, दाह तथा खुजली आदि अनेक उपद्रव युक्त हो, पतले, पीले तथा सफेद स्राववाली हो, अत्यत ऊँची अनीदार हो, नीची ऊँची हो, बडी हो और जो बहुत दिनोंमें थोडे दिनोंमे विषम रूपसे अनियमित कालमें पके उसको त्रिदोषविद्रधि जानना॥ ७॥

अथाभिघातजविद्रधिसम्प्राप्तिलक्षणम्।

तैस्तैर्भावैरभिहते क्षते वाऽपथ्यकारिणाम्॥ क्षतोष्मा वायुविसृतः सरक्तं पित्तमीरयेत्॥ ८॥ ज्वरस्तृषा च दाहश्च जायते तस्य देहिनः॥ आगन्तुर्विद्रधिर्ह्येष पित्तविद्रधिलक्षणः॥ ९॥

तैस्तैर्भावैः काष्ठलोष्टपाषाणादिभिः अभिहिते यथा रक्तस्रावो भविष्यति तथा क्षते कृते क्षतोष्मा। अत्र क्षतशब्देन हतमात्रमुच्यते। तेनाभिहतक्षतयोरुभयोरप्यूष्मा वायुना विसृतः। अभिहते अभिघातात्क्षते रक्तक्षयात्कुपितेन वायुना प्रसृतः ईरयेत्कोपयेत्॥

लकडी, ईंट, पत्थर, तलवार, बरछी आदिके अभिघातसे घाव होजानेसे अथवा जिसमें रुधिरका स्राव होताहो ऐसे घावके होनेसे अपथ्य सेवन करनेवाले मनुष्योंके अंगोंमे अभिघातसे अथवा घावके होनेसे रुधिरका क्षय होनेसे कोपको प्राप्त हुई वायु विस्तृत होकर अभिघातकी अथवा घावकी गरमी, रुधिर और पित्तको प्रकुपित करतीहै जिससे मनुष्योंके ज्वर, तृषा और दाह उत्पन्न होतीहै। इस आगन्तुज विद्रधिके लक्षण पित्तजन्य विद्रधिके लक्षणोंकी समान होतेहैं॥ ८॥ ९॥

अथ रुधिरजन्यविद्रधिलक्षणम् ।

कृष्णस्फोटावृतः श्यावस्तीव्रदाहरुजाज्वरः ॥ पित्तविद्रधिलिङ्गस्तु रक्तविद्रधिरुच्यते ॥ १० ॥

जो विद्रधि काले फोडोंसे व्याप्त हो, कालौंस लिये हो, तीव्र पीडा युक्त, तीव्रदाहयुक्त, तीव्रज्वरयुक्त, और बाकी सब लक्षण इसके पित्तविद्रधिके समान होतेहैं इसको रुधिरकी विद्रधि जानना ॥ १० ॥

अथाभ्यन्तरविद्रधिनिदानाश्रयलक्षणानि ।

आभ्यन्तरानतस्तूर्द्ध्वं विद्रधीन्परिचक्षते । गुर्वसात्म्यविरुद्धान्नशुष्कशाकाम्लभोजनाः ॥ ११ ॥ अतिव्यवायव्यायामवेगाघातविदाहिभिः ॥ पृथक् सम्भूय वा दोषाः कुपिता गुल्मरूपिणम् ॥ १२ ॥ वल्मीकवत्समुन्नद्धमन्तः कुर्वन्ति विद्रधिम् ॥ गुदे वस्तिमुखे नाभ्यां कुक्षौ वंक्षणयोस्तथा ॥ १३ ॥ वृक्कयोः प्लीह्नि यकृति हृदि वा क्लोम्नि चाप्यथ ॥ एषां लिङ्गानि जानीयाद्बाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥ १४ ॥

सम्भूय वा मिलित्वा वा । समुन्नद्धं समन्तादुन्नतम् ॥

अब भीतरकी विद्रधियोंको कहतेहैं । भारी अन्नके भोजन करनेसे, असात्म्य (जो अपनेको प्रतिकूल हो) विरुद्ध भोजन, सूखा हुआ शाक और खट्टे पदार्थोंके खानेसे, अत्यत मैथुन करनेसे, आमसे, मलमूत्रादिके वेगोको रोकनेसे, अत्यंत उष्णपदार्थोंसे और दाहजनक पदार्थोंसे अलग अलग अथवा सब एकत्र मिलकर कोपको प्राप्त हुये दोष गुदाके भीतर, मूत्राशयके मुखमें, नाभिके भीतर, पेटके भीतर, साथलोंकी संधियोंके भीतर, कोखमें, वृक्कमें, प्लीहा और यकृत्में, हृदयमें अथवा तृषा लगनेके स्थानके भीतर, साँपकी बाँबीकी और ऊँची गुल्मकी समान विद्रधि उत्पन्न होतीहै । इन विद्रधियोंके लक्षण बाहरको विद्रधियोंकी समान ऊपरसे जाननी ॥ ११-१४ ॥

अथ स्थानविशेषेण रूपविशेषः ।

गुदे वातनिरोधस्तु वस्तौ कृच्छ्राल्पमूत्रता ॥ नाभ्यां हिक्काजृम्भणे च कुक्षौ मारुतकोपनम् ॥ १५ ॥ कटिपृष्ठग्रहस्तीव्रो वंक्षणोत्थे तु विद्रधौ ॥ वृक्कयोः पार्श्वसंकोचः प्लीह्न्युच्छ्वासावरोधनम् १६ ॥ सर्वांगप्रग्रहस्तीव्रो हृदि कासश्च जायते । श्वासो यकृति हिक्का च क्लोम्नि पेपीयते पयः ॥ १७ ॥

गुदाके भीतर विद्रधि होतीहै तो अपानवायु रुकजातीहै । मूत्राशयके मुखमें जो विद्रधि होतीहै तो उसमें धीरे धीरे थोडा थोडा मूत्र उतरताहै । नाभिके भीतर जो विद्रधि होतीहै तो हिचकी और जम्भाई आतीहैं । पेटके भीतर जो विद्रधि होतीहै तो वायुका प्रकोप होताहै, सांथलकी जडके भीतर जो विद्रधि होतीहै तो तीव्रतर कमर और पीठ जकड जातीहै, कोखमें विद्रधि होतीहै तो पसलियोंमें सकोच होताहै, प्लीहाके भीतर जो विद्रधि होतीहै तो श्वास रुकजाताहै, हृदयके भीतर जो विद्रधि होतीहै तो तीव्र रीतिसे सम्पूर्ण अग रहजातेहैं और खाँसी होजाती है, जो यकृत्के भीतर विद्रधि होतीहै तो श्वास तथा हिचकी होतीहै और जो तृषा लगनेके स्थानमें विद्रधि होतीहै तो अत्यंत तृषा लगती है ॥ १५-१७ ॥

अथ विद्रधिस्रावमार्गः ।

नाभेरुपरिजाः पक्का यान्त्यूर्द्ध्वमितरे त्वधः ॥ १८ ॥

उपरिजाः कक्षादिजाताः यान्ति स्रवन्ति । ऊर्द्ध्वं मुखात् । इतरे वस्त्यादिजाः।अधः गुदात् । नाभिजस्तु उभाभ्यां मार्गाभ्याम् । तथा च हारीतः—

ऊर्द्ध्वं प्रभिन्नेषु मुखान्नराणां प्रवर्ततेऽसृक्सहितो हि पूयः ॥ अधः प्रभिन्नेषु तु पायुमार्गाद् द्वाभ्यां प्रवृत्तिस्त्विह नाभिजेषु ॥ १९ ॥

नाभिसे ऊपरके भागोंमें (कोख आदिमे) उत्पन्न हुई भीतरकी विद्रधि जब पकतीहै तब उनका स्राव मुखमेसे होताहै । और नाभीसे नीचेके भागोंमें (मूत्राशय आदिमें) उत्पन्न हुई भीतरकी विद्रधि जब पकतीहै तब उनका स्राव गुदामेंसे होताहै । नाभिके भीतर विद्रधि जब पकतीहै तब उनका स्राव मुख तथा गुदा दोनोंमेंसे होताहै ॥

क्योंकि हारीतसहितामें कहा है कि " नाभिके ऊपर उत्पन्न हुई भीतरकी विद्रधि जब फूटतीहै तब मनुष्योंके मुखमेंसे रुधिरसहित राध गिरतीहै और नाभिसे नीचे उत्पन्न हुई भीतरकी विद्रधि जब फूटतीहै तब मनुष्योकी गुदामेंसे रुधिर सहित राध गिरतीहै । नाभिमें उत्पन्न हुई भीतरकी विद्रधि जब फूटतीहै तो गुदा और मुख दोनोमेसे रुधिरसहित राध निकलतीहै " ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथ विद्रधिसाध्यासाध्यत्वम् ।

अधः श्रुतेषु जीवेत्तु स्रुतेषूर्द्ध्वं न जीवति ॥ हृन्नाभिवस्तिवर्जेषु तेषु भिन्नेषु बाह्यतः ॥ जीवेत्कदाचित्पुरुषो नेतरेषु कदाचन २० ॥

हृन्नाभिवस्तिवर्जेषु प्लीहक्लोमादिजाः तेषु तथा भिन्नेषु न जीवेत् । हृदादीनां मर्मत्वात् ।

विद्रधि गुदामेंसे स्रवती होय तो मनुष्य जीतारहताहै किन्तु जो मुखमेंसे स्रवती होय तो मनुष्य नही जीता । हृदय, नाभि और मूत्राशय इन स्थानोंके सिवाय अन्य स्थानोंमें उत्पन्न हुई विद्रधि जो बाहर फूटजाय तो मनुष्य कदाचित् जीजाताहै किन्तु हृदय, नाभि और मूत्राशय इनमें उत्पन्न हुई विद्रधि जो बाहर फूटजाय तो मनुष्य कभी भी नहीं जीता क्योंकि हृदय आदि स्थान मर्मस्थल हैं ॥ २० ॥

असाध्यो मर्मजो ज्ञेयः पक्वोऽपक्वश्च विद्रधिः ॥ सन्निपातोत्थितोऽप्येवं पक्व एव हि वस्तिजः ॥ २१ ॥ त्वग्जो नाभेरधोजश्च साध्यो यश्च समीपजः ॥ अपक्वश्चैव पक्वश्च साध्यो नोपरि नाभितः ॥ २२ ॥ आध्मानं बद्धनिश्शब्दं छर्दिहिक्कातृषान्वितम् ॥ रुजाश्वाससमायुक्तं विद्रधिर्नाशयेन्नरम् ॥ २३ ॥

इसपर भोज कहताहै कि " मर्म स्थलेमें उत्पन्न हुई विद्रधि पकी होय अथवा नही पकी होय तोभी असाध्यही समझना चाहिये । तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुई विद्रधि भी असाध्य है । मूत्राशयमें उत्पन्न हुई विद्रधि जो पकजाय तो असाध्य है । जो विद्रधि त्वचामें उत्पन्न हुई होय, नाभिके नीचे उत्पन्न हुई होय अथवा नाभिके समीपमे उत्पन्न हुई होय तो साध्य है । नाभिसे ऊपर उत्पन्न हुई विद्रधि पकी हो अथवा नहीं पकी हो तोभी असाध्य है । जिस विद्रधिवाले मनुष्यके अफारा, अशक्तता, वमन, हिचकी, तृषा, वेदना तथा श्वास होय तो वह मनुष्य विद्रधिसे अवश्य मरजाताहै ॥ २१–२३ ॥

अथ बहिर्विद्रधिसाध्यासाध्यता ।

साध्या विद्रधयः पञ्च विवर्ज्यः सान्निपातिकः ॥ आमपक्वविदग्धत्वं तेषां ज्ञेयश्च शोथवत् ॥ २४ ॥

शोथवत् वक्ष्यमाणव्रणशोथवत् ॥

बाहरकी विद्रधियोंमे वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, क्षतज और रुधिरजन्य ये पाचों विद्रधि साध्य हैं किन्तु तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुई विद्रधि असाध्य है । विद्रधिकी अपक्वता, पक्वता और विदग्धता व्रणशोथकी समान जानना । व्रणशोथकी पक्वता, अपक्वता और विदग्धता आगेको अधिकारमें कहेंगे ॥ २४ ॥

अथ विद्रधिचिकित्सा ।

जलौकापातनं शस्तं सर्वस्मिन्नेव विद्रधौ ॥ रेको मृदुर्लंघनश्च स्वेदः पित्तोत्तरं विना ॥ २५ ॥ अपक्वे विद्रधौ युञ्ज्याद्व्रणशोथवदौषधम् ॥ वातघ्नमूलकल्कैस्तु वसातैलघृतान्वितैः ॥ २६ ॥ सुखोष्णैर्बहुलैर्लेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ ॥ यवगोधूममुद्गैश्च पिष्टैराज्येन लेपयेत् ॥ ॥ २७ ॥ विलीयते क्षणेनैव ह्यविपक्वस्तु विद्रधिः ॥ पैत्तिकं विद्रधिं वैद्यः प्रदिह्यात्सर्पिषा युतैः ॥ पयस्योशीरमधुकचन्दनैर्दुग्धपेषितैः ॥ २८ ॥

पयस्याऽनेकार्थत्वादत्र क्षीरकाकोली गुणाधिक्यात्तस्या अलाभे अश्वगंधा ग्राह्या ॥

सर्वप्रकारकी विद्रधियोंमें जोक लगवानी चाहियें। मृदु विरेचन देना और लघन कराना ये उत्तम हैं। पित्तकी विद्रधिको छोडकर बाकी सब विद्रधियोंमें स्वेदन करना उत्तम है ॥

जो विद्रधि पकी न होय तो उसपर व्रणशोथकी औषधि जो कि आगेके अधिकारमें कहीजायँगी उनकी योजना करे ॥

आल अंडकी जडका कल्क बनाकर उसमें चरबी, तेल तथा घी डालकर कुछेक गरम करकै उसका गाढा लेप करनेसे वातकी विद्रधि दूर होजाती है। जौ, गेहू, और मूँग इनको धीमे पीसकर लेप करनेसे नहीं पकीहुई विद्रधि क्षणमात्रमें लुप्त होजाती है ॥

क्षीरकाकोली, खस, मुलैठी और लालचदन इनको दूधमें पीसकर गाढा लेप करे तो पित्तजन्य विद्रधि नष्ट होती है। मूल श्लोकमें जो 'पयस्या' शब्द है उसके अनेक अर्थ हैं परन्तु हमने उनमेंसे यहां क्षीरकाकोली लीहै क्योंकि क्षीरकाकोली बहुत गुणवाली है जो क्षीरकाकोली न मिले तो उसके अभावमे असगध लेना चाहिये ॥ २५-२८ ॥

पञ्चवल्कलकल्केन घृतमिश्रेण लेपयेत् पिबेद्वा त्रिफलाक्वाथं त्रिवृत्कल्काक्षसंयुतम् ॥ २९ ॥ इष्टिकासिकतालोहकिट्टा गोशकृता सह ॥ मूत्रैः सुखोष्णैर्लेपेन स्वेदयेच्छ्लेष्मविद्रधिम् ॥ ३० ॥ दशमूलीकषायेण सस्नेहेन रसेन वा ॥ शोथव्रणं वा कोष्णेन स नूनं परिषेचयेत् ॥ ३१ ॥ पित्तविद्रधिवत्सर्वाः क्रिया निरवशेषतः ॥ विद्रध्योः कुशलः कुर्याद्रक्तागन्तुनिमित्तयोः ॥ ३२ ॥ रक्तचन्दनमञ्जिष्ठानिशामधुकगैरिकैः ॥ क्षीरेण विद्रधौ लेपो रक्तागन्तुनिमित्तके ॥ ३३ ॥

पंचवल्कलका कल्क बनाकर उसमें घी डालकर उसका लेप करनेसे पित्तकी विद्रधि दूर होती है ॥

हरड, बहेडा तथा आमला इनका क्काथ बनाकर उसमें एक तोलाभर निसोतका कल्क डालकर पीनेसे पित्तजन्य विद्रधि दूर होजाती है। ईंटका चूर्ण, रेता लोहेकी कीट और गायका गोवर इनको गायके मूत्रमें पीसकर कुछेक गरम करकै उसका लेप करे तो उसके स्वेदनसे कफजन्य विद्रधि नष्ट होजाती है।

दशमूलके क्काथ, अथवा दशमूलके स्वरसमें घी डालकर कुछेक गरम करकै उसका सेचन करनेसे विद्रधि तथा व्रणशोथ नष्ट होजाताहै। रुधिरसम्बन्धी विद्रधि अथवा अभिघातजन्य वा घावके होनेसे विद्रधि उत्पन्न हुई होय तो वैद्य उसपर पित्तसम्बन्धी, रुधिरसम्बन्धी, और क्षतसम्बन्धी विद्रधिकी समान लालचदन, मजीठ, हलदी मुलैठी और पीला गेरु इनको दूधमें पीसकर उसका लेप करे, विद्रधिको नष्ट करनेवाली जो क्रिया हैं वे सब करनी चाहिये ॥ २९-३३ ॥

पीता ह्येते निहन्त्याशु विद्रधिं कोष्ठसम्भवम् ॥ कृष्णाऽजाजी विशाला च धामार्गवफलं तथा ॥ ३४ ॥

धामार्गवफलं कोशातकीफलम् ॥

कालाजीरा, इन्द्रायन और कडवी तोरई इनको एकत्र पीसकर पीनेसे कोठेमें उत्पन्न हुई विद्रधि नष्ट होजाती है ॥ ३४ ॥

श्वेतवर्षाभुवो मूलं मूलं वा वरुणस्य च ॥ जलेन क्वथितं पीतमन्तर्विद्रधिहृत्परम् ॥ ॥ ३५ ॥ गायत्री त्रिफला निम्बः कटुका मधुकं समम् ॥ त्रिवृत्पटोलमूलाभ्यां चत्वारोंऽशाः पृथक्पृथक् ॥ ३६ ॥ मसूरान्निस्तुषान्दद्यादेष क्वाथो व्रणाञ्जयेत् ॥ गुल्मविद्रधिवीसर्पदाहमोहज्वरापहः ३७॥ तृण्मूर्च्छाच्छर्दिहृद्रोगपित्तासृक्कुष्ठकामलाः ॥ शिग्रुमूलं जले धौतं पिष्टं वस्त्रेण गालयेत् ॥ तद्रसं मधुना पीत्वा हन्त्यन्तर्विद्रधिं नरः ॥३८॥ शोभाञ्जनकनिर्यूहो हिङ्गुसैन्धवसंयुतः ॥ हन्त्यन्तर्विद्रधिं शीघ्रं प्रातःप्रातर्विशेषतः ॥ ३९ ॥

इति विद्रधिनिदानचिकित्साधिकारः।

सफेद पुनर्नवेकी जड अथवा वरनाकी जड इनको पानीमें औटाकर काढेको पीनेसे भीतरकी विद्रधि अवश्य नष्ट होजाती है ।

खैर, हरड, वहेडा, आमला, नीम, कुटकी और मुलेठी इन सबको समान भाग लेवै, चार भाग निसोतकी जड और कडवे परवलकी जड चार भाग लेवै, फिर इन सब पदार्थोंको तथा छुकले रहित मसूरकी दालको डालकर क्वाथ बनावे । यह क्वाथ व्रण, विद्रधि, गुल्म, वीसर्प, दाह, मोह, ज्वर, तृषा, मूर्च्छा, वमन, हृदयकी पीडा, रक्तपित्त, कोढ और कामलाको दूर करदेताहै ।

सैंजिनेकी जडको जलमें धोकर जलमें पीसकर वस्त्रमें छान लेवे, फिर उसमें सहत मिलाकर पीनेसे भीतरकी विद्रधि शमन होती है ।

सैंजिनेका क्वाथ बनाकर उसमें हींग तथा सैंधानिमक डालकर विशेष करके प्रातःकाल पिये तो भीतरकी विद्रधि नष्ट होजाती है ॥ २५-२९ ॥

इति विद्रध्यधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ व्रणशोथाधिकारः ।

तत्र व्रणशोथस्य संख्यापूर्वक-सामान्यलक्षणम् ।

पृथक्समस्तदोषोत्था रक्तजागन्तुजौ तथा ॥ व्रणशोथाः षडेते स्युः संयुक्ताः शोथलक्षणैः ॥ १ ॥
शोथलक्षणैः पूर्वोक्तैः ॥

वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, रुधिरजन्य और आगन्तुज ऐसे व्रणशोथ छै प्रकारका है । इन छैओमें पूर्वोक्त सूजनके लक्षण होतेहैं ॥ १ ॥

अथव्रणशोथविशिष्टरूपम् ।

विषमं पच्यते वातात्पित्तोत्थं चाचिराच्चिरम् ॥ कफजः पित्तवच्छोथो रक्तागन्तुसमुद्भवौ ॥ २ ॥

वातज व्रणकी सूजन विषम रीतिसे पकती है, पित्तज व्रणकी सूजन तत्काल पकजाती है, कफज व्रणकी सूजन वह तत्कालमें पकती है और रुधिरजन्यव्रणकी सूजन तथा आगन्तुजव्रणकी सूजन पित्तज व्रणशोथकी सूजनकी समान तत्काल पकजाती है ॥ २ ॥

अथापक्वव्रणशोथलक्षणम् ।

मन्दोष्मताऽल्पशोथत्वं काठिन्यं त्वक्सवर्णता ॥ मन्दवेदनता चाऽपि शोथस्यामस्य लक्षणम् ॥ ३ ॥

जिसमें गरमी मद हो, सूजन कम हो, घावका स्थान कठोर हो, सूजनका रंग शरीरकी त्वचाकी समान हो और वेदना थोडी हो, तो उसको अपक्व सूजन जानना ३

अथ पच्यमानव्रणशोथलक्षणम् ।

दह्यते दहनेनेव क्षारेणेव प्रपच्यते ॥ पिपीलिकागणेनेव दश्यते छिद्यते तथा ॥ ४ ॥ भिद्यते चैव शस्त्रेण दण्डेनेव च ताड्यते ॥ पीड्यते पाणिनेवान्तः सूचीभिरिव तुद्यते ॥ ५ ॥ ऊषचोषौ विवर्णः स्यादङ्गुल्येवावपीड्यते ॥ आसने शयने स्थाने शान्ति वृश्चिकविद्धवत् ॥ ६ ॥ न गच्छेदाततः शोथो भवेदाध्मातवस्तिवत् ॥ ज्वरस्तृष्णाऽरुचिश्चैतत्पच्यमानस्य लक्षणम् ७

छिद्यते द्विधा क्रियत इव । भिद्यते विदीर्यत इव । ऊषो दाहः । चोषः पार्श्वस्थाग्निनेव सन्तापः ताभ्यां युक्तः । आततः त्वक्सङ्कोचरहितः । वस्तिर्मूत्राशयश्चर्मपुटो वा ।

जो सूजन अग्निसे जलते हुएकी समान हो, क्षारके लगानेकी समान रँधताहो, चींटिओसे काटनेकी समान मालूम हो, शस्त्रसे छेदने तथा चीरने सरीखा मालूम हो, अथवा दो टुकडे होजॉय ऐसा जान पडे, डंडे आदिसे मारनेकी समान पीडा हो, हाथसे दवानेकी समान मालुम हो, भीतर सूई छेदने सरीखा मालुम हो और अंगुलियोंसे उखाडने सरीखी पीडा हो, दाहसे व्याप्त हो, अग्निसे सतप्तकी समान हो, त्वचाके रंगसे दूसरा रंग होजाय, मूत्राशयकी समान अथवा चमडेकी पुटकी समान फूला हुआ हो, बीछू काटनेकी समान बैठते, सोते और उठते समय घोर पीडा हो अर्थात् कभी चैन नहीं पडे और ज्वर, तृषा तथा अरुचिसे संयुक्त हो, उसको पकता हुआ व्रणशोथ जानना ॥ ४-७ ॥

अथ पक्वव्रणशोथलक्षणम्।

वेदनोपशमः शोथो लोहितोऽल्पो न चोन्नतः ॥ प्रादुर्भावो वलीनाञ्च तोदः कण्डूर्मुहुर्मुहुः ॥ ८ ॥ उपद्रवाणां प्रशमो निम्नता स्फुटनं त्वचाम् ॥ वस्ताविवाम्बुसञ्चारः स्याच्छोथेऽङ्गुलिपीडिते ॥ ९ ॥ पूयश्च पीडयेदेकमन्तमन्ते च पीडिते ॥ बुभुक्षा व्रणशोथस्य भवेत्पक्वस्य लक्षणम् ॥१०॥

वेदनोपशमः दाहादिदुःखोपशमः। अल्पो लोहित इति अन्वयः। न च उन्नतः पच्यमानापेक्षया। उपद्रवाणां ज्वरादीनाम्। निम्नता स्वरूपतोऽङ्गुलिपीडनाद्वा अवनतत्वम्। स्फुटनं किंचिद्विदारणम्। वस्ताविवेत्यादि शोथेऽङ्गुलिपीडिते सति अंगुलिपीडितादेशादन्यदेशे अम्बुसञ्चारः। वस्तौ चर्मपुटके। एवमन्ते एकदेशे पीडिते एकमन्तमपरमन्तमापूर्य पीडयति।

दाहादिक पीडा शमन होजाय, सूजनमे थोडी लाली हो ऊँचाई जातीरहै, बली पडने लगे, सुई चुभोने सरीखी वेदना हो, वारंवार खुजली चलती हो, ज्वरादि उपद्रव शात होजाय, अंगुलीसे दबानेकी समान नम जाय, चमडा कुछेक फटजाय, सूजनको अगुलीसे दबानेसे जिसप्रकार चमडेकी पखालमेंसे पानी एक स्थानसे दूसरे स्थानमें चलाजाताहै उसी प्रकार इसमेंसे एक स्थानमेंसे राध दूसरे स्थानमे चली जातीहै, एक प्रदेशको दबानेसे दूसरे प्रदेशमें राध जाकर भरजाय तथा मुख लगजाय तो जानना कि सूजन पकजाती है ॥ ८–१० ॥

अथैकदोषजोऽपि शोथः पाककाले सकलैर्दोषैः संवर्ध्यत इत्याह।

ऋतेऽनिलाद्रुङ् न विना न पित्तं पाकः कफञ्चापि विना न पूयः ॥ तस्माद्धि सर्वे परिपाककाले पचन्ति शोफास्त्रिभिरेव दोषैः ॥ ११ ॥

पचन्ति पाकं प्राप्नुवन्ति। एवशब्दोऽत्र अप्यर्थः। अव्ययानामनेकार्थत्वात् ॥

वातके विना पीडा नहीं होती, पित्तके विना पाक नही होता और कफके विना राध नहीं होती, इसकारण सर्वप्रकारकी सूजनमें तीनों दोषोका संबन्ध होताहै ॥ ११ ॥

अथ शोथपाकमतांतरम्।

कालान्तरेणाभ्युदितन्तु पित्तं कृत्वा वशे वातकफौ प्रसह्य ॥ पचत्यतः शोणितमेष पाको मतः परेषां विदुषां द्वितीयः ॥ १२ ॥

वशे कृत्वा हीनीकृत्य शोणितं कर्म। पूर्वत्र कफात्पूयोऽत्र शोणितात्पूय इति भेदः ॥

कालान्तरसे उदय हुआ पित्त वायु और कफको कम करके बलात्कारसे रुधिरको पकाताहै, ऐसा अन्य विद्वानोने माना है।

पहिले मतमें कफसे राध होतीहै ऐसा माना है और इस दूसरे मतमे रुधिरसे राध होतीहै ऐसा माना है इनमें इतना भेद है ॥ १२ ॥

अथ गम्भीरपाकलक्षणम्।

कफजेषु च शोथेषु गम्भीरं पाकमेत्यसृक् ॥ पक्वलिङ्गं ततः स्पष्टं यतः स्याच्छोथशीतता ॥ त्वक्सावर्ण्यं रुजोऽल्पत्वं घनस्पर्शत्वमश्मवत् ॥ १३ ॥

कफजेषु च शोथेषु गंभीरमसृक्पाकमेति। तत्र कथं पाकज्ञानमित्याह। तत्र ततः कारणात्। पक्वलिंगं स्पष्टम्। यतः पच्यमानावस्थान्तर्गतरागदाहव्यथाघनांतरशोथशीतादयो भवन्ति। घनस्पर्शत्वं स्पर्शेऽन्यथत्वम् ॥

कफसे उत्पन्न हुई सूजनमे रुधिर गम्भीर रीतिसे पकताहै तो भी पकजानेकी परीक्षा स्पष्ट होतीहै और जिस समयसे सूजन पकनेलगजातीहै उस समय लाली तथा दाहादि पीडा होकर पश्चात् सूजनमें पकजानेकी अवस्था होजातीहै, तब शीतलपन होजाताहै, सूजनका रग चमडेकी रंगकी समान होजाताहै, अल्पवेदना होती

यह प्रमाणहै इस कारण पकजानेकी खबर कैसे मालूम २.रसक्ती यह वैद्य नहीं समझ सक्ते ॥ १३ ॥

अथ पक्वव्रणशोथात्पूयानिःसृतौ दोषः ।

कक्षं समासाद्य यथैव वह्निर्वातेरितः संदहति प्रसह्य ॥ तथैव पूयो ह्यविनिःसृतस्तु मांस शिराः स्नायुमपीह खादेत् ॥ १४ ॥

जिस प्रकार वायुसे प्रेरणाकी हुई अग्नि तृणोंके वनमें प्राप्त होकर बलात्कारसे जलादेतीहै उसी प्रकार पकेहुये व्रणमेंसे राधको नहीं निकालनेसे मास शिरा और स्नायुओंको खाजातीहै ॥ १४ ॥

अथ व्रणशोथपक्वापक्वज्ञानाज्ञाने वैद्यगुणदोषौ ।

आमं विदह्यमानश्च सम्यक्पकन्तु यो भिषक् ॥ जानीयात्स भवेद्वैद्यः शेषास्तस्करवृत्तयः ॥ १५ ॥

विदह्यमानं विपच्यमानम् । तस्करवृत्तयः तेषां तस्कराणामिव द्रव्यलाभमात्रप्रयोजनं भवति न तु धर्मयशोमैत्रीलाभः ॥

यश्छिनत्त्याममज्ञानाद्यश्च पक्वमुपेक्षते ॥ श्वपचाविव विज्ञेयौ तावनिश्चितकारिणौ ॥ १६ ॥

जो वैद्य सूजनको नहीं पकाहुआ और पका हुआ जानसक्ता है वही उत्तम वैद्य कहाजाताहै, बाकी जो व्रणशोथकी पक्वापक्व अवस्थाको नहीं जानते उनको चोर समझना । क्योंकि उनको चोरोंकी समान केवल धन लेनेकाही प्रयोजन होताहै किन्तु धर्म, यश और मित्रताका कुछ प्रयोजन नहीं होता ।

जो वैद्य अपनी मूर्खतासे कच्चे फोडेको पका जानकर चीरदेताहै, और जो वैद्य पकेहुए फोडेको कच्चा समझकर नहीं चीरता उन दोनोंको चाण्डालकी समान समझना, क्योंकि वे विना समझे क्रिया करतेहैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथ व्रणशोथचिकित्सा ।

आदौ शोथहरो लेपस्ततस्तु परिषेचनम् ॥ विम्लापनमसृङ्मोक्षस्ततः स्यादुपनाहनम् ॥ १७ ॥ पाचनं भेदनं पश्चात्पीडनं शोधनं तथा ॥ रोपणं वर्णकरणं व्रणस्यैते क्रमाः स्मृताः ॥ १८ ॥

अत्र क्रमाः चिकित्साः । सुश्रुते व्रणस्य षष्टिरूपका लिखिताः सन्ति ते सर्वेऽत्र विस्तरभयान्न लिखिताः ॥

प्रथम सूजनके हरनेवाली औषधियोंका लेपकरे फिर सूजनके ऊपर क्राथ आदिका सेचनकरे, फिर विम्लापन कर्मकरे, पश्चात् सूजनमेंसे रुधिरादि निकलवावे, फिर सूजनके ऊपर थोडी थोडी गरम औषधियोंको बाँधकर वाफदेवे, फिर सूजनको पकानेके लिये उपचार करके पकावे, फिर सूजनको शस्त्रसे अथवा औषधियोंसे भेदन करे, फिर सूजन को दबाकर राध निकालनेके लिये उसके ऊपर औषधियोंका गाढा लेप करे, फिर सूजनको क्वाथ आदिसे धोकर साफ करे, फिर सूजनके भरनेकी चिकित्सा करे पश्चात् व्रणको शरीरके वर्णकी समान करे । इस भाँति व्रणकी ग्यारह प्रकारसे चिकित्सा करे ।

सुश्रुतमें व्रणपर साठ उपक्रम कहे हैं वे सब यहां ग्रंथ बढनेके भयसे नहीं लिखे ॥ १७ ॥ १८ ॥

अथ शोथनाशकलेपः ।

यथा प्रज्वलिते वेश्मन्यम्भसा परिषेचनम् ॥ क्षिप्रं प्रशमयत्यग्निमेवमालेपनं रुजः ॥ १९ ॥

जिस प्रकार जलतेहुए मकानको पानीका सेचन अग्निको तत्काल शांत करदेताहै उसी प्रकार औषधियोंका लेप तत्काल पीडाको शमन कर देताहै ॥ १९ ॥

बीजपूरजटा हिंस्रा देवदारु महौषधम् ॥ रास्नाग्निमन्थालेपोऽयं वातशोथविनाशनः ॥ २० ॥ कल्कः काञ्जिकसम्पिष्टः स्निग्धो मधुकचन्दनैः ॥ दूर्वा च नलमूलश्च पद्मकाष्ठश्च केसरम् ॥ २१ ॥ उ-

शीरं बालकं पद्मं लेपोऽयं पित्तशोथहा ॥ न्यग्रोधोदुंबराश्वत्थप्लक्षवेतसवल्कलैः ॥ २२ ॥ ससर्पिकैः प्रदेहः स्याच्छोथे पित्तसमुद्भवे ॥ आगन्तुजे रक्तजे च लेप एषोऽभिपूजितः ॥ २३ ॥ अजगन्धाजश्रृङ्गी च मञ्जिष्ठा सरलस्तथा ॥ एकेशिकाश्वगन्धा च लेपोऽयं श्लेष्मशोथहा ॥ २४ ॥

अजश्रृंगी [मेढाशिंगी]।

कृष्णा पुराणपिण्याकं शिग्रुत्वक् सिकता शिवा ॥ मूत्रपिष्टः सुखोष्णोऽयं प्रलेपः श्लेष्मशोथहा ॥ २५ ॥ न रात्रौ लेपनं दद्याद्दत्तञ्च पतितं तथा ॥ न च पर्युषितं शुष्यमाणं तत्रैव धारयेत् ॥ २६ ॥

दत्तमेव पुनर्न दद्यात्। पतितं दीयमानं सत् यदङ्गात् पतितं पर्युषितं लेपनद्रव्यं कल्कीकृतं यत् पर्युषितम् ॥

तमसा पिहितोऽस्त्यूष्मा रोमकूपमुखोत्थितः ॥ विना लेपेन निर्य्याति रात्रौ नालेपयेदतः ॥ २७ ॥ रात्रावपि प्रलेपस्तु विधातव्यो विचक्षणैः ॥ अपाकिशोथे गम्भीरे रक्तपित्तसमुद्भवे ॥ २८ ॥

विजोरेकी जड, बालछड, देवदारु, सोंठ, रासना और अरणी इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे वातकी सूजन दूर होजातीहै।

दूब, नरसलकी जड, पद्माख, केसर, खस, सुगन्धवाला और कमल इनको पीसकर लेप करनेसे पित्तकी सूजन दूर होजातीहै।

वड, गूलर, पीपल, पाकर और वेत इनकी छालको पीसकर घीमें मिलाकर लेप करनेसे पित्तजन्य सूजन दूर होजातीहै।

आगन्तुज सूजन पर और रुधिरजन्य सूजन परभी ऊपर कहा हुआ वड आदिकी छालका लेप हितकारी है।

मेढाशिंगी, वनतुलसी, मजीठ, देवदारु, पाढ और असगन्ध इनका लेप कफकी सूजनको दूर करै है। पीपल, पुरानी खल,' सैंजिनेकी छाल, रेती और हरड इनको गोमूत्रमें पीसकर कुछेक गरम करके लेप करनेसे कफकी सूजन दूर होजातीहै।

रात्रिमें लेप नहीं करना चाहिये। लेप किये पदार्थको छुडाकर फिर दुबारा लेप नहीं करना चाहिये। लेप किया हुआ पदार्थ जो शरीरसे गिरकर छूट पडे तो फिर उसका लेप न करे। लेप करनेका कल्क जो बासी रहजाय तो उसका लेप नही करे। और जो लेप सूखजाय तो उसको शरीरसे तत्काल छुडा देवे। यह लेप करनेकी पद्धति है। रात्रिमें अधकारके होनेसे गरमीके कारण रोमकूप आच्छादित रहतेहैं इसलिये रात्रिमें लेप करनेसे रोमकूप बन्द होजातेहैं और नहीं लेप करनेसे रोमकूप खुले रहतेहैं, इस लिये रात्रिमें लेप नही करना चाहिये। परन्तु जो सूजन नही पकतीहो, गम्भीर हो और रुधिर तथा पित्तसे उत्पन्न हुई हो उनपर वैद्यको रात्रिमेंही लेप करना चाहिये ॥ २०-२८ ॥

अथ शोथोपरिक्राथादिसेचनम्।

यथाम्बुभिः सिच्यमानः शान्तिमग्निर्हि गच्छति ॥ दोषाग्निरेव सहसा परिषेकेण शाम्यति ॥ २९ ॥

जिसप्रकार जलसे सेचन करनेसे अग्नि तत्काल शान्त होजातीहै उसी प्रकार व्रणशोथको क्राथ आदिसे सेचन करनेसे दोषरूपी अग्नि तत्काल शान्त होजातीहै ॥ २९ ॥

वातघ्नौषधनिष्क्राथैस्तैलैर्मांसरसैर्घृतैः ॥ उष्णैः संसेचयेच्छोथं वातिकं काञ्जिकेन च ॥ ३० ॥ पित्तरक्ताभिघातोत्थं शोथं सिंचेत्सुशीतलैः ॥ क्षीराज्यमधुखण्डेक्षुरसैः पित्तहरैः श्रृतैः ॥ ३१ ॥

वातनाशक क्राथ, तेल, मासरस, घी और कांजीको गरम करकै वातकी सूजनपर सेचन करना चाहिये।

पित्तसे रुधिरसे और क्षतसे जो सूजन उत्पन्न हुई होय तो उसके ऊपर शीतल औषधियोंके रसोंसे, दूधसे, घीसे, मद्यसे, खांडसे, ईखके रससे और पित्तको नष्ट करनेवाले क्राथोंसे सेचन करै ॥ ३० ॥ ३१ ॥

कफघ्नौषधनिष्क्वाथैः शीतैस्तु परिषेचयेत् ॥ तैलक्षाराम्बुमूत्रैश्च शोथं श्लेष्मसमुद्भवम् ॥ ३२ ॥

कफकी सूजन होय तो उसको कफको हरनेवाली शीतल औषधियोंके शीतल क्वाथोंसे, तैलसे, क्षारसे, जलसे और मूत्रसे सेचन करना चाहिये ॥ ३२ ॥

अथ विम्लापनम् ।

जातस्य कठिनस्यास्य कार्यं विम्लापनं शनैः ॥ ३३ ॥

अस्य शोथस्य विम्लापनस्य विधिमाह सुश्रुतः—

अभ्यज्य स्वेदयित्वा तु वेणुनाड्या शनैः शनैः ॥ विमर्दयेद्भिषङ्मन्दं तलेनाङ्गुष्ठकेन वा ॥ ३४ ॥

वेणुनाड्या वंशनलिकया स्वेदयित्वा उष्णस्वेदं कृत्वा ॥

उत्पन्न हुई कठिन सूजनको विम्लापन कर्म करे, विम्लापन कर्म करनेकी विधि सुश्रुतमें कही है सो कहतेहैं कि "वैद्य सूजनके ऊपर अभ्यङ्ग करके स्वेद देकर धीरे धीरे बांसकी नलीसे अथवा हाथके तलवेसे वा अंगूठेसे धीरे धीरे मन्द मन्द घिसे" ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अथ रक्तमोक्षणम् ।

वेदनोपशमार्थाय तथा पाकशमाय च ॥ अचिरोत्पतिते शोथे शोणितस्रावणं चरेत् ॥ ३५ ॥

चरेत् कुर्यात् ॥

एकतस्तु क्रियाः सर्वा रक्तमोक्षणमेकतः ॥ रक्तं हि वेदनामूलं तच्चेन्नास्ति न चास्ति रुक् ॥ ३६ ॥ विवर्णः कठिनः श्यावो व्रणवच्चाल्पवेदनः ॥ विषाणैश्च विशेषेण जलौकाभिः पदैरपि ॥ ३७ ॥

शोणितस्रावणं चरेदित्यनेन अन्वयः ॥

तत्कालकी उत्पन्न हुई सूजनको वेदनाकी शांतिके लिये और पाककी शांतिके लिये सूजनमसे रुधिर निकलवाना चाहिये । सम्पूर्ण क्रिया एक ओर, और रुधिर निकलवाना एक ओर है इस कारण सर्व क्रिया मिल कर जितना काम करतीहैं उतना काम एक रुधिर निकलवानेसेही होजाताहै, वेदनाकी जड रुधिरही है और जो रुधिर न होय तो वेदना नहीं होती । विशेष करके सींगी-लगाकर, जोक लगाकर अथवा पछन लगाकर रुधिर निकलवाना चाहिये ॥ ३५-३७ ॥

उपनाहः स्वेदस्तस्य विधिर्भेषजसाधनप्रकरणे कथित एवास्ति ।

रुजावतां दारुणानां कठिनानां तथैव च ॥ शोथानां स्वेदनं कार्यं ये चाप्येवंविधा व्रणाः ॥ ३८ ॥

शोथानां सामान्यानाम् । व्रणाः व्रणशोथाः तेषामपि स्वेदनं कार्यम् ॥

शोथयोरुपनाहश्च दद्यादामविदग्धयोः ॥ प्रशाम्यत्यविदग्धस्तु विदग्धः पक्वतां व्रजेत् ॥ ३९ ॥

आमविदग्धौ अपक्वपाकोन्मुखौ ॥

स्वेद देनेकी विधि प्रथम खण्डके औषधियोंके सिद्ध करनेके प्रकरणमें उपनाहस्वेद कह आये हैं । जो सूजन वेदनायुक्त, दारुण और कठिन होय उसके ऊपर स्वेदन करना चाहिये । और व्रणकी सूजन भी इसी प्रकार की होय तो उसके ऊपर भी स्वेदन करना चाहिये । जो सूजन कच्ची अथवा पक गई होय तो उसके ऊपरभी उपनाह स्वेद देना चाहिये । सूजन कच्ची होय तो उपनाह स्वेदसे शांत होजातीहै और पकने लगे तो तत्काल पकजातीहै ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

दशमूली बला रास्ना वाजिगन्धा प्रसारिणी ॥ मूलं वातरिपोः सिन्धुवारिपूर्णे घटे क्षिपेत् ॥ ४० ॥ शोभाञ्जनः कणा चापि सैन्धवं विश्वभेषजम् ॥ शणकार्पासयोर्बीजमतसी च कुलत्थिका ॥ ४१ ॥ तिला यवाश्च सिद्धार्थः कुठेरो मूलकं मिसिः ॥ यथाप्राप्तैरमीभिस्तु द्रव्यैरम्लेन संयुतैः ॥ ४२ ॥ कल्कीकृतैः सुखोष्णैश्च स्वेदयेद्विधिवच्छनैः ॥ अनेन प्रशमं याति वातशोथो न संशयः ॥ ४३ ॥

कुठेरः कृष्णवर्वरो इति दशमूल्यादिरुपनाहः ॥

पुनर्नवा दारु शुण्ठी शिग्रुः सिद्धार्थ एव च ॥ अम्लपिष्टः सुखोष्णोऽयं प्रलेपः सर्वशोथहा ॥ ४४ ॥

सैंजिना, पीपल, सैंधानिमक, सोंठ, सनके बीज, कपासके बिनोले, अलसी, कुलथी, तिल, जौ, सरसो, कालीतुलसी, मूली और सोया इनमेंसे जितनी मिलसके उननीही औषधियोंको लेकर खट्टे रसमे पीसकर कल्क रूप बनाकर कुछ कुछ गरम करके लुगदी बनाकर बांधे। धीरे धीरे सूजनपर विधिपूर्वक स्वेद देवे। इस प्रकार करनेसे वातसम्बन्धी सूजन दूर होजातीहै इसमें कुछ सदेह नहीं है। यह उपनाह स्वेद 'शोभाञ्जनादि' इस नामसे कहाजाताहै। पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ, सैंजिना और सरसो इनको खट्टे रसमें पीसकर सुहाता सुहाता गरम लेपकरे तो सर्वप्रकारकी सूजन दूर होजातीहै। यह लेप 'पुनर्नवादि' इस नामसे कहाजाताहै ॥ ४०–४४ ॥

अथ शोथपाचनम्।

न प्रशाम्यति यः शोथः प्रलेपादिविधानतः ॥ द्रव्याणि पाचनीयानि दद्यात्तत्रोपनाहने ॥ ४५ ॥

शणमूलकशिग्रूणां फलानि तिलसर्षपाः॥ अतसी सक्तवः किण्वमुष्णद्रव्यञ्च पाचनम् ॥ ४६ ॥

शणफलादीनामतस्यन्तानां सक्तवः कर्तव्याः। किण्वं सुराबीजम्। यवगोधूमधान्यादिप्रकारः अन्यच्च उष्णं द्रव्यं व्रणस्य पाचनं भवति ॥

जो सूजन प्रलेपादि करनेसे शांत नहीं हो उसपर पाचनीय पदार्थ बाँधने चाहियें। सनके बीज, मूलीके बीज, सौंजिनेके फल, तिल, सरसो, अलसी, सत्तू, सुराका बीज और अन्य सकल उष्ण पदार्थ पकानेके लिये प्रयोग करै ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

अथ शोथभेदनम्।

अन्तःपूयेष्ववक्त्रेषु तथा चोत्सङ्गवत्स्वपि॥ गतिमत्सु च रोगेषु भेदनं सम्प्रयुज्यते ॥ ४७ ॥

उत्संगवत्सु कोटरवत्सु। गतिमत्सु नाडीव्रणेषु। भेदनम् शस्त्रमौषधकर्म च ॥

रोगे व्यधेन साध्ये तु यथादेशं प्रमाणतः॥ शस्त्रं निधाय दोषांस्तु स्रावयेत्कथितं यथा ॥ ४८ ॥

जिसमें भीतर राध भर रही हो, जिसका मुख नहीं हुआ हो, जो भीतरसे खाली हो उसको तथा नाडीव्रणको शस्त्रसे अथवा औषधियोंसे भेदन करना चाहिये ॥

जो रोग शस्त्रके चीरनेसे ही शमन हो उसको स्थानानुसार शस्त्रसे छेदकर उसमेसे दोषोंको निकलवा दे, यह प्रकार सुश्रुत आदि ग्रथोमें कहा है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

अथ व्रणविशेषे शस्त्रभेदननिषेधः।

बालवृद्धासहक्षीणभीरूणां योषितामपि ॥ व्रणेषु मर्मजातेषु भेदनं द्रव्यलेपनम् ॥ ४९ ॥

बालक, वृद्ध, शस्त्र भेदनको न सह सके ऐसा मनुष्य, क्षीण मनुष्य, डरपोक तथा स्त्रिये जिनके मर्म स्थानोमें व्रण उत्पन्न हुये होंय तो उनको औषधियोंके लेपसे भेदन करे, शस्त्रसे नहीं चीरे ॥ ४९ ॥

चिरबिल्वोऽग्निको दन्ती चित्रको हयमारकः ॥ कपोतकाकगृध्राणां मललेपेन भेदनम् ॥ ५० ॥

करज, भिलावे, जमालगोटे, कनेर, कबूतरकी विष्ठा, कौवेकी विष्ठा और गिद्धकी विष्ठा इनका लेप करनेसे व्रण फूटजाताहै ॥ ५० ॥

क्षारद्रव्यं तथा क्षारो दारुणः परिकीर्तितः॥ क्षारद्रव्यमपामार्गादिक्षारः स्वर्जिकायवक्षारादिः ॥

हस्तिदन्तो जले पिष्टो बिन्दुमात्रप्रलेपितः॥ अत्यर्थकठिने शोथे कथितो भेदनः परः॥५१॥

चिरचिटा आदि खारवाले पदार्थ और सज्जीखार तथा जवाखार आदि खार इनका लेप करनेसे व्रण फूट जाताहै। हाथीके दांतको जलमें बारीक पीसकर बूँद भर लगानेसे अत्यत कठिन सूजन अवश्य नष्ट होजातीहै ॥ ५१ ॥

अथ शोथपीडनम् ।

द्रव्याणां पिच्छिलानान्तु त्वङ्मूलानि प्रपीडनम् ॥ यवगोधूममाषाणां चूर्णानि च समासतः ॥ ५२ ॥ शुष्यमाणमुपेक्षेत प्रलेपं पीडनं प्रति ॥ न चापि मुखमालिम्पेत्तथा दोषः प्रसिच्यते ॥ ५३ ॥

पीडनं प्रति पीडनद्रव्यलेपं प्रति पीडनद्रव्यलेपं शुष्यन्तमपि । धारयेदित्यर्थः । तथा व्रणस्य मुखलेपं विना प्रसवति ॥

चिकनी औषधियोंकी छाल तथा जडको पीसकर लेप करनेसे सूजन दब जाती है । जौ, गेहूँ और उडद इनको पीसकर लुबरी बनाकर लगानेसे सूजन दब जाती है । सूजनको सुखानेके लिये जो लेप कहा है उसको सुखा देना चाहिये । और सूजनके मुखपर लेप नहीं करना चाहिये क्योंकि इस प्रकार करनेसे सूजनमेंसे दोष स्रव जातेहैं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

अथ व्रणशोधनम् ।

व्रणस्य तु विशुद्धस्य क्वाथः शुद्धिकरः परः ॥ पटोलनिम्बपत्रोत्थः सर्वत्रैव प्रयुज्यते ॥ ५४ ॥ वातिके दशमूलानां क्षीरिणां पैत्तिके व्रणे ॥ आरग्वधादेः कफजे कषायः शोधने हितः ॥ ५५ ॥

व्रणमेंसे राध निकल जानेपर परवल तथा नीमके पत्तोंका क्वाथ बनाकर उस क्वाथसे व्रणको धोवे तो व्रण साफ होजाताहै । यह क्वाथ सर्व प्रकारके व्रणोंपर उपयोगी है ॥

वातके व्रणको दशमूलके क्वाथसे धोवे, पित्तके व्रणको वट आदि क्षीरवाले वृक्षोंके क्वाथसे धोवे, और कफके व्रणको आरग्वधादि गणके क्वाथसे धोवे, इस प्रकार करनेसे व्रण साफ होजाताहै ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटवेतसजं शृतम् ॥ व्रणशोथोपदंशानां नाशनं क्षालनात्स्मृतम् ॥ ५६ ॥

पीपल, गूलर, पिलखन, वड और वेत इनके क्वाथसे धोनेसे व्रणकी सूजन और उपदंश (आतशक) का घाव दूर होजाताहै ॥ ५६ ॥

तिलसैन्धवयष्ट्याह्वनिम्बपत्रनिशायुगैः ॥ त्रिवृद्घृतयुतैः पिष्टैः प्रलेपो व्रणशोधनः ॥ ५७ ॥

तिल, सैंधानिमक, मुलैठी, नीमके पत्ते, हलदी, दारुहलदी और निसोत इनको एकत्र पीसकर घीमें मिलाकर लेप करनेसे व्रण शुद्ध होजाताहै ॥ ५७ ॥

एकं वा सारिवामूलं सर्वव्रणविशोधनम् ॥ निम्बपत्रं तिला दन्ती त्रिवृत्सैन्धवमाक्षिकम् ॥ दुष्टव्रणप्रशमनो लेपः शोधन केशरी ॥ ५८ ॥

केशरी श्रेष्ठ इत्यर्थः ॥

इकली सारिवाकी जडको पीसकर लेप करनेसे सर्व प्रकारके व्रण शुद्ध होजातेहैं । नीमके पत्ते, तिल, दंती, निसोत, सैंधानिमक और सहत इनका लेप व्रणको शांत करनेवाला है और साफ करनेवालाभी है ॥ ५८ ॥

लेपान्निम्बदलैः कल्को व्रणशोधनरोपणः ॥ भक्षणाच्छर्दिमन्दाग्निपित्तश्लेष्मकृमीन्हरेत् ॥ व्रणान्विशोधयेद्वर्त्या सूक्ष्मान्हि सन्धिमर्मजान् ॥ ५९ ॥

नीमके पत्तोंका कल्क बनाकर लेप करनेसे व्रण शुद्ध होजाताहै तथा भरने लगता है । और इसको भक्षण करनेसे वमन, मदाग्नि, पित्त, कफ तथा कृमिओंको नष्ट करेहै, नीमके पत्तोंका कल्क बनाकर व्रणके मुखमें रखनेसे सधियोंमें तथा मर्मस्थलमें उत्पन्न हुए सूक्ष्म व्रण साफ होजातेहैं ॥ ५९ ॥

अभयात्रिवृतादन्तीलांगलीमधुसैन्धवैः ६० निम्बपत्रघृतक्षौद्रदार्वीमधुकसंयुतैः ॥ वर्तिस्तिलानां कल्को वा शोधयेद्रोपयेद् व्रणम् ॥ ६१ ॥

हरड, निसोत, दंती, कलिहारी, दुगुना सहत, सैंधानिमक, नीमके पत्ते, घी, दारुहलदी और मुलैठी इनको पीसकर लगानेसे अथवा तिलोंका कल्क बनाकर लगानेसे व्रण शुद्ध होताहै और भरताहै ॥६०॥ ६१ ॥

अथ व्रणरोपणम् ।

अपेतपूतिमांसानां मांसस्थानामरोहताम् ॥ कल्कस्तु रोपणो देयस्तिलजो मधुसंयुतः ॥ ६२ ॥

जो व्रण मासमे होनेके कारण उसमेसे सडाहुआ मांस निकल गयाहो और भरता न होय उसके ऊपर तिलोका कल्क शहदमें मिलाकर लगानेसे व्रण भरने लगताहै ॥ ६२ ॥

अश्वगन्धा रुहा लोध्रं कट्फलं मधुयष्टिका ॥ समंगा धातकीपुष्पं परमं व्रणरोपणम् ॥ ६३ ॥ मधुयुक्ता सुरा पुंसां सर्वव्रणरोपणी कथिता ॥

असगध, कुटकी, लोध, कायफल, मुलैठी, मजीठ और धायके फूल इनका कल्क बनाकर लगानेसे व्रण अच्छे प्रकारसे भरजाताहै । सहत मिलाकर सराबका लेप करनेसे व्रण भरने लगतेहैं ॥ ६३ ॥

सुषवीपत्रधत्तूरबलामोटाकुठेरकाः ॥ पृथगेतैः प्रलेपेन गम्भीरव्रणरोपणम ॥६४ ॥ सुषवीपत्रं मगरैलापत्रम् । कुठेरकः कृष्णबर्बरी ॥

छोटी इलायचीके पत्ते, अथवा धतूरे वा खिरैटी, मोटा (दूसरे प्रकारकी खिरैटी) अथवा काली तुलसीके पत्तोको पीसकर लेप करनेसे गम्भीर व्रण भी भरजाताहै ॥ ६४ ॥

ककुभोदुम्बराश्वत्थजम्बूकफललोध्रजैः ॥ त्वक्चूर्णैर्धूपिताः क्षिप्रं संरोहन्ति व्रणा ध्रुवम् ॥ ६५ ॥

अर्जुन, गूलर, पीपलवृक्ष, जामुन, कायफल और लोध इनकी छालोंका चूर्ण बनाकर व्रणोंपर बुरकानेसे निश्चय व्रण भरजातेहैं ॥ ६५ ॥

प्रियंगुधातकीपुष्पं यष्टीमधुजतूनि च ॥ सूक्ष्मचूर्णीकृतानि स्यू रोपणान्यवधूलनात् ॥ ६६ ॥

फूलप्रियगू, धायके फूल, मुलैठी और लाख इनका बारीक चूर्ण बनाकर व्रणपर बुरकानेसे भयंकर व्रणभी भरजाताहै ॥ ६६ ॥

यवचूर्णं समधुकं सतैलं सह सर्पिषा ॥ दद्यादालेपनं कोष्णं दाहशूलोपशान्तये ॥ ६७ ॥

जौका चून और मुलैठीका चून, तेल तथा घीमें मिला कर सुहाता सुहाता गरम लेप करनेसे व्रणका दाह और पीडा, शूल नष्ट होजाते हैं ॥ ६७ ॥

करञ्जारिष्टनिर्गुण्डीलेपो हन्याद्व्रणक्रिमीन् ॥ लशुनस्याथवा लेपो हिंगुनिम्बकृतोऽथवा ॥ ६८ ॥

करज, नीम और निर्गुण्डी इनका लेप करनेसे व्रणभे पडे हुए कीडे नष्ट होजाते हैं । लसुनका लेप करनेसे व्रणमें पडे हुए कीडे शमन होजाते हैं । नीम और हीग इनका लेप करनेसे व्रणके कीडे दूर होजाते है ॥ ६८ ॥

निम्बपत्रवचाहिंगुसर्पिर्लवणसर्षपैः ॥ धूपनं स्याद्व्रणे रूक्षकृमिकण्डूरुजापहम् ॥ ६९ ॥ ये क्लेदपाकस्रुतिगन्धवन्तो व्रणाश्चिरोत्थाः सतताश्च शोथाः ॥ प्रयान्ति ते गुग्गुलुमिश्रितेन पीतेन शान्तिं त्रिफलाश्रुतेन ७०॥

नीमके पत्ते, वच, हींग, घी, सैंधानिमक और सरसो इनकी धूनी देनेसे व्रणकी रूक्षता, व्रणके कृमि, व्रणकी खुजली तथा व्रणकी पीडा सम्पूर्ण नष्ट होजाती है ॥६९॥

जो व्रण पकाहो, स्रवताहो, गधवाला हो और बहुत कालसे उत्पन्न हुआहो, तथा जो सूजन सदैव हो उसमे गूगल डालकर त्रिफलेका रस पिये ॥ ७० ॥

पटोलनिम्बासनसारधात्रीपथ्याक्षनिर्यूहमहर्मुखेष ॥ पिबेद्युतं गुग्गुलुना विसर्पविस्फोटदुष्टव्रणशान्तिमिच्छन् ॥ ७१ ॥

कडवे परवल, अथवा कडवी तोरई, नीमके अतरकी छाल, विजयसार, आमले, हरड और बहेडा, इनका क्काथ बनाकर उसमें गूगल डालकर नित्य प्रातःकाल पीनेसे विसर्प, विस्फोटक तथा दुष्ट व्रण शात होजाताहै ॥७१॥

अथ सवर्णताकारकलेपः ।

मनःशिला समञ्जिष्ठा सलाक्षा रजनीद्वयम् ॥ प्रलेपः सघृतक्षौद्रस्त्वचः सावर्ण्यकृत्स्मृतः ॥ ७२ ॥

मैनशिल, मजीठ, लाख, हलदी और दारुहलदी इनका चूर्ण बनाकर उसमे घी तथा सहत मिलाकर लगानेसे व्रणके स्थानका वर्ण शरीरकी त्वचाके वर्णकी समान होजाताहै ॥ ७२ ॥

अथ व्रणरोगिभोजनम् ।

जीर्णशाल्योदनं स्निग्धमल्पमुष्णं द्रवान्तरम् ॥ भुञ्जानो जांगलैर्मांसैः शीघ्रं व्रणमपोहति ॥ ७३ ॥ तण्डुलीयकजीवन्तीवास्तूकसुनिषण्णकैः ॥ बालमूलकवार्ताकुपटोलैः कारवेल्लकैः ॥ ७४ ॥ सदाडिमैः सामलकैर्घृतभृष्टैः ससैन्धवैः ॥ अन्यैरेवंगुणैर्वापि मुद्गादीनां रसेन वा ॥ ७५ ॥

एभिः सह जीर्णशाल्योदनं भुञ्जानः शीघ्रं व्रणमपोहतीत्यन्वयः ॥

जागल प्रदेशके पशुओंका मांसरस, चौलाई, जीवन्ती, बथुआ, शिरिआरी, कच्चीमूली, बैंगन, परवल, करेले, अनार और आमले इनको घीमें भूनकर सैंधानिमक डालकर इनके साथ अथवा इनकी समान अन्य गुणोंवाली वस्तुओंके साथ वा मूँग आदिके रसके साथ, किंचित् गरम, स्निग्ध और पतले पुराने लाल शालिचावलोंका भात खानेसे व्रण नष्ट होजाताहै ॥ ७३-७५ ॥

अम्लं दधि च शाकञ्च मांसमानूपमौदकम् ॥ क्षीरं गुरूणि चान्नानि व्रणे च परिवर्जयेत् ॥ ७६ ॥

खट्टा दही, खट्टा शाक, अनूपदेशके और जलचर जीवोंका मांस, दूध और भारी अन्न ये सब व्रणरोगी त्याग देवे ॥ ७६ ॥

अथ व्रणे श्रमादिजोपद्रवाः ।

व्रणे श्वयथुरायासात्स च रागश्च जागरात् ॥ तौ च रुक्च दिवास्वापात्ते च मृत्युश्च मैथुनात् ॥ ७७ ॥

व्रणरोगमें परिश्रम करनेसे सूजन आतीहै, रात्रिमें जागनेसे लाली बढतीहै और सूजन आतीहै, दिनमें सोनेसे सूजन, लाली तथा पीडा ये तीनो होतीहैं, और मैथुन करनेसे सूजन, लाली, पीडा और मृत्यु ये चारों होतेहैं ॥ ७७ ॥

अथागन्तुजव्रणचिकित्सा ।

क्रुद्धे सद्योव्रणे कुर्यादूर्द्ध्वं चाधश्च शोधनम् ॥ क्रिया शीता प्रयोक्तव्या रक्तपित्तोष्मनाशिनी ॥ ७८ ॥ लंघनञ्च बलं ज्ञात्वा भोजनं चास्रमोक्षणम् ॥ घृष्टे विदलिते चैव सुतरामिष्यते विधिः ॥ ॥ ७९ ॥ छिन्ने भिन्ने तथा विद्धे क्षते वास्रगतिस्रवेत् ॥ रक्तक्षयात्तत्र रुजः करोति पवनो भृशम् ॥ ८० ॥ परिषेकं स्नेहपानं लेपं तत्रोपनाहनम् ॥ कुर्वन्ति स्नेहवस्तिश्च रुजाघ्नं चौषधं पृथक् ॥ ८१ ॥ खङ्गादिच्छिन्नगात्रस्य तत्काले पूरितो व्रणः ॥ गाङ्गेरुकीमूलरसैः सद्यः स्याद्गतवेदनः ॥ ८२ ॥

गांगेरुकी नागबला । गुलसकरीति लोके ॥

आगन्तुज व्रणका प्रकोप होय तो वमनसे तथा विरेचनसे शरीरको शुद्ध करे और रुधिरकी तथा पित्तकी गरमीको नष्ट करनेवाली शीतल क्रिया प्रयोग करे, बलाबल विचारकर लंघन करावे, योग्य भोजन देवे और विचारकर रुधिर निकलवावे । जो आगन्तुज व्रण घस जाय अथवा फटजाय तो योग्यतानुसार यह विधि करनी चाहिये॥

अग छिन्न, भिन्न, विद्ध होजाय और घावोंमेसे रुधिर निकलनेलगताहै, इस प्रकार रुधिरके क्षय होनेसे वायु अत्यन्त पीडाको उत्पन्न करतीहै, जो इस प्रकार होय तो स्नेहपानकरे, सेचनकरे, लेप करे, उपनाह (स्वेद) देवे, स्नेहकी पिचकारी लगावे और वेदनाको हरनेवाली औषधिप्रयोग करे । तलवार आदिके घावमें तत्काल गंगेरनके जडके रसको भर देवे तो उसकी वेदना दूर होजातीहै ॥ ७८-८२ ॥

कषाया मधुराः शीताः क्रियाः सर्वाः प्रयोजयेत् ॥ सद्योव्रणानां सप्ताहात्पश्चात्पूर्वोक्तमाचरेत् ॥ ८३ ॥ आमाशयस्थे रुधिरे विदध्याद्वमनं नरः ॥ तस्मिन्पक्वाशयस्थे तु प्रकुर्वीत विरेचनम् ॥ ८४ ॥

आगन्तुज व्रणके ऊपर प्रथम सातदिनतक सम्पूर्ण कसैली, मधुर और शीतल क्रिया करे और फिर आठवे दिन अन्य व्रणोके लिये जो क्रिया कही है वह करनी चाहिये, रुधिर आमाशयमें प्राप्त होय तो वमन करावे, और पक्वाशयमे प्राप्त होय तो विरेचन करावे॥ ८३॥ ८४॥

क्वाथो वंशत्वगैरण्डश्वदंष्ट्राश्मभिदा कृतः॥ हिंगुसैन्धवसंयुक्तः कोष्ठस्थं स्रावयेदसृक् ॥ ८५ ॥

बाँसकी छाल, अण्ड, गोखुरू, और पाखानभेद इनका क्वाथ बनाकर उसमें हींग तथा सेंधानिमक डालकर पिये तो कोठेमें प्राप्त हुआ रुधिर वहजाता है ॥ ८५ ॥

यवकोलकुलत्थानां निःस्नेहेन रसेन च ॥ भुञ्जीतान्नं यवागूं वा पिबेत्सैन्धवसंयुतम् ॥ ८६ ॥

आगन्तुज व्रणवाले मनुष्य जौ, बडे बेर और कुलथी इनको चिकनाईके विना रसके साथ भात भोजन करे अथवा सेंधानिमक डालकर यवागू पियें ॥ ८६ ॥

अथ जात्यादिघृतम् ।

जातीनिम्बपटोलपत्रकटुकादार्वीनिशासारिवामञ्जिष्ठाऽभयसिक्थतुत्थमधुकैर्नक्ताह्वबीजैः समैः ॥ सर्पिः सिद्धमनेन सूक्ष्मवदना मर्माश्रिताः स्राविणो गम्भीराः सरुजो व्रणाः सगतिकाः शुध्यन्ति रोहन्ति च ॥ ८७ ॥ वृद्धवैद्योपदेशेन पारम्पर्योपदेशतः ॥ जातीघृते तु संसिद्धे क्षेप्तव्यं सिक्थकं बुधैः ॥ ८८ ॥

चमेलीके पत्ते, नीमके पत्ते, परवल, कुटकी, दारुहलदी, सारिवा, मजीठ, खस, मोम, नीलाथोथा, मूलैठी और करजके बीज इन सबको समान भाग लेकर कल्क बनाकर इस कल्कसे पकाये हुए घीको जात्यादिघृत कहतेहैं । इस घृतको लगानेसे छोटे मुखवाले, मर्मोमें उत्पन्न हुए, स्राववाले, गम्भीर, वेदनायुक्त और अगोंमें गति करनेवाले व्रण शुद्ध होजातेहैं और भरजातेहैं ॥

यद्यपि ऊपरके पाठमे मोमको प्रथमही घीमें डालना कहा है तथापि वृद्ध वैद्योंके उपदेशसे और गुरुओंकी परपरासे यह सिद्ध होताहै कि जात्यादिघृत पकनेके पश्चात् उसमे मोम डालना चाहिये ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

अथ जात्यादितैलम् ।

जातीनिम्बपटोलानां नक्तमालस्य पल्लवाः ॥ सिक्थकं मधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटुरोहिणी ॥ ८९ ॥ मञ्जिष्ठां पद्मकं पथ्यां लोध्रत्वङ्नीलमुत्पलम् ॥ सारिवा तुत्थकश्चापि नक्तमालफलं तथा ॥ ९० ॥ एतानि समभागानि कल्कीकृत्य प्रयत्नतः ॥ तिलतैलं पचेत्सम्यग्वैद्यः पाकविचक्षणः ॥ ९१ ॥ विषव्रणे समुत्पन्ने स्फोटके कुक्षिरोगिणि ॥ दद्रुवीसर्परोगेषु कीटदष्टेषु सर्वथा ॥ ९२ ॥ सद्यः शस्त्रप्रहारेण दग्धविद्धेषु चैव हि ॥ नखदन्तक्षते देहे दुष्टमांसापकर्षणे ॥ ९३ ॥ म्रक्षणेन हितं तैलमिदं शोधनरोपणम् ॥ तैलं जात्यादिनाम्नैतत्प्रसिद्धं भिषगादृतम् ॥ ९४ ॥

चमेलीके पत्ते, नीमके पत्ते, कडवे परवल, करजके पत्ते, मोम, मुलैठी, कूट, हलदी, दारुहलदी, कुटकी, मजीठ, पद्माख, हरड, लोधकी छाल, नीले कमल, सारिवा, नीलाथोथा, और करजके फल इनको समान भागलेकर कल्क बनाकर इस कल्कसे बुद्धिमान् वैद्य तिलके तैलको उत्तम विधिसे पकावे तो यह जात्यादि तैल सिद्ध होताहै । यह तैल–विषजन्य व्रण, विस्फोटक, कहारी, विसर्प, विषैले कीडेका काटाहुआ व्रण, तत्काल शस्त्रके प्रहारसे उत्पन्न हुआ व्रण, दग्धव्रण, विद्धव्रण, नखका घाव, दांतका घाव इनके ऊपर यह

तेल लगानेसे व्रण भरनेलगताहै, व्रणमेंसे खराब मांस निकालनेके लिये यह तैल उत्तम है। वैद्योंका आदर किया हुआ यह जात्यादितैल व्रणको साफ करनेवाला और भरनेवाला है ॥ ८९–९४ ॥

अथ विपरीतमल्लतैलम् ।

चित्रकरसोनरामठशरपुङ्खालांगलीकसिन्दूरैः ॥ सविषैस्तथा सकुष्ठैः कटुतैलं साधु सम्पक्वम् ॥ ९५ ॥ विपरीतमल्लसंज्ञं तैलं दुष्टव्रणं तथा नाडीम् ॥ बहुभेषजैरसाध्यामपथ्यभोक्तुश्च निस्तुदति ॥ ९६ ॥

चीता, लसुन, हींग, सरफोंका, कलिहारी, सिन्दूर, वत्सनाभ और कूठ इनके कल्कसे विधिपूर्वक बनाया हुआ सरसोंका तेल 'विपरीतमल्ल' तेल कहाजाताहै । इस तेलके लगानेसे दुष्टव्रण नष्ट होजाताहै, जो अनेक औषधियोंसे भी नष्ट न होय ऐसा असाध्य नाडीव्रण भी दूर होजाताहै । इसपर यदि अपथ्य भी सेवन किया जाय तो भी इस तेलसे दुष्टव्रण और नाडीव्रण अवश्य दूर होजातेहैं ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

अथामृतादिगुग्गुलुः ।

अमृतापटोलमूलत्रिफलात्रिकटुक्रिमिघ्नानाम् ॥ समभागानां चूर्णं सर्वसमो गुग्गुलोर्भागः ॥ ९७ ॥ प्रतिवासरमेकैकां गुटिकां खादेदिह परिमाणाम् ॥ जेतुं व्रणवातासृग्गुल्मोदरशोथवातरोगांश्च ॥ ९८ ॥

गिलोय, परवलकी जड, हरड, बहेडा, आमले, सोंठ, मिरच, पीपल और वायविडङ्ग, इनको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण बनाकर और सब चूर्णकी बराबर गूगल डालकर योग्य मात्राकी गोली बनालेवे । इसको 'अमृतादि गूगल कहतेहैं । जो इनमेंसे नित्य एक गोली खाय तो इससे व्रण, वातरक्त, गुल्म, उदरके रोग, सूजन और वातके विकार नष्ट होजातेहैं ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

अथाग्निदग्धचिकित्सा ।

प्लुष्टस्याग्निषु तपनं कार्यमुष्णं तथौषधम् ॥ सम्यक् स्विन्ने शरीरे तु स्विन्नं भवति शोभनम् ॥ ९९ ॥ प्रकृत्या सलिलं शीतं स्कन्दयत्यतिशोणितम् ॥ तस्मात्सुखयति ह्युष्णं न तु शीतं कदाचन ॥ १०० ॥

स्कन्दयति शोषयति ॥

शीतामुष्णाञ्च दुर्दग्धे क्रियां कुर्यात्ततः पुनः ॥ घृतलेपप्रदेहांश्च शीतानेवास्य कारयेत् ॥ १०१ ॥ सम्यग्दग्धे तुगाक्षीरीप्लक्षचन्दनगैरिकैः ॥ सामृतैः सर्पिषा युक्तैरालेपं कारयेद्भिषक् ॥ ग्राम्यानूपोदकैर्मांसैः पिष्टैरेनं प्रलेपयेत् ॥ १०२ ॥ अतिदग्धे विशीर्णानि मांसान्युद्धृत्य शीतलाम् ॥ क्रियां कुर्यात्ततः पश्चाच्छालितण्डुलकण्डनैः ॥ १०३ ॥ तिन्दुक्याश्च कषायैर्वा घृतमिश्रैः प्रलेपयेत् ॥ सर्वेषामग्निदग्धानामेतद्रोपणमुत्तमम् ॥ १०४ ॥

अग्निसे जलाहुआ प्लुष्ट, दुर्दग्ध, सम्यग्दग्ध और अतिदग्ध ऐसे चार प्रकारका है, स्वाभाविक वर्ण बदलकर अत्यन्त दाह हो और फोडा ऊपरको न उठे उसको प्लुष्ट जानना । जो तीव्र फोडे उठें, आकर्षण अर्थात् खिचते हों ऐसी पीडा हो, दाह हो, लाल होजाय, पक जाय तथा पानी निकलजानेसे अन्यान्यवेदना हों, और वह फोडे छाले बहुत देरमें पके, ऐसे लक्षण होयँ तो दुर्दग्ध समझना । जो जलेकी जगह ऊपरको न उठा हो, पकेताडके फलकी समान रंगवाला हो, जले स्थानमें अत्यन्त ऊँचाई और अत्यन्त नीचाई आदि दोष न होय और त्वचामें जलेके लक्षण दीखते हाँय उसको सम्यग्दग्ध समझना, जो मांस लटक गया हो, गात्र विधगया हो, शिराओंमें, स्नायुओंमें, सन्धियोंमे तथा अस्थियोंमें हडफूटन और ज्वर, दाह, तृषा तथा मूर्च्छा आदि उपद्रव होयँ उसको अतिदग्ध समझना । जो अंग दग्ध हुआ होय तो उसको अग्निसे तपावे तथा उष्ण औषधि

प्रयोग करे, क्योंकि अच्छे प्रकार सेक करनेसे रुधिर सिककर पतला होजाताहै अर्थात् उसकी गरमी अच्छे प्रकारसे बाहर निकलकर वायुका गमन भी सबल मार्गसे खुला रहता है, यदि प्लुष्ट दग्धके ऊपर पानी डाला जाय तो पानी स्वाभाविक रीतिसे शीतल होनेके कारण रुधिर को जमादेता है, इससे उसकी गरमी बाहर नहीं निकलती और वायुकी गति भी रुकजाती है, भारी पीडा होतीहै, इस कारण प्लुष्टको गरम उपचारोंसे सुख होताहै, किंतु शीतल उपचारसे कभी सुख नहीं होता। जो दुर्दग्ध होय तो उसपर वैद्य शीतल क्रियाभी करे और गरम क्रियाभी करे परन्तु दुर्दग्धके ऊपर घी चुपडे तो शीतलही चुपडे और प्रलेपादि करे तो शीतलही करे। सम्यग्दग्ध हुआ होय तो वैद्य वंशलोचन, पीपल, लालचंदन, पीलागेरु और गिलोय इनको पीसकर घीसे चिकना करके लेप करे तथा घोडा आदि ग्राम्य पशुओंका मास, कछुवा इत्यादि जलचर जीवोंका मास और सूअर आदि जलप्राय देशमे रहनेवाले जीवोका मास, इनको पीसकर लेप करे। अतिदग्ध हुआ होय तो लटके हुए और फैलेहुए मासको निकालकर वैद्य शीतल क्रिया प्रयोग करे और फिर लाल चावलोंका चूर्ण छिडक देवे। अथवा तेंदूकी छालके चूर्ण को घीमें पीसकर लगावे ॥ ९९–१०४ ॥

अथ सिक्थकादिघृतम्।

सिक्थककर्दमजीरकमधुपथ्यासर्वमिश्रितं लेपात् ॥ गव्यं घृतमपहरति विपाकजनितं व्रणं सद्यः ॥ १०५ ॥

मोम, कीच, जीरा, सहत और हरड इनको एकत्र पीसकर उसमें गायका घी मिलाकर लगानेसे जला हुआ व्रण तत्काल नष्ट होजाताहै ॥ १०५ ॥

अथ पटोलादितैलम्।

सिद्धं कषायकल्काभ्यां पटोल्याः कटुतैलकम् ॥ दग्धव्रणरुजास्रावदाहविस्फोटनाशनम् ॥ १०६ ॥

परवलके क्राथसे और कल्कसे पकाये हुए सरसोके तेलको लगानेसे जलेहुए घावको, पीडाको, स्रावको, दाहको और फोडोंको नष्ट करेहै ॥ १०६ ॥

अथ व्रणग्रंथिचिकित्सा।

वातास्रमसृतं दुष्टं सशोथं ग्रथितं व्रणम् ॥ कुर्यात्सदाहं कण्ड्वाढ्यं व्रणग्रन्थिस्तु स स्मृतः ॥ १०७ ॥ कम्पिल्लकं विडंगानि त्वचं दार्व्यास्तथैव च ॥ पिष्ट्वा तैलं पचेत्तु व्रणग्रन्थिहरं परम् ॥ १०८ ॥

इति व्रणागन्तुव्रणाग्निदग्धनिदानचिकित्साधिकारः।

वात तथा रुधिर यह दोनों व्रणको स्रावरहित, दुष्ट- सूजन युक्त, ग्रंथिसहित, दाह और खुजली संयुक्त करतेहैं, ऐसे व्रणको व्रणग्रंथि कहतेहैं। कवीला, वायविडंग और दारुहलदीकी छाल इनको पीसकर कल्क बनाकर उस कल्कसे तैलको पकावे इस तेलको लगानेसे व्रणग्रंथि नष्ट होजातीहै ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

इति व्रणशोथाग्निदग्धाधिकारः संपूर्णः।

अथ भग्नाधिकारः।

तत्र भग्नभेदाः।

भग्नं समासाद् द्विविधं हुताश काण्डे च सन्धावपि तत्र सन्धौ ॥ उत्पिष्टविश्लिष्टविवर्तितानि तिर्यग्गतं क्षिप्तमधश्च भग्नम् ॥ १ ॥

अत्र भावेऽर्थे क्तप्रत्ययस्तेन भग्नं भंगः स चात्र विश्लेषोऽभिप्रेतः। तेन भग्नमत्रास्थिविश्लेषलक्षणम्। समासात्संक्षेपात्। हुताश हे अग्निवेश ! यतश्चरकेण अग्निवेशस्य हुताशेति नामान्तरमुक्तम्। काण्डे सन्धिपर्यन्ते एकखण्डे अस्थिसन्धौ द्वयोरस्थ्नोः सन्धाने तत्र सन्धौ उत्पिष्टादिभेदैः षट्प्रकारकं भग्नं भवति। स्वल्पवक्तव्यत्वेन सन्धिभग्नविवरणम्। उत्पिष्टेत्यादि। अधः अधोभग्नम् ॥

चरकमें पुनर्वसु मुनिने अपने शिष्य अग्निवेशसे कहाहै कि "हे अग्निवेश ! भग्नरोग संक्षेपसे दो प्रकारका है। एक काडभग्न और दूसरा संधिभग्न। संधियोंकी अस्थिके एक भागमे जो भग्न हुआ होय तो वह काडभग्न कहाजाताहै

और दो अस्थियोंकी सधियोंमे जो भग्न होय वह सधिभग्न कहाजाताहै ॥

सधिभग्नके विषयमें थोडा कहना है, इस कारण सधिभग्नका विवेचन प्रथम करतेहैं । उत्पिष्ट, विश्लिष्ट, विवर्तित, तिर्यग्गत, क्षिप्त और अधोगत इस प्रकार संधिभग्नके छै भेद हैं ॥ १ ॥

अथ संधिभग्नसामान्यलक्षणम् ।

प्रसारणाकुञ्चनवर्तनोग्रा रुक् स्पर्शविद्वेषणमेतदुक्तम् ॥ सामान्यतः सन्धिगतस्य लिंगमुत्पिष्टसन्धेः श्वयथोः समन्तात् ॥ विशेषतो रात्रिभवा रुजा च विश्लिष्टके तौ च रुजा च नित्यम् ॥ २ ॥

वर्तनम् परिवर्तनम् । उत्पिष्टसन्धेः उत्पिष्टः द्वाभ्याम् अस्थिभ्यां पिष्टः न्धिर्यस्य तस्य समन्तादुभयभागयोः शोथो भवति । विश्लिष्टमाह–विश्लिष्ट इत्यादि ता उभयतः शोथो रात्रिरुजा च नित्यम् । सदा रुजाधिका भवतीति उत्पिष्टभेदः ॥

फैलानेमें, सकोडनेमें तथा फेरनेमें उग्र पीडा हो और स्पर्श करते समय पीडा होय वह सधिभग्नके सामान्य लक्षण जानने ।

दो हड्डियोंके परस्पर साथ घिसनेसे सधि दवजातीहै, दोनों भागोंमें सूजन आजातीहै और रात्रिमें विशेष पीडा होतीहै वह उत्पिष्टके लक्षण जानने ।

दोनों भागोंमें सूजन होय और निरंतर अधिक वेदना रहतीहोय, उसको विश्लिष्ट जानना । उत्पिष्टमें रात्रिमें अधिक पीडा होतीहै और विश्लिष्टमें निरतर अधिक पीडा रहती है, इतना भेद है । विश्लिष्ट अर्थात् सधियोंकी अस्थियोंसे अलग होना । सधि अलग नहीं होय, सधिकी दोनों अस्थि बॉकी (टेढी) होजायँ और इससे दोनों अस्थियोंमें तीव्र पीडा होय, वह विवर्तके लक्षण जानने ॥ २ ॥

अथ विवर्तितादिलक्षणम् ।

विवर्तिते पार्श्वरुजश्च तीव्रास्तिर्यग्गते तीव्ररुजो भवंति ॥ क्षिप्तेऽतिशूलं विषमं रुजश्च क्षिप्ते त्वधोरुग्विघटश्च सन्धेः ३॥

विवर्तिते सन्धौ अमुक्ते अस्थिद्वये परिवर्तिते पार्श्वरुजः सन्धिस्थितास्थिखण्डद्वयपार्श्वयो रुजः तिर्यग्गते एकस्मिन्नस्थिन सन्धिस्थानं त्यक्त्वा तिर्यग्गते । क्षिप्ते सक्थ्यूरुसन्ध्योः एकस्मिन्नस्थिन परस्मादस्थ्न उपरिगते अस्थ्नोः अतिशूलम् । तत्र विषमं कदाचिदधिकं कदाचिन्न्यूनम् । अधः क्षिप्ते सन्धिगते एकस्मिन्नस्थिन अधोगते रुक्सन्धिविघट्टनश्च ॥

सन्धियोंकी दो अस्थियोंमें एक अस्थि सधिके स्थान को छोडकर आडी होजाय और उससे तीव्र पीडा होय यह तिर्यग्गतके लक्षण जानने ।

संधियोंकी दो अस्थियोंमेसे एक अस्थि दूसरी अस्थिके ऊपर चढजाय और उससे अस्थियोंमें विषम रीतिका शूल हो तथा वेदना होय यह क्षिप्तके लक्षण जानने । किसी समय शूलकी न्यूनता और विषमताभी होतीहै ।

सधियोंकी दो अस्थियोंमेसे एक अस्थि दूसरी अस्थिसे नीचे चली जाय और उससे वेदना होय तथा सधि अलग अलग होजायँ, यह अधोगतके लक्षण जानने ॥ ३ ॥

अथ कांडभग्नद्वादशभेदनिरूपणम् ।

भग्नन्तु काण्डे बहुधा प्रयाति विशेषतो नामभिरेव तुल्यम् ॥ ४ ॥

भग्नं काण्डे कांडविषये बहुधा बहुभिः प्रकारैः प्रयाति । अत्र बहुविधत्वं द्वादशविधत्वं बोद्धव्यम् । बहुविधस्य काण्डभग्नस्य पृथग् लक्षणं नोक्तम् । किन्तु नामभिरेव तुल्यम् । कर्कटकादिनामानुरूपमेव लक्षणं बोद्धव्यम् तान्प्रकारानाह–

काण्डे त्वतः कर्कटकाश्वकर्णविचूर्णितं पिच्चितमस्थिछल्लितम् ॥ काण्डेषु भग्नं ह्यतिपातितश्च मज्जागतं विस्फुटितश्च वक्रम् ॥ ५ ॥ छिन्नं द्विधा द्वादशधापि काण्डे सामान्यमग्रे किल तस्य लिंगम् ॥ ६ ॥

अतः सन्धिभग्नानन्तरं काण्डे काण्ड-

भग्नं तदाह–कर्कटकः अस्थिविश्लेषपूर्वको मध्ये प्रोन्नतः । पार्श्वयोः अवनतः कर्कटतुल्यरूपत्वात्कर्कटकः । अश्वकर्णः अश्वकर्णवद्विपुलास्थिनिर्गमादश्वकर्णः । विचूर्णितम् चूर्णितमस्थि तच्च शब्दस्पर्शाभ्यां बोद्धव्यम् । पिच्चितन्नियन्त्रितं बहुशोथम् । छल्लितं विश्लिष्टमस्थि निःस्रवम् । काण्डेषु भग्नम् काण्डभग्नम् । यद्यपि कर्कटकादि सर्वमेव काण्डभग्नन्तथापि इयं काण्डभग्नसंज्ञा विशिष्टा अत्र भग्नं भङ्गस्त्रुटिस्तेन सर्वथा त्रुटितम् । पृथग्भूतं त्वचि स्थितं यत्काण्डभग्नमतिपातितमशेषेण छित्त्वा पातितमस्थि । मज्जागतम् अस्थ्यवयवोऽस्थिमध्ये प्रविश्य मज्जानां गतम् । विस्फुटितम् स्तोकं विदीर्णम् । वक्रम् स्थानं त्यक्त्वा कुब्जीभूतम् । छिन्नं द्विधा एकं विदीर्ण संलग्नम् अपरं विदीर्णं द्विधाभूतं द्वादशधा च काण्डेति कर्कटकादिः काण्डे काण्डे च भग्नं द्वादशधा इत्यन्वयः । तच्च उक्तमेव ॥

काडभग्न बारह प्रकारका होताहै और वह उसके बारह प्रकारके लक्षण कर्कट आदि नामोंसे जानने, इस कारण अलग कहनेकी जरूरत नहीं। कर्कटक, अश्वकर्ण, विचूर्णित, पिच्चित, छल्लित, काडभग्न, अतिपातित, मज्जागत, विस्फुटित, वक्र, अल्पछिन्न और बहुछिन्न इस प्रकार कांडभग्न बारह प्रकारका है । बारह प्रकारके काडभग्नके जो सामान्य लक्षण हैं वे पीछेसे कहेंगे ।

अस्थियोंके भाग छूटकर बीचमें ऊंचे और दोनों ओर दबकर केकडेकी समान होजाय उसको कर्कटक कहतेहैं ।

घोडेके कानकी समान बडी हड्डी बाहर निकल आवे उसको अश्वकर्ण कहतेहैं ।

अस्थियोंका चूर्ण होजाय और वह शब्दसे अथवा स्पर्शसे जाना जाय उसको विचूर्णित कहतेहैं ।

अस्थियोंके अवयव परस्पर अलग होकर बहुत सूजनयुक्त होंय और पिचजाय उसको पिच्चित कहतेहैं ।

अस्थिका कोई भाग शिथिल होकर उखड जाय और बाहर निकल आवे उसको छल्लित कहतेहैं ।

अस्थि सर्वथा टूटकर अलग हो जाय और चमडेमें रहे उसको काडभग्न कहतेहैं यद्यपि कर्कटादि सम्पूर्ण भेद काडभग्नकेही कहे हैं तथापि उनमें यह मुख्य है ।

जो अस्थि सम्पूर्ण रीतिसे छिदकर गिर जाय उसको अतिपातित कहतेहैं ।

अस्थियोंके अवयव अस्थियोंके भीतर घुसकर मज्जामे पहुच जाय उसको मज्जागत कहतेहैं ।

जो अस्थि कुछेक फट गई होय वह विस्फुटित कहीजातीहै । जो अस्थि अपने स्थानको छोडकर कुबडी होजाय वह वक्र कहीजातीहै । जो अस्थि अच्छे प्रकारसे फटकर वहांही लगी रहे वह अल्पछिन्न कहीजातीहै । जो अस्थि अच्छे प्रकारसे फट अलग अलग टूक टूक होजाय वह बहुच्छिन्न कहीजातीहै ॥ ४–६ ॥

अथ कर्कटककांडभग्नसामान्य–लक्षणम् ।

स्रस्तांगता शोथरुजातिवृद्धिस्तथा व्यथावृद्धिरतीव नित्यम्॥सम्पीडयमाने भवतीह शब्दः स्पर्शासहं स्पन्दनतोदशूलाः ॥ ७॥ सर्वास्ववस्थासु न शर्मलाभो भग्नस्य काण्डे खलु चिह्नमेतत् ॥ ८ ॥

स्पर्शासहमिति काण्डभग्नस्य विशेषणम् । स्पन्दनं नाडीनां स्फुरणम् । तोदः शूलेनेव च व्यथा । रुजा सामान्यपीडा।सर्वासु अवस्थासु शयनादिषु ॥

अगोंमें शिथिलता, सूजनकी वृद्धि, वेदना अत्यत बढजाय, शूलकी समान निरंतर विशेष पीडा हो, दबानेसे शब्द हो, स्पर्शको नहीं सहसके, नाडियोंका फरकना, सुईचुभोने सरीखी पीडा, शूलकी पीडा और सोने बैठने आदि समस्त अवस्थाओंमें चैन नहीं पडे ये सब काडभग्नके सामान्य लक्षण जानने ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ भग्नस्य कष्टसाध्यता

अल्पाशिनोऽनात्मवतो जन्तोर्वातात्मकस्य च ॥ उपद्रवैर्वा जुष्टस्य भग्नं कृच्छ्रेण सिध्यति ॥ ९ ॥

अनात्मवतः रोगप्रतीकारे यत्नरहितस्य वातात्मकस्य वातप्रकृतेः। उपद्रवैः ज्वराध्मानमोहमूत्रपुरीषसंगादिभिः ॥

थोडा भोजन करनेवाले, इन्द्रिये जिनकी वशमें नहीं हैं, वातप्रकृतिवाले, और ज्वर, अफारा, बेहोसी, मूत्र और मलका अवरोध आदि उपद्रव होंगे तो भग्नसंधि भग्न कष्टवाला कठिनतासे आरोग्य होताहै ॥ ९ ॥

अथ भग्नासाध्यता।

भिन्नं कपालं कट्यान्तु सन्धिमुक्तं तथा च्युतम् ॥ जघनं प्रतिपिष्टञ्च वर्जयेत्तु चिकित्सकः ॥ १० ॥

कपालम् जानुनितम्बांसगण्डतालुशंखवंक्षणशिरोऽस्थीनि कपालानि । तथा च्युतम् अधः क्षिप्तम्। प्रतिपिष्टम् उत्पिष्टम्।

घुटनोंकी, नितम्बकी, कन्धेकी, गालकी, तालुकी, कनपटीकी, साथलोंकी, सधियोंकी और मस्तककी हड्डी टूट गई होय तो वैद्य उसकी चिकित्सा न करे जो कमरमें अघोगत नामक संधिभग्न हुआ होय तो और पेडुमें उत्पिष्ट नामक संधिभग्न होय तो उसकी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ १० ॥

असंश्लिष्टकपालश्च ललाटे चूर्णितश्च तत् ॥ भग्नं स्तने गुदे पृष्ठे शंखे मूर्द्धनि वर्जयेत् ११।

असंश्लिष्टकपालमिति भग्नविशेषणम्। स्तने स्तनयोः अन्तरे। मूर्द्धनि चूडास्थाने।

गोंठें, नितम्ब, खवे, गाल, तालू, कनपटी और मस्तक इनकी हड्डी जो दूसरी अस्थियोंसे छूट गई होय तो उनकी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। ललाटमें जो विचूर्णित नामक काण्डभग्न होय तो उसकी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। स्तनोंका मध्यभाग, गुदा, पीठ, कनपटी और ब्रह्मरन्ध्र इनकी संधियोंमें जो काण्डभग्नहुआ होय तो उसकी भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ ११ ॥

सम्यक्संहितमप्यस्थि दुर्न्यासाद्दुष्टबन्धनात्॥ संक्षोभाद्वाऽपि यद्गच्छेद्विक्रियां तच्च वर्जयेत् ॥ १२ ॥

सम्यक्संहितमपि सम्यक् योजितमपि। अस्थि दुर्न्यासाद्दुःस्थापनात्। सुन्यस्तमपि दुष्टबन्धनात्। सुबद्धमपि संक्षोभात्। अभिघातादिना सञ्चलनात्। विक्रियां गच्छेत् विकृतं भवति तत् वर्जयेत् ॥

जो अस्थि अच्छे प्रकारसे जुड भी गई होय परंतु उनको योग्यरीत्यनुसार न रक्खे तथा योग्यरीतिसे नही बाँधे, अथवा योग्य रीतिसे जुडनेपर और बाँधनेपर भी उसमें चोट आदिके लगजानेसे विकृति होजाय तो वह भी असाध्य जाननी ॥ १२ ॥

अथास्थिविशेषे भग्नविशेषः।

तरुणास्थीनि नम्यन्ते भिद्यन्ते नलकानि तु॥ कपालानि विभज्यन्ते स्फुटन्ति रुचकानि च ॥ १३ ॥

तरुणास्थीनि घ्राणकर्णाक्षिगुदेषु कोमलास्थीनि नम्यन्ते वक्रीभवन्ति तेन अत्र वक्रतालक्षणं भग्नम्। नलकानि नलादीनि नाडीवत्सरन्ध्राणि अस्थिपर्वाणि भिद्यन्तेऽस्थ्यन्तरानुप्रवेशाद्विदार्यन्ते। कपालानि जानुनितम्बांसगण्डतालुशंखवंक्षणशिरोऽस्थीनि विभज्यन्ते। स्फुटन्ति। त्रुट्यन्ति रुचका दन्ताः अस्थीनि च तरुणनलककपालरुचकवलयभेदात्पञ्चविधानि। तत्र रुचकानि चेति चकाराद्वलयान्यपि त्रुटयन्तीति बोद्धव्यम्॥

पाण्योः पार्श्वयुगे पृष्ठे वक्षोजठरपायुषु ॥ पादयोरपि चास्थीनि वलयानि वभाषिरे ॥ १४ ॥

तरुणास्थि (नाक), कान, आख और गुदा इनकी हड्डी नरम होनेके कारण नमजातीहैं, इस

कारण उनमें वक्रनामक कांडभग्न होताहै. नलक नामक हड्डी (नलीकी समान छेदवाली हड्डी) उसमें दूसरी हड्डीके घुसजानेसे चिरजाती है, कपालनामक अस्थिमें घुटने, नितंब, कन्धे, कपोल, तालू, कनपटी, सांथलकी सधि और मस्तककी हड्डी टूटकर अलग होजाती हैं और रुचकनामक अस्थि (दातकी हड्डी) टूटकर चूर चूर होजाती है।

तरुण, नलक, कपाल, रुचक और वलय इसप्रकार हड्डी पांच प्रकारकी हैं इनमें पहिली चार प्रकारकी अस्थि कही हैं, यद्यपि पांचवें प्रकारकी वलयनामक हड्डीके विषय नहीं कहा है तथापि मूल श्लोकमें (च) शब्द है उससे जानलेना चाहिये कि 'वलयनामक हड्डी भी टूट जाती- है'। दोनों हाथोंमें, दोनों पसलियोंकी, पीठकी, पेटकी, गुदाकी और दोनों पांवोंकी हड्डी वलय कही जाती है ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथ भग्नचिकित्सा।

आदौ भग्नं विदित्वा तु सेचयेच्छीतलाम्बुना ॥ पंकेनालेपनं कार्यं बन्धनञ्च कुशान्वितम् ॥ १५ ॥ अवनामितमुन्नह्येदुन्नतं चावपीडयेत् ॥ अञ्चेदधःक्षिप्तमधो गतं चोपरि वर्तयेत् ॥ १६ ॥ मधूकोदुम्बराश्वत्थकदम्बनिचुलत्वचः ॥ वंशसर्जार्जुनानाञ्च बंधार्थमुपसंहरेत् ॥ १७ ॥ पटस्योपरि बध्नीयान्न गाढं शिथिलं न च ॥ सप्तसप्तदिनाच्छीते घर्मे मुञ्चेत्र्यहात्र्यहात् ॥ ॥ १८ ॥ मासान्ते पञ्चपञ्चाहाद्भग्ने दोषऽवसेचनम् ॥ आलेपनार्थं मञ्जिष्ठामधूकं चाम्बुपेषितम् ॥ शतधौतघृतोन्मिश्रं शालिपिष्टञ्च लेपनम् ॥ १९ ॥ सद्योऽभिघातजनिता आगन्तुश्वयथवः प्रशाम्यन्ति ॥ पिष्टकलवणालेपादम्लीकाफलरसाभ्यां वा ॥ २० ॥ आम्रातकजटाम्लीकाफलं पत्राणि शिग्रुजम् ॥ २१ ॥ मूलं पौनर्नवं वर्द्धमानस्यापि च केम्बुकात् ॥ सर्वं संक्षुद्य तक्रेण कांजिकेन तथैव च ॥ २२ ॥ पाचयित्वा चरेच्छ्रेष्ठं तेन पीडा प्रणश्यति । शोथश्चास्ति च शीघ्रेण सन्धानं याति वै ध्रुवम् ॥ २३ ॥ न्यग्रोधादिकषायन्तु सुशीतं परिषेचने ॥ पञ्चमूलीकषायं सक्षीरं दद्यात्सवेदने ॥ २४ ॥ सुखोष्णमवचार्यं वा चुक्रतैलं विजानता ॥ अविदाहिभिरन्नैश्च पिष्टकैः समुपाचरेत् ॥ २५ ॥ ग्लानिर्हि निहिता तस्य सन्धिविश्लेषकारिका ॥ मांसं मांसरसः क्षीरं सर्पिर्यूषः सतीनजः ॥ ॥ २६ ॥ बृंहणश्चान्नपानश्च देयं भग्नाय जानता ॥ गृष्टिक्षीरं ससर्पिष्कं मधुरौषधसाधितम् ॥ २७ ॥ शीतलं लाक्षया युक्तं प्रातर्भग्नः पिबेन्नरः ॥ सघृतेनास्थिसंहारं लाक्षागोधूममर्जुनम् ॥ २८ ॥ सन्धिमुक्तेऽस्थिसम्भग्ने पिबेत्क्षीरेण वा पुनः ॥ रसोनमधुलाक्षाज्यसिताकल्कान्समश्नताम् ॥ २९ ॥ छिन्नभिन्नच्युतास्थीनां सन्धानमचिराद्भवेत् ॥ चूर्णं पुरेण संयोज्य घृतेनार्जुनलाक्षयोः ॥ ३० ॥ भग्नः सन्धानमायाति लीढं क्षीरघृताशिना ॥ मूलं शृगालविन्नायाः पीत्वा मांसरसेन तु ॥ ॥ ३१ ॥ चूर्णीकृत्य त्रिसप्ताहादस्थिभग्नमपोहति॥आभाचूर्णं मधुयुतमस्थिभग्नरुग्यहं पिबेत् ॥ पीते चास्थि भवेत्सम्यग्वज्रसारमिमं दृढम् ॥ ३२ ॥ अम्लीकाफलकल्कः सौवीरस्तैलमिश्रितः स्वेदात् ॥ भग्नाभिहितरुजाघ्नैरथ वौषधसाधितं श्वयथौ ॥ ३३ ॥

भग्नरोगमें प्रथम शीतल जलसे सेचनकरे, कीचका लेपकरे, कुशा बाँधे वा पट्टी बाँधे। जो हड्डी दब जाय उसको ऊपरको ऊठाकर ऊंचाकरे, जो ऊंची होजाय तो उसे दबाकर नीचेको वैठावे, दूर हटजाय उसको नजदीक लावे और जो नीचेको होजाय तो ऊपरको चढावे। महुवा, गूगल, पीपल, कदम्ब, वेंत, वाँस, राल और अर्जुन वृक्षकी छाल इनकी पट्टी बाँधे, बंधनके ऊपर जो बंधन बाँधे उसको सख्त नहीं बाँधे और शिथिल भी नहीं बाँधे।

शीतकालमें सात सात दिनमें पट्टी खोले, ऊष्णकालमे तीन तीन दिनमें पट्टी खोले और साधारण कालमें पांच पांच दिनमे पट्टी खोले, अथवा जो भग्न होय उसको यथा दोषानुसार पट्टी खोलनेका समय नियत करे।

मजीठ और मुलेठीको जलमें पीसकर उसका भग्नके ऊपर लेप करे। लाल शालि चावलोंको पीसकर उसमे सौवारका धुला घी मिलाकर लेप करे। इमलीके फल तथा छालके स्वरससे, शालिचावल सैंधेनोनकी पिट्ठी बनाकर लेपकरनेसे अभिघात आदिसे तत्काल उत्पन्नहुए शोथ शान्त होते हैं। अम्बाडेकी जड, इमलीके फल, इमलीके पत्ते, सैंजनेकी जड, पुनर्नवेकी जड, मानकंद और सुपारीकी जड इन सबको खूब कूट पीसकर मट्ठे और कॉजीमें पकाकर लेप करनेसे पीडा और सूजन दूर होजाती हैं और हड्डियॉभी तत्काल जुडजाती हैं।

न्यग्रोधादिगणका क्काथ बनाकर अच्छे प्रकारसे शीतल करके भग्नपर सेचनकरे। जो भग्नमें व्यथा होती होय तो पचमूलका क्काथ बनाकर उसमे दूध डालकर उससे सेचन करे। अथवा चूकेका तेल बनाकर सुहाता सुहाता लेप करे। जो अन्न दाहकारक नहीं हैं, उनकी पुलटिसभी भग्नपर बॉधनी चाहिये।

सधियोंके भिन्न भिन्न होनेसे रोगीके ग्लानि भी अवश्य होती है इसकारण उस रोगीको अच्छे प्रकारसे विचारकर मांस, मासका रस (सोरुआ), दूध, मटरका यूष और धातुओंको पुष्ट करनेवाले ऐसे अन्न पान देवे।

सधिभग्न और कांडभग्नमें पहलीन गायके दूधमें घी डालकर जीवनीयगणकी औषधियोके साथ पकाकर शीतल करके फिर लाखका रस डालकर प्रातःकाल पिये।

हडसघारी, लाख, गेहू और अर्जुनकी छाल इनको पीसकर घी और दूधके साथ मिलाकर पीनेसे सधिभग्न तथा काडभग्न नष्ट होजाताहै।

लसुन, सहत, लाख, घी और मिश्री इनका कल्क सेवन करनेसे छेदी हुई, भेदी हुई और टूटी हुई हड्डी तत्काल जुडजाती है।

पृष्ठिपर्णीकी जडका चूर्ण बनाकर मासके रसके साथ सेवन करे तो इक्कीस दिनमें अस्थिभग आराम होजाताहै।

अर्जुन और लाखका चूर्ण बनाकर घी और गूगलके साथ मिलाकर चाटे, दूध और घी भोजन करे तो टूटा हुआ हाड तत्काल जुडजाताहै।

बबूरकी फलीका चूर्ण करके सहतके साथ मिलाकर तीनदिनतक पिये तो हाड वज्रकी समान दृढ होजाताहै।

इमलीके फलोंका कल्क, सौवीर और तेल इनको एकत्र मिलाकर गरम करके स्वेद देनेसे भग्नकी तथा अभिघातकी पीडा नष्ट होजाती है॥ १९–३३॥

अथाभागुग्गुलुः।

आभाफलत्रिकव्योषैः सर्वैरेतैः समांशिकैः॥ तुल्यं गुग्गुलुना योज्यं भग्नसन्धिप्रसाधनम्॥ ३४॥

बबूर, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच और पीपल इन सबको समान भाग लेकर और सबकी बराबर गूगल लेवे, सबको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे टूटी हुई हड्डी फिरसे जुडजाती है॥ ३४॥

अथ लाक्षाद्यगुग्गुलुः।

लाक्षास्थिसंहृत्ककुभोऽश्वगन्धा चूर्णीकृता नागबला पुरश्च॥ संभग्नमुक्तास्थिरुजं निहन्यादंगानि कुर्यात्कुलिशोपमानि॥ ३५॥

लाख, हडसधारी, अर्जुनवृक्षकी छाल, असगन्ध और खिरेटी, इनसबका चूर्ण बनाकर गूगलमें मिलाकर सेवन करनेसे टूटा हुआ तथा हटा हुआ हाड फिरसे जुड कर वज्रकी समान होजाताहै और पीडा शमन होजाती है॥ ३५॥

अथ गन्धतैलम्।

रात्रौरात्रौ तिलान्कृष्णान्वासयेदस्थिरे जले॥ दिवादिवा शोषयित्वा गवां क्षीरेण भावयेत्॥ ३६॥ तृतीयं सप्तरात्रन्तु भावयेन्मधुकांबुना॥ ततः क्षीरं पुनः पीतान्शुष्कान्सूक्ष्मान्विचूर्णयेत्॥ ककोल्यादि श्वदंष्ट्रां च मंजिष्ठां सारिवां तथा॥ ३७॥ कुष्ठं सर्जरसं मांसीं सुरदारु सचन्दनम्॥ शतपुष्पाश्च संचूर्ण्य तिलचूर्णेन योजयेत्॥ ३८॥ पीडनार्थं तु कर्त्तव्यं सर्वगन्धैः शृतं

पयः ॥ चतुर्गुणेन पयसा तत्तैलं पाचयेत्पुनः ॥ ३९ ॥ एलामंशुमतीपत्रं जीवन्तीं तुरगं तथा ॥ रोध्रं प्रपौण्डरीकञ्च तथा कालानुसारिवाम् ॥ ४० ॥ शैलेयं क्षीरशुक्लाभमनन्तां समधूलिकाम् ॥ पिष्ट्वा शृङ्गाटकञ्चैव प्रागुक्तान्यौषधानि च ॥ ४१ ॥ एभिस्तद्विपचेत्तैलं शास्त्रविन्मृदुनाग्निना ॥ एतत्तैलं सदापथ्यं भग्नानां सर्वकर्मसु ॥ ४२ ॥ आक्षेपके पक्षघाते तालुशोषे तथार्दिते ॥ मन्यास्तम्भे शिरोरोगे कर्णशूले शिरोग्रहे ॥ ४३ ॥ बाधिर्ये तिमिरे चैव ये च स्त्रीषु क्षयङ्गताः ॥ पथ्यं पाने तथाभ्यङ्गे नस्ये वस्तिषु भोजने ॥ ४४ ॥ ग्रीवास्कन्धोरसां वृद्धिरेतेनैव प्रजायते ॥ मुखञ्च पद्मप्रतिमं ससुगन्धि समीरणम् ॥ ४५ ॥ राजार्हमेतत्कर्तव्यं राज्ञामेव चिकित्सकैः ॥ तिलचूर्णसमं तत्र मिलितं चूर्णमिष्यते ॥ ४६ ॥

सातदिनतक रात्रिके समय वहतेहुए जलमें काले तिलोंको भिजोरक्खे, फिर सुखादेवे पश्चात् सात दिनतक नित्य गायके दूधकी भावना देवे फिर सातदिनतक नित्य मुलैठीके रसकी भावना देवे, फिर उन तिलोंको पीछे दूधमें भिजोकर सुखाकर चूर्ण बनावे, पश्चात् काकोल्यादिगण, गोखुरू, मजीठ, सारिवा, कूट, राल, बालछड, देवदारु, चंदन और सोया इनका तिलके चूर्णकी समान चूर्ण बनाकर तिलोंके चूर्णमें मिलादेवे। फिर इस तिलके चूर्णको सम्पूर्ण सुगन्धितपदार्थोंसे मिश्रित कियेहुए दूधके साथ मिलाकर कोल्हूमें पिलवाकर तेल निकलवावे। फिर सकल सुगन्धित पदार्थोंसे दूधको पकाकर उस चौगुने दूधसे तेलको पकावे, पश्चात् इलायची, शालिपर्णी, तेजपात, जीवक, तगर, लोध, पुडेरिया, पीलाचन्दन, सफेद कटसरैया, सफेद दूब, मूर्वा, सिंघाडे और ऊपर कहीहुई काकोल्यादि औषधि इनका कल्क बनाकर मन्दमन्द अग्निसे तेलको दुबारा पकावे तो यह गन्धतैल सिद्ध होताहै, यह तेल भग्नके ऊपर सम्पूर्ण क्रियाओंमे सर्वदा पथ्य है। आक्षेपक, पक्षाघात, तालुशोष, अर्दित, मन्यास्तम्भ, शिरोरोग, कर्णशूल, शिरोग्रह, बधिरता, तिमिर और अत्यंत स्त्रीप्रसंग करनेसे उत्पन्न क्षयरोग इनमे पीनेसे, मालिस करनेसे, नास लेनेसे, पिचकारी लगानेसे और भोजनमे पथ्य है। इस तेलसे ग्रीवा, कंधे और छातीकी वृद्धि होतीहै। मुख अत्यंत सुगंधिश्वासवाला तथा कमलकी समान होजाताहै। यह तेल राजाओंके योग्य है, इस लिये वैद्योंको राजाके लिये बनाना चाहिये ॥ ३६-४६ ॥

अथावस्थानुसारेण भग्नोपशान्तिः।

पूर्वे वयसि जातं हि भग्नं सुकरमादिशेत् ॥ अल्पदोषस्य जन्तोश्च काले तु समशीतले ॥ ४७ ॥ प्रथमे वयसि त्वेवं मासात्संधिः स्थिरो भवेत् ॥ मध्यमे द्विगुणात्कालादंतिमे त्रिगुणात्तथा ॥ ४८ ॥

पहिली अवस्थामे हुआ भग्न साध्य है, अल्प दोषवाले मनुष्यको हुआ भग्न साध्य है और शिशिर ऋतुमें हुआ भग्नभी साध्य है ॥

पहिली अवस्थामे टूटे हुए हाड एक महीनेमे दृढ होजातेहैं, मध्य अवस्थामें टूटाहुवा हाड दो महीनेमे दृढ होजाताहै और पिछली अवस्थामें टूटाहुआ हाड तीन महीनेमें दृढ होजाता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

अथ भग्नस्य विशेषरक्षा।

नैति पाकं यथा भग्नं तथा यत्नेन रक्षयेत् ॥ पक्का हि या शिरा स्नायुः सा तु कृच्छ्रेण सिध्यति ॥ ४९ ॥

जिससे कि भग्न पक न जाय इस प्रकार यत्नपूर्वक उसकी रक्षा करनी चाहिये। क्योंकि भग्न पकजाय तो शिराओंको तथा स्नायुओंको खराब करदेताहै और कष्टसाध्य होजाताहै ॥ ४९ ॥

अथ भग्नविशेषोपदेशः।

पतनादभिघाताद्वा तनुभग्नं यदक्षतम् ॥ शीतान्सेकान्प्रदेहांश्च भिषक्तस्यावचारयेत् ॥ ५० ॥ सव्रणस्य तु भग्नस्य व्रणं सर्पिर्मधूत्तरैः ॥ प्रतिसार्य कषायैश्च शेषं भग्नवदाचरेत् ॥ ५१ ॥

वातव्याधिविनिर्दिष्टान्स्नेहांस्तत्रापि योजयेत् ।

गिर जानेसे अथवा चोट आदिके लगनेसे जो अंग सूजजाय और घाव न होय तो वैद्य उसपर शीतल सेचन और गाढा गाढा शीतल लेप करे । जो भग्न व्रणसहित होय तो उस व्रणको घी तथा सहतसे मिश्रित किये हुए काथोंसे धोवे, पश्चात् सम्पूर्ण वही सब क्रिया भग्नकी समान करे इसपर वातरोगोक्त कहे हुए स्नेहोंकी योजना करे ॥ ५० ॥ ५१ ॥

अथ भग्नापथ्यम् ।

लवणं कटुकक्षारमम्लमायासमैथुनम् ॥
व्यायामश्च न सेवेत भग्नो रूक्षान्नमेव च ॥ ५२ ॥

जिसके संधि भग्न या कांडभग्न हुआ होय तो उसको नमक, चरपरे पदार्थ, खारी पदार्थ, खट्टे पदार्थ, परिश्रम, मैथुन, कसरत और रूखा अन्न इन सबको त्यागदेना चाहिये ॥ ५२ ॥

अथ भग्नारोग्यलक्षणम् ।

भग्नसन्धिमनाविद्धमहीनांगमनुल्बणम् ॥
सुखचेष्टाप्रचारश्च सम्यक्सन्धितमादिशेत् ॥ ५३ ॥

इति भग्ननिदानचिकित्साधिकारः ।

जब अंगोंको फैलाते पसारते समय कुछ भी दुःख न हो, कोई अवयव छोटा न रहजाय, सूजन किंचित् भी न रहे और उठते बैठते समय तथा फिरते चलते समय दुःख न होय अर्थात् ये सब चेष्टा सुखपूर्वक करने लगे तो भग्नको अच्छे प्रकारसे आरोग्य हुआ जानना ॥ ५३ ॥

इति भग्ननिदानचिकित्साधिकारः सम्पूर्णः ।

इति श्रीभावप्रकाशे मध्यमखण्डे शालिग्रामवैश्यविरचितभाषाटीकायां तृतीयो भागः सम्पूर्णः ।



॥ श्रीवेंकटेशाय नमः ॥



अथ भावप्रकाशः।

मध्यमखण्ड–चतुर्थो भागः ४.

भाषाटीकासमेतः

अथ नाडीव्रणाधिकारः।

तत्र नाडीव्रणस्य सम्प्राप्तिपूर्वकशब्दार्थः।

यः शोथमाममिति पक्कमुपेक्षतेऽज्ञो यो वा व्रणं प्रचुरपूयमसाधुवृत्तः॥ आभ्यन्तरं प्रविशति प्रविदार्य तस्य स्थानानि पूर्वविहितानि ततः स पूयः॥ १ ॥ तस्यातिमात्रगमनाद्गतिरिष्यते तु नाडीव यद्वहति तेन मता च नाडी॥ २ ॥

उपेक्षते तस्य शोथस्य मुखं न कारयति यो वा अयमाम इति मत्वा पक्कं व्रणं च उपेक्षते। शोधनैर्न शोधयति। प्रचुरपूयामिति शोथस्य व्रणस्यापि विशेषणम्। असाधुवृत्तः अहिताहारविहारः। स पूयः ततस्तदनन्तरम्। तस्य पूर्वविहितानि स्थानानि सुश्रुतोक्तानि त्वङ्मांसशिरास्नायुसन्ध्यस्थिकोष्ठमर्माणि प्रविदार्य सच्छिद्राणि कृत्वा अभ्यन्तरं प्रविशति। तस्य पूयस्य अतिमात्रगमनादभ्यन्तरे दूरप्रवेशाद्गतिरिष्यते। सर्वदा स्राव इष्यते। इति सम्प्राप्तिः। अथ निरुक्तिः। अयं व्रणो नाडीवत्सरन्ध्रनलादिनाडीव यद्धेतोर्वहति तेन नाडी मता॥

जो मूर्ख मनुष्य वहुत राधवाले पके हुए फोडेको कच्चा समझकर उसका मुख नहीं करता अथवा वहुत राधवाले पके हुए व्रणको कच्चा जानकर उसको शोधन पदार्थोंसे शुद्ध नही करता और अहित आहार विहार करताहै उसके वह राध फिर त्वचा, मास, शिरा, स्नायु, सधि, अस्थि, कोष्ठ तथा मर्मस्थानोंके छिद्रोंमें होकर उनके भीतर घुसजातीहै, भीतर वहुत दूरतक घुसजानेके कारण वह राध सदैव बहाकरतीहै। यह नाडीव्रणकी संप्राप्ति जाननी। यह व्रण वाँस आदिकी नलीकी समान राधको वहाताहै इसकारण इसको नाडीव्रण कहतेहैं॥ १ ॥ २ ॥

अथ नाडीव्रणसंख्या ।

दोषैस्त्रिभिर्भवति सा पृथगेकशश्च संमूर्च्छितैरपि च शल्यनिमित्ततोऽन्या ॥ ३ ॥

वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और शल्यज इस प्रकार नाडीव्रण पांच प्रकारका है ॥ ३ ॥

अथ वातजनाडीव्रणलक्षणम् ।

तत्रानिलात्परुषसूक्ष्ममुखी सशूला फेनानुविद्धमधिकं स्रवति क्षपासु ॥ ४ ॥

जो नाडीव्रण सूक्ष्म मुखवाला और कठिन मुखवाला हो, शूलयुक्त और उसमेंसे झाग मिला स्राव अधिकहो उसको वातज नाडीव्रण जानना ॥ ४ ॥

अथ पित्तजनाडीव्रणलक्षणम् ।

पित्तात्तृड्ज्वरकरी परिदाहयुक्ता पीतं स्रवत्यधिकमुष्णमहःसु चापि ॥ ५ ॥

जो नाडीव्रण तृषा तथा ज्वरसयुक्त हो, दाहयुक्त और उसमेंसे दिनमें पीले रगका तथा गरम अधिक स्राव होता हो, उसको पित्तज नाडीव्रण जानना ॥ ५ ॥

अथ कफजनाडीव्रणलक्षणम ।

ज्ञेया कफाद्बहुघना सितपिच्छिलास्रा स्तब्धा सकण्डुररुजा रजनीप्रवृद्धा ॥ ६ ॥

सितपिच्छिलास्रा अस्रं रक्तं तच्चोपलक्षणं पूयादिश्च बोद्धव्यः । सकण्डुररुजा कण्डूप्रधानवेदनायुक्ता ॥

जो नाडीव्रण बहुत घन हो उसमें सफेद और चिकना स्राव होताहो, अकड जाय, अत्यन्त खुजली सहित वेदनासे सयुक्त हो और रात्रिमें अधिक क्लेदको प्राप्त होजाय उसको कफजनित जानना ॥ ६ ॥

अथ त्रिदोषजनाडीव्रणलक्षणम् ।

दाहज्वरश्वसनमूर्च्छनवक्त्रशोषा यस्यां भवन्त्यभिहितानि च लक्षणानि ॥ तामादिशेत्पवनपित्तकफप्रकोपाद्घोरां गतिं त्वसुहरामिव कालरात्रिम् ॥ ७ ॥

कालरात्रि यमरात्रिमिव । असुहरां मारिकाम् ॥

जो नाडीव्रण दाह, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा और मुखशोषसे सयुक्त हो और इसके सिवाय उपरोक्त तीनो दोषोंके सम्पूर्ण लक्षणभी हो उस नाडीव्रणको वात, पित्त और कफ इन तीनो दोषोंके प्रकोपसे उत्पन्न हुआ त्रिदोषज जानना । और कालरात्रिकी समान भयकर तथा प्राणोंका नाश करनेवाला जानना ॥ ७ ॥

अथ सशल्यनाडीव्रणलक्षणम् ।

नष्टं कथञ्चिदनुमार्गमुदीरितेषु स्थानेषु शल्यमचिरेण गतिं करोति ॥ सा फेनिलं मथितमुष्णमसृग्विमिश्रं स्रावं करोति सहसा सरुजश्च नित्यम् ॥ ८ ॥

उदीरितेषु स्थानेषु त्वङ्मांसादिषु कथञ्चिन्नष्टम् अदृश्यमानं शल्यम् । किंविशिष्टम् अनुमार्गम् अत एव अदृश्यमानम् । सा गतिं चिरेण शीघ्रं स्रावं करोति । सा शल्यनिमित्ता नाडी । मथितं मथितमिव स्रावं करोति स्रावश्च प्रसारणाकुञ्चनादौ शल्यसञ्चलनेन भवति ॥

जो नहीं निकालाजाय और त्वचा, मांस, शिरा, स्नायु सन्धि, अस्थि, कोष्ठ तथा मर्मस्थानोंमें किसी रीतिसे गुप्त होजाय, या टूटकर रहजाय इस कारण दीखे नहीं ऐस वारीक काटा थोडे समयमें व्रण करदेताहै और उस व्रणमेंसे गाढे तक्रके समान गरम तथा रुधिर सयुक्त स्राव होताहै और निरन्तर पीडा रहतीहै इसको शल्य सम्बन्धी नाडीव्रण कहतेहैं । अगोंको फैलाते सिकोडते आदिके समयमें शल्यके चलायमान होनेसे स्राव होताहै ॥ ८ ॥

अथ नाडीव्रणस्य कष्टसाध्यत्वासाध्यत्वे ।

नाडी त्रिदोषप्रभवा न सिध्येदन्त्याश्चतस्रः खलु यत्नसाध्याः ॥ ९ ॥

त्रिदोषज नाडीव्रण असाध्य है और अन्य चार प्रकारके नाडीव्रण कष्टसाध्य हैं ॥ ९ ॥

अथ नाडीव्रणचिकित्सा ।

तत्रानिलोत्थामुपनाह्य पूर्वमशेषतः पूयगतिं विदार्य ॥ फलैरपामार्गभवैः पिष्टैः ससैन्धवैः सम्परिपूर्य बन्धेत् ॥ १० ॥

प्रक्षालने वापि सदा व्रणस्य योज्यं महद्यत्खलु पञ्चमूलम् ॥ हिंस्रां हरिद्रां

कटुकां वचाञ्च गोजिह्विकाश्चापि सबिल्वमूलाम् ॥ संहृत्य तैलं विपचेद्व्रणस्य संशोधनं पूरणरोपणञ्च ॥ ११ ॥

जो नाडीव्रण वातसबधी होय तो उसको प्रथम औषधियोसे सयुक्त पुलटिस आदिसे बांधे फिर शस्त्रसे विधिपूर्वक राधके स्थानको चीर देवे फिर उस व्रणमें सैधानिमकके साथ चिरचिटेके चावलोंको पीसकर भरदेवे और ऊपरसे बांधदेवे, बृहत्पंचमूलका क्वाथ बनाकर उस क्वाथसे नित्य व्रणको धोना चाहिये।

हींग, हलदी, कुटकी, वच, गोभी बेलगिरी इनका कल्क बनाकर उस कल्कसे तेलको पकावे, यह तेल व्रणको शुद्ध करदेताहै, व्रणको भरकर सुखा देताहै। यह तेल 'हिंस्राद्य तैल' नामसे कहा जाताहै. और वातज नाडीव्रणपर अत्यन्त उपकारीहै ॥ १० ॥ ११ ॥

पित्तात्मिकां प्रागुपनाह्य धीमानुत्कारिकाभिः सपयोघृताभिः ॥ निपात्य शस्त्रं तिलनागदन्तीमञ्जिष्ठकल्कैः परिपूरयेच्च ॥ १२ ॥ प्रक्षालने चापि हरिद्रसोमनिम्बाः प्रयोज्याः कुशलेन नित्यम् ॥ श्यामात्रिभङ्गीत्रिफलासुसिद्धं हरिद्रया तिलवकवृक्षकेण ॥ घृतं सदुग्धं व्रणतर्पणेन हन्याद्गतिं कोष्ठगतापि वा स्यात् ॥ १३ ॥

जो नाडीव्रण पित्तसम्बन्धी होय तो उसको प्रथम दूध तथा घी सहित गेहूँके आटेकी लुपडी बाँध देवे, पश्चात् शस्त्रसे चीरकर उसमे तैल, जमालगोटे और मजीठ इनका कल्क भरदेवे ॥

बुद्धिमान् वैद्य इस व्रणको नित्य हलदी, लालचदन और नीमकी छाल इनके क्वाथसे धोतारहे ॥

काला निसोत, सफेद निसोत, हरड, बहेडा, आमला, हलदी और लोध इनके कल्कसे पकाये हुए घीमे दूध डालकर उस घीसे पित्तजनित नाडीव्रणको तृप्तकरे तो व्रणका स्राव दूर होजाताहै, यह निश्चय है। यह घी 'श्यामाघृत' नामसे प्रसिद्ध है ॥ १२ ॥ १३ ॥

नाडीं कफोत्थामुपनाह्य पूर्वं कुलत्थसिद्धार्थकसक्तुबिल्वैः ॥ मृदूकृतामेकगतिं विदित्वा निपातयेच्छस्त्रमशेषकारि ॥ १४ ॥ दद्याद्व्रणे निम्बतिलाग्निदन्तीसुराष्ट्रजान् सैन्धवसम्प्रयुक्तान् ॥ प्रक्षालने चापि करञ्जनिम्बजात्यर्कपीलुस्वरसाः प्रयोज्याः १५

जो नाडीव्रण कफजनित होय तो प्रथम उसके ऊपर कुलथी, सरसों, सत्तू और बेलगिरी इनसे सयुक्त पुलटिस बाँधे, नरम करके राधकी गतिको शुद्ध जानकर अच्छे प्रकारसे चिरादेवे, पश्चात् नीम, तिल, चीता, जमालगोटे फटकरी और सैंधानिमक इनका चूर्ण करकै भरदेवे। इस व्रणको नित्य करंज, नीम, चमेली, आक और पीलू इनके स्वरसोंसे धोवे ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ स्वर्जिकाद्यतैलम्।

स्वर्जिकासिन्धुदन्त्यग्नियूथिकाजलनीलिका खरमञ्जरिबीजेषु तैलं गोमूत्रसाधितम् ॥ दुष्टव्रणप्रशमनं कफनाडीव्रणापहम् ॥ १६ ॥

सज्जी, सैंधानिमक, जमालगोटा, चीता, जुही, सिवार, और चिरचिटेके बीज इनके कल्कसे गोमूत्रमे पकाये हुए तेलको 'स्वर्जिकाद्य तैल' कहतेहैं। इस तेलसे तृप्त करनेसे दुष्टव्रण तथा कफसम्बन्धी नाडीव्रण नष्ट होजातेहैं ॥ १६ ॥

अथ सैंधवाद्यतैलम्।

सैन्धवार्कमरिचज्वलनाख्यैर्मार्कवेण रजनीद्वयसिद्धम् ॥ तैलमेतदचिरेण निहन्याद् दूरगामपि कफानिलनाडीम् ॥ १७ ॥

सैंधानिमक, आक, मिरच, चीता, भागरा, हलदी और दारुहलदी इनसे पकाया हुआ तेल 'सैंधवाद्यतैल' कहाता हैं। इस तेलके लगानेसे कफसम्बन्धी तथा वायुसम्बन्धी नाडीव्रण बहुत दूरतक पहुँचा होय तोभी नष्ट होजाताहै ॥ १७ ॥

नाडीं तु शल्यप्रभवां विदार्य निष्कास्य शल्यं प्रविशोध्य मार्गम् ॥ बन्धेद्व्रणं क्षौद्रघृतप्रगाढं निम्बांस्तिलांश्चाप्यवरोपयेच्च १८

जो नाडीव्रण शल्यसम्बन्धी होय तो शस्त्रसे चीरकर काँटेको निकालकर व्रणके मार्गको शुद्ध करके पश्चात् सहतमे तथा घीमे पीसेहुए नीमके पत्तोंके कल्कका तथा तिलके कल्कका उसके ऊपर लेप करदेवे। इससे व्रण भरकर सूखजाताहै ॥ १८ ॥

अथ कुम्भीकाद्यतैलम्।

कुम्भीकखर्जूरकपित्थबिल्ववनस्पतीनाञ्च शलाटुवर्गे कृत्वा कषायं विपचेत्तु तैल-

मावाप्य कुस्तं सरलं प्रियंगुम् ॥ १९ ॥ सौगन्धिकं मोचरसाहिपुष्पं लोध्राणि दत्त्वा खलु धातकीश्च ॥ एतेन शल्यप्रभवा हि नाडी रोहेद्व्रणे वा सुखमाशु चैव ॥ २० ॥

जमालगोटा, खजूर, कूठ, बेलगिरी, और वड इनके कच्चे फलोंका क्वाथ बनाकर उसमें नागरमोथा, फूलप्रियंगू, देवदार, रोहिसनामक सुगन्धितृण, मोचरस, नागकेसर, लोध और धायके फूल इनका चूर्ण डालकर तेल पकावे। इस 'कुम्भीकाद्य' नामक तेलसे तृप्त करे तो शल्यसम्बन्धी नाडीव्रण और अन्यान्य सब व्रण नष्ट होजातेहैं॥ १० ॥ २० ॥

स्नुह्यर्कदुग्धदार्वीणां वर्ति कृत्वा प्रपूरयेत् ॥ एष सर्वशरीरस्थां नाडीं हन्यात्प्रयोगराट् ॥ २१ ॥ आरग्वधनिशाकालाचूर्णाज्यक्षौद्रसंयुता ॥ सूत्रवर्तिर्व्रणे योज्या शोधनी गतिनाशिनी ॥ २२ ॥

थूहरका दूध, आकका दूध, और दारुहलदी इनकी बत्ती बनाकर व्रणके भीतर रक्खे तो इस उत्तम प्रयोगसे सम्पूर्ण शरीरके नाडीव्रण नष्ट होजातेहैं।

अमलतास, हलदी और निसोत इनका चूर्ण बनाकर घी तथा सहतमें मिलाकर और एक सूतकी बत्ती बनाकर उसपर वह घी लगाकर वह बत्ती व्रणमें रक्खे तो व्रण शीघ्र शुद्ध होजाताहै और राधकी गति भी नष्ट होजातीहै ॥ २१ ॥ २२ ॥

वर्तीकृतं माक्षिकसम्प्रयुक्तं नाडीघ्नमुक्तं लवणोत्तमं वा ॥ दुष्टव्रणे यद्विहितं तु तैलं तत्सेव्यमानं गतिमाशु हन्ति ॥ २३ ॥

सेंधेनिमकको सहतमें पीसकर उससे सूतकी बत्ती बनाकर व्रणमें रखनेसे नाडीव्रण नष्ट होजाताहै। दुष्टव्रणके ऊपर जो तेल कहे हैं उनको सेवन करनेसे राधकी गति तत्काल नष्ट होजातीहै ॥ २३ ॥

जात्यर्कशम्पाककरञ्जदन्तीसिन्धूत्थसौवर्चलयावशूकैः ॥ वर्तिः कृता हन्त्यचिरेण नाडीं स्नुक्क्षीरपिष्टा तु सचित्रकेण ॥ २४ ॥

चमेली, आक, अमलतास, करंज, जमालगोटे, सैंधानिमक, कालानिमक, जवाखार, और चीता इनको थूहरके पीसकर इनसे सूतकी बत्ती बनाकर रखनेसे नाडीव्रण तत्काल नष्ट होजाताहै ॥ २४ ॥

बिभीतकाम्रास्थिवटप्रवालहरेणुकाशंखिनिबीजमिश्रा ॥ वाराहविट्सूक्ष्ममसी प्रदेया नाडीषु तैलेन हि मिश्रयित्वा ॥ २५ ॥

बहेडे, आमकी गुठली, बडके अंकुर, रेणुका, सखिनीके बीज और बाराही कन्द इनको तेलमें पीसकर कल्क बनाकर नाडीव्रणके ऊपर लगावे तो नाडीव्रण तत्काल नष्ट होजाताहै ॥ २५ ॥

मेषरोममसीतुम्ब्या कटुतैलं विपाचितम् ॥ नाडीव्रणं चिरोद्भूतं जयेत्तु तूलसंगमात् ॥ २६ ॥

भेडके बालोंकी भस्म और कडवी तोम्बी इनको सरसोंके तेलमें पकाकर उसकी बत्ती बनाकर व्रणमें रखनेसे बहुत दिनोंका भी नासूर जाताहै ॥ २६ ॥

अथ कर्चूरतैलम्।

कर्चूरकस्य स्वरसे कटुतैलं विपाचयेत् ॥ सिन्दूरकल्कितं नाडीदुष्टव्रणविसर्पनुत् ॥ ॥ २७ ॥ कर्चूरकरसे तैल पुरसिन्दूरकल्कितम् ॥ पामां दुष्टव्रणं नाडीं हन्यात्सर्वव्रणान्तकृत् ॥ २८ ॥

कचूरके स्वरसमें सिंदूरका कल्क डालकर पकाया हुआ सरसोंका तेल डालनेसे नाडीव्रण, दुष्टव्रण और विसर्प दूर होजाताहै।

कचूरके स्वरसमें गूगल तथा सिंदूरका कल्क डालकर पकाया हुआ सरसोंका तेल व्रणमें भरे तो खुजली, दुष्टव्रण, नाडीव्रण और अन्यान्य व्रण भी नष्ट होजातेहैं॥ २७ ॥ २८ ॥

अथ भल्लातकाद्यतैलम्।

भल्लातकार्कमरिचैर्लवणोत्तमेन सिद्धं विडंगरजनीद्वयचित्रकैश्च ॥ स्यान्मार्कवस्य च रसेन निहन्ति तैलं नाडीं कफानिलकृतामपचीं व्रणांश्च ॥ २९ ॥

भिलावे, आक, कालीमिरच, सैंधानिमक, वायविडंग, हलदी, दारुहलदी और चीता, इनका कल्क बनाकर भागरेके रसमें डालकर पकायाहुआ तेल 'भल्लातकाद्यतैल' नामसे कहाजाताहै। इस तेलके लगानेसे कफज नाडीव्रण, वातजनित अपची और व्रण नष्ट होजाताहै ॥ २९ ॥

अथ स्वर्जिकाद्यतैलम्।

स्वर्जिका सैन्धवं दन्ती नीलीमूलं फलं तथा ॥ मूत्रे चतुर्गुणे सिद्धं तैलं नाडीव्रणापहम् ॥ सर्वो व्रणक्रमः कार्यः शोधनारोपणादिकः ॥ ३० ॥

सजीखार, सैंधानिमक, जमालगोटा, नीलकी जड और नीलके फल इनका कल्क डालकर चौगुने गोमूत्रमें पकाया हुआ तेल 'स्वर्जिकाद्य तेल' कहाताहै। इस तेलसे नाडीव्रण नष्ट होजाताहै। व्रणके प्रकरणमें शोधन और रोपणादि जो चिकित्सा कही है वह सब नाडीव्रणके ऊपर भी करनी चाहिये ॥ ३० ॥

अथ सप्तांगगुग्गुलुः।

गुग्गुलुस्त्रिफलाव्योषैः समांशैराज्ययोजितैः ॥ अक्षप्रमाणां गुटिकां खादेदेकामतन्द्रितः ॥ ३१ ॥ नाडीं दुष्टव्रणं शूलमुदावर्तं भगन्दरम् ॥ गुल्मश्च गुदजान्हन्यात्पक्षिराट् पन्नगानिव ॥ ३२ ॥

गूगल, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच और पीपल इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर घीमें मिश्रित करकै एक एक तोलेकी गोलियाँ बनालेवे। पथ्यसे रहकर इन गोलियोंमेंसे एक गोली नित्य खाय तो नाडीव्रण, दुष्टव्रण, शूल, उदावर्त, भगन्दर, गुल्म और सब प्रकारकी बवासीर नष्ट होजातीहै। जिस प्रकार गरुड साँपोको नष्ट कर देताहै उसी प्रकार ये गोली उपरोक्त सपूर्ण रोगोको नष्ट करदेतीहैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

या द्विव्रणीये विहितास्तु वर्त्यस्ताः सर्वनाडीषु भिषग्विदध्यात् ॥ ३३ ॥

और द्विव्रणमे जो बत्ती कही हैं उन बत्तियोंको वैद्य सर्व नाडीव्रणोमें उपयोग करे ॥ ३३ ॥

कृशदुर्बलभीरूणां नाडीं मर्माश्रितामपि॥ क्षारसूत्रेण तां छिन्द्यान्न शस्त्रेण कदाचन ॥ ३४ ॥ एषण्या गतिमन्विष्य क्षारसूत्रानुसारिणीम् ॥ सूचीं निदध्याद्गत्यन्ते प्रोन्नम्याशु विनिर्हरेत् ॥ ३५ ॥ सूत्रस्यांतं समानीय गाढं बन्धनमाचरेत् ॥ ततः क्षारबलं वीक्ष्य सूत्रमन्यत्प्रवेशयेत् ॥ ३६ ॥ क्षाराक्तं मतिमान्वैद्यो यावन्न च्छिद्यते गतिः ॥ भगन्दरेष्वेष विधिः कार्यो वैद्येन जानता ॥ ३७ ॥ अर्बुदादिषु चोत्क्षिप्य मूले सूत्रं निधापयेत् ॥ सूचीभिर्यववक्त्राभिराचितं वा समन्ततः ॥ मूले सूत्रेण बध्नीयाच्छिन्ने चोपचरेद्व्रणम् ॥ ३८ ॥

इति नाडीव्रणरोगनिदानचिकित्साधिकारः।

कृश, दुर्बल और डरपोक इनके उत्पन्नहुए नाडीव्रणको तथा मर्मस्थानोंमें उत्पन्न हुए नाडीव्रणको क्षारमें भीजेहुए डोरेसे फोडे, किंतु शस्त्रसे कदापि नही चीरे।

नाडीव्रणकी गतिको एषणीसे साधन करे और कहांसे सूखा है और कहासे हरा है यह जानके विधिपूर्वक क्षार सूत्रसे सुई छेद देवे, राधको निकाल डालै, फिर सूत्रके अतमें गाठ देकर बाँध देवे, क्षारके बलानुसार फिर दूसरा सूत उसमें प्रविष्ट करे, जबतक नाडीव्रणका मार्ग नहीं होय तब तक इसी प्रकार बराबर क्षार सूत्र प्रवेश करे। और यही विधि भगन्दर रोगमे भी करे। अर्बुदादि रोगोंमे उनको ऊंचा करकै उनके मूलमें क्षारसे भीजा हुआ डोरा बाँधे अथवा व्रणको जौकी समान मुखवाली सुईसे चारो और छेदकर उसकी जडमें डोरा बाँधे और व्रणके छेदे जानेपर अन्य उपचार करे ॥ ३४–३८ ॥

इति नाडीव्रणाधिकारः सपूर्णः।

अथ भगन्दराधिकारः।

तत्र भगन्दरपूर्वरूपरूपे।

कटीकपालनिस्तोददाहकंडूरुजादयः ॥ भवन्ति पूर्वरूपाणि भविष्यति भगन्दरे ॥ ॥ १ ॥ गुदस्य द्व्यंगुले क्षेत्रे पार्श्वतः पीडिकाऽर्तिकृत् ॥ भिन्नो भगन्दरो ज्ञेयः स च पञ्चविधो भवेत् ॥ २ ॥

आर्तिकृत् पीडाकृत्। पञ्चविधः वातिकपैत्तिकश्लैष्मिकसान्निपातिकशल्यजभेदैः ॥

जब भगन्दर होनेको होताहै तब कमरमे, हड्डियोंमे सुई चुभोने सरीखी पीडा, दाह, खुजली और व्यथादि पूर्वरूप होतेहैं ॥

गुदाकी वाजूमें दो अंगुलके बीचमें पीडा करनेवाली और फटीहुई जो पिडिका (फुंसी) उत्पन्न होय उसको भगन्दर कहतेहैं । वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और शल्यज इस प्रकार भगन्दर पांच प्रकारकाहै ॥१॥ २ ॥

अथ भगन्दरशब्दार्थः ।

भगं परिसमन्ताच्च गुदं वस्तिं तथैव च ॥ भगवद्दारयेद्यस्मात्तस्मादेष भगन्दरः ॥ ३ ॥

भजन्त्यनेनेति भगो मेहनम् । भजन्त्यस्मिन्निति भगः योनिः । अत्र भगशब्देन द्वयमपि कथ्यते । भगवद्योनिवत् ॥

भोज कहताहै कि "गुदाको और मूत्राशयको चारों ओरसे योनिकी समान फोडदेताहै इस कारण यह भगन्दर कहाजाताहै" ॥ ३ ॥

अथ वातजशतपोनकभगन्दरलक्षणम् ।

कषायरूक्षैरतिकोपितोऽनिलस्त्वपानदेशे पिडिकां करोति याम् ॥ उपेक्षणात्पाकमुपैति दारुणं रुजा च भिन्नारुणफेनवाहिनी ॥ तत्रागमो मूत्रपुरीषरेतसां व्रणैरनेकैः शतपोनकं वदेत् ॥ ४ ॥

दारुणमतिकठिनम् । व्रणैरनेकैः सूक्ष्ममुखैः । शतपोनकं शतपोनकश्चालनी तत्तुल्यम् ॥

कसेले पदार्थोंसे तथा सूखे पदार्थोंसे अत्यन्त कुपित हुई वायु गुदाप्रदेशमें फुंसीको उत्पन्न करतीहै उन फुंसियोंकी उपेक्षा करनेसे वह दारुण रीतिसे पकतीहैं, व्यथा करतीहैं, फूटजानेपर लाल झाग बहतेहैं और उसमें मूत्र, विष्ठा, तथा वीर्य निकलताहै इसमें बहुत छोटे छोटे मुखवाले अनेक व्रण होजातेहैं, उनके होनेसे चलनीकी समान दीखे है इस कारण इसको शतपोनक कहतेहैं । संस्कृतभाषामें 'शतपोनक' चालनीका नाम है ॥ ४ ॥

अथ पैत्तिकोष्ट्रग्रीवभन्दरलक्षणम् ।

प्रकोपनैः पित्तमतिप्रकोपितं करोति रक्तां पिडकां गुदे गताम् ॥ तदाशुपाकाऽहिमपूतिवाहिनीं भगन्दरं चोष्ट्रशिरोधरं वदेत् ॥ ५ ॥

आशुपाको शीघ्रपाकाम् अहिमपूतिवाहिनींमुष्णदुर्गन्धवाहिनीं च ॥ तदा भगन्दरमुष्ट्रशिरोधरं वदेत् ॥ उष्ट्रग्रीवसंज्ञा च पिडिकावस्थागतगलवक्रतया उष्ट्रग्रीवाकारत्वेन ॥

पित्तको कुपित करनेवाले पदार्थोंसे कोपको प्राप्त हुआ पित्त गुदाकी वाजूमें लाल फुंसियोंको उत्पन्न करेहै, वे फुंसी तत्काल पकजातीहैं और उसमें गरम और दुर्गन्धवाली राध वहतीहै, ये फुंसी उष्ट्रग्रीव कहलातीहैं । इन फुंसीयोंका गला ऊटकी नाडकी समान होताहै, इसीसे ये उष्ट्रग्रीव कहीजातीहैं ॥ ५ ॥

अथ श्लैष्मिकपरिस्रावि-भगंदरलक्षणम् ।

कण्डूयनो घनस्रावी कठिनो मन्दवेदनः ॥ श्वेतावभासः कफजः परिस्रावी भगदरः ॥ ६ ॥

कठिनः पिडिकावस्थायाम् । परिस्रावी निरंतरस्रावशीलः

कफके भगन्दरकी पिडिका कठिन होय, खुजली चले उसमेंसे गाढा स्रावहो, अल्पपीडा हो, श्वेतवर्ण हो और निरन्तर राध वहतीरहै, उसको कफसे उत्पन्न हुआ परिस्रावी भगन्दर जानना ॥ ६ ॥

अथ त्रिदोषजन्यशम्बूकावर्त-भगंदरलक्षणम् ।

बहुवर्णरुजास्रावा पिडिका गोस्तनोपमा ॥ शम्बूकावर्त्तगतिकः शम्बूकावर्तको मतः ॥ ७ ॥

बहुवर्णरुजास्रावा बहुशब्दो वर्णादिभिः प्रत्येकं सम्बध्यते । गतिः स्रावमार्गः ॥

अनेक प्रकारके वर्णोंवाली, अनेक प्रकारकी पीडावाली, अनेक प्रकारकी स्राववाली, गायके स्तनकी समान फुंसी उत्पन्न होतीहै और उसका स्रावमार्ग

शंखके आवर्तकी समान होताहै इस भगन्दरको त्रिदोषज जानना । शखका नाम शम्बूक है इस लिये यह भगन्दर शम्बूकावर्त कहाजाताहै ॥ ७ ॥

अथ शल्यादिक्षतजन्योन्मार्गिभगन्दरलक्षणम् ।

क्षताद्गतिः पायुगता विवर्द्धते ह्युपेक्षणात्स्युः कृमयो विदार्यते ॥ प्रकुर्वते मार्गमनेकधा मुखैर्व्रणैस्तमुन्मार्गिभगन्दरं वदेत् ८॥

क्षतात्कण्टकादिना नखेन कण्डूयनादिना वा अभिघातात् । गतिःस्रावः । उन्मार्गिभगन्दरम् एतस्य तिर्यक्कृतमार्गैः पुरीषादिनिर्गमादुन्मार्गिसंज्ञा ॥

काटे आदिके लगजानेसे और नख आदिसे खुजानेसे गुदाकी बाजूमें फोडा होजाताहै वह वढताहै और फूटताहै, उसकी उपेक्षा करनेसे उसमें कीडे पडजातेहैं, अनेक व्रण होजातेहैं और व्रण अनेक मुखोसे स्रवताहै, यह भगन्दर उन्मार्गी कहाजाताहै । इन व्रणोके तिरछे मार्गोंसे विष्ठाआदि निकलतीहै इस कारण इस भगन्दरको 'उन्मार्गी' कहतेहैं ॥ ८ ॥

अथ भगन्दरकष्टसाध्यासाध्यता ।

घोराः साधयितुं दुःखाः सर्व एव भगन्दराः ॥ तेष्वसाध्यस्त्रिदोषोत्थः क्षतजश्च विशेषतः ॥ ९ ॥ वातमूत्रपुरीषाणि शुक्रञ्च कृमयस्तथा ॥ भगन्दरात्स्रवन्तस्तु नाशयन्ति तमातुरम् ॥१० ॥

सर्वप्रकारके भगन्दर भयंकर हैं और कष्टसाध्य हैं, इनमें त्रिदोपज भगन्दर और शल्यज भगन्दर असाध्य हैं । जो भगदरमेंसे वायु, मूत्र, विष्ठा, वीर्य और कीडे निकलते हो वह रोगी मनुष्य मरजाताहै ॥९॥१०॥

अथ भगन्दरचिकित्सा ।

अथास्य पिडिकामेव तथा यत्नादुपाचरेत् ॥ शुद्धास्र तिसेकाद्यैर्यथा पाकं न गच्छति ॥ ११ ॥ वटपत्रेष्टकाशुण्ठीसगुडूचीपुनर्नवाः ॥ सुपिष्टः पिडिकावस्थे लेपः शस्तो भगन्दरे ॥ १२ ॥ पिडिकानामपक्कानामपतर्पणपूर्वकम् ॥ कर्म कुर्याद्विरेकान्तं भिन्नानां वक्ष्यते क्रिया ॥ ॥ १३ ॥ एषणीपाटनक्षारवह्निदाहादिकं क्रमम् ॥ विधाय व्रणवत्कार्यं यथादोषं यथाक्रमम् ॥ १४ ॥ पयःपिष्टैस्तिलारिष्टमधुकैश्च सुशीतलैः ॥ भगन्दरे प्रशस्तोऽयं सरक्ते वेदनावति ॥ १५ ॥ सुमना वटपत्राणि गुडूची विश्वभेषजम् ॥ ससैन्धवस्तक्रपिष्टो लेपो हन्ति भगन्दरम् ॥ १६ ॥ त्रिवृत्तिला नागदन्ती मञ्जिष्ठा सह सर्पिषा ॥ उत्सादनं भवेदेतत्सैन्धवक्षौद्रसंयुतम् ॥ १७ ॥ खदिराम्बुरतो भूत्वा कषायं त्रैफलं पिवेत् ॥ महिषाक्षविडंगानां भगन्दरविनाशनम् ॥ ॥ १८ ॥ शम्बूकमांसं भुञ्जीत प्रकारैर्व्यञ्जनादिभिः ॥ अजीर्णवर्जी मासेन मुच्यते तु भगन्दरात् ॥ १९ ॥ न्यग्रोधादिर्गणो यस्तु हितः शोधनरोपणः ॥ तैलं घृतं वातपक्कं भगन्दरविनाशनम् ॥ ॥ २० ॥ तिला ज्योतिष्मती कुष्ठं लांगली गिरिकर्णिका ॥ शताह्वात्रिवृतादन्त्यः शोधनाश्च भगन्दरे ॥ २१ तिलाभयालोध्रमरिष्टपत्रंनिशे वलालोध्रमगारधूमम् ॥ भगन्दरे चाप्युपदंशयोश्च दुष्टव्रणे रोपणशोधनाय ॥ २२ ॥ स्नुह्यर्कदुग्धदार्वीभिर्वर्तिं कृत्वा विचक्षणः ॥ भगन्दरगतिं ज्ञात्वा पूरयेत्ताः प्रयत्नतः ॥ २३ ॥ एषा सर्वशरीरस्थां नाडीं हन्यान्न संशयः ॥ त्रिफलारससंयुक्तं बिडालास्थिप्रलेपनम् ॥ २४ ॥ भगन्दरं निहन्त्याशु दुष्टव्रणहरं परम् ॥ त्रिवृत्तेजोवतीदन्तीकल्को नाडीव्रणापहः ॥ २५ ॥ ज्योतिष्मती लांगलकी श्यामा दन्ती त्रिवृत्तिलाः ॥ कुष्ठं शताह्वा

गोलोमीवर्गः शोधन इष्यते ॥ २६ ॥ मधुतैलयुता विडंगसारत्रिफलामागधिकाकणाश्च लीढाः ॥ कृमिकुष्ठभगन्दरप्रमेहक्षयनाडीव्रणरोपणा भवन्ति ॥ २७ ॥

भगन्दरकी फुसी उत्पन्न होतेही इसप्रकार यत्न करे कि जिससे फुसी पके नहीं। शोधन, रुधिर निकलवाना और सेचन इत्यादि उपचार करे तो फुसी पकती नहीहै।

वडके पत्ते, ईट, सोंठ, गिलोय और पुनर्नवा इनको अच्छे प्रकारसे पीसकर जहातक भगन्दरकी फुसीहो वहांतक लेप करे यह उत्तम है।

जो भगन्दरकी फुसी न पकी होय तो लघनसे लेकर विरेचन तक क्रिया करे, फुसीके फूटनेकी जो क्रिया हैं वे अब कही जातीहैं।

एषणी नामक शस्त्रसे चीरे, क्षार लगावे, तथा दागदेना आदि क्रिया करे। पश्चात् यथादोषानुसार तथा क्रमानुसार व्रणकी समान क्रिया करे, रुधिरवाले और वेदनावाले भगन्दरपर तिल, नीमके पत्ते और मुलैठी इनको दूधमें पीसकर अत्यंत शीतल करके लेप करे।

चमेलीके पत्ते, वडके पत्ते, गिलोय और सोंठ तथा सेंधानिमक इनको गाढी छाछमें पीसकर भगन्दरके ऊपर लेप करे इससे भगन्दर नष्ट होजाताहै।

निसोत, तिल, जमालगोटे, मजीठ, और सेंधानिमक इनको पीसकर घीमें तथा सहतमें मिलाकर भगन्दरके ऊपर लेप करे तो भगन्दर अवश्य नष्ट होजाताहै।

हरड, वहेडा, आमला, भैंसिया गूगल, और वायविडग इनका क्वाथ नित्य पिये और जब तृषा लगे तब खैर का रस मिला जल पिये। इससे भगन्दर अवश्य नष्ट होजाताहै।

शाक तथा भोजनके पदार्थोंमें शशके जीवोंका मांस खाय और अजीर्ण न होने देवे, तो भगन्दर एक महीनेके भीतर अवश्य नष्ट होजाता है।

न्यग्रोधादि गण जो कि शोधन (व्रणको साफ करनेवाला) और रोपण (व्रणको भरनेवाला) है उसके कल्कसे पकाया हुआ तेल वा घी भगन्दरका नाश करताहै।

तिल, मालकांगुनी, कूट, कलिहारी, कोइली, सोया, निसोत, और जमालगोटा इनके क्वाथसे भगन्दर शुद्ध होजाताहै।

तिल, हरड, दुगुना लोध, नीमके पत्ते, हलदी, दारुहलदी, खिरैटी और घरका धुँआसा यह भगन्दर, उपदंशके व्रण तथा दुष्टव्रणको भी शुद्धकरे और भरदेवे है।

भगन्दरको शुद्ध करके विचक्षण वैद्य थूहरका दूध, आकका दूध और दारुहलदी इनको पीसकर यत्नपूर्वक भरदेवै। यह प्रयोग सम्पूर्ण शरीरमें स्थित नाडीव्रणको भी नष्ट करदेताहै यह निश्चय है।

विलावकी हड्डीको हरड, वहेडे और आमलोंके रसमें पीसकर लेप करनेसे भगन्दर और दुष्टव्रण तत्काल नष्ट होजाता है। निसोत, तेजवल और जमालगोटा इनके कल्कसे भगन्दर तथा नाडीव्रण नष्ट होजाता है।

मालकांगुनी, कलिहारी, निसोत, जमालगोटे, सुफेदनिसोत, तिल, कूठ, सोया और वच यह वर्ग भगन्दर आदिके व्रणोंको शुद्ध करनेवाला है।

वायविडग, खैरसार, हरड, वहेडा, आमला और दो भाग पीपल, इनका चूर्ण करके सहतमें तथा तेलमें मिलाकर चाटे तो कृमि, कोढ, प्रमेह तथा क्षय नष्ट होजाताहै और भगन्दर तथा नाडीव्रण भरजाताहै ॥ ११–२७ ॥

अथ निष्यंदनतैलम्।

चित्रकार्कौ त्रिवृत्पाठे मलपूहयमारकौ ॥ सुधां वचां लाङ्गलकीं हरितालं सुवर्चिकाम् ॥ २८ ॥ ज्योतिष्मतीश्च संहृत्य तैलं धीमान्विपाचयेत् ॥ एतन्निष्यन्दनं नाम तैलं दद्याद्भगन्दरे ॥ शोधनं रोपणश्चैव सवर्णकरणं तथा ॥ २९ ॥

चीता, आक, निसोत, पाढ, कठूमर, सुफेद कनेर, थूहर, वच, कलिहारी, हरिताल, सज्जी और मालकाँगुनी इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल 'निष्यन्दतैल' कहलाताहै। यह तेल–भगन्दरको साफ करताहै, व्रणको भरताहै और उस स्थानको शरीरके वर्णकी समान करदेताहै ॥ २८ ॥ २९ ॥

अथ निशाद्यतैलम्।

निशार्कक्षीरसिन्धूत्थपुराश्वहरवत्सकैः ॥

सिद्धमभ्यञ्जनं तैलं भगन्दरहरं परम् ॥ ३० ॥

हलदी, आकका दूध, सैंधानमक, गूगल, कनेर और इन्द्रजौ इनके कल्कसे पकाये हुए तेलकी मालिस की जाय तो भगन्दर अवश्य नष्ट होजाताहै ॥ ३० ॥

अथ करवीरादितैलम्।

करवीरनिशादन्तीलाङ्गलीलवणाग्निभिः ॥ मातुलुंगकवत्साह्वैः पचेत्तैलं भगन्दरे ॥ ३१ ॥

कनेर, हलदी, जमालगोटा, कलिहारी, सैंधानिमक, चीता, बिजोरानीबू और इन्द्रजौ इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल लगानेसे भगन्दर नष्ट होताहै ॥ ३१ ॥

अथ नवकार्षिकगुग्गुलुः।

त्रिफलापुरकृष्णानां त्रिपञ्चैकांशयोजिता ॥ गुटिका शोथगुल्मार्शोभगन्दरवतां हिता ॥ ३२ ॥

त्रिफला ३ तोले, गूगल ५ तोले और पीपल १ तोला इनकी बनाई हुई गोलियोको भक्षण करे तो भगन्दर नष्ट होजाताहै, सूजन, गुल्म और बवासीर को दूर करेहै ॥ ३२ ॥

अथ भगन्दरशस्त्रक्रियाकर्तव्यता।

नाड्यन्तरे व्रणान्कुर्याद्भिषग्वैशतपोनके ॥ ततस्तेष्ववरूढेषु शेषा नाडीरुपाचरेत् ॥ ३३ ॥ व्याधौ तत्र बहुच्छिद्रे भिषजा तु विजानता ॥ अर्द्धलांगलकच्छेदः कार्यो लांगलकोऽपि वा ॥ ३४ ॥ सर्वतोभद्रको वापि कार्यो गोतीर्थकोऽपि वा ॥ द्वाभ्यां समाभ्यां पार्श्वाभ्यां छेदो लांगलको मतः ॥ ३५ ॥ ह्रस्वमेकतरं यत्तु सोऽर्द्धलांगलकः स्मृतः ॥ सेवनीं वर्जयित्वा तु चतुर्द्धा दारिते गुदे ॥ ३६ ॥ सर्वतोभद्रकं छेदमाहुश्छेदविदो जनाः ॥ पार्श्वादागतशस्त्रेण च्छेदो गोतीर्थको मतः ॥ ३७ ॥ सर्वानास्रावमार्गास्तु दहेद्वैद्यस्तथाग्निना ॥ अथोष्ट्रग्री वमेषिण्या छित्त्वा क्षारं निपातयेत् ३८ पूतिमांसव्यपोहार्थमग्निरत्र प्रपूजितः ॥ उत्कृत्यास्रावमार्गन्तु परिस्राविणि बुद्धिमान् ॥ ३९ ॥ क्षारेणास्रावितगतिं दहेच्छुतवहेन वा। गतिमन्विष्य शस्त्रेण छिन्द्यात्खर्जूरपत्रकम् ॥ ४० ॥ चन्द्रार्द्धं चन्द्रवर्गश्च सूचीमुखमवाङ्मुखम् ॥ छित्त्वाग्निना दहेत्सम्यगेवं क्षारेण वा पुनः ॥ ४१ ॥ येषां तु शस्त्रपतनाद्वेदनाप्यतिजायते ॥ तत्राशु तैलेनोष्णेन परिषेकः प्रशस्यते ॥ ४२ ॥ आगन्तुजे भिषङ् नाडीं शस्त्रेणोत्कृत्य यत्नतः ॥ जम्ब्वोष्ठेनाग्निवर्णेन तप्तया वा शलाकया ॥ दहेद्यथोक्तं मतिमांस्तं व्रणं सुसमाहितः ॥ ४३ ॥

शतपोनक नामक भगन्दरमें उसकी नालीके भीतर शस्त्रसे चीरकर घाव करदेवे और जब वह व्रण सूखकर भरजाय तब दूसरी नालियोंका उपचार करे।

बहुत छिद्रोंवाले इस शतपोनक नामक भगन्दरमें वैद्य विचारकर अर्द्धलागलक, लांगलक, सर्वतोभद्रक अथवा गोतीर्थक नामक छेदकरे। जिस छेदके दोनों पार्श्व (बाजू) समान रक्खेजायँ उसको लागलक कहतेहैं। जिस छेदमें एक पार्श्व छोटा रक्खाजाय उसको अर्द्धलागलक कहतेहैं। सीवनको छोडकर चारोंओरसे गुदाको चीराजाय उस छिद्रको सर्वतोभद्र कहतेहैं। पार्श्वमें शस्त्र डालकर जो छिद्र कियाजाय तो उसको गोतीर्थक कहतेहै।

इस प्रकार वैद्य छेद करके शतपोनकके सम्पूर्ण स्रावके मार्गोंको अग्निसे दागदेवे, उष्ट्रग्रीवकनामक भगन्दर हुआ होय तो राधकी गतिको शोधकर शस्त्रसे चीरकर क्षार डाले, सडे हुए दुर्गन्धित मासको निकालनेके लिये अग्निसे दागदेवे यह उत्तम विधि है ॥ परिस्रावी नामक भगन्दर हुआ होय तो बुद्धिमान् वैद्य स्रावके मार्गको चीरकर क्षारसे अथवा अग्निसे स्रावकी गतिको दहन करे ॥

शम्बूकावर्त नामक भगन्दरमें स्रावके मार्गको शोधन करके शस्त्रसे खर्जूरपत्रक, चन्द्रार्द्ध, चन्द्रचक्र, सूचीमुख और अवाङ्मुख नामक छेद करके पश्चात् अग्निसे अथवा क्षारसे अच्छे प्रकारसे दहन करे। (खर्जूरपत्रक आदि छिद्रोंके लक्षण सुश्रुतादि ग्रथोंमें देखलेने चाहिये)।

शस्त्रसे चीरनेसे व्यथा होय तो तत्काल वैद्य गरम तेलसे सेचन करे, ये हितकारी हैं ॥

शल्यसम्बन्धी भगन्दर होय तो बुद्धिमान् वैद्य यत्नपूर्वक उसकी नलीको शस्त्रसे चीरे, तपाये हुए अग्निके वर्णकी समान जम्ब्वोष्ठ नामक पत्थरसे अथवा तपाई हुई सलाईसे शास्त्रानुसार दाग देवे ॥ ३३-४३ ॥

अथ व्रणिपथ्यापथ्यम्।

व्यायामं मैथुनं युद्धं पृष्ठयानं गुरूणि च ॥ संवत्सरं परिहरेदुपरूढव्रणो नरः ॥ ४४ ॥

इति भगन्दरनिदानचिकित्साधिकारः।

जो भगन्दरका व्रण भरकर सूखभी गयाहो तौभी यह मनुष्य एक वर्षतक दंड कसरत, मैथुन, युद्ध, घोडे हाथी आदिपर बैठना और भारी अन्नपानका भोजन सब त्याग देवे ॥ ४४ ॥

इति भगन्दराधिकारः संपूर्णः।

अथ उपदंशाधिकारः।

हस्ताभिघातान्नखदन्तघातादधावनादत्युपसेवनाद्वा ॥ योनिप्रदोषाच्च भवन्ति शिश्ने पञ्चोपदंशा विविधोपचारैः ॥ १ ॥

हाथकी चोट लगनेसे, नख अथवा दांतसे घाव होजानेसे, मैथुन करके लिंगको नहीं धोनेसे, पशु आदिके साथ प्रसंग करनेसे, रोगसे और तीक्ष्ण केश युक्त दुष्ट योनिवाली स्त्रियोंके साथ प्रसंग करनेसे, वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और रक्तज इस प्रकार लिंगमें पांच प्रकारके उपदंश होतेहैं ॥ १ ॥

अथ पंचोपदंशानां पृथक्त्वेन लक्षणानि।

सतोदभेदस्फुरणैः सकृष्णैः स्फोटैर्व्यवस्येत्पवनोपदंशम् ॥ पीतैर्बहुक्लेदयुतैः सदाहैः पित्तेन रक्तैः पिशितावभासैः ॥ ॥ २ ॥ सकण्डुरैः शोथयुतैर्महद्भिः शुक्लैर्घनैः स्रावयुतैः कफेन ॥ नानाविधस्रावरुजोपपन्नमसाध्यमाहुस्त्रिमलोपदंशम् ॥ ३ ॥

जो उपदंशका व्रण सुई चुभोनेसरीखी वेदनावाला हो, शस्त्रभेदन सरीखी पीडावाला हो, स्फुरणयुक्त और कलौंस लिये हो उसको वातजन्य उपदंश जानना ॥

जो फुंसी वा चट पीली, बहुत क्लेदयुक्त, दाहयुक्त, लालीलिये और देखनेमें मांसकी समान हो उसको पित्तसम्बन्धी जानना ॥

जो व्रण वा चट खुजलीयुक्त, सूजनयुक्त, बडा सफेद, घन और स्रावयुक्त होय उसको कफजन्य उपदंश जानना ॥

जो फोडा अनेक प्रकारके स्रावयुक्त और अनेक प्रकारकी पीडायुक्त होय उसको त्रिदोषजन्य जानना, ये उपदंश असाध्य हैं ॥

जो फोडा काला होय, रुधिर बहुत निकलताहो, पित्तके लक्षणोंयुक्त हो और ज्वर, दाह तथा शोषयुक्त होय तो उसको रुधिरसम्बन्धी उपदंश जानना। यह उपदंश किसी समय याप्य होजाता है ॥ २ ॥ ३ ॥

अथोपदंशासाध्यता।

प्रशीर्णमांसं कृमिभिः प्रजग्धं मुष्कावशेषं परिवर्जनीयम् ॥

जिस उपदंशका मांस गलगया हो कीडे पडगये हों अथवा उसके मांसको कीडोंने खालिया हो और केवल अंडकोषही अवशेष रहगये हों उस उपदंश की चिकित्सा नहीं करनी चाहिये।

अथोपदंशोपेक्षाफलम्।

संजातमात्रे न करोति मूढः क्रियां नरो यो विषये प्रसक्तः ॥ कालेन शोथक्रिमिदाहपाकैः प्रशीर्णशिश्नो म्रियते स तेन ॥ ४ ॥

विषयमें आसक्त जो मूर्ख पुरुष उपदंशके उत्पन्न होतेही उसकी चिकित्सा नहीं करताहै उस मनुष्यका कुछ कालमें सूजन, कृमि, दाह और पकनेसे लिंग गलसडकर गिरपडताहै ॥ ४ ॥

अथोपदंशचिकित्सा।

उपदंशेषु साध्येषु स्निग्धस्विन्नस्य देहिनः ॥ मेढ्रमध्ये शिरां विध्येत्पातयेद्वा जलौकसः ॥ ५ ॥ हरेदुभयतश्चापि दोषानत्यर्थमूर्च्छितान् ॥ सद्यो निर्हृतदोषस्य

रुक्शोथावुपशाम्यतः ॥ ६ ॥ यदि वा दुर्बलो जन्तुर्न वा प्राप्तविरेचनः ॥ निरूहेण हरेत्तस्य दोषानत्यर्थमूर्छितान् ॥ पाको रक्ष्यः प्रयत्नेन शिश्नक्षयकरो हि सः ॥ ७ ॥ प्रपौण्डरीकयष्ट्याह्वसरलागुरुदारुभिः ॥ सरास्नाकुष्ठपृथ्वीकैर्वातिके लेपसेचने ॥ ८ ॥ निचुलैरण्डबीजानि यवगोधूमसक्तवः ॥ एतैश्च वातजं स्निग्धैः सुखोष्णैः संप्रलेपयेत् ॥ ९ ॥ गैरिकाञ्जनमञ्जिष्ठामधुकोशीरपद्मकैः ॥ सचन्दनोत्पलैः स्निग्धैः पैत्तिकं संप्रलेपयेत् ॥ १० ॥ पद्मोत्पलमृणालैश्च ससर्जार्जुनवेतसैः ॥ सर्पिःस्निग्धैः समधुकैः पैत्तिकं संप्रलेपयेत् ॥ ११ ॥ सेचयेच्च घृतक्षीरशर्करेक्षुमधूदकैः ॥ अथवापि सुशीतेन कषायेण वटादिना ॥ १२ ॥ शालाजकर्णाश्वकर्णधवत्वग्भिः कफोत्थितम् ॥ सुरापिष्टाभिरुष्णाभिः सतैलाभिः प्रलेपयेत् ॥ १३ ॥

अजकर्णः शालभेदः।अश्वकर्णो गजहडः॥

आरग्वधादिक्वाथेन परिषेकश्च दापयेत् ॥ १४ ॥ निम्बार्जुनाश्वत्थकदम्बशालजम्बूवटोदुम्बरवेतसैश्च ॥ प्रक्षालनालेपकृतानि कुर्याच्चूर्णं सपित्तास्रभवोपदंशे ॥ १५ ॥ त्वचो दारुहरिद्रायाः शंखनाभिरसाञ्जनम् ॥ लाक्षागोमयनिर्यासैस्तैलं क्षौद्रं घृतं पयः ॥ १६ ॥ एभिस्तु पिष्टैस्तुल्यांशैरुपदंशं प्रलेपयेत् ॥ व्रणाश्च तेन शाम्यन्ति श्वयथुर्दाह एव च ॥ १७ ॥ उपदंशद्वये शेषे प्रत्याख्यायाचरेत्क्रियाम् ॥ एतेषामेव या योग्या वीक्ष्य दोषबलाबलम् ॥ १८ ॥ शस्त्रेणोल्लेखयेत्क्वापि पाकमागतमाशु वै ॥ तमपोह्य तिलैः सर्पिःक्षौद्रयुक्तैः प्रलेपयेत् ॥ १९ ॥ वटप्ररोहार्जुनजम्बुपथ्या लोध्रं हरिद्रा च हिताः प्रलेपे ॥ तथोपदंशेष्ववरोहणार्थं चूर्णश्च कार्यं विमलाञ्जनेन ॥ २० ॥ त्रिफलायाः कषायेण भृंगराजरसेन वा । व्रणप्रक्षालनं कार्यमुपदंशप्रशान्तये ॥ २१ ॥ जयाजपाश्वमारार्कशम्पाकानां दलैः क्रमात् ॥ कृतं प्रक्षालनं क्वाथं मेढ्रपाके प्रयोजयेत् ॥ २२ ॥ शम्पाकनिम्बत्रिफलाकिरातक्वाथं पिबेद्वा खदिरासनाभ्याम् ॥ सगुग्गुलुं वा त्रिफलायुतं वा सर्वोपदंशापहरः प्रयोगः ॥ २३ ॥ नीलोत्पलानि कुमुदं पद्मसौगन्धिकानि च ॥ उपदंशेषु चूर्णानि प्रदेहोऽयं प्रशस्यते ॥ २४ ॥ बन्धूकदलचूर्णेन दाडिमत्वग्रजोऽथवा ॥ गुण्डनं वृषणे शस्तं लेपः पूगफलेन वा ॥ २५ ॥ सौराष्ट्री गैरिकं तुत्थं पुष्पकासीससैन्धवम् ॥ लोध्रं रसाञ्जनश्चापि हरितालं मनःशिला ॥ २६ ॥ हरेणुकैलेऽपि तथा समं संहृत्य चूर्णयेत् ॥ तच्चूर्णं क्षौद्रसंयुक्तमुपदंशेषु पूजितम् ॥ २७ ॥ पुटदग्धं कृतं भस्म हरितालं मनःशिला ॥ उपदंशविसर्पाणामेतद्धानिकरं परम् ॥ २८ ॥ दहेत्कटाहे त्रिफलां तां मसीं मधुसैन्धवम् ॥ उपदंशे प्रलेपोऽयं सद्यो रोपयति व्रणम् ॥ २९ ॥ तिरीटाञ्जनवज्राक्षकोविदारेभकेसरैः ॥ लेपनं पुरुषव्याघ्रौ जलपिष्टैः प्रशस्यते ॥ ३० ॥ रसाञ्जनं शिरीषेण पथ्यया वा समन्वितम् ॥ सक्षौद्रं लेपनं योज्यं सर्वांगजगदापहम् ॥ ३१ ॥ भार्गीसम्भवशिखरिजमूलं भद्रश्रियः सुसम्पिष्टम् । मनःशिला च मधुना शमयत्युपदंशमचिरेण॥ ३२ ॥ शतधौतं प्रयत्नेन लिंगोत्थमवचूर्णयेत् ॥ रोगं कासीसचूर्णेन पुरुषः सुखमाप्नु-

यात् ॥ ३३ ॥ करवीरस्य मूलेन परिपिष्टेन वारिणा। असाध्यापि व्रजत्यस्तं लिंगोत्था रुक्प्रलेपनात् ॥ ३४ ॥

उपदंश जो साध्य होय तो उस पुरुषको स्नेहन तथा स्वेदन करके उसके लिंगके मध्यमें जो महीन नस है उसको वींधे अथवा उपदंशके ऊपर जोंक लगावे ।

वमन तथा विरेचन देकर उस पुरुषके अत्यंत बढे हुए दोषोंको हरणकरे, तत्कालही दोषोंका हरण किया जाय तो व्यथा तथा सूजन शांत होजातीहै ।

जो उपदंशरोगी अत्यत निर्बल हो अथवा विरेचनयोग्य न होय तो उसके अत्यत व्याप्त हुए दोषोंको निरूहवस्ति लगाकर हरण करे ।

जिसप्रकार होसके उसप्रकार उपदंशको पकने नहीं देवे, क्यों कि पकजानेसे लिंगका क्षय होजाताहै ।

जो वायुसम्बन्धी उपदंश होय तो प्रपौण्डरीक, (पुंडेरिया गंधद्रव्य) मुलैठी, देवदारु, अगर, दारुहलदी, रायसन, कूठ और इलायची इनके कल्कका लेपकरे और इनहीके रससे सेचन करे ।

नीम, अंडके बीज और जौ तथा गेहूंके सत्तू, इनको पीसकर घीसे स्निग्ध करके कुछेक गरम करके लेप किया जाय तो वातजन्य उपदंश नष्ट होजाताहै ।

गेरू, रसौत, मजीठ, मुलैठी, खस, पद्माख, चंदन और उत्पल इनके कल्कका लेप कियाजाय तो पित्तजन्य उपदंश नष्ट होजाताहै ।

सफेद कमल, लाल कमल, कमलकी नाल, सालकी छाल, अर्जुनकी छाल, वेत और मुलैठी इनको घीसे स्निग्ध करके लेप कियाजाय तो पित्तजन्य उपदंश नष्ट होजाताहै ।

घी, दूध, मिश्री, ईख, सहत और जल इनसे सेचन कियाजाय तो पित्तजन्य उपदंश नष्ट होजाताहै । न्यग्रोधादिगणका क्वाथ बनाकर अच्छे प्रकारसे शीतल करके उससे सेचन करनेसे पित्तजन्य उपदंश नष्ट होताहै ।

सालकी छाल, अजकर्ण नामक सालकी छाल, अश्वकर्ण नामक सालकी छाल, और वचकी छाल इनको मदिरामें पीसकर गरम करके तेल डालकर लेप कियाजाय तो कफसंबन्धी उपदंश नष्ट होजाता है ।

आरग्वधादि गणकी औषधियोंका क्वाथ बनाकर उससे सेचन कियाजाय तो कफसम्बन्धी उपदंश नष्ट होता है ।

नीम, अर्जुन, पीपल वृक्ष, कदम्ब, साल, जामुन, वड, गूलर और वेत इनकी छालके क्वाथसे धोनेसे और इनहीके कल्कसे लेप कियाजाय तो पित्तजन्य और रुधिरजन्य उपदंश नष्ट होजाताहै ॥

दारुहलदीकी छाल, शंखकी नाभि, रसौत, लाख, गोंद, तेल, घी और दूध इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर उपदंशके ऊपर लेप करनेसे व्रण, सूजन और दाह शांत होजाताहै ।

त्रिदोषज और रुधिरजन्य उपदंश होय तो उसको असाध्य होनेके कारण प्रथमहीसे उसकी चिकित्सा न करने लगे अगर रोगीकी आग्रह होय तो दोषोंका बलाबल विचार जो उसमें घटेसो चिकित्सा करे । जो उपदंश पकगया होय तो समयपर तत्काल शस्त्रसे उसका उल्लेखन (भेदन) करे और इसप्रकार उसको चीरकर घीमें तथ सहतमें पिसेहुए तिलोंका लेपकरे ।

वडके अंकुर, अर्जुनकी छाल, जामुनकी छाल, हरड, लोध और हलदी इनका प्रलेप करनेसे और भरनेके लिये बिमला (सोनामाखी) अथवा रसौतका चूर्ण भरनेसे उपदंश नष्ट होजाताहै ।

हरड, बहेडा, और आमले इनके क्वाथसे अथवा भांगरेके रससे व्रणोंको धोनेसे उपदंश शांत होजाताहै ।

अरणीके पत्ते, ओडहुलके पत्ते, कनेरके पत्ते, आकके पत्ते और असलतासके पत्ते इनके, क्वाथसे अनुक्रमसे धोके तो लिंगपाक दूर होजाताहै ।

अमलतास, नीम, हरड, बहेडा, आमला और चिरायता इनका क्वाथ बनाकर उसने खैरसार तथा विजयसार अथवा गूगल, डालकर अथवा हरड, बहेडा, तथा आमले डालकर पान करनेसे, सर्व प्रकारके उपदंश नष्ट होजातेहैं ।

नीले कमल, रात्रिमें खिलनेवाले कमल, सफेद कमल, और लालकमल इनका चूर्ण करके पीसकर गाढा लेप करनेसे उपदंश नष्ट होताहै ।

दुपहरियाके पत्तोंका चूर्ण अथवा अनारकी छालका चूर्ण वृषणके ऊपर अच्छे प्रकारसे लगावे तो अथवा

सुपारीका कल्क बनाकर लेप करनेसे उपदंश नष्ट होजाताहै।

फटकिरी, पीला गेरू, नीलाथोथा, हीराकसीस, सैंधानिमक, लोध, रसोत हरिताल, मैनशिल, रेणुका और इलायची इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करकै सहतमें मिलाकर लेप करनेसे उपदंश नष्ट होजाता है।

पुटपाकविधिसे हरिताल और मैनशिल इनकी भस्म करकै इनका लेप करनेसे उपदंश और विसर्प नष्ट होजाता है।

हरड, बहेडा और आमले इनकी कढाईमे भस्म करकै उस भस्मको सहत और सैंधेनिमकमें मिलाकर उपदंशके ऊपर लेप करनेसे व्रण तत्काल भरकर सूख जाता है।

लोध, रसौत, तगर, कचनार, और नागकेसर इनको जलमें पीसकर लेप करनेसे उपदंश नष्ट होजाताहै।

रसौत और सिरसकी छाल अथवा रसौत और हरड इनका चूर्ण सहतमे मिलाकर लेप करनेसे संपूर्ण अंगोमें प्राप्त हुआ उपदंश नष्ट होजाताहै।

भारंगीकी जड, चिरचिटेकी जड, और चन्दन इनको अच्छे प्रकारसे पीसकर लेप करनेसे उपदंश तत्काल नष्ट होजाताहै।

मैनशिलको सहतमें पीसकर लेप करनेसे उपदंश तत्काल नष्ट होजाताहै।

उपदंशके घावको सौवार यत्नपूर्वक धोकर उसके ऊपर हीराकसीका चूर्ण बुरकानेसे उपदंशकी पीडा दूर होकर उपदंश नष्ट होजाताहै।

कनेरकी जडको जलमें पीसकर उसका लेप करनेसे लिंगकी पीडा और असाध्य उपदंशभी नष्ट होजाताहै ॥ ५-३४ ॥

अथ वरादिगुग्गुलुः ।

वरानिम्बार्जुनाश्वत्थखदिरासनवासकैः ॥ चूर्णितैर्गुग्गुलुसमैर्वटका अक्षसंमिताः ॥ ३५॥ कर्त्तव्या नाशयन्त्याशु सर्वाल्लिंगसमुत्थितान् ॥ उपदंशानसृग्दोषांस्तथा दुष्टव्रणानपि ॥ ३६ ॥

हरड, बहेडा, आमला, नीम, अर्जुन, पीपलवृक्ष, खैर, विजयसार और अडूसा इन सबका बारीक चूर्ण करकै और सब चूर्णकी बराबर गूगल मिलाकर एक एक तोलेभरकी गोलियाँ बना लेवे ये गोली लिंगमे उत्पन्न हुए सर्वप्रकारके उपदंशको, रुधिरके विकारोंको और दुष्ट व्रणोंको भी नष्टकरे हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

अथ करंजाद्यघृतम् ।

करञ्जनिम्बासनशालजम्बूवटादिभिः कल्ककषायसिद्धम् ॥ सर्पिर्निहन्यादुपदंशदोषं सदाहपाकस्रुतिरागयुक्तम् ॥ ३७ ॥

करंज, नीम, विजयसार, साल, जामुन और वटादिवर्गकी समस्त औषधि इन सब औषधियोंके क्वाथमें इन्हीके कल्कसे पकायाहुआ घी दाह, पाक, स्राव और लालीयुक्त उपदंशको भी नष्ट करे है ॥ ३७ ॥

अथ भूनिम्बाद्यघृतम् ।

भूनिम्बनिम्बत्रिफलापटोलकरञ्जधात्रीखदिरासनानाम् ॥सतोयकल्कैर्घृतमाशु पक्वं सर्वोपदंशापहरं प्रदिष्टम् ॥ ३८ ॥

चिरायता, नीम, हरड, बहेडा, आमला, परवल, करंज, आमले, खैर और विजयसार इनके क्वाथ और कल्कसे घृतको पकावे। यह घृत तत्काल सर्वप्रकारके उपदंशको नष्ट करे है ॥ ३८ ॥

अथातिदेशः ।

घृतानि यानि वक्ष्यामि कुष्ठे नाडीव्रणे व्रणे ॥ उपदंशे प्रयोज्यानि सेकाभ्यञ्जनभोजनैः ॥ ३९ ॥

कोढपर, नाडीव्रणपर और व्रणके ऊपर जो जो घी कहेंगे वे सब घृत उपदंश रोगमें भी सेचन, अभ्यंग तथा भोजनमें व्यवहार करने चाहियें, इससे अवश्य उपदंश नष्ट होजाताहै ॥ ३९ ॥

अथागारधूमाद्यतैलम् ।

अगारधूमो रजनी सुराकिट्टं च तैस्त्रिभिः ॥ यथोत्तरैः पचेत्तैलं कण्डूशोथरुजापहम् ॥ शोधनं रोपणं चैव ह्युपदंशहरं परम् ॥ ४० ॥

घरका धुंआंसा १ भाग, हलदी दो भाग और सुराकिट्ट (एक प्रकारकी कॉंजी) तीन भाग लेवे, इन सबसे तेलको पकावे। यह तेल-खुजली, सूजनकी पीडा और

अच्छे प्रकार उपदंशको नष्ट करे है । इस तेलसे व्रण शुद्ध होजाताहै और भरकर सूखजाताहै ॥ ४० ॥

अथ गोजिह्वातैलम् ।

गोजीविडङ्गयष्टीभिः सर्वगन्धैश्च संयुतम् ॥ एतत्सर्वोपदंशेषु तैलं रोपणमिष्यते ॥ ४१ ॥

गोजिह्वा (गोभी), वायविडंग, मुलैठी और चदनादिक समस्त सुगधित पदार्थ इनसे पकाया हुआ तेल सर्व प्रकारके उपदशोको भरदेताहै ॥ ४१ ॥

अथ जम्ब्वाद्यतैलम् ।

जम्बूवेतसपत्राणि धात्रीपत्रं तथैव च ॥ नक्तमालस्य पत्राणि तद्वत्पद्मोत्पलानि च ॥ ४२ ॥ एला चातिविषाम्रास्थि मधुकश्च प्रियङ्गवः ॥ लाक्षा कालीयकं लोध्रं चन्दनं त्रिवृताह्वया ॥४३ ॥ एतान्येकीकृतान्येव वस्तमूत्रेण पेषयेत्॥अक्षमात्रैरिमैर्द्रव्यैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत्॥४४ सर्वव्रणहरं तैलमेतत्सिद्धं विपाचयेत् ॥ उपदंशहरं श्रेष्ठं मुनिभिः परिकीर्तितम् ॥ ४५ ॥

जामुनके पत्ते, वेतके पत्ते, आमलोंके पत्ते, करजके पत्ते, सफेद कमल, लाल कमल, इलायची, अतीस, आमकी गुटली, मुलैटी, फूलप्रियगू, लाख, कलम्बक, लोध, सफेद चदन और निसोत इन प्रत्येक औषधियोंको एक एक तोलाभर लेकर सबको एकत्र बकरेके मूत्रमें पीसकर चौंसठ तोलेभर तेलमे पकावे । यह तेल सर्वप्रकारके व्रणोंको तथा उपदशको नष्ट करे हैं ऐसा मुनियोंने कहाहै ॥ ४२–४५ ॥

अथ कोशातकीतैलम् ।

यस्य लिङ्गस्य मांसं तु शीर्यते मुष्कशेषतः ॥ तिक्तकोशातकीलम्बाबीजं नागरसाधितम् ॥ तैलं हन्त्यविशेषेण व्रणं दुष्टमनेकधा ॥ ४६ ॥

कडवी तोरईके बीज, कडवी तोम्बीके बीज और सोंठ इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल अनेक प्रकारके दुष्ट व्रणोंको अच्छे प्रकारसे नष्ट करदेताहै । जो लिंगका मास गलगया हो केवल अण्डकोषही बाकी रह-गया हो तो भी वह उपदश इस तलसे शांत होजाता-है ॥ ४६ ॥

अथोपदंशे पथ्यम् ।

सेवेन्नित्यं यवान्नञ्च पानीयं कौपमेव च ॥ अर्शसां च्छिन्नदग्धानां क्रियां चात्र प्रयोजयेत् ॥ ४७ ॥

इत्युपदंशनिदानचिकित्साधिकारः ।

उपदंशरोगी नित्य जौका भोजन और कुएका जल सेवन करे । तथा बवासीर और छिन्न तथा दग्धव्रणमे जो चिकित्सा कही है वह सब प्रयोग करनी चाहिये ॥४७॥

इति उपदशाधिकारः सपूर्णः ।

अथ लिंगार्शोऽधिकारः ।

तत्र लिंगार्शोलक्षणम् ।

अंकुरैरिव संजातैरुपर्युपरि संस्थितैः ॥ क्रमेण जायते वर्तिस्ताम्रचूडशिखोपमा ॥ १ ॥ कोशस्याभ्यन्तरे सन्धौ पर्वसन्धिगतापि वा ॥ लिंगवर्तिरिति ख्याता लिंगार्श इति चापरे ॥ सवेदना पिच्छिला च दुश्चिकित्स्या त्रिदोषजा ॥ २ ॥

धान्यके अकुरकी समान एक दूसरेके ऊपर बारीक बारीक अनुक्रमसे बट बढकर लिंगमें, सन्धियोंमें अथवा लिंगकी सुपारीके नीचे, मुरगेकी कलगीकी समान जो उत्पन्न होती है उसको लिंगवर्ति कहते है । कितने एक वैद्य इस लिंगवर्तिको लिंगार्शभी कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथ लिंगार्शश्चिकित्सा ।

क्षारेण प्रदहेच्छित्त्वा लिङ्गवर्तिमशेषतः ॥ व्रणवच्चाचरेत्सम्यग्लेपचूर्णैरुपद्रवान् ॥ ३ ॥ स्वर्जिका तुत्थशैलेयमंजनं सरसांजनम् ॥ मनःशिलाले च समं चर्णं मांसांकुरापहम् ॥ ४ ॥ हरति वृतकुमारीपत्रमावेष्टनेन ग्रथनविधिविशेषाश्चर्मकीलांस्तृतीये ॥ अहनि गुरुतरानप्यंगलब्धप्रतिष्ठान्विधिरिव विपरीतः पौरु-

षस्य प्रकारान् ॥ ५॥ शुभे तु चारटीमूलं वृषमूत्रेण पेषयेत् ॥ चर्मकीलान्निहन्त्याशु लेपो लिंगसमुद्भवान् ॥ ६ ॥

इति लिगार्शोधिकारः ।

इस लिगके अर्शको अच्छे प्रकारसे शस्त्रसे काटकर क्षारसे दग्ध करे । और व्रणकी समान ही लेप चूर्ण आदि उपचार अच्छे प्रकारसे करे ।

सज्जी, नीलाथोथा, शिलाजीत, रसौत, अजन(सुरमा), मैनशिल और हरिताल इन सबको समान भाग लेकर बनाया हुआ चूर्ण लिगार्शको नष्ट करदेताहै ।

जिस प्रकार विपरीत हुआ दैव पुरुषार्थको प्रबलरीतिसे नष्ट करदेताहै उसी प्रकार बॉधा हुआ धीक्वारका पत्ता अत्यत प्रबल, अगमे जमाहुआ और एक जातिका गांठकी समान चर्मकील (लिगार्श) को भी तीन दिनमें नष्ट करेहै ॥

शुभ दिनमे कटेरीकी जडको लेकर बैलके मूत्रमे पीसकर लेप करनेसे लिगार्श तत्काल नष्ट होजाताहै ॥ ३–६ ॥

इति लिगार्शोविकारः सम्पूर्णः ।

अथ शूकदोषाधिकारः ।

तत्र शूकदोषनिदानम् ।

अक्रमाच्छेफसो वृद्धिं योऽभिवाञ्छति मूढधीः॥ व्याधयस्तस्य जायन्ते दश चाष्टौ च शूकजाः ॥ १ ॥

अक्रमादनुचितवृद्धिक्रमात् । अनुचिता च वृद्धिः भूरिविकारजनकस्य योगेन । शूकजाः शूको जलशूकः सविषो जलजन्तुविशेषः स तु जलमलोद्भवः अल्पडुण्डुभ इत्यादिकः । तथा शूकप्रधानो लिंगवृद्धिकरो वात्स्यायनाद्युक्तो योगः शूक उच्यते यथा–

भल्लातकास्थिजलशूकमथाब्जपत्रमन्तर्विदाह्य मतिमान्सह सैन्धवेन ॥ एतद्विरूढबृहतीफलतोयपिष्टमालेपितं महिषविड्विमलीकृतेंगे ॥ २ ॥ स्थलं महद्भवतुरंगमलिंगतुल्यं शेफः करोत्यभिमतं न हि संशयोऽत्र ॥ ३ ॥

यत्तु जलशूकरहितमश्वगन्धादितैलं तदुचितमेव लिंगवर्द्धनम् ॥

जो मूर्ख मनुष्य अयोग्य उपायसे लिगको बढानेका यत्न करतेहैं उनके शूकदोषसे उत्पन्न हुई अठारह प्रकारकी व्याधि उत्पन्न होतीह ॥

जिसमें इस शूक नामक कीडेकी भस्मका मुख्य उपयोग है ऐसा वात्स्यायन आदि आचार्योंके कहे हुए लिंगको बढानेवाले जो उपाय हैं, उनमे शूकके मुख्य होनेसे शूक कहेजातेहैं । वात्स्यायन ऋषिने कहा है कि "भिलावे की गुठली, शूकनामकजलका कीडा और कमलके पत्ते इनको वर्तनके भीतर जलाकर भस्मकर लेवे उस भस्मको सैंधे निमकमें मिलाकर बडीकटेरीके फलके रसमें मिलाकर पीस लेवे, फिर लिगको भैंसके गोबरसे धोकर उसके ऊपर इस भस्मका लेप करे तो लिग मन माना और उत्तम घोडेकी लिगकी समान होजाताहै इसमे सशय नहीं" इत्यादि ।

इससे अत्यन्त हानि होतीहै. परन्तु जिसमे कीडेभस्मका उपयोग नहीं होता ऐसा लिग बढानेवाले 'अश्वगन्धादि तैल' के जो उपाय कहे हैं वह ठीक हैं ॥ १–३ ॥

अथाश्वगधादितैलम् ।

अश्वगन्धावरीकुष्ठं मांसीसिंहीफलान्वितम् ॥ चतुर्गुणेन दुग्धेन तिलतैलं विपाचयेत् ॥ तत्तैलं मेढ्रवक्षोजकर्णपालिविवर्द्धनम् ॥ ४ ॥

असगंध, सतावर, कूठ, बालछड और कटेरीके डोडे इनका कल्क डालकर तेलसे चौगुने दूधमे पकाया हुआ तिलका तेल अश्वगंधादि तेल कहाजाताहै । यह तेल–लिंग, स्तन और कानकी पालीको बढाताहै ॥ ४ ॥

अथ शूकदोषस्याष्टादशभेदाः ।

तत्र सर्षपिकालक्षणम् ।

गौरसर्षपसंस्थाना शूकदुर्भगहेतुका ॥ पिडका श्लेष्मवाताभ्यां ज्ञेया सर्षपिका तु सा ॥ ५ ॥

शूकदुर्भगहेतुका शूकदुष्टयोनिनिमित्ता च ।

शूकसे अथवा दुष्टयोनिमें मैथुन करनेसे उत्पन्न हुई सफेद सरसोंकी समान जो फुंसी उत्पन्न होतीहै वह सर्षपिका कही जातीहै, कफ तथा वायु इनसे उत्पन्न होतीहै ॥ ५ ॥

अथाऽष्ठीलिकालक्षणम् ।

कठिना विषमैर्भुग्नैर्वायुनाऽष्ठीलिका भवेत् ६॥

अष्ठीला लोहकारस्य भाण्डविशेषः निहार इति लोके । ततः कठिनेत्यष्ठीलिका विषमैर्भुग्नैरिति वक्ष्यमाणशूकविशेषणम् । विषमैर्ह्रस्वदीर्घैः भुग्नैः वक्रैः ॥

बडे, छोटे और टेढे कांटोंवाली और कठिन ऐसी जो फुंसी होय उसको अष्ठीलिका कहतेहैं 'अष्ठीलिका' इस नामका एक लुहारका औजार होताहै जिसको देशमें निहार अथवा निहाई कहतेहैं उसीके समान यह फुंसी कठिन होतीहै, इसकारण इसको अष्ठीलिका कहतेहैं, इस फुंसीका मुख्य निदान वायु है ॥ ६ ॥

अथ ग्रथितलक्षणम् ।

शूकैर्यत्पूरितं शश्वद्ग्रथितं नाम तत्कफात् ॥ ७ ॥

यल्लिङ्गं सदा शूकैः पूरितं तद्ग्रथितत्वात् ग्रथितम् ॥

लिंग जोंकी अनीकी समान कांटोंसे निरंतर व्याप्त रहे उसको ग्रथित कहतेहैं इस ग्रथितका मुख्य निदान कफ है ॥ ७ ॥

अथ कुम्भिकालक्षणम् ।

कुम्भिका रक्तपित्तोत्स्याज्जाम्बवास्थिनिभा सिता ॥ ८ ॥

कुम्भिका कुम्भीफलतुल्यत्वात् ॥

जामुनकी गुठलीकी समान जो सफेद फुन्सी उत्पन्न होय उसको कुम्भिका कहतेहैं, इस फुन्सीका मुख्य निदान रुधिर तथा पित्त है । यह फुन्सी कुम्भीफल (कायफल) की समान होतीहै इसलिये इसको कुंभिका कहतेहैं ॥ ८ ॥

अथाऽलजीलक्षणम् ।

अलजी स्यात्तथा याद्दक्प्रमेहपिडका तथा ॥ सा च रक्ताऽसिता स्फोटैश्चिता च कथिता बुधैः ॥ ९ ॥

एषा रक्तपित्तनिमित्ता ज्ञेया ।

अलजी नामक प्रमेह सम्बन्धी पिडका जो लाल और काली फुन्सी होय तथा अन्य फुंसियोंसे व्याप्त होय ऐसी इस प्रमेह पिडकाकी समान लिंगपर उत्पन्न होय उसको अलजी कहतेहैं । इस फुन्सीका मुख्य रुधिर तथा पित्त है ॥ ९ ॥

अथ मृदितलक्षणम् ।

मृदितं पीडितं यत्तु संरब्धं वातकोपतः ॥ १० ॥

शूकदोषे जाते पीडितं सत् यत् संरब्धं सशोथं भवति तल्लिंगं मृदितमुच्यते ॥

शूकदोषके उत्पन्न होनेपर लिंगके दबानेसे जो सूजन उत्पन्न होय उसको मृदित कहतेहैं ॥ १० ॥

अथ संमूढपिडकालक्षणम् ।

पाणिभ्यां भृशसंमूढे संमूढपिडका भवेत् ॥ ११ ॥

शूकदोषे जाते पाणिभ्यां भृशसंमूढे पिशते लिंगे । अत्रापि वातकोपत इत्यनुवर्तते ॥

शूक होनेपर दोनों हाथोंसे बहुत मर्दन करनेसे लिंगके ऊपर जो पिडका होतीहै उनको संमूढपिडका कहतेहैं ॥ ११ ॥

अथावमन्थलक्षणम्।

दीर्घा बह्वयश्च पिडका दीर्यन्ते मध्यतस्तु याः॥ सोऽवमन्थः कफासृग्भ्यां वेदनारोमहर्षकृत्॥ १२॥

दीर्घा दीर्घांकुराः॥

लंबी और लंबे अंकुरवाली जो फुन्सियें बीचमें फूटी हुई, वेदनायुक्त और रोमाञ्चसहित होयँ उनको अवमन्थ कहतेहैं। ये फुन्सी कफ तथा रुधिरके कोपसे होतीहैं॥१२॥

अथ पुष्करिकालक्षणम्।

पिडका पिडकाव्याप्ता पित्तशोणितसंभवा॥ पद्मकर्णिकसंस्थाना ज्ञेया पुष्करिकेति सा॥ १३॥

पिडकाव्याप्ता पार्श्वतः क्षुद्रपिडकाव्याप्ता अत एव पद्मकर्णिकसंस्थाना॥

जो फुन्सी अन्य फुन्सियोंसे व्याप्त और कमलकर्णिकाकी समान आकारवाली उत्पन्न होय उसको पुष्करिका कहते हैं। यह फुंसी पित्तके तथा रुधिरके कोपसे होतीहै॥१३॥

अथ स्पर्शहानिलक्षणम्।

स्पर्शहानिन्तु जनयेच्छोणितं शूकदूषितम्॥ १४॥

अत्र स्पर्शासहत्वमेव लक्षणम्॥

जो फुंसी स्पर्शको सह न सके उसको स्पर्शहानि कहतेहैं, यह फुंसी शूकदोषसे कुपित हुए रुधिरसे उत्पन्न होतीहै॥ १४॥

अथोत्तमालक्षणम्।

मुद्गमाषोपमा रक्ता रक्तपित्तोद्भवा च या॥ एषोत्तमाख्या पिडिका शूकाजीर्णसमुद्भवा॥ १५॥

शूकदोषसे उत्पन्न हुई, अजीर्णसे उत्पन्न हुई, मूग तथा उडदके समान जो लाल फुंसी उत्पन्न होतीहै वह उत्तमा कहीजातीहै। इस फुन्सीका मुख्य निदान रुधिर तथा पित्त है॥ १५॥

अथ शतपोनकलक्षणम्।

छिद्रैरणुमुखैर्लिंगं चिरं यस्य समन्ततः॥ वातशोणितजो व्याधिर्विज्ञेयः शतपोनकः॥ १६॥

शतपोनकश्चालनी तत्तुल्यत्वाच्छतपोनकः॥

लिंग बारीक छिद्रोंकरके चारों ओरसे व्याप्त होकर शतपोनक (चलनी) की समान होजाय उस रोगको शतपोनक कहतेहैं। इसका मुख्य निदान वात तथा कफ है॥ १६॥

अथ त्वक्पाकलक्षणम्।

वातपित्तकृतो ज्ञेयस्त्वक्पाको ज्वरदाहकृत्॥ १७॥

ज्वर तथा दाहको उत्पन्न करनेवाला लिंगके चर्मका जो पाक होताहै वह त्वक्पाक कहाजाताहै, इसका मुख्य निदान रुधिर तथा पित्त है॥ १७॥

अथ शोणितार्बुदलक्षणम्।

कृष्णैः स्फोटैः सरक्ताभिः पिडकाभिनपीडितम्॥ लिंगं वास्तुरुजश्चोग्रा ज्ञेयं तच्छोणितार्बुदम्॥ १८॥

वास्तुरुजः स्फोटपिडकाधिष्ठानवेदनाः॥

काली फुंसियोंसे और लाल फुंसियोसे लिंग पीडित होय और उन फुंसियोंमें तथा फुंसियोंके स्थानमे उग्र पीडा होय उसको शोणितार्बुद कहतेहैं॥ १८॥

अथ मांसार्बुदलक्षणम्।

मांसदुष्टं विजानीयादर्बुदं मांससम्भवम्॥ १९॥

मांसकी दुष्टतासे लिंगपर मांसका अर्बुद (रसौली) उत्पन्न होय उसको मांसार्बुद कहतेहैं॥ १९॥

अथ मांसपाकलक्षणम्।

शीर्यन्ते यस्य मांसानि यस्य सर्वाश्च वेदनाः॥ विद्यात्तं मांसपाकं तु सर्वदोषकृतं भिषक्॥ २०॥

शीर्यन्ते गलन्ति। सर्वाश्च वेदनाः वातपित्तकफजाः॥

लिंगका मांस गलकर गिरजाता हो और सर्वप्रकारकी (वात पित्त कफ जनित) वेदना होती हो उसको वैद्य मांसपाक हुआ जाने, यह मांसपाक त्रिदोषके कोपसे होताहै॥ २०॥

अथ विद्रधिलक्षणम् ।

विद्रधिं सन्निपातेन यथोक्तमभिनिर्दिशेत् ॥ २१ ॥

उक्तं सान्निपातिकविद्रधितुल्यं कथयेत् ॥

प्रमेहसम्बन्धी विद्रधियोंमे जो त्रिदोषजन्य विद्रधि कही है उसीके लक्षणोंवाली फुंसी जो लिंगमे उत्पन्न होय उसको वैद्य विद्रधि जाने, यह विद्रधि भी त्रिदोषके प्रकोपसे होतीहै ॥ २१ ॥

अथ तिलकालकलक्षणम् ।

कृष्णानि चित्राण्यथवा शूकानि सविषाणि तु ॥ पातितानि पचत्याशु मेढ्रं निरवशेषतः ॥ २२ ॥ कालानि भूत्वा मांसानि शीर्यन्ते यस्य देहिनः ॥ सन्निपातसमुत्थांश्च तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥ २३ ॥

चित्राणि शुक्लपीतनीलादिनानावर्णानि । सविषाणीति शूकानांसविषत्वेऽपि विशेषार्थमुक्तम् । शीर्यन्ते गलन्ति । कालानीति कृष्णानि, कृष्णतिलतुल्यत्वात्तिलकालकसंज्ञा ॥

काले रंगके अथवा अनेक प्रकारके चित्र विचित्रित सफेद पीले नीले आदि रंगके शूकनामक विषैले कीडेकी भस्मसे उत्पन्न होनेके कारण विषैला मांस लिंगमेंसे गिरजाय, सर्वप्रकारसे लिंगको पका देवे और कालाकाला होकर गलजाय उसको तिलकालक कहते हैं । इस रोगमें मांस काले तिलकी समान होजाताहै, इसकारण इसको 'तिलकालक' कहतेहैं । यह रोग त्रिदोषके प्रकोपसे होताहै ॥ २२ ॥ २३ ॥

अथ शूकदोषासाध्यलक्षणम् ।

तत्र मांसार्बुदं यच्च मांसपाकश्च यः स्मृतः ॥ विद्रधिश्च न सिध्यंति ये च स्युस्तिलकालकाः ॥ २४ ॥

अठारह प्रकारके उपरोक्त शूक दोषोंमें मांसार्बुद, मांसपाक, विद्रधि और तिलकालक ये चार असाध्य हैं ॥ २४ ॥

अथ शूकदोषचिकित्सा ।

शूकदोषेषु सर्वेषु विषघ्नीं कारयेत्क्रियाम् ॥ जलौकाभिर्हरेद्रक्तं रेचनं लघु भोजयेत् ॥ २५ ॥ गुग्गुलुं पाययेच्चापि त्रिफलाक्वाथसंयुतम् ॥ क्षीरेण लेपसेकांश्च शीतेनैव हि कारयेत् ॥ २६ ॥

वैद्य सर्वप्रकारके शूकदोषोंमें विषनाशक क्रिया करे, जौंक लगाकर विष निकलवावे, विरेचन देवे, हलका भोजन करे, त्रिफलेके क्वाथके साथ गूगल पिये, शीतल दूधका लेप और शीतल दूधसे सेचन करावे ॥ २५ ॥ २६ ॥

अथ दार्वीतैलम् ।

दार्वीसुरसयष्ट्याह्वगृहधूमनिशायुतैः ॥ सम्पक्वं तैलमभ्यङ्गान्मेढ्ररोगं हि नाशयेत् ॥ २७ ॥

दारुहलदी, तुलसी, मुलैटी, घरका धुआँसा और हलदी इनके कल्कसे पकाया हुआ तैल 'दार्वीतैल' कहाजाताहै । इस तैलका लेप करनेसे लिङ्गके समस्त रोग नष्ट होजातेहैं ॥ २७ ॥

अथ रसांजनलेपः ।

रसाञ्जनं साह्वयमेकमेव प्रलेपमात्रेण नयेत्प्रशान्तिम् ॥ सपूतिपूयव्रणशोथकण्डूशूलान्वितं सर्वमनङ्गरोगम् ॥ २८ ॥

साह्वयमिति अनङ्गरोगस्य विशेषणम् । अनंगरोगस्य नाम अपि दूरीकरोति इत्यर्थः ।

इति शूकदोषनिदानचिकित्साधिकारः ।

इकले रसौतकाही लेप करनेसे सर्वप्रकारके लिंगसंबंधी रोग नष्ट होजातेहैं कि फिर उनका कदापि नामतक भी नहीं रहता तथा दुर्गंधित राधका निकलना, व्रण, सूजन, खुजली और शूल ये सब नष्ट होजातेहैं ॥ २८ ॥

इति शूकदोषाधिकारः संपूर्ण. ।

अथ कुष्ठरोगाधिकारः ।

तत्र कुष्ठस्य निदानं संख्या च ।

विरोधीन्यन्नपानानि द्रवस्निग्धगुरूणि च ॥ भजतामागतांश्छर्दिवेगांश्चान्या-

न्प्रतिघ्नताम् ॥ १ ॥ व्यायाममभ्भिता-पञ्चाप्यतिभुक्त्वा निषेविणाम् ॥ शीतोष्ण-लंघनाहारान्क्रमं मुक्त्वा निषेविणाम् ॥ २ ॥ घर्माश्रमभयार्तानां द्रुतं शीताम्बुसेविनाम् ॥ अजीर्णाध्यशिनां चापि पञ्चकर्मापचा-रिणाम् ॥ ३ ॥ नवान्नदधिमत्स्यादिल-वणाम्लनिषेविणाम् ॥ माषमूलकपिष्टा-न्नतिलक्षीरगुडाशिनाम् ॥ ४ ॥ व्यवायं चाप्यजीर्णेऽन्ने दिवानिद्रां निषेविणाम् ॥ विप्रान्गुरून्धर्षयतां पापं कर्म च कुर्व-ताम् ॥ ५ ॥ वातादयस्त्रयो दोषास्त्व-ग्रक्तं मांसमम्बु च ॥ दूषयन्ति सकुष्ठानां सप्तको द्रव्यसंग्रहः ॥ अतः कुष्ठानि जाय-न्ते सप्त चैकादशैव च ॥ ६ ॥

विरोधीनि अन्नपानानि क्षीरमत्स्यादीनि दधिदुग्धादीनि। व्यायाममित्यादि अति-भुक्त्वा व्यायामम्, अग्निसन्तापम् अग्निरुप-लक्षणं सूर्यादिसन्तापश्च। निषेविणामिति कृदन्तस्य योगे षष्ठी प्राप्ता। द्वितीया तु मुनि-वचनात्। एवमग्रेऽपि। शीतोष्णलंघनाहारा-नित्यादिषु अपि द्वितीया। अत्र क्रमं विधिम्। घर्मेत्यादि घर्मार्तत्वे सति द्रुतमविश्रम्य पाने स्नाने शीताम्बुसेविनाम्। अजीर्णाध्य-शिनां भुक्तेऽजीर्णे भुक्तानाम्। पञ्चकर्मा-पचारिणां पञ्चकर्माणि वमनविरेकनस्यनि-रूहानुवासनानि तेषु कृतेषु अपचारिणाम्। नवान्नदधिमत्स्याद्याहारादि सेविनाम्। व्यवा-यमित्यादि। अन्ने अजीर्णे विदग्धादिरूपे सति व्यवायं मैथुनं निषेविणाम्। दिवा-निद्रां निषेविणामिति भिन्नो हेतुः। धर्षयताम् अभिभवताम्। दोषदूष्यसंग्रहार्थमाह-वाता-दय इत्यादिशब्देन। त्रिष्वपि प्रतीतेषु त्रय इति पदं सर्वेषु कुष्ठेषु त्रयाणामपि वाता-दीनां दुष्टत्वबोधनार्थम्। त्वग्रसः अम्बू-लसीका। अथ संख्यामाह-अतः कुष्ठानी-त्यादि। अतः पूर्वोक्तदोषदूष्यसमुदायात्। सप्तधैकादशधेति संख्याविच्छेदपाठेन स-प्तानां महाकुष्ठत्वमेकादशानां क्षुद्रकुष्ठत्वं बोधयति ॥

दूध तथा मछली आदि परस्परविरुद्ध पदार्थोंको भक्षण करनेसे, दही तथा दूध आदि परस्पर विरुद्ध खान-पानोंके सेवन करनेसे, पतले, चिकने तथा भारी पदार्थोंके सेवन करनेसे, आती हुई वमनके वेगको रोकनेसे, अन्यान्य मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे, बहुत भोजन करके कसरत करनेसे, बहुत भोजन करके सूर्यका तथा अग्निका सन्ताप सेवन करनेसे, शीत, उष्ण, लघन और आहार इनको कुविधिसे सेवन करनेसे, पसीना, श्रम, तथा भयसे पीडित होनेपर तत्काल शीतल जलमें स्नान करनेसे अथवा शीत-लजल पीनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे अथवा भोजनपर भोजन करनेसे, वमन, विरेचन, नस्य, निरूह और अनु-वासनवस्ति इनके बिगड जानेसे, नवीन अन्नके भक्षण करनेसे, दहीके सेवनसे, मछली आदिके खानेसे, खारी पदार्थोंके सेवन करनेसे, खट्टे पदार्थोंके सेवन करनेसे, उडदको सेवन करनेसे मूलीको सेवन करनेसे, पक्वान्न अथवा मिष्टान्नके सेवन करनेसे, तिलके सेवन करनेसे, दूध तथा गुडको विशेष खानेसे, विदग्ध आदिके अजीर्ण होनेपर मैथुन करनेसे, दिनमें सोनेसे, ब्राह्मणोंका और गुरुजनोंका अपमान करनेसे और पापकर्म करनेसे कोढ उत्पन्न होतेहैं। वात पित्त और कफ यह तीनोदोष रस, रुधिर, मांस, तथा जलको दूषित करकै कोढको उत्पन्न करतेहै। वात, पित्त, कफ, रस, रुधिर, मांस तथा लसीका इन सातोंके बिगडनेसे कोढ उत्पन्न होताहै। वात, पित्त और कफ यह तीनों दोष और रस, रुधिर, मांस तथा लसीका यह चार दूष्य कोढके कारण हैं। सर्व प्रकारके कोढोंमें वातादि तीनोंदोष दुष्ट होते हैं ऐसा जानना। ऊपर कहेहुए सातो पदार्थोंके समुदायसे सात प्रकारका और ग्यारह प्रकारका कोढ उत्पन्न होताहै। 'अठारह' ऐसा नहीं कहा क्योंकि सात और ग्यारह अलग अलग संख्या कही वह ऊपरसे जाननी। सात बडे कोढ और ग्यारह क्षुद्र कोढ हैं ॥ १-६ ॥

अथ सप्तमहाकुष्ठनामानि।

पूर्वत्रिकं तथा सिध्मं ततः काकणकं तथा॥ पुण्डरीकर्क्षजिह्वाके महाकुष्ठानि सप्त च॥ ७॥

पूर्वत्रिकं कपालौदुम्बरमण्डलाख्यम्। सिध्मशब्दोऽकारान्तो नपुंसकः। ननु कथं सिध्मस्य महाकुष्ठेषु गणना? सुश्रुतेन क्षुद्रकुष्ठेषु उक्तत्वात्। "धातुप्रविष्टं सिध्मं तु स्यान्महाकुष्ठमेव च॥" एवंविधस्य सिध्मस्य चरकेण महाकुष्ठेषु दर्शितत्वात्। एषां महाकुष्ठत्वञ्च शीघ्रमुत्तरोत्तरधात्ववगाहनात्, उल्वणदोषजन्यत्वाच्चिकित्साबाहुल्याच्च॥

कपाल, औदुम्बर, मण्डल, सिध्म, काकणक, पुण्डरीक और ऋक्षजिह्वक यह सात बडे कोढ हैं।

शंका—सुश्रुतमें सिध्मको क्षुद्र कोढोंमे गिना है फिर आपने यहा सिध्मको बडे कोढोंमें कैसे लिखा है?

समाधान—जो सिध्म धातुओंमें प्राप्त होगया हो वह महाकुष्ठ कहा जाता है। क्योंकि चरकऋषि ऐसे सिध्मको बडे कोढोंमे गिनता है।

ऊपर जो सात कोढ बडे कहे हैं उनका कारण यह है कि, उत्तरोत्तर धातुओंमें शीघ्र प्रवेश करतेहैं, उल्वण दोषसे उत्पन्न होतेहैं और उनकी चिकित्सा भी अनेक हैं॥ ७॥

अथैकादश क्षुद्रकुष्ठनामानि।

एककुष्ठं स्मृतं पूर्वं गजचर्म ततः स्मृतम्॥ ततश्चर्मदलं प्रोक्तं ततश्चापि विचर्चिका॥ ८॥ विपादिकाभिधा सैव पामा कच्छूस्ततः परम्॥ दद्रूविस्फोटकिटिभालसकानि च वेष्टितम्॥ क्षुद्रकुष्ठानि चैतानि कथितानि भिषग्वरैः॥ ९॥

ननु दद्रूरोगस्य कथं क्षुद्रकुष्ठेषु गणना? सुश्रुतेन महाकुष्ठेषु उक्तत्वात्। उच्यते—असिता अवगाढमूला दद्रूः सुश्रुतेन महाकुष्ठेषु उक्ता। असितेतरा अनवगाढमूला दद्रूः क्षुद्रकुष्ठमेव। एवंविधा दद्रूश्चरकेण क्षुद्रकुष्ठेषु दर्शितत्वात्॥

एककुष्ठ, गजचर्म, चर्मदल, विचर्चिका, विपादिका, पामा, कच्छू, दद्रू, विस्फोट, किटिभ, अलसक और शतारु इनको उत्तम वैद्य क्षुद्रकुष्ठ कहतेहैं। विचर्चिका नामक कुष्ठ जो पांवमें होय तो वह विपादिका कहा-जाताहै, इस कारण क्षुद्र कोढोंकी सख्या यह ग्यारहही रहती है।

शंका—सुश्रुत दद्रूको बडे कोढोंमें मानताहै फिर आपने इसको क्षुद्रकोढोंमें कैसे गिना है?

समाधान—काले दृढ जडवाले दद्रूको सुश्रुतने बडे कोढोंमें गिनाहै, जो दद्रू कालेके सिवाय दूसरा होय और दृढ जडवाला न होय तो वह क्षुद्र कोढही जानना। चरक भी इसप्रकारके दद्रूको क्षुद्रकुष्ठोंमें मानता-है॥ ८॥ ९॥

अथ कुष्ठानां त्रिदोषजत्वेनैकस्यापि दोषस्य उल्वणतया सप्तधात्वमाह।

कुष्ठानि सप्तधा दोषैः पृथग्द्वन्द्वैः समागतैः॥ सर्वेष्वपि त्रिदोषेषु व्यपदेशोऽधिकत्वतः॥ १०॥

सर्वेषु अपि त्रिदोषेषु व्यपदेशः कापालादिसंज्ञास्तेषामष्टादशरूपं यदधिकत्वं ततः कुष्ठानि सप्तधा। कैः दोषैः कथम्भूतैः पृथग्द्वन्द्वैः समागतैः संगतैः सम्मिलितैरिति यावत्। अस्य अयमर्थः। किमपि कुष्ठं वातोल्वणं किमपि पित्तोल्बणं किमपि कफोल्बणं किमपि वातश्लेष्मोल्बणं किमपि पित्तश्लेष्मोल्बणम् किमपि वातपित्तोल्बणं किमपि त्रिदोषोल्वणमिति॥

यद्यपि तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुए कपाल आदि नाम हैं तथापि वे नाम अठारह होनेके कारण उन उन दोषोंकी उल्वणताके अनुसार कोढ सात प्रकारके माने हैं, जैसे कि कोई कोढ वायुकी उल्वणतावाला होता-है, कोई कोढ पित्तकी उल्वणतावाला होताहै, कोई

कोढ कफकी उल्वणतावाला होताहै, कोई कोढ वात तथा कफकी उल्वणतावाला होताहै, कोई कोढ पित्त तथा कफकी उल्वणतावाला होताहै, कोई कोढ वायुकी तथा पित्तकी उल्वणतावाला होताहै, और कोई कोढ तीनो दोषोंकी उल्वणतावाला होताहै ॥ १० ॥

अथ कुष्ठपूर्वरूपम् ।

अतिश्लक्ष्णः स्वरस्पर्शः स्वेदास्वेदविवर्णता॥ दाहः कण्डूस्त्वचि स्वापस्तोदः कोठोन्नतिः क्रमः ॥ ११ ॥ व्रणानामधिकं शूलं शीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः ॥ रूढानामपि रूक्षत्वं निमित्तेऽल्पेऽपि कोपनम् ॥ रोमहर्षोऽसृजः कार्ष्ण्यं कुष्ठलक्षणमग्रजम् ॥१२॥

अतिश्लक्ष्णः अतिमृदुः । अथवा घर्मादिप्रसंगेऽपि स्वेदाभावः । त्वचि स्वापस्पर्शाज्ञता । शीघ्रोत्पत्तिः व्रणानाम्

दूषयन्ति श्लथीकृत्य निश्चलत्वादितस्ततः॥ त्वचः कुर्वन्ति वैवर्ण्यं दोषाः कुष्ठमुशन्ति तत् ॥ १३ ॥

जिस स्थानमे कोढ होनेको हो उस जगह छूनेसे कोमल या चिकना, अत्यत खरखरा-मालूम होय, पसीना आवे, अथवा धूप आदि पसीनेके कारण होनेपर भी पसीना नहीं आवे, दाह, खुजली, चमडेका स्पर्श नहीं मालूम हो, भोकनेसरीखी पीडा, विषैल मक्खीके काटने सरीखे चकत्ते हो, ग्लानि, शूलकी अधिकता, व्रणोंका तत्काल उत्पन्न होना, व्रणोका बहुत दिनोंतक रहना, व्रणोंके भरनेपर अत्यत रूखापन हो, अल्पकारणोसे व्रणोका कोप हो, रोमांचोका हो आना और रुधिर काला होजाय, ये कोढके पूर्व लक्षण जानने । दोषोंके स्थिर होनेसे चमडेको शिथिल करकै चारों ओरसे त्वचाके रगको बदल देताहै उसको कोढ कहते हैं ॥ ११–१३ ॥

अथ दोषोल्वणतया कुष्ठोत्पत्तिनामानि ।

पातेन कुष्ठं कापालं पित्तेनौदुम्बरं कफात्॥ मण्डलाख्यं विचर्चीं च ऋक्षाख्यं वातपित्ततः ॥ १४ ॥ चर्मैककुष्ठकिटिभसिध्मालसविपादिकाः ॥ वातश्लेष्मोद्भवाः पित्तकफाद्दद्रूशतारुषी ॥ १५ ॥ पुण्डरीकं सविस्फोटं पामा चर्मदलं तथा॥ सर्वैरेवोल्वणैर्दोषैराहुः काकणकं बुधाः ॥ १६ ॥

विचर्चीं च कफादित्यन्वयः । पुण्डरीकं सविस्फोटं पामा चर्मदलं तथा पित्तकफादित्यन्वयः ॥

वातकी उल्वणतासे कपाल कोढ उत्पन्न होताहै, पित्तकी उल्वणतासे औदुम्बर मडल और विचर्चिका कोढ उत्पन्न होताहै, वायु तथा कफकी उल्वणतासे ऋक्षजिह्व कोढ उत्पन्न होताहै, वात तथा कफकी उल्वणतासे गजचर्म, एककुष्ठ, किटिभ, सिध्म, अलसक और विपादिका कोढ उत्पन्न होताहै, पित्तकी तथा कफकी उल्वणतासे दद्रू, शतारु, पुडरीक, विस्फोट, पामा तथा चर्मदल कोढ उत्पन्न होताहै और तीनों दोषोंकी उल्वणतासे काकणक कोढ उत्पन्न होताहै ॥ १४–१६ ॥

अथ महाकुष्ठेषु प्रथमं कापालकुष्ठलक्षणम् ।

कृष्णारुणकपालाभं यद्रूक्षं परुषं तनु ॥ कापालं तोदबहुलं तत्कुष्ठं विषमं स्मृतम् १७

किञ्चित् कृष्णाः किञ्चित् अरुणाः ये कपालाः स्फुटितमृत्पात्रखण्डाः खपरा इति यावत् तद्वर्णं परुषं खरस्पर्शम् । तनु तनुत्वक्कापालं कपालसंज्ञं,विषमं दुश्चिकित्स्यम् ॥

कुछेक काला तथा कुछेक लाल, मट्टीके खीपडेकी समान, रूखा, स्पर्शमें खरदरा, पतली त्वचावाला और अत्यंत व्यथा युक्त जो कोढ उत्पन्न होताहै उसको कपालकुष्ठ कहते हैं । यह कोढ विषम है इसकी चिकित्सा कठिन है ॥ १७ ॥

अथोदुम्बरकुष्ठलक्षणम् ।

उदुम्बरफलाभासं कुष्ठमौदुम्बरं वदेत् ॥ रुग्दाहरागकण्डूभिः परीतं रोमपिञ्जरम् ॥ १८ ॥

औदुम्बरफलाकारम् ॥

जो कोढ गूलरके फलकी समान, पीले रोमयुक्त और व्यथासे, दाहसे, लालीसे और खुजलीसे व्याप्त होय उसको औदुम्बर कोढ कहते हैं ॥ १८ ॥

अथ मंडलकुष्ठलक्षणम् ।

श्वेतरक्तं स्थिरं स्त्यानं स्निग्धमुत्सन्नमण्डलम् ॥ कृच्छ्रमन्योन्यसंसक्तं कुष्ठं मण्डलमुच्यते ॥ १९ ॥

श्वेतरक्तं किञ्चिच्छ्वेतं किञ्चिद्रक्तम् । स्थिरं चिकित्सां विना अविनाशि । स्त्यानमार्द्रम् । स्निग्धं सस्वेदम् । उत्सन्नमण्डलम् उद्गतमण्डलम् । कृच्छ्रं कष्टसाध्यम् । अन्योन्यसंसक्तं परस्परमिलितम् ॥

जो कोढ कुछेक सफेद तथा कुछेक लाल हो, चिकित्साके विना नष्ट न हो, गीला हो, पसीने युक्त हो, मंडलकी समान आकारवाला हो और परस्पर मिला हो, उसको मंडल कोढ कहते हैं यह कोढ कष्टसाध्य है ॥ १९ ॥

अथ सिध्मकुष्ठलक्षणम् ।

श्वेतताम्रं तनु यद्रजो घृष्टं विमुञ्चति ॥ प्रायेणोरसि तत्सिध्ममलाबुकुसुमोपमम् ॥ २० ॥

श्वेतताम्रं श्वेतं ताम्रम् । तनु त्वक् । प्रायेणोरसि प्रायःशब्दादन्यत्रापि बोद्धव्यम् ॥

जो कोढ सफेदी लिये लाल रंगका हो, पतली त्वचावाला हो, घिसनेसे या रगडनेसे उसमेसे धूलकी समान छोटे छोटे परमाणु गिरें और तोम्बीके फूलकी समान होय उसको सिध्म कहते हैं । यह कोढ विशेष करके छातीमें होता है और किसी समय अन्य अंगोंमें भी होता है॥२०॥

अथ काकणकुष्ठलक्षणम् ।

यत्काकणन्तिकावर्णमपाकं तीव्रवेदनम् ॥ त्रिदोषलिंगं तत्कुष्ठं काकणं नैव सिध्यति ॥ २१ ॥

काकणन्ती गुञ्जा गुञ्जावर्णत्वेन मध्ये कृष्णमन्ते रक्तम् । अथवा मध्ये रक्तं अन्ते कृष्णम् अपाकः स्वभावात् । त्रिदोषलिंगम् सर्वेषां कुष्ठानां त्रिदोषजत्वेऽपि उल्वणदोषत्रयलिगम् ॥

जो कोढ चौंटलीकी समान वर्णवाला अर्थात् बीचमें काला और अंतमें लाल हो, स्वाभाविक रीतिसे नहीं पकनेवाला, तीव्रवेदनायुक्त और त्रिदोषोंकी उल्वणताके लक्षणोंवाला हो उसको काकण कहते हैं ॥ २१ ॥

अथ पुण्डरीककुष्ठलक्षणम् ।

तच्छ्वेतं रक्तपर्यन्तं पुण्डरीकदलोपमम् ॥ सरागश्चैव सोत्सेधं पुण्डरीकं कफोल्वणम् ॥ २२ ॥

पुण्डरीकदलोपमं पुण्डरीकं श्वेतकमलं तत्पत्रोपमम् । सरागश्चैव । अत एव श्वेतं रक्तपर्यन्तम् अन्ते रक्तम् । सरागमिति अन्तलौहित्याधिक्यबोधनार्थम् । सोत्सेधम् उद्गतम् ॥

जो कोढ सफेद कमलके पत्रकी समान सफेद, अंतमें अत्यन्त लाल, ऊचा और कफकी उल्वणतावाला हो उसको पुंडरीक कहते हैं ॥ २२ ॥

अथर्क्षजिह्वककुष्ठलक्षणम् ।

कर्कशं रक्तपर्यन्तमन्तःश्यावं सवेदनम् ॥ यदृक्षजिह्वासंस्थानमृक्षजिह्वं तदुच्यते २३॥

रक्तपर्यन्तम् अन्ते रक्तम् । अन्तः श्यावं मध्ये धूम्रवर्णम् । ऋक्षजिह्वासंस्थानम् । ऋक्षो भल्लूकस्तस्य जिह्वाकृतिः ॥

जो कोढ कठिन, अंतमें लाल, मध्यमें धुयेकी रंगकी समान, वेदनायुक्त और रीछकी जीभकी समान वर्णवाला हो उसको ऋक्षजिह्वक कहते हैं ॥ २३ ॥

अथैककुष्ठगजचर्मनामकयोः क्षुद्रकुष्ठयोर्लक्षणम् ।

अस्वेदनं महावास्तु यन्मत्स्यशकलोपमम् ॥ तदेककुष्ठं चर्माख्यं बहलं गजचर्मवत् ॥ २४ ॥

महावास्तु महास्थानम् । मत्स्यशकलोपमम् । अत्र शकलशब्देन लक्षणया त्वगुच्यते । तेन चक्राकारमभ्रकपत्रसदृशं भवति । एककुष्ठमिति क्षुद्रकुष्ठेषु गणितत्वात् चर्माख्यं गजचर्माख्यम् बहलं स्थूलम् । गजचर्मवद्रूक्षं कृष्णं च ॥

जो कोढ पसीनारहित, वडे घेरदार और मछली की त्वचाकी समान हो, चक्राकार हो और अभ्रकके पतरोकी समान हो उसको एककुष्ठ कहतेहैं । यह कोढ क्षुद्र कोढोमे मुख्य होनेसे एककुष्ठ कहाजाताहै । जो कोढ गाढा और हाथीकी त्वचाकी समान रूखा तथा काला हो उसको गजचर्म कहतेहैं ॥ २४ ॥

अथ चर्मदलनामकक्षुद्रकुष्ठलक्षणम् ।

रक्तं सशूलं कण्डूमत्सस्फोटं दलयत्यपि ॥ तच्चर्मदलमाख्यातं स्पर्शस्यासहनश्च यत् ॥ २५ ॥

दलयत्यपि विदारयत्यपि चर्मेति शेषः ।

जो कोढ लाल, शूलयुक्त तथा फोडोंसे व्याप्त, स्पर्शको नहीं सहसके और चमडीको फाडनेवाला होय उसको चर्मदल कहतेहैं ॥ २५ ॥

अथ विचर्चिकानामकक्षुद्रकुष्ठलक्षणम् ।

सकण्डूः पिडका श्यावा बहुस्रावा विचर्चिका ॥ २६ ॥

पिडका क्षुद्रपिडका । ननु क्षुद्रकुष्ठानां कथमेकादशत्वं विपादिकाया द्वादशत्वसम्भवात् । उच्यते—विचर्चिकेव पादयोर्भवति विपादिका तेन न संख्यातिरेकः । अत एवाह भोजः—

दोषाः प्रदूष्य त्वङ्मांसं पाणिपादसमाश्रिताः ॥ पिडकां जनयन्त्याशु दाहकण्डुसमन्विताम् ॥ दाल्यते त्वक् खरा रूक्षा पाण्योर्ज्ञेया विचर्चिका ॥ पादे विपादिका ज्ञेया स्थानान्यत्वाद्विचर्चिका ॥ २७ ॥

दाल्यते विदार्यते । केचिद्विचर्चिकातो विपादिकां भिन्नामाहुः ॥

खुजलीयुक्त, कलौंस लिये और बहुत स्राववाली जो छोटी छोटी फुंसी होय उसको विचर्चिका कहतेहैं ॥

गिनती करनेसे क्षुद्रकोढ बारहवां होताहै फिर आपने यहां क्षुद्रकोढ ग्यारहवां क्यो गिना है ॥

पावमे उत्पन्न हुई विचर्चिका ही विपादिका कहीजातीहै इसकारण सख्या नही बढती । यहांपर भोज कहताहै "रूखे होनेपर हाथोकी खाल फटजातीहै, उसको विचर्चिका कहतेहैं और पावकी जो त्वचा फटजाती है वह विपादिका कहीजाती है" ॥

विचर्चिका और विपादिका इनके स्थानोमें भेद है किंतु स्वरूपमे कुछ भेद नहीहै । कितनेक आचार्य तो विपादिकाको विचर्चिकासे भिन्न कहतेहैं ॥२६॥ २७ ॥

अथ विपादिकानामकक्षुद्रकुष्ठलक्षणम् ।

वैपादिकं पाणिपादस्फुटनं तीव्रवेदनम् ॥ २८ ॥

पाणिपादस्फुटनं पाण्योः पादयोश्च स्फुटनं विदारणं येन तत् ॥

हाथ तथा पाव फटजायँ तथा तीव्र वेदना होय उसको विपादिका कहतेहैं ॥ २८ ॥

अथ पामालक्षणम् ।

सूक्ष्मा बह्व्यः पिडकाः स्राववन्त्यः पामेत्युक्ताः कण्डुमत्यः सदाहाः ॥ २९ ॥

पिडकाः पीडयन्तीति पिडका इति क्षिपकादित्वान्निपात्यते ॥

स्रावयुक्त, भयकर दाहयुक्त, छोटी छोटी और खुजलीयुक्त वाहरकी फुंसी होय उसको पामा कहते है फुंसी पीडा जो करती है इस कारण इनको पिडका कहतेहैं ॥ २९ ॥

अथ कच्छुनामकक्षुद्रकुष्ठलक्षणम् ।

सैव स्फोटैस्तीव्रदाहैरुपेता ज्ञेया पाण्योः कच्छुरुग्रा स्फिजोश्च ॥ ३० ॥

सैव पामा । स्फोटैः महद्भिः । स्फिजोः प्रोथयोः ।

जो पामा ही तीव्रदाह युक्त फोडेसे व्याप्त होय, हाथोंमें तथा कूलेमें उत्पन्न होय और उग्र होय उसको कच्छू कहतेहैं ॥ ३० ॥

अथ दद्रुनामकक्षुद्रकुष्ठलक्षणम् ।

सकण्डूरागपिडकं दद्रूमण्डलमुद्गतम्॥ ३१॥

दद्रूमण्डलरूपेण उत्पतितः उद्गतम् उच्छूनम् ॥

खुजलीसहित, लाल फुसियोंयुक्त और उत्पन्न होतेही ऊंचा होजाय, मडलकी समान गोल होय उसको दद्रु कहते हैं ॥ ३१ ॥

अथ विस्फोटनामकक्षुद्रलक्षणम् ।

स्फोटाः श्यावारुणाभासा विस्फोटाः स्युस्तनुत्वचः ॥ ३२ ॥

कलौंस लिये लाल और पतलीत्वचावाले जो फोडे उत्पन्न होतेहैं उनको विस्फोटक कहतेहैं ॥ ३२ ॥

अथ किटिभकुष्ठलक्षणम् ।

श्यामं किणखरस्पर्शं परुषं किटिभं स्मृतम् ॥ ३३ ॥

किणखरस्पर्शम् किणः शुष्कव्रणस्थानं तद्वत्कर्कशस्पर्शम् । परुषं रूक्षम् ।

किटिभकोढ काला, सूखाहुआ, व्रणके स्थानकी समान, छूनेमें खरदरा और रूखा होता है ॥ ३३ ॥

अथालसकनामकक्षुद्रकुष्ठलक्षणम् ।

कण्डूमद्भिः सरागैश्च गण्डैरलसकं चितम् ॥ ३४ ॥

गण्डैः महापिडकाभिः चितं वेष्टितम् ॥

खुजलीयुक्त तथा लालगडोंसे (वडी फुसियोंसे) व्याप्त जो होय वह अलसक कहाजाताहै ॥ ३४ ॥

अथ शतारुकुष्ठलक्षणम् ।

रक्तश्यावं सदाहार्ति शतारुः स्याद्बहुव्रणम् ॥ ३५ ॥

लाली लिये कालापन हो, दाहकी पीडायुक्त और बहुत व्रणोंयुक्त जो होय उसको शतारु कहतेहैं ॥ ३५ ॥

अथ सप्तधातुगतकुष्ठलक्षणम् ।

तत्र रसगतकुष्ठलक्षणम् ।

त्वक्स्थे वैवर्ण्यमङ्गेषु कुष्ठे रौक्ष्यञ्च जायते ॥ त्वक्स्वापो रोमहर्षश्च स्वेदस्यातिप्रवर्तनम् ॥ ३६ ॥

त्वक्छब्देन अत्र रस उच्यते । धातुप्रस्तावात् त्वक्स्थत्वाच्च त्वक्स्वापः स्पर्शाज्ञत्वम् । त्वक्स्वाप इत्यादिकं केचिद्रक्तगतस्य लिंगं मन्यन्ते ॥

जो कोढ रसमें प्राप्त होय तो अगोमें विवर्णता और रूक्षता होतीहै, त्वचाका स्पर्शज्ञान नहीं रहता, रोमाञ्च होआतेहैं और पसीना बहुत आने लगताहै । कितने एक वैद्य तो ऐसा मानतेहैं कि त्वचाके स्पर्शका ज्ञान नहीं रहना रोमाचोंका खडा होना और पसीनेका बहुत आना यह रुधिरमें प्राप्तहुए कुष्ठके लक्षण हैं ॥ ३६ ॥

रुधिरगतकुष्ठलक्षणम् ।

कण्डूर्विपूयकश्चैव कुष्ठे शोणितसम्भवे ॥ ३७ ॥

विपूयकः विशेषेण पूयः ॥

जो कोढ रुधिरमें प्राप्त होय तो खुजली और राध अधिक होतीहै ॥ ३७ ॥

अथ मांसगतकुष्ठलक्षणम् ।

बाहुल्यं वक्त्रशोषश्च कार्कश्यं पिडकोद्गमः ॥ तोदः स्फोटः स्थिरत्वञ्च कुष्ठे मांससमाश्रिते ॥ ३८ ॥

बाहुल्यं कुष्ठस्य पुष्टिः । पिडकोद्गमः क्षुद्रपिडकोद्गमः । स्फोटः बृहत्पिडका । स्थिरत्वमसञ्चारित्वम् ॥

जो कोढ मांसमें प्राप्त होय तो मास पुष्ट दीखताहै, मुखमें शोष, शरीरमें कर्कशता, फुडियोंका निकलना, सुई चुभोनेसरीखी पीडा, बडे २ फोडोंका होना और स्थिरता ये लक्षण होतेहैं ॥ ३८ ॥

अथ मेदोगतकुष्ठलक्षणम् ।

कौण्यं गतिक्षयोऽङ्गानां सम्भेदः क्षतसर्पणम् ॥ मेदःस्थानगते लिंगं प्रागुक्तानि तथैव च ॥ ३९ ॥

कौण्यं हस्तनाशः । अंगानां सम्भेदः

गभंगः । क्षतसर्पणं क्षतप्रसरणम् । पूर्वो-
ानि रक्तमांसगतलिंगानि ।

जो कोढ मेदमे प्राप्त होताहै तो वह मनुष्य लूला जाताहै, चलनेकी शक्ति नष्ट होजातीहै, अंग ा होजाते हैं, घाव फैल जातेहैं, और रुधिरमें तथा ंसमे प्राप्त हुए कोढोंके जो लक्षण ऊपर कहे है वे सब तेहै ॥ ३९ ॥

अथास्थिमज्जगतकुष्ठलक्षणम् ।

नासाभंगोऽक्षिरागश्च क्षतेषु क्रिमिसम्भवः ॥ स्वरोपघातः पीडा च भवेत्कुष्ठेऽस्थिमज्जगे ॥ ४० ॥

जो कोढ, अस्थियोंमे और मज्जामे प्राप्त होताहै ा नाक बैठजातीहै, आंखै लाल होजातीहै, घावमे ोडे पडजातेहै, गला बैठजाताहै और पीडा तीहै ॥ ४० ॥

अथ शुक्रगतकुष्ठलक्षणम् ।

दम्पत्योः कुष्ठबाहुल्याद्दुष्टशोणितशुक्रयोः ॥ यदपत्यं तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितम् ॥ ४१ ॥

ननु शुद्धशोणितशुक्रयोरेव दम्पत्यो-
र्भसम्भवः । दुष्टशोणितशुक्रयोः कथम्
अपत्योत्पत्तिः यत आह सुश्रुतः–

कामान्मिथुनसंयोगे शुद्धशोणितशुक्रजः ॥ गर्भः सञ्जायते नार्याः स जातो बाल उच्यते ॥ ४२ ॥

अथ अन्यच्च । वातादिदुष्टरेतसोऽपत्योत्पादनेऽसमर्था इति । उच्यते गर्भोऽत्र शुद्धो बोद्धव्यः । अशुद्धगर्भोऽपि दुष्टशोणितशुक्रयोरपि भवति । अन्धबधिरादीनां सम्भवात् । शोणितम् आर्तवम् । कुष्ठितं कुष्ठं सञ्जातमस्येति तारकादित्वादितच् । शुक्रार्तवगतं कुष्ठमपत्येन व्यज्यते इति तात्पर्यम् ।

कुष्ठकी बाहुल्यतासे जिनका रज और वीर्य दूषित हुआ होय ऐसे स्त्रीपुरुषोंके समागमसे जो सन्तान होताहै वह कोढी होतीहै ॥

शंका–जिनका रज और वीर्य शुद्ध होताहै ऐसी स्त्री-पुरुषोसे गर्भका रहना सम्भव है, जिनका रज और वीर्य दूषित होता है उनके सन्तान नही होती, सुश्रुतनेभी कहा है कि " कामदेवके वेगसे स्त्री पुरुषोके संयोग होनेपर स्त्रीके शुद्धरजसे और पुरुषके शुद्धवीर्यसे गर्भ उत्पन्न होताहै और वह गर्भ जन्मके पश्चात् बालक कहाजाता-है । "

समाधान–सुश्रुतके वचनमे तथा अन्यान्य वचनोमें जो गर्भ कहा है वह शुद्ध गर्भ जानना । अशुद्ध रज और अशुद्ध वीर्यसे अशुद्ध गर्भ रहताहै किन्तु गर्भ सम्भव न होना ऐसा नही होता । क्योंकि बहरे, अन्धे, नकटे आदि गर्भकी उत्पत्ति देखी जातीहै । तात्पर्य यह है कि " वीर्यमे तथा रजमें प्राप्तहुआ कुष्ठ सन्तानको कुष्ठी करता-है " ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अथ कुष्ठे वातादिदोषोल्वणताचिह्नम् ।

खरं श्यावारुणं रूक्षं वातकुष्ठं सवेदनम् ॥ पित्तात्प्रकुपितं दाहरागस्रावान्वितं मतम् ॥ ४३ ॥ कफात्क्लेदं घनं स्निग्धं सकण्डूशैत्यगौरवम् । द्विलिंगं द्वन्द्वजं कुष्ठं त्रिलिंगं सान्निपातिकम् ॥ ४४ ॥

खरं कर्कशम् । श्यावारुणं श्यावं वा अरुणं वा । प्रकुपितं पूतिक्लेदबहुलम् । क्लेदम् आर्द्रतायुक्तम् । घनं पुष्टम् ॥

वातकी उल्वणतावाला कोढ, खरखरा, श्याम अथवा लाल, रूखा और वेदनायुक्त होताहै । पित्तकी उल्वणतावाला कोढ, दुर्गन्धित, अत्यन्त गीला और दाह, लाली तथा स्रावसे सयुक्त होताहै । कफकी उल्वणतावाला कोढ गीलापनयुक्त, पुष्ट, स्निग्ध, खुजलीसहित, शीतलता लिये और भारीपन लिये होता है । जो उपरोक्त लक्षणोमेंसे दो प्रकारके लक्षणोसे युक्त हो उसको दो दोषोकी उल्वणतावाला जानना । जो तीनप्रकारके लक्षणो युक्त होय उस कुष्ठको तीनो दोषोंकी उल्वणतावाला जानना ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अथ कुष्ठसाध्यासाध्यता ।

साध्यं त्वग्रक्तमांसस्थं वातश्लेष्माधिकञ्च

यत् ॥ मेदोगं द्वन्द्वजं याप्यं वर्ज्यं मज्जास्थिसंश्रितम् ॥ कृमितृड्दाहमन्दाग्निसंयुक्तं यत्रिदोषजम् ॥ ४५ ॥

वातश्लेष्माधिकश्च यदेतेन सिध्मैककुष्ठगजचर्मविपादिकाकिटिभालसकानि साध्यानि। मज्जागतं शुक्रगतमपि असाध्यम् । कृमिर्बाह्योऽपि वर्ज्य इत्यन्वयः ॥

रसमें, रुधिरमें और मांसमें प्राप्त हुआ और वायु तथा कफकी उल्वणतावाला कोढ साध्य है । मेदमें प्राप्त हुआ अथवा दो दोषोंकी उल्वणतावाला कोढ याप्य है। मज्जामें और अस्थियोंमें प्राप्त हुआ, दाह युक्त, मद अग्निवाला और त्रिदोषकी उल्वणतावाला कोढ असाध्य है,इस कारण वैद्य इसकी चिकित्सा न करे । कृमियोंको उत्पन्न करने वाला बाहरका कोढ़ भी असाध्य है । वायु तथा कफकी उल्वणतावाला कोढ भी साध्य है यह जो कहा सो ऊपरसेभी सिद्ध होताहै कि सिध्म, एककुष्ठ, गजचर्म, विपादिका, किटिभ और अलसक यह वायु तथा कफकी उल्वणतावाले होनेसे साध्य हैं । मज्जामें प्राप्त हुआ और वीर्यमें प्राप्त हुआ भी कोढ असाध्य है ॥ ४५ ॥

अथ कुष्ठारिष्टम् ।

प्रभिन्नं प्रस्रुतांगञ्च रक्तनेत्रं हतस्वरम् ॥ पञ्चकर्मगुणातीतं कुष्ठं हन्तीह कुष्ठिनम् ॥ ४६ ॥

प्रभिन्नं विदीर्णम् । हतस्वरं घर्घरस्वरम् । पञ्चकर्मगुणातीतमसञ्जातवमनादिपञ्चकर्मगुणम् ॥

फटेहुए अगवाला, टपकता हुआ, लाल नेत्रोंवाला, जिसका स्वरभग हो (आवाज मरगई हो) और जिसके वमन विरेचनादि पचकर्म कुछ भी गुण न करे उसको कुष्ट नष्ट करदेताहै ॥ ४६ ॥

अथ कुष्ठनिदानसंभूतस्य श्वित्रस्य भेदं किलासमाह ।

कुष्ठैकसम्भवं श्वित्रं किलासं चारुणं भवेत् ॥ निर्दिष्टमपरिस्रावि त्रिधातूद्भवसंश्रयम् ॥ ४७ ॥

कुष्ठैकसम्भवं कुष्ठेन सम्भवो निदानं यस्य तत् । अथ श्वित्रस्य भेदमाह—किलासं चारुणं भवेच्छ्वित्रमेव रक्तमांसाश्रयात्किलासमरुणश्च भवेदित्यर्थः । ननु कुष्ठस्य श्वित्रस्य च को भेद इत्यत आह निर्दिष्टमपरिस्रावीति । श्वित्रमपरिस्रावि भवति कुष्ठन्तु स्रावि । अथ च त्रिधातूद्भवसंश्रयमिति श्वित्रम् । त्रयो धातवो वातपित्तकफास्तेभ्यः पृथग्भूतेभ्य उद्भवो यस्य तत् । अथ त्रयो धातवो रक्तमांसमेदांसि संश्रयोऽधिष्ठानं यस्य तत् । कुष्ठन्तु सान्निपातिकं सर्वधातुगतं भवतीति भेदः ॥

जो निदान कोढका कहा है वही निदान श्वित्र कोढ का भी जानना । श्वित्रज रुधिरके आश्रयसे किलास कहाजाताहै और मासके आश्रयसे अरुण कहाजाताहै इसकारण किलास और अरुण भी श्वित्रका भेद है। कोढ टपकताहै और श्वित्र नही टपकताहै, कोढ वात पित्त और कफ इन तीनो दोषोंके प्रकोपसे होताहै और श्वित्र एकदोषसे होताहै। कोढ रसादि सम्पूर्ण धातुओंमें रहताहै और श्वित्र रुधिर मास तथा मेदामें रहताहै । इतनाही श्वित्रमें और कोढमे अन्तरहै ॥ ४७ ॥

अथ दोषभेदेन लक्षणभेदः ।

वाताद्रूक्षारुणं पित्तात्ताम्रं कमलपत्रवत् ॥ सदाहं रोमविध्वंसि कफाच्छ्वेतं घनं गुरु ॥ ४८ ॥ सकण्डूकं क्रमाद्रक्तमांसमेदःसु चादिशेत् ॥ वर्णेनैवेदृगुभयं कुष्ठं तच्चोत्तरोत्तरम् ॥ ४९ ॥

अरुणमीषल्लोहितम् । कमलपत्रवदित्यनेन मध्ये श्वेतमन्ते लोहितं बोधयति । घनं पुष्टम् । क्रमाद्रक्तमांसमेदःसु च आदिशेत् । तथा च चरकः—

अरुणं रक्तगे वाते ताम्रं पित्ते पलं गते ।
श्वेतं श्लेष्माणि मेदःस्थे श्वित्रं कुष्ठं परापरमिति ॥ ५० ॥

उभयं द्विविधमपि श्वित्रं वर्णेन ईदृगेव । अरुणं ताम्रं श्वेतश्च दोषभेदात् । द्विविधं दोषजं व्रणजश्च । तथा च भोजः—"श्वित्रं तु द्विविधं विद्याद्दोषजं व्रणजं तथा ।" इति ॥

जो वातसे श्वित्र होय तो उसमें रूक्षता तथा कुछेक लाली होतीहै तथा रुधिरमें रहताहै । जो पित्तसे उत्पन्न हुआ होय तो कमलके पत्रकी समान बीचमें सफेद तथा अन्तमें लाल होताहै । दाहयुक्त, रोगोंको नष्ट करताहै और मांसमें रहताहै । जो कफसे उत्पन्न हुआ होय तो सफेद होताहै, पुष्ट, भारी, खुजली सहित और मेदमें रहताहै । श्वित्र दोषसे उत्पन्न होय अथवा व्रणसे उत्पन्न हुआ होय तो भी दोषोंके भेदानुसार उसका वर्ण ऊपरहीकी माफिक होताहै । वातजनित श्वित्रसे पित्तजश्वित्र विशेष भारी होताहै और पित्तजनित श्वित्रसे कफजनित श्वित्र विशेष भारी होताहै । चरकभी कहता है कि "वायुसे उत्पन्न हुआ श्वित्र कुछेक लाल होताहै और रुधिरमें रहताहै । पित्तसे उत्पन्न हुआ श्वित्र अन्तमें लाल और मांसमें रहताहै । कफसे उत्पन्न हुआ श्वित्र सफेद होताहै और मेदमें रहताहै । वातजनित श्वित्रसे पित्तजनित श्वित्र और पित्तजनित श्वित्रसे कफजनित श्वित्र विशेष भारी है।" भोज भी कहताहै कि "दोषसे उत्पन्न हुआ और व्रणसे उत्पन्न हुआ ऐसे श्वित्र दो प्रकारका है" ॥ ४८–५० ॥

अथ श्वित्रस्य साध्यासाध्यता ।

अशुक्लरोमाबहलमसृग्युक्तमथो नवम् ॥
अनग्निदग्धजं साध्यं श्वित्रं वर्ज्यमतोऽन्यथा ॥ ५१ ॥

अबहलं तनु । अन्यच्च—

गुह्यपाणितलौष्ठेषु जातमप्यचिरन्तनम् ॥
वर्जनीयं विशेषेण किलासं सिद्धिमिच्छता ॥ ५२ ॥

गुह्यं मेहनम्भगश्च । तलमत्र पदतलम् । जातं सुश्रुतेनान्ते जातमिति सामान्यतो निर्दिष्टत्वात् । अपि अचिरन्तनम् । नवमपि ॥

जो श्वित्र काले रोमोंका हो, पतला हो, रुधिर युक्त हो, तत्कालका नवीन हो और अग्निदग्ध न होय वह साध्य है । इसके सिवाय अन्य श्वित्र असाध्य जानना । अन्यत्र भी कहा है कि, जो श्वित्र लिंगमें योनिमें हाथके पावके तलओंमे और होठमे उत्पन्न हुआ यदि नवीन भी होय तो भी सिद्धिकी इच्छा करनेवाला वैद्य विशेष करके उसकी चिकित्सा न करे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

अथ कुष्ठादिरोगाणां संसर्गजत्वम् ।

प्रसङ्गाद्गात्रसंस्पर्शान्निःश्वासात्सहभोजनात् ॥ एकशय्यासनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥ ५३ ॥ कण्डूकुष्ठोपदंशाश्च भूतोन्मादव्रणज्वराः ॥ औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम् ॥ ५४ ॥

प्रसंगो मैथुनम् ॥

म्रियते यदि कुष्ठेन पुनर्जातस्य तद्भवेत् ॥
अतो निन्दितरोगोऽयं कुष्ठं कष्टं प्रकीर्तितम् ॥ ५५ ॥

एतावता कुष्ठिना कुष्ठं सर्वथा प्रतिकरणीयं न तु उपेक्षणीयम् ॥

मैथुनादिससर्गसे, शरीरके स्पर्शसे, श्वासके मिलनेसे, एक शय्यापर सोनेसे, एक साथ भोजन करनेसे, रोगीके वस्त्र, रोगीकी धारणकी हुई पुष्पमाला इत्यादि और रोगीके लगाये चन्दनादिके अनुलेपन करनेसे, खुजली, कोढ, उपदंश, भूतोन्माद, व्रण, ज्वर और इसके समान अन्यान्य रोगभी एक मनुष्यसे दूसरे मनुष्यके शरीरमे प्राप्त होतेहैं ।

जो मनुष्य कुष्ठ रोगमे मरजाताहै फिर उसके दूसरे जन्ममेभी कोढ उत्पन्न होताहै, अत एव यह कुष्ठ अत्यन्त निन्दित रोग है, इस कारण यह कष्टरूप कहाजाता है । इसके कहनेका प्रयोजन यह है कि "कुष्ठरोगियोंके कोढकी सर्वथा बहुत कालतक चिकित्सा करनी चाहिये, उपेक्षा नहीं करनी चाहिये' ॥ ५३–५५ ॥

अथ कुष्ठचिकित्सा ।

वातोत्तरेषु सर्पिर्वमनं श्लेष्मोत्तरेषु कुष्ठेषु ॥

पित्तोत्तरेषु लेपः सेको रक्तस्य मोचनं श्रेष्ठम् ॥ ५६ ॥

वातके उल्वणतावाले कुष्ठमें घृतका उपयोग करे, कफकी उल्वणतावाले कुष्ठमें वमन करावे और पित्तकी उल्वणतावाले कुष्ठमें लेप करावे, सेचन कराना तथा रुधिर निकलवाना ये उत्तम हैं ॥ ५६ ॥

अथ पथ्यादिलेपः ।

पथ्याकरंजसिद्धार्थनिशावल्गुजसैन्धवैः ॥ विडंगसहितैः पिष्टैर्लेपो मूत्रेण कुष्ठनुत् ॥ ५७ ॥

अवल्गुजः वाकुचीति लोके ॥

हरड, करज, सरसों, हलदी, बावची, सैंधानिमक और वायविडंग इनको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे कुष्ठ नष्ट होजाताहै ॥ ५७ ॥

अथ सोमराज्युद्वर्त्तनम् ।

सोमराजीभवं चूर्णं शृंगवेरसमन्वितम् ॥ उद्वर्तनमिदं हन्ति कुष्ठमुग्रं कृतास्पदम् ५८॥

सोमराजी वाकुचीति लोके ॥

वाकुचीके चूर्णको अदरखके रसमें मिलाकर शरीरपर लेप करनेसे उग्र और जमाहुआ कोढ भी नष्ट होजाताहै ॥ ५८ ॥

अथ पंचनिम्बकावलेहः ।

रसायनं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा यदुदाहृतम् ॥ मार्कण्डेयप्रभृतिभिर्यत्प्राशुक्तं महर्षिभिः ॥ ५९ ॥ पुष्पकाले तु पुष्पाणि फलकाले फलानि च ॥ संगृह्य पिचुमर्दस्य त्वङ्मूलानि दलानि च ॥ ६० ॥ द्विरंशानि समाहृत्य भागिकानि प्रकल्पयेत् ॥ त्रिफला त्र्यूषणं ब्राह्मी श्वदंष्ट्रारुष्करामयः ॥ ६१ ॥ विडंगसारवाराहीलोहचूर्णं स्मृताः समाः ॥ निशाद्वयावल्गुजकं व्याधिघातः सशर्करः ॥ ६२ ॥ कुष्ठमिन्द्रयवा पाठा चूर्णमेषां तु संयुतम् ॥ खदिरासननिम्बानां घनक्काथेन भावयेत् ॥ ६३ ॥ सप्तधा पञ्चनिम्बं तु मार्कवस्य रसेन च ॥ स्निग्धः शुद्धतनुर्धीमान्योजयेत्तच्छुभे दिने ॥ ६४ ॥ मधुना तिक्तहविषा खदिरासनवारिणा ॥ लेह्यमुष्णाम्भसा वापि कोलवृद्ध्या पलं भवेत् ॥ जीर्णे तस्मिन्समश्नीयात्स्निग्धं लघु हितञ्च यत् ॥ ६५ ॥ विचर्चिकोदुम्बरपुण्डरीककपालदद्रूकिटिभालसादिकम् ॥ शतारुविस्फोटविसर्पमालाः कफप्रकोपं त्रिविधं किलासम् ॥ ६६ ॥ भगन्दरश्लीपदवातरक्तजडान्धनाडीव्रणशीर्षरोगान् ॥ सर्वान्प्रमेहान्प्रदरांश्च सर्वान्दंष्ट्राविषं मूलविषं निहन्ति ॥ ६७ ॥ स्थूलोदरः सिंहकृशोदरः स्यात्सुश्लिष्टसन्धिर्मधुनोपयोगात् ॥ सदोपयोगादपि ये दशन्ति सर्पादयो यान्ति विनाशमाशु ॥ जीवेच्चिरं व्याधिजराविमुक्तः शुभेतरश्चन्द्रसमानकान्तिः ॥ ६८ ॥

अस्य अयमर्थः । निम्बस्य पुष्पफलत्वक्पत्रमूलानि सर्वाणि समुदितानि द्विगुणानि चूर्णितानि भृंगराजस्य रसेन सप्तवारान्भावयेत् । त्रिफलादीनि पाठान्तानि समुदितानि एकभागानि चूर्णितानि खदिरासननिम्बक्काथेन भावयेत् ॥ ततः सर्वमेकीकृत्य मध्वादिनाऽवलिह्यात् ॥

ब्रह्माकी कही हुई रसायनको कहताहूं कि जिससे अनेक रोगोंका नाश होताहै, मार्कण्डेय आदि बडे बडे ऋषियोंने इसी रसायनको सेवन कियाथा । नीमके फल, फूल, छाल और पत्ते प्रत्येक दो दो तोले लेकर बारीक चूर्ण बनाकर उस चूर्णको भांगरेके रसमें सातवार भावना देवे (फूलके समय फूल ले रखने चाहिये और फलके समय फल ले रखने चाहिये) हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, ब्राह्मी, गोखुरू, भिलावे, चीता, वायविडंगका सार, वाराही कन्द, लोहेका चूर्ण, हलदी, दारुहलदी, वापची, अमलतास, मिश्री, कूठ, इन्द्रजौ और पाढ ये सब समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर उस चूर्णको खैर, विजयसार

और नीम इनके गाढे क्वाथकी भावना देवे। पश्चात् भांगरेके रसकी क्रमानुसार सात भावना देवे। फिर इस हरड आदिके चूर्णका एक भाग और पूर्वोक्त पचनिम्बका चूर्ण दो भाग लेकर इनको एकत्र करके सहतमें अथवा पंचतिक्त नामक घृतमें, वा खैरमें तथा विजयसारके क्वाथमें अथवा गरम जलके साथ शुभदिनमें चाटे, नित्य नित्य अडतालीस अडतालीस रत्ती बढाकर चार तोलेतक इस अवलेहको बढाना चाहिये। प्रथम विरेचन आदिसे शरीरको शुद्ध करके पश्चात् स्नेहनक्रियासे स्निग्ध करके फिर बुद्धिमान् पुरुष इस अवलेहका उपयोग करे। इस अवलेहके पचनेपर स्निग्ध, हलका और हितकारक अन्न भोजन करना चाहिये इस अवलेहसे विचर्चिका, औदुम्बर, पुंडरीक, कपाल, दद्रू, किटिभ, अलसक आदि, शतारु, विस्फोटक, विसर्प, गंडमाला, कफका प्रकोप, तीन प्रकारका श्वित्र, भगन्दर, श्लीपद, वातरक्त, जडता, अंधता, नाडीव्रण, मस्तककी पीडा, सर्वप्रकारके प्रमेह, सर्वप्रकारके प्रदर सर्वप्रकारके जंगम और स्थावर विष, ये सब नष्ट होजातेहैं। इस अवलेहको सहतमें मिलाकर चाटनेसे बडे २ मोटे पेटवाले मनुष्य भी सिंहकी समान पतले पेटवाले होजातेहैं। और दृढ संधियोंवाले होजातेहैं। इस अवलेहको सेवन करनेवालेको जो सर्पादि जन्तु काटें तो वह सर्पादि तत्काल मरजातेहैं। इस अवलेहके उपयोग करनेसे बहुत कालतक जीतारहताहै। रोग तथा जरा उत्पन्न नही होती और चद्रमाकी समान शरीरकी शोभा बढतीहै ॥ ५९–६८ ॥

अथ स्वायंभुवगुग्गुलुः।

शशिलेखा पञ्चपलं तावद्गिरिजस्य गुग्गुलोस्तु दश ॥ ताप्यस्य पलं त्रितयं द्वे लोहस्रावणीकयोश्च पले ॥ ६९ ॥ त्रिफलाकरञ्जपल्लवखदिरगुडूचीत्रिवृद्दन्त्यः ॥ मुस्ताविडङ्गरजनीकुटजत्वङ्निम्बवह्निसम्पाकाः ॥ ७० ॥ एतै रचिता वटिका मधुसंमिश्रा गिलेत्प्रातः ॥ गोमूत्रेण च कुष्ठं नुदत्यसृग्वातमचिरेण ॥ ७१ ॥ श्वित्राणि पाण्डुरोगं विषमानुदरप्रमेहगुल्मांश्च ॥ नाशयति वलीपलितं योगः स्वायम्भुवो नाम्ना ॥ ७२ ॥

शशिलेखा सोमराजी। गिरिजस्य शिलाजतुनः। ताप्यस्य सुवर्णमाक्षिकस्य। स्रावणीका मुण्डी इति लोके॥

बावची २० तोले, शिलाजीत ३० तोले, गूगल ४० तोले, सोनामाखी १२ तोले, लोहेका चूर्ण २ तोले, गोरखमुडी २ तोले, नागरमोथा २ तोले, वायविडंग २ तोले, हरड २ तोले, वहेडा २ तोले, आमले २ तोले, करजके पत्ते २ तोले, खैर २ तोले, गिलोय २ तोले, निसोत २ तोले, जमालगोटे २ तोले, मोथा २ तोले, हलदी २ तोले, कुडेकी छाल २ तोले, नीमकी छाल २ तोले, चीता २ तोले, और अमलतास २ तोले इन सबको एकत्र पीसकर सहतमें गोलियां बनालेवे। प्रातःकाल गोमूत्रके साथ यह गोली खाय तो कोढ और वातरक्त तत्काल नष्ट होताहै। इस स्वायंभुवनामक गूगलसे वली, पलित, श्वित्र, पांडु, उदरके विषम रोग, प्रमेह और गुल्म, भी नष्ट होजाताहै ॥ ६९–७२ ॥

अथैकविंशतिको गुग्गुलुः।

चित्रकं त्रिफला व्योषमजाजी कारवी वचा ॥ सैन्धवातिविषा कुष्ठं चव्यैला च यवासकम् ॥ ७३ ॥ विडङ्गान्यजमोदा च मुस्ता चामरदारु च ॥ यावन्त्येतानि सर्वाणि तावन्मानन्तु गुग्गुलोः ॥ ७४ ॥ संकुट्य सर्पिषा सार्द्धं गुटिकां कारयेद्भिषक् ॥ प्रातर्भोजनकाले च खादेदग्निबलं यथा ॥ ७५ ॥ हन्त्यष्टादश कुष्ठानि क्रिमिदुष्टव्रणानि च ॥ ग्रहण्यर्शोविकारांश्च मुखामयगलग्रहान् ॥ ७६ ॥ गृध्रसीमथ भग्नञ्च गुल्मं चापि नियच्छति ॥ व्याधीन्कोष्ठगतांश्चापि जयेद्विष्णुरिवासुरान् ॥ ७७ ॥

चीता, हरड, वहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, जीरा, कलौंजी, वच, सैंधानिमक, अतीस, कूट, चव्य, इलायची, जवासा, वायविडग, अजमोद, नागरमोथा और

देवदारु ये सब समान भाग और सबकी बराबर गूगल लेवे सबको एकत्र घीमें खूब कूटकर गोलिया बनालेवे । यह गोली प्रातःकाल भोजनके वख्त अग्निके बलानुसार खाय तो अठारह प्रकारके कोढ, कृमि, दुष्टव्रण, सग्रहणी, अर्शके विकार, मुखकी पीडा, गलग्रह, गृध्रसी, भग्न और गुल्म ये सब नष्ट होजातेहैं । जिस प्रकार विष्णु असुरको जीततेहैं उसी प्रकार यह गूगल ऊपर कहे रोगोको और कोटेमे प्राप्त हुए रोगोको तत्काल जीतताहै ॥७३–७७॥

अथ कैशोरगुग्गुलुः ।

वातरक्ताधिकारोक्तः पुरः कैशोरकाभिधः ॥ कुष्ठानां वातरक्तानां नाशनं परमौषधम् ॥ ७८ ॥

वातरक्तके अधिकारमें जो कैशोरक गूगल कहा है उसको भक्षण करनेसे भी कोढ और वातरक्त नष्ट होजाताहै॥७८॥

अथामृतभल्लातकावलेहः ।

भल्लातकप्रस्थयुगं छित्वा द्रोणजले क्षिपेत् ॥ प्रस्थद्वयं गुडूच्याश्च क्षुण्णं तत्राम्भसि क्षिपेत् ॥ ७९ ॥ चतुर्थांशावशेषं तु कषायमवतारयेत् ॥ वस्त्रपूते कषाये तु वक्ष्यमाणं विनिक्षिपेत् ॥ ८० ॥ शरावमात्रकं सर्पिर्दुग्धंस्यादाढकं तथा॥ सितां प्रस्थमितां दद्यात्प्रस्थार्द्धं माक्षिकं क्षिपेत् ॥ ८१ ॥ सर्वाण्येकत्र भाण्डे तु पचेन्मृद्वग्निना शनैः ॥ सर्वद्रवे घनीभूते पावकादवतारयेत् ॥ ८२ ॥ तत्र क्षेप्याणि चूर्णानि ब्रूमो बिल्वविषामृताः ॥ वाकुची चाथ दद्रूघ्नः पिचुमर्दो हरीतकी ॥ ८३ ॥ अक्षो धात्री च मंजिष्ठा मरिचं नागरं कणा ॥ यवानी सैन्धवं मुस्तं त्वगेला नागकेसरम् ॥ ८४ ॥ पर्पटं पत्रकं वालमुशीरं चन्दनं तथा ॥ गोक्षुरस्य च बीजानि कर्चूरो रक्तचन्दनम् ॥ ८५ ॥ पृथक्पलार्द्धमानानां चूर्णमेषामिह क्षिपेत् ॥ पलमात्रमिदं प्रातः समश्नीयाज्जलन हि ॥ ८६ ॥ नाशयेदवलेहोऽयं पथ्यान्यन्नानि खादतः ॥ कुष्ठानि वातरक्तानि सर्वाण्यर्शांसि सेवितः ॥ ८७ ॥ व्यायाममातपं वह्निमम्लं मांसं दधि स्त्रियम ॥ तैलाभ्यंगं तथाऽध्वानं नरो भल्लातकी त्यजेत्॥८८॥

भिलावे १२८ एकसे अठाईस तोले लेकर एक हजार चौबीस तोले जलमे पकावे, फिर उसमे १२८ तोले गिलोयको कूटकर उसी जलमे डालकर पकावे, जब पकते पकते यह जल चौथाई भाग बाकी रहजाय तब इसको उतार लेवे, इस क्वाथको वस्त्रमे छानकर उसमे ३२ तोले घी २५६ तोले दूध, मिश्री ६४ तोले और सहत ३२ तोले डालकर एक उत्तम पात्रमें मद मद अग्निसे धीरे धीरे पकावे जब यह पकते पकते गाढा होजाय तब अग्निपरसे उतारकर उसमें बेलगिरी, अतीस, गिलोय, बापची, पमार, नीम, हरड, बहेडा, आमला, मजीठ, सोठ, मिरच, पीपल अजवायन, सैंधानिमक, नागरमोथा, दालचीनी, इलायची, नागकेसर, पित्तपापडा, तेजपत्र, सुगधवाला, खस, चदन, गोखुरूके बीज, कचूर और लाल चदन ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले लेकर चूर्ण पीसकर मिलादेवे तो अमृतभल्लातकावलेह सिद्ध होताहै । इस अवलेहको नित्य प्रातःकाल चार तोले जलके साथ सेवन करे और पथ्य भोजन करै तो कोढ, वातरक्त और सब प्रकारकी बवासीर नष्ट होजातीहै, इस भिलावेको सेवन करनेवाला मनुष्य कसरत, धूप, अग्नि, खट्टे पदार्थ, मास, दही, मैथुन, तेलकी मालिस और मार्गका चलना त्याग करदेवे ॥ ७९–८८ ॥

अथ महाभल्लातकावलेहः ।

निम्बवर्गोपारुणाः कट्वी त्रायन्ती त्रिफला घनम् ॥ पर्पटावल्गुजानन्तावचाखदिरचन्दनम् ॥ ८९ ॥ पाठाशुण्ठीशटीभार्ङ्गी वासाभूनिम्बवत्सकम् ॥ श्यामेन्द्रवारुणी मूर्वा विडंगेन्द्रयवानलम् ॥ ९० ॥

हस्तिकर्णामृताद्रेकापटोलरजनीद्वयम् ॥ कणारग्वधसप्ताह्वत्रिवृद्वेत्रोच्चटाफलम् ॥ ॥९१॥ मञ्जिष्ठालांगलीरास्नानक्तमालपुनर्नवाः ॥ दन्तीबीजकसारश्च भृंगराजं कुरण्टकम् ॥ ९२ ॥ अङ्कोटकश्च शाखोटं द्विपलांशं पृथक्पृथक् ॥ गृह्णीयात्तानि सर्वाणि जलद्रोणे पचेच्छनैः ॥ ९३ ॥ अष्टमांशावशेषन्तु कषायमवतारयेत् ॥ विधाय वाससा पूतं स्थापयेद्भाजने दृढम्॥ ॥ ९४ ॥ भल्लातकसहस्राणि छित्त्वा तु द्रयर्मणाम्भसि ॥ पचेदष्टावशेषं तत्कषायमवतारयेत्॥ ९५ ॥ तत्र वस्त्रेण संशोध्य द्वौ कषायौ विमिश्रयेत् ॥ गुडं शतपलं दत्त्वा लेहवत्तत्पचेच्छनैः॥९६॥ भल्लातकसहस्रस्य मज्जान्नं तत्र निक्षिपेत् ॥ त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चित्रकं तथा ॥९७॥ सैन्धवं चन्दनं कुष्ठं दीप्यकश्च पलं पृथक्॥ सौगंध्यार्थं क्षिपेत्तत्र चातुर्जातं पलंपलम् ॥ ९८ ॥ महाभल्लातको ह्येष महादेवेन भाषितः ॥ प्राणिनां हितकामेन जयेच्छीघ्रं प्रयोजितः ॥९९ ॥ श्वित्रमौदुम्बरं दद्रूमृक्षजिह्वन्तु काकणम् ॥ पुण्डरीकं सचर्माख्यं विस्फोटं रक्तमण्डलम्॥१००॥ कण्डूं कापालकं कुष्ठं पामानञ्च विपादिकाम् ॥ वातरक्तं षडर्शांसि पाण्डुरोगव्रणान्क्रिमीन्॥ १०१ ॥ रक्तपित्तमुदावर्तं कासं श्वासं भगन्दरम् ॥ सदाभ्यासेन पलितमामवातं सुदुस्तरम् ॥१०२॥नियन्त्रणस्तु कथितो विहाराहारमैथुने ॥कुरुते परमः कान्तिं प्रदीप्तं जठरानलम् ॥ ॥ १०३ ॥ अनुपानं प्रयोक्तव्यं छिन्नातोयं पयोऽथवा ॥ भोजने तु सदा त्याज्यमुष्णमम्लं विशेषतः ॥ १०४ ॥

गोपा श्वेतसारिवा इति लोके । अरुणा अतिविषा । अवल्गुजः सोमराजी बाकुची। अनन्ता दुरालभा । चन्दनं श्वेतम् । भार्ङ्ग्या अलाभे कण्टकारीमूलं गृह्णीयात् । श्यामा कृष्णसारिवा । हस्तिकर्णः हस्तिकन्दः। सप्ताह्वा छतिम् । द्रेका बकाइन इति लोके । वेत्रं कृष्णवेत्रं जलवेतसश्च । उच्चटाफलं श्वेतगुञ्जाफलम् । कुरण्टकः पीतझिण्टी । अंकोटकः ओल इति लोके । शाखोटं साओडा इति लोके । दीप्यकं यवानी॥

नीम, सफेद सारिवा, अतीस, बापची, कुटकी, त्रायमान, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, पित्तपापडा, धमासा, वच, खैर, सफेद चदन, पाढ, सोंठ, कचूर, भारंगी (अगर भारगी न मिले तो कटेरीकी जड लेवे) अडूसा, चिरायता, इन्द्रजौ, अनन्तमूल, इन्द्रायन, चुरनहार, वायविडंग, कुडेकी छाल, चीता, हस्तीकंद, गिलोय, बकायन, कडवे परवल, हलदी, दारुहलदी, पीपल, अमलतास, सतौना, निसोत, वेत, सफेदचौंटलीके फल, मजठि, गजपीपल, रायसन, करज, पुनर्नवा, जमालगोटा, विजयसार, भागरा, पियावॉसा, अंकोल और सिहोडा ये प्रत्येक पदार्थ अलग अलग आठ आठ तोले लेकर सबको १००० एकहजार २४ चौवीस तोले जलमे धीरे धीरे मंद मद अग्निसे पकावे, जब पकते पकते जल चौथाई भाग बाकी रहजाय तब उसको उतारकर उत्तम वस्त्रमें छान मजबूत बासनमें भरकर रखदेवे। फिर १००० एक हजार भिलावोंको छीलकर ३०७२ तोले जलमें पकावे जब पकते २ आठवां भाग जल बाकी रहजाय तब उस क्वाथको वस्त्रमे छानकर पहिले क्वाथमें मिला देवे, फिर इस क्वाथमें ४०० चारसौ तोले गुड डालकर धीरे धीरे मद मद अग्निसे सीरेकी समान पकावै फिर इसमें १००० एक हजार भिलावोंकी मींग डाले तथा सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, वायविडग, चीता, सैंधानिमक, चदन, कूठ और अजवायन प्रत्येक पदार्थ चारचार तोले पीसकर मिला देवे सुगधित करनेके लिये दालचीनी, तेजपत्र, इलायची और नागकेसर प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले डाल देवै

तो ये महाभल्लातकावलेह सिद्ध होताहै । यह महादेवजीने पूर्वकालमें प्राणियोंके हितकी इच्छासे कहाथा। इस अवलेहको सेवन करनेसे श्वित्र, औदुम्बर, दाद, ऋक्षजिह्व, काकणक, पुंडरीक, चर्मदल, गजचर्म, विस्फोट, रक्तमंडल, खुजली, कपालकुष्ठ, पामा, विपादिका वातरक्त, छै प्रकारकी बवासीर; पांडुरोग, व्रण, कृमि, रक्तपित्त, उदावर्त, खाँसी, श्वास, और भगन्दर ये सब रोग तत्काल नष्ट होजातेहैं। इस अवलेहका नित्य अभ्यास करनेसे सफेदबाल नष्ट होकर काले निकलते हैं और दुस्तर आमवात भी नष्ट होजाता है । इस अवलेहको सेवन करनेवाले मनुष्यको आहार विहार और मैथुन विशेष परहेज रखनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है । यह अवलेह कांतिको उत्तम करै है और जठराग्निको दीपन करता है । इस अवलेहको सेवन करनेके पश्चात् गिलोयके जलका अथवा दूधका अनुपान करे और भोजनमें विशेष करके गरम खटाईका त्यागकर देवै॥ ८९–१०४

अथ लघुमंजिष्ठादिकाथः ।

मञ्जिष्ठा त्रिफला तिक्ता वचा दारुनिशामयाः ॥ निम्बश्चैषां कृतः क्वाथः सर्वकुष्ठं विनाशयेत् ॥ १०५ ॥ वातरक्तं तथा कण्डूं पामानं रक्तमण्डलम् ॥ दद्रूं विसर्पं विस्फोटं पानाभ्यासेन नाशयेत् ॥ १०६॥

मजीठ, हरड, बहेडा, आमला, कुटकी, वच, देवदारु, हलदी, कूठ और नीम इनका क्वाथ बनाकर नित्य पीनेसे सर्वप्रकारके कोढ नष्ट होजातेहैं । इस क्वाथका अभ्यास करनेसे वातरक्त, खुजली, पामा, रक्तमंडल, दाद, विसर्प और विस्फोटक इन सबका नाश होता है॥ १०५॥ १०६॥

अथ मध्य मंजिष्ठादिकाथः ।

मञ्जिष्ठा वाकुची चक्रमर्दश्च पिचुमर्दकः॥ हरीतकी हरिद्रा च धात्री वासा शतावरी ॥ १०७ ॥ बला नागबला यष्टी मधुकं क्षुरकोऽपि च ॥ पटोलस्य लतोशीरं गुडूची रक्तचन्दनम् ॥ १०८ ॥ मञ्जिष्ठादिरयं क्वाथः कुष्ठानां नाशनः परः ॥ वातरक्तस्य संहर्ता कण्डूमण्डलनाशनः ॥ १०९ ॥

मजीठ, बावची, चकवड, नीम, हरड, हलदी, आमले, अडूसा, सतावर, खिरैटी, गगेरन, मुलैठी, गोखरू, परवलकी बेल, खस, गिलोय और लालचंदन इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे कोढ, वातरक्त, खुजली और मंडलका नाश होजाताहै ॥ १०७–१०९ ॥

अथ बृहन्मञ्जिष्ठादिकाथः ।

मञ्जिष्ठाकुटजामृताघनवचाशुण्ठीहरिद्राद्वयं क्षुद्रारिष्टपटोलतिक्तकटुकाभार्ङ्गीविडंगाग्निकम् ॥ मूर्वादारुकलिंगभृंगमगधात्रायन्तिपाठावरीगायत्रीत्रिफलाकिरातकमहानिम्बासनारग्वधाः ॥ ११० ॥ श्यामावल्गुजचन्दनं वरुणकं दन्तीकशाखोटकं वासा पर्पटसारिवा प्रतिविषाऽनन्ता विशाला जलम् ॥ मञ्जिष्ठा प्रथमं कषायमिति यः संसेवते तस्य तु त्वग्दोषाः सुचिरेण यान्ति विलयं कुष्ठानि चाष्टादश॥ १११॥ नाशं गच्छति वातरक्तमखिला नश्यन्ति रक्तामया वीसर्पस्त्वचि शून्यता नयनजा रोगाः प्रशाम्यन्ति च ॥ ११२ ॥

अरिष्टः निम्बः । कलिंगः इन्द्रयवः । भृंगः भंगरीया इति । वरी शतावरी । गायत्री खदिरः। असनं विजयसारः । श्यामा प्रियंगुः। चन्दनमत्र रक्तं ग्राह्यम् । सारिवा [साइ] । अनन्ता दुरालभा । विशाला इन्द्रवारुणी । जलम् [नेत्रवाला] ॥

मजीठ, कुडेकी छाल, गिलोय, नागरमोथा, वच, सोंठ, हलदी, दारुहलदी, कटेरीका पचांग, नीम, परवल, कुटकी, भारङ्गी, वायविडंग, चित्रक, चुरनहार, देवदारु, भाँगरा, पीपल, त्रायमान, पाढ, सतावर, खैर, हरड, बहेडा, आमला, चिरायता, बकायन, विजयसार, अमलतास, फूलप्रियंगु, बावची,

लाल चन्दन, वरुना, जमालगोटा, सिहोडा, पित्तपापडा, सारिवा, अतीस, धमासा, इन्द्रायन और सुगन्धवाला इनका क्काथ बनाकर नित्य पीनेसे बहुत पुराने चर्मविकार, अठारह प्रकारके कोढ, वातरक्त, सम्पूर्ण रुधिरके रोग, विसर्प, त्वचाकी जडता और नेत्र के रोग नष्ट होजाते हैं ॥ ११०–११२ ॥

अथ लघुमरिचादितैलम्

मरिचं त्रिवृता मुस्तं हरितालं मनःशिला॥ देवदारु हरिद्रे द्वे मांसी कुष्ठं सचन्दनम् ॥११३॥ विशाला करवीरश्च क्षीरमर्कसमुद्भवम् ॥ गोमयस्य रसं कुर्यात्प्रत्येकं कर्षसम्मितम् ॥ ११४ ॥ विषस्यार्द्धपलं देयं तैलं प्रस्थमितं कटु ॥ पचेच्चतुर्गुणे नीरे गोमूत्रे द्विगुणे तथा ॥ ॥ ११५ ॥ मरिचाद्यमिदं तैलमभ्यङ्गात्कुष्ठनाशनम् ॥ एतस्याभ्यंगतः श्वित्रं विवर्णं तत्क्षणाद्भवेत् ॥ ११६ ॥ तैलमेतज्जयेत्कण्डूं पामां सिध्म विचर्चिकाम्॥ पुण्डरीकं तथा दद्रूं शून्यतां नित्यसेविनाम् ॥ ११७ ॥

कालीमिरच, निसोत, नागरमोथा, हरिताल, मैनशिल, देवदारु, हलदी, दारुहलदी, बालछड, चन्दन, इन्द्रायन, कनेर, आकका दूध और गायके गोबरका रस ये प्रत्येक पदार्थ एक एक तोला लेवे, वत्सनाभ विष दो तोले लेवे और सरसोंका तेल ६४ तोलेभर लेवे, इन सबको चौगुने जलमे तथा दुगुने गोमूत्रमें पकावे तो यह 'लघुमरिचाद्य' तैल सिद्ध होताहै । इस तेलकी मालिस करनेसे कोढ नष्ट होजाताहै । इस तेलके अभ्यगसे तत्काल श्वित्रकुष्ठका रग बदलजाताहै । इसको नित्य सेवन करनेसे खुजली, पामा, सिध्म, विचर्चिका, पुडरीक, दाद, और शून्यता नष्ट होतीहै ॥ ११३–११७ ॥

अथ महामरिचाद्यतैलम् ।

मरिचं त्रिवृता दन्ती क्षीरमार्कं शकृद्रसः ॥ देवदारु हरिद्रे द्वे मांसी कुष्ठं सचन्दनम् ॥ ११८ ॥ विशाला करवीरश्च हरितालं मनःशिला ॥ चित्रकं लांगली मुस्तं विडंगं चक्रमर्दकः॥ ११९ ॥ शिरीषः कुटजो निम्बः सप्तपर्णोऽमृता स्नुही ॥ श्यामाको नक्तमालश्च खदिरो बाकुची वचा ॥ १२० ॥ ज्योतिष्मती च पलिका विषं द्विपलिकं भवेत् ॥ आढकं कटुतैलस्य गोमूत्रञ्च चतुर्गुणम् ॥ १२१ ॥ मृत्पात्रे लोहपात्रे च शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ मरिचाद्यमिदं तैलं महन्मुनिभिरीरितम् ॥१२२॥ भिषगेतेन तैलेन म्रक्षयेत्कौष्ठिकान्व्रणान् ॥ पामाविचर्चिकादद्रूकण्डूविस्फोटकानि च ॥१२३॥ वलयः पलितं छाया नीलं व्यंगं तथैव च ॥ अभ्यंगेन प्रणश्यन्ति सौकुमार्यञ्च जायते ॥ १२४॥ प्रथमे वयसि स्त्रीणां यासां नस्यं प्रदीयते ॥ तासामपि जरां प्राप्य न स्यातां स्खलितौ स्तनौ ॥१२५॥ बलीवर्दस्तुरङ्गो वा गजो वायुप्रपीडितः॥ त्रिभिरभ्यञ्जनैरस्य भवेन्मारुतविक्रमः ॥ १२६ ॥

ज्योतिष्मती मालकांगुनीति लोके ॥

कालीमिरच, निसोत, जमालगोटा, आकका दूध, गोबरका रस, देवदारु, हलदी, दारुहलदी, बालछड, कूठ, चन्दन, इन्द्रायन, कनेर, हरिताल, मैनशिल, चीता, कलिहारी, नागरमोथा, वायविडग, चकवड, सिरस, इन्द्रजौ, नीम, सतौना, गिलोय, थूहर, श्यामाक, करज, खैर, बाकुची, वच और मालकांगुनी प्रत्येक चार चार तोले लेवे, वत्सनाभ आठ तोले लेवे, सरसोंका तेल दोसौ छप्पन्न २५६ तोले लेवे और गोमूत्र इससे चौगुना लेवे. इन सब पदार्थोंको लोहेके पात्रमें अथवा मट्टीके पात्रमें मन्द मन्द अग्निमे धीरे धीरे पकावे तो यह महामरिचाद्यतैल सिद्ध होताहै । इस मुनियोंके कहेहुए तेलसे वैद्य कोढके व्रणोपर मालिस करावे । इस तेलके अभ्यगसे पामा, विचर्चिका, दाद, काण्डू, और विस्फोटक ये सब नष्ट होतेहैं । तथा शरीरमें वलियोंका पडना, बिना समयही बालोका सफेद होजाना,

छाया, नीलिका, व्यग (झाई) ये सब नष्ट होकर सुकुमारता उत्पन्न होतीहै । इस तेलका स्त्रियोंको जो पहिली अवस्थामें नास दिया जाय तो उनके वृद्ध अवस्थामें भी स्तन नहीं गिरतेहैं । बैल, घोडा और हाथी जो वायुसे पीडित होंयँ तो उनको इस तेलका अभ्यजन किया जाय तो वे पवनके वेगकी समान वेगवाले होजातेहैं ॥ ११८–१२६ ॥

अथ तालकेश्वररसः ।

तालताप्यशिलासूतटंकणाः सिन्धुसंयुताः ॥ गन्धको द्विगुणः सूताच्छङ्खचूर्णश्च तत्समम् ॥ १२७ ॥ जम्बीराद्भिर्दिनं घृष्ट्वा त्रिशदंशं विषं क्षिपेत् ॥ अस्य माषद्वयं खादेन्महिषीघृतसंयुतम् ॥१२८॥ मध्वाज्यैर्वाकुचीबीजकर्ष लिह्या ततः परम् ॥ तालकेश्वरनामायं सर्वकुष्ठहरो रसः ॥ १२९ ॥

हरिताल, सोनामाखी, मैनशिल, पारा, सुहागा, सेंधानिमक, पारेसे दूना गन्धक और गन्धककी बराबर शंखका चूर्ण इनको एक दिनतक नीबूके रसमें खरल करके और उसमें तीसभाग वत्सनाभ मिलावे तो यह तालकेश्वर रस सिद्ध होताहै । इस रसको भैंसके घीके साथ बारह रत्ती प्रमाण खाय और इसके ऊपर सहत तथा घीके साथ एक तोला बाकुचीके बीजोंका चूर्ण खाय तो सर्व प्रकारके कुष्ट नष्ट होजातेहैं ॥ १२७–१२९ ॥

अथ गलितकुष्ठारिरसः ।

रसो बलिस्ताम्रमयः पुरोऽग्निः शिलाजतु स्याद्विषतिन्दुकश्च ॥ वरा च तुल्यं गगनश्च सर्वैः करञ्जबीजं सचतुष्टयश्च ॥ ॥ १३० ॥ संमर्द्य सर्वं मधुना घृतेन घृतस्य पात्रे निहितं प्रयत्नात् ॥ कर्षं भजेत्प्रत्यहमस्य पथ्यं शाल्योदनं दुग्धमधुत्रयञ्च ॥ १३१ ॥ विशीर्णकर्णाङ्गुलिनासिकोऽपि भवेदनेन स्मरतुल्यमूर्तिः ॥ दारापरित्याग इह प्रदिष्टो जलौदनं तत्र निबद्धमूले ॥ १३२ ॥

पुरो गुग्गुलुः । अग्निश्चित्रकम् । विषति न्दुकः[कुचिला] । वरा त्रिफला । रसादि फलान्तं सर्वं तुल्यम् । गगनमभ्रकम् । क ञ्जबीजञ्च पृथक् चतुर्गुणं रसात् । तत्र कु बद्धमूले सति जलौदनमेव पथ्यम् ॥

पारा, गधक, तॉबेकी भस्म, लोहेकी भस्म, गूग चीता, शिलाजीत, कुचिला, हरड, बहेडा और आम यह सब समान भाग लेवे, अभ्रक और करंजके बी पारेसे चौगुने लेवे इन सब पदार्थोंको एकत्र करके स और घीमें खरल करके घीके चिकने बासनमे भर रखदेवे तो यह ' गलितकुष्ठारि ' रस सिद्ध होता है । इ रसको नित्य एक तोलाभर खाय और इसके ऊपर ल शालि चावलोंका भात, दूध और सहत इन तीनों प यौंका पथ्य देवे । जिसके कान, अगुलि और नाक ग गई होंयँ वह मनुष्य भी इसके प्रभावसे कामदेव समान शरीरवाला होजाताहै । इस रसको सेवन कर वाले मनुष्यको मैथुनका त्याग करना चाहिये । जो कु दृढ जडवाला होगया होय तो इस रसके ऊपर जल तथा भातका पथ्य देवे ॥ १३०–१३२ ॥

अथ सिध्मचिकित्सा ।

कुष्ठं मूलकबीजं प्रियंगवः सर्षपास्तथा रजनी ॥ एतत्केसरषष्ठं निहन्ति चिरकालजं सिध्म ॥ १३३॥

कूठ, मूलीके बीज, फूलप्रियगू, सरसों, हलदी अ नागकेसर इन छे पदार्थोंका लेप करनेसे बहुत दिनो भी सिध्म नष्ट होजाताहै ॥ १३३ ॥

शिखरीरसेन पिष्टं मूलकबीजं प्रलेपतः सिध्म॥ क्षारेण वा कदल्या रजनीमिश्रेण नाशयति ॥ १३४ ॥

इस लेपको ' केशरषष्ठक ' ऐसा कहतेहैं । चि चिटेके रससे अथवा हलदीको मिलाकर मूली बीजोंको पीसकर लेप करनेसे सिध्म नष्ट होजात है ॥ १३४ ॥

दार्वीमूलकबीजानि तालकं सुरदारु च ॥ ताम्बूलपत्रं सर्वाणि कार्षिकाणि पृथक्पृथक्

॥ १३५ ॥ शङ्खचूर्णन्तु शाणं स्यात्सर्वाण्येकत्र वारिणा ॥ प्रलेपयेत्प्रलेपोऽयं सिध्मनाशन उत्तमः ॥ १३६ ॥

दारुहलदी, मूलीके बीज, हरिताल, देवदारु और नागरवेलके पान ये प्रत्येक पदार्थ एक एक तोला लेवे और शंखका चूर्ण चौवीस रत्ती प्रमाण लेवे। इन सबको एकत्रित करकै जलमें पीसकर लेप करनेसे सिध्म नष्ट होजाताहै। यह प्रलेप सिध्मनाश करनेके लिये उत्तम है ॥ १३५ ॥ १३६ ॥

अथ चर्मदलचिकित्सा।

सलिले चाम्रपेशी तु किञ्चित्सैन्धवसंयुता॥ ताम्रपात्रे विनिर्घृष्टा लेपाच्चर्मदलापहा ॥ १३७ ॥

आम्रपेशी आमचूर इति लोके।

सलिलेन तु शुष्काणि घृष्ट्वा धात्रीफलानि च ॥ कराभ्यां सुखमाप्नोति नरश्चर्मदलान्वितः ॥ १३८ ॥

आमचूरको ताम्बेके बासनमें घिसकर उसमें कुछेक सैंधानिमक डालकर लेप करनेसे चर्मदल नष्ट होजाताहै। सुखेहुए आमलोंको जलमे घिसकर लेप करनेसे चर्मदलवाले रोगियोको सुख प्राप्तहोताहै ॥ १३७ ॥ १३८ ॥

अथ पामाचिकित्सा।

जीरकस्य पलं पिष्टं सिन्दूरार्द्धपलं तथा ॥ कटुतैलं पचेदाभ्यां सर्वपामाहरं परम् १३९

चार तोले जीरकाचतैल और उसमें दो तोले सिंदूर सरसोंके तेलमें पकावे। उस तेलको मलनेसे सर्वप्रकारकी पामा अच्छे प्रकारसे नष्ट होजाती है ॥ १३९ ॥

अथादित्यपाकतैलम्।

मञ्जिष्ठात्रिफलालाक्षालाङ्गलीरात्रिगन्धकैः ॥ चूर्णितैस्तैलमादित्यपाकं पामाहरं परम् ॥ १४० ॥

मजीठ, हरड, बहेडा, आमले, लाख, कलिहारी, हलदी और गंधक इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल 'आदित्यपाक' कहाजाताहै इससे पामा अच्छे प्रकारसे नष्ट होजातीहै ॥ १४० ॥

अथ सधवादिलेपः।

सैन्धवं चक्रमर्दश्च सर्षपाः पिप्पली तथा॥ आरनालेन संपिष्टाः पामाकण्डूहराः पराः ॥ १४१ ॥

सैंधानमक, चकवड, सरसों और पीपल इनको आरनालनामक काजीमे पीसकर लेप करनेसे छाजन और खुजली सब प्रकारकी नष्ट होजाती हैं ॥ १४१ ॥

अथ कच्छूचिकित्सा।

तत्रार्कतैलम्।

अर्कपत्ररसे पक्वं हरिद्राकल्कसंयुतम् ॥ नाशयेत्सार्षपं तैलं पामाकच्छूविचर्चिकाः ॥ १४२ ॥

हलदीका कल्क डालकर आकके पत्तोंके रसमें पकाया हुआ सरसोका तेल, पामा, कच्छू और विचर्चिकाको नष्ट करे है ॥ १४२ ॥

अथ कच्छूराक्षसतैलम्।

मनः शिलालं कासीसं गन्धाश्म सिन्धुजन्म च ॥ स्वर्णक्षीरी शिलाभेदी शुण्ठी कुष्ठश्च मागधी ॥ १४३ ॥ लांगली करवीरश्च तद्रूघ्नः क्रिमिहानलः ॥ दन्ती निम्बदलं चैभिः पृथक्कर्षमितैर्भिषक् ॥ ॥ १४४ ॥ कल्कीकृत्य पचेत्तैलं कटु प्रस्थद्वयोन्मितम् ॥ अर्कसेहुण्डदुग्धेन पृथक्पलमितेन च ॥ १४५ ॥ गोमूत्रस्याढकेनापि शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ अभ्यङ्गेन हरेदेतत्कृच्छ्रदुःसाध्यतामपि॥ ॥ १४६ ॥ पामानश्च तथा कण्डूं त्वग्व्याधिरुधिरामयान् ॥ कच्छूराक्षसनामेदं तैलं हारीतभाषितम् ॥ १४७ ॥

मैनशिल, हरिताल, हीराकसीस, गंधक, सैंधानिमक, चोक, पाखानभेद, सोठ, कूठ, पीपल, कलिहारी, कनेर, चकवड, वायविडंग, चीता, जमालगोटा, और नीमके पत्ते ये प्रत्येक पदार्थ एक २ तोला लेकर इनके कल्कसे १२८

पकाकी अठाईस तोले भर सरसोंका तेल पकावे फिर चार तोले आकका दूध, चार तोले थूहरका दूध और दोसौछप्पन तोले गोमूत्रसे इसको कोमल अग्निमे धीरे धीरे पकावे तो यह कच्छूराक्षस नामक तैल सिद्ध होताहै, इस तेलकी मालिश करनेसे असाध्य कच्छूभी नष्ट होजाती है। हारीतमुनिका कहा हुआ यह तेल पामा, खुजली, चर्मके रोग और रुधिरके विकारोंको दूर करे है ॥१४३-१४७॥

अथ कृतमालादिकल्कः ।

कृतमालस्य पत्राणि नक्तमालदलानि च ॥ द्रोणपुष्पीपलाशानि सर्षपा राजिका निशा ॥ १४८ ॥ कुटजो मधुकं मुस्तं नागरं रक्तचन्दनम् ॥ धात्री यवानिका दारु कल्क एष प्रकल्पितः ॥ १४९ ॥ उद्वर्तनादयं कल्कः कटुतैलसमन्वितः ॥ कण्डूं पामां हरत्येव शीतपित्तादिकामयान् ॥ १५० ॥

अमलतासके पत्ते, करजके पत्ते, पमारके पत्ते, सरसो, राई, हलदी, इन्द्रजौ, मुलैटी, नागरमोथा, सोंठ, लाल चंदन, आमले, अजवायन और देवदारु इनका कल्क बनाकर सरसोंके तेलमें पकाकर अच्छे प्रकार लगावे तो खुजली, पामा और शीतपित्त आदि रोग अवश्य नष्ट होजाते हैं ॥ १४८-१५० ॥

अथ दद्रूचिकित्सा ।

कुष्ठं क्रिमिघ्नो दद्रूघ्नो निशासैन्धवसर्षपाः ॥ अम्लपिष्टः प्रलेपोऽयं दद्रूकुष्ठनिषूदनः ॥१५१॥ दूर्वाभयासैन्धवचक्रमर्दकुठेरकाः काञ्जिकतक्रपिष्टाः ॥ त्रिभिः प्रलेपैरपि बद्धमूलां दद्रूश्च कुष्टञ्च विनाशयन्ति १५२॥

कुठेरकः बाबुइ तुलसी इति लोके ॥

गण्डिलकाख्यं तृणमपि सिद्धार्थकश्च स्नुहीपत्रम् ॥ त्रयमपि समभागं स्याद्वेषां द्विगुणस्तु दद्रूघ्नः ॥ १५३ ॥ अष्टगुणे गोतक्रे तानि प्रकृतानि सन्दध्यात्॥ दिवसत्रितयादूर्ध्वं सम्यक्तानिष्पेषयेत्तानि॥ ॥ १५४ ॥ वन्योपलेन घृष्ट्वा च दद्रूमालेपयेत्तेन ॥ सप्ताहाल्लेपोऽयं दद्रूमचिराद्विनाशयति ॥ १५५ ॥

कूठ, वायविडंग, पमार, हलदी, सैंधानिमक और सरसों इनको नीबूके रसमें पीसकर लगानेसे दाद तथा कोढ नष्ट होजाताहै।

दूब, हरड, सैंधानिमक, पमारके बीज और बापची इनको कांजीमें तथा तक्रमें पीसकर तीन बार लेप करनेसे दृढ मूलवाले दाद तथा कोढ भी नष्ट होजाताहै।

गडलिक घास, सरसों और थूहरके पत्ते इन सबको समान भाग लेवे और इनसे दुगुना चकवड लेवे, इन सबको अठगुनी छाछमे मिला देवे। फिर तीनदिनके बाद इनको अच्छे प्रकार पीसकर प्रथम दादको अरने उपलेनसे रगडकर उक्त औषधिका लेपकरे तो तत्काल सातदिनके भीतर दादका नाश होताहै ॥ १५१-१५५ ॥

अथ श्वित्रकुष्ठचिकित्सा ।

विभीतकत्वङ्मलपूजतानां क्वाथेन पीतं गुडसंयुतेन ॥ अवल्गुजं बीजमपाकरोति श्वित्राणि कृच्छ्राण्यपि पुण्डरीकम् ॥१५६॥

मलपूः काकोदुम्बरिका । अवल्गुजं सोमराजी ॥

कुडवमवल्गुजबीजं हरितालचतुर्थभागसम्मिश्रम् ॥ १५७ ॥ मनःशिला तोलकार्द्धं गुञ्जाफलमग्निमूलञ्च ॥ मूत्रेण गवां पिष्टं सवर्णताकारकं श्वित्रे ॥ १५८ ॥ श्वेतं कुष्ठं व्रजत्यस्तं पक्षार्द्धेनाधिकेन वा ॥ गिरिकर्ण्यास्तु कृष्णाया मूलेन परिलेपितम् ॥ १५९ ॥

गिरिकर्णी नीला अपराजिता ॥

क्वाथः सबाकुचीचूर्णो धात्रीखदिरसारयोः ॥ शंखेन्दुकुन्दधवलं श्वित्रं संसेवितो हरेत् ॥ १६० ॥ मथितेन पिबेच्चूर्णं काकोदुम्बर्यवल्गुजम् ॥ तैलाक्तो घर्मसेवी स्यात्तक्राशी श्वित्रहृद्भवेत् ॥ १६१ ॥

मथितं निर्जलं विलोडितं दधि । तक्रं चतुर्थांशजलयुतं वस्त्रपूतं दधि ॥

बहेडेकी छाल, कटूमरकी जड इनके क्काथमे गुड डालकरै वापर्चीके कल्कके साथ पिवे तो अत्यंत कष्टदायक श्वित्र और पुंडरीक भी नष्ट होजाताहै ।

वापचीके बीज १६ तोले, हरिताल ४ तोले, ६ मासे मैनशिल, चौंटली और चीतेकी जड इन सबको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे श्वित्र नष्ट होकर त्वचाका रंग शरीरके वर्णकी समान होजाताहै । काली अपराजिताकी जडका कल्क बनाकर उसका लेप करनेसे आठ दिनमे वा कुछ अधिक दिनोमे श्वेतकुष्ठ नष्ट होजाताहै ।

आमलेका तथा खैरसारका क्वाथ बनाकर उसमे वापचीका चूर्ण डालकर नित्य पीनेसे शख, कुद और चंद्रमाकी समान श्वेत कुष्ठ नष्ट होजाताहै । कटूमर तथा वापचीका चूर्ण बनाकर विना पानी मिले दहीमे मिलाकर पीवे, तेलकी मालिसकरके धूपमे बैठा रहे और छाछको पीवे तो सफेद कोढ नष्ट होजाता है ॥ १५६–१६१ ॥

अथ सोमराजीघृतम् ।

चतुःपलं सोमाराज्याः खदिरस्य पलं तथा ॥ पटोलमूल त्रिफला त्रायमाणा दुरालभा ॥ १६२ ॥ कल्कार्थं कटुकं चापि कार्षिकाःसूक्ष्मपेषितात् ॥ पलद्वयं कौशिकस्य शुद्धस्यात्र प्रदापयेत् ॥ १६३॥ सिद्धं सर्पिरिदं श्वित्रं हन्यादम्भ इवानलम् ॥ अष्टादशानां कुष्ठानां परमं चतदौषधम् ॥ १६४ ॥ सोमराजीघृतं नाम निर्मितं ब्रह्मणा पुरा ॥ लोकानामुपकाराय श्वित्रकुष्ठादिरोगिणाम् ॥ १६५ ॥

इति कुष्ठनिदानचिकित्साधिकारः ।

वापर्ची १६ तोले, खैरसार ४ तोले, परवलकी जड, हरड, बहेडा, आमला, त्रायमान, धमासा और कुटकी प्रत्येक पदार्थ एक एक तोला लेकर बारीक पीसकर उसमें आठ तोले शुद्ध गूगल मिला देवे, फिर इस कल्कसे घृतको पकावे तो यह 'सोमराजीघृत' सिद्ध होताहै । जिसप्रकार जल अग्निको नष्ट करदेताहै उसीप्रकार यह घी श्वित्रको नष्ट करदेताहै । यह अठारह प्रकारके कोढोंकी उत्तम औषधि है । श्वित्र तथा कुष्ठआदि रोगोसे पीडित मनुष्योंके हितके लिये ब्रह्माने पूर्वकालमें इस सोमराजी घृतको बनायाथा ॥ १६२–१६५ ॥

इति कुष्ठाधिकारः सपूर्णः ।

अथ शीतपित्तोदर्दकोठोत्कोठाऽधिकारः ।

तत्र शीतपित्तादीनां सन्निकृष्टविप्रकृष्टनिदानं सम्प्राप्तिश्च ।

शीतमारुतसम्पर्कात्प्रवृद्धौ कफमारुतौ ॥ पित्तेन सह सम्भूय बहिरन्तर्विसर्पतः ॥ ॥ १ ॥ पिपासाऽरुचिहृल्लासदेहसादाङ्गगौरवम् ॥ रक्तलोचनता तेषां पूर्वरूपस्य लक्षणम् ॥ २ ॥

शीतमारुतसम्पर्कात् पित्तेन स्वहेतुदुष्टेन सम्भूय संगम्य बहिः त्वचि अन्तः रुधिरादौ विसर्पतः प्रसरतः ॥

शीतल पवनके लगनेसे वृद्धिको प्राप्त हुए कफ और वायु अपने कारणोंसे दूषित हुए पित्तके साथ मिलकर त्वचा तथा रुधिर आदिमे फैलतेहैं उससे शीतपित्तादि रोग होतेह ॥ १ ॥ २ ॥

अथ शीतपित्तपूर्वरूपम् ।

पिपासारुचिहृल्लासदेहसादांगगौरवम् ॥ रक्तलोचनता तेषां पूर्वरूपस्य लक्षणम् ॥ ३ ॥

तृषा, अरुचि, उबकाई, शरीरमे ग्लानि, अगोमे भारीपन, और नेत्रोमे लाली यह शीतपित्तादिके पूर्व लक्षण है ॥ ३ ॥

अथ शीतपित्तलक्षणम् ।

वरटीदष्टसंस्थानः शोथः सञ्जायते बहिः ॥ सकण्डूतोदबहुलश्छर्दिज्वरविदाहवान् ॥ उदर्दमिति तं विद्याच्छीतपित्तमथापरे ॥

वाताधिकं शीतपित्तमुदर्दस्तु कफाधिकः ॥ ४ ॥

ततैयाके काटनेके समान, खुजलीयुक्त, बहुत पीडायुक्त, वमनसहित, ज्वरसयुक्त और दाहसहित जो त्वचामें चकते पडजातेहैं वह शीतपित्त कहाजाताहै । और उसमे वायुकी अत्यत अधिकता होतीहै ॥ ४ ॥

अथोददलक्षणम् ।

सोत्संगैश्च सरागैश्च कण्डूमद्भिश्च मण्डलैः ॥ शैशिरः श्लेष्मबहुल उदर्द इति कीर्तितः ॥ ५ ॥

सोत्संगैः मध्यनिम्नैः । शैशिरः शिशिरर्तुभवः ॥

बीचमें नीचा, लालीयुक्त, खुजलीवाले जो चकते शिशिर ऋतुमे होतेहैं वे उदर्द कहेजातेहैं और उनमें कफकी अधिकता होतीहै ॥ ५ ॥

कोठोत्कोठलक्षणम् ।

असम्यग्वमनोदीर्णपित्तश्लेष्मान्ननिग्रहैः ॥ मण्डलानि सकण्डूनि रागवन्ति बहूनि च ॥ उत्कोठः सानुबन्धश्च कोठ इत्यभिधीयते ॥ ६ ॥

वमन बराबर ठीक खुलकर नहीं होनेसे,पित्त तथा कफ चढकर और ऊपरको उछलकर आयाहुआ अन्न रुककर खुजली और लालीयुक्त जो बहुतसे चकते उत्पन्न होतेहैं वह कोठ कहेजातेहैं । एक चकता नष्ट होकर दूसरा चकता उत्पन्न होताहै इस कारण यह उत्कोठ और कोठ कहाजाताहै ॥ ६ ॥

अथ शीतपित्तादिचिकित्सा ।

शीतपित्ते तु वमनं पटोलारिष्टवासकैः ॥ त्रिफलापुरकृष्णाभिर्विरेकश्च प्रशस्यते ॥ ॥ ७ ॥ अभ्यंगः कटुतैलेन सेकश्चोष्णेन वारिणा ॥ त्रिफलां क्षौद्रसंयुक्तां खादेच्च नवकार्षिकाम् ॥ ८॥ त्रिफलापुरकृष्णानां त्रिपञ्चैकांशयोजिता ॥ गुटिका शीतपित्तार्शोभगन्दरवतां हिता ॥ ९ ॥ सितां त्रिकटुसंयुक्तां गुडमामलकैः सह ॥ यवानीं खादयेच्चापि सव्योषक्षारसंयुताम् ॥ १० ॥ आर्द्रकस्य रसः पेयः पुराणगुडसंयुतः ॥ शीतपित्तापहः श्रेष्ठो वह्निमान्द्यविनाशनः ॥ ११ ॥ सिद्धार्थरजनीकल्कैः प्रपुन्नाटतिलैः सह ॥ कटुतैलेन संमिश्रमेतदुद्वर्तनं हितम् ॥ १२ ॥ सगुडं दीप्यकं यस्तु खादेत्पथ्यान्नभुङ् नरः ॥ तस्य नश्यति सप्ताहादुदर्दः सर्वदेहजः ॥ १३ ॥ घृतं पीत्वा महातिक्तं शोणितं मोक्षयेत्तथा ॥ स्निग्धस्विन्नस्य संशुद्धिमादौ कोठे समाचरेत् ॥ उत्कोठे शुद्धदेहस्य कुष्ठघ्नीं कारयेत्क्रियाम् ॥१४॥ निम्बस्य पत्राणि सदा घृतेन धात्रीविमिश्राणि नरः प्रयुंज्यात् ॥ विस्फोटकण्डूक्रिमिशीतपितमुदर्दकोठौ च कफश्च हन्यात् ॥ १५ ॥

कडवे परवल, नीम और अडूसा इनसे वमन करावे और हरड, बहेडा, आमला, गूगल तथा पीपल इनसे विरेचन देवे, यह शीतपित्तपर हितकारी है । सरसोंके तेलकी मालिस करनेसे, गरम जलका सेचन करनेसे, सहतके साथ त्रिफलेको भक्षण करनेसे और नवकार्षिकनामक गूगल खानेसे शीतपित्त नष्ट होताहै ।

त्रिफला ३ भाग, गूगल ५ भाग और पीपल १ भाग, इनकी बनाई हुई गोली शीतपित्तवालेको, बवासीरवालेको तथा भगन्दर रोगियोंको हितकारी है । यह गोली ' नवकार्षिक गूगल ' इस नामसे कहीजातीहै ।

त्रिकुटेके साथ चीनी खानेसे, गुडके साथ आमलेको खानेसे और सोंठ, मिरच, पीपल तथा जवाखारके साथ अजवायनको खानेसे भी शीतपित्त नष्ट होजाताहै ।

अदरखके रसमें पुराना गुड मिलाकर पीनेसे शीतपित्त अच्छे प्रकारसे नष्ट होजाताहै । और मदाग्नि दीपन होतीहै ।

सरसों, हलदी, चकवड और तिल इनका कल्क बनाकर उसमें सरसोंका तेल मिला मालिसकरनेसे शीतपित्त नष्ट होजाताहै ।

जो मनुष्य गुडके साथ अजवायन खाय और पथ्य-भोजन करे तो सम्पूर्ण शरीरमे प्राप्त हुआ उदर्द सात दिनमे नष्ट होजाताहै।

महातिक्तक नामक घृतको पीकर रुधिर निकलवानेसे भी उदर्द नष्ट होजाता है। कोठ उत्पन्न हुआ होय तो प्रथम स्नेहन तथा स्वेदन क्रिया करके विरेचन आदिसे शोधन करे और उत्कोठ हुआ होय तो विरेचनादिसे शुद्ध करके पश्चात् कुष्ठ रोगोकी चिकित्सा करे।

नीमके पत्ते और आमलोंको एकत्र पीसकर घीमें मिलाकर नित्य खाय तो विस्फोटक, खुजली, कृमि, शीत-पित्त, उदर्द, कोढ और कफ नष्ट होताहै ॥ ७–१५ ॥

अथार्द्रकखंडम्।

आर्द्रकं प्रस्थमेकं स्याद्गोघृतं कुडवद्वयम् ॥ गोदुग्धं प्रस्थयुगलं तदर्द्धा शर्करा मता ॥ १६ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम् ॥ चित्रकश्च विडङ्गश्च मुस्तकं नागकेसरम् ॥ १७ ॥ त्वगेलापत्रकर्चूरं प्रत्येकं पलमात्रकम् ॥ विधाय पाकं विधिवत्खादेत्तत्पलसंमितम् ॥ १८ ॥ इदमार्द्रकखण्डं हि प्रातर्भुक्तं व्यपोहति ॥ शीतपित्तमुदर्दश्च कोठमुत्कोठमेव च ॥ १९ ॥ यक्ष्माणं रक्तपित्तञ्च कासं श्वासमरोचकम् ॥ वातगुल्ममुदावर्तं शोथं कण्डूं क्रिमीनपि ॥ २० ॥ दीपयेदुदरे वह्निं बलं वीर्यञ्च वर्द्धयेत् ॥ वपुः पुष्टं प्रकुरुते तस्मात्सेव्यमिदं सदा ॥ २१ ॥

इति शीतपित्तोदर्दकोठोत्कोठाधिकारः।

अदरख ६४ तोले, गायका घी ३२ तोले, गायका दूध १२८ तोले और इससे आधी चीनी लेवे, पीपल, पीपलामूल, कालीमिरच, सोठ, चीता, वायविडंग, नागरमोथा, नागकेसर, दालचीनी, इलायची, तेजपात और कचूर ये प्रत्येक पदार्थ चार चार तोले लेकर विधिपूर्वक पाक बनावे, यह आर्द्रकखड सिद्ध होताहै नित्य प्रातःकाल इसमेंसे चार तोले खाय तो इससे शीतपित्त, उदर्द, कोठ, उत्कोठ, क्षयरोग, रक्तपित्त, खाँसी, श्वास, अरुचि, वातगुल्म, उदावर्त, सूजन, खुजली और कृमि नष्ट होते-हैं। जठराग्नि दीपन होतीहै, बल तथा वीर्यकी वृद्धि होतीहै और शरीर पुष्ट होताहै इस कारण इस प्रयोगको सदैव सेवन करना चाहिये ॥ १६–२१ ॥

इति शीतपित्तोदर्दकोठोत्कोठाऽधिकारः सपूर्णः।

अथ विसर्पाधिकारः।

तत्र विसर्पनिदानम्।

लवणाम्लकटूष्णादिसेवनाद्दोषकोपतः ॥ विसर्पः सप्तधा ज्ञेयः सर्वतः परिसर्पणात् ॥ १ ॥

खारी, खट्टे, तीखे और गरम आदि पदार्थोंको सेवन करनेसे दोषोका कोप होकर विसर्प होताहै। यह विसर्प सात प्रकारका है और चारों ओर फैलजाताहै इस कारण यह विसर्प कहाजाताहै। हरे शाक और शिडाकी आदि पदार्थोंसे भी विसर्प होताहै ऐसा चरकाचार्य कहतेहैं ॥१॥

अथ विसर्पस्य सप्तधात्वम्।

वातिकः पैत्तिकश्चैव कफजः सान्निपातिकः ॥ चत्वार एते वीसर्पा वक्ष्यन्ते द्वन्द्वजास्त्रयः ॥ २ ॥

वातज, पित्तज, कफज और सान्निपातिक ये चार और दो दो दोषोसे उत्पन्न हुए तीन इस प्रकार विसर्प सात प्रकारका जानना ॥ २ ॥

आग्नेयो वातपित्ताभ्यां ग्रन्थ्याख्यः कफवातजः ॥ यस्तु कर्दमको घोरः स पित्तकफसम्भवः ॥ ३ ॥

वायुसे तथा पित्तसे उत्पन्न हुआ विसर्प आग्नेय कहाजाताहै, कफसे उत्पन्न हुआ विसर्प ग्रंथि कहाजाताहै और पित्तसे तथा कफसे उत्पन्न हुआ विसर्प कर्दमक कहाजाता है ॥ ३ ॥

अथ विसर्पस्य दोषदूष्ये।

रक्तं लसीका त्वङ्मांसं दूष्यं दोषास्त्रयो मलाः ॥ विसर्पाणां समुत्पत्तौ हेतवः सप्तधातवः ॥ ४ ॥

त्रयो मलाः वातपित्तकफाः दोषा दूषका इत्यर्थः। अन्यथा दोषा मला इत्यत्र पुनरुक्तिदोषो लगिष्यते ॥

रुधिर, लसीका, त्वचा और मांस यह दूषित होतेहैं और वे वात, पित्त तथा कफ इन तीनो दोषोंको दूषित करतेहैं इस लिये विसर्पकी उत्पत्तिमें ये सात धातु कारण रूप हैं ॥ ४ ॥

अथ वातजविसर्पलक्षणम् ।

तत्र वातात्परीसर्पो वातज्वरसमव्यथः ॥ शोफस्फुरणनिस्तोदभेदायामार्तिहर्षवान् ॥ ५ ॥

परीसर्पो विसर्पः । वातज्वरसमव्यथः शिरोहृद्गात्रोदरशूलादियुक्तः । भेदः विदारणेनेव व्यथा । आयामः आकर्षणेनेव व्यथा ॥

वातके विसर्पमें वातज्वरकी समान मस्तकमें पीडा, हृदयमें गात्रोंमे तथा उदरमें शूल आदि होतेहैं, सूजन होतीहै, अंग फडकते हैं, सुई चुभोने सरीखी पीडा, चीरने सरीखी पीडा, आकर्षण (खैंचने या चूसने) की समान पीडा, और रोमाच होआतेहै ॥ ५ ॥

अथ पित्तजविसर्पलक्षणम् ।

पित्ताद्द्रुतगतिः पित्तज्वरलिंगोऽतिलोहितः ॥ ६ ॥

द्रुतगतिः शीघ्रप्रसरणशीलः ॥

पित्तका विसर्प तत्काल फैलजाताहै, पित्तज्वरके सम्पूर्ण लक्षण होतेहैं और अत्यत लाल होताहै ॥ ६ ॥

अथ कफजविसर्पलक्षणम् ।

कफात्कण्डूयुतः स्निग्धः कफज्वरसमानरुक् ॥ ७ ॥

कफका विसर्प खुजलीयुक्त, स्निग्ध और कफज्वरकी समान पीडा होतीहै ॥ ७ ॥

अथ सान्निपातिकविसर्पलक्षणम् ।

सन्निपातसमुत्थश्च सर्वरूपसमन्वितः ॥ ८ ॥

त्रिदोषज विसर्पमें ऊपर कहे तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं ॥ ८ ॥

अथ वातपित्तजाग्नेयाख्यविसर्पलक्षणम् ।

वातपित्ताज्ज्वरच्छर्दिमूर्च्छातीसारतृड्भ्रमैः ॥ अस्थिभेदाग्निसदनतमकारोचकैर्युतः ॥ ९ ॥ करोति सर्वमङ्गञ्च दीप्ताङ्गारावकीर्णवत् ॥ यंयं देशं विसर्पश्च विसर्पति भवेत्ससः ॥ १० ॥ शान्ताङ्गाराऽसितो नीलो रक्तो वाशूपचीयते ॥ अग्निदग्ध इव स्फोटैः शीघ्रगत्वाद्द्रुतश्च सः ॥ ११ ॥ मर्मानुसारी वीसर्पः स्याद्वातोऽतिबलस्ततः ॥ व्यथेताङ्गं हरेत्संज्ञां निद्राञ्च श्वासमीरयेत् ॥ १२ ॥ हिध्माञ्च स गतोऽवस्थामीदृशीं लभते न ना ॥ क्वचिच्छर्मारतिग्रस्तो भूमिशय्यासनादिषु ॥ १३ ॥ चेष्टमानस्ततः क्लिष्टो मनोदेहश्रमोहवान् ॥ दुष्प्रबोधोऽश्नुते निद्रां सोऽग्निविसर्प उच्यते ॥ १४ ॥

स्फोटैः उपचीयत इति अन्वयः । मर्मानुसारी उदरहृदयानुसारी । हरेद्विसर्प इति अन्वयः । हिध्मां हिक्काम् ईरयेदुपर्युपरि प्रेरयेत् । निद्रां मरणरूपाम् । अश्नुते प्राप्नोति ॥

वात तथा पित्त इन दोषोंसे विसर्प उत्पन्न हुआ होय तो ज्वर, वमन, मूर्च्छा, अतीसार, तृषा, भ्रम, हडफूटन, अग्निकी मंदता, अंधकारदर्शन, अरुचि और संपूर्ण शरीर दहकते हुए अंगारोंकी समान व्याप्त हों, यह विसर्प शरीरके जिस जिस प्रदेशमें फैलताहै वही वही प्रदेश नीला वा लाल, अथवा बुझेहुए अंगारेकी समान काला होजाताहै और आगसे फूँकनेकी समान फफोले पडजाते हैं, यह विसर्प शीघ्रगतिवाला है, यह तत्काल उदर और हृदयमें गति करताहै इसकारण वायुकी प्रबलतावाला कहा जाताहै। यह विसर्प अंगको व्यथित करताहै, संज्ञाको नष्ट करदेताहै। निद्राको प्रेरणा करताहै, श्वासके वेगको और हिचकीको अधिक बढाताहै, इस अवस्थाको प्राप्तहुआ मनुष्य कहीं भी सुख नहीं पाता, पृथिवीमें, शयनमें, तथा

आसन आदिपर बैठनेमे कहीभी चैन नहीं मिलता, दिन रात तडफताहै, क्लेशको प्राप्त होताहै, मन तथा शरीरको क्लेश होनेसे उसके दुर्बोध निद्रा होतीहै, उस दुर्बोध निद्राके होनेसे मृत्यु होतीहै. इसको आग्नेय विसर्प कहतेहै ॥ ९–१४ ॥

अथ वातकफजग्रन्थिविसर्पलक्षणम् ।

कफेन रुद्धः पवनो भित्त्वा तं बहुधा कफम् ॥ रक्तं वा वृद्धरक्तस्य त्वक्शिरास्नायुमांसगम् ॥ १५ ॥ दूषयित्वा तु दीर्घाणां वृत्तस्थूलखरात्मनाम् ॥ ग्रन्थीनां कुरुते मालां रक्तानां तीव्ररुग्ज्वराम् ॥ ॥ १६ ॥ श्वासकासातिसारास्यशोषहिक्कावमिभ्रमैः ॥ मोहवैवर्ण्यमूर्च्छाङ्गभङ्गाग्निसदनैर्युताम् ॥ इत्ययं ग्रन्थिवीसर्पो वातश्लेष्मप्रकोपजः ॥ १७ ॥

कफेन स्वहेतुदुष्टेन । पवनोऽपि स्वहेतुदुष्टः । तेनायं वातश्लैष्मिकः । तं कफं बहुधा भित्त्वा रक्तं वा दूषयित्वा इति अन्वयः । त्वगादिकमिति रक्तस्य विशेषणम् ॥

अपने कारणोंसे कुपित हुए कफसे रुकी हुई और अपने कारणोंसे दूषित हुई वायु कफको अनेक प्रकारसे भेदकर बढेहुए रुधिरवाले मनुष्यके शरीरकी त्वचामें, शिराओंमें, स्नायुओंमे और मासमे प्राप्त हुए रुधिरको दूषित करके लम्बी, गोल, मोटी, लाल और खरखरी गाठोकी पंक्तिको उत्पन्न करेहै, इन गाठोंके होनेसे तीव्रवेदना, ज्वर, श्वास, खाँसी, अतिसार, शोष, हिचकी, वमन, भ्रम, मोह, विवर्णता, मूर्च्छा, अगोंका टूटना और जठराग्निकी मन्दता होतीहै. इन लक्षण और कारणोंसे यह ग्रन्थिवीसर्प वायु तथा कफके प्रकोपसे उत्पन्न हुआ कहाजाताहै ॥ १५–१७ ॥

अथ कफपित्तजकर्दमविसर्पलक्षणम् ।

कफपित्ताज्ज्वरस्तम्भौ निद्रातन्द्राशिरोरुजः ॥ अंगावसादविक्षेपप्रलापारोचकभ्रमाः ॥ १८ ॥ मूर्च्छाग्निहानिर्भेदोऽस्थ्नां पिपासेन्द्रियगौरवम् ॥ आमोपवेशनं लेपः स्रोतसां स च सर्पति ॥ १९ ॥ प्रायेणामाशयं गृह्णन्नेकदेशं न चातिरुक् ॥ पिडकैरवकीर्णोऽतिपीतलोहितपाण्डुरैः ॥ ॥ २० ॥ स्निग्धोऽसितो मेचकाभो मलिनः शोफवान्गुरुः ॥ गम्भीरपाकः प्राज्योष्मा स्पृष्टः क्लिन्नोऽवदीर्यते ॥ २१ ॥ पंकवच्छीर्णमांसश्च स्पष्टस्नायुशिरागणः ॥ शवगन्धी च वीसर्पः कर्दमाख्यमुशन्ति तम् ॥ २२ ॥

स च सर्पति एकदेशमिति अन्वयः । पिडकैः पीडाकारिभिः अवकीर्णः व्याप्तः । असितः कृष्णः । मेचकः रूक्षकृष्णः । प्राज्योष्मा प्रचुरोष्मा । स्पृष्टः क्लिन्नोऽवदीर्यते, स्पृष्टः सन्नार्द्रो भवति विदीर्यते च । पङ्कत्वक् कर्दमवर्णा त्वक् यत्र सः । शीर्णमांसः गलितमांसः अत एव स्पष्टस्नायुशिरागणः ॥

कफसे तथा पित्तसे उत्पन्न होनेवाला जब कर्दमक वीसर्प उत्पन्न होताहै तो उसमे ज्वर, जडता, निद्रा, तन्द्रा, मस्तकमे पीडा, अंगोमें ग्लानि, विक्षेप, (हाथ पावोंको इधर उधर पटकना) बकवाद, अरुचि, भ्रम, मूर्च्छा, अग्निकी मन्दता, हडफूटन, तृषा, इन्द्रियोंमें भारीपन, आमसहित दस्तका आना और मुखादि स्रोतोंमे कफ लिपटासा रहताहै। यह विसर्प एक प्रदेशको ग्रहण करताहै। विशेष करके आमाशयमे फैलजाताहै, इसमें विशेष पीडा नहीं होती। अत्यन्त पीली, लाल तथा सफेद, फुसियोंसे व्याप्त हो, स्निग्ध, काला, रूखे काले रंगका, मलीन, सूजनयुक्त, भारी, गम्भीर पाकवाला, छूनेसे कालाहोजाय, फट जाय, कीचकी समान त्वचाका रग हो, मांसको गलाकर गिरा देवे, तथा स्नायु और शिराओंको स्पर्श करै और उसमे मुरदेकी समान वास आवे उसको कर्दमक विसर्प कहतेहै ॥ १८–२२ ॥

अथ सान्निपातिकविसर्पलक्षणम् ।

सन्निपातसमुत्थस्तु सर्वरूपसमन्वितः॥२३॥

सन्निपातसे उत्पन्न हुए विसर्पमें सब दोषोंके लक्षण होतेहैं ॥ २३ ॥

अथ क्षतागंतुनिमित्तकाष्टमवीसर्पलक्षणम् ।

बाह्यहेतोः क्षतात्क्रुद्धः सरक्तं पित्तमीरयन् ॥ विसर्पं मारुतः कुर्यात्कुलत्थसदृशैश्चितम् ॥ स्फोटैः शोथज्वररुजादाहाढ्यं श्यावशोणितम् ॥ २४ ॥

बाह्यहेतोः शस्त्रप्रहारव्यालदन्तनखाद्यागन्तुहेतोः । श्यावशोणितं कृष्णवर्णरक्तम् ॥

शस्त्र आदिके आघातसे, व्याघ्र सिंह आदि जानवरोंके दांत या नख आदिका लग जाना इत्यादि आगन्तुक कारणोंसे क्षत होकर प्रकोपको प्राप्त हुई वायु रुधिर और पित्तको प्रेरित करके विसर्पको उत्पन्न करेहै, यह विसर्प कुलथीके दानोंकी समान फुसियोंसे व्याप्त होताहै, काले रुधिरयुक्त होता है और सूजन, ज्वर, वेदना तथा दाहसे अत्यन्त पीडित होताहै ॥ २४ ॥

अथ विसर्पोपद्रवाः ।

ज्वरातिसारौ वमथुस्त्वङ्मांसदरणं क्लमः॥ अरोचकाविपाकौ च विसर्पाणामुपद्रवाः ॥ २५ ॥

ज्वर, अतीसार, वमन, त्वचाका फटना, मांसका फटना, ग्लानि, अरुचि और पकना ये सब विसर्पोंके उपद्रव हैं ॥ २५ ॥

अथ विसर्पस्य साध्यासाध्यता ।

सिद्ध्यन्ति वातकफपित्तकृता विसर्पाः सर्वात्मकः क्षतकृतश्च न सिद्धिमेति ॥ पित्तात्मकोऽञ्जनवपुश्च भवेदसाध्यः कृच्छ्राश्च मर्मसु भवन्ति हि सर्व एव ॥ २६ ॥

पित्तात्मकोऽञ्जनवपुः पित्तजः स च कज्जलवर्णः । सर्व एव साध्या अपि ॥

सान्निपातिक विसर्प और क्षतज विसर्प असाध्य हैं, पित्तसे उत्पन्नहुआ विसर्प जो काले रंगका होय तो असाध्य है, वातसे उत्पन्न हुआ विसर्प, कफसे उत्पन्न हुआ विसर्प और विना काले रंगका पित्तसे उत्पन्न हुआ विसर्प साध्य है, साध्य विसर्पभी जो मर्मस्थानोंमे उत्पन्न होयँ तो असाध्य जानने ॥ २६ ॥

अथ विसर्पचिकित्सा ।

विरेकवमनालेपसेचनास्रविमोक्षणैः ॥ उपाचरेद्यथादोषं विसर्पानविदाहिभिः ॥ ॥ २७ ॥ रास्ना नीलोत्पलं दारु चन्दनं मधुकं बला ॥ घृतक्षीरयुतो लेपो वातवीसर्पनाशनः ॥ २८ ॥

चन्दनमत्र रक्तं प्रयोज्यम् ॥

कशेरुशृङ्गाटकपद्मगुन्द्रैः सशैवलैः सोत्पलकर्दमैश्च ॥ वस्त्रान्तरैः पित्तकृते विसर्पे लेपो विधेयः सघृतः सुशीतः ॥ २९ ॥ त्रिफलापद्मकोशीरसमंगाकरवीरकम् ॥ नलमूलमनन्ता च लेपः श्लेष्मविसर्पके ॥ ३० ॥

समंगा लज्जालुः ॥

वातपित्तप्रशमनमग्निवीसर्पणे हितम् ॥ वातश्लेष्महरं कर्म ग्रन्थिवीसर्पणे हितम्॥ ॥ ३१ ॥ पित्तश्लेष्मप्रशमनं हितं कर्दमसंज्ञके ॥ त्रिदोषजे क्रियां कुर्याद्विसर्पे त्रितयापहाम् ॥ ३२ ॥ शिरीषयष्टीनतचन्दनैलामांसीहरिद्राद्वयकुष्ठबालैः ॥ लेपो दशाङ्गः सघृतः प्रयोज्यो विसर्पकुष्ठज्वरशोथहारी ॥ ३३ ॥

नतं तगरम् । चन्दनं रक्तं ग्राह्यम् । इति दशांगो लेपः ॥

परिषेकाः प्रलेपाश्च शस्यन्ते पञ्चवल्कलैः ॥ पद्मकोशीरमधुकैश्चन्दनैर्वा विसर्पणे ॥ ३४ ॥ भूनिम्बवासाकटुकापटोलीफलत्रयीचन्दननिम्बसिद्धः ॥ विसर्पदाहज्वरशोथकण्डूविस्फोटतृष्णावमिहृत्कषायः ॥ ३५ ॥ कुष्ठेषु यानि सर्पींषि व्रणेषु विविधेषु च ॥

विसर्पे तानि योज्यानि सेकालेपनभोजनैः ॥ ३६ ॥

जिनसे दाह उत्पन्न न होय ऐसे विरेचन, वमन तथा लेपन, सेचन और रक्तमोक्षणसे विसर्पका उपचार करना चाहिये, और उपचार करते समय 'यह विसर्प किस दोषसे उत्पन्न हुआ है' ऐसा अवश्य ध्यान देना चाहिये।

रासना, नील कमल, देवदारु, लाल चन्दन, मुलैठी और खिरैटी इनको घी और दूधमें पीसकर लेप करनेसे वातका विसर्प नष्ट होजाताहै।

कसेरु, सिंघाडे, पद्माख, गुन्द्रवटेर, सिवार, कमल और कींच इनको पीसकर घीमें मिलाकर वस्त्रमें रखकर शीतल लेप करनेसे पित्तका विसर्प नष्ट होजाताहै।

हरड, वहेडा, आमला, पद्माख, खस, लज्जावन्ती, कनेर, नरसलकी जड और लाल जवासा इनका लेप करनेसे कफका विसर्प नष्ट होताहै।

आग्नेय नामक विसर्प उत्पन्न होय तो वात तथा पित्तको शमन करना हितकारक है।

ग्रन्थि नामक विसर्प उत्पन्न हुआ होय तो वायुको तथा कफको शमन करना हितकारी है।

कर्दमक नामक विसर्प उत्पन्न हुआ होय तो पित्तको तथा कफको शमन करना हितकारी है।

सान्निपातिक जो विसर्प उत्पन्न होय तो त्रिदोषको शमन करनेवाली क्रिया करनी चाहिये।

सिरसकी छाल, मुलैठी, तगर, लालचन्दन, इलायची, बालछड, हलदी, दारुहलदी, कूट और सुगन्धवाला इन दश पदार्थोंको पीसकर, घीमें मिलाकर लेप करनेसे विसर्प, कोढ, ज्वर और सूजन नष्ट होजातीहै। इसको 'दशांग लेप' कहतेहैं।

पंचवल्कलोंका अथवा चन्दनका अथवा पद्माख, खस और मुलैठी इनके जलका सेचन करनेसे और गाढा प्रलेप करनेसे विसर्प नष्ट होजाताहै।

चिरायता, अडूसा, कुटकी, कडवे परवल, हरड, वहेडा, आमले, लाल चन्दन और नीम इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे विसर्प, दाह, ज्वर, सूजन, खुजली, विस्फोटक, तृषा और वमन ये सब दूर होजातेहैं।

कुष्ठरोगमें तथा अनेक प्रकारके व्रणोपर जो जो घी कहेहैं उनका सेचन, लेपन और भोजनमें विसर्प रोगीको उपयोग करावे ॥ २७-३६ ॥

अथ करंजतैलम्।

करञ्जसप्तच्छदलांगलीकस्नुह्यर्कदुग्धानलभृंगराजैः ॥ तैलं निशामूत्रविषैर्विपक्वं विसर्पविस्फोटविचर्चिकाघ्नम् ॥ ३७ ॥

करञ्ज, सतौना, कलिहारी, थूहरका दूध, आकका दूध, चीता, भागरा, हलदी, गोमूत्र और वत्सनाभ इनसे पकाये हुए तेलकी मालिस करनेसे विसर्प, विस्फोट और विचर्चिका नष्ट होजातीहै ॥ ३७ ॥

कुष्ठामयस्फोटमसूरिकोक्तचिकित्सयाप्याशु हरेद्विसर्पान् ॥ सर्वान्विपक्वान्परिशोध्य धीमान्व्रणक्रमेणोपचरेद्यथोक्तम् ॥ ३८ ॥

इति विसर्पचिकित्सा।

कुष्ठरोग, स्फोटरोग और मसूरिकारोगमें जो चिकित्सा कहीहै, उसी चिकित्सासे तत्काल विसर्पका हरण करै और बुद्धिमान् वैद्य पके हुए सब विसर्पोंका व्रणकी चिकित्सासे उपचार करै ॥ ३८ ॥

इति विसर्पाधिकारः सपूर्णः।

अथ स्नायुरोगाधिकारः।

तत्र स्नायुनिदानं लक्षणं च।

शाखासु कुपितो दोषः शोथं कृत्वा विसर्पवत् ॥ भित्त्वैव तं क्षते तत्र सोष्ममांसं विशोष्य च ॥ १ ॥ कुर्यात्तन्तुनिभं सूत्रं तत्पिण्डैस्तक्रशक्तुजैः ॥ शनैः-शनैः क्षताघाति छेदात्तत्कोपमावहेत् ॥ ॥ २ ॥ तत्पाताच्छोथशान्तिः स्यात्पुनः स्थानान्तरे भवेत् ॥ स स्नायुरिति विख्यातः क्रियोक्ताऽत्र विसर्पवत् ॥ ३ ॥ बाह्वोर्यदि प्रमादेन त्रुटयते जंघयोरपि ॥ संकोचं खंजतां चापि छिन्नो नूनं करोत्यसौ ॥ ४ ॥

हाथ, पाव, आदिशाखाओंमें कोपको-प्राप्त हुआ दोष विसर्पकी समान सूजनको उत्पन्न करैहै, उस सूजनको भेदकर उस क्षतक गरमही मासको सुखाकर तन्तुकी समान डोरेको उत्पन्न करैहै, उसको स्नायु रोग कहतेहैं और देशभाषामें उसका नाम नहरुवा है।

इस डोरेपर तक्रमे पिसे हुए सत्तुओकी लुपडी बांधनेसे धीरे धीरे क्षत (घाव) मेंसे बाहर निकलताहै । यह डोरा जो टूट जाय तो भारी सूजनको उत्पन्न करे है । और सपूर्ण निकल जाय तो सूजन शांत होजाती है । यह रोग एक स्थानमें शांत होकर फिर दूसरे स्थानमें प्रकट होताहै । इस रोगकी चिकित्सा विसर्पकी समान करनी चाहिये । जो यह डोरा मोहसे बाहूमे अथवा पांवकी पिण्डलियोंमे टूट जाय तो हाथको टूंटा और पांवको लूला करदेताहै ॥ १–४ ॥

अथ स्नायुरोगचिकित्सा ।

स्नेहस्वेदप्रलेपादि कर्म कुर्याद्यथोचितम् ॥ रामठं शीततोयेन पीतं स्नायुकरोगनुत् ॥ ॥ ५ ॥ स्वेदात्स्नायुकमत्युग्रं भेकः कांजिकसाधितः ॥ तद्वद्बब्बूलजं बीजं पिष्टं हन्ति प्रलेपनात् ॥ ६ ॥ गव्यं सर्पिस्त्र्यहं पीत्वा निर्गुण्डीस्वरसं त्र्यहम् ॥ पिबेत्स्नायुकमत्युग्रं हन्त्यवश्यं न संशयः ॥ ७ ॥ मूलं सुपव्या हिमवारिपिष्टं पानादिदं तन्तुकरोगमुग्रम् ॥ शान्ति नयेत्सव्रणमाशु पुंसां गन्धर्वगन्धेन घृतेन पीत्वा ॥ ८ ॥

गन्धर्वगन्धेन गन्धर्वगन्धोऽस्यास्तीति स गंधर्वगंधः अश्वगन्धः तेन ॥

अतिविषमुस्तकभार्ङ्गीविश्वौषधपिप्पलीविभीतक्यः ॥ चूर्णमिदं तन्तुघ्नं पुंसामुष्णेन वारिणा पीतम् ॥ ९ ॥ शिग्रुमूलदलैः पिष्टैः कांजिकेन सुसैन्धवैः ॥ लेपनं स्नायुकव्याधेः शमनं परमं मतम् ॥ ॥ १० ॥ अहिंस्रमूलकल्केन तोयपिष्टेन यत्नतः ॥ लेपसम्बन्धनात्तन्तुर्निःसरेन्नैव संशयः ॥ ११ ॥

इति स्नायुकस्य चिकित्सा ।

इस रोगपर स्नेहन, स्वेदन और प्रलेपादि योग्य चिकित्सा करनी चाहिये । हींगको पीसकर शीतल जलके साथ पीनेसे स्नायुरोग नष्ट होताहै ।

मैंढकको कांजीमे पकाकर उसका स्वेद देनेसे स्नायुकी उग्र पीडा शांत होतीहै ।

बबूरके बीजोको पीसकर लेप करनेसे स्नायुकी पीडा शांत होतीहै ।

तीन दिनतक गायका घी पीकर पश्चात् तीन दिनतक निर्गुण्डीका स्वरस पीनेसे अत्यन्त उग्र स्नायुकी पीडा भी अवश्य नष्ट होजातीहैं ।

कलौंजीकी जडको शीतल जलमे पीसकर पीनेसे स्नायुरोग (नहरुआ) अवश्य नष्ट होजाताहै । अथवा असगन्धसे पकाये हुए घृतको पीनेसे व्रणसहित उग्र स्नायुरोग नष्ट होताहै ।

अतीस, नागरमोथा, भारगी, सोंठ, पीपल और बहेडा इनका चूर्ण करकै गरमजलके साथ पीनेसे मनुष्योका स्नायुरोग दूर होताहै ।

सैंजिनेकी जड और पत्तोको सैंधेनिमकके साथ कांजीमें पीसकर लगानेसे स्नायुरोग अवश्य नष्ट होजाताहै । अहिंस्रा (हींस) की जडको जलमे पीसकर लेप करनेसे स्नायु निकलजाताहै इसमें सशय नहीं ॥ ५–११ ॥

इति स्नायुरोगाधिकारः सपूर्णः ।

अथ विस्फोटकाधिकारः ।

तत्र विस्फोटकविप्रकृष्टसन्निकृष्टनिदानम् ।

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्षारैरजीर्णाध्यशनातपैश्च ॥ तथर्तुदोषेण विपर्ययेण कुप्यन्ति दोषाः पवनादयस्तु ॥ १ ॥ त्वचमाश्रित्य ते रक्तं मांसास्थीनि प्रदूष्य च ॥ घोरान्कुर्वन्ति विस्फोटान्सर्वाञ्ज्वरपुरःसरान् ॥ २ ॥

ऋतुदोषेण ऋतुहेतुकशीतोष्णादीनामतियोगेन । विपर्ययेण ऋतूचिताहारविहारवैपरीत्येन त्वचमाश्रित्य त्वचि विस्फोटान्कुर्वन्ति इत्यर्थः । ज्वरपुरःसराञ्ज्वरपूर्वान् ॥

तीखे (चरपरे), खट्टे, तीक्ष्ण, उष्ण, दाहकारक, रुक्ष, और खारी पदार्थोसे, अजीर्णसे, भोजनपर भोजन करनेसे, धूपका सेवन करनेसे और ऋतुओंके फेरफारसे और उन ऋतुओंमे आहार-

विहारकी विपरीततासे कोपको प्राप्त हुए वातादिदोष रुधिर, मांस तथा अस्थियोंको दूषित करके ज्वरको उत्पन्न कर त्वचामें सब प्रकारके विस्फोटोंको उत्पन्न करे हैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथ विस्फोटसामान्यलक्षणम् ।

अग्निदग्धा इव स्फोटाः सज्वरा रक्तपित्तजाः ॥ क्वचित्सर्वत्र वा देहे विस्फोटा इति ते स्मृताः ॥ ३ ॥

रक्तपित्तजाः एतेन सर्वेषु विस्फोटकेषु रक्तपित्तयोः प्रधानकारणत्वम् । यथा शूलेषु वातस्य तथा वातानुगतिरपि बोद्धव्या । तथा च भोजः—

यदा रक्तश्च पित्तश्च वातेनानुगतं त्वचि ॥ अग्निदग्धनिभान्स्फोटान्कुरुतः सर्वदेहगान् ॥ ४ ॥

ज्वरयुक्त रुधिर तथा पित्तसे उत्पन्न हुआ अग्निसे जलाये हुएकी समान ऐसा फोडा शरीरके किसी एक प्रदेशमें अथवा सम्पूर्ण शरीरमें उत्पन्न हो उसको विस्फोटक कहते हैं । जिस प्रकार सर्वप्रकारकी पीडाओंमें वायुका प्राधान्य है उसीप्रकार सर्वप्रकारके विस्फोटकोंमें रुधिर और पित्तको प्रधानता है, विस्फोटकोंको उत्पन्न करनेमें रुधिर तथा पित्तको वायुका सम्बन्ध भी होताहै ऐसा जानना । क्योंकि भोज कहताहै कि "जब रुधिर तथा पित्त वायुके सम्बन्धी होते हैं तब शरीरके एक प्रदेशमें अथवा सर्वदेहकी त्वचामें अग्निसे जले हुएकी समान फोडोंको उत्पन्न करे हैं" ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथ वातजविस्फोटलक्षणम् ।

शिरोरुक् शूलभूयिष्ठं ज्वरतृट्पर्वभेदनम् ॥ सकृष्णवर्णता चेति वातविस्फोटलक्षणम् ॥ ५ ॥

शूलं तोदरूपम् ॥

मस्तकमें सुई चुभोने सरीखी विशेष पीडा, ज्वर, तृषा, संधियोंका टूटना और कालापन यह वातज विस्फोटके लक्षण जानने ॥ ५ ॥

अथ पित्तजविस्फोटकलक्षणम् ।

ज्वरदाहरुजापाकस्रावतृष्णासमन्वितम् ॥ पीतलोहितवर्णश्च पित्तविस्फोटलक्षणम् ॥ ६ ॥

ज्वर, दाह, वेदना, पकना, स्राव, तृषा और पीला तथा लालीपन यह पित्तज विस्फोटकके लक्षण जानने ॥ ६ ॥

अथ कफजविस्फोटकलक्षणम् ।

छर्द्यरोचकजाड्यानि कण्डूकाठिन्यपाण्डुताः ॥ यस्मिन्नरुक् चिरात्पाकः स विस्फोटः कफात्मकः ॥ ७ ॥

जाड्यम् जडत्वमंगानाम् ॥

वमन, अरुचि, अंगोमें जडता, खुजली, कठिनता, पाडुवर्ण, पीडारहित, और बहुत समयमें पकना ये कफज विस्फोटकके लक्षण जानने ॥ ७ ॥

अथ कफपित्तजविस्फोटकलक्षणम् ।

कण्डूर्दाहो ज्वरश्छर्दिरेतैश्च कफपैत्तिकः ॥ ८ ॥

खुजली, दाह, ज्वर और वमन, यह कफ तथा पित्त सम्बन्धी विस्फोटकके लक्षण जानने ॥ ८ ॥

अथ वातपित्तजविस्फोटकलक्षणम् ।

वातपित्तकृतो यस्तु तत्र स्यात्तीव्रवेदना ॥ ९ ॥

वायु तथा पित्त इनसे उत्पन्न हुए विस्फोटकमें तीव्र वेदना होती है ॥ ९ ॥

अथ वातकफजविस्फोटकलक्षणम् ।

कण्डूस्तैमित्यगुरुभिर्जानीयात्कफवातिकम् ॥ १० ॥

खुजली, अंगोमें जडता और भारीपन इन लक्षणोंसे वायु तथा कफ दोनोंका विस्फोटक जानना ॥ १० ॥

अथ त्रिदोषजविस्फोटकलक्षणम् ।

मध्यनिम्नोन्नतान्तश्च कठिनः स्वल्पपाकवान् ॥ दाहरागतृषामोहच्छर्दिमूर्च्छारु-

जाज्वराः ॥ प्रलापो वेपथुर्मूर्च्छा सोऽसाध्यश्च त्रिदोषजः ॥ ११ ॥

मोहो विपरीतं ज्ञानम् । मूर्च्छा सर्वथा ज्ञानशून्यता ॥

वीचमें नीचा, चारों ओर ऊंचा, कठिन, थोडे पकनेवाला, दाह, लाली, तृषा, मोह, वमन, मूर्छा, वेदना, ज्वर, वकवाद कंप और अत्यन्त वेहोशी इनसे जानना कि तीनो दोषोंसे उत्पन्न हुआ है, यह विस्फोटक असाध्य है ॥ ११ ॥

अथ रुधिरजन्यविस्फोटकलक्षणम् ।

वेदितव्याश्च रक्तेन पैत्तिकेन च हेतुना ॥ गुञ्जाफलसमा रक्ता रक्तस्रावा विदाहिनः॥ न ते सिद्धिं समायान्ति सिद्धैर्योगशतैरपि ॥ १२ ॥

पैत्तिकेन हेतुना पित्तस्य हेतुना कट्वादिना रक्तपित्तस्य तुल्यत्वात् । सिद्धैर्योगशतैरपि ते सिद्धिं न समायान्ति ॥

पित्तको कुपित करनेवाले जो कारण हैं उनही कारणोंसे रुधिर भी कुपित होताहै. इसप्रकार कुपित रुधिरसे उत्पन्न हुए विस्फोटक चौंटलीकी समान लाल, लाल स्राववाले और दाह करनेवाले होते हैं । यह विस्फोटक सैंकडो सिद्ध योगोंसे भी आराम नहीं होते । तीखे आदि जो पदार्थ पित्तको कुपित करनेके कारण हैं उनसेही रुधिर भी कुपित होना कहा है, उसका कारण यह है कि रुधिर और पित्त समान हैं ॥ १२ ॥

अथ विस्फोटकभेदाः ।

एते चाष्टविधा बाह्या आन्तरोऽपि भवेदयम् ॥ तस्मिन्नन्तर्व्यथा तीव्रा ज्वरयुक्ताऽभिजायते ॥१३ ॥ यस्मिन्वहिर्गते स्वास्थ्यं न वा तस्य वहिर्गतिः ॥ तत्र वातिकविस्फोटक्रिया कार्या विजानता॥१४॥

वाहरके विस्फोटक आठ प्रकारके हैं, कि जिनका निरूपण ऊपर किया है । जिस प्रकार विस्फोटक वाहर होते हैं उसी प्रकार एक भीतर भी होताहैं। और वह नवमा है। भीतरका विस्फोटक होय तो भीतर तीव्रपीड़ा होती है, और ज्वरभी होताहै । यह विस्फोटक जो वाहर निकले तो स्वस्थता होती है परन्तु समयपर यह विस्फोटक वाहर नहीं निकलता। इस विस्फोटकमे समझकर वैद्य वातसम्बन्धी विस्फोटककी समान चिकित्सा करे ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथ विस्फोटकोपद्रवाः ।

तृट्श्वासमांससङ्कोचदाहहिक्कामदज्वराः॥ विसर्पमर्मसंरोधास्तेषामुक्ता उपद्रवाः १५॥

मांससंकोचः मांसस्य शठितत्वम् । मर्मसंरोधो मर्मव्यथा । तेषां विस्फोटानाम् उपद्रवाणां लक्षणान्तरं केचित्पठन्ति ।

हिक्का श्वासोऽरुचिस्तृष्णा सांगमर्दो हृदि व्यथा । विसर्पज्वरहृल्लासा विस्फोटानामुपद्रवाः ॥ १६ ॥

तृपा, श्वास, मासका सडना, दाह, हिचकी, मद, ज्वर, विसर्प, और मर्मोमे व्यथा ये विस्फोटकके उपद्रव जानने ।

कितनेक वैद्य विस्फोटकोके उपद्रवोंको प्रकारान्तरसे कहते हैं । हिचकी, श्वास, अरुचि, तृपा, अगोंका टूटना, हृदयमे व्यथा, विसर्प, ज्वर और उवकाई यह विस्फोटकके उपद्रव हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथ विस्फोटकस्य साध्यत्वं कष्टसाध्यासाध्यता च ।

एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः ॥ सर्वरूपान्वितो घोरो ह्यसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥ १७ ॥

एक दोपसे उत्पन्न हुआ विस्फोटक साध्य है, दो दोपोंसे उत्पन्न हुआ विस्फोटक कष्टसाध्य है, सर्व दोषोंके लक्षणोंसे युक्त और अनेक उपद्रवयुक्त विस्फोटक भयकर है और असाध्य है ॥ १७ ॥

अथ विस्फोटकचिकित्सा ।

विस्फोटे लंघनं कार्यं वमनं पथ्यभोजनम् ॥ यथादोषवलं वीक्ष्य युक्तमुक्तं विरेचनम् ॥ १८ ॥ जीर्णशालियवा मुद्गा

मसूराश्चाढकी तथा ॥ एतान्यन्नानि विस्फोटे हितानि मुनयोऽब्रुवन् ॥ १९ ॥ द्वे पञ्चमूल्यौ रास्ना च दार्व्युशीरं दुरालभा ॥ गुडूची धान्यकं मुस्तमेषां क्वाथं पिबेन्नरः ॥ विस्फोटान्नाशयत्याशु समीरणनिमित्तकान् ॥ २० ॥ द्राक्षाकाश्मर्यखर्जूरपटोलारिष्टवासकैः ॥ कटुकालाजदुःस्पर्शैः सितायुक्तं तु पैत्तिकम् ॥ २१ ॥ भूनिम्बसवचावासात्रिफलेन्द्रजवत्सकैः ॥ पिचुमर्दपटोलाभ्यां कफजे मधयुक्शृतम् ॥ २२ ॥ किराततिक्तकारिष्टयष्ट्याह्वाम्बुदवासकैः ॥ पटोलपर्पटोशीरत्रिफलाकौटजान्वितैः ॥ क्वथितैर्द्वादशांगन्तु सर्वविस्फोटनाशनम् ॥ २३ ॥ विस्फोटव्याधिनाशाय तण्डुलाम्बुप्रयोजितैः ॥ बीजैः कुटजवृक्षस्य लेपः कार्यो विजानता ॥ २४ ॥ छिन्नापटोलभूनिम्बवासकारिष्टपर्पटैः ॥ खदिराब्दयुतैः क्वाथो हन्ति विस्फोटकज्वरम् ॥ २५ ॥ चन्दनं नागपुष्पञ्च सारिवा तण्डुलीयकम् ॥ शिरीषवल्कलं जातीलेपः स्याद्दाहनाशनम् ॥ २६ ॥ उत्पलं चन्दनं लोध्रमुशीरं सारिवाद्वयम् ॥ जलपिष्टेन लेपेन स्फोटदाहार्तिनाशनम् ॥ २७ ॥ पुत्रजीवस्य मज्जानं जले पिष्ट्वा प्रलेपयेत् ॥ कालस्फोटं विषस्फोटं सद्यो हन्ति सवेदनम् ॥ २८ ॥ वक्षग्रन्थिं गलग्रथिं कर्णग्रन्थिश्च नाशयेत् ॥ हन्याच्च स्फोटकं ताम्रं पुत्रजीवो विनाशयेत् ॥ २९ ॥

इति विस्फोटस्य चिकित्सा।

दोषका बलाबल विचार कर लघन, वमन और पथ्य-भोजन करावे तथा विरेचन देवे, यह विस्फोटकपर हितकारी है।

पुराने लाल चावल, जौ, मूग, मसूर और अडहर यह सब अन्न विस्फोटकरोगीको हितकारी हैं, ऐसामुनियोंने कहा है।

वृहत्पचमूल, लघुपंचमूल, रासना, दारुहलदी, खस, धमासा, गिलोय, धनियाँ और नागरमोथा इनका क्वाथ पीनेसे वातज विस्फोटक नष्ट होताहै।

दाख, कुम्भेर, खजूर, परवल, नीम, अडूसा, कुटकी, धानकी खीलें और धमासा इनका क्वाथ बनाकर मिश्री डालकर पीनेसे पित्तजन्य विस्फोटक नष्ट होताहै।

चिरायता, वच, अडूसा, हरड, बहेडा, आमला, इन्द्रजौ, कुडा, नीम और कडवे परवल इनका क्वाथ बनाकर सहत डालकर पीनेसे कफजन्य विस्फोटक नष्ट होजाताहै।

चिरायता, नीम, मुलैठी, नागरमोथा, अडूसा, कडवे परवल, पित्तपापडा, खस, हरड, बहेडा, आमले और इन्द्रजौ इन बारह औषधियोंका क्वाथ बनाकर पीनेसे सर्वप्रकारके विस्फोटक नाश होतेहैं। इसको द्वादशांग क्वाथ कहतेहैं।

इन्द्रजौको चावलोंके जलमें पीसकर पीनेसे विस्फोटक नष्ट होतेहैं।

गिलोय, कडवे परवल, चिरायता, अडूसा, नीम, पित्तपापडा, खैर और नागरमोथा इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे विस्फोटक ज्वर नष्ट होताहै।

लालचदन, नागकेसर, सारिवा, चौलाई, सिरसकी छाल और चमेली इनका लेप करनेसे विस्फोटकका दाह दूर होजाताहै।

कमल, लालचदन, लोध, खस और दोनो प्रकारकी सारिवा इनको जलमें पीसकर लेप करनेसे विस्फोटककी दाहकी पीडा शान्त होजाती है।

पतिजियाकी मींगको जलमें पीसकर लेप करनेसे काले फोडे, विषैले फोडे, और उनकी वेदना तत्काल शान्त होजाती है।

जियापोतेका लेप करनेसे कोखकी गांठ, गलेकी गांठ, कानकी गाठ और लाल फोडे तत्काल नष्ट होजाते-है ॥ १८–२९ ॥

इति विस्फोटकाधिकारः सपूर्णः।

अथ फिरंगरोगाधिकारः।

तत्र फिरंगशब्दनिरुक्तिः।

फिरंगसंज्ञके देशे बाहुल्येनैव यद्भवेत् ॥

स्मात्फिरंग इत्युक्तो व्याधिर्व्याधिवि-
शारदैः ॥ १ ॥

यह रोग फिरग नामक देशमें विशेष करके होताहै, इस कारण व्याधियोंको जाननेवाले प्रवीण वैद्य इसको फिरग रोग कहतेहैं ॥ १ ॥

अथ फिरंगनिदानम् ।

गन्धरोगः फिरंगोऽयं जायते देहिनां ध्रुवम्॥ फिरंगिणोऽङ्गसंसर्गात्फिरंगिण्याः प्रसंगतः ॥ २ ॥ व्याधिरागन्तुजो ह्येष दोषाणामत्र संक्रमः ॥ भवेत्तल्लक्षयेद्देषां लक्षणैर्भिषजांवरः ॥ ३ ॥

फिरंगिण्याः प्रसंगत इति विशेषार्थम् ॥

यह गंधरोग अर्थात् गंधसे होनेवाला रोग है, यह फिरंगी मनुष्योंके संसर्गसे और फिरगदेशकी स्त्रियोंके प्रसंगसे उत्पन्न होताहै ।

ऐसा होनेसे यह रोग आगन्तुक है और इसमें दोषोंका सम्बन्ध पीछे होता है । उत्तम वैद्य " कौनसे दोषकी बाहुल्यतासे यह रोग हुआ है " उन दोषोंके लक्षण अपनी बुद्धिके अनुसार जाने ।

फिरंगी देशकी स्त्रियोंके साथ प्रसंग करनेसे यह रोग विशेष करके होताहै इस सूचनानुसार प्रथम वचनसे समझानेपर भी ठीक रीतिसे कहाहै ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ फिरंगरोगपूर्वरूपम् ।

फिरंगस्त्रिविधो ज्ञेयो बाह्य आभ्यन्तरस्तथा ॥ बहिरन्तर्भवश्चापि तेषां लिंगानि च ब्रुवे ॥ ४ ॥ तत्र बाह्यः फिरंगः स्याद्विस्फोटसदृशोऽल्परुक् ॥ स्फुटितो व्रणवद्वेद्यः सुखसाध्योऽपि स स्मृतः ॥ ॥ ५ ॥ सन्धिष्वाभ्यन्तरः स स्यादामवात इव व्यथाम् ॥ शोथञ्च जनयेदेष कष्टसाध्यो बुधैः स्मृतः ॥ ६ ॥

बाहरका, भीतरका और बाहर तथा भीतर इस प्रकार यह रोग तीन प्रकारका है अब इनके लक्षण कहता हूँ । बाहरका फिरग विस्फोटककी समान होताहै, थोडी पीडा होतीहै और व्रणकी समान फूटताहै इस बाहरके फिरगरोगको वैद्य सुखसाध्य कहतेहैं । भीतरका फिरग संधियोंमे होताहै, आमवातकी समान पीडा करताहै और सूजनको उत्पन्न करताहै । इस भीतरके फिरगको वैद्य कष्टसाध्य कहतेहैं (तीसरे प्रकारके फिरगमें दोनों प्रकारके लक्षण होतेहैं) ॥ ४–६ ॥

अथ फिरंगस्योपद्रवाः ।

कार्श्यं बलक्षयो नासाभंगो वह्नेश्च मन्दता ॥ अस्थिशोषोऽस्थिवक्रत्वं फिरंगोपद्रवा अमी ॥ ७ ॥

कृशता, बलका नाश, नाकका बैठ जाना, अग्निकी मंदता, अस्थियोमे शोष, और हड्डियोंका टेढा तिरछा होजाना, यह फिरगके उपद्रव जानने ॥ ७ ॥

अथ फिरंगस्य साध्यत्वं कष्टसाध्यासाध्यता च ।

बहिर्भवो भवेत्साध्यो नवीनो निरुपद्रवः॥ आभ्यन्तरस्तु कष्टेन साध्यः स्यादयमामयः ॥ ८ ॥ बहिरन्तर्भवो जीर्णो क्षीणस्योपद्रवैर्युतः ॥ व्याप्तो व्याधिरसाध्योऽयमित्याहुर्मुनयः पुरा ॥ ९ ॥

बाहरका उत्पन्न हुआ नवीन और उपद्रव रहित फिरग साध्य है । भीतरका फिरग कष्टसाध्य है, बाहर तथा भीतर इन दोनों प्रकारसे उत्पन्न हुआ, क्षीण शरीरवाले मनुष्योंके उत्पन्न हुआ, पुराना, उपद्रवयुक्त और व्याप्त हुआ फिरग रोग असाध्य है, ऐसा प्राचीन ऋषियोंने कहा है ॥ ८ ॥ ९ ॥

अथ फिरंगचिकित्सा ।

तत्र कर्पूररसः ।

फिरंगसंज्ञकं रोगं रसः कर्पूरसंज्ञकः ॥ अवश्यं नाशयेदेतदूचुः पूर्वचिकित्सकाः ॥ १० ॥ लिख्यते रसकर्पूरप्राशने विधिरुत्तमः ॥ अनेन विधिना खादेन्मुखे शोथं न विन्दति ॥ ११ ॥ गोधूमचूर्णं सन्नीय विदध्यात्सूक्ष्मकूपिकाम् ॥ तन्मध्ये निक्षिपेत्सूतं चतुर्गुंजामितं भिषक् ॥ १२ ॥ ततस्तु गुटिकां

कुर्याद्यथा न दृश्यते बहिः ॥ सूक्ष्मचूर्णे लवंगस्य तां वटीमवधूलयेत् ॥ १३ ॥ दन्तस्पर्शो यथा न स्यात्तथा तामम्भसा गिलेत् ॥ ताम्बूलं भक्षयेत्पश्चाच्छाकाम्ललवणांस्त्यजेत् ॥ श्रममातपमध्वानं विशेषात्स्त्रीनिषेवणम् ॥ १४ ॥

रसकपूरको खानेसे फिरंगरोग अवश्य नष्ट होजाताहै, ऐसा प्राचीन वैद्योंने कहा है । अत्र रसकपूर खानेकी विधि कहतेहैं कि जिस प्रकार खानेसे मुखमें छाले नहीं पडते । गेहूँके आटेको पानीमें सानकर उसकी छोटी २ कुलिये बनालेवे उनमें वैद्य चार २ रत्तीभर रसकपूर रखकर गोलियां बनालेवे जिससे कि पारा बाहर न दीखे फिर उन गोलियोंको लौंगके बारीक चूर्णमें लुटाकर ऐसी रीतिसे पानीके साथ निगलजावे कि जिससे दांत न लगे और इसके पश्चात् नागरवेलका पान खाय । रसकपूरको खानेवाला मनुष्य शाक, खारीपदार्थ, खट्टे पदार्थ, परिश्रम, धूप, मार्ग और मैथुनको त्यागदेवे ॥ १०–१४ ॥

अथ सप्तशालिवटी ।

पारदष्टङ्कमानः स्यात्खदिरष्टंकसंमितः ॥ आकारकरभश्चापि ग्राह्यष्टंकद्वयोन्मितः ॥ टंकत्रयोन्मितं क्षौद्रं खल्वे सर्वं विनिक्षिपेत् ॥ १५ ॥ संमर्द्य तस्य सर्वस्य कुर्यात्सप्तवटीर्भिषक् ॥ स रोगी भक्षयेत्प्रातरेकैकामम्बुना वटीम् ॥ वर्जयेदम्ललवणं फिरङ्गस्तस्य नश्यति ॥ १६ ॥

पारा २४ रत्ती, कत्था २४ रत्ती, अकरकरा ४८ रत्ती और सहत ७२ रत्ती, इन सबको खरलमें डालकर खूब पीसकर सात गोलिया बनालेवे, प्रातःकाल एक एक गोली जलके साथ खाय और खट्टे तथा खारी पदार्थोका त्याग-कर देवे तो फिरंगरोग नष्ट होजाताहै । यह गोली सप्तशालिवटी इस नामसे कहीजातीहैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथ धूमप्रयोगः ।

पारदः कर्षमात्रः स्यात्तावानेव हि गन्धकः ॥ तण्डुलाश्चाक्षमात्राः स्युरेषां कुर्वीत कज्जलीम् ॥ १७ ॥ तस्याः सप्तवटीः कुर्यात्ताभिर्धूमं प्रयोजयेत् ॥ दिनानि सप्त तेन स्यात्फिरंगान्तो न संशयः ॥ १८ ॥

पारा १ तोला, गन्धक १ तोला और चावल १ तोला इनकी कज्जली बनाकर सात गोलियें बनालेवे सात दिनतक इन गोलियोका धुआँ पीनेसे फिरंगरोग नष्ट होजाता-है ॥ १७ ॥ १८ ॥

पीतपुष्पबलापत्ररसैष्टंकमितं रसम् ॥ हस्ताभ्यां मर्दयेत्तावद्यावत्सूतो न दृश्यते ॥ ततः संस्वेदयेद्धस्तावेवं वासरसप्तकम् ॥ ॥ १९ ॥ त्यजेल्लवणमम्लञ्च फिरङ्गस्तस्य नश्यति ॥ चूर्णयेन्निम्बपत्राणि पथ्यानिम्बाष्टमांशिकाः ॥ धात्री च तावती रात्री निम्बषोडशभागिका ॥ २० ॥ शाणमानमिदं चूर्णमश्नीयादम्भसा सह ॥ फिरंगं नाशयत्येव बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ॥ २१ ॥

चौबीस रत्ती पारेको पीले फूलकी खिरैंटीके पत्तोंके रसमें मिलाकर हाथोंसे ऐसा मले कि पारा न दीखे । फिर दोनों हाथोंको अग्निसे सेके यह विधि सात दिनतक करे और खारी तथा खट्टे पदार्थोंको त्यागदेवे तो फिरंगरोग अवश्य नष्ट होजाताहै ।

नीमके पत्तोंका चूर्णकर उसमें आठवेंभाग हरडका चूर्ण मिलावे, आठवां भाग आमलोका चूर्ण मिलावे और सोलहवा भाग हलदीका चूर्ण डाले । इसमेंसे नित्य चौबीस रत्ती चूर्ण जलके साथ खाय तो बाहरका तथा भीतरका फिरंगरोग अवश्य नष्ट होजाताहै ॥ १९–२१ ॥

चोपचीनीभवं चूर्णं शाणमानं समाक्षिकम् ॥ फिरंगव्याधिनाशाय भक्षयेल्लवणं त्यजेत् ॥ २२ ॥ लवणं यदि वा त्यक्तुं न शक्नोति यदा जनः ॥ सैन्धवं स हि भुञ्जीत मधुरं परमं हितम् ॥ २३ ॥

चौबीस रत्ती चोबचीनीके चूर्णको सहतमें मिलाकर खावे और इसपर निमकका त्याग करदेवे तो फिरंगरोग नष्ट

होजाताहै । जो निमकका त्याग न करसके तो उसके अभावमें सैंधानिमक खाय कारण यह है कि सैंधानिमक स्वादिष्ट और अत्यन्त हितकारी है ॥ २२ ॥ २३ ॥

पारदः कर्षमात्रः स्यात्तावन्मात्रं तु गन्धकम् ॥ तावन्मात्रस्तु खदिरस्तेषां कुर्याच्च कज्जलीम् ॥ रजनीकेसरत्रुटयो जीरयुग्मं यवानिका ॥ २४ ॥ चन्दनद्वितयं कृष्णा वांसी मांसी च पत्रकम् ॥ अर्द्धकर्षमितं सर्वं चूर्णयित्वा च निक्षिपेत् ॥ तत्सर्वं मधुसर्पिर्भ्यां द्विपलाभ्यां पृथक्पृथक् ॥ ॥ २५ ॥ मर्दयेदथ तत्खादेदर्द्धकर्षमितं नरः ॥ व्रणः फिरंगरोगोत्थस्तस्यावश्यं विनश्यति ॥ २६ ॥ अन्योऽपि चिरजातोऽपि प्रशाम्यति महाव्रणः ॥ एतद्भक्षयतः शोथो मुखस्यान्तर्न जायते ॥२७॥ वर्जयेदत्र लवणमेकविंशतिवासरान् ॥

इति फिरङ्गरोगाधिकार. ।

पारा १ तोला, गन्धक एक तोला और पपरिया कत्था एक तोला लेकर कजली बनावे, फिर हलदी, नागकेसर, छोटी इलायची, बडी इलायची, जीरा, कालाजीरा, अजवायन, चन्दन, लालचन्दन, पीपल, वंशलोचन, बालछड और तेजपात इन सबको एकत्र पीसकर आधा-तोला चूर्ण उक्त कजलीमें मिलालेवे फिर इन सबको आठ-तोले सहतमें और आठ तोले घीमें मिलाकर इसमेंसे छे मासे नित्य खाय तो फिरंगरोग अवश्य नष्ट होजाताहै । अन्यान्य व्रण और बहुत दिनोंके पुराने व्रण भी इससे अवश्य नष्ट होजातेहैं । इस औषधिके खानेवालेके मुखमें सूजन नहीं होती । इस औषधिको इकीस दिनतक खाना चाहिये जबतक औषधिकरे तबतक निमक नहीं खाना चाहिये ॥ २४–२७ ॥

इति फिरंगरोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ मसूरिकाधिकारः ।

तत्र मसूरिकाया विप्रकृष्टसन्निकृष्टनिदानं सम्प्राप्तिश्च ।

कट्वम्ललवणक्षारविरुद्धाध्यशनाशनैः ॥ दुष्टनिष्पावशाकाद्यैः प्रदुष्टपवनोदकैः ॥ १ ॥ क्रूरग्रहेक्षणाच्चापि देशे दोषसमुद्भवाः ॥ जनयन्ति शरीरेऽस्मिन्दुष्टरक्तेन संगताः ॥ मसूराकृतिसंस्थानाः पिडकास्ता मसूरिकाः ॥ २ ॥

क्षारो यवक्षारादिः । विरुद्धाध्यशनाशनैः कट्वम्लादिविरुद्धान्नाशनैः । अथ च अध्यशनाशनम् अधिकमशनमध्यशनम् । दुष्टनिष्पावशाकाद्यैः दुष्टं निष्पावशाकम् आद्यशब्दान्मध्वालुकादिकैः । प्रदुष्टपवनोदकैः सविषकुसुमादिसंसर्गात् । क्रूरग्रहेक्षणाच्चापि देशे क्रूरग्रहा राहुशनैश्चरादयस्तेषामीक्षणाद्दृष्टेः यस्मिन्देशे क्रूरग्रहदृष्टिस्तत्रापि मसूरिकोत्पत्तिरित्यर्थः । मसूराकृतिसंस्थानाः मसूरस्य या आकृतिस्तद्वत्संस्थानमाकृतिर्यासां ताः ॥

तीखे (चरपरे), खट्टे, नमकके तथा जवाखारादि खारी और परस्पर विरुद्ध पदार्थ इनको खानेसे, अधिक भोजन करनेसे, निष्पाव लोबिया, उडद तथा मीठे, खट्टे आदि शाकोंको भक्षण करनेसे, विषैले पुष्पादिकके संसर्गसे दूषित हुई पवन और जलके योगसे और देशमें राहु तथा शनैश्चर आदि क्रूर ग्रहोंकी दृष्टि पडनेसे वातादि दोष कुपित होकर दूषित हुए रुधिरके साथ मिलकर मसूरकी समान आकारवाली फुंसिये उत्पन्न होतीहैं उनको मसूरिका कहते-हैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथ मसूरिकापूर्वरूपम् ।

तासां पूर्वं ज्वरः कण्डूर्गात्रभंगोऽरतिर्भ्रमः ॥ त्वचि शोथः सवैवर्ण्यो नेत्ररागस्तथैव च ॥ ३ ॥

जब मसूरिका होनेको होतीहै तो प्रथम ज्वर आताहै, खुजली होतीहै, अंग टूटने लगतेहैं, किसी पदार्थ पर रुचि उत्पन्न नहीं होती, भ्रम होताहै, त्वचामें सूजन, वर्ण बदल जाताहै और नेत्रोंमें लाली होतीहै ॥ ३ ॥

अथ वातजमसूरिकालक्षणम्।

स्फोटाः कृष्णारुणा रूक्षास्तीव्रवेदनयान्विताः॥ कठिनाश्चिरपाकाश्च भवन्त्यनिलसम्भवाः॥ ४॥

काली, लाल, रूखी, तीव्र वेदनावाली, कठिन और बहुत समयमे पकनेवाली, ऐसी फुंसी उत्पन्न होयँ तो जानना कि वातसे मसूरिका उत्पन्न हुई हैं॥ ४॥

अथ पित्तजमसूरिकालक्षणम्।

सन्ध्यस्थिपर्वणां भेदः कासः कम्पोऽरतिर्भ्रमः॥ शोषस्ताल्वोष्ठजिह्वानां तृष्णा चारुचिसंयुता॥ ५॥ रक्ताः पीताः सिताः स्फोटाः सदाहास्तीव्रवेदनाः॥ भवन्त्यचिरपाकाश्च पित्तकोपसमुद्भवाः॥ ६॥

पित्तके प्रकोपसे उत्पन्न हुई मसूरिकामें संधि, अस्थि और पर्वोंमे भेदन सरीखी पीडा होतीहै, खाँसी, कंप, किसी पदार्थमे इच्छा नहीं होती, भ्रम, तालु, होठ तथा जीभ सूखजातीहै, अरुचिके साथ तृषा बढतीहै और फुंसी लाल, पीली, सफेद, दाहयुक्त, तीव्र पीडायुक्त और तत्काल पकजातीहैं॥ ५॥ ६॥

अथ रुधिरजन्यमसूरिकालक्षणम्।

विड्भेदश्चाङ्गमर्दश्च दाहस्तृष्णारुचिस्तथा॥ मुखपाकोऽक्षिपाकश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः॥ रक्तजायां भवन्त्येते विकाराः पित्तलक्षणाः॥ ७॥

रुधिरके कुपित होनेसे जो मसूरिका होतीहै उसमें अतीसार (दस्तोका आना), अंगोका टूटना, दाह, तृषाका लगना तथा अरुचि, मुखमें पाक, आखोंका पकना और अत्यंत दारुण तीव्र ज्वर होताहै, यह सब पित्तके प्रकोप सम्बन्धी लक्षण जानने॥ ७॥

अथ कफजमसूरिकालक्षणम्।

श्वेताः स्निग्धा भृशं स्थूलाः कण्डूरा मन्दवेदनाः॥ मसूरिकाः कफोद्भूताश्चिरपाकाः प्रकीर्तिताः॥ ८॥

कफके प्रकोपसे जो मसूरिका होतीहै वह सफेद-चिकनी, अत्यत मोटी, खुजली, मंदवेदनावाली और बहुत समयमे पकनेवाली ऐसी फुसी होतीहैं॥ ८॥

अथ त्रिदोषजमसूरिकालक्षणम्।

नीलाश्चिपिटविस्तीर्णा मध्ये निम्ना महारुजः॥ पूतिस्रावाश्चिरात्पाकाः प्रभूताः सर्वदोषजाः॥ ९॥

त्रिदोषसे उत्पन्न हुई मसूरिका नीली, चिपटी, विस्तारवाली, बीचमें नीची, अत्यंत वेदना युक्त, दुर्गंध, स्राववाली और बहुत देरमे पकनेवाली ऐसी फुसी होतीहैं॥ ९॥

अथ सप्तधातुगतमसूरिकाणां पृथक् पृथक् लक्षणानि।

तत्र रसगतमसूरिकालक्षणम्।

मसूरिकास्त्वचं प्राप्तास्तोयबुद्बुदसन्निभाः॥ स्वल्पदोषाः प्रजायन्ते भिन्नास्तोयं स्रवन्ति च॥ १०॥

त्वचं प्राप्ताः त्वक्छब्देनात्र रस उच्यते रसाश्रयत्वात्॥

रसमे होनेवाली मसूरिका अल्प दोषवाली होतीहैं, पानीके बबूलेकी समान और फोडनेसे जलका स्राव होताहै॥ १०॥

अथ रक्तजमसूरिकालक्षणम्।

रक्तस्था लोहिताकाराः शीघ्रपाकास्तनुत्वचः॥ साध्या नात्यथदुष्टास्तु भिन्ना रक्तं स्रवन्ति च॥ ११॥

साध्या रक्तस्था इत्यर्थः। नात्यर्थदुष्टास्तु अत्यर्थं दुष्टशोणिताः पुनर्न साध्याः किन्तु कष्टसाध्याः॥

रुधिरमे रहनेवाली मसूरिका लाल आकारवाली, तत्काल पकनेवाली, पतलीत्वचावाली और फोडने पर उसमेसे रुधिर निकलताहै, रुधिरमें रहनेवाली मसूरिका जो अत्यत दुष्ट रुधिरवाली न होय तो साध्य है और अत्यत दुष्ट रुधिरवाली होय तो कष्टसाध्य है॥ ११॥

अथ मांसगतमसूरिकालक्षणम् ।

मांसस्थाः कठिनाः स्निग्धाश्चिरपाकास्तनुत्वचः ॥ गात्रशूलाऽनिशंकण्डूमूर्च्छादाहतृषान्विताः ॥ १२ ॥

मांसमें रहनेवाली मसूरिका कठिन, स्निग्ध, बहुत समयमें पकनेवाली, पतलीत्वचावाली और गात्रोंमें शूल, निरंतर खुजली, मूर्छा, दाह तथा तृषा यह लक्षण होते हैं ॥ १२ ॥

अथ मेदोगतमसूरिकालक्षणम् ।

मेदोजा मण्डलाकारा मृदवः किञ्चिदुन्नताः॥ घोरज्वरपरीताश्च स्थूलाः स्निग्धाः सवेदनाः ॥ संमोहाऽरतिसन्तापाः कश्चिदाभ्यो विनिस्तरेत् ॥ १३ ॥

मेदमें होनेवाली मसूरिका मंडलाकारवाली होतीहैं, कोमल, कुछेक ऊची, मोटी, चिकनी, वेदनायुक्त, भयकर, ज्वरसे व्याप्त, और बेहोसी, व्याकुलता और संतापसे युक्त होतीहैं, इन मसूरिकाओंसे प्रायः कोईही बचता है ॥ १३ ॥

अथास्थिमज्जागतमसूरिकालक्षणम् ।

क्षुद्रा गात्रसमा रूक्षाश्चिपिटाः किञ्चिदुन्नताः ॥ मज्जोत्था भृशसम्मोहा वेदनारतिसंयुताः ॥ १४ ॥ भ्रमरेणेव विद्धानि कुर्वन्त्यस्थीनि सर्वतः ॥ छिन्दन्ति मर्मधामानि प्राणानाशु हरन्ति च ॥ १५ ॥

गात्रसमाः गात्रतुल्यवर्णाः । चिपिटाः चिपिटाकाराः । मज्जाग्रहणेन अस्थ्नोऽपि ग्रहणं तदाधारत्वात् । अत एवाग्रे भ्रमरेणेव विद्धानि कुर्वन्त्यस्थीनि सर्वत इति । मर्मधामानि मर्मस्थानानि ॥

अस्थि तथा मज्जामें रहनेवाली मसूरिका क्षुद्र होती हैं शरीरके रंगकी समान वर्णवाली हैं, रूखी, चिपटी, कुछेक ऊंची, अत्यतमोह, वेदना और व्याकुलतासे पीडित होती-हैं, मज्जाही हड्डियोंका सार हड्डियोंकी रोकनेवाली हैं, जबतक मज्जा हड्डियोंमें रहती है तबहीतक हड्डियोंकी दृढता है। मानों भौंरेकी समान हड्डी चारोंओरसे होती हैं, मर्म स्थानोको छेदनकर देती हैं और प्राणोको तत्काल नष्ट करदेती हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ शुक्रगतमसूरिकालक्षणम् ।

पक्काभाः पिडकाः स्निग्धाः श्लक्ष्णाश्चात्यर्थवेदनाः ॥ स्तैमित्याऽरतिसंमोहदाहोन्मादसमन्विताः ॥ १६ ॥ शुक्रजायां मसूर्यान्तु लक्षणानि भवन्ति हि ॥ निर्दिष्टं केवलं चिह्नं जीवनं न तु दृश्यते ॥ दोषमिश्रास्तु सप्तैता द्रष्टव्या दोषलक्षणैः ॥ १७ ॥

पक्काभाः पक्काकारा न तु पक्काः ॥ श्लक्ष्णाः कोमलाः । निर्दिष्टं केवलं चिह्नं न तु अस्याश्चिकित्सा युक्ता यतो जीवनं न दृश्यते । सप्ताप्येता दोषहेतुं विना न भवन्ति दोषमन्तरेण रसादिदुष्टेरसम्भवादत एवोक्तं दोषमिश्रा इत्यादिना ॥

वीर्यमें रहनेवाली मसूरिका पकती नहीं, किंतु पकनेकी समान होती है, स्निग्ध, कोमल, अत्यंत वेदनावाली, तथा स्तब्धता (जडता) हो, बेचैनी, मोह, दाह तथा उन्माद होताहै यह वीर्यगत मसूरिका केवल लक्षण जाननेके लिये कही है किंतु इसकी चिकित्सा करनी योग्य नहीं है क्योंकि इस मसूरिकाके होनेसे कभी मनुष्य बचही नहीं सक्ता ।

दोषके विना रसादिकका दुष्ट होना सम्भव नहीं इस कारण ये सातों प्रकारकी मसूरिका दोषोंके विना नहीं होती हैं इन सातोंप्रकारकी मसूरिकाओंमें उन उन दोषोंके लक्षण ऊपरके दोषोंके सम्बन्धसे जानने १६॥१७

अथ चर्मगतमसूरिकालक्षणम् ।

कण्ठरोधोऽरुचिस्तन्द्रा प्रलापाऽरतिसंयुताः ॥ दुश्चिकित्स्याः समुद्दिष्टाः पिडकाश्चर्मसंस्थिताः ॥ १८ ॥

कंठ रुकजाय, अरुचि, तन्द्रा, प्रलाप और बेचैनी होय तो मसूरिका ओंको चर्मजा जाननी । ये चर्मगत मसूरिका कष्टसाध्य हैं ॥ १८ ॥

अथ रोमगतमसूरिकालक्षणम्।

रोमकूपोन्नतिसमा रागिण्यः कफपित्तजाः॥ कासारोचकसंयुक्ता रोमान्त्या ज्वरपूर्विकाः॥ १९॥

जिसमें प्रथम ज्वर आवे, रोमांच हो आवे, रोमछिद्रोंकी बराबर ऊंची, लालवर्ण हो, खांसी, और अरुचि संयुक्त मसूरिका रोमतक पहुंच जाती हैं, ये मसूरिका कफ तथा पित्तसे होतीहै॥ १९॥

अथ मसूरिकायाःसुखसाध्यता।

त्वग्गता रक्तगाश्चैव पित्तजाः श्लेष्मजास्तथा॥ श्लेष्मपित्तकृताश्चैव सुखसाध्या मसूरिकाः॥ एता विनापि क्रियया प्रशाम्यन्ति शरीरिणाम्॥ २०॥

त्वग्गता रसगताः॥

रसमे प्राप्त हुई, रुधिरमे प्राप्त हुई, पित्तसे उत्पन्न हुई, कफसे उत्पन्न हुई और कफ तथा पित्त दोनोंसे उत्पन्न हुई मसूरिका सुखसाध्य हैं। प्राणियोंके उत्पन्न हुई ये मसूरिका चिकित्साके विनाभी शांत होजातीहैं॥ २०॥

अथ मसूरिकायाः कष्टसाध्यता।

वातजा वातपित्तोत्था वातश्लेष्मकृताश्च याः॥ कष्टसाध्या असाध्यास्तु यत्नादेता उपाचरेत्॥ २१॥

वातज, वात और पित्त दोषोंसे उत्पन्न हुई और वायु तथा कफ इन दोषोसे उत्पन्न हुई मसूरिका कष्टसाध्य हैं इस कारण इनकी चिकित्सा यत्नपूर्वक करनी चाहिये २१

अथ मसूरिकाणामसाध्यता।

असाध्याः सन्निपातोत्थास्तासां वक्ष्यामि लक्षणम्॥ प्रवालसदृशाः काश्चित्काश्चिज्जम्बूफलोपमाः॥ २२॥ लोहजालसमाः काश्चिदतसीफलसन्निभाः॥ आसां बहुविधा वर्णा जायन्ते दोषभेदतः॥ २३॥

प्रवालसदृशा इत्यादि–आसां प्रवालजम्बूफललोहगुटिकातसीफलसादृश्यं वर्णेन। अनुक्तवर्णग्रहार्थमाह–आसां बहुविधा वर्णा इति॥

सन्निपातसे (त्रिदोषसे) उत्पन्नहुई मसूरिका असाध्य है,इन मसूरिकाके लक्षण कहताहूं। इस मसूरिकाकी फुंसी कोई मूँगेकी समान लाल, कोई जामुनकी समान रंगवाली, कोई लोहेकी गोलीकी समान और कोई अलसीके फलकी समान रंगवाली होतीहै इसके सिवाय और भी अनेक प्रकारके वर्णवाली होतीहै॥ २२॥ २३॥

कासो हिक्का प्रमेहश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः॥ प्रलापारतिमूर्च्छाश्च तृष्णा दाहोऽतिघूर्णता॥ २४॥

दाहस्थाने दौर्गन्ध्य इति च पाठः॥

मुखेन प्रस्रवेद्रक्तं तथा घ्राणेन चक्षुषा॥ कण्ठे घुर्घुरकं कृत्वा श्वसित्यत्यर्थदारुणम्॥ २५॥ मसूरिकाभिभूतस्य यस्यैतानि भिषग्वरैः॥ लक्षणानीह दृश्यन्ते न देयं तस्य भेषजम्॥ २६॥

अतिघूर्णता अतिनिद्रा॥

प्रलाप, बेचैनी, मूर्च्छा, तृषा, हिचकी, प्रमेह, खाँसी, तीव्र और दारुण ज्वर, दाह, अत्यत निद्रा, दुर्गंधता, मुख नाकमेसे तथा नेत्रोंमेसे रुधिरका स्राव, कंठमे घुरघुर शब्दका होना, और दारुण श्वास यह सब लक्षण होंय तो वैद्य उस मसूरिकारोगीको असाध्य समझकर औषधि नही देवे॥ २४–२६॥

अथ मसूरिकारिष्टम्।

मसूरिकाभिभूतो यो भृशं घ्राणेन निश्वसेत्॥ स भृशं त्यजति प्राणांस्तृष्णावान्वायुदूषितः॥ २७॥

वायुदूषितः अपतानकादिवातव्याधिदूषितः॥

मसूरिका रोगसे पीडित जो मनुष्य नाकमेसे अत्यंत श्वास ले, अत्यत तृषासे पीडित हो और अपतानक आदि वातव्याधिवाला होय तो वह रोगी तत्काल मरजाताहै॥ २७॥

अथ मसूरिकायां शोथविशेषः।

मसूरिकान्ते शोथः स्यात्कूर्परे मणिबन्धके ॥ तथांसफलके वापि दुश्चिकित्स्यः सुदारुणः ॥ २८ ॥

दुश्चिकित्स्यः सुदारुणः दुश्चिकित्स्यः कष्टसाध्यः। दुःशब्दोऽत्र निषेधार्थः तेन असाध्य इत्येके ॥

काश्चिद्विनापि यत्नेन सिध्यन्त्याशु मसूरिकाः ॥ दृष्टाः कृच्छ्रतराः काश्चित्काश्चित्सिद्ध्यन्ति वा न वा ॥ काश्चिन्नैव तु सिध्यन्ति साध्यमानाः प्रयत्नतः ॥२९॥

मसूरिकाके अतमें हाथकी कोहनीके ऊपर, अथवा पहुंचेपर वा कन्धोंके ऊपर अत्यत दारुण सूजन होय तो उसको कष्टसाध्य जानना, कितनेक वैद्य इसको असाध्य कहतेहैं।

कितनी एक मसूरिका विनाही चिकित्साके तत्काल आराम होजातीहैं, कितनी एक मसूरिका अत्यन्त कष्टसाध्य भी दीखतीहैं, कितनी एक मसूरिका नष्टभी होजातीहैं अथवा नहीं भी नष्ट होतीं और कितनी एक मसूरिका यत्नपूर्वक चिकित्सा करनेसे भी आरोग्य नहीं होतीं ॥ ॥ २८ ॥ २९ ॥

अथ मसूरिकाचिकित्सा।

मसूरिकायां कुष्ठेषु लेपनादिक्रिया हिता॥ पित्तश्लेष्मविसर्पोक्ता क्रिया चात्र प्रशस्यते ॥ ३० ॥ श्वेतचन्दनकल्कोत्थं हिलमोचीभवं द्रवम् ॥ पिबेन्मसूरिकारम्भे नव वा केवलं रसम् ॥ ३१ ॥

हिलमोचिका शाकविशेषः हुरहुरेति लोके ॥

द्वौ पञ्चमूल्यौ रास्ना च धान्युशीरं दुरालभा ॥ सामृता धान्यकं मुस्तं जयेद्वातमसूरिकाम् ॥ ३२ ॥ मञ्जिष्ठाबहुपाल्लक्षशिरीषोदुम्बरत्वचः॥वातजायां मसूर्यां स्यात्प्रलेपः सर्वतो हितः ॥ ३३ ॥

बहुपाद्वटः ॥

गुडूची मधुकं द्राक्षा मोरटं दाडिमैः सह ॥ पाककाले प्रदातव्यं भेषजं गुडसंयुतम् ॥ तेन कुप्यति नो वायुः पाकं यान्ति मसूरिकाः ॥ ३४ ॥

मोरटम् ऐक्षवं मूलम् ॥

मसूरिकासु भुञ्जीत शालीन्मुद्गमसूरिकान् ॥ रसं मधुरमेवाद्यात्सैन्धवं चाल्पमात्रकम् ॥ पटोलमूलं क्वथितं मोरटस्वरसं तथा ॥ ३५ ॥

पटोलमूलं क्वथितमित्यत्र पटोलं क्वथितं चैव वा पाठः ॥

आदावेव मसूर्यां तु पित्तजायां प्रयोजयेत् ॥ निम्बः पर्पटकः पाठा पटोलश्चन्दनद्वयम् ॥ ३६ ॥ उशीरं कटुका धात्री तथा वासा दुरालभा ॥ एषां पानं शृतं शीतमुत्तमं शर्करान्वितम् ॥ ३७ ॥ मसूर्यां पित्तजायान्तु प्रयोक्तव्यं विजानता ॥ दाहे ज्वरे विसर्पे च व्रणे पित्ताधिकेऽपि च ॥ ३८ ॥ मसूर्यो रक्तजा नाशं यान्ति शोणितमोक्षणैः ॥ वासामुस्तकभूनिम्बत्रिफलेन्द्रयवासकम् ॥ ३९ ॥ पटोलारिष्टकं चापि क्वाथयित्वा समाक्षिकम् ॥ पिबेत्तेन प्रशाम्यन्ति मसूर्यः कफसम्भवाः ॥ ४० ॥

इन्द्रः इन्द्रयवः ॥

शिरीषोदुम्बरत्वग्भ्यां खदिरारिष्टजैर्दलैः ॥ कफोत्थासु मसूरीषु लेपः पित्तोत्थितासु च ॥ ४१ ॥ निम्बः पर्पटकः पाठा पटोलः कटुरोहिणी ॥ चन्दन द्वे उशीरश्च धात्री वासा दुरालभा ॥ ४२ ॥ एष निम्बादिकः क्वाथः पीतः शर्करयाऽन्वितः॥ मसूरी सर्वजां हन्ति विसर्पज्वरसंयुताम् ॥ ४३ ॥ उत्थिता प्रविशेद्या च तां पुनर्बाह्यतो नयेत् ॥ काञ्चनारत्वचः क्वाथस्ताप्यचूर्णावचूर्णितः ॥ ४४ ॥

ताप्यं सुवर्णमाक्षिकम् ॥

धात्रीफलं समधुकं कथितं मधुसंयुतम् ॥ मुखे कण्ठे व्रणे जाते गण्डूषार्थं प्रशस्यते॥ अक्ष्णोः सेकं प्रशंसन्ति गवेधुमधुकाम्बुना ॥ ४५ ॥

गवेधुर्गवेधुका गडगडिया इति लोके ॥

मधुकं त्रिफला मूर्वा दार्वी त्वङ्नीलमुत्पलम् ॥ उशीरलोधमञ्जिष्ठाः प्रलेपाश्च्योतने हिताः ॥ ४६ ॥ नश्यन्त्यनेन दृग्जाता मसूर्यो न भवन्ति च ॥ प्रलेपं चक्षुषोर्दद्यादुदुवारस्य वल्कलैः ॥ ४७ ॥ पञ्चवल्कलचूर्णेन क्लेदिनीमवधूलयेत् ॥ भस्मना केचिदिच्छन्ति केचिद्गोमयरेणुना ॥ ॥ ४८ ॥ सुषवीपत्रनिर्यासं हरिद्राचूर्णसंयुतम् ॥ रोमन्तीज्वरवीसर्पव्रणानां शान्तये पिबेत् ॥ ४९ ॥

इति मसूरिकाधिकारः ।

कुष्ठ रोगपर जो लेपन आदि चिकित्सा कही है वही चिकित्सा मसूरिकापर भी हितकारी है ।

कफ और पित्तसे उत्पन्न हुए विसर्पपर जो चिकित्सा कही है वही चिकित्सा मसूरिकापर भी करनी चाहिये ।

मसूरिकाके उत्पन्न होतेही हिल्मोचिका (एक प्रकारकी नोनिया और हुरहुरनामसे भी प्रसिद्ध है) के स्वरसमें सफेद चदनका कल्क डालकर पिये अथवा इकला हिलमोचिकाहीके स्वरसको पीवै ।

लघुपञ्चमूल, बृहत्पंचमूल, रासना, आमले, खस, धमासा, गिलोय, धनिया और नागरमोथा इनको पीसकर पीनेसे वातज, मसूरिका नष्ट होजातीहै ।

मजीठकी छाल, वडकी छाल, पिलखनकी छाल, सिरसकी छाल और गूलरकी छाल इनको एकत्र पीसकर चारों ओर लेप करनेसे वातकी मसूरिका नष्ट होजातीहै ।

मसूरिकाके पकनेके समय गिलोय, मुलैठी, दाख, ईखकी जड और अनार इनको एकत्र पीसकर गुड डालकर पीनेसे वायुका प्रकोप नहीं होता और मसूरिका पक जातीहै ।

मसूरिकाउत्पन्न हुई होय तो लाल चावल, मूँग, मसूर, मधुर रस और कुछेक, सेंधानमक इनका भोजन करे ।

पित्तकी मसूरिकामे प्रथम पटोलकी जडका क्वाथ अथवा पटोलपत्रका क्वाथ ईखकी जडके स्वरसके साथ पिये ।

नीम, पित्तपापडा, पाढ, परवल, सफेद चदन, लाल चदन, खस, कुटकी, आमले, अडूसा और धमासा इनको एकत्र पीसकर खांड मिलाकर इस शीतल पानकको पीनेसे पित्तकी मसूरिका नष्ट होजातीहै तथा दाह, पित्तज्वर, पित्तव्रण और पित्तविसर्प इनपर भी यह हितकारी है ।

रुधिरसे उत्पन्न हुई मसूरिका रुधिर निकलवानेसे नष्ट होजातीहै ।

अडूसा, नागरमोथा, चिरायता, हरड, बहेडा, आमले, इन्द्रजौ, जवासा, कडवे परवल और नीम इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे कफकी मसूरिका शमन होजातीहै ।

सिरसकी छाल, गूलरकी छाल, खैरके पत्ते और नीमके पत्ते इनका लेप करनेसे कफसम्बन्धी और पित्तसम्बन्धी मसूरिका नष्ट होजातीहै ।

नीम, पित्तपापडा, पाढ, कडवे परवल, कुटकी, सफेद चंदन, लाल चंदन, खस, आमले, अडूसा और लाल धमासा इनका क्वाथ बनाकर खांड मिलाकर पीवे तो सर्व दोषोंसे उत्पन्न हुई और ज्वर तथा विसर्पवाली मसूरिका भी नष्ट होजातीहै ।

जो मसूरिका पहिले बाहर निकलकर फिर भीतर समाजाय तो कचनारकी छालका क्वाथ बनाकर उसमें सोनामाखीका चूर्ण डालकर पिये तो मसूरिका फिर बाहर निकल आतीहै । मुखमे अथवा गलेमे व्रण हुआ होय तो आमले और मुलैठी इनका क्वाथ बनाकर कुल्ले करावे यह हितकारी हैं ।

गवेधु, धान्य और मुलैठी इनके जलसे नेत्रोंमे सेचन करनेसे मसूरिकासे दूषित हुई आँखें आराम होजाती हैं ।

मुलैठी, बहेडा, आमला, मूर्वा, दारुहलदीकी छाल, नीलकमल, खस, लोध और मजीठ, इनका आँखोंपर लेप करनेसे अथवा इनको आँखोमे लगानेसे मसूरिका नष्ट होजातीहै और फिर कभी नहीं होती ।

आँखोंमें मसूरिकाकी पीडा होय तो लिसोडेकी छालको पीसकर अँ गाढा लेप करे ।

मसूरिकामें जो क्लेद होय तो पचवल्कलका चूर्ण उसके ऊपर छिडके, कितने एक वैद्य कहतेहैं कि उसके ऊपर राख छिडके, और कितने एक वैद्य कहतेहैं कि उसके ऊपर सडे गोवरका चूर्ण डालना चाहिये।

करेलीके पत्तोंका क्वाथ बनाकर उसमे हलदीका, चूर्ण डालकर पिये तो रोमतक पहुँची मसूरिका ज्वर विसर्प और व्रण शात होत होजातेहैं ॥ ३०–४९ ॥

इति मसूरिकाधिकारः सम्पूर्णः।

अथ मसूरिकाभेदशीतलाधिकारः।

तत्र शीतलायाः स्वरूपं भेदः स्तोत्रञ्च।

देव्या शीतलया क्रान्ता मसूर्यः शीतला वहिः॥ ज्वरयेयुर्यथा भूताधिष्ठितो विषमज्वरः॥ १ ॥ सा च सप्तविधा ख्याता तासां भेदान्प्रचक्ष्महे ॥ ज्वरपूर्वा बृहत्स्फोटैः शीतला बृहती भवेत् ॥ २ ॥ सप्ताहान्निःसरत्येव सप्ताहात्पूर्णतां व्रजेत् ॥ ततस्तृतीये सप्ताहे शुष्यति स्खलति स्वयम् ॥ ३ ॥ तासां मध्ये यदा काचित्पाकं गत्वा स्फुटेत्स्रवेत् ॥ तत्रावधूलनं कुर्याद्वनगोमयभस्मना ॥ ४ ॥ निम्बसत्पत्रशाखाभिर्मक्षिकामपसारयेत् ॥ जलञ्च शीतलं दद्याज्ज्वरेऽपि न तु तत्पचेत् ॥ ५ ॥ स्थापयेत्तं स्थले पूते रम्ये रहसि शीतले ॥ नाशुचिः संस्पृशेत्तन्तु न च तस्यान्तिकं व्रजेत् ॥ ६ ॥ वहवो भिषजो नात्र भेषजं योजयन्ति हि ॥ केचित्प्रयोजयन्त्येव मतं तपामथ ब्रुवे ॥ ७ ॥

जो मसूरिकामे ही शीतलानामक देवीका आवेश हुआ होय तो वह शीतला कहीजातीहै। जिस प्रकार भौतिक विषमज्वर होताहै उसी प्रकार इस शीतलामें ज्वर होताहै, इस शीतलाके सात भेद हैं कि जिनको आगे कहेंगे। प्रथम ज्वर आकर पश्चात् बडी बडी फुन्सी शरीरमे उत्पन्न होयँ वह बडी शीतला कही जातीहै। यह शीतला प्रथम सात दिनमे निकलतीहै, फिर सात दिनमे भरजातीहै और तीसरे सप्ताहमें सूखजातीहै और अपने आप झडजातीहै। इनमे कोई शीतला पककर फूटे और स्रवे तो उसके ऊपर अरने उपलोकी भस्म को बुरकावे और नीमके पत्तो समेत नीमकी टहनियोंसे मक्खियोंको उडावे। ज्वर होय तो भी शीतल जल पीनेको देवे किंतु गरम जल नही देवे, शीतला वाले रोगियोको पवित्र, रमणीक, एकात और शीतल स्थानमे रक्खे इस रोगीको कोई अपवित्र मनुष्य नहीं छुवावे और अपवित्र मनुष्यको उसके पास न जाना चाहिये बहुतसे वैद्य तो शीतलामें औषधि देतेही नहीं और कितनेक अवश्य देतेहै। औषधिको देनेवाले वैद्यके सिद्धात अनुसार इस शीतलाकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १–७ ॥

ये शीतलेन सलिलेन विपिष्य सम्यङ् निम्बाक्षबीजसहितां रजनीं पिबन्ति ॥ तेषां भवन्ति न कदाचिदपीह देहे पीडाकरा जगति शीतलिका विकाराः ॥ ८ ॥

जगत्में जो मनुष्य नीमके बीज बहेडेके बीज और हलदी इनको शीतल जलमें अच्छे प्रकारसे पीसकर पीताहै उसके शरीरमे पीडाकारक शीतलाका विकार कभी भी नही होता ॥ ८ ॥

मोचारसेन सहितं सितचन्दनेन वासारसेन मधुकं मधुकेन चाथ ॥ आदौ पिबन्ति सुमनास्वरसेन मिश्रं ते नाप्नुवन्ति भुवि शीतलिकान्विकारान् ॥ ९ ॥

मोचारसेन कदलीस्तम्भजलेन मधुकेन चाथ अथवा मधुना। आदौ पूर्वरूपे ज्वरागमनमात्रे सुमनास्वरसेन जातीपत्रस्वरसेन ॥

जब शीतलाके पूर्वरूपमें ज्वर आवे तो तत्कालही केलेके अर्कके साथ अथवा सफेद चदनके रसके साथ अथवा अडूसेके रसके साथ या मुलैठीके रसके साथ अथवा चमेलीके पत्तेके रसके साथ सहत पिवे तो शीतलाके विकार नष्ट होजातेहैं ॥ ९ ॥

शीतलासु क्रिया कार्या शीतला रक्षया सह ॥ बध्नीयान्निम्बपत्राणि परितो भवनान्तरे ॥ १० ॥ कदाचिदपि नो कार्यमुच्छिष्टस्य प्रवेशनम् ॥ स्फोटेष्वपि सदा हेषु रक्षारेणूत्करो हितः ॥ तेन ते शोषमायान्ति प्रपाकं न भजन्ति च ॥ ११ ॥

रक्षारेणूत्करः शुष्कगोमयभस्मचूर्णप्रक्षेपः ॥

चन्दनं वासको मुस्तं गुडूची द्राक्षया सह ॥ एषां शीतकषायस्तु शीतलाज्वरनाशनः ॥ १२ ॥

शीतलाके रोगमें सम्पूर्ण शीतल क्रिया करे, मंत्रादिकसे भूतादिकको दूर करनेके लिये रक्षा करे, घरके चारो ओर नीमके पत्ते बाँधे और उस घरमें कभी भी उच्छिष्ट (जूठन) को नही ले जावे ।

शीतलाकी फुंसियोमे दाह होय तो उसमे सूखे गोवर की राख हितकारी है । भस्म डालनेसे सब फुंसी सूख जातीहैं और पकती भी नही हैं ।

लालचंदन, अडूसा, नागरमोथा, गिलोय और दाख इनका हिम बनाकर पीनेसे शीतलाका ज्वर नष्ट होजाताहै ॥ १०–१२ ॥

जपहोमोपहारैश्च दानस्वस्त्ययनार्चनैः ॥ विप्रगोशम्भुगौरीणां पूजनैस्तां शमं नयेत् ॥ १३ ॥ स्तोत्रञ्च शीतलादेव्याः पठेच्छीतलिकान्तिके ॥ ब्राह्मणः श्रद्धया युक्तस्तेन शाम्यन्ति शीतलाः ॥ १४ ॥

जप, होम, वलिदान, स्वस्तिवाचन, पूजन और ब्राह्मण, गाय, सदाशिव तथा जगदम्बा इनका अर्चन करनेसे शीतला शांत होजातीहै ।

जिस मनुष्यके शीतला निकली होय उसके पास ब्राह्मण श्रद्धा पूर्वक नीचे लिखा शीतलाके स्तोत्रको पढे, इसके पढनेसे शीतला शांत होजातीहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथ शीतलास्तोत्रम् ।

अस्य श्रीशीतलास्तोत्रस्य महादेव ऋषिः अनुष्टुप छन्दः ॥ शीतला देवता शीतलोपद्रवशान्त्यर्थ जपे विनियोगः ॥ १५ ॥

स्कन्द उवाच ।

भगवन्देवदेवेश शीतलायाः स्तवं शुभम् ॥ वक्तुमर्हस्यशेषेण विस्फोटकभयापहम् ॥ १६ ॥

ईश्वर उवाच ।

वन्देऽहं शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बराम् ॥ यामासाद्य निवर्तेत विस्फोटकभयं महत् ॥ १७ ॥ शीतले शीतले चेति यो ब्रूयाद्दाहपीडितः ॥ विस्फोटकभयं घोरं क्षिप्रं तस्य प्रणश्यति ॥ १८ ॥ यस्त्वामुदकमध्ये तु धृत्वा संपूजयेन्नरः ॥ विस्फोटकभयं घोरं कुले तस्य न जायते ॥ १९ ॥ शीतले ज्वरदग्धस्य पूतिगन्धगतस्य च ॥ प्रनष्टचक्षुषः पुंसस्त्वामाहुर्जीवितौषधम् ॥ २० ॥ नमामि शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बराम् ॥ मार्जनीकलशोपेतां शूर्पालंकृतमस्तकाम् ॥ २१ ॥ शीतले तनुजान्रोगान्नृणां हरसि दुस्तरान् ॥ विस्फोटकविशीर्णानां त्वमेकाऽमृतवर्षिणी ॥ २२ ॥ गलगण्डग्रहा रोगा ये चान्ये दारुणा नृणाम् ॥ त्वदनुध्यानमात्रेण शीतले यान्ति ते क्षयम् ॥ २३ ॥ न मन्त्रो नौषधं किञ्चित्पापरोगस्य विद्यते ॥ त्वमेका शीतले धात्री नान्यां पश्यामि देवताम् ॥ २४ ॥ मृणालतन्तुसदृशीं नाभिहृन्मध्यसंस्थिताम् ॥ यस्त्वां सञ्चिन्तयेद्देवि तस्य मृत्युर्न जायते ॥ २५ ॥ अष्टकं शीतला देव्या यः पठेन्मानवः सदा ॥ विस्फोटकभयं घोरं कुले तस्य न जायते ॥ २६ ॥ श्रोतव्यं पठितव्यञ्च नरैर्भक्तिसमन्वितैः ॥ उपसर्गविनाशाय परं स्वस्त्ययनं महत् ॥ २७ ॥ शीतला-

ष्टकमेतद्धि न देयं यस्य कस्यचित् ॥ किन्तु तस्मै प्रदातव्यं भक्तिश्रद्धान्वितो हि यः ॥ २८ ॥

इति काशीखण्डे, शीतलाष्टकस्तोत्र सम्पूर्णम् ।

स्वामिकार्तिकेय सदाशिवसे पूँछतेहैं कि हे महाराज! सम्पूर्ण देवोंके देव विस्फोटकके भयको हरनेवाली शीतलाका स्तोत्र मुझको अच्छे प्रकार कहिये ।

सदाशिव कहतेहैं कि–'गधेके ऊपर बैठी नग्न शीतला देवीको प्रणाम करताहू, कि जिस शीतला की कृपासे विस्फोटकका बडा त्रास दूर होजाताहै, इस प्रकार प्रथम शीतलाका ध्यान करे, 'इस श्री शीतलाके स्तोत्रका सदाशिव कर्ता' अनुष्टुप् छंद और शीतला देवता है। शीतलाके उपद्रवोंको दूर करनेके लिये इस स्तोत्रका जप करताहू' इस प्रकार कह कर पश्चात् स्तुति करे। दाहसे पीडित जो मनुष्य हे शीतले! इस प्रकार कहताहै उसके उत्पन्न फोडेका तीव्र भय तत्काल नष्ट होजाताहै ।

हे शीतले! जो मनुष्य तुमको जलमें स्थापनकर तुम्हारा पूजन करताहै उसके कुलमें कभी विस्फोटकका भय नहीं होता। हे शीतले! ज्वरसे व्याकुल दुर्गन्धयुक्त और जिसकी आंखें नष्ट होगई हैं ऐसे मनुष्यके जीवनरूप तूही एक उत्तम औषधि है ऐसा विद्वानोंने कहा है। गद्धेके ऊपर बैठी, नग्न, एक हाथमें मार्जनी (बुहारी) और दूसरे हाथमें कलशको धारण करनेवाली तथा शिरपर सूप (छाज) को धारण किये हुई शीतला देवीको प्रणाम करताहू। हे शीतले! मनुष्योंके शरीरमें उत्पन्न हुए दुस्तर रोगोंको तुमने हरण किया है। विस्फोटकसे अत्यंत दुःखी मनुष्योंपर अमृतकी वर्षा करनेवाली तू एकही है। हे शीतले! मनुष्योंके शरीरमें गलगण्ड (गण्डमाला) तथा अन्यान्य जो दारुण रोग उत्पन्न होतेहैं वे सब तेरे ध्यान करनेमात्रसे क्षय होजातेहैं, इस दुष्ट रोगका अन्य कोई औषधि और मंत्रादिक नहीं है। हे शीतले! इस रोगसे बचानेवाली तू एकही है। तेरे विना इस रोगसे बचानेवाला अन्य कोई देवता भी देखनेमें नहीं आता। हे देवि! कमलकी नालके भीतर ततुकी समान नाभि तथा हृदयमें स्थित तुझे जो मनुष्य हृदयमें चिंतवन करताहै उसका मरण नहीं होता। जो मनुष्य शीतला देवीके इन आठ श्लोकोंका सर्वदा पाठ करताहै उसके वंशमें कभी विस्फोटकका तीव्र भय उत्पन्न नहीं होता। यह शीतलाका स्तोत्र उत्तम और कल्याणकारक है। इसको मनुष्य दुःखको दूर करनेके लिये भक्तिभावसे पाठ करे और पठन श्रवणभी करे। यह शीतलाष्टकनामकस्तोत्र जिस तिसको नहीं देना चाहिये किंतु जो भक्तिसे और श्रद्धासे युक्त होय उसीको देना चाहिये, यह काशीखंडमें कहाहुआ शीतलास्तोत्र पूर्ण हुआ ॥ ॥ १५–२८ ॥

अथ शीतलाया द्वितीयो भेदः।

वातश्लेष्मसमुद्भूता कोद्रवा कोद्रवाकृतिः ॥ तां कश्चित्प्राह पक्वेति सा तु पाकं न गच्छति ॥ २९ ॥ जलशूकवदंगानि सा विध्यति विशेषतः ॥ सप्ताहाद्वा दशाहाद्वा शान्तिं याति विनौषधम् ॥ ३० ॥ यदि वा भेषजं दद्यात्खदिराष्टकनिर्मितम् ॥ कषायं हि तदा दद्यात्कोद्रवायाः प्रशान्तये ॥ ३१ ॥

कोद्रवा कोदवा इति लोके ॥

वात और कफसे उत्पन्न हुई और कोदोंकी समान आकारवाली जो शीतला होतीहै उसको कोद्रवा कहते है। अनजान मनुष्य इस शीतलाको पकनेवाली कहतेहैं किंतु वास्तवमें यह शीतला पकती नहीं है। यह शीतला विशेषकरके जलके शूकनामक कीटेकी समान अंगोंको वेधन करती है और सातदिनमें द्वादशदिनमें औषधिके विनाही शांत होजातीहै। जो इस कोद्रवानामक शीतला शांत करनेके लिये औषधि देनी होय तो खदिराष्टकसे बनायाहुआ क्वाथ देना चाहिये ॥ २९–३१ ॥

अथ शीतलायास्तृतीयो भेदः।

ऊष्मणा तूष्मजारूपा सकण्डूः स्पर्शनप्रिया ॥ नाम्ना पाणिसहाख्याता सप्ताहाच्छुष्यति स्वयम् ॥ ३२ ॥

ऊष्मजारूपा पदूष्मजा राजिकाकृतिः । अभौरी इति लोके वदन्ति तद्रूपा । पाणिसहा पनिसहा इति लोके ॥

जो शीतला गरमीके कारण राईके समान आकारवाली खुजलीयुक्त और जिसके ऊपर हाथ आदिका स्पर्श प्रिय लगे वह पाणिसहा कहीजातीहै और वह शीतला सात दिनमे अपनेआप सूख जातीहै ॥ ३२ ॥

अथ शीतलायाश्चतुर्थो भेदः ।

चतुर्थी सर्षपाकारा पीतसर्षपवर्णिनी ॥ नाम्ना सर्षपिका ज्ञेयाऽभ्यङ्गमत्र विवर्जयेत् ॥ ३३ ॥

जो शीतला सरसोंकी समान आकारवाली और पीली सरसोंकी समान वर्णवाली होय वह सर्षपिका कहीजातीहै इस शीतलामे अभ्यगका त्याग करना चाहिये ॥ ३३ ॥

अथ शीतलायाः पञ्चमो भेदः ।

किञ्चिदूष्मनिमित्तेन जायते राजिकाकृतिः ॥ एषा भवति बालानां मुखं शुष्यति च स्वयम् ॥ ३४ ॥

एषा दुःखकोद्रवा इति लोके ख्याता ॥

जो शीतला कुछेक गरमरूपी कारणोंसे बालकोंके मुखपर राईकी समान आकारवाली होय वह दुःखकोद्रवा कहीजातीहै और वह शीतला अपनेआप सूख जातीहै ॥ ३४ ॥

अथ शीतलायाः षष्ठो भेदः ।

कोष्ठवज्जायते षष्ठी लोहितोन्नतमण्डला ॥ ज्वरपूर्वा व्यथायुक्ता ज्वरस्तिष्ठेद्दिनत्रयम् ॥ ३५ ॥

एषा मगधदेशे हाम इति प्रसिद्धा ॥

प्रथम ज्वर आकर जो शीतला कोडकी समान लाल तथा ऊँचे मडलवाली होतीहै और व्यथायुक्त होतीहै वह मगधदेशमे 'हाम' इस नामसे कहीजातीहै । इस शीतलाका ज्वर तीन दिनतक रहताहै, इस शीतलाकी फुसी मिलजानेसे अनेक फुसी दीखतीहैं ॥ ३५ ॥

अथ शीतलायाः सप्तमो भेदः ।

स्फोटानां मेलनादेषा बहुस्फोटाऽपि दृश्यते ॥ एकस्फोटे च कृष्णा च बोद्धव्या चर्मजाभिधा ॥ ३६ ॥

चमरगोटी इति लोके ॥

जो शीतला एक स्फोटकमे काली होय तो चर्मनी कही जाती है ॥ ३६ ॥

अथ शीतलायाः साध्यासाध्यता ।

काश्चिद्विनापि यत्नेन सुखं सिद्ध्यन्ति शीतलाः ॥ दृष्टाः कष्टतराः काश्चित्काश्चित्सिध्यन्ति वा न वा ॥ काश्चिन्नैव तु सिध्यन्ति यत्नतोऽपि चिकित्सिताः ॥ ३७ ॥

कितनी एक शीतला चिकित्साके विनाही सहजमें मिटजातीहैं । कितनी एक शीतला अत्यन्त कष्टसाध्य देखी जातीहैं । कितनी एक शीतला समयपर आराम होतीहैं तथा समयपर भी आराम नही होती । और कितनेक शीतला तो अनेक बडे २ यत्नोंसे चिकित्सा करनेपर भी आराम नहीं होतीं ॥ ३७ ॥

अथ शीतलासप्तकस्य सामान्यचिकित्सा ।

एताः सप्तापि बोद्धव्याः शीतलादेव्यधिष्ठिताः ॥ शीतलोचितमाचारमासु सर्वासु वा चरेत् ॥ ३८ ॥

इति शीतलारोगाधिकारः ।

इन सातो प्रकारकी शीतलाओमे शीतलादेवीका सबध होताहै इन सर्वप्रकारकी शीतलाओमे तत्कालही पूर्वोक्त शीतलाकी समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३८ ॥

इति शीतलाधिकारः संपूर्णः ।

अथ क्षुद्ररोगाधिकारः ।

तत्र पलितरोगनिदानलक्षणम् ।

क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः ॥ पित्तश्च केशान्पचति पलितं तेन जायते ॥ १ ॥

शरीरोष्मा देहाग्निः । पित्तञ्च भ्राजकाख्यं तच्च शिरोगतं क्रोधात्कुपितं पित्तं पचति । शोकेन श्रमेण च कुपितो वायुः शरीरोष्माणं शिरो नयति । 'एकः प्रकुपितो दोष इतरावपि कोपयेत्' इति वचनाद्वातपित्ताभ्यां श्लेष्मा च कोपितः, स एव केशानां शौ-

क्ल्यं करोति । एवं त्रयोऽपि दोषाः पलितस्य हेतवः । पलितं केशस्य शुक्लता ॥

क्रोध, शोक तथा परिश्रम आदिसे कोपको प्राप्त हुई वायु शरीरकी गरमीको शिरमे लेजातीहै और मस्तकमें रहनेवाला भ्राजकनामक पित्त भी क्रोधसे प्रकुपित होताहै प्रकुपितहुआ एक दोष दूसरे दोषोंको भी प्रकुपित करता है इस वचनके अनुसार ऊपर कही रीतिसे कुपित हुई वायु और पित्त यह कफको भी कुपित करतेहैं और कोपको प्राप्त हुआ कफ बालोंको सफेद करताहै इस प्रकार यह तीनो दोष केशोके सफेदपनेमे निदानभूत होतेहैं ॥ १ ॥

अथ पलितचिकित्सा ।

लोहचूर्णस्य कर्ष तु दशार्द्धं चूतमज्जतः ॥ धात्रीपलद्वयं पथ्ये द्वे तथैकं विभीतकम् ॥ २ ॥ पिष्ट्वा लोहमये भाण्डे स्थापयेन्निशि वासयेत् ॥ लेपोऽयमचिराद्धन्ति पलितं नात्र संशयः ॥ ३ ॥
दशार्द्धं पञ्चकर्षाणि ॥

काश्मर्या मूलमादौ सहचरकुसुमं केतकस्यापि मूलं लौहं चूर्णं सभृंगं त्रिफलपलयुतं तैलमेभिः पचेद्यः ॥ कृत्वा लौहस्य भाण्डे क्षितितलनिहितं स्थापयेन्मासमेकं केशाः काशप्रकाशा अपि मधुपनिभा अस्य योगाद्भवन्ति ॥ ४ ॥ त्रिफला नीलिकापत्रं भृंगराजोऽयसो रजः ॥ अविमूत्रेण सम्पिष्टं लेपात्कृष्णीकरं परम ॥ ५ ॥

लोहेका चूर्ण १ तोला, आमकी गुठली ५ तोले, आमले २ दो तोले, हरड २ तोले, और बहेडा एक १ तोला इनको एकत्र पीसकर लोहेके बरतनमें रातभर रहने देवे, फिर इसका लेप करनेसे थोडेही समयमें बालोंकी श्वेतताका नाश होताहै ।

कुम्भेरकी जड, पियाबासेके फूल या जड, केतकीकी जड, लोहेका चूरा, भांगरा और त्रिफला चार तोले इनके कल्कमें तेलको पकावे, उस तेलको लोहेके बासनमें करके पृथिवीमे एक महीनेतक गाड देवे । इस तेलके लगानेसे कासके फूलकी सदृश सफेद बाल भी भौंरेकी समान श्याम होजातेहैं ।

हरड, बहेडा, आमले, नीलके पत्ते, भांगरा और लोहेका चूरा इनको मेंडके मूत्रमें पीसकर लेप करनेसे सफेद बाल काले होजातेहैं ॥ २–५ ॥

अथेन्द्रलुप्तसम्प्राप्तिलक्षणानि

रोमकूपानुगं रक्तं पित्तेन सह मूर्च्छितम् ॥ प्रच्यावयति रोमाणि ततः श्लेष्मा सशोणितः ॥ ६ ॥ रुणद्धि रोमकूपांस्तु ततोऽन्येषामसम्भवः ॥ तदिन्द्रलुप्तं खालित्यं रुज्येति च विभावयेत् ॥ ७ ॥

रोमोंकी जडमें स्थित रुधिर पित्तके साथ कुपित होकर रोमोंको गिरादेताहै पश्चात् रुधिरसहित कफ रोमकूपोंको रोक देताहै कि जिससे फिर रोम उत्पन्न नही होते । इस रोगको इन्द्रलुप्त, खालित्य और रुज्या कहतेहैं, देशमें गज वा टाक कहतेहैं ॥ ६ ॥ ७ ॥

अथेन्द्रलुप्तचिकित्सा ।

तिक्तपटोलीपत्रस्वरसैर्घृष्टा शमं याति ॥ चिरकालजापि रुज्या नियतं दिवसत्रयेणापि ॥ ८ ॥ गोक्षुरस्तिलपुष्पाणि तुल्ये च मधुसर्पिषी ॥ शिरः प्रलेपितं तेन केशैः समुपचीयते ॥ ९ ॥ हस्तिदन्तमषी कृत्वा छागीदुग्धं रसाञ्जनम् ॥ लोमान्येतेन जायन्ते लेपात्पाणितलेष्वपि ॥ १० ॥ यष्टीन्दीवरमृद्वीकातैलाज्यक्षीरलेपनैः ॥ इन्द्रलुप्तं शमं याति केशाः स्युश्च घना दृढाः ॥ ११ ॥ जातीकरञ्जवरुणकरवीराग्निपाचितम् ॥ तैलमभ्यञ्जनाद्धन्यादिन्द्रलुप्तं न संशयः ॥ १२ ॥

कडवे परवलोंके पत्तोंका स्वरस निकालकर उसके मसलनेमें बहुत दिनोंका इन्द्रलुप्तरोगभी तीनदिनमें आराम होजाताहै ।

गोखुरु, तिलके फूल और उनके बराबर घी तथा सहत

इनको एकत्र करके शिरपर लेप करनेसे शिर बालोंसे परिपूर्ण होजाताहै।

हाथीदाँतकी भस्म, बकरीका दूध और रसौत इनका लेप करनेसे हाथकी हथेलीमें भी बाल उपज आते हैं।

मुलैठी, नीले कमल, दाख, तेल, घी और दूध इनका लेप करनेसे इन्द्रलुप्त रोग अवश्य नष्ट होजाताहै और बाल सघन तथा दृढ होजाते हैं।

चमेली, करंज, वरना, कनेर और चीता इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल लगानेसे निश्चय इन्द्रलुप्त नष्ट होजाताहै ॥ ८–१२ ॥

अथ स्नुहीदुग्धादितैलम्।

स्नुहीपयः पयोऽर्कस्य लाङ्गली मार्कवो विषम् ॥ अजामूत्रं सगोमूत्रं रक्तिका सेन्द्रवारुणी ॥ १३ ॥ सिद्धार्थकस्तीक्ष्णगन्धा सम्यगेभिर्विपाचितम् ॥ तैलं भवति नियमात्खालित्यव्याधिनाशनम् ॥ १४ ॥

थूहरका दूध, आकका दूध, कलिहारी, भागरा, वत्सनाभ, बकरीका मूत्र, गायका मूत्र, चौटली, इन्द्रायन, सरसों और सफेदवच इनके कल्कसे पकायाहुआ तेल इस तेलकी मालिस करनेसे इन्द्रलुप्त रोग (गंज पाटाक) अवश्य दूर होताहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथ दारुणकलक्षणम्।

दारुणा कण्डुरा रूक्षा केशभूमिः प्रजायते ॥ मारुतश्लेष्मकोपेन विद्याद्दारुणकन्तु तत् ॥ १५ ॥

दारुणा कर्कशा दारुणकं लोके रुसीति ख्यातम् ॥

वात और कफके प्रकोपसे बालोंकी जमीन खरखरी, खुजलीयुक्त और रुखी होजाती है उसको दारुणक कहते हैं ॥ १५ ॥

अथ दारुणकचिकित्सा।

कार्यो दारुणके मूर्ध्नि प्रलेपो मधुसंयुतः ॥ प्रियालबीजमधुककुष्ठमाषैः ससैन्धवैः ॥ ॥ १६ ॥ आम्रबीजं तथा पथ्याद्वयं स्यान्मात्रया समम् ॥ दुग्धेन पिष्टं तल्लेपो दारुणं हन्ति दारुणम् ॥ दुग्धेन खाखसं बीजं प्रलेपाद्दारुणं हरेत् ॥ १७ ॥

चिरौंजीके वीज, मुलैठी, कूठ, उडद और सैंधानिमक इनको एकत्र पीसकर सहतमे मिलाकर शिरमे गाढा लेप करनेसे दारुणक रोग नष्ट होजाताहै।

आमकी गुठली और हरड इनको समान भाग लेकर दूधमे पीसकर लेप करनेसे दारुणकरोग दारुण (उग्र) भी अवश्य नष्ट होजाताहै।

खसखसके बीजको दूधमे पीसकर लेप करनेसे दारुणक रोग अवश्य नष्ट होताहै ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ गुंजादितैलम्।

गुञ्जाफलैः श्रृतं तैलम्भृङ्गराजरसेन च ॥ कंडूदारुणहृत्कुष्ठकपालव्याधिनाशनम् ॥ १८ ॥

चौटलीके कल्कसे और भागरेके रससे पकाहुआ तेल गुजादितैल कहाजाताहै। इस तेलसे खुजली, दारुणक, कोट और कपालके सम्पूर्णरोग नष्ट होते हैं ॥ १८ ॥

अथारूंषिकालक्षणम्।

अरूंषि बहुवक्त्राणि बहुक्लेदीनि मूर्द्धनि। कफासृक्क्रिमिकोपेन तानि विद्यादरूंषिकाम् ॥ १९ ॥

कफके, रुधिरके और कृमियोंके प्रकोपसे मस्तकमें बहुत मुखवाले और अत्यंत क्लेदयुक्त व्रण होय उनको अरूंषिका कहते हैं ॥ १९ ॥

अथारूंषिकाचिकित्सा।

नीलोत्पलस्य किञ्जल्को धात्रीफलसमन्वितः ॥ यष्टीमधुकयुक्तश्च लेपाद्धन्यादरूंषिकाम् ॥ २० ॥

नील कमलकी केसर, आमले और मुलैठी इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे अरूंपिका नष्ट होजाती है २०

अथ त्रिफलाद्यतैलम्।

त्रिफलायोरजोयष्टीमार्कवोत्पलसारिवाः॥ सैन्धवं पक्वमेतैस्तु तैलं हन्यादरूंषिकाम् ॥ २१ ॥

हरड़, बहेड़ा, आमला, लोहेका चूरा, मुलेठी, कमल, सारिवा और सैंधानिमक इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल त्रिफलाद्यतैल कहाजाताहै यह तेल अरुंषिकाको नष्ट करदेताहै ॥ २१ ॥

अथेरिवेल्लिकालक्षणम् ।

पिडकामुत्तमांगस्थां वृत्तामुग्ररुजाज्वराम् ॥ सर्वात्मिकां सर्वलिंगां जानीयादिरिवेल्लिकाम् ॥ २२ ॥

मस्तकमें गोल, उग्र पीडावाली, तीव्र ज्वरवाली, तीनों दोषोंसे उत्पन्न और त्रिदोषोंके लक्षणों युक्त जो पिडका उत्पन्न होती है वह इरिवेल्लिका कहीजाती है ॥ २२ ॥

अथेरिवेल्लिकाचिकित्सा ।

पैत्तिकस्य विसर्पस्य या चिकित्सा प्रकीर्तिता ॥ तयैव भिषगेतांश्च चिकित्सेदिरिवेल्लिकाम् ॥ २३ ॥

पित्तज विसर्पकी जो चिकित्सा वैद्योंने कही है उसी चिकित्सासे इरिवेल्लिकाको दूर करना चाहिये ॥ २३ ॥

अथ पनसिकालक्षणम् ।

कर्णस्याभ्यन्तरे जातां पिडकामुग्रवेदनाम् ॥ स्थिरां पनसिकां तान्तु विद्याद्वातकफोत्थिताम् ॥ २४ ॥

कानके भीतर वायु तथा कफके प्रकोपसे उटी हुई, कठिन और उग्रवेदनावाली जो पिडका होती है उसको पनसिका कहते हैं ॥ २४ ॥

अथ पनसिकाचिकित्सा ।

भिषक् पनसिकां पूर्वं स्वेदयेदथ लेपयेत् ॥ कल्कैर्मनःशिलाकुष्ठनिशातालकदारुभिः ॥ पक्वां विज्ञाय तां भित्त्वा व्रणवत्समुपाचरेत् ॥ २५ ॥

वैद्य प्रथम पनसिकाके ऊपर स्वेद देवे पश्चात् मैनशिल, कूट, हलदी, हरिताल और देवदारु इनका लेप करे, जब पकजाय तो उसकी व्रणकी समान चिकित्सा करे ॥ २५ ॥

अथ पाषाणगर्दभलक्षणम् ।

वातश्लेष्मसमुद्भूतः श्वयथुर्हनुसन्धिजः ॥ स्थिरो मन्दरुजः स्निग्धो ज्ञेयः पाषाणगर्दभः ॥ २६ ॥

स्थिरः कठिनः ॥

वात तथा कफके प्रकोपसे ठोडीकी सन्धिमें कठिन मन्द वेदनावाली और स्निग्ध सूजन होय तो उसको पाषाणगर्दभ कहते हैं ॥ २६ ॥

अथ पाषाणगर्दभचिकित्सा ।

पाषाणगर्दभं पूर्वं स्वेदयेत्कुशलो भिषक् ॥ ततः पनसिकाप्रोक्तैः कल्कैरुष्णैः प्रलेपयेत् ॥ २७ ॥ वातश्लैष्मिकशोथघ्नैः कल्कैरन्यैश्च लेपयेत् ॥ परिपाकगतं भित्त्वा व्रणवत्तमुपाचरेत् ॥ २८ ॥ जलौकोभिर्हृते रक्ते स शाम्यति विनौषधम् ॥ एतत्स्थलेषु बहुषु प्रेक्षितं लिखितं ततः ॥ २९ ॥

प्रवीणवैद्य प्रथम पाषाणगर्दभके ऊपर स्वेद करावे पश्चात् पनसिकाकी चिकित्सामें कहेहुए उष्ण कल्कोंसे प्रलेप करे ।

वात और कफकी सूजनको हरनेवाले अन्यान्य कल्कोंका भी लेप करे ।

पाषाणगर्दभको पका जानकर उसको शस्त्रसे चीरकर व्रणकी समान उपचार करे ।

जोंक लगाकर रुधिर निकलवावे तो औषधिके विनाही पाषाणगर्दभ शांत होजाताहै । यह बहुतवार अजमाया हुआ है इस लिये यहां लिखा है ॥ २७–२९ ॥

अथ युवानपिडकालक्षणम् ।

शाल्मलीकण्टकप्रख्याः कफमारुतरक्तजाः ॥ युवानपिडका यूनां ज्ञेयास्ता मुखदूषिकाः ॥ ३० ॥

प्रख्याः सदृशाः । एता यूनामेव मुखे भवन्ति स्वभावात् ॥

युवा मनुष्योंके मुखपर सेमलके कांटोंकी समान कफ, वायु तथा रुधिरसे उत्पन्न होनेवाली जो फुंसी होती वे युवानपिडका तथा मुखदूषिका (मोहासे) कही जाती हैं । ये फुंसी स्वाभाविक रीत्यनुसार युवाओंके मुखपर होती हैं ॥ ३० ॥

अथ युवानपिडकाचिकित्सा।

अंगुलस्य चतुर्थांशो मुखलेपो विधीयते ॥ मध्यमस्तु त्रिभागः स्यादुत्तमोऽर्द्धांगुलो भवेत् ॥ ३१ ॥ स्थितिकालोऽपि तस्योक्तो यावत्कल्को न शुष्यति ॥ शुष्कस्तु गुणहीनः स्यात्तथा दूषयति त्वचम् ॥ ३२ ॥

चौथाई अंगुल प्रमाण गाढा लेप करना कनिष्ठ मात्रा है। तिहाई अंगुल प्रमाण गाढा लेप करना मध्यम मात्रा है और आधा अगुल प्रमाण गाढा लेप करना उत्तम मात्रा है।

लेपकी हुई औषधि जबतक सूखे नही तबतक मुखपर रखना चाहिये, सूखनेके पश्चात् मुखपर नही रखना चाहिये। सूखा आ लेप रखनेसे गुणहीन होजाता है और त्वचाको दूषित करदेताहै ॥ ३१ ॥३२ ॥

लोध्रधान्यवचालेपस्तारुण्यपिडिकापहः॥ तद्वद्गोरोचनायुक्तं मरिचं मुखलेपितम् ॥ ॥ ३३ ॥ सिद्धार्थकवचालोध्रसैन्धवैश्च प्रलेपनम् ॥ वमनश्च निहन्त्याशु पिडकां यौवनोद्भवाम् ॥ ३४ ॥

लोध, धनिया और वच इनका लेप करनेसे युवा अवस्थाकी मुखकी फुंसी (मोहासे) नष्ट होजातीहैं।

गोरोचनके साथ कालीमिरचोका लेप करनेसे तरुण अवस्थाके कारण उत्पन्न हुए मुहासे सब दूर होजातेहैं।

सरसो, वच, लोध और सैंधानिमक इनका लेप करनेसे मुखके मुहासे दूर होजातेहैं। वमन करनेसे तरुण अवस्थाके मुखके मुहासे दूर होजातेहैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अथ मुखकान्तिकरो लेपः।

केवलाः पयसा पिष्टास्तीक्ष्णाः शाल्मलिकण्टकाः ॥ आलिप्तं त्र्यहमेतेन भवेत्पद्मोपमं मुखम् ॥ ३५ ॥

सेमलके तीक्ष्ण कांटोको दूधके साथ पीसकर तीन दिनतक लेप करनेसे मुहासे दूर होकर मुख कमलके समान सुन्दर होजाताहै ॥ ३५ ॥

अथ व्यंगलक्षणम्।

क्रोधायासप्रकुपितो वायुः पित्तेन संयुतः॥ मुखमागत्य सहसा मण्डलं प्रसृजत्यतः ॥ नीरुजं तनुकं श्यावं मुखे व्यंगं तदादिशेत् ॥ ३६ ॥

व्यंगम् झांई इति लोके।

क्रोधसे तथा परिश्रमसे प्रकोपको प्राप्त हुई पित्तके साथ वायु मुखमे आकर तत्काल मुखके ऊपर वेदना रहित, बहुत पतली और काली झाँई युक्त मंडल करेहै उसको व्यंग कहतेहैं ॥ ३६ ॥

अथ नीलिकालक्षणम्।

कृष्णमेवंगुणं वक्त्रे गात्रे वा नीलिकां विदुः ॥ ३७ ॥

एवंगुणम्, नीरुजं तनुकं मण्डलम्।

मुखके ऊपर अथवा देहके ऊपर वेदनारहित, पतला तथा काला मडल होताहै, उसको नीलिका कहतेहैं ॥ ३७ ॥

अथ व्यंगनीलिकयोश्चिकित्सा।

शिरावेधैः प्रलेपैश्च तथाभ्यंगैरुपाचरेत् ॥ व्यंगश्च नीलिकां वापि न्यच्छश्च तिलकालकम् ॥ ३८ ॥ वटांकुरा मसूराश्च प्रलेपाद्व्यङ्गनाशनम् ॥ व्यंगे मञ्जिष्ठया लेपः प्रशस्तो मधुयुक्तया ॥ ३९ ॥ अथवा लेपनं शस्तं शशस्य रुधिरेण च ॥ व्यंगहृद्वरुणत्वक्स्यादजामूत्रेण पेषिता ॥४०॥ जातीफलस्य लेपस्तु हरेद्व्यंगश्च नीलिकाम् ॥ अर्कक्षीरहरिद्राभ्यां मर्दयित्वा प्रलेपनात् ॥ ४१ ॥ मुखकार्श्यं शमं याति चिरकालोद्भवं ध्रुवम् ॥ मसूरैः क्षीरसम्पिष्टैर्लिप्तमास्यं घृतान्वितैः ॥ ४२ ॥ सप्तरात्राद्भवेत्सत्यं पुण्डरीकदलोपमम् ॥ वटस्य पाण्डुपत्राणि मालतीरक्तचन्दनम् ॥ ४३ ॥ कुष्ठं कालीयकं लोध्रमेभिर्लेपं प्रयोजयेत् ॥ युवास्यपिडिकानां तु

व्यंगानां तु विनाशनम् ॥ स्यादेतेन सुखश्चापि वर्जितं नीलिकादिभिः ॥ ४४ ॥

कालीयकं कदम्बक इति लोके । युवास्यपिडिका यूनामानने यत्पिडका पृषोदरादित्वान्नकारलोपः ॥

नसको खोलनेसे, प्रलेप करनेसे, तथा अभ्यंगसे व्यगकी, नीलिकाकी, न्यच्छकी तथा तिलकालककी चिकित्सा करे ।

बडके अंकुर और मसूर इनका प्रलेप करनेसे व्यगका नाश होताहै ।

मजीठको सहतमें पीसकर लेप करनेसे व्यंग नष्ट होताहै ।

खरगोशके रुधिरका लेप करनेसे व्यग (झांई) नष्ट होजातीहै ।

वरनाकी छालको बकरीके मूत्रमें पीसकर लेप करनेसे व्यंग (झांई) नष्ट होतीहै ।

जायफलका लेप करनेसे झाँई दूर होजातीहै और नीलिका भी दूर होजातीहै ।

आकका दूध और हलदी इनको पीसकर प्रलेप करनेसे बहुत दिनोंकी मुखकी कृष्णता दूर होजातीहै ।

मसूरको दूधमें पीसकर घीमें मिलाकर लेप करनेसे सात दिनमें मुखमण्डल कमलके समान होजाताहै ।

बडके पीले पत्ते, मालती, लालचंदन, कूठ, कदम्बक और लोध इनका लेप करनेसे युवा मनुष्योंके मुखके मुहासे तथा व्यंगका नाश होताहै ।

इस उपायसे मुखके दाद वगैरह भी दूर होजातीहै ॥ ३८–४४ ॥

अथ कुंकमाद्यतैलम् ।

कुंकुमं चन्दनं लोध्रं पतंगं रक्तचन्दनम् ॥ कालीयकमुशीरञ्च मञ्जिष्ठा मधुयष्टिका ॥ ४५ ॥ पत्रकं पद्मकं पद्मं कुष्ठं गोरोचना निशा ॥ लाक्षा दारुहरिद्रा च गैरिकं नागकेसरम् ॥ ४६ ॥ पलाशकुसमश्चापि प्रियंगुश्च वटांकुराः ॥ मालती च मधुच्छिष्टं सर्षपाः सुरभिर्वचा ॥४७॥ चतुर्गुणपयःपिष्टैरेतैरक्षमितैः पृथक् ॥ पचेन्मन्दाग्निना वैद्यस्तैलं प्रस्थद्वयोन्मितम् ॥ ४८ ॥ वदनाभ्यञ्जनादेतद्व्यंगं नीलिकया सह ॥ तिलकं माषकं न्यच्छं नाशयेन्मुखदूषिकाम् ॥ ४९ ॥ पद्मिनीकण्टकश्चापि हरेज्जतुमणिं तथा ॥ विदध्याद्वदनं पूर्णचन्द्रमण्डलसुन्दरम् ॥ ५० ॥

पतंगं बकम इति लोके।कालीयकं कदम्बकम् । सुरभिर्वचा महाभरी इति लोके ॥

केसर, सफेद चदन, लोध, पतग, लाल चंदन, कदम्बक, खस, मजीठ, मुलेठी, तेजपात, पद्माख, कमल, कूठ, गोरोचन, हलदी, लाख, दारुहलदी, पीलागेरू, नागकेसर, ढाकके फूल, फूलप्रियंगू, बडके अंकुर, मालती, मोम, सरसों और महाभरी वच, यह प्रत्येक पदार्थ एक एक तोला लेकर चौगुने दूधमें पीसकर वैद्य इस कल्कसे १२८ एकसौ अठाईस तोले तेलको मदमंद अग्निसे पकावे इस कुकुमाद्य तेलको मुखपर अभ्यग करनेसे व्यंग, नीलिका, तिल, मशक, न्यच्छ, मुखदूषिका, पद्मिनीकटक और जतुमणि ये सब रोग नष्ट होतेहैं और मुख पूर्ण चन्द्रमडलकी समान सुंदर होजाताहै ॥ ४५–५० ॥

अथ वल्मीकलक्षणम् ।

ग्रीवांसकक्षाकरपाददेशे सन्धौ गले वा त्रिभिरेव दोषैः ॥ ग्रन्थिः स वल्मीकवदक्रियाणां जातः क्रमेणैव गतः प्रवृद्धिम् ॥ ५१ ॥ मुखैरनेकैः स्रुतितोदवद्भिर्विसर्पवत्सर्पति चोन्नताग्रैः ॥ वल्मीकमाहुर्भिषजो विकारं निष्प्रत्यनीकं चिरजं विशेषात् ॥ ५२ ॥

ग्रीवा कृकाटिका । अंसः स्कन्धः । कक्षा बाहुमूलम् । वल्मीकवदित्यनेन प्रचुरशिखरत्वमुच्चत्वमव्रणाढ्यमूलत्वञ्च सूच्यते । निष्प्रत्यनीकमुपचारायोग्यम् ॥

ग्रीवा, खवोंमें वा कंधे, कोख, हाथ और पाव इन प्रदेशोंमें सधियोंमें अथवा गलेमें बाँबईकी समान अनेक सिखरोंवाली, ऊची और दृढजडवाली ग्रंथि होतीहै। चिकित्सा नही करनेवाले मनुष्योंके यह ग्रंथि अनुक्रमसे बढकर स्रावयुक्त व्यथायुक्त और आगेसे ऊची अनेक मुखोंसे विसर्पकी समान फैल जातीहै, इस रोगको वैद्य वल्मीक कहतेहैं। यह रोग जो वहुत कालसे उत्पन्न हुआ होय तो विशेष करकै इसकी चिकित्सा निष्फल होती है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

अथासाध्यवल्मीकलक्षणम्।

वल्मीकं नाशयेत्तद्धि बहुच्छिद्रं बहुव्रणम् ॥ पाणिपादोपरिष्टात्तु च्छिद्रैर्वहुभिरावृतम् ॥ वल्मीकं यत्सशोफं स्याद्वर्ज्यं तद्धि विजानता ॥ ५३ ॥

हाथ अथवा पावके ऊपर जो वल्मीक छिद्रोंसे व्याप्त होय और सूजनसे युक्त होय उसकी वैद्य समझकर चिकित्सा करे ॥ ५३ ॥

अथ वल्मीकचिकित्सा।

शस्त्रेणोत्कृत्य वल्मीकं क्षाराग्निभ्यां प्रसाधयेत् ॥ विधानेनार्बुदोक्तेन शोधयित्वा च रोपयेत् ॥ ५४ ॥ वल्मीकं तु भवेद्यस्य नातिवृद्धममर्मजम् ॥ तत्र संशोधनं कृत्वा शोणितं मोक्षयेद्भिषक् ॥ ५५ ॥ कुलत्थकानां मूलैश्च गुडूच्या लवणेन च ॥ आरेवतस्य मूलैश्च दन्तीमूलैस्तथैव च ॥ ५६ ॥ श्यामामूलैः सपललैः सक्तुमिश्रैः प्रलेपयेत् ॥ सुस्निग्धैश्च सुखोष्णैश्च भिषक्तमुपनाहयेत् ॥ ५७ ॥ पक्कं तद्वा विजानीयाद्गतिः सर्वा यथाक्रमम् ॥ अभिज्ञाय गतिं छित्त्वा प्रदिह्यान्मतिमान्भिषक् ॥ ५८ ॥ संशोध्य दुष्टमांसानि क्षारेण प्रतिसारयेत् ॥ व्रणं विशुद्धं विज्ञाय रोपयेन्मतिमान्भिषक् ॥ ५९ ॥

वल्मीकको शस्त्रसे चीरकर क्षारसे तथा अग्निसे दूर करे। अर्बुदकी चिकित्साकी समान प्रथम शोधन कर पश्चात् भरे। वल्मीक जो अत्यंत वृद्धिको प्राप्त न हुई होय और मर्म स्थलमें न उत्पन्न होय तो वैद्य संशोधन करकै पश्चात् उसमेंसे रुधिर निकलवावे।

कुलथीकी जड, गिलोय, सैंधानिमक, अमलतासकी जड, दतीकी जड, निसोतकी जड, मांस और सत्तु इनको मिलाकर वल्मीकपर प्रलेप करे और अत्यत स्निग्ध पदार्थोंको कुछ कुछ गरम करके उसके ऊपर पट्टी बाँधे। जब वल्मीक पकजाय तब उसको अनुक्रमसे रावकी गतिको विचारकर शस्त्रसे चीरकर बुद्धिमान् वैद्य लेपकर, दूषित मांसको साफ करकै पश्चात् क्षार डालकर प्रतिसारण करे, व्रणको साफ समझकर फिर बुद्धिमान् रोपण औषधियोंसे भरे ॥ ५४–५९ ॥

अथ मनःशिलाद्यतैलम्।

मनःशिलालभल्लातसूक्ष्मैलागुरुचन्दनैः ॥ जातीपल्लवतर्कैश्च निम्बतैलं विपाचयेत् ॥ ६० ॥

मैनशिल, हरिताल, भिलावे, छोटी इलायची, अगर, सफेद चदन, चमेलीके पत्ते और छाछ इनको नीमके तैलसे पकावे तो यह मनःशिलाद्यतैल सिद्ध होताहै। यह तैल–अनेक छिद्रोंवाले तथा अनेक व्रणोंवाले वल्मीकको नष्ट करेहै ॥ ६० ॥

अथ कक्षागंधमालयोर्लक्षणम्।

बाहुकक्षांसपार्श्वेषु कृष्णस्फोटां सवेदनाम् ॥ पित्तप्रकोपसम्भूतां कक्षां तामिति निर्दिशेत् ॥ ६१ ॥ एकान्तु तादृशीं दृष्ट्वा पिडकां स्फोटसन्निभाम् ॥ त्वग्जातां पित्तकोपेन गन्धमालां प्रचक्षते ॥ ६२ ॥ तादृशीं बाह्वादिषु कृष्णां सवेदनाञ्च ॥

बाहुओंमें, खवोंमे, कोखमें, और पसलियोंमें पित्तके प्रकोपसे वेदनायुक्त जो फोडे होतेहैं उसको कक्षा (कखहारी, कखलाई) कहतेहैं।

ऊपर कही हुई बाहु आदिके स्थानोकी त्वचामें पित्तके प्रकोपसे काली और वेदनावाली फुंसीकी समान जो एक फुंसी होतीहै उसको गधमाला कहतेहैं ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

अथ कक्षागंधमालयोश्चिकित्सा ।

कक्षाश्च गन्धमालाश्च चिकित्सेच्च चिकित्सकः ॥ पैत्तिकस्य विसर्पस्य क्रियया पूर्वमुक्तया ॥ ६३ ॥

पित्तज विसर्पकी जो चिकित्सा कही है वही चिकित्सा कक्षा और गधमालाकी करनी चाहिये ॥ ६३ ॥

अथाग्निरोहिणीलक्षणम् ।

कक्षाभागेषु विस्फोटा जायन्ते मांसदारुणाः ॥ अन्तर्दाहज्वरकरा दीप्तपावकसन्निभाः ॥ ६४ ॥ सप्ताहाद्वा दशाहाद्वा पक्षाद्वा घ्नन्ति मानवम् ॥ तामग्निरोहिणीं विद्यादसाध्यां सान्निपातिकीम् ॥ ६५ ॥

सप्ताहादिति वातपित्तकफापेक्षया बोद्धव्यम् । घ्नन्तीत्यनुपक्रान्ता उपक्रान्तास्तु साध्या एव । चरकेण अग्निरोहिण्य चिकित्साया उक्तत्वात् ॥

काखमें अत्यत दारुण, भीतर दाह करनेवाली और प्रदीप्त अग्निकी समान जो फोडे होतेहैं उनको अग्निरोहिणी कहतेहैं । जो इनमें वायुकी उल्वणता होय तो यह मनुष्यको सातदिनमें मारदेतीहै । पित्तकी उल्बणता होय तो दशदिनमें मारदेतीहै और कफकी उल्बणता होय तो पन्द्रह दिनमे मारदेतीहै तीनों दोषोंके प्रकोपसे उत्पन्न हुई यह अग्निरोहिणी असाध्य है ।

यहां ऐसा जानना कि जो इसकी चिकित्सा न की जाय तो अग्निरोहिणी असाध्य होजातीहै किंतु जो चिकित्सा कीजाय तो साध्य है क्योंकि चरकने अग्निरोहिणीकी चिकित्सा कही है ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

अथाग्निरोहिणीचिकित्सा ।

पित्तवीसर्पविधिना साधयेदग्निरोहिणीम् ॥ रोहिण्यां लंघनं कुर्याद्रक्तमोक्षणरूक्षणम् ॥ शरीरस्य च संशुद्धिं तान्तु वृद्धां परित्यजेत् ॥ ६६ ॥

पित्तजविसर्पोक्त चिकित्साके अनुसार वैद्य अग्निरोहिणीको भी दूर करे ॥

अग्निरोहिणीको दूर करनेके लिये वैद्य लघन करावे, रुधिर निकलवावे, और विरेचन आदिसे शरीरको सशोधन करे, परंतु जो अग्निरोहिणी अत्यत वृद्धिको प्राप्त होय तो उसकी चिकित्सा न करे ॥ ६६ ॥

अथ विदारिकालक्षणं निदानं च ।

विदारीकन्दवद्वृत्तां कक्षावंक्षणसन्धिषु ॥ रक्तां विदारिकां विद्यात्सर्वजां सर्वलक्षणाम् ॥ ६७ ॥

अत्र पिडकामिति विशेष्यपदमध्याहारणीयम् ॥

काँख अथवा वक्षण सधिमें विदारीकदकी समान गोल हुई, लाल, सम्पूर्ण दोषोंसे उत्पन्न होनेवाली और सम्पूर्ण दोषोंके लक्षणोंयुक्त जो फुंसी होय तो वह विदारिका कहीजातीहै ॥ ६७ ॥

अथ विदारिकाचिकित्सा ।

विदारिकायां प्रथमं जलौकायोजनं हितम् ॥ पाटनश्च विपक्कायां ततो व्रणविधिः स्मृतः ॥ ६८ ॥

विदारिकापर प्रथम जौंक लगानी उत्तम है, और जो विदारिका पकगई होय तो उसको शस्त्रसे चीरना चाहिये और पश्चात् व्रणकी समान चिकित्सा करे ॥ ६८ ॥

अथ चिप्यलक्षणम् ।

नखमांसमधिष्ठाय वातः पित्तश्च देहिनाम् ॥ करोति दाहपाकौ च तं व्याधिं चिप्यमादिशेत् ॥ ६९ ॥

चिप्यं वेडवा इति लोके ॥

वात और पित्त यह मनुष्योंके नखोके मांसमे रहकर नखका क्षय करदेतेहैं तथा पकादेतेहैं उसको चिप्यरोग कहतेहैं ॥ ६९ ॥

अथ कुनखनिदानलक्षणम् ।

अभिघातात्प्रदुष्टो यो नखो रूक्षः सितः खरः ॥ भवेत्तं कुनखं विद्यात्कुलीनं वाऽभिधानतः ॥ ७० ॥

अभिधानतः नामतः ॥

काष्ट आदिके आघातसे दुष्ट हुआ नख रूखा, सफेद और खरखरा होजाताहै इसको कुनख अथवा कुलीर कहतेहैं ॥ ७० ॥

अथ चिप्यकुनखचिकित्सा।

चिप्यं रुधिरमोक्षेण शोधनेनाप्युपाचरेत्॥ गतोष्माणमथैनन्तु सेचयेदुष्णवारिणा॥ ७१॥ शस्त्रेणापि यथायोग्यमुच्छिद्य स्रावयेत्ततः॥ व्रणोक्तेन विधानेन रोपयेत्तं विचक्षणः॥ ७२॥ स्वरसेन हरिद्रायाः पात्रे कृत्वायसेऽभयाम्॥ घृष्ट्वा तज्जेन कल्केन लिम्पेच्चिप्यं पुनःपुनः॥ ॥ ७३॥ काश्मर्याः सप्तभिः पत्रैः कोमलैः परिवेष्टितः॥ अंगुलीवेष्टकः पुंसां ध्रुवमाशु प्रशाम्यति॥ ७४॥ श्लेष्मविद्रधिकल्केन कुनखं समुपाचरेत्॥ नखकोटिप्रविष्टेन टंकणेन न शाम्यति॥ कुनखश्चेत्तदा शैलः सलिले प्लवतेऽपि च॥७५॥

चिप्य हुआ होय तो रुधिर निकलवावे और शोधनभी करना चाहिये इसमेंसे जो गरमी नही रही होय तो गरम जलसे सेचन करे।

विचक्षण वैद्य योग्य रीत्यनुसार उसको शस्त्रसे चीरकर स्राव करावे, पश्चात् व्रणकी चिकित्साके अनुसार शोधन रोपण करे।

लोहेके वासनमे हलदीका रस डालकरके उसमें हरड को घिसकर चिप्यपर वारंवार लेप करे।

कुम्भेरके कोमल सात पत्तोको अगुलिपर बांधनेसे चिप्य तत्काल शांत होजाताहै।

कफज विद्रधिकी जो चिकित्सा कही है वही चिकित्सा कुनखकी की जावे तो कुनख अवश्य नष्ट होजाताहै।

कुनखके भीतर सुहागा भरनेसे कुनख अवश्य आराम होजाताहै॥ ७१-७५॥

अथ परिवर्तिकानिदानलक्षणम्।

मर्दनात्पीडनाद्वापि तथैवाप्यभिघाततः॥ मेढ्रचर्म यदा वायुर्भजते सर्वतश्चरन्॥ ॥ ७६॥ तदा वातोपसृष्टन्तु तच्चर्म परिवर्तते॥ सवेदनं सदाहं च पाकञ्च व्रजति क्वचित्॥ ७७॥ मणेरधस्तात्कोषस्तु ग्रन्थिरूपेण लम्बते॥ मारुतागन्तुसम्भूतां विद्यात्तां परिवर्तिकाम्॥ सकण्डूः कठिना चापि सैव श्लेष्मसमन्विता॥ ७८॥

अस्यां वातजायामपि पित्तानुबन्धो बोद्धव्यो दाहपाकभावात्। कोषः चर्मकोषः।

सम्पूर्ण शरीरमे विचरती हुई वायु लिंगको खुजानेसे, दबानेसे तथा चोटके लगनेसे लिंगकी त्वचामे आतीहै तब वह वायुसे दूषित त्वचा परिवर्तन कहीजातीहै। वेदनायुक्त, दाहसहित, और किसी समय पकजातीहै। इसप्रकार लिंगकी मणिके नीचे वह चमडी गांठकी समान लटकतीहै। वायु तथा अभिघात आदि आगन्तुक कारणोंसे उत्पन्न हुआ यह रोग परिवर्तिका कहाजाताहै इस रोगमे कफका भी सबंध होय तो त्वचा खुजलीवाली तथा कठिन होतीहै।

यद्यपि यह रोग वातसे उत्पन्न होय तो इसे दाह और पाक होनेसे पित्तका सम्बन्ध जानना॥ ७६-७८॥

अथ परिवर्तिकाचिकित्सा।

परिवर्तिं घृताभ्यक्तां सुस्विन्नामुपनाहयेत्॥ त्रिरात्रं पञ्चरात्रञ्च वातघ्नैः शाल्वलादिभिः॥ ७९॥ ततोऽभ्यज्य शनैश्चर्म पाटयेत्पीडयेन्मणिम्॥प्रविष्टे चर्मणि मणौ स्वेदयेदुपनाहनैः॥ दद्याद्वातहरान्वस्तीन्स्निग्धान्यन्नानि भोजयेत्॥ ८०॥

परिवर्तिकाको घी चुपडकर अच्छे प्रकारसे सेक देवे और तीन रात्रितक अथवा पाच रात्रितक वायुको हरनेवाले शाल्वणादि कल्कोंकी पट्टी बांवे, फिर त्वचाको घीसे चुपडकर धीरे धीरे बढाकर लिंगकी मणिको दबावे कि जिससे मणि त्वचाके भीतर चली जाय। मणिको त्वचामे प्रवेश कराकर पश्चात् उपनाह स्वेद कर वातनाशक पिचकारी लगवे तथा रोगीको स्निग्ध अन्न भोजनके लिये देवे॥ ७९॥ ८०॥

अथावपाटिकानिदानलक्षणम्।

अल्पीयःखां यदा हर्षाद्बलाद्गच्छेत्स्त्रियं नरः॥ हस्ताभिघातादथवा चर्मण्युद्वर्तिते

बलात् ॥ ८१ ॥ मर्दनात्पीडनाद्वापि शुक्रवेगाभिघाततः ॥ यस्यावपाट्यते चर्म तां विद्यादवपाटिकाम् ॥ ८२ ॥ वातेन कर्कशा रूक्षा सूक्ष्मा कृष्णा रुगन्विता ॥ पित्तेन पीता रक्ता वा दाहतृष्णासमन्विता ॥ श्लेष्मणा कठिना स्निग्धा कण्डूमत्स्वल्पवेदना ॥ ८३ ॥

अल्पीयः अल्पतरं खं योनिच्छिद्रं यस्याः ताम् । अवपाट्यते विदीर्यते ॥

जिस स्त्रीकी योनिका छिद्र बहुत छोटा होय ऐसी योनिवाली स्त्रीके साथ कामातुर पुरुष बल सहित मैथुन करनेसे, अथवा हस्त मैथुनादि करनेसे, हाथकी चोटके लगनेसे जोरसे, त्वचाको उलटनेसे अथवा खुजानेसे वा दवानेसे, अथवा वीर्यके वेगके अभिघातसे लिंगकी त्वचा फटजातीहै, इसको अवपाटिका कहतेहैं । यह अवपाटिका जो वायु सम्बन्धवाली होय तो खरखरी, रूखी, सूक्ष्म, काली तथा वेदनावाली होतीहै । पित्तके सम्बन्धवाली होय तो पीली अथवा लाल और दाहसे तथा तृषासे संयुक्त होतीहै और जो कफके सम्बन्धवाली होय तो कठिन, स्निग्ध, खुजलीवाली और अल्प पीडा युक्त होती है ॥ ८१–८३ ॥

अथावपाटिकाचिकित्सा ।

स्नेहस्वेदैरिमां वैद्यश्चिकित्सेदवपाटिकाम् ॥ ८४

वैद्य स्नेहों तथा स्वेदोंसे अवपाटिकाकी चिकित्सा करे ॥ ८४ ॥

अथ निरुद्धप्रकशलक्षणम् ।

वातोपसृष्टे मेढ्रे तु चर्म संश्रयते मणिम् ॥ मणिश्चर्मोपनद्धस्तु मूत्रस्रोतो रुणद्धि च ॥ ॥ ८५ ॥ निरुद्धप्रकशे तस्मिन्मन्दधारमवेदनम् ॥ मूत्रं प्रवर्तते जन्तोर्मणिर्विव्रियते न च ॥ ८६ ॥ निरुद्धप्रकशं विद्यात्सरुजं वातसम्भवम् ॥ ८७ ॥

निरुद्धप्रकाशमित्यस्य स्थाने निरुद्धप्रकशपदमार्षत्वात् ॥

लिंगमें वातका प्रकोप होकर चमडी मणिके आगे आकर चिपट जातीहै इसप्रकार चमडीसे बढी हुई मणि मूत्रके प्रवाहको रोक देतीहै इसको निरुद्धप्रकश रोग कहतेहैं । इस रोगमे मूत्र मन्द मन्द धारसे तथा वेदनारहित निकलताहै और लिंगकी सुपारी खुलती नहीं, यह रोग वायुसे होताहै और इसमे वेदना भी होतीहै । व्याकरणके अनुसार 'निरुद्धप्रकाश' ऐसा होना चाहिये परन्तु 'निरुद्धप्रकश' यह आर्ष है । अत एव 'निरुद्धप्रकश' ही लिखा है ॥ ८५–८७ ॥

अथ निरुद्धप्रकशचिकित्सा ।

निरुद्धप्रकशे नाडीं लौहीमुभयतोमुखीम् ॥ दारवीं वा जतुकृतां घृताक्तां सम्प्रवेशयेत् ॥ ८८ ॥ परिषिञ्चेद्वसामज्जां शिशुमारवराहयोः ॥ चक्रतैलं तथा योज्यं वातघ्नद्रव्यसंयुतम् ॥ ८९ ॥ त्र्यहात्स्थूलतरां सम्यङ् नाडीं मार्गे प्रवेशयेत् ॥ स्रोतो विवर्द्धयेदेवं स्निग्धमन्नञ्च भोजयेत् ॥ भित्त्वा वा सेवनीं मुक्त्वा सद्यः क्षतवदाचरेत् ॥ ९० ॥

निरुद्धप्रकशमे दोनो ओर मुखवाली घीसे चुपडी हुई लोहेकी, वा लकडीकी अथवा लाखकी बनी नली लिंगके छिद्रमें प्रवेश करे, पश्चात् उसके ऊपर शिशुमार (सूस) नामक जतुकी तथा सूअरकी चरबीका वा मज्जाका सेचन करे और वातनाशक पदार्थोके साथ चक्रके तेलका भी सेचनकरे । तीन तीन दिनके पश्चात् क्रम क्रमसे बढाकर बडी नली उसमें अच्छे प्रकारसे प्रवेश करे कि जिससे मूत्रका मार्ग बढे । इस क्रियाके करते समय रोगीको स्निग्ध अम्ल भोजनके लिये देवे ।

सीवनको छोडकर शस्त्रसे चीरे, तत्काल क्षतकी समान चिकित्सा करे तो इससे निरुद्धप्रकश नष्ट होजाताहै ॥ ८८–९० ॥

अथ सन्निरुद्धगुदनिदानलक्षणम् ।

वेगसन्धारणाद्वायुर्विहतो गुदसंश्रितः ॥

निरुणद्धि महत्स्रोतः सूक्ष्मद्वारं करोति च ॥ ९१ ॥ मार्गस्य सौक्ष्म्यात्कृच्छ्रेण पुरीषं तस्य गच्छति ॥ सन्निरुद्धगुदं व्याधिमेतं विद्यात्सुदुस्तरम् ॥ ९२ ॥

मलादिके वेगोंको रोकनेसे अभिघातको प्राप्त हुई गुदामे रहनेवाली वायु गुदाके बडे द्वारको रोककर छोटा करदेती है कि जिससे मार्ग सुकडकर विष्ठा थोडी थोडी निकलती है । यह सन्निरुद्धगुदनामक व्याधि कहीजाती है और यह अत्यत दुस्तर है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

अथ सन्निरुद्धगुदचिकित्सा ।

सन्निरुद्धगुदे तैलैः सेको वातहरैर्हितः ॥ तथा निरुद्धप्रकशक्रियापि कथिताऽथवा ॥ ९३ ॥

वातनाशक तैलोंसे सेचनकरे अथवा निरुद्धप्रकशकी जो चिकित्सा कही है वही चिकित्सा करनेसे सन्निरुद्धगुद नष्ट होजाताहै ॥ ९३ ॥

अथ वृषणकच्छूनिदानलक्षणम् ।

स्नानोत्सादनहीनस्य मलो वृषणसंस्थितः ॥ प्रक्लिद्यते यदा स्वेदात्कण्डूं जनयते तदा ॥ ९४ ॥ ततः कण्डूयनात्क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते ॥ प्राहुर्वृषणकच्छूं तां श्लेष्मरक्तप्रकोपजाम् ॥ ९५ ॥

उत्सादनम् उद्वर्तनं मलः मैलि इति लोके । प्रक्लिद्यते आर्द्रो भवति ॥

स्नान नहीं करनेसे तथा अंगोंको साफ नहीं करनेसे अथवा स्नान करते समय जो मनुष्य मैलको उबटन आदिसे नही साफ करता उसके वृषणोंके ऊपर स्थित मैल जब पसीनेके साथ मिलताहै तब खुजलीको उत्पन्न करे है उसको बारबार खुजानेसे तत्काल फोडा होजाताहै और वह स्राववाला होता है । यह रोग कफ तथा रुधिरके प्रकोपसे होताहै ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

अथ वृषणकच्छूचिकित्सा ।

सर्जाह्वकुष्ठसैन्धवसितसिद्धार्थैः प्रकल्पितो योगः ॥ उद्वर्तनेन नियतं शमयति वृषणस्य कण्डूतिम् ॥ ९६ ॥ भिषग्वृषणकच्छूं तु चिकित्सेत्पामरोगवत् ॥ अहिपूतननिर्दिष्टक्रिययापि च तां हरेत् ॥ ९७ ॥

राल, कूठ, सैधानिमक और सफेद सरसो, इनको एकत्र करके वृषणोंके ऊपर मलनेसे वृषणकी खुजली अवश्य नष्ट होजाती है ।

वैद्य वृषणकच्छूकी पामाकी समान चिकित्सा करे अथवा नीचे अहिपूतन नामक रोगकी जो चिकित्सा कही है वही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

अथाहिपूतननिदानलक्षणम् ।

शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्भवेत् ॥ स्विन्ने वाऽस्नाप्यमानस्य कण्डू रक्तकफोद्भवा ॥ ९८ ॥ कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते ॥ एकीभूतं व्रणैर्घोरं तं विद्यादहिपूतनम् ॥ ९९ ॥

मलमूत्रके त्यागके बाद बालककी गुदामे विष्ठा लगारहनेसे, उसको बराबर नही धोनेसे गुदामे खाज होजाती है और पसीनेके निकलनेपर उसको साफ न करनेसे अर्थात् पसीनेको वहीं मरनेदेनेसे रुधिर तथा कफके प्रकोपसे खुजली होती है और खुजवानेसे तत्काल फुसी तथा स्राव होताहै जिससे कि उत्पन्न हुए व्रण एकत्रित होकर भयकर होजाते हैं उसको अहिपूतन कहते हैं ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

अथाहिपूतनचिकित्सा ।

तत्र संशोधनैः पूर्वं धात्रीस्तन्यं विशोधयेत् ॥ त्रिफलाखदिरक्वाथैर्व्रणानां क्षालनं हितम् ॥ शंखसौवीरयष्ट्याह्वैर्लेपः कार्योऽहिपूतने ॥ १०० ॥

अहिपूतनके उत्पन्नहोतेही प्रथम संशोधनसे माताके दूधको शुद्ध करे । हरड, बहेडा, आमले तथा खैरके क्वाथसे व्रणोंको धोवे और शंखका चूर्ण सौवीरनामक कांजी और मुलेठी इनका लेप करे ॥ १०० ॥

अथ गुदभ्रंशनिदानलक्षणम् ।

प्रवाहिकातिसाराभ्यां निर्गच्छति गुदं बहिः ॥ रूक्षदुर्बलदेहस्य गुदभ्रंशं तमादिशेत् ॥ १०१ ॥

जिसका शरीर रूखा और दुर्बल होय उसकी गुदा दस्त आनेके समय जोर करनेसे तथा अतिसारसे बाहर निकलआती है, उसको गुदभ्रंश कहते हैं । उसको काँच निकलना भी कहते हैं ॥ १०१ ॥

अथ गुदभ्रंशचिकित्सा ।

गुदभ्रंशे गुदं स्विन्नं स्नेहेनाक्तं प्रवेशयेत् ॥ प्रविष्टं रोधयेद्यत्नाद्गव्येनाच्छिद्रचर्मणा ॥ १०२ ॥ पद्मिन्याः कोमलं पत्रं यः खादेच्छर्करान्वितम् ॥ एतन्निश्चित्य निर्दिष्टं न तस्य गुदनिर्गमः ॥ १०३ ॥ मूषकाणां वसाभिर्वा गुदभ्रंशे प्रलेपनम् ॥ सुस्विन्नं मूषिकामांसेनाथवा स्वेदयेद्गुदम् ॥ १०४ ॥ वृक्षाम्लानलचांगेरीबिल्वपाठायवाग्रजम् ॥ तक्रेण शीलयेत्पायुभ्रंशार्तोऽनलदीपनम् ॥ १०५ ॥

गुदभ्रंश रोगमें गुदाको सेककर घीसे अथवा तेलसे काँचको भीतर प्रवेश करदेवे और प्रवेश करनेके पश्चात् विनाछिद्रवाले बैलके चमडेसे उसको यत्नपूर्वक रोकदेवे ।

जो मनुष्य कमलिनीके कोमल पत्तोंको खांडके साथ खाताहै उसकी कॉच निकलनी बद होजाती है ।

काँचके उपर चूहेकी चरवी चुपडनेसे अथवा मूषेके मांसका वफारा देनेसे कॉच निकलनी बद होजाती है तितिर्टीक, चित्रक, चूक, वेलगिरी, पाढ, इन्द्रजौ इनका चूर्ण बनाकर मट्ठेके साथ खानेसे गुदभ्रंश नष्ट होताहै और अग्नि दीप्त होती है ॥ १०२–१०५ ॥

अथ मूषकतैलम् ।

मूषका दशमूलानि गृह्णीयादुभयं समम् ॥ तयोः क्वाथेन कल्केन पचेत्तैलं यथोदितम् ॥ १०६ ॥ अभ्यंगात्तस्य तैलस्य गुदभ्रंशो विनश्यति ॥ विनश्यति तथानेन गुदशूलं भगन्दरम् ॥ १०७ ॥

मूषा और दशमूल इनको समान भाग लेकर इनके क्वाथ और कल्कसे तेलको पकावे, इस तेलके लगानेसे गुदभ्रंश नष्ट होजाताहै और गुदशूल तथा भगन्दरभी नष्ट होजाताहै ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

अथ शूकरदंष्ट्रकलक्षणम् ।

सदाहो रक्तपर्यन्तस्त्वक्पाकी तीव्रवेदनः ॥ कण्डूमाञ्ज्वरकारी च स स्याच्छूकरदंष्ट्रकः ॥ १०८ ॥ सः गुदभ्रंशः ॥

जो गुदभ्रंश दाहयुक्त, लाल किनारोवाला, पकी चमडीवाला, तीव्रवेदनायुक्त, खुजलीसहित और ज्वर युक्त होय तो उसको शूकरदंष्ट्र कहते है ॥ १०८ ॥

अथ शूकरदंष्ट्रकचिकित्सा ।

भृंगराजकमूलस्य रजन्या सहितस्य च ॥ चूर्णन्तु सहसा लेपाद्वाराहद्विजनाशनम् ॥ १०९ ॥

भांगरेकी जडके चूर्णको हलदीके साथ लेप करनेसे शूकरदंष्ट्र तत्काल नष्ट होजाताहै ॥ १०९ ॥

राजीवमूलकल्कः पीतो गव्येन सर्पिषा प्रातः ॥ शमयति शूकरदंष्ट्रं दंष्ट्रोद्भूतं ज्वरं घोरम् ॥ ११० ॥ रजनी मार्कवं मूलं पिष्टं शीतेन वारिणा ॥ तल्लेपाद्धन्ति वीसर्पवाराहदशनाह्वयम् ॥ १११ ॥

प्रातःकाल कमलकी जडके कल्कको गायके घीके साथ पीनेसे शूकरदंष्ट्र और उससे उत्पन्न हुआ घोर ज्वर तत्काल शांत होजाताहै ।

हलदी और भागरेकी जडको शीतल जलमें पीसकर लेप करनेसे विसर्प और शूकरदंष्ट्र अवश्य नष्ट होजाताहै ॥ ११० ॥ १११ ॥

अथानुशयीलक्षणम् ।

गम्भीरामल्पशोथां च सवर्णामुपरि स्थिताम् ॥ पादस्यानुशयीं तान्तु विद्यादन्तःप्रपाकिनीम् ॥ ११२ ॥

अत्र पिडकामिति विशेष्यपदमध्याहरणीयम् । गम्भीरा अन्तःपाकेन ॥

भीतर पकनेवाली, गंभीर, थोडी सूजनयुक्त और पावके समान रंगवाली जो फुंसी पावपर होती है उसको अनुशयी कहते है ॥ ११२ ॥

अथानुशयीचिकित्सा ।

हरेदनुशयीं वैद्यः क्रियया श्लेष्मविद्रधेः ॥ ११३ ॥

वैद्य कफविद्रधिकी समान अनुशयीकी चिकित्सा करे ॥ ११३ ॥

अथालसलक्षणम् ।

क्लिन्नांगुल्यन्तरौ पादौ कण्डूदाहसमन्वितौ॥ दुष्टकर्दमसंस्पर्शादलसं तं विभावयेत् ॥ ११४ ॥

अलसं कन्दई इति लोके ॥

सडी हुई कींच आदिमे फिरनेसे पावोंकी अगुलियोंके बीचमे क्लेदयुक्त खुजली और दाह तथा गीलापन रहता है उसको अलस कहतेहै देशमे खारुआ कहतेहै॥११४॥

अथालसचिकित्सा ।

पादौ सिक्त्वारनालेन लेपनं त्वलसे हितम् ॥ पटोलकुनटीनिम्बरोचनामरिचैस्तिलैः ॥ ११५ ॥ क्षुद्रास्वरससिद्धेन कटुतैलेन लेपयेत् ॥ ततः कासीसकुनटीतिलचूर्णैर्विचूर्णयेत् ॥ ११६ ॥

विचूर्णयेदवधूलयेत् ॥

करञ्जबीजं रजनी कासीसं पद्मकं मधु ॥ रोचना हरितालश्च लेपोऽयमलसे हितः ॥ ११७ ॥

आरनालसे पावोंको सेचनकरके लेपकरनेसे खारुवे दूर होजाते हैं ।

कडवे परवल, मैनशिल, नीम, गोलोचन, काली मिरच, तिल और कटेरीका स्वरस इनसे पकाये हुए तेलका अलसके ऊपर लेपन करे, पश्चात् हीराकसीस, मैनशिल और तिल इनका चूर्ण बुरका देवे। करजके बीज, हलदी, हीराकसीस, पद्माख, सहत, गोलोचन और हरिताल इनका प्रलेप करनेसे अलस अवश्य नष्ट होजाताहै॥११५–११७

अथ पाददारीलक्षणम् ।

परिक्रमणशीलस्य वायुरत्यर्थरूक्षयोः ॥ पादयोः कुरुते दारीं सरुजां तलसंश्रिताम् ॥ ११८ ॥

दारी बिवाई ॥

जिसको पृथिवीपर फिरनेका बहुत अभ्यास होय तो उस मनुष्यके अत्यंत रूखे हुए पावोंके तलुओंमे वायु, वेदनासहित दारीको उत्पन्न कर देताहै इसको देश भाषामें बिवाई कहतेहैं ॥ ११८ ॥

अथ पाददारीचिकित्सा ।

पाददार्यां शिरां प्राज्ञो मोचयेत्तलशोधिनीम् ॥ स्नेहस्वेदोपपन्नौ तु पादौ वा लेपयेन्मुहुः ॥ मधूच्छिष्टवसामज्जाघृतैः क्षारविमिश्रितैः ॥ ११९ ॥

क्षारो यवक्षारः । वसा मज्जा च सामान्यतः छागादीनाम् । विशेषानभिधानतः । उक्तश्च–

मेदोमज्जावसा ज्ञेया ग्राम्यानूपौदकोद्भवा॥ स्नेहोऽस्थ्नः शुचिरेव स्यात्स मज्जा कथितो बुधैः ॥ १२० ॥

वसा शुद्धमांसभवः स्नेहः ।

सर्जाह्वसिन्धूद्भवयोश्चूर्णं घृतमधुप्लुतम्॥ निर्मथ्य कटुतैलाक्तं हितं पादप्रमार्जने ॥ १२१ ॥ मधुसिक्थकगैरिकधृतगुडमाहिषाक्षशालनिर्यासैः ॥ गैरिकसहितैर्लेपः पादस्फुटनापहः सिद्धः ॥ १२२ ॥

मधुसिक्थकं मोम इति लोके । प्रथमं गैरिकं शिलाजतु, द्वितीयं गैरिकं गेरू इति लोके । शालनिर्यासः राल इतिलोके ।

पांवमें बिवाई हुई होय तो वैद्य तलुवेको शुद्ध करनेके लिये फस्तको खोलकर रुधिरको निकलवावे ।

पांवोंको स्नेहन तथा स्वेदन करके पश्चात् मोम, वसा, चरबी, मज्जा, घी और जवाखार इनको एकत्र मिलाकर वारवार लेप करे तो दारी (बिवाई) दूर होजातीहै यहां चरबी और मज्जा किसकी लेनी चाहिये यह कुछ नहीं लिखा इस कारण बकरा आदि जीवोंकी लेनी चाहिये । क्योंकि मदनपाल कहताहै कि "मेद, मज्जा तथा चरबी ग्राम्यपशुओंकी जलप्राय प्रदेशके जीवोंकी और जलचर प्राणियोंकी लेनी चाहिये । और हड्डीके भीतरका जो उत्तम स्नेह है वह मज्जा कहाजाताहै ।

राल तथा सैंधानिमक इनके चूर्णको घीमे तथा सहतमे मिलाकर मथै फिर उसमे सरसोंका तेल मिलाकर पावोंमे लगानेसे बिवाई दूर होजातीहै ।

मोम, शिलाजीत, घी, गुड, भैंसिया गूगल, राल और

हि इनको मिलाकर लेप करनेसे पावोंका फटना बंद होजाताहै ॥ ११९–१२२ ॥

अथोन्मत्ततैलम्।

उन्मत्तकस्य बीजेन मानकक्षारवारिणा ॥ विपक्वं कटुतैलन्तु हन्यात्पादहारीं न संशयः १२३

धतूरेके बीज और मानकदकी भस्मके जलसे पकाया हुआ सरसोंका तेल पांवोंके फटनेके लिये उत्तम है यह निश्चय है ॥ १२३ ॥

अथ कदरलक्षणम्।

शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कण्टकादिभिः ॥ ग्रन्थिः कोलवदुत्सन्नो जायते कदरस्तु सः ॥ १२४ ॥

शर्करा अत्र वालुका । कोलवत्क्षुद्रबदरवत् । उत्सन्नः उद्गतः ॥

पावमें कंकर पत्थर रेता आदिके लगनेसे अथवा कांटे आदिके छिद जानेसे पावमें छोटे वेरकी समान ऊंची गांठ उत्पन्न होतीहै उसको कदर कहतेहैं । देशमें टेक वा टेट कहतेहैं ॥ १२४ ॥

अथ कदरचिकित्सा।

दहेत्कदरमुद्धृत्य तैलेन दहनेन वा ॥१२५॥

कदरको शस्त्रसे चीरकर गरम तेलका अथवा अग्निको दाग देनेसे कदर नष्ट होजाताहै ॥ १२५ ॥

अथ तिलकालकलक्षणम्।

कृष्णानि तिलमात्राणि नीरुजानि समानि च ॥ वातपित्तकफोद्रेकात्तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥ १२६ ॥

समानि अनुद्गतानि । अयं तिल इति लोके ।

वात, पित्त तथा कफके प्रकोपसे काले, तिलकी समान पीडारहित त्वचासे मिले जो दाग होतेहैं उनको तिलकालक (तिल) कहतेहैं ॥ १२६ ॥

अथ मशकलक्षणम्।

अवेदनं स्थिरञ्चैव यस्तु गात्रे प्रदृश्यते ॥ माषवत्कृष्णमुत्सन्नं मलिनं मशकं दिशेत् ॥ १२७ ॥

स्थिरमचलम् अवेदनं वेदनारहितं मशक इति लोके ॥

शरीरमें उडदकी समान काले तथा ऊंचे, मलिन, वेदनारहित और स्थिर जो दाग होतेहैं उनको मशक कहतेहैं। देशमें मस्सा कहतेहैं ॥ १२७ ॥

अथ श्यावपिंडिकलक्षणम्।

वित्वचस्तनवः स्फोटाः सूक्ष्माग्राः श्यावपिण्डिकाः ॥ भवन्ति कफपित्ताभ्यां क्षिप्रं नाशं प्रयान्ति च ॥ १२८ ॥

पतली त्वचावाले, सूक्ष्म अग्रभागवाले, शीघ्र नाशहोनेवाले जो कफवातसे उत्पन्न हुए स्फोट, उनको श्यावपिडिक कहतेहैं ॥ १२८ ॥

अथ जतुमणिलक्षणम्।

सममुत्सन्नमरुजं मण्डलं कफरक्तजम् ॥ सहजं लक्ष्म चैकेषां लक्ष्यो जतुमणिश्च सः ॥ १२९ ॥ कृष्णः स्निग्धो जतुमणिर्ज्ञेयो वातोत्तरैस्त्रिभिः ॥ अरुजं त्वपरे रक्तं लक्ष्मेत्याहुर्भिषग्वराः ॥ १३० ॥

समं समवर्णम् । उत्सन्नं किञ्चिदुत्सन्नम् । सहजं शरीरेण सह जातम् । एवंविधं यन्मण्डलं स जतुमणिर्लक्ष्यः लक्ष्म चैकेषामिति । एकेषामाचार्याणां मते तन्मण्डलं लक्ष्मसंज्ञश्च । लक्ष्म लशुन इति लोके । अपरैस्तु जतुमणिलक्ष्मणोर्भेदकं लक्षणमुक्तम् । कृष्ण इत्यादिना ॥

शरीरकी समान वर्णवाला, कुछेक ऊंचा शरीरके साथ उत्पन्नहुआ और कफ तथा रुधिरके प्रकोपवाला जो गोल मण्डल होताहै उसको जतुमणि कहतेहैं, कितने एक आचार्य जतुमणिको लक्ष्म वा लक्ष्यक कहतेहैं देशमें लहसन या लहसा कहतेहैं।

कितने एक उत्तम वैद्योंका ऐसा मत भी है कि, वात पित्त और उल्वणतावाले कफसे भी काला और चिकना जो मण्डल होताहै वह जतुमणि कहाजाताहै और इसी प्रकार वेदनारहित जो लाल मण्डल होताहै वह लक्ष्म कहाजाताहै ॥ १२८–१३० ॥

अथ तिलकालकमशकजतुमणिचिकित्सा।

चर्मकीलं जतुमणिमशकांस्तिलकालकान्॥

उत्कृत्य शस्त्रेण दहेत्क्षाराग्निभ्यामशेषतः ॥ १३१ ॥

चर्मकील नामक अर्शको, जतुमणिको, मस्सेको और तिलको शस्त्रसे चीरकर क्षारसे तथा अग्निसे सम्पूर्ण रीतिसे दागदेवे ॥ १३१ ॥

अथ न्यच्छलक्षणम् ।

मण्डलं महदल्पं वा श्यावं वा यदि वा सितम् ॥ सहजं नीरुजं गात्रे न्यच्छं तदभिधीयते ॥ १३२ ॥

शरीरमें वडा अथवा छोटा, काला अथवा सफेद, शरीरके साथ उत्पन्नहुआ और वेदनारहित जो मंडल होताहै उसको न्यच्छ कहतेहैं ॥ १३२ ॥

अथ न्यच्छचिकित्सा ।

शिरावेधैः प्रलेपैश्च तथाभ्यङ्गैरुपाचरेत् ॥ न्यच्छं लिम्पेत्पयःपिष्टैः कल्कैः क्षीरतरूद्भवैः ॥ १३३ ॥ त्रिभुवनविजयापत्रं मूलं स्थविरस्य शिंशिपा चैभिः ॥ उद्वर्तनं विरचितं न्यच्छव्यंगापहं सिद्धम् ॥ १३४ ॥

स्थविरस्य वृद्धदारस्य ॥

शिराको वेधन करनेसे, प्रलेप करनेसे और अभ्यगसे न्यच्छकी चिकित्सा करे ।

क्षीरवृक्षोंकी छालको दूधमें पीसकर उस कल्कसे न्यच्छके ऊपर लेप करे तो न्यच्छ दूर होजाताहै ।

भांगके पत्ते, विधारेकी जड और सशिम इनको पीसकर रगडकर मलनेसे न्यच्छ तथा व्यग अवश्य दूर होजाताहै ॥ १३३ ॥ १३४ ॥

अथ पद्मिनीकण्टकलक्षणम् ।

कण्टकैराचितं वृत्तं कण्डुमत्पाण्डुमण्डलम् ॥ पद्मिनीकण्टकप्रख्यैस्तदाख्यं कफवातजम् ॥ १३५ ॥

आचितं व्याप्तम् ॥ पद्मिनीकण्टकप्रख्यैः पद्मिनीनालकण्टकसदृशैस्तदाख्यं पद्मिनीकण्टकनामैव ॥

कफ तथा वायुसे उत्पन्नहुई कमलनालके कांटोकी समान कांटोंसे व्याप्त, खुजलीसहित, गोल और पीला जो मण्डल होताहै वह 'पद्मिनीकण्टक' कहाजाताहै ॥ १३५ ॥

अथ पद्मिनीकण्टकचिकित्सा ।

पद्मिनीकण्टके रोगे छर्दयेन्निम्बवारिणा ॥ तेनैव सिद्धं सक्षौद्रं सर्पिः पातुं प्रदापयेत् ॥ १३६ ॥

पद्मिनीकण्टक नामक क्षुद्ररोग हुआ होय तो नीमके जलसे वमन करावे नीमके पानीसे पकाहुआ घी सहत डालकर पिये । नीम तथा अमलतासके कल्कसे वारंवार चुपडे तो पद्मिनीकण्टक अवश्य दूर होजाताहै ॥ १३६ ॥

अथ निम्बादिघृतम् ।

निम्बारग्वधकल्कैर्वा मुहुरुद्वर्तनं हितम् ॥ चतुर्गुणेन निम्बोथपत्रक्वाथेन गोघृतम् ॥ ॥ १३७ ॥ पचेत्ततस्तु निम्बस्य कृतमालस्य पत्रजैः ॥ कल्कैर्भूयः पचेत्सिद्धं तत्पिबेत्पलसम्मितम् ॥ पद्मिनीकण्टकाद्रोगान्मुक्तो भवति नान्यथा ॥ १३८ ॥

चोगुने नीमके पत्तोंके क्वाथसे नीमके घीको पकाकर फिर उसी घीको नीमके पत्ते तथा अमलतासके पत्तोंके कल्कसे पकावे तो यह निम्बादिघृत सिद्ध होताहै । इस घीको चार चार तोले प्रमाण सेवन करनेसे पद्मिनीकण्टक नष्ट होजाताहै यह निश्चय है ॥ १३७ ॥ १३८ ॥

अथाजगल्लिकालक्षणम् ।

स्निग्धा सवर्णा ग्रथिता नीरुजा मुद्गसन्निभा ॥ कफवातोत्थिता ज्ञेया बालानामजगल्लिका ॥ १३९ ॥

ग्रथिता गुम्फितेव । मुद्गसन्निभा मुद्गाकृतिः ॥

बालकोंके मूँगकी आकृतिवाली, स्निग्ध शरीरके वर्णकी माफिक, गुफित, वेदनारहित और कफसे तथा वायुसे जो फुसिये होतीहैं उनको अजगल्लिका कहतेहैं ॥ १३९ ॥

अथाजगल्लिकाचिकित्सा ।

तत्राजगल्लिकां सामां जलौकोभिरुपाचरेत् ॥ शुक्तिसौराष्ट्रिकाक्षारकल्कैश्चालेप-

येन्मुहुः ॥ कठिनां क्षारयोगेन द्रावयेद-जगल्लिकाम् ॥ १४० ॥

जो अजगल्लिका अपक्व अर्थात् कच्ची होय तो जोंक लगाकर उसकी चिकित्सा करे। सीपकी भस्म तथा फटकरीकी खीलें इनको पीसकर वारवार उसके ऊपर लेप करे। जो अजगल्लिका कठिन होय तो क्षार लगाकर उसको द्रवीभूत करे ॥ १४० ॥

अथ यवप्रख्यालक्षणम् ।

यवाकारा प्रकठिना ग्रथिता मांससंश्रया ॥ पीडिका श्लेष्मवाताभ्यां यवप्रख्येति सोच्यते ॥ १४१ ॥

यवाकारा मध्ये स्थूला प्रान्ते कृशा ।

कफसे तथा वायुसे जौकी समान आकारवाली, अत्यन्त कठिन गुँथीहुई और मांसके आश्रयवाली जो फुडिया होतीहै वह यवप्रख्या कहीजातीहै। जौकी समान आकारवाली अर्थात् बीचमें मोटी और दोनों ओर पतली ॥ १४१ ॥

अथांत्रालजीलक्षणम् ।

घनामवक्त्रां पिडिकामुन्नतां परिमण्डलाम् ॥ अन्त्रालजीमल्पपूयां तां विद्यात्कफवातजाम् ॥ १४२ ॥

घनां कठिनाम् । परिमण्डलां वर्तुलाम् ॥

कठिन, समान अर्थात् टेढी नहीं, ऊंची, गोल और थोडी राधवाली जो फुंसी होतीहै वह अंत्रालजी कहीजातीहै, यह फुंसी कफसे तथा वायुसे होतीहै ॥ १४२ ॥

अथ यवप्रख्यांत्रालजीचिकित्सा ।

अन्त्रालजीयवप्रख्ये पूर्वं स्वेदैरुपाचरेत् ॥ मनःशिलादेवदारुकुष्ठकल्कैः प्रलेपयेत् ॥ पक्वां व्रणविधानेन यथोक्तेन प्रसाधयेत् ॥ १४३ ॥

यवप्रख्या और अत्रालजीको प्रथम स्वेदन देकर पश्चात् मैनशिल देवदारु और कूठ इनका कल्क लगावै। पकनेपर व्रणकी समान चिकित्सा करे ॥ १४३ ॥

अथ विवृतालक्षणम् ।

विवृतास्यां महादाहां पक्वोदुम्बरसन्निभाम् ॥ विवृतामिति तां विद्यात्पित्तोत्थां परिमण्डलाम् ॥ १४४ ॥

परिमण्डलाम् परितः शोथवतीम् ॥

फटे हुए मुखवाली, अत्यन्त दाहयुक्त, पके गूलरकी समान और चारोंओर सूजनवाली जो फुंसी होतीहै वह 'विवृता' कहीजातीहै। यह फुंसी पित्तसे निकलतीहै.॥ १४४ ॥

अथेन्द्रवृद्धालक्षणम् ।

पद्मकर्णिकवन्मध्ये पीडकां पीडकाचिताम् ॥ इन्द्रवृद्धान्तु तां विद्याद्वातपित्तोत्थितां भिषक् ॥ १४५ ॥

पद्मकर्णिकवत्-पद्मफलाधारोपमां पीडकाचितां किञ्जल्कवल्लघुपीडकाचिताम् ॥

बीचमें कमलकर्णिकाकी समान एक फुडिया और उसके चारों ओर बहुतसी छोटी छोटी फुंसी होंयँ उसको वैद्य इन्द्रवृद्धा कहतेहैं, यह वात तथा पित्तसे होतीहै ॥ १४५ ॥

अथ गर्दभिकालक्षणम् ।

मण्डलं वृत्तमुत्सन्नं सुरक्तं पीडकाचितम् ॥ रुजाकरीं गर्दभिकां तां विद्याद्वातपित्तजाम् ॥ १४६ ॥

गोल, ऊंचा, अत्यन्त लाल, फुसियोंसे व्याप्त और वेदना करनेवाला जो मंडल होताहै उसको गर्दभिका कहतेहैं। यह गर्दभिका वायुसे तथा पित्तसे होतीहै ॥ १४६ ॥

अथ जालगर्दभलक्षणम् ।

विसर्पवत्सर्पति यः शोथस्तनुरपाकवान् ॥ दाहज्वरकरः पित्तात्स ज्ञेयो जालगर्दभः ॥ १४७ ॥

अपाकवानीषत्पाकवान् पित्तकृतत्वेन सर्वथा पाकाभावस्य अयुक्तत्वात् । अयमग्निवात इति ख्यातः ॥

विसर्पकी समान फैलनेवाली, पतली, कम पकनेवाली और दाह तथा ज्वर उत्पन्न करनेवाली जो सूजन होतीहै वह जालगर्दभ कहीजातीहै। यह रोग पित्तसे उत्पन्न होताहै ॥

यद्यपि मूलमें 'अपाक' शब्द है तथापि 'कमपकनेवाली' ऐसा अर्थ किया है इसका कारण यह

है कि, पित्तसे उत्पन्न होनेके कारण सर्वथा नहीं पकना असम्भव है ॥ १४७ ॥

अथ विवृतेन्द्रवृद्धागर्दभिकाजालगर्दभानां चिकित्सा ।

विवृतामिन्द्रवृद्धाश्च गर्दभीं जालगर्दभम्॥ पैत्तिकस्य विसर्पस्य क्रियया साधयेद्भिषक् ॥ पाके तु रोपयेदाज्यैः पक्वैर्मधुरभेषजैः ॥ १४८ ॥

विवृताको, इन्द्रवृद्धाको, गर्दभिकाको और जालगर्दभको वैद्य पित्तज विसर्पोक्त चिकित्सासे दूर करे । यह जो पके तो इनको जीवनीय गणकी मधुर औषधियोसे पकाये हुए घृतसे रोपण करे ॥ १४८ ॥

अथ कच्छपिकालक्षणम् ।

ग्रथिताः पञ्च वा षड् वा दारुणाः कच्छपोन्नताः ॥ कफानिलाभ्यां पिडकाः सा स्मृता कच्छपी बुधैः ॥ १४९ ॥

कच्छपोन्नता मध्ये प्रोन्नता प्रान्ते नता ।

कछुवेकी समान बीचमे ऊंची और चारों ओर नीची पांच वा छह जो दारुण फुडिये होतीहैं उनको कच्छपिका जानना । यह रोग कफ तथा वायुसे होताहै ॥ १४९ ॥

अथ कच्छपिकाचिकित्सा ।

कच्छपीं स्वेदयेत्पूर्वं तत एव प्रलेपयेत् ॥ कल्कीकृतैर्निशाकुष्ठसितातालकदारुभिः॥ तां पक्वां साधयेच्छीघ्रं भिषग्व्रणचिकित्सया ॥ १५० ॥

कच्छपिकाको प्रथम स्वेदनकर पश्चात् उसके ऊपर हलदी, कूठ, मिश्री, हरिताल और देवदारु इनके कल्कका लेप करे, पकनेपर व्रणकी समान चिकित्सा करके दूर करे ॥ १५० ॥

अथ शर्करार्बुदलक्षणम् ।

प्राप्य मांसशिरास्नायुमेदः श्लेष्मा तथानिलः ॥ ग्रन्थिं करोत्यसौ भिन्नो मधुसर्पिर्वसानिभम् ॥ १५१ ॥ स्रवति स्रावमत्यर्थं तत्र वृद्धिं गतोऽनिलः ॥ मांसं विशोष्य ग्रथितां शर्करां जनयत्यतः ॥ १५२ ॥ दुर्गन्धं क्लिन्नमत्यर्थं नानावर्णं ततः शिराः॥ स्रवन्ति सहसा रक्तं तं विद्याच्छर्करार्बुदम् ॥ १५३ ॥

शर्करा वालुकातुल्या ॥

कफ तथा वायु मांस, शिरा, स्नायु, और मेदमें प्राप्त होकर गांठको उत्पन्न करेहैं, यह गांठ फूटकर सहतकी समान, घीकी समान, तथा चरबीकी समान बहतीहै । इसमें वृद्धिको प्राप्त हुई वायु मांसको सुखाकर गुंथीसी गाठको उत्पन्न करतीहैं । यह गॉठ उत्पन्न होनेसे छोटी नसे दुर्गन्धि अत्यन्त क्लेदयुक्त और अनेक वर्णवाले रुधिरको सहसा बहातीहैं इसको शर्करार्बुद कहतेहैं यह गॉठ रेतेकी समान होतीहै ॥ १५१-१५३ ॥

अथ शर्करार्बुदचिकित्सा ।

मेदोऽर्बुदविधानेन साधयेच्छर्करार्बुदम् ॥

मेदसम्बन्धी अर्बुदकी जो चिकित्सा कही है उसी चिकित्सासे शर्करार्बुदको दूर करे ।

अथ कियदालस्यादिक्षुद्रविकाराणां लक्षणम् ।

शक्तस्य चाप्यनुत्साहः कर्मण्यालस्यमुच्यते ॥ अस्वास्थ्यं चिन्तयात्यर्थमरतिः कथ्यते बुधैः ॥ १५४ ॥

शरीरमें सामर्थ्य होनेपर भी काम काज करनेमें उत्साह न होय उसको आलस्य कहतेहैं । चिंतासे जो अस्वस्थता होतीहै उसको अरति कहतेहैं ॥ १५४ ॥

उत्क्लिश्यान्नश्च निर्गच्छेत्प्रसेकः ष्ठीवनेरितम् ॥ हृदयं पीड्यते चास्य तमुत्क्लेशं विनिर्दिशेत् ॥ १५५ ॥

मुखमेसे लारगिरे, थूकके साथ जो भोजन किया अन्न चित्तमे ग्लानि होनेके कारण निकले, और हृदयमें पीडा होय उसको उत्क्लेश कहतेहैं ॥ १५५ ॥

वक्त्रे मधुरता तन्द्रा हृदयोद्वेष्टनं भ्रमः ॥ न चान्नं रोचते यस्मै ग्लानिं तस्य विनिर्दिशेत् ॥ १५६ ॥

मुखमें मधुरता, तन्द्रा, हृदयका बधना, भ्रम और अन्नपर अरुचि यह लक्षण होंय तो उसको ग्लानि जानना ॥ १५६ ॥

ग्लानिरोजःक्षयाद्दुःखादजीर्णाच्च श्रमोद्भवात ॥ उदानकोपादाहारसुस्थितत्वाच्च यद्भवेत ॥ पवनस्योर्द्ध्वगमनं तमुद्गारं प्रचक्षते ॥ १५७ ॥

ओजके क्षयसे, दुःखसे, अजीर्णसे तथा परिश्रमसे ग्लानि होतीहै ।

उदानवायुके प्रकोपसे और आहारके यथावस्थित होनेसे पवनकी जो ऊंची गति होतीहै उसको उद्गार कहतेहैं ॥ १५७ ॥

आटोपो गुडगुडाशब्दः प्रोक्तो जठरसम्भवः ॥ तमःस्थस्येव यज्ज्ञानं तत्तमः कथ्यते बुधैः ॥ १५८ ॥

इति क्षुद्ररोगाधिकारः ।

पेटमें जो गुडगुड शब्द होताहै उसको आटोप कहतेहैं ।

अन्धकारमें स्थित होनेकासा जो ज्ञान होताहै उसको पंडित लोग तम कहतेहैं ॥ १५८ ॥

इति क्षुद्ररोगाधिकारः संपूर्णः ।

अथ शिरोरोगाधिकारः ।

तत्र शिरोरोगनिदानं संख्या च ।

शिरोरोगास्तु जायन्ते वातपित्तकफैस्त्रिभिः ॥ सन्निपातेन रक्तेन क्षयेण क्रिमिभिस्तथा ॥ १ ॥ सूर्यावर्तानन्तवातशङ्खकार्द्धावभेदकाः ॥ एकादशविधस्यास्य लक्षणानि प्रचक्षते ॥ २ ॥

शिरोरोगाः अत्र शिरोरोगजा शूलरूपा रुगभिधीयते । वातपित्तकफैस्त्रिभिः । ननु वातपित्तकफैरित्युक्ते सिद्धेऽपि किमर्थं त्रिभिरिति पदम् । उच्यते—सर्वेषां शिरोरोगाणां सन्निपातजन्यत्वप्रतिषेधार्थम् । वातपित्तकफानां पृथक्कारणत्वं चोतयति । रक्तेन रक्तादिसंयोग ॥

[illegible]

और अर्द्धावभेदक इस प्रकार यह शिरोरोग ग्यारह ११ प्रकारका होताहै, इन सबके लक्षण नीचे लिखतेहैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथ वातजशिरोरोगलक्षणम् ।

यस्याऽनिमित्तं शिरसो रुजश्च भवन्ति तीव्रा निशि चातिमात्रम् ॥ बन्धोपतापैः प्रशमो भवेच्च शिरोऽभितापः स समीरणेन ॥ ३ ॥

भवेदिति शेषः । अनिमित्तमतर्कितविप्रकृष्टनिमित्तम् । निशि चातिमात्रं रात्रौ शैत्येन वायोराधिक्यात् । उपतापः स्वेदनम् । शिरोऽभितापः शिरःपीडा ॥

अकस्मात् दूरके कारणोसे जो मस्तकमें तीव्र पीडा होय, रात्रिमें शीतके कारण वायुकी अधिकतासे अधिक बढ जाय और मस्तकको बांधनेसे तथा सेकनेसे वह शांत होजाती होय उसको वातसे उत्पन्न हुआ शिरोरोग जानना ॥ ३ ॥

अथ पित्तजशिरोरोगलक्षणम् ।

यस्योष्णमङ्गारचितं यथैव भवेच्छिरो दह्यति चाक्षिनासम् ॥ शीतेन रात्रौ च भवेच्छमश्च शिरोऽभितापः स तु पित्तकोपात् ॥ ४ ॥

दह्यति इत्यार्षत्वात् ॥

जिसका शिर तप्त अङ्गारोंकी समान गरम हो, नेत्र और नासिकामें दाह हो और रात्रिमें शीतके कारण वेदना शान्त होजाय तो उसको पैत्तिक शिरोरोग जानना ॥ ४ ॥

अथ कफजशिरोरोगलक्षणम् ।

शिरो भवेत्तस्य कफोपदिग्धं गुरु प्रतिष्टब्धमथो हिमञ्च ॥ शूनाक्षिनासावदनश्च यस्य शिरोऽभितापः स कफप्रकोपात् ॥ ५ ॥

कफोपदिग्धमन्तःकफलिप्तम् । प्रतिष्टब्धं तत्र शिरः ॥

जिसका मस्तक कफसे लिपटासा हो, भारी हो, [illegible] हो, शीतल हो और आंखोंमें सोथ और मुख सूजा हो [illegible] उसको कफज शिरोरोग जानना ॥ ५ ॥

अथ सन्निपातजशिरोरोगलक्षणम्।

शिरोऽभितापे त्रितयप्रवृत्ते सर्वाणि लिङ्गानि समुद्भवंति ॥

शिरोरोगमे जो उपरोक्त तीनो दोषोके लक्षण दीखते होयँ तो उसको त्रिदोषज शिरोरोग जानना।

अथ रुधिरजन्यशिरोरोगलक्षणम्।

रक्तात्मकः पित्तसमानलिंगः स्पर्शासहत्वं शिरसो भवेच्च ॥ ६ ॥

पैत्तिकाद्भेदमाह। शिरसः स्पर्शासहत्वमिति ॥

पित्तज शिरोरोगके सब लक्षण दीखते हो और मस्तक किसी पदार्थका स्पर्श नही सहन करसके तो उसको रुधिरजन्य शिरोरोग जानना। मस्तक किसीका स्पर्श नही करसके इतना ही पित्तज और रुधिरजनित शिरोरोगमें भेद है ॥ ६ ॥

अथ रसादिधातुक्षयजन्यशिरोरोगलक्षणम्।

वसाबलासक्षतसम्भवानां शिरोगतानामतिसङ्क्षयेण ॥ क्षयप्रवृत्तः शिरसोऽभितापः कष्टो भवेदुग्ररुजोऽतिमात्रम् ॥ संस्वेदनच्छर्दनधमनस्यैरसृग्विमोक्षैश्च विवृद्धिमेति ७॥

क्षतसम्भवं रुधिरम्। कष्टः कष्टसाध्यः ॥ अङ्गं भ्रमति तुद्येत शिरोविभ्रान्तनेत्रता॥ मूर्च्छा गात्रावसादश्च शिरोरोगे क्षयात्मके ॥ ८ ॥

मस्तकमें अत्यन्त तीव्र पीडा हो, वह पीडा सेकनेसे, वमन करनेसे, धूमपानसे, नस्य देनेसे और रुधिरको निकलवानेसे वृद्धिको प्राप्त होय तो उसको जानना कि, शिरमे रहनेवाली चरबी, कफ और अत्यन्त रुधिरके क्षय होनेसे यह शिरोरोग हुआ है। यह शिरोरोग कष्टसाध्य है। क्षयज शिरोरोगमे शरीर घूमताहै, मस्तकमें सुई चुभोने सरीखी पीडा होतीहै, नेत्रोंकी पुतली वारंवार फिरतीहैं, मूर्च्छा और अंगोमे ग्लानि होतीहै ॥ ७ ॥ ८ ॥

अथ कृमिजशिरोरोगलक्षणम्।

निस्तुद्यते यस्य शिरोऽतिमात्रं सम्भक्ष्यमाणं स्फुरतीव चान्तः ॥ घ्राणाच्च गच्छेद्रुधिरं सपूयं शिरोऽभितापः क्रिमिभिः स घोरः ॥ ९ ॥

सम्भक्ष्यमाणम्। क्रिमिभिरिति शेषः ॥ घ्राणाच्चेति चकारेण क्रिमिनिर्गमोऽपि बोध्यते।

मस्तकमें अत्यन्त तोडने सरीखी पीडा हो, कृमिके भक्षण करनेके कारण भीतरसे फडकता हो ऐसा मालूम हो और नाकमेंसे राध सहित रुधिर निकले, तथा कीडि भी निकले तो उसको जानना कि, यह भयकर शिरोरोग कृमियोंसे उत्पन्न हुआ है ॥ ९ ॥

अथ सूर्यावर्तलक्षणम्।

सूर्योदयं या प्रतिमन्दमन्दमक्षिभ्रुवौ रुक् समुपैति गाढम् ॥ विवर्द्धते चांशुमता सहैव सूर्यापवृत्तौ विनिवर्तते च ॥ ॥ १० ॥ शीतेन शान्तिं लभते कदाचिदुष्णेन जन्तुः सुखमाप्नुयाद्वा ॥ सर्वात्मकं कष्टतमं विकारं सूर्यापवर्तं तमुदाहरन्ति ॥ ११ ॥

सूर्योदय इति लक्षीकृत्य आरभ्येति यावत्सूर्यस्य अपवृत्तौ सूर्यस्य अधोगतौ ॥

सूर्यके उदय होनेपर धीरे धीरे आंखें और भौंओंमे मन्द मन्द पीडा होती आवे, ज्यौं ज्यौं सूर्य आकाशमें अधिक चढताजाय त्यौं त्यौं यह पीडा अधिक होती जाय, जब दो प्रहरके बाद सूर्य पश्चिममे ज्यौं ज्यौं छिपताजाय त्यौं त्यौं यह पीडा शांत होतीजाय, किसी समय यह पीडा शीतसे शात होतीहै और किसीसमय उष्णतासे भी शान्त होती है इसको सूर्यावर्त कहतेहैं। यह रोग तीनो दोषोंके प्रकोपसे होताहै और अत्यन्त कष्टसाध्य है ॥ १० ॥ ११ ॥

अथानंतवातलक्षणम्।

दोषास्तु दुष्टास्त्रय एव मन्यां सम्पीड्य गाढं स्वरुजां सुतीव्राम् ॥ कुर्वन्ति योऽक्षिण भ्रुवि शङ्खदेशे स्थितिं करोत्याशु विशेषतस्तु ॥ १२ ॥ गण्डस्य पार्श्वे तु करोति कम्पं हनुग्रहं लोचनजान्विका-

रान ॥ अनन्तवातं तमुदाहरन्ति दोष-त्रयोत्थं शिरसो विकारम् ॥ १३ ॥

एवशब्दोऽत्र अप्यर्थः । अव्ययानामनेकार्थत्वात् । स्वरुजां स्वस्वरूपां रुजां व्ययादाहगौरवादिरूपां दोषाः कुर्वन्ति । अयमनन्ते वातसमः अनन्तवातः । अक्ष्यादिषु स्थितिं करोति । विशेषतः गण्डपार्श्वे स्थितिं करोति । पीडायाः स्थितिं कृत्वा कम्पादींश्च करोति ॥

दूषित हुए वात पित्तादि तीनों दोष मन्या नाडीको आक्रान्त [illegible] करके अपने अपने स्वभावके अनुसार व्यथा, दाह तथा भारीपन आदि तीन वेदनाको उत्पन्न करतेहैं यह वेदना तत्काल आखोंमे, भौंओंमे और कनपटियोमे स्थित होतीहै विशेष करके गण्डस्थलमें स्थित होतीहैं तथा यह स्थित होकर कंप, हनुग्रह तथा नेत्रकी पीडाको करै है, इसको अनन्तवात कहतेहैं, यह तीनो दोषोंके प्रकोपसे होताहै ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथ शंखकलक्षणम् ।

पित्तरक्तानिला दुष्टाः शंखदेशे विमूर्च्छिताः॥तीव्ररुग्दाहरागं हि शोथं कुर्वन्ति दारुणम् ॥ १४॥ स शिरो विषवद्वेगान्निरुध्याशु गलं तथा ॥ त्रिरात्राज्जीवितं हन्ति शंखको नाम नामतः ॥ त्र्यहं जीवति भैषज्यं प्रत्याख्यायास्य कारयेत् ॥ १५ ॥

पित्तरक्तानिलाः अत्र कफोऽपि योज्यः "कृतान्तताप: कफपित्तरक्तैः" इति सुश्रुतवचनात् । विमूर्च्छिताःप्रवृद्धाः । स शंखकः त्रिरात्रात् । त्रिरात्रिमध्ये मारयति इति यावत्॥

[illegible] (कनपटी) [illegible] वृद्धिको प्राप्त [illegible] रुधिर [illegible] वायु यह तीनों [illegible]

पश्चात् औषधि करे । यद्यपि इस वचनमे सूजनको करनेवाला पित्त, रुधिर और वायु यह तीन ही कहेहै तो भी सुश्रुतके वचनमें कफके साथ गिना है । इससे यह समझना कि तीनोंके साथ कफका भी सम्बन्ध होताहै ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथार्द्धावभेदकनिदानलक्षणम् ।

रूक्षाशनाद्यध्यशनावश्यप्राग्वातमैथुनैः ॥ वेगसन्धारणायासव्यायामैः कुपितोऽनिलः ॥ १६ ॥ केवलः स कफो वार्द्धं गृहीत्वा शिरसो बली ॥ मन्याभ्रूशंखकर्णाक्षिललाटार्द्धेषु वेदनाम् ॥ १७ ॥ शस्त्राशनिनिभां कुर्यात्तीव्रां सोऽर्द्धावभेदकः ॥ नयनं वाऽथ वा श्रोत्रमतिवृद्धो विनाशयेत् ॥ १८ ॥

अवश्यः अवश्यायः । आयासः अतिचलनभारोद्वहनादिः । व्यायामः मल्लश्रमः । शस्त्राशनिनिभां शस्त्रघातेन इव वज्रपातेन इव वेदनाम् ॥

रूक्ष भोजन आदि करनेसे, भोजनपर भोजन करनेसे, हिम (बर्फ पाला) को सेवन करनेसे, पूर्वकी पवनको सेवन करनेसे, मैथुनसे, मलमूत्रादिक वेगोंको रोकनेसे, अत्यन्त चलने तथा अत्यन्त बोझ ढोने आदि परिश्रम करनेसे और दंड कसरत आदि करनेसे प्रकोपको प्राप्त हुई वल्वान् वायु अपने आप अकेली अथवा कफकी सहायता लेकर मस्तकके अर्द्धभागको पकडकर नाड, भौं, कनपटी, कान, आंख और कपालका आधा भाग इनमें शस्त्रघातकी समान और वज्रपातकी समान तीव्र पीडाको उत्पन्न करै है इसको अर्द्धावभेदक कहतेहैं । यह रोग जब अधिक बढजाताहै तो आंखको वा कानको नष्ट करदेताहै, देशमें इसको आधाशीशी कहतेहैं॥१६–१८॥

अथ शिरोरोगचिकित्सा ।

वातजातशिरोरोगे स्नेहस्वेदं विरेचनम् ॥ पानाहारोपनाहांश्च कुर्याद्वातामयापहान्॥ ॥ १९ ॥ कुष्ठमेरण्डमूलञ्च नागरं

तक्रपेषितम् ॥ कटूष्णं शिरसः पीडां भाले लेपनतो हरेत् ॥ २० ॥ रसः श्वासकुठारो यस्तस्य नस्यविशेषतः ॥ शिरःशूलं हरत्येव विधेयो नात्र संशयः ॥ २१ ॥

जो शिरोरोग वातसे उत्पन्न हुआ होय तो स्नेहन करना, स्वेदन करना तथा मस्तकमें तेल आदि मलना चाहिये और वातनाशक पान, आहार तथा उपनाह स्वेद करे ॥ १९ ॥

कूठ, अंडकी जड और सोंठ इनको तक्रमें पीसकर कुछेक गरम करके कपालमें लेप करे तो वातजन्य शिरोरोग नष्ट होजाताहै ॥ २० ॥

श्वासकुठाररसका नास देनेसे मस्तकका शूल अवश्य नष्ट होजाताहै। इस वातजन्य शिरोरोगपर यह नस्य अवश्य देना चाहिये ॥ २१ ॥

अथ शिरोवस्तिः।

आशिरो व्यायतं चर्म षोडशांगुलमुच्छ्रितम् ॥ तेनावेष्टय शिरोऽधस्तान्माषकल्केन लेपयेत् ॥ २२ ॥ निश्चलस्योपविष्टस्य तैलैः कोष्णैः प्रपूरयेत् ॥ धारयेदारुजः शान्त्यै यामं यामार्द्धमेव वा ॥ २३ ॥ शिरोवस्तिर्हरत्येष शिरोरोगं मरुद्भवम् ॥ हनुमन्याक्षिकर्णार्तिमर्दितं मूर्द्धकम्पनम् ॥ २४ ॥ विना भोजनमेवैष शिरोवस्तिः प्रयुज्यते ॥ दिनानि पञ्च वा सप्त रुचितोऽग्रे ततोऽपि च ॥ २५ ॥ ततोऽपनीतस्नेहस्तु मोचयेद्वस्तिबन्धनम् ॥ शिरोललाटवदनं ग्रीवांसादीन्विमर्दयेत् ॥ २६ ॥ सुखोष्णेनाम्भसा गात्रं प्रक्षाल्याऽश्नाति यद्धितम् ॥ आमिषं जाङ्गलं पथ्यं तत्र शाल्यादयोऽपि च ॥ २७ ॥ मुद्गमाषान्कुलत्थांश्च खादेद्वा निशि केवलान् ॥ कटुकोष्णान्ससर्पिष्कानुष्णं क्षीरं पिबेत्तथा ॥ २८ ॥ पित्तात्मके शिरोरोगे शीतानां चन्दनाम्भसा ॥ कुमुदोत्पलपद्मानां स्पर्शाः सेव्याश्च मारुताः ॥ २९ ॥ सर्पिषः शतधौतस्य शिरसा धारणं हितम् ॥ रसः श्वासकुठारोऽल्पः कर्पूरः कुंकुमं नवम् ॥ ३० ॥ सिता छागीपयः सर्वं चन्दनेनानुघर्षयेत् ॥ तस्य नस्यं भिषग्दद्यात्पित्तजायां शिरोरुजि ॥ ३१ ॥ किन्तु मस्तकशूलेषु सर्वेष्वेवं हितं मतम् ॥ गुडनागरकल्कस्य नस्यं मस्तकशूलनुत् ॥ ३२ ॥ रक्तजे पित्तवत्सर्वं भोजनालेपसेचनम् ॥ शीतोष्णयोश्च विन्यस्य विशेषो रक्तमोक्षणम् ॥ ॥ ३३ ॥ कफजे लंघनं स्वेदरूक्षोष्णैः पावकात्मकैः ॥ सन्निपातभवे कार्या सन्निपातहरी क्रिया ॥ पुराणसर्पिषः पानं विशेषेण दिशन्ति हि ॥ ३४ ॥

जो मस्तकपर पूरा आजाय ऐसा लम्बा और सोलह अंगुल ऊंचा चमडा लेकर उस चमडेसे मस्तकको बाँधे और उसके नीचेके जोडोमें उडदका चून जलमें सानकर लगादेवे। फिर रोगीको निश्चल बैठालकर कुछेक गरम तेल मस्तकके ऊपर उस चमडेमे भरदेवे। पश्चात् जबतक पीडा शांत न होय तबतक अथवा एक प्रहरतक या चार घडीतक उसको ऐसाही बैठा रहने देवे। यह शिरोवस्ति वातज शिरोरोग, हनुग्रह, मन्यास्तम्भ, नेत्रकी पीडा, कानकी पीडा, अर्दित और मस्तककंपको दूर करेहै। यह वस्ति भोजनकरनेसे पहिले ही रोगीको देनी चाहिये। पाच दिनतक, सात दिनतक और जो अनुकूल होय तो इससे भी अधिक दिनतक यह क्रिया प्रयोग करनी चाहिये। वेदना शांत होनेपर अथवा एक प्रहरके पश्चात् अथवा चार घडीके पश्चात् सब तेलको निकालकर वस्तिके बंधनको अलग कर लेवे और मस्तक, कपाल, मुख, गरदन तथा खवा आदिको खूब मर्दन करे। पश्चात् सुहाते सुहाते गरम जलसे शरीरको धोकर पथ्य अन्न खानेको देवे। जागल पशुओंका मांस और लाल शालि चावल आदि भी इसपर हितकारी हैं। रात्रिमें मूँग, उडद और कुलथी अथवा इकली कुलथीको रांध कर उसमे घी

डालकर तथा तीक्ष्ण पदार्थ (मिरची आदि) डालकर गरम गरम खाय और उसके ऊपर गरम दूध पिये ॥

जो शिरोरोग पित्तसे उत्पन्न हुआ होय तो चंदनके जलसे शीतल किये पत्तोंकी पवन, लाल कमल और सफेद कमल इनको धारण करे तथा शीतल हवाका सेवन करे॥

सौवार धुले हुए घीको मस्तकपर धारण करनेसे पित्तज शिररोग दूर होताहै ॥

कुछेक श्वासकुठारनामक रस, कपूर, नवीन केसर, मिश्री और बकरीका दूध इन सबको सफेद चंदनके साथ जलमें घिसकर नास देनेसे पित्तसे उत्पन्न हुआ शिरोरोग नष्ट होताहै ।

मस्तकके सम्पूर्ण शूलोंमे उपरोक्त प्रयोग हितकारी है ऐसा माना गया है ।

गुडका और सोंठके कल्कका नास देनेसे भी मस्तक शूल दूर होजाताहै ।

जो शिरोरोग रुधिरसे हुआ होय तो पित्तज शिरोरोगकी समान सम्पूर्ण भोजन, लेपन और सेचनसे चिकित्सा करे और विशेषकरके रक्तमोक्षण करे ।

जो शिरोरोग कफसे उत्पन्न हुआ होय तो वमन करावे तथा गरमीसे पूर्ण, रूक्ष और उष्ण पदार्थोंसे स्वेदन करे ।

जो शिरोरोग सन्निपातसे उत्पन्न हुआ होय तो सन्निपातको दूर करनेवाली चिकित्सा करे और विशेष करके पुराना घी पिलावे ऐसा वैद्यविद्याके विद्वानोंने कहा है ॥ ३२–३४ ॥

अथ षड्बिन्दुतैलम् ।

एरण्डमूलं तगरं शताह्वा जीवन्तिका रास्निकसैन्धवं च ॥ भृंगं विडंगं मधुयष्टिका च विश्वौषधं कृष्णतिलस्य तैलम् ॥ ३५ ॥ अजापयस्तैलविमिश्रितश्च चतुर्गुणं भृंगरसे विपक्वम् ॥ षड्बिन्दवो नासिकया प्रदेयाः सर्वान्निहन्युः शिरसो विकारान् ॥ ३६ ॥ च्युतांश्च केशान्पतितांश्च केशान्निर्बन्धमूलान्सुदृढीकरोति॥ सुपर्णगृध्रप्रतिमश्च चक्षुः कुर्वन्ति बाह्वोरधिकं बलञ्च ॥ ३७ ॥

जीवन्तिकाच्च हरीतकी शाकविशेषश्च ।

अडकी जड, तगर, सतावर, जीवन्ती (जैनी), रासना, सैंधानिमक, भांगरा, वायविडंग, मुलैठी, सोंठ, काले तिलोंका तेल और बकरीका दूध इन सबको चौगुने भांगरेके रसमें पकावे तो यह 'षड्बिंदु' तैल सिद्ध होताहै इस तेलकी छः बूंद नाकमें डालनेसे सर्व प्रकारके शिरोरोग नष्ट होजातेहैं । तथा बालोंका गिरना और दांतोंका हिलना दूर होकर बाल और दांत अत्यन्त दृढ होजाते हैं । नेत्र गरुडकी समान और बलमें गीधकी समान तथा बाहुबली होताहै ॥ ३५–३७ ॥

क्षयजे क्षयनाशाय कर्तव्यो बृंहणो विधिः ॥ पाने नस्ये च सर्पिः स्याद्वातघ्नैर्मधुरैः शृतम् ॥ ३८ ॥

जो शिरोरोग क्षयसे उत्पन्न हुआ होय तो क्षयको नाश करनेके लिये पुष्टि कारक प्रयोग करे और वायुको नष्ट करनेवाले मधुर पदार्थोंसे पकाये हुए घृतको पिये तथा नासमें देवे ॥ ३८ ॥

क्रिमिजे व्योषनक्ताह्वशिग्रुबीजैश्च नावनम् ॥ अजामूत्रयुतं नस्यं कर्तव्यं कृमिनुत्परम् ॥ ३९ ॥

जो शिरोरोग कृमिजन्य होय तो सोंठ, मिरच, पीपल, करंज और सैंजिनेके बीज इनको बकरीके मूत्रमें पीसकर नास देवे, इस नस्य देनेसे कृमि अवश्य नष्ट होजाते हैं ॥ ३९ ॥

सूर्यावर्ते विधातव्यं नस्यकर्मादि भेषजम् ॥

सूर्यावर्त नामक रोग हुआ होय तो नस्य आदि देकर चिकित्सा करे ।

अथ कुमारीतैलम् ।

कुमार्याः स्वरसप्रस्थे धत्तूरस्य रसे तथा॥ ॥ ४० ॥ भृंगराजस्य च रसे प्रस्थद्वयसमायुते ॥ चतुःप्रस्थमिते क्षीरे तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४१ ॥ कल्कैर्मधुकह्रीबेरमंजिष्ठाभद्रमुस्तकैः ॥ नखकर्पूरभृंगैलाजीवन्तीपद्मकुष्ठकैः ॥ ४२ ॥ मार्कवास-

कतालीससर्जनिर्यासपत्रकैः ॥ विडङ्गशतपुष्पाश्वगन्धागन्धर्वहस्तकैः ॥ ४३ ॥ तैले वटनालिकेलाभ्यां कर्षमानैर्विपाचिते ॥ उत्तार्य वस्त्रपूतं तु शुभे भांडे सुधूपिते ॥४४॥ त्रिरात्रमथ गुप्तश्च धारयेद्विधिवद्भिषक् ॥ ततस्तु तैलमभ्यंगे मूर्ध्नि क्षेपे नियोजयेत् ॥ ४५ ॥ शमयेदर्दितं गाढमन्यास्तम्भशिरोगदान् ॥तालुनासाक्षिपातन्तु शोषम्मूर्च्छाहलीमकम्॥हनुग्रहगदार्तिं वा बाधिर्यं कर्णवेदनम् ॥ ४६ ॥

घीकारका स्वरस ६४ तोले, धतूरेका स्वरस ६४ तोले, भांगरेका स्वरस १२८ तोले और भागरेके रससे दुगुना दूध, इनमें मुलेठी, सुगन्धवाला, मजीठ, नागरमोथा, नखद्रव्य, कपूर, भागरा, इलायची, हरड, पद्माख, कूठ, कालाभांगरा, अडूसा, तालीसपत्र, राल, तेजपात, वायविडग, सोया, असगन्ध, अण्ड, वड और नारियल इनका एक एक तोला कल्क लेकर चौंसठ तोले तेलको पकावे, इस तेलको अग्निसे उतार कर अच्छे प्रकारसे वस्त्रसे छानकर उत्तम सुवासित किये हुए पात्रमें भरकर विधिपूर्वक वैद्य तीन दिनतक धरतीमें गाडदेवे । इस तेलका मालिस करे और शिरमें डाले तो अर्दित, मन्यास्तम्भ, शिरोरोग, तालुवेकी सूजन, नासिकाकी सूजन, आखोंकी सूजन, मूर्छा, हलीमक, हनुग्रह, बधिरता और कानकी पीडा शमन होतीहै ॥ ४०–४६ ॥

योजयेत्सगुडं सर्पिर्घृतपूपांश्च भक्षयेत् ॥ नावनं क्षीरसर्पिर्भ्यां पानञ्च क्षीरसर्पिषोः ॥४७॥ क्षीरपिष्टैस्तिलैः स्वेदो जीवनीयैश्च शस्यते ॥ भृंगराजरसश्छागक्षीरतुल्यार्कतापितः ॥ ४८ ॥ सूर्यावर्तं निहन्त्याशु नस्येनैव प्रयोगराट्॥ अर्द्धावभेदके पूर्वं स्नेहस्वेदौ हि भेषजम् ॥ ४९ ॥ विरेकः कायशुद्धिश्च धूपः स्निग्धोष्णभोजनम् ॥ विडंगानि तिलान्कृष्णान्समान्पिष्टान्विलेपयेत् ॥ ५० ॥ नस्यश्चाप्याचरेत्तस्मादर्द्धभेदं व्यपोहति ॥पिबेत्सशर्करं क्षीरं नीरं वा नारिकेलजम् ॥ सुशीतं वापि पानीयं सर्पिर्वा नस्यतस्तयोः ॥ ५१ ॥

नस्यतः नासिकया पिबेदिति अन्वयः तयोः सूर्यावर्तार्द्धभेदयोः ॥

गुडके साथ घीको खाय, घीके मालपुये खाय, दूधका तथा घीका नास देवे, दूध और घी मिलाकर पिये, दूधमें पिसेहुए तिलोंसे तथा जीवनीय गणके पदार्थोंसे सेक करे तो सूर्यावर्त नष्ट होजाताहै ॥

भांगके रसको और बकरीके दूधको समान भाग लेकर दोनोंको एकत्र धूपमें गरम करके नास देवे तो सूर्यावर्त नष्ट होजाताहै, सूर्यावर्तके लिये यह प्रयोग उत्तम है ॥

अर्द्धावभेदक नामक जो शिरोरोग हुआ होय तो प्रथम स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, अन्यप्रकारसे शरीरका संशोधन, धूप और स्निग्ध तथा उष्ण भोजन ये उपचार करे ॥

वायविडग और काले तिल इनको समान भाग लेकर दूधमें पीसकर लेप करे और इसीका नास देवे तो अर्द्धावभेदक नष्ट होजाताहै ॥

नासिकाके द्वारा मिश्री मिला दूध पिये तो अथवा नारियलका जल पिये, शीतल जल पिये अथवा घीको पिये तो सूर्यावर्त तथा अर्द्धावभेदक नष्ट होजाताहै॥ ४७–५१॥

अनन्तवाते कर्तव्यः सूर्यावर्तहितो विधिः॥ शिरोवेधश्च कर्तव्योऽनन्तवातप्रशान्तये ॥ ॥५२॥ आहारश्च प्रदातव्यो वातपित्तविनाशनः ॥ मधुमस्तकसंयावघृतपूपो विशेषतः ॥ ५३ ॥

संयावः पक्वान्नविशेषः पेरकिया इति लोके। स च मधुमस्तकः मधुनोपलिप्तः। घृतपूपः पूआ इति लोके।

अनतवातनामक रोग उत्पन्न हुआ होय तो सूर्यावर्तकी समान चिकित्सा करनी चाहिये। अनन्तवातको शांत करनेके लिये नसको वेधकर रुधिर निकलवावे और पित्त तथा वातनाशक आहार देवे ॥ ५२ ॥

घीसे चुचुहाते तथा सहतसे भरे हुए चूरमा और शीरा तथा मालपुये आदि इनका उपयोग करे ॥ ५३ ॥

अथ पथ्यादिक्वाथः ।

पथ्याक्षधात्रीरजनीगुडूचीभूनिम्बनिम्बैः सगुडः कषायः ॥ भ्रूशङ्खकर्णाक्षिशिरोऽर्द्धशूलं निहन्ति नासानिहितः क्षणेन ॥ ५४ ॥

हरड, बहेडा, आमले, हलदी, गिलोय, चिरायता और नीम इनका क्वाथ बनाकर उसमें गुड डालकर उसका नास देवे तो क्षणमात्रमें भौं, कनपटी, कान, आख और मस्तकका अर्द्धशूल ये सब नष्ट होजातेहैं ॥ ५४ ॥

दार्वी हरिद्रा मञ्जिष्ठा सनिम्बोशीरपद्मकम् ॥ एतत्प्रलेपनं कुर्याच्छंखकस्य प्रशान्तये ॥ ५५ ॥ शीततोयाभिषेकश्च शीतलं क्षीरसेवनम् ॥ कल्कैश्च क्षीरवृक्षाणां शंखके लेपनं हितम् ॥ ५६ ॥

शखकनामक शिरोरोग होय तो दारुहलदी, हलदी, मजीठ, नीम, खस और पद्माख इनका लेप करे ॥

शीतल जलका सेचन, शीतल दूधका सेवन और क्षीरवाले वट आदि वृक्षोंका कल्क लेपन करनेसे शखकरोग नष्ट होताहै ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

अथ सर्वशिरोरोगाणां सामान्यचिकित्सा ।

षष्टीमधुकमाषः स्याच्चतुर्थांशं तु विषं भवेत् ॥ तयोश्चूर्णं सुसूक्ष्मं स्यात्तच्चूर्णं सर्षपोन्मितम् ॥ ५७ ॥ नासिकाभ्यन्तरे न्यस्तं सर्वां शीर्षव्यथां हरेत् ॥ दृष्टप्रयोगो योगोऽयमनुभाविभिरादृतः ॥ ५८ ॥ आर्द्रयच्छुक्तिकाचूर्णं चूर्णितं नवसादरम् ॥ द्वभयं योजितं तस्य गन्धान्नश्यति शीर्षरुक् ॥ ५९ ॥

इति शिरोरोगाधिकारः ।

मुलेठी ८. रत्ती और मुलेठीसे चौथाई भाग वत्सनाभ इनका अलग बारीक चूर्ण करे, नाकमें सरसोंकी बरा- बर चूर्ण दे। इसनेसे सर्वप्रकारकी मस्तककी पीडा नष्ट होजाती है, यह प्रयोग बडे बडे वैद्योंने अनुभव किया है और हमने भी परीक्षा करी है ॥

सीपका बारीक चूर्ण और नवसादरका चूर्ण इनको एकत्र मिलाकर नास लेनेसे मस्तककी पीडा शांत होती- है ॥ ५७-५९ ॥

इति शिरोरोगाधिकारः सपूर्णः ।

अथ नेत्ररोगाधिकारः ।

तत्र नेत्रप्रमाणम् ।

विद्याद्द्व्यंगुलबाहुल्यं स्वाङ्गुष्ठोदरसम्मितम् ॥ द्व्यङ्गुलं सर्वतः सार्द्धं भिषङ् नयनमण्डलम् ॥ १ ॥

द्व्यंगुलबाहुल्यं द्व्यंगुलप्रमाणस्थौल्यं यस्य तत्। अंगुलीनां स्थौल्यस्य वैषम्यात्पुनराह–सांगुष्ठोदरसम्मितं द्व्यंगुलं सर्वतः सार्द्ध दैर्घ्येण ॥

नेत्रका मण्डल दो अगुल मोटा और ढाई अगुल लम्बा है यहा अंगुलका प्रमाण अपने अपने हाथकी अगुलीके प्रमाणसे जानना क्योंकि अपने अपने हाथ की अंगुलीके प्रमाणसे नहीं कहनेसे अतर पडनाहै ॥ १ ॥

अथ नेत्रांगानि ।

पक्ष्मवर्त्मश्वेतकृष्णदृष्टीनां मण्डलानि तु ॥ अनुपूर्वन्तु ते मध्याश्चत्वारोऽन्त्या यथोत्तरम् ॥ २ ॥

ते पक्ष्मादयो दृष्ट्यन्ताः अनुपूर्वं यथापूर्वं मध्याश्चत्वारः कृष्णादयः यथोत्तरमन्त्याः ।

पलक, वर्त्म, श्वेत, कृष्ण, दृष्टियोंके मंडल ये आनुपूर्वी क्रमसे मध्यमे हैं और चार उत्तरोत्तर क्रमसे अतभागमें है ॥ २ ॥

अथ नेत्रमंडलोत्पन्नाष्टसप्ततिः (७८) रोगाः ।

द्वादश व्याधयो दृष्टौ तत्रैवान्यौ गदावुभौ ॥ कृष्णमार्गे तु चत्वारो दशैकः शुक्लभागजाः ॥ ३ ॥ वर्त्मन्येकोविंशतिश्च पक्ष्मजौ द्वौ प्रकीर्तितौ ॥ नव सन्धिषु सर्वस्मिन्नेत्रे सप्तदशोदिताः ॥ एवं नेत्रे समस्ताः स्युरष्टसप्ततिरामयाः ॥ ४ ॥

तत्र दृष्टौ । अन्यौ चरकोक्तौ सुश्रुतोक्त-षट्सप्ततिसंख्येभ्योऽधिकौ ॥

दृष्टिमे १२ बारह रोग है । सुश्रुतमे १२ रोगोसे अधिक जो अन्य २ रोग चरकमें कहे हैं वह भी दृष्टिमें होतेहैं, । एव ४ कृष्ण भाग अर्थात् कालेघेरेमें चार रोग होतेहै सफेद भागमे ११ रोग होतेहैं । वर्त्ममें २१ रोग होतेहैं, नेत्रके पक्ष्ममे दो रोग, सधियोंमें ९ रोग और सम्पूर्ण नेत्रमे १७ रोग होतेहैं । इस प्रकार नेत्रमें सब ७८ अठत्तर रोग होतेहैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथ सुश्रुतोक्तषट्सप्तति-(७६) रोगाः ।

वाताद्दश तथा पित्तात्कफाच्चैव त्रयोदश ॥ रक्तात्षोडश विज्ञेयाः सर्वजाः पञ्चविंशतिः ॥ बाह्यौ पुनर्द्वौ नयने रोगाः षट्सप्ततिः स्मृताः ॥ ५ ॥

वातसे दश १० रोग होतेहैं, पित्तसे दश १० रोग होतेहैं, कफसे तेरह १३ रोग होतेहैं, रुधिरसे सोलह १६ रोग होतेहैं, तीनो दोपोसे २५ रोग होतेहैं और नेत्रके बाहर भागमें दो रोग होतेहैं इस प्रकार नेत्रोंमे सब ७६ रोग हैं ॥ ५ ॥

अथ सामान्यरीत्या नेत्ररोगाणां सन्निकृष्टविप्रकृष्टनिदानम् ।

उष्णाभितप्तस्य जलप्रवेशाद्दूरेक्षणात्स्वप्नविपर्ययाच्च ॥ स्वेदाद्रजोधूमनिषेवणाच्च छर्देर्विघाताद्वमनातियोगात् ॥ ६ ॥ शुक्तारनालाम्लकुलत्थमाषाद्विण्मूत्रवातागमनिग्रहाच्च ॥ प्रसक्तसंरोदनशोकतापाच्छिरोऽभिघातादतिशीघ्रयानात् ॥ ७ ॥ तथा ऋतूनाञ्च विपर्ययेण क्लेशाभितापादतिमैथुनाच्च ॥ बाष्पग्रहात्सूक्ष्मनिरीक्षणाच्च नेत्रे विकाराञ्जनयन्ति दोषाः ॥८॥

उष्णाभितप्तस्य जलप्रवेशादातपादिजनितोष्मणा सह बहिर्भूतस्य नयनतेजसो जलावगाहेन अभिभवाद्दूरेक्षणात् दूरस्थद्रव्यदर्शनात् । स्वेदास्स्विद्यतेऽनेनेति स्वेदोऽग्न्यादिस्तस्मात् । रजोधूमनिषेवणान्नेत्रेण । शोकतापात् शोकजनितात्सन्तापात् । शिरोऽभिघातात् शिरसि प्रहारात् । ऋतूनां विपर्ययेण ऋतूक्तचर्याविपरीताचरणेन । क्लेशाभितापात् क्लिश्यतेऽनेनेति क्लेशं कामक्रोधादिदुःखं तेनाभितापः पीडा ततः । बाष्पग्रहादश्रुवेगविघातात् ॥

धूप आदिसे अत्यंत संतापित होकर शीतल जलमें प्रवेश करनेसे, दूरके पदार्थोंको देखनेसे, समयपर निद्राको नहीं लेनेसे, अग्नि आदिको सेवन करनेसे, नेत्रोंमें धूल आदिके गिरनेसे, धुँएँके लगनेसे, वमनके वेगको रोकनेसे, अत्यंत वमनकरनेसे, शुक्तनामक कॉजीको सेवनकरनेसे, आरनालके सेवनसे, खट्टे रसोंके सेवनकरनेसे, कुलथीको सेवनकरनेसे, उडदोंको सेवनकरनेसे, मूत्र, विष्ठा और अधोवायुके वेगको रोकनेसे, बहुत दिनोंतक रोनेसे, शोकजन्य सतापसे, मस्तकमे चोट आदिके लगनेसे, अत्यंत वेगवाले वाहनपर बैठनेसे, ऋतुचर्यामे कहीहुई विधिको उल्लघन कर विपरीत आचरण करनेसे, काम और क्रोधादिजन्य दुःखोंसे उत्पन्न हुई पीडासे, अत्यंत मैथुन करनेसे, आंसुओंके वेगको रोकनेसे और बारीक पदार्थोंको देखनेसे नेत्रोंमें विकार उत्पन्न होतेहैं ॥ ६–८ ॥

अथ नेत्ररोगसम्प्राप्तिः ।

शिरानुसारिभिर्दोषैर्विगुणैरूर्द्ध्वमाश्रितैः ॥ जायन्ते नेत्रभागेषु रोगाः परमदारुणाः ॥ ९ ॥

नेत्रभागेषु नेत्रस्य दृष्ट्याद्यवयवेषु ।

शिराओंमे रहनेवाले वातादिदोष बिगडकर ऊंचे मार्गोंमें जाकर नेत्रके अवयवोंमें अत्यत दारुण रोगोको उत्पन्न करतेहैं ॥ ९ ॥

अथ दृष्टिरोगलक्षणम् ।

मसूरदलमात्रां तु पञ्चभूतप्रसादजाम् ॥ खद्योतविस्फुलिङ्गाभां सिद्धां तेजोभिरव्ययैः ॥ १० ॥ आवृतां पटलेनाक्ष्णो-

र्बाह्येन विवराकृतिम् ॥ शीतसात्म्यां नृणां दृष्टिमाहुर्नयनचिन्तकाः ॥ ११ ॥

मसूरदलमात्रां नेत्रगतकृष्णमण्डलमध्यस्थमसूरद्विदलप्रमाणां पञ्चभूतप्रसादजाम् प्रसन्नपञ्चभूतात्मिकाम्।खद्योतविस्फुलिङ्गाभां निमेषैः कदाचित्खद्योताभां खद्योतवन्निमेषाभावे विद्योतमानत्वाद्विस्फुलिंगवत् । अव्ययैश्चिरस्थायिभिस्तेजोभिः सिद्धामुत्पन्नाम् । विवराकृति सच्छिद्राम् । अक्ष्णोर्बाह्येन पटलेन रसरक्ताधारभूतेन आवृताम् ॥

नेत्रके काले टेलेके मडलके बीचमे रहनेवाली, मसूरकी दालकी समान, स्वच्छ पचभूतोंसे बनी हुई, क्षणमें पटबीजनेकी समान, क्षणमें अग्निके प्रकाशकी समान, चिरस्थायी तेजसे सिद्ध, छिद्रवाली, सदैव शीत आनुकूल्यवाली, बाहरसे रस रक्तसे मढी हुई है इसको नेत्रवैद्य दृष्टि कहतेहैं ॥ १० ॥ ११ ॥

अथ नेत्रपटलचतुष्कम् ।

तेजोजलाश्रितं बाह्यं तेष्वन्यत्पिशिताश्रितम् ॥ मेदस्तृतीयं पटलमाश्रितं त्वस्थि चापरम् ॥ पञ्चमांशसमं दृष्टेस्तेषां बाहुल्यमिष्यते ॥ १२ ॥

तत्र तेजो रक्तम्, जलं रसः । तेन रसरक्ताधारमित्यर्थः । पटलं त्वक् । अपरं चतुर्थं दृष्टेः स्वांगुष्ठोदरस्थूलस्य नेत्रस्य पञ्चमांशसमं तेषां चतुर्णां पटलानां मिलितानां बाहुल्यं स्थौल्यमिष्यते ॥

नेत्रमें चार पटल हैं उनमे सबसे ऊपरका पहिला पटल रुधिर तथा रसके आश्रय रहताहै । दूसरा पटल मासके आश्रय रहताहै । तीसरा पटल मेदके आश्रय रहताहै और चौथा पटल अस्थियोंके आश्रय रहताहै । इन चारों पटलकी मोटाई अपने अपने अगुठेके मध्यभागकी समान नेत्रके पांचवें भागकी मानीगई है ॥ १२ ॥

अथ प्रथमपटलगतदोषस्वभावः ।

प्रथमे पटले यस्य दोषा दृष्ट्यव्यवस्थितः ॥ अव्यक्तानि स्वरूपाणि कदाचिदथ पश्यति ॥ १३ ॥

प्रथमे पटले पूर्वाभ्यन्तरे न तु बाह्ये ॥ दृष्टेरभ्यन्तरे दोषाः पटले समधिष्ठिताः॥ एकैकमनुपद्यन्ते पर्यायात्पटलान्तरम् १४॥ इति विदेहवचनात् । व्यवस्थितः स्थितः । अव्यक्तानि ईषद्व्यक्तानि । अथ कदाचित्पश्यति व्यक्तान्येवेति शेषः दोषाल्पतया ॥

जो पहिले पटलमे दोष स्थित होंय तो वह मनुष्य रूपोंको कुछ कुछ अन्तरसे देखताहै और जो दोष अल्प होंय तो किसी समय स्पष्टभी देखताहै ।

यहा जो पहिला पटल कहा है वह सबसे भीतरका पटल जानना, बाहरका पटल नहीं समझना क्योंकि नेत्रके पटलके भीतरके रहनेवाले दोष अनुक्रमसे ऊपर ऊपरके पटलमें प्राप्त होतेहैं यह विदेहका मत है ॥ १३ ॥ १४ ॥

अथ द्वितीयपटलगतदोषस्वभावः ।

दृष्टिर्भृशं विह्वलति द्वितीयं पटलं गते ॥ मक्षिकामशकान्केशाञ्जालकानीव पश्यति ॥ १५ ॥ मण्डलानि पताकांश्च मरीचीन्कुण्डलानि च ॥ पारिप्लवांश्च विविधान्वर्षमभ्रं तमांसि च ॥ १६ ॥ दूरस्थानि च रूपाणि मन्यते च समीपतः ॥ समीपस्थानि दूरे च दृष्टेर्गोचरविभ्रमात् ॥ यत्नवानपि चात्यर्थं सूचीछिद्रं न पश्यति ॥ १७ ॥

विह्वलति रूपं सम्यक् कृत्वा ग्रहीतुं न शक्नोति । विह्वलत्वमेव विवृणोति–मक्षिकादीन् जालकानीव लूतारचितजालानीव पश्यति । मण्डलादीनि असन्त्यपि सन्तीव पश्यति । कुण्डलानि कुण्डलानीव विद्योतमानानि किञ्चित्पश्यति । पारिप्लवांश्च विविधान्प्रतिच्छायादीनां सञ्चारादूर्द्ध्वाधस्तिर्यग्गतान्नानाविधान्पश्यति। वर्षं वृष्टिम् अभ्रं मेघम्। वर्षादीनि असन्त्यपि सन्तीव पश्यति। गोचर–

भ्रमाद्गोचरोऽत्र रूपम्, तत्र भ्रमः अयथाग्रहणं तस्मात् ॥

जो दोष दूसरे पटलमें स्थित होय तो दृष्टि रूपोंको अच्छे प्रकारसे नही देख सक्ती, तथा मक्खी, मच्छर और केश आदि मकडीके जालेकी समान दीखतेहैं, मडल, पातका और किरणों न होंय तो भी होनेकी समान देखे और प्रकाशमान वस्तुओंको कुडलकी समान गोल देखे, परछाई आदिका सचार ऊचा, नीचा तथा टेढे आदि अनेक प्रकारसे देखे, वर्षा, बादल तथा अंधकारके न होने पर भी दीखे, रूपोंका यथार्थ रूप दृष्टिके भ्रमके कारण दूरके पदार्थ धोरे दीखे, और अत्यत यत्न करनेपर भी सुईके नकुये(छेद) को नही देख सके ॥ १५–१७ ॥

अथ तृतीयपटलगतदोषः ।

ऊर्द्ध्वं पश्यति नाधस्तात्तृतीयं पटलं गते॥ सुमहान्त्यपि रूपाणि छादितानीव चाम्बरैः ॥ १८ ॥ कर्णनासाक्षिरूपाणि विकृतानि च पश्यति ॥ यथादोषश्च रज्येत दृष्टिर्दोषे बलीयसि ॥ १९ ॥ अधःस्थे तु समीपस्थं दूरस्थं चोपरि स्थिते ॥ पार्श्वस्थिते पुनर्दोषे पार्श्वस्थानि न पश्यति ॥ २० ॥ समन्ततः स्थिते दोषे संकुलानीव पश्यति ॥ दृष्टिमध्यस्थिते दोषे महद्दुःखं च पश्यति ॥ २१ ॥ दोषे दृष्टिस्थिते तिर्यगेकं वा मन्यते द्विधा ॥ द्विधा स्थिते त्रिधा पश्येद्बहुधा चाऽनवस्थिते ॥ २२ ॥

ऊर्द्ध्वं पश्यति–ऊर्द्ध्वमपि यादृक् पश्यति तादृगाह–सुमहान्ति इत्यादि । अम्बरैः वस्त्रैः । अधःस्थे तु समीपस्थं न पश्यतीत्यन्वयः। तथा उपरि स्थिते दोषे दूरस्थं न पश्यति । समन्ततः उपर्यधःपार्श्वेषु संकुलानि भिन्नान्यपि रूपाणि मिश्रितानीव पश्यति।अनवस्थिते अनियतावस्थाने बहुधा बहूनि पश्येत् ॥

जो दोष तीसरे पटलमे स्थित होय तो ऊँचेको देखसक्ताहै नीचेको नही देखता, ऊचेके जो पदार्थोंको देखताहै वह पदार्थ अत्यत बडे होयँ तो भी वस्त्रसे ढकेकी समान दीखतेहै । कान, नाक, और नेत्र आदि अवयवों को विकृत देखे, इनसे रहित शरीरको देखे, जो दोप बलवान् होय तो दृष्टिदोपके स्वभावानुसार वर्ण होजाताहै,जो दोप नीचेके भागमे स्थित होय तो समीपके पदार्थोंको नही देखसक्ता, और जो दोष ऊपरके भागमे स्थित होय तो दूरके पदार्थोंको नहीं देखसक्ता, जो दोष इधर उधर बगलमे स्थित होय तो बगलके पदार्थोंको नहीं देखसक्ता । जो दोष चारो ओर स्थित होय तो ऊपर, नीचे तथा बगलके पदार्थ अलग २ होयँ तो भी मिले हुए दीखें । जो दोष दृष्टिके बीचमें स्थित होय तो बडे पदार्थोको छोटा देखताहै; जो दोष दृष्टिमें टेढे स्थित होयँ तो एक पदार्थके दो पदार्थ देखताहै । जो दोप दृष्टिके दो भागोंमे स्थित होय तो एक पदार्थके तीन पदार्थ दीखतेहै और जो दोष अनियमित रीतिसे स्थित होयँ तो एक पदार्थके अनेक पदार्थ दीखतेहै ॥ १८–२२ ॥

अथ चतुर्थपटलगतदोषः ।

तिमिराख्यः स यो दोषश्चतुर्थं पटलं गतः ॥ रुणद्धि सर्वतो दृष्टिं लिंगनाश इति क्वचित् ॥ २३ ॥ अस्मिन्नपि तमोभूते नातिरूढे महागदे ॥ चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ अन्तरिक्षे च विद्युतः ॥ २४ ॥ निर्मलानि च तैजांसि भ्राजिष्णूनीव पश्यति॥ स एव लिंगनाशस्तु नीलिकाकाचसंज्ञितः ॥ २५ ॥

यो दोषोऽत्र रोगः चतुर्थं पटलं बाह्यं पटलं गतः स तिमिराख्यः तिमिरदर्शनेन तिमिरमस्यास्तीति तिमिरः अर्शादित्वादच्। तस्य लक्षणमाह रुणद्धि इत्यादि । सर्वतः सर्वत्र लिगनाशे इति क्वचित् । तन्त्रान्तरे लिंगनाशसंज्ञः । तस्य निरुक्तिश्च । लिंग्यते ज्ञायतेऽनेनेति लिंगं दृष्टितेजः तस्य नाशोऽ-

स्मिन्निति लिंगनाशः । अस्मिन्नपि तिमिरेऽपि तमोभूते तमस्तुल्ये । अत्र भूतशब्दस्तु-ल्यार्थः । "भूतं प्राण्यतीते समे त्रिषु" इत्यमरात् । नातिरूढे अप्रौढे नवे । चन्द्रादित्यौ नक्षत्राणि च पश्यति अन्तरिक्षे अन्तरिक्षस्य प्रकाशसमयत्वेन तमोऽभिभवात् । तेजांसि अग्न्यादेः भ्राजिष्णूनि रत्नसुवर्णादीन्यस्मिन् । प्रौढे चिरजे चन्द्रादीन्यपि न पश्यतीत्याशयः । नीलिकाकाचसंज्ञितः नीलिका काचेति नामान्तराभ्यां युक्तः ॥

जो दोष दृष्टिके चौथे पटलमें स्थित होय तो वह अंधकार दीखनेके कारण तिमिर कहाजाताहै और चारों ओर दृष्टिको रोकदेताहै, इस रोगको अन्य ग्रथोंमें 'लिंगनाश, ऐसा कहाहै । अधेरेकी समान यह बडा भयकर रोग नवीन होय तवतक मनुष्य आकाशमे चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र और बिजलीको देखताहै क्योंकि आकाशके प्रकाशमय होनेसे अधकारका बल नहीं चलता, अग्नि आदिके निर्मल तेजको देखताहै और रत्न तथा सुवर्ण आदि प्रकाशित पदार्थोको भी देखताहै । यह रोग पुराना होजाय तो चद्र आदि भी नहीं दीखते यह तिमिर नामक रोग जैसे लिंगनाश इस नामसे कहाजाताहै उसी प्रकार नीलिका और कॉच ये नाम भी कहेजातेहैं । लिंग अर्थात् दृष्टिके तेजको जो नाश करताहै इस कारण यह लिंगनाश कहाजाताहै ॥ २३-२५ ॥

अथ दृष्टिरोगनाम संख्या च ।

दृष्ट्याश्रयाः षट् च षडेव रोगाः षड् लिंगनाशा हि भवन्ति तत्र ॥ वातेन पित्तेन कफेन सर्वै रक्तात्परिम्लाय्यभिधश्च षष्ठः ॥ २६ ॥

दृष्ट्याश्रया रोगाः षट् षट् द्वादशेत्यर्थः । तत्र लिंगनाशाः षट् तान्विवृणोति वातेनेत्यादि ॥

दृष्टिके रोग १२ हैं (चरकके मतसे अनुसार १४ होते हैं) इन १२ में ६ रोग लिंगनाश कहेजातेहैं । जैसे कि, वातज १, पित्तज २, कफजन्य ३, सान्निपातजन्य ४, रक्तजन्य ५, और परिम्लायी लिंगनाश ६, ॥ २६ ॥

तथा नरः पित्तविदग्धदृष्टिः कफेन वान्यस्त्वथ धूमदर्शी ॥ यो ह्रस्वजात्यो नकुलान्धसंज्ञो गम्भीरसंज्ञश्च तथैव दृष्टिः ॥ २७ ॥

पित्तविदग्धदृष्ट्यादयश्च षट् । एवं दृष्ट्याश्रया द्वादशरोगाः ।

पित्तविदग्धदृष्टि १, कफविदग्धदृष्टि २, धूमदर्शी ३, ह्रस्वजात्य ४, नकुलांध्य ५ और गम्भीरक ६, ॥ २७ ॥

तत्रैवान्यौ चरकोक्तगदौ सनिमित्तकाऽनिमित्तकौ । तत्र वातजालिंगनाशलक्षणमाह—

वातेन खलु रूपाणि भ्रमन्तीव च पश्यति ॥ आविलान्यरुणाभानि व्याविद्धानीव मानवः ॥ २८ ॥

आविलानि कलुषाणि।अरुणाभानि अव्यक्तलौहित्ययुक्तानि ॥

वातके लिंगनाशमे सम्पूर्ण रूप भ्रमण करते दीखेहैं, मलिन कुछ लाल गदलेसे और विकृत टेढे तिरछे ऐसे दीखतेहैं ॥ २८ ॥

अथ पित्तजलिंगनाशलक्षणम् ।

पित्तेनादित्यखद्योतशक्रचापतडिद्गुणान् ॥ नृत्यतश्चैव शिखिनः सर्वं नीलञ्च पश्यति ॥ २९ ॥

आदित्यादीनां गुणान् रूपाणि ॥

सूर्य, पटबीजने, इन्द्रधनुष, बिजली, इनको मोरके पूछकी समान विचित्र नील और काले रॅगके देखे तो जानना कि, पित्तजनित लिंगनाश हुआ है ॥ २९ ॥

अथ कफजलिंगनाशलक्षणम् ।

कफेन पश्येद्रूपाणि स्निग्धानि च सिता-

नि च ॥ सलिलप्लावितानीव जालकानीव मानवः ॥ ३० ॥

कफके लिंगनाशमें पदार्थोंको चिकने, सफेद पानीमे डबोकर निकालेहुएकी समान और जालकी समान देखै तो जानना कि, कफजन्य लिंगनाश हुआ है ॥ ३० ॥

अथ सन्निपातजलिंगनाशलक्षणम्

सन्निपातेन चित्राणि विप्लुतानि च पश्यति ॥ बहुधापि द्विधा वापि सर्वाण्येव समन्ततः ॥ हीनाधिकांगान्यथ वा ज्योतींष्यपि च पश्यति ॥ ३१

चित्राणि नानावर्णानि । विप्लुतानि विपरीतानि वैपरीत्यं विवृणोति बहुधेत्यादि ॥

सन्निपातके लिंगनाशमे रूप चारो ओर विपरीत अर्थात् अनेक प्रकारके वा दो प्रकारके अथवा सर्व प्रकारके देखनेमें आवें अनेक वर्णवाले दीखें, अथवा अधिक और न्यून अंगोवाले दीखे अथवा तेजोमय दीखे तो जानना कि, सन्निपातजन्य लिंगनाश हुआ है ॥ ३१ ॥

अथ रक्तजन्यलिंगनाशलक्षणम् ।

पश्येद्रक्तेन रक्तानि तमांसि विविधानि च ॥ हरितान्यथ कृष्णानि पीतान्यपि च मानवः ॥ ३२ ॥

जो अनेक प्रकारका अन्धकार देखनेमें आवे और रूप लाल, हरे, काले तथा पीले दीखे तो जानना कि, रक्तजन्य लिंगनाश हुआ है ॥ ३२ ॥

अथ परिम्लायिलिंगनाशलक्षणम् ।

रक्तेन मूर्च्छितं पित्त परिम्लायिनमाचरेत् ॥ तेन पीता दिशः पश्येदुद्यन्तमिव भास्करम् ॥ विकीर्यमाणान्खद्योतैर्वृक्षांस्तेजोभिरेव हि ॥ ३३ ॥

विकीर्यमाणान् व्याप्यमानान् । तेजोभिः अग्न्यादिभिरिव ॥

रुधिरसे मूर्छित हुआ पित्त परिम्लायी नामक लिंगनाशको उत्पन्न करै है जिस लिंगनाशसे सम्पूर्ण दिशा पीली ही दीखतीहैं सूर्य उदय होतासा दीखताहै और वृक्ष पटबीजने तथा अग्निके तेजसे व्याप्त ऐसे दीखतेहैं ॥ ३३ ॥

अथ वातादिजनेत्रवर्णेन लिंगनाशस्य षड्विधत्वम् ।

वातादिजनितैर्नेत्रवर्णैरपि च षड्विधः ॥ लिंगनाशो निगदितो वर्णवातादिजो यथा ॥ ३४ ॥ रागोऽरुणो मारुतजः प्रदिष्टो म्लायी च नीलश्च तथैव पित्तात्॥ कफात्सितः शोणितजः सरक्तः समस्तदोषप्रभवो विचित्रः ॥ ३५ ॥

वातादिसे उत्पन्नहुए नेत्रोंके वर्णानुसार भी लिंगनाश छः प्रकारका होताहै । कौनसे दोषसे नेत्रका कौनसा रंग होताहै सो कहतेहैं । वातसे लिंगनाश होय तो नेत्रोंका रंग लाल होजाताहै । पित्तजन्य परिम्लायी लिंगनाश होय तो नेत्रोका वर्ण नीला होजाताहै । कफजन्य लिंगनाश होय तो नेत्रोंका रंग सफेद होजाताहै । रुधिरसे लिंगनाश होय तो नेत्रोका रंग लाली लिये होताहै । और सन्निपातसे लिंगनाश हुआ होय तो नेत्रोका रंग विचित्र होताहै ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

अथ वातादिजनेत्रमंडलरूपम् ।

अरुणं मण्डलं वाताच्चञ्चलं परुषं तथा ॥ पित्ततो मण्डलं नीलं कांस्याभं वा सपीतकम् ॥

श्वेतपीतं वा कथमेतत् ? व्याधिप्रभावात् ॥

श्लेष्मणा बहुलं स्निग्धं शंखकुन्देन्दुपाण्डुरम् ॥ ३७ ॥

बहुलं स्थूलम् ॥

चलत्पद्मपलाशस्थः शुक्लो बिन्दुरिवाम्भसः ॥ मृद्यमाने तु नयने मण्डलं तद्विसर्पति ॥ ३८ ॥ मण्डलं तु भवेच्चित्रं लिंगनाशे त्रिदोषजे ॥ प्रवालपद्मपत्राभं मण्डलं शोणितात्मकम् ॥ ३९ ॥

चित्रं वातादिवर्णम् ॥

रक्तजं मण्डलं दृष्टौ स्थूलकाचारुणप्रभम् ॥ परिम्लायिनि रोगे स्यान्म्लानं नीलम-

थापि वा ॥ दोषक्षयात्स्वयं तत्र कदाचित्स्याच्च दर्शनम् ॥ ४० ॥

रक्तजं पित्तानुगामिरक्तजम् । स्थूलकाचारुणप्रभं स्थूलकाचस्य इव अरुणा प्रभा यस्य तत् । एतेन स्थौल्यमरुणत्वं च बोध्यते । दोषक्षयादित्यादि तत्र परिम्लायिनि कालान्तरेण दोषक्षयात् । कदाचित्स्वयमेव दर्शनं स्यात् ॥

वातसे लिंगनाश हुआ होय तो मण्डल लाल, चञ्चल तथा कठिन होताहै । पित्तसे लिंगनाश होय तो मंडल नीला कांसेकी समान, अथवा सफेद वा पीला होताहै (सफेद और पीला होना यह व्याधिके प्रभावसे होताहै)। कफसे लिंगनाश होय तो मंडल मोटा, स्निग्ध, शंखकी समान, कुंदकी और चंद्रमाकी समान सफेद होताहै । और चंचल कमलके पत्रपर पडी हुई जलकी बिन्दुकी समान होताहै । आंखको खूब मलनेसे यह मंडल पसर जाताहै । तीनों दोषोंसे लिंगनाश होय तो मंडल विचित्र अर्थात् वातादिजनित सम्पूर्ण वर्णोंवाला होताहै । रुधिरसे लिंगनाश हुआ होय तो मंडल प्रवालकी समान और कमलकी पत्तोंकी समान होता है । पित्तसम्बन्धी रुधिरजन्य लिंगनाश होय तो मंडल स्थूल और लाल कांचकी समान स्थूल और लाल होताहै । परिम्लायी लिंगनाश होय तो मंडल म्लानिको प्राप्त हुआ अथवा नीला होताहै और कालान्तरमें दोषोंके क्षय होनेसे किसी समय अपनी सदृश उत्पन्न होजाताहै ॥ ३६–४० ॥

अथ लिंगनाशेऽनुक्तदाहादिदोषलिंगम् ।

यथास्वं दोषलिंगानि सर्वेष्वेव भवन्ति हि ॥ ४१ ॥

सबप्रकारके लिंगनाशोंमें उन उन दोषोंके अपने अपने लक्षण भी प्रकट होतेहैं ॥ ४१ ॥

अथ पित्तविदग्धदृष्टिलक्षणम् ।

पित्तेन दुष्टेन गतेन दृष्टिं पीता भवेद्यस्य नरस्य दृष्टिः ॥ पीतानि रूपाणि च तेन पश्येत्स वै नरः पित्तविदग्धदृष्टिः ॥ ४२ ॥

पित्तेन गतेन दृष्टिं दृष्टावपि प्रथमद्वितीयपटलगतेनेति बोद्धव्यम् । तेन व्याधिना ।

तस्मिन्नेव पित्ते दृष्टौ तृतीयपटलं गते विशेषरूपमाह ।

प्राप्ते तृतीयं पटलं तु दोषे दिवा न पश्येन्निशि वीक्षते सः ॥ रात्रौ स शीतानुगृहीतदृष्टिः पित्ताल्पभावात्सकलानि पश्येत् ॥ ४३ ॥

दोषेऽत्र पित्ते ।

दुष्ट हुआ पित्त दृष्टिके पहिले, दूसरे पटलमें प्राप्त होनेसे जो मनुष्यकी दृष्टि पीली हुई होय तो वह मनुष्य समस्त रूपोंको पीला देखताहै । यह रोग पित्तविदग्धदृष्टि कहाजाताहै । उसीप्रकार पित्त तीसरे पटलमें प्राप्त होय तो वह मनुष्य दिनमें नहीं देखता किंतु रात्रिमें शीतके कारण दृष्टिके अनुकूल होनेसे पित्तहीन होकर सम्पूर्ण पदार्थोंको देखसक्ताहै, इसप्रकार भी पित्तविदग्धदृष्टिमें अन्तर्भूतहै. इसकारण अलग नहीं गिना जाता ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अथ कफविदग्धदृष्टिलक्षणम् ।

तथा नरः श्लेष्मविदग्धदृष्टिस्तान्येव शुक्लानि हि मन्यते तु ॥ ४४ ॥

अत्रापि श्लेष्मणो दृष्टौ प्रथमद्वितीयपटलस्यैतल्लिंगं बोद्धव्यम् । स एव श्लेष्मा दृष्टौ पटलत्रयं गतो नक्तान्ध्यं करोतीत्याह ।

त्रिषु स्थितो यः पटलेषु दोषो नक्तान्ध्यमापादयति प्रसह्य ॥ दिवा स सूर्यानुगृहीतदृष्टिः पश्येत्तु रूपाणि कफाल्पभावात् ॥ ४५ ॥

दोषोऽत्र कफस्तस्य उपक्रान्तत्वान्नक्तान्ध्यस्य श्लेष्मविदग्धदृष्टौ अन्तर्भूतत्वान्न पृथग्गणना ॥

दुष्ट हुआ कफ दृष्टिके पहिले दूसरे पटलमें प्राप्त होय तो मनुष्य रूपोंको सफेद देखताहै, यह रोग कफविदग्धदृष्टि कहाजाताहै ।

येही कफ दृष्टिके तीनों पटलमें प्राप्त होय तो बलात्कारसे नक्तान्ध्य (रात्रिमे अंधापन) करताहै । दिनमे तो दृष्टिके ऊपर सूर्यके अनुग्रह होनेके कारण कफहीन होकर सम्पूर्ण पदार्थ दीखतेहैं, रात्रिमे अंधापन भी कफविदग्ध दृष्टिमे अन्तर्भूत होताहै इसकारण इसको अलग नहीं गिना ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

अथ धूमदर्शिलक्षणम् ।

शोकज्वरायासशिरोऽभितापैरभ्याहता यस्य नरस्य दृष्टिः ॥ धूमांस्तु यः पश्यति सर्वभावान्स धूमदर्शीति नरः प्रदिष्टः ॥ ४६ ॥

शिरोऽभितापः शिरसि घर्मादीनां सन्तापः । एतस्य पित्तदोषो बोद्धव्यः ॥

शोकसे, ज्वरसे, परिश्रमसे और शिरमे धूप आदिके संतापसे दृष्टिका अभिघात होकर सम्पूर्ण पदार्थ धूमसे व्याप्त दीखतेहै। यह रोग धूमदर्शी कहाजाताहै,यह पित्तकी दुष्टतासे होताहै ॥ ४६ ॥

अथ ह्रस्वजात्यलक्षणम् ।

यो वासरे पश्यति कष्टतोऽथ रूपं महच्चापि निरीक्षतेऽल्पम् ॥ रात्रौ पुनर्यः प्रकृतानि पश्येत्स ह्रस्वजात्यो मुनिभिः प्रदिष्टः ॥ ४७ ॥

दिनमे थोडा थोडा दीखे तथा बडे बडे पदार्थ भी छोटे दीखे और रात्रिमें सम्पूर्ण रूप जैसेके तैसे दीखे इस रोगको मुनि ह्रस्वजात्य कहतेहै ॥ ४७ ॥

अथ नकुलांध्यलक्षणम् ।

विद्योतते यस्य नरस्य दृष्टिर्दोषाभिपन्ना नकुलस्य यद्वत्॥ चित्राणि रूपाणि दिवा च पश्येत्स वै विकारो नकुलान्ध्यसंज्ञः ॥४८॥

दृष्टि दोषसे व्याप्त होनेके कारण नौलेकी दृष्टिकी समान चमके और दिनमे रूपोंको विचित्र देखे। इस रोगको नकुलांध्य कहतेहै ॥ ४८ ॥

अथ गंभीरिकालक्षणम् ।

दृष्टिर्विरूपा श्वसनोपसृष्टा संकोचमभ्यन्तरतः प्रयाति ॥ रुजावगाढा च तमक्षिरोगं गम्भीरिकेति प्रवदन्ति धीराः ॥ ४९ ॥

विरूपा विकृता । श्वसनोपसृष्टा वातोपहता । रुजावगाढा गम्भीरवेदनान्विता ॥

वातसे उपहतदृष्टि विकृत होजाय, संकोचको प्राप्त होय, भीतरको चलीजाय और गम्भीरपीडासे युक्त होय इस रोगको विद्वान् वैद्य गम्भीरिका कहतेहै ॥ ४९ ॥

अथ सनिमित्तलिंगनाशस्य निदानलक्षणम् ।

बाह्यौ पुनर्द्वाविह सम्प्रदिष्टौ निमित्ततश्चाप्यनिमित्ततश्च॥ निमित्ततस्तत्र शिरोऽभितापाज्ज्ञेयस्त्वभिष्यन्दनिदर्शनैः सः॥५०॥

बाह्यौ सुश्रुतोक्तद्वादशसंख्येभ्योऽधिकौ । तत्र तन्निमित्तमाह–शिरोऽभितापः शिरोऽभितप्यते येन विषकुसुमगन्धवहपवनस्पर्शेन शिरोऽभितापः तस्मादभिष्यन्दनिदर्शनैः रक्ताभिष्यन्दलिंगैरिति गदाधरः । सन्निपाताभिष्यन्दलिंगैरिति कार्तिकः ॥

सुश्रुतने दृष्टिके जो बारह रोग कहे हैं उनसे अधिक अन्य दो रोग चरक आदि मुनियोंने कहेहै। वह एक तो सनिमित्त लिंगनाश और दूसरा अनिमित्त लिंगनाश ।

विषैले फूलोंकी गंधवाली पवनके स्पर्शनरूपनिमित्तसे मस्तकमे अभिताप होकर जो लिंगनाश होताहै वह सनिमित्तक लिंगनाश कहाजाताहै । अभिष्यन्दके लक्षणोंसे इस रोगको जानना चाहिये ।

गदाधर वैद्य कहताहै कि "रक्ताभिष्यंदके लक्षणोंसे इस रोगको जानना" और कार्तिक वैद्य कहताहै कि "त्रिदोपजनित अभिष्यन्दके लक्षणोंसे इस रोगको जानना चाहिये" (रक्ताभिष्यन्द आदिके लक्षण आगे कहैंगे) ॥ ५० ॥

अथानिमित्तलिंगनाशनिदानलक्षणम् ।

सुरर्षिगन्धर्वमहोरगाणां सन्दर्शनेनापि च भास्करस्य ॥ हन्येत दृष्टिर्मनुजस्य

यस्य स लिंगनाशस्त्वनिमित्तसंज्ञः ॥५१॥ तत्राक्षि विस्पष्टमिवावभाति वैदूर्यवर्णा विमला च दृष्टिः ॥ ५२ ॥

अनुपलभ्यमानानां सुरादीनां निमित्तमप्यनिमित्तं मन्यते । विस्पष्टं ज्योतिर्युक्तम् । वैदूर्यवर्णा श्यामा । विमला निर्मला ॥

देव, ऋषि, गन्धर्व, वृहत्सर्प अथवा अन्यान्य प्रकाशमयपदार्थोंको देखनेसे दृष्टि उपहत होजातीहै यह अनिमित्त लिंगनाश कहाजाताहै । देवादिलोक विशेष करके सर्वजनोंको नहीं दीखते इस कारण उनके दर्शनरूप निमित्तसे उत्पन्न हुए लिंगनाशको अनिमित्त मानाहै ॥ ५१ ॥ अनिमित्त लिंगनाशमें नेत्र तेजवाले दीखतेहैं, दृष्टि श्याम और निर्मल होतीहै और उपघातके कारण दृष्टि फटजातीहै सकुचजाय अथवा कम होजातीहै ॥ ५२ ॥

अथ कृष्णमंडलगतरोगः ।

यत्सव्रणं शुक्रमथाव्रणश्च पाकात्ययश्चाप्यजका तथैव ॥ चत्वार एते नयनामयास्तु कृष्णप्रदेशे नियता भवन्ति ॥ ५३ ॥

सव्रणशुक्र, अव्रणशुक्र, पाकात्यय और अजका यह चार रोग नेत्रोंके काले मंडलमें रहतेहैं ॥ ५३ ॥

अथ सव्रणशुक्रलक्षणम् ।

निमग्नरूपं तु भवेद्धि कृष्णे सूच्येव विद्धं प्रतिभाति यद्वै ॥ स्राव स्रवेदुष्णमतीव चापि तत्सव्रणं शुक्रमुदाहरन्ति ॥ ५४ ॥

निमग्नरूपमिति शुक्रविशेषणम् । सूच्येव विद्धमिति शुक्रस्य वर्तुलत्वं व्यथायुक्तत्वञ्च बोधयति । स्रवेदित्यनेनैव स्रावो बोधितः स्रावपदान्निरन्तरं स्रावः ॥

जो कृष्ण नेत्रके काले भागमें गढासा दीखे, सुईसे छिदासा मालूम होय, गोल तथा व्यथायुक्त होय और उसमेंसे निरन्तर गरमजल बहताहै उसको सव्रणशुक्र कहतेहैं ॥ ५४ ॥

अथ सव्रणशुक्रस्य साध्यासाध्यता ।

दृष्टेः समीपे न भवेत्तु यच्च न चावगाढं न च संस्रवेद्यत् ॥ अवेदनं यत्र च युग्मशुक्रं तत्सिद्धिमायाति कदाचिदेव ॥ ५५ ॥

न चावगाढमेकत्वग्गतं न च संस्रवेदित्यर्थः । अवेदनमीषद्वेदनम् । न च युग्मशुक्रम् अयुग्मशुक्रमेकमित्यर्थः । एवंविधं कदाचित्सिध्यति एतद्विपरीतं न सिध्यति ॥

जो सव्रणशुक्र दृष्टिके समीपमें न होय एक त्वचामें होय, स्रवना न होय, वेदनारहित होय और एक होय तो किसी समय साध्य होताहै । किन्तु जो सव्रणशुक्र दृष्टिके समीपमें होय, दूसरी त्वचामें, वेदनावाला, स्रावयुक्त और एक स्थानमें युग्मरूप ऐसा कभी भी साध्य नहीं होता ॥ ५५ ॥

अथाव्रणशुक्रलक्षणम् ।

स्यन्दात्मकं कृष्णगतन्तु शुक्रं शंखन्दुकुन्दप्रतिमावभासम् ॥ वैहायसाभ्रप्रतनुप्रकाशमथाव्रणं साध्यतमं वदन्ति ॥५६॥

स्यन्दात्मकमभिष्यन्दहेतुकं सर्वेषामक्षिरोगाणामभिष्यन्दहेतुकत्वे अस्य नियमबोधनार्थं स्यन्दात्मकमिति । शंखेन्दुकुन्दप्रतिमावभासं शंखेन्दुकुन्दसदृशमवभासते । एतेन शुक्लत्वं बोध्यते । वैहायसाभ्रप्रतनुप्रकाशम् आकाशस्थमेघवत्तनु यथा स्यादेवं प्रकाशते यत् ॥

जो नेत्रोंके काले भागमें अभिष्यन्दसे उत्पन्नहुआ फूला आकाशमें स्थित मेघकी समान थोडा थोडा प्रकाशमान और शंख, चन्द्रमा तथा कुन्दके फूलकी समान श्वेत होय उसको अव्रणशुक्र कहतेहैं यह फूला अत्यन्त साध्य है । यद्यपि नेत्रके सम्पूर्ण रोग अभिष्यन्दसे होतेहैं तथापि यह फूला तो अभिष्यन्दसेही होताहै ऐसा

नियम जाननेके लिये 'अभिष्यन्दसे हुआ' यह विशेषण दिया है ॥ ५६ ॥

अथाव्रणशुक्रस्य साध्यत्वेऽप्यवस्थान्तरेण कष्टसाध्यता।

गम्भीरजातं बहलञ्च शुक्रं चिरोत्थितञ्चापि वदन्ति कृच्छ्रम् ॥ ५७ ॥

गम्भीरजातं द्वित्रित्वग्गतम्, बहलं पुष्टम्।

जो अव्रणशुक्र गम्भीर अर्थात् दो तीन पटलोंमे प्राप्त हुआ होय, पुष्ट होय और बहुत कालसे उत्पन्नहुआ होय वो कष्टसाध्य होता है ऐसा विद्वानोंने कहा है ॥ ५७ ॥

अथाव्रणशुक्रस्याऽसाध्यलक्षणम्।

विच्छिन्नमध्यं पिशितावृतञ्च चलं शिरासूतमदृष्टिकृच्च ॥ द्वित्वग्गतं लोहितमन्ततश्च चिरोत्थितञ्चापि विवर्जनीयम् ॥ ५८ ॥

विच्छिन्नमध्यं विशीर्णमांसत्वान्निम्नमध्यं शिरासूतं शिरायां जातम्। अदृष्टिकृद्दर्शनाभावकृत्। द्वित्वग्गतं पटलद्वयगतम्। एतद्विच्छिन्नमध्यत्वादिलिंगसहितमसाध्यं न तु केवलं गम्भीरजातस्य कष्टसाध्यत्वाभिधानादेवं चिरोत्थितमपि ॥

जो अव्रणशुक्रका मांस गिरजानेसे बीचमें नीचा हो, मांससे वेष्टित अर्थात् ऊंचा हो, चञ्चल हो शिराओंमें उत्पन्नहुआ हो, देखने नहीं देवे, दो त्वचा अर्थात् दो पटलोंमे पहुँचा होय। अन्तमे लाल हो और बहुत दिनोंसे उत्पन्न हुआ हो तो यह असाध्य है। इस कारण इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। केवल दो पटलोंमें प्राप्त और,बहुत कालसे उत्पन्न हुआ होय तो कष्टसाध्य है किंतु दो पटले,में प्राप्त हुआ और बहुत कालसे उत्पन्न हुआ भी ऊपरके विशेषणोंवाला होय तो असाध्य है ॥ ५८ ॥

अथाव्रणशुक्रस्यान्यासाध्यलक्षणम्।

उष्णाश्रुपातः पिडिका च नेत्रे यस्मिन्भवेन्मुद्गनिभञ्च शुक्रम् ॥ तदप्यसाध्यं प्रवदन्ति केचिदन्ये तु तत्तित्तिरिपक्षतुल्यम् ॥ ५९ ॥

मुद्गनिभञ्च शुक्रमाकारेण। तत् नेत्रम्। तित्तिरिपक्षतुल्यं त्तित्तिरिपक्षवच्छदनम् ॥

जो नेत्रोंमेसे गरम आंसू गिरते होयँ फुंसी उत्पन्न हो और अव्रण शुक्र मूँगकी समान आकारवाला होय तो असाध्य है। कितने एक कहते हैं कि "नेत्रके पलक तीतरके पङ्खकी समान होगये होयँ तो अव्रणशुक्र असाध्य है" ॥ ५९ ॥

अथ पाकात्ययलक्षणम्।

श्वेतः समाक्रामति सर्वतो हि दोषेण यस्यासितमण्डले तु ॥ तमक्षिपाकात्ययमक्षिकोपं सर्वात्मकं वर्जयितव्यमाहुः ॥ ६० ॥

यः श्वेतः दोषेण कृत इति शेषः। तमक्षिपाकादक्षिपाकात्ययमाहुः। अत्र पाकोऽपि स्यादत एव सुश्रुतः "शोकाश्रुपाकार्तियुते च नेत्रे" इति।

दोषोंकरके नेत्रके काले भागमे चारोओर सफेदी फैल जाय तो इस आंखकी पीडाको पाकात्यय कहतेहैं, यह पाकात्यय तीनों दोषोंसे उत्पन्नहुआ होय तो उसको असाध्य समझकर उसकी चिकित्सा नहीं करे। इसमे पाक भी होताहै क्योंकि सुश्रुत कहता है कि "शोकाश्रुपाकार्तियुते च नेत्रे" ॥ ६० ॥

अथाजकाजातलक्षणम्।

अजापुरीषप्रमितो रुजावानलोहितो लोहितपिच्छिलाश्रुः ॥ विगृह्य कृष्णं प्रचयोऽभ्युपैति तं चाजकाजातमिति व्यवस्येत् ॥ ६१ ॥

यः प्रचय उच्छ्रायः स च मेदसो बोद्धव्यो यत एतस्य उत्पत्तिर्विदेहेन तृतीयपटले कथिता। अलोहितः ईषल्लोहितः। विगृह्य

कृष्णमभ्युपैति महत्त्वेन समस्तं कृष्णभागं ग्राहयित्वा आयाति । व्यवस्येज्जानीयात् ॥

बकरीकी मैंगनकी समान, पीडावाली, कुछेक कलौंस लिये और लाल तथा चिकने आसुओंवाली, जो ऊचाई अपने मोटेपनसे सम्पूर्ण काले भागमे प्राप्त होती है उसको अजकाजात कहते हैं ।

यह ऊचाई मेदसे होती है ऐसा जानना । क्यो कि विदेहने इस ऊचाईकी उत्पत्ति तीसरे पटलमे कही है ॥ ६१ ॥

अथ नेत्रश्वेतभागोत्पन्नरोगाणां नामानि ।

प्रस्तारिशुक्लक्षतजाधिमांसस्नाय्वर्मसंज्ञाः खलु पञ्च रोगाः ॥ ६२ ॥ स्याच्छुक्तिकार्जुनपिष्टकौ च जालं शिराणां पिडकाश्च याः स्युः ॥ रोगा बलासग्रथितेन सार्द्धमेकादशाक्ष्णोः खलु शुक्लभागे ॥ ६३ ॥

नेत्रोंके श्वेतभागमें प्रस्तार्यर्म, शुक्लार्म, रक्तार्म, अधिमांसार्म, स्नाय्वर्म शुक्ति, अर्जुन, पिष्टक, शिराजाल, शिराजपिडका और बलासग्रथित यह ग्यारह ११ रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

अथ प्रस्तार्यर्मलक्षणम् ।

प्रस्तार्यर्म तनु स्तीर्णं श्यावं रक्तनिभं सितम् ॥ ६४ ॥

तनु पत्तलम्, स्तीर्णं विस्तीर्णम्, श्यावं रक्तनिभमित्यत्र विकल्पो बोद्धव्यः ॥

नेत्रके श्वेतभागमे पतला, विस्तीर्ण कलौंस लिये अथवा लालीलिये जो सफेद चिह्न होय तो उसको प्रस्तार्यर्म कहते हैं ॥ ६४ ॥

अथ शुक्लार्मलक्षणम् ।

सुश्वेतं मृदु शुक्लार्म शुक्ले तद्वर्द्धतेऽचिरात् ॥ ६५ ॥

सफेद भागमें बहुत सफेद और कोमल जो चिह्न होय तो उसको शुक्लार्म कहते हैं यह शुक्लार्मरूप मांस बहुत दिनोंमें बढताहै ॥ ६५ ॥

अथ रक्तार्मलक्षणम् ।

पद्माभं मृदु रक्तार्म यन्मांसं चीयते सिते ॥ ६६ ॥

पद्माभं वर्णेन रक्तमित्यर्थः । चीयते उपचीयते ।

सफेद भागमें लाल तथा कोमल जो मांस बढताजाय उसको रक्तार्म कहते हैं ॥ ६६ ॥

अथाधिमांसार्मलक्षणम् ।

पृथु मृद्वधिमांसार्म बहलञ्च यकृन्निभम् ॥ ६७ ॥

पृथु विस्तीर्णम्, बहलं पुष्टम्, यकृन्निभम् ईषत्कृष्णलोहितम् ॥

सफेद भागमें विस्तीर्ण, कोमल, गाढा और कुछेक कलौंस लिये जो मास बढता होय तो उसको अधिमांसार्म कहते हैं ॥ ६७ ॥

अथ स्नाय्वर्मलक्षणम् ।

स्थिरं प्रसारि मांसाढ्यं शुष्कं स्नाय्वर्म पञ्चमम् ॥ ६८ ॥

स्थिरं कठिनम्, शुष्कं स्रावरहितम् ॥

सफेद भागमे कठिन, फैलनेवाला, और स्रावरहित जो मास ऊंचा होताहै उसको स्नाय्वर्म कहते हैं ॥ ६८ ॥

अथ शुक्तिलक्षणम् ।

श्यावाः स्युः पिशितनिभाश्च बिन्दवो ये शुक्त्याभाः सितनिचिताः स शुक्तिसंज्ञः ॥ ६९ ॥

श्यावा इत्यादिवर्णत्रये विकल्पो बोद्धव्यः ॥

नेत्रके सफेद भागमें काले रगका और मांसकी समान बिन्दु होताहै अथवा सीपकी समान होताहै उसको शुक्ति कहते हैं ॥ ६९ ॥

अथार्जुनलक्षणम् ।

एको यः शशरुधिरप्रभस्तु बिन्दुः शुक्लस्थो भवति तमर्जुनं वदन्ति ॥ ७० ॥

सफेद भागमें खरगोशके रुधिरकी समान एक बिन्दु होताहै उसको अर्जुन कहते हैं ॥ ७० ॥

अथ पिष्टकलक्षणम् ।

श्लेष्ममारुतकोपेन शुक्ले मांसं समुन्नतम् ॥ पिष्टवत्पिष्टकं विद्धि मलाक्तादर्शसन्निभम् ॥ ७१ ॥

पिष्टवत् श्वेतम् ।

सफेद भागमें कफ तथा वायुके प्रकोपसे चूनकी समान सफेद और मैलसे भरे दर्पणकी समान जो मांस ऊंचा होताहै उसको पिष्टक कहतेहैं ॥ ७१ ॥

अथ शिराजाललक्षणम् ।

जालाभः कठिनशिरोऽरुणः शिराणां सन्तानो भवति शिरादिजालसंज्ञः ॥७२॥

सफेद भागमे जालेकी समान कठिन शिराओंसे व्याप्त और लाल शिराओका जो समूह होताहै उसको शिराजाल कहतेहैं ॥ ७२ ॥

अथ शिराजपिडकालक्षणम् ।

शुक्लस्थाः सितपिडिकाः शिरावृता यास्ता विद्यादसितसमीपजाः शिराजाः ॥७३॥

सफेद भागमे कालेभागके निकट रहनेवाली और शिराओंसे व्याप्त जो सफेद फुंसियें उत्पन्न होतीहैं उनको शिराजपिडका कहतेहैं ॥ ७३ ॥

अथ बलासग्रथितलक्षणम् ।

कांस्याभोऽमृदुरथ वारिबिन्दुकल्पो विज्ञेयो नयनसिते बलाससंज्ञः ॥ ७४ ॥

कांस्याभः श्वेत इत्यर्थः । अमृदुः कठिनः । वारिबिन्दुकल्पः एतेन मनाक् उन्नतत्वं बोध्यते । बलाससंज्ञः बलासग्रथितसंज्ञः । कचिदेकदेशेनापि समुदायावगमात् । यथा भीमो भीमसेन इति । अत एव सुश्रुते नामसंग्रहे बलासग्रथितपदं निर्दिष्टम् ॥

सफेद भागमे कासेकी समान सफेद, कठिन और जलकी बूदकी समान कुछेक ऊंची जो बूंद होतीहैं उसको बलासग्रथित कहतेहैं ।

यद्यपि मूलश्लोकमें 'बलाससंज्ञ' ऐसा पद है तथापि उसका 'बलासग्रथित' ऐसा अर्थ किया है उसका कारण यह है कि भीमशब्दसे भीमसेनका ग्रहण करनेकी समान किसी स्थानमे नामके एकदेशसे सम्पूर्ण नामका ग्रहण होताहै । सुश्रुतमे नामोके संग्रहमे 'बलासग्रथित' येही पद कहाहै ॥ ७४ ॥

अथैकविंशतिवर्त्मजरोगाः ।

उत्सङ्गिन्यथ कुम्भीका पोथकी वर्त्मशर्करा ॥ तथार्शोवर्त्म शुष्कार्शस्तथैवाञ्जनदूषिका ॥ ७५ ॥ बहलं वर्त्म यच्चापि तथान्यो वर्त्मबन्धकः ॥ क्लिष्टवर्त्म तथा वर्त्मकर्दमः श्यावर्त्म च ॥ ७६ ॥ प्रक्लिन्नवर्त्म चाक्लिन्नवर्त्म वातहतश्च तत् ॥ वर्त्मार्बुदं निमेषश्च शोणितार्शस्तथैव च ॥ ७७ ॥ लगणो विषवर्त्मापि कुञ्चनं नाम तत्परम् ॥ एकविंशतिरित्येते विकारा वर्त्मसंश्रयाः ॥ ७८ ॥

नेत्रोंके वर्त्म (पलक) दो होतेहैं । उनमें उत्सगिनी[१], कुम्भिका[२], पोथकी[३], वर्त्मशर्करा[४], अर्शोवर्त्म[५], शुष्कार्श[६], अजननामिका[७], बहलवर्त्म[८], वर्त्मबंधक[९], क्लिष्टवर्त्म[१०], वर्त्मकर्दम[११], श्याववर्त्म[१२], प्रक्लिन्नवर्त्म[१३] अक्लिन्नवर्त्म[१४], वातहतवर्त्म[१५], वर्त्मार्बुद[१६], निमेष[१७], शोणितार्श[१८], लगण[१९], विषवर्त्म[२०] और कुंचन[२१] ये इक्कीस रोग होतेहैं ॥ ७५–७८ ॥

अथोत्संगिनीलक्षणम् ।

अभ्यन्तरमुखी ताम्रा बाह्यतो वर्त्मसंश्रया ॥ सोत्सङ्गोत्संगपिडिका रक्तजा स्थूलकण्डुरा ॥ ७९ ॥

अभ्यन्तरमुखी वर्त्मनोऽभ्यन्तरे मुखं यस्याः सा । वर्त्मनो बाह्यतस्ताम्रा । सोत्संगा अन्तःपूया । उत्संगपिडिका उत्संगे क्रोडे बह्व्यः पिडिका यस्याः सा ॥ स्थूलकण्डूरा स्थूला कण्डुरा चेति कर्मधारयः । एषा अधरवर्त्मजा बोद्धव्या । वर्त्मोत्संगेऽधरे जन्तोरिति विदेहवचनात् ॥

नेत्रके कोयेके भीतर मुखवाली, बाहरसे लाल, भीतर से राधयुक्त, अपनेआप अनेक फुडियोंयुक्त, स्थूल और खुजलीयुक्त जो फुडियाँ पलकमें रुधिरके प्रकोपसे होतीहैं उसको उत्सगिनी कहतेहैं ।

यह फुडिया नीचेके कोयेमें होतीहै ऐसा जानना,

कारण यह है कि, 'मनुष्यके नीचेके कोयेमें उत्सगिनी होतीहै' ऐसा विदेह कहताहै ॥ ७९ ॥

अथ कुम्भीकालक्षणम् ।

वर्त्मान्ते पीडिका ध्माता भिद्यन्ते च स्रवन्ति च॥ कुम्भीकाबीजसदृशाः कुम्भीकाः सन्निपातजाः ॥ ८० ॥

कुम्भीकाबीजसदृशाः कुम्भीका कठोरदेशे दाडिमाकारफला लता तद्बीजतुल्या ॥

पलकके अंतमें ऊंची और कुम्भिका नामक लताके बीजकी समान जो फुन्सी सन्निपातसे होतीहैं और फूटती हैं तथा फूट फूटकर स्रवतीहै वह फुन्सी कुम्भिका कही जातीहै । कुम्भिका नामक लता कठोर देशमें होतीहैं और उसके फल अनारकी समान होतेहैं ॥ ८० ॥

अथ पोथकीलक्षणम् ।

स्राविण्यः कण्डुरा गुर्व्यो रक्तसर्षपसन्निभाः ॥ रुजावत्यश्च पिडिकाः पोथक्य इति कीर्तिताः ॥ ८१ ॥

बहनेवाली, खुजलीयुक्त, भारी, लाल सरसोंकी समान, और पीडायुक्त जो फुन्सी नेत्रके कोयेमें होतीहैं उसको पोथकी कहतेहैं ॥ ८१ ॥

अथ वर्त्मशर्करालक्षणम् ।

पिडिकाभिः सुसूक्ष्माभिर्घनाभिरभिसंवृताः॥पीडिका या खरा स्थूला वर्त्मस्था वर्त्मशर्करा ॥ ८२

बहुत छोटी छोटी सघन फुन्सियोंसे चारों ओर भरी-हुई, तीक्ष्ण और मोटी जो फुन्सी पलकमें होतीहै उसको वर्त्मशर्करा कहतेहैं ॥ ८२ ॥

अथार्शोवर्त्मलक्षणम् ।

एर्वारुबीजप्रतिमाः पिडिका मन्दवेदनाः ॥ श्लक्ष्णाः खराश्च वर्त्मस्थास्तदर्शोवर्त्म कीर्त्यते ॥ ८३ ॥

एर्वारुः कर्कटी । खराः तीक्ष्णाग्राः ॥

ककडीके बीजकी समान, मंद पीडायुक्त, चिकनी, और तीक्ष्ण अनीवाली जो फुन्सी होतीहै उसको अर्शोवर्त्म कहतेहैं ॥ ८३ ॥

अथ शुष्कार्शोलक्षणम् ।

दीर्घाङ्कुरः खरः स्तब्धो दारुणोऽभ्यन्तरोद्भवः॥ व्याधिरेषोऽभिविख्यातः शुष्कार्शो नाम नामतः ॥ ८४ ॥

पलकके भीतर खरखरे, जकडेसे और दारुण जो बडे बडे अंकुर होतेहैं उसको शुष्कार्श कहतेहैं ॥ ८४ ॥

अथाञ्जननामिकालक्षणम् ।

दाहतोदवती ताम्रा पिडिका वर्त्मसम्भवा ॥ मृद्वी मन्दरुजा सूक्ष्मा ज्ञेया साञ्जननामिका ॥ ८५ ॥

पलकमें दाहवाली, भौंकनेसरीखी पीडा युक्त, लाल, कोमल, और मंद वेदनावाली जो बारीक फुन्सियें होतीहैं वे अंजननामिका कही जातीहैं ॥ ८५ ॥

अथ बहलवर्त्मलक्षणम् ।

वर्त्मोपचीयते यस्य पिडिकाभिः समन्ततः ॥सवर्णाभिः स्थिराभिश्च विद्याद्बहलवर्त्म तत् ॥ ८६ ॥

पलककी समान रंगवाली और कठिन जो फुन्सी वर्त्मके चारों ओर फैल जायँ उसको बहलवर्त्म कहते-हैं ॥ ८६ ॥

अथ वर्त्मबंधकलक्षणम् ।

कण्डूरेणात्मतोदेन वर्त्मशोफेन मानवः ॥ असमं छादयेदक्षि यत्रासौ वर्त्मबन्धकः ॥ ८७ ॥

जलसे परिपूर्ण और खुजलीसहित पलक सूजकर नेत्र बराबर नहीं मिचते होयँ उसको वर्त्मबंधक कहते-हैं ॥ ८७ ॥

अथ क्लिष्टवर्त्मलक्षणम् ।

मृद्वल्पवेदनं ताम्रं यद्वर्त्म सममेव च ॥ अकस्माच्च स्रवेद्रक्तं क्लिष्टवर्त्मेति तद्विदुः ॥ ८८ ॥

एतत्कफजुष्टरक्तजम् ॥

नेत्रके दोनों कोये नरम रहैं । उनमें थोडी पीडा हो । सर्वदा लाल रहैं और अकस्मात् लाल होजायँ उसको क्लिष्टवर्त्म कहतेहैं । यह रोग प्रथम कफके सम्बन्धसे होकर रुधिरसे होताहै ॥ ८८ ॥

अथ वर्त्मकर्दमलक्षणम् ।

क्लिष्टं पुनः पित्तयुतं शोणितं विदहेद्यदा॥ तदा क्लिन्नत्वमापन्नमुच्यते वर्त्मकर्दमम् ॥ ८९ ॥

क्लिन्नत्वम् आर्द्रत्वम् ॥

ऊपर क्लिष्टवर्त्मके जो लक्षण कहे वे लक्षण होंयँ तथा फिर पित्तसे सयुक्त रुधिर दाह करताहो और इस कारण पलक भीजजातेहोंयँ उस रोगको वर्त्मकर्दम कहते हैं ॥ ८९ ॥

अथ श्याववर्त्मलक्षणम् ।

यद्वर्त्म बाह्यतोऽन्तश्च श्यावं शूनं सवेदनम् ॥ सकण्डूकं परिक्लेदि श्याववर्त्मेति तन्मतम् ॥ ९० ॥

नेत्रके पलक जो बाहर तथा भीतर काले होंयँ, सूजन हो, वेदनायुक्त, खुजलीसहित और भीजे रहे तो उसको श्याववर्त्म कहतेहै ॥ ९० ॥

अथ प्रक्लिन्नवर्त्मलक्षणम् ।

अरुजं बाह्यतः शूनं वर्त्म यस्य नरस्य हि ॥ प्रक्लिन्नवर्त्म तद्विद्यात्क्लिन्नमत्यर्थमन्ततः ९१

अरुजमीषद्व्यथम् ॥

कोये कुछेक पीडायुक्त, सूजे हुए और अधिक तर कीचड सहित भीजे होंयँ उसको प्रक्लिन्नवर्त्म कहते-हैं ॥ ९१ ॥

अथाक्लिन्नवर्त्मलक्षणम् ।

यस्य धौतान्यधौतानि सम्बध्यन्ते पुनः पुनः ॥ वर्त्मान्यपरिपक्वानि विद्यादक्लिन्नवर्त्म तत् ॥ ९२ ॥

धोनेसे वा नहीं धोनेसे जो नेत्रके पलक वारवार चिपक कर मिलजायँ और पके नही अर्थात् कचे रहें उसको अक्लिन्नवर्त्म कहतेहै ॥ ९२ ॥

अथ वाताहतवर्त्मलक्षणम् ।

विमुक्तसन्धि निश्चेष्टं वर्त्म यस्य न मील्यते ॥ एतद्वातहतं विद्यात्सरुजं यदि वारुजम् ॥ ९३ ॥

विमुक्तसन्धि स्वस्थानच्युतसन्धि । निश्चेष्टम् । निमेषोन्मेषादिरहितम् ॥

जिसके पलककी संधि अलग अलग होजायँ पलक मिचे और खुले नहीं और वेदनासहित अथवा वेदनारहित तथा सकुचनेवाली इसको वातहतवर्त्म कहतेहै ॥ ९३ ॥

अथ वर्त्मार्बुदलक्षणम् ।

वर्त्मान्तरस्थं विषमं ग्रन्थिभूतमवेदनम् ॥ आचक्षीतार्बुदमिति सरक्तमवलम्बि च९४॥

विषममवर्तुलं ग्रन्थिभूतं कठिनम् । अवेदनमीषद्वेदनम्, सरक्तमीषल्लोहितम् । अवलम्बि अवस्रस्तम् ॥

पलकोंके भीतर विषम अर्थात् गोल नहीं, थोडी पीडावाली कुछेक लाल और शीघ्र बढनेवाली कठिन गांठ होय उसको वर्त्मार्बुद कहतेहैं ॥ ९४ ॥

अथ निमेषलक्षणम् ।

निमेषिणीः शिरावायुः प्रविष्टो वर्त्मसंश्रयः॥ सञ्चालयति वर्त्मानि निमेषः स न सिध्यति ॥ ९५ ॥

पलकोंमें रहनेवाली वायु पलकोंको खोलने बद करनेवाली नसोंमे प्राप्त होकर पलकोंको चलायमान करे उसको निमेष कहतेहैं यह रोग असाध्य है ॥ ९५ ॥

अथ शोणितार्शोलक्षणम् ।

वर्त्मस्थो यो विवर्द्धेत लोहितो मृदुरंकुरः ॥ तद्रक्तजं शोणितार्शश्छिन्नं वाऽपि विवर्द्धते ॥ ९६ ॥

पलकोंमें रहनेवाले कोमल अकुर बढें उसको शोणितार्श कहतेहैं यह रोग रुधिरसे होताहै । इसको जितना जितना काटा जाय उतनाही अधिक बढताहै ॥ ९६ ॥

अथ लगणलक्षणम् ।

अपाकी कठिनः स्थूलो ग्रन्थिर्वर्त्मभवो रुजः ॥ सकण्डूः पिच्छिलः कोलप्रमाणो लगणः स्मृतः ॥ ९७ ॥

नही पकनेवाला, कठिन, स्थूल, अल्प पीडायुक्त,खुजलीसहित, चिकनी और बेरकी समान जो गांठ पलकमे उत्पन्न होय उसको लगण कहतेहैं ॥ ९७ ॥

अथ बिसवर्त्मलक्षणम् ।

त्रयो दोषा बहिः शोथं कुर्युश्छिद्राणि-वर्त्मनोः ॥ प्रस्रवत्यन्तरुदकं बिसवद्बिसवर्त्म तत् ॥ ९८ ॥

छिद्राणि अन्तश्छिद्राणि च कुर्युरित्यन्वयः । बिसवद्बहुच्छिद्रत्वात् ॥

तीनों दोष पलकोंमे बाहर सूजनको उत्पन्न करें भीतर छिद्रोंको उत्पन्न करें और उनमेंसे कमलकी नालकी समान जलका स्राव होय उसको बिसवर्त्म कहतेहैं ॥ ९८ ॥

अथ कुंचनलक्षणम् ।

वाताद्या वर्त्मसंकोचं जनयन्ति मला यदा ॥ तदा द्रष्टुं न शक्नोति कुञ्चनं नाम तद्विदुः ॥ ९९ ॥

वातादि दोषोंके कारण पलक संकुच जाय और उससे देखनेको असमर्थ होजाय उसको कुंचन कहते-हैं ॥ ९९ ॥

तत्र पक्ष्माणि अक्षिलोमानि तत्र-त्ययो रोगयोर्नामनी आह ।

पक्ष्मकोपः पक्ष्मशातो रोगौ द्वौ पक्ष्मसंश्रयौ ॥ १०० ॥

पक्ष्मकोप और पक्ष्मशात ये दो रोग पलकोंके बालोंमें होतेहैं ॥ १०० ॥

अथ पक्ष्मकोपलक्षणम् ।

प्रचालितानि वातेन पक्ष्माण्यक्षि विशन्ति हि ॥ घृष्यन्त्यक्षि मुहुस्तानि संरम्भं जनयन्ति च ॥ १०१ ॥ असिते सितभागे च मूलकोशात्पतन्त्यपि ॥ पक्ष्मकोपः स विज्ञेयो व्याधिः परमदारुणः ॥ १०२ ॥

संरम्भं शोथम ॥

वायुसे चलायमान पलकोंके बाल नेत्रोंमें प्रवेश करते हैं, प्रवेश करके नेत्रोंको वारंवार घिसते हैं, घिस घिसकर काले अथवा सफेद भागमें सूजनको उत्पन्न करते हैं और उससे उखड़कर गिरजायँ इस रोगको पक्ष्मकोप कहते हैं यह रोग अत्यंत दारुण है ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

अथान्यग्रन्थोक्तपक्ष्मकोपलक्षणम् ।

यत्पक्ष्मदेहलीमुक्त्वा वर्त्मनोऽन्तः प्रजायते ॥ घर्षेत्पक्ष्मासिते श्वेते पक्ष्मकोपः स उच्यते ॥ १०३ ॥

जहां बाल उत्पन्न होनेका स्थान है उस स्थानको छोड-कर बालोंके भीतर उत्पन्न होय और वह काले तथा सफेद भागमे घिसा करे उसको पक्ष्मकोप कहते हैं, इसको देशमें परवाल कहते हैं । सुश्रुतमें कहा है कि पलकोंके बालोंके स्थानमें रहनेवाले दोष तीक्ष्ण अनीवाले खरखरे रोमोंको उत्पन्न करे हैं, ये रोम नेत्रोंमें घिसनेसे नेत्र दुखते हैं यह रोग पक्ष्मकोप कहा जाताहै । इस रोगवाला मनुष्य पवन, धूप और अग्निपर द्वेष करताहै ॥ १०३ ॥

अथ पक्ष्मशातलक्षणम् ।

वर्त्मपक्ष्माशयगतं पित्तं लोमानि शातयेत्॥ कण्डूं दाहञ्च कुरुते पक्ष्मशातं तदादिशेत् ॥ १०४ ॥

शातयेत् स्खलयेत् ॥

पक्ष्माशयमें रहनेवाला पित्त पलकके बालोंको गिरा-देताहै और खुजली तथा दाहको उत्पन्न करे है यह रोग पक्ष्मशात कहाताहै ॥ १०४ ॥

अथ संधिजरोगाः ।

पक्ष्मवर्त्मगतः सन्धिर्वर्त्मशुक्लगतोऽपरः ॥ शुक्लकृष्णगतश्चान्यः कृष्णदृष्टिगतोऽपि च ॥ मतः कनीनकगतः षष्ठश्चापाङ्गसंश्रितः ॥ १०५ ॥

पहिली सन्धि पलकोंके रोमोंमें और पलकोंमें है, दूसरी सधि पलकोंमे और सफेद भागमें है, तीसरी सन्धि सफेद भागमें और काले भागमें है और दृष्टिमें है, चौथी सधि काले भागमें और दृष्टिमें है, पांचवीं सन्धि दृष्टिमें है और छटी सन्धि नेत्रके अन्तमें है ॥ १०५ ॥

अथ सन्धिजरोगाणां नामानि संख्याच ।

पूयालसः सोपनाहः स्रावाश्चत्वार एव

च ॥ पर्वणी कालजी जन्तुग्रन्थिः सन्धौ नवामयाः ॥ १०६ ॥

पूयालस, उपनाह, पित्तस्राव, कफस्राव, सन्निपातस्राव, रक्तस्राव, पर्वणी, अलजी और जंतुग्रन्थी यह नामवाले नौ रोग संधियोंमे होतेहैं ॥ १०६ ॥

अथ पूयालसलक्षणम् ।

पक्वः शोथः सन्धिजः संस्रवेद्यः सान्द्रं पूयं पूति पूयालसाख्यः ॥ १०७ ॥

सन्धिजः कनीनकसन्धिजो बोद्धव्यः । "पूयालसन्तु तं विद्यात्सन्धौ कानीनके नृणाम्" इति वचनात् ॥

संधियोंमे उत्पन्न और पकीहुई जो सूजन दुर्गंधित तथा गाढीराध जिसमे वहै उसको पूयालस कहतेहैं । संधियोमे उत्पन्न हुआ, अर्थात् दृष्टिकी संधियोंमें उत्पन्न हुआ ऐसा जानना, कारण यह है कि 'मनुष्योंकी दृष्टिकी संधियोमे पूयालस होताहै' ऐसा विदेह कहताहै ॥ १०७ ॥

अथोपनाहलक्षणम् ।

ग्रन्थिर्नाल्पो दृष्टिसन्धावपाकी कण्डूप्रायो नीरुजश्चोपनाहः ॥ १०८ ॥

नाल्पः महान् । अपाकी ईषत्पाकी । नीरुजः ईषद्वेदनः । "अरुणं कठिनं ग्रन्थिं जनयत्यल्पवेदनम्" । इति विदेहवचनात् ।

दृष्टिकी संधिमे बडी, कम पकनेवाली, बहुत खुजलीयुक्त, कठिन, लाल और अल्प वेदनावाली जो गाठ होयँ उसको उपनाह कहतेहैं ॥ १०८ ॥

अथ स्रावसम्प्राप्तिः ।

गत्वा सन्धीनश्रुमार्गेण दोषाः कुर्युः स्रावाँल्लक्षणैः स्वैरुपेतान् ॥ तं हि स्रावं नेत्रनाडीति चैके तस्या लिंगं कीर्तयिष्ये चतुर्द्धा ॥ १०९ ॥

सन्धीनिति बहुवचनेन सर्वे एव सन्धयो गृह्यन्ते । एके वदन्तीति शेषः । वातिकस्रावो न भवति केवलेन वातेन तदसम्भवात् ॥

दोष सम्पूर्ण संधियोंमें जाकर आसुओंके मार्गसे अपने२ लक्षणोंवाले स्रावोंको उत्पन्न करेहैं कितने एक आचार्य इस स्रावको 'नेत्रनाडी' नामसे कहतेहैं । स्राव चार प्रकारका होताहै उसके लक्षण कहतेहैं । वायुसम्बन्धीस्राव नहीं होता क्योंकि केवल वायुसे स्राव होना सभव नहीं ॥ १०९ ॥

अथ पित्तजस्रावलक्षणम् ।

हारिद्राभं पीतमुष्णं जलं वा पित्तस्रावः संस्रवेत्सन्धिमध्यात् ॥ ११० ॥

हारिद्राभं पीतरक्तम् । परतः पीतशब्दप्रयोगाज्जलं नेति । वाशब्दो हारिद्राभं पीतं वेत्यत्र सम्बध्यते । पित्तस्रावः पित्तात्स्राव एवं श्लेष्मस्रावादयः ॥

संधिके बीचमेंसे लाल तथा पीला मिलाहुआ अथवा केवल पीला गरम जलका स्राव होताहोय तो उसको जानना कि पित्तसम्बन्धी स्राव है ॥ ११० ॥

अथ कफजस्रावलक्षणम् ।

श्वेतं सान्द्रं पिच्छिलं यः स्रवेत्तु श्लेष्मस्रावोऽसौ विकारः प्रदिष्टः ॥ १११ ॥

सफेद, गाढा तथा चिकना स्राव होता होय तो जानना कि कफसम्बन्धी स्राव है ॥ १११ ॥

अथ सान्निपातस्रावलक्षणम् ।

शोथः सन्धौ संस्रवेद्यस्तु पक्वः पूयं स्रावः सर्वजः सम्मतः स्यात् ॥

संधियोंमे पकनेवाली सूजन राधको वहातीहोय तो उसको जानना कि सन्निपातस्राव है ।

अथ रुधिरजन्यस्रावलक्षणम् ।

रक्तास्रावः शोणिताद्यो विकारो गच्छेदुष्णं तत्र रक्तं प्रभूतम् ॥ ११२ ॥

स्राव गरम होय और उसमें विशेष रुधिर गिरता होय तो जानना कि रुधिरजन्य स्राव है ॥ ११२ ॥

अथ पर्वण्यलज्योर्लक्षणम् ।

ताम्रा तन्वी दाहपाकोपपन्ना रक्ताज्ज्ञेया पर्वणी वृत्तशोफा ॥ जाता सन्धौ कृष्णशुक्लेऽलजी स्यात्तस्मिन्नेव व्याहृता पूर्वलिंगैः ॥ ११३ ॥

रक्ता सिता स्फोटचिता दारुणा त्वलजी भवेत् ॥ ११४ ॥

अलजीमाह-अलजी स्यादित्यादि । तस्मिन्नेव कृष्णशुक्लयोरेव सन्धौ । भेदार्थमाह-पूर्वलिंगैः प्रमेहाधिकारलिखितैः ॥

काले भागकी तथा सफेदभागकी सवियेमि गोल,सूजनवाली, लाल, वारीक और दाहयुक्त तथा पकनेवाली फुसी उत्पन्न होय तो जानना कि पर्वणी उत्पन्न हुई है । यह पर्वणी रुधिरके प्रकोपसे होतीहै ।

पहिले प्रमेहाधिकारमें लिखे अनुसार लाल, सफेद फुसियोंसे व्याप्त और दारुण ऐसी फुसी सविमे (काले भाग तथा सफेद भागकी सविमें) होय तो उसको अलजी जानना ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

अथ जंतुग्रंथिलक्षणम् ।

जन्तुग्रन्थिर्वर्त्मनः पक्ष्मणश्च कण्डूं कुर्युर्जन्तवः सन्धिजाताः ॥ नानारूपा वर्त्मशुक्लान्तसन्धौ गच्छन्त्यन्तर्लोचनं दूषयन्तः ॥ ११५ ॥

वर्त्मनः पक्ष्मणश्च सन्धिजाता इत्यन्वयः ॥

पलकके तथा पलकके रोमोंकी सवियोंमें उत्पन्न हुए, अनेक आकृतिवाले कृमि खुजलीको उत्पन्न करे और नेत्रको बिगाड बिगाडकर पलक तथा सफेद भागकी सवियोंमे जातेहैं उसको जन्तुग्रंथि कहतेहैं ॥ ११५ ॥

अथ समस्तनेत्रजरोगगणना ।

स्यन्दाश्चतुष्का इह सम्प्रदिष्टाश्चत्वार एवेह तथाधिमन्थाः ॥ पाकः सशोथः स च शोथहीनो हताधिमन्थोऽनिलपर्ययश्च ॥ ११६ ॥ शुष्काक्षिपाकस्त्विह कीर्तितश्च तथान्यतोवात उदीरितश्च ॥ दृष्टिस्तथाऽम्लाध्युषिता शिराणामुत्पातहर्षौ च समस्तनेत्रे ॥ ११७ ॥ एवं समस्तनेत्रे स्युरामया दश सप्त च ॥ तेषामिह पृथग्वक्ष्ये यथावल्लक्षणान्यपि ११८॥

चार अभिष्यन्द चार अभिमंथ, सशोथपाक, अशोथपाक, हताधिमंथ, वातपर्यय, शुष्काक्षिपाक, अन्यतोवात, अम्लाध्युषित[१५], शिरोत्पात[१६] और शिराहर्ष[१७] यह सतरह रोग समस्त नेत्रमे होतेहै, अब इनके पृथक् पृथक् लक्षण कहताहू ॥ ११६-११८ ॥

अथ चत्वार्य्यभिष्यन्दनामानि ।

वातात्पित्तात्कफाद्रक्तादभिष्यन्दश्चतुर्विधः ॥ प्रायेण जायते घोरः सर्वनेत्रभयंकरः ॥ ११९ ॥

प्राणियोंके वाताभिष्यन्द, पित्ताभिष्यन्द, कफाभिष्यन्द और रक्ताभिष्यन्द इसप्रकार सर्व नेत्रमें पीडा करनेवाला चार प्रकारका भयकर अभिष्यन्द रोग होता है ॥ ११९ ॥

अथ वाताभिष्यन्दलक्षणम् ।

निस्तोदनस्तम्भनरोमहर्षसंघर्षपारुष्यशिरोऽभितापाः ॥ विशुष्कभावः शिशिराश्रुता च वाताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ १२० ॥

संघर्षः करकटीका । शिरोऽभितापः शिरसो व्यथा । विशुष्कभावः दूषिकाराहित्यम् । वाताभिपन्ने वातेन उपद्रुते ॥

तोडने भोंकने सरीखी पीडा, स्तब्धता (जडता), रोमाञ्चोंका होना, खुजली, नेत्रोंमें रूक्षता,मस्तकमें पीडा, चिपकना नहीं और आसुओंका शीतल होना, यह सब लक्षण होंय तो जानना कि नेत्रमें वायुके प्रकोपसे अभिष्यन्द हुआ है ॥ १२० ॥

अथ पित्ताभिष्यन्दलक्षणम् ।

दाहप्रपाकः शिशिराभिनन्दा धूमायनं बाष्पसमुद्भवश्च ॥ उष्णाश्रुता पीतकनेत्रता च पित्ताभिपन्ने नयने भवन्ति॥ १२१॥

शिशिराभिनन्दा शीतलेच्छा । धूमायनं नेत्राद्धूमोद्गम इव । बाष्पसमुद्भवः अस्रुस्रावः॥

दाह, पकना, शीतल पदार्थोंकी इच्छा, नेत्रमेसे धुंआसा निकलता प्रतीत हो, आसुओंका स्राव, आंसुओंमे उष्णता और नेत्रका पीलापन यह लक्षण होंय तो जानना कि पित्तके प्रकोपसे अभिष्यन्द हुआ है ॥ १२१ ॥

अथ कफाभिष्यन्दलक्षणम्।

उष्णाभिनन्दा गुरुताक्षिशोथः कण्डूपदेहावतिशीतता च ॥ स्रावो मुहुः पिच्छिल एव चापि कफाभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ १२२ ॥

उपदेहः दूषिकया लिप्तता ॥

गरम पदार्थोंकी इच्छा, भारीपन, नेत्रोंमें सूजन, खुजली, कीचड अधिक आवे और चिपके, अत्यन्त शीतलता और वारवार चिकना स्राव, यह लक्षण होंयँ तो जानना कि कफके प्रकोपसे नेत्र दुखने आये है ॥ १२२ ॥

अथ रक्ताभिष्यन्दलक्षणम्।

ताम्राश्रुता लोहितनेत्रता च राज्यः समन्तादतिलोहिताश्च ॥ पित्तस्य लिंगानि च यानि तानि रक्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ १२३ ॥

पित्तलिंगानि पित्ताभिष्यन्दलिंगानि ॥

आसुओंमें लाली, नेत्रोंमें लाली, चारोओर नेत्रोंमे अत्यन्त लाल रेखा और अन्यभी पित्ताभिष्यन्दके लक्षण होयँ तो जानना कि रुधिरके प्रकोपसे अभिष्यन्द हुआ है ॥ १२३ ॥

अथ चतुर्विधाभिष्यन्दोपेक्षया चत्वारोऽधिमन्थाः।

वृद्धैरेतैरभिष्यन्दैर्नराणामक्रियावताम् ॥ तावन्तस्त्वधिमन्थाः स्युर्नयने तीव्रवेदना ॥ १२४ ॥

जो मनुष्य अभिष्यन्द रोगोंपर औषधादिक उपचार नहीं करते उनके यह वृद्धिको प्राप्त होकर नेत्रोमें तीव्र पीडावाले चार अधिमन्थ होते हैं (वाताभिष्यन्दजन्य अधिमन्थ, पित्ताभिष्यन्दजन्य अधिमन्थ, कफाभिष्यन्दजन्य अधिमन्थ, और रक्ताभिष्यन्दजन्य अधिमन्थ इस प्रकार अधिमन्थ चार हैं) ॥ १२४ ॥

अथाधिमन्थलक्षणम्।

उत्पाट्यत इवात्यर्थं तथा निर्मथ्यतेऽपि च ॥ शिरसोऽर्द्धं तु तं विद्यादधिमन्थं स्वलक्षणैः ॥ १२५ ॥

स्वलक्षणैः यथोक्तवातादिकृताभिष्यन्दलक्षणैरधिमन्थं विद्यात्। अभिष्यन्देभ्योऽधिमन्थानां भेदार्थमाह—शिरसोऽर्द्धमुत्पाट्यत इव तथा निर्मथ्यतेऽपि चेति। चतुर्ष्वधिमन्थेषु बोद्धव्यम्। शिरसोऽर्द्धवेदना व्याधिप्रभावात्। स च अधिमन्थो यदात्मको यावता कालेन मिथ्याचाराद्दृष्टिं हन्ति तमाह—

हन्याद्दृष्टिं श्लैष्मिकः सप्तरात्राद्योऽधीमन्थो रक्तजः पञ्चरात्रात् ॥ षड्रात्राद्वा वातिको वै निहन्यान्मिथ्याचारात्पैत्तिकः सद्य एव ॥ १२६ ॥

अत्र सद्यःशब्देन त्रिरात्रमुच्यते तन्त्रान्तरे त्रिरात्रवचनात् ॥

जो अधिमन्थ जिस अभिष्यन्दसे उत्पन्नहुआ होय उस अधिमन्थमें उसी अभिष्यन्दके सम्पूर्ण लक्षण होनेके सिवाय आधा माथा उखाडासा मालूम होय तथा अत्यन्त मथनेकीसी पीडा होतीहै।

मस्तकके आधे भागको उखाडता मालूम होय तथा मथता होय ऐसी पीडा होनेसे अर्थात् यही अभिष्यन्दोंसे अधिमन्थोंमें अन्तर है। यह अलग वेदनारूप लक्षण चारो अधिमन्थोमें समान हैं। मस्तके अर्द्धभागमें वेदना व्याधिके प्रभावसे होतीहै ऐसा जानना।

जो अधिमन्थ कफाभिष्यन्दसे हुआ होय तो सात रात्रिके भीतर दृष्टिको नष्ट करदेताहै। रक्ताभिष्यन्दसे हुआ होय तो पांच रात्रिके भीतर दृष्टिको नष्ट करदेता है, वाताभिष्यन्दसे उत्पन्न हुआ होय तो छः रात्रिके भीतर दृष्टिको नष्ट करदेताहै और पित्ताभिष्यन्दसे उत्पन्न हुआ होय तो तत्कालही तीन रात्रिके भीतर दृष्टिको नष्ट करदेताहै। जो अयोग्य उपचार आदि करनेमें आवे तब अधिमन्थ दृष्टिको नष्ट करदेताहै ऐसा जानना ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

अथ सशोथपाकाशोथपाकनेत्रयोर्लक्षणम्।

कण्डूपदेहाश्रुयुतः पक्वोदुम्बरसन्निभः ॥ संरम्भी पच्यते यस्तु नेत्रपाकः सशोथकः ॥ १२७ ॥ शोथहीनानि लिङ्गानि नेत्रपाके त्वशोथके ॥ १२८ ॥

पक्वोदुम्बरसन्निभः लोहितत्वात् ॥

जो नेत्र खुजली सहित होय, चिपके, आंसुओंसे परिपूर्ण होय, पकेहुए गूलरके फलकी समान लाल होय, सूजनयुक्त और पके तो जानना कि सशोथपाक हुआ है ॥ १२७ ॥

उपर कहे सशोथपाकके सम्पूर्ण लक्षण होंय और केवल सूजनही नहीं होय तो जानना कि अशोथपाक हुआ है ॥ १२८ ॥

अथ हताधिमन्थलक्षणम् ।

उपेक्षणादक्षि यदाधिमन्थो वाताधिकः शोषयति प्रसह्य ॥ रुजाभिरुग्राभिरसाध्य एष हताधिमन्थः खलु नाम रोगः ॥ १२९ ॥

शोषयति शोषयित्वा नाशयति । अत एवाह विदेहः—"तत्पद्ममिव संशुष्कमवसीदति लोचनम् ॥" इति ॥

वाताभिष्यन्दसे उत्पन्नहुआ अधिमन्थ योग्य उपचारकी उपेक्षा करनेसे जब उग्र वेदनाको उत्पन्न करके आंखको बलात्कारसे सुखाकर नष्ट करदेताहै तब यही अधिमन्थ हताधिमन्थ कहाजाताहै, यह हताधिमन्थ असाध्य है । यद्यपि मूलमें 'सुखाताहै' येही लिखा है तथापि 'सुखाकर नष्टकर देताहै, ऐसा हमने लिखा है इसका यह कारण है कि "अत्यन्त सुखाये हुए नेत्र अत्यन्त सूखे कमलकी समान नष्ट हो जातेहैं" ऐसा विदेहका मत है ॥ १२९ ॥

अथ वातपर्ययलक्षणम् ।

वारंवारश्च पर्येति भ्रुवौ नेत्रे च मारुतः ॥ रुजश्च विविधास्तीव्राः स ज्ञेयो वातपर्ययः ॥ १३० ॥

पर्येति पर्यायेण याति, कदाचिद्भ्रुवौ कदाचिन्नेत्रे ॥

वायु किसी समय भौंओंमे, और किसी समय नेत्रोंमें इस प्रकार वारंवार फिरे और अनेक प्रकारकी तीव्र वेदना होय तो यह वातपर्यय कहाजाताहै ॥ १३० ॥

अथ शुष्काक्षिपाकलक्षणम् ।

यत्कूणितं दारुणरूक्षवर्त्म सन्दह्यते चाविलदर्शनं यत् ॥ सुदारुणं यत्प्रतिबोधने च शुष्काक्षिपाकोपहतं तदक्षि ॥ १३१ ॥

कूणितं संकोचितं मुद्रितमिति यावत् । दारुणरूक्षवर्त्म दारुणं विकृतं रूक्षं च वर्त्म यस्य तत् । इदमक्ष्णोर्विशेषणम् । सन्दह्यते सदाहं भवति । आविलदर्शनम् आविलस्य अनच्छस्य दर्शनं येन तत् । तत्प्रतिबोधने उद्घाटने सुदारुणमतिशयेन विकृतम् ॥

नेत्रके पलक दारुण तथा कठिन और रूखे हो जायँ, आख मिची रहे, दाह हो, आंखसे साफ न देख सके और खोलते समय अत्यन्त विकृत दीखे इस रोगको शुष्काक्षि पाक कहतेहैं ॥ १३१ ॥

अथान्यतोवातलक्षणम् ।

यस्यावटूकर्णशिरोहनुस्थो मन्यागतो वाप्यनिलोऽन्यतो वा ॥ कुर्याद्रुजोऽति भ्रुवि लोचने च तमन्यतोवातमुदाहरन्ति ॥ १३२ ॥

अवटू घाट इति मैथिलादिलोकाः । अन्यतो वा पृष्ठादिदेशश्च आगतः अन्यतोवातः अन्यत्र स्थितोऽन्यत्र रुजं करोति इत्यन्यतोवातः । विदेहेनाप्युक्तम्—

मन्यानामन्तरे वायुरुत्थितः पृष्ठतोऽपि वा ॥ करोति भेदं निस्तोदं शंखे वाक्ष्णोर्भ्रुवस्तथा ॥ तमाहुरन्यतोवातं रोगं दृष्टिविदो जनाः ॥ १३३ ॥

घाटीमें, कानमें, मस्तकमें, ठोडीमें, मन्यानाडी और अन्य पीठके बास आदिमें स्थित वायु भौंओंमें और नेत्रोंमें घोरवेदनाको उत्पन्न करे उस रोगको अन्यतोवात कहतेहैं । एक स्थानमें स्थित वायु दूसरे स्थानमें वेदनाको उत्पन्न करे है इस कारण यह अन्यतोवात कहीजातीहै । विदेह भी कहताहै कि, नाडके मध्यमेंसे अथवा पीठके बांसमेंसे स्थित वायु कनपटी नेत्र और भौंमें भेदने तथा तोडने सरीखी

पीडाको उत्पन्न करेहै इस रोगको नेत्रविषयके जाननेवाले विद्वान् अन्यतोवात कहतेहैं ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

अथाम्लाध्युषितलक्षणम् ।

श्यावं लोहितपर्यन्तं सर्वमक्षि प्रपच्यते ॥ सदाहशोथं सस्रावमम्लाध्युषितमम्लतः ॥ १३४ ॥

अम्लतः अम्लभोजनात् । तथाच सुश्रुतः अम्लेन भुक्तेनेत्यादि ॥

खट्टे रसआदिके खानेसे नेत्र काले, लाल कोनेवाले, दाहयुक्त, सूजनसहित और स्रावयुक्त होतेहैं । यह रोग अम्लाध्युषित कहाजाताहै ॥ १३४ ॥

अथ शिरोत्पातलक्षणम् ।

अवेदना वापि सवेदना वा यस्याक्षिराज्यो हि भवन्ति ताम्राः ॥ मुहुर्विरज्यन्ति च च याः समन्ताद्व्याधिः शिरोत्पात इति प्रदिष्टः ॥ १३५ ॥

अक्षिराज्यः अक्षिशिराः विरज्यन्ति विकृतवर्णा भवन्ति ॥

वेदनारहित अथवा वेदनायुक्त नेत्रकी शिरा लाल हो जाय और वह अधिकाधिक वारंवार विकृत वर्णवाली होजाय इस रोगको शिरोत्पात कहतेहैं ॥ १३५ ॥

अथ शिराहर्षलक्षणम् ।

मोहाच्छिरोत्पात उपेक्षितस्तु जायेत रोगः स शिराप्रहर्षः ॥ ताम्राक्षिता स्रावयति प्रगाढं तथा न शक्नोत्यभिवीक्षितुञ्च ॥ १३६ ॥

मूर्खतासे जो शिरोत्पातकी उपेक्षा कीजाय तो वही शिराहर्ष होजाताहै कि जिससे आंखें लाल होजातीहैं, अत्यंत स्राव होताहै, और आखोंसे देख नही सक्ता॥ १३६

अथ नेत्रसामतालक्षणम् ।

उदीर्णवेदनं नेत्रं रागद्रेकसमन्वितम् ॥ घर्षनिस्तोदशूलाश्रुयुक्तमामान्वितं विदुः ॥ १३७ ॥

उदीर्णवेदनम् उद्भटवेदनम् । घर्षः करकटिका एतल्लक्षणं लंघनादिविधानार्थमञ्जनादिनिषेधार्थं चोक्तम् । तथा च तन्त्रान्तरे–

स्वेदोदितानि चत्वारि लंघनं भोजनं रसः ॥ स्वादुतिक्तश्च लेपश्च बाष्पस्वेदनमेव च ॥ एतानि नेत्ररोगाणां सामान्याचरणानि हि ॥ १३८ ॥ अञ्जनं सर्पिषः पानं कषायं गुरुभोजनम् ॥ नेत्ररोगेषु सामेषु स्नानञ्च परिवर्जयेत् ॥ १३९ ॥

नेत्रमें अपार वेदना होतीहो; लाली अधिक हो, खुजली आतीहो, भौकनेसरीखी पीडा होतीहो, शूल चलताहो, और-आसू गिरतेहोंयँ तो नेत्रको साम अर्थात् आमसहित जानना । जबतक नेत्र आमसहित होंयँ तबतक लघन आदि करनेके लिये तथा अंजन आजना आदिक निषेध करनेके लिये यह लक्षण कहेहै । अन्य ग्रथमें भी कहाहैं कि 'लघन, मधुर भोजन तथा कडवा रस, लेप और बाफका सेक यह नेत्ररोगके लिये सामान्य उपचारहैं परन्तु जबतकक नेत्र आमसहित होय तबतक अजन, घृतपान, क्राथ, भारीभोजन और स्नान इनका त्याग करदेवे' ॥ १३७–१३९ ॥

अथ नेत्रनिरामतालक्षणम् ।

मन्दवेदनता कण्डूसंरम्भाश्रुप्रशान्तता ॥ प्रसन्नवर्णता चाक्ष्णोर्निरामेक्षणलक्षणम् ॥ १४० ॥

संरंभः शोथः ॥

वेदनाकी मंदता, खुजलीका कम होना, सूजनका कम होना, आंसुओंका कम आना, और वर्णकी निर्मलता यह लक्षण होंयँ तो जानाना कि नेत्र निराम अर्थात् आमरहित है ॥ १४० ॥

अथ नेत्ररोगचिकित्सा ।

द्वे पादमध्ये पृथुसन्निवेशे शिरोगते ते बहुधा हि नेत्रे ॥ ताः म्रोक्षणोत्सादनलेपनादीन्पादप्रयुक्तान्नयनं नयन्ति ॥ १४१ ॥

म्रोक्षणं सेचनमुत्सादनमुद्वर्तनम् ॥

मलोष्मसंघट्टनपीडनाद्यैस्ता दूषयन्ते

नयनानि दुष्टाः ॥ भजेत्सदा दृष्टिहितानि तस्मादुपानदभ्यञ्जनधावनानि ॥ १४२ ॥

मलं धूल्यादि । मलादिभिर्दुष्टास्ताः शिरा नयनानि दूषयन्तीत्यन्वयः ॥

पाँवकी दो मोटी नसें मस्तकमें गई हैं और बहुतसी नसें नेत्रोंमें पहुँचीहैं। इस कारण पावोंमें सेचन, मर्दन और लेपन किया हुआ उन नसोंके द्वारा नेत्रोंमें पहुँचताहै। मैलसे, गरमीसे, सघट्टनसे तथा दबाने आदिसे दूषित हुई नसें नेत्रोंको बिगाडदेतीहैं इस कारण जूतेका पहरना, पाँवकी मालिश, और पाँवोको धोना यह सर्वदा सेवन करना चाहिये, जिससे नेत्रोंका उपकार हो॥१४१॥१४२

चक्षुष्याः शालयो मुद्गा यवा मांसन्तु जाङ्गलम् ॥ पक्षिमांसं विशेषेण वास्तूकं तण्डुलीयकम् ॥ १४३ ॥ पटोलकर्कोटककारवेल्लफलानि सर्पिःपरिपाचितानि॥ तथैव वार्ताकफलं नवीनमक्ष्णोर्हितः स्वादुरथापि तिक्तः ॥ १४४ ॥ कट्वम्लगुरुतीक्ष्णोष्णमाषनिष्पावमैथुनम् ॥ मद्यवल्लूरपिण्याकमत्स्यशाकविरूढजम् ॥ ॥ १४५ ॥ विदाहिन्यन्नपानानि न हितान्यक्षिरोगिणे ॥ सेक आश्च्योतनं पिण्डी विडालस्तर्पणं तथा ॥ पुटपाकोऽञ्जनं चैभिः कल्कैर्नेत्रमुपाचरेत् ॥ १४६ ॥

शालिचावल, मूग, जौ, जांगल प्रदेशके पशुओंका मांस, पक्षियोंका मांस, विशेष, करके बथुआ, चौलाई, परवल, ककोडे, करेले और नवीन बैंगन इनको घीमें पकाकर खानेसे नेत्रोंमें हितकारकहैं। मधुर तथा कडवा रसभी नेत्रोंमें हितकारक है।

तीखे पदार्थ, खट्टे पदार्थ, भारी पदार्थ, तीक्ष्ण पदार्थ, गरम पदार्थ, उडद, लोबिया, मैथुन, मदिरा, सूखा हुआ मांस, खल, मछली, जिनमें अंकुर उत्पन्न होगये हों ऐसे शाक, और दाहकारक अन्न पान यह सब नेत्ररोगियोंको हितकारक नहीं है।

सेक (पानी आदिकी बारीक धारें डालनी), आश्च्योतन (बूंदें आदिके टपकाने नेत्रोंमें डालना), पिंडी (पुटकी आदि बाँधना), विडाल (लेपादि करना), तर्पण (तृप्तिकरनेके लिये आँखमें दूध आदिको भरना), पुटपाक (पकाया हुआ रस नेत्रोंमें डालना) और अंजन इन सब उपचारोंसे नेत्ररोगकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १४३-१४६ ॥

अथ सेकविधिः।

सेकस्तु सूक्ष्मधाराभिः सर्वस्मिन्नयने हितः ॥ मीलिताक्षस्य मर्त्यस्य प्रदेयश्चतुरंगुलः ॥ १४७ ॥ स चापि स्नेहनो वाते पित्ते रक्ते च रोपणः ॥ लेखनस्तु कफे कार्यस्तस्य मात्राभिधीयते ॥१४८॥ षड्भिर्वाचां शतैः स्नेहे चतुर्भिस्तैस्तु रोपणे ॥ तैस्त्रिभिर्लोचने कार्यः सेको नेत्रप्रसादने ॥ १४९ ॥ निमेषोन्मेषणं पुंसामंगुल्याच्छोटिकाथवा ॥ गुर्वक्षरोच्चारणं वा वाङ्मात्रेयं स्मृता बुधैः ॥१५०॥ छोटिका चुटकी इति लोके ॥

सेकस्तु दिवसे कार्यो रात्रौ चात्यन्तिके गदे ॥ एरण्डदलमूलत्वक्छृतमाजं पयो हितम् ॥ सुखोष्णं नेत्रयोः सिक्तं वाताभिष्यन्दनाशनम् ॥ १५१ ॥ पथ्याक्षामलखाखसवल्कलकल्केन सूक्ष्मवस्त्रेण ॥ कृत्वा पोटलिकां तामहिफेनोत्थद्रवेण संयुक्ताम् ॥ १५२ ॥ निदधीत लोचने स्यात्सर्वाभिष्यन्दसंक्षयः शीघ्रम् ॥ योगोऽयमृषिभिरुक्तो जगदुपकाराय कारुणिकैः ॥ १५३ ॥ भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्यदि दीयते ॥ अचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोहति ॥ १५४ ॥ स्नानं कृष्णतिलैश्चापि चक्षुष्यमनिलापहम् ॥ आमलैः सततं स्नानं परं दृष्टिबलावहम् ॥ १५५ ॥ त्रिफलायाः कषायस्तु धावनान्नेत्ररोगजित् ॥ कवलान्मुखरोगघ्नः पानतः कामलापहः ॥ १५६ ॥

रोगीके नेत्रोंको बंद कराकर उनपर चार अंगुल ऊँचेसे महीन महीन धारें डाले, यह सेक नेत्ररोगियोंके लिये हितकारक है। वातसम्बन्धी रोग होय तो घी आदि स्नेह पदार्थोंकी धारें डाले, यह स्नेहन सेक कहाजाताहै। पित्त या रुधिरकी पीडा होय तो हरड आदिके रसकी धारें डाले, यह रोपण सेक कहाजाताहै। कफकी पीडा होय तो मलको उखाडनेवाली सोंठ आदिके रसकी धारें डाले, यह लेखनसेक कहाजाताहै। अत्र इन सेकोंकी मात्रा कहतेहैं। स्नेहनसेक करना होय तो छैसौ मात्रातक करना चाहिये। रोपण सेक करना होय तो चारसौ मात्रातक करना चाहिये। लेखन सेक करना होय तो तीनसौ मात्रातक करना चाहिये इस प्रकार करनेसे नेत्र स्वच्छ और निर्मल होजातेहैं। मनुष्य जितनी देरमें आँखको मींचकर खोलताहै उतना समय अथवा जितनी देरमें अंगुलीसे चुटकी बजाईजातीहै उतना समय अथवा एक गुरु अक्षर बोलनेमें जितना समय लगताहै उतने समयको एक मात्रा कहतेहैं। सेक दिनमें ही करना चाहिये किंतु महादुःखदायक रोग होय तो रात्रिमें भी करना चाहिये। अंडके पत्ते, अंडकी जड और अंडकी छाल इनके कल्कके साथ पकाया हुआ बकरीका दूध मंदोष्ण उक्त समयमें नेत्रोंके भीतर डाले, यह सेक हितकारी है और वाताभिष्यन्दको दूर करेहै।

हरड, बहेडा, आमला, और पोस्तके डोडे इनका कल्क बनाकर उसमें अफीमका रस डालकर बारीक वस्त्रकी पोटली बनाकर नेत्रके ऊपर रखे तो सर्व प्रकारके अभिष्यन्द तत्काल नष्ट होजातेहैं। जगदुपकारार्थ दयालु मुनियोंने यह प्रयोग कहा है। भोजन करनेके पश्चात् दोनों गीले हाथोंकी हथेली घिसकर नेत्रके ऊपर लगानेसे हाथोंका जल तत्काल तिमिररोगको नाश करताहै।

काले तिलोंको पीस शिरसे मलकर स्नान करनेसे नेत्र उत्तम होजातेहैं और वायुकी पीडा शमन होजातीहै। नित्य आमलोंको मलकर स्नान करनेसे दृष्टिशक्ति बढतीहै।

त्रिफलेका क्वाथ बनाकर उससे नेत्रोंको धोनेमें नेत्ररोग दूर होजातेहैं। त्रिफलेके कल्कका कवल धारण करनेसे मुखरोग नष्ट होतेहैं और त्रिफलेका क्वाथ पीनेसे कामला नष्ट होजातीहै॥ १४७-१५६॥

अथाश्च्योतनविधिः।

क्वाथक्षीरद्रवस्नेहबिन्दूनां यत्तु पातनम्॥ द्व्यंगुलोन्मीलिते नेत्रे प्रोक्तमाश्च्योतनं हि तत्॥ १५७॥ बिन्दवोऽष्टौ लेखनेषु रोपणे दश बिन्दवः॥ स्नेहने द्वादश प्रोक्तास्ते शीते कोष्णरूपिणः॥ १५८॥ उष्णे तु शीतरूपाः स्युः सर्वत्रैवैष निश्चयः॥ वाते तिक्तं तथा स्निग्धं पित्ते मधुरशीतलम्॥ १५९॥ कफे तिक्तोष्णरूक्षं स्यात्क्रमादाश्च्योतनं हितम्॥ आश्च्योतनानां सर्वेषां मात्रा स्याद्वाक्छतोन्मिता॥१६०॥ ततःपरं लोचनाभ्यां भेषजाय त्रयो मताः॥ आश्च्योतनं न कर्तव्यं निशायां केनचित्क्वचित्॥१६१॥ बिल्वादिपञ्चमूलेन बृहत्येरण्डशिग्रुभिः॥ क्वाथ आश्च्योतने कोष्णो वाताभिष्यन्दनाशनः॥ त्रिफलाश्च्योतनं नेत्रे सर्वाभिष्यन्दनाशनम्॥ १६२॥

रोगीके नेत्रोंको दो अंगुलिओंसे उघाडकर उनमें क्वाथके वा सहतके अथवा दूध घी आदिके बिन्दु डाले, इसको आश्च्योतन कहतेहैं और यह नेत्रोंको हितकारी है। मलके उखाडनेकी क्रिया करनी होय तो आठ बिन्दु डालने चाहियें, रोपण क्रिया करनी होय तो दश बिन्दु डालने चाहिये, और स्नेहन क्रिया करनी होय तो बारह बिन्दु डालने चाहिये। शीत काल होय तो कुछेक गरम करके बूंदें डालनी चाहियें और उष्णकाल होय तो शीतल बिन्दु डालने चाहियें यह सर्वत्र निश्चय है।

वायुकी पीडा होय तो कडवे तथा स्नेहवाले बिन्दु हितकारी है। पित्तकी पीडा होय तो मधुर और शीतल बिन्दु हितकारी हैं और जो कफकी पीडा होय तो तीक्ष्ण, गरम तथा रूक्ष बिन्दु हितकारक है। सब आश्च्योतनोंकी मात्रा जितनी देरमें सौ गुरु अक्षरोंका उच्चारण होय उतनी देरतक समझना। किसी वैद्यको कभी रात्रिके समय

किसीप्रकारके नेत्रके दुखनेपर अश्चोतन कर्म नहीं करना चाहिये ।

बेलआदि पञ्चमूल, कटेरी, अंड और सैंजिना इनका काथ बनाकर सुहाती सुहाती बूंदे नेत्रोंमें डालनेसे वाताभिष्यन्द नाश होताहै ।

त्रिफलेके काथके विन्दु डालनेसे सबप्रकारके अभिष्यन्द दूर होजातेहैं ॥ १५७–१६२ ॥

अथ पिंडीविधिः ।

दृक्तभेषजकल्कस्य पिण्डी च कोलमात्रया ॥ वस्त्रखण्डेन संबद्धा नेत्रेऽभिष्यन्दनाशिनी ॥ १६३ ॥ स्निग्धोष्णा पिण्डिका वाते पित्ते सा शीतला मता ॥ रूक्षोष्णा श्लेष्मणि प्रोक्ता विधिरुक्तो बुधैरयम् ॥ १६४ ॥ एरण्डपत्रमूलत्वक्षु निर्मिता वातनाशिनी ॥ धात्रीविरचिता पित्ते शिग्रुपत्रकृता कफे ॥१६५॥ निम्बपत्रकृता पिण्डी पित्तश्लेष्महरी भवेत् ॥ शुण्ठीनिम्बदलैः पिण्डी सुखोष्णा स्वल्पसैन्धवा ॥ १६६ ॥ धार्या नेत्रेऽनिलकफे शोथकण्डूव्यथाहरी ॥ त्रिफलापिण्डिका नेत्रे वातपित्तकफापहा॥ ॥ १६७ ॥ पथ्याक्षामलखाखसवल्कलकल्कोऽहिफेनजलयुक्तः ॥ तेन विरचिता पिण्डी शमयति सकलानभिष्यन्दान् १६८

योग्य औषधियोंका कल्क बनाकर उसकी कवलकी समान टिकिया बनाकर नेत्रपर रखकर वस्त्रकी पट्टीसे बाँधे तो अभिष्यन्दका नाश होताहै ।

वायुका अभिष्यन्द होय तो स्निग्ध तथा उष्ण औषधियोंकी टिकिया बाँधनी चाहिये । पित्तकी पीडा होय तो शीतल औषधियोंकी टिकिया बांधनी चाहिये और कफकी पीडा होय तो रूक्ष तथा उष्ण औषधियोंकी टिकिया बाँधनी चाहिये, ऐसा विधान वैद्योंने कहाहै । अंडके पत्ते, अडकी जड और अडकी छाल इनकी पिंडी वायुकी पीडाको शमन करेहै । आमलोकी पिंडी पित्तकी पीडाको शमन करेहै । और सैंजिनेके पत्तोंकी टिकिया कफकी पीडाको शमन करेहै ।

नीमके पत्तोंकी टिकिया बाँधनेसे पित्त तथा कफका नाश होताहै ।

सोंठ तथा नीमके पत्ते इनको पीसकर उसमे कुछेक सैंधानिमक डालकर उसकी कुछ कुछ गरम पिंडी बनाकर बाँधे तो वायु तथा कफकी पीडा शमन होतीहै और सूजन, खुजली तथा अन्य व्यथा इनका भी नाश होताहै ।

त्रिफलेकी पिंडी बनाकर नेत्रपर बाँधनेसे वात, पित्त, तथा कफ इन तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुई नेत्रकी पिडा, शमन होतीहै ।

हरड, बहेडा, आमला और पोस्तके डोडे इनका कल्क बनाकर उसमें अफीमका रस डालकर पिंडी बाँधनेसे सर्व प्रकारका अभिष्यन्द नष्ट होजाताहै ॥ १६३–१६८॥

अथ बिडालकविधिः ।

बिडालको बहिर्लेपो नेत्रे पक्ष्मविवर्जिते॥ तस्य मात्रा परिज्ञेया मुखालेपविधानवत् ॥ १६९ ॥ अंगुलस्य चतुर्थांशो मुखलेपः कनिष्ठकः ॥ मध्यमस्तु त्रिभागः स्यादुत्तमोऽर्द्धांगुलो भवेत् ॥ १७० ॥ स्थितिकालोऽपि तस्योक्तो यावत्कल्को न शुष्यति ॥ शुष्कस्तु गुणहीनः स्यात्तथा दूषयति त्वचम् ॥ १७१ ॥ यष्टीगैरिकसिन्धूत्थदार्वीतार्क्ष्यैः समांशकैः ॥ जलपिष्टैर्बहिर्लेपः सर्वनेत्रामयापहः ॥१७२॥ तार्क्ष्यं रसाञ्जनम् ॥

रसाञ्जनेन वा लेपः- पथ्याबिल्वदलैरपि ॥ वचाहरिद्राविश्वैर्वा तथा नागरगैरिकः ॥ १७३ ॥

पलकके बालोंको बचाकर नेत्रके बाहरके भागपर लेपकरना यह बिडालक कहाजाताहै । मुखपर लेप करनेकी जो मात्रा कही है वही मात्रा बिडालककी भी करनी चाहिये । मुखपर लेप करनेकी मात्रा इसप्रकार है अंगुलका चौथाई भाग ऊचा लेपकरना कनिष्ठमात्रा है

अंगुलका तिहाई भाग ऊँचा लेपकरना मध्यम मात्रा है और आधे अंगुल ऊँचा लेपकरना उत्तम मात्रा है, जब तक कल्क सूखे नहीं तबतक यह लेप करना चाहिये, सूखने पर लेप गुणहीन होजाताहै और त्वचाको भी खराब करताहै ।

मुलैठी, पीलागेरू, सैंधानिमक, दारुहलदी और रसौत ह सब समान भाग लेकर जलमें पीसकर इस कल्क ो नेत्रके बाहर लेपकरनेसे नेत्रके समस्तरोग नष्ट हो-ातेहैं ।

रसौत अथवा हरड तथा वेलके पत्ते अथवा वच, ्लदी तथा सौंठ इनका अथवा सोंठ और पीलागेरू ्नका लेपकरनेसे नेत्रके रोग नष्ट होजातेहैं १६९-१७३

अथ तर्पणविधिः ।

वातातपरजोहीने वेश्मन्युत्तानशायिनः ॥ आधारौ माषचूर्णेन क्लिन्नेन परिमण्डलौ ॥ १७४ ॥ समौ दृढावसन्धानौ कर्तव्यौ नेत्रकोशयोः ॥ पूरयेद्घृतमण्डेन विलीनेन सुखोदकैः ॥ १७५ ॥ सर्पिषा शतधौतेन क्षीरजेन घृतेन वा ॥ निममान्यक्षिपक्ष्माणि यावत्स्युस्तावदेव हि ॥ १७६ ॥ पूरयेन्मीलिते नेत्रे तत उन्मीलयेच्छनैः ॥ भिषग्भिरेष कथितः पुराणैस्तर्पणो विधिः ॥ १७७ ॥ यद्रूक्षं परिशुष्कञ्च नेत्रं कुटिलमाविलम् ॥ शीर्णपक्ष्मशिरोत्पातकृच्छ्रोन्मीलनसंयुतम् ॥ १७८ ॥ तिमिरार्जुनशुक्राद्यैरभिष्यन्दाधिमन्थकैः ॥ शुष्काक्षिपाकशोथाभ्यां युतं पवनपर्ययैः ॥ ॥ १७९ ॥ तत्रेत्रं तर्पयेत्सम्यङ् नेत्ररोगविशारदः ॥ तर्पणं धारयेद्वर्त्मरोगे वाचां शतं बुधः ॥ १८० ॥ स्वस्थे कफे सन्धिरोगे वाचां पञ्चशतानि च ॥ षट्शतानि कफे कृष्णरोगे सप्तशतानि हि ॥ १८१ ॥ दृष्टिगे च शतान्यष्टावधिमन्थे सहस्रकम् ॥ सहस्रं वातरोगेषु धार्यमेवं हि तर्पणम् ॥ १८२ ॥ तर्पणेनागतस्नेहं स्रावयित्वाक्षि शोषयेत् ॥ स्विन्नेन यवपिष्टेन स्नेहवीर्येरितं ततः ॥ १८३ ॥ यथास्वं धूमपानेन कफमस्य विरेचयेत् ॥ एकाहं वा त्र्यहं वापि पञ्चाहं वापि तर्पयेत् ॥ १८४ ॥ तर्पणे तृप्तिलिङ्गानि नेत्रस्यैतानि लक्षयेत् ॥ सुखसुप्तावबोधत्वं वैशद्यं दृष्टिपाटवम् ॥ निर्वृतिर्व्याधिशान्तिश्च क्रियालाघवमेव च ॥ १८५ ॥

क्रियालाघवं नेत्रस्य क्रियायां निमेषोन्मेषादौ लघुताम् ॥

गुर्वाविलमतिस्निग्धमश्रुकण्डूपदेहवत् ॥ घर्षतोदयुतं नेत्रमतितर्पितमादिशेत् ॥ ॥ १८६ ॥ आस्रावशोफरोगाढ्यमुपदेहसमाकुलम् ॥ रूक्षमस्रावि परुषं नेत्रं स्याद्धीनतर्पितम् ॥ १८७ ॥ अनयोर्दोषबाहुल्यात्प्रयत्नेन चिकित्सिते ॥ रूक्षस्निग्धोपचाराभ्यामनयोः स्यात्प्रतिक्रिया ॥ १८८ ॥

अनयोरतितर्पितहीनतर्पितयोः ॥

दुर्दिनान्युष्णशीतेषु चिंतायां सम्भ्रमेषु च ॥ अशान्तोपद्रवे वाक्षिण तर्पणं न प्रशस्यते ॥ १८९ ॥

सम्भ्रमोऽत्र भयम् ॥

वायु, धूप और धूलरहित घरमे रोगीको चित्त लिटा कर सनेहुए उडदके चूनका दोनो नेत्रोंके चारों ओर दृढ और गोल मंडल बनावे फिर रोगीके दोनों नेत्रोंको बंद करके पतला घी अथवा मंड अथवा गरम जल अथवा जलसे सौ बार धुला हुआ घी अथवा दूधमेंसे निकाला हुआ घी जबतक पलकके बाल न डूबें तबतक भरे, भर जानेके पश्चात् धीरे धीरे नेत्रोंको खोले यह तर्पण विधि प्राचीन वैद्योंने कही है । नेत्र रूखे होगये हों, सूख गये हों, कुटिल होगये हों, गदले होगये हों, पलकके बाल गिर गये हों, शिरोत्पात, आँखें कठिनतासे थोडी खुलती हों, तिमिर, अर्जुन, शुक्र, अभिष्यन्द, अधिमंथ, शुष्काक्षिपाक, सूजन और वातविपर्यय हुआ होय, तो नेत्र रोगोंको जाननेवाले वैद्य नेत्रोंको अच्छे प्रकारसे तर्पण

करे । पलकका रोग होय तो सौ गुरु अक्षरोंके उच्चारणके समयतक नेत्रपर तर्पण करे । स्वस्थतामें, कफमें तथा सन्धियोंके रोगमें पाचसौ गुरु अक्षरोंके उच्चारण करनेके समयतक तर्पणको रहने देवे । पित्तकी पीडा होय तो छै सौ गुरु अक्षरोंके उच्चारण करनेके समयतक तर्पण रहने देवे । काले भागमें रोग होय तो सातसौ गुरु अक्षरोंके उच्चारण करने पर्यंत तर्पण करे । दृष्टिका रोग होय तो आठ सौ गुरु अक्षरोंके उच्चारण करनेतक तर्पण रखे, अधिमन्थ होय तो हजार गुरु अक्षरोंके उच्चारण करनेतक और वातसम्बन्धी रोग होय तो भी हजार गुरु अक्षरोंके उच्चारणतक तर्पण रहने देवे । तर्पण करनेके पश्चात् नेत्रोंमें भरी हुई चिकनाईको बाहर करके नेत्रोंको शुद्ध करे और सेके हुए जौके चूनसे आखोंको साफ करे पश्चात् घीके योगसे वृद्धिको प्राप्त हुए कफको यथायोग्य धूमपान कराकर दूर करे । एकदिन, पाँचदिन अथवा सातदिनतक तर्पणकी क्रिया करे । तर्पण बराबर होगया होय तो निद्रा सुखसे आनेलगतीहै, सुखसे जागताहै, नेत्रोंमें स्वच्छता, नेत्रोंकी शक्तिका बढना, सुख होताहै, रोगकी शांति होतीहै, और नेत्रोंको खोलने बंद करनेमें हलकापन होताहै ये लक्षण होंय तो जानना कि, तर्पण अच्छे प्रकारसे होगया । जो तर्पणका अतियोग हो तो नेत्र भारी होतेहैं, गदले रहतेहैं, अत्यंत चिपकनेवाले वा गीले आसू भर भर आतेहैं, खुजली, कीचड, आतेहैं और जैसे भीतरको घुस जायँ तथा सुई चुभोने सरीखी पीडा होतीहै, जो नेत्रोंका तर्पण अच्छे प्रकारसे न हो अर्थात् कम होय तो नेत्रोंमेंसे पानी गिरताहै, सूजन होतीहै, पीडा होतीहै, कीचड, अधिक आतीहै, रूखता होतीहै और कठिनता होती है, जो तर्पणका अतियोग अथवा हीनयोग हुआ होय तो विशेष गडबड होतीहै इस कारण इनकी चिकित्सा करनेमें अधिक विचार करना चाहिये । जो अतियोग हुआ होय तो रूक्ष उपचार करने चाहिये और जो हीनयोग होय तो स्निग्ध उपचार करने चाहिये । बादलोंसे आच्छादित दिनमें, अत्यन्त गरमीके समयमें, अत्यन्त शीतके समयमें, चिंता, भ्रम और उपद्रवोंके शांत होनेसे पहिले नेत्रोंको तर्पण नहीं करना चाहिये ॥ १७४-१८९ ॥

अथ पुटपाकविधिः ।

द्वे बिल्वे स्निग्धमांसस्य परं द्रव्यपलं मतम् ॥ द्रवस्य कुडवोन्मानं सर्वमेकत्र पेषयेत् ॥ १९० ॥ तदेकत्र समालोड्य पत्रैः सुपरिवेष्टितम् ॥ पुटपाकविधानेन तत्पक्त्वा तद्रसं बुधः ॥ १९१ ॥ तर्पणोक्तेन विधिना यथावद्विनियोजयेत् ॥ दृष्टिमध्ये निषेक्तव्यो नित्यमुत्तानशायिनः ॥ ॥ १९२ ॥ तेजांस्यनिलमाकाशमातपं भास्करस्य च ॥ नेक्षेत तर्पिते नेत्रे यश्च वा पुटपाकवान् ॥ १९३ ॥

उत्तम चिकना मांस आठ तोले लेकर उसमें अन्य औषधि चार तोले और द्रवपदार्थ सोलह तोलेभर डालकर सबको एकत्र पीसे, पश्चात् इन सबका एक गोला बनाकर उसको पत्तोंसे अच्छे प्रकार बांधकर पुटपाककी रीतिसे अग्निमें पकावे, फिर उसमेंसे रस निचोडकर उस रसको तर्पणकी रीत्यनुसार सम्पूर्ण रीतिसे नैत्रमें डाले । रोगीको चित्त सुलाकर उसके नेत्रमें वह रस नित्य डाले । नेत्रोंका तर्पण करनेके पश्चात् अथवा पुटपाककी विधि करनेके पश्चात् रोगीको तेजस्वी पदार्थ, पवनका सचार, आकाश और सूर्यकी धूप न दिखावे ॥ १९०-१९३ ॥

अथाञ्जनविधिः ।

अथ संपक्वदोषस्य प्राप्तमंजनमाचरेत् ॥ अञ्जनं क्रियते येन तद्द्रव्यं चाञ्जनं मतम् ॥ १९४ ॥ वर्टिकारसचूर्णानि त्रिविधान्यञ्जनानि हि ॥ कुर्याच्छलाकयाङ्गुल्या हीनानि स्युर्यथोत्तरम् ॥ १९५ ॥ स्नेहनं रोपणं चापि लेखनं तत्त्रिधा पृथक् ॥ मधुरं स्नेहसम्पन्नमञ्जनं स्नेहनं मतम् ॥ १९६ ॥

तत्त्रिविधं पृथगिति तद्वर्टिकारसचूर्णरूपं पृथक् प्रत्येकं त्रिधा स्नेहनं रोपणं लेखनं चेति ॥

कषायतिक्तरसयुक्सस्नेहं रोपणं स्मृतम् ॥ अञ्जनं क्षारतिक्ताम्लरसैर्लेखनमुच्यते ॥ १९७ ॥ हरेणुमात्रां कुर्वीत

वर्ती तीक्ष्णाञ्जने भिषक् ॥ प्रमाणं मध्यमे सार्द्धं द्विगुणं तु मृदौ भवेत् ॥ १९८ ॥ रसक्रिया तूत्तमा स्यात्त्रिविडङ्गमिता मता ॥ मध्यमा द्विविडङ्गा सा हीना त्वेकविडंगिका ॥ १९९ ॥ शलाकाः स्नेहने चूर्णे चतस्रः प्राहुरञ्जने ॥ रोपणे तासु तिस्रः स्युस्ते उभे लेखने स्मृते २०० मुखयोः कुंचिता श्लक्ष्णा शलाकाष्टांगुलोन्मिता ॥ अश्मजा धातुजा वा स्यात्कलायपरिमण्डला ॥ २०१ ॥

अग्रे कलायवत्परिवर्तुला ॥

सुवर्णरजतोद्भूता शलाका स्नेहने स्मृता ॥ ताम्रलोहाश्मसञ्जाता शलाका लेखने मता ॥ अंगुली तु मृदुत्वेन रोपणे कथिता बुधैः ॥ २०२ ॥

दोष पकनेके पश्चात् नेत्रोंमे योग्य अंजन आजना चाहिये। जो पदार्थ नेत्रोंमें आंजाजाताहै वह 'अजन, कहाजाताहै। गोली, रस और चूर्णरूप ऐसे अञ्जनके तीन भेद हैं। अञ्जनको सलाई अथवा अगुलीसे आजना चाहिये। गोलीरूप अजनसे रसरूप अंजन निर्वल है और रसरूप अजनसे चूर्णरूप अंजन निर्वल है। इस प्रत्येक अजनके स्नेहन, रोपण और लेखन इन नामोंसे तीन भेद हैं। क्षार, कडवे और खट्टे रसवाला जो अजन होय उसको लेखन कहतेहैं। कसैला, तथा कडवे रसवाला और स्नेहयुक्त जो अञ्जन होय उसको रोपण अञ्जन कहते- हैं। मधुर रसयुक्त और स्नेहयुक्त जो अञ्जन होइ वह स्नेहन अञ्जन कहाजाताहै। अञ्जन तीक्ष्ण होय तो उस की मटरकी समान गोली करनी चाहिये। अञ्जन मध्यम अर्थात् तीक्ष्ण न होय और कोमल भी न होय तो उसकी डेढ १॥ मटरकी बराबर गोली बनानी चाहिये और अञ्जन कोमल होय तो उसकी दो मटरकी बराबर गोली बनानी चाहिये। आंखमें यदि रसांजन अर्थात् रसरूप अञ्जन डालना होय तो तीन वायविडगकी बराबर डालना यह उत्तम है। दो वायविडगकी बराबर डालना यह मध्यम है। और एक वायविडगकी बराबर डालना यह कनिष्ठ है। चूर्णरूप अञ्जन जो स्नेहन होय तो उसकी चारसलाई आंखमे लगानी चाहिये। रोपण होय तो उसकी तीन सलाई आंखमें डालनी चाहियें। और जो लेखन होय तो उसकी दो सलाई नेत्रोंमे लगानी चाहिये। आंजनेकी सलाई दोनों ओरके मुखोंसे सकुची हुई, चिकनी, आठ अंगुल लम्बी और उसके दोनो मुख मटरकी समान गोल और वह पत्थर अथवा धातुकी होनी चाहिये। स्नेहन अञ्जन आँजना होय तो सोने अथवा चांदीकी सलाई होनी चाहिये। लेखन अञ्जन आँजना होय तो ताँबेकी, लोहेकी, अथवा पत्थरकी सलाई होनी चाहिये और रोपण अञ्जन आँजना होय तो कोमल होनेके कारण उसके आँजनेके लिये अगुलीही ठीक है॥ १९४–२०२ ॥

अथांजनस्य दृष्टिप्रसादनी शलाका।

त्रिफलाभृङ्गशुण्ठीनां रसैः शुद्धश्च सर्पिषा॥ गोमूत्रमध्वजाक्षीरैः सिक्तो नागः प्रतापितः ॥ तच्छलाका हरत्येव सकलान्नेत्रजान्गदान् ॥ २०३ ॥

शुद्धसीसेको वारंवार तपा तपाकर हरड, बहेडा और आमलेके रसमे, सोंठके रसमें, घीमें, भागरेके रसमें, गोमूत्रमें, सहतमें और बकरीके दूधमें बुझा बुझाकर नेत्रोंमें लगावे तो नेत्रसम्बन्धी सम्पूर्ण रोग नष्ट होजातेहैं। यह सलाई 'दृष्टिप्रसादनी' इस नामसे कहीजातीहै॥ २०३ ॥

अथांजनकरणविधिः।

कृष्णभागादधः कुर्याद्यावन्नयनमञ्जनम्॥ हेमन्ते शिशिरे चापि मध्याह्नेऽञ्जनमिष्यते ॥ २०४ ॥ पूर्वाह्णे वापराह्णे वा ग्रीष्मे शरदि चेष्यते ॥ वर्षास्वनभ्रे नात्युष्णे वसन्ते तु सदैव हि ॥ २०५ ॥ प्रातः सायन्तु तत्कुर्यान्न च कुर्यात्सदैव हि ॥ श्रान्ते प्ररुदिते भीते पीतमद्ये नवज्वरे ॥ अजीर्णे वेगघाते च नाञ्जनं सम्प्रशस्यते ॥ २०६ ॥

काले भागके नीचे आँखके कोयेतक अञ्जन आँजे। हेमत ऋतुमे और शिशिर ऋतुमें मध्याह्नके समय अञ्जन

आँजना चाहिये। ग्रीष्म और शरद् ऋतुमें पूर्वाह्नके समय अथवा अपराह्नके समय अञ्जन आँजना चाहिये। वर्षा ऋतुमें बादलोंके न होनेपर और बहुत गरमी न होय उस समय अञ्जन आँजना चाहिये और बसन्त ऋतुमें सदैव अञ्जन करना चाहिये अथवा प्रातः और सन्ध्या दोनों समय अञ्जन आँजना उचित है किन्तु निरंतर न आँजे।

थकाहुआ, बहुत रोया हो, भयभीत, मद्यपान किये हो, नवीन ज्वरवाला, अजीर्णरोगी, और जिसके मल मूत्रादिके वेगका अवरोध होगया होय उनको अञ्जन लगाना नहीं चाहिये॥ २०४-२०६॥

अथ स्नेहनी वटिका।

पथ्याक्षधात्रीबीजानि एकद्वित्रिगुणानि च॥ पिष्टाम्बुना वटीं कुर्यादञ्जनं द्विहरेणुकम्॥ नेत्रस्रावं हरत्याशु वातरक्तरुजं तथा॥ २०७॥

हरड, हरडसे दुगुने बहेडे और बहेडेसे तिगुने आमले इन सबको लेकर पानीमें पीसकर गोलिया बनालेवे। इन गोलियोंमेंसे दो मटरकी बराबर नेत्रोंमे आजे तो नेत्रोंका स्राव और वायु तथा रुधिरकी पीडा शान्त होजातीहैं॥ २०७॥

अथ रोपणी वटी।

रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे मालतीनिम्बपल्लवाः॥ गोशकृद्रससंयुक्ता वटी नक्तान्ध्यनाशिनी॥ एतस्याश्चाञ्जने मात्रा प्रोक्ता सार्द्धहरेणुका॥ २०८॥

रसौत, हल्दी, दारुहल्दी, मालतीके पत्ते और नीमके पत्ते इनको गायके गोबरके रसमें पीसकर गोली बनावे। इनमेंसे डेढ मटरकी समान नेत्रोंमे आँजे। इन गोलियोंको आँजनेसे रात्रिमें नहीं दीखना अर्थात् रतौंधा नष्ट होजाताहै॥ २०८॥

अथ लेखनी चन्द्रोदया वटिका।

शंखनाभिर्विभीतस्य मज्जा पथ्या मनःशिला॥ पिप्पली मरिचं कुष्ठं वचा चेति समांशकम्॥ २०९॥ छागक्षीरेण संपिष्य वर्ती कुर्याद्यवोन्मिताम्॥ हरेणुमात्रां संघृष्य जलेनाञ्जनमाचरेत्॥ २१०॥ तिमिरं मांसवृद्धिश्च काचं पटलमर्बुदम्॥ रात्र्यन्धं वार्षिकं पुष्पं वटी चन्द्रोदया जयेत्॥ २११॥

शखकी नाभि, बहेडेकी मींग, हरड, मैनशिल, पीपल, कालीमिरच, कूठ और वच इन सबको समान भाग लेकर बकरीके दूधमें पीसकर जौकी समान लम्बी गोली बनावे। इन गोलियोंमेंसे एक मटरकी समान जलमें घिसकर नेत्रोंमे आँजे। यह चद्रोदया नामक गोली तिमिर, माँसवृद्धि, काँच, पटल, पलकके भीतरकी गाठ, रतौंधा और एक वर्षके फूलेको भी नष्ट करतीहै॥ २०९-२११॥

अथ पुष्पहरावर्तिः।

पलाशपुष्पस्वरसैर्बहुशः परिभावितम्॥ करञ्जबीजं तद्वर्तिर्दृष्टेः पुष्पं विनाशयेत्॥ २१२॥

करजके बीजको अनेक बार ढाकके फूलोंके रसमें भावना देकर पीसकरके बत्ती बनावे। इस बत्तीको आँखोमे आँजनेसे नेत्रोकी फूली नष्ट हो जातीहै॥ २१२॥

अथ स्नेहनी रसक्रिया।

कतकस्य फलं घृष्ट्वा मधुना नेत्रमञ्जयेत्॥ ईषत्कर्पूरसहितं तस्यान्नेत्रप्रसादनम् २१३

निर्मलीके फलको सहतमें घिसकर उसमें कुछेक भीमसेनी कपूर डालकर नेत्रोंमे आँजे तो नेत्र स्वच्छ निर्मल होजातेहैं॥ २१३॥

अथ रोपणी रसक्रिया।

रसाञ्जनं सर्जरसो जातीपुष्पं मनःशिला॥ समुद्रफेनं लवणं गैरिकं मरिचं तथा॥ ॥ २१४॥ एतत्समांशं मधुना पिष्टं प्रक्लिन्नवर्त्मनि॥ अञ्जनं क्लेदकण्डूघ्नं पक्ष्मणाञ्च प्ररोहणम्॥ २१५॥ दुग्धेन कण्डूं क्षौद्रेण नेत्रस्रावञ्च सर्पिषा॥ पुष्पं तैलेन तिमिरं काञ्जिकेन निशान्ध्यताम्॥ २१६॥ पुनर्नवा हरत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा॥ बब्बूलदलनिष्काथो लेहीभूतस्तदञ्जनात्॥ नेत्रस्रावो व्रजेच्छोषं मधुयुक्तान्न संशयः॥ २१७॥

रसौत, राल, चमेलीके फूल, मैनशिल, समुद्रफेन, सैंधानिमक, पीला गेरू, और काली मिरच इन सबको समान भाग लेकर सहतमे पीसकर नेत्रोमे ऑजे तो प्रक्लिन्न वर्त्मका क्लेद तथा खुजली यह सब नष्ट होजातेहैं और पलकके बाल जमआतेहै।

पुनर्नवेको तेलमें पीसकर ऑजनेसे तिमिर नष्ट होजाताहै। कॉजीमें पीसकर ऑजनेसे रतौंधा नष्ट होजाताहै। जिस प्रकार सूर्य अन्धकारको नष्ट करदेताहै उसीप्रकार पुनर्नवा (सॉठ—गदहपुरेना) तिमिर तथा रतौंधको नष्ट करेहै।

बबूरके पत्तोंका क्वाथ बनाकर उसको गाढा करलेवे फिर उसमे सहत डालकर ऑंजनेसे नेत्रोका स्राव शुष्क होजाताहै॥ २१४–२१७॥

अथ लेखनी रसक्रिया।

वटक्षीरेण संयुक्तो मुख्यकर्पूरजो रजः॥ क्षिप्रमञ्जनतो हन्ति कुसुमं तु द्विमासिकम्॥ २१८॥ क्षौद्राश्वलालासंघृष्टैर्मरिचैर्नेत्रमञ्जनात्॥ अतिनिद्रा शमं याति तमः सूर्योदयादिव॥ २१९॥

भीमसेनी कपूरको वडके दूधमें पीसकर आजनेसे दो महीनेका फूला तत्काल नष्ट होजाताहै।

सहत और घोडेकी लार इनमे कालीमिरचको पीसकर अजन ऑजनेसे जिसप्रकार सूर्योदयसे अधकार नष्ट होजाताहै उसीप्रकार इससे अत्यत निद्राका आना दूर होजाताहै॥ २१८॥ २१९॥

अथ स्नेहनं चूर्णम्।

अग्नितप्तं हि सौवीरं निषिञ्चेत्त्रिफलारसैः॥ सप्तवेलं तथा स्तन्यैः स्त्रीणां सिक्तं विचूर्णितम्॥ २२०॥ अञ्जयेत्तेन नयने प्रत्यहं चक्षुषोर्हितम्॥ सर्वानक्षिविकारांस्तु हन्यादेतन्न संशयः॥ २२१॥

सफेद सुर्मेको अग्निसे तपा तपाकर सातवार त्रिफलेके रसमे और सातवार स्त्रीके दूधमे बुझावे। फिर इस सुर्मेका चूर्ण करके नित्य नेत्रमें आजे तो नेत्रके सम्पूर्ण विकार नष्ट होजातेहैं, यह सुर्मा नेत्रोंको अत्यत हितकारी है॥ २२०॥ २२१॥

अथ रोपणं चूर्णम्।

शिलायां रसकं पिष्ट्वा सम्यगाप्लाव्य वारिणा॥ गृह्णीयात्तज्जलं सर्वं त्यजेच्चूर्णमधोगतम्॥ २२२॥ शुष्कश्च तज्जलं सर्वं पर्पटीसन्निभं भवेत्॥ विचूर्ण्य भावयेत्सम्यक्त्रिवेलं त्रिफलारसैः॥२२३॥ कर्पूरस्य रजस्तत्र दशमांशेन निक्षिपेत्॥ अञ्जयेन्नयने तेन नेत्राखिलगदच्छिदः २२४

पत्थरके खरलमें खपरियाको पीसकर जलमे अच्छे प्रकारसे भिजोरक्खे फिर उसके जलको नितार करके दूसरे पात्रमें कर लेवे और खपरियाके मलको जो बच रहे उसको रोकदेवे पश्चात् उस नितरे हुए जलको सुखालेवे तो पपडीकी समान जम जायगी उस पपडीको पीसकर त्रिफलेके रसकी तीन भावना देवे और उसमें दशाश भीमसेनी कपूर मिलावे इस चूर्णको नेत्रोमे आजनेसे सर्वप्रकारके नेत्ररोग नष्ट होजातेहैं॥ २२२–२२४॥

अथ लेखनं चूर्णम्।

दक्षाण्डत्वक्छिलाकाचशङ्खचन्दनसैन्धवैः॥ चूर्णितैरञ्जनं प्रोक्तं पुष्पादीनां निकृन्तनम्॥ २२५॥

मुरगेके अडेका वक्कल, मैनशिल, काच, चन्दन और सधानिमक इनका चूर्ण बनाकर नित्य नेत्रोंमे आजनेसे फूलाआदि सब नष्ट होजातेहै॥ २२५॥

अथ मुक्तादिमहांजनम्।

मुक्ताकर्पूरकाचागुरुमरिचकणासैन्धवं चैलवालं शुण्ठीकंकोलकांस्यत्रपुरजनिशिलाशंखनाभ्यभ्रतुत्थम्॥ दक्षाण्डत्वक्च साक्षं क्षतजमथ शिवा क्षीतकं राजवर्तं जातीपुष्पं तुलस्याः कुसुममभिनवं बीजकं स्यात्तथैव॥ २२६॥ पूतीकानिम्बार्जुनभद्रमुस्तं सताम्रसारं रसगर्भयुक्तम्॥ प्रत्येकमेषां खलु माषकैकं यत्नेन पिंष्यान्मधुनातिसूक्ष्मम॥ २२७॥

भवन्ति रोगा नयनाश्रिता ये नितान्तमात्रोपचिताश्च तेषाम् ॥ विधीयते शान्तिरवश्यमेव मुक्तादिनानेन महाञ्जनेन ॥ २२८ ॥

एलवालमेलवालुकनाम्ना प्रसिद्धम् । कंकोलं सुगन्धद्रव्यं सुगन्धकोकिलेति प्रसिद्धा तदलाभे जातीपुष्पं ग्राह्यम् । तस्याप्यलाभे लवंगम् । कांस्यं तच्च मारितं ग्राह्यम् । त्रपु रंगं तच्च मारितं ग्राह्यम् । शिला मनःशिला । अभ्रमभ्रकं तच्च मारितं ग्राह्यम् । दक्षाण्डत्वक् दक्षः कुक्कुटः तस्याण्डत्वक् अक्षं बिभीतकफलम् । क्षतजमत्र कुंकुमम् । शिवा हरीतकी । क्लीतकं यष्टीमधु । राजवर्त रावटी इति लोके । पूतीकः घोराकरञ्ज इति लोके । अञ्जनं सुरमा इति लोके । भद्रमुस्तं नागरमुस्तम् । ताम्रं सारञ्च मारितं ग्राह्यम् । रसगर्भं रसाञ्जनम् ॥

मोती, भीमसेनी कपूर, कचिया निमक, मिर्च, पीपल, सेंधानमक, एलुआ, कंकोल, मिर्च (अगर कंकोल मिर्च न मिले तो उसके अभावमें चमेलीके फूल लेने चाहिये), काँसेकी भस्म, सीसेकी भस्म, हलदी, मैनशिल, शंखकी नाभि, अभ्रककी भस्म, शुद्ध तूतिया, मुरगेके अंडेका बकल, बहेडा, केशर, हरड, मुलेठी, राजवर्त (रावटी-पत्थर), चमेलीके फूल, तुलसीके नवीन फूल, सफेदसैंजिनेके बीज, दुर्गन्धित करंजके बीज, नीम, कोह, नागरमोथा, तांबेकी भस्म, लोहेकी भस्म और रसौत ये प्रत्येक पदार्थ छै छै रत्तीभर लेकर सहतमें बारीक पीसकर अंजन करे तो यह मुक्तादिमहांजन, सिद्ध होताहै । इस अंजनसे नेत्रके समस्त रोग (अत्यंत वृद्धिको प्राप्त हुए हों तो भी) अवश्य शान्त होजातेहैं ॥ २२६–२२८ ॥

अथ नयनशोणाञ्जनम् ।

कणा सलवणोषणा सहरसाञ्जना साञ्जना सरित्पतिकफः सिता सितपुनर्नवासम्भवा ॥ रजन्यरुणचन्दनं मधु च तुल्यपथ्या शिला ह्यरिष्टदलशाबरस्फटिकशङ्खनाभीन्दवः ॥ २२९ ॥ इमानि तु विचूर्णयेन्निबिडवाससा शोधयेत्तथायसि विमर्दयेत्समधु ताम्रखण्डेन तत् ॥ इदं मुनिभिरीरितं नयनशोणनामाञ्जनं करोति तिमिरक्षयं पटलपुष्पनाशं बलात् ॥ २३० ॥

लवणं सैन्धवम् । अञ्जनं सुरमा । सरित्पतिकफः समुद्रफेनम् । शिला मनःशिला । साबरो लोध्रः । स्फटिकः [फटकिरी] । इन्दुः कर्पूरः । तिमिरे नूतनकुसुमे नूतनपटले च ॥

पीपल, सैंधानिमक, कालीमिरच, रसौत, सुरमा, समुद्रफेन, मिश्री, सुफेद पुनर्नवा, हलदी, लाल चदन, मुलेठी, हरड, मैनशिल, नीमके पत्ते, लोध, फटकिरी, शंखकी नाभि और भीमसेनी कपूर इन सबका एकत्र चूर्ण करके मोटे कपडेमें छानकर सहतमें मिलाकर तांबेके पैसेसे लोहेके वासनमें खूब खरल करे तो यह 'नयनशोणाञ्जन' सिद्ध होताहै । मुनियोंका कहाहुआ यह अजन बलात्कारसे नवीन तिमिरको, नवीन पटलको और फूलेको नष्ट करदेताहै ॥ २२९ ॥ २३० ॥

अथ चन्द्रोदया वर्तिः ।

हरीतकी वचा कुष्ठं पिप्पली मरिचानि च ॥ विभीतकस्य मज्जा च शङ्खनाभिर्मनःशिला ॥ २३१ ॥ सर्वमेतत्समं कृत्वा गव्यक्षीरेण पेषयेत् ॥ नाशयेत्तिमिरं कण्डूपटलान्यर्बुदानि च ॥ २३२ ॥ अपि त्रिवार्षिकं शुक्रं मासेनैकेन नाशयेत् ॥ अधिकानि च मांसानि रात्र्यान्ध्यत्वमेव च ॥ २३३ ॥

हरड, वच, कूठ, पीपल, कालीमिरच, बहेडेकी मींग, शंखकी नाभि, और मैनशिल इन सब पदार्थोंको समान भाग लेकर गायके दूधमें बारीक पीसकर इसकी गोली बनावे तो यह 'चन्द्रोदया वर्ती' सिद्ध होतीहै । यह गोली तीन वर्षके फूलेको भी एक महीनेमें दूर करदेतीहै ।

सर्वप्रकारकी मांसवृद्धिको और रतौंधेको भी एक महीनेमें नष्ट करदेती है ॥ २३१–२३३ ॥

अथ चन्द्रप्रभा वर्तिः।

रजनी निम्बपत्राणि पिप्पली मरिचानि च॥ विडंगं भद्रमुस्तं च सप्तमी त्वभया स्मृता ॥ २३४ ॥ अजामूत्रेण संपिष्य छायायां शोषयेद्वटीम् ॥ वारिणा तिमिरं हन्ति गोमूत्रेण तु पिष्टकम्॥२३५ मधुना पटलं हन्ति नारीक्षीरेण पुष्पकम्॥ एषा चन्द्रप्रभा वर्तिः स्वयं रुद्रेण निर्मिता ॥ २३६ ॥

हलदी, नीमके पत्ते, पीपल, काली मिरच, वायविडग, नागरमोथा, और हरड, इनको बकरीके मूत्रमे पीसकर बत्ती बनाकर छायामे सुखावे तो यह 'चन्द्रप्रभा' वर्ति सिद्ध होती है। साक्षात् सदाशिवकी बनाई हुई यह चद्रप्रभा सहतमें घिसकर लगावे तो पटलको दूर करदेती है और स्त्रीके दूधमें घिसकर लगानेसे फूलेको नष्ट करै है ॥ २३४–२३६ ॥

अथ कणामरिचयोः प्रयोगः।

कणा छागशकृन्मध्ये पक्का तद्रसपेषिता ॥ अचिराद्धन्ति नक्तान्ध्यं तद्वत्सक्षौद्रमूषणम् ॥ २३७ ॥

पीपलको बकरीकी मेंगनमे पकाकर बकरीके रसमें पीसकर आंजे तो थोडे ही समयमे रतौंधा नष्ट होजाता है।

लाली मिर्चको सहतमें पीसकर आंजनेसे भी थोडे ही समयमें रतौंधा दूर होजाताहै ॥ २३७ ॥

अथ त्रिफलाद्यं घृतम्।

त्रिफलाया रसं प्रस्थं प्रस्थं भृंगरसस्य च ॥ वृषस्य च रसं प्रस्थं शतावर्याश्च तत्समम् ॥ २३८ ॥ गुडूच्या आमलक्याश्च रसं छागीपयस्तथा ॥ प्रस्थं प्रस्थं समाहृत्य सर्वैरेभिर्घृतं पचेत् ॥ २३९ ॥ कल्कः कणा सिता द्राक्षा त्रिफला नीलमुत्पलम् ॥ मधुकं क्षीरकाकोली मधुपर्णी निदिग्धिका ॥ २४० ॥ तत्साधु सिद्धं विज्ञाय शुभे भाण्डे निधापयेत् ॥ ऊर्द्धं पानमधः पानं मध्ये पानं च शस्यते ॥ ॥ २४१ ॥ यावन्तो नेत्ररोगाः स्युस्तत्पानादपकर्षति ॥ सुरक्ते रक्तदुष्टे च रक्ते वा विस्रुते तथा ॥ २४२ ॥ नक्तान्ध्ये तिमिरे काचे नीलिकापटलार्बुदे ॥ अभिष्यन्देऽधिमन्थे च पक्ष्मकोपे सुदारुणे ॥ ॥ २४३ ॥ नेत्ररोगेषु सर्वेषु दोषत्रयकृतेष्वपि ॥ परं हितमिदं प्रोक्तं त्रिफलाद्यं महाघृतम् ॥ २४४ ॥

भृंगरसः भृंगराजरसः। क्षीरकाकोल्या अलाभे अश्वगन्धामूलं ग्राह्यम् । मधुपर्णी अत्र यष्टीमधु चक्षुष्यत्वात्तदलाभे सामान्यं यष्टीमधु तुल्यगुणत्वात् ॥

त्रिफलेका रस ६४ तोले, भागरेका रस ६४ तोले, अडूसेका रस ६४ तोले, सतावरका रस ६४ तोले, गिलोयका रस ६४ तोले, आमलोंका रस ६४ तोले, और बकरीका दूध ६४ तोले लेवे। इन सबको एकत्र करके इनमें पीपल, मिश्री, दाख, हरड, बहेडा, आमला, नीले कमल, दुगुनी मुलेठी, असगधकी जड और कटेरी इनका कल्क डालकर घीको पकावे। अच्छे प्रकारसे पकजानेपर इसको उतारकर उत्तम बासनमें भरकर रखदेवे। भोजन करनेसे पहिले, भोजन करनेके पश्चात् और भोजनके मध्यमें इस घृतको पान करे तो सर्वप्रकारके नेत्र रोग दूर होजाते हैं। यह त्रिफलाद्य घृत–रुधिरके बढनेपर, रुधिरके दूषित होने पर रुधिरके स्राव होनेपर, रतौंधेपर, तिमिरपर, काँच, नीलिका, पटल, अर्बुद, अभिष्यन्द, अधिमंथ, महादारुण पक्ष्मकोप और त्रिदोषसे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण नेत्ररोगोमें भी अत्यन्त हितकारी है ॥ २३८–२४४ ॥

अथ द्वितीयं त्रिफलाद्यघृतम्।

शतमेकं हरीतक्या द्विगुणश्च विभीतकम् ॥ चतुर्गुणं त्वामलकं वृषमार्कवयोः समम् ॥ २४५ ॥ चतुर्गुणोदकं दत्त्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ भागं चतुर्थं संरक्ष्य क्वाथं तमवतारयेत् ॥ २४६ ॥ शर्करा मधुकं द्राक्षा मधुयष्टी निदि-

न्धिका ॥ काकोली क्षीरकाकोली त्रिफला नागकेसरम् ॥ २४७ ॥ पिप्पली चन्दनं मुस्तं त्रायमाणा तथोत्पलम् ॥ घृतप्रस्थं समं क्षीरं कल्कैरेतैः शनैः पचेत् ॥ ॥ २४८ ॥ हन्यात्सतिमिरं काचं नक्तान्ध्यं शुक्रमेव च ॥ तथा स्रावं च कण्डूश्च श्वयथुं च कषायताम् ॥ २४९ ॥ कलुषत्वं च नेत्रस्य बिन्द्वर्मपटलानि च ॥ बहुनात्र किमुक्तेन सर्वान्नेत्रामयान्हरेत् ॥ २५० ॥ यस्य चोपहता दृष्टिः सूर्याग्निभ्यां प्रपश्यतः ॥ तस्यैतद्भेषजं प्रोक्तं मुनिभिः परमं हितम् ॥ २५१ ॥ मार्जितं दर्पणं यद्वत्परां निर्मलतां व्रजेत् ॥ तद्वदेतेन पीतेन नेत्रं निर्मलतामियात् ॥ वारिद्रोणद्वयं चात्र वृषमार्कवयोस्तुले ॥ २५२ ॥

काकोलीयुगलालाभेऽश्वगन्धामूलं द्विगुणं ग्राह्यम् ॥

हरड १०० तोले, बहेडे २०० तोले, आमले ४०० तोले, अडूसा ४०० तोले और भागरा ४०० तोले, इन सबको चौगुने जलमें डालकर कोमल अग्निसे मंद मंद पकावे जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहे तब उस क्वाथको उतारलेवे फिर उसमें सफेद चीनी, दुगुनी मुलैठी, दाख, कटेरी, दुगुनी असगंधकी जड, हरड, बहेडा, आमले, नाग केसर, पीपल, लाल चंदन, नागरमोथा, त्रायमाण और लाल कमल इनका कल्क क्वाथमें डालकर उस क्वाथमें चौसठ तोले उत्तम घीको चौंसठ तोले दूधके साथ पकावे, जब पकते पकते केवल घी ही अवशेष रहजाय तब उसको उतारलेवे तो यह त्रिफलाघृत होताहै । नेत्रके तिमिर, काँच, रतौंधा, फूला, स्राव, [illegible], सूजन, कषायता, गदलापन, बिंदु, अर्म और पटल यह सब इस घीके उपयोगसे नष्ट होजाते हैं । बहुत कहनेसे क्या प्रयोजन, इस घृतसे समस्त नेत्ररोग नष्ट होजाते हैं । सूर्यके सन्मुख और अग्निके सन्मुख देखनेसे जिसकी दृष्टि [illegible] होगई हो उसको भी [illegible] यह घृत सर्वोत्तम [illegible] है । जिस प्रकार [illegible] दर्पणको पूछनेसे निर्मल होजाताहै उसी प्रकार इस घृतको पीनेसे नेत्र अत्यंत निर्मल होजाते हैं ॥ २४५–२५२ ॥

अथ वासकादिक्वाथः ।

वासाविश्वामृतादार्वीरक्तचन्दनचित्रकैः ॥ भूनिम्बनिम्बकटुकापटोलत्रिफलाम्बुदैः २५३ निशाकलिंगकुटजैः क्वाथः सर्वाक्षिरोगहा ॥ वैस्वर्यं पीनसं श्वासं कासं नाशयति ध्रुवम् ॥ २५४ ॥

इति नेत्ररोगाधिकारः ।

अडूसा, सोंठ, गिलोय, दारुहलदी, लाल चंदन, चीता, चिरायता, नीम, कुटकी, कडवे परवल, हरड, बहेडा, आमले, नागरमोथा, हलदी, पीपल और इन्द्रजौ इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे नेत्रके समस्त रोग, स्वरभंग पीनस, श्वास और खाँसीका अवश्य नाश होताहै ॥ २५३ ॥ २५४ ॥

इति नेत्ररोगाधिकारः संपूर्णः ।

अथ कर्णरोगाधिकारः ।

कर्णशूलः कर्णनादो बाधिर्यं क्ष्वेड एव च ॥ कर्णस्रावः कर्णकण्डूः कर्णगूथस्तथैव च ॥ १ ॥ प्रतिनाहो जन्तुकर्णौ विद्रधिर्द्विविधस्तथा ॥ कर्णपाकः पूतिकर्णस्तथैवार्शश्चतुर्विधः ॥ २ ॥ तथार्बुदं सप्तविधं शोफश्चापि चतुर्विधः ॥ एते कर्णगता रोगा अष्टाविंशतिरीरिताः ॥ ३ ॥

कर्णशूल, कर्णनाद, बाधिर्य, क्ष्वेड, कर्णस्राव, कर्णकण्डू, कर्णगूथ, प्रतिनाह, कृमिकर्ण, क्षतसे अथवा अभिघातसे हुआ विद्रधि दो प्रकारका है, कर्णपाक, पूतिकर्ण, चारप्रकारके कर्णनाद, सातप्रकारके कर्णार्बुद और चारप्रकारके कर्णशोथ इसप्रकार अठाइस २८ कानके रोग हैं ॥ १–३ ॥

अथ कर्णशूलस्य सम्प्राप्तिर्लक्षणंच ।

समीरणः श्रोत्रगतोऽन्यथाचरन्समन्ततः शूलमतीव कर्णयोः ॥ करोति दोषैश्च

यथास्वमावृतः स कर्णशूलः कथितो दुराचरः ॥ ४ ॥

अन्यथा चरन् समन्ततः प्रतिलोमं चरन् । दोषैः पित्तकफरक्तैः । रक्तस्यापि रुजादिकर्तृत्वेन दोषसाम्याद्दोषत्वमत्र, यथास्वम् आत्मीयनिदानकुपितैः अथवा यथास्वमिति शूलविशेषणञ्च । दुराचरः दुरुपचारः ॥

कानमें चारों ओर उलटा फिरनेवाला और अपने निदानोंसे कुपित हुए पित्त, कफ और रुधिर, इन दोषोंसे लिपटा हुआ वायु कानमें उस उस दोषके सम्बधी शूलको अत्यन्त उत्पन्न करताहै उसको कर्णशूल कहतेहैं, यह कर्णशूल कृच्छ्रसाध्य है ।

रुधिर भी पीडा आदिको उत्पन्न करनेवाला होनेसे दोषकी सदृश ही है, इसकारण इसको भी यहां दोषोंकी पंक्तिमें गिना है ॥ ४ ॥

अथ कर्णशूलस्योपद्रवास्तदसाध्यता च ।

मूर्च्छा दाहो ज्वरः कासः श्वासोऽथ वमथुस्तथा ॥ उपद्रवाः कर्णशूले भवन्त्येत मरिष्यतः ॥ ५ ॥

कर्णशूलमें जो मूर्च्छा, दाह, ज्वर, खाँसी, श्वास और वमन, यह उपद्रव हुए होंयँ तो यह रोगीके मरनेके चिह्नरूप हैं ॥ ५ ॥

अथ कर्णनादलक्षणम् ।

कर्णश्रोत्रस्थिते वाते शृणोति विविधान्स्वनान् ॥ भेरीमृदङ्गशंखानां कर्णनादः स उच्यते ॥ ६ ॥

भेरीमृदङ्गशंखानामिति उपलक्षणं तन भृङ्गादिकृतशब्दानां ग्रहणम् ॥

कुपित हुई वायुको कानकी शब्दवाहिनी नाडीमें रहनेसे भेरी, मृदग, शख और भ्रमर इत्यादिककी सदृश विविध प्रकारके शब्द सुननेमें आतेहैं उसको 'कर्णनाद' कहतेहैं ॥ ६ ॥

अथ बाधिर्यलक्षणम् ।

यदा शब्दवहो वायुः स्रोत आवृत्य तिष्ठति ॥ शुद्धः श्लेष्मान्वितो वापि बाधिर्यं तेन जायते ॥ ७ ॥

कफ सहित अथवा केवल वायु कानकी शब्दवाहिनी नाडीको लिपटकर रहे तो इससे बधिरता (बहरापन) होताहै, इसको 'बधिरता' कहतेहैं ॥ ७ ॥

अथ बाधिर्यसाध्यता ।

बाधिर्यं बालवृद्धोत्थं चिरोत्थश्च विवर्जयेत् ॥ ८ ॥

बालकोंका, वृद्धोंका और अधिक कालका बहरापन असाध्य है, इसकारण वैद्य इसकी चिकित्सा नहीं करे ॥ ८ ॥

अथ कर्णक्ष्वेडलक्षणम् ।

वायुः पित्तादिभिर्युक्तो वेणुघोषसमं स्वनम् ॥ करोति कर्णयोः क्ष्वेडं कर्णक्ष्वेडः स उच्यते ॥ ९ ॥

क्ष्वेडशब्दार्थं व्यनक्ति–वेणुघोषसमं स्वनमिति । यत उक्तम् । क्ष्वेडनं वेणुघोषवदिति । ननु कर्णनादकर्णक्ष्वेडयोः को भेदः ? उच्यते कर्णनादः केवलेन वातेन जायते तत्र नानाशब्दांश्च शृणोति । कर्णक्ष्वेडस्तु पित्तादियुक्तेन वातेन जन्यते तत्र नियमेन वेणुघोषमेव शृणोतीति भेदः ॥

पित्तआदिसे संयुक्त हुई वायु कानमें बाँसुरीकी समान शब्दको उत्पन्न करैहै उसको क्ष्वेड कहतेहैं ॥

शंका–कर्णनादमें और क्ष्वेडमें क्या अन्तर है ?

उत्तर–कर्णनाद केवल वायुसे होताहै और उसमें भेरी आदिके सदृश अनेक शब्द होतेहैं और क्ष्वेड तो पित्त आदिसे संयुक्त हुई वायुसे होताहै और उसमें केवल बाँसके शब्दकी समान शब्दही होताहै, इतनाही अन्तर है ॥ ९ ॥

अथ कर्णस्रावलक्षणम् ।

शिरोऽभिघातादथ वा निमज्जतो जले प्रपातादथ वापि विद्रधेः ॥ स्रवेद्धि पूयं श्रवणोऽनिलार्दितः स कर्णसंस्राव इति प्रकीर्तितः ॥ १० ॥

पूयमित्युपलक्षणम् । जलं रसश्च स्रवेत श्रवणशब्दः पुंलिङ्गोऽप्यस्ति ॥

शिरमें चोट लगनेसे, वा पानीमें डूबनेसे अथवा विद्रधिमें वायु कुपित होकर कानसे राधको अथवा जलको, वा रसको, निकालैहै उसको, 'कर्णस्राव' कहतेहैं ॥ १० ॥

अथ कर्णकण्डूलक्षणम् ।

मारुतः कफसंयुक्तो कर्णे कण्डूं करोति हि ॥ ११ ॥

कफसे संयुक्त हुआ वायु कानमें खुजलीको उत्पन्न करताहै उसको 'कर्णकण्डू' कहतेहैं ॥ ११ ॥

अथ कर्णगूथलक्षणम् ।

पित्तोष्मशोषितः श्लेष्मा कुरुते कर्णगूथकम् ॥ १२ ॥

कर्णे गूथयते यस्मात्स कर्णगूथो व्याधिः ॥

पित्तसे तथा गरमीसे सूखा हुआ कफ कानमें मैलको उत्पन्न करैहै उसको कर्णगूथ कहतेहैं ॥ (कानमें विष्ठाकी सदृश मलको करताहै इसकारण इस रोगका नाम 'कर्णगूथ' रक्खाहै 'गूथ' नाम विष्ठाका है) ॥ १२ ॥

अथ प्रतिनाहलक्षणम् ।

स कर्णगूथो द्रवतां यथा गतो विलायितो घ्राणमुखं प्रपद्यते ॥ तदा स कर्णप्रतिनाहसंज्ञितो भवेद्विकारः शिरसोऽर्द्धभेदकृत् ॥ १३ ॥

घ्राणञ्च मुखञ्च घ्राणमुखम् एकत्वं द्वन्द्वे । शिरसोऽर्द्धभेदकृत् । अर्द्धावभेदकरूपशिरोरोगकृत् ॥

कानका मैल पिघलकर पतला होनेसे नाकमें अथवा मुखमें आता है उसको 'प्रतिनाह' कहते हैं । प्रतिनाहसे 'अर्द्धावभेदक' (अधाशीशी) नामक मस्तकरोग होता है ॥ १३ ॥

अथ कृमिकर्णकलक्षणम ।

यदा तु मूर्च्छन्त्यथवा तु जन्तवः सृजन्त्यपत्यान्यथ वापि मक्षिकाः ॥ तद्व्यञ्जनत्वाच्छ्रवणे निरुच्यते भिषग्भिराद्यैः कृमिकर्णको गदः ॥ १४ ॥

तद्व्यञ्जनत्वात्कृमिलक्षणत्वात् । श्रवणे कृमिकर्णको गदो निरुच्यत इत्यन्वयः ॥

जब कानमें जीव पडजातेहैं, अथवा मक्खियें कानमें अपने बच्चे रखतीहैं तब कानके भीतर कीडोंके चिह्न दीखतेहैं यह रोग कृमिकर्णक कहाताहै ॥ १४ ॥

अथ पतंगादिप्रविष्टकर्णलक्षणम् ।

पतंगाः शतपद्यश्च कर्णस्रोतः प्रविश्य हि ॥ अरतिं व्याकुलत्वञ्च भृशं कुर्वन्ति वेदनाम् ॥१५॥ कर्णो निस्तुद्यते यस्य तथा च फर्फरायते ॥ कीटे चरति रुक्तीव्रा निस्पन्दे मन्दवेदना ॥ १६ ॥

निस्पन्दः निश्चलः ॥

पतग आदि अथवा कानखजूरे आदि कानमें प्रवेश करके बेचैनीको, व्याकुलताको और अत्यन्त पीडाको उत्पन्न करैहै, इस रोगमें कान पीडित होताहै, कानमें नोचनेकीसी पीडा होतीहै । जब कीडा चलताहै तब अधिक पीडा होतीहै और स्थिर रहे तो पीडा थोडी होतीहै ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथ द्विविधकर्णविद्रधिलक्षणम् ।

क्षताभिघातप्रभवस्तु विद्रधिर्भवेत्तथा दापकृतोऽपरः पुनः ॥ स रक्तपीतारुणमस्रमास्रवेत्प्रतोदधूमायनदाहचोषवान् ॥ १७ ॥

क्षतप्रभवोऽभिघातप्रभवश्च तयोर्द्वयोरप्यागन्तुजत्वादैक्यम । अस्रं रुधिरमित्यर्थः ॥

कानमें विद्रधि क्षत (घाव) से अथवा अभिघात (चोट) से हुई होय अथवा दोषसे हुई होय तो कानमेंसे लाल पीला स्राव होताहै और पीडा, धुएँके निकलनेकी सदृश, दाह तथा अग्निके समीपसे हुए तापकी सदृश होतीहै उसको कर्णविद्रधि कहतेहैं ।

विद्रधि—क्षतसे हुई होय अथवा अभिघातसे हुई होय तौ भी आगंतुकही है इस कारण उसको एक गिना है ॥ १७ ॥

अथ कर्णपाकलक्षणम् ।

कर्णपाकस्तु पित्तेन कोथविक्लेदकृद्भवेत् ॥

कोथः पूतिभावः । विक्लेदः आर्द्रता ।

पित्तके प्रकोपसे कानमें दुर्गन्धता तथा गिलगिलापन होना है इसको कर्णपाक कहतेहैं ॥

अथ पूतिकर्णकलक्षणम्।

कर्णविद्रधिपाकेन कर्णे वा वारिपूरणात्॥ पूयं स्रवति यः पूतिः स ज्ञेयः पूतिकर्णकः॥ १८॥

अथ कर्णस्रावाद्भेदार्थमाह पूतीति। नियमेन पूतिर्यथा स्यादेवं स्रवति॥

कानका विद्रधि पकनेसे, अथवा कानमे पानी भरनेसे दुर्गन्ध रूप स्रवता है उसको पूतिकर्ण कहते हैं। इस रोगमें नियमपूर्वक दुर्गन्धवाला स्रावही होता है इतना कर्णस्रावसे अन्तर है॥ १८॥

अथ कर्णशोथकर्णार्बुदकर्णार्शो-लक्षणम्।

कर्णशोथार्बुदार्शांसि जानीयादुक्तलक्षणैः॥ १९॥

कर्णशोथाश्च चत्वारो वातपित्तकफरक्तजाः एवमर्शोऽपि चतुर्विधम्। अन्येषां शोथानामर्शसां चासम्भवः आधारप्रभावात्। अर्बुदं सप्तविधं वातपित्तकफरक्तमांसमेदःशिराजम्॥ एते कर्णरोगा अष्टाविंशतिः सुश्रुतोक्ताः। इदानीं चरकोक्तं कर्णरोगचतुष्टयम् वातपित्तकफसन्निपातकृतमाह॥

वात, पित्त, कफ और रुधिर, इस रीतिसे चार प्रकारकी सूजन होतीहै, इसके लक्षण सूजनके अधिकारमें कहे प्रमाण समझना। वात, पित्त, कफ और रुधिरसे हुई अर्श, इस भाँति कानका अर्श चार प्रकारका होताहै, उनके लक्षण अर्शाधिकारमे कहे अनुसार समझना। कानमे इन चार प्रकारहीका अर्श तथा शोथ होताहै और किसी प्रकारका नहीं होता, यह स्थानकाही प्रभाव है।

वात, पित्त, कफ, रुधिर, मास मेद और शिरासे उत्पन्न हुआ अर्बुद, इस प्रकार कानका सात प्रकारका अर्बुद होताहै, इनके लक्षण अर्बुदके अधिकारमें कहे अनुसार जानने।

सुश्रुतमे कहे कानके अट्ठाईस रोगोंके लक्षण कह चुकेहैं चरकमें कानके चार रोग वात, पित्त, कफ और सन्निपातसे उत्पन्न हुए, इस प्रकार कानके चार हैं॥ १९॥

अथ वातजकर्णरोगलक्षणम्।

नादोऽतिरुक्कर्णमलस्य शोथः स्रावस्तनुश्चाश्रवणञ्च वातात्॥ २०॥

कानमे नाद और अत्यन्त पीडा होतीहोय, सूजन होय, पतला स्राव होय और श्रवणकरनेकी शक्ति न होय, तौ वायुसे हुए कानके रोग जानना॥ २०॥

अथ पित्तजकर्णरोगलक्षणम्।

शोथः सरागो दरणं विदाहः सपूतिपीतस्रवणञ्च पित्तात्॥ २१॥

लाल रगकी सूजन होय, कान फटताहोय, दाह होताहोय और दुर्गन्ध युक्त पीला स्राव होय तौ पित्तसे हुए कानके रोग जानना॥ २१॥

अथ कफजकर्णरोगलक्षणम्।

वैश्रुत्यकंडूस्थिरशोथशुक्लस्निग्धा स्रुतिः स्वल्परुजः कफाच्च॥ २२॥

वैश्रुत्यमन्यथा श्रवणम्॥

विपरीत सुनना, खुजलीका होना, सूजन स्थिर रहना, सफेद तथा स्निग्ध स्राव होना और थोडी पीडाका होना, यह कफसे हुए कानके रोगके लक्षण जानने॥ २२॥

अथ सन्निपातजकर्णरोगलक्षणम्।

सर्वाणि रूपाणि च सन्निपातात्स्रावश्च तत्राधिकदोषवर्णः॥ २३॥

ऊपर कहे सब दोषोंके लक्षण दीखते होयँ और उसमें जो दोष अधिक होय उसके वर्णवाला स्राव होताहोय तौ सन्निपातसे हुए कानके रोग जानना।

कर्णपाली भी कानकाही अवयव होनेसे उसके विकारोंको भी इसी अधिकारमे योग्य जानकर लिखते हैं॥ २३॥

अथ परिपोटकनिदानलक्षणम्।

सौकुमार्याच्चिरोत्सृष्टे सहसैवातिवर्द्धिते॥ कर्णे शोथो भवेत्पाल्यां सरुजः परिपोटवान्॥ कृष्णारुणनिभस्तब्धः स वातात्परिपोटकः॥ २४॥

परिपोटवान्मनाक् विदारुणवान्॥

अधिक समयतक कानमे कोई भारी वस्तु डालकर ऐसेही छोड देवै तौ सुकुमारता (कोमलता) के कारण उसमे सहसा अत्यन्त सूजन आजाय, पीडा होय, किंचित् फटासा हो जाय, कालापन मिलाहुआ लाल और जकडा हुआसा जो सूजन होय उसको परिपोटक कहतेहैं।यह रोग वातसे होताहै ॥ २४ ॥

अथोत्पातलक्षणम् ।

गुर्वाभरणसंयोगात्ताडनाद्धर्षणादपि ॥ शोथः पाल्यां भवेच्छयावो दाहपाकरुजान्वितः ॥ रक्तो वा रक्तपित्ताभ्यामुत्पातः स गदः स्मृतः ॥ २५ ॥

भारी गहना पहरनेसे, चोट लगनेसे, अथवा घिसनेसे, कानकी लौंरमे कलौंस सहित लाल, दाहवाली, पाकयुक्त और पीडायुक्त जो सूजन होतीहै उसको 'उत्पात' कहतेहैं, यह रोग रुधिर और पित्त इन दोनोंके प्रकोपसे होताहै ॥ २५ ॥

अथोन्मन्थकलक्षणम् ।

कर्णं बलाद्वर्द्धयतः पाल्यां वायुः प्रकुप्यति ॥ कफं संगृह्य कुरुते शोथं स्तब्धमवेदनम् ॥ उन्मन्थकः सकण्डूको विकारः कफवातजः ॥ २६ ॥

अवेदनमीषद्वेदनम् ॥

कानको बलात्कारसे बढानेपर पालीमें वायुका कोप होताहै और वह वायु कफकी सहायताके कारण स्तब्धता युक्त, अल्पवेदनावाली और खुजली सहित सूजनको उत्पन्न करै है, उसको 'उन्मंथक' रोग कहते हैं । यह रोग कफ और वायु इन दोनोंके प्रकोपसे होताहै ॥ २६ ॥

अथ दुःखवर्द्धनलक्षणम् ।

संवर्ध्यमाने दुर्विद्धे कण्डूदाहरुजान्वितः ॥ शोथो भवति पाकश्च त्रिदोषो दुःखवर्द्धनः ॥ २७ ॥

संवर्ध्यमाने दुर्विद्धे कर्णे इति शेषः ॥

[illegible] प्रकारसे छिदा हुआ कान बढानेसे खुजली- [illegible], दाह और [illegible] सूजन होती है तथा पाक [illegible], [illegible] 'दुःखवर्द्धन' कहते हैं । यह रोग [illegible] है ॥ २७ ॥

अथ परिलेहिलक्षणम् ।

कफासृक्कृमयः क्रुद्धाः सर्षपाभा विसारिणः ॥ कुर्वन्ति पिडिकां पाल्यां कण्डूदाहसमन्विताम् ॥ २८ ॥ कफासृक्कृमिसम्भूतः स विसर्पन्नितस्ततः ॥ लिह्यात्स शष्कुलीं पालीं परिलेही च स स्मृतः ॥ २९ ॥

स पिडिकात्मकः परिलेहिसंज्ञो गदः लिह्यान्निर्मांसी कुर्यात् ॥

कफ, रुधिर और कृमि कुपित होकर, फैलती हुई खुजलीवाली और दाहयुक्त सरसोंकी समान फुडियोंको उत्पन्न करै है, यह रोग चारोओरको फैलता फैलता कानके छेदको तथा पाली (कानकी लौर) को मांसरहितकर डालताहै । कफ, रुधिर और कृमि इनके प्रकोपसे हुआ यह रोग 'परिलेही' कहाताहै ॥ २८ ॥ २९ ॥

अथ कर्णरोगचिकित्सा ।

कर्णशूले कर्णनादे बाधिर्ये क्ष्वेड एव च ॥ चतुर्ष्वपि च रोगेषु सामान्यं भेषजं स्मृतम् ॥ ३० ॥ शृंगवेरं सहमधु सैन्धवं तैलमेव च ॥ कदुष्णं कर्णयोर्धार्यमेतत्स्याद्वेदनापहम् ॥ ३१ ॥ लशुनार्द्रकशिग्रूणां वारुण्या मूलकस्य च ॥ कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठः कदुष्णः कर्णपूरणे ॥ ३२ ॥

वारुणी वरुणः ॥

अर्काङ्कुरानम्लपिष्टान्सतैललवणान्वितान् संनिदध्यात्सुधाकाण्डे कारिते मृत्स्नया वृते ॥ ३३ ॥ पुटपाकक्रमात्स्विन्नं पीडयेदारसागमात् ॥ सुखोष्णं तद्रसं कर्णे प्रक्षिपेच्छूलशान्तये ॥ ३४ ॥ अर्कस्य पत्रं परिणामपीतमाज्येन लिप्तं शिखियोगतप्तम् ॥ आपीड्य तस्याम्बु सुखोष्णमेव कर्णे निषिक्तं हरते हि शूलम् ॥ ॥ ३५ ॥ तीव्रशूलातुरे कर्णे सशब्दे क्लेदवाहिनि ॥ छागमूत्रं प्रशंसन्ति

कोष्णं सैन्धवसंयुतम् ॥ ३६ ॥ तैलं श्वेतार्कमूलेन मन्देऽग्नौ विधिना कृतम् ॥ हरेदाशु त्रिदोषोत्थं कर्णशूलं प्रपूरणात् ॥ ३७ ॥ हिंगुसैन्धवशुण्ठीभिस्तैलं सर्षपसम्भवम् ॥ विपक्कं हरतेऽवश्यं कर्णशूलं प्रपूरणात् ॥ ३८ ॥ कर्णशूले कणनादे बाधिर्ये क्ष्वेड एव च ॥ पूरणं कटुतैलेन हितं वातघ्नमौषधम् ॥ ३९ ॥ शिखरिक्षारजे वारि तत्कृतकल्केन साधितं तैलम् ॥ अपहरति कर्णनादं बाधिर्य चापि पूरणतः ॥ ४० ॥

शिखरी अपामार्गः ॥

कर्णशूल, कर्णनाद, बाधिर्य और क्ष्वेड, इन चारो रोगोंपर एकसीही औषधि करनी कही है ॥

सोंठ, सहत और सैंधा, इनका कल्क डालकर तेलको पकावे, यह तेल सहता हुआ गरम कानमें डाले तो इससे कानकी पीडा नष्ट होतीहैं ॥

लहसुन, अदरक, सहँजना, बरना, मूली और केला, इनका योग्य रीतिसे स्वरस करके सहता हुआ गरम कानमें डाले तो इससे कानकी पीडा नष्ट होजातीहै ॥

आकके अंकुरोंको अम्लरसमे पीसकर उसमें तेल तथा सैंधानिमक मिलावे, पश्चात् थूहरकी मोटी लकडीमें छेद करके भीतर इसको भरे, फिर कपरौटीकर पुटपाककी विधि अनुसार उसको पकावै, जबतक रस निकलै तबतक निचोड लेवै, यह रस जितना गरम कान सहसके उतना गरम कानमे डाले तौ इससे शूलकी शाति होतीहै ॥

पकनेसे पीले हुए आकके पत्तोंको घी चुपडकर आग पर सेकै, फिर उसके रसको निचोड लेवै। यह सब सहता सहता कानमे डाले तो कानका शूल नष्ट होताहै ॥

कानमे तीव्रशूल होताहो, शब्द करताहो और स्राव होताहो तो बकरेके मूत्रमें सैंधानिमक डालकर गरम करके किंचित् गरम गरम वह मूत्र कानमें डाले तो उससे कानकी पीडा नष्ट होजातीहै ॥

सफेद आककी जडके कल्कसे मंदमद अग्निमें पकाया हुआ तेल कानमे डाले तो कानका शूल त्रिदोषसे हुआ होय तो भी तत्काल नष्ट होजाताहै ॥

हींग, सैंधानिमक और सोंठ, इनके कल्कसे पकाया-हुआ सरसोंका तेल कानमे डाले तो उससे कानका शूल अवश्य नष्ट होजाताहै ॥

कर्णशूल, कर्णनाद, बाधिर्य और क्ष्वेड, इन चारों रोगोमे सरसोंका तेल डाले और वायुनाशक औषधि करै यह परम हितकारी होताहै ॥

चिरचिटेकी भस्मके पानीमें चिरचिटेका कल्क डालकर पकायाहुआ तेल कानमे डाले तो इससे बहरापन और कर्णनाद नष्ट होता है ॥ ३०-४० ॥

अथ बिल्वतैलम्।

गवां मूत्रेण बिल्वानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् ॥ सजलश्च सदुग्धश्च तद्बाधिर्यहरं परम् ॥ ४१ ॥

क्षीरं गवामेव ग्राह्यम्।

बेलके फलोंको गायके मूत्रमें पीसकर हुआ पानी तथा दूधमे पकायाहुआ तेल कानमें बहरापन अवश्य नष्ट होजाता है, यह तेल "बिल्वतेल" इस नामसे कहाताहै ॥ ४१ ॥

कर्णस्रावे पूतिकर्णे तथैव कृमिकर्णके ॥ सामान्यं कर्म कुर्वीत योगान्वैशेषिकानपि ॥४२॥ स्वर्जिकाचूर्णसंयुक्तं बीजपूररसं क्षिपेत् ॥ कर्णस्रावरुजो दाहास्ते नश्यन्ति न संशयः ॥ ४३ ॥ आम्रजम्बूप्रवालानि मधुकस्य वटस्य च ॥ एभिस्तु साधितं तैलं पूतिकर्णगदं हरेत् ॥ ४४ ॥ जातीपत्ररसैस्तैलं विपक्कं पूतिकर्णजित् ॥ पिष्टं रसाञ्जनं नार्याः क्षीरेण क्षौद्रसंयुतम् ॥ प्रशस्यते चिरोत्थे तत्स्रावके पूतिकर्णके ॥ ४५ ॥

कर्णस्राव, पूतिकर्ण और कृमिकर्ण इन रोगोमे ऊपर कही सामान्य क्रियायेंभी करनी और नीचे लिखी विशेष क्रियायेंभी करनी चाहिये ॥

सज्जीखारके चूर्णसे सयुक्त बिजौरे नींबूका रस कानमे डाले तो उससे कानका स्राव, पीडा और दाह नष्ट होजाता इसमें कुछभी सदेह नहीं है ॥

आमके, जामुनके, महुएके और बडके छोटे छोटे पत्तोका कल्क करके इससे पकायाहुआ तेल कानमें डाले तो पूतिकर्ण नामक रोग नष्ट होताहै ॥

चमेलीके पत्तोंके स्वरसमें पकायाहुआ तेल कानमें डाले तो उससे पूतिकर्ण नष्ट होताहै ॥

स्त्रीके दूधसे रसौतको पीसकर सहतमें मिलावे, फिर उसको कानमें डाले तो अधिक दिनोंसे बहताहुआ कान और पूतिकर्ण नष्ट होताहै ॥ ४२–४५ ॥

अथ कुष्ठतैलम् ।

कुष्ठहिंगुवचादारुशताह्वाविश्वसैन्धवैः ॥
पूतिकर्णापहं तैलं वस्तमूत्रेण साधितम् ॥ ४६ ॥

कूठ, हींग, वच, देवदारु, सोया, सोंठ और सैंधानोन, इनका कल्क डालकर बकरेके मूत्रमें पकायाहुआ तेल कानमें डाले तो इससे पूतिकर्ण नष्ट होताहै, यह कुष्ठादितैल कहाताहै ॥ ४६ ॥

शम्बूकस्य तु मांसेन कटुतैलं विपाचयेत् ॥ तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडी प्रशाम्यति ॥ ४७ ॥ चूर्णेन गन्धकशिलारजनीभवेन मुष्टिप्रमाणकेन कटुतैलपलाष्टकन्तु ॥ धत्तूरपत्ररसतुल्यमिदं विपक्कं नाडीं जयेच्चिरभवामपि कर्णजाताम् ॥ ४८ ॥
मुष्टिः पलम् ॥

कर्णक्रिमिविनाशाय कृमिघ्नीं कारयेत्क्रियाम् ॥ वार्ताकधूमश्च हितः सार्षपः स्नेह एव च ॥ ४९ ॥ पूरणं हरितालेन गव्यमूत्रयुतेन च ॥ धूपने कर्णदौर्गन्ध्ये गुग्गुलुः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ५० ॥ चिकित्सा कर्णशोथानां तथा कर्णार्शसामपि ॥ कर्णार्बुदानां कुर्वीत शोथार्शोऽर्बुदवद्भिषक् ॥ ५१ ॥

सीपके नीचेके मांसका कल्क डालकर पकायाहुआ [illegible]का तेल कानमें डाले तो तत्काल कानका बहना [illegible] होताहै ॥

गन्धक, मैनसिल और हल्दी इनके चार तोले चूर्णका कल्क डालकर बत्तीस तोले धतूरेके पत्तोंके स्वरसमें [illegible] तोले सरसोंका तेल पकावे, यह तेल कानमें डाले तो [illegible] दिनोंका कानका बहना नष्ट होताहै ॥

कृमिकर्ण नामक रोगका नाश करनेके लिये क्रिमियोंको नष्ट करनेवाली क्रिया करै ॥

बैंगनका धुआँ, सरसोंका तेल और गायके मूत्रमें पिसीहुई हरतालका रस, ये कृमिकर्ण रोगमें हितकारी होतेहैं । कानकी दुर्गन्धमें धूप देनेके लिये गूगल श्रेष्ठ गिना जाता है ॥

वैद्य कानकी सूजनकी चिकित्सा सूजनके अधिकारमें कहे अनुसार करै, कानके अर्शोंकी चिकित्सा अर्शोंके अधिकारमें कहे अनुसार करै और कानके अर्बुदोंकी चिकित्सा अर्बुदोंके अधिकारमें कहे अनुसार करै ४७–५१

अथ कर्णपालीरोगचिकित्सा ।

पालीसंशोषणे कुर्याद्वातकर्णरुजः क्रियाः ॥ स्वेदयेद्यत्नतस्तां च स्विन्नां संवर्धयेत्तिलैः ॥ ५२ ॥ शतावरीवाजिगन्धापयस्यैरण्डबीजकैः ॥ तैलं विपक्कं सक्षीरं पालीं संवर्द्धयेत्सुखम् ॥ ५३ ॥
पयस्यात्र क्षीरकाकोली ॥

जीवनीयस्य कल्केन तैलं दुग्धेन पाचयेत् ॥ चिकित्सेत्तेन तैलेन हतास्रं परिपोटकम् ॥ ५४ ॥ शीतलेपैर्जलौकोभिरुत्पातं समुपाचरेत् ॥ हलिनीसुरसाभ्यां च गोधाकंकवसान्वितम् ॥ ५५ ॥ तैलश्च पक्कमभ्यङ्गादुन्मन्थं नाशयेद्ध्रुवम् ॥ दुःखवर्द्धनकं सिक्त्वा जम्ब्वाम्रबिल्वपत्रजैः ॥ ५६ ॥ क्वाथैस्तैलेन सुस्निग्धं तच्चूर्णैश्चावधूलयेत् ॥ बहुशो गोमयैस्तप्तैः स्वेदितं परिलेहितम् ॥ घनसारैः समालिम्पेदजामूत्रेण कल्कितैः ॥

इति कर्णरोगाधिकारः ।

कानकी पाली सूखीजातीहोय तो वातजरोगोंकी जो चिकित्सा कही है सो करे, यत्नपूर्वक पालीको सेंके और सेक करनेके पश्चात् तिलका कल्क लगाकर उसको बढावे ।

सतावर, असगध, क्षीरकाकोली, और अडी, इनके कल्कसे दूधमे पकाया हुआ तेल लगावे तो कानकी पाली सहजमे बढजातीहै, इसको शतावरी तेल कहतेहैं।

परिपोटक रोग होय तो प्रथम उसमेसे रुधिर निकलवाकर पीछे दूधमें जीवनीय गणका कल्क डालकर पकाया हुआ तेल लगावे।

उपद्रव हुए होंयँ तो शीतल लेपोंसे और जोक लगाकर उनकी चिकित्सा करे।

कलियारीका कल्क, शतावरका कल्क, गोहकी चरबी, और कंकपक्षीकी चरबी, इनको डालकर पकाया हुआ तेल चुपडे तो उन्मन्थ अवश्य नष्ट होजाताहै।

दुःखवर्द्धनक रोग हुआ होय तो जामुनके आमके और बेलके पत्तोके क्वाथसे उसको सीचकर तेलसे भली भाँति चिकना करे और उसके ऊपर जामुन आदिके पत्तोका चूर्णही बुरका देवे।

परिलेही रोग हुआ होय तो गरम किये हुए गोबरका वारवार सेक करे, फिर बकरीके मूत्रमें पीसे हुए कपूरका लेप करे॥ ५२–५७॥

इति कर्णरोगाधिकारः सम्पूर्णः।

अथ नासारोगाधिकारः।

तत्र नासारोगाणां नामानि संख्या च।

आदौ च पीनसः प्रोक्तः पूतिनस्यस्ततः परम्॥ नासापाकोऽत्र गणितः पूयशोणितमेव च॥ १॥ क्षवथुर्भ्रंशथुर्दीप्तिः प्रतीनाहः परिस्रवः॥ नासाशोषः प्रतिश्यायाः पञ्च सप्तार्बुदानि च॥ २॥ चत्वार्यर्शांसि चत्वारः शोथाश्चत्वारि तानि च॥ रक्तपित्तानि नासायां चतुस्त्रिंशद्गदाः स्मृताः॥ ३॥

पीनस, पूतिनस्य, नासापाक, पूयशोणित, क्षवथु, भ्रंशथु, दीप्त, प्रतीनाह, प्रतिस्रव, नासाशोष, पाँच प्रकारके प्रतिश्याय, सात प्रकारके अर्बुद, चार प्रकारके अर्श, चार प्रकारकी सूजन, और चार प्रकारके रक्तपित्त, इस प्रकार नाकके रोग चौतीस हैं॥ १–३॥

अथ पीनसलक्षणम्।

आनह्यते शुष्यति यस्य नासा प्रक्लेदमायाति तु धूप्यते च॥ न वेत्ति यो गन्धरसांश्च जन्तुर्जुष्टं व्यवस्येदिह पीनसेन॥ ४॥ तं चानिलश्लेष्मभवं विकारं ब्रूयात्प्रतिश्यायसमानलिंगम्॥ ५॥

आनह्यते श्वासशोषितकफेन बध्यते। अवरुध्यत इति यावत्। प्रक्लेदमार्द्रतां गच्छतीति यावत्। धूप्यते सन्ताप्यते। गन्धरसान्गन्धान्सुरभीनसुरभींश्च न वेत्ति नासाया आनद्धत्वं तत्र हेतुः तथा रसान्मधुरादींश्च न वेत्ति नासारोगारम्भकदोषेण रसनाया अपि दुष्टिः। व्यवस्येज्जानीयात्। अपीनसपीनसौ द्वावपि शब्दौ स्तः अवाप्योस्तं सनद्धादित्वादिवेति सूत्रेण विकल्पेनाकारलोपात्। तं विकारं पीनसं प्रतिश्यायसमानलिंगं वातश्लैष्मिकप्रतिश्यायतुल्यलक्षणम्॥

श्वाससे सूखे हुए कफसे नाक रुक जाय, रुककर फिर गीली होजाय, गरम होजाय, तथा नाक बद हो जानेके कारण सुगंधि अथवा दुर्गन्धिको नहीं जान सके, तैसेही नाकके रोगोंको उत्पन्न करनेवाले दोषोसे जीभ भी दूषित होकर मधुर आदि रसोंको नहीं जान सकै उसको पीनस रोग कहतेहैं।

व्याकरणकी मर्यादाके अनुसार पीनस और अपीनस यह दोनों एक रोगकेही नाम हैं॥ ४॥

वायु तथा कफसे उत्पन्न हुए पीनस रोगके अन्य लक्षण वात तथा कफसे उत्पन्न हुए प्रतिश्याय नामक रोगकी सदृशही होते हैं॥ ५॥

अथ पूतिनस्यलक्षणम्।

दोषैर्विदग्धैर्गलतालुमूले सन्दूषितो यस्य समीरणस्तु॥ निरेति पूतिर्मुखनासिकाभ्यां तं पूतिनस्यं प्रवदन्ति रोगम्॥ ६॥

- दोषैः पित्तकफरक्तैः । अत्र रक्तस्यापि दोषत्वं दोषसाहचर्यात् । विदग्धैर्दुष्टैः । सन्दूषितः पूतिभावं नीतः । पूतिनस्यं नासायां भव नस्यः वायुः पूतिर्नस्यो यत्र स पूतिनस्यः तम् ॥

गले तथा तालूकी जडमें दूषित पित्त, कफ और रुधिर, इन दोषों करके दूषित हुई दुर्गन्धित वायु मुखमेंसे और नाकमेंसे निकलतीहै, उस रोगको पूतिनस्य कहतेहैं ।

दोषोंके साथ रहनेसे रुधिरको भी दोष शब्द दिया है। पूति अर्थात् दुर्गन्धित और नस्य अर्थात् नाककी वायु इसही अर्थसे इस रोगका नाम "पूतिनस्य" रक्खाहै॥ ६॥

अथ नासापाकलक्षणम् ।

घ्राणाश्रितं पित्तमरूंषि कुर्याद्यस्मिन्विकारे बलवांश्च पाकः ॥ तं नासिकापाकमिति व्यवस्येद्विक्लेदकोथावथवापि यत्र ॥ ७ ॥

विक्लेद आर्द्रता । कोथः पूतिभावः ॥

नाकमे रहनेवाला पित्त व्रणोंको उत्पन्न करै, नाक अत्यन्त पकै, नाक गीली रहै, और दुर्गन्धि भी रहै, उस रोगको नासापाक कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ पूयशोणितलक्षणम् ।

दोषैर्विदग्धैरथवापि जन्तोर्ललाटदेशेऽभिहतस्य तैस्तैः ॥ नासा स्रवेत्पूयमसृग्विमिश्रं तं पूयरक्तं प्रवदन्ति रोगम् ॥ ८ ॥

दोषोंके बिगडनेसे अथवा ललाटमें उन उन पदार्थोंकी चोट लगनेसे रुधिरमिली राध नाकसे गिरतीहै उस रोगको पूयशोणित कहतेहैं ॥ ८ ॥

अथ क्षवथुलक्षणम् ।

घ्राणाश्रिते मर्मणि सम्प्रदुष्टो यस्यानिलो नासिकया निरेति ॥ कफानुजातो बहुशोऽतिशब्दस्तं रोगमाहुः क्षवथुं गदज्ञाः ॥ ९ ॥

घ्राणाश्रिते मर्मणि शृंगाटके ॥

नाककी तरुण हड्डी अथवा शृंगाटक नामक मर्मस्थानमें दूषित हुई कफसहित वायु अधिक छींकोंके शब्दोंको नाकसे निकालतीहै, इस रोगको वैद्य लोग दोषजन्य क्षवथु कहतेहैं ॥ ९ ॥

अथागन्तुजक्षवथुलक्षणम् ।

तीक्ष्णोपयोगादतिजिघ्रतो वा भावान्कटूनर्कनिरीक्षणाद्वा ॥ सूत्रादिभिर्वा तरुणास्थिमर्मण्युद्धर्षितेऽन्यः क्षवथुर्निरेति १० ॥

तीक्ष्णोपयोगाद्राजिकादिभक्षणात् । अर्कनिरीक्षणात्सूर्यदर्शनात् तेन कफविलयनात् । तरुणास्थिमर्मणि नासाव्रणास्थिमर्मणि । तरुणास्थि च मर्मणि शृंगाटके द्वन्द्वैकत्वं वा । अन्यः आगन्तुजः ॥

राई आदि तीक्ष्ण पदार्थोंके उपयोग करनेसे अथवा तीक्ष्ण पदार्थोंकी सुगन्धिसे अथवा सूर्यके सामने देखनेसे कफ पिघलनेपर अथवा डोरे आदिसे नाकके तरुणास्थि नामक मर्म स्थलके घिसनेसे जो छींके आतीहैं उनको वैद्य लोग आगतुज क्षवथु कहतेहैं ॥ १० ॥

अथ भ्रंशथुलक्षणम् ।

प्रभ्रश्यते नासिकया तु यस्य सान्द्रो विदग्धो लवणः कफस्तु ॥ प्राक्सञ्चितो मूर्द्धनि पित्ततप्ते तं भ्रंशथुं व्याधिमुदाहरन्ति ॥ ११ ॥

मस्तकमें पहिलेसेही साचित हुआ, दूषित हुआ, गाढा और खारीपनसहित कफ माथा गरम होनेपर नाकसे निकलताहै उस रोगको वैद्य लोग भ्रंशथु कहतेहैं ॥ ११ ॥

अथ दीप्तिलक्षणम् ।

घ्राणे भृशं दाहसमन्विते तु विनिःसरेद्धूम इवेह वायुः ॥ नासा प्रदीप्तेव च यस्य जन्तोर्व्याधिन्तु तं दीप्तिमुदाहरन्ति ॥ १२ ॥

प्रदीप्तेव प्रज्वलितेव ॥

नाकमें अत्यन्त दाह होय, धुँयेकी समान वायु

निकलै और अग्निसे जलनेकी समान पीडा मालूम होय उस रोगको वैद्यलोग दीप्ति कहतेहैं ॥ १२ ॥

अथ प्रतीनाहलक्षणम्।

उच्छ्वासमार्गन्तु कफः सवातो रुन्ध्यात्प्रतीनाहमुदाहरेत्तम् ॥ १३ ॥

वायुसहित कफ श्वास लेनेके मार्गको रोकदेताहै उस रोगको प्रतीनाह कहतेहैं ॥ १३ ॥

अथ स्रावलक्षणम्।

घ्राणाद्धनः पीतसितस्तनुर्वा दोषः स्रवेत्स्रावमुदाहरेत्तम् ॥ १४ ॥

नाकमेसे पीले वर्णवाला, सफेद वर्णवाला, गाढा, अथवा पतला दोष स्रवताहै उस रोगको स्राव कहतेहैं ॥ १४ ॥

अथ नासाशोषलक्षणम्।

घ्राणाश्रिते श्लेष्मणि मारुतेन पित्तेन गाढं परिशोषिते च ॥ कृच्छ्राच्छ्वसित्यूर्द्ध्वमधश्च जन्तुर्यस्मिन्स नासापरिशोष उक्तः ॥ १५ ॥

नाकमे रहनेवाला कफ वायुसे और पित्तसे अत्यंत सूख जानेपर थोडा २ ऊचा नीचा श्वास लेताहै वह रोग नासापरिशोष कहाताहै ॥ १५ ॥

अथ प्रतिश्यायस्य सामान्यनिरूपणम्।

न केवलं चयं प्राप्य दोषाः कुप्यन्ति देहिनाम् ॥ अन्यदापि हि कुप्यन्ति हेतुबाहुल्यप्रेरणात् ॥ १६ ॥

हेतुबाहुल्यप्रेरणाद्धेतूनां बाहुल्येन त्वराकरणात्। द्विविधं प्रतिश्यायनिदानम् एकं सद्योजनकं तच्च बलवत्त्वेन चयं नापेक्षत एव। अपरश्च चयादिक्रमेण जनकं चयादिक्रमोत्पन्नश्च दोषो गरीयान् सकल शरीरसंभावनया बद्धमूलत्वात्। चयादिक्रमो यथा–निदानात्सञ्चयः 'सञ्चयात्प्रकोपः' प्रकोपात्प्रसरः 'प्रसरात्स्थानसंश्रयः' ततो व्यक्तिः ततो भेद इति ॥

प्रतिश्यायके एक सद्योजनक (तत्काल उत्पन्न करनेवाला) और दूसरा चयादि क्रमजनक (सचय आदिके क्रम करके उत्पन्न करनेवाला) ऐसे दो प्रकारके निदान हैं। उनमें सद्योजनक निदान प्रबल होनेसे क्रमकी अपेक्षा नही करता, कहा है कि " प्राणियोंके वायु आदि दोष केवल सञ्चय पाकर ही कुपित होतेहैं ऐसाही नही किंतु जिन दोषोंके हेतुसे एकत्र होजायँ तो उन हेतुओंके जोरसे समय प्राप्त हुए विनाभी कुपित होतेहैं "।

प्रतिश्यायका जो दूसरा चयादि क्रमजनक निदान है उसमें यह क्रम है कि, निदानसे दोषोंका संचय होताहै, सचयसे प्रकोप होताहै, प्रकोपसे प्रसर (फैलाव) होताहै प्रसरसे स्थानसंश्रय (रोगोंके उन २ ठिकानोमे आना) होताहै, स्थानसश्रयसे व्यक्ति (रोगोका दीखना) होताहै, और व्यक्ति होनेके पश्चात् भेद होताहै ॥ १६ ॥

अथ प्रतिश्यायस्य सद्योजनकनिदानपूर्विकासम्प्राप्तिः।

सन्धारणाजीर्णरजोऽतिभाष्यक्रोधर्तुवैषम्यशिरोऽभितापैः ॥ संजागरातिस्वपनाम्बुशीतावश्यायकैर्मैथुनबाष्पसेकैः॥१७॥ संस्त्यानदोषे शिरसि प्रवृद्धो वायुः प्रतिश्यायमुदीरयेत्तु ॥ १८ ॥

संधारणं मूत्रपुरीषधारणम्। रजो धूलिः तच्च नासाप्रविष्टं हेतुः। ऋतुवैषम्यम् ऋतुचर्याविपरीताचरणम्। शिरोऽभितापः शिरसोऽभितापो येन धूपादिना सः। अवश्यायस्तुषारः बाष्पसेको रोदनम्। संस्त्यानदोषे शिरसि संहतकफे ॥

मूत्र तथा विष्ठाके वेगोको रोकनेसे, अजीर्णसे नाकमे रजका प्रवेश होनेसे, अत्यन्त बोलनेसे, अतिक्रोधसे, ऋतुचर्यामें कहे नियमोंका उल्लघन करके विपरीत आचरण करनेसे, धुये आदिसे मस्तक सन्तापित होनेसे, जागरण करनेसे, अत्यन्त निद्रा लेनेसे, अत्यन्त जलके सेवन करनेसे, शीतोपचारके अत्यन्त सेवनसे, तुषारके सेवन करनेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे और अत्यन्त रोनेसे मस्तकमें एक साथ कफ जम जानेसे वृद्धिको प्राप्त हुआ वायु प्रतिश्यायको उत्पन्न करेहै ॥ १७ ॥ १८ ॥

अथ प्रतिश्यायस्य चयादिक्रमजनकनिदानपूर्विकासम्प्राप्तिः।

चयंगता मूर्द्धनि मारुतादयः पृथक्सम-

स्ताश्च तथैव शोणितम् ॥ प्रकुप्यमाणा विविधैः प्रकोपणैस्ततः प्रतिश्यायकरा भवन्ति ॥ १९ ॥

वात, पित्त, कफ वा तीनों दोष अथवा रुधिर मस्तकमें जमा होकर वह जब अपने २ कुपित करनेवाले कारणोंसे कुपित होतेहैं तब प्रतिश्यायको उत्पन्न करेहैं ॥ १९ ॥

अथ प्रतिश्यायपूर्वरूपम् ।

क्षवप्रवृत्तिः शिरसोऽभिपूर्णता स्तम्भोऽङ्गमर्दः परिहृष्टरोमता ॥ उपद्रवाश्चाप्यपरे पृथग्विधा नृणां प्रतिश्यायपुरःसराः स्मृताः ॥ २० ॥

शिरसोऽभिपूर्णता शिरसो भारेणेव व्याप्तिः । अपरे पृथग्विधाः घ्राणधूमायनतालुविदरणनासामुखस्रावादयो विदेहोक्ता बोद्धव्याः ॥

छींकोका अत्यन्त आना, माथेमें बोझका मालूमहोना, अंगोका जकडना, अगोका टूटना, रोमोंका खडा होना, और भी अन्य अनेक प्रकारके उपद्रव, जब प्रतिश्याय होनेको होय तो पहिलेमे ही होतेहैं ।

नाकमेसे धुयेंकी सदृश वायु निकले, तालू फटजाय और नाकमेसे तथा मुखमेसे स्राव होय इत्यादिक अन्य उपद्रव कि जो विदेहने कहे हैं वह यहा जानना ॥ २० ॥

अथ वातजप्रतिश्यायलक्षणम् ।

आनद्धापिहिता नासा तनुस्रावप्रसेकिनी ॥ गलताल्वोष्ठशोषश्च निस्तोदः शङ्खयोस्तथा ॥ भवेत्स्वरोपघातश्च प्रतिश्यायेऽनिलात्मके ॥ २१ ॥

आनद्धा स्तब्धा । अपिहिता न पिहिता । अत एव तनुस्रावप्रसेकिनी ॥

नाक रुकजाय तथा जकड होजाय, नाकसे पतला स्राव होय, गला तालू तथा होंठ सूखजायँ और कनपटीमें पीडा होय तथा स्वर नष्ट होजाय तो जानना कि वायुसे हुआ प्रतिश्याय है ॥ २१ ॥

अथ पित्तजप्रतिश्यायलक्षणम् ।

उष्णः सपीतकः स्रावो घ्राणात्स्रवति पैत्तिके ॥ कृशोऽतिपाण्डुः सन्तप्तो भवेत्तृष्णाभिपीडितः ॥ नासया तु सधूमाग्निं वमतीव स मानवः ॥ २२ ॥

सपीतकः ईषत्पीतकः ॥

नाकमेंसे गरम तथा किंचित् पीला स्राव होय, शरीर दुबला, अत्यन्त पाडुवर्णवाला तथा संतप्त होजाय, तृषा बहुत लगै और नाकमेंसे जैसे धुयेंवाली अग्नि निकलती होय ऐसा मालूम होय तो जानना पित्तसे हुआ प्रतिश्याय है ॥ २२ ॥

अथ कफजप्रतिश्यायलक्षणम् ।

घ्राणात्कफकृते श्वेतः कफः शीतः स्रवेद्बहुः ॥ शुक्लावभासः शूनाक्षो भवेद्गुरुशिरा नरः ॥ गलताल्वोष्ठशिरसां कण्डूभिरतिपीडितः ॥ २३ ॥

नाकमेंसे सफेद, शीतल तथा अधिक कफ निकले, शरीरका सफेद वर्ण होजाय, नेत्र सुज होजायँ, मस्तक भारी होजाय और गलेमे, तालुमे, होठमें तथा माथेमें खुजलीकी अत्यत पीडा होय तो जानना कि कफसे हुआ प्रतिश्याय है ॥ २३ ॥

अथ त्रिदोषजप्रतिश्यायलक्षणम् ।

भूत्वा भूत्वा प्रतिश्यायो यस्याऽकस्मान्निवर्तते ॥ सम्पक्वो वाप्यपक्वो वा स च सर्वभवः स्मृतः ॥ २४ ॥

अत्र यद्यपि दोषत्रयलिङ्गानि न उक्तानि तथापि तानि ज्ञेयानि त्रिदोषजत्वादयमसाध्यः । अत एवाह—

नृणां दुष्टः प्रतिश्यायः सर्वजश्च न सिद्ध्यति ॥ २५ ॥

जो प्रतिश्याय उत्पन्न हो होकर पकनेके पश्चात् अथवा विना पकेही अकस्मात् बन्द होजाय उस प्रतिश्यायको तीनों दोषके कोपसे हुआ जानना ।

इन लक्षणोंमें "तीनों दोषोंके चिह्न होतेहैं" ऐसा कहा नहीं है तोभी वह चिह्न होतेहैं ऐसा जानना यह प्रतिश्याय त्रिदोषजनित होनेसे असाध्य कहा है कि "मनुष्योंको दुष्ट प्रतिश्याय हुआ होय और त्रिदोषके कोप होनेसे होय तो वह असाध्य है ॥ २४ ॥ २५ ॥

अथ दुष्टप्रतिश्यायलक्षणम्।

प्रक्लिद्यते मुहुर्नासा पुनश्च परिशुष्यति ॥ पुनरानह्यते वापि पुनर्विव्रियते तथा॥२६॥ निःश्वासो वापि दुर्गन्धो नरो गन्धान्न वेत्ति च ॥ एवं दुष्टं प्रतिश्यायं जानीयात्कृच्छ्रसाधनम् ॥ २७ ॥

आनह्यते विबद्धा भवति । विव्रियते अविबद्धा स्यात् । क्लेदशोषविबन्धाविवृतत्वानि नैककालं भवन्ति किन्तु यदा यदा यद्यद्दोषाधिक्यं भवति तदा तदा तत्तद्दोषकृतः स स बोद्धव्य इति न विरोधः । कृच्छ्रसाधनमसाध्यश्च ॥

नाक वारंवार भीगजाय, वारवार बधजाय वारवार खुलजाय, श्वास दुर्गन्धित निकलै और दुर्गन्ध सुगधका ज्ञान नहीं रहै तौ जानना कि दुष्ट प्रतिश्याय हुआ है, यह प्रतिश्याय कष्टसाध्य होताहै । और असाध्य भी होताहै । नाकका गीला होना, सूखना और रुकजाना, यह एक समयमेंही होय ऐसा नही जानना परन्तु जब जब जिस जिस दोषकी अधिकता होय तब तब उस उस दोषके अनुसार यह होते हैं ऐसा जानना अर्थात् किसी प्रकारका विरोध नहीं आता ॥ २६ ॥ २७ ॥

अथ रक्तजप्रतिश्यायलक्षणम्।

रक्तजे तु प्रतिश्याये रक्तस्रावः प्रवर्तते ॥ पित्तप्रतिश्यायकृतैर्लिङ्गैश्चापि समन्वितः ॥ २८ ॥ ताम्राक्षश्च भवेज्जन्तुरुरोघातप्रपीडितः॥ दुर्गन्धोच्छ्वासवक्त्रश्च गन्धानपि न वेत्ति सः ॥ २९ ॥

उरोघातप्रपीडितः उरोघातेनेव प्रपीडितः ॥

जो प्रतिश्याय रुधिरसे हुआ होय तौ रुधिरका स्राव होताहै, पित्तसे हुए प्रतिश्यायक चिह्न भी दीखते हैं, आँखे लाल होजाती हैं, जैसे हृदयमे चोट लगी होय ऐसी पीडा होती है, मुखसे दुर्गन्धित श्वास निकलताहै और दुर्गन्ध सुगन्धका ज्ञान भी नहीं रहताहै ॥ २८ ॥ २९ ॥

अथ चिकित्सामंतरा सर्वप्रतिश्यायाः कालान्तरेणासाध्या भवन्तीत्याह।

सर्व एव प्रतिश्याया नरस्याप्रतिकारिणः ॥ दुष्टतां यान्ति कालेन तदाऽसाध्या भवन्ति च ॥ ३० ॥

चिकित्सासे रहित रहनेवाले मनुष्योंके सब प्रतिश्याय कालान्तरमें दुष्टताको प्राप्त होजाते हैं और जब दुष्ट होयँ तब असाध्य होते हैं ॥ ३० ॥

अथ प्रतिश्यायदुष्टौ कृम्युत्पत्तिस्तल्लक्षणं च।

मूर्च्छन्ति कृमयश्चात्र श्वेताः स्निग्धास्तथाणवः ॥ कृमिजो यः शिरोरोगस्तुल्यं तेनात्र लक्षणम् ॥ ३१ ॥

अत्र एषु प्रतिश्यायेषु कफजा एव कृमयो भवन्तीति श्वेताः स्निग्धाश्च ॥

प्रतिश्यायोंमें कफसे सफेद और स्निग्ध बारीक बारीक कीडे होते हैं इस कारण उन प्रतिश्यायोंके लक्षण कृफजनित शिरोरोगकी सदृश होते हैं ॥ ३१ ॥

अथ वृद्धप्रतिश्यायान्यरोगोत्पत्तिः।

बाधिर्यमान्ध्यमघ्रत्वं घोरांश्च नयनामयान्॥ शोषाग्निमान्द्यकासांश्च वृद्धाः कुर्वन्ति पीनसाः ॥ ३२ ॥

घोरांश्च नयनामयान् इति वचनेऽपि आन्ध्यग्रहणं पुनर्विशेषार्थं । अघ्रत्वं न जिघ्रतीत्यघ्रस्तस्य भावोऽघ्रत्वम् ॥

प्रतिश्याय अधिक वृद्धिको प्राप्त होजाय तो बधिरता, अधापन, गन्धग्रहण करनेकी अशक्ति, नेत्रोंके भयकर रोग, शोष, अग्निकी मदता और खाँसी, यह विकार उत्पन्न होते हैं ।

'नेत्रोंके भयकर रोग' ऐसा कहनेसे अंधताका समावेश होताहै तो भी अधता पृथक् कही उसका कारण यह है कि प्रतिश्यायोसे अधता विशेष होती है ऐसा बतलाना है ॥ ३२ ॥

अथ नासागतान्यचतुस्त्रिंशद्रोगाः ।

अर्बुदं सप्तधा शोथाश्चत्वारोऽर्शश्चतुर्विधम् ॥ चतुर्विधं रक्तपित्तमुक्तं घ्राणेऽपि तद्विदुः ॥ ३३ ॥

अर्बुदानि सप्त वातपित्तश्लेष्मसन्निपातरक्तमांसमेदोजानि । शोथाश्चत्वारो वातपित्तश्लेष्मसन्निपातजाः । अर्शांसि चत्वारि वातपित्तश्लेष्मसन्निपातजानि । रक्तपित्तानि चत्वारि वातपित्तश्लेष्मसन्निपातजानि । एतानि यथोक्तलिङ्गानि घ्राणेऽपि भवन्ति ॥

वातार्बुद, पित्तार्बुद, कफार्बुद, सन्निपातार्बुद, रक्तार्बुद, मांसार्बुद और मेदोर्बुद, इसप्रकार नाकमें अर्बुदरोग सात प्रकारके होते हैं । वातशोथ, पित्तशोथ, कफशोथ और सन्निपातशोथ, इस रीतिसे नाकमें सूजन चार प्रकारकी होती है । वातार्श, पित्तार्श, कफार्श और सन्निपातार्श, इस रीतिसे नाकमें अर्श चार प्रकारकी होती है । वात संबंधी रक्तपित्त, पित्तसंबंधी रक्तपित्त, कफसंबंधी रक्तपित्त और सन्निपात संबंधी रक्तपित्त, इस रीतिसे नाकमे रक्तपित्त चार प्रकारका होताहै । अर्बुदोंके लक्षण आगे कहे हुए अर्बुदके अधिकारमेंसे, सूजनके लक्षण आगे कहे सूजनके अधिकारमेंसे, अर्शोंके लक्षण आगे कहे अर्शोंके अधिकारमेंसे और रक्तपित्तके लक्षण आगे कहे रक्तपित्तके अधिकारमेंसे जान लेना ॥ ३३ ॥

अथामपीनसलक्षणम् ।

शिरोगुरुत्वमरुचिर्नासास्रावस्तनुस्वरः ॥ क्षामः ष्ठीवति चाभीक्ष्णमामपीनसलक्षणम् ॥ ३४ ॥

नासास्रावः तनुस्वरः क्षाम इत्यन्वयः ॥

मस्तकमें भारीपन होय, अरुचि होय, नाकमेंसे पतला स्राव होता होय, स्वर बिगडगया होय और वारंवार थूक गिरता होय तो जानना कि पीनस कच्चा है ॥ ३४ ॥

अथ पक्वपीनसलक्षणम् ।

आमलिङ्गान्वितः श्लेष्मा घनः खेषु निमज्जति ॥ स्वरवर्णविशुद्धिश्च पक्वपीनसलक्षणम् ॥ ३५ ॥

आमलिंगान्वितः श्लेष्मा आमलिंगैः शिरोगुरुत्वादिभिर्युक्तः पश्चाद्‌ घनः निबिडः । अथवा खेषु नासारन्ध्रेषु निमज्जति मुक्तो भवति । वर्णविशुद्धिः श्लेष्मणः प्रकृतवर्णता ॥

मस्तकके भारीपन इत्यादिकें चिह्न कि जो कच्चे पीनसके हैं उनसे युक्त, कफ गाढा होय, अथवा नाकके छेदोंमें रुकजाय, शब्द मुखसे शुद्ध निकलै और कफका वर्ण स्वाभाविक होजाय तो जानना कि पीनस पकगया है ॥ ३५ ॥

अथ नासारोगचिकित्सा ।

सर्वेषु सर्वकालं पीनसरोगेषु जातमात्रेषु ॥ मरिचं गुडेन दध्ना भुञ्जीत नरः सुखं लभते ॥ ३६ ॥ कट्फलं पौष्करं शृंगी व्योषं यासश्च कारवी ॥ एषां चूर्णं कषायं वा दद्यादार्द्रकजैः रसैः ॥ ३७ ॥ पीनसे स्वरभेदे च तमके च हलीमके ॥ सन्निपाते कफे कासे ज्वरे श्वासे च शस्यते ॥ ३८ ॥ कलिङ्गहिंगुमरिचलाक्षास्वरसकट्फलैः ॥ कुष्ठोग्रशिग्रुजन्तुघ्नैरवपीडः प्रशस्यते ॥ ३९ ॥

पीनसादिषु ॥

सर्व प्रकारके पीनस (नाकके रोग) उत्पन्न होतेही तत्काल सदा गुडके और दहीके साथ मिरच खावे तो मनुष्योंको सुखकी प्राप्ति होती है ।

कायफल, पोहकरमूल, काकडासिंगी, सोंठ, मिरच, पीपल, जवासा और अजमाइन इनका चूर्ण अथवा इनका क्वाथ (काढा) अदरकके रसके साथ देवे तो पीनस, स्वरभेद, तमकश्वास, हलीमक, सन्निपात, कफ, खाँसी, ज्वर और श्वास यह रोग शान्त होते हैं ।

इन्द्रजौ, हींग, मिरच, लाखका स्वरस, कायफल, कूठ, वच, सहजना और वायविडंग, इनका अवपीड नस्य देवे तो पीनस आदिरोग नष्ट होते हैं ॥ ३६–३९ ॥

अथ व्योषादिवटी।

व्योषचित्रकतालीसतिन्तिडीकाम्लवेतसम्॥ सचव्याजाजितुल्यांशमेलात्वक्पत्रपादिकम्॥ ४०॥ व्योषादिकमिदं चूर्णं पुराणगुडमिश्रितम्॥ पीनसश्वासकासघ्नं रुचिस्वरकरं परम्॥ ४१॥

सोंठ, मिरच, पीपल, चीता, तालीसपत्र, तितिडीक, अमलवेत, चव और जीरा, इनको समान भाग लेवै और इलायची, तेजपात, दालचीनी इनको चतुर्थांश लेवै, इन सबका चूर्ण कर इनकी पुराने गुडमे गोली बनाकर खावे तो इससे पीनस, श्वास तथा खाँसी नष्ट होजातीहै, रुचि उत्पन्न होतीहै और स्वर उत्तम होताहै, इन गोलियोको 'व्योषादिवटी' नामसे कहतेहैं॥ ४०॥ ४१॥

अथ व्याघ्रीतैलम्।

व्याघ्रीदन्तीवचाशिग्रुसुरसाव्योषसिन्धुजैः॥ सिद्धं तैलं नसि क्षिप्तं पूतिनासागदापहम्॥ ४२॥

कटेरीकी जड, दन्ती, वच, सहँजना, तुलसी, सोंठ, मिरच, पीपल और सैंधा, इनके कल्कसे पकाये हुए तेलका नस्य देवै तो पूतिनस्य नष्ट होजाताहै। यह 'व्याघ्रीतैल' कहाताहै॥ ४२॥

अथ शिग्रुतैलम्।

शिग्रुसिंहीनिकुम्भानां बीजैः सव्योषसैन्धवैः॥ बिल्वपत्ररसैः सिद्धं तैलं स्यात्पूतिनस्यनुत्॥ ४३॥

निकुम्भो दन्ती। पूतिनस्यनुत्स्यात्।

सहँजनेके बीज, कटेरीके बीज, दंतीके बीज (जमालगोटा), सोंठ, मिरच, पीपल, और सैंधानिमक इनके कल्कसे बेलके पत्तोके पकाये हुए तेलका नास देवै तो इससे पूतिनस्य नष्ट होताहै यह शिग्रुतेल कहाताहै॥४३॥

घृतगुग्गुलुमिश्रस्य सिक्थकस्य प्रयत्नतः॥ धूमं क्षवथुरोगघ्नं भ्रंशथुघ्नञ्च निर्दिशेत्॥ ॥ ४४॥ शुण्ठीकुष्ठकणाबिल्वद्राक्षाकल्ककषायवत्॥ तैलं पक्वमथाज्यं वा नस्यात्क्षवथुनाशनम्॥ ४५॥ नस्यं हितं निम्बरसाञ्जनाभ्यां दीप्ते शिरःस्वेदनमल्पशस्तु॥ नस्ये कृते क्षीरजलावसेकाच्छंसन्ति भुञ्जीत च मुद्गयूषैः॥ ४६॥ नासास्रावे घ्राणयोश्चूर्णमुक्तं नाड्या देयं येऽवपीडाश्च पथ्याः॥ तीक्ष्णान्धूमान्देवदार्वग्निकाभ्यां मांसं त्वाजं पथ्यमत्रादिशन्ति॥ ४७॥ प्रतिश्यायेषु सर्वेषु गृहं वातविवर्जितम्॥ वस्त्रेण गुरुणा तेन शिरसो वेष्टनं हितम्॥ ४८॥ विडङ्गं सैन्धवं हिंगु गुग्गुलुः समनःशिलः॥ वचैतच्चूर्णमाघ्रातं प्रतिश्यायं विनाशयेत्॥ घृततैलसमायुक्तं शक्तुधूमं पिबेन्नरः॥ ॥ ४९॥ सधूमः स्यात्प्रतिश्यायकासहिक्काहरः परः॥ प्रतिश्याये पिबेद्धूमं सर्वगन्धसमायुतम्॥ चातुर्जातकचूर्णं वा घ्रेयं वा कृष्णजीरकम्॥ ५०॥

कृष्णजीरकमत्र कलौञ्जी॥

पुटपक्वं जयापत्रं तैलसैन्धवसंयुतम्॥ प्रतिश्यायेषु सर्वेषु शीलितं परमौषधम्॥ ५१॥

जया विजया भङ्गेति यावत्। शीलितं भुक्तम्॥

पिप्पल्यः शिग्रुबीजानि विडङ्गमरिचानि च॥ अवपीडः प्रशस्तोऽयं प्रतिश्यायनिवारणे॥ ५२॥ शिरसोऽभ्यञ्जनैः स्वेदैर्नस्यैर्मन्दोष्णभोजनैः॥ वमनैर्घृतपानैश्च तान्यथास्वमुपाचरेत्॥ ५३॥ क्रिमिघ्ना ये क्रमाः प्रोक्तास्तान्वै क्रिमिषु योजयेत्॥ तावनानि कृमिघ्नानि भेषजानि च बुद्धिमान्॥ ५४॥ रक्तपित्तानि शोथांश्च तथार्शास्यर्बुदानि च॥ नासिकायां स्युरे-

तेषां स्वंस्वं कुर्याच्चिकित्सितम् ॥ ५५ ॥ गृहधूमकणादारुक्षीरनक्ताह्वसैन्धवैः ॥ सिद्धं शिखरिबीजैश्च तैलं नासार्शसां हितम् ॥ ५६ ॥

इति नासारोगाधिकारः ।

घी, गूगल तथा मोम मिलाकर इनका प्रयत्नसे धूमपान करै तो क्षवथु तथा भ्रंशथु नष्ट होताहै । सोंठ, कूठ, पीपल, बेल और दाख इनके कल्कसे इनकेही क्वाथमें पकाये हुए तेलका अथवा घीका नस्य देवै तो इससे क्षवथुका नाश होताहै ।

नीम और रसौत, इनका नास देवै और मस्तकमें थोडा सेक करे तो दीप्तिनामक नाकका रोग नष्ट होताहै, नस्य देनेके पश्चात् दूध और जलका सेचन करे और मूँगके यूपके साथ भोजन करे ।

नासास्राव हुआ होय तो कही औषधियोंका चूर्ण नलीसे नाकमें डाले, हितकारी अवपीडननस्य देवे, देवदार तथा चीतेका तीक्ष्ण धुआँ पिलावै और बकरेका मांस खिलावे ।

सम्पूर्ण प्रकारके प्रतिश्यायोंमे विना पवनके घरमें रहना और मस्तकको गाढे कपडेमे बँधा रखना यह हितकारी होताहै ।

वायविडंग, सैंधानोन, हींग, गूगल, मैनशिल और वच इनका चूर्ण सूंघै तो प्रतिश्यायका नाश होताहै ।

घीसे तथा तेलसे संयुक्त किये सत्तुओंका धुँआँ पिवे तो, प्रतिश्याय, खांसी और हिचकी यह अवश्य नष्ट होतेहैं ।

तेजपात, इलायची तथा दालचीनी आदि सब सुगन्धित पदार्थोंका धुआं पिये अथवा तेजपात, इलायची, दालचीनी और नागकेशर इनका चूर्ण सूंघे अथवा कलौंजी जीरेका चूर्ण सूँघै तो प्रतिश्याय नष्ट होताहै ।

भांगके पत्तोंको पुटपाकसे पकाकर तेलके और सैंधे-नोनके साथ खानेका अभ्यास रक्खे तो सम्पूर्ण प्रकारके पीनस अवश्य नष्ट होतेहैं ।

पीपल, सहँजनेके बीज, वायविडंग और मिरच इनका अवपीडन नस्य देवै तो प्रतिश्याय नष्ट होताहै ।

रोदन करनेसे, मस्तकमें तेल मर्दन करनेसे, मन्द दोष, किंचित् गरम भोजन, वमन करानेसे और घी पिलानेसे योग्यता देखकर प्रतिश्यायके ऊपर उपचार करै ।

प्रतिश्यायमे कीडे पडे होयँ तो बुद्धिमान् वैद्य कृमिनाशक जो २ उपाय, नस्य अथवा औषधि कही हैं उनका प्रयोग करे ।

नाकमे रक्तपित्त, सूजन, अर्श अथवा अर्बुद होय तो उनके लिये उस उस अधिकारमे जो जो चिकित्सा कही है वही वह करै ।

घरके धुएँका धूमासा, पीपल, देवदारु, दूध, करंज, सेंधानोन और चिरचिटेके बीज, इनसे पकाया हुआ तेल नाकके अर्शोंपर हितकारी है ॥ ४४–५६ ॥

इति नासारोगाधिकार. सम्पूर्णः ।

अथ मुखरोगाधिकारः ।

तत्र मुखस्वरूपम् ।

ओष्ठौ च दन्तमूलानि दन्तजिह्वे च तालु च॥ गलो मुखानि सकलं सप्ताङ्गं मुखमुच्यते ॥ १ ॥

ऊपर नीचेके होंठ, दाँतोंके मसूढे, दाँत, जीभ, तालु और गला, यह सात अंग मिलनेसे मुख कहाताहै ॥ १ ॥

अथ मुखरोगसंख्या ।

स्युरष्टावोष्ठयोर्दन्तमूले तु दश षट् तथा॥ दन्तेष्वष्टौ च जिह्वायां पञ्च स्युर्नव तालुनि ॥ २ ॥ कण्ठे त्वष्टादश प्रोक्तास्त्रयः सर्वेषु च स्मृताः ॥ एवं मुखामयाः सर्वे सप्तषष्टिर्मता बुधैः ॥ ३ ॥

ओठोंमे आठ रोग, दाँतोंकी जडमें सोलह रोग, दाँतोंमे आठ रोग, जीभमें पाँच रोग, तालूमें नौ रोग, गलेमे अठारह रोग, और सम्पूर्ण मुखमे तीन रोग, इस प्रकार मुखके सम्पूर्ण सडसठ ६७ रोग है ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ मुखरोगनिदानम् ।

आनूपपिशितक्षारदधिमाषादिसेवनात् ॥ मुखमध्ये गदान्कुर्युः क्रुद्धा दोषाः कफोत्तराः ॥ ४ ॥

अनूपदेशके प्राणियोंका मांस सेवन करनेसे, क्षारोंके सेवनसे, दहीके सेवनसे और उडदआदिके

सेवनसे, प्रकुपित हुए कफादि दोष मुखके रोगोंको उत्पन्न करे हैं ॥ ४ ॥

अथौष्ठरोगनिदानपूर्वकसंख्या ।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च रक्तजो मांसजस्तथा ॥ मेदजश्चाभिघातोत्थ एवमष्टौष्ठजा गदाः ॥ ५ ॥

वात, पित्त, कफ, तीनों दोष, रुधिर, मांस, मेदा और अभिघातसे उत्पन्न हुए, इस भांति होठके आठ रोग हैं ॥ ५ ॥

अथ वातजौष्ठरोगलक्षणम् ।

कर्कशौ परुषौ स्तब्धौ संप्राप्तानिलवेदनौ ॥ दाल्येते परिपाट्येते ओष्ठौ मारुतकोपतः ॥ ६ ॥

परुषौ रूक्षौ । दाल्येते विदार्येते । परिपाट्येते किञ्चिद्विदीर्णत्वचौ क्रियेते ॥

दोनों ओष्ठ खरखरे, रूक्ष, स्तब्ध (जकडेसे) तीव्र वेदनायुक्त चिरेहुए और किंचित् फटेहुए चमडेवाले होयँ तो वायुसे उत्पन्न हुआ ओष्ठरोग जानना ॥ ६ ॥

अथ पित्तजौष्ठरोगलक्षणम् ।

चीयेते पिडिकाभिस्तु सरुजाभिः समन्ततः ॥ सदाहपाकपिडकौ पीताभासौ च पित्ततः ॥ ७ ॥

सरुजाभिः पैत्तिकरुगन्विताभिः ॥

दोनों ओष्ठ चारों ओर पित्तसम्बन्धी पीडा करनेवाली फुसियोंसे घिरजायँ, वर्ण पीला होजाय और उन फुंसियोंमें दाह हो तथा वे फुसियें पकैं तो पित्तसे हुआ ओष्ठरोग जानना ॥ ७ ॥

अथ कफजौष्ठरोगलक्षणम् ।

सवर्णाभिस्तु चीयेते पिडिकाभिरवेदनौ ॥ कण्डूमन्तौ कफाच्छ्वेतौ पिच्छिलौ शीतलौ गुरू ॥ ८ ॥

दोनों ओठ शरीरके चमडेकी सदृश वर्णवाली फुडियोसे व्याप्त होजायँ अल्प वेदना हो, खुजली सफेदी, चिकनापन होजायँ, शीतल तथा भारी होजायँ तो कफसे हुए ओष्ठरोग जानने ॥ ८ ॥

अथ त्रिदोषजौष्ठरोगलक्षणम् ।

सकृत्कृष्णौ सकृत्पीतौ सकृच्छ्वेतौ तथैव च ॥ सन्निपातेन विज्ञेयावनेकपिडकान्वितौ ॥ ९ ॥

दोनों ओष्ठ किसी समय काले, किसी समय पीले, किसी समय सफेद और अधिक फुडियोंसे युक्त होजायँ यह तीनो दोषोंसे युक्त हुए ओष्ठ रोगके लक्षण जानने ॥ ९ ॥

अथ रक्तजौष्ठरोगलक्षणम् ।

खर्जूरफलवर्णाभिः पिडिकाभिर्निपीडितौ ॥ रक्तोपसृष्टौ रुधिरं स्रवन्तौ शोणितप्रभौ ॥ १० ॥

दोनों ओठोंमें खजूरके फलकी सदृश वर्णवाली फुसियोंसे पीडित, रुधिरके स्राववाले, और लाल प्रभावाले होजायँ तो रुधिरसे हुए ओष्ठके रोग जानने ॥ १० ॥

अथ मांसजौष्ठरोगलक्षणम् ।

मांसदुष्टौ गुरू स्थूलौ मांसपिण्डवदुद्गतौ ॥ जन्तवश्चात्र मूर्च्छन्ति नरस्योभयतो मुखात् ॥ ११ ॥

जन्तवः कृमयः । मूर्च्छन्ति वर्द्धन्ते । मुखादुभयतः सृक्किण्योः ।

दोनों ओष्ठ भारी, मोटे और मांसके पिंडकी सदृश ऊँचे होजायँ और उन दोनों होठोंमें अथवा होठोंके समीपके भागोमें कीडे पडजायँ तो मांससे हुए होठके रोग जानने ॥ ११ ॥

अथ मेदोजौष्ठरोगलक्षणम् ।

सर्पिर्मण्डप्रतीकाशौ मेदसा कण्डुरौ मृदू ॥ स्वच्छस्फटिकसंकाशमास्रावं स्रवतो भृशम् ॥ १२ ॥

दोनों ओष्ठ घीकी पपडीकी समान,खुजलीवाले, कोमल और स्वच्छ स्फटिककी सदृश, स्रावसे युक्त होयँ तो मेदसे हुए ओष्ठरोग जानने ॥ १२ ॥

अथाभिघातजौष्ठरोगलक्षणम् ।

क्षतजाभौ विदर्येते पीड्येते चाभिघाततः ॥ मथितौ च समाख्यातावोष्ठौ कण्डूसमन्वितौ ॥ १३ ॥

मथितौ मृदिताविव अत एव क्षतजाभौ रुधिराभाविति संगतम् ॥

दोनो ओठ चोट लगनेसे मानो चिरसे गये होयँ इसी कारणसे रुधिरकी समान वर्णवाले होजायँ, पीडा होय, अथवा चिरजायँ और खुजली होय तो जानना कि ओष्ठोंमें चोट लगी है ॥ १३ ॥

अथौष्ठरोगचिकित्सा ।

गलदन्तमूलदशनच्छदेषु रोगाः कफास्रभूयिष्ठाः ॥ तस्मादेतेष्वसकृद्रुधिरं विस्रावयेदुष्णम् ॥ १४ ॥ चतुर्विधेन स्नेहेन मधूच्छिष्टयुतेन च ॥ वातजेऽभ्यञ्जनं कुर्यान्नाडीस्वेदश्च बुद्धिमान् ॥ १५ ॥

चतुर्विधेन स्नेहेन तैलघृतवसामज्जारूपेण ॥

वेधं शिराणां वमनं विरेकं तिक्तस्य पानं रसभोजनञ्च । शीताः प्रदेहाः परिषेचनञ्च पित्तोपसृष्टेष्वधरेषु कुर्यात् ॥ १६ ॥ शिरोविरेचनं धूमः स्वेदः कवल एव च ॥ हृते रक्ते प्रयोक्तव्यमोष्ठकोपे कफात्मके ॥ ॥ १७ ॥ मेदोजे शोधिते स्विन्ने स्वेदिते कवलो हितः ॥ प्रियंगुत्रिफलालोध्रं सक्षौद्रं प्रतिसारणम् ॥ १८ ॥

गलेमें, दाताकी जडमें और ओठोंमें जो रोग होते हैं उनमें कफ और रुधिरकी प्रधानता होतीहै, इस कारण इन रोगोंमें वारंवार गरम गरम दुष्ट रुधिर निकलवाना चाहिये ।

वायुसे हुए ओष्ठ रोग होय तो चार प्रकारका स्नेह (घृत तेल वसा और मज्जा) में मोम डालके मालिश करे अथवा नाडी स्वेद करे ।

पित्तसे हुए ओठ रोग होयँ तो नस छेदकर रुधिर निकाले, वमन करावे, विरेचन देवे, तिक्तक नामवाला [illegible] पिलावे, मांसका रस खिलावे, शीतल लेप करे और शीतल सेचन करे ।

कफसे हुए ओठके रोग होयँ तो रुधिर निकलवानेके पीछे शिरोविरेचन (मस्तकको दोषोंसे खाली करनेका उपाय) देवे, धुआं दिलावे, स्वेदन करे और कुल्ले भी करावे ।

मेदसे हुए [illegible] रोग होवें तो विरेचन आदिसे शोधन करे, [illegible] स्वेदन करावे, [illegible] करे, [illegible] करावे और

प्रियंगु, हरड, बहेडा, आमले तथा लोध, इनको सहतमें मिलाकर ओठोंपर प्रतिसारणविधि करे ॥ १४–१८ ॥

अथ प्रतिसारणविधिः ।

दन्तजिह्वामुखानां यच्चूर्णकल्कावलेहकैः ॥ शनैर्घर्षणमंगुल्या तदुक्तं प्रतिसारणम् ॥ ॥ १९ ॥ ओष्ठरोगेष्वशेषेषु दृष्ट्वा दोषमुपाचरेत् ॥ तेषु व्रणत्वं जातेषु व्रणवत्समुपाचरेत् ॥ २० ॥

अंगुलीसे चूर्ण, कल्क अथवा अवलेह, लेकर दातोंको जीभको, तथा मुखको धीरे धीरे घिसे इसको 'प्रतिसारण' कहतेहैं' ओष्ठके सम्पूर्ण प्रकारके रोगोंमे दोषका निश्चय करके उस दोषको नष्ट करे ऐसा प्रतिसारण करावे जो ओठोंके रोग व्रणरूप होजायँ तो उनकी व्रणकी समानही चिकित्सा करै ॥ १९ ॥ २० ॥

अथ दन्तवेष्टजरोगाणां नामानि संख्या च ।

शीतादो गदितः पूर्वं दन्तपुप्पुटकस्तथा ॥ दन्तवेष्टः सौषिरश्च महासौषिर एव च ॥ २१ ॥ ततः परिदरः प्रोक्तस्ततस्तूपकुशः स्मृतः ॥ वैदर्भश्च ततः प्रोक्तः खल्लीवर्द्धन एव च ॥ २२ ॥ अधिमांसकनामा च दन्तनाड्यश्च पञ्च च ॥ दन्तविद्रधिरप्यत्र दन्तवेष्टेषु षोडश ॥ २३ ॥

शीताद, दन्तपुप्पुट, दन्तवेष्ट, सौषिर, महासौषिर, परिदर, उपकुश, वैदर्भ, खल्लिवर्द्धन, अधिमासक, पाच प्रकारकी दन्तनाडी और दन्तविद्रधि, इसप्रकार दानोकी जडमे सोलह रोग होतेहैं ॥ २१–२३ ॥

अथ शीतादलक्षणम् ।

शोणितं दन्तवेष्टेभ्यो यस्याकस्मात्प्रवर्तते ॥ दुर्गन्धीनि सकृष्णानि प्रक्लेदीनि मृदूनि च ॥ २४ ॥ दन्तमांसानि शीर्यन्ते पचंति च परस्परम् ॥ शीतादो नाम स व्याधिः कफशोणितसम्भवः ॥ २५ ॥

दन्तवेष्टेभ्यः दन्तवेष्टनमांसेभ्यः । अकस्मादभिघातं विना । शीर्यन्ते पतन्ति । पचंति

च परस्परं पाकोष्मणा मांसानि शोणितं पचन्ति ॥

दाँतोंकी जडमेंसे विना अभिघात अकस्मात् ही रुधिर निकले, मसूढोका मास दुर्गन्धवाला, काला, गिलगिला, तथा कोमल होकर गिरे और पकनेकी गरमीसे रुधिर पकने लगे, उसको शीताद कहतेहैं, यह रोग कफके तथा रुधिरके प्रकोपसे होताहै ॥ २४ ॥ २५ ॥

अथ दंतपुप्पुटकलक्षणम्।

दन्तयोस्त्रिषु वाप्यत्र श्वयथुर्जायते महान् ॥ दन्तपुप्पुटको नाम स व्याधिः कफरक्तजः ॥ २६ ॥

दो दाँतोंमें अथवा तीन दाँतोंमें अधिक सूजन उत्पन्न होय उस रोगको दन्तपुप्पुटक कहतेहैं, यह रोग कफके और रुधिरके प्रकोपसे होताहै ॥ २६ ॥

अथ दन्तवेष्टलक्षणम्।

स्रवन्ति पूयं रुधिरं चला दन्ता भवन्ति च ॥ दन्तवेष्टः स विज्ञेयो दुष्टशोणितसम्भवः ॥ २७ ॥

अत्र दन्तमूलानीति कर्तृपदमध्याहरणीयम् ॥

मसूढोंमेसे रुधिर अथवा राध (पीप) निकले और दाँत हलजायँ, इस रोगको दन्तवेष्ट कहतेहैं। यह रोग रुधिरके बिगडनेसे होताहै ॥ २७ ॥

अथ सौषिरलक्षणम्।

श्वयथुर्दन्तमूलेषु रुजावान्कफवातजः ॥ लालास्रावी च कण्डूरः स यः सौषिरो गदः ॥ २८ ॥

मसूढोंमे पीडासहित, लार गिरानेवाला और खुजलीसहित सूजन होय उस रोगको सौषिर कहतेहैं। यह रोग कफके तथा वायुके प्रकोपसे होताहै ॥ २८ ॥

अथ महासौषिरलक्षणम्।

दन्ताश्चलन्ति वेष्टेभ्यस्तालु चाप्यवदीर्यते ॥ दन्तमांसानि पच्यन्ते मुखश्च परिवाप्यते ॥ यस्मिन्स सर्वजो व्याधिर्महासौषिरसंज्ञकः ॥ २९ ॥

तालू चाप्यवदीर्यते चकाराद्दन्तवेष्टश्चाप्यवदीर्यते सप्तरात्रान्मारकश्चायम्। यत आह भोजः—

"महासौषिर इत्येष सप्तरात्रान्निहन्त्यसून्" ॥ ३० ॥ इति।

मसूढोमे दांत हिलने लगें, तालू और मसूढे फटने लगें, मसूढे पकजायँ और मुख अत्यन्त पीडित होय इस रोगको महासौषिर कहतेहैं, यह रोग तीनो दोषोंके प्रकोपसे होताहै। यह रोग मनुष्यको सात दिनमें मारदेताहै क्योंकि, भोज कहताहै कि "यह महासौषिर रोग सात रात्रिमे प्राणोंका नाश करदेताहै ॥ २९ ॥ ३० ॥

अथ परिदरलक्षणम्।

दन्तमांसानि शीर्यन्ते यस्मिन्ष्ठीवति चाप्यसृक् ॥ पित्तासृक्कफजो व्याधिर्ज्ञेयः परिदरो हि सः ॥ ३१ ॥

दातोंका मांस बिखर जाय, और थूकमे रुधिर निकले इस रोगको परिदर कहतेहैं यह रोग पित्त, रुधिर और कफके प्रकोपसे होताहै ॥ ३१ ॥

अथोपकुशलक्षणम्।

वेष्टेषु दाहः पाकश्च ताभ्यां दन्ताश्चलन्ति च ॥ आघट्टिताः प्रस्रवन्ति शोणितं मन्दवेदनम् ॥ ३२ ॥ आध्मायन्ते स्रुते रक्ते मुखं पूति च जायते ॥ यस्मिन्नुपकुशः स स्यात्पित्तरक्तसमुद्भवः ॥ ३३ ॥

आघट्टिताः घृष्टाः ॥

मसूढोमे दाह होय और पकजायँ, दात हिलने लगें, मन्द वेदनायुक्त रुधिरका स्राव होय और रुधिरके स्राव होनेपर मुख सूज जाय तथा दुर्गन्ध आने लगे इस रोगको उपकुश कहतेहैं, यह रोग पित्त तथा रुधिरके प्रकोपसे होताहै ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अथ वैदर्भलक्षणम्।

घृष्टेषु दन्तमूलेषु संरम्भो जायते महान्॥ चलन्ति च रदा यस्मिन्स वैदर्भोऽभिघातजः ॥ ३४ ॥

संरम्भः शोथः। चलन्ति चेति चकाराद्वेदनादाहपाकाः ॥

मसूढोंके घिसनेसे अत्यन्त सूजन होय, दात हिलने लगे और वेदना होय तथा पाक और दाह होय इस रोगको वैदर्भ कहतेहैं, यह रोग काष्ठ आदिकी चोट लगनेसे होताहै ॥ ३४ ॥

अथ खल्लीवर्द्धनलक्षणम् ।

मारुतेनाधिको दन्तो जायते तीव्रवेदनः॥ खल्लीवर्द्धनसंज्ञोऽसौ सञ्जाते रुक्प्रशाम्यति ॥ ३५ ॥

सञ्जाते दन्ते ॥

दातके ऊपर अधिक दात जम आवे और उत्पन्न होते समय विशेष पीडा होय, उत्पन्न होनेके पीछे पीडा शांत होजाय उस रोगको खल्लिवर्द्धन कहतेहैं । यह वायुके प्रकोपसे होताहै ॥ ३५ ॥

अथाधिमांसलक्षणम् ।

हानव्ये पश्चिमे दन्ते महाशोथो महारुजः॥ लालास्रावी कफकृतो विज्ञेयः सोऽधिमांसकः ॥ ३६ ॥

हानव्ये हनुभवे पश्चिमे दन्ते अन्त्यजे ॥

नीचेकी पीछेकी डाढमें घोर पीडायुक्त स्रावसहित भारी सूजन उत्पन्न होय उस रोगको अधिमांस कहतेहैं यह कफके प्रकोपसे होताहै ॥ ३६ ॥

अथ पंचविधदन्तनाडीलक्षणम् ।

दन्तमूलगता नाड्यः पञ्च ज्ञेया यथेरिताः ॥ ३७ ॥

यथा नाडीव्रणे वातपित्तकफसन्निपातागन्तुनिमित्ताः पञ्च नाड्यः कथितास्तथा अत्रापीत्यर्थः ॥

जिस प्रकार नाडीव्रणमें वात, पित्त, कफ, सन्निपात और आगन्तुज उत्पन्न हुई पाच प्रकारकी नाडी कही हैं, ऐसेही पाच प्रकारकी नाडी दातोंके मसूढोंमें कही हैं इसकारण इनके लक्षण नाडीव्रणाधिकारमें कहे अनुसार जानने ॥ ३७ ॥

अथ दन्तविद्रधिलक्षणम् ।

दन्तमांसमलैः सास्रैर्बाह्यतः श्वयथुर्महान् ॥ सदाहरुक्स्रवेद्भिन्नः पूयास्रं दन्तविद्रधिः ॥ ३८ ॥

दन्तम समलैर्दन्तवेष्टगतदोषैः सास्रैः सरक्तैर्हेतुभिः ॥

मसूढोंमे स्थित, वात, पित्त, कफ और रुधिर इन दोषोंके कारण बाहर दाह तथा वेदनायुक्त महासूजन उत्पन्न होती है और उसको छेदनेसे राध तथा रुधिर निकलताहै, इस रोगको दन्तविद्रधि कहते हैं ॥ ३८ ॥

अथ दन्तवेष्टरोगचिकित्सा ।

शीतादे हृतरक्ते तु तोये नागरसर्षपान् ॥ निष्काथ्य त्रिफलाञ्चापि कुर्याद्गण्डूषधारणम् ॥ ३९ ॥ कासीसलोध्रकृष्णामनःशिलाप्रियंगुतेजोह्वाः ॥ एषां चूर्णं मधुयुक्छीतादे पूतिमांसहरम् ॥ ४० ॥

तेजोह्वा तेजवल्कल इति लोके ॥

तैलं घृतं वा वातघ्नं शीतादे सम्प्रशस्यते॥ दन्तपुप्पुटके कार्यं तरुणे रक्तमोक्षणम् ॥ ४१ ॥ सपञ्चलवणक्षारः सक्षौद्रः प्रतिसारणम् ॥ शिरोविरेकश्च हितो नस्यं स्निग्धश्च भोजनम् ॥ ४२ ॥ विस्राविते दन्तवेष्टे व्रणन्तु प्रतिसारयेत्॥ पतङ्गलोध्रमधुकलाक्षाचूर्णैर्मधुप्लुतः ॥ ४३ ॥

प्रतिसारयेदङ्गुल्या घर्षयेत् ॥ पतङ्गश्चोक इति लोके ॥

गण्डूषे क्षीरिणो योज्याः सक्षौद्रघृतशर्कराः ॥ चलदन्तस्थिरकरं कार्यं बकुलचर्वणम् ॥ ४४ ॥

शीतादरोग हुआ होय तो रुधिर निकलवाकर पश्चात् जलमें सोंठ, सरसों, हरड, बहेडा और आमले इनका काथ बनाकर उस काथके कुल्ले धारण करे ।

हीराकसीस, लोध, पीपल, मैनशिल, फूलप्रियगू, और तेजबल इनका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर उपयोग करे तो शीतादसे सडा हुआ मांस दूर होजाताहै ।

वायुको हरनेवाले तेलका और घीका उपयोग करनेसे शीताद रोग नष्ट होताहै ।

दन्तपुप्पुटरोग उत्पन्न होय तो तत्कालही उसमेंसे रुधिर निकलवावे ॥

पांचो निमकके साथ जवाखारको सहतमें मिलाकर प्रतिसारण करे, मस्तकको खाली करनेवाला नास देवे और स्निग्ध भोजन करावे यह परम हितकारक है ॥

दन्तवेष्ट हुआ होय तो उसमेंसे रुधिर निकाल कर उस व्रणके ऊपर अगुलीसे लोध, पतग, मुलैठी, और लाख इनके चूर्णको सहतमें मिलाकर खूब घिसे ।

वटादि पंचक्षीरी वृक्षोंका क्वाथ बनाकर उसमे सहत, घी तथा मिश्री डालकर उससे कुल्ले करे और मौलसरीकी छालको चर्वण करे तो हिलते हुए दांत स्थिर होजातेहै ॥ ३९-४४ ॥

अथ मुस्तादिवटिका ।

भद्रमुस्ताभयाव्योषविडंगारिष्टपल्लवैः ॥ गोमूत्रपिष्टैर्गुटिकां छायाशुष्कां प्रकल्पयेत् ॥ ४५ ॥ तां निधाय मुखे सुप्याच्चलदन्तातुरो नरः ॥ नातः परतरं किञ्चिच्चलदन्तस्य भेषजम् ॥ ४६ ॥

नागरमोथा, हरड, सोठ, मिरच, पीपल, वायविडग और नीमके पत्ते इनको गोमूत्रमे पीसकर गोली वनाकर छायामें सुखावे । इन गोलियोंको मुखमें रखकर सो जावे तो हिलते हुए दांत स्थिर होजाते हैं । हिलते हुए दांतोंवाले मनुष्यके लिये इस औषधिसे अधिक अन्य औषधि फलदायक नहीं है । यह गोली मुस्तादिवटिका कही जातीहै ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

अथ सहचराद्यतैलम् ।

तुलाघृतं नीलसहाचरन्तु द्रोणाम्भसा संश्रपयेद्यथावत् ॥ ततश्चतुर्भागरसे तु तैलं पचेच्छनैरर्द्धपलप्रमाणैः ॥ ४७ ॥ कल्कैरनन्ताखदिरारिमेदजम्ब्वाम्रयष्टीमधुकोत्पलानाम् ॥ तत्तैलमाज्यश्च घृतं मुखेन स्थैर्य द्विजानां विदधाति सद्यः ॥ ४८ ॥

नीलसहाचरः (नीलपुष्पकटसरैया) । अनन्ता दुरालभा तदलाभे यवासो ग्राह्यः । इरिमेदो दुर्गन्धखदिरः ॥

नीले फूलका पियावासा ४०० चारसौ तोले लेकर १०२४ एकहजार चौबीस तोले जलमें पकावे, जब पकते पकते चौथाई भाग जल बाकी रहजाय तब उसमे धमासा, खैर, दुर्गंधित खैर, जामुनके पत्ते, आमके पत्ते, मुलैठी और कमल यह प्रत्येक पदार्थ दो दो तोले लेकर कल्क बना उसमें डालकर उसमे तेल अथवा घीको धीरे धीरे पकावे, जो धमासा न मिले तो जवासा ले लेवे, इस तेलको अथवा घीको मुखमे रखनेसे इससे तत्काल दांत स्थिर होजातेहैं । यह तेल अथवा घी सहचराद्य कहा जाताहै ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

सौषिरे हृतरक्ते तु लोध्रमुस्तारसाञ्जनैः ॥ सक्षौद्रैः शस्यते लेपो गण्डूषे क्षीरिणो हिताः ॥ ४९ ॥ क्रियां परिदरे कुर्याच्छीतादोक्तां विचक्षणः ॥ संशोध्योभयतः कार्याः शिराश्चोपकुशे तथा ॥ ५० ॥

सौषिर उत्पन्न हुआ होय तो उसमेंसे रुधिर निकलवाकर पश्चात् लोध, नागरमोथा और रसौत इनके चूर्णको सहतमे मिलाकर लेपकरे और बड आदि क्षीरी वृक्षोंके क्वाथका कुल्लाकरे । परिदर हुआ होय तो विचक्षण वैद्य शीतादकी समान चिकित्सा करे ॥ ४९ ॥ ५० ॥

कोष्ठोदुम्बरिकापत्रैर्व्रणं विस्रावयेद्भिषक् ॥ लवणैः क्षौद्रयुक्तैश्च सव्योषैः प्रतिसारयेत् ॥ ५१ ॥

उपकुश हुआ होय तो प्रथम सशोधन करके पश्चात् दोनो तरफ मुख करे, व्रणोंका कठूमरके पत्तोंसे राध और रुधिर निकलवाकर पांचो निमक, सोंठ, काली मिर्च, तथा पीपल इनको सहतमे मिलाकर प्रतिसारण करे ॥ ५१ ॥

शस्त्रेणोद्धृत्य वैदर्भे दन्तमूलानि शोधयेत् ॥ ततः क्षारं प्रयुञ्जीत क्रियाः सर्वाश्च शीतलाः ॥ ५२ ॥

वैदर्भ हुआ होय तो उसको शस्त्रसे चीरकर मसूढोंको शुद्धकरे, फिर क्षार लगावे और सम्पूर्ण शीतल क्रिया करे ॥ ५२ ॥

उद्धृत्याधिकदन्तं तु ततोऽग्निमवचारयेत् ॥ कृमिदन्तकवच्चात्र विधिः कार्यो विजानता ॥ ५३ ॥

अधिदन्त हुआ होय तो अधिक दातको उखाडकर फिर अग्निसे दाग देवे और कृमिदन्त नामक रोगके लिये जो चिकित्सा कही है वह सब करनी चाहिये ॥ ५३ ॥

छित्त्वाधिमांसं सक्षौद्रैरेतैश्चूर्णैरुपाचरेत्॥
वचातेजोवतीपाठास्वर्जिकायावशूकजैः ५४
तेजोवती तेजोवल्कलः स्वर्णजीवन्ती च॥
क्षौद्रद्वितीयाः पिप्पल्यः कवले चात्र कीर्तिताः ॥ ५५ ॥ पटोलनिम्बत्रिफला-कषायश्चात्र धावने ॥ नाडीव्रणहरं कर्म दन्तनाडीषु कारयेत् ॥ ५६ ॥

अधिमांसक हुआ होय तो उसको चीरकर वच, तेजबल, पाढ, सज्जी और जवाखार इनके चूर्णको सहतमें मिलाकर इसका उपयोग करे । पीपलके चूर्णको सहतमें मिलाकर इसका उपयोग करे । पीपलके चूर्णको सहतमें मिलाकर उसका कवल धारण करे और धोनेके लिये कडवे परवल, नीम और त्रिफलेका क्वाथ प्रयोग करे॥५४–५६

यद्दन्तमध्ये जायेत नाडीदन्तं तदुद्धरेत् ॥ ॥ ५७ ॥ क्षिप्त्वा मांसानि शस्त्रेण यदि नोपरिजो भवेत् ॥ उद्धृत्य च दहेच्चापि क्षारेण ज्वलनेन वा ॥ ५८ ॥ छिन्नस्युपेक्षिते दन्ते हनुमस्थिगतिर्ध्रुवम् ॥ समूलं दशनं तस्मादुद्धरेद्भग्नमस्थि च ॥ ॥ ५९ ॥ उद्धृते तूत्तरे दन्ते शोणितं प्रस्रवेदति ॥ रक्ताभिषेकात्पूर्वोक्ता घोरा रोगा भवन्ति हि ॥ ६० ॥ काणः सञ्जायते जन्तुरर्दितं तस्य जायते ॥ चलमप्युत्तरं दन्तमतो नैवोद्धरेद्भिषक् ॥ धावनं जातिमदनस्वादुकण्टकखादिरैः ॥ ६१ ॥ कषायैरिति शेषः ॥

सर्व प्रकारकी दन्तनाडियोंमें नाडीव्रणकी समान चिकित्सा करनी चाहिये ।

जो दातके भीतर नाडी होय तो दातके मसूढेको [illegible] [illegible] उखाडे [illegible] [illegible] दातको न उखाडे [illegible] [illegible] दांतके [illegible] है । दातको उखाडकर उसके ऊपर क्षार बुरकावे अथवा अग्निसे दाग देवे इस दातके उपेक्षा करनेसे अवश्य ठोडीकी हड्डीमें राध निकलने लगतीहै जिससे वह हड्डी नष्ट होजातीहै, इसकारण दातको जड सहित उखाड डाले और टूटी हुई हड्डीको भी निकाल डाले । जो ऊपरकी पंक्तिका दांत उखाडे तो रुधिरका अत्यन्त स्राव होताहै । रुधिरके अतियोगसे पूर्वोक्त भयंकर रोग उत्पन्न होते हैं, काणापन और अर्दितरोग होताहै अत एव जो ऊपरका दात हिलता भी होय तो भी वैद्य उसको उखाडे नहीं ॥ ५७–६१ ॥

अथ जात्यादितैलम् ।

कषायैर्जातिमदनकण्टकीस्वादुकण्टकैः ॥ ॥ ६२ ॥ मञ्जिष्ठालोध्रखदिरयष्ट्याह्वैश्चापि यत्कृतम् ॥ तैलं यत्साधितं तत्तु हन्याद्दन्तगतां गतिम् ॥ ६३ ॥

जात्यादिचतुष्टयस्य कषायेण मञ्जिष्ठादिचतुष्टयस्य च कषायेण तैलमिदं पचेत् । जाती चम्बेली इति लोके । तस्याः पत्रं ग्राह्यम् । मदनो धत्तूरस्तस्यापि पत्रमत्र ग्राह्यम् । कण्टकी (बडीकटैया) तस्याः मूलं ग्राह्यम् । स्वादुकण्टको गोक्षुरस्तस्य पञ्चाङ्गं ग्राह्यम् ॥

विद्रध्युक्तं विधि युक्तं विदध्याद्दन्तविद्रधौ ॥ शस्त्रकर्म नरस्तत्र कुशलो नैव कारयेत् ॥ ६४ ॥

चमेलीके पत्ते, धतूरेके पत्ते, कटेरीकी जड और गोखुरूका पञ्चांग इनके क्वाथमें तथा खैर, मजीठ, लोध और मुलैठी इनके क्वाथमें पकाया हुआ तेल 'जात्यादि तैल' कहाजाताहै, यह तेल दातके नासूरको दूर करदेताहै॥

दंतविद्रधिरोगमें विद्रधिरोगोक्त चिकित्सा करे, किन्तु शस्त्र क्रिया न करे ॥ ६२–६४ ॥

अथ दंतरोगाणां नामानि संख्या च ।

दालनः कथितः पूर्वं कृमिदन्तक एव च॥ प्रोक्तो भञ्जनको दन्तहर्षो वै दन्तशर्करा ॥ ६५ ॥ कपालिकात्र कथिता श्यावद-

न्तक एव च ॥ करालसंज्ञ इत्यष्टौ दन्तरोगाः प्रकीर्तिताः ॥ ६६ ॥

दालन, कृमिदंतक, भजनक, दंतहर्ष, दंतशर्करा, कपालिका, श्यावदंतक, और कराल इस प्रकार दांतोमे आठ रोग होतेहै ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

अथ दालनलक्षणम्।

दीर्यमाणेष्विव रुजा यत्र दन्तेषु जायते॥ दालनो नाम स व्याधिः सदागतिनिमित्तजः ॥ ६७ ॥

दांत विदीर्णसे होते हों अर्थात् चिरेसे जातेहों ऐसी पीडा हो, इसको दालन कहतेहैं यह रोग वायुके प्रकोपसे होताहै ॥ ६७ ॥

अथ कृमिदंतलक्षणम्।

कृष्णच्छिद्रश्चलः स्रावी ससंरम्भो महारुजः ॥ अनिमित्तरुजो वातात्स ज्ञेयो कृमिदन्तकः ॥ ६८ ॥

संरम्भः दन्तमूलशोथयुक्तः। तत्रैव स्रावो बोद्धव्यः। अनिमित्तरुजः अवघट्टनादिनिमित्तं विनैव महारुजावान् ॥

दांतोंमें काले छिद्र होजॉय, खुजली हो, मसूढोंमे सूजन हो, स्राव हो, बहुत पीडा और विनाही कारण वेदना होय इस रोगको कृतिदंत कहतेहैं यह रोग वायुके प्रकोपसे होताहै ॥ ६८ ॥

अथ भंजनकलक्षणम्।

वक्रं वक्रं भवेद्यत्र दन्तभङ्गश्च जायते ॥ कफवातकृतो व्याधिः स भञ्जनकसंज्ञकः ६९

जिसमे मुख टेढा होजाय और दांत टूटकर गिरने लगें, उसको भजनक कहतेहैं. यह रोग कफ और वायुके प्रकोपसे होताहै ॥ ६९ ॥

अथ दंतहर्षलक्षणम्।

शीतरूक्षप्रवाताम्लस्पर्शानामसहा द्विजाः ॥ तत्र स्युर्वातपित्ताभ्यां दन्तहर्षः स कीर्तितः ॥ ७० ॥

दांत शीत, रूक्ष, प्रबल वायु और खट्टे पदार्थोंके स्पर्शको नही सहसके इस रोगको दंतहर्ष कहतेहै यह रोग वायु तथा पित्तके प्रकोपसे होताहै ॥ ७० ॥

अथ दंतशर्करालक्षणम्।

मलो दन्तगतो यस्तु कफश्चानिलशोषितः ॥ शर्करेव खरस्पर्शा सा ज्ञेया दन्तशर्करा ॥ ७१ ॥

शर्करा सिकता ॥

दांतोमे रहनेवाला मैल वायुसे सूख जाय और कफ सूखा या कफ रेतेकी समान खरखरा होजाय इस रोगको दतशर्करा कहतेहै ॥ ७१ ॥

अथ कपालिकालक्षणम्।

कपालेष्विव दीर्यत्सु दन्तेषु समलेषु च ॥ कपालिकेति विज्ञेया दन्तच्छिद्दन्त शर्करा ॥ ७२ ॥

कपालानि मृन्मयघटादिखण्डानि तेष्विव समलेषु दन्तेषु मलसहितदन्तावयवेषु दीर्यत्सु सत्सु या दन्तशर्करा सा कपालिकेति विज्ञेया सा कपालिका दन्तच्छिद्दन्तनाशिनी ॥

मैलसहित दांतोके अवयव मट्टीके खपरेकी समान फटने लगें और उपरोक्त दंतशर्करा भी होय तो इस रोगको कपालिका कहतेहैं यह कपालिकारोग दातोको तोडकर नाश करदेताहै ॥ ७२ ॥

अथ श्यावदंतलक्षणम्।

योऽसृङ्मिश्रेण पित्तेन दग्धो दन्तस्त्वशेषतः ॥ श्यावतां नीलतां वापि गदः स श्यावदन्तकः ॥ ७३ ॥

दग्धः दग्ध इव ॥

रुधिरसहित पित्तसे जले हुएकी समान जो दॉत सर्वथा काले अथवा नीले होजॉय तो इस रोगको श्यावदंतक कहतेहैं ॥ ७३ ॥

अथ करालक्षणम्।

शनैः शनैः प्रकुरुते यत्र दन्ताश्रितोऽनिलः ॥ करालान्विकटान्दन्तान्स करालो न सिध्यति ॥ ७४ ॥

करालान् भयानकान् अयं सुश्रुतेनोक्तः संग्रहकारेण च ॥

दातोंमे प्राप्त हुई वायु धीरे धीरे दातोको भयानक

ओर विकटकर देवै तो इस रोगको कराल कहतेहैं ॥ ७४ ॥

अथ दंतरोगचिकित्सा ।

तत्र लाक्षाद्यतैलम् ।

तैलं लाक्षारसं क्षीरं पृथक्प्रस्थमितं पचेत् ॥ द्रव्यैः पलमितैरेतैः क्वाथैश्चापि चतुर्गुणैः ॥ ७५ ॥ लोध्रकट्फलमञ्जिष्ठापद्मकेसरपद्मकैः ॥ चन्दनोत्पलयष्ट्याह्वैस्तत्तैलं वदने धृतम् ॥ ७६ ॥ दालनं दन्तचालं च दन्तमोक्षं कपालिकाम् ॥ शीतादं पूतिवक्त्रश्च विरुचिं विरसास्यताम् ॥ ७७ ॥ हन्यादाशु गदानेतान्कुर्याद्दन्तानपि स्थिरान् ॥ लाक्षादिकमिदं तैलं दन्तरोगेषु पूजितम ॥ ७८ ॥

लाखका रस ६४ तोले, दूध ६४ तोले और लोध, कायफल, मजीठ, कमलकी केसर, पद्माख, चदन, लाल कमल और मुलैठी इनका चौगुना क्वाथ इनमें येही लोध आदि औषधि प्रत्येकका चार चार तोले कल्क डालकर इसग ६४ तोले तेलको पकावे यह 'लाक्षाद्यतैल, सिद्ध होताहै । इस तेलको मुखमे रखनेसे दालन, दांतोका हिलना, दांतोका गिरना, कपालिका, शीताद, पूतिवक्र, अरुचि और मुखकी विरसता यह रोग तत्काल नष्ट होजाते हैं और दानभी स्थिर होजाते है। यह लाक्षाद्यतैल दांतोके रोगोंपर बहुत उत्तम गिनाजाताहै ॥ ७५–७८ ॥

जयेद्विस्रावणैः स्विन्नमचलं कृमिदन्तकम् ॥ तथावर्पीडैर्वातघ्नैः स्नेहगण्डूषधारणैः ॥ ७९ ॥ भद्रदार्व्यादिवर्षाभूलेपैः स्निग्धैश्च भोजनैः ॥ कृमिदन्तापहं कोष्णं हिंगु दन्तान्तरे स्थितम् ॥ ८० ॥

स्थिरपनेको प्राप्त हुए कृमिदंतनामक रोगको स्वेदन देकर रुधिर निकलवावै । वातनाशक अवपीडनसे, स्नेहके कुल्लेको धारण करनेसे, भद्रदारु आदि गणके तथा पुनर्नवाके लेपसे और स्निग्ध भोजनोंसे दूर करे ।

हींगको थोडा गरम करके दांतके बीचमें अर्थात् जा- [illegible] दांतोंमें रखनेसे कृमिदन्तक दूर होजाताहै ॥७९॥८०॥

बृहतीभूमिकदम्बं पञ्चांगुलकण्टकारिकाक्वाथः ॥ गण्डूषस्तैलयुतः कृमिदन्तवेदनाशमनः ॥ ८१ ॥

कटाई, भूमिकदम्ब, सफेदएरंड और कटेरी, इनका क्वाथ बनाकर उसमे तेल मिलाकर उसके कुल्ले करनेसे कृमिदंतकी पीडा शांत होजातीहै ॥ ८१ ॥

नीलीवायसजंघाकटुतुम्बीमूलमेकैकम् ॥ सञ्चूर्ण्य दशनविधृतं दशनक्रिमिनाशनं प्राहुः ॥ ८२ ॥

नीली, काकजघा अथवा कडवी तोंबी इन दोनोंमेसे किसी एककी जडका चूर्ण बनाकर दांतोंमे रखनेसे कृमिदन्तक रोग नष्ट होताहै ॥ ८२ ॥

स्नेहानां कवलाः कोष्णाः सर्पिषस्त्रैवृतस्य च ॥ निर्यूहाश्चानिलघ्नानां दन्तहर्षप्रमर्दनाः ॥ ८३ ॥

त्रैवृतस्य सर्पिषः त्रिवृतापक्वस्य सर्पिषः कवल इत्यर्थः ॥

स्नैहिकोऽत्र हितो धूमो नस्यं स्नैहिकमेव च ॥ ८४ ॥ पेया रसा यवागवश्च क्षीरसन्तानिकाधृतम् ॥ शिरोवस्तिर्हितश्चापि क्रमो यश्चानिलापहः ॥ ८५ ॥

अत्र दन्तहर्षे ॥

अच्छिद्यन्दन्तमूलानि शर्करामुद्धरेद्भिषक् ॥ लाक्षाचूर्णैर्मधुयुतैस्ततस्तां प्रतिसारयेत् ॥ ८६ ॥ दन्तहर्षक्रियां चात्र कुर्यान्निरवशेषतः ॥ कपालिका कृच्छ्रतमा तत्राप्येषा क्रिया मता ॥ ८७ ॥

एषा क्रिया दन्तहर्षक्रिया ॥

फलान्यम्लानि शीताम्बु रूक्षान्नं दन्तधावनम् ॥ तथातिकठिनं भोज्यं दन्तरोगी न भक्षयेत् ॥ ८८ ॥

घृत तैलादि स्नेहोंका कुहाता कुहाता कवल निसोतके कल्कसे पकाये हुए घीका कवल और वातनाशक पदार्थोंका क्वाथ दंतहर्ष रोगको दूर करे है ।

दंतहर्ष रोगपर स्नैहिक धूमपान, स्नैहिक नस्य, पेया, रसयुक्त यवागू, दूधकी मलाई, घी. शिरोवस्ति और वातनाशक क्रिया सब हितकारक ।

दंतशर्करा हुआ होय तो वैद्य दांतोंकी जडको नहीं छेदे किंतु दंतशर्कराको शस्त्रसे चीरकर निकाल डाले और फिर सहतमें लाखके चूर्णको मिलाकर प्रतिसारण करे।

दंतहर्षके लिये जो चिकित्सा कहीं हैं वे सब दंतशर्करापर भी करनी चाहियें । कपालिका नामक दंतरोग यद्यपि अत्यंत कष्टसाध्य है तथापि उसपर दंतहर्षकी समान चिकित्सा करनी चाहिये ।

दंतरोगवाले मनुष्योंको खट्टे पदार्थ, शीतल जल, रूखा अन्न, दतौन और कठिन भक्ष्य नही सेवन करना चाहिये ॥ ८३-८८ ॥

अथ जिह्वारोगाणां निदानं नामानि संख्या च ।

वातजः पित्तजश्चापि कफजोऽलाससंज्ञकः ॥ उपजिह्विका च गदा जिह्वायां पञ्च कीर्तिताः ॥ ८९ ॥

वातज, पित्तज, कफज, अलास और उपजिह्विका इस प्रकार जीभके रोग पांच हैं ॥ ८९ ॥

अथ वातजजिह्वारोगलक्षणम् ।

जिह्वानिलेन स्फुटिता प्रसुप्ता भवेच्च शाकच्छदनप्रकाशा ॥ ९० ॥

स्फुटिता मनाग्विदीर्णा । प्रसुप्ता रसानामनभिज्ञतया सुप्तेव । शाकच्छदनप्रकाशा शाको मरुभूमिजद्रुमस्तद्वत्कण्टकाचिता। अयं लोके जली इति ख्यातः ॥

जिह्वा कुछेक फटगई होय, खट्टे मीठे रसोंके ज्ञानको नही जान सके, और मरुभूमिमें उत्पन्न होनेवाले सागौन वृक्षके पत्तेकी समान कांटोंसे व्याप्त होय तो उसको वातसम्बन्धी जिह्वारोग जानना ॥ ९० ॥

अथ पित्तजजिह्वारोगलक्षणम् ।

पित्तात्सदाहैरुपचीयते च दीर्घैः सरक्तैरपि कण्टकैश्च ॥ ९१ ॥

दाहसहित, लम्बे और लाल कांटोंसे जीभ व्याप्त होगई होय तो उसको पित्तसे उत्पन्न हुआ जिह्वारोग जानना ९१

अथ कफजजिह्वारोगलक्षणम् ।

कफेन गुर्वी बहुला चिता च मांसोच्छ्रयैः शाल्मलिकण्टकाभैः ॥ ९२ ॥

बहुला स्थूला । मांसोच्छ्रयैः मांसजकण्टकैः॥

कफसे जीभ भारी होजाय, मोठी हो, और वह सेमलके कांटोंकी समान कांटोंसे व्याप्त होय तो उसको कफसे उत्पन्न जिह्वारोग जानना ॥ ९२ ॥

अथालासलक्षणम् ।

जिह्वातले यः श्वयथुः प्रगाढः सोऽलाससंज्ञः कफरक्तमूर्तिः ॥ जिह्वां स तु स्तम्भयति प्रवृद्धो मूले च जिह्वा भृशमेति पाकम् ॥ ९३ ॥

प्रगाढः प्रकर्षेण गाढो दारुणः कफरक्तमूर्तिः कफरक्ताभ्यां मूर्तिर्यस्य सः कफरक्तज इत्यर्थः । जिह्वास्तम्भेन वायुरप्यत्र बोद्धव्यः । भृशं पाकेन पित्तश्च अतस्त्रिदोषजोऽयम् असाध्यत्वञ्चास्य ॥

जीभके नीचे कफ और रुधिरके प्रकोपसे जो अत्यंत दारुण सूजन होय उसको अलास कहतेहैं । यह रोग बढकर जीभको जकड देताहै और इसमें जीभकी जड अत्यत पकजातीहै ।

जिह्वाके स्तम्भन होनेके कारण इस रोगमें वायुका प्रकोप भी होताहै और जिह्वाकी जडके अत्यत पकनेसे पित्तका भी प्रकोप होताहै ऐसा सिद्ध होताहै । इस प्रकार यह रोग तीनो दोष और रुधिरके प्रकोपसे होनेके कारण असाध्य है ऐसा जानाजाताहै ॥ ९३ ॥

अथोपजिह्विकालक्षणम् ।

जिह्वाग्ररूपः श्वयथुर्हि जिह्वामुन्नम्य जातः कफरक्तयोनिः॥ प्रसेककण्डूपरिदाहयुक्तः प्रकथ्यतेऽसावुपजिह्विकेति ॥ ९४ ॥

जिह्वाग्ररूपः जिह्वाग्राकृतिः ॥

कफ और रुधिर इन दोनोंके प्रकोपसे सूजन जीभको ऊंची कर देतीहै, जीभ अनीकी समान होतीहै और

लारके गिरनेसे, खुजली तथा दाह युक्त होतीहै इस सूज-नको उपजिह्वका कहतेहैं ॥ ९४ ॥

अथ जिह्वारोगचिकित्सा ।

जिह्वागतविकारणां शस्तं शोणितमोक्षणम् ॥ गुडूचीपिप्पलीनिम्बकवलः कटुभिः सुखः ॥ ९५ ॥ ओष्ठप्रकोपेऽनिलजे यदुक्तं प्राक्चिकित्सितम् ॥ कण्टकेष्वनिलोत्थेषु तत्कार्यं भिषजा खलु ॥ ९६ ॥ पित्तजे परिघृष्टे तु निःसृते दुष्टशोणिते ॥ प्रतिसारणगण्डूषनस्यश्च मधुरे हितम् ॥९७॥ कण्टकेषु कफोत्थेषु लिखितेष्वसृजः क्षये॥ पिप्पल्यादिर्मधुयुतः कार्यस्तु प्रतिसारणे ॥ ९८ ॥ उपजिह्वां तु संलिख्य क्षारेण प्रतिसारयेत् ॥ शिरोविरेकगण्डूषधूमैश्चै-नामुपाचरेत् ॥ ९९ ॥ व्योषक्षाराभयावह्निचूर्णमेतत्प्रघर्षणम् ॥ उपजिह्वाप्रशान्त्यर्थमेभिस्तैलश्च पाचयेत् ॥ १०० ॥

जिह्वागत रोगोंमें प्रथम रुधिर निकलावे, और गिलोय, नीम और पीपल इनका तीखे पदार्थोंके साथ कवल धारण करे यह हितकारक है ।

वातज ओष्ठरोगमें प्रथम जो चिकित्सा कही है वही चिकित्सा वातसे उत्पन्न जीभके कांटोंपर करनी चाहिये ।

जो पित्तजन्य जिह्वारोग होय तो उसको घिसकर दूषित रुधिरको निकालकर पश्चात् मधुर प्रतिसारण, मधुर कवल, और मधुर नस्य यह सब प्रयोग करे यह हितकारी है ।

जो कफसे जिह्वाके ऊपर कांटे हुए होयँ तो उन कांटोंको घसकर रुधिर निकल्वाकर फिर पिप्पल्यादिगणकी औषधियोंमें सहतमें उसको प्रतिसारण करे ।

उपजिह्विका होयतो उसको कतरकर क्षारसे प्रतिसारणकरे और शिरोविरेचन गण्डूष तथा धूम्रपान इनसे उपचार करे ।

सोंठ, मिरच, पीपल, जवाखार, हरड, और चीता इन चूर्णको घिसनेसे अथवा इन चूर्णके कल्कसे तेलको पकाकर कुरले करनेसे उपजिह्विका नाश होजातीहै ॥९५–१००॥

अथ तालुरोगाणां नामानि संख्या च ।

गलशुण्डी तुण्डिकेर्यध्रूषः कच्छप एव च । तालवर्बुदश्च कथितो मांससंघात एव च ॥ १०१ ॥ तालुपुप्पुटनामा च तालुशोषस्तथैव च ॥ तालुपाकश्च कथितास्तालुरोगा अमी नव ॥ १०२ ॥

गलशुण्डी, तुण्डिकेरी, अध्रूष, कच्छप, तालवर्बुद, मांससंघात, तालुपुप्पुट, तालुशोष और तालुपाक इसप्रकार तालुवेमें नौ रोग हैं ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

अथ गलशुण्डीलक्षणम् ।

श्लेष्मासृग्भ्यां तालमूलात्प्रवृद्धो दीर्घः शोथो ध्मातवस्तिप्रकाशः ॥ तृष्णाकासश्वासकृत्तं वदन्ति व्याधिं वैद्याः कण्ठशुण्डीति नाम्ना ॥ १०३ ॥

ध्मातवस्तिप्रकाशः वातपूरितचर्मपुटतुल्यः ॥

कफ और रुधिर दोनोंके प्रकोपसे तालुवेकी जडमें बढी हुई, लम्बी, वायुसे भरी हुई मशककी समान और तृषा, खाँसी तथा श्वासको उत्पन्न करनेवाली जो सूजन होतीहै उसको वैद्य गलशुण्डी कहतेहैं ॥ १०३ ॥

अथ तुण्डिकेरीलक्षणम् ।

शोथः स्थूलस्तोददाहप्रपाकी श्लेष्मासृग्भ्यां कीर्तिता तुण्डिकेरी ॥ १०४ ॥ तुण्डिकेरी वनकार्पासीफलं तत्तुल्या ॥

तालुवेमें कफ और रुधिरके प्रकोपसे स्थूल, तोधने सरीखी पीडा और दाहसहित और पकनेवाली जो सूजन होतीहै उसको वैद्य तुण्डिकेरी कहतेहैं ॥ १०४ ॥

अथाध्रूपलक्षणम् ।

शोथः स्तब्धो लोहितः शोणितोत्थो ज्ञेयोऽध्रूपः सज्वरस्तीव्ररुक्च ॥ १०५ ॥

रुधिरके प्रकोपसे तालुवेमें स्तब्ध (जड), लाल, ज्वरसहित, और तीव्र पीडायुक्त जो सूजन होतीहै उसको वैद्य अध्रूप कहतेहैं ॥ १०५ ॥

अथ कच्छपलक्षणम् ।

कूर्मोत्सन्नोऽवेदनोऽशीघ्रजन्मा रोगो ज्ञेयः कच्छपः श्लेष्मणः स्यात् ॥ १०६ ॥

कूर्मोत्सन्नः मध्ये प्रोच्चः प्रान्ते नतः ॥

कफके प्रकोपसे तालुवेमें कछुवेकी समान बीचमें ऊंची और चारों ओर नीची और थोडी पीडावाली जो सूजन तत्काल उत्पन्न होतीहै उसको वैद्य कच्छप कहते हैं ॥ १०६ ॥

अथ ताल्वर्बुदलक्षणम् ।

पद्माकारं तालुमध्ये तु शोथं विद्याद्रक्तादर्बुदं पित्तलिङ्गम् ॥ १०७ ॥

पद्माकारं पद्मकर्णिकावत्केसरैरिव पार्श्वतो दीर्घैर्मांसाङ्कुरैर्वेष्टितम् ॥

तालुवेके बीचमें रुधिरके प्रकोपसे कमलकी केसरकी समान लम्बे मांसके अंकुरोसे वेष्टित और सम्पूर्ण पित्तके लक्षणोंयुक्त जो सूजन होतीहै उसको वैद्य ताल्वर्बुद कहते हैं ॥ १०७ ॥

अथ मांससंघातलक्षणम् ।

दुष्टं मांसं श्लेष्मणा नीरुजश्च तात्वन्तस्थं मांससंघातमाहुः ॥ १०८ ॥

कफके प्रकोपसे तालुवेके भीतर पीडारहित जो दुष्ट मांस एकत्रित होजाताहै उसको ' मांससंघात '- कहते हैं ॥ १०८ ॥

अथ तालुपुप्पुटलक्षणम्

नीरुक्स्थायी कोलमात्रः कफात्मा मेदोयुक्तः पुप्पुटस्तालुदेशे ॥ १०९ ॥

कफके प्रकोपके कारण तालुवेमे पीडारहित स्थिर और मेदवाली बेरीके फलकी समान ग्रंथि उत्पन्न होतीहै उसको तालुपुप्पुट कहतेहैं ॥ १०९ ॥

अथ तालुशोषलक्षम् ।

शोषोऽत्यर्थं दीर्यते वापि तालु श्वासो वातात्तालुशोषोऽयमुक्तः ॥ ११० ॥

वायुके प्रकोपसे तालुवेमे अत्यन्त शोष अथवा तालुवा फटने लगे और श्वास भी होय इस रोगको तालुशोष कहतेहै ॥ ११० ॥

अथ तालुपाकलक्षणम् ।

पित्तं कुर्यात्पाकमत्यर्थघोरं तालुन्येवं तालुपाकं वदन्ति ॥ १११ ॥

पित्तके प्रकोपसे तालु अत्यन्त भयकर प्रकारसे पकजाय इस रोगको तालुपाक कहतेहैं ॥ १११ ॥

अथ तालुरोगचिकित्सा ।

कुष्ठोषणवचासिन्धुकणापाठाप्लवैः सह ॥ सक्षौद्रैर्भिषजा कार्यं गलशुण्डीप्रघर्षणम् ११२

प्लवः केवटी मोथा गुडतजीति लोके ॥

अंगुष्ठांगुलिसन्दंशेनाकृष्य गलशुण्डिकाम् ॥ छेदयेन्मण्डलाग्रेण जिह्वोपरि तु संस्थितम् ॥ ११३ ॥

मण्डलाग्रेण शस्त्रविशेषेण ॥

अत्यादानात्स्रवेद्रक्तं ततः सम्म्रियते नरः ॥ हीनच्छेदाद्भवेच्छोथो लालास्रावो भ्रमस्तथा ॥ ११४ ॥ तस्माद्वैद्यः प्रयत्नेन दृष्टकर्मा विशारदः ॥ गलशुण्डीं तु सञ्छिद्य कुर्यात्प्राप्तमिमं क्रमम् ॥ ११५ ॥ पिप्पल्यतिविषाकुष्ठवचामरिचनागरैः ॥ क्षौद्रयुक्तैः सलवणैस्ततस्तां प्रतिसारयेत् ११६॥ वचामतिविषापाठारास्नाकटुकरोहिणीः ॥ निष्काथ्य पिचुमर्दश्च कवलं तत्र कारयेत्॥ ॥ ११७ ॥ तुण्डिकेर्यध्रूषे कूर्मे सङ्घाते तालुपुप्पुटे ॥ एष एव विधिः कार्यो विशेषः शस्त्रकर्मणि ॥ ११८ ॥ तालुपाके तु कर्त्तव्यं विधानं पित्तनाशनम् ॥ स्नेहस्वेदौ तालुशोषे विधिश्चानिलनाशनः ॥ ११९ ॥

कूठ, कालीमिरच, वच, सैंधानिमक, पीपल और पाढ तथा केवटीमोथा इनके चूर्णको सहतमे मिलाकर घिसनेसे गलशुण्डी नष्ट होजातीहै ।

जो गलशुण्डी जीभपर होय तो अंगूठे और अगुलीरूपी संडासीसे उसको खींचकर मंडलाग्र नामक तलवारकी समान शस्त्रसे काट देवे । जो गलशुण्डीका अति छेदन हो जाय तो रुधिरके अत्यन्त स्राव होनेसे मनुष्य मरजाताहै और कम छेदन होय तो सूजन, लारका गिरना, तथा भ्रम

होताहै इसकारण जिसने छेदनेकी बहुतसी क्रिया देखी होंय ऐसा प्रवीण वैद्य बहुत सभालकर गलशुण्डीको काटकर पीछे पीपल, अतीस, कूठ, कालीमिरच, वच और सोंठ, इनके चूर्णको सहतमें मिलाकर उसमें सैंधानिमक डालकर उससे प्रतिसारण करे । तथा वच, अतीस, पाढ, रासना, कुटकी और नीम इनको औटाकर इसका कवल धारण करे ।

तुडिकेरी, अध्रूष, कच्छप, मांससघात और तालुपुप्पुट इनपर भी यह चिकित्सा करे किंतु इनपर शस्त्रक्रिया कुछ बदल करके करे ।

तालुपाक होय तो पित्तको नष्ट करनेवाली चिकित्सा करे ।

तालुशोष होय तो स्नेहन, स्वेदन और वातनाशक अन्यान्य क्रिया भी करे ॥ ११२-११९ ॥

अथ गलरोगाणां नामानि संख्या च ।

रोहिणी पञ्चधा प्रोक्ता कण्टशालूक एव च ॥ अधिजिह्वश्च वलयो बलासश्चैकवृन्दकः ॥ १२० ॥ ततो वृन्दः शतघ्नी च शिलायुः कण्ठविद्रधिः ॥ गलौघश्च स्वरघ्नश्च मांसतानस्तथैव च ॥ १२१ ॥ विदारी कण्ठदेशे तु रोगा अष्टादश स्मृताः ॥ १२२ ॥

पाच प्रकारकी रोहिणी, कंठशालूक, अधिजिह्व, वलय, बलास, एकवृंदक, वृन्द, शतघ्नी, शिलायु, कंठविद्रधि, गलौघ, स्वरघ्न, मांसतान और विदारी इसप्रकार गलेके रोग अठारह १८ है ॥ १२०-१२२ ॥

अथ रोहिण्याः सनिदानसंप्राप्तिः ।

गलेऽनिलः पित्तकफौ च मूर्च्छितौ प्रदूष्य मांसञ्च तथैव शोणितम् ॥ गलोपसंरोधकरैस्तथांकुरैर्निहन्त्यसून्व्याधिरयं च रोहिणी ॥ १२३ ॥

गले अनिलः वृद्धः तथा पित्तकफौ मूर्च्छितौ दुष्टौ मांसं शोणितं च प्रदूष्य तथा गलोपसंरोधकरैरसून्निहन्ति । अयं व्याधिः रोहिणीसंज्ञो ज्ञेयः । सर्वा रोहिण्यस्त्रिदोषजा उत्कर्षात्तु वातादिव्यपदेशः ॥

गलेमें वृद्धिको प्राप्त हुआ वायु अथवा वृद्धिको प्राप्त हुआ पित्त, अथवा वृद्धिको प्राप्त हुआ कफ अथवा वृद्धिको प्राप्त हुए तीनों दोष अथवा वृद्धिको प्राप्त हुआ रुधिर मास तथा रुधिरको दूपित करके गलेको अवरोध करनेवाले अकुरोंसे प्राणोंका नाशकरेहै । इस रोगको रोहिणी कहतेहैं ॥ १२३ ॥

अथ वातजरोहिणीलक्षणम् ।

जिह्वासमन्ताद्भृशवेदनास्तु मांसांकुराः कण्ठनिरोधनाः स्युः ॥ सा रोहिणी वातकृता प्रदिष्टा वातात्मकोपद्रवगाढजुष्टा ॥ १२४ ॥

जिह्वासमन्ताज्जिह्वायाः सर्वतः वातात्मकोपद्रवगाढजुष्टा कंपविनामस्तम्भादिभिरतिशयेन युक्ता ॥

जीभके चारो ओर अत्यन्त वेदनावाले और गलेको रोकनेवाले मांसके अकुर होतेहैं और उनके साथ वातसम्बन्धी स्तब्धता आदि उपद्रव भी होतेहैं । यह वातसे उत्पन्न रोहिणी कहीजातीहै ॥ १२४ ॥

अथ पित्तजरोहिणीलक्षणम् ।

क्षिप्रोद्गमा क्षिप्रविदाहपाका तीव्रज्वरा पित्तनिमित्तजाता ॥ १२५ ॥

गलेमें मांसके अकुर तत्काल उत्पन्न होजायँ, उनमें तत्काल दाह हो, तत्काल पकजाँय और तीव्र ज्वर होजाय इसको पित्तज रोहिणी कहतेहैं ॥ १२५ ॥

अथ कफजरोहिणीलक्षणम् ।

स्रोतोनिरोधिन्यपि मन्दपाका गुर्वी स्थिरा सा कफसम्भवा तु ॥ १२६ ॥

स्रोतोऽत्र कण्ठस्रोतः ॥

गलेकी शिराओंको रोककर गलेमें मांसके अंकुर उत्पन्न होतेहैं और वह मंद मंद पकतेहैं. भारी होतेहैं, स्थिर होतेहैं, इसको कफजा रोहिणी कहतेहैं ॥ १२६ ॥

अथ त्रिदोषजरोहिणीलक्षणम् ।

गम्भीरपाकिन्यनिवार्यवीर्या त्रिदोषलिङ्गा त्रिभवा भवेत्सा ॥ १२७ ॥

गलेमे उपरोक्त तीनो दोषोंके लक्षणोंवाले, गम्भीर पकनेवाले और कठिनतासे आराम होनेवाले ऐसे मासके अकुर उत्पन्न होंय यह त्रिदोषसे उत्पन्न रोहिणी कही जाती है ॥ १२७ ॥

अथ रक्तजरोहिणीलक्षणम्।

स्फोटैश्चिता पित्तसमानलिङ्गा साध्या प्रदिष्टा रुधिरात्मिका तु ॥ १२८ ॥

फुडियोंसे व्याप्त और पित्तके लक्षणोवाली जो रोहिणी होतीहै उसको वैद्य रुधिरजन्य रोहिणी कहतेहैं यह रोहिणी साध्य है ॥ १२८ ॥

अथ रोहिणीमरणावधिः।

सद्यस्त्रिदोषजा हन्ति त्र्यहात्कफसमुद्भवा ॥ पञ्चाहात्पित्तसम्भूता सप्ताहात्पवनोत्थिता ॥ १२९ ॥

तीनों दोषोसे उत्पन्न रोहिणी तत्काल मारदेती है, कफसे उत्पन्न रोहिणी तीन दिनमें मार देतीहै, पित्तजन्य रोहिणी पांच दिनमे मार देतीहै और वातजन्य रोहिणी सात दिनमे मारदेती है ॥ १२९ ॥

अथ कंठशालूकलक्षणम्।

कोलास्थिमात्रः कफसम्भवो यो ग्रन्थिर्गले कण्टकशूकभूतः ॥ खरः स्थिरः शस्त्रनिपातसाध्यस्तं कण्ठशालूकमिति ब्रुवंति ॥ १३० ॥

कण्टकशूकभूतः कण्टकवत् शूकवच्च वेदनाजनकः ॥

गलेमे काटेकी समान तथा धानकी अनीकी समान वेदना उत्पन्न करनेवाले, खरखरे, कठिन, बेरकी गुठली की समान और शस्त्रकाट्य ऐसी जो ग्रंथि होय उनको कठशालूक कहतेहैं, यह ग्रंथि कफके प्रकोपसे होतीहै। यह शस्त्रके चीरनसे साध्य है ॥ १३० ॥

अथाधिजिह्वकलक्षणम्।

जिह्वाग्ररूपः श्वयथुः कफात्तु जिह्वोपरिष्टादसृजैव मिश्रात् ॥ ज्ञेयोऽधिजिह्वः खलु रोग एष विवर्जयेदागतपाकमेनम् ॥ १३१ ॥

असृजा मिश्रादेवेत्यन्वयः ॥

जीभके ऊपर जीभकी अणीकी समान जो सूजन होतीहै उसको अधिजिह्वक कहतेहैं, यह सूजन जो पकजाय तो इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये यह रोग रुधिर मिश्रित कफके प्रकोपसे होताहै ॥ १३१ ॥

अथ वलयलक्षणम्।

बलास एवायतमुन्नतश्च शोथं करोत्यन्नगतिं निवार्य ॥ तं सर्वथैवाप्रतिवार्यमेव विवर्जनीयं वलयं वदन्ति ॥ १३२ ॥

प्रकोपको प्राप्त हुआ कफ अन्नकी गतिको रोककर गलेमे लम्बी तथा ऊंची सूजनको उत्पन्न करे इसको वलय कहतेहैं। यह रोग किसी प्रकार भी दूर नहीं होता इस लिये इसकी चिकित्सा नही करनी चाहिये ॥ १३२ ॥

अथ बलासलक्षणम्।

गले तु शोथं कुरुतः प्रवृद्धौ श्लेष्मानिलौ श्वासरुजोपपन्नम्॥ मर्मच्छिदं दुस्तरमेनमाहुर्बलाससंज्ञं भिषजो विकारम्॥१३३॥

मर्मच्छिदं हृदयमर्मणि छेदेनेव वेदनाजनकम् ॥

वृद्धिको प्राप्त हुए कफ तथा वायु यह गलेमें श्वास पीडासहित और हृदयके मर्मस्थलमें छेदन करनेवाली ऐसी व्यथाको उत्पन्न करनेवाली जो सूजन होतीहै इसको बलास कहतेहैं, वैद्यलोग कहतेहैं कि यह रोग दुस्तर है ॥ १३३ ॥

अथैकवृन्दलक्षणम्।

वृत्तोन्नतोऽन्तः श्वयथुः सदाहः सकण्डुरोऽपाक्यमृदुर्गुरुश्च ॥ नाम्नैकवृन्दः परिकीर्तितोऽसौ व्याधिर्बलासक्षतजप्रसूतः ॥ १३४ ॥

अन्तः गलमध्ये अपाकी ईषत्पाकी। अमृदुः ईषन्मृदुः ॥

कफ और रुधिरके प्रकोपसे गलेमे गोल, नवी हुई, दाह और खुजली सहित कुछेक पकनेवाली, कुछ कोमल और भारी सूजन उत्पन्न होतीहै इस रोगको वैद्य एकवृन्द कहतेहैं ॥ १३४ ॥

अथ वृंदलक्षणम् ।

समुन्नतं वृत्तममन्ददाहं तीव्रज्वरं वृन्दमुदाहरन्ति ॥ तं चापि पित्तक्षतजप्रकोपाद्विद्यात्सतोदं पवनात्मकं तु ॥ १३५ ॥

पित्त और रुधिरके प्रकोपसे अत्यत ऊंची, गोल, अत्यंत दाहवाली और तीव्र ज्वरवाली जो सूजन होतीहै वैद्य इसको वृंद कहतेहैं । इसमे यदि शूल होय तो वातसम्बन्धी जानना ॥ १३५ ॥

अथ शतघ्नीलक्षणम् ।

वर्तिर्घना कण्ठनिरोधनी तु चितातिमात्रं पिशितप्ररोहैः ॥ अनेकरुक्प्राणहरी त्रिदोषाज्ज्ञेया शतघ्नीसदृशी शतघ्नी॥१३६॥

घना कठिना । अनेकरुक् वातपित्तकफजतोददाहकण्ड्वादियुक्ता शतघ्नीसदृशी लौहकण्टकसञ्छन्ना शतघ्नी महती शिला तत्तुल्या यतः प्राणहरी ॥

वात, पित्त तथा कफसे उत्पन्न होनेवाली व्यथा, दाह और खुजली आदि विकारोंवाली, कठिन, मासके अङ्कुरोंसे अत्यंत व्याप्त और कंठको रोकनेवाली जो वत्ती उत्पन्न होतीहै उसको शतघ्नी कहतेहैं । यह वत्ती त्रिदोषके प्रकोपसे उत्पन्न होनेके कारण शतघ्नी (लोहेके कांटोंसे ढकीहुई बडी भारी शिला) की समान होतीहै इसकारण इसको 'शतघ्नी' कहतेहैं ॥ १३६ ॥

अथ गलायुलक्षणम् ।

ग्रन्थिर्गले त्वामलकास्थिमात्रः स्थिरोऽल्परुक्स्यात्कफरक्तमूर्तिः ॥ संलक्ष्यते सक्तमिवाशनञ्च स शस्त्रसाध्यस्तु गलायुसंज्ञः ॥ १३७ ॥

कफ और रुधिरके प्रकोपसे गलेमें आमलेकी गुठलीकी समान, स्थिर, अल्प वेदनावाली और भोजन किया अन्न गलेमें अटकासा मालूम होय ऐसी ग्रंथि उत्पन्न होय इसको वैद्य गलायु कहतेहैं । यह रोग शस्त्र क्रियासे दूर होताहै ॥ १३७ ॥

अथ कंठविद्रधिलक्षणम् ।

सर्वं गलं व्याप्य समुत्थितो यः शोफो रुजः सन्ति च यत्र सर्वाः ॥ स सर्वदोषैर्गलविद्रधिस्तु तस्यैव तुल्यः खलु सर्वजश्च ॥ १३८ ॥

सम्पूर्ण दोषोंके प्रकुपित होनेसे सर्व प्रकारकी वेदनावाली और सम्पूर्ण गलेमें व्याप्त होकर जो सूजन उत्पन्न होतीहै उसको कंठविद्रधि कहतेहैं, यह कंठविद्रधि त्रिदोषजन्य विद्रधिकी समान है ॥ १३८ ॥

अथ गलौघलक्षणम् ।

शोथो महान्यस्तु गलावरोधी तीव्रज्वरो वायुगतेर्निहन्ता ॥ कफेन जातो रुधिरान्वितेन गले गलौघः परिकीर्तितोऽसौ ॥ १३९ ॥

वायुगतेर्निहन्ता उदानवायुगतिरोधकः ॥

कफ और रुधिरके प्रकोपसे गलेमे अन्न तथा जलको रोकनेवाली, उदान वायुकी गतिको हरनेवाली और तीव्र ज्वरवाली जो बडी सूजन उत्पन्न होतीहै उसको गलौघ कहतेहैं ॥ १३९ ॥

अथ स्वरघ्नलक्षणम् ।

यस्ताम्यमानः श्वसिति प्रसक्तं भिन्नस्वरः शुष्कविमुक्तकण्ठः ॥ कफोपदुष्टेष्वनिलायनेषु ज्ञेयः स रोगः श्वसनात्स्वरघ्नः ॥ १४० ॥

ताम्यमानः तमः पश्यन् शुष्कविमुक्तकण्ठः शुष्को विमुक्तोऽस्वाधीनः कण्ठो यस्य सः । अस्वाधीनता भक्तं गिलितमशक्यत्वादनिलायनेषु वायुवर्त्मसु । श्वसनाद्वातात् ॥

वायुके मार्ग कफसे दुष्ट होकर अंधकार दीखे, वारवार हॉफनी आवे, गला सूखजाय तथा अन्नादि निगलनेको असमर्थ होय और स्वर बिगड जाय इस रोगको वैद्य स्वरघ्न कहतेहैं, यह रोग वायुके प्रकोपसे होताहै ॥ १४० ॥

अथ मांसतानलक्षणम्।

प्रतानवान्यः श्वयथुः सुकष्टो गलोपरोधं कुरुते क्रमेण ॥ स मांसतानः कथितोऽवलम्बी प्राणप्रणुत्सर्वकृतो विकारः॥ १४१

प्रतानवान् विस्तारवान्। सुकष्टः अतिशयितं कष्टं यत्र सः॥

गलेमें फैलनेवाली, लटकती और महाकष्ट देनेवाली जो सूजन क्रमक्रमसे गलेको रोक देती है, इस रोगको मांसतान कहते हैं। यह रोग त्रिदोषजन्य होनेके कारण प्राण नाशक है॥ १४१॥

अथ विदारीलक्षणम्।

सदाहतोदं श्वयथुं सुताम्रमन्तर्गले पूतिविशीर्णमांसम् ॥ पित्तेन विद्याद्वदने विदारीं पार्श्वे विशेषात्स तु येन शेते ॥ १४२ ॥

स पुरुषो येन पार्श्वेण विशेषाद्बाहुल्येन शेते तस्मिन्पार्श्वे सा विदारी भवतीत्यर्थः॥

पित्तके प्रकोपसे गलेमे दाह, तीव्र पीडा, अत्यन्त लाल और दुर्गन्धित तथा मांसको फाडनेवाली जो सूजन उत्पन्न होती है उसको विदारी कहते हैं। मनुष्य जिस करवटसे अधिक सोताहै उसी पार्श्वमे यह रोग उत्पन्न होताहै॥ १४२॥

अथ गलरोगचिकित्सा।

रोहिणीनान्तु साध्यानां हितं शोणितमोचनम् ॥ वमनं धूमपानञ्च गण्डूषो नस्यकर्म च ॥ १४३ ॥ वातजान्तु हृते रक्ते लवणैः प्रतिसारयेत्॥ सुखोष्णान्स्नेहगण्डूषान्धारयेच्चाप्यभीक्ष्णशः ॥ १४४ ॥ विस्राव्य पित्तसम्भूतां सिताक्षौद्रप्रियंगुभिः॥ घर्षयेत्कवलो द्राक्षापरूषैः कथितो हितः॥ १४५॥ आगारधूमकटुकैः कफजां प्रतिसारयेत् ॥ १४६ ॥

आगारधूमः कोल इति लोके। कटुकानि शुण्ठीपिप्पलीमरिचानि ॥

श्वेताविडंगदन्तीषु तैलं सिद्धंससैन्धवम् ॥ नस्यकर्माणि दातव्यं कवलश्च कफोच्छ्रये ॥ १४७ ॥

श्वेता अपराजिता ॥

पित्तवत्साधयेद्वैद्यो रोहिणीं पित्तसम्भवाम् ॥ विस्राव्य कण्ठशालूकं साधयेत्तुण्डिकेरिवत् ॥ १४८ ॥ एककालं यवान्नञ्च भुञ्जीत स्निग्धमल्पशः ॥ उपजिह्वकवच्चापि साधयेदधिजिह्वकम् ॥ १४९ ॥ एकवृन्दं तु विस्राव्य विधिं शोधनमाचरेत् ॥ एकवृन्दमिव प्रायो वृन्दश्च समुपाचरेत् ॥ ॥ १५० ॥ गलायुश्चापि यो व्याधिस्तञ्च शस्त्रेण साधयेत् ॥ अमर्मस्थं सुसम्पक्कं छेदयेद्गलविद्रधिम् ॥ १५१ ॥

जो रोहिणी साध्य है उसमे रुधिर निकलवाना उत्तम है। वमन, धूमपान, कुल्ला और नस्यक्रिया, यह रोपण रोहिणीके ऊपर करे।

वायुसे उत्पन्न रोहिणी होय तो रुधिर निकलवाकर पश्चात् सैंधानिमक आदि लवणोंसे प्रतिसारण करे और सुहाते सुहाते ऐसे उष्ण स्नेहोंके कुल्लोंको वारंवार धारण करे।

पित्तसे उत्पन्न रोहिणी होय तो उसमेंसे रुधिर निकलवाकर खांड,सहत तथा फूलप्रियंगू इनसे प्रतिसारण करे और दाख तथा फालसेका कवल धारण करे।

कफसे उत्पन्न रोहिणी होय तो घरके धुआंसेकी धूल, सोंठ, मिरच और पीपल इनके चूर्णसे प्रतिसारण करे। सुफेद अपराजिता, वायविडंग और जमालगोटा इनके कल्कसे पकाये हुए तैलमे सैंधानमक डालकर इसका नास देवे और सफेद कोयल, वायविडग तथा जमालगोटा इनका कवल भी धारण करे।

वैद्य पित्तजन्य रोहिणीको पित्तशामक उपायोंसे शांत करे। कंठशालूक होय तो वैद्य उसमेंसे रुधिर निकलवाकर पश्चात् तुडीकेरीकी जो चिकित्सा कही है वह

करे और जौका भोजन दिन रातमें एक वार थोडासा स्निग्ध भोजन करे ।

अधिजिह्वक होय तो जो चिकित्सा उपजिह्वककी कही है वह सब करे । एकवृंद होय तो उसमेसे रुधिर निकलवाकर पश्चात् शोधन विधि करे ।

वृन्द होय तो एकवृन्दकी समान अत्युत्तम चिकित्सा करे ।

गिलायु होय तो उसको शस्त्रसे काटकर दूर करे ।

कण्ठविद्रधि मर्ममें न होय और अच्छे प्रकारसे पकगई होय तो उसका छेदन करे ॥ १४३–१५१ ॥

अथ गलरोगाणां सामान्यचिकित्सा ।

कण्ठरोगेष्वसृङ्मोक्षैस्तीक्ष्णैर्नस्यादिकर्मभिः ॥ चिकित्सकश्चिकित्सान्तु कुशलोऽत्र समाचरेत् ॥ १५२ ॥ क्काथं दद्याच्च दार्वीत्वङ्निम्बताक्ष्यकलिंगकम् ॥ हरीतकीकषायो वा हितो साक्षिकसंयुतः ॥ ॥ १५३ ॥ कटुकातिविषादारुपाठामुस्तकलिंगकाः॥ गोमूत्रक्कथिताः पीताः कण्ठरोगविनाशनाः ॥ १५४ ॥ मृद्वीका कटुका व्योषं दार्वीत्वक् त्रिफला घनम् ॥ पाठा रसाञ्जनं दूर्वा तेजोह्वेति सुचूर्णितम् ॥ १५५ ॥ क्षौद्रयुक्तं विधातव्यं गलरोगे महौषधम् ॥ योगाश्चैते त्रयः प्रोक्ता वातपित्तकफापहाः ॥ १५६ ॥ यवाग्रजं तेजवतीञ्च पाठां रसाञ्जनं दारुनिशां सकृष्णाम ॥ क्षौद्रेण कुर्याद्गुटिकां मुखेन तां धारयेत्सर्वगलामयेषु ॥ १५७ ॥

प्रवीण वैद्य गलेके रोगोंका रुधिर निकलवाकर और तीव्र नस्य आदि देनेसे चिकित्सा करे ।

दारुहल्दी, तज, नीम, रसौत और इन्द्रजौ इनका क्वाथ देनेसे अथवा सहत डालकर हरडका क्वाथ पीनेसे गलेके रोग नष्ट हो जाते हैं । यह वातज गलरोगोंकी चिकित्सा कही है ।

कुटकी, अतीस, देवदारु, पाढ, नागरमोथा और इन्द्रजौ इनका गोमूत्रमें क्वाथ करके पिवे तो गलेके समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं । यह पित्तजन्य गलरोगोंकी चिकित्सा कही है ।

दाख, कुटकी, सोंठ, मिरच, पीपल, दारुहलदी, तज, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, पाढ, रसौत, चुरनहार, और तेजबल इनका वारीक चूर्ण करके सहतमें मिलाकर उपयोग करे तो कफजन्य समस्त गलरोग नष्ट हो जाते हैं ।

जवाखार, तेजवल, पाढ, रसौत, दारुहलदी, और पीपल इनकी सहतमे गोली बनाकर मुखमें रखनेसे सर्वप्रकारके गलरोग नष्ट होजाते हैं ॥ १५२–१५७ ॥

अथ समस्तमुखरोगसंख्या ।

पृथग्दोषैस्त्रयो रोगाः समस्तमुखजाः स्मृताः ॥ १५८ ॥

वातज, पित्तज और कफज ऐसे सम्पूर्ण मुखमें तीन प्रकारके रोग होते हैं ॥ १५८ ॥

अथ वातजमुखरोगलक्षणम् ।

स्फोटैः सतोदैर्वदनं समन्ताद्यत्राचितं सर्वसरः स वातात् ॥ १५९ ॥

व्यथायुक्त छालोंसे चारों ओर मुख भरा होय तो उसको वातजन्य सर्वसर रोग जानना ॥ १५९ ॥

अथ पैत्तिकमुखरोगलक्षणम् ।

रक्तैः सदाहैः पिडकैः सपीतैर्यत्राचितं चापि स पित्तकोपात् ॥ १६० ॥

दाहयुक्त और पीले रंगके छोटे छोटे छालोंसे सम्पूर्ण मुख व्याप्त होय तो उसको पित्तजन्य सर्वसर मुखरोग कहते हैं ॥ १६० ॥

अथ कफजमुखरोगलक्षणम् ।

अवेदनैः कण्डुयुतैः सवर्णैर्यत्राचितं चापि स वै कफेन ॥ १६१ ॥

यत उक्तं सुश्रुतेन–अल्पवेदनैरिति ॥

मदवेदनायुक्त, खुजलीयुक्त और मुखके वर्णवाले छालोसे सम्पूर्ण मुख भरजाय तो उसको कफजनित सर्वसर मुखरोग कहते हैं ॥ १६१ ॥

अथासाध्या मुखरोगाः ।

ओष्ठप्रकोपे वर्ज्यास्तु मांसरक्तत्रिदोषजाः ॥ दन्तवेष्टेषु वर्ज्यो तु त्रिलिंगगतिसौषिरौ ॥ १६२ ॥

त्रिलिंगगतिः त्रिदोषजा नाडी ॥

दन्तेषु च न सिध्यन्ति श्यावदालनभञ्जनाः ॥ जिह्वारोगेष्वलासस्तु तालुजेष्वर्बुदं तथा ॥ १६३ ॥ स्वरघ्नो वलयो वृन्दो बलासः स हि दारुणः ॥ गलौघो मांसतानश्च शतघ्नी रोहिणी गले ॥ १६४ ॥ असाध्याः कीर्तिता ह्येते रोगा दश नवोत्तराः ॥ तेषु वापि क्रियां वैद्यः प्रत्याख्याय समाचरेत् ॥ १६५ ॥

ओष्ठके रोगोंमे मांससे उत्पन्न हुए, रुधिरसे उत्पन्न हुए और त्रिदोषज रोग असाध्य है।

मसूढोंके रोगोंमे त्रिदोषसे उत्पन्न नाडी और सौषिर यह दो रोग असाध्य हैं। दंतरोगोंमे श्यावदंतक, दालन और भंजनक यह तीन रोग असाध्य हैं।

जीभके रोगोंमे अलास असाध्य है। तालुयेके रोगोंमे तालवर्बुद असाध्य है ॥

गलेके रोगोंमें स्वरघ्न, वलय, वृन्द, बलास, विदारी, गलौघ, मांसतान, शतघ्नी और, रोहिणी, यह नौ रोग असाध्य हैं। ऊपरके १० मिलायके ये उन्नीस रोग जो असाध्य माने हैं इनपर भी वैद्य चिकित्सा करे क्योंकि कदाचित् आरोग्य होजाय ॥ १६२–१६५ ॥

अथ सम्पूर्णमुखरोगचिकित्सा।

वातात्सर्वसरं चूर्णैर्लवणैः प्रतिसारयेत् ॥ तैलं वातहरैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः ॥ ॥ १६६ ॥ पित्तात्मके सर्वसरे शुद्धकायस्य देहिनः ॥ सर्वः पित्तहरः कार्यो विधिर्मधुरशीतलः ॥ १६७ ॥ प्रतिसारणगण्डूषधूमसंशोधनानि च ॥ कफात्मके सर्वसरे क्रमं कुर्यात्कफापहम् ॥ १६८ ॥ मुखपाके शिरावेधः शिरसश्च विरेचनम् ॥ मधु मूत्रघृतक्षीरैः शीतैश्च कवलग्रहः ॥ ॥ १६९ ॥ जातीपत्रामृताद्राक्षायासदार्वीफलत्रिकैः ॥ क्वाथः क्षौद्रयुतः शीतो गण्डूषो मुखपाकनुत् ॥ १७० ॥ कार्यश्च बहुधा नित्यं जातीपत्रस्य चर्वणम् ॥ कृष्णजीरककुष्ठेन्द्रयवचर्वणतस्त्र्यहात् ॥ ॥ १७१ ॥ मुखपाकव्रणक्लेददौर्गन्ध्यमुपशाम्यति ॥ पटोलनिम्बजम्ब्वाम्रमालतीनवपल्लवैः ॥ १७२ ॥ पञ्चपल्लवजः श्रेष्ठः कषायो मुखधावने ॥ पञ्चवल्कलजः क्वाथस्त्रिफलासम्भवोऽथ वा ॥ १७३ ॥ मुखपाके प्रयोक्तव्यः सक्षौद्रो मुखधावने ॥ स्वरसः कथितो दार्व्या घनीभूतो रसक्रिया ॥ सक्षौद्रा मुखरोगासृग्दोषनाडीव्रणापहा ॥ १७४ ॥ सप्तच्छदोशीरपटोलमुस्तहरीतकीतिक्तकरोहिणीभिः ॥ यष्ट्याह्वराजद्रुमचन्दनैश्च क्वाथं पिबेत्पाकहरं मुखस्य ॥ १७५ ॥

राजद्रुमः घनवहेरा इति लोके ॥

तिला नीलोत्पलं सर्पिः शर्करा क्षीरमेव च ॥ क्षौद्राढ्यो दग्धवल्कस्य गण्डूषो मुखपाकनुत् ॥ १७६ ॥ आस्वादिता सकृदपि मुखगन्धं सकलमपनयति ॥ त्वग्बीजपूरफलजा पवनमपाच्यं वारयति ॥ १७७ ॥ हरिद्रा निम्बपत्राणि मधुकं नीलमुत्पलम् ॥ तैलमेभिर्विपक्तव्यं मुखपाकहरं परम् ॥ १७८ ॥ यष्टीमधु पलमेकं त्रिंशन्नीलोत्पलस्य तैलस्य ॥ प्रस्थं तद्द्विगुणपयोविधिना पक्वं तु नस्येन ॥ १७९ ॥ निशि वदनस्य स्रावं क्षपयति गात्रस्य दोषसंघातम् ॥ कचघर्षत्वमवश्यं क्रमशोऽभ्यङ्गेन जन्तूनाम् ॥ १८० ॥

इति मुखरोगाधिकारः।

खारी चूर्णोंसे प्रतिसारण करे और वातनाशक पदार्थोंसे पकाये हुए तेलका कवल तथा नस्य देवे तो वातजन्य सर्वसर नष्ट होजाताहै।

शरीरको विरेचन आदि संशोधन कर पित्तनाशक सम्पूर्ण मधुर तथा शीतल विधि करे तो पित्तजन्य सर्वसर दूर होजाताहै। पित्तजन्य सर्वसरमे प्रतिसारण, कवल, धूमपान और संशोधन यह सब पित्तनाशक करे।

कफको हरनेवाली विधि करे और कफनाशक प्रतिसारण भी करे तो कफजन्य सर्वसर नष्ट होजाताहै।

नस छेदकर रुधिर निकाले शिरोविरेचन करे और सहत, मूत्र, घी, दूध तथा शीतल अन्य पदार्थोंके भी कवल धारण करे तो मुखपाक दूर होजाताहै ।

जावित्री, गिलोय, दाख, जवासा, हरड, बहेडा, आमले, इन सबका क्वाथ बनावे उस क्वाथको शीतल करके उसमें सहत डालकर पिये तो मुखपाक दूर होजाताहै ।

नित्य अनेकवार जावित्री चावे तो मुखपाक दूर होजाताहै ।

कालाजीरा, कूठ, और इन्द्रजौ इनको चर्वण करे तो मुखपाक, मुखव्रण, मुखका क्लेद और मुखकी दुर्गन्धि भी शमन होजाती है ।

कडवे परवलके, नीमके, जामुनके, आमके, और मालतीके नवीन पत्ते इन पचपल्लवोंका क्वाथ मुख धोनेके लिये बहुत उत्तम है ।

मुखपाक होय तो पचवल्कलका अथवा हरड, बहेडा और आमलेके क्वाथमें सहत डालकर उससे मुखको शुद्ध करे ।

दारुहलदीके गाढे स्वरसमें सहत डालकर उसका उपयोग करनेसे मुखरोग, रुधिरविकार और नाडीव्रण यह सब नष्ट होजातेहैं ।

सतवन, खस, कडवे, परवल, हरड, कुटकी, मुलैठी, अमलतास और लाल चदन इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे मुखपाक दूर होजाताहै ॥

तिल, नीले कमल, घी, खांड, दूध और सहत इनके कुल्हे करनेसे मुखपाक दूर हो जाताहै, जलनेसे उत्पन्न मुखपाकका यह उत्तम उपाय है ॥

बिजौरेके फलकी छालको एक बार खानेसे भी मुख का सम्पूर्ण दुर्गन्धि दूर होजातीहै और अपानवायु भी शात होतीहै ।

हलदी, नीमके पत्ते, मुलैठी और नीले कमल इनसे पकाये हुए तेलके कुल्हे आदि करनेसे भी मुखपाक अवश्य नष्ट होजाताहै ।

मुलैठी ४ चार तोले और नीले कमल २१ इकीस तोले इनका कल्क डालकर १२८ एक सौ अठाईस तोले दूधमें तेलको पकावे । इस तेलका नास लेनेसे रात्रिमें उत्पन्न भा मुखका स्राव और शरीरके रोगोंके समूह नष्ट होताहै । इस तेलकी मालिश करनेसे बालोंकी कमजोरी, गिरना, टूटना और जुँवें आदि सब दूर होते है ॥ १६६–१८० ॥

इति मुखरोगाधिकारः संपूर्ण. ।

अथ विषाधिकारः ।

स्थावरं जंगमश्चैव द्विविधं विषमुच्यते ॥
दशाधिष्ठानमाद्यं तु द्वितीयं षोडशाश्रयम् ॥ १ ॥

स्थावर और जगम इस रीतिसे विष दो प्रकारका है । स्थावर विषके दश आश्रय हैं और जगम विषके सोलह आश्रय (स्थान) हैं ॥ १ ॥

अथ स्थावरविषस्य दश स्थानानि ।

मूलं पत्रं फलं पुष्पं त्वक् क्षीरं सारमेव च ॥ निर्यासो धातवः कन्दः स्थावरस्याश्रया दश ॥ २ ॥

तद्यथा–मूलविषं करवीरादि । पत्रविषं विषपत्रिकादि । फलविषं कर्कोटकादि । पुष्पविषं वेत्रादि । त्वक्सारनिर्यासविषाणि करम्भादीनि । क्षीरविषं स्नुह्यादि । धातुविषं हरितालादि । कन्दविषं वत्सनाभशक्तुकादि ॥

मूलें, पैत्ते, फलें, फूलें, छोल, दूधँ, सौंर, गोंदं, धातु और कंदं इस प्रकार स्थावर विषके दश स्थान हैं ॥

मूलविष कनेर आदिकी जडमे रहताहै । पत्रविष विषपत्रिकादिमे रहताहै । फलविष कर्कोटकादि फलोंमें रहताहै । फूलविष वेत आदिके फूलोंमें रहताहै । छाल सार और गोद विष चौंटली आदिकी छालमें रहताहै । दूधविष थूहर आदिके दूधमे, धातुविष हरिताल सोमल आदि धातुओंमे और कदविष वत्सनाभ शक्त आदिके कदमें रहताहै ॥ २ ॥

अथ जंगमविषस्य षोडश स्थानानि ।

दृष्टिनिःश्वासदंष्ट्राश्च नखमूत्रमलानि च ॥ शुक्रं लालास्पर्शमुखसंदंशं शवमर्दितम् ॥ गुदास्थिपित्तशूकानि दश षट् जंगमाश्रयाः ॥ ३ ॥

तद्यथा । दृष्टिनिःश्वासविषाः दिव्याः सर्पाः । दंष्ट्राविषाः भौमसर्पाः । दंष्ट्रानखविषा व्याघ्रादयः । मूत्रपुरीषविषाः गृहगोधिकादयः । शुक्रविषा मूषिकादयः । लाला-

विषाः उच्चिङ्गटादयः । लूता लालास्पर्शमूत्रपुरीषार्तवशुक्रमुखसंदंशविषाः । मुखसंदंश दंष्ट्रापर्दितगुदपुरीषविषाः चित्रशीर्षादयः । अस्थिविषाः सर्पादयः । पित्तविषाः शकुलमत्स्यादयः । शूकविषाः भ्रमरादयः । शवविषा गतासवः कीटसर्पदेहाः ।

दृष्टि, निश्वास, डाढें, नख, मूत्र, विष्ठा, वीर्य, लार, मुख, स्पर्श, डसना, अधोवायु, गुदा, अस्थि, पित्त और शूक (मुखकी अनी) इस प्रकार जगम विषके यह सोलह आश्रय है ।

दिव्य सर्पोंकी दृष्टि और निश्वासमें विष रहताहै । पृथ्वीके भयंकर सर्पोंकी दाढमें विष रहताहै । वाघ, सिंह आदि जीवोंकी दाढ तथा नखूनोंमें विष रहताहै । छपकली आदि जीवोंके मूत्र और विष्ठामे विष रहताहै । चूहे आदिके शुक्रमे विष रहताहै । मकडी आदिकी लारमें विष रहताहै । चित्रशीर्ष आदिकी लारमे, स्पर्शमे, मूत्रमे, विष्ठामे, वीर्यमें, मुखमे, दशमे, अधोवायुमे तथा गुदामे विष रहताहै । सर्प आदिकी अस्थियोंमें विष रहताहै । शकुल आदि मछलिओंके पित्तमे विष रहताहै । और भैंरि आदिके मुखके अग्रभागमें विष रहता है ॥ ३ ॥

अथ मूलादिविषाणां प्रत्येकशो लक्षणम् ।

तत्र मूलविषकार्य्यम् ।

उद्वेष्टनं मूलविषैर्मोहः प्रलपनं तथा ॥ ४ ॥

मूलविषको भक्षण करनेसे शरीर ऐंठै, बेहोसी और प्रलाप होताहै ॥ ४ ॥

अथ पत्रविषकार्यम् ।

जृम्भणं वेपनं श्वासो नृणां पत्रविषैर्भवेत् ॥ ५ ॥

पत्रविषको भक्षण करनेसे जम्भाई आतीहै, कम्प और श्वास होताहै ॥ ५ ॥

अथ फलविषकार्यम् ।

मुष्कशोथः फलविषैर्दाहो द्वेषश्च भोजने ॥ ६ ॥

फलविषको भक्षण करनेसे अंडकोषोमे सूजन, दाह और भोजनपर अरुचि होतीहै ॥ ६ ॥

अथ पुष्पविषकार्यम् ।

भवेत्पुष्पविषैश्छर्दिराध्मानं मूर्च्छनं तथा ॥ ७ ॥

फूलके विष खानेसे वमन, अफारा और मूर्च्छा होतीहै ॥ ७ ॥

अथ त्वक्सारनिर्यासविषकार्यम् ।

त्वक्सारनिर्यासविषैरुपभुक्तैर्भवन्ति हि ॥ आस्यदौर्गन्ध्यपारुष्यशिरोरुक्कफसंश्रयाः ८

छाल, सार और गोदके विषको भक्षण करनेसे मुखमें दुर्गंध, मस्तकमें पीडा, शरीरमें रूक्षता और कफका स्राव होताहै ॥ ८ ॥

अथ क्षीरविषकार्यम् ।

फेनागमः क्षीरविषैर्विड्भेदो गुरुजिह्वता ॥ ९ ॥

क्षीरविषको खानेसे मुखमे झाग आतेहैं, दस्त होतेहैं और जीभ जड होजातीहै ॥ ९ ॥

अथ धातुविषकार्यम् ।

हृत्पीडनं धातुविषैर्मूर्च्छा दाहश्च तालुनि ॥ प्रायेण कालघातीनि विषाण्येतानिनिर्दिशेत् ॥ १० ॥

एतानि मूलविषाणि नव कालघातीनि कालान्तरमारकाणि ॥

धातु विषको खानेसे हृदयमे पीडा, मूर्च्छा और तालुवेमें दाह होताहै । उपरोक्त मूल आदि नौ विषोको खानेसे विशेष करके कालातरमें मृत्यु होतीहै ॥ १० ॥

अथोपर्युक्तनवविषविशेषलक्षणम् ।

तत्र कंदविषविशेषकार्यम् ।

कन्दजान्युग्रवीर्याणि यान्युक्तानि त्रयोदश ॥ सर्वाण्येतानि कुशलैर्ज्ञेयानि दशभिर्गुणैः ॥ ११ ॥

कदसे उत्पन्न तेरह प्रकारका विष जो कि, सुश्रुत आदि ग्रंथोंमे कहा है वह उग्रशक्ति सम्पन्न है अर्थात् तत्काल प्राणोंको नष्ट करदेताहै ॥ ११ ॥

अथ विषपरीक्षा ।

स्थावरं जंगमं वापि कृत्रिमं चापि यद्वि-

पम ॥ सद्यो निहन्ति तत्सर्वं गुणैश्च दश-भियुतम् ॥ १२ ॥

प्रवीण वैद्य सम्पूर्ण विषोंकी परीक्षा नीचे लिखे दश-गुणोंसे करे । स्थावरविष, जंगमविष और कृत्रिम विष जो दशगुणोंसे युक्त होय तो तत्काल मनुष्यको मारदेते हैं ॥ १२ ॥

अथ विषस्य दशगुणाः ।

रूक्षमुष्णं तथा तीक्ष्णं सूक्ष्ममाशु व्यवायि च ॥ विकाशि विशदश्चैव लघ्वपाकि च ते दश ॥ १३ ॥

रूक्ष, उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, आशु, व्यवायी, विकाशी, विशद, लघु और अपाकी ये दश गुण विषमें रहते-हैं ॥ १३ ॥

अथोक्तदशगुणानां कार्यम् ।

तद्रौक्ष्यात्कोपयेद्वायुमौष्ण्यात्पित्तं सशोणितम् ॥ तैक्ष्ण्यान्मतिं मोहयति मर्मबन्धाञ्छिनत्ति हि ॥ १४ ॥ शरीरावयवान्सौक्ष्म्यात्प्रविशेद्विकरोति च ॥ आशुत्वादाशु तत्प्रोक्तं व्यवायात्प्रकृतिं हरेत् ॥ १५ ॥ विकाशित्वात्क्षपयति दोषान्धातून्मलानपि ॥ अतिरिच्यते वैशद्यादुश्चिकित्स्यं च लाघवात् ॥ १६ ॥ दुर्जरं चाविपाकित्वात्तस्मात्क्लेशयते चिरम् ॥ १७ ॥

तदा विष रूक्ष होनेके कारण वायुको कुपित करैहै । उष्ण होनेके कारण पित्त तथा रुधिरको प्रकुपित करैहै । तीक्ष्ण होनेके कारण बुद्धिको मोहयुक्त और मर्माके बंधनोंको तोडैहै । सूक्ष्म होनेके कारण शरीरके अवयवोंमें प्रविष्ट होजाताहै । आशु होनेके कारण शरीरमें तत्काल शीघ्रतासे फैलकर विकारोंको करैहै । व्यवायी होनेके कारण प्रकृतिको बदलदेताहै । विकाशी होनेके कारण दोषोंको, धातुओंको तथा मलोंको क्षय करदेताहै । विशद होनेसे कारण अतिदस्तोंको लाताहै । लघु होनेके कारण दुश्चिकित्स्य होजाताहै और अपाकी होनेके कारण नहीं कठिनतासे देरतक पचताहै, इन गुणोंके होनेसे विष बहुत दिनतक दुःख देताहै ॥ १४-१७ ॥

अथ विषलिप्तशस्त्रहतलक्षणम् ।

सद्यः क्षतं पच्यते यस्य जन्तोः स्रवेद्रक्तं पच्यते चाप्यभीक्ष्णम् ॥ कृष्णीभूतं क्लिन्नमत्यर्थपूतिक्षतान्मांसं शीर्यते यस्य वापि ॥ १८ ॥ तृष्णातापौ दाहमूर्च्छे च यस्य दिग्धं विद्धं तं मनुष्यं व्यवस्येत् ॥ लिंगान्येतान्येव कुर्यादमित्रैर्दत्तः क्ष्वेडो वा व्रणे यस्य चापि ॥ १९ ॥

पच्यते चाप्यभीक्ष्णं पुनः पुनः पाकमेति । तापः बहिः स्थितः । दाहोऽभ्यन्तरे कुर्यादित्यत्र क्षतं कर्तृपदं बोद्धव्यम् ।

घाव तत्काल पकजाय, घावमेंसे रुधिर बहाकरे, वारं-वार पके, घावमेंसे काला क्लेदयुक्त तथा अत्यंत दुर्गंधित मांस गिरे, तृषा लगे, बाहर संताप हो, भीतर दाह हो और मूर्छाभी होय तो जानना कि, इस मनुष्यके विषसे बुझे हुए शस्त्रका प्रहार हुआ है ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथ विषदातृलक्षणम् ।

इंगितज्ञो मनुष्याणां वाक्चेष्टामुखवैकृतैः ॥ जानीयाद्विषदातारमेभिर्लिंगैश्च बुद्धिमान् ॥ ॥ २० ॥ न ददात्युत्तरं पृष्टो विवक्षुर्मोहमेति च ॥ अपार्थं बहु सङ्कीर्णं भाषते चापि मूढवत् ॥ २१ ॥ अंगुलीः स्फोटयेदुर्वीं विलिखेत्प्रहसेदपि । वेपथुश्चास्य भवति त्रस्तश्चैकैकमीक्षते ॥ २२ ॥ विवर्णवक्त्रो ध्मानश्च नखैः किञ्चिच्छिनत्ति च ॥ आलभेतासकृद्दीनः करेण च शिरोरुहान् ॥ २३ ॥ निरीयासुरपद्वारैर्वीक्षते च पुनःपुनः ॥ वर्तते विपरीतं च विषदाता विचेतनः ॥ २४ ॥

इंगितमभिप्रायसूचकम् आकारम् । मुखवैकृतं मुखवैवर्ण्यादि । एभिर्लिंगैर्वक्ष्यमाणैः । न ददात्युत्तरं पृष्टः स्वीयसत्कर्मजनितभ्यामोहात् । संकीर्णमस्फुटम् । भयजनितपर्वव्यथापनोदाय अंगुलीः स्फोटयेत् । प्रहसेदहेतावपि । ध्मानः दग्धसमानवर्णः । आलभेत्स्पृशेत् । विपरीतं यथा स्यादेवं वर्तते ॥

प्रायः राजा और बडे मनुष्योंको उनके शत्रु सेवक अन्नादिकमे विष मिलाकर देतेहैं इसलिये उस विष देनेवालेके लक्षण नीचे लिखते हैं ॥

मनुष्योंके अभिप्रायको जाननेवाले बुद्धिमान् पुरुष वाणी (बोलना), चेष्टा (उठना, बैठना) और मुखके विकाररूप नीचे लिखे लक्षणोंसे विष देनेवालेको जानलेवैं विष देनेवालेसे पूछनेपर वह अपने दुष्ट कर्मकी बेहोसीसे उत्तर न देय और जो मनको रोककर बोले तो बोला न जाय, वा घबडा जाय, मूर्खकी समान बहुत व्यर्थ, तथा गिडगिडाकर गडवड वचन बोले, भयसे उत्पन्नहुई संधियोंकी पीडाको दूर करनेके लिये अंगुलियोंको चटकावे, विनाही कारण हँसे, पृथिवीको लिखे वा खोदे, कांपे, भयभीत होकर एक एक मनुष्यको देखे, मुँहका रंग बदल जाय वा मुख उतर जाय, जलेके समान रंगवाला होजाय, नखोंसे तृण आदिको तोडे, रंककी समान होकर बारंबार वालोंको हाथसे छुवे, दरवाजेको छोडकर दूसरे मार्गसे जानेकी बारबार चेष्टा करे विपरीत कामोंकी इच्छा करे असानी (पागल) सा होकर इधर उधर देखे और सबसे पीठ फेरकर बैठे, विष देनेवालेके यह लक्षण होते हैं ॥ २०-२४ ॥

अथ जंगमविषस्य सामान्यकार्यम्।

निद्रां तंद्रां क्लमं दाहं सम्पाकं लोमहर्षणम् ॥ शोथं चैवातिसारं च कुरुते जंगमं विषम् ॥ २५ ॥

जंगम विष निद्रा, तन्द्रा, ग्लानि, दाह, पाक, रोमांचोका होना, सूजन और अतिसारको उत्पन्न करे है ॥ २५ ॥

अथ जंगमविषस्यातितीक्ष्णत्वेन तदाश्रयसर्पलक्षणम्।

वातपित्तकफात्मानो भोगिमण्डलराजिलाः ॥ यथाक्रमं समाख्याता द्व्यन्तरा द्वन्द्वरूपिणः ॥ २६ ॥ फणिनो भोगिनो ज्ञेयाः संख्यातास्तेऽत्र विंशतिः॥ मण्डलैर्विविधैश्चित्राः पृथवो मन्दगामिनः ॥ षट् ते मण्डलिनो ज्ञेया ज्वलनार्कविषाः स्मृताः ॥ २७ ॥ स्निग्धा विविधवर्णाभिस्तिर्यगूर्द्ध्वं च राजिभिः ॥ विचित्रा इव ये भान्ति राजिलास्ते हि तेऽपि षट् ॥ २८ ॥

एते यथाक्रमं वातपित्तकफात्मानो बोध्याः। द्व्यन्तरा द्वे अन्तरे भेदो येषां ते द्व्यन्तराः यथाभोगिनो मण्डलिन्यां जाता इत्यादि ॥

मुख्यतासे प्रायः भोगी मंडली और राजिल इस प्रकार तीन जातिके सर्प हैं। इनमे भोगीसर्प वातप्रकृतिवाले हैं। मंडलीसर्प पित्तकी प्रकृतिवाले हैं और राजिल सर्प कफकी प्रकृतिवाले हैं। और जो एक जातिके सर्पसे दूसरी जातिकी सर्पिणीसे उत्पन्न (जैसे कि, भोगीजातिके सर्पसे मंडलीजातिकी सर्पिणीमें उत्पन्न) हुआ होय वह मिश्रित प्रकृतिवाला है। फणवाले सर्पको भोगी कहतेहैं और उसके वीस भेद हैं। जो सर्प विविध मंडलोंसे चित्रित, मोटे और मंदगतिवाले है वे मण्डली जातिके सर्प हैं ये सर्प अग्नि तथा सूर्यकी समान अत्यन्त उग्र विषवाले होतेहै उनके छः भेद है। जो सर्प स्निग्ध है और आढी सीधी नीची ऊंची रेखाओंसे चित्रित दीखतेहैं वह राजिल सर्प कहे जातेहैं और उनके छः भेदहैं२६-२८

अथ भोगिसर्पादिकृतदंशलक्षणम्।

दंशो भोगिकृतः कृष्णः सर्ववातविकारकृत् ॥पीतो मण्डलिनः शोथो मृदुः पित्तविकारवान् ॥ २९ ॥ राजिलोत्थो भवेद्दंशः स्थिरशोथश्च पिच्छिलः ॥ पाण्डुः स्निग्धोऽतिसान्द्रासृक्सर्वश्लेष्मविकारवान् ॥ ३० ॥

भोगी सर्पका डसाहुआ स्थान काला होताहै और सम्पूर्ण वायुसम्बन्धी विकारोंको उत्पन्न करेहै। मंडली सर्पका काटा हुआ स्थान पीला सूजनयुक्त होताहै, कोमल और पित्तसम्बन्धी विकारोंको उत्पन्न करेहै। राजिल सर्पका काटा हुआ स्थान स्थिर सूजनसहित चिकना पांडु स्निग्ध अत्यन्त गाढे रुधिरवाला और सपूर्ण कफजनित विकारोंवाला होताहै ॥ २९-३० ॥

अथ विशिष्टदेशादिदष्टस्य असाध्यत्वम् ।

अश्वत्थदेवायतनश्मशानवल्मीकसन्ध्यासु चतुष्पथेषु ॥ याम्ये च पित्र्ये परिवर्ज-नीया ऋक्षे शिरामर्मसु ये च दष्टाः ॥३१॥

याम्ये भरण्यां पित्र्ये मघायाम् ।

पीपल वृक्षके नीचे, देवमन्दिरमें, स्मशानभूमिमें, बाँबीमें, चौराहेमें, सन्ध्याकालमें, भरणी नक्षत्रमें और मघा नक्षत्रमें सर्पका काटाहुआ असाध्य है, शिरा मर्म स्थानोंमें काटा हुआ भी असाध्य है ॥ ३१ ॥

अथ दर्वीकरजातिसर्पाणां विषम् ।

दर्वीकराणां विषमाशु हन्ति मेघानिलोष्णे द्विगुणा भवन्ति ॥ ३२ ॥

उष्णे उष्णसंयोगे ॥

दर्वीकर जातिके सर्पका विष तत्काल मारदेताहै और वह सर्प वर्षा, पवन और गरमीके संयोगसे दुगुने बढतेहैं अथवा इनके संयोगसे उनका विष दुगुना बढता है ॥ ३२ ॥

अथ दर्वीकरलक्षणम् ।

रथाङ्गलांगलच्छत्रस्वस्तिकांकुशधारिणः॥ ज्ञेया दर्वीकराः सर्पाः फणिनः शीघ्रगा-मिनः ॥ ३३ ॥

जो सर्प चक्र, हल, साथिया और अंकुशके चिह्नयुक्त हों, फणवाला हो और बहुत शीघ्र चलनेवाला हो उसको दर्वीकर कहतेहैं ॥ ३३ ॥

अथापरेषु येषु यथाशुघातित्वं संभवति तानाह ।

अजीर्णपित्तातपपीडितेषु बालेषु वृद्धेषु बुभुक्षितेषु ॥ क्षीणे क्षते मेहिनि कुष्ठजुष्टे रूक्षेऽबले गर्भवतीषु चापि ॥ ३४ ॥ शस्त्रक्षते यस्य न रक्तमेति राज्यो लताभिश्च न सम्भवन्ति॥ शीताद्भिरद्भिश्च न रोमहर्षो विषाभिभूतं परिवर्जयेत्तम्॥ ॥ ३५ ॥ जिह्मं मुखं यस्य च केशशातो नासावसादश्च सकण्ठभंगः॥कृष्णश्च रक्तः श्वयथुश्च दंशे हन्वोः स्थिरत्वश्च विवर्ज-नीयः ॥ ३६ ॥

केशशातः आकर्षणात् । नासावसादः नासायाः नतत्वम् । कंठभंगः ग्रीवाधारणा-ऽशक्तिः । हन्वोः स्थिरत्वं हनुद्वयस्तम्भः । अपरश्च-

वान्तिर्घना यस्य निरेति वक्त्राद्रक्तं स्रवे-दूर्ध्वमधश्च यस्य ॥ दंष्ट्रानिपातांश्चतुरश्च पश्येद्यस्यापि वैद्यैः परिवर्जनीयः ॥३७॥

यस्य च नासामुखलिंगगुदादिभ्यो रक्तं स्रवेत् ॥

उन्मत्तमत्यर्थमुपद्रुतं वा हीनस्वरं वाप्यथ वा विवर्णम् ॥ सारिष्टमत्यर्थमवेगिनश्च जह्यान्नरं तत्र न कर्म कुर्यात् ॥ ३८ ॥

अत्यर्थमुपद्रुतं वा ज्वरातिसारादिभिरति-शयेन उपद्रुतम् । हीनस्वरं वक्तुमक्षमम् । विवर्णं कृष्णवर्णम् । सारिष्टं नासाभंगादियु-क्तम् । अवेगिनं वेगो विषवेगः । लहरि इति लोके । तद्रहितम् । स्थावरं जंगमं च विषमेव जीर्णत्वादिभिः कारणैर्दूषीविषसंज्ञां लभते ॥

अजीर्णसे पीडित, पित्तसे पीडित, धूपसे व्याकुल, बालक, वृद्ध, भूखा, क्षीण, घावयुक्त, प्रमेहरोगी, कुष्ठ-रोगी, रूखा शरीरवाला, निर्बल मनुष्य और गर्भवती स्त्री ये विषसे तत्काल मरजातेहैं । यदि विषसे पीडित मनुष्यके शरीरमें शस्त्रसे घाव करनेसे रुधिर न निकले, चाबुक मारनेसे शरीरमें उछले नहीं और शीतल जल बराबर शरीरपर डालनेसे रोमाच न होयँ तो ऐसे विषरो-गीकी चिकित्सा न करे । जिसका मुख टेढा हो गया होय, छूनेसे बाल टूट टूट कर गिरें, नाक तिरछी होजाय, बैठ जाय, नाड अर्थात् गरदन झुकजाय, लटक जाय, काटनेकी जगह काली लाल सूजन हो और दोनों जावडे स्तब्ध होजायँ उसकी भी चिकित्सा न करे । जिसके मुखमेंसे गाढी वमन निकलती हो, नाक, मुख, लिंग तथा गुदा आदिमेंसे रुधिर निकलता हो और जि-सके चार दांत लगे होयँ उसकी भी वैद्य चिकित्सा

न करे । जो मनुष्य उन्मत्त हो, ज्वर अथवा अतीसार आदिसे अत्यंत पीडित होय, बोलनेको असमर्थ हो, शरीरका वर्ण काला पडगया हो, नाक बैठजाना आदि अरिष्टोंसे युक्त हो और जिसके विषकी लहर न उठे उसको भी त्यागदेना चाहिये, अर्थात् उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि ऐसे मनुष्य तत्काल ज्वरसे मरजातेहैं । स्थावर और जंगम विष भी जीर्णतादि कारणोंसे दूषीविष कहेजातेहैं ॥ ३४-३८ ॥

अथ दूषीविषलक्षणम् ।

जीर्णं विषघ्नौषधिदूषितं वा दावाग्निवातातपशोषितं वा ॥ स्वभावतो वा गुणविप्रहीनं विषं हि दूषीविषतामुपैति ॥ ३९ ॥

जीर्णमतिपुराणम् । विषघ्नौषधिदूषितं विषघ्नीभिरौषधीभिर्वीर्यहानिकृतम् । स्वभावतो वा गुणविप्रहीनं स्वभावादेव दशानां गुणानां मध्ये एकद्वित्र्यादिगुणहीनम् ।

जो विष अत्यंत पुराना होगया हो, अथवा विषनाशक औषधियोंसे हीन वीर्य होगया हो, अथवा दावाग्नि, वायु और धूपसे सूखगया हो, अथवा स्वाभाविक दश गुणोंमेंसे एक दो तीन चार गुणरहित होगया हो तो उसको दूषीविष कहतेहैं ॥ ३९ ॥

अथ दूषीविषकार्यम् ।

वीर्याल्पभावान्न निपातयेत्तत्कफान्वितं वर्षगणानुबन्धि ॥ तेनार्दितो भिन्नपुरीषवर्णो विगन्धिवैरस्ययुतः पिपासी ॥ मूर्च्छां भ्रमं गद्गदवाग्वमिश्च विचेष्टमानोऽरतिमाप्नुयाद्वा ॥ ४० ॥

न निपातयेन्न मारयेत् । कफान्वितं कफेन मन्दीकृतौष्ण्यादिगुणम् । वर्षगुणानुबन्धि कफेनाग्नेर्मान्द्यादित्वादपाकाच्चिरस्थायि । तथा दूषीविषजदद्रुरोगवतां भिन्नपुरीषवर्णः भिन्नपुरीष उद्गतमलः भिन्नविवर्णः । विचेष्टमानः विरुद्धां चेष्टां कुर्वन्मूर्च्छादीन्व्याधीँल्लभते ॥

यह दूषीविष हीनवीर्य होनेके कारण मारता तो नहीं है किंतु कफसे उष्णादिगुणोंकी मन्दहोनेके कारण और कफसे अग्निकी मंदता होकर यह विष नहीं पकनेके कारण बहुत दिनोंतक शरीरमे रहताहै । दूषीविषसे पीडित मनुष्यके दस्त पतला आताहै, शरीरका रंग बदलजाताहै, विरुद्धचेष्टा करनेलगताहै, चैन नहीं मिलता और मूर्छा, भ्रम, वाणीका गद्गदपना और वमन ये व्याधि उत्पन्न होतीहैं ॥ ४० ॥

अथ स्थानविशेषेण दूषीविषलक्षणविशेषः ।

आमाशयस्थे कफवातरोगी पक्वाशयस्थेऽनिलपित्तरोगी ॥ भवेत्समुद्ध्वस्तशिरोऽङ्गरुट्को विलूनपक्षश्च यथा विहङ्गः ॥४१॥

समुद्ध्वस्तशिरोऽङ्गरुट्कः समुद्ध्वस्ताः शिरोरुहाः केशाः अङ्गरुहाणि लोमानि यस्य सः । एतदपि लिङ्गं पक्वाशयस्थे दूषीविषे बोद्धव्यम् ॥

स्थितं रसादिष्वथ तद्यथोक्तान्करोति धातुप्रभवान्विकारान् ॥ ४२ ॥

तत्र दूषीविषे । यथोक्तान्सुश्रुते व्याधिसमुद्देशीयोक्तान् ॥

दूषीविष आमाशयमें प्राप्त होय तो कफसम्बन्धी और वायुसम्बन्धी रोगोंको उत्पन्न करताहै । पक्वाशयमें प्राप्त होय तो वात और पित्तसम्बन्धी रोगोंको उत्पन्न करैहै, बाल और रोमोंमे प्राप्त होय तो परवरहित पक्षीकी समान कर देताहै, दूषीविष रसादि धातुओंमें प्राप्त होयतो सुश्रुतके सूत्रस्थानके व्याधिसमुद्देशीय नामके चौवीसवे अध्यायमें कहे अनुसार धातुसम्बन्धी विकारोंको उत्पन्नकरैहै ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अथ दूषीविषस्य प्रकोपसमयः ।

कोपं तु शीतानिलदुर्दिनेषु यात्याशु पूर्वं शृणु तस्य रूपम् ॥ ४३ ॥

यह दूषीविष अत्यंत शीतके समय, अत्यंत पवन चलनेके समय और बादलोंसे घिरे हुए दिनमे तत्काल प्रकोपको प्राप्त होताहै, अब प्रकुपित दूषीविषके पूर्वरूपको कहताहूं सो सुनो ॥ ४३ ॥

अथ प्रकुपितदूषीविषपूर्वरूपम् ।

निद्रा गुरुत्वञ्च विजृम्भणञ्च विश्लेषहर्षा-वथवाङ्गमर्दः ॥ ४४ ॥

विश्लेषः गात्रशैथिल्यम् । हर्षः रोमाञ्चः ॥

निद्रा, शरीरमें भारीपन, जम्भाईओंका आना, अगोंमें शिथिलता, रोमाचोंका होना, अगोंका टूटना यह प्रकुपित दूषीविषके पूर्वरूप हैं ॥ ४४ ॥

अथ प्रकुपितदूषीविषरूपम् ।

ततः करोत्यन्नमदाविपाकावरोचकं मण्डलकोठजन्म ॥ मांसक्षयं पाणिपदे प्रशोथं मूर्च्छां तथा च्छर्दिमथातिसारम् ॥४५॥ दूषीविषं श्वासतृषाज्वरांश्च कुर्यात्प्रवृद्धिं जठरस्य चापि ॥ ४६ ॥

अन्ने भुक्ते पूगफलेनेव मदः । अविपाकः अन्नस्य ॥

प्रकोपको प्राप्त हुआ दूषीविष अन्न जीमनेपर सुपारीकी समान मदको करताहै, अन्नको पचने नहीं देता, और अरुचि, शरीरमें चकत्ते और गांठोंको उत्पन्न करेहै, मांसक्षय, हाथ पांवोंमें सूजन, मूर्छा, वमन, अतीसार, श्वास, तृषा, ज्वर और उदरको बढाताहै ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

अथ दूषीविषभेदेन विकारभेदाः ।

उन्मादमन्यज्जनयेत्तथान्यदानाहमन्यत्क्षपयेच्च शुक्रम् ॥ गाद्गद्यमन्यज्जनयेच्च कुष्ठं तांस्तान्विकारांश्च बहुप्रकारान् ॥ ४७ ॥

अन्यद्दूषीविषम् । तांस्तान्विसर्पविस्फोटादीन् ॥

कोई दूषीविष उन्मादको उत्पन्न करेहै, कोई दूषीविष अनाहको उत्पन्न करेहै, कोई दूषीविष वीर्यको क्षीणकरेहै, कोई दूषीविष वाणीको गद्गद करेहै, कोई दूषीविष कोढको उत्पन्न करेहै और कोई दूषीविष अनेक प्रकारके विसर्प तथा विस्फोटकादि उपद्रवोंको उत्पन्न करेहै ॥ ४७ ॥

अथ दूषीविषशब्दनिरुक्तिः ।

दूषितं देशकालान्नदिवास्वप्नैरभीक्ष्णशः ॥ यस्मात्सन्दूषयेद्धातूंस्तस्माद्दूषीविषं स्मृतम् ॥ ४८ ॥

देशः आनूपादिः । कालो दुर्दिनादिः । अन्नं कुलत्थतिलमसूरादि । धातुदूषकत्वाद्दूषीविषम् ॥

देश, काल, अन्न और दिनकी निद्रासे वारवार दूषित हुआ यह विष धातुओंको दूषित करेहै इस कारण यह दूषीविष कहाजाताहै ।

जलप्राय आदि देशोंसे, वादलोंके घिरे हुए दिन आदि कालसे और कुलथी तिल तथा मसूर आदि अन्नोंसे यह विष दूषित होताहै ॥ ४८ ॥

अथ दूषीविषस्य साध्यत्वादि ।

साध्यमात्मवतः सद्यो याप्यं संवत्सरोत्थितम् ॥ दूषीविषमसाध्यं स्यात्क्षीणस्याहितसेविनः ॥ ४९ ॥

कृत्रिमं विषं द्विविधम् । एकं सविषं दूषीविषसंज्ञम् अपरमविषं तदेव गरसंज्ञम् । तथा च काश्यपसंहितायाम्–"संयोगजश्च द्विविधं द्वितीयं विषमुच्यते ॥ दूषीविषं तु सविषमविषं गरमुच्यते ॥" संयोगजं कृत्रिमं विषं द्वितीयं स्वाभाविकं तच्च द्विविधम् ॥

दूषीविष जितेन्द्रिय अर्थात् पथ्य सेवन करनेवालेको तत्काल साध्य होताहै । एक वर्षके पश्चात् याप्य होजाताहै और क्षीण तथा अपथ्य सेवन करनेवाले मनुष्यको असाध्य है ॥ ४९ ॥

दूषीविष और गर इस प्रकार कृत्रिमविष दो प्रकारका है । जिसमें विषका सम्बन्ध होय वह दूषीविष कहाजाताहै और जिसका निरूपण नीचे लिखतेहैं, जिसमें विषका सम्बन्ध नहीं होता उसको गर कहतेहैं ।

काश्यपसंहितामें कहाहै कि "कृत्रिम विष जो कि संयोगसे होताहै उसके दूषीविष और गर यह दो भेद हैं । विषके सम्बन्धवाला दूषीविष कहाजाताहै और विषके सम्बन्धी नहीं होनेपर जो विषका काम करे वह गर कहाजाताहै ।"

अथ कृत्रिमविषलक्षणम्।

सौभाग्यार्थं स्त्रियः स्वेदं रजो नानाङ्गजान्मलान् ॥ शत्रुप्रयुक्तांश्च गरान्प्रयच्छन्त्यन्नमिश्रितान् ॥ ५० ॥

स्त्रिये पतिको वशमें करनेके लिये पसीना, रज और अगके अनेक मलोंको भोजनमें मिलाकर पतिओको खिलादेतीहै तथा शत्रुभी इसी प्रकारके पदार्थोको भोजनमें मिलाकर मनुष्योंको खिलादेतेहैं यह पसीना आदि अधम पदार्थ गर कहाताहै ॥ ५० ॥

अथ गरकार्यम्।

तैः स्यात्पाण्डुः कृशोऽल्पाग्निर्ज्वरश्चास्योपजायते ॥ मर्मप्रधमनाध्मानं हस्तयोः शोथसम्भवः ॥ ५१ ॥

तैः गरैः स्वेदरजःप्रभृतिभिः। ज्वरश्चास्योपजायत इति अपाकात्। मर्मप्रधमनं मर्मव्यथा। क्षयो धातुक्षयः ॥

पसीना तथा रज आदि गरसे पांडुता होतीहै, शरीर कृश होजाताहै, अग्नि मन्द होजातीहै, ज्वर आताहै, मर्मस्थलोंमे पीडा होतीहै, अफारा होताहै, धातुक्षय और सूजन होतीहै ॥ ५१ ॥

अथ लूतानामकजन्तोरुत्पत्तिरर्थः संख्या च।

यस्माल्लूनं तृणं प्राप्ता मुनेः प्रस्वेदबिन्दवः ॥ तेभ्यो जातास्तथा लूता इति ख्यातास्तु षोडश ॥ ५२ ॥

तथा चात्र सुश्रुतः।

विश्वामित्रो नृपवरः कदाचिदृषिसत्तमम्॥ वसिष्ठं कोपयामास गत्वाश्रमपदं किल ॥ ५३ ॥ कुपितस्य मुनेस्तस्य ललाटात्स्वेदबिन्दवः ॥ अपतन्दर्शनादेव ह्यधस्तात्तीव्रवर्चसः ॥ ५४ ॥ लूने तृणे महर्षेस्तु धेन्वर्थे सम्भृतेऽपि च ॥ ततो जातास्त्विमे घोरा नानारूपा महाविषाः ॥ तासामष्टौ कष्टसाध्या वर्ज्यास्तावत्य एव हि ॥ ५५ ॥

तत्र त्रिमण्डलप्रभृतयोऽष्टौ कष्टसाध्याः सौवर्णिकप्रभृतयोष्टौ असाध्याः ॥

मुनिके पसीनेके छींटे तृणोंके ऊपर गिरे उसमेसे जो जीव उत्पन्न हुए वह लूता कहेजातेहै। लूताकी जाति सोलह हैं। 'लू' इस धातुका अर्थ 'काटनेका' है। इसपर सुश्रुत लिखताहै कि "राजाओंमे उत्तम विश्वामित्र किसी समय वसिष्ठके आश्रममे जाकर महामुनि वसिष्ठजीको क्रोधित कराते हुए अत्यन्त तेजस्वी यह महामुनि वसिष्ठजी विश्वामित्रके दर्शनसेही अत्यन्त कुपित हुए तब उनके ललाटमेंसे पसीनेकी बूंद गायके लिये काटे हुए तृण रक्खे थे उनपर गिरे, उनमेसे भयंकर महा विषैले और अनेक आकृतिवाले लूता नामवाले कृमि उत्पन्न हुए हैं इनमें त्रिमंडल आदि-आठ कष्टसाध्य हैं और सौवर्णिक आदि आठ असाध्य हैं ॥ ५२-५५ ॥

अथ लूतादंशलक्षणम्।

ताभिर्दष्टे दंशकोथः प्रवृत्तिः क्षतजस्य च॥ ज्वरो दाहोऽतिसारश्च गदाः स्युश्च त्रिदोषजाः ॥ ५६ ॥ पिडिका विविधाकारा मण्डलानि महान्ति च ॥ शोथा महान्तो मृदवो रक्ताः श्यावाश्चलास्तथा ॥ ५७ ॥ सामान्यं सर्वलूतानामेतद्दंशस्य लक्षणम् ॥ ५८ ॥

दंशकोथः दंशमध्ये पूतिभावः ॥

दंशमध्ये तु यत्कृष्णं श्यावं वा जालकावृतम् ॥ दग्धाकृति भृशं पाकक्लेदशोथज्वरान्वितम् ॥ ५९ ॥ दूषीविषाभिर्लूताभिस्तद्दष्टमिति निर्दिशेत् ॥ ६० ॥

लूता अर्थात् मकडी आदि काटे तो वह काटनेका स्थान सड जाताहै, रुधिर वहनेलगताहै, ज्वर आजाताहै, दाह होताहै, अतीसार होताहै, त्रिदोपजनित रोग होतेहैं, अनेक प्रकारकी फुंसिये उत्पन्न होतीहैं, वडे वडे चकत्ते पडजातेहै और वडी गम्भीर, कोमल, लाल, चपल तथा कलौंसयुक्त सूजन होतीहै, लूताके दंशके यह सामान्य लक्षणहैं। दंशमें जो काला अथवा कुछेक झाईवाला, जालेसहित, जलेकी समान, अत्यंत पकनेवाला और क्लेद, सूजन तथा ज्वर यह लक्षण दीखते होयँ तो जानना कि दूषीविषनामक लूताका दंश अर्थात् काटा हुआ है ॥ ॥ ५६-६० ॥

अथासाध्यसौवर्णकाद्यष्टलूतानां दंशलक्षणम् ।

शोथः श्वेताः सिता रक्ताः पीताश्च पिडिका ज्वरः ॥ प्राणान्तिकाभिर्जायन्ते दाहहिक्काशिरोग्रहाः ॥ ६१ ॥

असाध्य लूता काटे तो शोथ, सफेद, लाल तथा पीली फुनी होतीहैं, ज्वर आजाताहै, प्राणान्त करनेवाली दाह, श्वास, हिचकी और शिरमे पीडा होतीहै ॥ ६१ ॥

अथ मूषकविषलक्षणम् ।

आदंशाच्छोणितं पाण्डुमण्डलानि ज्वरोऽरुचिः ॥ लोमहर्षश्च दाहश्चाप्याखुदूषीविषार्दिते ॥ ६२ ॥

चूहेके काटनेके स्थानका रुधिर पीला पडजाता है, चकत्ते उठ आते है, ज्वर, अरुचि, रोमाच हो आते हैं और दाह होता है ॥ ६२ ॥

अथ प्राणहरमूषकविषलक्षणम् ।

मूर्च्छांगशोथवैवर्ण्यक्लेदा मन्दश्रुतिर्ज्वरः॥ शिरोगुरुत्वं लालासृक्छर्दिश्चासाध्यमूषकात् ॥ ६३ ॥

अंगशोथोऽत्र मूषकाकारो बोद्धव्य इति तन्त्रान्तरे ।

असाध्य विषवाले मूषके काटनेसे मूर्छा, अगोमे सूजन, वर्णका बदलजाना, क्लेद, बधिरता, ज्वर, मस्तकका भारीपन, लारका गिरना और रुधिरकी वमन यह लक्षण होते है । अन्यग्रथोमे लिखा है कि "चूहेके काटनेसे शरीरमे चूहेके आकारवाली सूजन होती है" ॥ ६३ ॥

अथ कृकलासदंशलक्षणम् ।

शोथस्य कार्ष्ण्यमथवा नानावर्णत्वमेव च॥ मोहोऽथ वर्चसो भेदो दष्टस्य कृकलासकैः ॥ ६४ ॥

करकेंटके काटनेसे काटनेका स्थान काला अथवा अनेक प्रकारका होजाताहै, मोह होजाताहै और दस्त पतले आतेहै ॥ ६४ ॥

अथ वृश्चिकविषलक्षणम् ।

दहत्यग्निरिवादौ तु भिनत्त्यूर्ध्वमाशु च ॥ वृश्चिकस्य विषं याति पश्चाद्दंशेऽवतिष्ठते ॥ ६५ ॥

बिच्छूका विष प्रथम आग लगनेकी समान दाह करताहै, फिर शीघ्रतासे ऊपरको चढकर मानों अगोंको भेदता हो ऐसी व्यथा करताहै पश्चात् कुछ समयमें काटनेके स्थानमे आकर स्थिर होजाताहै ॥ ६५ ॥

अथासाध्यवृश्चिकदंशलक्षणम् ।

दष्टोऽसाध्यैस्तु हृद्घ्राणरसनोपहतो नरः ॥ मांसैः पतद्भिरत्यर्थं वेदनार्तो जहात्यसून् ॥ ६६ ॥

असाध्यैर्वृश्चिकस्तेषामेवानुवृत्तेः । हृदादिषु उपहतः हृदादिकार्यरहितो भवति अत्यर्थं वेदनार्त इत्यन्वयः ॥

असाध्य विषवाला विच्छू काटे तो हृदय, नाक तथा जीभ यह अपने २ कार्य करनेमें असमर्थ होजातेह इस प्रकार वेदना होतीहै, मांस गलकर गिरजाताहै और इस वेदनासे प्राणभी निकलजातेहै ॥ ६६ ॥

अथ कणभकृमिदंशलक्षणम् ।

विसर्पः श्वयथुः शूलं ज्वरश्छर्दिरथापि वा ॥ लक्षणं कणभैर्दष्टे दंशश्चैव विशीर्यते ॥ ६७ ॥

कणभः कीटविशेषः ॥

कणभ नामक कृमि काटे तो विसर्प, सूजन, शूल, ज्वर अथवा वमन होतीहै और काटनेकी जगह गलजातीहै ॥ ६७ ॥

अथोच्चिटिङ्गदंशलक्षणम् ।

कृष्णलोमोच्चिटिंगेन स्तब्धलिंगो भृशार्तिमान् ॥ दष्टः शीतोदकेनेव सिक्तान्यङ्गानि मन्यते ॥ ६८ ॥

कृष्णलोमा अधिकतरकृष्णरोमा । उच्चिटिङ्गश्चीटा कीटविशेषः ॥

काले और बडे रोमवाला उचिटिंग अर्थात् चींटा वा झींगर काटे तो सम्पूर्ण स्तब्धताके लक्षण होतेहै ।

बहुत वेदना होती है और जैसे कि समस्त शरीरपर शीतल जल छिडक दिया हो ऐसा मालूम होता है ॥ ६८ ॥

अथ सविषमण्डूकदंशलक्षणम् ।

एकदंष्ट्रार्दितः शूनः सरुजः पीतकः सतृट् ॥ सनिद्रश्छर्दिमान्दष्टो मण्डूकैः सविषैर्भवेत् ॥ ६९ ॥

एकदंष्ट्रार्दितः स्वभावादेकयैव दंष्ट्रया दष्टो भवति ॥

विषैला मेंडक काटे तो काटनेके स्थानमे एकही डाढ उठ आती है, वेदनायुक्त पीली सूजन होती है, तृषा लगती है, निद्रा आती है और वमन होती है ॥ ६९ ॥

अथ सविषमत्स्यलक्षणम् ।

मत्स्यास्तु सविषाः कुर्युर्दाहं शोथं रुजं तथा ॥ ७० ॥

विषैली मछली काटे तो दाह, सूजन और वेदना होती है ॥ ७० ॥

अथ जलौकाविषकार्यम् ।

कण्डूं शोथं ज्वरं मूर्च्छां सविषास्तु जलौकसः ॥ ७१ ॥

कुर्युरिति शेषः ॥

विषैली जोंक काटे तो खुजली, सूजन, ज्वर, मूर्छा, यह सब लक्षण होते है ॥ ७१ ॥

अथ गृहगोधिकाविषलक्षणम् ।

विदाहं श्वयथुं तोदं प्रस्वेदं गृहगोधिकाः ॥ ७२ ॥

कुर्युरिति शेषः ॥

छिपकली काटे तो दाह होताहै, सूजन होती है, भौंकने तथा तोडने सरीखी पीडा होती है और अंगोंमें पसीना आताहै ॥ ७२ ॥

अथ शतपदीविषकार्यम् ।

दंशे स्वेदं रुजं दाहं कुर्याच्छतपदीविषम् ॥ ७३ ॥

शतपदी गिजाई इति लोके ॥

कानखजूरा काटे तो काटनेकी जगह पसीना आताहै, वेदना होतीहै और दाह होताहै ॥ ७३ ॥

अथ मशकविषकार्यम् ।

कण्डूमान्मशकैरीषच्छोथः स्यान्मन्दवेदनः ॥ ७४ ॥

मच्छर काटे तो खुजली और थोडी वेदना युक्त कुछेक सूजन होती है ॥ ७४ ॥

अथासाध्यमशकदंशलक्षणम् ।

असाध्यकीटसदृशमसाध्यं मशकक्षतम् ॥ ७५ ॥

असाध्यकीटसदृशम् असाध्यैः कीटैर्लूतादिभिः कृतं यत्क्षतं तत्सदृशवेदनम् ॥

असाध्य विषैले मच्छर काटे तो असाध्य मकोडे आदिकी समान घावमें पीडा होती है ॥ ७५ ॥

अथ मक्षिकादंशलक्षणम् ।

सद्यः संस्राविणी श्यावा दाहमूर्च्छाज्वरान्विता ॥ पीडिका मक्षिकादंशे तासान्तु स्थगिकाऽसुहृत् ॥ ७६ ॥

तासामित्यादि तासां सुश्रुतोक्तानां षण्णां मक्षिकाणां मध्ये स्थगिकानाम्नी शीघ्रं प्राणान्हरतीत्यर्थः ॥

विषैली मक्खी काटे तो तत्काल स्राववाली, काली, दाहयुक्त, मूर्च्छासहित और ज्वरवाली फुसियें उत्पन्न होतीहैं । सुश्रुतोक्त छै प्रकारकी मक्खियोंमें स्थगिका नामवाली जो मक्खी है वह तत्काल प्राणनाशक है ॥ ७६ ॥

अथ व्याघ्रादिविषकार्यम् ।

चतुष्पाद्भिर्द्विपाद्भिर्वा नखैर्दन्तैश्च यत्कृतम् ॥ शूयते पच्यते तत्तु स्रवति ज्वरयत्यपि ॥ ७७ ॥

चतुष्पाद्भिः व्याघ्रादिभिः । द्विपाद्भिः वनमनुष्यादिभिः । शूयते शूनं भवति ॥

चार पांववाले व्याघ्रादिक, अथवा दो पाववाले जंगली मनुष्यादिकके नखोंसे और दांतोंसे जो घाव होय वह सूजजाय, पकजाय, स्रवे और ज्वरको उत्पन्न करे है ॥ ७७ ॥

अथ विगतविषमनुष्यलक्षणम् ।

प्रसन्नदोषं प्रकृतिस्थधातुमन्नाभिकामं

सममूत्रविट्कम् ॥ प्रसन्नवर्णेन्द्रियचित्त-चेष्टं वैद्योऽवगच्छेदविषं मनुष्यम् ॥७८॥

प्रसन्नदोषं प्रकृतिस्थदोषम् । शेषं सुगमम् ।

वातादिक दोष स्वाभाविक स्थितिमें स्थित होजाँय, धातुयें भी स्वाभाविक स्थितिमें स्थित हों, अन्न खानेकी इच्छा होय, मल मूत्र पहिलेकी समान अच्छे प्रकारसे उतरने लगें और वर्ण, इन्द्रियें, चित्त तथा चेष्टा यह प्रसन्न अर्थात् निर्मल होजाँय तो वैद्य उस मनुष्यको विषरहित हुआ जाने ॥ ७८ ॥

अथ विषचिकित्सा ।

तत्र प्रथमं स्थावरविषघ्नोपायाः ।

स्थावरेण विषेणार्तं नरं यत्नेन वामयेत् ॥ वमनेन समं नास्ति यतस्तस्य चिकित्सितम् ॥ ७९ ॥ विषमत्यर्थमुष्णञ्च तीक्ष्णं च कथितं यतः ॥ अतः सर्वविषेषूक्तः परिषेकस्तु शीतलः ॥ ८० ॥ औष्ण्यात्तैक्ष्ण्याद्विशेषेण विषं पित्तं प्रकोपयेत् ॥ वमितं सेचयेत्तस्माच्छीतलेन जलेन च ॥ ८१ ॥ पाययेन्मधुसर्पिर्भ्यां विषघ्नं भेषजं द्रुतम् ॥ भोक्तुमम्लं रसं दद्याद्धर्षयेन्मरिचानि च ॥ ८२ ॥ यस्य यस्य च दोषस्य पश्येल्लिङ्गानि भूरिशः॥ तस्य तस्यौषधैः कुर्याद्विपरीतगुणैः क्रियाम् ॥ ८३ ॥ शालयः षष्टिकाश्चैव कोरदूषाः प्रियंगवः ॥ भोजनार्थे विषार्तानामूर्द्ध्वञ्चाधश्च शोधनम् ॥ ८४ ॥

प्रियंगुः कंगुः ॥

मूलत्वक्पत्रपुष्पाणि बीजं चेति शिरीषतः ॥ गवां मूत्रेण सम्पिष्टं लेपाद्विषहरं परम् ॥ दूषीविषार्तं सुस्निग्धमूर्द्ध्वञ्चाधश्च शोधनम् ॥ ८५ ॥ पाययेदगदं मुख्यमिदं दूषीविषापहम् ॥ पिप्पली ध्यामकं मांसी लोध्रमेला सुवर्चिका ॥ ॥ ८६ ॥ मरिचं वालकञ्चैला तथा कनकगैरिकम् ॥ क्षौद्रयुक्तः कषायोऽयं दूषीविषमपोहति ॥ ८७ ॥

ध्यामकं रोहिषं तदलाभे उशीरं देयम् ॥ कनकगैरिकम् अत्यन्तमारक्तं गैरिकं सोनागेरू इति लोके ॥

स्थावर विषसे पीडित मनुष्यको यत्नपूर्वक वमन करावे, क्योंकि उसके लिये वमनकी समान अन्य औषधि नहीं है। विष अत्यत उष्ण है और तीक्ष्ण है इस कारण सर्व प्रकारके विषोंमें शीतल सेचन करना चाहिये। विष उष्णता और तीक्ष्णताके कारण विशेष करके पित्तको कुपित करे है इसलिये वमन करानेके पश्चात् शीतल जलसे सेचनकरे। विषको हरनेवाली औषधियोंको घी तथा सहतके साथ तत्काल पिलावे। खट्टा रस खानेको देवे। और शरीरमें मिर्चोंका चूर्ण मर्दन करे। जिन जिन दोषोंके चिह्न अधिक दीखें उन उन दोषोंकी उन उन दोषोंके गुणोंसे विपरीत गुणोवाली औषधियोंसे चिकित्सा करे। विषसे पीडित मनुष्यको भोजनके लिये लाल शालिचावल, साठी चावल, कोदो और कगुनी धान्य देवे और वमन तथा विरेचनसे सशोधन करे।

सिरसकी जड, छाल, पत्ते, फूल और बीज इन पाचों पदार्थोंको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे विष दूर होजाताहै।

पीपल, रोहिसनामक सुगधि तृण यदि न मिले तो इनके बदले खस, बालछड, लोध, इलायची, सज्जी, काली मिर्च, सुगधबाला, छोटी इलायची और पीलागेरू इनका क्वाथ बनाकर उसमें सहत डालकर पिलावे तो दूषीविष नष्ट होजाताहै। दूषीविषसे पीडित मनुष्यको अच्छे प्रकारसे स्निग्ध करकै तथा वमन और विरेचनसे शोधित करके पश्चात् इस उत्तम औषधिको पिलावे ७९–८७

अथ जङ्गमविषचिकित्सा ।

तत्र मृत्युपाशच्छेदि घृतम् ।

अभयां रोचनां कुष्ठमर्कपत्रं तथोत्पलम् ॥ नलवेतसमूलानि गरलं सुरसां तथा ॥ ॥ ८८ ॥ सकलिंगां समञ्जिष्ठामनन्ताश्च शतावरीम् ॥ शृंगाटकं समंगां च पद्म-

केसरमित्यपि ॥ कल्कीकृत्य पचेत्सर्पिः पयो दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ ८९ ॥ सम्यक्पक्वेऽवतीर्णे च शीते तस्मिन्विनिक्षिपेत् ॥ सर्पिस्तुल्यं भिषक्क्षौद्रं कृतरक्षं निधापयेत् ॥ ९० ॥ विषाणि हन्ति दुर्गाणि गरदोषकृतानि च ॥ स्पर्शाद्धन्ति विषं सर्वं गरैरुपहतां त्वचम् ॥ ९१ ॥ योगजं तमकं कण्डूं मांससादं विसंज्ञताम् ॥ नाशयत्यञ्जनाभ्यंगापानवस्तिषु योजितम् ॥ ९२ ॥ सर्पकीटाखुलूतादिदष्टानां विषहृत्परम् ॥ ९३ ॥

मृत्युपाशच्छेदिघृतम् ॥

हरड, गोलोचन, कूठ, आकके पत्ते, कमल, नरसलकी जड, बेंतकी जड, वत्सनाभ विष (मीठा वा सिनिया) तुलसी, इन्द्रजौ, मजीठ, लाल धमासा, सतावर, सिंगाडे, लज्जावंती और कमलकी केशर इनका कल्क डालकर चौगुने जलमे अथवा दूधमें घीको पकावे जब अच्छे प्रकारसे पकजाय तब उतारकर शीतल करलेवे फिर उसमे घीकी बराबर सहत मिलाकर अच्छे प्रकारसे किसी उत्तम बासनमें भरके रखदेवे। यह 'मृत्युपाशच्छेदी' नामवाला घी विषके विकारोंसे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण रोगोंको और विषको दूर करताहै। अंजनमें, अभ्यंगमें, पीनेमें और वस्तिकर्ममें प्रयोग करे तो यह घी अपने स्पर्शसे सर्व प्रकारके विषोंको दूर करदेताहै। विषसे दूषित हुई त्वचाको स्वच्छ करदेताहै और कृत्रिम विष, तमक श्वास, खुजली, मांससाद और बेहोसी इन सबको दूर करदेताहै। सर्प, कृमि, मूषक और लूता आदिके विषको दूर करनेके लिये यह उत्तम औषधि है ॥ ८८-९३ ॥

धत्तूरस्य शिफा पेया क्षीरेण परिपेषिता॥ अंकोटवंशजा चापि श्वविषघ्नी प्रयत्नतः ॥ ९४ ॥ रजनीयुग्मपत्तंगमञ्जिष्ठानागकेसरैः ॥ शीताम्बुपिष्टैरालेपः सद्यो लूतां विनाशयेत् ॥ ९५ ॥ जीरकस्य कृतः कल्को घृतसैन्धवसंयुतः ॥ सुखोष्णो मधुना लेपो वृश्चिकस्य विषं हरेत् ॥ गन्धमाघ्राय मृदितं सूर्यावर्तदलस्य तु ॥ ९६ ॥ वृश्चिकेन नरो विद्धः क्षणाद्भवति निर्विषः ॥ ९७ ॥

इति विषाधिकारः।

धतूरेकी जडको दूधमे यत्नपूर्वक पीसकर पीनेसे कुत्तेका विष दूर होताहै। अंकोटकी जडको दूधमे पीसकर पीनेसे कुत्तेका विष दूर होताहै। हलदी, दारुहलदी, पतंग, मजीठ, और नागकेसर इनको शीतल जलमें पीसकर लेप करनेसे तत्काल मकडीका विष नष्ट होजाताहै। जीरेका कल्क बनाकर उसमें सहत और सैंधानमक डालकर कुछेक गरम करके सहत मिलाकर लेप करनेसे बिच्छूका विष दूर होजाताहै। सूर्यावर्त अर्थात् हुलहुलके पत्तोको मलकर नाकमें सूँघनेसे बिच्छूका विष क्षणमात्रमें दूर होजाताहै ॥ ९४-९७ ॥

इति विषाधिकारः सम्पूर्णः।

अथ स्त्रीरोगाधिकारः।

तत्र प्रदररोगस्य विप्रकृष्टनिदानं संख्या च।

विरुद्धमद्याध्यशनादजीर्णाद्गर्भप्रपातादतिमैथुनाच्च ॥ यानाध्वशोकादतिकर्षणाच्च भाराभिघाताच्छयनाद्दिवा च ॥ १ ॥ तं श्लेष्मपित्तानिलसन्निपातैश्चतुष्प्रकारं प्रदरं वदन्ति ॥ २ ॥

अत्र वातपित्तयोरादौ श्लेष्मणोऽभिधानं श्लैष्मिकेऽतिप्रवृत्तिबोधनार्थम् ॥

विरुद्ध भोजन करनेसे, मद्यको पीनेसे, भोजनपर भोजन करनेसे, अजीर्णसे, गर्भके पतित होनेसे, अत्यंत मैथुनकरनेसे, हाथी घोडे आदिपर चढकर उनको दौडानेसे, अधिक मार्गके चलनेसे, अत्यत शोक करनेसे, अत्यत कर्षण करनेसे, बहुत बोझको उठानेसे, अभिघातसे और दिनमें सोनेसे स्त्रियोंके प्रदर नामक रोग उत्पन्न होताहै। कफ पित्त वात और त्रिदोषसे उत्पन्न हुआ प्रदर चार प्रकारका होताहै।

ऊपरके वचनमे वातसे तथा पित्तसे पहिले कफ कहा

है इस कारण इसको जाननेके लिये कि कफसे उत्पन्न प्रदरमें रुधिरकी अत्यन्त प्रवृत्ति होतीहै ॥ १ ॥ २ ॥

अथ प्रदरस्य सामान्यलक्षणम्।

असृग्दरं भवेत्सर्वं सांगमर्दं सवेदनम् ॥ ३ ॥

असृग्दरमसृक् दार्यते च्याव्यतेऽनेनेत्यसृग्दरम्। अच्प्रत्ययान्तम्। सवेदनं सशूलम् ॥

दुष्ट रजका अत्यन्त स्राव होय, अंग टूटे और शूलकी पीडा हो उसको प्रदर कहते हैं ॥ ३ ॥

अथ कफजप्रदरलक्षणम्।

आमं सपिच्छाप्रतिमं सपाण्डु पुलाकतोयप्रतिमं कफात्तु ॥ ४ ॥

आमम् अपक्वरसयुक्तम्। सपिच्छाप्रतिमं पिच्छा शाल्मल्यादिनिर्यासस्तत्तुल्यं पिच्छिलमित्यर्थः। सपाण्डु सहशब्दोऽत्रेषदर्थः तेनेषत्पाण्डु। पुलाकतोयप्रतिमं कफात्तु पुलाकस्तुच्छधान्यं तद्धावनतोयतुल्यमित्यर्थः। रुधिरं स्रवेदित्यर्थः ॥

कफके प्रदरमें आम अर्थात् कच्चे रसवाला सेमल आदिके गोंदकी समान चिकना, कुछेक पाण्डुवर्ण और तुच्छ धान्यके धोवनकी समान रुधिर बहता रहताहै ॥ ४ ॥

अथ पित्तजप्रदरलक्षणम्।

सपीतनीलासितरक्तमुष्णं पित्तार्तियुक्तं भृशवेगि पित्तात् ॥ ५ ॥

सपीतनीलासितरक्तम्। पीतादिवर्णयुक्तम्। पित्तार्तियुक्तं दाहादियुक्तम्। भृशवेगि वारंवारं प्रवृत्तियुक्तम् ॥

पित्तजन्य प्रदर पीला, नीला, काला तथा लाल, गरम और पित्तजनित दाह आदि वेदनासहित रुधिर वारंवार बहताहै ॥ ५ ॥

अथ वातजप्रदरलक्षणम्।

रूक्षारुणं फेनिलमल्पमल्पं वातात्सतोदं पिशितोदकाभम् ॥ ६ ॥

पिशितोदकाभं मांसधावनतोयाभम् ॥

वात जनित प्रदर रूखा, लाल, झागोंसहित, व्यथायुक्त और मांसके धोवनकी समान रुधिर थोडा थोडा बहताहै ॥ ६ ॥

अथ त्रिदोषजप्रदरलक्षणम्।

सक्षौद्रसर्पिर्हरितालवर्णं मज्जप्रकाशं कुणपं त्रिदोषम् ॥ तच्चाप्यसाध्यं प्रवदन्ति तज्ज्ञा न तत्र कुर्वीत भिषक्चिकित्साम् ॥ ७ ॥

सक्षौद्रसर्पिः क्षौद्रादिवर्णसहितम्। कुणपं शवगन्धि ॥

त्रिदोषजनित प्रदर होय तो सहत, घी, तथा हरितालकी समान रंगवाला, मज्जाकी समान और शबकी समान गंधवाला रुधिर बहताहै, विद्वान् वैद्य इस प्रदरको असाध्य कहतेहैं, इस कारण वैद्य इसकी चिकित्सा न करे ॥ ७ ॥

अथात्यंतरुधिरनिःसरणोपद्रवाः।

तस्यातिवृत्तौ दौर्बल्यं श्रमो मूर्च्छा मदस्तृषा ॥ दाहः प्रलापः पाण्डुत्वं तन्द्रा रोगाश्च वातजाः ॥ ८ ॥

वातजा रोगाः आक्षेपकादयः ॥

रुधिर बहुत स्रवे तो दुर्बलता, श्रम, मूर्च्छा, मद, तृषा, दाह, प्रलाप, पाडुपन, तन्द्रा और वातजनित आक्षेपकादि रोग होतेहैं ॥ ८ ॥

अथ प्रदररोगाऽसाध्यलक्षणम्।

शश्वत्स्रवन्तीमास्रावं तृष्णादाहज्वरान्विताम् ॥ दुर्बलां क्षीणरक्तां च तामसाध्यां विवर्जयेत् ॥ ९ ॥

जिस स्त्रीके निरंतर रुधिरका स्राव होय, तृषा दाह तथा ज्वरसे युक्त होय, बहुत दुर्बल और जिसका रुधिर क्षीण होगया होय ऐसी प्रदररोगवाली स्त्रीकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि उसका प्रदररोग असाध्य है ॥ ९ ॥

अथ शुद्धार्तवलक्षणम्।

मासान्निष्पिच्छदाहार्ति पञ्चरात्रानुबन्धि

च ॥ नैवातिबहु नात्यल्पमार्तवं शुद्धमादिशेत् ॥ १० ॥

निष्पिच्छदाहार्ति अपिच्छिलमदाहमशूलम्। एतेन विकृतवातादिलक्षणरहितमित्यर्थः। पञ्चरात्रानुबन्धि प्रभूतप्रवृत्त्या त्रिरात्रानुबन्धि। ततो मध्यमप्रवृत्त्या पञ्चरात्रानुबन्धि, ततः परं कस्याश्चिच्चेत्स्रवति तदा स्वल्पप्रवृत्त्या षोडशदिनानि यावत्तदपि शुद्धमेव ॥

ठीक महीनेके दिनोमे चिकना, तंतुरहित, जिसमें दाह और शूल न होय (विकृत कफ, पित्त और वातके लक्षणोंके विना) पांच रात्रितक रहनेवाला, बहुत अधिक नहीं और बहुत थोडा भी नही ऐसा रजोदर्श होय तो जानना कि रज शुद्ध होगया है। रजके शुद्ध होनेपर प्रदरको नष्ट हुआ जानकर उसकी चिकित्सा न करे।

रज जो बहुत स्रवे तो तीन दिनतक स्रवता है। मध्यम रीतिसे स्रवे तो पांच दिनतक स्रवताहै और इसके पश्चात् किसी किसी स्त्रीके अल्प स्राव होनेके कारण सोलह दिनतक स्रवताहै किंतु ऊपर कहे अनुसार शुद्ध होगया होय तो उसको शुद्ध समझकर प्रदरको शांत समझना चाहिये ॥ १० ॥

अथ प्रदरचिकित्सा।

दध्ना सौवर्चलं जाजी मधुकं नीलमुत्पलम् ॥ पिबेत्क्षौद्रयुतं नारी वातासृग्दरशान्तये ॥ ११ ॥

चौहारजीरायष्टीमधुनीलकमलपुष्पाण्येषां प्रत्येकं माषद्वयं सर्वमेकीकृत्य दध्ना कर्षचतुष्टयेन पिष्ट्वा तत्रमाषाष्टकं मधु क्षिप्त्वा पिबेत् ॥

मधुकं कर्षमकं तु कर्षैकाञ्च सितां तथा॥ तण्डुलोदकसम्पिष्टां लोहिते प्रदरे पिबेत् ॥ १२ ॥ बला कंकतिकाख्या या तस्या मूलं सुचूर्णितम्॥ लोहितप्रदरे खादेच्छर्करामधुसंयुतम् ॥ १३ ॥ शुचिस्थाने व्याघ्रनख्या मूलमुत्तरदिग्भवम् ॥ नीतमुत्तरफाल्गुन्यां कटिबद्धं हरेदसृक्॥१४॥

व्याघ्रनखी वघनही इति लोके ॥

रसाञ्जनं तण्डुलकस्य मूलं क्षौद्रान्वितं तण्डुलतोयपीतम् ॥ असृग्दरं सर्वभवं निहन्ति श्वासञ्च भार्ङ्गी सह नागरेण ॥ १५ ॥

तण्डुलस्य तण्डुलीयकस्य ॥

अशोकवल्कलक्वाथशृतं दुग्धं सुशीतलम् ॥ यथाबलं पिबेत्प्रातस्तीव्रासृग्दरनाशनम् ॥ १६ ॥

अशोकवल्कलपलं द्वात्रिंशत्पलसंमितेन जलेन निष्काथ्य शेषं रक्षेत्पलाष्टकं क्वाथं तेन क्वाथेन सह क्षीरं पलाष्टकमितं पचेत्तत्र दुग्धावशेषः कर्तव्यः। तन्मध्ये पलचतुष्टयमितं दुग्धं पेयं वह्निबलापेक्षया ॥

कुशमूलं समुद्धृत्य पेषयेत्तण्डुलाम्बुना ॥ एतत्पीत्वा त्र्यहं नारी प्रदरात्परिमुच्यते ॥ १७ ॥ क्षौद्रयुक्तं फलरसमौदुम्बरभवं पिबेत॥ असृग्दरविनाशाय सशर्करपयोऽन्नभुक् ॥ १८ ॥

अन्नमोदनम् ॥

अलाबूफलचूर्णस्य शर्करासहितस्य च ॥ मधुना मोदकं कृत्वा खादेत्प्रदरशान्तये ॥ १९ ॥

अथ दार्व्यादिक्वाथः।

दार्वीरसाञ्जनकिरातवृषाब्दबिल्वसक्षौद्रचन्दनदिनेशभवप्रसूनैः ॥ क्वाथः कृतो मधुयुतो विधिना निपीतो रक्तं सितञ्च सरुजं प्रदरं निहन्ति ॥ २० ॥ रक्तपित्ताधिकारोक्तं हितं कूष्माण्डखण्डकम् ॥ २१ ॥

इति प्रदरनिदानचिकित्साधिकारः।

काला निमक, जीरा, मुलैठी और नील कमल (अभावमें नीलोफर) यह प्रत्येक पदार्थ बारह बारह रत्ती

लेकर चार तोले दहीमें पीसकर उसमें आठमासे सहत मिलाकर पिये तो वातजन्य प्रदर शमन होजाताहै ।

मुलैठी एक तोला और मिश्री एक तोला इन दोनोको चावलोंके धोवनमें पीसकर पिये तो प्रदर नष्ट होजाताहै ।

कघीकी जडका चूर्ण करके मिश्री और सहतमें मिलाकर खाय तो प्रदर नष्ट होजाताहै ।

पवित्रस्थानमें स्थित व्याघ्रनखीको उत्तर दिशासे लाकर उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें कमरमें बांधनेसे प्रदर नष्ट होजाताहै ।

रसौत और चौलाईकी जडको सहतमें पीसकर चावलोंके जलके साथ पिये तो सम्पूर्ण दोषोंसे उत्पन्न प्रदर अवश्य नष्ट होजाताहै ॥

सोंठ और भारंगीको पीसकर चावलोंके धोवनके साथ पीनेसे प्रदर और श्वास नष्ट होजाताहै ॥

अशोकवृक्षकी छाल चार तोले लेकर अठगुने जलमें पकावे जब पकते पकते जल ३२ बत्तीस तोले रहै तब उसमें ३२ तेतीस तोले दूध डालकर पकावे पकते पकते जब केवल दूधही बाकी रह जाय तब उस दूधको अच्छे प्रकारसे शीतल करके उसमेंसे सोलह तोले दूध लेकर प्रातःकाल पिये, जो जठराग्नि बलहीन होय तो थोडा दूध पिये इस प्रकार इस दूधको पीनेसे तीव्र प्रदर शांत होजाता है ।

पृथिवीमेंसे टाककी जडको उखाडकर चावलोंके जलमें पीसकर तीन दिनतक पिये तो स्त्री प्रदरसे मुक्त होजाती है ।

गूलरके फलोंके रसमें सहत मिलाकर पीनेसे और ऊपर मिश्री मिला दूध भातका पथ्य करे तो प्रदर नष्ट होजाताहै ।

नीम्बीके फलका चूर्ण करके उसमें खाट डालकर सहतमें लड्डू बनाकर खाय तो प्रदर शान्त होजाता है ।

दारुहल्दी, रसौत, चिरायता, अडूसा, नागरमोथा, बेलगिरी, सहत, लालचन्दन और आकके फूल इनका काथ बनाकर उसमें सहत डालकर पिवे तो वेदनायुक्त लाल तथा सफेद प्रदर नष्ट होजाताहै इसको 'दार्व्यादि-काथ' कहतेहैं ॥

तथ चिकित्सासारमें जो मदनकुमाट नामक अवलेह कहा है उसको सेवन करनेसेभी प्रदर दूर होजाताहै ॥ ११-२१ ॥

इति प्रदररोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ सोमरोगाधिकारः ।

तत्र सोमरोगनिदानं सम्प्राप्तिश्च ।

स्त्रीणामतिप्रसङ्गेन शोकाच्चापि श्रमादपि ॥ अतीसारिकयोगाद्वा गरयोगात्तथैव च ॥ १ ॥ आपः सर्वशरीरस्थाः क्षुभ्यन्ति प्रस्रवन्ति च ॥ तस्यास्ताः प्रच्युताः स्थानान्मूत्रमार्गं व्रजन्ति हि ॥ २ ॥

अत्यन्त मैथुन करनेसे, अत्यन्त शोकसे, अत्यन्त परिश्रम करनेसे, अतीसारके योगसे और विषप्रयोगसे स्त्रियोंके सम्पूर्ण शरीरमें स्थित जल क्षुभित होकर स्रवताहै पीछे वह जल स्थानसे भ्रष्ट होकर मूत्रके मार्गसे जाता-है ॥ १ ॥ २ ॥

अथ सोमरोगलक्षणम् ।

प्रसन्ना विमलाः शीता निर्गन्धा नीरुजाः सिताः ॥ स्रवन्ति चातिमात्रं ताः सा न शक्नोति दुर्बला ॥ ३ ॥ वेगं धारयितुं तासां न विदन्ति सुखं क्वचित् ॥ शिरःशिथिलता तस्या मुखं तालु च शुष्यति ॥ ४ ॥ मूर्च्छा जृम्भा प्रलापश्च त्वग्रूक्षा चातिमात्रतः ॥ भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च न तृप्तिं लभते सदा ॥ ५ ॥ सन्धारणाच्छरीरस्य ता आपः सोमसंज्ञिताः ॥ ततः सोमक्षयात्स्त्रीणां सोमरोग इति स्मृताः ॥ ६ ॥

प्रसन्न, निर्मल, शीतल, गंधरहित, स्वच्छ, सफेद और पीडारहित जल अत्यन्त बहताहै, उस जलके वेगको रोकनेसे असमर्थ होकर वह दुर्बल स्त्री निरंतर बेचैन रहतीहै । मस्तक शिथिल होजाताहै, मुख और तालुआ सूखने लगताहै, मूर्च्छा होतीहै, जम्भाई आतीहै, प्रलाप होताहै, त्वचा अत्यन्त रूखी होजातीहै और भक्ष्य भोज्य और पीनेके पदार्थोंसे कभी तृप्ति नहीं होती । यह जल शरीरको धारण करनेवाला होनेसे सोम कहाजाताहै और यह

रोग इस सोम धातुका क्षय रूप है इसलिये सोमरोग कहाजाताहै ॥ ३–६ ॥

अथ सोमरोगचिकित्सा।

कदलीनां फलं पक्वं धात्रीफलरसं मधु ॥ शर्करासहितं खादेत्सोमधारणमुत्तमम् ॥ ॥ ७ ॥ माषचूर्णं समधुकं विदारीं मधुशर्कराम् ॥ पयसा पाययेत्प्रातः सोमधारणमुत्तमम् ॥ ८ ॥ स एव सरुजः सोमः स्रवेन्मूत्रेण चेन्मुहुः ॥ तत्रैलापत्रचूर्णेन पाययेत्तरुणीं सुराम् ॥ ९ ॥ जलेनामलकीबीजकल्कं समधुशर्करम् ॥ पिबेद्दिनत्रयेणैष श्वेतप्रदरनाशनम् ॥ ॥ १० ॥ तक्रौदनाहाररता सम्पिबेन्नागकेसरम् ॥ त्र्यहं तक्रेण सम्पिष्टं श्वेतप्रदरशान्तये ॥ ११ ॥

केलेकी पकी फली, आमलेका स्वरस, सहत और मिश्री इन सबको एकत्रित मिलाकर भक्षण करे तो अच्छे प्रकारसे सोमरोग नष्ट होजाताहै।

उडदका चून, मुलैठी, विदारीकंद, सहत और मिश्री इन सबको एकत्रित मिलाकर प्रातःकाल दूधके साथ पीनेसे सोमरोग नष्ट होजाताहै।

यही सोमरोग जो पीडासहित और मूत्रके साथ वारवार निकलता होय तो ताजी मदिरामें इलायची और तेजपातका चूर्ण डालकर पिये।

आमलोंको जलमें पीसकर उसमें सहत तथा खांड, मिलाकर पीनेसे तीन दिनमें ही यह श्वेत प्रदर नष्ट होजाताहै।

नागकेसरको तक्रमें पीसकर तीन दिनतक पिये और तक्रके साथ भात खाय तो यह सफेद प्रदर अवश्य नष्ट होजाताहै ॥ ७–११ ॥

अथ सोमरोगे मूत्रातीसारः।

सोमरोगे चिरं जाते यदा मूत्रमतिस्रवेत् ॥ मूत्रातिसारं तं प्राहुर्बलविध्वंसनं परम् ॥ १२ ॥

इति सोमरोगमूत्रातिसाराधिकारः।

बहुत दिनोंके सोमरोगमें जो मूत्र अत्यंत वहने लगे तो उसको मूत्रातिसार कहतेहैं। यह मूत्रातिसार बलका अत्यंत नाश करताहै ॥ १२ ॥

इति सोमरोगाधिकारः सम्पूर्णः।

अथ योनिरोगाधिकारः।

तत्र योनिरोगनिदानम्।

मिथ्याहारविहाराभ्यां दुष्टैर्दोषैः प्रदूषितात् ॥ आर्तवाद्बीजतश्चापि दैवाद्वा स्युर्भगे गदाः ॥ १ ॥

मिथ्या आहार और मिथ्या विहारसे दुष्ट हुए वातादि दोषोंसे, रजके दोषसे तथा पुरुषके वीर्यसे और समयपर दैवगतिसे भी योनिमें रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ १ ॥

अथ योनिरोगनामानि।

उदावर्ता तथा वन्ध्या विप्लुता च परिप्लुता ॥ वातला योनिजो रोगो वातदोषेण पञ्चधा ॥ २ ॥ पञ्चधा पित्तरोगेण तत्रादौ लोहितक्षरा ॥ प्रस्रंसिनी वामनी च पुत्रघ्नी पित्तला तथा ॥ ३ ॥ अत्यानन्दा कर्णिनी च चरणानन्दपूर्विका ॥ अतिपूर्वापि सा ज्ञेया श्लेष्मला च कफादिमाः ॥ ४ ॥ षण्डचण्डिनी च महती सूचिवक्त्रा त्रिदोषिणी ॥ पञ्चैता योनयः प्रोक्ता सर्वदोषप्रकोपतः ॥ ५ ॥

उदावृत्ता योनि, वंध्या योनि, विप्लुता योनि, परिप्लुता, और वातला योनि इस प्रकार वायुके दोषसे पांच प्रकारके योनिरोग होतेहैं।

लोहितक्षरा योनि, प्रस्रंसिनी योनि, वामनी योनी, पुत्रघ्नी योनि, और पित्तला योनि इस प्रकार पित्तके दोषसे पाच प्रकारके योनिरोग होतेहैं।

अत्यानन्दा योनि, कर्णिनी योनि, आनन्दचरणा योनि, अतिचरणा योनि, और श्लेष्मला योनि इस प्रकार की कफकी दुष्टतासे पांच प्रकारका योनिरोग होताहै।

षण्डा योनि, अण्डिनी योनि, विवृता योनि, सूचीवक्त्र योनि और त्रिदोषिणी योनि इस प्रकार तीनों दोषोंके प्रकोपसे पाच प्रकारके योनिरोग होतेहैं ॥ २–५ ॥

अथोपर्युक्तयोनिरोगलक्षणम् ।

सफेनिलमुदावर्त्ता रजः कृच्छ्रेण मुञ्चति॥ वन्ध्या निरार्तवा ज्ञेया विप्लुता नित्यवेदना ॥ ६ ॥ परिप्लुतायां भवति ग्राम्यधर्मे रुजा भृशम् ॥ वातला कर्कशा स्तब्धा शूलनिस्तोदपीडिता ॥ चतसृष्वपि चाद्यासु भवन्त्यनिलवेदनाः ॥ ७ ॥

अनिलवेदनास्तोदादयः वातलायां त्वति वातवेदना बोद्धव्याः । वातलेत्यन्वर्थात् ॥

सदाहं क्षरते रक्तं यस्याः सा लोहितक्षरा॥ प्रस्रंसिनी स्रंसते च क्षोभिता दुष्प्रजायिनी ॥ ८ ॥

क्षोभिता विमर्दिता । स्रंसते स्वस्थानाच्च्यवते । दुष्प्रजायिनी दुष्टप्रजननशीला ॥

सवातमुद्गिरेद्बीजं वामनी रजसा युतम् ॥ स्थितं हि पातयेद्गर्भं पुत्रघ्नी रक्तसंस्रवात् ॥ ९ ॥

पुत्रशब्दोऽत्रापत्योपलक्षकः ॥

अत्यर्थं पित्तला योनिर्दाहपाकज्वरान्विता॥ चतसृष्वपि चाद्यासु पित्तलिंगोच्छ्रयो भवेत् ॥ १० ॥ अत्यानन्दा न सन्तोषं ग्राम्यधर्मेण विन्दति ॥ कर्णिन्यां कर्णिका योनौ श्लेष्मासृग्भ्यां प्रजायते ॥ ११ ॥

कर्णिका मांसस्य कर्णिकाकारो ग्रन्थिः ॥

मैथुनेऽचरणा पूर्वं पुरुषादतिरिच्यते ॥ बहुशश्चातिचरणा पयोर्वीर्यं न तिष्ठति १२॥

अतिरिच्यते रजो मुञ्चतीत्यर्थः । बहुशः वारंवारमतिरिच्यते तयोः चरणातिचरणयोः ॥

श्लेष्मला पिच्छिला योनिः कण्डुयुक्तातिशीतला ॥ चतसृष्वपि चाद्यासु श्लेष्मलिंगोच्छ्रयो भवेत् ॥ १३ ॥ अनार्तवाऽस्तनी षण्ढी खरस्पर्शा च मैथुने ॥ महामेढ्रगृहीताया बालायास्त्वण्डिनी भवेत् ॥ १४ ॥

आस्तनी ईषत् स्तनौ यस्याः सा अत्र लक्ष्या । षण्डी महामेढ्रः पुरुषस्तेन गृहीतायाः बालायाः सूक्ष्मयोनिच्छिद्रा अण्डिनी अण्डवल्लम्बमाना योनिर्भवति ॥

विवृता च महायोनिः सूचीवक्त्रातिसंवृता ॥ सर्वलिंगसमुत्थाना सर्वदोषप्रकोपजा । चतसृष्वपि चाद्यासु सर्वलिंगोच्छ्रयो भवेत् ॥ १५ ॥

जिस योनिमें अत्यन्त कष्टसे, झागसहित रुधिर निकले उसको उदावर्त्ता कहते हैं । जो योनि सदैव रजरहित होय अर्थात् कदापि रजस्वला न होय उसको वन्ध्या कहते हैं ।

जिस योनिमे सर्वदा पीडा रहती होय उसको विप्लुता योनि कहते हैं ।

मैथुन करनेसे जिसमे अत्यन्त वेदना होती होय उसको परिप्लुता योनि कहते हैं ।

जो योनि कठिन, स्तब्ध होय, और शूल तथा तोडने सरीखी पीडासहित होय उसको वातला योनि कहते हैं ।

यद्यपि उपरोक्त वातजनित योनिरोगोंमें तोडनेकी पीडा आदि वायुसम्बन्धी वेदना होती है तथापि इस पाचवीं प्रकारकी वातला योनिमें तो यह वातजन्य वेदना अत्यत होती है ऐसा जानना क्योंकि 'वातला' इस नामसे प्रतीत होती है ।

जिस योनिमेंसे दाहवाला रुधिर गिरता होय उसको लोहितक्षरा कहते हैं ।

जो योनि मर्दन करनेसे अपने स्थानसे हटजाय और विकृत संतानको उत्पन्न करे उसको प्रस्रंसिनी योनि कहते हैं ।

जो योनि वायुके साथ रजसहित वीर्यको बाहर निकाल देतीहोय उसको वामनी योनि कहते हैं ।

जो योनि स्थित गर्भको रुधिरके स्रावके कारण गिरा देती हो उसको पुत्रघ्नी कहते हैं ।

जिसमें दाह, पाक तथा ज्वर होय उसको पित्तला कहतेहैं ॥

यद्यपि पित्तजन्य उपरोक्त चारों प्रकारकी योनियोंमें दाह तथा पाक वगैरह पित्तजनित वेदना होतीहै तथापि इस पांचवीं पित्तला योनिमें यह पित्त सम्बन्धी वेदना अधिक होतीहै ऐसा जानना, क्योंकि 'पित्तला' इस शब्दसे जानाजाताहै ॥

जो योनि मैथुनसे सतोषको प्राप्त न होय उसको अत्यानन्दा कहतेहैं ॥

जिस योनिमे कफसे तथा रुधिरसे मांसकी डेलीकी समान गांठें होंय उसको कर्णिका कहतेहैं ॥

जो योनि मैथुनके समय पुरुषसे पहिले ही स्खलित हो जाय उसको आनन्दचरणा योनि कहतेहैं, इस योनिमें वीर्य रुकता नहीं है। जो योनि पुरुषसे पहिले कई बार स्खलित होजाय उसको अतिचरणा योनि कहतेहैं। इस योनिमेंभी वीर्य ठहरता नहीं है ॥

जो योनि अत्यन्त चिकनी, खुजलीसहित और अत्यन्त शीतल होय उसको श्लेष्मला योनि कहतेहैं। यद्यपि उपरोक्त कफजनित चारों प्रकारकी योनिओंमे चिकनापन आदि कफके चिह्न होतेहैं तथापि इस पांचवी प्रकारकी श्लेष्मला योनिमें यह कफसम्बन्धी चिह्न अत्यन्त होतेहैं ऐसा जानना क्यों कि 'श्लेष्मला' इस नामसे ऐसा अर्थ निकलताहै।

जो योनि रजरहित रहती हो और मैथुन करते समय खरदरी मालूम होय, उसको षडी कहतेहैं। इस योनिवाली स्त्रीके स्तन छोटे होतेहैं ॥

जिसकी योनिका छिद्र छोटा होय ऐसी स्त्रीसे मोटे लिंगवाला पुरुष मैथुन करे तो उसकी योनि वृषणकी समान लटक आतीहै इसको अंडिनी योनि कहतेहैं ॥

जिस योनिका बहुतबड़ा छिद्र होय उसको विवृता कहतेहैं ॥

जो योनि बहुत छोटे छिद्रवाली होय उसको सूचीवक्त्रा कहतेहैं।

जिस योनिमें सम्पूर्ण दोषोंके कोपके कारण सपूर्ण दोषोंके लक्षण होंय उसको त्रिदोषिणी योनि कहतेहैं ॥

यद्यपि उपरोक्त त्रिदोषजन्य चारों प्रकारकी योनिओंमें रजरहित आदि तीनो दोषोंके चिह्न होतेहैं तथापि इस पांचवे प्रकारकी योनिमें यह त्रिदोष सम्बन्धी चिह्न अत्यन्त होतेहैं ऐसा जानना। क्यों कि 'त्रिदोषिणी' इस नामसे ऐसा अर्थ निकलताहै ॥ ६-१५ ॥

अथासाध्ययोनिरोगाः।

पञ्चासाध्या भवन्तीह योनयः सर्वदोषजाः॥ १६ ॥

पञ्च षण्डीप्रभृतयः ॥

त्रिदोषजनित षंडि आदि पांच योनि असाध्य हैं ॥ १६॥

अथ योनिकन्दनिदानम्।

दिवास्वप्नादतिक्रोधाद्व्यायामादतिमैथुनात्॥ क्षताच्च नखदन्ताद्यैर्वाताद्याः कुपिता यथा॥ १७ ॥

यथास्वनिदानं कुपिता वाताद्याः ॥

दिनमे सोनेसे, अत्यन्त क्रोधकरनेसे, अत्यन्त परिश्रम करनेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे और नख तथा दांत आदिसे घावके होनेसे अपने २ कारणोंसे प्रकोपको प्राप्त हुए वातादिदोष योनिकन्द नामक रोग को उत्पन्न करें हैं ॥ १७ ॥

अथ योनिकन्दलक्षणम्।

पूयशोणितसंकाशं लकुचाकृतिसन्निभम्॥ जनयन्ति यदा योनौ नाम्ना कन्दः स योनिजः॥ १८ ॥

लकुचाकृतिसन्निभं लकुचाकारम्।

राधकी समान, रुधिरकी समान, और बडहलकी समान योनिमें गांठें उत्पन्न होतीहैं इसको योनिकन्द कहतेहैं ॥ १८ ॥

अथ वातादिभेदेन योनिकन्दरूपम्।

रूक्षं विवर्णं स्फुटितं वातिकं तं विनिर्दिशेत्॥ दाहरागज्वरयुतं विद्यात्पित्तात्मकं तु तम्॥ १९ ॥ तिलपुष्पप्रतीकाशं कण्डूमन्तं कफात्मकम्॥ सर्वलिंगसमायुक्तं सन्निपातात्मकं वदेत्॥ २० ॥

जो योनिकन्द रूखा, विवर्ण और फटासा होय उसको वातजनित जानना ॥

जो योनिकन्द दाह, लाली और ज्वरसे युक्त होय तो उसको पित्तजनित जानना ॥ १९ ॥

जो योनिकन्द तिलके फूलकी समान और खुजलीसहित होय उसको कफजनित जानना ॥

जो योनिकन्द उपरोक्त रूक्षता आदि सम्पूर्ण लक्षणोंवाला होय उसको सन्निपात जनित जानना ॥ २० ॥

अथ योनिरोगचिकित्सा ।

तत्रार्तवजनयोगाः ।

आर्तवादर्शने नारी मत्स्यान्सेवेत नित्यशः ॥ काञ्जिकं च तिलान्माषानुदश्विच्च तथा दधि ॥ २१ ॥ इक्ष्वाकुबीजदन्ती चपलागुडमदनकिण्वयवशूकैः ॥ सास्नुक्क्षीरैर्वर्तिर्योनिगता कुसुमसञ्जननी ॥२२॥

इक्ष्वाकुः कटुतुम्बी । चपला पिप्पली । मदनो मयनफलम् । किण्वं सुराबीजम् ॥

पीतं ज्योतिष्मतीपत्रं स्वर्जिकोग्रासनं त्र्यहम् ॥ शीतेन पयसा पिष्टं कुसुमं जनयेद् ध्रुवम् ॥ २३ ॥

ज्योतिष्मती कटभी वृक्षविशेषः करही इति लोके । अथवा ढमिंजिनी मालकंगुनी इति च । असनम् आसनेति लोके विजयसार इति च । पयसा दुग्धेन ॥

जो स्त्री रजस्वला न होतीहोय वह नित्य मछलियोंको भक्षण करे तथा कांजी, तिल, उड़द, उदश्वित्‌नामवाली छाछ और दहीका सेवन करे,

कडवी तोम्बीके बीज, जमालगोटा, पीपल, गुड, मैनफल, सुराबीज, और जवाखार इनको थूहरके दूधमें पीसकर बत्ती बनाकर योनिमें रखनेसे स्त्रीके रज उत्पन्न होताहै ॥

मालकांगनीके पत्ते, सज्जीखार वच और विजयसार इनको ठंडे दूधमें पीसकर पीनेसे रजोदर्शन होताहै ॥ २१-२३ ॥

अथ वंध्याचिकित्सा ।

बला सिताढ्या मधुकं बला च शृंगं वटोत्थं गजकेसरं च ॥ एतन्मधुक्षीरघृतैर्निपीतं वन्ध्या सुपुत्रं नियतं प्रसूते ॥२४॥ अश्वगन्धाकषायेण सिद्धं दुग्धं घृतान्वितम् ॥ ऋतुस्नाताङ्गना प्रातः पीत्वा गर्भं दधाति हि ॥ २५ ॥ पुष्योद्धृतं लक्ष्मणाया मूलं दुग्धेन कन्यया ॥ पिष्टं पीत्वा ऋतुस्नाता गर्भं धत्ते न संशयः ॥ २६ ॥ कुरण्टमूलं धातक्याः कुसुमानि वटांकुराः॥ नीलोत्पलं पयोयुक्तमेतद्गर्भप्रदं ध्रुवम्॥२७॥

कुरण्टमूलम् (पीतपुष्पकटसरैया)।

याऽबला पिबति पार्श्वपिप्पलं जीरकेण सहितं हिताशिनी ॥ श्वेतया विशिखपुंखया युतं सा सुतं जनयतीह नान्यथा २८

पार्श्वपिप्पलं गजहड इति लोके । श्वेतपुष्पया शरपंखया सह ॥

पत्रमेकं पलाशस्य पिष्ट्वा दुग्धेन गर्भिणी॥ पीत्वा पुत्रमवाप्नोति वीर्यवन्तं न संशयः॥ ॥ २९ ॥ शूकरशिम्बीमूलं मध्यं वा दधिफलस्य सपयस्कम् ॥ पीत्वाथो भवलिंगीबीजं कन्यां न सूते स्त्री ॥३०॥

शूकरशिम्बी (सुअरासेवी) । दधिफलं कपित्थस्तस्य मज्जा । भवलिंगी (पञ्चगुरिया)।

पुत्रकमञ्जरीमूलं विष्णुक्रान्तेशलिंगिनी सहिता ॥ एतं गर्भेऽष्टदिनं पीत्वा कन्यां न सर्वथा सूते ॥ ३१ ॥

पुत्रमञ्जरी (पतजिया) तस्याः मूलम् । ईशलिंगी पञ्चगुलिया इति लोके ॥

मिश्री, सोंठ, मुलैठी, खरैटी, बडके अंकुर और नागकेशर इनको शहतमें दूधमें तथा घीमें पीसकर पीनेसे वन्ध्या स्त्री भी अवश्य पुत्रको उत्पन्न करसक्तीहै ॥

ऋतुस्नाता स्त्री असगंधको दूधमें पकाकर घी डालकर प्रातःकाल पिये तो गर्भ रहजाताहै ।

ऋतुस्नाता स्त्री पुष्य नक्षत्रमे उखाडी हुई सफेद कटेरीकी जडको कुआरी कन्याके हाथसे दूधमें पिसवाकर पीवेतो निश्चय गर्भ रहजाताहै ।

पीले फूलकी कटसरैयाकी जड, धायके फूल, बडके अकुर और नीले कमल इनको दूधमें पीसकर पीनेसे अवश्य गर्भ रहजाताहै ।

जो स्त्री जीरेके साथ तथा सफेद फूलके सरफोकेके साथ पारिसपीपलके डोडेको पीसकर पिये और पथ्यसे भोजन करे तो वह अवश्य पुत्रको जनतीहै ।

जो गर्भवती स्त्री ढाकके एक पत्तेको दूधमे पीसकर पिये तो उसके बलवान् पुत्र उत्पन्न होताहै । कौंछकी जडको अथवा कैथके गूदेको शिवलिंगीके बीजोको दूधमे पीसकर पीनेसे गर्भिणी स्त्री कदापि कन्याको उत्पन्न नहीं करती । प्रतिजियाकी जडको, अथवा विष्णुक्रांताकी जडको अथवा शिवलिंगीके बीजोको जो स्त्री पिये तो वह कदापि कन्याको उत्पन्न नही करे अर्थात् पुत्रोंकी ही उत्पन्न करे है ॥ २४–३१ ॥

अथ गर्भानास्थापकयोगाः ।

पिप्पलीविडंगटंकणसमचूर्णं या पिबेत्पयसा ॥ ऋतुसमये न हि तस्या गर्भः सञ्जायते क्वापि ॥ ३२ ॥ आरनालपरिपेषितं त्र्यहं या जपाकुसुममत्ति पुष्पिणी ॥ सत्पुराणगुडमुष्टिसेविनी सन्दधाति न हि गर्भमंगना ॥ ३३ ॥

जो स्त्री ऋतुके समय पीपल वायविडंग और सुहागा इनको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके दूधके साथ पिये तो कदापि गर्भ उत्पन्न नही होता ।

जो स्त्री ऋतुके समयमे गुडहलके फूलोंको आरनाल नामक काँजीमे पीसकर तीन दिनतक पिये और चार तोलेभर उत्तम पुराने गुडको सेवन करे तो वह कदापि गर्भको धारण नही करती ॥ ३२॥३३ ॥

अथ साध्ययोनिरोगाणां सामान्यचिकित्सा ।

तासु योनिषु चाद्यासु स्नेहादिक्रम इष्यते ॥ वस्त्यभ्यंगपरीषेकप्रलेपपिचुधारणम् ॥ ३४ ॥

वस्तिरत्रोत्तरवस्तिः । पिचुः फाहा इतिलोके ।

साध्य योनियोंपर स्नेहन आदि चिकित्सा करे, उत्तरवस्ति देवे, अभ्यंग करे, सेचन करे, प्रलेप करे और योग्यऔषधियोसे भीजे हुए रुईके फोयेको योनिमे रखे ॥ ३४ ॥

अथ योनिरोगाणां यथाक्रमचिकित्सा ।

नतवार्ताकिनीकुष्ठसैन्धवामरदारुभिः । तिलतैलं पचेन्नारी पिचुमस्य विधारयेत्॥ विप्लुतायां सदा योनिव्यथा तेन प्रशाम्यति ॥ ३५ ॥

नतं तगरम् । वार्ताकिनी वरहेटा इति लोके ।

वातलां कर्कशां स्तब्धामल्पस्पर्शां तथैव च ॥ कुम्भीस्वेदैरुपचरेदन्तर्वेश्मनि संवृते ॥ ३६ ॥ धारयेद्वा पिचुं योनौ तिलतैलस्य सा सदा ॥ पित्तलानां च योगीनां सेवाभ्यंगपिचुक्रियाः ॥ शीताः पित्तहराः कार्याः स्नेहनार्थं घृतानि च ॥ ३७ ॥ प्रस्रंसिनीं घृताभ्यक्तां क्षीरस्विन्नां प्रवेशयेत् ॥ पिधाय वेशवारेण ततो बन्धं समाचरेत् ॥ शुण्ठीमरिचकृष्णाभिर्धान्यकाजाजिदाडिमैः ॥ ३८ ॥ पिप्पलीमूलसंयुक्तैर्वेशवारः स्मृतो बुधैः॥ धात्रीरसं सितायुक्तं योनिदाहे पिबेत्सदा ॥ सूर्यकान्ताभवं मूलं पिबेद्वा तण्डुलाम्बुना ॥ ३९ ॥ योन्यां तु पूयस्राविण्यां शोधनद्रव्यनिर्मितैः ॥ सगोमूत्रैः सलवणैः पिण्डैः सम्पूरणं हितम् ॥ ४० ॥

शोधनद्रव्याणि निम्बपत्रादीनि ॥

दुर्गन्धां पिच्छिलां वापि चूर्णैः पञ्चकषायजैः ॥

पञ्चकषायाः वचावासापटोलप्रियगुनिम्बाः । राजवृक्षादिर्यथा घनबहेरा इति लोके॥

पिप्पल्या मरिचैर्माषैः शताह्वाकुष्ठसै-

न्यवैः ॥ वर्तिस्तुल्यया प्रदेशिन्या योनौ श्लेष्मविशोधिनी ॥ ४१ ॥
तुल्या प्रदेशिन्या दैर्घ्येण परिणाहेन च ॥ कर्णिन्यां वर्तयो देयाः शोधनद्रव्यनिर्मिताः ॥ ४२ ॥ गुडूचीत्रिफलादन्तीक्वथितोदकधारया ॥ योनिं प्रक्षालयेत्तेन तत्र कण्डूः प्रशाम्यति ॥ ४३ ॥ मुद्गयूषे सखदिरं पथ्यां जातीफलं तथा ॥ निम्बं पूगञ्च संचूर्ण्य वस्त्रपूतं क्षिपेद्भगे ॥ ४४ ॥ योनिर्भवति सङ्कीर्णा न स्रवेच्च जलं ततः ॥ कपिकच्छूभवं मूलं क्वाथयेद्विधिना भिषक् ॥ ४५ ॥ योनिः सङ्कीर्णतां याति क्वाथेनानेन धावयेत् ॥ जीरकद्वितयं कृष्णा सुषवी सुरभिवचा ४६ वासकः सैन्धवश्चापि यवक्षारो यवानिका ॥ एषां चूर्णं घृते किञ्चिद्भृष्टा खण्डेन मोदकम् ॥ ४७ ॥ कृत्वा खादेद्यथावह्नि योनिरोगाद्विमुच्यते ॥ ४८ ॥ मूषकक्वाथसंसिद्धतिलतैलकृतः पिचुः ॥ नाशयेद्योनिरोगांस्तान्धृतो योनौ न संशयः ॥ ४९ ॥

नगर, कटेरी, कूठ, सेंधानिमक, और देवदारु इनके कल्कसे तिलके तेलको पकाकर उसमें भिजोकर फोया योनिमें रखनेसे [illegible] योनिकी व्यथा दूर होजातीहै ।

जो योनि वातसे होय, कठिन होय, स्तब्ध होय और थोडे स्पर्शवाली होय तो उसको पत्थरके घरमें बैठाकर [illegible] देवे अथवा उस स्त्रीकी योनिमें सरसोंके तिलके [illegible] करे ।

जो किसी योनिरोग उत्पन्न हुआ होय तो सेचन, [illegible] कोमल करना, [illegible] और पित्तनाशक [illegible] लेपनके लिये [illegible] बनावे ।

जो योनि [illegible] होय तो उसपर [illegible] मालिश करके [illegible] [illegible] देवे और फिर [illegible] [illegible] [illegible] ।

सोंठ, मिरच, पीपल, धनियाँ, जीरा, अनार और पीपलामूल, इनके चूर्णको पंडित वेसवार कहतेहैं ।

योनिमें दाह होता होय तो नित्य आमलोंके रसमें खांड डालकर पिये अथवा कमलिनीकी जडको चावलोंके जलमें पीसकर पिये ।

योनिमेंसे राध निकलती होय तो नीमके पत्ते आदि शोधन पदार्थोंको सैंधेनिमकके साथ पीसकर गोली बनाकर उन गोलियोंको योनिमें रखे यह हितकारकहै ।

योनि दुर्गंधवाली होय अथवा पिच्छिल होय तो वच, अडूसा, कडवेपरवल, फूलप्रियगु और नीम इनके चूर्णको योनिमें रक्खे और अमलतास आदिके क्वाथसे योनिको धोवे ।

पीपल, कालीमिरच, उडद, सोया, कूठ और सैंधानिमक इनको पीसकर तर्जनी अंगुलीके बराबर लम्बी और मोटी बत्ती बनाकर योनिमें रक्खे तो इससे कफजन्य योनिकी पीडा शमन होजाती है ।

कर्णिकानामक कफजन्य योनिरोग होय तो योनिमें शोधन पदार्थोंसे बनाई हुई बत्ती रक्खे ।

गिलोय, हरड, बहेडा, आमला और जमालगोटा इनके क्वाथकी धारोंसे योनिको धोवे तो योनिकी खुजली दूर होजातीहै ।

कत्था, हरड, जायफल, नीमके पत्ते और सुपारी इनका चूर्ण करके मूँगके यूषमें पीसकर वस्त्रमें छानकर सुखा लेवे, फिर उसको योनिमें डालनेसे योनि सिकुड जातीहै और जलका स्राव बंद होजाताहै ।

कौंछकी जडका विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर उस क्वाथसे योनिको धोवे तो योनि सकुच जाती है ।

जीरा, काला जीरा, पीपल, कलौंजी, सुगंधित वच, अडूसा, सैंधानमक, जवाखार और अजवायन इनका चूर्ण करके कुछेक गरमकर उनमें खांड मिलाकर लड्डू बना लेवे उन लड्डुओंको जठराग्निके बलानुसार खाय तो योनिके रोग समस्त नष्ट होजातेहैं । चूहेके मांसका क्वाथ बनाकर उसमें तिलका तेल पकाकर उस तेलका फोया योनिमें रक्खे तो योनिसम्बन्धी रोग नष्ट होजाते हैं ॥ ३५-४९ ॥

अथ त्रिफलाघृतम् ।

त्रिफलां द्वौ सहचरौ गुडूचीं सपुनर्नवाम् ॥ शुकनासां हरिद्रे द्वे रास्नां मेदां शता-

वरीम् ॥ ५० ॥ कल्कीकृत्य घृतप्रस्थं पचेत्क्षीरे चतुर्गुणे ॥ तत्सिद्धं पाययेन्नारीं योनिरोगप्रशान्तये ॥ ५१ ॥

इरड, बहेडा, आमले, सफेद फूलकी कटसरैया, पीले फूलकी कटसरैया, गिलोय, पुनर्नवा, स्योनाक, हलदी, दारुहलदी, रास्ना और दुगुनी सतावर इनका कल्क डाल कर चौसठ तोले घीको चौगुने दूधमें पकावे इस घृतको पान करनेसे योनिके सब रोग नष्ट होजातेहैं इसको 'त्रिफलाघृत' कहतेहै ॥ ५० ॥ ५१ ॥

अथ सर्वयोनिरोगोपरि फलघृतम् ।

मञ्जिष्ठा मधुकं कुष्ठं त्रिफला शर्करा बला॥ मेदे पयस्या काकोल्यौ मूलं चैवाश्वगन्धजम् ॥ ५२ ॥ अजमोदा हरिद्रे द्वे प्रियंगुः कटुरोहिणी ॥ उत्पलं कुमुदं द्राक्षा काकोल्यौ चन्दनद्वयम् ॥ ५३ ॥ एतेषां कार्षिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ शतावरीरसं क्षीरं घृताद्देयं चतुर्गुणम् ॥ ५४ ॥ सर्पिरेतन्नरः पीत्वा स्त्रीषु नित्यं वृषायते॥ पुत्राञ्जनयते वीरान्मेधाढ्यान्प्रियदर्शनान् ॥ ५५ ॥ या चैवास्थिरगर्भा स्यात्पुत्रं वा जनयेन्मृतम् ॥ अल्पायुषं वा जनयेद्या च कन्यां प्रसूयते ॥ ५६ ॥ योनिरोगे रजोदोषे परिस्रावे च शस्यते॥ प्रजावर्धनमायुष्यं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ ५७ ॥ नाम्ना फलघृत ह्येतदश्विभ्यां परिकीर्तितम् ॥ अनुक्तलक्षणामूलं क्षिपंत्यत्र चिकित्सकाः ॥ ५८ ॥ जीवद्वत्सैकवर्णाया घृतं तत्र प्रयुज्यते ॥ आरण्यगोमयेनैव वह्निज्वाला च दीयते ॥ ५९ ॥

मेदामहामेदयोरभावे शतावरी द्विगुणा देया । पयस्यात्र क्षीरकाकोली तद्युगलाभावे अश्वगन्धा द्विगुणा देया ॥ प्रियंगुस्थाने केचिद्धिंगु पठन्ति । पयस्या काकोलीत्युक्त्वा पुनः काकोल्यौ इति काकोलीक्षीरकाकोल्योर्द्वैगुण्यार्थम् । एतस्य फलघृतस्य पाठो नानाविधस्तन्त्रेषु । तत्र हिंगुवचातगरजीवकर्षभका एवाधिकाः । जीवकर्षभकयोरभावे विदारीकन्दो द्विगुणो देयः ॥

मजीठ, मुलैठी, कूठ, इरड, बहेडा, आमला, खाड, खिरैटी, दुगुनी सतावर, चौगुनी असगंध, असगंधकी जड, अजमोद, हलदी, दारुहलदी, फूलप्रियंगू, कुटकी कमल, बबूला (कुमुदिनी), दाख, काकोली, क्षीरकाकोली सफेद और लाल चन्दन यह प्रत्येक पदार्थ एक एक तोला लेकर कल्क बनाकर उस कल्कको चौसठ तोलेभर घी, दुगुना सतावरका रस, तथा दुगुना दूध इन सबको एकत्र मिलाकर पकावे तो यह फलघृत सिद्ध होताहै जो पुरुष इस घृतको पिये तो मैथुन करनेमे प्रबल होताहै और वीर, बुद्धिमान् तथा रूपवान् पुत्रोको उत्पन्न करेहै । जिन स्त्रियोका गर्भ गिरजाताहै अथवा जिनके मरीहुई सतान उत्पन्न होतीहै, अथवा जिनके संतान होकर मरजातीहै, अथवा जिसके केवल कन्याही उत्पन्न होती होय उनको इस घृतके सेवन करनेसे सर्वगुणसम्पन्न सुदर दीर्घायु पुत्र उत्पन्न होतेहैं ।

योनिस्राव, रजोदोष, और अन्यान्य योनिरोगोपर भी यह घृत हितकारी है । संतति तथा आयुको बढानेवाला और संपूर्ण भूतप्रेतादिकोंको निवारण करनेवाला अश्विनीकुमारोंका कहा हुआ यह 'फलघृत' नामवाला घी है । इस पाठमें सफेद कटेरी की जड डालना कही नही लिखा है तथापि वैद्य लोग डालते हैं ।

जिसका बछडा जीता हो तथा जिसके शरीरका रंग एकही होय ऐसी गायका घी लेकर उससे फलघृत बनावे और उसके पकानेमें अर्ने उपलोकी अग्नि देवे, ऐसी परपरा है । इस फलघृत बनानेका पाठ ग्रथोंमें अनेक प्रकारका है किंतु उनमे हीग, वच, तगर और दुगुना विदारीकद यह औषधि अधिक हैं ॥ ५२–५९ ॥

अथ योनिकंदचिकित्सा ।

गैरिकाम्रास्थिजन्तुघ्नरजन्यञ्जनकट्फलाः॥

प्रयेद्योनिमेतेषां चूर्णैः क्षौद्रसमन्वितैः ॥ ॥ ६० ॥ त्रिफलायाः कषायेण सक्षौद्रेण च सेवयेत् ॥ प्रमदा योनिकन्देन व्याधिना परिमुच्यते ॥ ६१ ॥

आमलेकी गुठली, वायविडंग, हलदी, रसोत और कायफल इनका चूर्ण करके सहतमे मिलाकर योनिमे भरे और हरड, बहेडा तथा आमला इनके क्काथमें सहत डालकर उससे सेचन करे तो 'योनिकद' नामक स्त्रियोंका रोग नष्ट होजाताहै ॥ ६० ॥ ६१ ॥

अथ गर्भिणीरोगचिकित्सा ।

ह्रीवेरातिविषामुस्तमोचशक्रैश्शृतं जलम् ॥ दद्याद्गर्भे प्रचलिते प्रदरे कुक्षिरुज्यपि ॥ १ ॥ कुक्षिरुगुदरव्यथा ॥

मधूकचन्दनोशीरसारिवापद्मपत्रकैः ॥ शर्करामधुसंयुक्तैः कषायो गर्भिणीज्वरे ॥ ॥ २ ॥ चन्दनं सारिवालोध्रमृद्वीकाशर्करान्वितम् ॥ क्काथं कृत्वा प्रदद्याच्च गर्भिणीज्वरशान्तये ॥ ३ ॥ पीतं विश्वमजाक्षीरैर्नाशयेद्विषमज्वरम् ॥ गर्भिण्या इतिशेषः ॥

आम्रजम्बूत्वचः क्काथैर्लेहयेल्लाजसक्तकम् ॥ अनेन लीढमात्रेण गर्भिणी ग्रहणीं जयेत् ॥ ४ ॥ ह्रीवेरारलुरक्तचन्दनबलाधान्यामृतास्वादनीमुस्तोशीरयवासपर्पटविषाक्काथं पिबेद्गर्भिणी ॥ नानाव्याधिरुजातिसारकगद रक्तस्रुतौ वा ज्वरे योगोऽयं मुनिभिः पुरा निगदितः सूत्यामयेऽप्युत्तमः ॥ ५ ॥

सुगन्धवाला, अतीस, नागरमोथा, मोचरस और इन्द्रजव इनका क्काथ बनाकर पीनेसे चलता हुआ गर्भ, प्रदर और पेटकी पीडा शमन होतीहै ।

[illegible], [illegible], [illegible], सारिवा और कमलके पत्ते इनका क्काथ बनाकर इसमें खांड तथा सहत डालकर पीनेसे गर्भिणी स्त्रियोंका ज्वर दूर होजाताहै ।

[illegible], [illegible], लोध, [illegible] और मिश्री इनका [illegible] ज्वर शांत होताहै ।

बकरीके दूधके साथ सोठको पीनेसे गर्भिणी. स्त्रियोंका विषमज्वर शांत होजाताहै ॥

आम तथा जामुनकी छालका क्काथ बनाकर उसमें खीलोंके सत्तू मिलाकर खाय तो तत्काल ही गर्भिणीका ग्रहणीरोग शांत होजाताहै ।

सुगंधवाला, अरलू, लालचन्दन, खिरैंटी, धनियाँ, गिलोय, नागरमोथा, खस, जवासा, पित्तपापडा और अतीस इनका क्काथ बनाकर पीनेसे गर्भिणी स्त्रियोंके अनेक प्रकारके रोग, व्यथा, अतीसार रुधिरस्राव और गर्भस्रावकी पीडा भी दूर होजातीहै । यह उत्तम प्रयोग प्राचीन मुनियोंने कहा है ॥ १-५ ॥

अथ गर्भस्रावगर्भपातयोर्निदानं पूर्वरूपं च ।

ग्राम्यधर्माध्वगमनपानायासप्रपीडनैः ॥ ज्वरोपवासोत्पतनप्रहाराजीर्णधावनैः ॥ ॥ ६ ॥ वमनाच्च विरेकाच्च कुन्थनाद्गर्भपातनात् ॥ तीक्ष्णक्षारोष्णकटुकतिक्तरूक्षनिषेवणात् ॥ ७ ॥ वेगाभिघाताद्विषमादासनाच्छयनाद्भयात् ॥ गर्भे पतति रक्तस्य सशूलं दर्शनं भवेत् ॥ ८ ॥

गर्भपातनाद्गर्भपातनं नियमेन गर्भपातनशीलं द्रव्यम् । अथ गर्भस्य स्रावपातयोः पूर्वरूपमाह । गर्भे पतति इत्यादि । पतति स्रावेण पातेन वा पतिष्यति ॥

मैथुन करनेसे, मार्ग चलनेसे, हाथी घोडेकी सवारीपर चढनेसे, परिश्रम करनेसे, अत्यंत दबनेसे, ज्वरसे, उपवाससे, कूदनेसे या गिरपडनेसे, अजीर्णसे, दौडनेसे, वमनसे, विरेचनसे, हगनेसे, गर्भको गिरानेवाले तीक्ष्णादि द्रव्योंको सेवन करनेसे, तीक्ष्ण, क्षार, उष्ण, तीखे, कडवे तथा रूखे पदार्थोंका सेवन करनेसे, मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे, विषम आसन पर बैठनेसे, विषम स्थानमें सोनेसे, और भयसे गर्भस्राव अथवा गर्भपात होताहै ॥ ६ ॥ ७ ॥

जब गर्भ स्रवनेको और गिरनेको होता है तो शूलकी पीडा तथा रुधिर निकलता है ॥ ८ ॥

अथ स्रावपातयोरवधिः ।

आचतुर्थात्ततो मासात्प्रस्रवेद्गर्भविद्रवः ॥ ततः स्थिरशरीरस्य पातः पञ्चमषष्ठयोः ॥ ९ ॥

आचतुर्थात् मासाच्चतुर्थमासपर्यन्तं गर्भस्य विद्रवः शोणितरूपः 'गर्भः स्रवति शोणितम्' इति भोजवचनात् । स्थिरशरीरस्य कठिनशरीरस्य ॥

चौथे महीनेतक जो गर्भ रुधिर रूपसे स्रवताहै उसको गर्भस्राव कहतेहैं । भोजने भी कहा है कि "गर्भ चौथे महीनेतक रुधिर रूपसे स्रवताहै" ॥

चौथे महीनेके पश्चात् गर्भका अंग कठिन होजाताहै, पांचवे महीनेमे अथवा छठे महीनेमें जो गर्भ गिरताहै उसको गर्भपात कहतेहैं ॥ ९ ॥

अथ गर्भपातनिदानं दृष्टांतश्च ।

गर्भोऽभिघातविषमासनपीडनाद्यैः पक्वं द्रुमादिव फलं पतति क्षणेन ॥ १० ॥

यथा वृन्तलग्नं पक्वं फलमभिघातेनाकाले एव पतति तथा गर्भोऽप्यभिघातादिनाऽकाले पतति ॥

जिस प्रकार वृक्षकी शाखामें लगा हुआ फल अभिघात आदिसे अकालमे भी गिरपडताहै, उसी प्रकार गर्भ अभिघातसे, विषम आसनसे और दवाने आदिसे अकालमे गिरजाताहै ॥ १० ॥

अथ गर्भस्रावचिकित्सा ।

गुर्विण्या गर्भतो रक्तं स्रवेद्यदि मुहुर्मुहुः॥ तन्निरोधाय सा दुग्धमुत्पलादिशृतं पिबेत् ॥ ११ ॥

गर्भिणी स्त्रीके गर्भमेंसे जो वारवार रुधिर स्रवे तो उस रुधिरको रोकनेके लिये उस स्त्रीको निम्न लिखित उत्पलादि गणकी औषधियोंका क्वाथ पिलावे ॥ ११ ॥

अथोत्पलादिगणः ।

उत्पलं नीलमारक्तं कह्लारं कुमुदं तथा ॥ श्वेताम्भोजश्च मधुकमुत्पलादिरयं गणः ॥ १२ ॥ संशीलितो हरत्येव दाहं तृष्णां हृदामयम् ॥ रक्तपित्तश्च मूर्च्छाश्च तथा छर्दिमरोचकम् ॥ १३ ॥

नीले कमल, लाल कमल, नीलोफर, सफेद बबुले (कुमुद) और मुलैठी इनको उत्पलादिगण कहतेहैं । इस गणका क्वाथ बना कर पीनेसे दाह, तृषा, हृदयकी पीडा, रक्तपित्त, मूर्च्छा, वमन और अरुचि दूर होतीहै॥ १२॥ १३

अथ गर्भपातोपद्रवाः ।

प्रस्रंसमाने गर्भे स्याद्दाहः शूलश्च पार्श्वयोः ॥ पृष्ठरुक्प्रदरानाहौ मूत्रसंगश्च जायते ॥ १४ ॥

प्रस्रंसमाने पतति ॥

जब गर्भ पतित होताहै तब दाह, पसलियोमे , पीठमें पीडा, प्रदर, अफारा और मूत्रका अवरोध होताहै ॥ १४ ॥

अथ गर्भस्य स्थानान्तरगमनोपद्रवाः ।

स्थानात्स्थानान्तरं तस्मिन्प्रयात्यपि च जायते ॥ आमपक्वाशयादौ तु क्षोभः पूर्वेऽप्युपद्रवाः ॥ १५ ॥

पूर्वेऽपि उपद्रवाः पार्श्वशूलादयः ॥

जब गर्भ एक स्थानमेंसे दूसरे स्थानमे जाताहै तब आमाशय तथा पक्वाशय आदिमे क्षोभ होताहै और उपरोक्त गर्भपातके उपद्रव (पसलियोमें शूल आदि) होतेहैं॥ १५॥

अथ गर्भपातोपद्रवचिकित्सा ।

स्निग्धशीतक्रियास्तेषु दाहादिषु समाचरेत् ॥ कुशकाशोरुबूकाणां मूलैर्गोक्षुरकस्य च ॥ १६ ॥ शृतं दुग्धं सितायुक्तं गर्भिण्याः शूलहृत्परम् ॥ श्वदंष्ट्रामधुकम्लानैः सिद्धपयः पिबेत् ॥ १७ ॥ शर्करामधुसंयुक्तं गर्भिणीवेदनापहम् १८॥

अम्लानः पुष्पजातिरयं वाणपुंख इति गौडादौ प्रसिद्धः ॥

मृत्कोष्ठागारिकागेहसम्भवा नवमल्लिका॥ समंगा धातकीपुष्पं गैरिकं च रसाञ्ज-

नम ॥ १९ ॥ तथा सर्जरसश्चैतान्यथालाभं विचूर्णयेत् ॥ तच्चूर्णं मधुना लिह्याद्गर्भपातप्रशान्तये ॥ २० ॥

मृत्कोष्ठागारिकागेहसम्भवा कोष्ठागारिका किरटी तन्निर्मितगृहभवा मृत्तिका । समंगा लज्जालूः ॥

कसेरुत्पलशृंगाटकल्कं वा पयसा पिबेत्॥ पक्वं वचारसोनाभ्यां हिंगुसौवर्चलान्वितम ॥ आनाहे तु पिबेद्दुग्धं गुर्विणी सुखिनी भवेत् ॥ २१ ॥

सौवर्चलं चौहार इति लोके ॥

तृणपञ्चकमूलानां कल्केन विपचेत्पयः ॥ तत्पयो गर्भिणी पीत्वा मूत्रसंगाद्विमुच्यते ॥ २२ ॥ शालीक्षुकुशकाशैः स्याच्छरेण तृणपञ्चकम् ॥ एषां मूलं तृषादाहपित्तासृङ्मूत्रसंगहृत् ॥ २३ ॥

दाह आदि होय तो वैद्य स्निग्ध और शीतल क्रिया करे । कुशा (डाभ), काँस, अड और गोखुरकी जड इनके [illegible] पकाये हुए दूधमें मिश्री डालकर उसको पि[illegible] गर्भिणीका शूल नष्ट होजाताहै ॥ गोखुरू, मुलैठी, [illegible]टेरी और [illegible] इनके कल्कसे दूधको पकाकर पीने[illegible] गर्भिणीकी वेदना [illegible] हो जातीहै, भौंरीके घरकी [illegible], [illegible] फूल, लज्जावती, धायके फूल, पीला गेरू, [illegible] और राल इनमेंसे जितने पदार्थ मिलसकें उतने पदार्थोंका बारीक चूर्ण करके [illegible] मिलाकर चाटनेसे [illegible] हुआ [illegible]जाताहै ।

[illegible], [illegible] और [illegible] इनका कल्क बनाकर दूध [illegible] गर्भिणीको सुख उत्पन्न होताहै ।

[illegible] गर्भिणीके [illegible] तो गर्भिणीको वच [illegible] करके दूध पकाकर उसमें हींग तथा काला-[illegible] उसको सुख उत्पन्न होताहै ।

[illegible] जड, [illegible] जड, [illegible] जड, काँसकी [illegible] पकाये हुए दूधको [illegible] होजाताहै । नद[illegible]

पञ्चमूल—तृषा, दाह, रक्तपित्त और मूत्रके अवरोधको दूर करेहै ॥ १६–२३ ॥

अथ गर्भिण्याः प्रतिमासचिकित्सा ।

मधुकं शाकबीजं च पयस्या सुरदारु च ॥ अश्मन्तकस्तिलाः कृष्णास्ताम्रवल्ली शतावरी ॥ २४ ॥ वृक्षादनी पयस्या च प्रियंगूत्पलसारिवा ॥ अनन्ता सारिवा रास्ना पद्मा मधुकमेव च ॥२५॥ बृहत्यौ काश्मरी चापि क्षीरिशुंगास्त्वचो घृतम्॥ पृष्टिपर्णी वचा शिग्रु श्वदंष्ट्रा मधुपर्णिका ॥ २६ ॥ शृंगाटकं विषं द्राक्षा कसेरु मधुकं सिता ॥ वत्सैते सप्त योगाः स्युरर्द्धश्लोकसमापनाः ॥ २७ ॥ यथासंख्यं प्रयोक्तव्या गर्भस्रावे पयोयुताः॥ एवं गर्भो न पतति गर्भशूलश्च शाम्यति ॥ २८ ॥

शाकबीजं शाको महावृक्षः कर्कशपत्रस्तस्य बीजम् । पयस्या अत्र क्षीरकाकोली तदलाभे अश्वगन्धा ग्राह्या । अश्मन्तकः कोविदारसदृशोऽम्लपत्रः अम्लोन इति लोके। ताम्रवल्ली रामकान्ता मञ्जिष्ठा इति लोके । प्रियंगुः कंगुः । अनन्ता उत्पलसारिवा । पद्मा पद्मचारिणी भांर्गीति केचित् । बृहत्यौ स्थूलफला स्वल्पफला च । क्षीरिशुंगाः क्षीरिणां वटादीनां शुंगाः अविकाशिताः प्रवालाः । मधुपर्णिका गम्भारी पयोयुताः प्रतिमासम् अर्द्धश्लोकोक्ताः औषधमिलिताः कर्षमिताः शीततोयेन संपिष्टाः पलमितेन दुग्धेनालोडिताः पातव्या इत्यर्थः ॥

कपित्थबृहतीबिल्वपटोलेक्षुनिदिग्धिकाः॥ मूलानि क्षीरसिद्धानि दापयेद्भिषगग्रमं ॥ २९ ॥

कपित्थादीनां मूलानि मिलितानि पलमितानि पलाष्टकमिते क्षीरे द्वात्रिंशज्जलपलयुक्ते क्वाथयित्वा क्षीरमात्रमवशिष्टं पातुं दद्यादित्यर्थः ॥

नवमे मधुकानन्तापयस्यासारिवाः पिबेत् ॥ ३० ॥

अत्रापि मधुकादीनि मिलित्वा कर्षमितानि शीततोयेन सम्पिष्टानि पलपरिमितेन दुग्धेनालोडितानि पिबेत् ॥

क्षीरं शुण्ठीपयस्याभ्यां सिद्धं स्याद्दशमे हितम् ॥ सक्षीरं वा हिता शुण्ठी मधुकं सुरदारु च ॥ ३१ ॥

दशमे शुण्ठीपयस्याभ्यां पूर्ववत्कथितं पिबेत् ॥ अथवा शुण्ठीमधुकसुरदारूणि शीतलजलपिष्टानि दुग्धेनालोडितानि पिबेत् ॥

क्षीरिकामुत्पलं दुग्धं समंगामूलकं शिवाम् ॥ पिबेदेकादशे मासि गर्भिणीशूलशान्तये ॥ ३२ ॥

अत्र क्षीरिकायाः फलं दद्यात् । समंगामूलकं लज्जालूमूलम् ॥

सिता विदारी काकोली क्षीरी चैव मृणालिका ॥ गर्भिणी द्वादशे मासि पिबेच्छूलघ्नमौषधम् ॥ ३३ ॥

काकोल्यभावेऽश्वगन्धामूलं ग्राह्यम् ॥

एवमाप्यायते गर्भस्तीव्रा रुक् चोपशाम्यति ॥ ३४ ॥

पहिले महीनेमें मुलैठी, सागौनके बीज, असगंध और देवदारु इनमेंसे जितने मिलें उतने पदार्थोंका एक तोला कल्क दूधमें घोलकर पिलावे।

दूसरे महीनेमें अश्मतक (जिसको पश्चिममें आपटा कहते हैं और कहीं कहीं अम्ललोना अम्लनोनिया और किसी देशमें दीपकवृक्ष भी कहते है इसके पत्ते कचनारकी समान होते है), काले तिल, मजीठ और सतावर इनमेंसे जितने मिले उतनेका एक तोला कल्क दूधमें घोलकर पिलाना चाहिये।

तीसरे महीने वंदा, फूलप्रियगू, कंगुनी, और सफेद सारिवा इनमेसे जितनी मिले उतनी औषधियोंका एक तोला दूधमें घोलकर पिलावे।

चौथे महीनेमें सफेद सारिवा, काली सारिवा, रास्ना, भारंगी और मुलैठी इनमेंसे जितनी मिलें उनका एक तोला कल्क दूधमे मिलाकर पिलावे।

पांचवें महीनेमे कटेरी, फडी कटेरी, कुम्भेर, वडआदि पचक्षीरवृक्षोकी बहुत छोटी २ कोपल और छाल इनमेसे जितनी मिलसके उतनीका एक तोला कल्क दूधमे घोलकर पिलावे।

छठे महीनेमें पिठवन, वच, सैंजिना, गोखुरू और कुम्भेर इनका एक तोला कल्क दूधमें घोलकर पिलाना चाहिये।

सातवें महीनेमें सिघाडे कमलकन्द (भसींडा), दाख, कसेरू, मुलैठी और मिश्री इनमेंसे जितनी मिले उनका एक तोला कल्क दूधमें डालकर पिलावे। इस प्रकार करनेसे गर्भपात और गर्भस्राव नहीं होता और गर्भसम्बन्धी शूलभी नष्ट होजाताहै। उपरोक्त औषधियोंको शीतल जलमे पीसकर कल्क करना चाहिये और उस कल्कको दूधमे मिलाकर पिलाना चाहिये।

आठवे महीने वैद्य कैथ, कटाई, बेल, परवल, ईख और कटेरी इनकी जडको शीतल जलमें पीसकर इनका एक तोलेभर कल्क बत्तीसपल (चार तोलेका एक पल होताहै) जलमें मिलाकर आठ पल दूधमें डालकर उसको पकावे जब पकते पकते केवल दूधमात्र रह जाय और सब पानी जल जाय तब वह दूध उस गर्भिणी स्त्रीको पिलावे।

नवमे महीनेमें मुलैठी, सफेद सारिवा, कालीसारिवा, असगंध और लाल पत्तोंका जवासा इनको शीतल जलमे पीसकर इनका एक तोला कल्क चार तोले दूधमें घोलकर पिला देवे।

दशवे महीनेमे सोठ और असगंध इनको शीतल जलमे पीसकर इनका एक तोला कल्क बत्तीस तोले जलमें मिलाकर आठ पल दूधमें डालकर उस दूधको पकावे जब पकते पकते केवल दूधही मात्र रहजाय और सब पानी जलजाय तब उस दूधको गर्भिणीको पिलावे अथवा सोठ मुलैठी और देवदारु इनको शीतल जलमे पीसकर इनका एक तोला कल्क दूधमें घोलकर पिये ॥

ग्यारहवें महीनेमें खिरनीके फल, कमल, लज्जावंतीकी जड और हरड इनको शीतल जलमें पीसकर इनका एक तोला भर कल्क दूधमें घोलकर गर्भिणीको पीनेको देवे कि जिससे शूलकी शांति हो।

बारहवें महीनेमें मिश्री, विदारीकन्द, असगन्धकी जड, पारिसपीपलके फल और कमलकी नाल इनका एक तोला कल्क पीवे कि जिससे शूलकी शांति हो, गर्भ पुष्ट होय और तीव्र पीडा शान्त हो ॥ २४-३४ ॥

अथ वातशुष्कगर्भचिकित्सा।

गर्भो वातेन संशुष्को नोदरं पूरयेद्यदि ॥ सा बृंहणार्थैः संसिद्धं दुग्धं मांसरसं पिबेत् ॥ ३५ ॥ शुष्कार्तवमजातांगं संशुष्कं मरुतार्दितम् ॥ त्यक्तं जीवेन तत्तस्मात्कठिनं चावतिष्ठते ॥ ३६ ॥ शुक्रार्तवार्द्रं [illegible] वायुरुदराध्मानकृद्भवेत् ॥ कदाचिच्चेत्तदाध्मानं स्वयमेव प्रशाम्यति ॥ ३७ ॥ नैगमेयेन गर्भोऽयं हृतो लोकध्वनिस्तदा ॥ स एवालपवृत्त्या चेल्लघुर्भूत्वावतिष्ठति ॥ ३८ ॥ तदा स गर्भो भवति लोके नागोदराह्वयः॥ धान्यकुट्टनमुख्या स्याच्चिकित्सा तूभयोरपि ॥ ३९ ॥

नैगमेयः बालग्रहः ॥

वायुसे सूख जानेके कारण गर्भ जो गर्भिणीके उदरको पुष्ट न करे तो गर्भिणी जीवनीय गणकी औषधियोंके [illegible] दूधको पकाकर पीवे और मांसरसको पिये। [illegible] उत्पन्न न होवें ऐसा वीर्य और रजका सघात वायुसे [illegible] कारण प्राणरहित और कठिन [illegible] रजको सुखानेवाली वायु [illegible] पेटको फुला देती है फिर वह फूला [illegible] होजाताहै और उससमय [illegible] गर्भको नैगमेय नामक बाल- [illegible] गर्भ [illegible] चलनेवाला [illegible] उसको लोग "नागो- [illegible] इन दोनों प्रकारके स्त्री प्रता- रकी स्थिति हुई होय तो उस गर्भिणी स्त्रीके हाथसे धान कुटवावे इत्यादि काम करावे येही इसकी मुख्य चिकित्सा है, इससे तत्काल प्रसव होजाताहै ॥ ३५-३९ ॥

अथ प्रसवसमयः।

नवमे दशमे मासि नारी गर्भं प्रसूयते ॥ एकादशे द्वादशे वा ततोऽन्यत्र विकारतः ॥ ४० ॥

गर्भिणी स्त्री नवमें, दशवें, ग्यारहवें अथवा बारहवें महीने संतानको उत्पन्न करती है और जो कोई विकार होय तो इसके उपरांत भी प्रसव होताहै ॥ ४० ॥

अथ प्रसवमासे प्रसवोपायः।

वातेन गर्भसङ्कोचात्प्रसूतिसमयेऽपि या ॥ गर्भं न जनयेन्नारी तस्याः शृणु चिकित्सितम् ॥ ४१ ॥ कुट्टयेन्मुशलेनैषा कृत्वा धान्यमुलूखले ॥ विषमं चासनं यानं सेवेत प्रसवार्थिनी ॥ ४२ ॥

वातसे गर्भ सकुचित हो जानेके कारण जो गर्भिणी स्त्री प्रसवके महीनेके बीत जानेपर भी नहीं जनती उसकी चिकित्सा सुन। गर्भवती स्त्री प्रसव होनेके लिये ओखलीमें धान डालकर उनको मूसलसे कूटे और विषम आसन और विषम सवारीपर बैठे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अथ प्रसवसमये विलम्बचिकित्सा।

प्रसवस्य विलम्बे तु धूपयेदभितो भगम् ॥ कृष्णसर्पस्य निर्मोकैस्तथा पिण्डीतकेन वा ४३

निर्मोकः सर्पकञ्चुकः। पिण्डीतकः मयनफल इति लोके ॥

तन्तुना लांगलीमूलं बध्नीयाद्धस्तपादयोः ॥ सुवर्चलं विशल्यां वा धारयेदाशु सूयते ॥ ४४ ॥

सुवर्चला सूर्यकान्ता। विशल्या पाटला ॥

करङ्कीभूतगोमूर्द्धा सूतिकाभवनोपरि ॥ स्थापितस्तत्क्षणान्नार्याः सुखं प्रसवकारकः ॥ ४५ ॥

करंकीभूतः अस्थिमात्रेण स्थितः।

पोतकीमूलकल्केन तिलतैलयुतेनच ॥ योनेरभ्यन्तरं लिप्त्वा सुखं नारी प्रसूयते ॥ ४६ ॥

पोतकी पोई इति लोके।

कृष्णा वचा चापि जलेन पिष्टा सैरण्डतैला खलु नाभिलेपात् ॥ सुखं प्रसूतिं कुरुतेऽङ्गनानां निष्पीडितानां बहुभिः प्रमादैः ॥ ४७ ॥ मातुलुंगस्य मूलं तु मधुकेन युतं तथा ॥ घृतेन सहितं पीत्वा सुखं नारी प्रसूयते ॥ ४८ ॥ इक्षोरुत्तरमूलं निजतनुमानेन तन्तुना बद्धा ॥ कटिविषये गर्भवती सुखेन सूतेऽविलम्बेन ॥ ४९ ॥ तालस्य चोत्तरं मूलं स्वप्रमाणेन तन्तुना ॥ बद्धा कट्यान्तु नियतं सुखं नारी प्रसूयते ॥ ५० ॥

प्रसवके होनेमें विलम्ब होय तो योनिके चारों ओर काले साँपकी कैंचलीकी धूनी देवे तथा मैनफलकी धूनी देवे। वा कलिहारीकी जडको डोरेमें बाँधकर हाथ पावोंमें बाँधे अथवा हुलहुल या पाढलको धारण करे इससे तत्काल प्रसव होजाताहै॥ जिसमें केवल हड्डी बाकी रहगई होय ऐसी मरी गायका सूखा मस्तक लेकर गर्भवती स्त्रीके सोनेके घरपर रक्खे तो तत्कालही सुखसे प्रसव होताहै॥

पोईकी जडका कल्क बनाकर उसमें तिलका तेल मिलाकर उस कल्कका योनिके भीतर लेप करनेसे स्त्रीके सुखसे प्रसव होताहै॥

अनेक प्रकारके कारणोंसे प्रसवमें स्त्रीको बहुत कष्ट होय तो पीपल और वच इनको जलमें पीसकर अंडीके तेलमें मिलाकर उसका नाभिके ऊपर लेप करे, इस प्रकार करे तो सुखसे प्रसव होताहै॥

बिजौरेकी जड और मुलैठी इनको पीसकर घीके साथ पीनेसे स्त्रियोंको सुखसे प्रसव होताहै। ईखकी उत्तरकी ओरकी जडको लेकर स्त्रीके शरीरकी बराबर लम्बे डोरेसे कमरमें बांधे तो सुखसे तत्काल प्रसव होताहै॥ ताडकी उत्तरकी ओरकी जडको लेकर गर्भिणीके शरीरकी बराबर डोरेमें बांधनेसे तत्काल सुखपूर्वक प्रसव होताहै॥ ४३-५०॥

अथ मूढगर्भस्य निदानसम्प्राप्तिलक्षणानि।

मूढः करोति पवनः खलु मूढगर्भं शूलञ्च योनिजठरादिषु मूत्रसंगम् ॥ भुग्नोऽनिलेन विगुणेन ततः स गर्भो संख्यामतीत्य बहुधा समुपैति योनिम् ॥ ५१ ॥

अस्यायमर्थः। पवनः स्वहेतुभिर्दुष्टः ततो मूढः रुद्धगतिः। मूढगर्भं रुद्धगतिं गर्भं योन्यादिषु शूलं मूत्रसंगञ्च करोति। ततः तेन अनिलेन विगुणेन रुद्धगतिना स गर्भः भुग्नः कुटिलीकृतः चतुर्भिः प्रकारैः यातीत्यर्थः। अष्टभिरपरे। तत्संख्यानिरासार्थमाह। संख्यामतीत्य उक्तां संख्यामतिक्रम्य बहुधा बहुभिः प्रकारैः योनिं समुपैति॥

अपने कारणोंसें दुष्ट हुई और कुंठितगतिवाली मूढवायुँ गर्भको मूढ अर्थात् टेढी गतिवाला करदेतीहै और योनिसे तथा पेटमें शूलको उत्पन्न करेहै तथा मूत्रको रोकँ देताहै। फिर मूढ वायुसे वह गर्भ रुककर चार प्रकारसे योनिमें आकर अडजाताहै ऐसा कितने एक वैद्य कहतेहैं और कितने एक वैद्य कहतेहैं कि आठ प्रकारसे योनिमें आनकर अडजाताहै परंतु सिद्धांत यह है कि इन संख्याओंका कुछ नियम नहीं है अनेक प्रकारसे योनिमें आनकर अडजाताहै॥ ५१॥

अथ चतुर्विधमूढगर्भस्य लक्षणनामानि।

संकीलकः प्रतिखुरः परिघोऽथ बीजस्तेषूर्द्ध्वबाहुचरणैः शिरसा च योनौ ॥ संगी च यो भवति कीलकवत्स कीलो दृश्यैः खुरैः प्रतिखुरः स हि कायसंगी ॥५२॥ गच्छेद्भुजद्वयशिराः स च बीजकाख्यो योनौ स्थितः सपरिघः परिघेण तुल्यः ५३

संशब्दोऽत्र छन्दोऽनुरोधात्कप्रत्ययोऽपि स्वार्थे तेन कील इति नाम। तस्य लक्षण-माह–ऊर्द्ध्वबाहुचरणैरिति। उत्थितैर्बाहुचरणशिरोभिः योनौ यः संगी भवति स कीलः कीलकाख्यो मूढगर्भः। द्वयैर्वहिर्गतैः। खुरैः खुरसाधर्म्यात्खुरशब्देनात्र हस्तौ पादौ च गृह्येते। तेन हस्तद्वयपादद्वयैर्वहिर्गतैः प्रतिखुरः। स हि कायसंगी हस्तपादेतर-कायेन सक्तो भवति। यो गर्भः भुजद्वय-शिराः भुजद्वयमध्ये शिरो यस्य एतादृग-च्छेन्निःसरत्। तच्छेषेण शरीरेण सक्तो भवति स बीजकाख्यः। परिघवद्योनौ स परिघः॥

जिसके हाथ, पाव तथा मस्तक योनिमें अटकजाता है वह मूढगर्भ कीलकी समान होताहै इसलिये यह कीलक कहाजाताहै।

जिसके दोनों हाथ और दोनो पाव बाहर निकल आवे और बाकी शरीर योनिमें अटक जाय उस मूढगर्भको प्रतिखुर कहतेहैं।

जिसमें दोनो हाथोंके बीचमें होकर शिर बाहर निकल आवे और बाकी शरीर योनिमें अटका रहै उस मूढगर्भको बीजक कहतेहैं।

योनिमें किवाड बंद करनेके दण्डेकी समान आडा आकर योनिमें अटक जाय उसको परिघ कहतेहैं॥५२॥५३॥

अथ मूढगर्भस्याष्टधात्वम्।

द्वारं निरुद्ध्य शिरसा जठरेण कश्चित्कश्चिच्छरीरपरिवर्तनकुब्जकायः॥ एकेन कश्चिदपरस्तु भुजद्वयेन तिर्यग्गतो भवति कश्चिदवाङ्मुखोऽन्यः॥ ५४॥ पार्श्वापवृत्तगतिरेति तथैव कश्चिदित्यष्टधा भवति गर्भगतिः प्रसूतौ॥ ५५॥

अयमर्थः। कश्चिच्छिरसा योनिद्वारं निरुद्ध्य कश्चित्कुब्जकायेन सकुब्जेन पृष्ठेन सक्तो भवति। कश्चिदेकेन भुजेन योनिसक्तेन सक्तो भवति। कश्चिद् भुजद्वयेन तिर्यग्भूत्वा सक्तो भवति। अन्यः ग्रीवाभंगादधोभूतेन मुखेन सक्तो भवति। कश्चित्पार्श्वेन अपवृत्ता निरुद्धा गतिर्यस्य एवंविधो योनिद्वारमेति याति॥

कोई मूढगर्भ मस्तकसे योनिद्वारको रोकलेताहै। कोई मूढगर्भ पेटसे योनिद्वारको रोकलेताहै। कोई मूढगर्भ कुवडा होकर पीठसे योनिद्वारको रोकदेताहै। कोई मूढगर्भ योनिमेंसे एक हाथ निकालकर बाकीके सब शरीरसे योनिद्वारमें अटकजाताहै। कोई मूढगर्भ दोनों हाथोंको बाहर निकालकर बाकी सब शरीरसे अटकजाताहै कोई मूढगर्भ आडा हो कर अटकजाताहै। कोई गरदनके टूटनेसे तिरछा मुख होकर योनिद्वारको रोक लेता है। कोई मूढगर्भ पसलियोंको फिराकर योनिद्वारमें अटक जाताहै॥ ५४॥ ५५॥

अथ सुश्रुतोक्ता अन्येऽष्टप्रकाराः।

"कश्चिद्द्वाभ्यां योनिसक्थिभ्यां योनिमुखं प्रतिपद्यते॥ १॥ कश्चिदाभुग्नैकसक्थिरितरेण सक्थ्ना॥ २॥ कश्चिदाभुग्नसक्थिशरीरः स्फिग्देशेन तिर्यग्गतः॥ ३॥ कश्चिदुदरपार्श्वपृष्ठानामन्यतमेन योनिद्वारं पिधायावतिष्ठते॥ ४॥ अन्यः पार्श्वापवृत्तशिराः कश्चिदेकेन बाहुना॥ ५॥ कश्चिदाभुग्नशिरा बाहुद्वयेन॥ ६॥ कश्चिदाभुग्नमध्यो हस्तपादशिरोभिः॥ ७॥ कश्चिदेकेन सक्थ्ना योनिद्वारं प्रतिपद्यते अपरेण पायुमिति॥ ८॥"

"कोई मूढगर्भ दोनो सांथलोंसे योनिके मुखमें आताहै। कोई मूढगर्भ एक सांथलसे कुवडा होकर दूसरी सांथलसे योनिके मुखमें आताहै। कोई मूढगर्भ सांथल तथा शरीरको कुवडा करके कूलोंसे आडा होकर योनिके मुखमें आताहै।

कोई मूढगर्भ अपनी छाती, पसली और पीठ इनमेंसे एक अंगसे योनिद्वारको ढककर अटकजाताहै।

कोई मूढगर्भ पसलियोंको और मस्तकको करके एक हाथसे योनिद्वारको रोकलेताहै।

कोई मूढगर्भ अपने मस्तकको मोडकर दोनो हाथोंसे योनिद्वारको रोकदेताहै ।

कोई मूढगर्भ अपनी कमरको टेढी करके हाथसे, पांवसे और मस्तकसे योनिद्वारमे आताहै ।

कोई मूढगर्भ एक सांथलसे योनिद्वारमे प्राप्त होताहै और दूसरी सांथलसे गुदामे प्राप्त होताहै ॥"

अथासाध्यमूढगर्भिणी ।

अपविद्धशिरा यातु शीताङ्गी निरपत्रपा॥ नीलोद्गतशिरा हन्ति सा गर्भं स च तां तथा ॥ ५६ ॥

अपविद्धशिराः अवनतशिराः शिरोऽपि धारयितुमशक्तेति यावत् । निरपत्रपा लज्जाशून्या । नीलोद्गतशिरा कुक्षौ नीला उद्गता शिरा यस्याः सा ॥

जिसका मस्तक गिर गिर जाता होय, शरीर शीतल होगया होय, लज्जारहित होगई होय और जिसके शरीरमें नीलि रंगकी नसें उभर आई होंयँ वह स्त्री गर्भको नष्ट करदेती है और गर्भ उस स्त्रीको नष्ट करदेता है ॥ ५६ ॥

अथान्तर्मृतगर्भलक्षणम् ।

गर्भास्पन्दनमावीनां प्रणाशः श्यावपाण्डुता ॥ भवेदुच्छ्वासपूतित्वं शूलश्चान्तर्मृते शिशौ ॥ ५७ ॥

गर्भास्पन्दनं गर्भस्याचलत्वम् । आवीनां प्रणाश इति प्रसववेदनानामभावः । अथवा आवीशब्देन प्रसवलिङ्गानि मूत्रकफप्रसेकादीनि कथ्यन्ते तेषां नाशः । शूलः अन्तर्मृतस्य शिशोरुच्छूनतया ॥

जो गर्भके भीतर बालक मरगया होय तो वह हलन चलन नही होता । प्रसवकी पीडा नही होती । तथा मूत्र कफका आना आदि प्रसवके लक्षण नष्ट होजातेहैं । शरीरका रग स्याही लिये पीला होजाताहै, दुर्गन्धित श्वास और मरे बालकके सूजजानेके कारण शूल होताहै ॥ ५७ ॥

अथ गर्भमरणकारणम् ।

मानसागन्तुभिर्मातुरुपतापैः प्रपीडितः ॥ गर्भो व्यापद्यते कुक्षौ व्याधिभिश्च प्रपीडितः ॥ ५८ ॥

उपतापो दुःखम् । मानस उपतापो बन्धुधनक्षयादिना । आगन्तुरुपतापः प्रहारादिः॥

माताके प्रहार आदि आगन्तुक कारणोंसे अथवा बन्धु इष्ट धनादि क्षय आदि मानसिक कारणोंसे अथवा रोगोंसे पीडित होनेके कारण गर्भ पेटमेही मरजाताहै ॥ ५८ ॥

अथ गर्भिण्या अन्यासाध्यलक्षणानि ।

योनिसंवरणं संगः कुक्षौ मक्कल्ल एव च ॥ हन्युः स्त्रियं मूढगर्भो यथोक्ताश्चाप्युपद्रवाः ॥ ५९ ॥ वातलान्यन्नपानानि ग्राम्यधर्मं प्रजागरम् ॥ अत्यर्थं सेवमानायां गर्भिण्यां योनिमार्गगः ॥ ६० ॥ मातरिश्वा प्रकुपितो योनिद्वारस्य संवृतिम् ॥ कुरुते रुद्धमार्गत्वात्पुनरन्तर्गतोऽनिलः ॥ ६१ ॥ निरुणद्ध्याशयद्वारं पीडयन्गर्भसंस्थितम् ॥ निरुद्धवचनोच्छ्वासो गर्भश्चाशु विपद्यते ॥ ६२ ॥ उच्छ्वासे रुद्धहृदयं नाशयत्याशु गर्भिणीम् ॥ योनिसंवरणं नाम व्याधिमेनं प्रचक्षते॥ अन्तकप्रतिमं घोरं नारभेत चिकित्सितम्॥ ६३॥

योनिसंवरणं व्याधिविशेषः । संगः कुक्षौ गर्भस्य लग्नता अप्रवृत्तिरिति यावत् । कुक्षौ मक्कल्लः रक्तमारुतजः शूलविशेषः । यद्यपि प्रसूताया मक्कल्लशूलमुक्तम् । तथापि सुश्रुते । प्रजातायाश्चेति चकारेणाप्रसूताया अपि मक्कल्लशूलं भवति इति बोद्धव्यम् । उपद्रवा आक्षेपककासश्वासादयः ॥

योनिसवरण रोग, गर्भका अटकना, मक्कल्लशूल, (रुधिर तथा वातसे उत्पन्नहुआ एक प्रकारका शूल) और मूढगर्भ तथा अन्यान्य आक्षेपक, खासी, श्वास आदि पत्र गर्भिणीको मारदेतेहैं ।

योनिसंवरण रोगके लिये अन्यग्रंथोंमें कहा है कि "गर्भवती स्त्री वातकारक अन्नपान, मैथुन और रात्रिमें जागरण इनको अत्यंत सेवन करे तो उसके प्रकुपित हुई योनिके मार्गमें स्थित वायु ऊर्ध्वगमन करनेवाली होनेसे योनिद्वारको बंद करदेतीहै और फिर भीतर रहनेवाली वायु गर्भगत बालकको पीडित करके गर्भाशयके द्वारको रोकदेतीहै कि जिससे गर्भ अपने मुखके श्वासके रुक जानेसे तत्काल मरजाताहै । और हृदयके ऊपरसे चलता हुआ श्वास गर्भिणीको मारदेताहै इस रोगको योनिसंवरण कहते हैं" ।

यद्यपि 'प्रसूता स्त्रियोंके मकल्लशूल होताहै' ऐसा कहा है । तथापि सुश्रुतमें 'प्रजातायाश्च' इसमें 'चकार' है इससे जानना चाहिये कि 'जिसके प्रसव न हुआ होय उसके भी 'मकल्लशूल होताहै' ॥ ५९–६३ ॥

अथ मूढगर्भचिकित्सा ।

याभिः संकटकालेऽपि बह्वयो नार्यः प्रसाविताः ॥ सम्यग्लब्धं यशस्ताभिस्तु नार्यः कुर्युरिमां क्रियाम् ॥ ६४ ॥ गर्भे जीवति मूढे तु गर्भे यत्नेन निर्हरेत् ॥ हस्तेन सर्पिषाक्तेन योनेरन्तर्गतेन सा ॥ ६५ ॥

सा जनयित्री ॥

मृते तु गर्भे गर्भिण्या योनौ शस्त्रं प्रवेशयेत् ॥ शस्त्रशास्त्रार्थविदुषी लघुहस्ता भयोज्झिता ॥ ६६ ॥ सचेतनं तु शस्त्रेण न कथञ्चन दारयेत् ॥ स दीर्यमाणो जननीमात्मानं चापि मारयेत् ॥ ६७ ॥ नोपेक्षेत मृतं गर्भं मुहूर्तमपि पण्डितः ॥ तदाशु जननीं हन्ति प्रभृतान्नं यथा पशुम् ॥ ६८ ॥

प्रभृतान्नमतिमात्रमन्नम् ।

जिन्होंने इस संकटमें भी अनेक स्त्रियोंको प्रसव कराया होय और इस कामसे जिनका यश फैलरहा हो, ऐसी दाई इस क्रियाको करै । मूढ गर्भ जीता होय तो दाई अपने हाथको घी लगाकर योनिके भीतर डालकर यत्न पूर्वक गर्भको खैंचकर निकाल लेवे ।

जो मूढगर्भ मरगया होय तो शस्त्रविधिको जाननेवाली, हलके हाथवाली, और भयरहित ऐसी दाई गर्भिणीकी योनिमें शस्त्र डाले ।

जो गर्भमें जान होय तो उसको किसी प्रकार भी शस्त्रसे नहीं काटना चाहिये, क्योंकि जीवित गर्भको काटनेसे वह अपने आप भी मरजाताहै और माताको भी मारदेताहै ।

जो गर्भ मरगया होय तो उसको जानकर उसमें कुछ भी विलम्ब नहीं करना चाहिये तत्काल शस्त्रसे काट डालना चाहिये क्योंकि नहीं काटनेसे मरा हुआ गर्भ तत्काल माताको मारदेताहै जिस प्रकार अधिक अन्न पशुकी समान मनुष्योंको मारदेताहै ॥ ६४–६८ ॥

अथ गर्भच्छेदनप्रकारः ।

यद्यदङ्गं हि गर्भस्य योनौ सक्तं तु तद्भिषक् ॥ सम्यग्विनिर्हरेच्छित्त्वा रक्षेन्नारीं प्रयत्नतः ॥ ६९ ॥ एवं निर्हृतशल्यां तां सिञ्चेदुष्णेन वारिणा ॥ ततोऽभ्यक्तशरीरायां योनौ स्नेहं विधारयेत् ॥ एवं मृद्वी भवेद्योनिस्तच्छूलं चोपशाम्यति ॥ ७० ॥

गर्भका जो जो अंग योनिमें अटकरहा होय उस उस अंगको वैद्य अच्छे प्रकारसे काटकर निकाल लेवे और यत्नपूर्वक स्त्रीकी रक्षा करे । गर्भके निकालनेके पश्चात् उस स्त्रीके शरीरपर गरम जलका सेचन करे और उसके पश्चात् शरीरपर मालिस करके योनिमें घी लगावे. इस प्रकार करनेसे योनि कोमल और शूल शांत होजाताहै ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अथ प्रसूतायोनिक्षतादिचिकित्सा ।

तुम्बीपत्रं तथा लोध्रं समभागं सुपेषयेत् ॥ तेन लेपो भगे कार्यः शीघ्रं स्याद्योनिरक्षता ॥ ७१ ॥ पलाशोदुम्बुरफलं तिलतैलसमन्वितम् ॥ योनौ विलिप्तं मधुना गाढीकरणमुत्तमम् ॥ ७२ ॥ प्रसूता वनिता वृद्धकुक्षिह्रासाय सम्पिबेत् ॥ प्रातर्मथितसंमिश्रं त्रिसप्ताहात्कणाजटाम् ॥ ७३ ॥

तोम्बीके पत्ते और लोध इनको समान भाग लेकर अच्छे प्रकारसे पीसकर योनिमें लेप करनेसे योनि तत्काल घावरहित होजातीहै।

ढाकके फल और गूलरके फल इनको तिलके तेलमें पीसकर योनिमें लेप करनेसे योनि अच्छे प्रकारसे दृढ हो जातीहै।

जिसका प्रसव होनेके पीछे पेट बढगया होय ऐसी स्त्री इक्कीस दिनके पश्चात् प्रातःकाल पीपलामूलके चूर्णको दहीमें घोलकर पिये॥ ७१-७३॥

अथ प्रसूतायाः प्रसवानन्तरमनिःसृतापराजोपद्रवाः।

प्रसूताया न पतिता जठरादपरा यदि॥ तदा सा कुरुते शूलमाध्मानं वह्निमन्दताम्॥ ७४॥

अपरा आम्बर इति लोके।

जिसके प्रसव होनेपर आम्बर अर्थात् जेर न निकले तो वह आम्बरशूल, अफारा और अग्निको मन्द करेहै॥ ७४॥

अथोदरस्थितापरायाश्चिकित्सा।

केशवेष्टितयांगुल्या तस्याः कण्ठं प्रघर्षयेत्॥ निर्मोककटुकालाबूकृतबन्धनसर्षपैः॥ चूर्णितैः कटुतैलाक्तैर्धूपयेदभितो भगम्॥ ७५॥

निर्मोकः सर्पकंचुकः। कृतबन्धनं कोशातकः॥

लांगलीमूलकल्केन पाणिपादतलानि हि॥॥ ७६॥ प्रलिम्पेत्सूतिका योषिदपरापातनाय वै॥ हस्तं छिन्ननखं स्निग्धं सूतायोनौ शनैः क्षिपेत्॥ ७७॥ अपरां तेन हस्तेन जनयित्री विनिर्हरेत्॥ एवं निर्हृतशल्यां तां सिञ्चेदुष्णेन वारिणा॥॥ ७८॥ ततोऽभ्यक्तशरीराया योनौ स्नेहं निधापयेत्॥ ७९॥

अंगुलीमें बालोको बाँधकर उससे कंठको घिसनेसे आम्बर गिरजाताहै।

सांपकी कैंचली, कडवी तोम्बी, कडवी तोरई तथा सरसो इनको एकत्र पीसकर सरसोंके तेलमें मिलाकर योनिके चारो ओर धूनी देनेसे आम्बर गिरजाताहै।

प्रसूता स्त्रीके हाथ और पांवके तलुओंके ऊपर कलिहारीकी जडके कल्कका लेप करनेसे आम्बर गिरजाताहै।

चतुर दाई अपने हाथकी अगुलियोके नखोंको अच्छे प्रकारसे काटकर हाथको घीसे चिकना करके धीरे धीरे प्रसूता स्त्रीकी योनिमें डालकर आम्बरको निकाल लेवे।

इस प्रकार आम्बर निकालनेके पश्चात् स्त्रीके ऊपर गरम जलसे सेचन करे और फिर शरीरपर मालिस करके योनिमे घी लगावे,॥ ७५-७९॥

अथ मक्कल्लशूलस्य निदानं सम्प्राप्तिलक्षणञ्च।

वनितायाः प्रसूतायाः वातो रूक्षेण वार्द्धितः॥ तीक्ष्णोष्णशोषितं रक्तं रुद्धा ग्रन्थिं करोति हि॥ ८०॥ नाभ्यधः पार्श्वयोर्वस्तौ वस्तिमूर्द्धनि चापि वा॥ ततश्च नाभौ वस्तौ च भवेच्छूलं तथोदरे॥ ८१॥ भवेत्पक्वाशयाध्मानं मूत्रसंगश्च जायते॥ एतद्भिषग्भिरुदितं मक्कल्लामयलक्षणम्॥ ८२॥

प्रसूता स्त्रियोंके रूक्ष कारणोंसे वढीहुई वायु तीक्ष्ण था उष्ण कारणोंसे सुखाये हुए रुधिरको रोककर नाभिके नीचे, पसलियोंमे, मूत्राशयमें अथवा मूत्राशयके ऊपरके भागमे गांठको उत्पन्न करेहै। इस गांठके होनेसे नाभिमें, मूत्राशयमें तथा पेटमें शूल चलताहै, पक्वाशय फूलजाता है और मूत्र रुकजाताहै, वैद्योंने यह मक्कल्ल रोगके लक्षण कहेहैं॥ ८०-८२॥

अथ मक्कल्लशूलचिकित्सा।

संचूर्णितयवक्षारं पिवेत्कोष्णेन वारिणा॥ सर्पिषा वा पिवेन्नारी मक्कल्लस्य निवृत्तये॥॥ ८३॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं गजपिप्पली॥ नागरं चित्रकं चव्यं रेणुकैलाजमोदिकाम्॥ ८४॥ सर्षपो हिंगु भार्ङ्गी च पाठेन्द्रयवजीरकाः॥

महानिम्बश्च मूर्वा च विषा तिक्ता विडङ्गकम् ॥ ८५ ॥ पिप्पल्यादिर्गणो ह्येष कफमारुतनाशनः ॥ क्राथमेषां पिबेन्नारी लवणेन समन्वितम् ॥ ८६ ॥ गुल्मशूलज्वरहरं दीपनञ्चामपाचनम् ॥ मक्कल्लशूलगुल्मघ्नं कफानिलहरं परम् ॥ ८७ ॥ त्रिकटुकचातुर्जातककुस्तुम्बुरुचूर्णसंयुक्तम्। खादेद्गुडं पुराणं नित्यं मक्कल्लदलनाय॥ ८८॥

प्रसूता स्त्रीको मक्कल्ल शूलको शमन करनेके लिये जवाखारका महीन चूर्ण करके सुहाते हुए गरम जलके साथ अथवा घीके साथ पिलावे ।

पीपल, पीपलामूल, काली मिरच, गजपीपल, सोंठ, चीता, चव्य, रेणुका, इलायची, अजमोद, सरसों, हींग, भारंगी, पाढ, इन्द्रजौ, जीरा, बकायन, चुरनहार, अतीस, कुटकी और वायविडंग, यह सब औषधि 'पिप्पल्यादिगण' इस नामसे कहीजातीहैं. इनका क्राथ बनाकर सेंधानमक डालकर पिवे । इस क्राथको पीनेसे गुल्म, शूल, ज्वर, मक्कल्लशूल, तथा कफ और वायु अच्छे प्रकारसे नष्ट होजाताहै । अग्नि दीपन होतीहै और आम पचजातीहै ।

सोंठ, मिरच, पीपल, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेसर, और धनिया इनका चूर्ण पुराने गुडमें मिलाकर उस गुडको नित्य खाय तो मक्कल्ल नष्ट हो जाताहै ॥ ८३-८८ ॥

अथ प्रसूताहितकारिणः ।

प्रसूता युक्तमाहारं विहारं च समाचरेत् ॥ व्यायामं मैथुनं क्रोधं शीतसेवाञ्च वर्जयेत् ॥ ८९ ॥ मिथ्याचारात्सूतिकाया यो व्याधिरुपजायते ॥ स कृच्छ्रसाध्योऽसाध्यो वा भवेत्तत्पथ्यमाचरेत् ॥ ९० ॥

प्रसूता स्त्रीको योग्य आहार और योग्य विहार करना चाहिये। और परिश्रम, मैथुन तथा शीतल पदार्थोंका सेवन त्याग देवे। प्रसूता स्त्रीके मिथ्या आहार विहारसे जो रोग उत्पन्न होताहै वह रोग कष्टसाध्य अथवा असाध्य होताहै इसलिये प्रसूता स्त्रीको अवश्य पथ्य करना चाहिये ॥ ८९।९० ॥

अथ सूतिकारोगनिदानम् ।

मिथ्योपचारात्संक्लेशाद्विषमाजीर्णभोजनात् ॥ सूतिकायास्तु ये रोगा जायन्ते दारुणाश्च ते ॥ ९१ ॥

मिथ्योपचारादनुचिताचरणात् । प्रवातादिसेवनात् । संक्लेशात् उत्क्लेश्यन्ते दोषा अनेनेति संक्लेशो दोषजनकमात्रं तस्मात् । दारुणाः कष्टसाध्याः ॥

अत्यन्त वातकारक स्थानको सेवन करने आदिसे, अयोग्य आचरणसे, जिनसे दोषोंका प्रकोप होय ऐसे आचरण करनेसे, विषम भोजनसे और अजीर्णसे प्रसूताके जो रोग उत्पन्न होतेहैं वे कष्टसाध्य होजातेहैं ॥ ९१ ॥

अथ सूतिकारोगाः ।

अंगमर्दो ज्वरः कासः पिपासा गुरुगात्रता ॥ शोथः शूलातिसारौ च सूतिकारोगलक्षणम् ॥ ९२ ॥

एतेऽङ्गमर्दादयः प्रायेण सूतिकाया भवन्ति सूतिकारोगत्वेन लक्ष्यन्ते ॥

अंगोंका टूटना, ज्वर, खाँसी, तृषा, गात्रका भारीपन, सूजन, शूल और अतिसार यह रोग प्रसूताके विशेष करके होतेहैं । यह प्रसूता स्त्रीके होतेहैं इसलिये सूतिकारोग कहे जातेहैं ॥ ९२ ॥

अथ प्रसूताया ज्वरादिरोगाणां विशेषाभिधानम् ।

ज्वरातीसारशोथाश्च शूलानाहबलक्षयाः॥ तन्द्राऽरुचिप्रसेकाद्या वातश्लेष्मसमुद्भवाः॥ ॥ ९३ ॥ कृच्छ्रसाध्या हि ते रोगाः क्षीणामांसबलाश्रिताः ॥ ते सर्वे सूतिकानाम्ना रोगास्ते चाप्युपद्रवाः ॥ ९४ ॥

सूतिकाभवत्वेन सूतिकानाम्ना ते रोगाः आश्रयाश्रितयोरभेदोपचारात् । ते चाप्युपद्रवा इति । अत एव ज्वरादयः उक्तानां रोगाणामन्यतमं प्रधानीकृत्योपद्रवाश्च ॥

ज्वर, अतिसार, सूजन, शूल, पेटका अफरना, बलका क्षय, तन्द्रा, अरुचि, और मुखमें पानी भर भर आना

इत्यादि रोग प्रसूता स्त्रीके मांस तथा बलकी क्षीणतासे होतेहैं। यह सूतिकारोग कहेजातेहैं और उसीप्रकार कष्टसाध्य होजातेहैं।

उपरोक्त रोगोमे कोई रोग मुख्यतासे होय तो ज्वरादिक रोग उसके उपद्रवरूप होतेहैं ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

अथ सूतिकारोगचिकित्सा।

सूतिकारोगशान्त्यर्थं कुर्याद्वातहरीं क्रियाम् ॥ दशमूलकृतं क्वाथं कोष्णं दद्याद् घृतान्वितम् ॥ ९५॥ अमृतानागरसहचरभद्रोत्कटपञ्चमूलकं जलदम् ॥ शृतशीतं मधुयुक्तं शमयत्यचिरेण सूतिकातङ्कम् ॥ ९६ ॥

सूतिकाके रोगको शमन करनेके लिये वातनाशक क्रिया करे। दशमूलका क्वाथ बनाकर कुछ कुछ जब गरम होय तब उसमें घी डालकर पिये तो सूतिकारोग नष्ट होजाताहै ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

अथ देवदार्वादिक्वाथः

देवदारु वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम्॥ भूनिम्बः कट्फलं मुस्तं तिक्ता धान्यहरीतकी ॥ ९७ ॥ गजकृष्णा सदुःस्पर्शा गोक्षुरुर्धन्वयासकः ॥ बृहत्यतिविषा छिन्ना कर्कटः कृष्णजीरकः ॥ ९८ ॥ समभागान्वितैरेतैः सिन्धुरामठसंयुतम् ॥ क्वाथमष्टावशेषं तु प्रसूतां पाययेत्स्त्रियम् ॥ ९९ ॥ शूलकाशज्वरश्वासमूर्च्छाकम्पशिरोऽर्तिभिः ॥ युक्तं प्रलापतृड्दाहतन्द्रातीसारवान्तिभिः ॥ १०० ॥ निहन्ति सूतिकारोगं वातपित्तकफोद्भवम् ॥ कषायो देवदार्वादिः सूतायाः परमौषधम् ॥ १०१ ॥

देवदारु, वच, कूठ, पीपल, सोठ, चिरायता, कायफल, कुटकी, धनियाँ, हरड, गजपीपल, कटेरी, गोखुरू, जवासा, कटाई, अतीस, गिलोय, काकडासिंगी और कालाजीरा इन सबको समान भाग लेकर अष्टावशेष क्वाथ बनाकर उसमें सैंधानमक और भूनी हींग डालकर प्रसूता स्त्रीको पिलावे तो शूल, खाँसी, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, कप, मस्तककी पीडा, प्रलाप, तृषा दाह, तन्द्रा, अतिसार और वमनयुक्त वात तथा कफसे उत्पन्न हुए प्रसूताके रोग नष्ट होजातेहैं। यह देवदार्वादि क्वाथ प्रसूताके लिये उत्तम औषधि है ॥ ९७–१०१ ॥

अथ पंचजीरकपाकः।

जीरकं स्थूलजीरश्च शतपुष्पाद्वयं तथा ॥ यवानी चाजमोदा च धान्यकं मेथिकापि च ॥ १०२ ॥ शुण्ठी कृष्णा कणामूलं चित्रकं हपुषापि च ॥ बदरीफलचूर्णश्च कुष्ठं कम्पिल्लकं तथा ॥ १०३ ॥ एतानि पलमात्राणि गुडं पलशतं मतम् ॥ क्षीरप्रस्थद्वयं दद्यात्सर्पिषः कुडवं तथा॥१०४॥ पञ्चजीरकपाकोऽयं प्रसूतानां प्रशान्तये ॥ युज्यते सूतिकारोगे योनिरोगे ज्वरे क्षये ॥ १०५ ॥ कासे श्वासे पाण्डुरोगे कार्श्ये वातामयेषु च ॥ १०६ ॥

जीरा, कालाजीरा, सोया, सौंफ, अजमोद, अजवायन, धनिया, मेथी, सोठ, पीपल, पीपलामूल, चीता, हाऊबेर, बेरका चूर्ण, कूठ और कवीला यह प्रत्येक पदार्थ ४ चार चार ४ तोले लेवे, गुड ४०० चारसौ तोले, इन सबको १२८ एकसौ अठाईस तोले दूध और सोलह तोले भर घीमे पकावे तो यह पञ्चजीरक पाक सिद्ध होताहै। यह पाक सूतिकारोगमें, ज्वरमे, क्षयमें, खाँसीमे, श्वासमे, पांडुरोगमें कृशतामें और वातजन्य रोगोमे हितकारी है ॥ ॥ १०२–१०६ ॥

अथ सौभाग्यशुंठी।

आज्यं स्यात्पलयुग्ममत्र पयसः प्रस्थद्वयं खण्डतः पञ्चाशत्पलमत्र चूर्णितमथो प्रक्षिप्यते नागरम् ॥ प्रस्थार्द्धं गुडवद्विपाच्य विधिना मुष्टित्रयं धान्यकान्मिश्याः पञ्चपलं पलं क्रिमिरिपोः साजाजिजीरादपि ॥ १०७ ॥ व्योषाम्भोददलोरगेन्द्रसुमनस्त्वग्द्राविडीनां पलं पक्वं नागरखण्डसंज्ञकमिदं तत्सूतिकारोगहृत् ॥ तृट्छर्दिज्वरदाहशोषशमनं सश्वासकासापहं प्लीह-

व्याधिविनाशनं कृमिहरं मन्दाग्निसन्दीपनम् ॥ १०८ ॥

दलं पत्रकम् । उरगेन्द्रसुमनः नागकेसरम् । द्राविडी सूक्ष्मैला ॥

आठ तोलेभर घी, १२८ एकसौ अट्ठाईस तोले दूध और २०० दोसौ तोले खाड इनको एकत्र करके इनमें ३२ बत्तीस तोले सोंठका चूर्ण मिलावे फिर इसको गुडकी समान विधिपूर्वक पकावे, इसमें १२ बारह तोले धनिया, २० वीस तोले सौंफ, वायविडंग ४ चार तोले, सफेद-जीरा ४ चार तोले, सोंठ ४ चार तोले, मिरच ४ चार तोले, पीपल ४ चार तोले, नागरमोथा ४ चार तोले, तेजपात ४ चार तोले, नागकेसर ४ चार तोले, दालचीनी ४ तोले और छोटी इलायची ४ चार तोले डालकर पाक करे तो यह सौभाग्यशुंठी सिद्ध होतीहै । इस सौभाग्यशुंठीको सेवन करनेसे-प्रसूता स्त्रियोंके सूतिकारोग, तृषा, वमन, ज्वर, दाह, शोष, श्वास, खांसी, प्लीहा और कृमिका नाश होताहै और मंद हुई अग्नि- दीपन होतीहै ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

अथ प्रसूतापथ्यावधिः ।

सर्वतः परिशुद्धा स्यात्स्निग्धपथ्याल्पभोजना ॥ स्वेदाभ्यङ्गपरा नित्यं भवेन्मासमतन्द्रिता ॥ १०९ ॥

सर्वतः परिशुद्धा निःसृताशेषदुष्टरुधिरा । अतन्द्रिता पथ्यादौ सावधाना ॥

प्रसूता सार्धमासान्ते दृष्टे वा पुनरार्तवे ॥ सूतिकानामहीना स्यादिति धन्वन्तरेर्मतम् ॥ ११० ॥ उपद्रवविशुद्धाञ्च विज्ञाय वरवर्णिनीम् ॥ ऊर्ध्वं चतुर्भ्यो मासेभ्यः परिहारं विवर्जयेत् ॥ १११ ॥

जिसका सम्पूर्ण दुष्ट रुधिर निकल गया हो ऐसी प्रसूता [illegible] महीनेतक स्निग्ध, पथ्य और अल्प भोजनकरे, [illegible] और मालिश करावे और पथ्य आदिमें [illegible] रहे ।

[illegible] अथवा [illegible] रजोदर्शन [illegible] "प्रसूता" नाम दूर होजाताहै [illegible] ।

चार महीने वीतजाँय और कोई भी उपद्रव न रहे तब प्रसूताको परहेज त्यागना चाहिये ॥ १०९-१११ ॥

अथ स्तनरोगसम्प्राप्तिः ।

सक्षीरौ वाप्यदुग्धौ वा दोषः प्राप्य स्तनौ स्त्रियाः ॥ रक्तं मांसञ्च संदूष्य स्तनरोगाय कल्पते ॥ ११२ ॥

अदुग्धावपि स्तनौ प्रसूताया गर्भिण्याश्च स्त्रिया बोद्धव्यौ ॥ अत आह सुश्रुतः-

धमन्यः संवृतद्वाराः कन्यानां स्तनसंश्रिताः ॥ दोषाविसरणात्तासां न भवन्ति स्तनामयाः ॥ ११३ ॥

दोषाविसरणाः संवृतद्वारत्वेन दोषाणामविसरणमसञ्चारो यासु ताः ॥

तासामेव प्रसूतानां गर्भिणीनाञ्च ताः पुनः ॥ स्वभावादेव विवृता जायन्ते संस्रवन्त्यतः ॥ ११४ ॥

दोष दूधयुक्त अथवा दूधरहित स्त्रीके स्तनोंमें प्राप्त होकर रुधिर तथा मांसको दूषित करके स्तनरोगको उत्पन्न करते हैं ।

यह रोग कन्याओंके नहीं होता क्योंकि सुश्रुत कहताहै कि "कन्याओंके स्तनोंकी धमनी रुकीहुई होती हैं इस कारण उनके दोषोंका संचार न होनेसे स्तनरोग नहीं होता ।" जिनके प्रसव हुआ हो और गर्भवती स्त्रियोंकी धमनी स्वाभाविक रीतिसे खुल जाती हैं इससे स्राव करतीहैं ॥ ११२-११४ ॥

अथ स्तनरोगलक्षणम् ।

पञ्चानामपि तेषां तु हित्वा शोणितविद्रधिम् ॥ लक्षणानि समानानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥ ११५ ॥

पञ्चानां वातपित्तकफसन्निपातागन्तुजानाम् । आगन्तुजस्तरोगोऽभिघातेन शल्येन च बोद्धव्यः रक्तजस्यासम्भवात्स्वभावात् ॥

पाचों प्रकारके स्तनरोगोंके लक्षण रुधिरजन्य विद्रधिको छोडकर बाहरकी विद्रधिकी समान होते हैं ।

यह ऊपरसे जानाजाताहै कि वातजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य सन्निपातजन्य और आगन्तुज ऐसे पांच प्रकारके स्तनरोग होतेहैं । अभिघात अथवा शल्यसे जो स्तनरोग होताहै वह आगन्तुज कहाजाताहै । रुधिरके प्रकोपसे स्तनरोग नहीं होता ऐसा स्वभावहीहै ॥ ११५ ॥

अथ स्तनरोगचिकित्सा ।

शोथं स्तनोऽत्थितमवेक्ष्य भिषग्विदध्या-द्यद्विद्रधावभिहितं बहुधा विधानम् ॥ आमे विदाहिनि तथैव च तस्य पाके यस्याः स्तनौ सततमेव च निग्रहार्त्तौ ॥ ॥ ११६ ॥ पित्तघ्नानि तु शीतानि द्रव्या-ण्यत्र प्रयोजयेत् ॥ जलौकोभिर्हरेद्रक्तं न स्तनावुपनाहयेत् ॥ ११७ ॥

उपनाहयेत्स्वेदयेत् ॥

लेपो विशालामूलेन हन्ति पीडां स्तनो-त्थिताम् ॥ निशाकनककल्काभ्यां लेपः प्रोक्तः स्तनार्तिहा ॥ ११८ ॥

विशाला इन्द्रवारुणी । कनकस्य धत्तूरस्य पत्रं ग्राह्यम् ॥

लेपो निहन्ति मूलं वन्ध्याकर्कोटीभवं शीघ्रम् ॥ निर्वाप्य तप्तलोहं सलिले तद्वा पिबेत्तत्र ॥ ११९ ॥

इति स्त्रीरोगाधिकारः ।

स्त्रीके स्तनोंमे सूजन उत्पन्न होय तो वैद्य विद्रधि अधिकारोक्त अनेक प्रकारकी चिकित्सा करे । किंतु स्तनोंमें शेकादि स्वेदन तो कभी नहीं देवे ।

स्तनके रोगोंपर पित्तनाशक शीतल पदार्थोंका प्रयोग करे और जोक लगाकर रुधिर निकाले स्तनोंमे स्वेदन कभी नही देना चाहिये ॥

इन्द्रायनकी जडका लेप करनेसे स्तनरोग नष्ट होताहै ॥

हलदी और धतूरेके पत्ते इनका लेप करनेसे स्तनकी पीडा नष्ट होजाती है ॥

तपाये हुए लोहेको जलमें बुझाकर उस जलको पिलानेसे स्तनरोग नष्ट होताहै ॥

बांझककोडेकी जडका लेप करनेसे भी स्तनकी पीडा शमन होजातीहै ॥ ११६–११९ ॥

इति स्त्रीरोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

अथ बालरोगाधिकारः ।

तत्र बालानां बालग्रहरक्षोपदेशः ।

बालग्रहा अनाचारात्पीडयन्ति शिशुं यतः ॥ तस्मात्तदुपसर्गेभ्यो रक्षेद्बालं प्रयत्नतः ॥ १ ॥

अनाचार (मिथ्या आचारादि) से बालग्रह बालकको पीडित करतेहैं । इस कारण बालग्रहोके उपसर्गसे यत्नपूर्वक बालककी रक्षा करनी चाहिये ॥ १ ॥

अथ बालग्रहाणां नामानि ।

स्कन्दग्रहस्तु प्रथमः स्कन्दापस्मार एव च ॥ शकुनी रेवती चैव पूतना चान्धपूतना ॥ २ ॥ पूतना शीतपूर्वा च तथैव मुखमण्डिका ॥ नवमो नैगमेयश्च प्रोक्ता बालग्रहा अमी ॥ ३ ॥

स्कन्द, स्कन्दापस्मार, शकुनी, रेवती, पूतना, अन्धपूतना, शीतपूतना, मुखमडिका, और नैगमेय इस प्रकार बालग्रह नौ हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

अथ बालग्रहोत्पत्तिः ।

नव स्कन्दादयः प्रोक्ता बालानां ये ग्रहा अमी ॥ श्रीमन्तो दिव्यवपुषो नारीपुरुष-विग्रहाः ॥ ४ ॥ एते स्कन्दस्य रक्षार्थं कृत्तिकोमाग्निशूलिभिः ॥ सृष्टाः शरवन-स्थस्य रक्षितस्य स्वतेजसा ॥५॥ स्कन्दः सृष्टो भगवता देवेन त्रिपुरारिणा ॥ बिभर्ति चापरां संज्ञां कुमार इति संग्रहः ॥ ६ ॥

अयं हि कार्तिकेयादन्यः ॥

स्कन्दापस्मारसंज्ञो यः सोऽग्निना तत्सम-द्युतिः ॥ स च स्कन्दसखो नाम्ना विशाख इति चोच्यते ॥ ७ ॥ ग्रहाः स्त्रीविग्रहा एते नानारूपाः प्रकीर्तिताः ॥ देवानां

कृत्तिकानां ते भागा राजसतामसाः ॥ ८ ॥ नैगमेयस्तु पार्वत्या सृष्टो येषां ततो ग्रहः ॥ कुमारः स हि देवस्य गुहस्यात्मसमोऽस्ति वै ॥ ९ ॥ ततो भगवता स्कन्दे सुरसेनापतौ कृते ॥ उपतस्थुर्ग्रहा एते दीप्तशक्तिधरं गुहम् ॥ १० ॥ ऊचुः प्राञ्जलयश्चैनं वृत्तिर्नो दीयतामिति ॥ तेषामर्थे ततः स्कन्दः शिवं देवमचोदयत् ॥ ११ ॥ ततो ग्रहांस्तानुवाच भगवान्भगनेत्रहृत् ॥ तैर्यग्योनिं मानुषं च दैवञ्च त्रितयं जगत् ॥ १२ ॥ परस्परोपकारेण वर्तते धार्यते तथा ॥ देवान्नरान्प्रीणयन्ति तैर्यग्योनींस्तथैव च ॥ १३ ॥ यथाकालं प्रवृत्तास्तु उष्णवर्षाहिमानिलैः ॥ इज्याञ्जलिनमस्कारैर्जपहोमैस्तथैव च ॥ ॥ १४ ॥ सम्यक्प्रयुक्तैश्च नराः प्रीणयन्त्यपि देवताः ॥ भागधेयविभक्तश्च शेषं किञ्चिन्न विद्यते ॥ १५ ॥ तद्युष्माकं शुभा वृत्तिर्बालेष्वेव भविष्यति ॥ १६ ॥

स्कन्द आदि जो नौ बालग्रह कहे हैं वह सम्पत्तिवाले और दिव्य शरीरवाले हैं । इनमें कितने एक स्त्रीरूपवाले हैं और कितने एक पुरुषरूपवाले हैं । ये ग्रह नरलोकके बनमें रहतेहैं और स्वाभाविक तेजसे रक्षित हैं । ये ग्रह कार्तिकेयकी रक्षाके लिये कृत्तिका, पार्वती, अग्नि और सदाशिवने उत्पन्न करे हैं । इनमें स्कन्द नामक जो पहिला बालग्रह है उसको साक्षात् सदाशिवने अपने आप उत्पन्न किया है इसका दूसरा नाम कुमार है । यद्यपि स्कन्द और कुमार यह दो नाम कार्तिकेयके भी हैं तोभी यह दो नामवाले बालग्रह कार्तिकेय स्वामीसे भिन्न हैं ऐसा जानना ।

स्कन्दापस्मार नामक जो बालग्रह है उसको अग्निने उत्पन्न किया है । यह बालग्रह अग्निकी समान कान्तिवाला है और स्कन्दसखा तथा विशाखा यह भी इसके नाम हैं । शकुनीसे लेकर [illegible] [illegible] स्त्रीरूपवाले हैं और ग्रहा, पार्वती तथा कृत्तिका इनके रजोगुणी और तमोगुणी भागरूप हैं । नैगमेय जो बालग्रह है उसको पार्वतीने उत्पन्न किया है, मेढेकी समान मुखवाला है, कार्तिकेयको प्राणोंकी समान प्रिय है ॥

जिस समय महादेवने कार्तिकेयको देवताओंका सेनापति नियत किया उस समय ये सब बालग्रह प्रदीप्त शक्तिको धारण करनेवाले कार्तिकेय स्वामीके सन्मुख आनकर खडे हुए, इन सबोने कार्तिकेय स्वामीको हाथ जोडकर कहा कि ' हमे आजीविका बताओ ' इनके वचन सुनकर कार्तिकेय स्वामीने महादेवसे जाकर प्रार्थना की, महात्मा सदाशिवने इन सब बालग्रहोंके प्रति कहा कि " इस जगत्में पशु पक्षियोंकी जाति, मनुष्य जाति और देवजाति यह तीन जाति हैं, यह परस्पर किये उपकारसे वर्त्तते हैं और उस उपकारसेही रक्षित हैं, देवता यथा समयमें गरमी, वर्षा, शीत और पवनको उत्पन्न करके मनुष्य तथा पशुपक्षियोंको तृप्त करतेहैं । मनुष्य यजन, हाथ जोडना, नमस्कार, जप तथा होम इत्यादि क्रिया अच्छे प्रकारसे करके देवताओंको सतुष्ट करतेहैं । पशुपक्षी आदि जाति, अपने दूधादिसे तथा मासादिसे मनुष्योंको तथा देवताओंको तृप्त करतेहैं । और मनुष्य भी पालन आदिसे पशुपक्षियोंको तृप्त करतेहैं । इसप्रकार होनेसे सब यथा यथा भागमे विभक्त होगये हैं, इस कारण कोई अवशेष नहीं रहा इसकारण तुम्हारी आजीविका बालकोंमे होगी " ॥ ४–१६ ॥

अथ बालग्रहाणां ग्रहणकारणम् ।

कुलेषु येषु नेज्यन्ते देवाः पितर एव च ॥ ब्राह्मणाः साधवो वापि गुरवोऽतिथयस्तथा ॥ १७ ॥ निवृत्तशौचाचारेषु तथा कुत्सितवृत्तिषु ॥ निवृत्तभिक्षावलिषु भग्नकांस्यगृहेषु वा ॥ १८ ॥ ते वै बालांश्च तांस्तान्हि ग्रहा हिंसन्त्यशंकिताः ॥ तत्र वो विपुला वृत्तिः पूजा चैव भविष्यति ॥ ॥ १९ ॥ एवं ग्रहाः समुत्पन्ना बालान्हिंसन्ति वा यथा ॥ ग्रहोपसृष्टा बालाः स्युर्दुश्चिकित्स्यतमास्ततः ॥ २० ॥

महादेवजी बालग्रहोंको कहने लगे कि जिस कुलमें

देवता, पितृ, ब्राह्मण, साधुजन, गुरुजन और अतिथियोका पूजन नही होता तथा जो कुल पवित्रतासे और आचारसे भ्रष्ट हैं,कुत्सित वृत्तिवाले, किसीको भिक्षा और बलिदान नही देते होयँ तथा जो फूटे हुए कांसेके बासनमे भोजन करते है उनके कुलमें जो बालक होते हैं उन बालकोको तुम निःशक होकर पकडो, ऐसे करनेसे तुम्हारी अच्छे प्रकारसे आजीविका चलेगी और पूजनभी होगा।

बालग्रह इस प्रकार उत्पन्न हुए है और इसी कारण बालकोको पीडित करते हैं । इसप्रकार होनेसे जिनको बालग्रहोंने ग्रसलिया होय उन बालकोकी चिकित्सा करनी बहुत कठिन होजाती है ॥ १७-२० ॥

अथ सामान्यबालग्रहग्रसितलक्षणम् ।

क्षणादुद्विजते बालः क्षणात्त्रस्यति रोदिति ॥ नखैर्दन्तैर्दारयति धात्रीमात्मानमेव च ॥ २१ ॥ ऊर्ध्वं निरीक्षते दन्तान्खादेत्कूजति जृम्भति ॥ भ्रुवौ क्षिपति दष्टौष्ठः फेनं वमति चासकृत् ॥ २२ ॥ क्षामोऽति निशि जागर्ति शूनांगो भिन्नविट्स्वरः ॥ मत्स्यशोणितगन्धश्च न चाश्नाति यथा पुरा ॥ २३ ॥ दुर्बलो मलिनांगश्च नष्टसंज्ञोऽपि जायते ॥ सामान्यग्रहजुष्टस्य लक्षणं समुदाहृतम् ॥ २४ ॥

क्षणभरमें बालक व्याकुल होजाय, क्षणभरमे रोने लगे, नख तथा दांतोंसे अपने आपको और माताको काटे, ऊपरको देखे, दातोंको चबावे, किलकारी मारे, जम्भाई लेय—भौंओंको टेढी करे, होठोंको काटे, वारवार झागसहित वमन करे, कृश होजाय, रात्रिमे जागे, शरीरमें सूजन होजाय, दस्त पतले आने लगे, गला पकजाय, उसके देहमेंसे मछलीकी समान तथा रुधिरकी समान दुर्गंध आवे, पहिलेकी अपेक्षा भूख कम होजाय, दुर्बल होजाय, अग मलिन होजाय और बेहोस होजाय तो यह सम्पूर्ण बालग्रह ग्रसितके सामान्य लक्षण हैं ॥ २१-२४ ॥

अथ विशिष्टग्रहजुष्टबालकानां लक्षणानि ।

स्रस्तांगः क्षतजसगन्धिकस्तनद्विट् वक्रास्यो हतचरणैकपक्षनेत्रः ॥ उद्विग्नः ससलिलचक्षुरल्परोदी स्कन्दार्तो भवति च गाढमुष्टिबन्धः ॥ २५ ॥ निःसंज्ञो भवति पुनर्लभेत संज्ञां संस्तब्धः करचरणैश्च नृत्यतीव ॥ विण्मूत्रे सृजति चिरेण जृम्भमाणः फेनं वा सृजति च तत्सखाभिजुष्टः ॥ २६ ॥

तत्सखाभिजुष्टः स्कन्दापस्मारयुक्तः ॥

स्रस्तांगो भयचकितो विहंगगन्धिः सास्रावव्रणपरिपीडितः समन्तात् ॥ स्फोटैश्च प्रचिततनुः सदाहपाकैर्विज्ञेयो भवति शिशुः क्षतः शकुन्या ॥ २७ ॥ रक्तास्यो हरितमलोऽतिपाण्डुदेहः श्यावो वा सुखकरपाकवेदनार्तः ॥ गृह्णाति व्यथिततनुश्च कर्णनासं रेवत्या भृशमभिपीडितः कुमारः ॥ २८ ॥ विट्स्रावी स्वपिति न वासरे न रात्रौ विड्भिन्नं विसृजति काकतुल्यगन्धः॥ छर्द्यार्तो हृषिततनूरुहः कुमारस्तृष्णालुर्भवति च पूतनागृहीतः ॥ २९ ॥ यो द्वेष्टि स्तनमतिसारकासहिक्काच्छर्दीभिर्ज्वरसहिताभिरर्द्यमानः॥ दुर्वर्णः सततमथापि योऽस्रगन्धिस्तं ब्रूयाद्भिषगथ गन्धपूतनार्तम् ॥ ३० ॥ आक्रन्दत्यभिचकितं सुवेपमानः संलीनो भवति व्यथान्त्रकूजयुक्तः ॥ स्रस्तांगो भृशमतिशीर्यते च शीतार्तं ब्रूयाद्भिषगथ शीतपूतनार्तम्॥ ॥ ३१ ॥ म्लानांगः सरुधिरपाणिपादवक्त्रो बह्वाशी कलुषशिरावृतोदरो यः ॥ स ज्ञेयः शिशुरथ वक्रमण्डिकार्तः सोद्वेगो भवति च मूत्रतुल्यगंधिः ॥ ३२ ॥ यः फेनं वमति विनम्यते च मध्ये सोद्वेगो विहसति चोर्द्धमीक्षमाणः ॥ कूजेच्च प्रततमथो वसासगन्धिर्निःसंज्ञो भवति स नैगमेयजुष्टः ॥ ३३ ॥

जिसको स्कन्दनामक बालग्रहने पीडित किया हो उस बालककी आंखे सूजजातीहैं, उसके शरीरमेंसे रुधिरकी समान गन्ध आती है, दूधको नहीं पीता, मुख टेढा होजाताहै, आख खराब होकर चचल तथा एक पलकवाली होजाती है, विह्वल होजाताहै, जलसे नेत्र भरे रहते हैं, थोडा रोताहै, हाथकी मुट्ठी बहुत जोरसे बांध लेताहै और उसका मल कठिन होजाताहै ।

जिसको स्कन्दापस्मार ग्रहने ग्रसा होय वह बालक बेहोश होजाताहै, फिर चैतन्य होजाताहै, शरीर जकडजाताहै, हाथसे तथा पावसे मानो नाचता हो ऐसा प्रतीत होताहै, मलमूत्रको वारवार त्यागताहै, बहुत जोरसे जम्भाई लेताहै अथवा मुखमे झाग भरे रहतेहैं ।

जिसको शकुनी ग्रहने ग्रसा हो वह बालक शिथिल अंगोंवाला भयसे चकित, पक्षीकी समान गन्धवाला, स्राववाले व्रणोंसे पीडित, दाह और पके हुए फोडोंसे व्याप्त शरीरवाला होताहै ।

जिसको रेवतीग्रहने ग्रसा हो वह बालक लाल मुखवाला, उसकी विष्ठाका रग हरा, शरीरका रग अत्यन्त पीला अथवा काला हो, ज्वर तथा मुखपाककी पीडासे पीडित, और शरीरमे व्यथाके होनेसे कानको तथा नाकको मसलताहै ।

जिसको पूतनाग्रहने ग्रसा हो उस बालकके अग शिथिल होजातेहैं, रात्रि और दिनमे किसी समय भी सुखसे नहीं सोता, दस्त पतला आताहै, कौवेकी समान गंध आतीहै, वमनकी पीडा होती है, रोमांच होआतेहैं, और वारवार तृषा लगतीहै ।

जो बालक दूधको नहीं पिवे, ज्वर, अतीसार, खाँसी, हिचकी तथा वमन इनसे पीडित हो, शरीरका रंग बिगड जाय, [illegible] उलटा सोवे और उसके शरीरमेंसे रुधिरकी समान गंध आवे उसको [illegible] अंधपूतनाग्रहग्रसित जाने ।

जो बालक [illegible], भोजन [illegible] नरद्धाजाय, [illegible], पेटमे आवाज शब्द होता हो, [illegible] और दस्त अत्यन्त पतला होगया [illegible] उसको शीतपूतनाग्रसित जाने ।

[illegible], हाथ, पाव तथा [illegible], उद्वेगको प्राप्त होजाय, बहुत [illegible] लाल हो और शरीरमेंसे मूत्रकी समान गंध निकले उसको वैद्य मुखमंडिकाग्रहग्रसित जाने ।

जो बालक झागोंकी वमन करे, शरीरके मध्य भागमें नवजाय, उद्वेगको प्राप्त हो, ऊपरको देखदेखकर हँसे, बहुत गूजे शरीरमे चरबी तथा रुधिरकी समान गध आवे और बेहोस होजाय उस बालकको वैद्य नैगमेय ग्रहग्रसित जाने ॥ २५-३३ ॥

अथ सामान्यग्रहजुष्टचिकित्सा ।

सहामुण्डितिकोदीच्यकाथस्नानं ग्रहापहम् । सहा माषपर्णी ॥ सप्तच्छदामयनिशाचन्दनैश्चानुलेपनम् ॥ सर्पत्वग्लशुनं मूर्वा सर्षपारिष्टपल्लवाः ॥ ॥ ३४ ॥ बिडालविडजालोम मेषशृंगी वचा मधु ॥ धूपः शिशोर्ज्वरघ्नोऽयमशेषग्रहनाशनः ॥ बालशान्तीष्टकर्माणि कार्याणि ग्रहशान्तये ॥ ३५ ॥

मषवन अर्थात् वनउडद, गोरखमुडी और सुगधवाला इनके काथसे बालकको स्नान करावे और सतवन, कूठ, हलदी तथा चंदन इनका लेप करे तो बालग्रह शमन होते हैं ॥

साँपकी कैंचली, लसुन, चुरनहार, घी, नीमके पत्ते, बिलावकी विष्ठा, बकरीके रोम, मेढाशिगी, वच और सहत इनकी धूनी देनेसे बालकोंका ज्वर नष्ट होजाताहै और सम्पूर्ण बालग्रह शमन होते हैं । बालग्रहोंको निवारण करनेके लिये बालशांति करे और पूजनादि करे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

अथाष्टमंगलघृतम् ।

वचा कुष्ठं तथा ब्राह्मी सिद्धार्थकमथापि च ॥ ३६ ॥ सारिवा सैन्धवं चैव पिप्पली घृतमष्टमम् ॥ सिद्धं घृतमिदं मेध्यं पिबेत्प्रातर्दिनेदिने ॥ ३७ ॥ दृढस्मृतिः क्षिप्रमेधाः कुमारो बुद्धिमान्भवेत् ॥ न पिशाचा न रक्षांसि न भूता न च मातरः ॥ न भवन्ति कुमाराणां पिबतामष्टमंगलम् ॥ ३८ ॥

वच, कूठ, ब्राह्मी, सरसों, सारिवा, सैंधानिमक और पीपिल सात पदार्थोंके कल्कसे पकायाहुआ घी अष्टमगल घृत कहाजाताहै। इस घृतको नित्य प्रभातके समय पीने से वालक दृढ, स्मरणशक्तिवाला, अत्यंत तीक्ष्ण बुद्धिको धारण करनेवाला और बहुत विचक्षण होताहै। घृतको पीनेवाले वालकोंके पिशाच, राक्षस, भूत और मातृदोष यह कदापि नहीं होते ॥ ३६-३८ ॥

अथ विशिष्टग्रहजुष्टबालकचिकित्सा।
तत्र स्कंदग्रहजुष्टचिकित्सा।

स्कन्दग्रहोपसृष्टस्य कुमारस्य प्रशान्तये ॥ वातघ्नद्रुमपत्राणां क्वाथेन परिषेचनम् ॥ ॥ ३९ ॥ देवदारुणि रास्नायां मधुरेषु गणेषु च ॥ सिद्धं सर्पिश्च सक्षीरं पातुमस्मै प्रदापयेत् ॥ ४० ॥ सर्षपाः सर्पनिर्मोको वचा काकादनी घृतम् ॥ उष्ट्राजाविगवां चापि रोमाण्युद्धूपनं भवेत् ॥ ४१ ॥

जिसको स्कन्द ग्रहने ग्रसा हो उस वालकके शरीरपर शांतिके लिये अंडके पत्तोंके क्काथसे सेचन करे, देवदारु, रास्ना तथा जीवनीय गणकी औषधियोंके कल्कसे पकाये हुए घीको दूधके साथ पिये और सरसों, सांपकी कैंचली, वच, सफेद चौंटली, घी, ऊटके रोम, वकरीके रोम तथा मेडके रोम इनकी धूनी देवे।

काकादनी श्वेतगुञ्जा ॥

सोमवल्लीमिन्द्रवृक्षं वन्दाकं बिल्वजं शमीम् ॥ मृगादन्याश्च मूलानि ग्रथितानि विधारयेत् ॥ ४२ ॥

सोमवल्ली, कुडेकी छाल,वेलवृक्षका वंदा, छोकर और इन्द्रायनकी जड इनको एक डोरेमें वॉधकर उस डोरेको वालकके गलेमे पहना देवे।

सोमवल्ली सोमलता। इन्द्रवृक्षं ककुभवृक्षम्। मृगादनी इन्द्रवारुणी ॥

रक्तानि माल्यानि तथा पताका रक्तांश्च गन्धान्विविधांश्च भक्ष्यान् ॥ घण्टा च देवाय बलिं निवेद्य सकुक्कुटं स्कन्दगृहे निधाय ॥ ४३ ॥ स्नानं त्रिरात्रं निशि चत्वरेषु कुर्यात्परं शालियवैर्निवेद्यम् ॥ गायत्रिपूताभिरथाद्भिरग्निं प्रज्वालयेदाहुतिभिश्च धीमान् ॥ ४४ ॥ रक्षामतः प्रवक्ष्यामि बालानां पापनाशिनीम् ॥ अहन्यहनि कर्तव्या याभिरद्भिरतन्द्रितैः ॥ ४५ ॥ तपसां तेजसां चैव यशसां वपुषां तथा ॥ निधानं योऽव्ययो देवः स ते स्कन्दः प्रसीदतु ॥ ४६ ॥ ग्रहः सेनापतिर्देवो देवसेनापतिर्विभुः ॥ देवसेनारिपुहरः पातु त्वां भगवान्गुहः ॥ ॥ ४७ ॥ देवदेवस्य महतः पावकस्य च यः सुतः ॥ गङ्गोमाकृत्तिकानां च स ते शर्म प्रयच्छतु ॥ ४८ ॥ रक्तमाल्याम्बरधरो रक्तचन्दनभूषितः ॥ रक्तदिव्यवपुर्देवः पातु त्वां क्रौञ्चसूदनः ॥ ४९ ॥

वालकके हितके लिये लाल फूलोंकी माला, लाल झंडी, लाल चंदन, अनेक प्रकारके भोजनके पदार्थ, घटा और मुरगा यह सब वालकपर उतारकर चौराहेमे रक्खे और उक्त मुरगेका वलिदान करे। नवीन शालिचावल तथा नवीन जौ इनको पानीमे डालकर उस पानीसे गायत्रीमंत्रको अभिमंत्रित करके रात्रिमें वालकको चौराहेमे तीन रात्रितक स्नान करावे और नवीन शालि चावल तथा नवीन जौ इनकी आहुति अग्निमे देवे।

अव वालकोंकी रक्षाके लिये कहताहूं, जिससे पापोंका नाश होताहै। वैद्य आलस्यको छोडकर नित्य वालकोंके निकट नित्य निम्न लिखित रक्षा पाठ पढे।

जो तपके, तेजके, यशके तथा शरीरकी सामर्थ्योके भंडारा रूप हैं ऐसे देव कार्तिकेय स्वामी तेरे ऊपर प्रसन्न होवे.

ग्रहोंके सेनापति, देवताओंके सेनापति, और देवताओंकी सेनाके शत्रुओंको नाश करनेवाले व्यापक और महा समर्थ कार्तिकेय देव तेरी रक्षा करें।

जो महादेवके, अग्निके, गंगाके, पार्वतीके और कृत्तिकाके पुत्र हैं ऐसे कार्तिकेय स्वामी तेरा कल्याण करें। लाल फूल तथा वस्त्रोंको धारण करनेवाले, लाल चंदन से शोभित, और लाल दिव्य शरीरवाले कार्तिकेय देव तेरी रक्षा करें ॥ ३९-४३ ॥

अथ स्कन्दापस्मारग्रहजुष्टचिकित्सा ।

बिल्वः शिरीषो गोलोमी सुरसादिश्च यो गणः ॥ परिषेकः प्रयोक्तव्यः स्कन्दापस्मारशान्तये ॥ ५० ॥

गोलोमी श्वेतदूर्वा ॥

सुरसा श्वेतसुरसा पाठा फञ्जी फणिज्झकः ॥ सौगन्धिकं भूस्तृणको राजिका श्वेतवर्वरी ॥ ५१ ॥ कट्फलं खरपुष्पा च काशमर्दश्च शल्लकी ॥ विडङ्गमथ निर्गुण्डी कर्णिकार उदुम्बरः ॥ ५२ ॥ बला च काकमाची च तथा च विषमुष्टिका ॥ कफक्रिमिहरः ख्यातः सुरसादिरयं गणः ॥ ५३ ॥

सुरसा कृष्णतुलसी, श्वेतसुरसा श्वेततुलसी, फञ्जी भार्ङ्गी, फणिज्झकः मरुवकः। सौगन्धिकं कह्लारम् । भूस्तृणकः सुगन्धतृणम् । अनेनैव नाम्ना गौडादौ प्रसिद्धः । खरपुष्पा वर्वरी काशमर्दः कसौटी अनेनैव नाम्ना प्रसिद्धः । विषमुष्टिः बका इति लोके॥

अष्टमूत्रविपक्वं च तैलमभ्यञ्जने हितम् ॥ ॥ ५४ ॥ गोऽजाविमहिषाश्वानां खरोष्ट्रकरिणां तथा ॥ मूत्राष्टकमिदं ख्यातं सर्वशास्त्रेषु सम्मतम् ॥ ५५॥ क्षीरिवृक्षकषायेण काकोल्यादिगणेन च ॥ विपक्तव्यं ततः पक्वात्तैलं पयसा सह ॥ ५६ ॥

काकोल्यादिगणेन कल्कीकृतेन तैलं पक्तव्यम् ॥

काकोली क्षीरकाकोली जीवकर्षभकस्तथा ॥ ऋद्धिर्वृद्धिस्तथा मेदा महामेदा गुडूचिका ॥ ५७ ॥ मुद्गपर्णी माषपर्णी पद्मकं वंशलोचना ॥ शृंगी प्रपौण्डरीकञ्च जीवन्ती मधुयष्टिका ॥ ५८ ॥ द्राक्षा चेति गणो नाम्ना काकोल्यादिरुदीरितः॥ स्तन्यकृद्बृंहणो वृष्यः पित्तरक्तानिलापहः ॥ ५९ ॥ उत्सादनं वचा हिंगुयुक्तमत्र प्रकीर्तितम् ॥ गृध्रोलूकपुरीषाणि केशा हस्तिनखोद्भृतम ॥ ६० ॥ वृषभस्य च रोमाणि योज्यान्युद्धूपने सदा ॥ अनन्तां कुक्कुटीं बिम्बीं मर्कटीञ्चापि धारयेत्॥ ६१॥

अनन्ता जवासा । कुक्कुटी शाल्मली ॥

पक्वान्यन्नानि मांसानि प्रसन्ना रुधिरं पयः ॥ मुद्गौदनं निवेद्याथ स्कन्दापस्मारिणे वटे ॥ ६२ ॥

वटे वटतले बलिं निवेद्येत्यन्वयः ॥

चतुष्पथे कारयेच्च स्नानं तेन ततः पठेत् ॥

तेन स्कन्दापस्मारिणा स्नानं कारयेदित्यन्वयः ॥

स्कन्दापस्मारसंज्ञो यः स्कन्दस्य दयितः सखा ॥ विशाखः स शिशोरस्य शिवायास्तु शुभाननः ॥ ६३ ॥

स्कन्दापस्मार ग्रहकी शांतिके लिये बेलगिरी, सरसों, सुफेद दूब, और आगे कहा हुआ सुरसादि गण इनके क्वाथसे सेचन करे।

काली तुलसी, सफेद तुलसी, पाढ, भारंगी, मरुवा, कह्लार नामक सुगंधि कुमुद, भूस्तृण नामक सुगंधि तृण, राई, सुफेद वनतुलसी, कायफल, वनतुलसी, कसौंदी, सोनई, वायविडंग, निर्गुंडी, कर्णिकार, गूलर, खिरैटी, मकोय और वकायन इन सब औषधियोंके समुदायको सुरसादिगण कहते हैं। यह सुरसादि गण कफ तथा कृमियोंको नष्ट करनेवाला है।

नीचे लिखेहुए आठ मूत्रोसे पकायेहुए तेलकी बालकके शरीर पर मालिस करनेसे स्कन्दापस्मारग्रहकी शाति होतीहै ।

गाय, बकरी, भेड, भैंस, घोडा, गधा, ऊट और हाथी इन आठ पशुओके मूत्रको अष्ट मूत्र कहतेहै । सम्पूर्ण शास्त्रोमे इन आठ मूत्रोको 'मूत्राष्टक' कहतेहै ।

वटादि क्षीरवृक्षोके क्काथसे और नीचे लिखे काकोल्यादि गणके कल्कसे घीको पकाकर बालकको दूधके साथ पिलावे तो इससे स्कन्दापस्मार ग्रह शमन होजाताहै ॥

काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, गिलोय, मषवन, मुगवन, पद्माख, वंशलोचन, काकडाशिगी, पुंडरीक वृक्ष, जीवन्ती, मुलैठी, और दाख यह काकोल्यादि गण कहाजाताहै । यह गण स्तनोमे दूधको बढानेवाला है, धातुओंको पुष्ट करनेवाला है, मैथुनशक्तिको बढानेवाला है और पित्त रुधिर तथा वायुको शमन करनेवाला है ॥

वच और हींग इनके कल्कसे बालकके शरीरपर उबटन करे, यह स्कन्दापस्मारग्रहजुष्टके लिये हितकारी है ॥

गीधकी विष्ठा, उल्लूकी विष्ठा, बाल, हाथीके नाखून, घी और बैलके रोम इनकी नित्य धूनी देनेसे स्कन्दापस्मारकी शांति होतीहै ॥

जवासा, सेमल, कन्दूरी और कौंछ अथवा करंज इनको धारण करे यह स्कन्दापस्मारके लिये हितकारक है ।

स्कन्दापस्मारकी शांतिके लिये पक्वान्न, मांस, मदिरा, रुधिर, दूध और मूँगभात इनका बडके वृक्षके नीचे बलिदान करे ॥

स्कन्दापस्मारग्रहजुष्ट बालकको चौराहेमे स्नान कराकर उसके निकट नीचे लिखा मंत्र पढे ।

कार्त्तिकेय स्वामीका स्कन्दापस्मार जो प्रियमित्र है उसको विशाख भी कहतेहैं, वह सुदर मुखवाला इस बालकका कल्याण करो ॥ ५०–६३ ॥

अथ शकुनीग्रहजुष्टचिकित्सा ।

शकुनीग्रहजुष्टस्य कार्य वैद्येन जानता ॥ वेतसाम्रकपित्थानां क्काथेन परिषेचनम् ॥ ६४ ॥ ह्रीबेरमधुकोशीरसारिवोत्पलपद्मकैः ॥ लोध्रप्रियंगुमञ्जिष्ठागैरिकैः प्रदिहेच्छिशुम् ॥ ६५ ॥

प्रदिहेल्लिम्पेत् । दिह्यादिति सिद्धे दिहेदिति रूपसिद्धिः आर्षत्वात् ॥

स्कन्दग्रहोक्ता धूपाश्च हिता अत्र भवन्ति हि ॥ स्कन्दापस्मारशमनं घृतमत्रापि पूजितम् ॥ ६६ ॥ शतावरीमृगैर्वारुनागदन्तीनिदिग्धिकाम् ॥ लक्ष्मणां सहदेवीं च बृहतीं चापि धारयेत् ॥ ६७ ॥

मृगैर्वारु बृहती इन्द्रवारुणी । नागदन्ती नागदुलीति लोके प्रसिद्धा ॥

तिलतण्डुलकं माल्यं हरितालं मनःशिला ॥ बलिरेषां करञ्जे तु निवेद्यो नियतात्मना ॥ ६८ ॥ निकटे च प्रयोक्तव्यं स्नानमस्य यथाविधि ॥ श्वेताशिरीषगन्धाष्टपयोगुग्गुलुसर्षपैः ॥ ६९ ॥ सिद्धमभ्यञ्जने तैलं धारणं पूर्वमेव तु ॥ शकुनीग्रहशान्त्यर्थं प्रदेहं कारयेद्धितम् ॥ ७० ॥ कुर्याच्च विविधां पूजां शंकुन्याः कुसुमैः शुभैः ॥ निकुम्भोक्तेन विधिना स्नापयेत्तं ततः पठेत् ॥ ७१ ॥

निकुम्भः शिवस्य गणविशेषस्तेनोक्तेन विधिना । शिशुरक्षायां देव्याः स्तुतिः ॥

अन्तरिक्षचरा देवी सर्वालङ्कारभूषिता ॥ अधोमुखी सूक्ष्मतुण्डा शकुनी ते प्रसीदतु ॥ ७२ ॥ दुर्दर्शना महाकाया पिंगाक्षी भैरवस्वरा ॥ लम्बोदरी शंकुकर्णी शकुनी ते प्रसीदतु ॥ ७३ ॥

जो बालक शकुनी ग्रहसे पीडित हो उसके ऊपर विचक्षण वैद्य वेत, आम और कैथ इनके क्काथसे परिसेचन करे । और सुगधवाला, मुलैठी, खस, सारिवा, कमल, पद्माख, लोध, फूलप्रियँगु, मजीठ और गेरु इनका लेप करे॥ स्कन्दनामक बालग्रहकी शातिके लिये जो धूप कही है

वह घृत और स्कन्दापस्मारग्रहकी शांतिके लिये जो घी कहा है वह भी शकुनीग्रहसे ग्रसितके लिये भी उपयोगीहै।

सतावर, इन्द्रायन, नागदौन, कटेरी, लक्ष्मणा (अभावमें सफेद कटेरी), सहदेई और कटाई इनका धारणकरे।

वैद्य स्थिरचित्त होकर तिल, चावल, फूल माला, हरिताल और मनसिल इनका करंजके वृक्षके नीचे बलिदान करे। और उस बलिदानके निकट बालकको यथाविधि स्नान करावे। पहिले ही सफेद दूब, सिरस, असगंध, दूध, मुराल और सरसों इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल अभ्यंगके लिये तयार करके रखदेवे। बालकको स्नान करानेके पश्चात् इस तेलकी मालिस करे जिससे शकुनीग्रहकी शांति हो।

सुंदर फूलोंसे शकुनीकी अनेक प्रकारसे पूजा करे और उसके पश्चात् निकुम्भनामक सदाशिवके गणके कहे अनुसार बालकको स्नान कराकर उसके निकट नीचे लिखा पाठ पढे।

अंतरिक्षमें विचरण करनेवाली, सम्पूर्ण अलंकारोंसे सुशोभित और नीचे तथा सूक्ष्म मुखवाली शकुनी देवी तेरे ऊपर प्रसन्न हो।

भयंकर दर्शनवाली, बडे शरीरवाली, पिंगलवर्ण, भयंकर स्वरवाली, लम्बे पेटवाली और कीलके समान कानवाली ऐसी शकुनी देवी तेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥ ६४-७३ ॥

अथ रेवतीग्रहजुष्टचिकित्सा ।

अश्वगन्धाजशृंगी च सारिवाथ पुनर्नवा॥ सहा विदारी चैतासां क्वाथेन परिषेचनम् ॥ ७४ ॥

अजशृंगी [मेढाशृंगी]। सहा [सेवती] पुष्पजातिः ॥

तैलमभ्यञ्जने कार्यं कुष्ठ सर्जरसे तथा ॥ पलंकषायां नलदे तथा गौरकदम्बके॥७५॥

सर्जरसः राल इति लोके। पलंकषा गुग्गुलुः । नलदं लामज्जकम् उशीरवत्पीतच्छवि। गौरकदम्बकः हारिद्रकः हरदुआ कदम्ब इति लोके ॥

धवाश्वकर्णककुभशल्लकीतिन्दुकेषु च ॥ काकोल्यादौ गणे चापि सिद्धं सर्पिः पिबेच्छिशुः ॥ ७६ ॥

अश्वकर्णः साकु इति लोके प्रसिद्धः ॥

कुलत्थं शंखचूर्णञ्च प्रदेहः साश्वगन्धिकः॥ गृध्रोलूकपुरीषाणि यवा यवफलो घृतम् ॥ सन्ध्ययोरुभयोः कार्यमेतदुद्धूपनं शिशोः ॥ ७७ ॥

यवफलो वंशांकुरः ॥

शुक्लाः सुमनसो लाजाः पयः शाल्योदनं दधि ॥ बलिर्निवेद्यो गोतीर्थे रेवत्यै प्रयतात्मना ॥ ७८ ॥

गोतीर्थे गोष्ठे ॥

स्नानं धात्रीकुमाराभ्यां सङ्गमे कारयेद्भिषक् ॥ नानाशस्त्रधरा देवी चित्रमाल्यानुलेपना ॥ ७९ ॥ चलत्कुण्डलिनी श्यामा रेवती ते प्रसीदतु ॥ उपासते यां सततं देव्यो विविधभूषणाः ॥ ८० ॥ लम्बा कराला विनता तथैव बहुपुत्रिका ॥ रेवती शुष्कनासा च तुभ्यं देवी प्रसीदतु ॥ ८१ ॥

असगंध, मेढाशिंगी, सारिवा, पुनर्नवा, सेवती और विदारीकंद इनके क्वाथसे सेचन करे।

कूठ, राल, गूगल लामज्जकतृण और हलदिया कदंब इनके कल्कसे पकाये हुए तेलका अभ्यंग करे।

धौ, अश्वकर्ण (शाखु), इन्द्रजौ, सालई, तेंदू और काकोल्यादि गण इनके कल्कसे पकाया हुआ घी बालकको पिलावे। कुलथी, शंखका चूर्ण और असगंध इनका लेप करे।

गीधकी विष्ठा, उल्लूकी विष्ठा, जौ, बाँसके अंकुर और घी इनकी धूनी बालकोंको दोनों संध्याओंमें देवे।

वैद्य स्थिरचित्त होकर रेवतीका, गायके स्थानमें सफेद फूल, धानकी खीलें, दूध, लाल शालि चावलोंका भात और दही इनका बलिदान देवे।

समुद्रके और नदीके अथवा दो नदियोंके संगममें वैद्य बालकको और उसकी माताको स्नान करावे। पीछे यह पाठ पढे कि "अनेक शस्त्रोंका धारण

करनेवाली, चित्र विचित्रित पुष्पोकी मालाओंसे सुशोभित, विचित्र लेपनयुक्त, चलत्कुंडलवाली और श्यामवर्णवाली रेवती देवी तेरे ऊपर प्रसन्न हो । लम्बी, विकाल, अनेक पुत्रोवाली, सूखीनाकवाली और जिसको विविध आभूषणोवाली देवी सर्वदा सेवन करतीहैं ऐसी रेवती देवी तेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥ ७४-८१ ॥

अथ पूतनाग्रहजुष्टचिकित्सा ।

कपोतवंका श्योनाको वरुणः पारिभद्रकः॥ आस्फोता चैव योज्याः स्युर्बालानां परिषेचने ॥ ८२ ॥

कपोतवंका ब्राह्मी । आस्फोता अपराजिता ॥

नवा पयस्या गोलोमी हरितालं मनःशिला ॥ कुष्ठं सर्जरसश्चैव तैलार्थे कल्क इष्यते ॥ ८३ ॥

नवा पयस्या नूतना क्षीरविदारी । गोलोमी श्वेतदूर्वा ॥

हितं घृतं तु गोक्षीर्याः संसिद्धं मधुकेन च ॥ कुष्ठतालीसखदिराः स्पन्दनोऽर्जुन एव च ॥ ८४ ॥ पनसः ककुभश्चापि मज्जानो बदरस्य च ॥ कुक्कुटास्थि घृतं चापि धूपनं सह सर्षपैः ॥ ८५ ॥

स्पन्दनः स्पन्दन इत्येवं नाम्ना प्रसिद्धः ॥

काकादनीं चित्रफलां बिम्बीं गुञ्जाश्च धारयेत् ॥ ८६ ॥

काकादनी श्वेतगुञ्जा । चित्रफला बृहदिन्द्रवारुणी ॥

मत्स्यौदनं बलिं दद्यात्कृशरां पललं तथा॥ शरावसम्पुटे कृत्वा तस्य शून्ये गृहे भिषक् ॥ ८७ ॥ उत्सृष्टान्नाभिषिक्तस्य शिशोः स्नपनमिष्यते ॥ कुष्ठतालीसखदिरं चन्दनं स्पन्दनं तथा ॥ ८८ ॥ देवदारु वचा हिंगु कुष्ठं गिरिकदम्बकम् ॥ एला हरेणवश्चापि योज्या उद्धूपने सदा॥ ॥ ८९ ॥ मलिनाम्बरसंवीता मलिना रूक्षमूर्द्धजा ॥ शून्यागाराश्रया देवी दारकं पातु पूतना ॥ ९० ॥

ब्राह्मी, अरलू, बरना, फरहद वा नीम और अपराजिता (कोइल) इनके काथसें बालकोंके शरीरपर सेचन करे ।

नया अर्थात् ताजा विदारीकद, सफेद दूब, हरिताल, मैंनशिल, कूट और राल इनसे पकाये हुए तेलका उपयोग करे ।

वशलोचन और मुलैटी इनसे पकायाहुआ घी भी हितकारक है ।

कूठ, तालीसपत्र, खैर, अरलू, अर्जुन, बडहल, इन्द्रजौ, बेलगिरी, मुरगेकी हड्डी, घी और सरसो इनकी धूनी देवे ।

सफेद चौटली, बडी इन्द्रायन, कन्दूरी और लाल चौंटली इनको शरीरपर धारण करे ।

मछली और भात, तिलकी खिचडी और मास इनको मट्टीके प्यालेमें रखकर सूने घरमे पूतनाको बलि देवे ।

बालकको छुठनसे मलकर फिर स्नान करावे । कूठ, तालीसपत्र, खैर, चदन, अरलू, देवदारु, वच, हीग, कूठ, पहाडी कदम्ब, इलायची और रेणुका इनकी धूनी देवे ।

बालकके निकट बैठकर कहे कि मैले वस्त्रोको धारण करनेवाली, मलिन अगवाली, रूखे बालवाली और ऊजड घरमे रहनेवाली पूतना देवी इस बालककी रक्षा करे ॥ ८२-९० ॥

अथ गंधपूतनाग्रहजुष्टचिकित्सा ।

तिक्तद्रुमाणां पत्रेषु क्वाथः कार्योऽभिषेचने ॥ ९१ ॥ निम्बः पटोलः क्षुद्रा च गुडूची वासकस्तथा ॥ विसर्पकुष्ठनुत्ख्यातो गणोऽयं पञ्चतिक्तकः ॥ ९२ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको मधुको मधु ॥ शालिपर्णी बृहत्यौ च घृतार्थं च समाहरेत् ॥ सर्वगन्धैः प्रदेहश्च गात्रे चाक्ष्णोश्च शीतलैः ॥ ९३ ॥

सर्वगन्धैः कुंकुमागुरुकर्पूरकस्तूरीचन्दनैः सह । अक्ष्णोस्तु शीतलैः चन्दनकर्पूरैः । न तु कस्तुरीकुंकुमागुरुभिस्तेषामुष्णत्वात् ॥

पुरीषं कौक्कुटं केशाश्चर्म सर्पभवं तथा ॥ जीर्णं चाभीक्ष्णशो वासो धूपनायोपकल्पयेत् ॥ ९४ ॥ कुक्कुटीं मर्कटीं विम्बीमनन्तां चापि धारयेत् ॥ मांसमामं तथा पक्वं शोणितं च चतुष्पथे ॥ ९५ ॥ निवेद्यमन्तश्च गृहे शिशोः स्नपनमिष्यते॥ कराला पिंगला मुण्डा काषायाम्बरसंवृता ॥ ९६ ॥ देवी बालमिमं प्रीता रक्षत्वं गन्धपूतने ॥ ९७ ॥

बालकके देहपर निचत्वक्षों (जो कि नीचे लिखे हैं) के क्वाथसे सिंचन करे ।

नीम, परवल, कटेरी, गिलोय और अडूसा यह पंचतिक्त गण कहाजाताहै यह विसर्प और कोढको नष्ट करे है ।

पीपल, पीपलामूल, चीता, मुलैटी, खदत, शालिपर्णी (सरिवन), कटेरी, बडी कटेरी, इनके कल्कसे घृतको पकाकर बालकको पिलावे ।

केसर, अगर, कपूर, कस्तूरी और चदन इनका शरीरपर लेपन करे ।

और नेत्रोंके ऊपर चदन तथा कपूरका लेपन करे । केसर, कस्तूरी और अगर यह गरम हैं इस कारण इनका नेत्रोंपर लेपन नहीं करे ।

मुरगेकी बिट, बाल, साँपकी खाल और पुराना बालकके नीचेका वस्त्र इनकी बारबार धूनी देवे ।

[illegible], [illegible], कस्तूरी और जवासा इनको धारण करे। [illegible] तथा पका मांस और रुधिर इनका [illegible] करे ।

[illegible] स्नान करावे और [illegible] यह [illegible] [illegible]

[illegible] ॥ ९३–९७ ॥

अथ शीतपूतनाग्रहजुष्टचिकित्सा ।

गोमूत्रं चाश्वमूत्रञ्च मुस्तां चामरदारु च ॥ कुष्ठञ्च सर्वगन्धांश्च तैलार्थमवधारयेत् ॥ ९८ ॥

सर्वगन्धांश्चन्दनादीन् ॥

रोहिणीनिम्बखदिरपलाशककुभत्वचः ॥ निष्काथ्य तस्मिन्निष्काथे सक्षीरे विपचेद्घृतम् ॥ ९९ ॥ गृध्रोलूकपुरीषाणि बस्तिगन्धामहित्वचम् ॥ निम्बपत्राणि च तथा धूपनार्थं समाहरेत् ॥ १०० ॥ धारयेदपि गुञ्जां च बलां काकादनीं तथा ॥ नद्यां मुद्गौदनैश्चापि तर्पयेच्छीतपूतनाम् ॥ १०१ ॥ जलाशयान्ते बालस्य स्नपनं चोपदिश्यते ॥ १०२ ॥

जलाशयान्ते जलाशयतीरे ॥

देव्यै देयश्चोपहारो वारुणी रुधिरं तथा॥ मुद्गौदनाशिनी देवी सुराशोणितपायिनी ॥ जलाशयरता नित्यं पातु त्वां शीतपूतना ॥ १०३ ॥

गोमूत्र, घोडेका मूत्र, नागरमोथा, देवदारु,कूठ, केसर, अगर, कस्तूरी, कपूर और चदन इनसे तपाये हुए तेलका बालकके शरीरपर मालिश करे ।

कुटकी, नीम, खैर, ढाक और कुडेकी छाल इनका क्वाथ बनाकर उस क्वाथको दूधमें मिलाकर उसमें घीको पकाकर उस घीको बालकको पिलावे ।

गीधकी विष्ठा, उल्लूकी विष्ठा, तिलवन, साँपकी कैंचली और नीमके पत्ते इनकी धूनी देवे ।

चौंटली, खिरैंटी और सफेद चोंटली इनको धारण करे ।

नदीमें मूँगभातसे शीतपूतनाको तृप्त करे । जलाशयके तीरपर बालकको स्नान करावे । शीतपूतनाको मदिरा और रुधिर चढावे । पश्चात् बालकके निकट यह पाठ पढे कि " [illegible] खानेवाली, मदिरा और रुधिरको पीनेवाली [illegible] सदैव रहनेवाली शीतपूतना देवी [illegible] रक्षा करे " ॥ ९८–१०३ ॥

अथ मुखमंडिकाग्रहजुष्टचिकित्सा ।

कपित्थं बिल्वतर्कारी वासा गन्धर्वहस्तकः ॥ कुबेराक्षी च योज्याः स्युर्बालानां परिषेचने ॥ १०४ ॥

तर्कारी गणियार इति लोके । गन्धर्वहस्तकः श्वेत एरण्डः । कुबेराक्षी पाडीर इति लोके ॥

स्वरसैर्भृङ्गवृक्षाणां तथैव हयगन्धया ॥ तैलं वसां च संयोज्य पचेदभ्यञ्जनं शिशोः ॥ १०५ ॥

भृङ्गवृक्षः भगेरा इति लोके ॥

वचा सर्जरसं कुष्ठं सर्पिश्चोद्धूपने हितम् ॥ वर्णकं चूर्णकं माल्यमञ्जनं पारदं तथा ॥ ॥ १०६ ॥ मनःशिलां चोपहरेद्गोष्ठमध्ये बलिं ततः ॥ पायसं सपुरोडाशं तद्बल्यर्थमुपाहरेत् ॥ मन्त्रपूताभिरद्भिश्च तत्रैव स्नपनं हितम् ॥ १०७ ॥ अलंकृता कामवती सुभगा कामरूपिणी ॥ गोष्ठमध्यालया या तु पातु त्वां मुखमण्डिका ॥ १०८ ॥

कैथ, बेलगिरी, अरणी, अडूसा, सफेद अड और पाढल इनके क्राथसे बालकके शरीरपर सेचन करे ।

भागरेके स्वरससे असगंधके कल्कके साथ तैल और चरबीको डालकर पकावे उस तेलका बालकके शरीरपर मालिस करे वच, राल, कूठ, और घी इनकी धूनी देवे।

चदन, सिग्रफ, फूलोंकी माला, अजन, पारा और मैनसिल इनको गायके स्थानमें मुखमडिकाको अर्पण करके दूध तथा पुरोडाश इनका बलिदान देवे । पश्चात् "शो भायमान, कामनावाली, सुदर और यथेष्ट रूपोंको धारण करनेवाली तथा गायोके स्थानमें रहनेवाली मुखमडिका देवी तेरी रक्षा करे" इस मत्रसे जलको अभिमन्त्रित करके उसी स्थानमें बालकको स्नान करावे यह हितकारी है ॥ १०४–१०८ ॥

अथ नैगमेयग्रहजुष्टचिकित्सा ।

बिल्वाग्निमन्थपूतीकैः कार्यं स्यात्परिषेचनम् ॥ १०९ ॥

पूतीकः घोरकरञ्जः ॥

प्रियंगुसरलानन्ताशतपुष्पाकुटन्नटैः ॥ पचेत्तैलं सगोमूत्रं दधिमस्त्वम्लकाञ्जिकैः ॥ ११० ॥

कुटन्नटं वितुन्नकनाम्नो वृक्षविशेषस्य त्वक् गुडतजी इति लोके। मुस्ताकृतिः श्योनाकं वा ॥

वचां वयस्यां जटिलां गोलोमीश्चापि धारयेत् ॥ १११ ॥

वयस्या आमलकी गुडूची वा । जटिला जटामांसी । गोलोमी श्वेतवचा ॥

उत्सादनं हितश्चात्र स्कन्दापस्मारनाशनम्॥ मर्कटोलूकगृध्राणां पुरीषाणि प्रधूपनम् ॥ ११२ ॥ धूमः सुप्तजने कार्यो बालस्य हितमिच्छता ॥ तिलतण्डुलकं माल्यं भक्ष्यांश्च विविधानपि ॥ कौमारभृत्ये मेषाय प्लक्षमूले निवेदयेत् ॥ ११३ ॥

कौमारभृत्ये बालरक्षायां मेषाय नैगमेयग्रहाय ॥

अधस्तात्क्षीरवृक्षस्य स्नपनश्चोपदिश्यते ॥ अजाननश्चलाक्षिभ्रूः कामरूपी महायशाः। बालं पालयिता देवो नैगमेयोऽभिरक्षतु ॥ ११४ ॥

बेलगिरी, अरणी और पूतीकरज इनके क्राथसे बालकके शरीरपर सेचन करे ।

फूलप्रियंगू, सरल, देवदारु, सारिवा, सोया, केवटीमोथा, दहीका तोड, खट्टीकाजी, और गोमूत्र इनसे तेलको पकाकर उस तेलकी मालिस करे ।

वच, भुँईआमला वा गिलोय, बालछड और सफेद वच इनको धारण करे । स्कन्दापस्मारके प्रकरणमे जो उबटन कहा है वह उबटन भी हितकारी है ।

बदरकी विष्ठा, उल्लूकी विष्ठा और गीधकी विष्ठा, इनकी धूनी देवे । बालकोंके हितकी इच्छा करनेवाले मनुष्य जब सब सोजांय तब इस धूनीको देवे ।

बालककी रक्षाके लिये पाखरकी जडमें तिलन

हित चावल, फूल और अनेक प्रकार भक्ष्य पदार्थ इनका बलिदान देवे ।

दूधवाले वृक्षके नीचे बालकको स्नान करावे और यह मंत्र पढे कि " बकरेकी समान मुखवाला, यथेष्ट रूपोंको धारण करनेवाला, बालककी रक्षा करनेवाला और जिसके नेत्र तथा भौं चचल हैं ऐसा नैगमेय देव इस बालककी रक्षा करो' ॥ १०९–११४ ॥

अथ बालरोगनिदानलक्षणम् ।

धात्र्यास्तु गुरुभिर्भोज्यैर्विषमैर्दोषलैस्तथा॥ दोषा देहे प्रकुप्यन्ति ततः स्तन्यं प्रदुष्यति ॥ ११५ ॥ मिथ्याहारविहारिण्या दुष्टा वातादयस्त्रयः ॥ दूषयन्ति पयस्तेन जायन्ते व्याधयः शिशोः ॥ ह्रीबेरं शर्करां क्षौद्रं लीढं तृष्णाहरं परम् ॥ ११६ ॥ वातदुष्टं शिशुः स्तन्यं पिबन्वातगदातुरः॥ क्षामस्वरः कृशाङ्गः स्याद्बद्धविण्मूत्रमारुतः ॥ ११७॥ स्विन्नो भिन्नमलो बालः कामलापित्तरोगवान् ॥ तृष्णालुरूष्मसर्वाङ्गः पित्तदुष्टं पयः पिबन् ॥ श्लेष्मदुष्टं पिबन्क्षीरं लालालुः श्लेष्मरोगवान् ॥ ११८ ॥ निद्रार्दितो जडः शूनो वक्राक्षश्छर्दनः शिशुः ॥ ज्वराद्या व्याधयः सर्वे वक्ष्यन्ते महतां तु ये ॥ बालानामपि ते तद्वद्बोद्धव्या भिषगुत्तमैः ॥ ११९ ॥ बालानामेव ये रोगा भवन्ति महतां न च ॥ तालुकण्टकमुख्यांस्तानवधारय यत्नतः ॥ १२० ॥

भारी, विषम तथा दोषोंको बढानेवाले भोजनोंसे माताके शरीरमें दोष प्रकुपित होतेहैं और उससे दूध दूषित होजाताहै। अयोग्य आहार और अयोग्य विहार करनेवाली स्त्रियोंके शरीरमें दूषित हुए वातादि तीनों दोष दूधको दूषित करतेहैं और दूधके दूषित होनेसे बालकके शरीरमें रोग उत्पन्न होतेहैं । वातसे दूषित दूधको पीनेसे बालक वात सम्बन्धी रोगोंमे पीडित होताहै, स्वरक्षीण, शरीरकृश और विष्टा, मूत्र तथा वायु रुकजातीहै ।

पित्तसे दूषित दूधको पीनेसे बालकको पसीना आवे, पतले दस्त हों, कामला रोग हो, पित्तजनित पीडायुक्त हो, तृषातुर और सम्पूर्ण अंगोंमें गरमी भी होतीहै ।

कफसे दूषित दूधको पीनेसे बालक लारको अधिक डाले, कफजनित पीडायुक्त, निद्रासे पीडित, भारी शरीरवाला, सूजनसहित, टेढी आखोंवाला और वमनको करताहै ।

ज्वरादि जो समस्त रोग बडोंके होतेहैं उसीप्रकार वह सब रोग बालकोंको भी होतेहैं ऐसा उत्तम वैद्योंको जानना चाहिये ।

इस प्रकरणमें जो तालुकटकादि रोग बालकोंकेही होतेहैं किंतु बडोंके नहीं होते उनका निरूपण करताहूँ उनको सावधान होकर सुन ॥ ११५–१२० ॥

अथ तालुकण्टकलक्षणम् ।

तालुमांसे कफः क्रुद्धः कुरुते तालुकण्टकम् ॥ तेन तालुप्रदेशस्य निम्नता मूर्ध्नि जायते ॥ १२१ ॥ तालुपातास्तनद्वेषः कृच्छ्रात्पानं शकृद्द्रवम् ॥ तृडाक्षिकण्ठास्यरुजा ग्रीवादुर्धरता वमिः ॥ १२२ ॥

पानं स्तनस्य । शकृद्द्रवं द्रवरूपम् ॥

तालुवेके मांसमें प्रकुपित हुआ कफ तालुकंटक नामक रोगको उत्पन्न करताहै । इस रोगसे शिरमें तालुआ नीचेको झुकजाताहै अर्थात् लटक आताहै इस कारण माताके दूधको नहीं पीता, बडे कष्टसे थोडा २ दूधको पीताहै, दस्त पतला होजाताहै, तृषा लगतीहै, आखोंमें, गलेमें तथा मुखमें पीडा होतीहै, गरदनको गिराता है और वमन करताहै ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

अथ महापद्मकलक्षणम् ।

वीसर्पस्तु शिशोः प्राणनाशनः शीर्षबस्तिजः ॥ पद्मवर्णो महापद्मरोगो दोषत्रयोद्भवः ॥ शङ्खाभ्यां हृदयं याति हृदयाच्च गुदं व्रजेत् ॥ १२३ ॥

पद्मवर्णः लोहितवर्णः तत्र शीर्षजो वीसर्पः । शंखाभ्यां हृदयं याति हृदयाच्च गुदं व्रजेत् । एवं बस्तिजो गुदं याति

गुदतः हृदयं हृदयाच्छिरो याति इति बोद्धव्यम् ॥

बालकके मस्तक तथा मूत्राशयमे तीनो दोषोके प्रकोपसे प्राणोका नाश करनेवाला ऐसा लाल रंगका विसर्प रोग उत्पन्न होताहै इसको महापद्मक कहतेहैं। मस्तकमे उत्पन्न हुआ विसर्प कनपटियोमेसे हृदयमे जाताहै और हृदयमेंसे गुदामे जाताहै उसी प्रकार मूत्राशयमें उत्पन्न हुआ विसर्प गुदामे जाताहै, गुदामेंसे हृदयमें जाताहै और हृदयमेसे मस्तकमें जाताहै ऐसा जानना ॥ १२३ ॥

अथ कुकूणकलक्षणम्।

कुकूणकं क्षीरदोषाच्छिशूनामेव वर्त्मनि ॥ जायते सरुजं नेत्रं कण्डूरं प्रस्रवेद्बहु ॥ ॥ १२४ ॥ शिशुः कुर्याल्ललाटाक्षिकूटनासाप्रघर्षणम् ॥ शक्तो नार्कप्रभां द्रष्टुं न चाक्ष्युन्मीलनक्षमः ॥ १२५ ॥

कुकूणकं कोथुआह इति लोके ॥

दूधके दोषसे बालकोके पलकोंमें कुकूणक रोग होता है कि जिससे नेत्र व्यथायुक्त, खुजलीवाले और अत्यंत स्राववाले होतेहैं। इस रोगसे बालक अपने मस्तकको आखोंके भागको तथा नाकको घिसताहै, सूर्यकी प्रभाको देख नही सक्ता और आंखोको खोल नही सक्ता॥१२४॥ ॥ १२५ ॥

अथ तुण्डिगुदपाकयोर्लक्षणम्।

वातेनाध्मापिता नाभिः सरुजा तुण्डिरुच्यते ॥ बालस्य गुदपाकाख्यो व्याधिः पित्तेन जायते ॥ १२६ ॥

वायुसे नाभि फूल जातीहै और उसमें व्यथा होतीहै इसको तुडी कहतेहैं ॥

पित्तसे बालककी गुदा पकजातीहै इसको गुदपाक कहतेहैं ॥ १२६ ॥

अथाहिपूतनलक्षणम्।

शकृन्मूत्रसमायुक्ते धौतेऽपाने शिशोर्भवेत् ॥ स्विन्ने वा स्नाप्यमानस्य कण्डू रक्तकफोद्भवा ॥ १२७ ॥ कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटाः स्रावश्च जायते ॥ एकीभूतं व्रणं घोरं तं विद्यादहिपूतनम् ॥ १२८ ॥

स्विन्ने स्वेदिते।

विष्ठासे तथा मूत्रसे लिप्त बालककी गुदाको नहीं धोनेसे अथवा बालकके आये हुए पसीनेको नही पोंछनेसे अर्थात् वह वहीं जमजाताहै तो रुधिर तथा कफके प्रकोपसे खुजली उत्पन्न होतीहै और खुजानेसे तत्काल फोडे तथा स्राव होजाताहै इस प्रकार होकर जो घोर व्रण होताहै उसको अहिपूतन कहतेहैं ॥ १२७ ॥ १२८ ॥

अथाजगल्लिकालक्षणम्।

स्निग्धा सवर्णा ग्रथिता नीरुजा मुद्गसन्निभा ॥ कफवातोत्थिता ज्ञेया बालानामजगल्लिका ॥ १२९ ॥

ग्रथिता गुम्फितेव। मुद्गसन्निभा मुद्गाकृतिः।

बालकोके शरीरमे चिकनी, शरीरके समान वर्णवाली, गुथीसी, पीडारहित और मूँगकी समान आकारवाली फुंसी कफ तथा वायुके प्रकोपसे होतीहै उसको अजगल्लिका कहतेहैं ॥ १२९ ॥

अथ परिगर्भिकलक्षणम्।

मातुः कुमारो गर्भिण्याः स्तन्यं प्रायः पिबन्नपि ॥ कासाग्निसादवमथुतन्द्राकार्श्यारुचिभ्रमैः ॥ १३० ॥ युज्यते कोष्ठवृद्ध्या च तमाहुः परिगर्भिकम् ॥ रोगं परिभवाख्यं च तत्र युञ्जीत दीपनम्॥१३१॥

पिबन्नपीत्यपिशब्दादपिबन्नपि। परिगर्भिकः अहीडीति लोके। परिभवाख्यं परिभवेति नामान्तरम् ॥

बालक गर्भवती माताका दूध पिये अथवा नहीं पिये तो भी उसके विशेष करके खांसी, मन्दाग्नि, वमन, तन्द्रा, कृशता, अरुचि, भ्रम और कोठेकी वृद्धि अर्थात् पेटका बढना होताहै इस रोगको परिगर्भिक और परिभव कहतेहैं। यह रोग उत्पन्नहुआ होय तो अग्निको दीपन करनेवाले उपायोंकी योजना करे ॥ १३० ॥ १३१ ॥

अथ दन्तोद्भेदकरोगाः।

दन्तोद्भेदः शिशोः सर्वरोगाणां कारणं स्मृतम् ॥ विशेषाज्ज्वरविड्भेदकासच्छ-

दिशिरोरुजाम् ॥ १३२ ॥ अभिष्यन्दस्य पोथक्या विसर्पस्य च जायते ॥१३३॥

कारणमित्यन्वयः । पोथक्या वर्त्मरोगविशेषस्य ॥

बालकके दांत निकलनेका समय संपूर्ण रोगोंका कारण रूप कहाजाताहै और विशेषकरके ज्वर, दस्तोंका होना, खांसी, वमन, मस्तककी पीडा, आंखोंका दुखना, पोथकी नामक पलकोंका रोग और विसर्प इनका कारणभूत होताहै ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

अथ बालरोगचिकित्सा ।

भैषज्यं पूर्वमुद्दिष्टं महतां यज्ज्वरादिषु ॥ तदेव कार्यं बालानां किन्तु दाहादिकं विना ॥ १३४ ॥

दाहादिकं विना अग्निदाहादि क्षारवमनविरेचनशिराव्यधादिकं विना । महाकष्टे चोत्पन्ने वमनविरेकाद्यपि दद्यात् । उक्तश्च-विरेकवस्तिवमनानृते कुर्याच्च नात्ययादिति ॥ १३५ ॥

अत्ययाद्विनाशकरकष्टादृते विना ॥

त एव दोषा दूष्याश्च ज्वराद्या व्याधयश्च ते ॥ अतस्तदेव भैषज्यं मात्रा तत्र कनीयसी ॥ १३६ ॥ विडंगफलमात्रं तु जातमात्रस्य भेषजम् ॥ अनेनैव प्रमाणेन मासिमासि प्रवर्द्धयेत् ॥ १३७ ॥

विडंगपरिमितं भेषजं चूर्णीकृत्य किंवा कल्कीकृत्य अथवा अवलेहीकृत्य दद्यादित्यर्थः । तन्त्रान्तरे तु अन्यथाभिहितम् ॥

प्रथमे मासि बालाय देया भैषज्यरक्तिका। अवलेह्या तु कर्तव्या मधुक्षीरसितावृतैः ॥ ॥ १३८ ॥ एकैकां वर्द्धयेत्तावद्यावत्संवत्सरो भवेत् ॥ तदूर्द्धं माषवृद्धिः स्याद्यावत्षोडश वत्सराः ॥ १३९ ॥

एकैकां रक्तिकां तदूर्द्धं वर्षोपरिमाषवृद्धिः। प्रतिवर्षं पञ्चगुञ्जात्मकस्य माषस्य वृद्धिर्भवति । गुञ्जाः पञ्चाद्यमाषक इति अमरसिंहः ॥

ततः स्थिरा भवेत्तावद्यावद्वर्षाणि सप्ततिः॥ ततो बालकवन्मात्रा ह्रासनीया शनैः शनैः ॥ १४० ॥

ततः षोडशवत्सरोपरि ॥

चूर्णकल्कावलेहानामियं मात्रा प्रकीर्तिता ॥ कषायस्य पुनः सैव विज्ञातव्या चतुर्गुणा ॥ १४१ ॥ क्षीरपस्य शिशोर्देयमौषधं क्षीरसर्पिषा ॥ धात्र्यास्तु केवलं देयं न क्षीरेणापि सर्पिषा ॥ १४२ ॥

क्षीरान्नादस्य पूर्ववत्क्षीरसर्पिषा ॥

येषां गदानां ये योगाः प्रवक्ष्यन्तेऽगदंकराः ॥ तेषु तत्कल्कसंलिप्तौ पाययेत्तु शिशुं स्तनौ ॥ १४३ ॥

बडे मनुष्योंके लिये जो ज्वरादि रोगोंमें प्रथम औषधि कही हैं वही औषधि बालकोंके लिये भी देवे । परन्तु दाग, क्षारकर्म, वमन, विरेचन और फस्त खोलना आदि नहीं करे, यदि बालकको विशेष कष्ट उत्पन्न होय तो वमन तथा विरेचन आदिभी देवे क्योंकि सुश्रुत कहताहै कि "प्राणनाशक संकटके उत्पन्न हुए विना बालकोंको विरेचन वस्ति और वमन यह क्रिया नहीं करे" ।

बालकोंके दोष और दूष्य तथा ज्वरादिरोगभी बडे मनुष्योंकी समान होतेहैं इस कारण बालकोंकोभी प्रत्येक रोगमे प्रत्येक रोगाधिकारमे कहीहुई औषधि देवे, किंतु मात्रा कनिष्ठ अर्थात् थोडी देवे ।

बालकोंको कनिष्ठ देनेके लिये विश्वामित्र कहतेहैं कि "बालकके जन्मसे एक महीनेतक वायविडंगकी बराबर औषधि देवे और फिर महीनेके महीने इसीप्रकार बढाता जाय" अभिप्राय यहहै कि पहिले महीनेमे वायविडंगकी बराबर औषधि लेकर चूर्ण बनाकर अथवा कल्क बनाकर वा अवलेह बनाकर देवे और दूसरे महीनेमें दो वायविडंगकी बराबर औषधि देवे । इसप्रकार महीने महीने बढाता जाय ।

अन्य ग्रंथोंमे अन्य प्रकारसे लिखा है कि " बाल-

कको पहिले महीनेमे एक रत्तीभर औषधि देवे और यह औषधि सहत, माताका दूध तथा घी इनमें मिलाकर चटनीकी समान चटावे। फिर महीनेके महीने एक एक रत्ती बढाता जाय, इस प्रकार एक वर्षतक करे। पहिले वर्षके पूरे होनेपर सोलह वर्षकी अवस्था पर्यंत प्रत्येक वर्षमे पांच पांच रत्ती बढाता जाय सोलह वर्षके पूरे होने-पर सत्तर वर्षतक मात्रा स्थिर होजाती है।

सत्तर वर्षके पश्चात् बालकोंकी समान मात्राको धीरे धीरे घटाता जाय, एक रत्तीभर आदि जो मात्रा कही है वह चूर्ण, कल्क और अवलेहकी जाननी। क्राथकी मात्रा इससे चौगुनी देवे। जो बालक माताके दूधको पीताहै उसको दूधके साथ अथवा घीमें मिलाकर औषधि देवे। बालककी माताको औषधि देनी होय तो दूध और घीके साथ नही देवे जैसी कही हो उसी प्रकार देवे। जो बालक दूध पीता हो और अन्नको भी खाता होय उसकोभी दूध तथा घीके साथ औषधि देवे।

सुश्रुत बालकको प्रकारान्तरसे औषधि देना कहताहै कि "जो जो रोगोंके लिये जो जो औषधि कही हैं उन उन रोगोंमे उन उन औषधियोंके कल्कसे माताके स्तनोको लेपन करके बालकको पिलावे" ॥ १३४–१४३ ॥

अथाऽनभिभाषिबालस्यान्तर्गत-रोगज्ञानोपायः।

अंगप्रत्यंगदेशे तु रुजा यत्रास्य जायते ॥ मुहुर्मुहुः स्पृशति तं स्पृश्यमाने न रोदिति ॥ १४४ ॥ निर्मीलिताक्षो मूर्द्धस्थे रोगे नोद्धारयेच्छिरः ॥ वस्तिस्थे-मूत्रसङ्गार्तः क्षुधा तृडपि गच्छति ॥ ॥१४५॥ विण्मूत्रसंगवैकल्याच्छर्द्याध्माना‌न्त्रकूजनैः ॥ कोष्ठे व्याधीन्विजानी-यात्सर्वत्रस्थांश्च रोदनैः ॥ १४६ ॥

बालकके जो अंगके या प्रत्यगके प्रदेशमे वेदनाहोती होय तो उस प्रदेशको बालक वारंवार हाथसे छूता है और अन्य कोई मनुष्य भी उस प्रदेशको स्पर्श करे तो बालक रोता नहीं है, बालकके मस्तकमें पीडा होय तो बालक आंखोंको मीची रखताहै और मस्तकको स्थिर नही रखता अर्थात् गरदनको गिराये रखताहै, बालकके मूत्राशयमे पीडा होय तो बालक मूत्रके अवरोधसे पीडित होताहै। और उसमे भूख प्यास नष्ट होजातीहै। जो बालकके मूत्र और मलका अवरोध होय, विह्वलता होय, अफारा आजाय और आते बोले तो इनसे जानना कि बालकके कोठेमें रोग है। जो बालक सदैव रोवै तो जानना कि इसके सब शरीरमे रोग है ॥ १४४–१४६ ॥

अथ बालकस्य ज्वरादिरोगचिकित्सा।

सर्वं निवार्यते बाले स्तन्यं नैव निवार्यते ॥ मात्रया लंघयेद्धात्रीं शिशोरेतद्धिलंघ-नम् ॥ १४७ ॥

मात्रया लंघयेल्लघु भोजयेत् ॥

बालकको समस्त पदार्थोंसे वर्जित करे, किंतु माताके दूधसे कदापि वर्जित नहीं करे, बालकको लघन कराने होयँ तो उसकी माताको हलका भोजन करावे येही बाल कके लघन हैं ॥ १४७ ॥

अथ सर्वज्वरेषु भद्रमुस्ता-दिकाथः।

भद्रमुस्ताभयानिम्बपटोलमधुकैः कृतः ॥ क्वाथः कोष्णः शिशोरेष निःशेषज्वरना-शनः ॥ १४८ ॥

भद्रमोथा, हरड, नीम, कडवे परवल और मुलैठी इन-का क्वाथ बनाकर कुछ कुछ गरम करके पिये तो सर्वप्र-कारके ज्वर नष्ट होजातेहैं ॥ १४८ ॥

अथ ज्वरातिसारे चतुर्भद्रावलेहः।

घनकृष्णारुणाशृंगीचूर्णं क्षौद्रेण संयु-तम् ॥ शिशोर्ज्वरातीसारघ्नं कासं श्वासं वमिं हरेत् ॥ १४९ ॥

अरुणा अतिविषा ॥

नागरमोथा, पीपल, अतीस और काकडासिंगी इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर चाटे तो बालकोंका ज्वराती-सार नष्ट होताहै और खाँसी, श्वास तथा वमन दूर हो जातीहै ॥ १४९ ॥

अथातिसारे बिल्वादिक्काथः ।

बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनां जलं सलोध्रं गजपिप्पली च ॥ क्काथावलेहौ मधुना विमिश्रौ बालेषु योज्यावतिसारितेषु ॥ १५० ॥

जलम् [वाला] ॥

बेलगिरी, धायके फूल, सुगधवाला, लोध और गजपीपल इनका क्काथ बनाकर सहत मिलाकर पिये और इन्हीं औषधियोंके चूर्णको सहतमें मिलाकर चाटे तो बालकोंका अतीसार दूर होजाताहै ॥ १५० ॥

अथ दुर्धरातिसारे समंगादिक्काथः ।

समंगाधातकीलोध्रसारिवाभिः शृतं जलम् ॥ दुर्धरेऽपि शिशोर्देयमतीसारे समाक्षिकम् ॥ १५१ ॥

समंगा लज्जालुमूलम् ॥

लज्जावतीकी जड, धायके फूल, लोध और सारिवा इनका क्काथ बनाकर उसमे सहत डालकर पिये तो बालकोंका दुर्धर अतीसार भी दूर होजाताहै ॥ १५१ ॥

अथामातीसारे विडंगादिचूर्णम् ।

विडंगान्यजमोदा च पिप्पलीतण्डुलानि च ॥ एषामालोड्य चूर्णानि सुखं तप्तेन वारिणा ॥ आमे प्रवृत्तेऽतीसारे कुमारं पाययेद्भिषक् ॥ १५२ ॥

बालकको आमातिसार होय तो वैद्य वायविडग, अजमोद और पीपलके दाने इनका चूर्ण करके मदोष्ण जलके साथ पिलावे ॥ १५२ ॥

अथ रक्तातीसारे मोचारसादियवागूः ।

मोचारसः समंगा च धातकी पद्मकेसरम् ॥ पिष्टैरेतैर्यवागूः स्याद्रक्तातीसारनाशिनी ॥ १५३ ॥

मोचारसः लज्जालुमूलम्, धातकीपुष्पम्, कमलकेसरमेतेषां तोलकैकम् गृह्णीयात् । तण्डुलाः सपादतोलकाः १।, जलमेकादश तोलकम् ११ । सर्वमेकीकृत्य यवागूः साधनीया ॥

मोचरस, लज्जावतीकी जड, और कमलकी केशर यह सब मिलाकर सवा तोले लेवे, चावल सवा तोले लेवे, और ग्यारह तोले पानीमें इन सबको एकत्रित करके यवागू बनाकर बालकको देवे तो रक्तातीसार नष्ट होजाताहै ॥ १५३ ॥

अथातीसारे नागरादिक्काथः ।

नगरातिविषामुस्तबालकेन्द्रयवैः शृतम् ॥ कुमारं पाययेत्प्रातः सर्वातीसारनाशनम् ॥ १५४ ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, सुगवाला और इन्द्रजौ इनका क्काथ बनाकर प्रातःकाल पिये तो बालकोंके सब प्रकारके अतीसार दूर होते हैं ॥ १५४ ॥

अथ प्रवाहिकायां लाजादिचूर्णम् ।

लाजा सयष्टीमधुका शर्करा क्षौद्रमेव च ॥ तण्डुलोदकयोगेन क्षिप्रं हन्ति प्रवाहिकाम् ॥ १५५ ॥

धानकी खीलें, मुलेठी, खाड और सहत इनको एकत्र करके चावलोंके जलके साथ पीनेसे बालकोकी प्रवाहिका दूर होती है ॥ १५५ ॥

अथ ग्रहण्यादिरोगे रजन्यादिचूर्णम् ।

रजनी सरलो दारु बृहती गजपिप्पली ॥ पृष्ठिपर्णी शताह्वा च लीढं माक्षिकसर्पिषा ॥ १५६ ॥ दीपनी ग्रहणीं हन्ति मारुतार्तिं सकामलाम् ॥ ज्वरातीसारपाण्डुघ्नी बालानां सर्वरोगनुत् ॥ १५७ ॥

हलदी देवदारु, दारुहल्दी, कटेरी, गजपीपल पिठवन, और सौंफ इनका चूर्ण बनाकर सहत तथा घीके साथ चाटे तो बालकोंकी ग्रहणी, वायुकी

पीडा, कामला, ज्वर, अतीसार और पांडुरोग नष्ट होजाताहै और जठराग्नि दीपन होती है ॥ १५६॥१५७॥

अथ कासघ्नो मुस्तकादिस्वरसः।

पौष्करातिविषाघासाकणाशृंगीरसं लिहेत् ॥ मधुना मुच्यते बालः कासैः पञ्चभिरुत्थितैः ॥ १५८ ॥

पुहकरमूल, अतीस, अडूसा, पीपल और काकडाशिंगी इनका स्वरस बनाकर उसमे सहत डालकर चाटे तो बालकोंकी पांचोंप्रकारकी खाँसी दूर होजाती है ॥ १५८ ॥

अथ बालकानां पुराणकासोपरि केसरावलेहिका।

व्याघ्रीसुमनसंजातकेसरैरवलेहिका ॥ मधुना चिरसंजाताञ्छिशोः कासान्व्यपोहति ॥ १५९ ॥

कटेरीके फूलोके स्वरसमें केसरको पीसकर सहत मिलाकर चाटे तो बालकोकी बहुत पुरानी खाँसी दूर होजाती है ॥ १५९ ॥

अथ कासश्वासे धान्यादिपानम्।

धान्यं च शर्करायुक्तं तण्डुलोदकसंयुतम् ॥ पानमेतत्प्रदातव्यं कासश्वासापहं शिशोः ॥ १६० ॥

धनियां और खाड इनको पीसकर चावलोंके जलके साथ पीनेसे बालकोकी खासी और श्वास दूर होजाते है॥१६०॥

अथ द्राक्षादिचूर्णम्।

द्राक्षावासाभयाकृष्णाचूर्णं क्षौद्रेण सर्पिषा॥ लीढं श्वासं निहन्त्याशु कासञ्च तमकं तथा ॥ १६१ ॥

तमकं श्वासभेदम् ॥

दाख, अडूसा, हरड और पीपल इनका चूर्ण करकै सहतमे मिलाकर चाटे तो बालकोका श्वास, खासी तथा तमकश्वास भी दूर होजाताहै ॥ १६१ ॥

अथ हिक्कावमिघ्नः कटुकरोहिण्यवलेहः।

चूर्णं कटुकरोहिण्या मधुना सह योजयेत्॥ हिक्कां प्रशमयेत्क्षिप्रं छर्दिं चापि चिरोत्थिताम् ॥ १६२ ॥

कुटकीका चूर्ण बनाकर सहतमे मिलाकर चाटे तो बालकोंकी हिचकी तथा बहुत पुरानी वमन भी दूर होजाती है ॥ १६२ ॥

अथ दुग्धवमिघ्नोऽवलेहः।

आम्रास्थिलाजसिन्धूत्थं सक्षौद्रं छर्दिनुद्भवेत् ॥ छर्द्यां पीतं तु मेध्यन्तु स्तन्येन मधुसर्पिषा ॥ द्विवार्ताकीफलरसं पञ्चकोलञ्च लेहयेत् ॥ १६३ ॥

द्विवार्त्ताकी बृहतीद्वयम्। पञ्चकोलम्। पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरमिति ॥

आमकी गुठली, धानकी खील, और सैंधानमक इनका चूर्ण बनाकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे बालककी दूधकी वमन दूर होजाती है।

कटेरीके फलोका स्वरस, बडी कटेरीके फलोका स्वरस, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनको एकत्र मिलाकर चाटे तो बालकका दूधका डालना बन्द होजाताहै ॥ १६३ ॥

अथाध्माने वातशूले च सैन्धवाद्यवलेहः।

घृतेन सिन्धुविश्वैलाहिंगुभार्ङ्गीरजो लिहन्॥ आनाहं वातिकं शूलं हन्यात्तोयेन वा शिशुः ॥ १६४ ॥

सैंधानिमक, सोंठ, इलायची, हींग और भारगी, इनका चूर्ण बनाकर घीकेसाथ अथवा जलके साथ मिलाकर खाय तो पेटका अफरना और वातशूल नष्ट होताहै ॥ १६४ ॥

अथ मूत्राघातघ्नः कणाद्यवलेहः।

कणोषणासिताक्षौद्रसूक्ष्मैलासैन्धवैः कृतः॥ मूत्रग्रहे प्रयोक्तव्यः शिशूनां लेह उत्तमः ॥ १६५ ॥

पीपल, सोंठ, मिश्री, सहत, छोटी इलायची और सैंधानिमक, इनको एकत्र पीसकर अवलेह बनाकर चटावे तो बालकोंका मूत्राघात दूर होताहै ॥ १६५ ॥

अथ कार्श्यहरो योगः ।

यदा तु दुर्बलो बालः खादन्नपि च वह्निमान् ॥ विदारीकन्दगोधूमयवचूर्णं घृतप्लुतम् ॥ खादयेत्तदनु क्षीरं शृतं समधुशर्करम् ॥ १६६ ॥

जो बालक अच्छा भोजन करनेपर और जठराग्निके दीपन होनेपर भी दुर्बल होताजाय उसको विदारीकन्द गेहूँ और जौ इनका चूर्ण घीमें मिलाकर खवावे और ऊपरसे सहत तथा मिश्रीके साथ दूध पिलावे ॥ १६६ ॥

अथ शोथघ्नो लेपः ।

मुस्तं कूष्माण्डबीजानि भद्रदारुकलिंगकान् ॥ पिष्ट्वा तोयेन संलिप्तं लेपोऽयं शोथहृच्छिशोः ॥ १६७ ॥

नागरमोथा, पेठेके बीज, देवदारु और इन्द्रजौ इनको जलमें पीसकर लिपे तो बालकोंकी सूजन दूर होती है ॥ १६७ ॥

अथ क्षतविसर्पविस्फोटज्वरहरक्काथः ।

पटोलत्रिफलारिष्टहरिद्राकथितं पिबेत् ॥ क्षतवीसर्पविस्फोटज्वराणां शान्तये शिशुः ॥ १६८ ॥

कडवे परवल, हरड, बहेडे, आमले, नीम और हलदी, इनका क्काथ पीनेसे क्षत, विसर्प, विस्फोट तथा ज्वरकी शाति होती है ॥ १६८ ॥

अथ सिध्मपामाविचर्चिकाघ्नो लेपः ।

गृहधूमनिशाकुष्ठराजिकेन्द्रयवैः शिशोः ॥ लेपस्तक्रेण हन्त्याशु सिध्मपामाविचर्चिकाः ॥ १६९ ॥

घरके धूँयेकी धूँस, हलदी, कूट, राई और इन्द्रजौ इनको तक्रमें पीसकर लेप करे तो सिध्म, पामा तथा विचर्चिकानामक कोढ दूर होताहै ॥ १६९ ॥

अथ मुखस्रावहरः क्काथः ।

सारिवातिललोध्राणां कषायो मधुकस्य च ॥ संस्राविणि मुखे शस्तो धावनार्थं शिशोः सदा ॥ १७० ॥

सारिवा, तिल, लोध और मुलैटी इनके क्काथसे नित्य मुखको साफ करनेसे मुखका स्राव दूर होताहै ॥ १७० ॥

अथ मुखपाकहरः प्रलेपः ।

अश्वत्थत्वग्दलक्षौद्रैर्मुखपाके प्रलेपनम् ॥

पीपलवृक्षकी छाल और पत्तोंको पीसकर सहतमें मिलाकर मुखमें लेपकरनेसे मुखपाक दूर होताहै ।

अथ बालानां रोदने चूर्णम् ।

पिप्पलीत्रिफलाचूर्णं घृतक्षौद्रपरिप्लुतम् ॥ बालो रोदिति यस्तस्मै लीढं दद्यात्सुखावहम् ॥ १७१ ॥

पीपल, हरड, बहेडा और आमला - इनका चूर्ण घी तथा सहतमें मिलाकर चटावे तो बालकका रोना बंद होताहै ॥ १७१ ॥

अथ तालुकंटकघ्नः कल्कः ।

हरीतकी वचा कुष्ठं कल्कं माक्षिकसंयुतम् ॥ पीत्वा कुमारः स्तन्येन मुच्यते तालुकण्टकात् ॥ १७२ ॥

हरड वच और कूट इनके कल्कको सहतमें मिलाकर चावलोंके जलके साथ पिलावे तो बालकका तालुकंटकरोग नष्ट होता है ॥ १७२ ॥

अथ कुकूणकहरो लेपः ।

फलत्रिकं लोध्रपुनर्नवे च सशृंगवेरं बृहतीद्वयं च ॥ आलेपनं श्लेष्महरं सुखोष्णं कुकूणके कार्यमुदाहरन्ति ॥ १७३ ॥

हरड, बहेडा, आमला, लोध, सोंठ, अदरख, कटेरी और कटाई इनको जलमें पीसकर कुछकुछ गरम करके इसका लेप करनेसे कुकूणक रोग नष्ट होताहै ॥ १७३ ॥

अथ नाभिशोथघ्नः स्वेदः ।

मृत्पिण्डेनाग्नितप्तेन क्षीरसिक्तेन सोष्म-

णा ॥ स्वेदयेदुत्थितां नाभिं शोथस्तेनोपशाम्यति ॥ १७४ ॥

मट्टीके पिंडको अग्निमे तपाकर दूधमे बुझाकर सुहाता सुहाता सेके तो नाभिकी सूजन दूर होतीहै ॥ १७४ ॥

अथ नाभिपाकघ्नतैलमवधूलनं च ।

नाभिपाके निशालोध्रप्रियंगुमधुकैः शृतम् ॥ तैलमभ्यञ्जने शस्तमेभिश्चाप्यवधूलनम् ॥ १७५ ॥ त्वक्चूर्णैः क्षीरिणां वापि कुर्याच्चन्दनरेणुना ॥ १७६ ॥

नाभि पकजाय तो हलदी, लोध, फूलप्रियगू और मुलैठी इनके कल्कसे पकाये हुए तेलका नाभिपर मालिश करे और इनकाही चूर्ण बुरकावे ।

अथवा वटादि पचक्षीरी वृक्षोका चूर्ण करके नाभिपर बुरकावे अथवा चन्दनका चूर्ण नाभिपर बुरकावे और बकरीकी मेंगनको जलाकर उसकी राखको नाभिके ऊपर लगावे तो नाभिपाक दूर होजाताहै ॥ १७५ ॥ १७६ ॥

अथ गुदपाकघ्नो योगः ।

गुदपाके तु बालानां पित्तघ्नीं कारयेत्क्रियाम् ॥ रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम् ॥ शंखयष्ट्यञ्जनैश्चूर्णं शिशूनां गुदपाकनुत् ॥ १७७ ॥

अञ्जनं रसाञ्जनम् ॥

बालकोंकी गुदा पकती होय तो पित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये । विशेष करके रसौतको पिलावे और रसौतका लेप करै तो गुदपाक आराम होताहै । शख, रसौत और मुलैठी इनका चूर्णभी बालकोंकी गुदपाकको दूर करेहै ॥ १७७ ॥

अथाहिपूतने लेपः ।

शंखसौवीरयष्ट्याह्वैर्लेपो देयोऽहिपूतने ॥ १७८ ॥

शंख, सफेद सुरमा, और मुलैठी इनका लेप करनेसे अहिपूतन रोग दूर होताहै ॥ १७८ ॥

अथ परिगर्भिकोपायः ।

परिगर्भिकरोगे तु पूज्यते वह्निदीपनम् ॥

बालकके परिगर्भिकरोग हुआ होय तो जठराग्निको दीपन करनेवाली औषधि देवे ।

अथ बालानां दन्तनिःसरणोपायः ।

दन्तपालीं तु मधुना चूर्णेन प्रतिसारयेत् ॥ धातकीपुष्पपिप्पल्योर्धात्रीफलरसेन वा ॥ ॥ १७९ ॥ दन्तोत्थानभवा रोगाः पीडयन्ति न दालकम् ॥ जाते दन्ते हि शाम्यन्ति यतस्तद्धेतुका गदाः ॥ १८० ॥

धायके फूल और पीपल इनके चूर्णको सहतमे मिलाकर इससे बालकके मसूढोको घिसे, अथवा सहतके साथ आमलोंके रससे मसूढोंको घिसे । दात निकलनेके समयके रोग बालकको विशेष पीडित नही करतेहै कारण यह है कि वह दांतोके निकलनेके पश्चात् सब रोग अपने आप शांत होजातेहैं ॥ १७९ ॥ १८० ॥

अथ बालानां शक्तिवर्द्धकप्रयोगाः ।

सौवर्णं सुकृतं चूर्णं कुष्ठं मधु घृतं वचा ॥ मत्स्याक्षकं शंखपुष्पी मधु सर्पिः सकाञ्चनम् ॥ १८१ ॥ अर्कपुष्पी मधु घृतं चूर्णितं कनकं वचा ॥ सहेमचूर्णं कैटर्यं श्वेता दूर्वा घृतं मधु ॥ चत्वारोऽभिहिताः प्राशा अर्द्धश्लोकसमापनाः ॥ कुमाराणां वपुर्मेधाबलपुष्टिकराः स्मृताः ॥ १८२ ॥

सौवर्णं चूर्णं चतुर्ष्वपि योगेषु मारितसुवर्णचूर्णम् । मत्स्याक्षकः ब्राह्मी इति लोके, वकम इत्येके । अर्कपुष्पी अर्कसदृशपुष्पी लता । कैटर्यं कट्फलम् । दूर्वा श्वेतदूर्वा । संवत्सरं यावदेते योगाः प्रयोज्याः, द्वादशवर्षाणीति केचित् ॥

सोनेकी भस्मका वारीक चूर्ण, कुठ, सहत, घी और वचका चूर्ण इनको एकत्र करके खिलानेसे बालकोंके शरीरमे सामर्थ्य, बुद्धि, वल तथा पुष्टि वढतीहै ॥

सोनेकी भस्मका वारीक चूर्ण, ब्रह्मी, शंखाहुली, सहत और घी इनको एकत्र करके खाय तो बालकके शरीरकी सामर्थ्य, बुद्धि, बल और पुष्टि प्राप्त होतीहै ॥

सोनेकी भस्मका वारीक चूर्ण, कूठ, सहत घी और वच इनको एकत्र करके खाय तो बालकोंके शरीरकी सामर्थ्य बुद्धि बल और पुष्टि उत्पन्न होतीहै ।

सोनेकी भस्मका वारीक चूर्ण, कायफल, सफेद दूध, घी और सहत इनको एकत्र करके खाय, तो बालकोंका शरीरकी सामर्थ्य, बुद्धि बल तथा पुष्टि प्राप्त होतीहै । यह प्रयोग एक वर्ष पर्यंत बालकको देना चाहिये और कितने एक वैद्य कहते हैं कि बारह वर्षतक देना चाहिये ॥ १८१ ॥ १८२ ॥

अथ लाक्षादितैलम् ।

लाक्षारसे समे तैलं मस्तुन्यथ चतुर्गुणे ॥ रास्नाचन्दनकुष्ठाह्वावाजिगन्धानिशायुतैः ॥ १८३ ॥ शताह्वादारुयष्ट्याह्वमूर्वातिक्ताहरेणुभिः ॥ संसिद्धं ज्वररक्षोघ्नं बलवर्णकरं शिशोः ॥ १८४ ॥

इति बालरोगाधिकार. ।

इति भावप्रकाशे ज्वरादिव्याधिनिदानचिकित्साप्रकरण समाप्तम् ।

इति मध्यखण्डं समाप्तम ।

तिलका तेल और लाखका रस बराबर लेवे, चौगुना दहीका तोड लेवे, इन सबको एकत्र मिलाकर इनमें रासना, चदन, कूठ, असगध, हलदी, सोया, देवदारु, मुलेठी, चुरनहार, कुटकी और रेणुका इनका कल्क डालकर तेलको सिद्ध करे । यह तेल बालकोंके ज्वरको तथा भूतादिबाधाको दूर करे है, बलको उत्पन्न करताहै और शरीरके वर्णको उत्तम करताहै ॥ १८३ ॥ १८४ ॥

इति बालरोगाधिकारः सम्पूर्णः ।

इति श्रीलटकनतनयभावमिश्रविरचिते भावप्रकाशे शालिग्रामवैश्यकृतभाषाटीकायां मध्यमखण्ड समाप्तम् ।

समाप्तमिदं मध्यमखण्डम ।



॥ श्रीवेंकटेशाय नमः ॥



अथ भावप्रकाशः ।

भाषाटीकासमेतः

उत्तरखण्डम् ।

अथ वाजीकरणाधिकारः ।

यद्द्रव्यं पुरुषं कुर्याद्वाजीव सुरतक्षमम् ॥ तद्वाजीकरमाख्यातं मुनिभिर्भिषजां वरैः ॥ १ ॥

जो पदार्थ पुरुषको मैथुनकरनेमें घोडेकी समान समर्थ करे उसको वैद्योंमे उत्तम मुनि वाजीकरण कहतेहैं ॥ १ ॥

अथ क्लीबस्य लक्षणसंख्यानिदानानि ।

क्लीबः स्यात्सुरताशक्तस्तद्भावः क्लैब्यमुच्यते ॥ तच्च सप्तविधं प्रोक्तं निदानं तस्य कथ्यते ॥ २ ॥ तैस्तैर्भावैरहृद्यैस्तु रिरंसोर्मनसि क्षते ॥ ध्वजः पतत्यतो नृणां क्लैब्यं समुपजायते ॥ द्वेष्यस्त्रीसंप्रयोगाच्च क्लैब्यं तन्मानसं स्मृतम् ॥ ३ ॥

तैस्तैर्भावैः भयशोकक्रोधादिभिः । अहृद्यैः हृदयाहितैः दुःखकरत्वात्क्षते पीडिते अस्वस्थीकृते इति यावत् । ध्वजः शिश्नः । तथाच–"ध्वजं चिह्ने पताकायां मेहने शौण्डिकेऽपि च" इति विश्वप्रकाशः । पतति नतून्नमति । संप्रयोगो मैथुनम् ॥

कटुकाम्लोष्णलवणैरतिमात्रोपसेवितैः ॥ पित्ताच्छुक्रक्षयो दृष्टः क्लैब्यं तस्मात्प्रजायते ॥ ४ ॥

कटुकादिना अतिमात्रेण प्रवृद्धेन पित्तेन शुक्रस्य दग्धत्वात्क्लैब्यं भवति पित्तजमिति द्वितीयम् ॥

अति व्यवायशीलो यो न च वाजीक्रियारतः ॥ ध्वजभङ्गमवाप्नोति स शुक्रक्षयहेतुकः ॥ ५ ॥

शुक्रक्षयेण तृतीयम् ॥

महतामेढ्ररोगेण चतुर्थी क्लीबता भवेत् ॥ वीर्यवाहिशिराच्छेदान्मेहनानुन्नतिर्भवेत् ॥ ॥ ६ ॥ बलिनः क्षुब्धमनसो निरोधाद्ब्रह्म-

चर्यतः ॥ षष्ठं क्लैब्यं स्मृतं तत्तु शुक्रस्तम्भनिमित्तकम् ॥ ७ ॥

बलिनः पुष्टस्य । क्षुब्धमनसः कामात्संचलितमनसः ब्रह्मचर्यममैथुनं तस्मान्निरोधाच्छुक्रस्य क्लैब्यं भवति ॥

जन्मप्रभृति यत्क्लैब्यं सहजं तद्धि सप्तमम् ॥ ८ ॥

जो पुरुष मैथुन करनेमें असमर्थ हो उसको क्लीब कहतेहैं और उस क्लीवके धर्मको क्लैब्य कहतेहैं । वह क्लीवता सात प्रकारकी है । अब सात प्रकारकी क्लीवताका निदान कहताहू ॥ २ ॥

मैथुन करनेवाले पुरुषका मन भय, शोक तथा क्रोधादि दु.खदायक विकारोंसे अस्वस्थ होकर अथवा जिसपर अरुचि होय ऐसी स्त्रीके साथ प्रसग होनेसे शिश्न झुकजाता अर्थात् गिरजाताहै इसको मानसिक क्लैब्य कहतेहैं ॥ ३ ॥

तीखे, खट्टे, गरम और खारी पदार्थोको अत्यंत सेवन करनेसे वृद्धिको प्राप्त हुए पित्तके कारण वीर्यका क्षय होनेसे जो क्लीवता होतीहै उसको पित्तज क्लैब्य कहतेहैं ॥ ४ ॥

जो मनुष्य अत्यत मैथुन करताहोय और वाजीकरण पदार्थोंको सेवन नहीं करे उस पुरुषका लिंग ऊपरको नहीं उठता, इसको वीर्यक्षयजन्य क्लीवता कहतेहैं ॥ ५ ॥

शिश्नमें किसी प्रकारके भयकर रोगके होनेसे जो क्लीवता होतीहै उसको रोगजन्य क्लीवता कहतेहैं ॥ ६ ॥

वीर्यवाहिनी नसोंके छेदनसे लिग उठनेको असमर्थ होजाताहै वह शिराच्छेदजन्य क्लैब्य कहाजाताहै ॥ ७ ॥

शरीरके पुष्ट होनेपर जिसका मन कामदेवसे क्षोभित होकर वह पुरुष ब्रह्मचर्यको धारण करे और उसका वीर्यके रुकनेसे जो क्लीवता होतीहै उसको शुक्रस्तम्भजन्य क्लीवता कहतेहैं ॥

जो जन्मसे ही क्लीव होय वह सहज क्लीव कहाजाताहै ॥ ८ ॥

अथासाध्यक्लैब्यलक्षणम् ।

असाध्यं सहजं क्लैब्यं मर्मच्छेदाच्च यद्भवेत् ॥ ९ ॥

यन्मर्मच्छेदाद्वीर्यवाहिशिराच्छेदात् ॥

इन सात प्रकारके नपुसकोंमें सहज क्लैब्य तथा शिराच्छेदजन्य क्लैब्य यह असाध्य हैं ॥ ९ ॥

अथ क्लैब्यचिकित्सायां सामान्यविधिः ।

क्लैब्यानामिह साध्यानां कार्यो हेतुविपर्ययः ॥ मुख्यं चिकित्सितं यस्मान्निदानपरिवर्जनम् ॥ १० ॥

जो क्लैब्य साध्य हैं उसको दूर करनेके लिये जिन कारणोंसे वह उत्पन्न हुआ है उन कारणोंको त्याग देवे, क्योंकि उन कारणोंका त्याग करनाही मुख्य चिकित्सा है ॥ १० ॥

अथ क्लैब्यचिकित्सा ।

नरो वाजीकरान्योगान्सम्यक्छुद्धो निरामयः ॥ सप्तत्यन्तं प्रकुर्वीत वर्षादूर्द्धं तु षोडशात् ॥ ११ ॥ न च वै षोडषादर्वाक्सप्तत्याः परतो न च ॥ आयुष्कामो नरः स्त्रीभिः संयोगं कर्तुमर्हति ॥ १२ ॥ क्षयवृद्ध्युपदंशाद्या रोगाश्चातीव दुर्जयाः ॥ अकालमरणञ्च स्याद्भजतः स्त्रियमन्यथा ॥ १३ ॥ विलासिनामर्थवतां रूपयौवनशालिनाम् ॥ नराणां बहुभार्याणां विधिर्वाजीकरो हितः ॥ स्थविराणां रिरंसूनां स्त्रीणां वाल्लभ्यमिच्छताम् ॥ १४ ॥ योषित्प्रसंगात्क्षीणानां क्लीबानामल्परेतसाम् ॥ हिता वाजीकरा योगाः प्रीणयन्ति बलप्रदाः ॥ एतेऽतिपुष्टदेहानां सेव्याः कालाद्यपेक्षया ॥ १५ ॥

रोगरहित पुरुषको वमन विरेचनादिसे अच्छे प्रकार शुद्ध करकै सोलह वर्षकी अवस्थासे सत्तर वर्षपर्यंत वाजिकरणको सेवन करावे, जिसको अपने जीवनकी इच्छा होय वह पुरुष सोलह वर्षकी अवस्था पहिले और सत्तर वर्षकी अवस्थाके पश्चात् स्त्री प्रसंग न करे ।

अयोग्य प्रकारसे स्त्रीको सेवन करनेवाले पुरुषके क्षय, वृद्धि और उपदंशादि असाध्य रोग उत्पन्न होतेहैं और अकाल मृत्यु भी होतीहै । स्त्रीप्रसग करनेकी विधि,

रात्रिचर्याके प्रकरणमे विस्तारसे कही है सो उसमे देखलेना ।

विलास करनेवाला, धनवान, रूप और यौवन सम्पन्न और जिनके अनेक स्त्रियें है ऐसे पुरुषोको वाजीकरणविधि हितकारक है । तथा जो पुरुष वृद्ध होनेपर भी रमण करनेकी इच्छा करतेहै, स्त्रियोके अतिप्रेमकी इच्छावाले स्त्रियोके प्रसगसे क्षीण हुए, साध्य नपुसक और अल्पवीर्यवाले पुरुषोंको वाजीकरणकी विधि हितकारक, बलदायक और पुष्टिकारक है । पुष्ट शरीरवाले मनुष्योको भी देशकालआदिपर ध्यान देकर वाजीकरणका सेवन करना चाहिये ॥ ११–१५ ॥

अथ वाजीकरणवस्तूनि ।

भोजनानि विचित्राणि पानानि विविधानि च ॥ गीतं श्रोत्राभिरामाश्च वाचः स्पर्शसुखास्तथा ॥ १६ ॥ कामिनी सान्द्रतिलका कामिनी नवयौवना ॥ गीतं श्रोत्रमनोज्ञश्च ताम्बूलं मदिरा स्रजः ॥ १७ ॥ गन्धा मनोज्ञा रूपाणि चित्राण्युपवनानि च ॥ मनसश्चाप्रतीघातो वाजीकुर्वन्ति मानवम् ॥ १८ ॥ माक्षीकधातुमधुपारदलोहचूर्णं पथ्याशिलाजतुविडङ्गघृतानि लिह्यात् ॥ एकाग्रविंशतिदिनानि रुगर्दितोऽपि साशीतिकोऽपि रमयेत्प्रमदां युवेव ॥ १९ ॥ सत्त्वं गुडूच्या गगनं सलोममेलासितामागधिकासमेतम् ॥ एतत्समेतं मधुनावलीढं रामाशतं सेवयतीव षण्डः ॥ २० ॥ गवां विरूढवत्सानां सिद्धं पयसि पायसम् ॥ गोधूमचूर्णश्च तथा सितामधुघृतान्वितम् ॥ २१ ॥ भुक्त्वा हृष्यति जीर्णोऽपि दशदारान्व्रजत्यपि ॥ २२ ॥

अनेक प्रकारके विचित्र भोजन, विविध प्रकारके पीनेके पदार्थ, कानको जो प्रिय लगे ऐसे सुदर वचन, त्वचाको प्रिय ऐसे वस्त्र भूषणादि स्पर्श, चदमाकी चादनीसहित रात्रि, नवयौवना स्त्री, कान और मनको प्रिय ऐसा गायन आदि नागरवेलके पान, मदिरा, माला, सुगधि सुंदर स्वरूप, चित्रविचित्र पुष्पोद्यान और जिनसे मनमें चोट न लगे ऐसे कर्म क्लीबताको दूर करके घोडेकी समान रमण करनेकी शक्तिको उत्पन्न करेहैं ।

सोनामाखी, सहत, पारा, लोहेका चूर्ण, हरड,शिलाजीत, वायविडंग और घी इन सबको मिलाकर चाटे तो पुरुष रोगसे ग्रसित होनेपर और अस्सी वर्षके वृद्ध होनेपर भी जवानकी समान स्त्रीसे रमण करताहै ।

गिलोयका सत्त्व, अभ्रककी भस्म, हरितालकी भस्म इलायची, खाँड और पीपल इनको सहतमें मिलाकर चाटे तो नपुंसक भी सौ स्त्रियोसे रमताहै ।

पुष्ट बछडेवाली गायके दूधमे गेहूँका सत्त्व वा चूर्ण लेकर भूने फिर उसमें जल, उत्तम मिश्री वा खाँड सहत और घी मिलाकर सेवन करे तो वृद्ध मनुष्य भी दश स्त्रियोंसे गमन कर सक्ताहै ॥ १६–२२ ॥

दध्नोऽर्द्धाढकमीषदम्लमधुरं खण्डस्य चन्द्रद्युतेः प्रस्थं क्षौद्रपलं पलश्च हविषः शुण्ठ्याश्च माषाष्टकम् ॥ तद्वन्माषचतुष्टयं मरिचतः कर्षं लवङ्गं तथा धृत्वा शुक्लपटे शनैः करतलेनोत्थाप्य विस्रावयेत् ॥ २३ ॥ मृद्भाण्डे मृगनाभिचन्दनरसाभृष्टेऽगुरूद्धूपिते कर्पूरेण सुगन्धितं तदखिलं संलोड्य संस्थापयेत् ॥ स्वस्यार्थे मकरेश्वरेण रचिता ह्येषा रसाला स्वयं भोक्तुर्मन्मथदीपनी सुखकरी कान्तेव नित्य प्रिया ॥ २४ ॥

कुछेक खटाई लिये मीठा दही एकसौ अठाईस तोले चन्द्रमाकी समान श्वेत, और उज्ज्वल खांड ६४ चौसठ तोले, सहत ४ चार तोले, घी ४ चार तोले सोंठ ४० चालीस रत्ती, काली मिर्चे २० बीस रत्ती, और लौंग १ एक तोला लेवे । इन सबको एकत्र मिलाकर सफेद कपडेमें डालकर धीरे धीरे हाथसे फेरकर कस्तूरी तथा चदनके रससे सुवासित किये और अगरसे धूपितकिये मट्टीके वासनमें करके, फिर उसको कपूरसे सुवासित करे तो यह रसाला (श्रीखण्ड) सिद्ध होताहै । यह रसाला स्वय कामदेवने अपने लिये बनाया था । यह कामदेवको प्रदीप्त करनेवाला, सुख देनेवाला और कामिनीकी समान सदैव प्रिय लगताहै ॥ २३ ॥ २४ ॥

अथ रतिवर्द्धनयोगाः।

गोक्षुरेक्षुरबीजानि वाजिगन्धा शतावरी ॥ मुसली वानरीबीजं यष्टी नागबला बला ॥ २५ ॥ एषां चूर्णं दुग्धसिद्धं गव्येनाज्येन भर्जितम् ॥ सितया मोदकं कृत्वा भक्ष्यं वाजीकरं परम् ॥ २६ ॥ चूर्णादष्टगुणं क्षीरं घृतं चूर्णसमं स्मृतम् ॥ सर्वतो द्विगुणं खण्डं खादेदग्निबलं यथा ॥ २७ ॥ वाजीकराणि भूरीणि संगृह्य रचितो यतः ॥ तस्माद्बहुषु योगेषु योगोऽयं प्रवरो मतः ॥ २८ ॥

गोखुरू, तालमखाना, असगंध, सतावर, मुसली, कौंछके बीज, मुलेठी, गगेरन और खिरेटी इनके चूर्णको अठगुने दूधमे पकावे और फिर सब औषधियोंके बराबर गायका घी लेवे, उस घीमें औषधिको अच्छे प्रकार भूनकर औषधि डाले और औषधिसे दुगुनी सफेद बूरा मिलाकर उसके लड्डू बनालेवे इन लड्डुओंको सेवन करनेसे यह अत्यत वाजीकरण गुणोंको करताहै, यह प्रयोग अनेक वाजीकरण योगोंको सग्रह करके मैंने बनाया है इस कारण अनेक योगोंसे उत्तम है ॥ २५–२८ ॥

अथ मदनमंजरी वटी।

चत्वारो व्योमभागास्तदनु निगदितं भागयुग्मश्च वंगम्भागैकं शम्भुबीजं त्रितयमपि मृतं तत्समा सिद्धमूली ॥ चातुर्जातं सजातीफलमरिचकणानागरं देवपुष्पं जातीपत्रञ्च भागद्वितयमपि पृथक्सर्वमेकत्र चूर्ण्यम् ॥ २९ ॥ सर्वाद्धांशा सिता स्याद्धृतमधुसहितं मोदकीकृत्य चैतत्खादेदग्निं समीक्ष्य प्रसभमभिनवानन्दसंवर्द्धनाय ॥ योगो वाजीकराख्योऽयमिह निगदितो भैरवानन्दनाम्ना निःशेषव्याधिहन्ता दलितबहुवधूदामकन्दर्पदर्पः ॥ ३० ॥

४ चार भाग अभ्रककी भस्म, २ दो भाग वंगकी भस्म, पारेकी भस्म एक भाग और इन तीनोंकी बराबर भांग, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेसर, जायफल, कालीमिर्च, पीपल, सोंठ, लौंग और प्रत्येक दो दो तोले लेकर चूर्ण बनावे और सब दुगुनी चीनी डाले, फिर इसमें सहत और घी लड्डू बनाकर जठराग्निके बलानुसार लड्डुओंको सेवन इन लड्डुओंको सेवन करनेसे तत्कालही कामदेवकी प्रबल आनदकी प्राप्ति होतीहै। जगत्में भैरवानदने कहा हुआ यह वाजीकरण योग सम्पूर्ण व्याधियोंको करनेवाला है और बडी बडी प्रबल स्त्रियोंके काम अभिमानको भंजन करदेताहै ॥ २९ ॥ ३० ॥

अथ वस्ताण्डकच्छपांडे।

पिप्पलीलवणोपेते बस्ताण्डे घृतसाधिते कच्छपस्याथवा खादेत्तत्तु वाजीभृशम् ॥ ३१ ॥

बकरेके अण्डकोषोंको अथवा कछुवेके अण्डोंको भूनकर उसमें पीपल तथा सेंधानमकका चूर्ण डा खाय तो पुरुष घोडेकी समान मैथुन करनेमें समर्थ होता है ॥ ३१ ॥

अथ स्त्रीरतिवल्लभपूगपाकः।

पूगं दक्षिणदेशजं दशपलोन्मानं भृशं कर्तयेत्तत्स्विन्नं जलयोगतो मृदुतरं संकुट्य चूर्णीकृतम् ॥ तच्चूर्णं पटशोधितं वसुगुणे गोशुद्धदुग्धे पचेद्गव्याज्याञ्जलिसंयुतेऽतिनिबिडे दद्यात्तुलार्द्धां सिताम् ॥ ॥ ३२ ॥ पक्के तज्ज्वलनात्क्षितिं प्रतिनयेत्तस्मिन्पुनः प्रक्षिपेद्यद्यत्तदुदाहरामि बहुला दृष्टादरात्संहिताः ॥ एला नागबला बला सचपला जातीफला लिङ्गिका जातीपत्रसुपत्रपत्रकयुतं तच्च त्वचा संयुतम् ॥ ३३ ॥ विश्वावीरणवारिवारिदवरा वांशी वरी वानरी द्राक्षा सेक्षुरगोक्षुराश्च महती खर्जूरिका क्षीरिका ॥ धान्यार्कं सकसेरुकं समधुकं शृङ्गाटकं जीरकं पृथ्वीकाथ यवानिका वरटिका मांसी मिसी मेथिका ॥ ३४ ॥ कन्देष्वत्र विदारिकाथ मुशली गन्धर्वगन्धा तथा कर्चूरं करिकेशरं समरिचं चारस्य बीजं नवम् ॥

बीजं शाल्मलिसम्भवं करिकणाबीजञ्च राजीवजं श्वेतं चन्दनमत्र रक्तमपि च श्रीसंज्ञपुष्पैः समम् ॥ ३५ ॥ सर्वञ्चेति पृथक्पृथक्पलमितं संचूर्ण्य तत्र क्षिपेत्सूतं वंगभुजंगलोहगगनं सम्मारितं स्वेच्छया ॥ कस्तूरीघनसारचूर्णमपि च प्राप्तं यथा प्रक्षिपेत्पश्चादस्य तु मोदकान्विरचयेद्बिल्वप्रमाणानथ ॥ ३६ ॥ तान्भुक्त्वाति सदा यथानलबलं भुञ्जीत नाम्लं रसम्पूर्वस्मिन्नशिते गते परिणतिं प्राग्भोजनाद्भक्षयेत् ॥ नित्यं स्त्रीरतिवल्लभाख्यकमिमं पूगस्य पाकं भजेत्स स्याद्वीर्यविवृद्धिवृद्धमदनो वाजीव शक्तो रतौ ॥ ३७॥ दीप्ताग्निर्बलवान्बली विरहितो हृष्टः स पुष्टः सदा वृद्धो योऽपि युवेव सोऽपि रुचिरः पूर्णेन्दुवत्सुन्दरः ॥ ३८ ॥

वसुगुणेऽष्टगुणे अञ्जलिरर्द्धशरावः। तुलार्द्धं पञ्चाशत्पलानि यतः—“द्विःपञ्चाशत्पलानामभिदधति तुलां संहिताः सुश्रुताद्याः” नागबला (गुलशकरी) । बला (वरिआरा) तस्याः मूलम् । जातीपत्रकञ्जाइपत्री इतिलोके । विश्वा शुण्ठीति लोके । वीरणमुशीरं ग्राह्यम् । वारि सुगन्धवाला इतिलोके । वारिदः मुस्तकः। वरा त्रिफला । वांशी वंशलोचना । वरी शतावरी । वानरी कपिकच्छुः । इक्षुरः कोकिलाक्षस्तस्य बीजं ग्राह्यम् । गोक्षुरस्य च बीजम् । महती महाखर्जूरिका । क्षीरिका क्षीरी । पृथ्वीका कलौञ्जीति लोके । वराटिका “शालूकमेषां कन्दः स्याद्बीजकोशो वराटिका” मांसी जटामांसी । मिसिः शतपुष्पा । गन्धर्वगन्धा अश्वगन्धा तस्या मूलम् । श्रीसंज्ञं लवंगः । घनसारः कर्पूरः । बिल्वमानात् पलप्रमाणात् ॥

चालीस तोलेभर दक्षिण देशकी उत्तम सुपारी लेकर उनको बारीक कतरकरें टुकडे करलेवे उनको जलमें भिजोदेवे जब यह अत्यंत नरम होजांयँ तब उनको कूटकर बारीक चूर्ण करलेवे फिर उस चूर्णको वस्त्रमे छानलेवे, पश्चात् इस चूर्णसे आठगुने गायके शुद्ध दूधमे सोलह तोलेभर गायका घी डालकर उसमे इस चूर्णको पकावे जब पकते पकते गाढा होजाय तब उसमें २०० दोसौ तोलेभर उत्तम सफेद बूरा मिलादेवे, जब अच्छे प्रकारसे पकजाय तब उसको चूलेसे नीचे उतारकर उसमें इलायची, गगेरन, खिरेटी, पीपल, जायफल, लौंग, जावित्री, तेजपात, तालीसपत्र, दालचीनी, सोंठ, खस, सुगधवाला, नागरमोथा, हरड, बहेडा, आमला, वंशलोचन, सतावर, कौंछके बीज, दाख, तालमखाना, गोखुरूके बीज, बडीखजूर, तबाखीर, धनियाँ, कसेरू, सिंगाडे, मुलैठी, जीरा, कलौंजी, अजवायन, कमलगट्टेकी गिरी, वालछड, सौंफ, मेथी, विदारीकद, काली मुसली, असगन्धकी जड, कचूर, नागकेशर, मिरच, नवीन चिरौंजी, सेमलके बीज, गजपीपल, कमलगट्टा, चदन, लालचन्दन और लौंग इन प्रत्येक पदार्थका चार चार तोले चूर्ण डाले, उसीप्रकार अच्छी विधिसे पारेकी भस्म, वगकी भस्म, सीसेकी भस्म, लोहेकी भस्म, और अच्छे प्रकारसे मारा हुआ अभ्रक इनको भी इच्छानुसार डालदेवे, और जो कस्तूरी और भीमसेनी कपूर मिलजाय तो यह दोनों वस्तु भी डाल देवे। पीछे इसके चार चार तोलेके लड्डू बनावे। इन लड्डुओंको वडे आनन्दके साथ अग्निका बलावल विचारकर खाय। पहिले किया हुआ भोजन जब पच जाय तब भोजन करनेसे पहिले यह लड्डू खाय। इन लड्डुओंको सेवन करनेवालेको खटाई नहीं खानी चाहिये। यह स्त्रीरतिवल्लभ नामवाला पूगपाक (सुपारीपाक) नित्य सेवनकिया जाय तो वीर्यकी वृद्धि होकर कामदेवकी वृद्धि होतीहै। मैथुनकर्ममें घोडेकी समान समर्थ होताहै। जठराग्नि दीपन होतीहै, बलकी वृद्धि होतीहै, शरीरमे वलि नहीं पडती, हृष्ट पुष्ट होताहै, जो पुरुष वृद्ध होय वह भी इसके प्रतापसे युवाकी समान बलवान् और पूर्णमासीके चन्द्रमाकी समान सुन्दर होताहै ॥ ३२–३८ ॥

अथ कामेश्वरमोदकः।

एतस्मिन्सति वल्लभे यदि पुनः सम्पक्षुरा शाणिका धत्तूरस्य च बीजमर्ककरभः पोथोऽब्धिशोषस्तथा ॥ सन्माजू-

फलकं तथा खसफलन्त्वक्कार्षिका निक्षिपेच्चूर्णार्द्धा विजया तदा स हि भवेत्कामेश्वरो मोदकः ॥ ३९ ॥

इस पूगपाकमें जो खुरासानी, अजवायन, धतूरेके बीज, अकरकरा, वालछड, समुद्रशोष, माजूफल, और पोस्तके डोडे इन पदार्थोंका चूर्ण एक एक तोला और सब चूर्णसे आधी भाग मिलाटी जाय तो यह कामेश्वर मोदक तैयार होताहै ॥ ३९ ॥

अथ महाखण्डकूष्माण्डावलेहः ।

रक्तपित्ताधिकारोक्तः खण्डकूष्माण्डको महान् ॥ रक्तपित्तादिरोगघ्नो महावाजीकरः स्मृतः ॥ ४० ॥

रक्तपित्ताधिकारमें जो महाखण्डकूष्माण्ड नामका अवलेह कहा है वह अवलेह रक्तपित्तादि रोगोंको हरनेवाला और अत्यन्त वाजीकरण है ॥ ४० ॥

अथाम्रपाकः ।

पक्वाम्रस्य रसद्रोणे सिताभाढकसम्मिताम् ॥ घृतं प्रस्थमितं दद्यान्नागरस्य पलाष्टकम् ॥ ४१ ॥ मरिचं कुडवोन्मानं पिप्पली द्विपलोन्मिता ॥ सलिलस्याढकं दत्त्वा सर्वमेकत्र कारयेत् ॥ ४२ ॥ विपचेन्मृन्मये पात्रे दारुदर्व्या प्रचालयेत् ॥ चूर्णान्येषां क्षिपेत्तत्र घनीभूतेऽवतारिते ॥ ॥ ४३ ॥ धान्याकं जीरकं पथ्यां चित्रकं मुस्तकत्वचम् ॥ बृहज्जीरकमप्यत्र ग्रन्थिकं नागकेशरम् ॥ ४४ ॥ एलावीजं लवंगञ्च पृथग्जातीं पलम्पलम् ॥ सिद्धे शीते प्रदद्याच्च मधुनः कुडवद्वयम् ॥ ४५ ॥ भक्षयेद्भोजनादर्वाक्पलमात्रमिदं नरः ॥ अथवा नियतं नात्र मात्रां खादेद्यथानलम् ॥ ४६ ॥ मानवः सेवनादस्य वाजीव सुरते भवेत् ॥ समर्थो बलवान्पुष्टो नित्यं स स्यान्निरामयः ॥ ४७ ॥ ग्रहणीं नाशयेदेव क्षयं श्वासमरोचकम् ॥ अम्लपित्तं महाश्वासं रक्तपित्तञ्च पाण्डुताम् ॥ ४८ ॥

उत्तम पकेहुए आमोंके १०२४ एक हजार चौबीस तोले रसमें २५६ दोसौ छप्पन्न तोले खाड, ६४ चौसठ तोले घी, ३२ बत्तीस तोले सोंठ, १६ सोलह तोले कालीमिरच, ८ तोले पीपल और २५६ दोसौ छप्पन्न तोले जल डालकर सबको एकत्रित करके मट्टीके वासनमें मन्द मन्द अग्निसे पकावे और पकाते समय लकडीकी करछीसे चलाता जाय गाढा होनेपर उसको नीचे उतार उसमें धनिया, जीरा, हरड, चीता, नागरमोथा, दालचीनी, कलौंजी, पीपलामूल, नागकेसर, इलायचीके दाने, लौंग और जायफल, इन प्रत्येक पदार्थका चार चार तोले चूर्ण डालदेवे । जब यह शीतल होजाय तब इसमें ३२ बत्तीस तोले सहत डालदेवे तो यह आम्रपाक सिद्ध होताहै । इसमेंसे एक तोला लेकर भोजन करनेसे पहिले खाय अथवा मात्राके नियमको छोडकर जठराग्निके बलानुसार खाय । इस पाकको सेवन करनेसे मनुष्य मैथुन करनेमें घोडेकी समान सामर्थ्ययुक्त होते हैं, बलवान्, पुष्ट और सदैव रोगरहित होतेहैं । यह पाक ग्रहणी, क्षय, श्वास, अरुचि, अम्लपित्त, महाश्वास, रक्तपित्त और पाडुताको नष्ट करेहै ॥ ४१–४८ ॥

अथ चन्दनादि तैलम् ।

शमयति गोक्षुरचूर्णं छागक्षीरेण साधितं समधु ॥ भुक्तं क्षपयति जाड्यं यज्जनितं कुप्रयोगेण ॥ ४९ ॥ द्रव्याणि चन्दनादेस्तु चन्दनं रक्तचन्दनम् ॥ पतंगमथ कालीयागुरुकृष्णागुरूणि च ॥ देवद्रुसरलं पद्मं पद्मके तृणिकेऽपि च ॥ ५० ॥ कर्पूरो मृगनाभिश्च लता कस्तूरिकापि च ॥ सिह्लकः कुंकुमं नव्यं जातीफलकमेव च ॥ ५१ ॥ जातीपत्रं लवंगञ्च सूक्ष्मैला महती च सा ॥ कंकोलफलकं स्पृक्का पत्रकं नागकेशरम् ॥ ५२ ॥ वालकञ्च तथोशीरं मांसी दारुसिताऽपि वा ॥ कृतकर्पूरकश्चापि शैलेयं भद्रमुस्तकम् ॥ रेणुका च प्रियंगुश्च श्रीवासो

गुग्गुलुस्तथा ॥ ५३ ॥ लाक्षा नखश्च रालश्च धातकीकुसुमं तथा ॥ ग्रन्थिपर्णश्च मञ्जिष्ठा तगरं सिक्थकं तथा ॥ ५४ ॥ एतानि शाणमानानि कल्कीकृत्य शनैः पचेत् ॥ अनेनाभ्यक्तगात्रस्तु वृद्धोऽशीतिसमोऽपि सः ॥ ५५ ॥ युवा भवति शुक्राढ्यः स्त्रीणामत्यन्तवल्लभः ॥ वन्ध्यापि लभते गर्भं वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ अपुत्रः पुत्रमाप्नोति जीवेच्च शरदां शतम् ॥ ५६ ॥ चन्दनादि महातैलं रक्तपित्तं क्षयं ज्वरम् ॥ दाहं प्रस्वेददौर्गन्ध्यं कुष्ठं कण्डूं विनाशयेत् ॥ ५७ ॥

पतंगं वकम् इति लोके । कालीयकं कलम्बकटु इति लोके। लता कस्तूरिका मुष्कदाना इति लोके। कंकोलफलस्य अलाभे जातीपुष्पं ग्राह्यं तदलाभे लवंगं ग्राह्यम् । दारुसिता [दारुचीनी]। शैलेयं छरेति लोके श्रीवासः गुग्गुलुः । ग्रन्थिपर्णी [गठिवन] अशीतिसमः अशीतिवार्षिकः ॥

सफेद चन्दन, लाल चन्दन, पतग, दारुहलदी, अगर, काली अगर, देवदारु, धूपसरल, कमल, पारिस पीपलका पञ्चांग, कपूर, कस्तूरी, वेदमुस्क, शिलारस, नवीन केसर, जायफल, लौंग, बडी इलायची, छोटी इलायची, जावित्री, कंकोल (ककोल न मिले तो जावित्री और जावित्री भी न मिले तो लौग लेनी चाहिये) दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, खस, सुगधवाला, वालछड, तज, वगलोचन, भूरि छरीला, नागरमोथा, रेणुकाके बीज, फूलप्रियगू, लोवान, गूगल, लाख, नख, मजीठ, तगर, मोम, राल, धायके फूल, और गठिवन यह प्रत्येक पदार्थ २४ चौबीस २४ चौवीस रत्ती लेकर कल्क वनाकर तेलमें डालकर धीरे धीरे पकावे, इस तेलकी शरीरमें मालिस किया जाय तो ८० वर्षका बुड्ढा पुरुष भी युवाकी समान वीर्यवान् और स्त्रियोंको अत्यन्त प्रिय होताहै। इस तेलका मालिस करनेसे वन्ध्या स्त्रियोंके भी गर्भ रहताहै । अपुत्रिणीके पुत्रकी प्राप्ति होतीहै और सौ वर्षकी आयु होती है। यह चन्दनादि महातैल–रक्तपित्त, क्षय, ज्वर, दाह, पसीना, दुर्गंध, कोढ और खुजलीको दूर करदेताहै ॥४९–५७॥

अथ मधुपक्कहरीतकी ।

दशमूलकणावह्निः कपित्थश्च विभीतकम् ॥ कट्फलं मरिचं विश्वमूलं पिप्पलिसैन्धवम् ॥ ५८ ॥ रक्तरोहीतकं दन्ती द्राक्षाजाजिनिशाद्वयम् ॥ धात्रीजन्तुघ्नशिखरिशृंगीदारुपुनर्नवाः ॥५९॥ धान्याकं देवकुसुमं राजवृक्षस्त्रिकण्टकम् ॥ वृद्धदारु कुबेराक्षी मूलं वीरणिकाभवम् ॥ ६० ॥ एतेषां पलयुग्मन्तु भेषजानां पृथक्पृथक् ॥ आढकश्चापि पथ्यायास्तोये पश्चाढके पचेत् ॥ ६१ ॥ स्विन्ना पथ्या भवेद्यावत्पश्चान्मधु विनिक्षिपेत् ॥ गुरूपदेशाद्विधिवत्त्रिदिनश्च ततः परम् ॥ ६२ ॥ पुनः क्षिपेत्पञ्चदिनं तथा च दशवासरम् ॥ संसिद्धा चाभया पश्चाद् घृतभाण्डे निधापयेत् ॥ ६३ ॥ विमले सुदृढे क्षौद्रपरिपूर्णे प्रयत्नतः ॥ पश्चात्पूर्वोक्तभाण्डे तु क्षिपेद्बुद्धिपरायणः ॥ एषा हरीतकी चैव धन्वंतरिकृता शुभा ॥ ६४ ॥ भक्षयेद्यो नरो नित्यं रोगा नश्यन्ति सर्वशः ॥ श्वासं कासं क्षयं पाण्डुं हिक्कां छर्दिमदभ्रमान् ॥ ६५ ॥ मुखरोगं तथा तृष्णामरुचिं वह्निमन्दताम् ॥ यकृत्प्लीहोदराणाञ्च वातरक्तं सुदारुणम् ॥ ६६ ॥ शिरोऽक्षिकर्णजां पीडां तथा बद्धगुदोदरम् ॥ ग्रहणीं दुर्विकाराश्च शोषं दोषत्रयोद्भवम् ॥ मधुपक्केति विख्याता हन्ति रोगाननेकशः ॥ ६७ ॥

दशमूल, पीपल, चीता, कैथ, बहेडा, कायफल, मिरच, सोठ, पीपलामूल, सैंधानिमक, लालरोहिडा, जमालगोटा, दाख, जीरा, हलदी, दारुहलदी, आमले, वायविडंग, चिरचिटा, काकडाशिगी, देवदारु, पुनर्नवा, धनियाँ, लौंग अमलतास, गोखुरू, विधारा, सागरगोटा, और खस यह प्रत्येक पदार्थ आठ आठ तोले और उत्तम हरड दोसौ छप्पन तोले लेवे, सबको पाच आढक जलमें पकावे, जब पकते पकते नरम होजाय तब उसमेंसे हरडोंको निकालकर उनकी गुठली निकालकर अलग रख देवे और काटे

को छानकर उसमें वह हरड डालकर पकावे जब पकते २ गाढा होजाय तब शीतल होनेपर गुरुवचनानुसार सहत मिलावे, फिर तीन दिन पश्चात् पांच दिन पश्चात् और फिर दश दिन पश्चात् सहत डाले । इस प्रकारकी सिद्ध हुई हरडोंको निर्मल, दृढ और सहतसे भरे घीके चिकने वासनमें यत्नपूर्वक रक्खे फिर उस वासनमेंसे निकालकर बुद्धिमान् वैद्य दूसरे वासनमें भरके रख देवे तो यह मधुपक्व हरीतकी सिद्ध होतीहै।जो मनुष्य इस धन्वन्तरिकी कहीहुई हरडका नित्य सेवन करताहै उसके सम्पूर्ण रोग नष्ट होजाते हैं । श्वास, खाँसी, क्षय, पाडु, हिचकी, वमन, मद, भ्रम, मुखरोग, तृषा, अरुचि, मदाग्नि, प्लीहा, यकृत्, उदरके रोग, महादारुण वातरक्त, मस्तककी पीडा, नेत्रकी पीडा, कानकी पीडा, बद्धगुद, दुष्ट विकारोंवाली ग्रहणी, त्रिदोषजनित सूजन और अन्यान्यभी बहुतसे रोग इस हरडके सेवन करनेसे नष्ट होजातेहैं ॥ ५८–६७ ॥

अथ वानरीवटिका ।

बीजानि कपिकच्छ्वाः कुडवमितानि स्वेदयेच्छनकैः ॥ प्रस्थे गोभवदुग्धे तावद्यावद्भवेद्गाढम् ॥ ६८ ॥ त्वग्रहितानि च कृत्वा सूक्ष्मं सम्पेषयेत्तानि ॥ पिष्टिकया लघुवटिकाः कृत्वा गव्ये पचेदाज्ये ॥ ६९ ॥ द्विगुणितशर्करापाता वटिकाः सम्पक्वया लेप्याः ॥ वटिका माक्षिकमध्ये मज्जनयोग्ये विरलाः स्थाप्याः ॥ ७० ॥ पञ्चटंकमितास्तास्तु प्रातः सायञ्च भक्षयेत् ॥ अनेन शीघ्रद्रावी यो यश्च स्यात्पतितध्वजः ॥ ७१ ॥ सोऽपि प्राप्नोति सुरते सामर्थ्यमति वाजिवत् ॥ नानेन सदृशं किञ्चिद्द्रव्यं वाजीकरं परम् ॥ ७२ ॥ वानरी वटिका ॥

सोलह तोले कौंछके बीजोंको चौंसठ तोले गायके दूधमें पकावे जब पकते २ दूध गाढा होजाय तब उतार लेवे, फिर इन बीजोंको छीलकर बारीक मैदेकी छोटी २ वडी बनाकर गायके घीमें पकावे, फिर उनसे दुगुनी खाडकी चाशनीमें उन वडियोंको छोड देवे, फिर उनको तलकर उसमें निकालकर जितने सहतमें वह डूबजायँ उतने सहतमें भरकर रखदेवे । इनमेंसे पांच टंक प्रातः काल और सन्ध्याके समय भक्षण करे तो जिसका वीर्य तत्काल स्खलित होजाताहै और जिसका लिंग खडा नहीं होता वह पुरुष भी मैथुनके समय घोडेकी समान सामर्थ्यको प्राप्त होताहै, इस वानरीवटिकाकी समान अन्य कोई भी वाजीकरण पदार्थ नहींहै ॥ ६८–७२ ॥

अथाकारकरभादिवटी ।

आकारकरभः शुण्ठी लवंगं कुंकुमं कणा ॥ जातीफलं जातिपुष्पं चन्दनं कार्षिकं पृथक् ॥ ७३ ॥ चूर्णयेदहिफेनन्तु तत्र दद्यात्पलोन्मितम् ॥ सर्वमेकीकृतं माषमात्रं क्षौद्रेण भक्षयेत् ॥ ७४ ॥ शुक्रस्तम्भकरं पुंसामिदमानन्दकारकम् ॥ नारीणां प्रीतिजननं सेवेत निशि कामुकः ॥ ७५ ॥

इति वाजीकरणाधिकारः ।

अकरकरा, सोंठ, लौंग, केसर, पीपल, जायफल, जावित्री और सफेद चन्दन यह प्रत्येक एक एक तोला लेकर उसका चूर्ण करके उसमें चार तोले अफीम मिलावे, फिर इसकी पाच २ रत्तीकी गोलियां बनावे । नित्य एक गोली सहतके साथ खाय तो पुरुषका वीर्य स्तम्भ होताहै, मैथुनमें अत्यन्त आनन्द होताहै और स्त्रियें विशेष प्रसन्न होतीहैं । कामी पुरुषोंको यह गोलियें खानी चाहियें ॥ ७३–७५ ॥

इति वाजीकरणाधिकारः सपूर्णः ।

अथ रसायनाधिकारः ।

तत्र रसायनलक्षणम् ।

यज्ज्वरव्याधिविध्वंसि वयःस्तम्भकरं तथा ॥ चक्षुष्यं बृंहणं वृष्यं भेषजं तद्रसायनम् ॥ ७६ ॥

जो औषधि ज्वर और व्याधिको नष्ट करनेवाली, अवस्थाको स्थापन करनेवाली, नेत्रोंको हितकारी, पुष्टिकारक और मैथुनकशक्तिको बढानेवाली हो उस औषधिको रसायन कहतेहैं ॥ ७६ ॥

अथ रसायनफल विधिश्च ।

दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वयः ॥ देहेन्द्रियबलं कान्तिं नरो विन्देद्रसायनात् ॥ ७७ ॥ नाविशुद्धशरीरस्य

युक्तो रासायनो विधिः ॥ न भाति वाससि म्लिष्टे रंगयोग इवाहितः ॥ ७८ ॥

रसायनको सेवन करनेसे दीर्घायु होतेहै उनको स्मरण शक्ति अत्यंत तीव्र होजातीहै । तथा मेधा, आरोग्यता, तरुणता, देह और इन्द्रियोका बल और सुदर कांति बढातीहै । विरेचनादिसे शरीरको विना शुद्ध किये रसायनका उपयोग करना योग्य नहीं है । जैसे कि अच्छे प्रकारसे चढायाहुआ रगभी मैले वस्त्रको शोभित नहीं करता ॥ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

अथ रसायनप्रयोगाः ।

शीतोदकं पयः क्षौद्रं घृतमेकैकशो हितम् ॥ त्रिशः समस्तमथवा प्राक्पीतं स्थापयेद्वयः ॥ ७९ ॥ मण्डूकपर्ण्याः स्वरसः प्रभाते प्रयोज्य यष्टीमधुकस्य चूर्णम् ॥ रसो गुडूच्यास्तु समूलपुष्पः कल्कः प्रयोज्यः खलु शंखपुष्प्याः ॥ ॥ ८० ॥ आयुष्प्रदान्यामयनाशनानि बलाग्निवर्णस्वरवर्द्धनानि ॥ मेध्यानि चैतानि रसायनानि मेध्या विशेषेण च शंखपुष्पी ॥ ८१ ॥

मण्डूकपर्णी ब्राह्मी । तदलाभे मञ्जिष्ठा ग्राह्या । तस्या अपि रसायनत्वात् ॥

माक्षिकेण तुगाक्षीरी पिप्पल्या लवणेन च ॥ त्रिफला सितया वापि युक्ता सिद्धं रसायनम् ॥ ८२ ॥ सिन्धूत्थशर्कराशुण्ठीकणामधुगुडैः क्रमात् ॥ वर्षादिष्वभया प्राश्या रसायनगुणैषिणा ॥ ८३ ॥ पुनर्नवस्यार्द्धपलं नवस्य पिष्टं पिबेद्यः पयसार्द्धमासम् ॥ मासद्वयं तत्त्रिगुणं समं वा जीर्णोऽपि भूयः स पुनर्नवः स्यात् ॥ ॥८४॥ ये मासमेकं स्वरसं पिबन्ति दिने दिने भृंगरजःसमुत्थम् ॥ क्षीराशिनस्ते बलवीर्ययुक्ताः समाः शतं जीवनमाप्नुवन्ति ॥ ८५ ॥ शतावरी मुण्डितिका गुडूची सहस्तिकर्णा सहतालमूली ॥ एतानि कृत्वा समभागयुक्तान्याज्येन किं वा मधुनावलिह्यात् ॥ ८६ ॥ जरारुजामृत्युवियुक्तदेहो भवेन्नरो वीर्यबलादियुक्तः ॥ विभाति देवप्रतिमः स नित्यं प्रभामयो भूरिविवृद्धबुद्धिः ॥ ८७ ॥ पीत्वाश्वगन्धां पयसार्द्धमासं घृतेन तैलेन सुखाम्बुना वा ॥ वीर्यस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते बालस्य सस्यस्य यथाम्बुवृष्टिः ॥ ८८ ॥

एक भाग शीतल जल, एक भाग दूध, एक भाग सहत और दो भाग घी इनको भोजनसे पहिले सेवन करनेसे अथवा तीन भाग शीतल जल, तीन भाग दूध, तीन भाग सहत और तीन भाग घी इनको भोजनसे पहिले सेवन करनेसे अवस्था स्थापन होतीहै ।

प्रातःकाल ब्रह्मीका रस, गिलोयका स्वरस और शंखाहुलीकी जड तथा पत्तोंका कल्क और मुलैठीका चूर्ण सेवन करनेसे यह उत्तम रसायनके गुणोंको करे है इसमे कहे हुए ब्रह्मी आदि चार पदार्थ तो आयुको वढानेवाले, रोगोंका नाश करनेवाले, बुद्धिको उत्पन्न करनेवाले और बलको, अग्निको, वर्णको तथा स्वरकी वृद्धि करनेवाले होनेसे रसायन है । इनमें भी शखाहुली विशेष करके बुद्धिको देनेवाली है, जो ब्राह्मी न मिले तो उसके अभावमे मजीठ लेना चाहिये, क्योकि मजीठभी रसायन है ॥

सहत पीपल और सैंधानमकके साथ वशलोचनको सेवन करना रसायनहै और खांडके साथ त्रिफलेको सेवन करना सिद्ध रसायनहै ।

रसायनके गुणोंकी इच्छा करनेवाले पुरुषोको वर्षाऋतुमें सेंधेनिमकके साथ, शरदृतुमे खांडके साथ, हेमन्तऋतुमे सोंठके साथ, शिशिरऋतुमें पीपलके साथ, वसन्तऋतुमें सहतके साथ और ग्रीष्मऋतुमे गुडके साथ हरडको सेवन करना चाहिये इसप्रकार हरडको सेवन करनेसे रसायनके गुणोंको करेहै । जो मनुष्य एक पक्षतक, अथवा तीन महीनेतक, नौ महीनेतक अथवा एक वर्षतक तात्कालिक उखाडे हुए पुनर्नवेको पीसकर उसके दो तोले कल्कको दूधके साथ पीवे वह वृद्ध मनुष्यभी जवान होजाताहै ।

जो मनुष्य एक महीने तक नित्य भागरेके रसको पिये और दूधके साथ भोजन करे तो अत्यन्त बल और वीर्ययुक्त होताहै और १०० सौ वर्षतक जीताहै ।

सतावर, गोरखमुंडी, गिलोय, हस्तिकर्णी, पलास, और काली मुसली इन सबको समान भाग लेकर एकत्र करके सहतमें अथवा घीमें मिलाकर चाटे तो मनुष्य जरा रोग और अकालमृत्यु रहित अतुल वीर्य बल सम्पन्न देवताकी समान, तेजस्वी और अत्यन्त तीव्र बुद्धिसम्पन्न होकर सदैव शोभाको प्राप्त होताहै ।

एक पक्षतक घीके साथ, तेलके साथ, अथवा सुहाते २ गरम जलके साथ असगन्धको पिये तो जिस प्रकार जलकी वृष्टि धान्योंको पुष्ट करती है उसी प्रकार असगन्ध वीर्य तथा शरीरके बलको वृद्धि करताहै ॥ ७९-८८ ॥

अथ लोहगुग्गुलुः ।

अयःपलं गुग्गुलुमत्र योज्यं पलत्रयं व्योषपलानि पञ्च ॥ पक्वानि चाष्टौ त्रिफलारजश्च कर्ष लिहन्यात्यमरत्वमेव ॥ ८९ ॥

लोहेका चूर्ण ४ चार तोले, गूगल १२ बारह तोले, त्रिकुटा २० बीस तोलेभर और त्रिफलेका चूर्ण ३२ बत्तीस तोले इन सबको एकत्र करके इसमेंसे नित्य एक तोला चाटे तो ज्वरादि रोग दूर होकर अमरता प्राप्त होतीहै ॥ ८९ ॥

अथ रसायनविशेषफलम् ।

न केवलं दीर्घमिहायुरश्नुते रसायनं यो विविधं निषेवते ॥ गतिं स देवर्षिनिषेवितां शुभां प्रपद्यते ब्रह्म तथैव चाक्षयम् ॥९०॥

इति रसायनाधिकारः ।

जो मनुष्य अनेक प्रकारके रसायनको सेवन करताहै वह केवल दीर्घायुको नहीं भोगता किन्तु देवर्षियोंकी शुभ गतिको प्राप्त होताहै और अविनाशी ब्रह्मरूप पद मोक्षको भी प्राप्त होताहै ॥ ९० ॥

इति रसायनाधिकारः सम्पूर्णः ।

यावद्व्योमनि बिम्बमम्बरमणेरिन्दोश्च विद्योततं यावत्सप्तपयोधयः सगिरयस्तिष्ठन्ति पृष्ठे भुवः ॥ यावच्चावनिमण्डलं फणिपतेरास्ते फणामण्डले तावत्सद्भिषजः पठन्तु परितो भावप्रकाशं शुभम् ॥९१॥ ग्रन्थस्यास्याध्यापकानाञ्जनानां मध्ये नणामादरं कुर्वतां च ॥ श्रीसोमेशादित्यविप्रप्रसादादायुर्दीर्घं सौख्यमास्तां सदैव ॥ ९२ ॥

इति भावप्रकाशस्योत्तरखण्डेऽष्टमं प्रकरण समाप्तम् ।

जबतक सूर्य और चन्द्रमा आकाशमें स्थित हैं, जबतक पृथ्वीपर सातों समुद्र तथा धरणिपर धराधर प्रतिष्ठित हैं और जबतक भूमण्डल फणीन्द्रके फणपर विद्यमान है तबतक देशदेशान्तरोंके बडेबडे विचक्षण वैद्य मेरे इस भावप्रकाश शुभदायक ग्रन्थको पढें ॥ ९१ ॥

इस भावप्रकाश ग्रन्थके पढने पढानेवाले और आदर सत्कार करनेवाले पुरुष विश्वनाथ महादेव सूर्य देवता और ब्राह्मणोंके प्रसादसे सर्वदा दीर्घायु होकर अचल सुखको प्राप्त हों ॥ ९२ ॥

इति श्रीभावमिश्रकृतभावप्रकाशनामग्रन्थे, उत्तरखण्डे मुरादाबादनगरनिवास्यायुर्वेदोद्धारककविकुल-
कलानिधिमाथुरवैश्यवंशोद्भवशालिग्राम-
वैश्यविरचितवैद्यसंजीविनीनाम
भाषाटीका सम्पूर्णा ।

समाप्तमिदमुत्तरखण्डम् ।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बम्बई.

क्रय्यपुस्तकें (वैद्यक-ग्रन्थाः)।

नाम.	की० रु०आ०
अष्टाङ्गहृदय-(वाग्भट) मूल मोटा अक्षर वाग्भटविरचित.	२-८
अष्टांगहृदय-(वाग्भट) वाग्भटविरचित तथा पं० रविदत्तकृत भाषाटीकासहित और प० ज्वालाप्रसादजी मिश्र संशोधित। जिसमें-सूत्रस्थान, शारीरस्थान, निदान-स्थान, चिकित्सास्थान, कल्पस्थान, उत्तर-स्थान, इत्यादिमे संपूर्ण रोगोंकी उत्पत्ति, निदान, लक्षण और क्वाथ, चूर्ण, रस, घी, तैल आदिसे अच्छी प्रकार चिकित्सा वर्णित है.	८-०
अमृतसागर-हिन्दीभाषामें-बिना गुरु छोटे नगरोंमें दवाखाना करसक्ते हैं। इसमें सर्व रोगोंका वर्णन और यत्न लिखेगयेहैं। ग्लेज कागज.	२-४
" तथा रफ कागज	२-०
अर्कप्रकाश-(रावणकृत) भाषाटीकासमेत। इसमें-नानाप्रकारके यन्त्रोंसे औषधियोंका अर्क खींचना और गुणवर्णन भलीप्रकार कियागयाहै. ग्लेज कागज.	१-०
" तथा रफ कागज	०-१४
अनुपानदर्पण-भाषाटीकासमेत। इसमें-रस धातु बनानेकी क्रिया और अनुपान देना तथा रोगोंपर औषधोंमें क्या २ अनुपान देना यह सब वर्णित है.	०-१२
अनुभूतयोगावली-चिकित्साग्रन्थ। इसमे अनुभव कीहुई हरेक रोगकी उत्तम उत्तम औषधियां वर्णित हैं	०-७
अजीर्णतिमिरभास्कर-भाषामें-चौबे बया-खूब रामप्रसादकृत.	०-६
अजीर्णमञ्जरी-भाषाटीकासहित। इसमे किन २ चीजोंका अजीर्ण किन २ चीजोंके सेवनसे दूर होताहै इत्यादि विषय भली-प्रकार लिखेहैं	०-४
आयुर्वेदसुपेणसंहिता-भाषाटीकासहित। इसमें-सामान्य औषधीवर्ग, धान्यवर्ग, पयवर्ग इत्यादिकोंका गुण-दोष वर्णित है.	०-१४
आयुर्वेदचिन्तामणि-भाषाटीकासहित। पं० बलदेवप्रसादमिश्र संगृहीत. ...	१-१२
आरोग्यशिक्षा-पं० मुरलीधरशर्मा राजवैद्य-सकलित (भाषामें)	०-५
आदिशास्त्र-भाषाटीकासमेत। इस ग्रन्थमे कन्या और पुरुषका लक्षण कौन २ प्रकारसे विवाह करना और रोगोंकी दवा आदिका वर्णन भलीप्रकार है... ...	०-१०
इलाजुल गुरबा-नूतन मथुराका छपाहै ...	१-४
औषधीक्रिया-मराठी भाषाटीकासमेत। "आर्यभिषक्पुस्तकावली" मेसे यह स्वतन्त्र निकालागया है। आर्यवैद्यककी पद्धतिसे औषधोंको किसरीतिसे तैयार करना तथा कौनसे रोगपर किस दवाका उपयोग करना इत्यादि इस पुस्तकद्वारा सहजमें मालुम होसक्ताहै। मराठीभाषा जाननेवालोंको परमोपयोगी है.	०-४
अंजननिदान-भाषाटीकासमेत। इसमें-सुगमतासे रोगोका निदान लिखाहै. ...	०-७
कल्पपञ्चकप्रयोग-भाषाटीकासमेत। इस ग्रन्थमें चोपचीनीकल्प, रुद्रवन्तीकल्प, रागदमनीयकल्प, शिवलिंगीकल्प, तथा पलाशकल्पात्मक भी हैं.	०-३
करिकल्पलता-छन्दोबद्ध-हिन्दीभाषामें। केशवसिंहजी तअल्लुकेदार रचित। इसमें-हाथियोंके शुभाशुभ लक्षण व उनके रोगनाशार्थ अनेक औषधिविधान चित्रोंसमेत वर्णितहै.	१-०

नाम.	की०रु०आ०
कामकुतूहल–भाषाटीकासमेत । इसमें–शरीरकी क्षीणतादिमें अपूर्व दवाइयोंका संग्रहहै.	०–४
कामरत्न–योगेश्वर नित्यनाथप्रणीत और विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत भाषाटीकासमेत। इस ग्रन्थमें कामशास्त्रादि विषय और रोगोंकी औषधि तथा वाजीकरण औषधी अनुभूतहै और वशीकरणादि प्रयोगभी हैं.	१–१२
कालज्ञान–भाषाटीकासमेत । इस ग्रन्थका सपूर्ण अभ्यास करनेसे भूत, भविष्य, वर्तमानका ज्ञान होताहै.	०–३
क्याखूबडिबिया–(जर्राहीयोग) चौबे क्याखूबजीकी बनाई हुई हमेशा पास रखने योग्य है । देखनेसे मालूम होसकेगा.	०–४
कुमारतन्त्र–रावणकृत मूल तथा भाषाटीकासमेत । इसमें–बालकोंकी दवाइयोंका अपूर्व वर्णन है.	०–८
कूटमुद्गर–सटीक–संस्कृत.	०–३
कूटमुद्गर–भाषाटीकासमेत	०–३
गुणोंकी पिटारी–काशीनिवासी स्वामी परमानन्दने बडे परिश्रमसे हिन्दीभाषामें बनाई है । इसमें–अनेक प्रकारकी धातुओंके फूंकने व सेवन करने वं सिन्दूरादिके बनाने तथा साबुन, पारा, गन्धक और सिंगरफ वगैरहके वर्तनोंके बनानेके परमोपयोगी नानाप्रकारके तरीके भी लिखगयेहैं.	०–१२
गौरीकांचलिकातन्त्र–भाषाटीकासमेत । इसमें–तन्त्र, मन्त्र, और दवाइयोंका संग्रह परमोपयोगी लिखागयाहै.	०–६
चक्षुरक्षक–इसमें–नेत्रसबंधी दवाइयोंका खजानाहै.	०–१॥
चर्याचन्द्रोदय–भाषाटीकासमेत । इसमें–व्यंजन बनानेकी क्रिया लिखीहै. ...	१–८
चक्रदत्त–भाषाटीका सहित । इसमें और चिकित्साओंके अलावा तैल साधनादि प्रकार बहुत अच्छा लिखाहै	३–०
चरकसंहिता–टकसाल निवासी वैद्यपञ्चानन पं० रामप्रसाद वैद्योपाध्यायकृत प्रसादनी भाषाटीकासहित । चरकके आठोंस्थान एकसेएक अपूर्व होनेपर भी "चिकित्सास्थान" तो अद्वितीय है । उसमें नीरोग मनुष्यके लिये वे सहजप्रयोग लिखे हैं कि, वह कभी बीमारही न हो और रोगी चिकित्सा करनेपर तत्काल नीरोग हो । वैद्यमात्रको यह ग्रन्थ अवश्य संग्रह करना चाहिये । पहलेसे अबकीवार बहुत बड़ा होगया है जिसकी सुन्दर सुनहरी दो जिल्द बँधी हैं	९–०
चिकित्सांजन–भाषाटीकासमेत । इसमें ज्वर, खांसी, कुष्ठ, भगंदरादि कठिन रोगोंकी बहुत उत्तम चिकित्सा वर्णित है ...	०–६
चिकित्साधातुसार–हिन्दीभाषामें धातू फूँकनेके उत्तमोत्तम प्रयोग लिखेहैं. ...	०–४
जर्राहीप्रकाश–चारोंभाग । जर्राहोंके उपकारार्थ जर्राहीसंबंधी संस्कृत, उर्दू तथा डाक्टरी आदि अनेक ग्रन्थोंके आधारसे विभूषित.	१–८
ज्वरतिमिरनाशक–भाषाटीका–सर्वप्रकारके दवाइयोंका संग्रह है.	१–०
डाक्टरीचिकित्सासार––भाषामें––संक्षिप्त डाक्टरी निघण्ट.	०–१
डाक्टरीचिकित्सार्णव–बडा–हिन्दीभाषामें प्रत्येक रोगोका डाक्टरी मतसे और साथ साथ देशी वैद्यक मतसे नाम, लक्षण, रोगनिदान, और उपाय आदि लिखेगयेहैं । सारांश–डाक्टरी सीखनेके लिये यह पुस्तक परमोपयोगी है....	१–८
तिब्बअकबर–हकीम अकबर अलीखाँ लिखित तथा देवीप्रसादकृत हिन्दीभाषामे अनुवादित । इसमें–छब्बीस अध्यायोंमें शिरसे पैरतक स्त्री, पुरुष, लडके आदिका सम्पूर्ण रोगोंका उत्पत्ति, निदान, कारण, स्वरूप, लक्षण और यूनानीमतसे एक २	

नाम.	की० रु० आ०
रोगोंपर सैकडो औषधोका उपचार (चिकित्सा) वर्णित है। यह अपूर्व ग्रन्थ वैद्यमात्रको उपयोगी है.	७–०
त्रैशती–पं० वैद्यवल्लभभट्टविरचित संस्कृत-टीका–तथा भाषाटीकासहित। इसमें सब रोगोंमे प्रधान, ज्वर और सन्निपातकी उत्तम २ अनेक प्रकारकी चिकित्सा लिखी हैं, और वैद्यक ग्रन्थ होनेपरभी ग्रन्थकर्त्ता शार्ङ्गधरने इसमे अपनी कविताशक्तिका पूर्ण परिचय दियाहै। दोनों टीकाएँ एकसे एक बढकर सरलत व प्रमाणोंसे विभूषित हैं	१–०
द्रव्यगुणशतक–भाषाटीकासमेत। इसमें–औषधिद्रव्योंका गुणदोष वर्णन भलीप्रकार लिखागयाहै.	०–६
द्रव्यगुण–बडा। श्रीयुत प० ज्वालाप्रसाद-मिश्रकृत भाषाटीकासहित	०–१४
धन्वन्तरिवैद्यक–लाला शालग्राम वैश्यकृत भाषाटीकासमेत। जिसमें समस्त रोगोंका निदान, कारण, लक्षण और चिकित्सक औषधि संग्रहकर लिखाहै	५–०
नपुंसकामृतार्णव–भाषाटीकासमेत। इसमें नपुंसकोंको नानाप्रकारके तैल, लेप, घृत, वाजीकरण, औषधि सर्वोत्तम लिखीगई है.	०–१४
नाडीदर्पण–भाषाटीकासमेत। इसमें–नाडी देखनेके प्रकार लिखे हैं.	०–६
नाडीविज्ञान–भाषाटीकासमेत... ...	०–२
नाडीज्ञानतरंगिणी–अत्युत्तम भाषाटीका-सहित	०–१४
पशुचिकित्सा–अर्थात् "वृषकल्पद्रुम" छन्द-बद्ध भाषा। इसमे–बैल, गऊ और भैंसके शुभाशुभ लक्षण, यन्त्र, चिकित्सा, पहिचान, चित्रसहित वर्णित है. ...	१–०
पथ्यापथ्य–भाषाटीकासहित। पं० केशवप्रसादमिश्र संगृहीत। जिसमें संपूर्ण रोगोपर पथ्यापथ्य करना और अपथ्यादिकका निषेध, इत्यादि वर्णितहैं। भिषग्गणोंको अवश्य लेना उचित है.	०–१२

नाम.	की० रु० आ०
पाकप्रदीप–वाजीकरण भाषाटीकासमेत। नामहीसे गुण जान लेना	०–७
पाकरत्नाकर–वैद्यक विषयमें यह छोटासा ग्रन्थ बहुतही उत्तम है.	०–६
बालबोधपाकावली–पाकरस वर्णन अच्छी प्रकार किया गया है.	०–२
बालतन्त्र–कल्याण वैद्यरचित मूल और नन्दकुमारकृत भाषाटीकासह इसमें–षोडशवन्ध्या, साधारणवन्ध्या, औषध, पुरुषवीर्यवृद्धि, गर्भाधान, रुद्रस्नान, मासगृहीत–बालरक्षा, दिन–मास–वर्षगृहीत–बालरक्षा, साधारण बालग्रहरक्षा, ज्वरहरणोपाय, साधारण रोगचिकित्सा, नानारोगोंके अनुभवीप्रयोग, इत्यादि वर्णित हैं. ...	१–०
बूँटीप्रचारवैद्यक–श्रीयुत महंत सुखरामदासजी संगृहीत	१–०
बृहन्निघण्टुरत्नाकर–मूल प० दत्तराम चौबेकृत संकलित और भाषाटीकासमेत। इसमें–शारीराध्याय, यन्त्राध्याय, शस्त्रविचारणाध्याय, योगसूत्राध्याय, अष्टविधशस्त्रकर्माध्याय, तथा दूसरा भाग–क्षारपाकविधि, अग्निकर्म, दोषधातुमल वृद्धि, दोषवर्णन, ऋतुचर्या, दिनचर्या, रात्रिचर्या तथा नाडीदर्पण्यादिवर्णन भलीभाँति किया गयाहै।	
प्रथम भाग.	३–०
बृहन्निघण्टुरत्नाकर–द्वितीय भाग. ...	३–८
बृहन्निघण्टुरत्नाकर–तृतीय भाग। (विविध रोगोंकी चिकित्साका सग्रह) ...	३–८
बृहन्निघण्टुरत्नाकर–चौथा भाग। (चिकित्साखण्ड)	२–८
बृहन्निघण्टुरत्नाकर–पञ्चम भाग (रोगोंका कर्मविपाक)	५–८
बृहन्निघण्टुरत्नाकर–षष्ठभाग (रोगोंका चिकित्साभाग)	४–८
बृहन्निघण्टुरत्नाकर–सप्तम अष्टम भाग। लाला शालग्राम संकलित अर्थात् "शालग्रामनिघण्टुभूषण" अनेक देशदेशान्तरीय संस्कृत, हिन्दी, बँगला, मराठी,	

नाम	की० रु० आ०
गौर्जरी, द्राविडी, तलगी, औत्कली, इंग्लिश, लैटिन्, फारसी, अरबी आदि भाषाओंमें सर्व औषधोंके नाम और गुणोंका वर्णन औषधियोंके चित्रोंसमेत....	८—०
बृहन्निघण्टुरत्नाकर—संपूर्ण आठों भाग....	३०—०
बृहन्निघण्टुरत्नाकरान्तर्गत—चिकित्साखण्ड—पं० दत्तराम चौबेकृत सरल भाषाटीकासमेत। इसमें—संपूर्ण रोगोंके औषधोंका अपूर्व संग्रह है.	४—०
बृहद्बालबोधपाकावली—भाषाटीकासहित...	०—७
वोपदेवशतक—भाषाटीकासमेत। इसमें—वैद्यक काथादिकका वर्णन है. ...	०—६
मदनपालनिघण्टु—टकसालनिवासी वैद्यपञ्चानन पं० रामप्रसाद राजवैद्यकृत अत्युत्तम भाषाटीकासमेत। इसमें—औषधोंके नाम व गुणदोष वर्णन है.	२—०
महामारीविवेचन—भाषाटीकासमेत। इसमें—हैजादि रोगोंका उपद्रव किसप्रकारसे होताहै वह शास्त्रानुसार भलीभाँति वर्णितहै ...	०—४
माधवनिदान—पं० दत्तराम चौबेकृत भाषाटीकासमेत। इसमें—संपूर्ण रोगोंका कारण, उत्पत्ति, लक्षण, संप्राप्ति इत्यादिका भलीप्रकार वर्णन है। ग्लेज कागज ...	२—०
मिज्जानुतिव्व—अर्थात् सर्वांगचिकित्सा. ...	१—८

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—**खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस—बम्बई.**

आयुर्वेदोद्धारक वनौषधालय.

हमने सर्व साधारणके सुभीतेके लिये बहुतसा द्रव्य खर्च करके बडे परिश्रमसे अनेक देश, वन, पर्वत और जंगलकी बहुतसी दिव्य और दुष्प्राप्य वनौषधियोंको मंगाकर अपने औषधालयमें रक्खी हैं। जैसे—ब्राह्मी, शंखपुष्पी, शिवलिंगी, पातालगरुडी, देवदाली, अपराजिता, विष्णुक्रान्ता, अशोक, सुईआंवला, विदारीकंद, वाराहीकंद, मूर्वा, कालाभागरा, कालाधतूरा इत्यादि सब प्रकारकी हरी और सूखी औषधि मिलसकती हैं। जिस किसी महाशयको किसी जडीबूटीकी आवश्यकता हो उसका खुलासा नाम देशभाषामें अथवा संस्कृत भाषामें लिख भेजे तो औषधि तत्काल भेज दी जायगी। किंतु यह अच्छे प्रकारसे स[illegible] कोईभी वनौषधि नहीं भेजी जाती।

इसके अतिरिक्त इस औषधालयमें प्रायः सब प्रकारके रोगोंकी [illegible] शालिग्रामजीकी तथा हमारी वारवार परीक्षा की हुई औषधियें भी [illegible] रस, धातु, सुवर्ण, रौप्य, ताम्र, वंग, अभ्रक, हरिताल, नाग, [illegible] चन्द्रोदय, स्वर्णसिन्दूर प्रभृति रसायन तथा चूर्ण, गुटिका, वटी, [illegible] पाचन, कषाय, तेल, घृत, गूगल आदि समस्त औषधियें उचित [illegible] मँगानेवाले और वैद्यलोगोंको विशेष कमीशन दियाजाताहै। आवश्य[illegible] सूचीपत्र और सार्टीफिकट मंगाकर देखिये।

वैद्य—मासिक पत्र।

यह पत्र प्रतिमास प्रत्येक घरमें उपस्थित होकर एक सच्चे वै[illegible] रक्षाके सुलभ उपाय, आरोग्यशास्त्रके नियम, प्राचीन और अर्वाचीन [illegible] अन्वेषण, स्त्री और बालकोंके कठिन रोगोंका इलाज आदि अच्छे अच्छे [illegible] केवल १) रु० मात्र है।

पता—वैद्य—शंकरलाल हरिशंकर. आयुर्वेदोद्धारक[illegible]